

॥ भाविष्य ॥ महापुराणम् ॥

(तृतीय खण्ड)

अनुवादक

पण्डित बाबूराम उपाध्याय





COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]

भविष्य सहापुराणम्

(तृतीय खण्ड)

उत्तर-पर्व

(iii)

भविष्य महापुराणम्

(तृतीय खण्ड)

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादक
पंडित बाबूराम उपाध्याय

शक : २०२५

सन् : २००३

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशक :

विज्ञूति सिंथ्र

प्रधानमंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशन वर्ष

: शक २०२५ सन् २००३

स्वत्वाधिकार

: हिन्दी साहित्य सम्मेलन

मूल्य

: ३२५ रुपये मात्र

फोटो कम्पोजिंग

: मनोज ऑफसेट

मुद्रक

दि इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स (प्रा०) लि०

२५५, चक, जीरो रोड, इलाहाबाद

दूरभाष - २४००२४३

आवरण-सज्जा

: कृष्णकुमार भित्तल

प्रकाशकीय

हिन्दो साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के 'प्राण' स्वतामधन्य स्व० राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी द्वारा प्रवर्तित 'पुराण प्रकाशन योजना' के अन्तर्गत सम्मेलन के पूर्व प्रधानमंत्री स्व० डॉ० प्रभात भास्त्री ने पुराणों के स्तरीय प्रकाशन का जो शिवसंकल्प लिया था, उसके परिणामस्वरूप अद्यावधि पर्यन्त ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैदर्त, अग्नि, मर्कण्डय, बृहन्नारदीय, वायु, मत्स्य, कूर्म, स्वदपुराणान्तर्गत केदारखण्ड तथा भविष्यपुराण के दो खण्ड (ब्राह्मपर्व, मध्यम एवं प्रतिसर्गपर्व) का मूलपाठ सहित हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जा चुका है। शविष्यमहापुराण की पाण्डुलिपि एवं परिष्कृत भूमिका गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डॉ० रामजी तिवारी द्वारा उपलब्ध करायी गयी थी, जिनके प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

'भविष्यपुराण' प्रकाशन की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया गया है। शविष्यपुराण के दो भागों के प्रकाशित हो जाने के बाद तीसरा खण्ड (उत्तर-पर्व) आपके समक्ष प्रस्तुत है।

ग्रन्थ के सुष्टु एवं स्तरीय प्रकाशन हेतु आचार्य रुद्रप्रसाद मिश्र, डॉ० शेषनाथ यण शुक्ल एवं शेषमणि पाण्डेय जी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

आकर्षक आवरण एवं सुन्दर मुद्रण हेतु इलाहाबाद ब्लाकवर्क्स (प्रा०) लि० एवं मनोज ऑफसेट के व्यवस्थापकों श्री कृष्णकुमार मित्तल एवं श्री मनोज मित्तल के प्रति भी आभारी हूँ।

सम्प्रति भविष्यपुराण का 'उत्तर-पर्व' आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अतीव आळ्हाद हो रहा है। विश्वास है, यह पुराण सुधीजनों द्वारा समादृत एवं जन-उपयोगी सिद्ध होगा।

राम नवमी
संवत् २०६०

विभूति मिश्र
प्रधानमंत्री

विषयानुक्रमणिका

उत्तर-पर्व

अध्याय	विषय	इलोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१.	व्यास के आगमन का वर्णन	३०	१
२.	ब्रह्माण्डोत्पत्ति का वर्णन	५१	४
३.	माया दर्शन-वर्णन	१०७	९
४.	संसार दोष नामक वर्णन	१३५	२७
५.	पापभेद के आश्यान का वर्णन	८५	२९
६.	शुभाशुभ फल का निर्देश-वर्णन	२०९	३५
७.	शक्टब्रतमाहात्म्य-वर्णन	३१	१२
८.	तिलकब्रतमाहात्म्य-वर्णन	२५	५५
९.	अशोकब्रत माहात्म्य-वर्णन	१६	५८
१०.	करवीर ब्रत-वर्णन	९	५९
११.	कोकिला ब्रत का वर्णन	२३	६१
१२.	वृहत्पोत्रब्रत-वर्णन	३८	६३
१३.	भद्रनामक उपवास का वर्णन	१००	६६
१४.	द्वितीया ब्रत माहात्म्य-वर्णन	२७	७५
१५.	अशून्यशयन माहात्म्य का वर्णन	२३	७८
१६.	मधूकतृतीया ब्रत का वर्णन	१६	८०
१७.	मेघपाली तृतीया ब्रत-वर्णन	१४	८२
१८.	रूपरम्भा नामक ब्रत	३६	८३
१९.	गोपदतृतीया ब्रत-वर्णन	१६	८७
२०.	हरिकाली ब्रत-वर्णन	२८	८८
२१.	ललिता ब्रत-वर्णन	४४	९१
२२.	अवियोग तृतीया ब्रत-वर्णन	३६	९५
२३.	उमा महेश्वर ब्रत-वर्णन	२८	९८
२४.	रम्भातृतीया ब्रत-वर्णन	३६	१००
२५.	सौभाग्याष्टक वर्णन	४४	१०४
२६.	रसकल्याणी ब्रत-वर्णन	६८	१०८
२७.	आद्रानन्दकरी ब्रत-वर्णन	२७	११४
२८.	चैत्र, भाद्रपद तथा माघ का वर्णन	५८	११६
२९.	अनन्तरतृतीया ब्रत-वर्णन	७७	१२१
३०.	अक्षयतृतीया ब्रत-वर्णन	१९	१२८
३१.	अङ्गारकचतुर्थी ब्रत-वर्णन	६२	१३०
३२.	विनायकस्नपनचतुर्थी ब्रत-वर्णन	३०	१३६
३३.	विनायकचतुर्थी ब्रत-वर्णन	१३	१३८

स्थाय	विषय	इलोक संख्या	पृष्ठ संख्या
४.	शान्ति व्रत-वर्णन	१०	१४०
५.	सारस्वत व्रत का वर्णन	२०	१४१
६.	नागपञ्चमी व्रत-वर्णन	६१	१४३
७.	श्रीपञ्चमी व्रत-वर्णन	५८	१४९
८.	विशोक्षणी व्रत-वर्णन	१७	१५४
९.	कमलषष्टी व्रत-वर्णन	१५	१५६
१०.	मन्दारषष्टी व्रत-वर्णन	१५	१५७
१.	ललिताषष्टी व्रत का वर्णन	१८	१५९
२.	कार्तिकेय पूजा का वर्णन	२९	१६१
३.	विजयसप्तमी व्रत-वर्णन	३०	१६३
४.	आदित्यमण्डल विधि का वर्णन	९	१६६
५.	ऋगेदशवर्ज्यसप्तमी व्रत-वर्णन	५	१६७
६.	कुकुटीमर्कटी व्रत का वर्णन	४३	१६८
७.	उभयसप्तमी व्रत का वर्णन	२५	१७२
८.	कल्याणसप्तमी व्रत-वर्णन	१६	१७४
९.	शर्करासप्तमी व्रत का वर्णन कमलासप्तमी व्रत का वर्णन	१८	१७६
१०.	शुभसप्तमी व्रत का वर्णन	११	१७७
११.	स्नपनसप्तमी व्रत का वर्णन अचलासप्तमी व्रत का वर्णन बुधाष्टमी व्रत-वर्णन	४०	१८०
१२.	जन्माष्टमी का वर्णन	४८	१८३
१३.	दूर्वाष्टमी व्रत-वर्णन	५९	१८७
१४.	कृष्णाष्टमी व्रत-वर्णन	६९	१९३
१५.	अनघाष्टमी व्रत-वर्णन	२३	१९९
१६.	सोमाष्टमी व्रत-वर्णन	३०	२०१
१७.	श्रीवृक्षनवमी व्रत-वर्णन	७१	२०४
१८.	ध्वजनवमी व्रत-वर्णन	२३	२१०
१९.	उल्कानवमी व्रत-वर्णन	१०	२१२
२०.	दशावतार चरित्र का वर्णन	५७	२१३
२१.	आशादशमी-वर्णन	१७	२१९
२२.	तारकद्वादशी व्रत-वर्णन	३२	२२१
२३.	अरण्यद्वादशी व्रत-वर्णन	४६	२२४
२४.	रोहिणीचन्द्र व्रत-वर्णन	४९	२२८
		२७	२३२
		१६	२३५

अध्याय	विषय	इलोक संख्या	पृष्ठ संख्या
६८.	अवियोग व्रत-वर्णन	२५	२३७
६९.	गोवत्सद्वादशी व्रत-वर्णन	९०	२३९
७०.	श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संचाद में देवशयनोत्थापन द्वादशी व्रत का वर्णन	७०	२४९
७१.	नीराजनद्वादशी व्रत-वर्णन	४६	२५२
७२.	भीमपंचक व्रत-वर्णन	५२	२५६
७३.	मन्दद्वादशी व्रत-वर्णन	२१	२६०
७४.	भीष्यद्वादशी व्रत-वर्णन	७२	२६२
७५.	श्रवणद्वादशी व्रत-वर्णन	७१	२६८
७६.	विजयश्वरणद्वादशी व्रत-वर्णन	७६	२७४
७७.	सम्प्राप्तिद्वादशी व्रत का वर्णन	१२	२७९
७८.	गांविन्दद्वादशी व्रत का वर्णन	१४	२८१
७९.	अखण्डद्वादशी व्रत-वर्णन	२५	२८२
८०.	मनोरथद्वादशी व्रत-वर्णन	३०	२८४
८१.	उल्कानवमी व्रत-वर्णन	१३	२८७
८२.	सुक्रतद्वादशी व्रत-वर्णन	७१	२८९
८३.	धरणी व्रत-वर्णन	१४७	२९५
८४.	विशोकद्वादशी व्रत-वर्णन	५६	३०७
८५.	विभूतिद्वादशी व्रत-वर्णन	५४	३१२
८६.	मदन द्वादशी व्रत-वर्णन	३७	३१७
८७.	अबाधक व्रत-वर्णन	१६	३२०
८८.	मन्दारनिम्बार्क व्रत-वर्णन	९	३२२
८९.	त्रयोदशी व्रत-वर्णन	५१	३२३
९०.	अनंगत्रयोदशी व्रत-वर्णन	४९	३२८
९१.	पाली व्रत का वर्णन	१२	३३२
९२.	रम्भा व्रत का वर्णन	१५	३३३
९३.	आग्नेयीचतुर्दशी व्रत-वर्णन	७७	३३५
९४.	अनंतचतुर्दशी व्रत का वर्णन	७३	३४२
९५.	श्रवणिका व्रत-वर्णन	४६	३४८
९६.	श्रीकृष्णयुधिष्ठिर-संचाद	१४	३५३
९७.	शिवचतुर्दशी व्रत-वर्णन	३३	३५४
९८.	फलत्यागचतुर्दशी व्रत-वर्णन	२६	३५७
९९.	पौर्णिमासी व्रत-वर्णन	६७	३६०
१००.	बैशाखी, कार्तिकी, माघी व्रत-वर्णन	२२	३६६

संख्या	विवरण	इलोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१.	युगादितिथि व्रतमाहात्म्य का वर्णन	३२	३६८
२.	वटसादित्री व्रत-वर्णन कार्तिककृत्तिका व्रत-वर्णन	९२	३७१
३.	पूर्णमनोरथ व्रत का वर्णन	४६	३८०
४.	विशोकपूर्णिमा व्रत-वर्णन	२६	३८४
५.	अनन्त व्रत-वर्णन	२३	३८७
६.	सांभरायणी व्रत-वर्णन	६७	३८९
७.	नक्षत्रपुरुष व्रत-वर्णन	६९	३९५
८.	नवात्र व्रत-वर्णन	४२	४०१
९.	सम्पूर्ण व्रतों का वर्णन	३५	४०८
१०.	कामदानवेशदा व्रत-वर्णन	६२	४११
११.	वृन्ताक व्रतविधि-वर्णन	१	४१६
१२.	ग्रहनक्षत्र व्रत-वर्णन	४३	४१८
१३.	सनैश्चर व्रत-वर्णन	५०	४२१
१४.	आदित्य के दिन नक्तद्रवत-वर्णन	२३	४२५
१५.	संक्रांति उद्यापन-वर्णन	१७	४२८
१६.	विष्टिव्रत-वर्णन	४६	४३०
१७.	अगस्त्यव्रत-वर्णन	८३	४३४
१८.	अभिनवचन्द्रार्घ्यव्रत-वर्णन	१०	४४०
१९.	शुक्र और बृहस्पति की अर्ध्यपूजा विधि	१५	४४२
२०.	पचासीव्रतों का वर्णन	१८७	४४३
२१.	माघस्नान-वर्णन	३५	४५७
२२.	नित्यस्नानविधिवर्णन	३३	४६०
२३.	रुद्रस्नानविधि-वर्णन चन्द्रसूर्यग्रहणस्नान की विधि का वर्णन	३२	४६३
२४.	साम्भरायणीव्रत का वर्णन बावली, कुआँ, तालाब के निर्माण-विधि का वर्णन	२०	४६६
२५.	वृक्ष के उद्यापन विधि का वर्णन	४८	४६८
२६.	देवपूजाविधि का वर्णन दीपदान विधि का वर्णन	९१	४७२
२७.	वृषोत्सर्ग विधि का वर्णन	४५	४७९
२८.	फाल्गुनपूर्णिमा व्रत का वर्णन	१३	४८३
२९.	हिंडोला झूलने की विधि का वर्णन	६९	४८५
३०.	दमनकान्दोलक रथयात्रा का वर्णन	२२	४९१
३१.	फाल्गुनपूर्णिमा व्रत का वर्णन	५१	४९३
३२.	हिंडोला झूलने की विधि का वर्णन	५९	४९८
३३.	दमनकान्दोलक रथयात्रा का वर्णन	७१	५०३

अध्याय	विधय	इलोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१३५.	मदनमहोत्सव का वर्णन	३६	५०९
१३६.	भूतमाता के उत्सव का वर्णन	४२	५१२
१३७.	रक्षाबन्धन का वर्णन	२३	५१६
१३८.	महानवमी व्रत का वर्णन	१११	५१८
१३९.	इन्द्रध्वज महोत्सव का वर्णन	४३	५२८
१४०.	दीपावली उत्सव वा वर्णन	७३	५३२
१४१.	नवग्रहलक्ष्महोम विधि का वर्णन	१२१	५३८
१४२.	कोटिहोम विधि का वर्णन	७९	५४७
१४३.	महाशान्ति विधि का वर्णन	४६	५५४
१४४.	गणनाशान्ति का वर्णन	२७	५५७
१४५.	नक्षत्रहोम विधि का वर्णन	२३	५६०
१४६.	अपराधशतव्रत-वर्णन	६०	५६२
१४७.	काञ्चनव्रत-वर्णन	८७	५६६
१४८.	कन्यादान का वर्णन	११	५७२
१४९.	ब्राह्मण की सेवाविधि का वर्णन	९	५७४
१५०.	वृषदान विधि का वर्णन	१७	५७५
१५१.	प्रत्यक्षधेनुदान विधि का वर्णन	३९	५७६
१५२.	धेनुदानव्रतविधि-वर्णन	४२	५८०
१५३.	जलधेनुदानव्रत विधि का वर्णन	७२	५८४
१५४.	घृतधेनुदानव्रतविधि का वर्णन	१९	५९०
१५५.	लवणधेनुदानव्रतविधि का वर्णन	२३	५९२
१५६.	सुवर्णधेनुदानव्रत-वर्णन	२७	५९४
१५७.	रत्नदानव्रतविधि का वर्णन	१८	५९७
१५८.	गर्भिणी गोदानविधि का वर्णन	१४	५९८
१५९.	गोसहस्रदानविधि-वर्णन	४५	६००
१६०.	वृषभदान-वर्णन	१६	६०४
१६१.	कपिलादान माहात्म्य-वर्णन	७९	६०५
१६२.	महिषीदानविधि-वर्णन	२१	६१२
१६३.	अविदानव्रतविधि का वर्णन	२२	६१४
१६४.	भूमिदान का वर्णन	४२	६१६
१६५.	पृथ्वीदान का वर्णन	३३	६१९
१६६.	हलपंक्तिदान का वर्णन	२९	६२२
१६७.	मृत्तिकाभाण्डदानविधि-वर्णन	३८	६२५

पाय	विषय	इलोक संख्या	पृष्ठ संख्या
८.	गृहदानविधि का वर्णन	४५	६२८
९.	अनन्दान माहात्म्य का वर्णन	७५	६३२
०.	स्थालीदान का वर्णन	३२	६३८
१.	दारीदान विधि का वर्णन	२३	६४१
२.	प्रपादानविधि का वर्णन	२६	६४४
३.	अंगीठीदान का वर्णन	१२	६४६
४.	विद्यादान का वर्णन	२९	६४८
५.	तुलापुरुषदान का वर्णन	९९	६५०
६.	सुवर्णदान का वर्णन	६९	६६०
७.	ब्रह्माण्डदान का वर्णन	४६	६६५
८.	कल्पवृक्षदान का वर्णन	४३	६६९
९.	कल्पलता दान का वर्णन	१९	६७३
०.	हाथी, घोड़ा के रथदान का वर्णन	४९	६७५
१.	कालपुरुषदान का वर्णन	२७	६७९
२.	सप्तसागरदान-वर्णन	१९	६८२
३.	महाभूतघटदान-वर्णन	१७	६८३
४.	शव्यादानविधि का वर्णन	२३	६८५
५.	आत्मप्रतिदान विधि का वर्णन	१७	६८७
६.	सुवर्णनिर्मित अश्वदान-वर्णन	१४	६८९
७.	हिरण्यश्वरथदान-वर्णन	१४	६९०
८.	कृष्णमृगचर्म दानविधि-वर्णन	२१	६९२
९.	सुवर्णनिर्मित हाथी के रथ का दान	१३	६९४
०.	विश्वचक्रदान विधि का वर्णन	२८	६९५
१.	भुवनप्रतिष्ठा का वर्णन	६८	६९८
२.	नक्षत्रदान विधि का वर्णन	३९	७०३
३.	तिथिदान-वर्णन	६६	७०७
४.	वराहदान विधि का वर्णन	२२	७१२
५.	धान्यपर्वतदान विधि का वर्णन	४८	७१४
६.	लवणपर्वतदानविधि-वर्णन	११	७१९
७.	गुडाचलदानविधि-वर्णन	२६	७२०
८.	हेमाचलदान विधि-वर्णन	९	७२२
९.	तिलाचलदान विधि-वर्णन	२६	७२४
०.	कपासपर्वतदान विधि का वर्णन	१०	७२६
१.	घृताचलदान विधि का वर्णन	१३	७२७

अध्याय	विषय	इलोक संख्या	चृष्ट संख्या
२०२.	रत्नाचलदान विधि का वर्णन	१३	७२९
२०३.	रौप्याचलदान विधि का वर्णन	११	७३०
२०४.	शर्कराचलदान विधि का वर्णन	३८	७३१
२०५.	सदाचारधर्म-वर्णन	१५३	७२५
२०६.	रोहिणीचन्द्रशथन विधि का वर्णन	३०	७४७
२०७.	श्रीकृष्ण का द्वारका-गमन वर्णन	१५	७५०
२०८.	अनुक्रमणिका-कथन	३४	७५२

● ●

भविष्यपुराणम् – उत्तरपर्व

॥ श्री गणेशाय नमः ॥
॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

भविष्यमहापुराणम्

उत्तरपर्व

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यासागमनवर्णनम्

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्नतुष्टे सति क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितुं ब्रह्मपि जिह्वायते ।
भेजे यच्चरणारचिन्दमसङ्कृत्सौभाग्यभास्योदयैस्तेनैषः जगति प्रसिद्धिमण्डपेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥१
शश्वत्पुण्यहिरञ्यगर्भरसनार्चिंहासनाध्यात्तिनी सेयं वाग्धिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि वः ।
यत्पादामलकोमलाङ्गुलिनलज्ज्योत्तनाभिरुद्वेलितः शब्दन्नहासुधाम्बुद्धिर्बुद्धिमनस्युच्छृङ्खलं खेलति ॥२
नमस्तस्मै विश्वोदयविलयरक्षाप्रकृतये शिवाय क्लेशौघच्छिदुरपदपद्मप्रणतये ।
अमन्दस्वच्छन्दप्रथितपृथुलीलातनुभृते त्रिवेदीवाचामप्यपथनिजतत्त्वस्थितिकृते ॥३

अध्याय १

व्यास के आगमन का वर्णन

वह गणपति देव तुम्हें कल्याण प्रदान करें, जिनके असन्तुष्ट हो जाने पर शक्ति कुण्ठित होने के कारण ब्रह्मा छोटे कार्य की भी पूर्ति करने में असमर्थ ही रह जाते हैं और जिसके चरणकमल की सेवा का सौभाग्य भाग्यशाली प्राणी सदैव किया करते हैं । अतः मैं भी उनकी सेवा के लिए सचेष्ट हूँ, क्योंकि उसी चरण-सेवा के फल स्वरूप समस्त विश्व में देवराज इन्द्र की राजलक्ष्मी की अतुलनीय स्थाति हुई है । ब्रह्मा की उस जिह्वा रूप पवित्र सिंहासन पर सदैव सुशोभित होने वाली वाग्धिदेवता सरस्वती तुम्हें अत्यन्त कल्याण प्रदान करती रहे, जिसके चरण की कोमल अंगुलियों के नखों की स्वच्छ किरणों द्वारा अत्यन्त बढ़ा हुआ वह शब्द न्रह्य रूप अमृत सागर विद्वानों के मन में स्वच्छन्द हिलोरें लेता रहता है । १-२। उस शिव (कल्याण) मूर्ति को मैं सदैव नमस्कार करता हूँ, जिसने समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, रक्षा एवं प्रलय करना अपना स्वभाव ही बना लिया है, जिसका चरणकमल सदैव विघ्न व्यूहों को नष्ट करता है, और निरन्तर तेजी से होने वाली उस स्वच्छन्द एवं अत्यन्त प्रस्थात विश्व लीला रूप (विराट) शरीरधारण किये हैं तथा जिसकी तत्त्व स्थिति का वर्णन करने में वेदवाणी भी असमर्थ रहती है । ऐसे गणाधिदेव मेरी रक्षा करें । जिनके कपोल के ऊपर स्वच्छ

॥ श्री गणेशाय नमः ॥
॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

भविष्यमहापुराणम्

उत्तरपर्व

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यासागमनवर्णनम्

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्नतुष्टे सति क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिहायते ।
भेजे यच्चरणारविन्दमसंकृत्सौभाग्यभाग्योदयैस्तेनैषा जगति प्रसिद्धिमगमद्वेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥१
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनांसिंहासनाध्यासिनी सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि वः ।
यत्पादामलकोमलाइंगुलिनखज्योत्सनाभिरुद्वेलितः शब्दब्रह्मसुधाम्बुधिरुद्धमनस्युच्छङ्खलं खेलति ॥२
नमस्तस्मै विश्वोदयविलयरक्षाप्रकृतये शिवाय क्लेशौघच्छिदुरपदपद्मप्रणतये ।
अमन्दस्वच्छन्दप्रथितपृथुलीलातनुभृते त्रिवेदीवाचामप्यपथनिजतत्वस्थितिकृते ॥३

अध्याय १

व्यास के आगमन का वर्णन

वह गणपति देव तुम्हें कल्याण प्रदान करें, जिनके असन्तुष्ट हो जाने पर शक्ति कुण्ठित होने के कारण ब्रह्मा छोटे कार्य की भी पूर्ति करने में असमर्थ ही रह जाते हैं और जिसके चरणकमल की सेवा का सौभाग्य भाग्यशाली प्राणी सदैव किया करते हैं । अतः मैं भी उनकी सेवा के लिए सचेष्ट हूँ, क्योंकि उसी चरण-सेवा के फल स्वरूप समस्त विश्व में देवराज इन्द्र की राजलक्ष्मी की अतुलनीय स्थाति हुई है । ब्रह्मा की उस जिह्वा रूप पवित्र सिंहासन पर सदैव सुशोभित होने वाली वागधिदेवता सरस्वती तुम्हें अत्यन्त कल्याण प्रदान करती रहे, जिसके चरण की कोमल अंगुलियों के नखों की स्वच्छ किरणों द्वारा अत्यन्त बढ़ा हुआ वह शब्द ब्रह्म रूप अमृत सागर विद्वानों के मन में स्वच्छन्द हिलोरें लेता रहता है । १-२। उस शिव (कल्याण) मूर्ति को मैं सदैव नमस्कार करता हूँ, जिसने समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, रक्षा एवं प्रलय करना अपना स्वभाव ही बना लिया है, जिसका चरणकमल सदैव विघ्न व्यूहों को नष्ट करता है, और निरन्तर तेजी से होने वाली उस स्वच्छन्द एवं अत्यन्त प्रस्थात विश्व लीला रूप (विराट) शरीरधारण किये हैं तथा जिसकी तत्व स्थिति का वर्णन करने में वेदवाणी भी असमर्थ रहती है । ऐसे गणाधिदेव मेरी रक्षा करें । जिनके कपोल के ऊपर स्वच्छ

यस्य^१ गण्डतले भाति विमला षट्यदावली । अक्षमालेव विमला स नः पायाद्गणाधिपः ॥४
 ॐ नमो वासुदेवाय सशाङ्काय सकेतदे । सगदाय सचक्राय तश्चत्वाय नमो नमः ॥५
 नमः शिवाय सोम्याय सगणाय ससूनवे । रावृष्टाय सशूलाय सकपालाय सेन्ददे ॥६
 शिवं ध्यात्वा हर्त्रं स्तुत्वा ग्रणम्य परमेष्ठिनम् । चित्रभानुं च भानुं च नत्वा ग्रन्थमुदीरयेत् ॥७
 छत्राभिषिक्तं धर्मजं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । द्रष्टुमभ्यागाता हृष्टा व्यासाद्या परमर्षयः ॥८
 मार्कण्डेयः समाण्डध्यः शाण्डिल्यः शाकटायनः । गौतमो गालबो गार्यः शातातपपराशरौ ॥९
 जामदग्न्यो भरद्वाजो भृगुभागुरिरेव च । उत्तद्वः शङ्खलिखितौ शौनकः शाकटायनिः ॥१०
 पुलस्त्यः पुलहो दालभ्यो वृहदश्वः सलोमशः । नारदः र्वतो जट्नुरपावसुपरावसू ॥११
 तानृषीनागतान्दृष्ट्वा वेदवेदाङ्गपारगान् । भक्तिमान्नारातृभिः सार्द्धं कृष्णधौम्यपुरःसरः ॥१२
 युधिष्ठिरः संप्रहृष्टः समुत्थायाभिवाद्य च । अर्व्यमाचमनं पाद्यमारनानि स्वयं ददौ ॥१३
 उपविष्टेषु तेष्वेव तपस्विषु युधिष्ठिरः । विनयावनतो^२ भूत्वा व्यारां वचनमन्त्रवीत् ॥१४
 भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्राप्तं राज्यं भद्रन्मया । विक्रम्य निहतः रांख्ये सानुबन्धः सुयोधनः ॥१५
 सरोगस्य यथा भोगः प्राप्तोऽपि न सुखावहः । हृत्वा ज्ञातीस्तथा राज्यं न सुखं प्रतिभाति मे ॥१६

रुद्राक्ष की माला की भाँति भ्रमर पंक्तियाँ सुशोभित होती रहती हैं । ओंकार रूप वासुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ, जो धनुष, ध्वजा, गदा, चक्र, एवं शंख से सुसज्जित रहते हैं । उसी भाँति शिव जी को नमस्कार कर रहा हूँ । जो अपने वृष (वैत), त्रिषूल, कपाल एवं चन्द्रमा से सरैव सुसज्जित रहते हैं । इस प्रकार मैं शिव जी का ध्यान, विष्णु की स्तुति, और चित्रभानु नामक सूर्य समेत लोक पितामह ब्रह्मा को प्रणाम करके इस ग्रन्थ का प्रारम्भ कर रहा हूँ । ३-७। (राजचिह्न) मन्त्र एवं चामरों से वि-भूषित, धर्मजाता, एवं धर्मपुत्र युधिष्ठिर को देखने के लिए व्यास आदि श्रेष्ठ ऋषियों का आगमन हुआ जिसमें मार्कण्डेय, माण्डव्य, शाण्डिल्य, शाकटायन, गौतम, गालव, गार्य, शातातप, पराशर, परशुराम, भरद्वाज, भृगु, भागुरि, उत्तकं, शंख, लिखित, शौनक, शाकटायनि, पुलस्त्य, पुलह, दालभ्य, वृहदश्व, लोमश, नारद, पर्वत, जहनु, अपावसु, और परावसु नामक ऋषिगण सम्मिलित थे । उस समय उन आये हुए ऋषियों को जो वेद एवं वेदाङ्गों के धर्मज विद्वान् थे, देखकर भक्तिमान् युधिष्ठिर ने सिंहासन से उत्तरकर अपने भाइयों समेत अत्यन्त हर्षित होते हुए कृष्ण और धौम्य को आगे कर उन ऋषियोंका सुभ समेत अभिवादन स्वागत किया । पश्चात् स्वयं प्रदत्त यथोचित आसन पर आसीन कराकर उन्हें अर्ध्य, आचमन एवं पाद्य (हाथ मुख चरण के प्रक्षालनार्थ जल) प्रदान किया । उन तपस्वियों के अपने आसनों पर शान्त होने पर युधिष्ठिर ने विनम्र होकर व्यास जी से कहा—भगवन् ! आपकी कृपा द्वारा ही मुझे इस महान् राज्य की प्राप्ति हुई है, जो युद्ध में पराक्रम द्वारा बन्धु समेत सुयोधन के निधन होने पर प्राप्त हुआ है । ८-१५। किन्तु रोगी प्राणी को भोग की प्राप्ति सुख कर न होने की भाँति मुझे भी अपने कुल के नाश

१. 'यस्य' इत्यारम्य—'छत्राभिषिक्तम्' इत्यतः प्रकृतनः पाठ एकस्मिन्पुस्तकेऽधिकोऽस्ति ।
 २. विनयप्रणतः—इ०पा० ।

यत्सुखं पावनं प्रीतिर्वन्मूलफलताशिनःम् । प्राप्य गां च हत्तराति न तदस्ति पितामह ॥१७
 यो नो बन्धुर्गुरुर्गोप्ता सदा शर्म च वर्म च । स मया राज्यलोभेन भीज्मः पापेन धातितः ॥१८
 अविवेकभं धास्ये मनो मे पापपञ्चलम्^१ । क्षालयित्वा तब गिरा बहुर्दशतवारिणा ॥१९
 संश्रुतानि पुराणानि वेदास्तांगा मया विभो । ममाद्य धर्मसर्वस्वं प्रज्ञादीपेन^२ दर्शय ॥२०
 एते सर्धमगोप्तारो मुनयः सत्रुपागताः । पिबन्ते नेत्रब्रह्मरैर्भैदतो मुखपञ्चजम् ॥२१
 अर्थशास्त्राणियावन्ति धर्मशास्त्राणियानि वै । श्रुतानि सर्वशास्त्राणि शीष्याद्वागौरथीसुतात् ॥२२
 स्वर्गं गते शान्तनवे भवान्कृणोऽथ यादवः । सुहृत्वाद्बन्धुभावान्च नान्यः शिक्षयिता मम ॥२३
 सत्यं^३ सत्यवतीसूनुर्द्धर्मराजाय वक्ष्यति । विशेषधर्मानिखिलान्मुनीनामविशेषतः ॥२४

व्यास उवाच

यदाख्येयं तदाख्यातम् मया भीज्मेण तेऽनघ । मार्कण्डेयेन धौम्येन लोमशेन महर्षिणा ॥२५
 धर्मज्ञो हृसि सेधावी गुणवान्प्राज्ञसत्तमः । न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्द्वर्माधर्मविनश्चये ॥२६
 पार्षदस्थिते हृषीकेशे केशवे केशिसूदने । कस्यचित्कथने जिह्वा तत्र सम्परिवर्तते ॥२७

करने के नाते यह राज्य सुखकर नहीं दिखाई दे रहा है। पितामह ! वन में कन्द मूल खाकर जीवन व्यतीत करने वाले प्राणियों को जिस सुख एवं पावन प्रीति की प्राप्ति होती है, वह शत्रुओं के समूल नष्ट होने पर प्राप्त हुए राज्य से नहीं मिल सकता है। मैं ऐसा पापी था कि राज्य लोभ के कारण मैंने उन भीज्म की हत्या की जो मेरे बन्धु, गुरु, रक्षक, सदैव कल्याणेच्छुक एवं कवच की भाँति दुर्भेद्य आचरण के थे। मैं महान् अविवेकी हो गया हूँ, मेरा मन पाप कीचड़ में एकदम ओतप्रोत हो गया है। यद्यपि आपकी वाणों रूप जल से जिसमें अनके भाँति से तत्त्व को हृदयंगम करना बताया गया है, इस मन को शुद्ध कर पुराणों एवं अंगों समेत वेदों के श्रवण मैंने अनेक बार किये हैं, किन्तु विभो ! आज अपने ज्ञानद्वीप द्वारा धर्म सर्वस्व के दर्शन करायें। १६-२०। ये समस्त ऋषिगण भी जो धर्म के योद्धा हैं, अपने नेत्र रूपी भ्रमरों द्वारा आपके मुख कमल का रसास्वादन कर रहे हैं। समस्त अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, और इतर सभी शास्त्रों का मैंने भागीरथी (गङ्गा) के पुत्र भीज्म द्वारा श्रवण किया है। किन्तु शान्तनु पुत्र भीज्म के स्वर्गीय हो जाने पर मित्र एवं बन्धु होने के नाते यादव श्रेष्ठ कृष्ण ही मेरे शिक्षक हैं अन्य कोई नहीं। पश्चात् सत्यवती पुत्र व्यास धर्मराज के लिए समस्त धर्मों की विशेष व्याख्या करेगे, विशेष कर मुनियों के लिए भी। २१-२४

व्यास जी बोले—अनघ ! मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, उसकी व्याख्या भीज्म द्वारा आप पहले सुन चुके हैं। तथा मार्कण्डेय, धौम्य, और लोमश कृषि ने भी उसकी व्याख्या की है। आप धर्म-मर्मज्ञ बुद्धिमान् गुणवान्, एवं विशिष्ट विद्वान् हैं इसलिए धर्माधर्म का निश्चय आपसे अविदित नहीं है। तथापि धर्मप्रिय होने के नाते रहते समय जो केशव, और केशि (राक्षस) संहर्ता कहे जाते हैं, कहने के लिए

१. पापशंकितम् । २. ज्ञानदोषेन । ३. सेव्यः ।

कर्ता पालयिता हर्ता जगतां यो जगन्मयः । प्रत्यक्षदर्शीं सर्वस्य धर्मान्वक्ष्यत्यसौ तत्र^१ ॥२८
समादिशेतिकर्तव्यं भगवान्बादरायणः । पूजितः पाण्डुतनयैर्जगत्स्म स्वतपोवनम् ॥२९

स्वाभाष्य भारतविधातरि सम्प्रयाते ते कौतुकाकुलधियो मुनयः प्रशान्ताः ।

किम् पृच्छति क्षणितभारतलोकशोकः^२ किं वक्ष्यतीह भगवान्यदुवंशवीरः ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि व्यासागमनवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः । १

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्माण्डोत्पत्तिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कस्य प्रतिष्ठा निर्दिष्टा को हेतुः किं परायणम् । कस्मिन्नैतल्लयं याति कस्मादुत्पद्यते जगत् ॥१
कर्ति द्वीपाः समुद्राश्च^३ कियंतो हि कुलाचलाः । कियत्प्रमाणमवनेभुवनानि कियन्ति च ॥२

किसकी जिह्वा अग्रसर हो सकती है । वे जगत् के कर्ता, रक्षक, अपहर्ता हैं इसलिए वही प्रत्यक्षदर्शीं समस्त धर्मों की व्याख्या पूर्वक दिग्दर्शन करायेंगे, अच्छा अब आज्ञा प्रदान कीजिये । इतना कहकर भगवान् बादरायण व्यास जी पाण्डुपुत्रों द्वारा पूजित होने के उपरांत तपोवन चले गये । इस प्रकार विवेचन पूर्वक कहकर उन भारत भाग्यविधाता व्यास के चले जाने के उपरांत शान्तचित्त कैसे हुए उन ऋषियों के बीच जिनके मन से सुनने के लिए लालायित हैं, भारत के शोकापहरण करने वाले युधिष्ठिर ने क्या प्रश्न किया ? और वीर यदुवंशीय भगवान् कृष्ण ने उसका किस प्रकार समाधान किया । २५-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में व्यास का आगमन वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त । १।

अध्याय २

ब्रह्माण्डोत्पत्ति का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—इस विश्व में किसकी प्रतिष्ठा सदैव स्थित रहती है, संसार होने का कारण कौन है, उत्पन्न होकर वह अपनाता किसे है, और इस जगत् की उत्पत्ति एवं प्रलय किसमें होना है । उस प्रकार द्वीप, समुद्र, पर्वत कितने हैं, पृथ्वी का प्रमाण क्या है, और इसमें कितने भुवन हैं । १-२

१. धर्मतत्त्वार्थकोविदः । २. दुःखितलोकशोक । ३. च वार्ष्णेय ।

श्रीकृष्ण उवाच

पौराणश्चैव विषयो यत्पृष्टोऽहं त्वयानन्ध । श्रुतोऽनुभूतश्च मया संसारे सरताः^१ चिरम् ॥३
अजाय विश्वरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने । नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥४
अत्र ते वर्णयिष्यामि शृणु पार्थं पुरातनम् । याज्ञवल्क्येन मुनिना भविष्य भास्वतां पतिः ॥
पृष्टो यदुत्तरं प्रादादृषिभ्यस्तन्मया श्रुतम् ॥५

धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वाशुभविनाशनम् । भविष्योत्तरमेतते कथामि युधिष्ठिर ॥६
एकात्मकं^२ त्रिदैवत्यं चतुःपञ्चसुलक्षणम् । गुणकालादिभेदेन सदसत्सम्प्रदर्शितम् ॥७
एक एव जगद्योनिः प्रतियोनिषु संस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रदत् ॥८
ब्रह्मा विष्णुर्वाङ्मुखश्च त्रयो देवाः सतां^३ मताः । नामभेदैः क्रियाभेदैर्भिर्द्यन्ते नात्मना स्वयम् ॥९
प्रक्रिया चानुषङ्गश्च उपोद्घातस्तथैव च । उपसंहार इत्येतच्चतुष्यादं प्रकीर्तितम् ॥१०
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥११
एष वक्तव्यविषयः समुहान्प्रतिभाति मे । तथाप्युद्देशतो वच्चिं सर्गं प्रति तवानन्ध ॥१२
महदादिविशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् । पञ्चप्रमाणं षट्कक्षं पुरुषाधिष्ठितं जगत् ॥१३
अव्यक्ताज्जायते बुद्धिर्महानिति च सा स्मृता । अहङ्कारस्तु महतस्त्रिगुणः स च पठयते ॥१४

श्रीकृष्ण बोले—अनन्ध ! आप ने जो कुछ पूँछा है, वह सब पुराणों का विषय है जिसका अनुभव इस संसार में रहते हुए मैंने बहुत दिनों से किया है, और लोक सास्त्र से सुना भी है । उस भगवान् वासुदेव को, अजन्मा, विश्वरूप (विराट), निर्गुण, एवं सगुण और ब्रह्मा रूप है । पार्थ ! इस विषय के उत्तर में एक पुरातन इतिहास का वर्णन, जिसे सूर्य के पूछने पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा था, मैं कर रहा हूँ, सुनो ! उसे मैंने और ऋषियों ने भी सुना है । युधिष्ठिर ! उस धन्य, यशस्वी, आयुर्वर्द्धक और शुभ-अशुभ के विनाशक इतिहास का भविष्योत्तर नाम है, जिसमें मैं कह रहा हूँ । वही एक (ब्रह्म) सदैव स्थित रहता है एक आत्मा है, जो तीनों प्रधान देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर) के रूप में रहकर चार-पाँच लक्षणों से युक्त होता है, और गुण एवं कालादि भेद से वही सदा असत् प्रदर्शित किया गया है । वही एक विश्व का कारण है, जो उनके योनियों में स्थित रहकर जल में एक चन्द्र के उनकों चन्द्र दर्शन की भाँति दिखाई देता रहता है । ३-८। ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वर यही तीनों सनातन प्रधान देव हैं, जो अपने नाम और क्रिया द्वारा स्वयं पृथक-पृथक् मालूम होते हैं । प्रक्रिया, अनुषङ्ग (आकस्मिकता), उपोद्घात, और उपसंहार नामक उसके चार चरण बताये गये हैं, तथा सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंश चरित्र यही उस (ब्रह्म) पुराण के पाँच लक्षण कहे गये हैं । अनन्ध ! यद्यपि मेरी दृष्टि में यह वक्तव्य विषय अत्यन्त महान् दिखाई दे रहा है, तथापि उद्देश्य के अनुसार सर्ग वर्णन मैं प्रारम्भ कर रहा हूँ, जिसमें महदादि से लेकर विशेष तक बताया गया है, और वही रूप एवं लक्षण भी है । पाँचों प्रमाण और छः कक्षा वाले इस ब्रह्माण्ड का वह अव्यक्त पुरुष अधिष्ठाता है, जिससे सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है, उसे महान् भी कहा गया है । उस

१. चरता मया । २. सर्वात्मकम् । ३. सनातनाः ।

तन्मात्राग्नि च पञ्चदुरहङ्काराच्च सात्त्विकात्^१ । जातानि तेभ्यो भूतानि भूतेभ्यः सच्चाचरस् ॥१५
जलमूर्तिमये विष्णौ नष्टे स्थावरजङ्गन्नेऽ । भूतात्मकमभूदण्ड महत्तदुदकेशयम् ॥१६
सृष्टिचार्यं शक्त्या च निर्भिन्नं तदण्डमभवद्विद्वधा । भूकपालमथैकं तदिद्वतीयमभवन्नभः ॥१७
उल्बं तस्याभवन्मेरुर्जरायुः पर्वताः स्मृताः । नद्यो धमन्यः सञ्जाताः क्लेदः सर्वत्रांगं^२ यपः ॥१८
योजनानां सहस्राणि षोडशाधः प्रतिष्ठितः । उत्सेधे^३ चतुराशीतिद्वात्रिंशद्वृद्ध्वं विस्तृतः ॥१९
भूमिपङ्कजविस्तीर्णा कर्णिका मेरुरुच्यते ॥२०
आदित्यश्चादिवेत्यात्माभूत्वित्रुग्णात्मकः । प्रातः प्रजापतिरसौ मध्याह्ने विष्णुरिष्यते ॥
रुद्रोऽपराह्नसमये स एवैकस्त्रिधामतः ॥२१
प्रातः प्रजापतेर्जाता मुनदो नव मानवाः^४ । मरीचिरच्यज्ञिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥
भृगुर्वशिष्ठ इत्यष्टौ नारदो नवमः स्मृतः ॥२२
नव ब्रह्माण इत्येष पुराणे निश्चयः स्मृतः । अङ्गुष्ठादक्षिणादक्षः सञ्जज्ञे कमतोद्भवात् ॥२३
वाना प्रभूतिरुदगादङ्गुष्ठात्तौ च दम्पती । ताभ्यां जातास्तु तनया हर्यश्वास्ते विनाशिताः ॥
सृष्टिं प्रति समुद्युक्ता नारदेन महात्मना ॥२४
दक्षः क्षीणान्सुतान्वीक्ष्य जनयामास कन्यकाः । पञ्चाशद्वश विख्याताः सत्याद्या नामभिः स्मृताः ॥२५
ददौ स दश धर्माणि कश्यपाय त्रयोदश । कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥२६

महान् द्वारा तीनों युक्त अहंकार और उस सात्त्विक अहंकार द्वारा पाँच तन्मात्रा की उत्पत्ति होती है। जिससे पाँच (आकाशादि) भूतों एवं उन भूतों द्वारा इस चराचरमय जगत् की (उत्पत्ति) होती है। जल मूर्तिमय विष्णु में इस स्थावर जंगम रूप जगत् के विलीन होने पर वह भूतात्मक, महदण्डक् उदक में शयन किये एवं सृष्टि-शक्ति से निर्भिन्न है, दो भानों में विभक्त होकर एक भाग से भू कपाल और दूसरे से आकाश होता है। १-१७। इसका उल्व (गर्भावरण झिल्ली) मेरु और जरायु (गर्भाशय) पर्वत, धमनियाँ (नाड़ियाँ) नदी, एवं क्लेद जल है, वह सोलह सहस्र योजन नीचे चौरासी सहस्र योजन उन पर प्रतिष्ठित है, जो ऊपर बत्तीस सहस्र योजन विस्तृत हैं। इस पृथ्वी रूपी कमल के विकसित होने पर उसकी कर्णिका मेरु हुआ है। उस स्थल में आदि देव होने के नाते आदित्य भगवान् त्रिगुणात्मक रूप धारण करते हैं—प्रातः काल प्रजापति, मध्याह्न में विष्णु, और अपराह्न समय में रुद्र रूप अवस्थित होता है। इस प्रकार वह एक (ब्रह्म) होते हुए तीन भागों में विभक्त होता है। उन प्रातःकालीन प्रजापति द्वारा नव महर्षियों के जन्म हुए, जिनके मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, और नारद नाम हैं। इस प्रकार पुराणों में इन नव महर्षियों को ब्रह्मा रूप बताया गया है। ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से दक्ष और उनकी पत्नी प्रसूति का जन्म हुआ है। पुनः उस दम्पत्ति के द्वारा हर्यश्व आदि के अनेक पुत्र उत्पन्न हुए जो सृष्टि के लिए समुत्सुक महात्मा नारद द्वारा विनष्ट हो गये। उस समय अपने पुत्रों को क्षीण देखकर दक्ष ने सत्या आदि नामक पचास कन्याओं की उत्पत्ति की। अनन्तर उन्होंने उनमें से दश कन्याएँ धर्म के लिए तेरह कश्यप जी के लिए दो काल के लिए, सत्ताईस

१. साक्षिकात् । २. सृष्टशक्त्या । ३. सर्वगतम् । ४. मुखविस्तृतः । ५. मानसाः ।

द्वे प्रादाद्ब्राह्मपुत्राय द्वे कृशाश्वाय चैव हि । रूपयौवनशालिन्यश्रतस्त्रोरिष्टनेमिने ॥२६
 एकां भृगोर्भवायैकां प्रादातेभ्यश्वराचरः । अभवत्पुरुषव्याघ्रं भूतग्रामश्वतुर्विधः ॥२७
 वैराज्यय वैकुण्ठं कैलासमिति नामतः । भेरोः शृङ्गत्रयं मूर्तिः ब्रह्मविष्णुशिवालयम् ॥२८
 प्राचीदिक्क्रमयोगेन तेषाम् पार्वते पुरः स्मृताः । इन्द्रादिलोकपालानां दिव्यैः स्वल्लक्षणैर्युताः ॥२९
 हिमवान्हेमकूटश्व निषधो मेरहेत च । नीलः श्वेतस्तथा शृङ्गी जम्बूद्वीपे कुलाचलाः ॥
 जम्बूद्वीपप्रसागेन सहस्रगुणितं शतम् ॥३०

भिद्यते नवधा सोऽपि वर्षभेदेन भारतः । जम्बूशाककुशद्वैश्वालमगोमेदपुष्करः ॥
 द्वीपाः सप्त समाख्याताः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः ॥३१

क्षारक्षीरेक्षुसुरया दध्ना चैव धृतेन च । स्वाद्वदके न च भृतैर्द्विगुणैर्द्विगुणैस्तथाः ॥३२
 भूर्लोकोऽथ भुवल्लोकः स्वर्महर्जन इत्यपि । तपः सत्यश्व कथिताः पार्वते सप्त भुरालयाः ॥३३
 महातलो भूमितलः सुतलो वितलस्ततः । रसातलश्व विज्ञेयः सप्तमश्व तलातलः ॥३४
 हिरण्याक्षप्रभृतयो दानवेन्द्रा महोरगाः । वसंत्येतेषु कौन्तेय सिद्धाश्व ऋषयश्च ये ॥३५
 स्वायंभुवो मनुः पूर्वं ततः स्वारोचिषोऽभन्त् । उत्तमस्तामसश्वैव रैवतश्वाक्षुषेति षट् ॥३६
 वैवस्वतोऽयमधुना वर्तते मनुरुत्तमः । यस्य पुत्रैः प्रपौत्रैश्व विभक्तेयं वसुन्धरा ॥३७
 आदित्या वसवो रुद्रा एकादशा तथाश्विनौ । उषस्त्रयः समाख्याता देव वैवस्वतेऽन्तरे ॥३८

चन्द्रमा के लिए प्रदान किया । उसी प्रकार बहुपुत्र के लिए दो, कृशाश्व के लिए दो अरिष्टनेमि के लिए रूप यौवन सम्पन्न चार, भृगु और शिव के लिए एक-एक कन्याएँ प्रदान की जिससे चराचर मय इस जगत् का निर्माण हुआ । पुरुषव्याघ्र ! इस लोक में प्राणि समूहों की चार प्रकार से सृष्टि हुई है । प्रधान देव ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश्वर के वैराज, वैकुण्ठ, तथा कैलास नामक लोक मेरु के तीनों शिखर पर अवस्थित हैं, जो पूर्व आदि दिशाओं के द्राघि से वे स्थान उन लोगों के सम्मुख ही है । इन्द्रादि लोकपालों के लिए स्वर्ग आदि दिव्य लक्षणों से युक्त हैं हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत, और शृङ्गी नाम कुलाचल पर्वतगण स्थानरूप में उस जम्बूद्वीप में नियुक्त हैं, जो द्वीप एक लक्ष के प्रमाण में स्थित हैं । उसी का वर्ष भेद से नव भाग किया है, जिसमें प्रथम भारत वर्ष है । इस प्रकार जम्बू, शाक, कुश, कौञ्च, शालमति, गोमेद, और पुष्कर नामक सात द्वीपों का निर्माण किया गया है, जो अपने चारों ओर सातों समुद्रों से क्रमशः आवृत् (घिरे हुए) हैं । उन समुद्रों के क्रमशः क्षार, क्षीर, इक्षु (ईख), सुरा, दधि, धृत और स्वादपूर्ण जल नाम हैं, जो उत्तरोत्तर एक दूसरे से दुगुने विस्तृत एवं गम्भीर हैं । पार्वत ! भूलोक, भुवलोक, स्वर्गलोक, महलोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक देवों के आवास स्थान हैं, उसी प्रकार महातल, भूमितल, सुतल, वितल, रसातल, और तल एवं अतल लोक । १८-३४ । हिरण्याक्ष आदि दानवेन्द्रों एवं महासर्पों के आवास स्थान हैं । कौन्तेय ! इसी लोकों में सिद्ध तथा ऋषिगण भी निवास करते हैं । मनुगणों में सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु, पश्चात् क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, और सातवें वैवस्वत मनु हैं, जो इस समय वर्तमान अधिकारी हैं । इनके बांश के पुत्रों प्रपौत्रों द्वारा यह वसुन्धरा विभक्त की गयी है । इस वैवस्वत मनु के समय में आदित्य, वसु, एकादश और अश्विनी कुमार

विप्रचित्तिहिरण्याख्यौ दैत्यदानवसत्तमौ । तयोर्नेत्रो तु ब्रह्मवो दैत्यदानवसत्तमः ॥३९
 गच्छाशद्गुणितक्लोटियोजनानां महत्तया । सप्तद्वीपसमुद्रायाः प्रमाणमवनेः स्मृतम् ॥४०
 पिण्डेन च सहस्राणि सप्ततिर्जलमध्यतः । गौरिरैषा सुमहती भ्राजते न च लीपते ॥४१
 लोकालोकः भरतरः पर्वतोऽग्रमहोच्छ्रूपः । द्वैतमर्थं स नियतो योऽसौ रविरुचामपि ॥४२
 नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः । नित्यश्वतुर्थो विज्ञेयः कालो नित्याप्हारकः ॥४३
 उत्पद्यते स्वयं यस्मात्तत्स्मिन्नेव लीयते । रक्षति च परे पुंसि भूतात्मामेष निश्चयः ॥४४
 यथार्थवृत्तिलङ्घानि नानारूपणिं पर्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा पुणादिषु ॥४५
 प्रतिलिङ्गेषु भूतेषु विबुद्धः सकलं जगत् । वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ॥४६
 हिमार्घ्यस्त्रे मृदुकूरे धर्माधर्मनितान्ते । ते तं विना प्रपद्यन्ते पुनस्तेष्वेव कर्मसु ॥४७
 भूर्भूर्गुणेन पयसा संदृता तच्च तेजसा । तेजोऽप्तिलेन नभसा तदगुणेनातिलो वृतः ॥४८
 भूतादिना तथाकाशं भूतादिर्महतावृतः । महान्परिवृतस्तेन पुरुषेणाविनाशिना ॥४९
 एवं विधानामण्डानां सहस्राणि शतानि च । उत्पन्नानि विनष्टानि भावितानि महात्मना ॥५०
 वैकुण्ठकोष्ठगतपेतदशेषतायां ख्यातं^१ जगत्सुरनरोरगसिद्धनद्भुम् ।

पश्यन्ति शुद्धमुनयो बहिरन्तरे च माया चराचरगुरोरपरैव काचित् ॥५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरे पर्वणि ब्रह्माण्डोत्पत्तिर्दर्शनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

एवं तीनों उप प्रख्यात देव हैं । उसी भाँति विप्रचित्त और हिरण्याक्ष नामक दो दैत्य दानव हैं, जिनके बहु संख्यक दैत्य दानव राज हैं । सातों द्वीप और सातों समुद्र समेत इस पृथ्वी का प्रमाण पचास करोड़ योजन है, जो जल के मध्य भाग में गौ की ही भाँति पिंड रूप में, जो सत्तर सहस्र का है, सुरोभित है । अत्यन्त महान् होने पर भी वह उस जल में विलीन नहीं होती है । लोकालोक नामक पर्वत सबसे श्रेष्ठ एवं अत्यन्त ऊँचा है, वही द्वैत (देव विभाग) करने के लिए अवस्थित है । वही सूर्य की किरणों का नैमित्य निमित्तक, प्राकृतिक, एवं आत्यन्तिक लय स्थान है, इसलिए उसे नित्य अपहरण करने वाला काल भी कहा जाता है । प्राणियों का यह निश्चित नियम है कि जिससे उनकी उत्पत्ति होती है, उसी में विलीन भी होते हैं और उसी सर्वश्रेष्ठ पुरुष में प्रतिष्ठित रहकर सुरक्षित होते हैं जिस प्रकार क्रतुओं में विवर्दय के समय उनके लिङ्ग अनेक रूप धारण करते दिखायी देते हैं उसी भाँति युगादि काल में उनके भाव भी उस रूप में प्रत्यक्ष होते हैं । जीव समूहों के प्रलय होने के उपरांत पुनः समस्त जगत् चेतना प्राप्त करता है । आदि काल में सर्वप्रथम वेद शब्दों के द्वारा उसकी रचना करने वाले महेश्वर हैं । वे जीव पुनः हिंसक एवं अहिंसक मृदु एवं क्रूर धर्माधर्म सत्य और असत्य में लीन होकर उन्हीं कर्मों को अपनाते हैं । यह पृथ्वी अपने से दश गुने जल से धिरी है उसी भाँति तेज से जल, अनिल (वायु) से तेज, आकाश से वायु, (पच) भूतादि से आकाश, महान् से भूतादि, और महान् उस अविनाशी पुरुष से आवृत (धिरा) है । इस प्रकार उस महापुरुष द्वारा यह ब्रह्माण्ड सैकड़ौं सहस्रों बार उत्पन्न होकर नष्ट हुए हैं । इस ब्रह्माण्ड को जो देव, मनुष्य, उरग, सिद्ध आदि से पूर्ण आवद्ध हैं, प्रलयकाल में महर्षि गण जो समान रूप से बाहर भीतर विशुद्ध होते हैं, उसे देखते हैं और इस चराचर निर्माता की माया दूसरी ही है । ३५-५१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में ब्रह्माण्डोत्पत्ति वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

अथ तृतीयोऽध्यायः

मायादर्शनवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशी कृष्ण सा माया विष्णोरस्मितेजसः । यथा व्यामोहितं यच्च जगदेतच्चराचरम् ॥१
श्रीकृष्ण उवाच

येन द्वीपे पुरा विष्णुरास्त चक्रगदाधरः । वासुदेवः सगरङ्गः सचक्रश्च श्रियः सह ॥२
नीलोत्पलदलश्यामः कुण्डलभ्यां विशूषितः । भ्राजते मुकुटोद्योतकेयूरवनमालया ॥३
तस्य द्वुष्टुमध्यास्थागान्नारदो मुनिसत्तमः । प्रणम्य स्तुतिभिर्वं प्राहेदं विस्मथान्वितः ॥४
संशयं परिवृच्छानि भगवन्वत्तुमर्हसि । का माया कीदृशी माया किंरूपा च कुतस्तथा ॥५
तस्या दर्शय मे रूपं मायायाः पुरुषोत्तम । या च मोहयते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥६
आनन्द्यस्तम्बपर्यन्तं सदेवासुरमानुषम् । वैकुण्ठं यासुदेवं च प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥७
एवमुक्तस्तु मुनिना देवदेवो जनार्दनः । प्रहस्योवाच देवर्षे कार्यं मायया त्वया ॥८
भूयोऽपि मोहयामास सोमप्राहणं नारदम् । नारदोऽपि महाराज प्रोवाचेदं पुनःपुनः ॥९
मायां दर्शय मे देव नान्यदस्ति प्रयोजनम् । अथासौ विष्णुरुत्थाय श्वेतद्वीपं पुनर्ययौ ॥१०

अध्याय ३

मायादर्शन नास्क वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—भगवन् ! अमित तेजवाले विष्णुदेव की वह माया जिससे यह चराचर समस्त जगत् मोहित होता है, किस प्रकार की है । १

श्रीकृष्ण बोले—उस द्वीप में भगवान् विष्णु, चक्र गदा धारण किये गरुड़ और लक्ष्मी समेत आसनासीन थे । उन वासुदेव भगवान् के उस रूप को, जो नील कमल दल की भाँति श्यामल वर्ण, कुण्डलों से अलंकृत, सिर पर मुकुट, बाँह में केयूर और हृदय में वनमाला से मुशोभित था, देखने के लिये मुनि श्रेष्ठ नारद का एक बार वहाँ आगमन हुआ । स्तुति प्रणाम करने के उपरांत आश्चर्य चकित होकर नारद मुनि ने उनसे कहा—भगवन् ! मैं एक संशय प्रकट कर रहा हूँ, उसे बताने की कृपा करें । पुरुषोत्तम ! माया किसे कहा जाता है । वह किस प्रकार की होती है, उसका रूप क्या है, और कहाँ स्थित है तथा मुझे उस माया का रूप दिखाने की कृपा करें । जिससे चराचर मय यह तीनों लोक संमोहित है तथा ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यंत देव, भनुष्य, समेत वैकुण्ठ और वासुदेव भी मोहित हैं । मुनि के इस प्रकार कहने पर देवाधिदेव जनार्दन भगवान् ने हँसकर कहा—देवर्षे ! आप माया की बातें छोड़ दें । किन्तु सोमपान के द्वारा नारद को मुग्ध कर पुनः उसके लिए प्रेरित किया था । नारद ने पुनः कहा महाराज ! देव ! मुझे माया का दर्शन कराइये और कुछ नहीं चाहता । इस प्रकार नारद के बार-बार कहने पर भगवान् विष्णु ने वहाँ से उठकर पुनः श्वेतद्वीप को प्रस्थान किया । २-१० । और अंगुली के अग्रभाग पकड़े

सोऽपि द्विजो मुनिश्रेष्ठं संसारदुत्तरिष्यति । इत्येवं संवदन्ते च जग्मतुमर्गिभुत्तमम् ॥३८
 कान्यकुब्जस्य सामीप्ये सरः श्रेष्ठमपश्यताम् । हंसकारण्डवाकीर्णं नक्रवाकोपशोभितम् ॥३९
 पद्मिनीजलदह्नाररक्तोत्पलसितोत्पलैः ! भादितं पद्मिनीपत्रैर्मर्तस्यैः कूर्मैर्जलोद्भूवैः ॥४०
 तटै रम्यर्घनैर्वृक्षैः केतकीखण्डमण्डितम् । केतकीकुमुमामोदैर्लकुचैस्तटमण्डितैः ॥४१
 दात्यूहशिखिभारूण्डनकोरद्यैश्च संकुलम् । कुरवेश्वातकं रम्यं केकाकुलनिनादितम् ॥४२
 जलकुकुटसङ्गीतं हंससारसशोभितम् । जीवंजीवकहारीतचकोरैरूपशोभितम् ॥४३
 वशिष्ठस्य मुनेनाम्ना विष्यातं श्रीमहोदयम् । अस्मिन्नद्य प्रवेष्टव्यं महाजनविवेकिनाम् ॥४४
 स्थातव्यं पुरतस्तेषां तस्मात्स्नानं समाचरेत । इत्युक्त्या केशवः पापं सन्स्नौ प्रागेव तज्जलैः^१ ॥४५
 यत्तीर्थलोकं विष्यातं स्नात्वा तीरं समाश्रितः । प्रहरे वासुदेवस्य नारदोऽपि मुदा पुतः ॥४६
 आचम्य सन्स्नौ तीर्थेन क्षणात्तीर्थमवाप्य च । यावदुत्तिष्ठते तोयात्स्नात्वा कृषिरुदारधीः ॥४७
 तावत्स्त्रीत्वं समापन्नो नारदः केन वर्ण्यते । यस्यास्तु विस्तृते नेत्रे वक्त्रं चन्द्रोपसं शुभम् ॥४८
 स्मरपाशोपमौ कर्णो कपोलौ कनकोज्ज्वलौ । नासिका तिलसूनेन कामचापोपमे शुभौ ॥४९
 दशना हीरकैस्तुल्या विद्वुमाभः शुभाधरः । मयूरस्य कलापेन तुल्यं कचनिबन्धनम् ॥५०

भोजन किया और न विश्राम ही अपितु यहाँ ब्राह्मण के घर आकर विश्राम किया है । मुनिश्रेष्ठ ! इसलिए वह ब्राह्मण श्रेष्ठ इस संसार सागर को पार करेगा । इस प्रकार मार्ग में वार्तालाप करते हुए वे दोनों कान्यकुब्ज (कन्नीज) नगर के समीप सुन्दर एक सरोवर पर पहुँचे जो हंस, कारण्डव (वत्तक), से आच्छादित, और चकोर से सुशोभित था । वह सरोवर कमलिनी, रक्तकमल, नीलकमल, श्वेतकमल और कुमुदिनी के पत्तों से आच्छादित था । ३१-४० । उसमें अनेक भाँति की मछलियाँ एवं कछुवे शोभा बढ़ा रहे थे । उस के टट केतकी वृक्षों से सुशोभित हो रहे थे । वहाँ लकुच (बड़हर) के वृक्ष भी उस केतकी के सुगंधों से सुवासित होकर उस स्थल को मनोरम बना रहा था । दात्यूह (कठोडवा), मयूर, गारूण्ड, एवं चकोर आदि पक्षियों से संयुक्त होकर वह कुरब, चातक (पपीहा) तथा मयूर के मधुर कलरव से निनादित हो रहा था । जलमुर्गी के गान से भूषित एवं हंस सारस, जीवजीव (चकोर) हरिल आदि पक्षियों से वह अत्यन्त सुरम्य दिखाई दे रहा था । इस वशिष्ठ महर्षि के श्री महादेव नामक सरोवर में आज विवेकी एवं महात्माओं के साथ अवश्य स्नान करना चाहिए । इतना कह कर भगवान् केशव देव ने सर्वप्रथम उस सरोवर में स्नान किया । उस लोक प्रव्यात सरोवर के जल में भली भाँति स्नान करके उनके बाहर आने पर नारद ने भी सहर्ष उसमें स्नान करने के लिए इच्छा प्रकट की । उन्होंने उसमें ग्रविष्ट पहले आचमन किया और पश्चात दुबकी लगाई । उदार चेता महर्षि नारद ने उस जल में दुबकी लगाकर पानी के ऊपर हुए कि उसी समय अपने को इस प्रकार स्त्री वेष में देखा जिसके सौन्दर्य का वर्णन कोई नहीं कर सकता, जिसके विशाल नेत्र, चन्द्रमा की भाँति शुभ मुख, काम पाश के समान कान, सुवर्ण की भाँति समुज्ज्वल कपोल, तिलभूषित नासिका, कामबाण की भाँति भौंहे, हीरे के समान दाँत, विद्वुम (प्रवाल) की भाँति अधरोष्ठ, मयूर पुच्छ की भाँति चित्र विचित्र बँधे केश पाश, शंख के

शंखरेखाद्रयेणैव कंठदेशो विराजते । माधवीलतया तुल्यौ मञ्जू तस्या भुजौ शुभौ ॥५१
 युतौ रक्तोत्पलाभासौ पाणीरक्तनखांगुली । पीनावतुङ्गतनुधृत्कठिनौ कलशोपमौ ॥५२
 स्तनादविरलौ स्तिनाथौ चङ्गवाकयुगोपमौ । स्वल्पकं मध्यदेशं तु मुष्टिग्राह्यमसंशयम् ॥५३
 नाभिमण्डलगांभीर्यं लावण्यं केन वर्ण्यते । बलित्रयेण विकृता रोमराजिर्विराजिता ॥५४
 नयने च युनस्तस्या भृग्या इव सुशोभने । निताङ्गे बिस्बफलको मन्मथायतनं शुभम् ॥५५
 रम्भायुग्मोएमावूर्ह स्मरबाणनिबन्धनौ । विपरीतस्तादसखेदभारसहौ दृढौ ॥५६
 नवकुन्डलतासारसरलं दनिवन्धनम् । जड्णायुगं महाराज गूढगुल्फयुगं तथा ॥५७
 रक्तांपुलीलतातल्पनखचन्द्रकयाचितम् । चरणारविंद्युगलं सरकं सुप्रतिष्ठितम् ॥५८
 सैवंविधा तदा नारी सर्वलक्षणपूजिता । बभूव क्षणमात्रेण जगद्व्यामोहकारिणी ॥५९
 क्षीरोदमथनोत्तीर्णं लक्ष्मीमन्यामिवोच्छ्रिताम् । दृष्ट्याप्यदर्शनं प्राप्तो भायया मधुसूदनः ॥६०
 सम्प्राप्यते च सा कालसंगराहारिणी^१ यथा । आस्त एकाकिनी मुग्धा कुर्याहिगवलोकनम् ॥६१
 अथाजगाम तं देशं नाम्ना तालङ्घजो दृपः । सह सैन्यैः परिवृतः पुरन्दर इवामरैः ॥६२
 गजारूढैर्हयारूढै रथारूढर्नरोत्तमैः । विमानयानयुग्मस्थैस्तथांतः पुरिकाजनैः ॥६३
 ध्वजातपत्रकलिलैरनीकैः परिवारितः । तेन सा सहसा दृष्टा नारी कमललोचना ॥६४

समान तीन रेखाओं से सुशोभित कंठ, माधवीलता की भाँति अत्यन्त कोमल भुजाएँ रक्त कमल की भाँति हथेली एवं उसी भाँति रक्त वर्ण के नख समेत अंगुली, फीन (स्थूल), ऊँचे, कठोर, एवं कलश की भाँति स्तन थे, जो एक में मिले, मनोरम चिकनाहट लिए युगल चकोर की भाँति दिखाई देते थे । उसी भाँति मध्यभाग (कटि) मुट्ठी के अन्दर निःसन्देह आ जाता था । ४१-५३ । उसकी नाभि मण्डल की गम्भीरता एवं सौन्दर्य का वर्णन कोई नहीं कर सकता था । उदर में तीन वलि से विभूषित रोम पंक्ति थी और मृगी के समान चञ्चल नेत्र विम्बफल की भाँति नितम्ब सुशोभित हो रहा था । उसी का अवर्णनीय काम मन्दिर, कदली की भाँति उर्ध्व थे, जो काम बाण से पूर्ण थे एवं विपरीत रति के भ्रम जनित खेद और उसके भार सहन करने में दृढ़ थे । महाराज ! नवीन कुन्ड लतासार की भाँति सरल जंघा गूढ़ गुल्फ, जो रक्त वर्ण की अंगुली लता में विभूषित नख चन्दिका से चर्चित था और रक्त वर्ण के चरण युगल थे । इस प्रकार समस्त लक्षण सम्पन्न स्त्री का वेष क्षण मात्र में उन्हें प्राप्त हुआ, जो संसार को मोहित कर रहा था । उस रूप को देखकर यही मालूम होता था कि क्षीर सागर मंथन करने पर निकली हुई यह दूसरी लक्ष्मी है । देखकर के भी भगवान् अपनी माया द्वारा अन्तर्हित हो गये । पुरुष संगम के लिए निश्चित स्थान पर आई हुई कामिनी की भाँति वह मुग्धा वहाँ अकेली रह कर चारों ओर देख रही थी । उसी बीच तालध्वज नामक राजा अपने सैनिकों समेत वहाँ आ गये, जो देवों समेत इन्द्र की भाँति सुसज्जित था । उनके साथ घोड़े एवं रथों पर स्थित श्रेष्ठ पुरुष, दो यानों पर अंतःपुर की रानियाँ और ध्वजा एवं आतपत्र युक्त सेनाएँ चल रही थी । राजा ने सहसा उस कमलनयना कामिनी को देखा और देखते ही काम की

१. सङ्गमाहरिणी ।

बभूव क्षणमात्रेण कन्दर्पशरपीडितः । केवं कस्य कुतः प्राप्ता कि देवी वाथ मानुषी ॥६५
 अदृष्टरूपाप्सरसा काच्छिदेवी ज्ञानात् । अहोरूपं सुरूपाया गोचरे परितः पुमान् ॥६६
 मुमूर्षुर्जयिते मोहादनुदिग्धहतो यथा । इति संचिन्त्य हृदये राजा तालध्वजोऽन्तिके ॥६७
 उवाच नारीं मुग्रां तां शृणु सद्वचनं शुभे । का त्वं कस्य कुतः प्राप्ता देशमेतं शुचिस्मिते ॥६८
 इत्युक्ते साश्रु चार्वज्ञो प्राह मां विद्युयोनिजाम् । पित्रा मात्रा विहीनां च तथाद्यापि कुमारिकाम् ॥६९
 तिरश्रयां विदित्वेनां ततो जातः स्मरार्दितः । आरोग्यं हयपृष्ठे तां ततो राजा गतो शृहम् ॥७०
 नीत्वा दिवाहयामास शास्त्रोत्तिविधिना ततः । रेते प्रासादशृज्ञापे पर्यद्वे सितया तपा ॥७१
 उद्यानभव्यभूमीपु नदीनां पुलिनेषु च । पर्वतानां नितम्बेषु निर्जरेषु गुहाषु च ॥७२
 पद्मखण्डेषु फुलेषु शोथितेषु तरस्सु च । प्रयागादिषु तीर्थेषु नदीनामाश्रमेषु च ॥७३
 दिव्यावस्थरम्येषु वेलाकूलेषु पार्थिवः । यावद्द्वादशवर्षाणि एकाहमपि भारत ॥७४
 ततस्त्रयोदशे वर्षे तस्या गर्भोऽश्वन्महान् । एतस्मिन्नार्भसन्ध्वर्णं जातं दीर्घमलाबुकम् ॥७५
 तद्देवाहतकुम्भेषु बीजप्रारोहणान्नराः । बभूवुद्धातुशून्या वै दिव्यदेहबलोत्कटाः ॥७६
 पञ्चाशत्सङ्ख्यया जाता उपसर्गादिवर्जिताः । आरूढ्यौवनाः सर्वे सुताः^१ सङ्ग्रामकोविदाः ॥७७
 तेषां पुत्राश्र पौत्राश्र बभूवः सुरसत्तमाः । युयुधुः शरसङ्घातैश्वकशूलासिपट्टिशैः ॥७८

व्यथा से व्याकुल हो उठे, अपने मन में तर्क करने लगे कि यह कौन एवं किसकी वल्लभा है, कहाँ से आई है, देवी है या मानुषी । ५४-६५। मालूम होता है कोई अपूर्व रूप वाली अप्सरा आई है। अहो, इस सुन्दरी का स्वरूप कैसा मनमोहक है कि इसे देखते ही अनुदिग्धहत की भाँति मोहित होकर मृतक-सा हो जाता है। इस प्रकार तर्क-वितर्क करने के उपरान्त राजा तालध्वज ने उस के समीप जाकर उस मुग्रा स्त्री से कहा—कल्याणि ! मेरी बात सुनो ! मन्द मुसुकान करने वाली तुम कौन हो, किसकी कामिनी हो, यहाँ कैसे आई हो। इसे सुनकर उस सुन्दरी ने अथु पूर्ण नेत्रों से देखती हुई कहा—मैं अयोनिज हूँ, और माता पिता से वच्चित रहने पर भी मैं अभी तक कुमारी ही हूँ। इसे सुनकर राजा ने उसे निराशित जानकर काम पीड़ित हुए उसे धोड़े पर बैठाया और अपने घर को प्रस्थान किया वहाँ पढ़ूँच कर शास्त्र विधान पूर्वक उसका पाणिग्रहण किया। अनन्तर प्रासाद के शिखर पर धबल वस्त्र से विभूषित शश्या पर उसका उपभोग करना आरम्भ किया। वाटिका, सुन्दर स्थान नदियों के टट, पर्वतों की कन्दराओं, झरनों, गुफाओं में विकसित कमलों से विभूषित सरोवरों, प्रयागादि तीर्थों, नदियों या आश्रमों, दिव्य स्थलों एवं समुद्र के तट पर राजा ने उसके साथ पूरे बारह वर्ष तक रमण किया। पश्चात् तेरहवें वर्ष उसे गर्भ रहा। उस गर्भ के पूरे होने पर उसके गर्भ से कुम्हड़े की भाँति एक पिंड निकला, जिसके भीतर अनेक बीज के अंकुर की भाँति मनुष्य थे, जो धातु शून्य, दिव्य देह, एवं अत्यन्त बली थे। उनकी संख्या कुल पचास थी। युवा होने पर वे सभी रण कुशल हुए। ६६-७७। और उन्हीं के समान उनके पुत्र पौत्र भी अत्यन्त बुद्धिमान् एवं

१. सुराः ।

हयैरन्दैगजैरन्यैः क्रोधान्धाः कौरवा इव । पाण्डवैः सह सङ्गमे युद्धुः क्षणमञ्जसा ॥७९
 सपदतिगजारोहा: सान्तःपुरुगेच्छ्या । विनेशुरब्धिमासाद्य सिन्धूनां प्रवहा इव ॥८०
 सासिसबलविस्ताराः सदर्पाः समहोच्छ्रयाः । इन्द्रलोकोपमं सर्वं कुलं नष्टं क्षणं तदा ॥८१
 संदृश्य नारदीयैषा विनष्टं स्वकुलं रणे । रुरेद स्नेहसंयुक्तैः रसैः कलुषया गिरा ॥८२
 हा दैव हा^१ विधे पाप हा छतान्तं नमस्कृत । दर्शयित्वा विधानं मे पुनर्नेत्रे हते त्वया ॥८३
 इत्युक्त्वा स्वमुरोहस्तर्जिष्ठाय भृशदुःखिता । भूमौ सूच्छातुरा भूत्वा पुनः प्राप्ता विचेतनम् ॥८४
 सोऽपि राजा विषण्णोऽसौ निर्विणः शोकतागरे । भूमौ निपत्तितौ दुःखाद्वरोद भृशदुःखितः ॥८५
 विषण्णो भन्त्रिभिः सार्थं वृद्धशोकेन संयुतः । एतस्मिन्नतरे विष्णुराजगाम द्विजैः सह ॥८६
 द्विजवेषपरिच्छन्न उपविष्टः सुखासने । ततः पुरस्सरो भूत्वा चक्रे धर्मर्थदर्शनम् ॥८७
 किं रोदनेन बहुना युवयोः क्लेशकारिणा । श्रूयतां विष्णुभायैषा स्वप्नदृष्टधनोपमा ॥८८

सर्वथेष्ठ पुरुष है । पश्चात् कौरवों की भाँति वे सब मदान्ध होकर अपने बाण, चक्र, शूल, तलवार और पट्टिश अस्त्रों से सुसज्जित तथा बाहनों पर बैठकर पाण्डवों के साथ युद्ध करने के लिए रणस्थल में पहुँचे । वहाँ पहुँच कर अत्यन्त कुद्ध होकर पाण्डवों से घोर युद्ध करना आरम्भ किया । अनन्तर अपने घोड़े एवं हाथियों पर बैठकर सैनिकों समेत शत्रु दल का भर्दन करते हुए युद्ध के मध्य स्थल में पहुँचे उसी समय चारों ओर से शत्रुओं से घिर जाने पर बढ़े हुए नदी जल के सागर में पहुँच कर विलीन होने की भाँति सब के सब नष्ट हो गये । उस युद्ध में इन्द्र लोक की भाँति उनके अस्त्र बल, दर्प, वाहन सैनिक, आदि समस्त कुल का विनाश हो गया । उस समय उस नगरदीपा (स्त्री) को रण में अपने कुल नाश का समाचार मिल गया, जिससे वह अत्यन्त स्नेह कातर होकर अपनी क्रन्दन वाणी द्वारा विलाप करना आरम्भ किया—हा दैव, हा विधे, पाप हारिन् ! आप की वन्दना यमराज भी सदैव किया करते हैं । आप ने मुझे दोनों नेत्र देकर पुनः उसका अपहरण कर लिया । इतना कह कर अत्यन्त दुःखी होने के कारण अपना सिर पीट लिया, जिसके आधात से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाती थी और चैतन्य होने पर उसी भाँति पुनः सिर पीटती थी । उसके पति देव राजा तालध्वज भी अत्यन्त शोक कातर होकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं और चेतना आने पर अपनी स्त्री की भाँति विलाप करते थे । उस समय उनके मंत्रिगण भी उनके शोक से दुःखी होकर राजा को शान्त करने में परिश्रम भ्रान्त हो रहे थे । उसी बीच भगवान् विष्णु ब्राह्मण वेष धारण कर ब्राह्मणों समेत वहाँ राजा के दरबार में पहुँचे मंत्रियों ने उन्हें नमस्कार पूर्वक राज सिंहासन पर बैठाया । तत्पश्चात् उन्होंने राजा और रानी की उस दीन अवस्था का कारण पूँछा । कारण जान लेने के उपरांत ब्राह्मण वेष धारी विष्णु ने उन्हें धर्मर्थ उपदेश प्रदान करना आरम्भ किया । ७८-८८। राजन् ! आप दोनों इतना अधीर होकर रोदन कर रहे हैं जिससे लाभ तो कुछ नहीं प्रत्युत दुःख की अत्यन्त वृद्धि होती है । आप लोग ! मेरी बातों पर ध्यान दें । यह संसार तथा इसके धन एवं परिवार सभी विष्णु की मायाजन्य होने के नाते स्वप्नतुल्य हैं । शोभने ! संसार सागर में

शोभने यादृशः शोकः कृतः संसारसागरे । सर्वेषामेव भूतानां परिज्ञासोयमीदृशः ॥८९
पुरन्दरसहस्राणि चक्रवर्तिशतानि च । निर्वापितानि कालेन ग्रदीप इव वायुना ॥९०
येऽपि शोषयितुं शक्ताः समुद्रं सप्राहसड़कुलम् । कुर्युश्च करयुम्नेन चूर्णं मेरं महीतले ॥९१
ऊर्ध्वं धरणीसंज्ञां ग्रहीतुं चन्द्रभास्करौ । प्रविष्टास्ते तु कालेन कृतान्तवदनं तदा ॥९२

दुर्गस्त्रिकूटः परिखाः समुद्रा रक्षांसि योथा धनदाच्छ वित्तम् ।

मन्त्रब्रह्म यस्योशनसा प्रणीतः स रावणो दैववशाद्विष्णः ॥९३

सङ्ग्रामे गजतुरगसमाकुलेऽपि वादादग्रौ वा गतविवरे महोदधौ वा ।

सर्वैर्वा सह वसतामुदीर्णकौपैर्नाभाव्यो कदाचिदेव नाशः ॥९४

पातालमाविशतु यातु सुरेन्द्रलोकमारोहतु क्षितिधराधिवतिं सुमेरुम् ।

मन्त्रौषधिप्रहरणेश्च करोतु रक्षां पूर्वावित तद्भवति नाथ विभावितोऽस्मि ॥९५

रोदिति कश्चिद्धथाशुधौताननगुरुतरशोकविह्वलः ।

प्रविकटचरणवानपि नृत्यति कश्चिद्द्वर्मादिविग्रहः ॥९६

गायति हृष्टमहारि सुखनिर्भरमायतविस्तृताऽधरोऽधिकाम् ।

सार एष रञ्जोदरगतनटपटहाकाम एवायम् ॥९७

इत्येवं धर्ममुद्दिश्य विष्णुः संसारचेष्टितम् । तूष्णीं बभूवानुपदम् ततस्ते द्विजपुञ्जवाः ॥९८

पड़कर इस भाँति का शोक करना केवल तुम्हारे ही लिए नहीं है किन्तु संसार में आये हुए सभी प्राणियों की एक दिन यही अवस्था होती है, यहाँ तक इस सबल काल ने अग्नि की भाँति सहस्रों इन्द्र और सैकड़ों चक्रवर्ती राजाओं को समूल नष्ट किया है। ग्राह आदि जीवों समेत इस समुद्र के शोषण करने में समर्थ अपने दोनों हाथों से इस भूपृष्ठ पर मेर पर्वत को चूर्ण करनेवाले, पृथ्वी के उद्धार एवं चन्द्र सूर्य को पकड़ लेने वाले प्राणी भी कालकलित होकर कृतान्त के मुख में पहुँच गये। दैववश वह रावण भी काल कवलित हुआ, जिसका नगर त्रिकूट पर्वत का दुर्ग, समुद्र खाँई, राक्षस गण योद्धा थे, कुबेर का धन एवं जो शुक्राचार्य की भाँति मंत्र प्रणेता था। हाथी, घोड़ों के संकुल से पूर्ण संग्राम स्थल, अग्नि, (पाताल) शिखर, एवं समुद्र कहीं भी छिप जाये अथवा समस्त जनों के सामने ही सदैव रहे और चाहे कि (काल का) उस प्रचण्ड कोप में पड़कर नाश न हो, यह असम्भव है। स्वामिन्! पाताल, देव लोक, अथवा पर्वत राज सुमेरु के शिखर पर आरोहण या मंत्रों औषधियों द्वारा रक्षा करता रहे किन्तु होनहार होकर ही रहता है, यह मुझे भली भाँति निश्चित है। इस संसार में महान् शोक से व्यथित होकर कोई इस प्रकार रोदन कर रहा है, जिससे उसका मुख अशुद्धाराओं से अत्यन्त प्रक्षालित की भाँति हो गया है, कोई धर्मादि मूर्ति विकट चरण होने पर भी नृत्य कर रहा है और कोई अत्यन्त प्रसन्न चित्त से सुखानुभव प्रकट करते हुए मुख द्वारा संगीत के रागों को प्रकट करते हुए गायन कर रहा है। इसलिए इसका सार यह है कि रंग भूमि में नट के वाद्यों द्वारा आकर्षित करके उसमें तन्मय रखने की भाँति इस संसार को जानना चाहिए। इस प्रकार सांसारिक धर्मोपदेश करके ब्राह्मण वेष्ठारी भगवान् विष्णु चुप हो गये। ८९-९८।

उत्तिष्ठ स्नाहि पुत्राणां प्रकुरुत्वौर्ध्वदेहिकम् । मा शोकं विष्णुमायैषा विष्णुना निर्मिता स्वयम् ॥९९
 इत्युक्ता चारुसर्वाङ्गी स बभूवाचलः पुमान् । स एष सदृशाकारो नारदतत्क्षणेऽभवत् ॥१००
 सोऽपि राजा ददर्शितं समन्त्रिपुरोहितः । सान्तः पुरमिदं सर्वमिन्द्रजालोपमं क्षणात् ॥१०१
 नारदं मुनिशार्दूलं जटाभारभयानकम् । गौरवर्णं ज्वलन्तं च ब्राह्मस्या लक्ष्म्या विरञ्जितम् ॥१०२
 शिखाकमण्डलुधरम् वीणदण्डकरं तथा । ब्रह्मसूत्रेण शुभ्रेण कौपीनाच्छादनेन च ॥
 पादुकाभ्यां स्थितं तीरे सरसो ब्राह्मणासने ॥१०३

सम्प्रगृह्ण कराग्रेण जगामादर्शनम् हरिः । अन्बरेण सुरैः साद्वं तस्मादेशाद्युधिष्ठिर ॥१०४
 श्वेतद्वीपमथासाद्य प्राह देवो सुनिं नृप । देवर्षे यत्त्वया पृष्ठं पूर्वं मायाकथाम् प्रति ॥१०५
 माया यथेदृशी माया यत्स्वरूपा यदात्मिका । सा ते साया मया ऋह्यन्वैष्णवी सम्प्रदर्शिता ॥१०६
 एवमुक्त्वा मुनिवरं देवदेवो जनार्दनः । ब्रह्मवान्तर्हितस्सद्यो देवर्षेस्तस्य पश्यतः ॥१०७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरर्पर्विणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
 मायादर्शनं नाम तृतीयोऽध्यायः । ३

अथ चतुर्थोऽध्यायः

संसारदोषवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

देवत्वं मानुषत्वं च तिर्यक्त्वं केन कर्मणां । प्राप्नोति पुरुषः केन गर्भवासं सुदारुणम् ॥१

द्विजपुण्गव ! पश्चात् उन सब के इस भाँति कहने पर कि उठो, स्नान पूर्वक पुत्रों की अन्त्येष्टि क्रिया करो, शोक करना व्यर्थ है, क्योंकि यह सब भगवान् विष्णु की माया है, जिसे विष्णु ने स्वयं उत्पन्न किया है । वह सर्वाङ्ग सुन्दरी उसी समय अचल पुरुष के रूप में परिणत होकर नारद के वेष में दिखाई देने लगी । अनन्तर मंत्रिगण, एवं पुरोहित समेत राजा और उनके अन्तः पुर की समस्त रानियों ने इन्द्रजाल की भाँति देखा कि—अपने भयानक जटाभार से भूषित प्रदीप्त गौरवर्ण, ब्रह्म लक्ष्मी से सुशोभित तथा शिखा, कमण्डल, वीणा, ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत), कौपीन, एवं आच्छादन वस्त्र धारण किये मुनिशेष्ठ नारद उपस्थित हैं । उस सरोवर के टट पर अपने चरण पादुका रखे ब्राह्मण आसन पर उन नारद की अंगुली ग्रहण किये विष्णु भी स्थित हैं । युधिष्ठिर ! देवों समेत आकाश मार्ग से पुनः श्वेत द्वीप में पहुँच कर देवाधिदेव जनार्दन भगवान् ने नारद मुनि से कहा—देवर्षे ! आप ने पहले माया के विषय में जो प्रश्न किया था उसके उत्तर में मैंने आपको उस वैष्णवी माया के लक्षण, एवं स्वरूप दिखा दिया । ९९-१०७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरर्पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्बाद में मायादर्शन
 नामक तीसरा अध्याय समाप्त । ३।

अध्याय ४

संसारदोष नामक वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! देव, मनुष्य एवं पक्षियों आदि की योनि किसः कर्म द्वारा पुरुष

गर्भस्थश्च किमद्नाति कथमुत्पद्यते पुनः । दत्तोत्थानादिकान्दोषान्कथं तरति दुस्तरात् ॥२
बालभवे कथं पुष्टिः स्याद्युवा केन कर्मणा । कुलीनः केन भवति सुरुपः सुधनः कथम् ॥३
कथं दारानवाप्नोति गृहं सर्वगुणैर्युतम् । पण्डितः पुत्रवान्स्त्यागी स्यादामयविवर्जितः ॥४
कथं सुखेन श्रियते कथम् भुइक्ते शुभाशुभम् । सर्वमेवामलमते गहनं प्रतिभाति मे ॥५

श्रीकृष्ण उवाच

गुर्जैर्देवत्वमाप्नोति मिश्रमानुष्टां ऋजेत् । अशुभैः कर्मभिर्ज्ञतुस्तिर्ययोनिषु जायते ॥६
प्रमाणं शुतिरेवात्र धर्माधर्मविनिश्चये । पापं पापेन भवति पुण्यं पुण्येन कर्मणा ॥७
ऋतुकाले तदा भुक्तं निर्दोषं येन संस्थितम् । तदा तद्वायुना सृष्टं स्त्रीरक्तेनैकतां ऋजेत् ॥८
विसर्गकाले शुक्रस्य जीवः करणसंयुतः । भूत्यः प्रविशते योनिं कर्मभिः स्वैर्भिर्योजितः ॥९
तच्छुक्ररक्तमेकस्थमेकाहात्कललं भवेत् । पञ्चवरात्रेण कललं बुद्बुदाकारतां ऋजेत् ॥१०
बुद्बुदं सप्तरात्रेण सांसपेशी भवेत्ततः । द्विसप्ताहाद्बूद्वेत्येशी रक्तमांतदृढाऽच्चितः ॥११
बीजस्येवाङ्कुराः पेश्याः पञ्चविंशतिरात्रतः । भद्रनिति मासमात्रेण पञ्चधा जायते पुनः ॥१२
ग्रीदा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोदरम् । मासद्वयेन सर्वाणि द्रामशः सन्भवन्ति च ॥१३
त्रिभिर्मासैः प्रजायन्ते सद्ब्याङ्कुरसन्धयः । मासैश्चतुर्भिरङ्गुलयः प्रजायन्ते यथाक्रमम् ॥१४

प्राप्त करता है, और अत्यन्त दारुण गर्भवास में क्या खाता है और पुनः गर्भस्थ रहकर कैसे उत्पन्न होता है, दाँत आदि निकलने के उस दुस्तर दुःखों को किस भाँति सहन करता है, बचपन में पुष्टि तथा किस कर्म द्वारा युवा की प्राप्ति, एवं किस कर्म से कुलीन, सौन्दर्य, अत्यन्त सुधन, समस्त गुणों एवं स्त्रियों की प्राप्ति होती है और कैसे वह पंडित, पुत्रवान्, त्यागी, रोगहीन, और सुख पूर्वक शरीर त्याग करता है एवं शुभाशुभ कर्मों के भोग करता है। हे स्वच्छमनवाले! मुझे यह सब अत्यन्त गहन मालूम हो रहा है। १-५

श्रीकृष्ण जी बोले—शुभ कर्म से देव, (शुभाशुभ के) सम्मिश्रण से मनुष्य, और अशुभ कर्मों द्वारा (जीव) पक्षी आदि योनि प्राप्त करता है और उस धर्माधर्म के निश्चय करने में केवल श्रुति ही एक मात्र प्रमाण है। जिसमें दत्याया गया है कि पाप कर्म द्वारा पाप और पुण्य कर्म द्वारा पुण्य की प्राप्ति होती है। यह निर्दोष जीव कर्मवश (स्त्री के) ऋतु काल में वायु द्वारा स्त्री के उस रक्त के साथ मिलकर एक हो जाता है। वीर्य के पतन समय में साधन समेत यह जीव भूत्य की भाँति अपने किये कर्मों द्वारा निर्दिष्ट योनि में पहुँचता है। उस समय गर्भ में शुक्र शोणित (पुरुष स्त्री के वीर्य रज) एक में मिलकर एक दिन कलल (कल-कल) करता हुआ पकता है। पाँच रात्रों तक वहीं बुद्बुद करता है, सात दिन के अनन्तर वहीं मांस पेशी बनना प्रारम्भ होता है। दो सप्ताह तक वह रक्त मांस की अत्यन्त दुःख मांस पेशी बन जाती है, जो बीज का ही अंकुर रूप रहती है। पच्चीसवाँ रात्रि से उसमें पाँच भाग—ग्रीवा, शिर, कन्धा, पीठ वंश (रीढ़) और उदर रूप होना प्रारम्भ होता है। इस प्रकार क्रमशः दो मास में उपरोक्त पूर्ण होते हैं। तीसरे मास में संघियों के अंकुर चौथे मास में क्रमशः अंगुलियाँ, पाँचवें मास में मुख, नासिका, दोनों कान,

१. दत्तोत्थानादिकान् । २. अंसौ पृष्ठं तथोदरम् ।

मुखं नासा च कर्णो च जायन्ते पञ्चमासकैः । दन्तपं क्लिस्तथा गुह्यं जायन्ते च नसाः पुनः ॥१५
 कर्णो च रन्ध्रसहितौ षण्मासाभ्यन्तरेण तु । पायुर्मेंद्रमुपस्थश्च नाभिश्चाप्युपजायते ॥१६
 सन्ध्यो ये च गात्रेषु मासैर्जायन्ति सप्तभिः । अङ्गःप्रत्यङ्गःसम्पूर्णः शिरः केशसमन्वितः ॥१७
 विभक्तावयवः पुष्टः पुनर्मासाष्टकेन च । पञ्चात्मकसमायुक्तः परिपक्वः स तिष्ठति ॥१८
 मातुराहारवीर्येण षड्विधेन स तिष्ठति । रसेन प्रत्यहं बालो वर्धते भरतर्षभ ॥१९
 तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमर्नदम् । नाभिसूत्रनिबधेन बद्धते स दिनेदिने ॥२०
 ततः स्मृतिं लभेज्जीवः सम्पूर्णऽस्मिन्छरोरके । सुखं दुःखं विजानाति निद्राःस्वप्नं पुरा कृतम् ॥२१
 शृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः । नानायोनिसहस्राणि मया दृष्टानि तानि वै ॥२२
 अधुना जातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव च । एतच्छ्रेयः^१ करिष्यामि ये न गर्भे न संश्रयः ॥२३
 गर्भस्थश्चिन्तये देवमहं गर्भाद्विनःसृतः । अथेष्ये चतुरो देवान्संसारविनिदर्तकान् ॥२४
 एवं स गर्भदुःखेन महतापरिपीडितः । जीवः कर्मवशादास्ते मोक्षोदायं विचिन्तयन् ॥२५
 यथा गिरिवराकान्तः कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति । तथा जरायुणा देही दुःखे तिष्ठति चेष्टितः ॥२६
 पतितः सागरे यद्दृढःखैरास्ते सनाकुलः । गर्भोदकेन सिक्तांगस्तथास्ते व्याकुलः पुमान् ॥२७
 लोहकुम्भे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना । तथा स पच्यते जन्तुर्गभस्थः पीडितोदरः ॥२८

छठें मास में दाँतों की पंक्तियाँ (मसूडा) गुह्यभाग, नख, कान के छिद्र, सातवें मास में स्नायु, अण्ड, लिंग, नाभि और शरीर की संधियाँ (जोड़वी की गाँठे) और आठवें मास में अंगप्रत्यंग की पूर्ति समेत शिर के केश एवं पृथक्-पृथक् अंगों की पुष्टि होती है । भरतर्षभ ! उस नवें मास में वह पूर्ण इन्द्रियों समेत परिपक्व होकर माता के आहार वीर्य द्वारा जो छह रसों से बनता है, उसी गर्भ में बढ़ता रहता है । अर्नदम ! जिस प्रकार मैंने सुना है, उसी भाँति इसकी व्याख्या कर रहा हूँ ! वह जीव अपनी शरीर के नाभि सूत द्वारा प्रतिदिन बढ़ता हुआ पूर्व जन्म की बातों का स्मरण करता है, क्योंकि उस समय उसकी देह सभी प्रकार से तैयार रहती है । वह पहले किये हुए सुख, दुख, स्वप्न को भली भाँति जानता है । उसे उसी गर्भ में इस प्रकार का ज्ञान होता है कि पहले मैं कहाँ उत्पन्न हुआ और कैसे मृतक हुआ तथा उत्पन्न होकर पुनः मृतक हूँगा ! इस भाँति मैंने सहस्रों योनियों में भ्रमण करते इस समय यहाँ इस गर्भ में अवस्थित हूँ । अब की बार उत्पन्न होते ही संस्कार करके उसभेद कर्म को करूँगा, जिससे पुनः इस गर्भ पिण्ड में न आना पड़े अभी गर्भस्थ होने के नाते मैं केवल इस प्रकार का विचार कर रहा हूँ किन्तु उत्पन्न होने पर चारों वेदों का अध्ययन करूँगा जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो जाये ।६-२५। इस प्रकार वह जीव कर्मवश गर्भ दुःख से अत्यन्त पीड़ित होकर अपने मोक्ष होने के उपाय सदैव सोचता रहता है, क्योंकि जिस प्रकार महान् पर्वत के भार से दबकर कोई व्यथित होता है उसी भाँति गर्भ पीड़ा से यह जीव दुःखी होता है । सागर में गिर जाने से जिस प्रकार दुःखी एवं व्याकुल होता है, उसी भाँति जीव गर्भ के जल से सिक्त होने पर वह दुःखी होता है । लोहे के घड़े में रहकर अनि द्वारा पकने से पीड़ित होने की भाँति यह जीव उदर गर्भ में रहकर पकने की पीड़ा का

१. तत्तच्छ्रेयः ।

सूचीनिरप्निवर्णाभिविभिन्नस्य निरन्तरम् । यः दुःखमुपजायेत तद्गर्भेऽष्टगुणं भवेत ॥२९
 गर्भवासात्परो वासः कष्टो नैवास्ति कुत्रचित् । देहिनां दुःखवद्वाजन्सुधोरो ह्यतिसङ्कृटः ॥३०
 इत्येतद्गर्भदुःखं हि प्राणिनां परिकीर्तितम् । चरस्थिराणां सर्वेषामात्मगर्भानुरूपतः ॥३१
 गर्भात्कोटिगुणं दुःखं योनियन्त्रप्रपीडनात् । समूच्छितस्य जायेत जायमात्रस्य देहिनः ॥३२
 शरवत्पीडयमानस्य यन्त्रेणैव समन्ततः । शिरसि ताडयमानस्य पापमुद्गरकेण च ॥३३
 गर्भान्निष्क्रम्यमाणस्य प्रबलैःसूतिमारुतैः । जायते भुमहृदःखं परित्राणमविन्दतः ॥३४
 यन्त्रेण पीडिता यद्विःसाराः स्मुक्तिलेक्षवः । तथा शरीरं निःसारं योनियन्त्रप्रपीडितम् ॥३५
 अस्तियज्जात्वचामांसस्नःयुवन्धेन^१ यन्त्रितम् । रक्तमान्समृद्धं युक्तं विष्मूत्रद्रवलेपनम् ॥३६
 केशलोमतृष्णाच्छन्नं रोगायतनमातुरम् । वैदैनकमहृद्वारां दल्लोष्ठकदिमूषितम्^२ ॥३७
 ओष्ठद्वयकपाटं च दन्तजिह्वार्गलान्वितम् । नाडीस्वेदप्रवाहं च कफपित्तप्रिप्लुतम् ॥३८
 जराशोकसमाविष्टं कालचक्रानले स्थितम् । कामक्रोधसमाकान्तं व्यसनैश्रोपमर्दितम् ॥३९
 भोगतृष्णादुरं घूँघं रागद्वेषवशानुगम् । संवर्तिताङ्गप्रत्यंगं जरायुपरिवेष्टितम् ॥४०
 तद्ङुटेनाविविक्तन योनिद्वारेण निर्गतम् । विष्मूत्ररक्तसिक्ताङ्गं पल्केशाच्च समुद्भवम् ॥४१
 इति देहगृहं घोक्तं नित्यस्यानित्यमात्मनः । अविशुद्धं विशुद्धस्य कर्मबन्धविनिर्मितम् ॥४२

अनुभव करता है । अग्नि के समान प्रज्वलित सूत्रियों (सुइयों) द्वारा अंग छेदन होने से उससे आठ गुना दुःख गर्भ में जीव को प्राप्त होता है । राजन् ! गर्भवास के समान धोरवास एवं उसके सम्पर्क कष्ट इस जीव को कहीं नहीं होता है क्योंकि वह गर्भ धोर अत्यन्त संकटों से पूर्ण रहता है । इस प्रकार जीवे गर्भ दुःख का वर्णन तुम्हें सुना दिया । इसी भाँति अपने गर्भ दुःख के अनुरूप चर अचर के उत्पन्न होने को भी समझना चाहिए । और गर्भ दुःख से कोटि गुना दुःख योनि यंत्र से निकलते समय होता है । उत्पन्न होते समय यह जीव अत्यन्त दुःख के कारण सूचित रहता है । उस समय वापों के आधात एवं मंत्रों द्वारा पीड़ित होने से सर्वांगं की पीड़ा उसे होती है । उसी बीच पाप मुद गर के आधात उसके शिर में होते हैं और गर्भ से निकलते समय वायु के अनेकों आधातों के सहन पूर्वक वह अत्यन्त दुःख का अनुभव करता है, जहाँ कोई सहायक नहीं रहता है । जिस प्रकार यंत्र (कोल्ह) में तिल के पीड़ित होने पर उसकी खली निस्तत्व होकर निकलती है, उसी भाँति योनि यंत्र से अत्यन्त पीड़ित होकर सारहीन यह शरीर निकलता है । उस समय उस देह में अस्थि, मज्जा, त्वचा, मास, स्नायु से आबद्ध, रक्त मांस समेत विष्ठा और मूत्र से लिप्त रहता है तथा केश, लोम, से आच्छन्न रोग मंदिर उसमें विभूषित है । उसके दोनों ओष्ठ कपाट (किवाड़) दाँत, जिह्वा, अर्गला (जंजीर), नाडियों में स्वेद का प्रवाह, कफ, पित्त, युक्त, जरा शोक समेत काल चक्रल्पी अनल में स्थित रहता है । काम, क्रोध, एवं व्यसनों से आक्रान्त, भोग, तृष्णा से व्याकुल, राग, द्वेष के वशीभूत और अंग प्रत्यंग जरायु से आवेष्टित एवं अनेक गुप्त संकटों से धिर कर योनि के द्वार से निकलता है, जो विष्ठा, मूत्र, रक्त इवेत अंग चरण केश से युक्त होता है । २६-४१। इस भाँति मैं इस नित्य जीवात्मा के उस अशुद्ध देह तथा उसकी प्राप्ति का वर्णन कर दिया जो उस विशुद्ध जीवात्मा का यह

१. तुलास्तंमभम् । २. गवाक्षाष्टकभूषितम् ।

शुक्रशोणितसंयोगाद्वेहः सञ्जायते यतः । नित्यविष्मूत्रपूर्णश्च तेनायमशुचिः स्मृतः ॥४३
 यथान्तविष्ठ्या पूर्णः शुचिः स्यान्न बहिर्घटः । यत्नतः शोध्यमानोऽपि देहोऽयमशुचिस्तथा ॥४४
 सम्प्राप्यात्र पवित्राणि पञ्चगव्यहर्वीषि च । अशुचित्वं क्षणाच्चापि किमन्यद्वस्तुबिंदवः ॥४५
 देहः संशोध्यमानोऽपि पञ्चगव्यकुशाङ्गुभिः । घृष्यमाण इवाङ्गारो निर्मलत्वं न गच्छति ॥४६
 क्षोतांसि यस्य सततं प्रवहन्ति गिरेरिव । कफसूत्रपुरीषादैः स देहः शुद्धते कथम् ॥४७
 सवांशुचिनिधानस्य शरीरस्य न विद्यते । शुचिरेकः प्रदेशोऽपि विट्पूर्णः स्यन्दते किल ॥४८
 कायः सुगन्धधूपादौर्यत्नेनापि तु संस्कृतः । न जहाति स्वकं भावं श्वपुच्छमिव नामितम् ॥४९
 यथा जात्यैव कृष्णो^१ हि न शुक्लः स्यादुपायतः । संशोध्यमानाऽपि तथा भवेन्मूर्तिर्न निर्मला ॥५०
 जिग्रन्नपि स्वदुर्धार्थं पश्यन्नपि मलं स्वकम् । न विरज्जति लोकोऽर्थं पीडयन्नपि नासिकाम् ॥५१
 अहो मोहस्य माहात्म्यं येन व्यासोहितं जगत् । जिज्ञन्यश्यन्त्वकं दोषं कायस्य न विरज्जते ॥५२
 एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचि ध्रुवम्^२ ! त्वद्भावसारं निःसारं कदलीसारसनिभम् ॥५३
 गर्भस्थस्य स्मृतिर्यासीत्सा जातस्य प्रणश्यति । संमूल्चितस्य दुःखेन योनियन्त्रप्रपीडनात् ॥५४
 बाह्येन वायुना चास्य मोहसंज्ञेन देहिनः । स्पृष्टमात्रेण घोरेण ज्वरः समुपजायते ॥५५

अत्यन्त अशुद्ध कर्म बंधन रूप है । शुक्र शोणित के संयोग द्वारा यह देह उत्पन्न होती है जो नित्य विष्ठा, मूत्र, से पूर्ण रहने के नाते निरान्त अशुद्ध है जिस प्रकार पट के भीतर विष्ठा पूर्ण करके अनेक बार उपायों द्वारा पवित्र करने पर भी वह पवित्र नहीं होता है उसी भाँति यह अशुद्ध शरीर फलतः संशोधन करने पर भी शुद्ध नहीं होती है । गाय के दूध, धी, दही, मूत्र और गोबर मिलकर पंचगव्य होता है, उस पंचगव्य द्वारा यह शरीर क्षण मात्र के लिए पवित्र होती है । क्योंकि उन पाँच वस्तुओं में कितना सामर्थ्य हो सकता है । कोयले विसने पर निर्मल न होने की भाँति यह शरीर पंचगव्य कुशाओं द्वारा संशोधन करने पर भी निर्मल नहीं होती है । जिस शरीर के श्रोत्र (कान) इन्द्रिय पर्वत झरने की भाँति सदैव प्रवाहित रहती है, कफ, मूत्र एवं पुरीषादि युक्त वह देह शुद्ध कैसे हो सकती है । अपवित्रता के विधान रूप इस शरीर का कोई भी अंग विष्ठा पूर्ण होने के नाते पवित्र नहीं है । सुगन्धों एवं धूपों से धूपित करने पर यह शरीर इवान के नैमित पूँछ की भाँति अपना स्वभाव नहीं छोड़ सकती है । जिस प्रकार काली कमरी अनेकों उपाय द्वारा शुक्ल वर्ण की नहीं हो सकती है, उसी भाँति संशोधन करने पर भी यह शरीर पवित्र नहीं हो सकती है । अहो आशर्चर्य की बात है कि अपने दुर्गन्ध के आघाण एवं अपने मल को देखते हुए भी यह जीवात्मा विरागी नहीं होता है । यह सारां संसार इस प्रकार मोहित हुआ है कि उपरोक्त विषयों के आघाणादि दोष इस शरीर के देखते हुए भी इससे विरागी नहीं होता है । इस भाँति यह शरीर स्वभावतः अत्यन्त अपवित्र है, जो निस्तत्व कदली की भाँति केवल त्वचा मात्र सार से युक्त रहती है । गर्भ में स्थित रहने पर जिन पक्षों का भली भाँति स्मरण होता है उत्पन्न होने पर वे स्मरण नष्ट हो जाते हैं क्योंकि योनि यंत्र से पीड़ित होने के नाते वह अत्यन्त दुःख से मूर्च्छित रहता है । ४२-५४ । बाहर होने पर मोह संज्ञक वायु के स्पर्श होने

१. कृष्णोर्णा न शुक्ला स्यादुपायतः । २. विदुः ।

तेन ज्वरेण महता महामोहः प्रजायते । संमूदस्य स्मृतिभ्रंशः शीघ्रं सञ्जायते पुनः ॥
 स्मृतिभ्रंशात् तस्येह पूर्वकर्मवशेन च । रतिः सञ्जायते तूर्णं जन्तोस्तत्रैव जन्मनि ॥
 रक्तो मूढस्य लोकोऽयमकार्ये सम्प्रवर्तते । न चात्मानं विजानाति न परं विन्दते^१ च सः ॥
 न श्रूयते परंश्रेयः सति चक्षुषिं नेक्षते । समे पथि शर्नैर्च्छिन्स्खलतीव पदे पदे ॥
 सत्यां ब्रुद्धौ न जानाति बोध्यभान्ते ब्रुधैरपि । संसारे क्लिशयते तेन रग्गलोभवशानुगः ॥
 गर्भस्मृतेरभावेन शास्त्रमुक्तं महर्षिभिः । तद्वःखमथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसादकम् ॥
 ये सन्त्यतिमन्यरे ज्ञाने सर्वेकामार्थसाधके । न कुर्दैत्यात्मनः श्रेयस्तदत्र महदद्भुतम् ॥
 अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्वाल्ये दुःखं प्रहत्पुनः । इच्छब्रह्मि न शक्नोति कर्तुं वर्तुं च सत्क्रियाम् ॥
 इन्तोत्थाने महद्वःखं मौलेन व्याधिनः तथा । बालरोगैश्च दिविधैः शीडा बालग्रहैरपि ॥
 तृडबुभुक्षापरीतांगः कश्चित्तिष्ठति^२ रारटन् । विष्मूत्रभक्षणमपि भोहाद्वालः समाचरेत् ॥
 कौमारे कर्णवेधेन मातापित्रोश्च ताडनात् । अक्षराध्ययनात्पुंसां दुःखं स्पाद्गुरुशासनात् ॥
 प्रसन्नेन्द्रियवृत्तिश्च कामरागप्रपीडनात् । रोगोद्धतस्य सततं कुतः सौख्यं च यौवने ॥

पर उसे घोर ज्वर उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण उसे महामोह उत्पन्न होता है और उस मूढ समस्त स्मृतियाँ शीघ्र विनष्ट हो जाती हैं । पूर्व जन्म के कर्मों द्वारा उसकी स्मृति के नाश पूर्वक उस उकी उसी योनि के जन्म में अत्यन्त अनुराग हो जाता है । पुनः कर्म करने लगता है । उस समय यह न अपने की जानकारी रखता है और न उस पर ब्रह्म की ही । कहने पर भी अत्यन्त हित की बात : सुनता है, आखेर रहने पर देखता नहीं । उसी प्रकार समतल पर चलते हुए भी मार्ग में पग पग परि करता है । बुद्धि रहते हुए भी विद्वानों की बातें नहीं जानता है । अनुराग एवं लोभ के अधीन होकर : संसार में अत्यन्त दुःखों का अनुभव करता रहता है । गर्भ की बातों के स्मरण यद्यपि उस समय नहीं र किन्तु उस दुःख के शमनार्थ मृद्धियों ने शास्त्रों के निर्माण किये हैं, जो स्वर्ग एवं मोक्ष के साधक हैं । लोक में यह एक कितने आश्र्य की बात है कि उत्तम ज्ञान एवं उसके साधक (शास्त्र) के रहने पर मनुष्य आत्मकल्याण नहीं करता है । शिशु अवस्था में इन्द्रियों की वृत्तियाँ जागरूक न होने के का अत्यन्त इच्छा करते हुए भी किसी सत्क्रिया को सुसम्पन्न करना एवं कुछ कहना उस समय उसके साम की बात नहीं रहती है, इसलिए उस अवस्था में जीव को महान दुःख का अनुभव होता है । दाँतो निकलते समय भी उसे मसूड़ों की पीड़ा से अत्यन्त दुखी रहना पड़ता है । अनेक भाँति के बाल रोग बाल ग्रह जनित पीड़ाओं के अनुभवपूर्वक वह कुधा और प्यास से व्यथित होकर एक भाँति का रटन क हुए रोदन करता है । बच्चे मोहवश विष्ठा मूत्र के भक्षण भी कर लेते हैं । ५५-६५। कुमारावस्था में कर्ण (कन्धेदन), (उद्धण्डता करने पर) माता पिता और अक्षरों के अध्ययन करते समय गुरु के शासन द्व ताडना मिलती है । उसी प्रकार यौवन (युवा) अवस्था में इन्द्रियों के प्रसन्न होने के नाते उनकी व परतन्त्र रहती हैं, जिससे काम में अत्यन्त अनुराग उत्पन्न होकर उसे व्याकुल किया करता है और अत-

१. न च देवताम् । २. कवचित् ।

ईर्ष्या च महूःखं मोहाद्रक्तस्य जायते । नेत्रस्य कुपितस्यैव रोगो दुःखाय केवलम् ॥६८
 न रात्रौ विन्दते निदां कोपाग्निपरिपीडितः । दिवा वापि कुतः सौख्यमर्थोपर्जनचिन्तया ॥६९
 स्त्रीष्वायापासितदेहस्य ये पुंसः शुक्रबिंदवः । न ते सुखाय मन्तव्याः स्वेदजा इव बिंदवः ॥७०
 कृमिभिस्तुद्धमानस्य कुष्ठिनः कामिनस्तथा । कण्डूयनाप्नितापेन यद्ब्रवेत्स्त्रीषु ताद्धि तत् ॥७१
 यादृशं विन्दते सौख्यं गण्डान्दयविनिर्मि । तादृशं स्त्रीषु मन्तव्यं नाधिकं तासु विद्यते ॥७२
 गण्डस्य वेदना घट्टत्स्फुटितस्य निवर्तते । तदृत्स्त्रीष्वपि मन्तव्यं न सौख्यं परमार्थतः ॥७३
 विष्मूत्रस्य समुत्सर्गात्सुखं भवति यादृशम् । तादृशं तेषु विज्ञेयं मूढैः कल्पितमन्यथा ॥७४
 नारीष्वशुचिभूतासु सर्वदोजाश्यासु च । नाणुभात्रकमप्येवं सुखमस्ति विचारतः ॥७५
 सन्मानमपमानेन विद्येन सुसङ्गमः । यौवनं जरया ग्रस्तं किं सौख्यमनुपद्रवम् ॥७६
 बलीपलितखालित्यैः शिथिलीकृतविग्रहम् । सर्वक्रियास्वशक्तं च जरया जर्जरीकृतम् ॥७७
 स्त्रीपुंसयोर्नवं रूपं तदान्योन्यं प्रियं पुरा । तदेव जरया ग्रस्तमुभयोरपि न प्रियम् ॥७८
 अपूर्ववत्स्वमात्मानं जरया परिवर्तितः । यः पश्यन्नपि रज्येत् कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥७९

भोगी होने से प्रचण्ड रोगग्रस्त होना पड़ता है, अतः युवावस्था में सुख का लेश भी मिलना कठिन हो जाता है । अनुरागी प्राणी को ईर्ष्या के कारण भी कठिन दुःखों का अनुभव करना पड़ता है । इसलिए क्रुद्ध प्राणी में अनुराग एक मात्र दुःख का कारण होता है । क्योंकि क्रोधाग्नि से दग्ध होने पर उसे रात्रि में नींद नहीं आती है ; अर्थोपर्जन की चिन्ताओं से व्याकुल होने पर दिन में भी वह सुख से वञ्चित रह जाता है ; स्त्री में अत्यासक्त रहकर उसके साथ उपभोग करने में जो वीर्य के बिंदु गिरते हैं उन्हें भी स्वेद विन्दुओं की भाँति सुखकर नहीं जानना चाहिए । कुष्ठ के रोगी को कीड़ों के काटने पर कंडूपर (खुजलाने) अग्निताप द्वारा शांति मिलने की भाँति ही पुरुषों को भी (शुभ्र कीटाणुओं) कीड़ों के काटने पर स्त्रियों के उपभोग में शुक्र विन्दुओं के पतन होने पर वह कण्डूयन शांत हो जाता है । मुहासे आदि छोटी फुन्सियों के बह जाने पर जिस प्रकार के सुख की प्राप्ति होती है स्त्रियों में रमण करने पर भी उतने ही सुख की प्राप्ति होती है अधिक नहीं । कोड़े के फूट जाने पर जिस प्रकार उसकी वेदना नष्ट हो जाती है उरी प्रकार स्त्रियों में रमण द्वारा कामवेदना ही शांति होती है अन्य कोई परमार्थ सुख की प्राप्ति नहीं है । विष्ठा, मूॢत्र के परित्याग करने पर जिस प्रकार का सुख प्राप्त होता है वैसा ही सुख शुक्र बिंदु के पतन होते समय होता है किन्तु मूळों ने उसे उसके विरुद्ध ही कल्पना किया है । ६६-७१। इस प्रकार स्त्रियों के रमण में जो अत्यन्त अविमात्र तथा सभी दोषों की खानि होती है, विचार करने पर सुख का लेश भी नहीं मिलता है । युवा काल में प्राणी सम्मान पूर्वक मान एवं वियोग के पश्चात् स्त्री रमण में दृढ़ालिङ्गन प्राप्त करता है किन्तु वह यौवन जरा (बुड़ापा) से ग्रसा होने के नाते उसके पीछे उपद्रव लगा ही रहता है इसलिए उस अवस्था में कोई सुख नहीं वृद्धावस्था में बुढ़ाई द्वारा देह के जर्जर होने पर उसकी खाल लटक जाती है और समस्त शरीर शिथिल होने के कारण वह सभी क्रियाओं के करने में असमर्थ रहता है । जो रूप सौन्दर्य पूर्ण होने के नाते युवावस्था में नित्य नूतन ही दिखाई देता है । इसलिए दम्पति को आपस में एक दूसरे की देह अत्यन्त प्रिय रहती है, वही देह जरा ग्रस्त होने पर पूर्व की भाँति प्रिय नहीं होती है । अपने को इस भाँति देखते हुए भी कि जो पहले कितना अपूर्व था और वही जरा ग्रस्त होने पर किस प्रकार परिवर्तित हो गया

जरभिशूतः पुरुषः पल्लीपुत्रादिबान्धवैः । अशक्तत्वादुराचारैर्भृत्यैश्च परिभूयते ॥८०
 धर्ममर्थं च कासं च मोक्षं च न जरी यतः । शक्तः साधयितुं तस्माच्छरीरमिदमात्मनः ॥८१
 वातपित्तकफादीनां वैषम्यं व्याधिरुच्यते । तस्माद्व्याधिमयं ज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः ॥८२
 वाताद्व्यतिरिक्तत्वाद्व्याधीनां घञ्जरस्य च । रोगैनानाविधैर्यानि देहदुःखान्यनेकधा ॥ ॥८३
 तानि च स्यात्मवेद्यादि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥८४
 एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन्देहे प्रतिष्ठितम् । तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषाश्रागान्तदः स्मृतः ॥८५
 ये त्विहागान्तवः प्रेक्षास्ते प्रशारणन्ति भेषजैः । जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शास्यति ॥८५
 यदि चापि न भृत्युः स्थाद्विषमद्याद्वशंकितः । न सन्ति पुरुषे तस्मादपमृत्युवभीतयः ॥८६
 विदिया व्याधयः शस्त्रं सर्पाद्याः प्राणिनस्तथाः । विषाणि जङ्घमाद्यानि^१ मृत्योद्वाराणि देहिनाम् ॥८७
 पीडितं सर्दरोगः द्यैरपि धन्वन्तरिः स्वयम् ! स्वस्थीकर्तुं न शक्नोति प्राप्तमृत्युं च देहिनम् ॥८८
 नौबधं न तपो दानं न भंत्रा न च बांधवा । शक्नुवन्ति परित्रान्तु नरं कालेन पीडितम् ॥८९
 रसायनतदोजपैर्योगसिद्धैर्महात्मभिः । कालमृत्युरपि प्राज्ञस्तीर्यते नालसैर्वरैः ॥९०
 नास्ति मृत्युसम दुःखं नास्ति मृत्युसम भयम् । नास्ति मृत्युसमस्त्रासः सर्वेषामेव देहिनाम् ॥९१

है, उसमे आसक्त होता है, उससे बढ़कर अन्य कोई प्राणी नहीं है। बुढाई आने पर पुरुष के अशक्त होने पर पल्ली पुत्र एवं दुराचारी बन्धुओं और भृत्यों (सेवकों) द्वारा सदैव अपमानित होता रहता है। मनुष्य अपने शरीर द्वारा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति करने में समर्थ रहता है अतः उसकी प्राप्ति उसे अवश्य करना चाहिए क्योंकि उसमें बुराई का भय कभी नहीं होता है। अन्यथा वात, पित्त एवं कफ की विषमता से व्याधि उत्पन्न होती है इसलिए इस शरीर को व्याधि मन्दिर जानना चाहिए। उसी प्रकार वातादि रोग के अतिरिक्त अनेक भाँति के रोग एवं पांजर आदि के द्वारा अनेक प्रकार की व्याधा उत्पन्न होते रहने के कारण यह देह दुःख की है। जिसका अनुभव सभी लोगों को होता रहता है। अन्य कोई बात न है और न कह रहा हूँ। इस शरीर में एक सौ एक मृत्यु दायक रोग सदैव रहते हैं उसमें एक काल है और अन्य आगन्तुक रोग। किन्तु जो आगन्तुक के नाम से प्रथित हैं वे औषधियों के सेवन से शान्त हो जाते हैं, अथवा जप हवन एवं दान द्वारा और काल मृत्यु का शमन किसी प्रकार नहीं होता है। यदि मृत्यु का किसी प्रकार शमन हो सकता है तो प्राणी पुनः निःशंक होकर विष भक्षण किया करते किन्तु पुरुषों में वैसा असम्भव है, उन्हें तो अनेक भाँति की व्याधि शस्त्र एवं सर्पादि रूप से ही प्राणियों की विष एवं जंगमादि द्वारा मृत्यु होती रहती है। उसे समस्त रोगों की व्यथा का अनुभव करना पड़ता है। प्राणी की मृत्यु के समय साक्षात् धन्वन्तरि आकर औषध आदि से उपचार करें, तो भी स्वस्थ नहीं हो सकता है। ७८-८१। काल से पीडित होने पर औषध, तप, दान, मंत्र एवं बन्धु गण उसकी रक्षा नहीं कर सकते हैं। योगसिद्ध महात्मा लोग जो रसायन सेवन, तप और जप निरन्तर करते हैं, काल मृत्यु को भी पराजित करते हैं, किन्तु आलसी पुरुष कभी नहीं। इसलिए समस्त प्राणियों के लिए मृत्यु के समान दुःख, भय,

सद्ग्रार्यपुत्रमित्राणि राज्यैश्वर्यधननानि च । अबद्वाति च वैराणि मृत्युः सर्वाणि कृन्तति ॥१२
 हे जनाः किं न पश्यद्वं सहस्रस्यापि मध्यतः । जनाः शतायुषः पञ्च भवन्ति न भवन्ति च ॥१३
 अशीतिका विपद्मन्ते केद्वित्सप्ततिका नराः । परमायुषं स्थितं षष्ठिस्तत्त्वैवानिश्चितं पुनः ॥१४
 यस्य यावद्ग्रवेदायुर्देहिनां पूर्वकर्मभिः । तस्याद्वमायुषो शत्रिहरते मृत्युरुपिणी ॥१५
 बालभावेन मोहेन वार्द्धक्ये जरया तथा । वर्षणां विंशतियार्ति धर्मकामार्थवर्जिता ॥१६
 आगन्तुकर्भ्यैः पुंसां व्याधिशोकरनेकध्य । शक्यतेऽर्द्धं च तत्रापि यच्छेषं तच्च जीवति ॥१७
 जीवितान्ते च मरणं महाघोरमदाम्बुद्यात् । जायते जन्मकोटीयुः मृतः कर्मवशात्पुनः ॥१८
 देहभेदेन यः पुंसां वियोगः कर्मसंक्षयात् । मरणं तद्विनिर्दिष्टं नान्यथा परमार्थतः ॥१९
 महातपप्रविष्टस्य निळ्यमानेषु सर्वसु । यद्वःखं मरणे जन्मोर्त्ते तस्येहोपसा क्वचित् ॥१००
 हा तात मातः कान्तेति रुदन्नेवं^१ हि दुःखितः । मण्डूक इव सर्वेण ग्रस्यते मृत्युना जनः ॥१०१
 बान्धवैः सम्परिष्वक्तः प्रियैः स परिवारितः । निःश्वसन्दीर्घसुर्जनं च मुखेन परिशुष्यति ॥१०२
 ऋन्दते चैव खट्टायां परिवर्तन्मुहुर्मुहुः । संमूढः क्षिप्तेऽत्यर्थं हस्तपादावितस्ततः ॥१०३

तथा त्रास अन्य नहीं है । यह काल मृत्यु साध्वी स्त्री, पुत्र, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य, और धन आदि सभी का नाश करता है । जनरण ! क्या तुम लोग यह भी नहीं देखते हो कि सहस्रों मनुष्यों के बीच में पाँच भी मनुष्य सौ वर्ष की आयु प्राप्त नहीं करते हैं । उनमें किसी की मृत्यु अस्सी तथा किसी की सत्तरवर्ष की अवस्था में हो जाती है । उनकी परमायु साठ वर्ष की होती है किन्तु वह भी उसके लिए अनिश्चित रहती है, क्योंकि जन्मान्तरी कर्मों के अनुसार उसकी निश्चित आयु के आधे भाग को मृत्यु रूपी रात्रि हर लेती है । और शिशु, अवस्था में मोहवश एवं बुद्धावस्था में बुढ़ाई द्वारा उसकी बीस वर्ष की आयु यों ही नष्ट हो जाती है, जिसमें धर्म, अर्थ, एवं काम की कोई बात नहीं होती है । पश्चात् आगन्तुक अनेक भाँति की व्याधियों द्वारा उसकी आधी आयु नष्ट हो जाती है । इन सबसे शेष आयु में दह जीवित रहता है । जीवन के अंत में पुनः वही महाघोर मरण और तदनन्तर कर्म वश पुनः उसे जन्म ग्रहण की परम्परा में आना पड़ता है । प्राणी अपने कर्मों के अनुसार निर्दिष्ट योनि में पहुँच कर शरीर धारण करता है और उस भोग कर्म के समाप्त होने पर उस शरीर के त्याग पूर्वक पुनः अन्य योनि में जाकर उसकी शरीर धारण करता है, इस प्रकार शरीर प्राप्ति और उसका मरण रूप वियोग का क्रम होता रहता है । किन्तु इसमें कोई क्रम परमार्थ नहीं है । महातपस्त्री मनुष्य कभी मृत्यु के समय उसके अंग प्रत्यग में व्यथा द्वारा उसे जिस दुःख का अनुभव होता है, उसकी उपमा कहीं नहीं है । मरण समय में प्राणी हे तात, हा मातः हे कान्ते कहकर अत्यन्त दुःखी होने पर उस रोदन के समय परिवारों को बुलाता है किन्तु साँप द्वारा ग्रसित होने पर मेढ़क की भाँति यह प्राणी भी मृत्यु द्वारा ग्रस्त होकर विनष्ट हो जाता है । ८९-१०१ । उस समय उसके प्रिय बन्धु गण उसे चारों ओर से धेर कर उसकी बाधा दूर करने में सतत प्रयत्न करते रहते हैं तथापि वह उसी भाँति दीर्घ निश्वास लेता रहता है जिसके कारण उसका मुख सूख जाता है । और उसी शय्या पर पड़े बार बार दुखाक्रन्द किया करता है । चेतना आने पर हाथ चरण के इधर-उधर से चालन करते हुए

खट्टातो काञ्जक्षते भूमि भूमेः खट्दां पुनर्महीम् । विवशस्त्यत्तलज्जश्च मूत्रविष्णानुलेपितः ॥१०४
 याचमानश्च सलिलं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । चिन्तयानश्च वित्तानि कस्यैतानि मृते मर्यि ॥१०५
 पञ्चावटान्खन्यमानः कालपाशेन कर्षितः । म्रियते पश्यतामेव जनानां घुर्घुरस्वनः ॥१०६
 जीवस्तृप्तजलौकेव देहादेहं विशेषक्तमात् । सम्प्राप्योत्तरकालं हि देहं त्यजति पौर्वकम् ॥१०७
 'मरणात्प्रार्थनादुःखमधिकं हि विदेकिनः । क्षणिकं मरणहृःखमनंतं प्रार्थनाकृतम् ॥१०८
 जगतां पतिरर्थित्वाद्विष्णुर्वामनतां गतः । अधिकः कोऽपरस्तस्माद्यो न यास्यति लाघवम् ॥१०९
 ज्ञातं मयेदमधुना स्तं भवति यद्गुरु । न परं प्रार्थयेद्सूयस्तृष्णा लाघवकारणम् ॥११०
 आदौ दुःखं तथा मध्ये दुःखमन्ते च दाहणम् । निसर्गात्सर्वं नूतानामिति दुःखपरम्परा ॥१११
 वर्तमानान्यतीतानि दुःखान्येतानि यानि तु । नरा न भावदंत्यज्ञा न विरज्यन्ति तेन ते ॥११२
 अत्याहारान्महदुःखमनाहारारान्महत्तमम् । तुलितं जीवितं कष्टं मन्येऽप्येवं कुतः सुखम् ॥११३
 बुधुक्षा सर्वरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः । स चान्नौषधिलेपेन क्षणमात्रं प्रशास्यति ॥११४
 क्षुद्रचाधिवेदनातुल्या निःशेषबलकर्तनी । तयाभिभूतो म्रियते यथान्यैव्याधिभिर्न हि ॥११५
 तद्रसोपि हि कामाद्वा जिह्वाप्रे परिवर्तते । तत्कणाद्वार्धकालेन कण्ठं प्राप्य निवर्तते ॥११६

शश्या से भूमि में और भूमि में आकर पुनः शश्या पर जाने की इच्छा प्रकट करता है । उस समय विवश होने पर निलंज्ज हो जाता है, उसकी देह में विष्णा मूत्र लगे रहते हैं कंठ, ओष्ठ एवं तालु के सूजने पर बार-बार पानी की याचना करता रहता है और अपने धन के लिए सोचता रहता है कि मेरे मर जाने के पश्चात् इसका अधिकारी कौन होगा । काल पाश से आबद्ध होकर अपने प्रिय परिवारों के सामने ही धुर-धुर की आवाज करते हुए यह प्राणी तृण की भाँति कर्मनुसार इस देह से अन्य देह में क्रमशः प्रवेश अवशेष करता है । इसी प्रकार काल द्वारा पूर्व शरीर का त्याग और भावी शरीर की प्राप्ति करता रहता है । किन्तु इस जीव को मरने से कहीं अधिक दुःख याचना करने पर होता है, क्योंकि मरण में क्षणिक दुःख का अनुभव करना पड़ता है और याचना में अनन्त बार, इसीलिए जगतं पति भगवान् विष्णु को याचना के कारण वामन लघुरूप की प्राप्ति हुई है । अतः कभी भी याचना किसी से न करनी चाहिए, क्योंकि लाघव होने में मुख्य एक मात्र तृष्णा ही कारण कहा गया है । इसी प्रकार समस्त प्राणी को गर्भ मध्य (जन्म) और अंत (मरण) के समय कष्ट ही कष्ट रहता है, जो दुःख परम्परा उनके स्वाभाविक सी बन जाती है । अतीत एवं वर्तमान दुःखों के मूलकारण का विचार प्राणी नहीं करता है इसी अज्ञान वश उन दुःखों से उसे विराग उत्पन्न नहीं होता है । प्राणी जिस पुष्टाहार को परमोत्तम मानता है, उसके अधिक आहार करने पर महान् दुःख होता है तथा उसका परित्याग भी नहीं कर सकता । इस प्रकार तुलित (नपातुला) जीवन होने से उसे कष्टमय समझना चाहिए उसमें सुख कहाँ से हो सकता है । प्राणियों में वुभुक्षा (खाते की इच्छा) जो समस्त रोगों की व्याधि है, वह अन्य औषधि रूपी लेपन से क्षण मात्र में शान्त हो जाती है । क्षुधा रूपी व्याधि की वेदना, जो सम्पूर्ण बल का नाश कर देती है, अनुपम कहीं गई है । क्योंकि रोगी पुरुष की भाँति क्षुधा-पीडित होने पर प्राणी की मृत्यु हो जाती है । सुस्वाद पूर्ण अन्न मुख में रखने पर उसका रस जिह्वा पर व्याप्त रहता है किन्तु वह उसी समय कंठ पहुँचते हुए भीतर (उदर) में

१. मरणात्प्राक्—कर्णनासिकामुखानि हस्तेन चालयतीत्यवटखननापदेशः ।

इति क्षुद्रचार्थितप्तानामन्नमौषधवस्त्वभूतम् । न तत्सुखाय मन्तव्यं परमार्थेन पण्डितैः ॥११७
 मृतोपमो यच्चेक्षेत सर्वकार्यविर्वजितः । तत्रापि च कुतः सौख्यं तमसाच्छादितात्मनः ॥११८
 प्रबोधेऽपि कुतः सौख्यं कार्यरूपहतात्मनः । कृषिगोरक्षवाणिज्यसेवाध्वादिपरिश्रमैः ॥११९
 प्रातर्मूत्रपुरीषाःयां मध्याह्ने तु बुभुक्षश्च । वृत्ताः कामेन बाध्यन्ते जन्तवोऽपि विनिद्रया ॥१२०
 अर्थस्योपाज्ञेन दुःखमर्जितस्यापि रक्षणे । आये दुःखं व्यये दुःखमर्थेऽप्यश्च कुतः सुखम् ॥१२१
 चौरेभ्यः सलिलादग्नेः स्वजनात्पार्थिवादपि । भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्रत्णभूतामिव ॥१२२
 खे यातं पक्षिभिर्नासं भक्ष्यते श्वावदैर्भुवि । जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान् ॥१२३
 विमोहयन्ति सम्पत्तु तापयन्ति विपत्तिषु । खेदयन्त्यर्जनाकाले कदा॑ हृथाः सुखावहाः ॥१२४
 यथार्थपतिरुद्धिश्चो यच्च सर्वार्थिनिःस्पृहः । यतश्चार्थपतिर्दुःखो सुखी सर्वार्थिनिःस्पृहः ॥१२५
 शीतेन दुःखं हेमेन्ते ग्रीष्मे तापेन द्वारणम् । वर्षासु वातवर्षाभ्यां कालेऽप्येवं कुतः सुखम् ॥१२६

चला जाता है । १०२-११६। इस प्रकार क्षुधा रोग से संतप्त प्राणियों के लिए अन्त औपच रूप अवश्य है, किन्तु वह सुख पण्डितों के विचार से पारमार्थिक नहीं है । जो प्राणी समस्त कार्यों के त्याग पूर्वक केवल मृतक की भाँति देखा ही करता है, उस प्राणी को जीवन में सुख का लेश कहाँ से मिल सकता है क्योंकि उसका ज्ञान आत्मा सदैव, अज्ञानात्मकार से आवृत्त रहता है । बोध करने पर भी दृष्टि, गोरक्षा, व्यापार, सेवा रूपी कार्यों की अधिकता एवं उसे सुसम्मन्न करने के लिए मार्ग आदि गमन करने के परिश्रम से सदैव व्याकुल रहने के कारण उसके उस अबोधित जीवन में सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है । प्राणियों के यही जीवन क्रम है कि प्रातःकाल शौचादि नित्य क्रिया, मध्याह्ने में भोजन द्वारा क्षुधा शान्ति और भोजनोपरांत तृप्त होने पर स्त्री के साथ रमण एवं निद्रा से विवश रहता है । प्राणी को अर्थोपार्जन करने में अनेक प्रकार के महान दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं और उसकी रक्षा करने में भी इस भाँति अर्थोपार्जन एवं उसके व्यय में नितान्त कष्ट ही रहने के नाते धन द्वारा उसे सुख कैसे मिल सकता है । मृत्यु द्वारा भयभीत प्राणियों की भाँति धनवान् पुरुष को भी चोर, जल की बाढ़, अग्नि, स्वजन एवं राजा से सदैव भय बना रहता है जिस प्रकार मांस लेकर आकाश में उड़ते हुए पक्षी गण तो उसका उपभोग करते ही हैं किन्तु उराके भूमि में गिरने पर कुते और जल में गिरने पर मछलियाँ उसका उपभोग करती हैं उसी भाँति धनवान्, सर्वत्र सभी का भक्ष्य बना करता है । धनवान् होने पर प्राणी सदैव उसी में मुग्ध रहता है और उसी भाँति विपत्तियों के समय संतप्त होता है एवं उसके उपार्जन समय खिन्न रहता है । इसलिए धन किस समय सुख-दायक हो सकता है यह कहना कठिन है धनवान् जितना बुद्धिमान रहता है उससे कहीं अधिक शान्त उसके त्यागी देखे जाते हैं क्योंकि धनी सदैव दुःखी रहता है और सर्वार्थ निस्पष्ट सुखी । ११७-१२५। हेमन्त ऋतु में शीत, ग्रीष्म में ताप, एवं वर्षा में वायु तथा वर्षा द्वारा दारण दुःख प्राप्त होने के नाते प्राणियों को काल (समय) द्वारा भी सुख की प्राप्ति नहीं होती है । इसी प्रकार कुटुम्ब जीवन में किस प्रकार सुख प्राप्त हो सकता है । क्योंकि सर्वप्रथम विवाह के आयोजन

विवाहविस्तरे दुःखं तदगर्भोद्घने पुनः । प्रसवेऽपत्यदोषेश्च दुःखं दुःखादिकर्मभिः ॥१२७
दन्ताक्षिरौपैः पुत्रश्य हा कष्टं कि करोम्यहम् । गावो नष्टाः कृदिर्भग्ना वृषाः क्वापि पनायिताः ॥१२८
अमी प्राघूर्णकाः प्राप्ताः भक्तच्छेदे च मे गृहे । बालापत्या च मे भार्या कः करिष्यति रन्धनम् ॥१२९
प्रदानकाले कन्यायाः कीदृशश्च वरो भवेत् । इति चिन्ताभिभूतानां कुतः सौख्यं कुटुम्बिनाम् ॥१३०

कुटुम्बचिन्ताकुलितस्य पुंसः श्रुतं च शीलं च गुणाश्रम सर्वे ।

अपक्वकूम्भे निहिता इवापः प्रयान्ति देहेन समं विनाशनम् ॥१३१

राज्येऽपि च महुःखं सन्धिविग्रहचिन्तया । पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि कीदृशम् ॥१३२
सजातीयाद्रुधः प्रायः सर्वेषामेव देहिनाम् । एकद्रव्यमिलापित्वाच्छुनामिव परस्परम् ॥१३३
नाप्रधृष्यबलः कश्चिन्नृपः ख्यातोऽस्ति भूतले । निखिलं यस्तिरस्कृत्य सुखं तिष्ठति निर्भयः ॥१३४
आजन्मनः प्रभृति दुःखमयं शरीरं कर्मात्मकं तव मथा कथितं नरेन्द्र ।

दानोपवासनियमैश्च कृतैस्तदेव सर्वोपभोगसुखभागभवतीह॑ पुंसाम् ॥१३५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
संसारदोषाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

पूर्वक उसके सुसम्पन्न करने में अनेक दुःख पश्चात् स्त्री को गर्भ वहन करने एवं पुरुष काल में दारुण दुःख शिशु के उत्पन्न होने पर उसके अनेक रोगों से पीड़ित होने पर दाँत निकलते समय, और उनके आ जाने पर उसके अतिरिक्त अन्य शिशुओं से आक्रान्त होने पर प्राणी उस अपने पुत्र की व्यथा से व्याकुल होकर अचेतन सा हो जाता है । वह समय यही कहता है कि हा, महान् कष्ट उपस्थित है क्या कहूँ, कहा जाऊँ । मेरी गाय न जाने कहाँ चली गई, जो सतत प्रयत्न करने पर भी नहीं मिली, अबकी साल खेती एकदम नष्ट हो गई है, बैल को न जाने कौन चुरा ले गया, ये अतिथिगण मेरे घर आ गये हैं इस समय बना हुआ भोजन कौन बनाये क्योंकि स्त्री की गोदी में छोटा बच्चा है कन्या के विवाह के अवसर पर चिन्ता होने लगती है इसके योग्य वर कहाँ से और कैसे प्राप्त हो सकेगा आदि चिन्ताओं से वह सदैव धिरा रहता है । इतनी ही नहीं कुटुम्ब की चिन्ता से जर्जर होने पर प्राणी अपनी विद्या, शील, एवं गुण समेत जल पूर्ण घडे की भाँति नष्ट हो जाता है राज्य प्राप्त होने पर उसके लिए संधि, विग्रह की चिंता सदैव होती रहती है तथा जिसमें पुत्र से भी भय बना रहे उसमें किस प्रकार का सुख प्राप्त हो सकता है, नहीं कहा जा सकता । क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि एक ही वस्तु अभिलाषा प्रकट कर आपस में लड़ने वाले कुत्तों की भाँति सभी प्राणियों का निधन अपनी जाति के लोगों के ही द्वारा होता है । इस भूतल में इस प्रकार का कोई शान्त राजा है भी नहीं जो अपने समस्त का त्याग कर सुख पूर्वक रह रहा हो । नरेन्द्र ! मैंने तुम्हें शरीर प्राप्ति एवं उसके दुःख-दायक कर्म समूह की जो जन्म से आरम्भ की मरण पर्यन्त दुःख प्रदान करता है, व्याख्या करके बता दिया किन्तु दान, उपवास एवं नियम पालन करने से वह समस्त के उपभोग पूर्वक सुख प्रदान करता है । १२६-१३५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्बाद में संसारदोषवर्णी नामक चौथा अध्याया समाप्त ।४।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

पापभेदाख्यानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अधोधः पतनं पुंसामधः कर्म प्रकीर्तितम् । नरकार्णवधोरेषु यातना पापमुच्यते ॥१
 अर्धमधेत्वा दिज्ञेयाश्चित्तवृत्तिप्रभेदतः । स्थूलाः सूक्ष्माः सुसूक्ष्माश्च कोटिभेदैरनेकधा ॥२
 तत्र ये पापनिचयाः स्थूला नरकहेतवः । ते समासेन कथन्ते मनोवाक्कायसाधनाः ॥३
 परस्त्रीष्वथ सङ्कल्पश्चेत्सानिष्टचिन्तनम् । अकार्यभिनवेशश्च चतुर्धा कर्म नानसम् ॥४
 अनिबद्धप्रलापित्वसत्यं चाप्रियं च यत् । परापवादिपैषुन्यं चतुर्धा कर्म वाचिकम् ॥५
 अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्या कामस्य सेवनम् । परस्वानामुपादानं चतुर्द्वार्द्वा कर्म कायिकम् ॥६
 इत्येतद्वादशविधं कर्म प्रोक्तं ससाधनम् । तेषां भेदं पुनर्वर्चिम् येषां फलमनन्तकम् ॥७
 ये द्विषत्ति महादेव^१ संतारर्जवतारणम् । समस्तपातकोपेतात्ते यन्ति नरकाग्निषु ॥८
 ब्रह्माण्डश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । महापातकिनश्चैते तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥९
 क्रोधादद्वेषाद्ब्रह्माल्लोभाद्ब्राह्मणं विशसन्ति ये । प्राणांतिको महातोषो ब्रह्माणास्ते प्रकीर्तिताः ॥१०

अध्याय ५

पापभेद के आख्यान का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—पुरुषों के अधः पतन होते में उसके उसी प्रकार से नीच कर्म कारण होते हैं, जिसके द्वारा वह भीषण नरकों में पहुँच कर यातनाएँ भोगता है। उसमें चित्त वृत्ति के भेद से अर्धमधे के भी भेद होते हैं इसीलिए स्थूल, सूक्ष्म एवं सूक्ष्माति सूक्ष्म के भेद से उसमें कोटि भेद हैं किन्तु उसमें जो स्थूल पाप कर्म हैं जिसे नरक की घोर प्राप्ति होती है उन्हें मैं बता रहा हूँ। वे कर्म मन, वाणी एवं शरीर द्वारा किये जाते हैं—पर स्त्री की इच्छा, उसके साथ शयन करने का संकल्प निन्दित कार्यों के विचार रूप मानसिक कर्म चार प्रकार के होते हैं। क्रमहीन प्रलाप (असंगत प्रलाप) असत्य, अप्रिय एवं दूसरे की चुगुली करना रूप चार कर्म वाचिक और अभक्ष्य भक्षण, हिंसा, मिथ्या काम सेवन एवं दूसरे के धन ले लेना रूप चार कर्म कायिक (शरीर द्वारा) होते हैं। इस प्रकार मैंने बारह भाँति के कर्म तथा उसके साधन भी बता दिये थे किन्तु पुनः उनके भेदों को बता रहा हूँ, जिनका अनन्त फल कहे गये हैं। संसार सागर के उद्धारक महादेव जी से जो द्वेष करते हैं वे समस्त पापों से युक्त होकर नरक की अग्नि में गिरते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन करने तथा इनके संसर्ग में रहने वाले पंचम महापातकी बताये गये हैं। १-१। क्रोध, द्वेष, भय एवं लोभ से वशीभूत होकर जो ब्राह्मण पर शासन कर उनकी हत्या करते

१. सदा विष्णुम् ।

ब्राह्मणं च सप्ताहूय याचमानमकिञ्चनम् । पश्चान्नास्तीति तं ब्रूयात्स चैव ब्रह्महा स्मृतः ॥११
 यस्तु विद्याभिमानेन नित्यं जयति वै द्विजान् । समासीनः सभामध्ये ब्रह्महा सोऽपि कीर्तिः ॥१२
 मिथ्यागुणैः स्वमात्मानं नयत्युल्कर्षणं बलात् । गुरुणां च विशद्वो यः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ॥१३
 क्षुत्तद्संतप्तदेहनां द्विजानां भोक्तुमिञ्चताम् । समाचरति यो विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मधातकम् ॥१४
 पिशुनः सर्वलोकानां छिद्रान्वेषणतत्परः । उद्वेगजननः क्रूरः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ॥१५
 गवां वृष्णाभिनूतानां जलार्थमुपसर्पताम् । समाचरति यो विघ्नं स चैव ब्रह्महा स्मृतः ॥१६
 परदोषमभिज्ञाय नृपर्कर्णे करोति यः । पापीयान्विशुनः क्षुद्रः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ॥१७
 देवद्विजगवां भूमिं दूर्वभुक्ता हरेतु यः । प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मधातकम् ॥१८
 द्विजवित्तापहरणे न्यायतः समुपार्जिते । ब्रह्महत्या समं ज्ञेयं^१ पात्कं नात्र संशयः ॥१९
 अग्निहोत्रपरित्यागो यस्तु याज्ञिककर्मणाम् । मातापितृपरित्यागः कूटसाक्षयं शुहद्वधः ॥२०
 गवां मार्तो वने चामिनं पुरे ग्रामे च दीपयेत् । इति पापानि घोराणि सुरापानसमानि तु ॥२१
 हीनस्वहरणे चापि नरस्त्रीगजवाजिनाम् । गोभूरजतरत्नानामौषधीनां रजस्य च ॥२२
 चन्दनागुरुरकर्पूरकस्तूरीखण्डवासत्ताम्^२ । हस्ते न्यस्यापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥२३
 कन्यानां वरयोग्यनामदानं सदृशे वरे । पुत्रमित्रकलेषु गमनं भगिनीषु च ॥२४
 कुमारीसाहसं घोरमत्यजस्त्रीनिषेवणम् । अवर्णायाश्र गमनं गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥२५

हैं उनको ब्रह्मधन कहा गया है । ब्राह्मण को बुलाकर जो किसी छोटी सी वस्तु की याचना कर रहा हो, पीछे नहीं है, कह देने वाले को ब्रह्म हत्यारा कहा गया है । जो अपनी विद्या के अभिमान से सभा में उदासीन होकर ब्राह्मणों को अपमानित करता है, उसे भी ब्रह्महा ही कहा गया है । क्षुधा प्यास रो व्याकुल ब्राह्मण को जो भोजन की इच्छा प्रकट कर रहा हो, मना करता है या अन्य कोई विघ्न उपस्थित करता है, वह भी ब्रह्मधाती है । सभी लोगों की चुगुली सब में दोष ही ढूँढना, उद्वेग दायक, क्रूर कर्मी, अत्यन्त प्यास से व्याकुल गाय से, जो पानी पीने के लिए जा रही हो, न जाने देने वाले दूसरे के दोषों (अपराधों) को जानकर राजा से कहने, पापकर्मा, नीच स्वभाव, निन्दा करने वाला । देव, ब्राह्मण और गायों के लिए दी हुई भूमि के अपहरण करने वाला जो थोड़े समय में नष्ट भी हो जाने के योग्य हो, ब्राह्मण धन के अपहरण करने वाला, जिसे उस ब्राह्मण ने न्याय पूर्वक उपर्जित किया है, ब्रह्मधाती है इसमें संशय नहीं । अग्निहोत्र, याज्ञिक कर्म, माता, पिता के त्याग, न्यायालय में कूटसाक्षी (गवाही), मित्रवध, गौओं के मार्ग वन, नगर या ग्राम में अग्निदाह करने आदि ये सभी पाप सुरापान के समान हैं । धन, मनुष्य, स्त्री, गज, घोड़े, गाय, पृथ्वी, चाँदी, रत्न, औषध, चंदन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, वस्त्र एवं धरोहर के अपहरण करना सुवर्ण चोरी के समान है । विवाह योग्य कन्या उसके अनुरूप वर को प्रदान न करने, पुत्रवध, मित्रपत्नी, भगिनी के साथ गमन, कुमारियों के साथ घोर दुस्साहस, शूद्र स्त्री भोग, जातिच्युत स्त्री के साथ गमन करने आदि गुरुतुल्य (गुरुपत्नी गमन) के समान हैं । १०-२५ । इस प्रकार मैंने महापातक तथा

१. पापं हरणे । २. चन्दनागुरुरकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम् ।

महापातकतुल्यानि चापान्युक्तानि यानि तु । तानि पातकसंज्ञानि तद्वदाम्युपपातकम् ॥२६
 द्विजार्थं च प्रतिज्ञाय न प्रयच्छति यः पुनः । तत्मान्नरप्ते विघ्नतुल्यं तदुपपातकम् ॥२७
 द्विजद्रव्यापहरणं मर्यादाया व्यतिक्रमः । अतिकोपश्च मानश्च दाम्भिकत्वं कृतघ्नता ॥२८
 अत्यन्तविषयासक्तिः कार्पण्यं श्रेष्ठमत्सरः । परदरापहरणं साधुकन्याविदूषणम् ॥२९
 परिवित्तः परीवेत्ता यथा च परिविद्यते । तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥३०
 पुत्रमित्रकलत्राणामभावे स्वास्मिनस्तथा : शिष्टानां चैव संन्यासः सहजानां तपस्त्विनाम् ॥३१
 भङ्गश्च धर्मकृत्यानां भाहयानां विनाशनम् । पोडामाश्रमसंस्थानान्नचरेत्त्वलिपिकामपि ॥३२
 स्वभृत्यपरिवर्गस्य पशुधान्यधनस्य च । कुप्यधान्यपशुस्तेयमयाच्यानां च याचनम् ॥३३
 गवां क्षत्रियवेश्यानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः । यज्ञारामतडागतानं दारापत्यस्य विक्रयः ॥
 तीर्थयात्रोपदासानां व्रतायतनकर्मणाम् ॥३४
 स्त्रीधनान्युपजीवन्ति स्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः । अरक्षणं च नारीणां मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥३५
 क्रृणानामप्रदानं च धान्यवृद्धयुपजीविनाम् । निन्दिताच्च धनादानमपण्यानां च विक्रयः ॥३६
 विषमारणमन्त्राणां प्रदोगे मूलकर्मणान् । उच्चाटनाविचारश्च गरविद्वेषणक्रिया ॥३७
 जिह्वासमुपभोगार्थं यस्यारम्भः स्वकर्मसु । मूलयेनाध्यापयेद्यश्च मूलयेनाधीयते च ये ॥३८
 व्रात्यता व्रतसन्त्यागः सर्वाहारनिषेवणम् । असद्वाराभिगमनं शुष्कतकविलम्बनम् ॥३९
 देवाग्निसाधुसाध्वीनां निन्दा गोब्राह्मणस्य च । प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राजां मण्डलिकामपि ॥

उसके समान पातकों को बता कर अब उपपातक बता रहा हूँ, नरपते ! ब्राह्मण को वचन देकर उसकी पूर्ति न करना ! वह उपपातक कहा गया है । द्विज के धनापहरण मर्यादा का उल्लंघन अत्यन्त क्रोध, मान, दम्भ, कृतघ्नता, अत्यन्त स्त्री भोग, कृपणता, बड़ों से बैर परस्त्री का हरण, कन्या दूषित करना, परिवित्त^१ परिवेत्ता^२ को कन्यादान तथा उनके यज्ञ कराने, मित्र, पुत्र की स्त्रियों के पति के न रहने पर उनके धर्म भंग करने, सहज तपस्वी, शिष्यों के सन्यास में धार्मिक कार्य एवं उसके सहायक धर्मों के विनाश करने, आश्रम वासियों को स्वत्य भी पीड़ित करने, अपने सेवक या उनके परिवार के पशु, धन-धान्य के अपहरण, अयाच्य से याचन, गौ, क्षत्रिय, वेश्या, स्त्री, शूद्रों विशेषकर यज्ञ, वगीचे, सरोवर, स्त्री, पुत्र के विक्रय करने, तीर्थयात्री, जो व्रतों को सनियम पालन करता है तथा स्त्रीधन से जीविका चलाने वाले, स्त्री द्वारा पराजित, स्त्रियों की रक्षा न करने, सुरापान करने वाली स्त्री के गमन, क्रृणों को न देने, धान्य वृद्धि से (विशार देकर) जीविका चलाने, निन्दित से धन ग्रहण करने, गृह की वस्तुओं के विक्रय, विष, मारण मंत्र, मूल कर्म के प्रयोग, उच्चाटन, निन्दित विचार करने, विष, एवं विद्वेष कराने, अपनी ही जिह्वा के सुख-साधनार्थ कर्म करने, मूल्य लेकर अध्ययन एवं अध्यापन करने । व्रात्यता, व्रतों के त्याग, समस्त के आहार करने, निन्दिता स्त्री गमन, शुष्क तर्क, देव, अग्नि, साधु, पतिद्रता स्त्री, गौ, ब्राह्मण तथा

१. बड़ी कन्या के रहते छोटी कन्या का विवाहित होना ।

२. ज्येष्ठ भ्राता के अविवाहित रहने पर छोटे का विवाहित होना ।

दुःशीला नास्तिकाः पापाः सर्दशून्यस्य वादिनः

॥४०

पर्वकाले दिवा चैव वियोनौ पशुयोनिषु ; रजस्यलानां योनौ च मैथुनं च समाचरेत् ॥४१
 स्त्रीपुत्रमित्रसम्मीते ग्रासान्नच्छेदकाश्र ये । जनस्याप्रियवक्तारो धूर्ता समयभेदिनः ॥४२
 भेता तडागच्छगाणां संक्रमाणां रथस्य च । एकपंक्तिस्थितानां च पाकभेदं करेति यः ॥४३
 इत्येतत्स्ते नरा पापैरैरुपातकिनः स्मृताः । युक्तास्तदूनकैः क्षुद्रैः पापै पापतराः स्मृताः ॥४४
 ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् । अन्तरं यान्ति कार्येषु ते नस्त नारकाः स्मृताः ॥४५
 परश्रियाः^१ ये तप्यन्ते ये परद्रव्यसूचकाः । परव्यापारनिरताः परस्त्रीनरदूषकाः ॥४६
 द्विजाय दुःखं यः कुर्यात्प्रकारैर्बहुभिः^२ सदा । सेवते यो द्विजः शूद्रां सुरां जिग्रहितैः कामतः ॥४७
 ये पानाभिरताः कूरा ये हिंसाप्रियाः^३ नराः । विज्ञार्थैः ये च कुर्वति दानयज्ञादिकां क्रियाम् ॥४८
 गोष्ठाग्निजलरथ्यामु तरुच्छायामठेषु च । त्यजन्तमेध्यं पुलृषा आरामायतनेषु च ॥४९
 मद्यपानरता नित्यं गानवाद्यरता नराः । केलीकलाभुजङ्गाश्र रन्धान्वेषणतत्पराः ॥५०
 वंशेषु काशकाष्ठैश्च शुभैः शाङ्कुभिरेव वा । ये मार्गान्त्समुपधनन्ति परस्त्रीराहरन्ति च ॥५१
 कूटशासनहर्तारः कूटकर्मक्रियारताः । कूटपुद्धाश्र शस्त्रेण कूटसंव्यवहारिणः ॥५२
 धनुषां शत्यशस्त्राणां यः कर्ता यश्च विक्रयी । तिर्योऽतीव भृत्येषु पशूनां दमकश्च यः ॥५३
 मिथ्या प्रवदतो वाक्यमाकर्णयति यः शनैः । स्वामिमित्रगुरुद्वोही मायावी चपलः शठः ॥५४

मण्डलेश्वर राजा की प्रत्यक्ष या परोक्ष निन्दा करने, दुःशील, नास्तिक, पापी, सब स्थान शून्य ही कहने वाले पर्व के समय, दिन, में वियोनि या पशु योनि तथा रजस्वला की योनि में मैथुन करने, स्त्री, पुत्र, मित्र के अन्नग्रास के नष्ट करने या न देने, जनों में अप्रिय वक्ता, धूर्ता, समय-समय पर भेद करने, तालाब, चलते हुए रथ के चक्के को तोड़ने, एक पंक्ति में स्थित वालों में पंक्ति भेद करने आदि ये सभी कर्म उपपातक कहे गये हैं और वे पुरुष उपपातकी । उससे कुछ न्यून छोटे-छोटे पाप करने वाले, गौ, ब्राह्मण, कन्या, स्वामी, मित्र और तपस्वियों के कार्यों में बाधक होने वाले प्राणी नारकी कहे गये हैं । २६-४५ दूसरे की लक्ष्मी देख कर जलने वाले, दूसरे के धन की (इधर-उधर) सूचना देने अन्य जाति के धर्म-कर्म अपनाने वाले, परस्त्री को दूषित करने वाले तथा जो अनेक प्रकार से ब्राह्मण को दुःखी करते हैं । मद्यपात करने वाले, शूद्र स्त्री के रमण, कूर, हिंसाप्रिय, धन के लोभ से दान एवं यज्ञादि क्रियाओं को गुसम्पन्न करने वाले, गोशाला अथवा गौओं के उठने बैठने के स्थान, अग्नि, जल, डालियों, वृक्ष की छाया, तथा मठ, उपवन, मन्दिरों को अपवित्र करने वाले नित्य मद्यपान करके गायन वाद्य करते रहने वाले, बीड़ा-कला के नाशक, छिद्रान्वेषी बाँस, काश, काष्ठ या खुंटा गाड़कर मार्ग को रोक देने वाले, परस्त्री के अपहरण करने वाले, कूटशासन के नाशक, कूर कर्म की क्रिया करते रहने वाले, कूट शुद्ध, शास्त्र द्वारा कूर व्यवहार करने वाले, धनुष, शत्य, तथा शास्त्रों के बनाने एवं विक्रय करने वाले और सेवकों पर निर्दय व्यवहार पशुओं के दमन असत्य वादियों की बातें धीरे-धीरे सुनने वाले, स्वामी, मित्र एवं गुरु से द्रोह करने वाले, मायावी, चपल, शठ, स्त्री पुत्र मित्र, बाल वृद्ध, आतुर,

१. परिस्त्रिया ये हृष्यन्ते । २. दद्यात् । ३. चाद्याति । ४. हिंसापरा । ५. पंक्त्यर्थम् ।

ये भार्याद्वित्रमित्राणि बालवृद्धकृशादुरान् । भृत्यन्तिथिबन्धूंश्च प्रबाधन्ते बुभुक्षया ॥५५
 यः स्वयं मिष्ठमश्नाति विप्रायान्यत्प्रयच्छति । वृथापाकः स विजेयो ऋह्यवादिषु गर्हितः ॥५६
 नियमान्स्वयमादाय^१ ये त्यजन्त्यजितेद्वियः । प्रवज्यावासिनो ये च रहस्यानां च भेदकाः ॥५७
 ताडणन्ति च वेगाद्ये शरण्निति च मुहुर्मुहुः । दुर्बलांश्च न पुष्णन्ति पुनस्तान्वाहयन्ति च ॥५८
 पीडयन्त्यतिभारेण सक्षतान्वाहयन्ति च । सार्दुयामादुपरितः संयुक्तेषु च भुञ्जते ॥५९
 ये भग्नक्षतरोगात्मन्स्वगोरुपान्बुभुक्षया । न पालयन्ति यत्नेन ते गोद्धार नारकाः नराः ॥६०
 वृषाणां वृषणान्येव पाचिष्ठा गालयन्ति ये । वाहयन्ति च गां वध्यां ते नहानारकाः स्मृताः ॥६१
 आश्रमं समनुप्राप्तं क्षुत्तृष्णाश्रमपीडितम् । येऽतिथि नाभिमन्यन्ते ते वै नियमामिनः ॥६२
 अनाथं विकरं दीनं बालं वृद्धं कृशतुररम् । नानुकम्पन्ति ये शूदास्ते यान्ति निरयार्णवम् ॥६३
 अजाविको माहिषिकः सामुद्रो^२ वृषलीपतिः । शूद्रविद्वक्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्यादिद्वजाधमः ॥६४
 शिल्पिनः कारुका वैद्या हेमकारा नटा द्विजाः । कृतकौषेय संयुक्तास्तथान्ये नारकाः स्मृताः ॥६५
 यश्चोदितमतिक्रम्य स्वेच्छया वा हरेत्करम् । नरके तु स पच्येत यश्च दण्डरुचिर्वेत ॥६६
 उत्कोचकैरधिकृतैस्तत्करैश्च प्रपीडयते । यस्य राज्ञः प्रजा रुष्टा पच्यते नरकेषु सः ॥६७
 ये द्विजाः प्रतिगृह्णन्ति नृपत्यान्याएवर्तनः । प्रयान्ति^३ तेऽपि वोराणि नरकाणि न संशयः ॥६८

सेवक, अतिथि, एवं बन्धुओं को बुक्षुक्षित करने वाले, मधुर पदार्थ ब्राह्मण को न देकर स्वयं खाने वाले, नियमपालन पूर्वक पुनः अजितेन्द्रिय होने, भन्यासी होकर एक स्थान पर नियमित रूप से रहने वाले, रहस्यों के भेदक, वेगपूर्वक ताङ्न करने बार-बार शाप देने, दुर्बलों (असहायों) के पालन न करने पुनः उन्हें अत्यन्त भार से पीड़ित तथा अंगदात होने पर काम से मुक्त न करने, डेढ़ प्रहर के उपरांत मिलकर भोजन करने वाले एवं भग्न, क्षत, रोगी, तथा गौओं को समय पर भोजन न देने वाले ये सभी प्राणी गो हत्यारे एवं नरकीय कहे गये हैं । ४६-६०। बैलों के अण्डकोष को निकालने या मदन द्वारा गलाने वाले और नानः छेदकर गायों पर भार लादने वाले प्राणी महा नारकीय कहे गये हैं । क्षुधा तृष्णा से पीड़ित किसी अतिथि के अपने आथम में आने पर उसकी सेवा समान न करने वाले नरकगामी होते हैं । अनाथ, विकल, दीन, बाल, वृद्ध, कृश, आतुर के ऊपर कृपा नहीं करने वाले वे मूढ़ नरक गामी होते हैं । भेंड, बकरी, भैसे रखने वाले, समुद्रयात्री, वृषली, (शूद्रस्त्री) के पति होने, शूद्र, वैश्य एवं धनियों की वृत्ति अपनाने वाले ब्राह्मण अधम एवं नारकी होते हैं । शिल्पी (कारीगरी), कारू (राजगीरी) वैद्य एवं सोनार जाति तथा नट के कार्य करने वाले एवं उदर पूर्ति करने वाले ब्राह्मण नारकी कहे गये हैं । नियमानुसार रीति के त्याग पूर्वक यथेच्छ कर ग्रहण करने, तथा दंड की रुचि रखने वाले प्राणी नरक में पकते रहते हैं तथा जीवित समय में धूस खाके अधिकारियों और तस्कर (चोर) से सदैव पीड़ित रहते हैं । जिस राजा की प्रजा सदैव उससे रुष्ट रहती है वह राजा तथा अन्यायी राजा के दान ग्रहण करने वाले ब्राह्मण घोर नरक की यातनाओं के उपभोग करते हैं इसमें सदेह नहीं । ६१-६८। पर स्त्री के चुराने वाले प्राणी के समान पाप उस राजा का

१. व्रतम् । २. सामिद्धः । ३. व्रजन्ति: ।

पारदारिकचौराणां यत्पापं पार्थिवस्य तत् । भवेदरक्षतस्तस्माद्बोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥६९
 अचौरं चौरवत्पयेच्चोरं वाऽचौररूपवत् । अविचार्यं नृपस्तस्माद्बातयन्नरकं वज्रेत् ॥७०
 धृततैलान्नपानानि मधुमांससुरासवम् । गुडेक्षुकारशाकानि दधिमूलफलानि च ॥७१
 तृणं काष्ठं पुष्पपत्रमौषधं कांस्यभाजनम् । उपानच्छत्रशकटमासनं शयनान्बरम् ॥७२
 ताम्रं सीसं त्रपुं काचं शंखाद्यं च जलोद्धवम् । वार्षीं वा वैणवाद्यं वा गृहेषूपस्कराणि च ॥७३
 ऊर्णकार्पासकौशेयभज्ञपृद्धवानि च । स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये च लोभाद्वरन्ति च ॥७४
 एवमादैनि चान्यानि द्रव्याणि विदिधानि च । नरकाणि धुदं यान्ति नरा वा नात्र संशयः ॥७५
 यदा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम् । अपहृत्य नरो यान्ति नरकं नात्र संशयः ॥७६
 एवमाद्यैर्नरः पापैरुक्तान्तेः समनन्तरम् । शरीरं यातनार्थाय पूर्वकारमवान्तुयात् ॥७७
 यमलोकं वज्रेतेन शरीरेण यमाज्ञया । यमदूतैर्महाधोरैर्नीर्यमानः सुदुःखितः ॥७८
 तिर्यङ्गमानुषदेहानामधर्मनिरतात्मनाम् । धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुधोरैर्विविधैर्दैः ॥७९
 विनयाचारयुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम् । प्रायश्चित्तैर्गुहः शास्ता न च तैर्दृश्यते यमः ॥८०
 पारदारिकचौराणामन्यायव्यहारिणाम् । नृृतिः शासकस्तेषां प्रच्छन्नानां च धर्मराट् ॥८१
 तस्मात्कृत्यस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाप्तरेत् । नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥८२
 यः करोति स्वयं कर्म कारयेद्वापि सोदयेत् । कायेन मनसा वाचा तस्य चाधोगतिः फलम् ॥८३

होता है जो प्रजापालन नहीं करता है, इसीलिए उसका प्रतिग्रह (दान) ग्रहण करना अत्यन्त निषिद्ध है । जो राजा ईमानदार को चोर और चोर को ईमानदार अविचार पूर्वक बनाता तथा दण्डित करता है, वह नरकगामी होता है । धी तेले से बने अन्न के भोजन, मधुमांस मद्य और आसव के पान, गुड़, ईख, खार वस्तु, शाक, दही, मूलफल, तृण, काष्ठ, दुग्ध, पत्र, औपध, कांसपात्र, उपानह (जूते), छत्र, गाढ़ी में शयन, ताँबा, शीशा, जस्ता, काँच, शांख आदि जलीय वस्तु, काष्ठ या बाँस के वात्य, घर वस्तुओं, ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्रों, जो मोटे या पतले हो, हरण करने वाले इसी प्रकार और अन्य वस्तुओं के अपहरण करने वाले प्राणी निश्चित नरक गमन करते हैं । नमक भी राई के समान दूसरे के पदार्थ चुराने वाले प्राणी निःसन्देह नरक गामी होते हैं । इसी प्रकार अन्य पाप करने वाले प्राणी इस देह के त्याग करने पर पूर्व शरीर की भाँति दूसरी शरीर (नरक यातनार्थ) प्राप्त करते हैं । उसी शरीर से यमलोक की यात्रा करने के उपरांत यमराज की आज्ञा से उनके दूतगण उस प्राणी को घोर दंड देते हैं । मनुष्य तथा पक्षी आदि शरीरधारी सभी प्राणियों के लिए जो अधर्म करने में ही सदैव लगे रहते हैं, धर्मराज अनेक भाँति के घोर दंड प्रदान द्वारा उनके शासक कहे गये हैं । ६९-७९। विनय आचार पूर्वक नियम पालन करने वाले प्राणी के लिए जो प्रमाद वश कहीं अनीति व्यवहार किया है, उसके गुरु प्रायश्चित्त का रूप दंड प्रदान करने के नाते शासक कहे गये हैं, वैसा करने पर उन्हें यमराज का भय नहीं रहता है । परस्त्री के अपहरण एवं अन्याय से व्यवहार करने वाले प्राणियों के शासक राजा होता है, क्योंकि वही उसका प्रच्छन्न रूप से धर्मराज है । इसलिए किये हुए पापों के प्रायश्चित्त अवश्य करने चाहिए क्योंकि विना उसके भोग किये सैकड़ों कोटि कल्प में भी मुक्त नहीं होता है । जो मनवाणी एवं शरीर से पापाचारण करता या अनुसोदन करता है उसकी

इति संक्षेपतः श्रोत्काः पापभेदाः ससाधनाः । कथ्यन्ते गतयश्चित्रा नराणां चापकर्मणास् ॥८४

दाक्कायचित्तजनितैर्बहुभेदभित्तैः कृत्यैः शुभाशुभफलोदयहेतुभूतैः ।

भास्वत्सुरेशमुवनं नरकाननेकान्सन्प्राप्नुवन्ति मनुजा मनुजेन्द्रचन्द्र ॥८५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि शापभेदाल्यानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

शुभाशुभफलनिर्देशवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथेभिः पातकैर्याति यमलोकं चतुर्विधैः । सत्रासजननं घोरं विवशाः सर्वदेहिनः^१ ॥१
गर्भस्यैर्जयमानैश्च बालैत्तरणमध्यमैः । पुंस्त्री नपुंसकैर्वृद्धैर्जातिव्यं सर्वजन्तुभिः ॥२
शुभाशुभफलं तत्र देहिनां प्रविचार्यते । चित्रगुप्तादिभिः सर्व्यर्मध्यस्थैः सर्वदर्शिभिः ॥३
न तेऽत्र प्राणिनः सन्ति ये यान्ति यमक्षयम्^२ ! अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विधारितम् ॥४
तत्र ये शुभकर्मणः सौम्यचित्ता दयान्विताः । ते नरा यांति सौम्येन पथा यमनिकेतनम् ॥५
यः प्रदद्यादिहृजेन्द्राणामुपानत्काष्ठपादुकास् । स वराश्वेन महता सुखं याति यमालयम् ॥६

अधोगति अवश्य होती है । इस प्रकार मैंने तुम्हें पाँप भेद और उसके साधन बता दिया । अब पापी प्राणियों की गति का वर्णन करूँगा । (पश्चात् युधिष्ठिर ने कहा) मनुजेन्द्रचन्द्र ! शुभाशुभ फल प्रदायक अपने मन वाणी एवं शरीर द्वारा किये गये जिन कर्मों द्वारा, जो अनेक भेदों से युक्त हैं, प्रदीप्त इन्द्र भवन और घोर नरकों की प्राप्ति मनुष्यों की होती है । ८०-८५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में पापभेद वर्णन नामक पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

शुभाशुभ फलों का निर्देश-वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—सभी प्राणी चार प्रकार के पापाचरण द्वारा विवश होकर यमलोक के उन अत्यन्त दुःख दायक नरकों की प्राप्ति करता है । पुरुष, स्त्री, नपुंसक और वृद्ध प्राणी, गर्भ में उत्पन्न होने पर बाल और मध्य युवावस्था में किये गये कर्मों द्वारा उसके शुभाशुभ फलों के विचार वहाँ के मध्यस्थ चित्रगुप्तादि लोग किया करते हैं, जो सम्य एवं सर्वदर्शी कहे गये हैं । यहाँ ऐसे प्राणी नहीं उत्पन्न हैं जो यमलोक की यात्रा नहीं करते हैं, क्योंकि किये हुए कर्मों के फलोपभोग अवश्य करने पड़ते हैं । जो प्राणी शुभ कर्म करते हुए सौम्यचित्त, दयालु हैं वे सौम्य मार्ग द्वारा यमलोक की यात्रा करते हैं । १-५ । जो ब्राह्मणों को उपानह, खडाउँ अर्पित करते हैं वे सुन्दर घोड़े पर बैठकर सुखपूर्वक यमलोक की यात्रा करते हैं । छत्र

१. सर्वजन्तवः । २. यमक्षयं यमगृहमित्यर्थः ।

छत्रदानेन गच्छन्ति यथा छत्रेण देहिनः । दिव्यवस्त्रपरीधाना यान्ति वस्त्रप्रदायिनः ॥७
 शिविकाश्वप्रदानेन तत्स्तेन सुखं द्रजेत् । शश्यासनप्रदानेन सुखं यान्ति यमाश्रयम् ॥८
 आरामकर्ता छायासु शीतलासु सुखं द्रजेत् । यान्ति पुष्पकयानेन पुष्पारामप्रदायिनः ॥९
 देवायतनकर्ता च यत्तीनामाश्रमस्य च । अनाथमण्डपानां च क्रीडन्याति गृहोत्तमैः ॥१०
 देवारिनगुरुविप्राणां मातापित्रोश्च पूजकाः । पूज्यमाना नरा यान्ति कामिकेन पथा सुखम् ॥११
 द्योतयन्तो दिशः सर्वा यान्ति दीप्रदायिनः । प्रतिश्यप्रदानेन सुखं यान्ति गृहं स्वयम् ॥१२
 सर्वकामसमृद्धेन पथा गच्छन्ति गोप्रदाः । ये न पापानि कुर्वन्ति ते तृप्ता यान्ति ज्ञन्यथा ॥१३
 'आर्तोष्ठप्रदातारः सुखं यान्ति निराकुलाः । विश्राम्यमाणा गच्छन्ति गुरुशुश्रूषणे रताः ॥१४
 पादशैचप्रदानेन शीतलेन पथा द्रजेत् । पादाभ्यङ्कं च यः कुर्यादिश्वपृष्ठे न स द्रजेत् ॥१५
 हेमरत्नप्रदानेन याति दुर्गाणि निस्तरन् । यानवाहनदानेन नरयानेन गच्छति ॥१६
 सर्वकामसमृद्धात्मा भूमिदानेन गच्छति । अनप्राप्नप्रदानेन पिबन्हादन्श्च गच्छति ॥१७
 इत्येवमादिभिर्दानैः सुखं यान्ति यमक्षयम्^१ । स्वर्गेऽपि विपुलान्भोगान्त्राप्नुवान्ति^२ नरोत्तम ॥१८
 सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् । सद्यः प्रीतिकरं दिव्यं बतबुद्धिविवर्द्धनम् ॥१९
 त्रयाणामपि लोकानां जीवितं ह्युदकं^३ स्मृतम् । पवित्रमसृतं दिव्यं शुद्धं सर्वरसायनम् ॥२०
 अन्नं यानं च गोवस्त्रभूशश्याच्छत्रमासनम् । परलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः ॥२१

दान द्वारा छत्रधारी, वस्त्रदान द्वारा दिव्य वस्त्र की प्राप्ति पूर्वक तथा शिविका (पालकी) और अश्व के दान देने से वह सुखपूर्वक वहाँ पहुँचता है । शश्या, आसन के दान, बगीचे लगाने, शीतल छाया प्रदान करने एवं वाटिका प्रदान द्वारा पुष्पक यान से सम्मानपूर्वक वह वहाँ जाता है । देवालय, पतियों के आश्रम, अनाथाश्रम के रचयिता क्रीडापूर्वक और देव, अग्नि, विप्र, माता-पिता की पूजा करने वाले, पूज्य होकर यथेच्छ मार्ग से वहाँ जाते हैं । दीपदान, आश्रयदान प्रदान करने वाले प्राणी सभी दिशाओं को प्रकाशित करते हुए गृह की भाँति सुख पूर्वक जाते हैं । गोदान करने वाले प्राणी समस्त कामनाओं की वस्तुओं से परिपूर्ण मार्ग से जाता है, उसी भाँति जो पापी पाप नहीं किये हैं वे सदैव तृप्त होकर वहाँ जाते हैं । गरीबों को औषध देने वाले निश्चित सुखपूर्वक गुरु की सेवा करने वाले विश्राम करते हुए, चरण प्रक्षालनार्थ जल देने वाले शीतल मार्ग से तथा विप्रचरण में तेल लगाने वाले सुन्दर घोड़े पर बैठकर वहाँ जाते हैं सुवर्ण जल के प्रदाता अत्यन्त सुखी मार्ग से तथा यान वाहन देने वाला मनुष्य यान पर बैठकर जाता है ! भूमिदान करने वाला समस्त कामनाओं से तृप्त अन्न दान देने वाला खाते पीते वहाँ जाता है । नरोत्तम । इस प्रकार दान देने से वह सुखपूर्वक यमलोक की यात्रा के उपरांत स्वर्ग जाकर विपुल सुखों के उपभोग करता है । सभी दानों से थेष्ठ अन्नदान है, क्योंकि उससे उसी समय प्रेम और दिव्य बल बुद्धि की वृद्धि होती है । तीनों लोकों में जल ही जीवन कहा गया है, जो पवित्र, दिव्य, अमृत, शुद्ध एवं सम्पूर्ण रसों का गृह है । भोजन, पान, गौ, वस्त्र, भूमि, शश्या, छाता, और आसन यही आठ प्रकार के

१. अन्नौषधप्रदातारः । २. यमालयम् । ३. प्राप्नोति विविधान्नरः । ४. कथितं पयः ।

अन्नदानं विशेषेण धर्मराजपुरे नराः । यस्माद्यान्ति सुखेनैव तस्माद्वर्मं समाचरेत्^१ ॥२२
 ये तुनः कूरकर्मणः पापा दानविवर्जिताः । ते घोरेण पथर यान्ति दक्षिणेन यमालयम् ॥२३
 षडशीतिसहस्राणि योजनानामतीत्य यत् । वैवस्वतपुरं ज्ञेयं नानारूपव्यवस्थितम् ॥२४
 समीपस्थिमिवाभाति नराणा शुभकर्मणाम्^२ । पापानामतिद्वारस्थं पथा रौद्रेण गच्छताम् ॥२५
 तीव्रकण्टकयुक्तेन शर्करनिचितेन च । क्षुरधारानिभैस्तीकैः पाषाणैर्निचितेन च ॥२६
 क्वचिच्चित्पञ्चेन महता दुरत्तारैश्च खातकैः । लोहसूचिनिभैर्वैभैः सन्ध्येन पथा क्वचित् ॥२७
 गटप्रपातविष्टम्भैः पर्वतैर्वृक्षसङ्कुलैः । प्रतप्ताङ्गारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखिताः ॥२८
 क्वचिद्विषमगर्तेश्च क्वचिल्लोष्टैः सुपिच्छिलैः । प्रतप्तवालुकाभिश्च तथा तीर्थैश्च शङ्कुभिः ॥२९
 अनेकतापैविततैर्याप्तं वंशवनं क्वचित् । क्वचिद्वायुक्या व्याप्तं कष्टेनैव प्रवेशनम् ॥३०
 क्वचिदुष्णांबुना^३ व्याप्तं क्वचित्कारीषदद्विना । क्वचित्सिंहैर्वैक्व्यप्तिं दंशैः कीटैश्च दाहणैः ॥३१
 क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिच्चाजगरैः पुनः । मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्वणैः ॥३२
 मत्तमातङ्ग्यथैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाणिभिः । पन्द्यानमुलिलखौद्वैश्च तीक्ष्णशुद्धेऽमहावृष्टैः ॥३३
 महाविषाणैर्महिषैरुष्टैर्मस्तैश्च खादकैः । डाकिनीभिश्च^४ रौद्राभिर्विकरात्लैश्च राक्षसैः ॥३४
 व्याधिभिश्च महाघोरैः पीडचमाना वज्रनित च । महाधूलीविमुश्रेण महाचण्डेन वायुनः ॥३५
 महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः । क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन^५ दीर्घमाणा वज्रनित च ॥३६

दान लोक में अत्यन्त प्रशस्त हैं । ६-२१। विशेषकर अन्न द्वारा मनुष्य धर्मराज के नगर सुखपूर्वक जाता है, अतः उस धर्म को अवश्य करना चाहिए। इसी प्रकार जो लोग कूरकर्मा, तथा अनेक पाप करते हैं वे अत्यन्त दारण दक्षिण मार्ग से यम लोक जाते हैं। यहाँ से छियासी योजन की दूरी पार करके प्राणी अनेक भाँति से व्यवस्थित उस यमलोक में जाता है, जो शुभकर्मा प्राणी के लिए अत्यन्त सन्निकट और भीषण मार्ग से जाने वाले पापी के लिए अत्यन्त दूर दिखाई देता है। पापियों के मार्ग में उनके यात्रा के समय कहीं तीखे काँटे, रेत (बालू) की भूमि, कहीं क्षुरा की भाँति तीव्र पत्थरों के टुकड़ों की ढेरी, कहीं पंकपूर्ण वह दुस्तर खाई और कहीं लोहे की सूची (सूई) की भाँति कुशाओं से आच्छन्न रहता है। कहीं पर्वत के गिर जाने से नदी तट के अवरुद्ध मार्ग, कहीं सघन वृक्षों से घिरे, कहीं तप्तांगार पूर्ण उस दुःखदायी मार्ग से चलना पड़ता है। वहाँ विषम गढ़दे, चिकनी भूमि, जलती बालुकायें, तीखे, शंकु (खूटे), अनेक भाँति से संतप्त फरने वाले उस व्याप्त बाँस के जंगलों, कहीं अत्यन्त जलती हुई बालुओं से जाया जाता है, जिसमें प्रवेश करना अत्यन्त कष्टदायक होता है। कहीं संतप्त जल में प्रवेश, कहीं करिष अग्नि द्वारा संताप, कहीं सिंह, भेड़िया, उपदंश (दसा) और भीषण कीट व्याप्त रह मार्ग अवरुद्ध किये रहते हैं। कहीं भीषण जलौका, अजगर, रौद्र रूप भक्षिकायें, विषैले सर्प, और कहीं मतवाले उन बलशाली गजराजों और अपनी तीक्ष्ण सींगों द्वारा भूमि खोदते हुए बैलों से मार्ग स्के रहते हैं। उसी प्रकार कहीं कहीं भीषण सींग वाले भैस ऊँट जो प्राणियों के भक्षक हैं, भयंकर डाकिनी, विकराल राक्षस, तथा धोर व्याधियों से पीडित होते हुए महाधूली से पूर्ण उस प्रचण्ड वायु द्वारा प्रचण्ड पाषाण वर्षा से उपहत निराश्रय, तथा कोई बिजली

१. सूखं चरेत् । २. गुरुकर्मणाम् । ३. लोहसूची^६

४. दुष्टांबुना । ५. शाकिनीभिः ।

महता बाणवर्षेण विद्यमानाश्च सर्वशः । पतद्वूर्वज्जसंघातैश्लकापातैश्च दारणः ॥३७

प्रतप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमाना व्रजन्ति च । तप्तेन^१ पांशुवर्षेण पूर्यमाणा रुदन्ति च ॥३८

महाग्रेघरवैर्घोरैर्वित्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः । निशितायुधवर्षेण चूर्यमाणा नरैर्वृताः ॥

महाक्षाराम्बुधाराभिः सित्यमाना द्रवन्ति च ॥३९

महाशीतेन मरुता तोक्षेन परव्येण च । समन्तात्पीडचमानास्ते शुष्यन्ते सङ्कुचन्ति च ॥४०

इत्थं भार्गेण रौद्रेण पान्धीर्विरहितेन च । निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समन्ततः ॥४१

अविश्रामेण महता निर्गतापाश्रयेण च । तमोर्ह्येण कष्टेन सर्वदुःखाश्रयेण च ॥४२

नीयन्ते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः^२ । यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्भिलात् ॥४३

एकाकिनः पराधीना भित्रदन्धुविवर्जितः । शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदन्तश्च महुर्मुहुः ॥४४

प्रेतमूता विवक्षाश्च शुष्ककण्ठोष्टतालुकाः । कृशाङ्गा भौतभीताश्च दह्यमानाः क्षुधाग्निनाः ॥४५

बद्धा शृङ्खलया केचिदुत्तानाः पादयोर्नराः । आकृष्यन्ते धृष्यमाणाः^३ यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥४६

पुनश्चाधोमुखाश्चान्ये धृष्टमाणाः सुदुःखिताः । केशपाशमनिबद्धाश्च कृष्यन्ते^४ रज्जुभिर्नराः ॥४७

लत्ताटे चाइकुशैस्तीक्ष्णैर्भिन्नाः कृष्यन्ति देहिनः । उत्ताना इटमानाश्च ऋचिदङ्गारवर्तमना ॥४८

द्वारा अंग विद्यीर्ण होने के दुःख का अनुभव करते हुए जाता है । कहीं पर उस प्राणी के ऊपर महान् बाणों की वर्षा होती है, जिससे उसके अंग प्रत्यंग अनेक भाँति की पीड़ा होने लगती है । कहीं पर दारण एवं उल्का और वंजों के समुदाय से ताड़ित होता है । कहीं पर तप्तांगार के वर्षसि दग्ध होता है । संतप्त बालूकाओं की वर्षा से दग्ध होकर रुदन करते हुए चलते समय उन भीषण महामेघों की गर्जना से बार-बार त्रस्त होता और तीक्ष्ण अस्त्रों की वर्षा से चूर्ण की भाँति होकर आगे बढ़ता है । पश्चात् अत्यन्त खारे जल की धाराओं से सिंचित होकर चलने पर अत्यन्त शीतल, तीक्ष्ण एवं संगविदारक वायु से सम्पूर्ण देह पीड़ित होने पर उसके अंग प्रत्यंग सूख कर संकुचित हो जाते हैं । २२-४०। इस प्रकार उस भयानक गार्ग द्वारा, जहाँ पर कुछ पाथेय भी नहीं मिलता है, निराश्रय दुर्ग को पार करते हुए जो विश्वाम स्थानों से हीन एवं जलाशयों से वच्चित है, उस अंधकारमय मार्ग से जो एकान्त दुःखमय है, उस भूद एवं पाप कर्म प्राणी को भीषण स्वरूप वाले यमदूत गण ले जाते हैं उस समय उन द्वारों की आज्ञाएँ बलात् शिरोधार्य करनी पड़ती है, क्योंकि वह जीव उस स्थान एकाकी, विवेश, भित्र बंधु से परित्यक्त, रहता है ; वहाँ पहुँचकर वह अपने किये हुए कर्मों के शोक से दुःखी होकर बार-बार रुदन करता है । उस समय वह प्रेत रूप और वस्त्र हीन रहता है, उसके कण्ठ ओष्ठ, और तालु सूखते रहते हैं । कृशित होने के नाते अत्यन्त भयभीत एवं क्षुधा से पीड़ित होते हैं तथा कोई शृङ्खला से आबद्ध होकर दोनों चरण ऊपर उलटा लटकाये जाते हैं । वे सबल यमदूत किसी को संत्रस्त कर घसीटते हुए उन्हें नीचे मुख करके घसीटते हैं । जिससे उस प्राणी को कठोर दुःख के अनुभव होते हैं । किसी को उसके केश पाल में रस्सी बाँधकर घसीटते हैं । और किसी को उसके ललाट में तीक्ष्ण अंकुशों में प्रविष्ट कर किसी को उतान कर घसीटते हैं, जिससे वह करण रोदन

१. महता । २. म्रियमाणास्ते । ३. पापकारिणः । ४. क्षुधाग्निना । ५. कृष्यमाणाः ।
६. केशपाशनिबद्धाश्च तान्याम्याः कर्षयन्ति च ।

पाश्राद्वाह्वंसवद्वाश्र जठरे च प्रपीडिताः । पूरिताः शृङ्खलाभिश्व हस्तयोश्च प्रकीलिताः ॥४९
 श्रीवायामर्द्धचन्द्रेण क्षिप्यमाणा इतस्ततः । शिश्ने च वृषणे बद्धा नीयन्ते चर्मरज्जुना ॥५०
 विशिन्ना उदरे चान्ये तपशृङ्खलया नराः । कृष्टन्ते कर्णयोश्चान्ये भिन्नाश्र चिबुकोपरि ॥५१
 छिन्नाप्रपादहस्ताश्र छिन्नकर्णोष्ठनासिकाः । सञ्चिन्नशिभ्नवृषणाशिन्नभिन्नांगसन्धयः ॥५२
 प्रतुद्यमानाः कुन्तैश्च सायकैश्च ततस्ततः । भिन्नमानाः प्रधावन्ति क्रन्दमाना निराश्रयाः ॥५३
 मुद्गरैल्लोहृदण्डैश्च हन्यमाना मुरुरुद्धुः । करैश्च विविधैयोरैर्जलिताग्निसमप्रभैः ॥५४
 भिन्निदधैलैर्विभिन्नन्ते ऋवन्तः पूयशोणितम् । मांसे क्षताश्र क्रमिभिर्नीश्वन्ते विवशा नराः ॥५५
 याचमानाश्र सलिलमन्नं द्यापि बुभुक्षिताः । छायां प्रार्थयवानाश्र शीतार्ता बहुवाङुना^३ ॥५६
 दानहीनः प्रथान्त्येवं यावन्तो विमुखा नराः । गृहीतदानपाथेयाः सुखं यान्ति यमालयम् ॥५७
 एवं पन्थातिकष्टेन प्राप्ता यमपुरं तदा । प्रज्ञपितास्तदा दूर्तैर्निवेश्यन्ते यमाप्रतः ॥५८
 तत्र ये शुभकर्मणस्तांश्र सम्मानयेद्यमः । स्वागतासनदानेन पाद्यार्घेण प्रियेण च ॥५९
 धन्या यूयं महात्मान आत्मनो हितकारिणः । येन दिव्यसुखार्थाय भवद्भूः सुकृतं कृतम् ॥६०
 इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् । स्वर्गं गच्छध्वमतुलं सर्वकामसमन्वितम् ॥६१

करता है, कहीं अंगार के ऊपर और किसी के हाथ बाँध कर उसके ऊपर तृप्ति करते हैं । किसी को शृङ्खला से बांधकर उसके हाथ में कील गाढ़ देते हैं तथा उसके गले में हांथ डाल इधर ऊंधर झांक देते हैं । किसी के मूत्रेन्द्रिय और अण्डकोष चमड़े से बांधकर उसे ले जाते हैं, किसी के उदर को तप्त शृङ्खला द्वारा विदीर्ण करते हैं, किसी को कान काटकर घसीटते हैं तथा किसी की चिबुक (ठुड़ी) । किसी को हाथ, चरण, कान, ओष्ठ तथा नासिका के विदीर्ण कर, किसी को शिश्न अण्डकोष काटकर किसी को उसके देह की संधियों को विदीर्ण कर पुनः भाले और बाणों द्वारा पीडित करते ले जाते हैं । अस्त्रों से उनके अंगविदीर्ण करने पर प्राणी करुण क्रन्दन करता हुआ जो निराश्रय रहता है, इधर ऊंधर भागता है किन्तु उस समय वे दूत उसे मुदगरं लोड़े, दंडा से बार-बार प्रताडित करते हैं ॥४१-५२ । किसी को अग्नि के समान कोड़े और भिन्निपाल अस्त्रों द्वारा आहृत करते हैं, जिससे उसके शरीर से पीब और रक्त की धाराएँ निकलने लगती हैं । किसी के मांस को काट कर कीड़े खाते रहते हैं । तृष्णा से व्याकुल और क्षुधा से पीडित प्राणी वहाँ बार-बार जल तथा अन्न की याचना किया करता है । उसी भाँति शीत और प्रचण्ड वायु से पीडित होकर छाया की प्रार्थना करता है किन्तु दानहीन होने के नाते उसे उससे निराश होकर मार्ग समाप्त करना पड़ता है । दान करने वाले प्राणी उस दान रूप पाथेय समेत वहाँ सुख पूर्वक पहुँचते हैं । और दानहीन प्राणी उपरोक्त कष्ट सहनपूर्वक उस समय यमराज के द्रुतगण यमराज से निवेदन करते हैं, यमराज भी उसी समय सिंहासन से उठकर उस पुण्यात्मा प्राणी का सम्मान पूर्वक स्वागत करते हैं और आसन पर सुशोभित होने के उपरांत पाद्य तथा प्रिय अर्घ्य (जलपान) आतिथ्य सत्कार करके उससे इस भाँति कहते हैं कि—आप महात्मा लोग अत्यन्त धन्य हैं क्योंकि आत्मा के हितैषी होकर अपने दिव्य सुख की प्राप्ति के लिए सुकृत कर्म को सुसम्पन्न किया है, इसलिए इस सुन्दर विमान पर बैठकर जो दिव्य

१. प्रपीडिताः । २. च पुनः पुनः ।

ततो भुक्त्वा महाभोगादन्ते पुण्यस्य संक्षयात् । यत्किञ्चिदल्पमशुभं पुनस्तदिह भोक्ष्यथ ॥६२
 ते चापि धर्मराजानं पराः पुण्यानुभावतः । पश्यन्ति सौम्यवदनं पितृभूतमिवात्मनः ॥६३
 ये पुनः पापकर्माणस्ते पश्यन्ति भयानकम् । पापाविशुद्धनयना विपरीतात्मबुद्धयः ॥६४
 दंष्ट्राकरालवदनं भुकुटीकुटिलेखणम् । उर्ध्वकेशं महाशमशुप्रस्फुरदधरोतरम् ॥६५
 अष्टादशभुजं कुद्धं नीलांजनचयोपमम् । सर्वायुधोद्यतकरं ब्रह्मदण्डेन तर्जकन् ॥६६
 महामहिषनास्तु दीप्त!ग्निसमलोचनम् । रक्तमाल्यांबरधरं महामेरस्मिवोच्छ्रुतम् ॥६७
 प्रलयान्बुद्धनिर्घोषं^१ पिबन्तमिव सागरम् । ग्रसन्तिमिव लोकानामुद्गरन्तमिवानलम् ॥६८
 मृत्युश्च तत्समीपस्थः कालानलसमप्रभः । कालाश्चाञ्जनसङ्काशः कृतान्तश्च भयानकः ॥६९
 मारी चोद्रा महामारी कालरात्रिः सुदारुणा । विविधा व्याधयः कष्टा नानारूपभयावहाः ॥७०
 शक्तिशूलाङ्कुशधराः पाशचक्रासिधारिणः । वज्रदण्डधरा रौद्राः क्षुद्रतूर्णीधनुर्धराः ॥७१
 असंख्याता महावीर्याः कूराश्चाञ्जनसम्प्रभाः । सर्वायुधोद्यतकरा यमद्रूता भयानकाः ॥७२
 अनेन पारंवारेण महाघोरेण सम्बृतम् । यमं पश्यन्ति पारिष्ठाश्चित्रगुप्तं च भीषणम् ॥
 निर्भत्सर्यन्तं चात्यन्तं यमं सदुपकारिणम् ॥७३

वनिताओं के उपभोग से भूषित हैं, यथेच्छ कामनाओं की सफलता पूर्वक उस अनुपम स्वर्ग के हैं, यथेच्छ कामनाओं की सफलता पूर्वक उस अनुपम स्वर्ग के लिए प्रस्थान कीजिये। वहाँ महान् भोगों के अनुभव करके अंत में पुण्य के क्षीण होने पर जो कुछ थोड़ा अशुभ वर्ष हैं, उसका फो भोग यहाँ कर लीजियेगा। उस समय पुण्यात्मा प्राणी अपनी पुण्य के प्रभाव से धर्मराज को सुन्दर रूप में देखता है, जो उसे अपने पिता की भाँति मालूम पड़ते हैं। ५३-६३। उसी प्रकार पापी प्राणी को उनका रूप भयानक दिखाई पड़ता है। पापी, अशुद्ध नेत्र और प्रतिकूल आत्मबुद्धि होने के नाते वह प्राणी धर्मराज के उस स्वरूप को देखता है, जो बड़े-बड़े भीषण दाँत, करालमुख, भौंहे टेढ़ीकर देखते, लम्बे केश, बड़ी-बड़ी दाढ़ी मोंछे कुद्ध होने के नाते कम्पित ओष्ठ, अठारह भुजाओं से युक्त काले पर्वत के समान शरीर तथा समस्त अस्त्रों को हाथों में लिए उस ब्रह्मदंड द्वारा उसे तर्जित करते रहते हैं। विशाल शरीर वाले माहिष पर बैठे, जलती हुई अग्नि की भाँति नेत्र, रक्त वस्त्र और माला पहने, मेशस्थिर के समान ऊँचे, प्रलय कालीन मेघों के समान गर्जन करते हुए सागर का पान करने के समान और लोकों के ग्रसित करने तथा अंगारों के वमन करते हुए दिखाई देते हैं। उनके समीप काले वर्ण एवं प्रज्वलित अग्नि की भाँति प्रभापूर्ण होकर मृत्यु भी स्थित रहती है। उनके उस दरबार में काले पर्वत के समान काल, भयानक कृतान्त, उग्र मारीच, महामारी और अत्यन्त दारुण काल रात्रि तथा अनेक व्याधि गण सदैव वर्तमान रहते हैं जो अत्यन्त भयंकर एवं अनेक भाँति के कष्ट देते हैं, शक्ति, शूल, अंकुश, पाश, चक्र, असि, वज्रदण्ड रौद्र धनुष तथा तूणीर आदि अस्त्रों से सुसज्जित होकर असंख्य रहते हैं। वहाँ के यमद्रूत भी असंख्य, महापराक्रमी, कूर और काले पर्वत की भाँति प्रभा से पूर्ण रहते हैं, अपने समस्त अस्त्रों से सुसज्जित होकर दिखाई देते हैं। इन समस्त घोर परिवार से युक्त उन भयंकर यमराज को वह पापी प्राणी देखता है। ६४-७२। उसे वहाँ स्थित चित्रगुप्त भी

चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयन् । भोभो दृष्टतकर्मणः परद्व्यापहारिणः ॥

गर्विता रूपवीर्येण परदारविमर्दकाः

॥७४

यत्स्वयं क्रियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः । तत्किमात्मोपयातार्थं भवद्विदुष्कृतं कृतम् ॥७५

इदानीं किं प्रतपृथिवीं भीड्यमानाः स्वकर्मभिः । भुञ्जध्वं स्वानि कर्माणि नात्र दोषोऽस्ति कस्यचित् ॥७६

एते च पृथिवीपालाः सम्प्राप्ता मत्समीप्ततः । स्वकीयैः कर्मभिर्योरैदुष्प्राज्ञा बलगर्विताः ॥७७

भोभो नृपः दुराचाराः प्रजादिध्वंसकर्तिणः । अल्पकालस्य राज्यस्य कृते इं दुष्कृतं कृतम् ॥७८

राज्यलोभेन भोहाद्वा बलादन्यायतः प्रजाः । यत्पीडिताः फलं तस्य भुञ्जध्वमधुना नृपाः ॥७९

कृतं राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम् । तत्सर्वं सम्परित्यज्य शूयमेकाकिनः स्थिताः ॥८०

पश्याम तद्वलं तुभ्यं^१ येन विध्वंसिताः प्रजाः । यमद्वैस्ताड्यमाना अधुना कीदृशं भवेत् ॥८१

एवं बहुविधैर्वाक्यैरूपालब्धा यमेन ते । शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति पर्याथित ॥८२

इति धर्मं समादित्य नृपाणां धर्मराद् पुनः । तत्पाणपङ्कजुद्यर्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥८३

भोभोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीनिमान्^२ विशेषव्यध्वं पापेभ्यै क्रमेण नरकाश्चिषु ॥८४

ततः शीघ्रं समुत्थाय नृपान्संगृह्या पादयोः । भ्रामयित्वातिवेगेन विक्षिप्योर्ध्वं विगृह्यै च ॥८५

भीषण रूप में दिखाई देते हैं, जो सदुपकारी यम को सम्बोधित किया करते हैं। भगवान्, चित्रगुप्त अपने धार्मिक प्रवचनों द्वारा पापी प्राणियों को सम्बोधित करते हैं कि पाप कर्म करने वाले प्राणी वृन्द ! तुम लोगों ने दूसरे के धनों का अपहरण किया है, अपने रूप तथा पराक्रम से मदान्ध होकर पर स्त्री का उपभोग किया है, जैसा कर्म किया जाता है उसका फल अवश्य भोग किया जाता है, अतः तुम लोगों ने आत्महनत पूर्वक उन दुष्कृत कर्मों को क्यों अपनाया और इस समय अपने कर्मों से पीड़ित होने पर क्यों संतप्त हो रहे हो ? जैसे कर्म किये हो वैसे ही फलों के भी उपभोग करो, इसमें किसी का दोष नहीं है । अनन्तर राजाओं को भी सम्बोधित करते हैं कि—महीपतिण ! अपनी दुर्बुद्धि एवं बल से गर्वित होकर तुम लोगों ने अपने कर्मों द्वारा यहाँ प्रस्थान किया है तथा अपने दुराचारों द्वारा प्रजाओं को निर्मूल किया है राज के उस अल्प कालीन भोग करने के लोभ से इस प्रकार कर्म क्यों किया और राज्य लोभ, मोह, बल अथवा अन्याय से प्रजाओं को पीड़ित क्यों किया, अब उसके रामुचित फलों के उपभोग करो । जिस राज्य एवं स्त्री के लिए इस पाप कर्म को किया है, उन्हें छोड़कर यहाँ तो तुम लोग अकेले हीं इस यातना को भोग रहे हो । ७३-८० । तथा मैं तुम्हारे उस बल को भी देखतः हूँ, जिससे मदान्ध होकर तुम लोगों ने प्रजाओं का नाश किया है अब दूतों द्वारा आहत होने पर कैसा अनुभव हो रहा है । राजन् ! इस प्रकार के अनेक वाक्यों के कहने पर वे प्राणी अपने किये पर पश्चाताप प्रकट करते हुए मौन स्थित रहते हैं । पश्चात् धर्मराज राजाओं के उपदेश करके उनके पाप शोधनार्थ अपने दूतों से कहते हैं कि—चण्ड महाचण्ड ! इन राजाओं के पाप शोधनार्थ क्रमशः नरक रूपी अग्नि में डाल दो । इसे सुनकर वे द्रूतगण शीघ्रता से शुरू कर राजाओं के चरण पकड़कर अत्यन्त वेग से घुमाकर ऊपर

१. तुभ्यं तवेत्यर्थः— र्थं चतुर्थी । २. बलात् । ३. पापिष्ठान् । ४. प्रगृह्य ।

सर्वप्राणेन महता सुलत्ते तु शिलातले । आस्फालयन्ति^१ तरसा दग्धेणैव महादूमम् ॥८६
 ततः स रक्तस्रोतोभिः स्रवते जर्जरीकृतः । स निःसंज्ञस्तदा देही निश्चेष्टः सम्प्रजायते ॥८७
 ततः स वायुना स्पृष्टः शनैरुच्छीदते पुनः । ततः पापविशुद्धचर्यं क्षिप्यते नरकार्णवे ॥८८
 अष्टाविंशतिरेवाधः क्षितेर्नरककोट्यः । सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थिताः ॥८९
 रौरवप्रभृतीनां च नश्काणां शतं स्मृतम् । चत्वारिंशत्समधिकं महानरकमण्डलम् ॥९०
 येषु^२ पापाः प्रपच्यन्ते नराः कर्मनुरूपतः । सातनाभिर्विचित्राभिराकांप्रक्षयादभृशम्^३ ॥९१
 आ मलप्रक्षयाद्यद्वग्नौ धास्यन्ति धातवः । तथा पापक्षयात्पाप्याशेषोध्यन्ते नरकाग्निषु ॥९२
 सुगाङ्गहस्तया बाढं तप्तशृङ्खलया नराः । महावृक्षाग्रशाखायां लम्ब्यन्ते यमकिञ्चुरैः ॥९३
 ततस्ते सर्पयन्नेज खिप्ता दोल्यन्ति किञ्चुरैः । दोल्यन्तश्चातिवेरेन निःसंज्ञा थान्ति योजनम् ॥९४
 अन्तरिक्षस्थितानां च लोहभारशतं ततः । पादयोर्बैध्यते तेषां यमदूतैर्महाबलैः ॥९५
 तेन भारेण सहता भृशमातर्द्विता नराः । ध्यायन्तः स्वानि कर्माणि तूर्णीं तिष्ठन्ति विद्वलाः ॥९६
 ज्वालाभिरग्निवर्णाभिलोहदंडैः सकंटकैः । हन्यन्ते द्विकरैर्द्वैरैः समन्तात्पापकारिणः ॥९७
 ततः क्षारेण दीप्तेन वह्नेरपि विशेषतः । समन्तः प्रलिप्यन्ते क्षतांगा जर्जरोकृताः ॥९८
 पुनर्विदार्य चांगेषु शिरसः प्रभृति क्रमात् । वृन्ताकवत्प्रपच्यन्ते तप्ततैलकटाहृके ॥९९

फेंक देते हैं, पुनः बीच में उन्हें पकड़ कर अत्यन्त संतप्त शिलातल पर महान् वृक्ष को वज्ज की भाँति अत्यन्त वेग से पटक कर विदीर्ण करते हैं, जिससे उसके जर्जर अंगों से रक्त की धारा निकलती है। उस मर्म भेदी आघात से आहत होकर वह प्राणी एकदम भूर्च्छित हो कर निष्प्राण हो जाता है किन्तु वायु के स्पर्श करने पर पुनः जीवित होता है। पश्चात् उसके पाप शुद्धचर्य उन अठाइस नरक कुआँडों में डाल देते हैं जो सागर की भाँति विशाल गम्भीर पृथ्वी के नीचे स्थित हैं। सातवें तल नामक लोक के अंत में रौरव आदि नामक वे भीषण नरक एक सौ चालीस की संख्या में स्थित हैं। उन्हीं में वह पापी प्राणी अपने दुष्कृत के अनुरूप फल का अनुभव करता है। ८१-९१। जितने समय तक मल रहता है उतने समय तक अग्नि में धातुओं के जलते रहने की भाँति जब तक कर्म का क्षय नहीं होता है, अनेक भाँति की यातनाओं से पीड़ित होते रहते हैं। पापों के क्षीण होने के लिए नरक रूपी अग्नि में किसी को डालते हैं, किसी को अत्यन्त संतप्त शृंखला से उसके हाथ बाँधकर कर विशाल वृक्ष की ऊँची शाखा में वे यमदूत लटका देते हैं। वहाँ पीड़ित करने के उपरांत सर्पयंत्र द्वारा उसे पीड़ित करते हैं उस समय वह प्राणी वेग से भागते हुए मूर्च्छित होता है। उसके अंतरिक्ष में भागने पर बली यमदूत गण अत्यन्त भार से युक्त लोहे को उसके पैर में बाँध देते हैं जिसके भार से अत्यन्त दुखी होकर वह प्राणी अपने किये कर्म के लिए शोक करता हुआ मौन होकर उन यातनाओं का सहन करता है। यमदूत अग्नि की भाँति प्रज्वलित लोह दंडों से जिसमें बड़े-बड़े काँटे लगे रहते हैं, उन पापियों को आहत करते हैं। पुनः प्रदीप्त अग्नि के अंगारों से उनके अंग जलाते हैं जिससे उनके अंग अत्यन्त जर्जर हो जाते हैं तथा पश्चात् उनके शिर आदि अंगों को विदीर्ण करते ही रहते

१. आस्फोटयन्ति । २. एषु । ३. बृद्धयन्ते स्वानि कर्माणि कृष्यन्ते यमकिंकरैः ।

विष्टापुर्णे ततः कूरे कृमीणः निचये ततः । मेदस्त्वक्पूयपूर्णायां वाप्यां^१ क्षिप्यन्ति ते पुनः ॥१००
 भैश्यन्ते कुमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुष्टैश्च वायसैः । शभिर्दैशैर्वृक्खोरैर्व्याघ्रैरप्यथै^२ वानरैः ॥१०१
 पच्यन्ते मांसवच्चःपि प्रदीप्ताङ्गारराशिषु^३ । प्रोताः शूलेषु तीक्ष्णेणु नराः पःपेन कर्मणा ॥१०२
 तिलपिण्डैरिवाक्रम्य घोरैः कर्मभिरात्मनः । तिलवत्सम्प्रपीडयन्ते चक्राव्ये नरके तथा ॥१०३
 भिद्यन्ते चापि तल्पेषु लोहभ्राष्टेष्वनेकधा । तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तेषु पुनः पुनः ॥१०४
 ब्रह्मः पीडयते जिह्वा याऽसत्यप्रियवादिनी । सन्दंशेन सुतप्तेन प्रपीडयन्ते च पादयोः ॥१०५
 मिथ्यागमप्रवदन्तुश्च द्विजिह्वस्य च निर्यता । जिह्वार्द्धक्षोरविस्तीर्णा हलैस्तीर्णैश्च बाध्यते ॥१०६
 निर्भत्सर्यन्ति ये कूरा भातरं यितरं गुरुम् । तेषां यक्ष उलूकाभिर्मुखमापूर्य सेव्यते ॥१०७
 ततः क्षारेण दीप्तेन ताप्त्रेण तु पुनः पुनः । हतेनापूर्यतेऽत्यर्थं तप्ततैलैश्च तन्मुखम् ॥१०८
 इतस्ततः पुनर्वक्त्रं भृशमापूर्य हन्यते । विष्टाभिः कृमिभिश्चापि सुवर्णहरणैर्नरः ॥१०९
 परिष्वजति चात्युग्रां प्रदीप्तां लोहशाल्मलीम् । हन्यते पृष्ठदेशे च पुनस्तीक्ष्णैर्महाघनैः ॥११०
 दत्तुरेणातिकूटेन क्रकचेन बलीयसः । शिरः प्रभृतिं पादान्तं घोरैः कर्मभिरात्मजैः ॥
 खाद्यते स्वानि^४ मांसानि पायते शोणितं स्वकम् ॥ १११

हैं । अत्यन्त संतप्त तेल से पूर्ण उस कराह (कड़ाहे) में फल गुच्छे की भाँति पक जाने पर उस प्राणी को विष्टा एवं कीटाणुओं से पूर्ण उस नरक कुण्ड में डालते हैं, जिसमें मेदा, त्वक, और पीब से भरा रहता है । पापियों के मांस कीड़ों के काटने के उपरांत लोहे के समान तीक्ष्ण अपनी उन चोंच द्वारा वहाँ के कौये काटते और खाते हैं और उसी भाँति किसी के मांस कुत्ता, हंसा, भेड़िया तथा वाय भक्षण करते हैं । कहीं पर प्रदीप्त अंगारों में उनकी मांस मांस की भाँति पकाते हैं । कहीं पर प्राणी तीक्ष्ण शूलों द्वारा मर्महित होता है प्राणी तिलपिण्ड की भाँति अपने घोर कर्मों से आक्रान्त हैं चक्र यंत्र में तिल की भाँति पूर्ण किया जाता है । किसी को ऊँची अटूलिका से गिरा कर विदीर्ण लोहे की भट्टी में जलाकर अनेक टुकड़े संतप्त तेल से पूर्ण कराहें में डालकर बार-बार पीड़ित करते हैं । असत्य बोलने वाली जिह्वा को अनेक भाँति से पीड़ित करते हैं पश्चात् हिसक जन्तुओं से संदंशन संतप्त तेल में दाह तथा उनके चरण में पीड़ा पहुँचाते हैं । शास्त्रों को असत्य कहने वाले प्राणी सर्पयंत्र में डाल दिये जाते हैं, पश्चात् उनकी जिह्वा, आधे कराहे के लम्बे एवं तीक्ष्ण दलों द्वारा पीड़ित होती है । जो अपनी माता, पिता, तथा गुरु की भर्त्सना करता है उसके वक्षःस्थल भाग को उलूक आदि पक्षीणगं तीक्ष्ण चोंच से भक्षण करते हैं । पश्चात् खार, दीप्त एवं ताँबे के अस्त्रों से उसे मृतक बनाते हैं, जीवित होने पर उसके मुख में संतप्त तेल डालते हैं । १२-१०८। इधर उधर करने पर उसके मुख में बार-बार तेल डाला करते हैं । सुवर्ण की चोरी करने वाले विष्टा और कृमिपूर्ण कुण्डों में डालकर उसकी वेदना भोगने के उपरांत लोहे की उसी भाँति प्रतप्त शलाका से आलिङ्गन करते हैं । तदनन्तर उसके पीठ में महाधन द्वारा आधात भी । कोई प्राणी वहाँ लोहे के उस आरा द्वारा जिसमें तीक्ष्ण दाँत की भाँति बने रहते हैं, शिर से प्रारम्भ कर चरण तक विदीर्ण किये जाते हैं । (कोई अपने कर्मों के फलस्वरूप अपने मांस के भक्षण और शोणित पान करते हैं ।) जिन मूँड़ोंने अन्नपान के दान नहीं किये हैं

अनं पानं न दत्तं यैर्मूढैनर्नाप्यनुमोदितम् । इक्षुवते प्रगीडचन्ते जर्जरीकृतमस्तकाः ॥११२
 असितालवने घोरे च्छिद्यन्ते खण्डखण्डशः । सूचीभिर्भिन्नसर्वाङ्गास्तप्तशूलप्ररोपिताः ॥
 सम्बाध्यमाना विवशाः क्लिशयन्ते न प्रियन्ति वै ॥११३
 देहादुत्साद्यमांसमनि भिद्यते इस्थीनिः मुद्गरैः । दृष्टिराकृज्यते तूर्णं यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥११४
 निरस्तात्ते निरच्छवात्स्तिष्ठन्ति नरके ध्ववम् । उच्छ्वसन्ति सदा ऋतैर्वर्त्तुकावदनावृताः ॥११५
 रौरवे रोदमनाश्र योऽन्तर्वन्ते विविधैः शरैः । महारौरवपीड़ानिर्महतीभिस्तदन्तिके ॥११६
 पदोरास्ये गुदे चैव पाश्वेऽचोरसि मस्तके ; निखन्यन्ते घनस्तीक्ष्णैः सुतप्तैर्लोहशङ्कुभिः ॥११७
 मुतप्तवालुकायां च प्रलुठयन्ते पुनः पुनः । जतुपङ्क्ते भृशां तप्ते क्षिप्राः क्रादन्ति विस्तरम् ॥११८
 तेनतेनैव रूपेण हसन्ते पारदारिकम् । गाढ़मालिङ्गाद्यते नारीं ज्वलन्तीं लोहनिर्मिताम् ॥११९
 पूर्वाकारं च पुरुषं प्रज्वलन्तं समन्ततः । इश्वारिणीः स्त्रियो गाढ़मालिंगन्ति वदन्ति च ॥१२०
 किं प्रधावसि देवेन ते न मोक्षोऽस्ति साम्प्रतम् । लङ्घितस्ते यथा भर्ता पापं भुञ्जत तथाधुनाँ ॥१२१
 लोहकुम्भे तथा क्षित्ता : सविधानैः शनैः शनैः । मृद्वग्निनाथं पच्यन्ते स्वपापेरेव मानवाः ॥१२२

और न उसके अनुमोदन ही । वे ऊख की भाँति लोह यंत्र (कोल्ह) में डालकर पेरे जाते हैं । उस घोर ताल बन में जिसके पत्र तलवार की भाँति तीक्ष्ण होते हैं, चलने पर उस प्राणी के अंग उन पत्रों द्वारा खण्ड-खण्ड हो जाते हैं, किसी के अंग सूची (सूई) द्वारा विदीर्ण किये जा रहे हैं, कोई शूल द्वारा आहत हो रहा है । विवश होकर प्राणी उन दण्डों के अनुभव करता है किन्तु उसके प्राण निकलते नहीं । यमराज के सबल दूतगण किसी के देह से मांस निकाल रहे हैं, मुद्गरों के आधात द्वारा किसी की अस्थियाँ (हड्डियाँ) तोड़ी जा रही हैं । किसी की आँख निकाल कर उसे घसीट रहे हैं, और वे प्राणी उसके सहन पूर्वक नरक में पड़े रहते हैं । वहाँ दीर्घ श्वास (लम्बी) श्वास भी लेना कठिन होता है क्योंकि दीर्घ निःश्वास लेने के समय यमदूत उस प्राणी के मुख में बालुकाएँ झोंक देते हैं । कहीं रौरव नरक में प्राणी अनेक भाँति के दाणों से आहत होकर रोदन कर रहा है । कहीं कोई महारौरव नरक की उस घोर पीड़ा से व्यथित हो रहा है । उसी के समीप स्थित कर उस प्राणी के, जिसने पर स्त्री के उपभोग किया है, चरण, मुख, गुदा, वक्षःस्थल, हृदय, एवं मस्तक में संतप्त लोहे की कील गाड़ते हैं जो दृढ़ तथा तीक्ष्ण रहता है अनन्तर अत्यन्त बालुका में उसे घसीटते रहने के उपरांत संतप्त लोह के पंक में उसे डाल देते हैं, जिससे वह सदैव करुण क्रन्दन ही करता रहता है, किन्तु इन सभी यातनाओं के प्रदान पूर्वक वे यम दूत उसकी विकलता देखकर हँसते रहते हैं । तदुपरान्त उसकी प्रेमिका की एक लोहे की उसी भाँति की प्रतिमा से जो अग्नि से अत्यन्त प्रज्वलित रहती है, उसका दृढ़लिङ्गन करते हैं उसी प्रकार उस दृढ़चारिणी स्त्री को भी उसके प्रेमी पुरुष की लौह प्रतिमा से जो आनुपूर्व तत्समान बना एवं अग्नि द्वारा अत्यन्त प्रज्वलित रहता है, उसका दृढ़लिङ्गन कराते हैं । उस समय यमदूत उससे कहते भी हैं कि क्यों इधर-उधर वेग से दौड़ रही है, अपने पति की मान मर्यादाओं का जिस प्रकार उल्लंघन किया है, इस समय उसके फल का अनुभव करो पश्चात् तुम्हें मुक्त कर दिया जायगा । १०९-१२१। जिस प्रकार लोहे के घड़े में डालकर धीरे-धीरे मन्द अग्नि द्वारा

१. अशिवमुद्गरैः । २. जल्पन्ते । ३. तदा नरम् । ४. तथाविधम् ।

त्वणन्त्युद्भवले साम्राः प्रक्षिप्यन्ते शिलासु च । क्षिप्यन्ते चान्धकूपेषु दश्यन्ते भ्रमरैभृशम् ॥१२३
 कृमिभिर्भग्नसर्वांगाः शतशो जर्जरीकृताः । सुतीक्ष्णक्षारकूपेषु क्षिप्यन्ते तदनन्तरस् ॥१२४
 महाज्वाले च नरके पापाः फूत्कारयन्ति च । इतस्ततश्च धावन्ति दह्यमानास्तदर्चिर्विषा ॥१२५
 शृङ्गे चानीय जड़े द्वे विन्यस्ते स्कन्धयोः स्थिते । हयोर्मधेन चाकृष्य बाहुपृष्ठेन गाढतः ॥
 दद्धाः परस्परं सर्वं सुदृढं गाढरज्जुभिः ॥१२६
 पीडयन्ति मुसंरब्धा भ्रमरास्तीक्षणलोहजाः । मानिनां क्रोधितां चैद पुरा पापस्य संशयात् ॥१२७
 पापानां नरके पुंसां धृष्ट्यते चन्दनं यथा । शरीराभ्यन्तररगतं तरुणानां च दारुणम् ॥१२८
 पिण्डबन्धः स्मृतो याम्यो महाज्वालेषु यातनाः । रज्जुभिर्देष्टिताङ्गाङ्गं प्रलिप्ताः कर्दमेन च ॥
 करीषरक्षवङ्गौ च एच्यन्ते न द्वियन्ति च ॥१२९
 सुतीक्ष्णक्षारतोयेन शर्करासु शिलासु च । आ पापसंक्षयात्पापा धृष्ट्यन्ते चन्दनं यथा ॥१३०
 शरीराभ्यन्तररगतैः ब्रह्मतैः द्विमिभिर्नराः । भक्ष्यन्ते तीक्ष्णक्षवदनैरादेहप्रक्षयाद् भृशम् ॥१३१
 कृमीणां निचये क्षिप्ताः पूतिमांसस्य राशिषु । तिष्ठन्त्युद्विग्नहृदयाः पर्वताभ्यां च पीडिताः ॥१३२
 सुतप्तवज्रलेपेन शरीरमनुलिप्तते । अद्येमुखोर्धर्वपादाश्र^१ धृतास्तप्यन्ति वह्निषु ॥१३३
 वदनान्ते प्रविन्यस्तं सुतप्तायोमयं गुडम् । ते खादन्ति पराधीना हन्यमानास्तु मुदगरैः ॥१३४

पकाया जाता है उसी भाँति अपने पापों द्वारा मनुष्य वहाँ पकता रहता है । कोई ओखली में डालकर कूटा जा रहा है, कोई शिला पर पटका जा रहा है, किसी को अंध (जलहीन) कूप में डाल देते हैं, जहाँ भ्रमरण उसके मांस नोचते रहते हैं । कीटाणुओं द्वारा समस्त अंगों के विदीर्ण होने पर जब वह भली भाँति जर्जर हो जाता है, अत्यन्त तीक्ष्ण एवं खार कूप में उसे डाल देते हैं । महा ज्वालाओं से पर्ण नरक में पहुँच कर पापी प्राणी फूत्कार (फू-फू) करते हैं, उसकी किरणों से संतप्त होने पर इधर-उधर भागते हैं । किसी को उसको पीठ को ओर दोनों जंघाओं को लाकर दोनों के मध्य में भुजाओं को भी खीच कर अत्यन्त दृढ़ रस्सी से बाँधकर लोहे की तीक्ष्ण भ्रमर द्वारा उसे पीडित करते हैं । मानी एवं क्रोधी प्राणी को उनके पाप शोधनार्थ नरक में डालकर चन्दन की भाँति घिसते हैं । कहीं तरुणों के शरीर में दारुण पीड़ा हो रही है । इस भाँति के दृश्य देखकर उस दक्षिण दिशा में स्थित यमपुरी का स्मृति अवश्य रखनी चाहिए, जो अत्यन्त ज्वाला रूप है वहाँ अनेक भाँति की यातनाएँ प्राणियों को मिलती रहती हैं । किसी को सम्पूर्ण अंग रस्सी से द्वारा बाँध कर जिस अंग में कीचड़ लिपटा रहता है, सूखे उपले की प्रदीप्त अग्नि में पकाते हैं, किन्तु वह मृतक नहीं होने पाता । १२२-१२९ । किसी को तीक्ष्ण, खार बालूका और पत्थर की शिलाओं पर उसके पाप के अनुसार चन्दन की भाँति घिसते हैं । किसी के शरीर में असल्य कीड़े प्रविष्ट होकर अपने तीक्ष्ण मुखों द्वारा उसके मांस काटकर खाया करते हैं । कीड़ों के समूहों तथा पीबमांस की ढेरी में प्राणी को डालने और पर्वतों द्वारा पीड़ित होने पर वह उद्विग्न होकर पलायन करना चाहता है, किन्तु अत्यन्त तप्त वज्र लेप से उसकी शरीर लिप्त करते हैं । किसी को नीचे मुख ऊपर पैर करके अग्नि कुण्ड में डाल देते हैं अनन्तर उसके मुख में गुड़ की भाँति सुदीप्त लोहे के गोले डालते हैं, जिससे विवश होकर

१. अधःशिरोर्धर्वपादाश्र ।

ये शिवायतनारामवापीकूपमठाङ्गणात् । अभिद्वन्ति पापिष्ठा नरास्त्र वसन्ति च ॥१३५
व्यथामोद्वर्तनाभ्यंगस्नानमापानभोजनम् । क्रीडनं मैथुनं द्यूतमाचरन्ति रमन्ति च ॥१३६
ते बाधीर्विविधैर्घोरैरिक्षुयन्त्रादिपीडनैः । निरयग्निषु पच्यन्ते यावदाचन्द्रतारकम् ॥१३७
ये शृण्वन्ति गुरोर्निन्दां तेषां कर्णः प्रपूर्व्यते । अग्निवर्णैरयः कीलैस्तप्तताश्रादिभिर्द्वृतैः ॥१३८
त्रपुसीसारकूटादैः क्षारेण जतुना पुनः । क्रमादापूर्यते कर्णो नरकेषु च यातनाः ॥
अनुकमेण सदेषु भवन्त्येताः समन्ततः ॥ ॥१३९

सर्वेन्द्रियाणामप्येवं क्रमात्पापेन यातनाः । भवन्ति घोरः प्रत्येकं शरीरे तत्कृतेन च ॥१४०
स्पर्शज्ञोभेन ये मूढाः संस्पृशन्ति परस्त्रियम् । तेषां त्वगश्चिवर्णाभिः सूचीभिः पूर्यते भृशम् ॥१४१
ततः क्षारादिनिः सर्वैः शरीरमनुलिप्यते । यातनां च महाकष्टा सर्वेषु नरकेषु च ॥१४२
गुरोः कुर्वन्ति भ्रुकुटिं कूरं चक्षुश्च ये नराः । परदारांश्च पश्यन्ति लुब्धाः स्निग्धेन चक्षुषा ॥१४३
सूचीभिरश्चिवर्णाभिस्तेषां नेत्रं प्रपूर्यते । क्षारादैश्च क्रमात्सर्वैर्देहे सर्वाश्च यातनाः ॥१४४
देवाश्चिपुरुषविप्राणां यैनिवेद्यं प्रभुच्छते । लोहकीलशतैस्तप्तैस्तज्ज्ञह्वास्यं प्रपूर्यते ॥१४५
ततः क्षारेण दीप्तेन तैलताश्रादिनिः क्रमात् । शरीरे च महाघोराश्रित्रा नरकयातनाः ॥१४६
ये शिदारामपुष्पाणि^१ लोभात्संगृह्या पाणिना । जिग्रन्ति नूढमनसः शिरसा धारयन्ति च ॥१४७

उस प्राणी को खाना पड़ता है न खाने पर मुद्गरों के आधात से पीड़ित करते हैं । जो पापी प्राणी शिवालय, बगीचे, बावली, कूप एवं मठ को नष्ट कर वहाँ घर बना कर निवास करता है अथवा उन स्थानों पर व्यायाम, उबटन लगाना अच्यंग स्नान, पान, भोजन, क्रीडन, मैथुन एवं द्यूत क्रीडा करते कराते हैं वे अनेक भाँति की घोर यातना, और ऊँखयंत्र (कोल्ह) में पीड़ित होने के उपरांत नरक की अग्नि में चन्द्रमा तथा ताराओं के स्थित समय तक पकते रहते हैं । जो गुरु की निन्दा सुनते हैं, उनके दोनों कान अग्नि के समान प्रदीप्त लोहे की कील, संतप्त ताँबा, रांगा, सीसा के टुकड़े से भर कर ऊपर से तप्त लाह डालते हैं । इस प्रकार उसको समस्त देह को क्रमशः पीड़ित करते रहते हैं । जिसमें समस्त इन्द्रियाँ क्रमशः यातनाओं द्वारा व्याकुल होती हैं । इसी भाँति प्रत्येक पापी प्राणी को यहाँ दुःख यातना अनुभव करना पड़ता है । जिस मूढ़ ने स्पर्श लोभ से परस्त्री का स्पर्श किया है, उसके देह की त्वक् इन्द्रिय (देह की ऊपरी खाल) अग्नि संतप्त सूची द्वारा विदीर्ण की जाती है । १३०-१४१। पश्चात् खार आदि समस्त उपरोक्त पदार्थों के लेपन उसके शरीर में करते हैं तथा क्रमशः समस्त नरकों की यातना के अनुभव भी । जो पुरुष अपने गुरु के ऊपर भौहें टेढ़ी करता है, दूसरे की पत्नी पर मुग्ध होकर स्नेह दृष्टि से देखता है, उसके नेत्र में अग्नि की भाँति प्रज्वलित सूची डाली जाती है और खार पदार्थों के लेपन पूर्वक क्रमशः सभी नरकों की यातनाओं के अनुभव करते हैं । देव, अग्नि, गुरु और विप्रों को विना समर्पित किये वस्तु के भक्षण जो प्राणी करता है, उसकी जिह्वा लोहे की सैकड़ों संतप्त कीलों से छेदी जाती है । अनन्तर खार पदार्थों के लेपन पूर्वक तेल कुण्ड के अनुभव ताँबे आदि के दुःख सहन करके पुनः उसके शरीर नरकों की चित्र विचित्र यातनाओं से पीड़ित होती है । जो पुरुष देवता के बगीचे के पुष्पों को तोड़कर सूंधते या

१. ये देवांरामपुष्पाणि ।

आपूर्यं शिरस्तेषां सुतप्तैर्लोहशंकुभिः । नासिका चातिबहुशस्ततः क्षारादिभिः पुनः ॥१४८
ये जिन्दन्ति महात्मानमाचार्यं धर्मदेशिकम् । शिवभक्तांश्च ये मूढाः शिवधर्मै च शाश्वतम् ॥१४९
तेषामुरसि कंठे च जिह्वायां दन्तसन्धिषु । तालुकोष्ठे च नासायां मूर्च्छिं सर्वाङ्गसन्धिषु ॥१५०
अग्निवर्णाः सुतप्ताश्च त्रिशिखा लोहशंकवः । आखन्यन्ते सुबहुशः स्थानेष्वेतेषु मुद्गरैः ॥१५१
ततः क्षारेण तप्तेन ताम्रेण त्रयुणा पुनः । तप्ततैलादिभिः सर्वेरापूर्यन्ते समंततः ॥१५२
क्षारताम्रादिभिर्दीर्घदृष्ट्यान्ते बहुशः पुनः । नरकेषु च सर्वेषु विचित्रा देह्या तनाः ॥१५३
भवन्ति बहुशः कष्टाः पाणिपादसमुद्ग्रहावाः । शिवायतनपर्यंते शिवरामे च कुत्रचित् ॥१५४
समुत्सृजन्ति ये यापाः पुरीषं मूत्रमेव वा । तेषां लिंगं सवृष्टयं चूर्ण्यते लोहमुद्गरैः ॥१५५
सूचीभिरश्चिवर्णाभिस्ततश्चापूर्यते पुनः^३ । लोहदण्डश्च सुभहानग्निवर्णः सकण्टकः ॥

^४आखन्यते गुदे तेषां यावन्मूर्च्छिं विनिर्गतः ॥१५६
ततः क्षारेण महता ताम्रेण त्रयुणा पुनः । द्रुतेनापूर्यते गाढं गुदं शिखं हि देहिनाम् ॥१५७
मनः सर्वेन्द्रियाणां च यस्मादुक्तं प्रवर्तकम् । तस्मादिन्द्रियदुःखेन जायते तत्सुदुःखितम् ॥१५८
धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्छन्ति तृण्यथा । अतिथिं चावमन्यन्ते कालप्राप्तं गृहाश्रमे ॥१५९
ते लोहतोरणे बद्धा हस्तपादावताडिताः । विदारितांगाः शुष्यन्ते तिष्ठन्त्यबदशतं नराः ॥१६०
हस्तपादललाटेषु कीलिता लोहशंकुभिः । नित्यं च नौवृतं वक्तं कीलकद्वयनाडितम् ॥१६१

शिर, कान पर धारण करते हैं, उनके शिर में लोहे की अनेक संतप्त कीलें गाढ़ दी जाती हैं । उसी भाँति नासिका को भी पीड़ित कर उसकी शरीर क्षार आदि पदार्थों से क्रमशः पीड़ित की जाती है । धर्म, देश के आचारों तथा महात्माओं शिवभक्त अथवा शैव धर्म की निन्दा करने वाले प्राणी के हृदय कंठ, जिह्वा, दाँतों की संधि, तालु, ओष्ठ, नासिका, शिर एवं समस्त अंगों की संधियों में अग्नि की भाँति लोहे के प्रज्ज्वलित त्रिशूल से छेदन करके उनके शरीर मुदगरों के आघातों से पीड़ित करते हैं । पश्चात् तप्त खार, ताँबा, रांगा के टुकड़े तथा तप्त तेल सभी इन्द्रियों में डालकर पुनः खार ताँबे आदि के तप्त वस्तुओं से उसे अनेक बार समस्त नरक यातनाओं के अनुभव कराते हैं जिससे उसके समस्त हाथ पैर आदि अंगों में अत्यन्त कष्ट होता रहता है । शिवालय के धेरा या उसके बगीचे में किसी स्थान पर जो प्राणी प्राणी मूत्रपुरीपोत्सर्ग करता है, उसके लिंग एवं अण्डकोष को लोहे के मुदगरों से चूर्ण करते हैं प्रतप्त सूची से छेदन करने के उपरांत लोहे के संतप्त दण्ड को, जिसमें बड़े-बड़े कीले लगे रहते हैं, उसको गुदा मार्ग से डालकर मुख द्वारा से निकालते हैं अनन्तर खार, ताँबे रांगा आदि के तप्त टुकड़े उसकी गुहा एवं लिंग में डालते हैं । उस समय उसका मन जो इन्द्रियों का प्रवर्तक रहता है, इन्द्रियों के दुःख से दुःखी होकर मुक्ति होने की याचना किया करता है । १४२-१५८। धन के रहते हुए जो प्राणी लोभवश दान नहीं करता, समय से धर पर अतिथि के आने पर उसकी सेवा नहीं करता है, उसके हाथ पैर लोहे के तार द्वारा बांध ताडनपूर्वक समस्त देह विदीर्ण करते हैं, इस प्रकार उसे इसी भाँति की वेदना सैकड़ों वर्ष सहन करनी पड़ती है । अनन्तर हाथ, पैर और भाल में लोहे की कील गाड़कर उसके मुख में नित्य दो कीलें गाड़ते रहते हैं और

१. विष्णुधर्मै च । २. देवायतनपर्यन्ते देवारामे च कुत्रचित् । ३. भृशम् । ४. निरूप्य च गुदे तेषां यावन्मूर्च्छिं विनिर्गमः ।

कृमिभिः प्राणिभिः चोग्रैलोहदण्डश्च वायसैः । उपद्रवैर्द्धुविधैः सर्वेऽर्थुखरकैस्ततः ॥१६२
 आपीडचन्ते जिह्वापूले निबध्य शृङ्खलाः पुनः । तिष्ठन्ति लम्बमानाश्रम लोहभारप्रपीडिताः ॥१६३
 स्तिग्धे च वृषणे नद्वे लोहभारद्वयं पुनः । तिष्ठते लम्बमानं च बहुभारचतुर्गुणम् ॥१६४
 ततः स्वामांसमुक्त्य तिलात्रप्रमाणतः । भोजनं दीयते तेषां सूच्यग्रेण सशोणितम् ॥१६५
 यदा निर्मासितां प्राप्ताः कालेन महता पुनः । ततः क्षारेण दीप्तेन वपुस्तेषां प्रलिप्यते ॥१६६
 सिद्धन्ते वर्षधाराभिः शोष्यन्ते वायुनां पुनः । सिद्धन्ते तप्ततैलेन प्रतप्तेन समन्ततः ॥१६७
 पञ्चतत्त्वहिताः भूयो दूरस्थेन शनैः शनैः । निःशेष्यातनभिःश्च पीडचन्ते क्रमशः पुनः ॥१६८
 भूशं बुक्षया पीडा सूच्छ्यातिपिपासया । अत्युष्णेनातिशीतेन पापानां समरेण च ॥१६९
 एवमादिमहाघोरा यातनाः पापकारिणः^१ । एकैके नरके चैव शतशोऽथ सहस्रशः ॥१७०
 प्रत्येकं यातनाश्रित्राः सर्वेषु नरकेषु च । कष्टं वर्षशतेनापि सोदुं सर्वेऽत्र नारके ॥१७१
 इते च दिविधैषोरैर्यात्यमानाश्रम कर्मभिः । त्रियन्ते नैव पापिष्ठा विविधाः पापकारिणः ॥१७२
 महाघोराभिघोराभ्याः कालाग्निसदृशोपमाः । श्रुतैरेतैर्महाराद्वैर्णियन्ते मृदुचेतसः ॥१७३
 ततस्तेनात्र कविताः पापा गच्छति तान्स्वयम् । पुत्रमित्रकलनार्थं यदा पुण्यं त्वपाकृतम् ॥१७४
 एकाकी दृष्ट्यते तेन न च पश्यति तानि सः । आत्मना च कृतं पापं भोक्त्यन्यं ध्रुवमात्मना ॥१७५
 तत्किमन्योपघातार्थं मूढं पापं कृतं त्वया । एवं दूतैरुपालब्धास्ते पृच्छन्ति ततः पुनः ॥१७६

कीड़ों, तीक्ष्ण लोह दंड, कौवे, तथा सर्प आदि अनेक भाँति के जन्तुओं द्वारा उसे पीड़ित करने के उपरांत उसकी जिह्वा के मूलभाग में शृङ्खला से बांधकर खड़ा करते और लोहे के भार से पीड़ित करते हैं । उसके अण्ड कोष को बांध कर दो लोहे के भार से पीड़ित करते हुए उसे खड़ा कर उसके ऊपर चौगुने भार रखते हैं और उसकी देह के मांस को सूची द्वारा तिल के समान टुकड़े करके उसे भोजन देते हैं । इस प्रकार अधिक समय में उसके मांस हीन होने पर उसकी देह में वही खार आदि पदार्थों के लेपन करते हैं, वर्षा की धार से सिंचित करके वायु द्वारा शब्द करते हैं, सूख जाने पर तप्त तेल से सेवन करके मन्द अग्नि द्वारा धीरे-धीरे उसे पीड़ित करते हुए सभी यातनाओं के अनुभव कराते हैं । इसी प्रकार क्षुधा, तृष्णा, मूर्च्छा, अत्यन्त गर्भ, अत्यन्त शीत के द्वारा भी उसे पीड़ित करते रहते हैं । १५९-१६१ । इस भाँति उन घोर यातनाओं के प्रत्येक नरकों में सैकड़ों सहस्रों बार अनुभव पूर्वक समस्त नरकों की चित्र विचित्र यातनाओं के सहन करते हैं, जिसके दुःख सहन करने में प्राणी को वहाँ सैकड़ों वर्ष रहना पड़ता है । अनेक भाँति की घोर यातनाओं को अपने कर्म के फल स्वरूप प्राप्त होती है, सहन करते हुए वे प्राणी मृतक नहीं होते हैं । प्रत्युत महाचोर, घोर, कालाग्नि के समान उन महाभीषण यातनाओं के उपभोगार्थ उसे अत्यन्त मृदु होना पड़ता है । इस प्रकार अपने कर्मानुसार उन यातनाओं को पापी प्राणी प्राप्त करते हैं, जो पुत्र, मित्र, एवं स्त्री के निमित्त मुश्य होकर किये गये रहते हैं । पापी प्राणी वहाँ पहुँच कर अकेले ही उन यातनाओं को भोगता है, जिनके निमित्त पाप करता है उनके वहाँ दर्शन भी नहीं होते हैं । दूत लोग कहते हैं किये हुए पापों को अवश्य भोगना पड़ता है यह जान लेते हुए तुमने मृदुता वश पाप कर्म किया और इसी भाँति के वे

१. अस्मादग्रे—“तत्रान्यायतनानां च विविधाः पापकारिणः” इति पाठ एकस्मिन्मुस्तकेऽधिकः पृथक्तयोपलभ्यते ।

कियन्तं केन पापेन कालमन्रायते नरः । देवद्रव्यविनशेन गुरुद्वेषादिकर्मभिः ॥

पापात्सर्वेषु पच्यन्ते नरकेष्वामहाक्षयात्

१७७

महापातकिनश्चापि सर्वेषु नरकेष्विह । आचन्द्रतारकं यावत्पीडघन्ते विविधैर्वैष्टः ॥१७८

महापातकिनश्चान्ये नरकार्णवकोटिषु । चतुर्दशसु पच्यन्ते कलार्थं विविधैर्वैष्टः ॥१७९

उपपातकिनश्चापि तदर्थं यान्ति मानवाः । शेषपापैस्तदर्थं तु कालं चापि तथाविधम् ॥१८०

तस्मात्पापं न कुर्वते चञ्चले जीविते सति । पापेन हि ध्रुवं यान्ति नरकेषु नराः स्वयम् ॥१८१

यः करोति नरः पापं तस्यात्मा ध्रुवमप्यिः । पापस्येत फलं दुःखं तद्वौक्तव्यमिहात्मनाः ॥१८२

कर्तं ते पापनिरता नरा रात्रिषु^१ शेरते । मरणांतरिता^२ येषां नारको तीव्रयात्मना ॥१८३

एवं क्लिष्टविशुद्धाश्र सादरेषेण कर्मणा । ततः क्षितिं समासाद्य जायन्ते देहिनः पुनः ॥

स्थावरा विविधाकारास्तृणगुल्मादिभेदतः

१८४

तत्रानुभूय दुःखानि जायन्ते कीटयोनिषु । निष्क्रान्ताः कीटयोनिभ्यो जायन्ते पक्षिणस्ततः ॥१८५

संश्लिष्टाः पक्षिभावेन भवन्ति मृगजादिषु । मार्गं दुःखमतिक्रम्य जायन्ते पशुयोनिषु ॥१८६

कमाद्गोयोनिमासाद्य जायन्ते मानवाः पुनः । एवं योनिषु सर्वासु परिक्रम्य क्रमेण तु ॥

कालान्तरवशाद्यन्ति मानुष्यमतिदुर्लभम्

१८७

सभी पापियों के पास पहुँच कर पूँछा फरते हैं और यह भी कहते हैं कि मनुष्य वृन्द तुम लोगों ने किस पाप को और कितने समय तक किया है । इसी भाँति देवों के द्रव्य विनाश करने और गुरु से द्वैह आदि कर्मों के करने से प्राणी अपने किये हुए पाप कर्मों के फल स्वरूप नरकों में महाप्रलय काल तक यातनाएँ भोगता रहता है । महापातकी प्राणी चन्द्र और ताराओं के स्थित समय तक समस्त नरकों में रहकर अनेक भाँति की यातनाओं से पीड़ित होते हैं । कुछ लोग उन कोटि नरक सागरों में ही सदैव पड़े रहते हैं । उपपातकी प्राणी को चौदह नरकों में विविध भाँति की यातनाएँ उसके (महापातकी के) आधे समय तक मिलती रहती हैं और शेष पापों के शोधनार्थ उसके आधे समय तक । इसलिए मनुष्य के इस चल जीवन को प्राप्त कर प्राणी को कभी भी पाप न करना चाहिए । क्योंकि पाप करने पर नरक गमन करना मनुष्यों के लिए निश्चित है । जो पुरुष पाप करता है, निश्चय है उसकी आत्मा उसे प्रिय नहीं है, क्योंकि पाप का फल भोगने के लिए उसे नरक जाना होगा । इन घोर यातनाओं को देखते हुए मनुष्य पाप की ओर विशेष ध्यान न देकर रात्रि में कैसे नारी विलास ही करता रहता है । (आत्मोद्धार के उपाय नहीं करता) नरक की तीव्र यातनाओं के, जिसमें निधन होने के समान अनेक पीड़ाएँ अन्तर्निहित हैं, भोग करने के उपरांत उस विशुद्ध कठिनाई के उपभोगार्थ कुछ कर्म के शेष रहने पर वह प्राणी इस पृथ्वी तल पर पुनः आकर शरीर धारण करता है । उसमें उसे तृण गुल्म आदि के भेद से स्थावर (वृक्षादि) योनि की प्राप्ति पूर्वक उसके उग्र दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं । पश्चात् वह कीट योनि में पहुँचता है, वहाँ की घोर व्यथाओं को सहन करके पक्षी शरीर प्राप्त करता है । इसी क्रम के अनुसार वह पक्षी योनि की प्राप्ति के अनन्तर मृग आदि की योनि उससे पशु और पशुओं की योनि में भक्षण करके गो योनि तथा अनन्तर मनुष्य योनि में पहुँचता है । इस प्रकार क्रमशः समस्त योनियों में भ्रमण करते हुए उसे कालान्तर में अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य योनि की प्राप्ति होती है । १७०-१८७। अत्यन्त पुण्य कर्मों के भ्राम्भ

१. नारीषु । २. मरणं त्वरितं येषाम् ।

व्युत्क्रमेणापि मानुष्यं प्राप्यते पुण्यगोचरात् । विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणां गुह्यायवात् ॥१८८
 मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् । ह्योर्नेत्र साधयत्येकं स मृतस्तप्यते चिरम् ॥१८९
 देवानुरागां सर्वेषां मानुष्यमतिदुर्लभम् । तत्सम्प्राप्य कथाः कुर्यान्ति गच्छेन्नरकं यथा ॥१९०
 स्वर्गापिवर्गलाभाय यदि नास्ति समुद्यतः । स्वर्गस्य मूलं मानुष्यं तद्यत्नादनुपालयेत् ॥१९१
 धर्ममूलेन मानुष्यं लब्ध्वा सर्वार्थसाधकम् । यदि लाभे न यत्स्ते मूलं रक्षस्व यत्नतः ॥१९२
 मनुष्यत्वे च विश्वात्वं यः सम्प्राप्यतिदुर्लभम् । न करोत्यात्मनः श्रेयः कोऽन्यस्तत्मादचेतनः ॥१९३
 सर्वेषामेव देशानां मध्यदेशः^१ परः स्मृतः । अतः स्वर्गश्च मोक्षक्रमं यशः सम्प्राप्यते नरैः ॥१९४
 एतस्मिन्भारते पुण्ये प्राप्य मानुष्यमध्यवम् । यः कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा रक्षितः स्वयम् ॥
 यः कुर्यान्नात्मनः श्रेयस्तेनात्मा वंचितः स्वयम् ॥१९५
 भोगभूमिः स्मृतः स्वर्गः कर्ममूलमिरियं मता ! इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गं तदुपभूज्यते ॥१९६
 यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्वर्म समाचर । अस्वस्थश्रातियनेन न किञ्चित्कर्तुमुत्सहेत् ॥१९७

से प्राणी जो व्युत्क्रम से (सभी योक्षियों में न जाकर) भी मनुष्य योनि की प्राप्ति हो जाती है ; क्योंकि छोटे बड़े कर्मों के अनुसार उसके फल भी वैसे ही होते हैं इसीलिए कर्मों की गति विचित्र बतायी गयी है । अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य योनि की प्राप्ति करके जो स्वर्ग एवं मोक्ष का साधक है, प्राणी इन दोनों में से किसी एक की भी प्राप्ति न कर सके, वह मृतक की भाँति है और निधन होने पर चिरकाल तक (नरक यातनाओं आदि द्वारा) संतप्त होता है । देवों और असुरों आदि सभी योनियों से मनुष्य योनि अत्यन्त दुर्लभ एवं परमोत्तम कहीं गई है । इसलिए इसे प्राप्त कर मनुष्य को वह कर्म करना चाहिए, जिससे नरक यातनाओं का अनुभव पुनः न करने पड़े । यदि मनुष्य योनि प्राप्त कर प्राणी स्वर्ग और मोक्ष के प्राप्त्यर्थ समुचित उद्योग नहीं कर सकता है, तो अपने मनुष्यत्व के स्थिर रखने में उसे सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि मनुष्यत्व ही स्वर्गं प्राप्ति का मूल कारण है और मनुष्य योनि की प्राप्ति का मूल कारण धर्म है । इसलिए उस धर्म मूलक मनुष्य योनि के प्राप्त होने पर जो समस्त का साधक हैं, यदि उससे अन्य (स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति रूप) लाभ नहीं कर सकता है, तो उसे अपने मूल की ही रक्षा में निरन्तर प्रयत्न पूर्वक सचेष्ट रहना चाहिए । क्योंकि मनुष्य योनि अति दुर्लभ है और मनुष्यों में ब्राह्मण होना परम दुर्लभ है । ब्राह्मण होने पर जो अपने आत्मा के (मोक्ष रूप) कल्याणार्थ सतत प्रयत्नशील नहीं रहता है, उससे बढ़कर अज्ञानी अन्य कौन हो सकता है । इसी प्रकार पृथ्वी मण्डल के सभी देशों से यह मध्य देश परम श्रेष्ठ है क्योंकि जिसमें रहकर मनुष्य स्वर्ग, मोक्ष, एवं अनुपम यश की प्राप्ति करता रहता है । इस पुण्य भारत वर्ष में इस अनिश्चित मनुष्य जीवन की प्राप्ति करके जिस प्राणी ने अपनी आत्मा का कल्याण सुसम्पन्न किया उसी ने अपनी आत्म रक्षा स्वयं की है और जो आत्मा कल्याण न कर सका उसने स्वयं अपनी आत्मा को वञ्चित किया । १८८-१९५ स्वर्ग को भोग भूमि कहा गया है और इसे कर्म भूमि यहाँ तो कर्म किया जाता है, स्वर्ग में उसी का उपभोग प्राप्त होता है । इसलिए शरीर का स्वास्थ्य जब तक वर्तमान है तब तक धर्मोपार्जन के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि अस्वस्थ होने पर कुछ भी करने में

१. अयं देशः ।

अध्रुवेण शरीरेण हृषुवं यः प्रसाधयेत् । ध्रुवं तस्य परिभ्रष्टमधुवं नष्टमेद च ॥१९८
 आयुषः खण्डखण्डानि निपतन्ति तदाग्रतः । अहोरात्रापदेशेन किमर्थं नावबुध्यसे ॥१९९
 यदा न ज्ञायते मृत्युः कदा कर्म्य भविष्यति । आकस्मिके हि मरणे धृतिं दिन्देत कस्तदा ॥२००
 परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यसि ध्रुवम् । न ददासि तदा कस्मात्पायेयार्थमिदं धनम् ॥२०१
 गृहीतदानपदेया सुखं यान्ति भग्नाध्वनिः । अन्यथा किलश्यते जन्तुः पायेयरहितः पथि ॥२०२
 येषां द्विजेन्द्रवाहिनी पूर्णभाण्डा तु गच्छति । स्वर्वदेशस्य पुरतस्तेषां लःभः पदेष्टे ॥२०३
 इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पापं विवर्जयेत् । पुण्ड्रेन याति देवत्वमपुण्यान्नरकं ब्रजेत् ॥२०४
 दे मनागपि देवेशं प्रपश्नः शरणं शिवम् । तेऽपि घोरं न पश्यन्ति यमस्य इदनं नरा ॥२०५
 किंतु पापैर्महाघोरैः किञ्चिच्चक्तालं शिवालयम् । भवन्ति प्रेतराजानस्ततो यान्ति शिवालयम् ॥२०६
 ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपश्ना महेश्वरम् । न ते तिष्यन्ति यापेन पद्मपत्रमिवाभ्यसा ॥२०७
 तस्माद्विवर्धनेद्भूक्तिमीश्वरे सततं बुधः । तन्माहात्म्यविचारेण भवदोषविरागतः ॥२०८

असमर्थ रहना पड़ेगा । इस अनिश्चित शरीर की प्राप्ति करके जो प्राणी इसी द्वारा अनिश्चित पदार्थ की ही प्राप्ति करता है, उसका निश्चित पदार्थ (स्वर्ग मोक्ष) नष्ट (दुष्प्राप्य) हो जाता है, और अनिश्चित पदार्थ तो नष्ट ही है । तुम्हारे ही सम्मुख तुम्हारी आयु दिन रात्रि के व्याज से खण्ड-खण्ड होकर नष्ट हो रही है, फिर किसलिए अब भी तुम नहीं जाग रहे हो जब यह नहीं मालूम हो रहा है कि किसी की मृत्यु कब होगी, तो इस आकस्मिक निधन के अवसर पर धैर्य धारण करायेगा । १९६-२००। यह तो ध्रुव है कि अपनी यहाँ की सभी वस्तुओं के त्याग पूर्वक यहाँ से अकेले ही यात्रा करोगे तो मार्ग में पायेय के रूप में प्राप्त होने के निमित्त इस धन का दान क्यों नहीं करते । क्योंकि दान रूपी पायेय लेकर जो प्राणी उस महामार्ग की यात्रा करता है उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है । इसके विपरीत पायेय रहित प्राणी को अत्यन्त घोर यातना का अनुभव करना पड़ता है । जिस प्राणी की स्वर्ग की यात्रा के समय मार्ग में उसके आगे आगे पायेय पूर्ण भांड चलता है उसी को प्रत्येक पग पर लाभ होता रहता है । ऐसा जान कर मनुष्य को पाप के त्याग पूर्वक पुण्य का ही उपार्जन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए, क्योंकि पुण्य द्वारा देवत्व की प्राप्ति होती है और पाप द्वारा नरक की । जिस प्राणी ने देवाधिदेव भगवान् शंकर की शरण एकबार भी प्राप्त कर लिया है, उसे भी यमराज के उस घोर मुख का दर्शन नहीं करना पड़ेगा । किंतु उस समय महाघोर पाप करने के नाते शिव जी की आज्ञा वश थोड़े समय तक उसे प्रेत राज अवश्य होना पड़ता है । तथा पश्चात शिवपुरी की प्राप्ति हो जाती है । २०१-२०६। और जो सर्व भाव से भगवान् महेश्वर की शरण प्राप्त करता है जल से कमल पत्र की भाँति पाप से उसका स्पर्श कभी नहीं होता है । इसलिए विद्वान् को उनके महत्त्व के विचार पूर्वक संसार दोष से विरक्त होकर भगवान् शिव की आराधना सदैव करनी चाहिए । पार्थ ! यमराज के लोक में प्राणी पाँच

पापानि पञ्च परमार्थतयैव पार्थ दुःखप्रदानि सुचिरं पितृराज्जलोके ।
 अन्यानि यानि चिरकालभयानकानि वक्तुं न यस्ति किल तानि परिस्फुटानि ॥२०९
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 शुभाशुभफलनिर्देशो नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

शकटव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

यदेतत्ते समाख्यातं गम्भीरं नरकार्णवम् । ब्रतोपदासनियमप्लवेनोत्तीर्थते सुखम् ॥१
 दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं विद्युत्पत्नचञ्चलम् । तथात्मानं समादध्याद्भ्रश्यते न पुनर्यथा ॥२
 दानव्रतमयी कीर्तिर्यस्य स्यादिह देहिनः । परलोकेऽपि स तथा ज्ञायते^१ ज्ञातिवर्द्धनः ॥३
 ज्ञायते नेह नामुद्ध्र व्रतस्वाध्यायवर्जितः । पुरुषः पुरुषव्याघ्र तस्माद्वतपरो भवेत् ॥४
 अत्र ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् । सिद्धेन^२ सह संवादमत्यन्तां ब्राह्मणस्य हि ॥५
 योगद्विसिद्धिचासंसिद्धिः कश्चित्सिद्धो महीतलम् । चचार विकृतं कृत्वा वपुः परमभीषणम् ॥६

प्रकार के दारूण पापों द्वारा चिरकाल तक दुःखों के अनुभव करता रहता है। और अन्य पाप को जिसके कारण चिरकाल तक नरकों के दुःखानुभव करने पड़ते हैं एवं भयानक भी है, कहने भी आवश्यकता नहीं है वे अति प्रसिद्ध हैं । २०७-२०९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्बाद विषयक शुभाशुभ फल वर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

शकटव्रतमाहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—जिस गम्भीर नरक सागर का वर्णन मैंने तुम्हें सुनाया है, व्रत, उपवास एवं नियम के पालन रूप नौका द्वारा प्राणी उसे पारकर सुखपूर्वक रहता है, प्राप्त करके प्राणी को चाहिए कि अपनी आत्मा को गर्त में न गिरा सके । जिस प्राणी की दान-व्रत मयी कीर्ति दिग्दिग्नत में फैली हुई है, उस कीर्ति द्वारा परलोक में भी वह जातिवर्धक ही कहलाता है । पुरुषव्याघ्र ! व्रत एवं स्वाध्याय हीन प्राणी की ख्याति लोक परलोक में कहीं नहीं होती है, इसलिए व्रत नियम का पालन अवश्य करो । इस विषय में तुम्हें एक इतिहास मैं सुना रहा हूँ, जो अवंती पुरी के निवासी उस ब्राह्मण से सिद्ध (योगी) रूप शिव जी ने कहा था । योग की कृद्वि सिद्धि से सम्पन्न होकर एक सिद्ध (योगी) अपने अंगों को अत्यन्त (कोढ़ी का रूप) बनाकर जो देखने में अत्यन्त भयानक भी था, भूमण्डल

१. जनो यज्ञविवर्जितः । २. शिवेन ।

निरीणदन्तो लम्बोष्ठः पिङ्गाक्षस्तनुमूर्द्धजः । त्रुटितैकणर्णो दुर्वणः शीर्णवस्त्रो महोदरः ॥७
 चिपिटाक्षः^१ स्फुटितपाज्जङ्घादचः कृशकूर्परः । दिशः पश्यति संदृष्टो ब्रामोद्भ्रान्तचित्तवत् ॥८
 मूलजालिकविप्रेण दृष्टः पृष्ठश्च को भदान् । कदा स्वर्गात्समयातः केन कार्येण मे वद ॥९
 कच्चिद्दृष्टा त्वया रम्भा भाभासितदिग्ंतरा । चित्तसंमोहनकरी देवानाश्रेकसुन्दरी ॥१०
 गत्वा मदुचनादात्यः निर्वाच्या दोषदर्शिभिः । आवंत्यस्त्वां कुशलिनीं पृच्छति स्म द्विजोत्तमः ॥११
 सिद्धः प्रसिद्धं तं विम्बं प्राहेदं विस्मयान्वितः । कथं त्वयाहृं विज्ञातः स्वर्गादभ्यागतः स्फुटम् ॥१२
 ब्राह्मणस्तमथोवाच निजातोऽसि मया यथा । तथा तेऽहं प्रवक्ष्यामि क्षीणाधौघावधारय ॥१३
 नात्रयं विरुद्धं स्याद्द्वितीयं वा स्वल्पतः । दृष्ट्वा सर्वाङ्गवैरूप्यं विज्ञातोऽसि ततो मया ॥१४
 दुर्लभ्या प्रकृतिः साक्षादनुभूतकरी भवेत् । प्रकृतेरन्यथाभावः र्सव्यथा^२ लक्ष्यते जनैः ॥१५
 विप्रस्यैवं वचः श्रुत्वा जगामादर्शनं शनैः । पुनः कैश्चिद्दहोरात्रैराजगाम स तां पुरीम् ॥१६
 मूलजालकविप्रेण पृष्टः प्राहामरावतीम् । गतोऽहं पृष्ट्वांस्तत्र रम्भां विभ्रमकारिणीम् ॥१७
 शक्तस्यावसरे वृत्ते ब्रजन्त्याः स्वगृहं मया । त्वत्सदेशः समाख्यातः सावदत्को न वेद्धि तम् ॥१८

पर विचर रहा था । १-६। उसके निकले हुए बड़े-बड़े दाँत लम्बा ओष्ठ, पिंग वर्ण की आँखें और शरीर तथा शिर के केश, टूटा हुआ एक कान, दूषित वर्ण, जीर्ण शीर्ण वस्त्र लम्बा उदर, चिपटे नेत्र, रोग के नाते विदीर्ण चरण, स्थूल जंघा, अत्यन्त पतली भुजाओं के मध्य की गाँठे थी । इस प्रकार का रूप धारण किये वह भ्रान्त पुरुष की भाँति प्रसन्न चित्त से चारों ओर देख रहा था । उस समय मूल जाल नामक अवन्ती पुरी का निवासी एवं ब्राह्मण ने उन्हें देखकर यूछा—आप का स्वर्ग से यहाँ के लिए कब प्रस्थान हुआ है और किस उद्देश्य से क्या आप ने उस रम्भा अप्सरा को देखा है, जिसके चलने पर उसकी मनोरम दीप्ति द्वारा दिग्दिगन्त भासित होता चलता है । तथा देवों के चित्र को मुग्ध करने वाली वही एक सुन्दरी है । यदि हाँ तो आप वहाँ पहुँचने पर उस सुन्दरी से जो दोष द्रष्टा के सम्मुख भी सर्वथा दोष हीन है मेरी ओर से कहना—अवन्ति पुरी का रहने वाला वह ब्राह्मण तुम्हारा कुशल समाचार पूँछ रहा था । ७-१। इसे सुनकर वह सिद्ध आश्चर्य चकित होकर उस प्रस्थात ब्राह्मण से कहा—आपने यह कैसे जान लिया कि मैं निश्चित स्वर्ग से ही आया हूँ । इसे सुनकर ब्राह्मण ने कहा—पाप समूह के नाशक ! मैं उस (लक्षण) को बता रहा हूँ, जिसे देखकर मैंने निश्चित किया है कि आप स्वर्ग से ही आये हैं । शरीर के तीन अंग विरूप हैं और द्वासरा स्वरूपतः विरूप है । इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर को विकृत देखकर मैंने निश्चय कर लिया है । क्योंकि यद्यपि प्रकृति अत्यन्त दुर्लभ है, जिसका साक्षात् अनुभव हो रहा है, तथापि प्रकृति जन्य अंग विकार को देखते ही लोग पहचान जाते हैं । ब्राह्मण की ऐसी बात सुनकर वह योगी (शिव) धीरे से अन्तर्हित हो गया । पुनः कुछ दिन के अनन्तर अवन्ती पुरी में आकर इस योगी ने ब्राह्मण को दर्शन दिया । मूलजाल नामक ब्राह्मण के पूछने पर उसने कहा—मैंने देवलोक जाकर उस विलासिनी रंभा से उस समय जब वह देवेन्द्र के यहाँ से होकर अपने घर जाती थी, पूछा—अवन्ती पुरी का निवासी मूलजाल नामक ब्राह्मण

१. चिपिटाक्षः स्फुटितखण्डजाकृशकटित्याः—इत्यशुद्धः पाठः कस्मिश्चित्पुस्तके दृश्यते ।
 २. सर्वव्यालक्ष्यते जनैः ।

विद्यया कलया चापि पौरुषेण व्रतेन च । तपसा वा पुमान्सत्यों दिवि विजायते चिरम् ॥१९
 ब्राह्मणस्त्तमयोदाच मुग्धा दग्धाग्रिसंभवा । न भक्षयानि शकटं व्रतेनैतेन देति भास् ॥२०
 तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा स सिद्धः सुविशुद्धधीः । प्रहस्यामन्त्र्य^१ तं विप्रं जगत्मादर्शनं पुनः ॥२१
 कदाचिच्च रता तेन स्वर्गमार्गं यदृच्छ्या । दृष्ट्वा रम्भां द्विजप्रोक्तं सर्वमेव निवेदितम् ॥२२

रम्भोवाच

को न जानामि तं विप्रं शकटव्रतचारिणम् । मूलजालैर्दर्तयन्तं महाकालवनाश्रयम् ॥२३
 दर्शनादथ सम्भाषादुपकारात्सहस्राद् । चतुर्धा स्नेहनिर्बन्धो नृणां सञ्जायतेऽधिकः ॥२४
 न दर्शनं न सम्भाषा कदाचित्सह तेन मे । नामश्वरणमात्रेण स्नेहः सन्दर्शितो^२ महान् ॥२५
 इत्येवमुक्त्वा रम्भोरुं रम्भां जम्भारिपोन्तिकम् । विस्मयोत्फुल्लनयना जगाम गजगामिनी ॥२६
 गत्वा निवेदयामास स्नेहव्रतविचेष्टितम् । पुरतो रुद्धहृदया ब्राह्मणस्य च धीमतः ॥२७
 शक्रः प्रोवाच चार्वर्णीं गीर्वाणहृदयङ्गनाम् । किमानयामि तं विप्रं समीपं तव सुव्रतम् ॥२८

तुम्हारा कुशल समाचार जानना चाहता है। इसे सुनकर उसने उत्तर दिया कि वह कौन है, मैं उसके विषय में कुछ भी नहीं जानती हूँ। तथा यह भी कहा कि—विद्या, कला, पौरुष, व्रत, और तप द्वारा ही पुरुष इस (स्वर्ग) लोक में प्रख्यात होता है और उसका यश चिरकाल तक स्थायी भी रहता है। अनन्तर उस ब्राह्मण ने कहा कि—मैं शकट व्रत का पालन कर रहा हूँ, उसका भक्षण नहीं करता, क्या वह मुग्धा, जो दग्ध अर्थि द्वारा उत्पन्न हुई है, यह भी जानने में संकोच कर रही है। ब्राह्मण की ऐसी बात सुनकर वह विशुद्ध बुद्धि वाला योगी हँस कर उससे बात करने के उपरांत पुनः अलंकृत हो गया। स्वर्गमार्ग में यथेच्छ ऋषण करते हुए उस योगी ने किसी समय वहाँ रम्भा को देखा और उससे ब्राह्मण की कही हुई सम्पूर्ण बातें निवेदित किया। उसे सुनकर रम्भा ने कहा । १२-२२

रम्भा बोली—महाकाल नामक वन में निवास करते हुए उस मूल जाल नामक ब्राह्मण को जो शकट व्रत का पालन कर रहा है, मैं सर्वथा नहीं जानती। क्योंकि दर्शन, सम्भाषण, उपकार और साथ-साथ आसनासीन होने इन्हीं चार प्रकार से मनुष्यों के स्नेह सूत्र अधिक दुढ़ होते हैं, किन्तु उस ब्राह्मण के साथ मेरे न कभी दर्शन हुआ न किसी प्रकार से कोई बात-चीत ही दुर्लभ, केवल नाम ही सुनने से उसने महान् स्नेह प्रकट किया है। जम्भासुर के विनाशक उन शिव जी से कदली स्तम्भ के समान ऊरु वाली उस रम्भा ने उसके नेत्र आश्चर्य चकित होने के नाते कमल की भाँति खिल उठे थे, इतना कहकर गज की भाँति मन्दगति से वहाँ से धीरे-धीरे प्रस्थान किया। उसने वहाँ (देवलोक) में जाकर उस बुद्धिमान् ब्राह्मण के स्नेह समेत व्रत को जिस ब्राह्मण के लिए उसका हृदय इन्द्र के सामने ही आसक्त होने के नाते अवश्य ज्ञात हो गया था, तथा उसकी चेष्टाओं को विस्तार पूर्वक निवेदन किया। उसे सुनकर देवेन्द्र ने उस सुन्दरी से जो देवों के हृदय को सर्वथा अपने अधीन किये रहती है, कहा—क्या, उस सविधान व्रत नियम पालन करने वाले ब्राह्मण को तुम्हारे समीप ही मँगवा दूँ। इतना कहकर उन्होंने उस ब्राह्मण

१. संभाष्यापूज्य । २. संवर्द्धितः ।

दिव्यमाल्दाम्बरधरं दिव्यत्रयतुलेषनम् । विभानवरमारोप्य दर्शयामात्स तं पुनः ॥२९
 तत्रस्यः स द्विजो भोगान्भुनक्ति सह रम्भया । शक्टन्नतमाहात्म्यमित्येतत्ते मयोदितम् ॥३०
 राज्यश्रियं जगति सर्वजनोपभोग्यामाप्नोति शक्तशिवकेशवयोर्निवासम्^१ ।
 नाप्राप्यमस्ति भुवने सृद्धद्वतानां तस्मात्सदा व्रतपरेण नरेण भाव्यम् ॥३१
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 शक्टन्नतमाहात्म्यकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

तिलकव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उत्ताच

ब्रह्मोश केशवादीनां गौर्या गणपतेस्तथा । दुर्गासूर्याग्निसोमानां व्रतानि मधुसूदन ॥१
 शास्त्रान्तरेषु दृष्टानि तव बुद्धिगतानि च । तानि सर्वाणि मे देव वद देवकीनन्दन ॥२
 प्रतिपत्क्रमयोगेन विहिता यस्य या तिथिः । देवस्य तस्यां यत्कार्यं तदशेषेण कीर्तय ॥३

को, जो दिव्य वस्त्र, माला, एवं दिव्य चन्दनादि से विभूषित किया गया था, सुसज्जित विमान द्वारा मँगा कर उसे दिखाया । अनन्तर वह ब्राह्मण वहाँ रहकर उस रम्भा के साथ अनेक भाँति के भोगों के उपभोग करने लगा । इस प्रकार मैंने शक्ट व्रत का माहात्म्य तुम्हें सुना दिया । क्योंकि व्रतों के नियमों को दृढ़ता से पालन करने वाले मनुष्य को संसार में इस प्रकार की राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, जिसके उपभोग सभी लोग कर सकते हैं, और शिव, तेश भगवान् विष्णु के भवन का निवास भी उसे प्राप्त होता है । अर्थात् उसे लोक में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं हो जाती है । इसलिए मनुष्यों को सदैव व्रती होना परमावश्यक है । २३-३१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्बाद विषयक शक्ट-व्रत-
 माहात्म्य वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

तिलकव्रत माहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—मधुसूदन ! ब्रह्मा, शिव और केशवादि देव तथा गौरी, गणपति, दुर्गा, सूर्य, अग्नि, एवं चन्द्र आदि के व्रतों को बताने की कृपा करें । देवकीनन्दन ! शास्त्रों पुराणों में जितने व्रत कहे गये हों और उसके अतिरिक्त जो आप के हृदय में निहित हैं, उन सब की व्याख्या करने की कृपा करें । उसी प्रकार प्रतिपदा आदि के क्रम से जिस देव की जो तिथि हो, तथा उसमें जो कार्य सुसम्पन्न किया जाता हो, सभी कुछ की व्याख्या समेत वर्णन कीजिये । १-३

श्रीकृष्ण उवाच

वसन्ते किंशुकाशोकशोभने प्रतिपत्तिथः । शुबलः तस्यां प्रकुर्वति स्नानं नियमतत्यरः ॥४
 नारी नरो वा राजेन्द्र सत्तर्प्य पितृदेवताः । नद्यास्तीरे तडागे वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥५
 पिष्टातकेन^१ विनिखेद्वत्सरं पुरुषाकृतिम् । ततश्वन्दनचूर्णेन पुष्पधूपादिनाच्चयेत् ॥६
 दीपैश्चापि सनैवेद्यैः पूजयेद्वत्सरं तदा । मासर्तुनामभिः पश्चान्नप्रस्कारान्तयोजितैः ॥
 पूजयेद्ब्राह्मणान्विद्वान्मन्त्रैर्वेदोदितैः शुभैः ॥७
 सम्वत्सरोऽसिपरिवत्सरोसीडावत्सरोऽभित्तरोऽसि उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रस्ते कल्पन्तामर्थ-
 मासस्ते कल्पतां सम्वत्सरस्ते कल्पताम् ॥८
 एवमध्यर्च्य वासोभिः पश्चात्तमभिवेष्टयेत् । कालोद्भूवैमूलफलैनैवेद्यैमादिकादिभिः ॥९
 ततस्तं प्रार्थयेत्पश्चात्पुरः स्थित्वा कृताङ्ग्निः । भगवन्तस्त्वत्प्रसादेन वर्षं शुभदमस्तु मे ॥१०
 एवमुक्त्वा यथाशक्ति द्विद्विप्राय दक्षिणाम् । ललाटपट्टे तिलकं कुर्याच्चादिनपञ्चज्ञम् ॥११
 ततः प्रभृत्यनुदिनं तिलकालंकृतं मुखम् । धर्यं सम्वत्सरं यावच्छिंशनेव नभस्तलम् ॥१२
 एवं नरो वा नारी वा ब्रतमेतत्समाचरेत् । सदैव पुरुषव्याघ्रं भोगान्भुवि भुनक्त्यसौ ॥१३
 भूताः प्रेताः पिशाचाश्च दुर्वारा दैरिणो ग्रहाः । निरर्थका भवत्येते तिलकं वीक्ष्य तत्क्षणात् ॥१४
 पूर्वमासीन्महीपालो नान्ना शत्रुञ्जयो^२ जयी । चित्रलेखेति तस्याभूद्भार्या चारित्रभूषणा ॥१५

श्रीकृष्ण जी बोले—राजेन्द्र ! वसंत क्रतु में मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि किंशुक (पलाश) और अशोक को सुशोभित करती है । उसमें स्त्री पुरुष सभी प्रणियों को चाहिए कि नदी, सरोवर, अथवा घर में कूप जल से नियम पूर्वक स्नान करके पितर एवं देवों के तर्पण आदि कर्म के उपरान्त उसी स्थान पर पीठी द्वारा पुरुष के समान वत्सर (वर्ष) की प्रतिमा बनायें और चन्दन चूर्ण, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य पूर्वक उसकी पूजा करके मास और क्रतु के नाम में नमस्कार पद लगाकर (वसंताय नमः वसतमावाह्यामि, स्थापयामि पूजयामि) उन शुभ वैदिक मंत्रों द्वारा विद्वान् ब्राह्मणों की अर्चना करें । तदुपरान्त आप संदत्सर, परिवत्सर, ईजवत्सर, अभिवत्सर रूप हैं, अतः मेरे उषाकाल, दिन रात, पक्ष, मास, क्रतु, और संवत्सर के शुभोदय करते हैं । इस प्रकार उनकी सविनय पूजा करने के उपरान्त वस्त्र से उन्हें आवेष्टित करना चाहिए और सामयिक फल, फूल, नैवेद्य, भोदक आदि मधुर पदार्थों द्वारा उन्हें तृप्त कर उनके सम्मुख ह्राथ जोड़कर खड़ा हो जाये तथा इस भाँति की प्रार्थना करे कि भगवन् आप की कृपा से वर्षं शुभदायक हो । इतना कहकर ब्राह्मण को यथाशक्ति दक्षिणा अर्पित करे । उसी समय अपने भाल में सुगन्ध मिथित चन्दन का तिलक करके पश्चात् तभी से प्रारम्भ कर प्रतिदिन तिलक से अपने मुख को चन्द्रमा द्वारा आकाश मण्डल की भाँति प्रतिदिन सुशोभित करता रहे । पुरुषश्रेष्ठ ! जो पुरुष या स्त्री इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करते हैं वे इस पृथिवी तल पर सदैव भोगों के उपभोग करते रहते हैं । भूत, प्रेत, पिशाच और अनिष्ट ग्रहमण्डल जो अनिवार्य होते हैं, उस तिलक को देखकर उसी समय शक्ति हीन हो जाते हैं । ४-१४। पहले समय में शत्रुञ्जय नामक एक राजा था, जो रणस्थल में सदैव विजयी रहता था चित्रलेखा

१. सुपिष्टकेन । २. सत्त्वजयो जयी ।

तया वतमिदं चैत्रे गृहीतं द्विजसन्निधौ । सम्बत्तरं पूजयित्वा धृत्वा^१ हृदि जनार्दनम् ॥१६
 असूयुः क्षेप्तुकामो वा समागच्छति यः पुरः । प्रयाति प्रियकृतस्या दृष्ट्वा मुखमधोभुखः ॥१७
 सपलीदपर्पिहरा वशीकृतमहीतला । भर्तुरिष्टा प्रहृष्टा च मुखमास्ते निराकुला ॥१८
 तावत्करेणाभिभूतो भर्ता पुत्रः सवेदनः । शिरोऽर्त्या नाशं प्रथातः सुहृदां दुःखदायकः ॥१९
 धर्मराजपुरं प्राप्तुं सर्वभूतापहारकः । तस्मिन्क्षणे महाराजः धर्मराजस्य किङ्कराः ॥२०
 तस्य द्वारमनुप्राप्ताः प्रवेष्टुं गृहमञ्जसा । शत्रुञ्जयं समानेतुं कालमृत्युपुरःसरा ॥२१
 पार्श्वस्थितां चित्रलेखां तिलकालङ्कृताननाम् । दृष्ट्वा प्रनष्टसङ्कल्प्याः परावृत्य गताः पुनः ॥२२
 गतेषु तेषु स नृपः पुत्रेण सह भारत । नीरुजो बुभुजे भोगान्यूर्वकर्माञ्जिताञ्छुभान् ॥२३
 एतद्व्रतं महाभाग कीर्तिं ते भोदयम् । शङ्करेण^२ समाख्यातं मम पूर्वं युधिष्ठिर ॥२४
 एतत्विलोकतिलकालकभूषणं ते ख्यातं ब्रतं सकलदुःखहरं परं च ।

इत्थं समाचरति यः स मुखं विहृत्य मर्त्यः प्रयाति पदमापदि पद्मयोनेः ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरस्वादे तिलकव्रतकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ।८

नामक उसकी पत्नी थी, जिसका चरित्र भूषण की भाँति आदर्श था । उसने चैत्र मास में किसी विद्वान् द्राह्मण को सादर बुलवाकर उनके सम्मुख इस व्रत नियम को सविधान सुसम्पन्न किया । उसने संवत्सर की अर्चना करते समय भगवान् जनार्दन को व्यान द्वारा अपने हृदय में धारण किया था, जिसके फलस्वरूप जो कोई प्राणी निन्दा के व्याज से उसके सम्मुख उपस्थित होता था, वह वहाँ पहुँचते ही अत्यन्त प्रिय एवं हितैषी होकर उसके मुख दर्शन करते ही अपना नीचे मुख कर लेता था । उसने अपनी सपलियों के गर्व को चर्चाकर इस पृथ्वी मण्डल को अपने अधीन कर लिया था और उसके समान उसके पति को कोई स्त्री प्रिय नहीं थी । इस प्रकार वह सदैव हृषित रहकर अत्यन्त मुखी जीवन व्यतीत कर रही थी । उसी बीच कर द्वारा तिरस्कृत होने पर उसके पति पुत्र, शिर की वेदना से अत्यन्त पीड़ित हुए और कुछ समय के अनन्तर उनका निधन हो गया वे दोनों सहृदय मुहृदगण को भी अपमानित करते थे । उन्हें धर्मराज की पुरी ले जाने के लिए उनके द्वात गण राजमहल के द्वार पर आकर खड़े हुए क्योंकि काल मृत्यु होने पर शत्रुञ्जय को वहाँ ले जाना परमावश्यक था । किन्तु अपने पार्श्वभाग में स्थित उस चित्रलेखा को महाराज धर्मराज के दूतों ने देखा, उसका मुख मण्डल तिलक द्वारा अत्यन्त सौन्दर्य पूर्ण दिखायी देता था । पश्चात् उनका संकल्प नष्ट हो गया, जिसके लिए वे वहाँ आये थे, और लौटकर अपने लोक चले गये । भारत ! उन दूतों के चले जाने पर पुत्र समेत वह राजा जीवित होकर आरोग्य रहते हुए अनेक भाँति के भोगों का उपभोग किया, जो जन्मान्तरीय कर्मों द्वारा अर्जित होकर संचित थे । युधिष्ठिर ! महाभाग ! इस अनुपम और महोदय व्रत का वर्णन मुझसे शङ्कर ने पहले ही किया था । इस प्रकार मैंने इस तिलक व्रत को तुम्हें बता दिया, जो तीनों लोकों के भूषण, समस्त दुःखों के अपहर्ता और सर्वश्रेष्ठ हैं । इसके सविधान सुसम्पन्न करने वाला प्राणी इस मर्त्यलोक की सभी कठिनाईयों को सरलता से पार कर सब भाँति के सुखी जीवन व्यतीत करने के उपरांत ब्रह्म पद की प्राप्ति करता है । १५-२५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद विषयक
 तिलकव्रतवर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त । ८

अथ नवमोऽध्यायः

अशोकव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

आश्रयुच्छुक्लपक्षस्य प्रथमेऽति दिनोदये । अशोकं पूजयेद्वक्षं प्रखडशुभपल्लवम् ॥१
 विश्वदेः स्पत्तधान्यैश्च गुणकैर्मोदकैः शुभैः । फलैः कालोऽद्वैदिव्यैर्जातिकरैः सदाडिमैः ॥२
 पुष्टधूपादिना तद्वृजयेत्तद्विनद । अशोकं पांडवश्रेष्ठं शोकं नाप्नोति कुत्रचित् ॥३
 पितृभ्रातृपतिश्वश्रूश्वशुराणां^१ तथैव च । अशोकशोकशनो भव सर्वद नः कुले ॥४
 इत्युच्चार्य ततो दद्यादर्थं श्रद्धासमन्वितम् । पताकाभिरलङ्घृत्य प्रच्छाद्य शुभवाससा ॥५
 दमयन्ती यथा स्वाहा यथा वेदवती सती । तथाशोकव्रतादस्माज्ञायते पतिवल्लभा ॥६
 वने वजन्त्या सद्धर्मः सीतया सम्प्रदर्शितः । दृष्ट्वाऽशोकं वने पार्थं पल्लवालङ्घृताभ्वरम् ॥७
 हृत्वा समोपे भर्तारं देवरं च तिलाक्षते । दीपालङ्घृतैवेद्यधूपसूत्रफलार्च्चनैः ॥८
 अर्चयित्वा ह्यार्थतोऽसौ रक्ताशोको युधिष्ठिरः । मैथिल्या प्राञ्जलिर्भूत्वा शृण्वता राघवस्य च ॥९
 चिरं जीवन्तु से वृद्धः श्वशुरः कोशलेश्वरः । भर्ता मे देवराश्वैव जीवन्तु भरतादयः ॥

अध्याय ९

अशोकव्रत माहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—आश्विन मास के खुक्ल पक्ष के प्रथम दिन में सूर्योदेव के समय उस अशोक वृक्ष की पूजा करनी चाहिए, जो शुभ पल्लवों द्वारा विभूषित हों। अनंग पाण्डवश्रेष्ठ ! सप्त धान्य, गुण मोदक, सामयिक दिव्य फल, नारियल, अनार, पुष्प, धूप, दीप द्वारा अशोक वृक्ष का प्रेम पूर्वक पूजन करने वाले प्राणी कभी भी शोक नहीं करता है। हे पाण्डवश्रेष्ठ ! पितर, भ्राता, पति, श्वशुर सास आदि परिवार के सभी प्राणियों के शोक का नाश करो । १-४। इतना कहकर श्रद्धा समेत अर्थ, प्रदान करे, अत्तन्तर पताका तथा शुभ वस्त्रों से उस वृक्ष को मुशोभित करके प्रार्थना करे कि देव ! दमयन्ती, स्वाहा, और सती वेदवती के समान मैं भी हस्त अशोक व्रत द्वारा पति वल्लभा हो जाऊँ। पार्थ ! वनगमन के समय जानकी जी ने पल्लवों से विभूषित उस सर्वश्रेष्ठ अशोक के दर्शन द्वारा ही उस महान् सद्धर्म को सुसम्पन्न किया था। युधिष्ठिर ! उस अशोक वृक्ष के समीप पहुँच कर जानकी जी ने अपने समीप पति और देवर को बैठाकर तिल, अक्षत, दीप, नैवेद्य, धूप, सूत्र एवं फल द्वारा उसकी सप्रेम अर्चना के उपरांत उस रक्ताशोक की उन्होंने प्रार्थना की भगवान् रामचन्द्र जी के सामने बैठी हुई जानकी जी ने अञ्जलि बाँधकर इस भाँति कहना प्रारम्भ किया । ५-९। कि—मेरे वृद्ध श्वशुर कोशलेश्वर चिरजीवन प्राप्त करें। उसी प्रकार मेरे पति, भरत आदि देवर और माता कौशल्या जी चिरजीवन प्राप्त करे जिससे मैं पुनः उनके

१. पितृभ्रातृपतिश्वश्रूसुतानां च तथैव च ।

कौशल्याभिषि जीवन्तीं पद्येयसिति मैथिली

॥१०

यथाचे तं महाभागा दुमं सत्योपयाचनम् । प्रदक्षिणमुपादृत्य ततस्ते प्रययुः पुनः ॥११
एवमन्यापि या नारी पूजयेदभुवि तं नगम् । तिलतण्डुलसम्मश्रैर्वगोधूमसर्पनैः ॥१२
क्षमाप्य वन्दयेन्मूलं पादं रक्तपल्लवम् । मन्त्रेणानेन कौतेय प्रणम्य स्त्री पतिव्रता ॥१३
महावृक्षं महाशालं मकरध्वजमन्दिरं । प्रार्थये त्वां महाभागं बनोपवनभूषणं ॥१४
एवमाभाष्य तं वृक्षं दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । सखीभिः सहितः भवती ततः स्वभवनं द्रजेत् ॥१५

याः शोकनाशनमशोकतरं तश्यः सम्पूजयन्ति कुमुकाक्षतधूपदीर्घैः ।

ताः प्राप्य सौख्यमतुलं भुवि भ्रार्तुजानं नारीपदं प्रमुदिताः पुनराप्नुवन्ति ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे

अशोकव्रतवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

करवीरव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्रथमेऽह्नि दिनोदये । देवोद्यानभवं हृद्य करवीरं समर्चयेत् ॥१

दर्शन कर सकूँ । इस प्रकार उस महापराक्रमी जानकी ने उस सत्यनिष्ठं वृक्ष से याचना करके प्रदक्षिणा के उपरांत सबके साथ वहाँ से प्रस्थान किया । इसी भाँति इस पृथ्वी मण्डल के अन्य नारी को भी तिल, अक्षत, मिथ्रित, जवा, गेहूँ, और राई द्वारा उस रक्त पल्लव शोभित वृक्ष के मूल भाग में सप्रेम पूजन करना चाहिए । कौन्तेय ! इस मंत्र द्वारा पतिव्रता स्त्री उनकी प्रार्थना करे—महावृक्ष ! आप महाशाखा वाले एवं काम गृह हैं वन, उपवन के भूषण ! मैं आप की प्रार्थना कर रही हूँ । इस प्रकार प्रार्थना करके ब्राह्मण को दक्षिणा देने के उपरांत अपनी सखियों समेत व अपने गृह को प्रस्थान करे । इस प्रकार जो स्त्री उस शोक नाशक अशोक वृक्ष की पृष्ठ, अक्षत, धूप, एवं दीप द्वारा अर्चना करती है उसे इस भूतल में अपने पति द्वारा अतुलं सुख की प्राप्ति पूर्वक पुनः गौरीपद की प्राप्ति होती है । १०-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व के श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

अशोकव्रतवर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

करवीरव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—ज्येष्ठ मास के शुक्ल प्रतिपदा के दिन सूर्योदय समय में किसी देवालय की बाटिका में स्थित करवीर वृक्ष की अर्चना करनी चाहिए । रक्तवस्त्र में उसे आवेष्टित करके गन्ध, धूप,

रक्ततनुपरीधानं^१ गन्धूपविलेपने: । दिरुद्देः^२ सप्तधान्यैश्च नारङ्गैर्बीजपूरकः ॥२
गणकैर्घटकैर्दिव्यैर्नालिकैरैः^३ सुशोभनैः । सुजलाक्षततोयेनानेनेवं क्षमापयेत् ॥३
करवीर विषावास नमस्ते भानुवल्लभ । मौलिमण्डनसद्रुत्न नमस्ते केशवेशयोः ॥४
आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं सत्यं च ।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥५

एवं भक्त्या सम्भ्यर्च दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । प्रदक्षिणामथो छृत्वा ततः स्वभदनं लज्जेत् ॥६
एतद्वतं महाभाग^६ सूर्याराधनाकम्यया । अनसूययः च क्षमया सावित्र्या सत्यभामया ॥७
दमयन्त्या सरस्वत्या गायत्र्या गंगया तथा । अन्याभिरपि नारीभिर्मर्त्यलोकेऽप्यनुष्ठितम् ॥
करवीरवतं पार्थं सर्वसौख्यफलप्रदम् ॥८

सम्पूज्य रत्नकुमुमाञ्चितसर्वशाखं नीतैर्दैस्ततततनुं करवीरवृक्षम् ।
भुक्त्वा मनोऽभिलिषितानभुवि भव्यभोगानन्ते प्रयाति भ्रवनं भरताश्य भानो ॥९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
करवीरवतवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १०

चन्दन, सप्त धान्य, नारङ्गी, नेतृ, गुणक, और दिव्य नारियल को समर्पित करके अक्षत जल से सेचन करने के उपरांत इस मंत्र द्वारा क्षमा प्रार्थना करे—विषावास, करवीर ! आप सूर्य के अत्यन्त प्रिय पात्र हैं एवं भगवान् विष्णु और महादेव जी के मौलि मंडल के लिए उत्तम रत्न रूप हैं अतः आप को नमस्कार है । पश्चात् ‘आकृष्णेन रजसेति’ मंत्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति भाव से उनकी अर्चना करने के उपरांत ग्राह्यण को दक्षिणा प्रदान करे और अनन्तर प्रदक्षिणा करके अपने घर को प्रस्थान करे । महाभाग ! सूर्य की आराधना करने की इच्छा से इस मर्त्यलोक में इस व्रत को अनसूया, क्षमा, सावित्री, सत्यभामा, दमयन्ती, सरस्वती, गायत्री गङ्गा आदि स्त्रियों ने सुसम्पन्न किया है । इस प्रकार पार्थ ! यह करवीरवत सभी प्रकार का सुख प्रदान करता है । भरताश्य ! इस प्रकार करवीर वृक्ष के सविधान पूजन करने पर, जिसमें उसकी प्रत्येक शाखाएँ पुष्टों से भूषित और वह स्वयं तीन दलों से आंच्छादित किया गया हो, उस मनुष्य को इस लोक में यथेच्छ समस्त भागों के उपभोग करने के उपरांत भगवान् सूर्य के लोक की प्राप्ति होती है । १-९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्बाद में
करवीर वतवर्णन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त । १०।

अथैकादशोऽध्यायः

कोकिलाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

स्वभर्ता सह सम्बद्धमहात्मेहो यथा भवेत् । कुलस्त्रीणां तदाचक्षव व्रतं भम सुरोत्तम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

यमुनायास्तटे पूर्वं मथुरास्ते पुरी शुभा । तस्यां शत्रुघ्ननाम्नाभूद्वाजा रामप्रतिष्ठितः ॥२
तस्य भार्या कीर्तिमाला नान्नासीत्प्रथिता भुवि । तया प्रणम्य भगवान्वशिष्ठो मुनिपुज्ज्वः ॥३
पृष्ठः सुखं मुनिश्रेष्ठं कथं समुपजायते । ब्रूहि मे तिलसम्बन्धकारणं सतमुत्तमम् ॥४
एवमुक्तस्तथा ज्ञानी वशिष्ठः कीर्तिमालया । ध्यात्वा मुहूर्तमाचर्ख्यौ कोकिलाव्रतमुत्तमम् ॥५

श्रीवशिष्ठ उवाच

आषाढपूर्णिमायां तु सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते । सङ्कूल्ययेन्मासनेकं श्रावणे श्वःप्रभृत्यहम् ॥६
स्नानं करिष्ये नियतः ब्रह्मचर्यस्थिता सती । भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम् ॥७
इति सङ्कूल्यं पुरुषो नारी वा ब्राह्मणांतिके । प्राप्यानुज्ञां ततः प्रातः सर्वसामग्रिसंयुतः ॥८
पुरुषः प्रतिपत्कालाद्वन्तधावनपूर्वकम् । नद्यां गत्वा तथा वाप्यां तडागे गिरिनिर्झरे ॥९

अध्याय ११

कोकिलाव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—सुरोत्तम ! मुझे वह व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिसके सुसम्पन्न करने पर कुल स्त्रियाँ अपने पति का अगाध स्नेह प्राप्त करती हैं । १

श्रीकृष्ण जी बोले—यमुना के पूर्वी टट पर मथुरा नामक एक यम पुरी थी, जिसमें राजा रामचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित शत्रुघ्न नामक राजा रहता था । उसकी पत्नी का नाम कीर्तिमाला था, जो इस भूमण्डल में प्रख्यात पतिव्रता थी । उसने एक बार मुनिश्रेष्ठ भगवान् वशिष्ठ से सादर प्रणाम पूर्वक पूछा कि—मुनीश्वर ! मुझे वह उत्तम व्रत बताने की कृपा करें, जिससे अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है और वह व्रत तिलाक्षत द्वारा सुसम्पन्न किया जाता हो । इस भाँति कीर्तिमाला के पूछने पर ज्ञानी वशिष्ठ जी ने मुहूर्त मात्र द्यम्भन करके उस सर्वश्रेष्ठ, कोकिला नामक व्रत का विधान कहना प्रारम्भ किया—२-५

श्रीवशिष्ठ जी बोले—आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन सायंकाल में संकल्प करे कि कल से आरम्भ कर पूरे श्रावण मास में ब्रह्मचर्दि के द्वितीय पालन पूर्वक प्रतिदिन नियत स्नान करेंगी और रात्रि में भोजन, भूमि शयन एवं प्राणियों पर दया करती रहेंगी । इस प्रकार स्त्री या पुरुष किसी ब्राह्मण विद्वान के समक्ष संकल्प करके प्रातः काल प्रतिपदा के समय सम्पूर्ण सामग्री समेत किसी नदी, बावली, सरोवर, अथवा

स्नानं कुर्याद्ब्रती पार्थं सुगन्धामलकैस्तिलैः । दिनाष्टकं तथा पश्चात्सदौषध्या पुनः पृथक् ॥१०

वचयाष्टौ पुनः दिष्टा शिरोहृषिमर्दनम् । स्नात्वा ध्यात्वा रविं चैव वन्दित्वा च पितृनय ॥११

तर्पयित्वा^१ तिलाष्टैः कोकिलां पक्षिरूपिणीम् । कलकण्ठीं शुभैः पूष्यैः पूजयेच्चम्पकोद्भैः ॥१२

पत्रैर्वा धूपनैवेद्यदीपालक्तकचन्दनैः । तिलतन्दुलदूर्वाग्रैः दूजमित्ता क्षमापयेत् ॥

नित्यं तिलब्रती भक्त्या भन्नेणानेन पाष्टव् ॥१३

तिलसहे तिलसोऽस्ये तिलवर्णे तिलप्रिये । सौभाग्यं द्रव्यपुत्रान्श्च देहि मे कोकिले नमः ॥१४

दत्युच्चार्य ततः पश्चादगृहमन्येत्य संयतः । कृत्वाहारं स्वपेत्यार्थं यादन्मासः समाप्तुते ॥१५

मासान्ते ताम्रपात्रां तु कोकिलां तिलपिष्टजास् । रत्ननेत्राः स्वर्णपक्षां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१६

वस्त्रैर्दुर्नर्तुर्द्युर्युक्तां श्रावण्णं कुण्डलेऽथ वा । अश्रूशुरवर्णं वा दैवज्ञे वा पुरोहिते ॥

व्यासे वा सम्प्रदातव्या व्रतिभिः शुभकाम्यया ॥१७

एवं या कुरुते नारी कोकिलावत्तमादरात् । सप्त जन्मनि सौभाग्यं सा प्राप्नोति सुविस्तरम् ॥१८

निःसापत्त्यं पर्ति भव्यं स्तन्नेहं प्राप्य भूतले । मृता गौरीपुरं याति विमानेनार्कवर्चसा ॥१९

एतद्वतं वशिष्ठेन तुनिना कथितं पुरा । तथा चानुच्छितं पार्थं समस्तं कीर्तिमालया ॥२०

पर्वत के झारने में स्नान करे । पार्थ ! उस व्रती को चाहिए कि सुगन्धित आँवले, तिल तथा समस्त औषधियों को पृथक्-पृथक् देह में लगाकर पुनः वच आदि के ढूँढ़ द्वारा शिर के केशों को भली भाँति शुद्ध करे । पश्चात् स्नान, सूर्य के ध्यान पूजन और पितरों की वन्दना के अनन्तर उस पक्षी रूपी कोकिला की, जो कलकंठ से विभूषित है, तिलभूषणों द्वारा सर्वाङ्ग सुन्दर आठ प्रतिमा बनाकर चम्पा के पुष्पों अथवा उसके पत्रों, धूप, धूप, दीप, नैवेद्य, अलक्तक (महावर) चन्दन, तिलाक्षत और दूर्वा के अंकुरों द्वारा उसकी पूजा सुसम्पन्न करके क्षमा प्रार्थना करे । पाण्डव ! भक्तिपूर्वक उस तिलब्रती को उसी भाँति प्रतिदिन इसी मंत्र द्वारा प्रार्थना करनी चाहिए तिल सहे, तिल सौख्ये, तिल के समान वर्ण वाली एवं तिल प्रिये ! कोकिले ! मैं तुम्हें नमस्कार कर रही हूँ, मुझे आप सौभाग्य, पुत्र, द्रव्य आदि प्रदान करने की कृपा करती रहें । ६-१४। इस प्रकार प्रार्थना करके घर जाकर संयम पूर्वक आहार करके शयन करे । पार्थ ! मास की समाप्ति तक उसे इसी भाँति सुसम्पन्न करते हुए मास के अन्त में उस कोकिला पक्षी को जो ताम्रपात्र में प्रतिष्ठित और तिल की पीठी से उसकी देह, रत्न से नेत्र और सुवर्ण के पक्ष से विभूषित हों, एवं वस्त्र, धान्य, गुडों से संयुक्त हों, सादर ब्राह्मण को समर्पित कर दे । अपनी शुभकामनाओं की पूर्ति के लिए सास ससुर वर्ग के किसी को अथवा, ज्योतिषी, पुरोहित या व्यास को उसे समर्पित कर देना चाहिए । इस भाँति जो स्त्री इस कोकिला व्रत को सादर सुसम्पन्न करती है, उसे इस भूतल में वह सपली हीन रहकर अपने पति के उस भव्य एवं अगाध स्नेह का प्रिय पात्र बनती है अनन्तर निधन होने पर सूर्य के समान तेज पूर्ण विमान पर सुशोभित होकर गौरी पद की प्राप्ति करती है । पार्थ ! इस प्रकार वशिष्ठ मुनि ने पहले समय में उसकी कीर्तिमाला से इस व्रत का वर्णन किया था, जिसने भली भाँति उसे सुसम्पन्न किया है ।

१. तर्पयित्वा लिखेदष्टौ कोकिलाः पक्षिरूपिणीः । कलकण्ठीः ।

तस्याश्रं सर्वं रम्पन्नं वशिष्ठवचनादिह । युत्रसौभाग्यसम्मानं शत्रुघ्नस्य प्रसादजम् ॥२१
 एवं यान्यपि कौतेय कोकिलाव्रतमादरात् । करिष्यति ध्रुवं तस्याः सौभाग्यं च भविष्यति ॥२२
 ये कोकिलां कलरवां कलकण्ठपीठां यच्छन्ति साज्यतिलपिष्ठमर्यः द्विजेभ्यः ।
 ते नन्दनादिषु वनेषु विहृत्य कारं मर्त्ये समेत्य मधुरध्वनयो भवन्ति ॥२३
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुग्मिष्ठरसम्बादे
 कोकिलाव्रतं नामैकादशोऽध्यायः । ११

अथ द्वादशोऽध्यायः

बृहत्पोत्रतर्वर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथ पापापहं वक्ष्ये बृहदव्रतमनुत्तमम् । सुरासुरमुनीनां च दुर्लभं विधिना शृणु ॥१
 पर्वण्याशयुजस्यान्ते पाप्यसं धृतसंयुतम् । नक्तं भुञ्जीत शुद्धात्मा ओदनं दैत्यावान्वितम् ॥२
 आत्माथ शुचिर्भूत्वा बिल्दजं दन्तधावनम् । भक्षयित्वा महादेवं प्रणम्येदमूर्दीरयेत् ॥३
 अहं देवव्रतमिदं कर्तुमिच्छामि शाश्वतम् । तवाज्ञया महादेव यथा निर्दहते कुरु ॥४

वशिष्ठ मुनि के कथनानुसार इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर वह समस्त सुखों से सुसम्पन्न हुई उसके पति शत्रुघ्न की कृपा से पुत्र, सौभाग्य, सम्मान आदि की अतुल प्राप्ति उसे सदैव होती रही । कौतेय ! इस प्रकार जो अन्य स्त्री इस कोकिला व्रत को सविधान सुसम्पन्न करेंगी, उसे अतुल सुख सौभाग्य की निश्चित प्राप्ति होती रहेगी जो नारियाँ कलरव करने वाली उरु कोकिला पक्षी की सुन्दर प्रतिमा हो धी समेत तिल के चूर्ण द्वारा जिसके पीठ आदि सभी अंग प्रत्येक अत्यन्त सुन्दर बने हों, ब्राह्मणों को अर्पित करती है, वे नन्दन वन के उस रमणीक बिहारों के यथेच्छ, अनुभव करके यहाँ मर्त्य लोक में जल ग्रहण करने पर कोकिल कण्ठा (कोकिल के समान मधुर ध्वनि वाली) होती है । १५-२३

अध्याय १२

बृहत्प्रत व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—अब मैं तुम्हें उसके श्रेष्ठ बृहदव्रत नामक व्रत का, जो पापहारी, सुर, असुर एवं मुनियों को भी परम दुर्लभ है, सविधान वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! कातिक मास की पूर्णिमा के अंत समय (सांयकाल में) शुद्धात्मा होकर धी समेत पायस का मधुर भोजन रात्रि में एक बार कर, जो उस मधुर चावल की मधुर खीर बनी हो । पश्चात् प्रातःकाल आचमन पूर्वक पवित्र होकर वेल की दातून करके भी महादेव जी से नमस्कार पूर्वक प्रार्थना करे कि—देव ! आप की आज्ञा से मैं इस व्रत को निरन्तर सुसम्पन्न करना चाहता हूँ, श्रीमहादेव ! इसका समुचित निवाह जिस भाँति हो सके, करने

इत्येवं नियमं कृत्वा यदद्वर्षांगि षोडश । तिथयः प्रतिपत्त्वर्वा भजिष्यामीत्यनुकूलमात् ॥५
 ततो मर्गाङ्गिरे मासि प्रतिपद्यपरेऽहनि । पृष्ठद् गुहं चोपवासं महादेवं स्मरन्मुहुः ॥६
 स्नात्वा देवं समस्यच्य रात्रौ प्रज्वाल्य दीपकान् । यमुनां च महादेवं नत्वा पश्चान्निमन्त्रयेत् ॥७
 महादेवरतन्त्रिप्रात्सप्तनीकान्यतत्वतःन् । षोडशाष्टौ तदर्थं वा एकं वा शक्त्यपेक्षया ॥८
 आमंत्र्य स्वगृहं गत्वा महादेवं स्मरन्क्षितौ । शुचिवस्त्रास्तृतायां तु निराहारो निशि स्वपेत् ॥९
 भास्करोदयमासाद्य क्षात्वा चादाय दीपकान् । नैवेद्यं स्नपनं पुष्पं धूपं गच्छेच्छिवालये ॥१०
 अभ्यङ्गयित्वा देवेण कषायैश्च विरूक्षयेत् । स्नपयेत्पञ्चगव्येन पयसः तदनन्तरम् ॥११
 घृतेन मधुना दध्ना रसेन पयसा पुनः । तिलाम्बुना ततः स्नाप्य स्नापयेदुष्णवारिणा ॥१२
 लेपयेत्सुधनं पश्चात्कर्प्परागरुचन्दनैः । उष्णैः सम्पूज्य दातव्यं हैमं शिरसि पङ्कजम् ॥१३
 वस्त्रयुग्मं पताकां च पञ्चवर्णं वितानकम् । धूपं दीपं च घण्टाञ्च दद्यादेवस्य शक्तिः ॥१४
 पश्चान्निवेद्य नैवेद्यं स्तुत्वा स्वभवनं द्वजेत् । सुस्मिद्धं ततः कृत्वा पूजयेज्जातवेदसम् ॥१५
 व्रतिनश्च तथाचार्यं भोजयेत्मिथुनानि च । हेमवस्त्रादिदानेन यथाशक्ति क्षमापयेत् ॥१६
 एवं विसृज्य तान्सर्वान्साद्व बन्धुजनैः स्वयम् । आशयित्वा पञ्चगव्यं हृष्टो भुज्जीत वाग्यतः ॥१७
 एवमेव विर्भिं कृत्वा प्रारभेताधनो धनी । वित्तसामर्थ्यतश्चैव प्रतिमासं च कृत्स्नशः ॥१८
 वित्तहीनो यथा कश्चिच्छुद्धया च पुनः पुनः । पुष्पार्चनविधानेन सर्वमेतत्समाचरेत् ॥१९

की कृपा करें । १-४। मैं भी सोलह वर्ष तक इन्हीं नियम पालन पूर्वक प्रतिपदा आदि तिथि से प्रारम्भ कर इसे सुसम्पन्न करता रहूँगा इस प्रकार संकल्प करने के अनन्तर मार्गांशीर्ष (अगहन) की प्रतिपदा तिथि में प्रातः काल गुह की आज्ञा पूर्वक महादेव जी के स्मरण करते हुए उपवास विधान प्रारम्भ करें । स्नान एवं देव पूजन करके रात्रि में दीपक प्रज्वलित कर यमुना और महादेव जी के नमस्कार पूर्वक सोलह, आठ, चार अथवा शक्त्यानुसार एक ही सप्तलीक ब्राह्मण को निमंत्रित करे, जो महादेव जी का प्रिय भाजन, सयंस्मी एवं व्रतशील हो । अनन्तर अपने घर आकर महादेव जी के स्मरण पूर्वक उपवास रहकर रात्रि में ऐसे स्थान पर भूमि शयन करे जहाँ शुद्ध वस्त्र बिछाया गया हो । पुनः सूर्योदय होने पर स्नान पूर्वक दीप नैवेद्य, स्नान में जल, पुष्प एवं धूप आदि वस्तु समेत शिवालय में जाकर देवाधिदेव शिव जी अभ्यंग कराकर कषाय द्वारा सुखाकर सर्वप्रथम पञ्चगव्य द्वारा स्नान कराये । अनन्तर पय, धी, मधु, दही, रस, पुनः पय, और तिल-जल से क्रमशः स्नान कराने के उपरांत उष्ण (गर्भ) जल से स्नान कराये । पश्चात् कपूर, अगह, और चन्दनों के मिश्रित से घन लेपन तथा पुष्पों द्वारा अर्चना करके उनके शिर को सुवर्ण कमल से विभूषित करे और दो वस्त्र, पताका, पाँच रंग का वितान (चाँदनी), धूप, दीप, घण्टा, आदि वस्तु अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें अपित करें । ५-१४। तदुपरांत नैवेद्य के निवेदन पूर्वक आराधना करके अपने गुह को प्रस्थान करे । वहाँ पहुँच कर प्रज्वलित अग्नि पूजा करके पत्नी समेत ब्रती और आचार्य ब्राह्मण को सप्रेम भोजन कराकर यथाशक्ति सुवर्ण और वस्त्रादि के दानों से तृप्त करते हुए उनकी क्षमा प्रार्थना करे । इस प्रकार उनके पूजन-विसर्जन के उपरांत बंधुओं के साथ पञ्चगव्य के प्राशनपूर्वक प्रसन्नचित एवं बाक्संयमी होकर भोजन करे । इसी विधान द्वारा धनवान और निर्धनप्राणी को अपने वित्तसामर्थ्य के अनुसार प्रतिमास इसे सुसम्पन्न करना चाहिए । १५-१८। निर्धन प्राणी अत्यन्त श्रद्धालु होकर पुष्पार्चन द्वारा

प्रतिमासमुपोष्यैवं प्रतिपत्कर्त्तिकावधौ । पारयेत् हृतं पार्थ प्रारम्भविधिना स्फुटम् ॥२०
 द्वितीये द्वे एव ददश्यां कृत्वा नक्तं नराधिषः । प्रतिपत्सद्वितीया चेत्स्यानुपवसेत्सुधीः ॥२१
 द्वितीयोपवसेच्छुक्ला ततः प्रभृति वत्सरम् । प्रारम्भविधिना चैवं द्वितीयामपि पारयेत् ॥२२
 उपवासद्वयं कृत्वा द्वृतीयां प्रारभेत्तः । अनेन क्रमयोगेन यावद्वर्षं समाप्यते ॥२३
 कृत्वैवं षोडशे वर्षे पूर्णमास्यां समुद्धतः । पूर्ववद्वेवमभ्यर्थं कृशानुं वाभितर्यच ॥२४
 हेमभूजीं रौप्यखुरां सधण्टा कांस्यदोहनाम् । महादेवाय गां दद्यादीक्षिताय द्विजाय वै ॥२५
 शिवभक्तिरतान्विप्रान्विशुद्धांश्चैव षोडशः । वस्त्राभरणदानैश्च शक्त्या सम्पूजयेद्वतो ॥२६
 ब्राह्मणांश्च यथाशक्त्या भोजयेदपरात्मपि । अन्येषां च क्षुधार्तानां दद्याद्वानं यथेच्छया ॥२७
 वृहत्तपोव्रतं चैव ब्रह्मान्नाद्यशोषणम् । भूर्भुवादिषु लोकेषु भूरिभोगप्रदं नृणाम् ॥२८
 चतुर्णामपि वर्णानां स्वर्गसोपानवत्स्थितम् । न कुर्यादो धनं प्राप्य स शुष्टो नष्टचेतनः ॥२९
 धन्यमायुःप्रदं पुण्यं रूपसौभाग्यवद्वन्नम् । स्त्रीपुंसयोश्च निर्दिष्टं व्रतमेतत्पुरातनम् ॥३०
 विधदयापि कर्तव्यं भूयोजैवधव्यहेतवे । सधवद्यापि कर्तव्यमवियोगाय सद्वत्तम् ॥३१
 उपोष्य प्रतिमासं तु भुज्जीत ब्राह्मणःसह । एकद्वित्रिचतुर्भिर्वा स्वशक्त्या पाण्डुनन्दन ॥३२

ही इसकी पुनः पुनः पूर्ति करते हुए भली माँति सुसम्पन्न कर सकता है । पार्थ ! इस प्रकार इस प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर कार्तिक तक की अवधि तक सुसम्पन्न होने वाले व्रत को प्रतिमास में उपवास पूर्वक इस सरल निर्दिष्ट विधान द्वारा प्रारम्भ कर हवन पर्यंत कर्मों के अनुष्ठान करके निभाने की चेष्टा करता रहे । दोनों द्वितीया और पूर्णिमा के दिन नक्त (रात्रि में एक बार) भोजन करते हुए इसकी पूर्ति करनी चाहिए । यदि प्रतिपदा के दिन उपरात द्वितीया भी आ जाये तो विद्वानों को उपवास करना उसी दिन परमावश्यक होगा । उस दिन से प्रारम्भ कर पूरे वर्ष भर शुक्ल द्वितीया के उपवास पूर्वक उस विधान को सुसम्पन्न करता रहे अथवा प्रतिपदा और द्वितीया के दिन दो उपवास रहकर द्वितीया से व्रतानुष्ठान प्रारम्भ करके इसी क्रम से वर्ष की समाप्ति करे । इस प्रकार सोलह वर्ष की समाप्ति में पूर्णिमा के दिन पूर्व की भाँति देव तथा अग्नि के पूजन एवं तर्पणोपरात महादेव जी के निमित्त दीक्षित ब्राह्मण को इस भाँति की गौ अपित करे, जिसके सींगों में सुवर्ण, सुरों में चाँदी, एवं गले में घंटा विभूषित हो और कांसे की कोहनी हो । परचात् उस व्रती को आवश्यक है कि सोलह ब्राह्मण विद्वानों का, जो शिव के परम उपासक एवं विशुद्ध हों, यथाशक्ति वस्त्राभूषणों द्वारा सादर सम्मानित करते हुए भोजन कराये । शक्त्यनुसार अन्य ब्राह्मणों को भी भोजनादि द्वारा संतुष्ट करना चाहिए । उसी प्रकार अन्य पीड़ितों को यथेच्छ दान से सुशोभित करे । इस प्रकार यह वृहत्तपोव्रत नामक व्रत मनुष्यों को ब्रह्महत्या आदि पापों के शमन पूर्वक भूर्भुवादि लोकों में अत्यन्त भोगों के उपभोग प्रदान करता रहे । यह व्रत चारों वर्णों के लिए स्वर्ग सोपान (सीढ़ी) है, इसलिए धनवान् होकर जो प्राणी इस व्रत को सुसम्पन्न नहीं करता है, उस मूढ़ के समान आत्महत्ता अन्य कौन हो सकता है । यह पुरातन व्रत स्त्री पुरुषों के सौभाग्य जीवन, पुण्य और सौभाग्य को सदैव वृद्धि करता रहता है । जन्मान्तर में विधवा न होने के लिए विधवा स्त्रियों और पति से कभी वियोग न हो इसके लिए सधवा स्त्रियों को इस व्रतानुष्ठान की पूर्ति के हेतु प्रतिमास के उपवास पूर्वक शक्त्यनुसार एक, दो, तीन या चार के साथ भोजन करना चाहिए । १९-३२। पाण्डुनन्दन ! इसके अनुष्ठान

अन्ते चान्ते सुवर्णानां प्रारम्भविधिनाचरेत् । पुण्यसम्भारमन्विच्छनामयित्वा शिवालयम् ॥३३
 व्रतविघ्ने महाराज जाते दैदात्कथञ्चन । तावत्यस्तिथयश्चान्याः समुपोष्याः समाप्तये ॥३४
 अथ शीघ्रतरं कश्चिद्वतं करुं समुद्यतः । विधिनानेन राजेन्द्र तेन ग्राह्यं तिथिद्वयम् ॥३५
 अन्ते चान्ते च वर्षाणां प्रारम्भविधिनाचरेत् । अथारब्दे व्रते कश्चिदसम्प्लजे द्विधेत चेत् ॥३६
 सोऽपि तत्कलमान्नोति सत्यारम्भप्रभावतः । वाचकाः श्रावकाश्चैव व्रतस्यास्य युधिष्ठिर ॥
 भवन्ति पुत्रसंश्लिष्टाः शिवध्यानानुभावतः ॥३७

पुण्यं बृहत्प इदं द्रत्सादरादे कुर्वति शोडशसमा निरताः स्वधर्मे ।
 ते भानुसप्तलमभेद्यमचिंत्यमाद्यं भित्वा प्रयान्ति शशिशेखरपादमूलम् ॥३८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसङ्खादे
 बृहत्पोत्रतवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भद्रोपवासव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

जातिस्मरत्वं देवेश दुष्प्राप्यमिति मे मतिः । तदहं जातुमिच्छामि प्राप्यते केन कर्मणा ॥१

के अंत में सुवर्ण आदि वस्तुओं से संयुक्त होकर पुण्य भार की अधिकता का अभिलाषी होकर शिवालय की यात्रा करे । महाराज ! ऐव योग से किसी कारण वश व्रत में विघ्न उपस्थित होने पर उस व्रत के समाप्ति के लिए उतनी अन्य तिथियों के उपवास करना चाहिए । राजेन्द्र ! यदि कोई मनुष्य इस व्रत को शीघ्र सुसम्पन्न करना चाहे तो इसी विधान द्वारा दो तिथियों के प्रहण करना चाहिए । प्रत्येक वर्षों के अन्त समय प्रारम्भ किये गये विधान द्वारा उसकी पूर्ति करे । व्रतानुष्ठान को प्रारम्भ कर व्रती की मृत्यु हो जाने पर उस सत्य प्रारम्भ के प्रभाव से उसे समस्त फलों की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर ! इस व्रत के अनुष्ठान करने वाले और उसके श्रवण करने वाले दोनों, भगवान् शंकर के ध्यान प्रसाद द्वारा पुत्रादि परिवार समेत अत्यन्त सुखी जीवन व्यतीत करते हैं । बृहत्पोत्रत नामक इस अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी जो अत्यन्त श्रद्धालु एवं सोलह वर्ष तक इस अपने अनुपम धर्म में तन्मय रहकर सादर उसे सुसम्पन्न करते रहते हैं, उस अभेद्य भानु मण्डल के भेदन पूर्वक भगवान् शशिशेखर (शिव) जी के चरण कमल की प्राप्ति करते हैं । ३३-३८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 बृहत्पोत्रत वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।१२।

अध्याय १३

भद्र नामक उपवास व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—देवेश ! पूर्व जन्म के वे दुष्प्राप्य स्मरण किस कर्म द्वारा होते हैं मैं उसे जानना

वरप्रदानादेवानामृषीणां सेवनेन वा । तीर्थस्नानेन वा देव तपोहोमव्रतेन वा ॥२
श्रीकृष्ण उवाच

चत्वारि राजन्भद्राणि समुपोष्याणि यत्नतः । तत्प्रभावाद्गुबेन्ननं राजञ्जातिस्मरो नरः ॥३
 शुभोदयः पुरा वैश्यो बभूव यमुनातटे । तेन व्रतस्मिं चीर्णैमृतः कालक्रमादसौ ॥४
 संजयस्य सुतो जातः स्वर्णष्ठीवीति विश्रुतः । यत्प्रभावाज्जातिज्ञः स च चौरैर्निष्पातितः ॥५
 नारदस्य प्रभावेण पुनरुज्जीव्यतेऽप्यसौ । सस्मार पूर्ववृत्तांतं सकलं वतर्धमतः ॥६

युधिष्ठिर उवाच

संजयस्य कथं पुत्रः स्वर्णष्ठीवीति वा कथग् । दस्युभिश्च कथं नीतो मृत्युं वै जीवितः कथन् ॥७

श्रीकृष्ण उवाच

संजयो नाम राजासीत्कुशावत्यां नराधिष्प । देवर्षी तस्य मित्रे च सदा नारदपर्वतौ ॥८
 एकदा संजयगृहं सम्प्राप्तौ तौ यदृच्छ्या । स्वागतासनदानादैरूपचारैरपूजयत् ॥९
 तेषामथोगविष्टातां पूर्ववृत्तान्तभाषिणौ । सञ्जयस्य सुता प्राप्ता तरुणी पितुरन्तिकम् ॥१०
 पर्वतः प्राह राजनां कन्येयं वरवर्णिनी । गुप्तगुल्फा संहतोरुः पीनश्रोणिपयोधरा ॥११

चाहता हूँ, ब्रत बताने की कृपा कीजिये । देव ! उसकी प्राप्ति किसी वरदान, देवों या क्रृष्णियों की सेवा, तीर्थ स्नान, तप, हवन अथवा किस ब्रतानुष्ठान द्वारा होती है । १-२

श्रीकृष्ण जी बोले—राजन् ! भद्र नामक ब्रत के चार उपवास करने पर उसके प्रभाव से उस ब्रती पुरुष को निश्चित जन्मान्तरीय स्मरण हो जाता है । पहले समय में यमुना जी के तट पर एक शुभोदय नामक वैश्य रहता था, जिसने इस ब्रतानुष्ठान को सविधान सुसम्पन्न किया था अंत में (वही) मृतक होने पर संजय के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ, जिसकी स्वर्णष्ठीवी नाम से प्रख्याति थी । इस ब्रत के प्रभाव से उसे जाति स्मरण हुआ था । यद्यपि चोरों ने उसे प्राणहीन कर दिया था तथापि नारद जी के प्रभाव से उसे पुनः जीवन प्राप्त हुआ और इस ब्रत के प्रभाव से उसे इन समस्त वृत्तान्तों का स्मरण हुआ था । ३-६

युधिष्ठिर जी बोले—संजय के स्वर्णष्ठीवी नामक पुत्र की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, चोरों ने उसका निधन कैसे किया और पुनः वह जीवित कैसे हुआ आदि बातें बताने की कृपा कीजिये । ७

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! कुशावती नगरी के अधीश्वर संजय के देवर्षी नारद और क्रृषीश्वर पर्वत नामक दो मित्र थे, जो सदैव उनके यहाँ आया जाया करते थे । एक बार राजा संजय के यहाँ वे दोनों मित्र इधर-उधर भ्रमण करते हुए अक्समात् आ गये । राजा ने उन्हें देखकर स्वागत करते हुए आसनादि उपचारों द्वारा उनकी पूजा की । अनन्तर वे सब राजा से अपने-अपने वृत्तान्तों को कह रहे थे कि उसी बीच राजा संजय की एक युवती कन्या वहाँ अपने पिता के पास आ गई । उसे देखकर पर्वत क्रृषि ने राजा से कहना आरम्भ किया कि यह तो बड़ी अनुपम कन्या है, क्योंकि इसके गुल्फ (एड़ी) मांसल होने के नाते अत्यन्त गुप्त हैं, और उसी भाँति घने ऊरु, अत्यन्त पीन श्रोणि एवं घने पयोधर हैं । विकसित कमल की

पद्मपत्रेक्षणनसा पद्मकिञ्जलकसप्रभा । आकुञ्चितमृदुस्निर्धैः केशैरविततैर्धनैः ॥१२
 सविलासा गजगतिः सुनासा कोकिलस्वरा । अहोरूपमहो धैर्यमहो लावण्यमुत्तमस् ॥१३
 तिलपुष्पस्फुटा नासा रूपं सम्परिलक्ष्यते । कन्येयं भद्रिका भद्रा समातिहृदयज्ञम् ॥१४
 एवं बुवाणं तं विप्रं विस्मयोत्कुल्लोचनम् । स राजा प्राह कन्येयं दुहिता मम पर्वत ॥१५
 अथेवाच नृपं धीमान्नारदः क्षुभितेन्द्रियः । राजन्निवेष्टुकामोऽहं कन्येयं मन दीयताम् ॥१६
 ईप्सितं तव दास्यामि वरं मर्त्येषु दुर्लभम् । एवमुक्तो नारदेन प्रीतात्मा सञ्जयस्तथा ॥१७
 कृतञ्जलिरुवाचेदं प्रहर्षेत्कुल्लोचनः । पुत्रो से दीयताम् क्षिप्रमक्षीणकनकाकरः ॥१८
 यस्य मूत्रं पुरीषं वा श्लेष्माणं क्षिपति क्षितौ । जातरूपं हि तत्सर्वं सुवर्णं भवतु स्थिरम् ॥१९
 एवमस्त्विति तं राजन्नारदः प्रत्यभाषत । सुवर्णष्ठीदिनं पुत्रं ददानि तव मुव्रत ॥२०
 एवमुक्त्वा स तां कन्यां जालङ्काराम् सुमध्यमान् । विवाहयामास तया नारदो हृष्टमानसः ॥२१
 तत्स्य देष्टितं दृष्ट्वा पर्वतः क्रोधमूर्च्छितः । उवाच नारदं रोषादीप्ताक्षः स्फुरिताधरः ॥२२
 मयेयं प्रार्थता पूर्वं त्वद्य यस्माद्विवाहिता । तस्मान्प्रया समं स्वर्गं न गन्तासि क्यञ्चन ॥२३
 दत्तस्त्वयास्य यः पुत्रो वरदानेन नारद । सोऽपि चौरैरभिहतः पञ्चत्वमुपयास्यति ॥२४

भाँति दोनों नेत्र, कमल पत्र की भाँति कोमल, नख, पद्मपराग, के समान शरीर का वर्ण, कोमल, स्तिर्ग्ध, छोटे, घने और आकुञ्चित (टेढ़े मेढ़े) शिर के केश और विलास पूर्वक गज की भाँति गमन (चाल) और सुन्दर नासा, एवं कोकिल की भाँति मधुर भाषिणी है । उसका रूप और रूप लावण्य तो अपनी उत्तमता के नाते आश्चर्य उत्पन्न कर रहा है, उसी प्रकार धीरता भी इसमें कितनी गम्भीर हैं । तिलपुष्प की भाँति इसकी नासिका मन को निरन्तर मुग्ध कर रही है ! यह कल्याणमयी भव्य मूर्ति जिसने मेरे हृदय को सहसा अपने अधीन कर लिया है, किसकी प्रेयसी है । इस प्रकार कहने वाले उस ब्राह्मण से जिनके नेत्र आश्चर्य चकित होने के नाते विकसित हो उठे थे, राजा ने कहा—पर्वत ! यह मेरी कन्या है । इसे सुनकर धीमान् नारद ने काम व्यथित होते हुए कहा—राजन् ! इसमें निविष्ट होने (गम्भीरान्त करने) की मेरी प्रबल इच्छा हो रही है । अतः इसका पाणिग्रहण मेरे साथ सुसम्पन्न कर दें । मैं भी तुम्हें वह अभिलषित वर प्रदान करूँगा, जो इस मर्त्यलोक में अत्यन्त दुर्लभ है । नारद के इस प्रकार कहने पर अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा संजय ने कमल की भाँति जिनके नेत्र उस समय खिल उठे थे, करबद्ध प्रार्थना की । मुझे एक ऐसे पुत्र को, जो अक्षय सुवर्ण का स्वपिता हो, शीघ्र देने की कृपा कीजिये । और जिसका मूत्र, पुरीष (मल) तथा श्लेष्मा पृथिवी पर गिरते ही उसी समय वह सब सुवर्ण का स्थिर रूप प्राप्त करे । ८-२० । नारद ने कहा—राजन् ! जैसा आप चाहते हैं, वह सब वैसा ही होगा । सुव्रत ! मैं तुम्हें सुवर्ण पृथ्वी पुत्र प्रदान कर रहा हूँ । इतना कहकर नारद ने हर्षमान होकर उस कन्या के साथ, जो अलङ्कारों से सुसज्जित और जिसका मध्य भाग विशेष कमनीय था, सविधान पाणिग्रहण सुसम्पन्न किया । पश्चात् उसे देखकर पर्वत ने अत्यन्त कुद्द होकर जिनकी आँखें रोष से रक्तवर्ण की और अधरोष फड़क रहाथा, उसके साथ यदि तुम्हीं ने पाणिग्रहण कर लिया है, तो इसी दोष के नाते तुम मेरे साथ स्वर्ग की यात्रा किसी प्रकार नहीं कर सकते, तथा नारद ! इन राजा को तुमने जो पुत्र प्रदान किया है, वह भी चोरों द्वारा निहत होकर स्वर्गीय

एवमुक्तः पर्वतेन नारदः प्राह दुर्मताः । न त्वं धर्म विजानासि किञ्चिन्पूढोऽसि दुर्मते ॥२५
 सामान्यं सर्वभूतानां कन्या भवति सुव्रत । न तस्या वरणे दुःखं^१ पश्यन्तीह बहुशुताः ॥२६
 न सेवितास्त्वया वृद्धास्तेन मां शपसे रुषा । पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ॥२७
 यस्मादेतदविज्ञाय शपसे मत्तनागसम् । तस्मात्त्वमप्यहो स्वर्गं न गन्तासि मया विना ॥२८
 सञ्जयस्य सुतः शापाद्यदि पञ्चत्वमेष्यति । अनयिष्ये तथाप्येनं यमलोकान्न संशयः ॥२९
 एवं शप्त्वा तदाऽन्योन्यं देवर्णीं तावुभौ पुनः । पूजितौ सञ्जयेनाथ जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥३०
 अथास्य सप्तमे मासि जातः पुत्रो नृपस्य सः । स्वर्णष्ठीदीति नामास्य यथार्थमकरोत्पिता ॥३१
 जातिस्मरः स्मरवपुः सुवर्णोत्पत्तिकारणम् । सर्वभूतरूपोऽभूद्ब्रह्मतफलादिह ॥३२
 मूत्रश्लेष्मपुरीषादि यत्किञ्चित्क्षपति जितौ । जायते कनकं सर्वं प्रसादान्नारदस्य च ॥३३
 तेनासौ यजते राजा विधिवद्भूरिदक्षिणैः । राजसूयादिभिर्यज्ञैर्विधैर्ब्रह्मण्डृतः ॥३४
 बभार भृत्याननिशं पुषोष त्वजनातिथीन् । चकार देवतागारं सरश्चारामवाटिकाः ॥३५
 जातस्नेहं तथा पुत्रं रक्ष रक्षिभृतः । राशयः कनकस्यास्य बभूर्नृपतेः सुतात् ॥३६

हो जायगा । इस प्रकार पर्वत ऋषि के कहने पर दुःख प्रकट करते हुए नारद ने कहा—दुर्मते ! तुम महामूर्ख हो, तुम्हें कुछ भी धर्म का ज्ञान नहीं है, क्योंकि सुव्रत ! सामान्यतः कन्या सभी प्राणियों की होती है, किन्तु उसके वरण करने में विद्वान् लोग इस प्रकार दुःख नहीं प्रकट करते । तुमने वृद्ध समाज की सेवा नहीं की है, इसीलिए रुष्ट होकर मुझे शाप दे रहे हो । और यह जानते हुए कि पाणिग्रहण मंत्रों की सप्तपदी के सातवें पद के उच्चारण करने पर दृढ़तर स्थिरता हो जाती है अर्थात् पाणिग्रहण दृढ़ हो जाता है । इस पर ध्यान न देकर निरपराध मुझे शाप दिया है, इसलिए मेरे बिना तुम भी स्वर्ग की यात्रा नहीं कर सकोगे और शाप के कारण राजा संजय का पुत्र यदि मृतक हो जायगा, तो यह निःसन्देह है कि यमलोक से भी उसे ला दँगा । इस प्रकार आपस में एक दूसरे को शाप देकर वे दोनों देवर्णि संजय से पूजित होने के उपरांत अपने आश्रम छले गये । इसके अनन्तर सातवें मास में राजा के वह स्वर्णष्ठीदी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । पिता ने उसका यथोचित संस्कार सम्पन्न किया । इस भद्र व्रत के फलस्वरूप उस काल को अपने जन्मान्तर के स्मरण, काम के समान सुन्दर शरीर जो सुवर्णोत्पत्ति का कारण थी, तथा समस्त प्राणियों की भाषा का अर्थ भली भाँति स्पष्ट था । उसके मूल आदि शरीर के सभी प्रकार के मल, पृथ्वी पर गिरते ही नारद के प्रसाद से कनक मय हो जाते थे । उसी सुवर्णों द्वारा राजा संजय विद्वान् ब्राह्मणों को निमंत्रित करके उन्हें अधिक दक्षिणादि प्रदान द्वारा सुसम्मानित करते हुए राजसूय आदि अनेक यज्ञों के अनुष्ठान सुसम्पन्न करते थे । उसी प्रकार सेवक वर्णों के सुभरण पोषण, अपने स्वजनों और अतिथियों के पोषण पूर्वक देवमन्दिरों, सरोवरों, बाग, बगीचे आदि के अनेक प्रकार से रचना करवाया । उस स्नेह भाजन प्रिय पुत्र की रक्षा रक्षकों समेत राजा स्वयं करते थे जिसके द्वारा उनके यहाँ असंख्य सुवर्णों की राशियाँ उत्पन्न होती थी । २१-३६। कुछ समय के उपरांत दक्षिण देश के रहने वाले चोर

अथस्य दस्यवः केचिच्छुद्वा तं कनकाकरम् । धनलोलुपया जग्नुर्दक्षिणात्य! नदोद्धताः ॥३७
 तस्मिन्विनष्टे तन्नष्टं वरदानं समुद्द्रवम् । कनकं तदपश्यन्तो जगमुरन्योन्यतः क्षयम् ॥३८
 पातितं दस्युभिः पुत्रं दृष्ट्वा राजा मुडुःखितः । विललापाकुलमतिः स मुसोह पपात च ॥३९
 विलपन्तं तु तं दृष्ट्वा नारदः प्राह सञ्जयम् । राजन्विषादं मा कार्षीः शृण्वमां भारतीं मम ॥४०
 इत्युक्त्वा स समाचर्ख्यौ चरितानि महौजसाम् । विशिष्टानां नरेन्द्राणां यतीनां दक्षिणादतः ॥४१
 श्रुत्वा राजा नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनाम् । विनष्टशोकः सहसा प्रकृतिस्थो बृश्व तः ॥४२
 नारदोपि नरेन्द्रस्य मृतं पुत्रं यमालयात् । आनयामास तरसा तथारूपं यथा हतम् ॥४३
 दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा स पुत्रं तं परितुष्टेन चेतसा । द्रोडितो विस्मितश्चैव कृताञ्जलिरथाबबीत् ॥४४
 किमाशर्चर्य प्रसन्नेन भद्रता मम नारद । दत्तः पुत्रस्थाभूतो दस्युभिर्धातितो यथा ॥४५
 षण्मासान्ते पुनरसौ जीवितं सर्वमेव तत् । स्समार पूर्वं वृत्तान्तं भद्राणां पारणात्किल ॥४६
 एतते सर्वमात्यातं जातिस्मरणकाङ्क्ष । व्रतं ब्रताधिकं श्रेष्ठं किमन्यत्कथयामि ते ॥४७

श्रीकृष्ण उवाच

ब्राह्मणाश्चैव शूद्राश्च कुले महति जन्म च । दाता क्षमी धनी वाग्मी रूपी स्वैर्भद्रकैर्भवेत् ॥४८

डाकुओं ने उसकी 'सुवर्ण की खानि' होने की प्रत्याति को सुनकर धन के लिए लालायित होकर उस बालक का हनन कर दिया । वरदान द्वारा उत्पन्न उस बालक के निधन होने पर राजा की कनक राशि भी इधर-उधर विनष्ट हो गई । चोरों द्वारा आहत हुए अपने पुत्र को देखकर राजा ने अत्यन्त दुःखी होकर विसाप करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गये । इस प्रकार उन्हें दुःखी देखकर नारद ने कहा—राजन्! आप इस प्रकार अधीर न हों, मैं कुछ कह रहा हूँ, उस पर ध्यान देने की कृपा करें । इतना कहकर उन्होंने अत्यन्त ओजपूर्ण राजाओं और महात्माओं के पवित्र चरित्रों और उनके काल-कवलित होने की कथा सुनायी जिसके सुनने से राजा का शोक नष्ट हो गया और वे पूर्व की भाँति सुस्थिर हुए । नारद ने भी राजा के उस मृतक पुत्र को, यमराज के यहाँ से शीघ्र लाने का प्रयत्न किया । राजा ने अत्यन्त हर्ष में विभीर्होकर उस अपने पुत्र का दर्शन-स्पर्शन किया और पश्चात लज्जित एवं त्रिस्मित होते हुए हाथ जोड़कर नारद जी से कहा—कृषीश्वर! आपने उस मेरे पुत्र को, जिसे चोरों ने मृतक कर दिया था, मुझे लाकर सौंप दिया । इससे मुझे भली भाँति निश्चित हो गया कि आप के प्रसन्न होने पर किसी कार्य के सम्भव होने में कुछ भी आश्चर्य नहीं है । इस भद्र व्रत के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने के नाते उस बालक को छठे मास के ही अनन्तर अपने जन्मान्तरी वृत्तान्तों के स्मरण होने लगे । इस प्रकार मैंने जन्मान्तरीय वृत्तान्तों के स्मरण होने के कारण को विस्तार पूर्वक तुम्हें सुना दिया और इस श्रेष्ठ व्रत के अतिरिक्त इसके विषय में मैं तुम्हें अन्य क्या कह सकता हूँ । ३७-४७

श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मण, शूद्र, उत्तर कुल में जन्म, दाता, क्षमाशील, धनवान्, निपुणवाग्मी विद्वान्, और सौन्दर्यपूर्ण रूपवान्, उस भद्रव्रत को सुसम्पन्न करने वाला प्राणी ही होता है । राजन्! इस भद्रव्रत के

चत्वारि राजन्भद्राणि चतुष्पादानि तानि वै । तान्येव बहुविष्णानि दुष्प्राप्यान्यकृतात्मभिः ॥४९
 मार्गशीर्षे तु प्रथमं द्वितीयं फाल्युने तथा । ज्येष्ठे तृतीयं राजेन्द्र ख्यातं भाद्रपदेपरम् ॥५०
 फाल्युनामलपक्षादौ त्रीन्मासांस्तु नराधिप । तन्त्रिपुष्पमिति ख्यातं तपस्याकरणं परम् ॥५१
 ज्येष्ठस्य शुक्लपक्षादौ त्रीन्वे मासान्युधिष्ठिर । तत्त्विराममिति ख्यातं सत्यशौर्यप्रदायकम् ॥५२
 शुक्ले भाद्रपदस्यादौ त्रीन्मासान्याण्डुनन्दन । तन्त्रिरङ्गमिति ख्यातं बहुविद्याप्रदायकम् ॥५३
 शुक्लमार्गशिरस्यादौ त्रीन्मासांस्तु नराधिप । तद्विष्णुपदमित्युक्तं सर्वधर्मप्रदायकम् ॥५४
 समासेनैव चोक्तानि भद्राण्येतानि भारत । कर्तव्यानि नरैः स्त्रीभ्राह्मणानुमतेन वा ॥५५

युधिष्ठिर उवाच

विस्तरेणैव मे बूहि देवदेव जगत्पते । भद्राणां नियमाधानं प्रधाननियमांस्तथा ॥५६

श्रीभगवानुवाच

शृणु राजन्नवहितो भद्राणां विस्तरं परम् । कथयिष्ये न कथितं कस्यचिद्यन्मया पुरा ॥५७
 शुक्ले मार्गशिरस्यादौ चत्वारस्तिथयो वराः । द्वितीया च तृतीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ॥५८
 एकभुक्तासनस्तिष्ठेत्प्रतिष्ठां जितेन्द्रियः । प्रभाते तु द्वितीयायां कृत्वा यत्करणीयकम् ॥५९
 प्रहृत्रये समधिके गते स्नानं समाचरेत् । मृद्गोमयं च संगृह्य मन्त्रैरेभिर्विचक्षणः ॥६०
 अहं ते तु प्रदिश्यामि मन्त्राणां विधिमुत्तमम् । येषां देयो न देयो वा ताञ्छृणुष्व वदामि ते ॥६१

चार चरण हैं, जिनकी प्राप्ति में अनेक विघ्न आते हैं और अन्य कर्मानुष्ठान बालों को दुष्प्राप्य भी है राजन् ! मार्गशीर्ष में पहला, फाल्युन में दूसरा, ज्येष्ठ में तीसरा और भाद्रपद में चौथा पाद बताया गया है । नराधिप ! फाल्युन मास के शुक्लपक्ष से प्रारम्भ कर तीन मास तक के समय को 'त्रिपुष्प' कहा गया है, जो तपस्चर्या के लिए परम उपयोगी है । युधिष्ठिर ! ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष से तीन मास तक के समय को जो सत्य एवं शौर्यप्रद है 'त्रिराम' और पाण्डुनन्दन ! भाद्रपद के शुक्लपक्ष से तीन मास तक के समय को 'त्रिरंग' कहा जाता है, इसे अनेक विद्या का प्रदायक बताया गया है । नराधिप ! उसी प्रकार मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष से तीन मास तक के समय को 'विष्णुपद' कहा गया है, जो समस्त धर्मों का प्रदाता है । भारत ! इस प्रकार मैंने इस भद्र व्रत की व्याख्या बता दी है, जो पुरुषों और स्त्रियों को व्राह्मण विद्वानों की अनुमति पूर्वक सुसम्पन्न करना परमावश्यक होता है । ४८-५५

युधिष्ठिर ने कहा—देवाधिदेव, जगत्पते ! इस भाद्रव्रत के नियम विधान और प्रधान नियम मुझे बताने की कृपा करें । ५६

श्रीभगवान् बोले—राजन् ! मैं इस भद्र व्रत के नियमादि विस्तार पूर्वक बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! जिसकी व्याख्या कभी किसी से कहा ही नहीं । मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी तिथि इस व्रत के लिए सर्वश्रेष्ठ बतायी गयी हैं संयमशील पुरुष को उन्हीं तिथियों में इस व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ करना चाहिए । द्वितीया के दिन प्रातः काल नित्य कर्म करने के उपरांत उस बुद्धिमान व्रती को तीसरे प्रहर में मृत्तिका और गोमय द्वारा मंत्रों के उच्चारण पूर्वक स्नान करना चाहिए उन मंत्रों के विधान समेत मैं तुम्हें यह भी बता रहा हूँ कि वे किसके लिए देने योग्य हैं

ब्राह्मणः क्षत्रिया दैश्याः शूद्राः ये शुचयोऽभलाः । तेषां मन्त्राः प्रदेशा वै न तु सङ्कीर्णधर्मिणाम् ॥६२
 या स्त्री भर्त्रा वियुक्तापि स्वाच्चारैः संयुता शुभा । सा च मन्त्रान्प्रगृह्णातु सभात्रो तदनुजया ॥६३
 स्नानं नद्यां तडागे वा वाप्यां कूपे गृहेऽपि वा । दशोत्तरं फलं ज्ञेयमधिकं हि समन्त्रकम् ॥६४
 मृदं मन्त्रेण संगृह्णा सर्वाङ्गेषु प्रलेपयेत् । त्वं मृत्स्ने वन्दिता देवैः समस्तैर्त्यधातिभिः ॥६५
 मयापि वन्दिता भक्त्या मामतो विमलं कुरु ॥६६

। इति मृष्मन्त्रः ।

एवं जपन्मृदं दत्ता स्वहस्ताप्रे समन्त्रकम् । जलावगाहनं कुर्यात्कुण्डमालिख्य धर्मवित् ॥
 सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैर्वचासर्वोषधीः क्रमात् ॥६७
 त्वमादिः सर्वदेवानां जगतां च जगन्मये । भूतानां वीरुद्धां चैव रसानां पतये नमः ॥६८
 गंगासागरजं तोयं पौष्करं नार्मदं तथा । यामुनं सांनिहत्यं च सञ्जिधानमिहास्तु मे ॥६९

। इति स्नानमन्त्रः ।

शरीरात्मभनं पूर्वं कृत्वा मृद्गोमयाम्बुधिः । एवं स्नात्वा समाप्तुत्य आचन्य तटमास्थितः ॥७०
 निबस्य वाससी शुभ्रे शुचिः प्रयत्नमानसः । देवान्पितृं मनुष्यांश्च तर्पयेत्सुसमाधिना ॥७१
 एवं गृहीतनियमे गृहं गच्छेच्छुदिवतः । उपविश्य न संजल्पेद्यावच्चन्द्रस्य दर्शनम् ॥७२

और किसके लिए नहीं । सदाचारी एवं निर्मल अन्तःकरण वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र को यह मंत्र बताया जाना चाहिए, किन्तु संकीर्ण धर्म वाले को कभी नहीं । पति वियोग होने पर स्त्री अपने सदाचारों के पालन पूर्वक संयमशील हो, पति की आज्ञा प्राप्त कर पति समेत उस शुभमूर्ति स्त्री को भी इन मंत्रों को प्रदान करना चाहिए । किसी नदी, सरोवर, वावली अथवा गृहकूप में मंत्रोच्चारणपूर्वक स्नान करे । नदी आदि में स्नान करने से क्रमशः दश फल अधिक की प्राप्ति होती है । मंत्रोच्चारण पूर्वक मृत्तिका को ग्रहण कर सर्वांग में लेपन की भाँति लगा लेना चाहिए । प्रथम उससे इस भाँति प्रार्थना करे कि—‘मृत्तिके ! देवों ने तुम्हारी बन्दना की है, जो मल समेत और दैत्यों के हन्ता हैं । उसी भाँति मैं भी भक्तिपूर्वक तुम्हारी बंदना कर रहा हूँ, इसलिए मुझे निर्मल करने की कृपा करें । इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस धर्मशील व्रती को मृत्तिका अपने हाथ में लेकर पूर्व बनाये हुए कुण्ड के जल का आवाहन करना चाहिए । तदनन्तर राई, काले तिल तथा वच आदि समस्त औपधियों को क्रमशः मन्त्रपूर्वक ग्रहण करके इस भाँति प्रार्थना करनी चाहिए कि—जगन्मये ! समस्त संसार और देवों के आदि हो, और समस्त प्राणी, दृक्ष और इस के अधीश्वर हो, अतः तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । पञ्चात इस मंत्र के उच्चारण करते हुए स्नान करे, कि—‘गंगासागर, पुष्कर, नर्मदा और यमुना जी के जल इस जल में मिलकर मेरे सान्निधि में रहने की कृपा करे ।’५७-६९। स्नान करने के समय सर्वप्रथम मृत्तिका और गोमय मिश्रित जल का शरीर में लेपन करके भली भाँति स्नान करें तथा तट पर आकर आचमन पूर्वक दो स्वच्छ वस्त्रों को धारण करे । पवित्र होने पर उस संयमशील को देव, पितर एवं मनुष्यों के तर्पण करके घर जाना चाहिए, उस नियम धारण करने वाले को पवित्रतापूर्वक व्रतानुष्ठान के आरम्भ करने पर आसन पर बैठने के उपरांत जब तक चन्द्रोदय का दर्शन न हो, किसी से कोई बातचीत न करनी चाहिए । स्नान करने के अनन्तर

स्नात्वा चैव ततो नाम तृतीयादिचतुर्दिने । नमः कृष्णाच्युतानन्त हृषीकेशेति च क्रमात् ॥७३
 चतुर्दिने द्वितीयादौ देवमन्यर्चयेऽच्युतम् । प्रथमेति स्मृता पूजा पादयोश्चक्रपाणिनः ॥७४
 नाभिपूजा द्वितीयेति कर्तव्या विधिवन्नरैः । मुरद्विषस्तृतीयेति पूजां वक्षसि विन्दसेत् ॥७५
 चतुर्थेति जगद्भागुः पूजां शिरसि कल्पयेत् । पुष्टैर्विलेपनैधूपैरर्च्छ्यं दद्युर्विभूषणैः ॥७६
 धीवरैर्हरिनैवैद्यर्दीपदानैश्च भक्तिः । पूजयित्वा विधानेन विज्ञुं विश्वेश्वरं ब्रती ॥७७
 ततो दिनावसाने तु भुत्तैः निगते रति । अर्च्य प्रदद्यात्सोमाय भक्त्या तद्वायभावितः ॥७८
 शशिचन्द्रशाशाङ्केन्दुनाभानि क्रमशो नरः । तृतीयादिषु चन्द्रस्य सङ्कीर्त्यार्च्यं निवेदयेत् ॥७९
 स चार्यो यादृशे देय क्रद्विष्माद्विरथेतरैः । तत्ते सम्यक्प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर निबोध मे ॥८०
 चन्दनगुरुकर्त्तुर्दधिद्वर्काक्षतादिभिः । रत्नैः समुद्रजैश्चान्यैर्द्वजवैदूर्यमौक्तिकैः ॥८१
 पुष्टैः फलैः स्वकालोत्थैः खर्जूरैर्ब्रह्मतिकेरकैः । दस्त्राच्छाइनगोवाजिभूमिहेमगजान्वितैः ॥८२
 सत्त्वयुक्तस्य क्रद्विष्माद्विरथेष विधिः स्मृतः । इतरस्य यथाशक्ति फलपुष्पाक्षतोदकैः ॥८३
 तत्त्वां गुडं घृतं तैलं एयः कुम्भास्तिलैः सह । अर्द्धवेतानि शस्तानि शशिवृद्धच्चा विदर्ढयेत् ॥८४
 प्रत्यहं दद्वगेदर्च्यं शशि वृद्धच्चा नरोत्तम । एवमर्धः प्रतादव्यः शृणु मन्त्रविधिक्रमम् ॥८५
 नवोनवोसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः । त्रिरप्तिसमवेतो वै देवानाप्यायसे हृविः ॥८६
 गगनाङ्गणसदीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव । भाभासितदिग्भोग रमानुज नमोऽस्तु ते ॥८७

द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के दिनों में क्रमशः कृष्ण, अच्युत, अनंत तथा हृषीकेश आदि भगवान् के नामों के 'कृष्णाय नमः' की रीति से उच्चारण करते रहना चाहिए क्योंकि द्वितीया से आरम्भ कर उन चारों दिनों में अच्युत देव का ही पूजन होता है—प्रथमदिन भगवान् चक्रपाणि के चरण की पूजा, दूसरे दिन नाभि की पूजा, तीसरे दिन उन मुरारि भगवान् के वक्षःस्थल की पूजा और चौथे दिन उन जगद्भाता के शिर की पूजा सविधान सुसम्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । पुष्ट, चन्दन, धूप, धूषण समेत अर्ध्य, धीवर, नैवेद्य, और दीपदान द्वारा भक्तिपूर्वक विश्वेश्वर भगवान की पूजा करने के उपरांत दिन की समाप्ति में मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर सोम को उनकी भक्ति-भाव मास में निमग्न होकर अर्ध्य प्रदान करना चाहिए । शशि, चन्द्र, शशांक और इन्दु नामों के क्रमशः उच्चारण पूर्वक तृतीयादि तिथियों में उन्हें जिस प्रकार अर्ध्य प्रदान करना चाहिए ॥७०-७१। युधिष्ठिर ! मैं विस्तार पूर्वक बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! चन्दन, अगर, कपूर, दही, द्वर्वा, अक्षत आदि रत्नाकर के रत्न अथवा वज्र या वैदूर्य मणि मोती, पुष्ट, सामयिक फल खजूर, नारियल समेत उसे वस्त्र से आच्छादित करके गौ, अश्व, भूमि, सुर्वण गज से पूर्ण कर इस प्रकार के अर्ध्य सात्त्विक धनवानों को प्रदान करना चाहिए । राजन् ! अन्य लोगों को यथाशक्ति फल, पुष्ट, अक्षत, जल, लवण, गुड, धी, तेल, और तिल समेत जलपूर्ण कलश के इस प्रशस्त अर्ध्य चन्द्रमा की वृद्धि के अनुसार प्रतिदिन वृद्धि पूर्ण देना चाहिए । नरोत्तम ! इस प्रकार के अर्ध्य प्रदान करने में मन्त्रविधि के क्रम बता रहा हूँ, सुनो ! 'आप प्रत्येक मास में उत्पन्न होकर नूतन ही बने रहते हैं, उसी प्रकार तीनों अग्नि से युक्त होकर हृवि द्वारा देवों के पालन पोषण करते हैं । आप इस गगन प्राङ्गण के उत्तम दीप एवं क्षीरसागर के मंथन करने से जन्म ग्रहण किया है और आपके प्रकाश से

दत्त्वार्थं द्विजराजाय तद्विप्राय निवेदयेत् । निर्दत्यार्थक्रमिमं ततो भुञ्जीत बाग्यतः ॥८८
 भूमि तु भाजनं कृत्वा पद्मपत्रसमास्तृताम् । पालाशैर्मधुपत्रैर्वा सुरूपैर्वा शिलातले ॥८९
 समालभ्य धरां देवीं मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् । त्वत्तले भोक्तुकामोऽहं देवि सर्वरसोद्भूते ॥९०
 गदनुग्रहाय सुस्वादं कुर्वन्नममृतोपमम् । एवं जप्त्वा च भुक्त्वा च शाकं पाकं गुणोत्तरम् ॥९१
 आचम्द्य खान्दुपालभ्य स्मृत्वा सोमं स्वप्तेद्भूति । भोक्तव्यं तु द्वितीयायामक्षारलवणं हविः ॥९२
 मुन्यन्नं तु त्रुतीयापां चतुर्थ्या गोरसोत्तरम् । घृतात्त्वाः सगुणाः शस्त्राः पञ्चम्यां कृशरास्सत्ता ॥९३
 शस्त्रा^१ शद्रेषु सर्वेषु सदा इयामाकृतण्डुलाः । प्रसाधिका शूतं गव्यं वन्यं फलमयाचित्तम् ॥९४
 प्रातः स्नानं ततः द्वृत्वा सन्तर्थ्य पितृदेवताः । भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या दत्तडानान्विसर्जयेत् ॥९५
 भृत्यबन्धुजनैः सार्द्धं पश्चाद्भुञ्जीत कामतः । एवं भद्रेषु सर्वेषु त्रिभासेषु^२ गतेषु यः ॥९६
 करोत्येतन्नरो भक्त्या वर्षनेकममत्सरी । तस्य श्रीविजयश्चैव नित्यं सोमः प्रसीदति ॥९७
 एतत्करोति या कन्या शुभं प्राप्नोति सा पतिम् । दुर्भगा सुभगा साध्वी भवत्यविधवा सदा ॥९८
 राज्यार्थीं लभते राज्यं धनार्थीं लभते धनम् । दुत्रार्थी^३ लभते दुत्रादितिशाह प्रभाकरः ॥९९

सप्तस्त दिशाः^४ पूर्णं प्रकाशित होती हैं अतः आपको नमस्कार है ।’ इस भाँति द्विजराजं चन्द्रं को अर्ध्य अर्पित करके उसे ब्राह्मण को समर्पित करे । पश्चात् इसी प्रकार प्रतिदिन अर्ध्य क्रम की समाप्ति होने पर मौन होकर भूगि प्रार्थना पूर्वक भोजन करे पवित्र भूमि में कमल पत्र, पलाश, महुवे के पत्र अथवा शिलातल पर पृथ्वी देवी की समस्त रसों समेत उत्पन्न होते वाली देवि । मैं आपके तल पर भोजन की इच्छा से उपस्थित हो रहा हूँ, इसलिए मेरे अनुग्रहार्थी आप इस भोजन को अमृत की भाँति सुस्वाद पूर्ण करें । ८०-९०। इस भाँति आराधना पूर्वक देने हुए शाक के शोजन करने के उपरात उस मंत्रवेत्ता को आचमन करके उस जल कुण्ड के समीप में सोम के स्मरण पूर्वक भूमि शयन करना चाहिए । इसी प्रकार अक्षार लवण समेत तिनी के चावल की हवि चतुर्थी को गोरस (मट्ठा), और पञ्चमी के दिन धी गुड़ समेत कृशराज (खिचड़ी) के भोजन सदैव करना चाहिए । सभी भद्र व्रत में सावाँ के चावल को गाय के धी में तल कर अयाचित वन्य फल का भोजन प्रशस्त बताया गया है । प्रातः काल स्नान, और देव-पितृ तर्पण आदि नित्य नियम के उपरांत ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक दान और भोजन से तृप्त कर विसर्जन करना चाहिए । पश्चात् बन्धु वर्ग और सेवकों समेत स्वयं यथेच्छ भोजन करे । इसी भाँति तीन मास वाले सभी भद्र व्रतों में जो प्राणी पूर्ण वर्ष का समय व्यतीत करता है, उस मत्सरहीन पुरुष की भी वृद्धि एवं विजय नित्य होती रहती है और सोम सदैव उसके ऊपर प्रसन्न रहते हैं । दुर्भगा-सुभगा जो कोई कन्या इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करती है, उसे शुभ पति की प्राप्ति पूर्वक वह सदैव पतिपरायणा पतिव्रता और सध्वा होती रहती है । उसी प्रकार राज्यार्थी को राज्य, धनार्थी को धन, एवं पुत्र की कामना वाले को पुत्र की प्राप्ति होती है । भारत ! भद्रव्रत के अनुष्ठानों को सुसम्पन्न करने पर उस

१. भोज्याः । २. प्रकाशेषु । ३. अपुत्रः ।

योषित्कुलकुलविवाहमनोरमणि शश्यान्नथानशयननासनशोभितानि ।
भद्राण्यवाप्य धनपुत्रकलत्रजानि जातिस्मरो भवति भारत भद्रकर्ता ॥१००
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तर पर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भद्रोपवासद्रतनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

द्वितीयाव्रतसाहात्म्यवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

संत्यन्यास्तिथयः पार्थ द्वितीयाद्याः परश्चुताः । मासैश्चतुर्भिर्श्रव्त्वारः प्रावृद्धुक्लाः क्लमापहाः ॥१
गोपिताश्च सदा लोके न प्रोक्ताश्च नया क्वचित् । प्रकाशयामि ताः पार्थ शृणु सर्वा मया ह्रिताः ॥२
एत्तु तु श्रावणे मासि अन्या भाद्रपदे तथा । अपराघ्युजे मासि चतुर्थी कार्तिके भवेत् ॥३
श्रावणे कलुषा नाम प्रोष्ठपादे च गीर्मला : आश्विने प्रेतसञ्चारा कार्तिके च यमा स्मृतः ॥४

युधिष्ठिर उवाच

कस्मात्सा कलुषा प्रोक्ता कस्मात्सा गीर्मला मता । कस्मात्सा प्रेतसञ्चारा कस्माद्याम्या प्रकीर्तिता ॥५

भद्रवती प्राणी को सुन्दरी स्त्री, धन, पुत्र, मनोरम शश्या, स्वादपूर्ण भोजन, पान आदि के समस्त सुखों की प्राप्तिपूर्वक जन्मान्तरीय स्मरण होता है । १-१००

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्बाद में
भद्रोपवास व्रत निरूपण नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त । १३।

अध्याय १४

द्वितीया व्रतमाहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! श्रावण मास के शुक्ल पक्ष से आरम्भ कर चार मास की द्वितीया आदि अन्य भी तिथियाँ इस प्रकार की हैं, जिनके अनुष्ठान सुसम्पन्न करने से प्राणी के समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं । पार्थ ! मैंने उन्हें इस लोक में सदैव गुप्त रखा था, किसी से कभी भी प्रकाशित नहीं किया था । किन्तु वह तुम्हें आज बता रहा हूँ । सावधान होकर सुनो ! श्रावण मास के शुक्ल की पहली, भाद्रपद (भादों) की दूसरी, आश्विन मास की तीसरी और कार्तिक मास की चौथी द्वितीया तिथि के क्रमशः कलुषा, गीर्मला, प्रेत सञ्चार और यम नाम बताये गये हैं । १-४

युधिष्ठिर ने कहा—श्रावण, भाद्रपद, (भादों), आश्विन और कार्तिक मास की शुक्ल द्वितीया तिथि के उपरोक्त कलुषा आदि नाम क्रमशः जो रखे गये हैं, उनके उस नामकरण में कौन कारण है, बताने की कृपा करें । ५

श्रीकृष्ण उचाच

पुरा वृत्रवधे वृत्ते प्राप्तराज्ये पुरन्दरे । ब्रह्महत्यापनोदार्थमभ्यमेधे प्रवर्तते ॥६
 क्रोधादिन्द्रेण वज्रेण ब्रह्महत्यां निषूदिता । षट्खण्डा^१ च हृता क्षिप्ता दृक्षे तोये महीतले ॥७
 नार्या ब्रह्महने वद्धौ संविश्ज्य यथाक्रमम् । तत्पापं श्रावणे व्यूढं द्वितीयायां दिनोदये ॥८
 नारीवृक्षगदीभूमिवहिन्द्रस्त्रहनेष्वथ । निर्मलीकरणं जातमतोर्थं कलुषा स्मृता ॥९
 मधुकैटभयो रक्ते पुरा मानेति मेदिनी । अष्टांगुला पवित्रा सा नारीणां तु रजो मलम् ॥१०
 नद्यः पूरमलाः सर्वा वह्नेर्धूमशिखा मलः । कलुषाणि द्वरंत्यस्यां तेनैषा कलुषा मता ॥११
 गीर्गिरा भारती वाणी वाचा मेधा सरस्वती । गीर्मला वहते यस्मद्द्वितीया गीर्मला मता ॥१२
 देवर्षिपितृधर्माणां निन्दका नास्तिकाः शठाः । तेषां सा वाग्मलव्यूढा द्वितीया तेन गीर्मला ॥१३
 अनध्यायेषु शास्त्राणि पाठ्यन्ति पठन्ति च । शाब्दिकास्तार्किकाः श्रौतास्तेषां शब्दापशब्दजाः ॥१४
 मला व्यूढा द्वितीयायामतोर्थं गीर्मला च सा ॥१४
 प्रेतास्तु पितरः प्रोक्तास्तेषां तस्यां तु संचरः । द्वितीयायां च लोकेषु तेन सा प्रेतसञ्चरा ॥१५
 अग्निष्वाता वर्हिषद आज्यपा: सोमपास्तथा : पितृपितामहप्रेतसञ्चरात्प्रेतसञ्चरा ॥१६

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में व्रकासुर के वध द्वारा राज्य की प्राप्ति होने पर इन्द्र को ब्रह्महत्या का दोषभागी होना पड़ा था । उस ब्रह्महत्या से मुक्त होने के लिए उन्होंने अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया, किन्तु यज्ञ के सुसम्पन्न होने पर भी अपने को उससे मुक्त होते न देखकर अत्यन्त ब्रुद्ध होकर उन्होंने अपने वज्र द्वारा ब्रह्महत्या का नाश करना चाहा, जिससे ब्रह्महत्या के छः खण्ड हो गये, किन्तु उन खण्डों को क्रमशः वृक्ष, जल, पृथ्वी, स्त्री, वृषलीपति और अनिन के समझा करके बाँट देने पर ही उससे मुक्त हो सके । पश्चात ब्रह्महत्या के उन भागों के ग्रहण करने वाले नारी वृक्ष, आदि ने श्रावण शुक्ल की द्वितीया के दिन यूर्योदय के समय सविधान स्नान पूर्वक अपने पापों के शमन किये जिससे वे सब पूर्व की भाँति निर्मल हो गये । इसीलिए उस द्वितीया का कलुषा नामकरण हुआ । यद्यपि पहले समय में मधुकैटभ दैत्यों के रक्त से यह पृथिवी अत्यन्त औत-प्रोत हो गयी थी, तथापि उस समय भी आठ अंगुल पृथिवी अवशिष्ट रहने के नाते पवित्र थी । स्त्रियों के रज, नदियाँ के दोनों तट का जलपूर्ण रहना, और अग्नि में धूमशिखा रूप मल बताया गया है । उस द्वितीया के समय इन कलुषों के यथापूर्व स्थित रहने के और नष्ट होने के नाते भी इसका कलुषा नाम हुआ है । गीर शब्द गिरा, भारती, वाणी, वाचा, मेधा और सरस्वती के अर्थ में प्रयुक्त होता है, इसीलिए इसके मल के भाद्रपद (भादों) की शुक्ल द्वितीया में नष्ट होने के नाते गीर्मला नामकरण उस द्वितीया का हुआ है । तथा देव, ऋषि, एवं पितृधर्मों के निन्दक, नास्तिक, एवं शठ प्राणी के वाग्मल को विनष्ट करने के कारण भी उसका गीर्मला नाम हुआ है । ६-१३। अनध्याय के दिनों में शाब्दिक (वैयाकरण), तार्किक, एवं वैदिक विद्वान् शास्त्रों को पढ़ते पढ़ाते हैं, जिससे उनके मुख से निकले हुए शुद्ध और अशुद्ध शब्द मलरूप बताये जाते हैं उनके शमन करने के नाते भी उसका उपरोक्त नाम सार्थक हुआ है । आश्विन द्वितीया के दिन प्रेत (पितर) लोग अपना संचार करते रहते हैं, अग्निष्वाता, वर्हिषद, आज्यपा, तथा सोमपा आदि पितृ पितामह भी उस समय संचार

१. षट्खण्ड।

पुत्रैः पौत्रेश्व दौहित्रैः स्वधामन्त्रैः मुपूजिताः । श्राद्धदानमखेस्तृप्ता यात्यतः प्रेतसंचराः ॥१७
 कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां युधिष्ठिर । यमो यमुनया पूर्व भोजितः स्वगृहे तदा ॥१८
 द्वितीयायां महोत्सर्गे नारकीयाश्च तर्पिताः । पात्रेभ्यो विप्रमुक्तास्ते मुक्ताः सर्वे विबंधनाः ॥
 भ्रामिता नर्तितास्तुष्टाः स्थिताः सर्वे यदृच्छ्या ॥१९
 तेषां महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्रे सुखावहः । ततो यमद्वितीया सा प्रोक्ता लोके युधिष्ठिर ॥२०
 अस्यां निजगृहे पार्थ न भोत्तत्यमतो बुधैः । स्तेहेन भगिनीहस्ताद्वोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥२१
 दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः । स्वर्णलिंकारवस्त्राद्यैः पूजासत्कारभोजनैः ॥२२
 सर्वा भगिन्यः संपूज्या अभावे प्रतिपत्तिगाः । पितृव्यभगिनी हस्तात्प्रथमायां युधिष्ठिर ॥२३
 मातुलस्य मुताहस्ताद्वितीयायां दुनर्नृप । पितृमातृस्वसारौ ये द्वितीयायां तदो करात् ॥२४
 भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्या हस्ततः परम् । सर्वासु भगिनीहस्ताद्वोक्तव्यं बलवर्द्धनम् ॥२५
 धन्यं यशस्यमायुष्यं धर्मकामार्थवर्द्धनम् । व्याख्यातं सकलं स्नोहात्सरहस्यं स्या तत्र ॥२६
 यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः सम्भोजितो जगति सत्त्वरसौहृदेन ।

तस्मां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति^१ प्राप्नोति वित्तमयै^२ भोजननुत्तमं सः ॥२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णपुष्टिवर्द्धिरसम्बादे

यमद्वितीयाव्रतमाहात्म्यं नाम चतुर्दशोऽध्यायः । १४

(गमन) करते रहते हैं और उसी दिन पुत्र पौत्र, एवं दौहित्रों द्वारा स्वधा मंत्रों के उच्चारण पूर्वक श्राद्ध-दान रूपी यज्ञों से तृप्त होते हैं इसलिए भी उसका प्रेत संचरा नाम हुआ है । युधिष्ठिर ! उसी प्रकार कार्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन यमुना ने यम को अपने घर भोजन कराया था, जिससे नारकीयों को अत्यन्त तृप्ति हुई थी । पापों से मुक्त होकर सभी लोग बन्धन हीन होकर यथेच्छ भ्रमण करते, नृत्य करते हुए अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं । क्योंकि उस महोत्सव के मुसम्पन्न होने पर यमपुरी में अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर ! इसीलिए इसका यमद्वितीया नाम हुआ है । पार्थ ! इस द्वितीया के दिन विद्वानों को चाहिए कि अपने घर भोजन न करके भगिनी के यहाँ उसके बनाये हुए उस सुस्वादु और पुष्टिवर्धक भोजन से आत्मतुष्टि करें । उस अवसर पर स्वर्णाभरण एवं उत्तम वस्त्रादि के दान पूर्वक सत्कार भोजनादि द्वारा समस्त भगिनियों की पूजा करनी चाहिए । युधिष्ठिर ! सर्वप्रथम पितृव्य-भगिनी, इसकी मामा की पुत्री तथा तीसरी माता-पिता की भगिनी के हाथ के भोजन करने के उपरांत अपनी सहोदरा भगिनी के यहाँ भोजन करना चाहिए । इस प्रकार सभी भगिनियों के हाथ का सुस्वादु भोजन करना आवश्यक होता है, जो पुष्टिकारक, धन्य और यश, आयु, धर्म, काम एवं अर्थ की वृद्धि करता रहता है । इस प्रकार स्नेह वश मैने तुम्हें रहस्य समेत इसकी सम्पूर्ण व्याख्या सुना दी । जिस तिथि में यमुना ने यम को अपने घर भोजन कराया था, उस तिथि के दिन जो मनुष्य अपनी भगिनी के हाथ का सुस्वादुपूर्ण भोजन करता है, उसे उत्तम भोजन समेत धन की प्राप्ति सदैव होती रहती है । १४-२७
 श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में द्वितीया व्रत माहात्म्य नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त । १४।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अशून्यशयनमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्भवता प्रोक्तं धर्मार्थादिः सुसाधनम् । गार्हस्थ्यं तच्च भवति दम्पत्योः प्रीयमाणयोः ॥१
पत्नीहीनः पुमान्पत्नी भर्ता विरहिता तदा । धर्मकामार्थसंसिद्धी न सदतां मधुसूदन ॥२
तद्बूहि देवदेवेश विधवा स्त्री न जायते । व्रतेन येन गोविन्द पत्न्याऽविरहितो नरः ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

अशून्यशयनीं नाम द्वितीयां शृणु तां सम । यामुपोष्य न वैधव्यं प्राप्नोति स्त्री युधिष्ठिर ॥४
पत्नीविमुक्तश्च नरे न कदाचित्प्रजायते । शेते जगत्पतिर्विञ्छः स्त्रिया सार्द्धं यदा किल ॥५
अशून्यशयनंनाम तदा ग्राहा च सा तिथिः । उपवासेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥६
कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणे नृपसत्तम । स्ननं तद्यां तडागे दा गृहे वा नियतात्मवान् ॥७
कृत्वा पितृन्मनुष्यांश्च देवान्संतर्प्य भक्तिमान् । स्थण्डिलं चतुरसं तु मृण्यं कारयेत्तः ॥८
तत्रस्थं श्रीधरं श्रीशं भक्त्याभ्यर्च्य श्रिया सह । नैवेद्यपुष्पधूपाद्यैः फलैः कालोद्भूवैः शुभैः ॥९

अध्याय १५

अशून्यशयन माहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—भगवान् ! गार्हस्थ्य धर्म को धर्म, काम एवं अर्थ का साधक बताया है, जो दम्पत्ति (स्त्री-पुरुष) के अत्यन्त प्रसन्नता पूर्ण रहने पर सुसम्पन्न किया जा सकता है । किन्तु मधुसूदन ! पत्नी हीन पुरुष और पति हीना स्त्री के धर्म कामार्थ की सिद्धि कभी नहीं हो सकती है, अतः देवाधिदेव गोविन्द ! उस व्रत के विधान बताने की कृपा कीजिये, जिसके अनुष्ठान द्वारा स्त्री कभी भी विधवा न हो सके और पुरुष को पत्नी वियोग न हो । १-३

श्रीकृष्ण जी बोले—युधिष्ठिर ! द्वितीयां के दिन सुसम्पन्न होने वाले अशून्य शयन नामक व्रत की व्याख्या तुम से कह रहा हूँ, उसके अनुष्ठित होने पर स्त्री कभी विधवा नहीं हो सकती और पुरुष को पत्नी वियोग नहीं होता । जिस समय जगत्पति भगवान् विष्णु अपनी प्रिया समेत शयन करते हैं, उन्हीं दिनों से वह अशून्य शयन नामक व्रत आरम्भ होता है, जिसमें उपवास एवं अयाचित अन्त का नक्त भोजन करना बताया गया है । नृपसत्तम ! इसके व्रती को चाहिए कि श्रावण मास की कृष्ण द्वितीया के दिन नदी, सरोवर अथवा गृह कूप पर ही स्नान करके देव ऋषि एवं पितरों के तर्पण करें । पश्चात् श्रद्धा भक्ति समेत उसे चौकोर मिट्टी की वेदी के ऊपर भगवान् श्रीधर को प्रतिष्ठित करके नैवेद्य, पुष्प, धूप एवं सामयिक फल आदि द्वारा लक्ष्मी समेत उन श्रीश की पूजा करे और अनन्तर इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक

इममुच्चवारयेन्मन्त्रं प्रणस्य जगतः पतिस् । श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीधामञ्च्छ्रीपतेऽव्यर्य^१ ॥१०
गार्हस्थ्यं भा प्रणाशं मे यातु धर्मर्थकानदम् । अग्नेयो मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु देवताः ॥

पितरो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः ॥११

लक्ष्म्या दिग्गुज्यते कृष्ण न कदाचिद्यथः भवान् । तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे प्रणश्यतु ॥१२

लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा । शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनिजन्मनि ॥१३

एवं प्रसाद्य पूजां च कृत्वा लक्ष्म्या हरेस्तथा । चन्द्रोदये ज्ञानपूर्वं पञ्चाव्येन संगुतम् ॥

विप्राय दक्षिणां द्यात्स्वसङ्ग्या फलसंयुताम् ॥१४

अनेन दिधिना राजन्यावन्मासचतुष्टयम् । कृष्णाश्के द्वितीयायां प्रागुक्तविधिभाचरेत् ॥१५

कार्त्तिके चाथ सम्प्राप्ते शय्यां श्रीकान्तसंयुताम् । सोपस्करां सोदकुम्भां साक्षां द्याद्विजातये ॥१६

प्रतिमासं च सोमाय अर्घ्यं द्यात्समन्त्रकम् । दध्यक्षत्तंरूलफलै रत्नैः सौवर्णभाजनैः ॥१७

गणनांगणतदीप दुग्धान्धिमथनोद्भूव । आभासितदिग्भोग रमानुज नमोऽस्तु ते ॥१८

एवं करोति यः सम्युद्धरो मासचतुष्टयम् । तस्य जन्मत्रयं गावद्गृहभज्ञो न जायते ॥१९

अशून्यशयनश्चैव धर्मकानार्थसाधकः । भवत्यव्याहतैश्वर्गः पुरुषो नात्र संशयः ॥२०

उन जगत्पति की आराधना करे—भृगुलता को धारण करने वाले श्रीकान्त, श्रीधाम, श्रीपते एवं अव्यय मेरा यह गार्हस्थ्य धर्म का जिसके द्वारा धर्म अर्थत्तथा काम की सफलता होती है, कभी विवटन न हो, उसी प्रकार मेरे अग्नि और देवता का भी न नाश हो तथा दम्पती (स्त्री-पुरुष) के भेद से मेरे पितरों का भी कृष्ण ! जिस प्रकार आप को लक्ष्मी वियोग कभी नहीं होता है, देव ! उसी भाँति मेरा स्त्री संबंध कभी नष्ट न हो । नारद ! जिस भाँति आप का शयन गृह लक्ष्मी से शून्य कभी नहीं होता है, उसी प्रकार मेरी भी शय्या प्रत्येक जन्म में सदैव स्त्री संयुक्त ही बनी रहे । इस प्रकार लक्ष्मी समेत भगवान् की प्रार्थना करने के उपरांत चन्द्रोदय होने पर षंचगव्य का प्राशन पूर्वक स्नान करके ब्राह्मण को फल समेत यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करना चाहिए । ४-१४। राजन् ! इसी विधान द्वारा चारों मास की कृष्ण द्वितीया के दिन इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए कार्तिक मास की कृष्ण द्वितीया के दिन पूजनोपरांत ब्राह्मण को इस भाँति की शय्या का दान करना चाहिए, जिस पर लक्ष्मी समेत भगवान विष्णु प्रतिष्ठित हो और उपस्कर (छत्र, कमण्डलु, खडाऊँ, जूता, भोजन पात्र आदि) उदकपूर्णघट एवं पुत्र आदि अपने सभी अंगों से पूर्ण हो । प्रत्येक मास में सोमदेव को मंत्रोच्चारण पूर्वक दही, अक्षत, मूल फल, रत्न और सुवर्ण पात्र के अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । पश्चात् उनकी इस प्रकार प्रार्थना करे कि—गणन प्राङ्मुण के उत्तमदीप, क्षीर सागर के मन्थन द्वारा उत्पन्न होने वाले एवं दिशाओं को पूर्ण प्रकाशित करने वाले आप लक्ष्मी जी के अनुज को बार-बार नमस्कार है । १५-१८। इस विधान द्वारा जो पुरुष चारों मास के व्रत की समाप्ति करता है, उसका तीन जन्म तक गार्हस्थ्य धर्म अत्यन्त दृढ़ रहता है और इस अशून्य शयन नामक व्रतानुष्ठान द्वारा उस पुरुष को अतुल ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, जिससे धर्म, अर्थ एवं कामनाओं की सफलता सदैव होती

नारी च पार्थ धर्मज्ञा ब्रतमेतद्यथाविधि । या करोति न सा शोच्या बन्धुवर्गस्य जायते ॥२१
वैधव्यं दुर्भगत्वं च भर्तृत्यां च सत्तम । प्राप्नोति जन्मत्रितयं न सा पाण्डुकुलोद्ध्रह ॥२२

एषा ह्यशून्यशयना नृपते द्वितीया ख्याता समस्तकलुषामहराऽद्वितीया ।

एतां समाचरति यः पुरुषोऽन्ध योषितप्राशोत्यसौ शयनमग्र्यमहार्हभोग्यम् ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे

अशून्यशयनब्रतमाहात्म्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥११

अथ षोडशोऽध्यायः

मधूकतृतीयान्नतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

फल्युनेऽप्यसिते पक्षे तृतीयायामुपोषिता । प्रातः स्थित्वा ब्रह्मचर्यं जटामुकुटशोभिता ॥१

गोधारथगतां देवीं रुद्धयानपरायणाम् । पूजयेद्गन्धकुसुमैर्दीपालक्तकचन्दनैः ॥

केसरैर्मधुरैद्वयैः स्वर्णमाणिक्यपूजयः ॥२

ॐ भूषिका देवभूषा च भूषिका ललिता उम्मा । तपोवन्दरता गौरी सौभाग्यं मे प्रयच्छतु ॥३

दौर्भाग्यं मे शमयतु सुप्रसन्नमनाः सदा । अवैधव्यं कुले जन्म ददात्परजन्मनि ॥४

रहती है—इसमें संशय नहीं । पार्थ ! इसी प्रकार जो स्त्री भी इसी ब्रत को सविधान सुसम्पन्न करती है, उसके विषय में उसके बन्धु वर्ग को किसी प्रकार का शोक कभी नहीं करना पड़ता है तथा पाण्डव सत्तम ! तीन जन्म तक उसे विधवा, दुर्भगा, एवं पति त्याग दुःखों से दुःखी नहीं होना पड़ता है । नृपते ! इस भाँति इस अशून्य शयन नामक ब्रत को सुसम्पन्न करने पर, जो कृष्ण द्वितीया के दिन सुसम्पन्न होता है और इसीलिए वह द्वितीया सःस्त पापों के अपहरण करने में प्रव्यात हो गयी है, स्त्री पुरुष सभी व्रती को उत्तम शयन समेत अनुपम भागों की प्राप्ति होती है । १९-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्बाद में

अशून्य शयन ब्रत माहात्म्य वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त । १५।

अध्याय १६

मधूकतृतीयान्नत नामक वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—फल्युन कृष्ण तृतीया के दिन उपवास करने के लिए उसके पूर्व दिन से ही ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए । उस दिन प्रातः काल स्नान-नित्यकर्म के उपरांत गोधा के रथ पर सुखासीन एवं रुद्र के ध्यान में तन्मय देवी जी की गंध, पुष्प, चन्दन, दीप, अलक्तक (महोवर), केसर, नैवेद्य, तथा सुवर्ण मणि समेत अत्यन्त भक्ति श्रद्धा से पूजा करके इस प्रकार की प्रार्थना करेकि—आप अलङ्घार रूप हैं, क्योंकि देवाधिदेव भगवान् शंकर आप के द्वारा ही सुशोभित होते हैं और समलकृत देवियों में आप अत्यन्त सौन्दर्य पूर्ण हैं अतः तपोवन में विहार करने वाली गौरी देवी मुझे सौभाग्य प्रदान करें, अत्यन्त प्रसन्न होकर मेरे दुर्भाग्य के शमन पूर्वक उत्तम कुल में जन्म और अवैधव्य अगले जन्म के लिए भी प्रदान

अङ्गेऽङ्गे च ममोपाङ्गे एवंपर्वे स्थितमुत्तम् । सुखदृष्टिस्पर्शरसं गौरी सौभाग्यं यच्छतु ॥५
 एवमुच्चार्य भन्नांश्च नारीज्ञानवती सती । पूजयेद्ब्राह्मणोक्तैस्तु भन्नर्मुखसुवासिनी ॥६
 जीरके: कटुहुण्डैश्च लवण्यर्गुडसर्पिषा । हृदैराद्रैः फलैः स्त्रीर्णमनोज्ञैः पुष्पबन्धनैः ॥७
 कुसुमैः कुंकुमर्णन्धैः कालेयमुखचन्दनैः । सिन्दूरेणातिरक्तेन वस्त्रैननाविधैः शुभैः ॥८
 नेत्रैरनेकदेशोत्त्यैः पूपकैस्तिलतण्डुलैः । अशोकैश्च विषुणकैर्घृतपूर्णैस्तु मोदकैः ॥९
 इत्येवमादिनैवेद्यैः दूजयित्वा महाद्रुमस्मृतः प्रदक्षिणं ततः कृत्वा दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥१०
 एतत्करोति या पुत्री तृतीयाद्रतमुत्तमम् । ततः प्राप्स्यति दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये श्रीधरं प्रति ॥११
 एतद्वत्तं स्याख्यातं यास्यन्ति राज्ञवतीः समाः । व्याख्यातं कश्यपे नदौ रुक्मिण्या व्रतमुत्तमम् ॥१२
 याश्चरिष्यन्ति ताः सर्वा भविष्यन्ति निराक्षयाः । अङ्गप्रत्यङ्गमुभगा लोकदृष्टिननोहराः ॥१३
 स्थित्वा वर्षशतं चान्ते ततो चद्वपुरं शुभम् । यास्यन्ति हंस्यानेन किङ्कूणीशब्दनादिना ॥१४
 तत्र त्वारमयिष्यन्ति स्वर्भर्तृन्वत्तरात्मवहन् । दिव्यभोगभुजो हृष्टाः सिद्धचष्टकसमन्विताः ॥१५
 अर्थं महार्घमणिकुंकुमकेसराद्वयं द्वागन्धमुग्धमुखरालि कुलोपगीतम् ।

दत्त्वा फलाक्षतयुतं मधुपादपस्य गौरीव लोकमहिता भवतीह नारी ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण-युधिष्ठिरसम्बादे

मधूकतृतीयाव्रतवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६

करें । मेरे शारीर के प्रत्येक अंगों, उपाङ्गों और अस्थि ग्रन्थियों में भी अमृत भरा रहे तथा गौरी देवी मुझे इस भाँति का सौभाग्य प्रदान करें, जो दृष्टि, सुख, और स्पर्श आदि सुखों का अगाध सागर हो । इस प्रकार ज्ञानवती एवं सती स्त्री को ब्राह्मणोक्त मंत्रों द्वारा पूजन प्रार्थना के उपरात जीर, कटु, लवण, गुड़, धी, मुख्तादु मनोहर फल, स्वर्ण की भाँति मनोज्ञ पुष्प-बन्धन, कुसुम, कुंकुम, गंध, कालेय, अगह, चन्दन, सिन्दूर से अतिरच्छित, अनेक भाँति के वस्त्र, अनेक देश के नेत्र पूआ, तिल, तण्डुल, अशोक-पुष्प और मोदक आदि नैवेद्यों द्वारा महावृक्ष मधूक (महुवे) की पूजा करनी चाहिए । पश्चात् प्रदक्षिणा करके द्वाह्यणों को दान-दक्षिणा प्रदान करे । १-१० । इस प्रकार इस दुहिता व्रत को जो कन्या सविधान सुसम्पन्न करेगी उसे भगवान् श्रीधर की कृपा से इस त्रैलोक्य के सुन्दर एवं दुष्प्राप्य वस्तुओं की प्राप्ति अनेक वर्ष तक होती रहेगी । सर्वप्रथम कश्यप जी ने इस व्रत विधान की व्याख्या रुक्मिणी जी को बताया था । इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाली स्त्रियों के अंग प्रत्यग आरोग्य पूर्वक अत्यन्त सुभग और लोक दृष्टि के लिए अत्यन्त मुखावह होंगे । सौ वर्ष तक इस अनुपम सुखानुभव करने के उपरात्त उन्हें हंसयान पर बैठकर, जो कि किंकिणी शब्दों से अत्यन्त मुखरित रहता है, रुद्लोक की प्राप्ति होगी । वहाँ पहुँच कर दिव्य भोगों के उपभोग पूर्वक अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट रहकर आठों सिद्धियों समेत वह अपने पति के साथ अनेक वर्षों तक रमण करती रहेगी । इस प्रकार बहुमूल्य मणि, कुंकुम, केसर पूर्ण माला जिसकी गन्ध से मुग्ध होकर भ्रमरकुल गुंजते हो, तथा फल समेत अक्षत उस मधु के वृक्ष को समर्पित करने से वह स्त्री गौरी देवी की भाँति लोक में पूजनीय होती है । १-१६ ।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्बाद में

मधूकतृतीयाव्रत वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त । १६ ।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

मेघपालीतृतीयाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

मेघपालीव्रतं कृष्ण कदाचित्क्रियते नृभिः । किं पुण्यं किमनुष्ठानं कीदृग्वल्ली स्मृता तु सा ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

आश्वयुक्त्कृष्णपक्षे तु तृतीयायां युधिष्ठिर । मेघपाल्यै प्रदातव्यो भक्त्या स्त्रीभिर्भिर्भित्तथा ॥२

अर्थो विरुद्धैर्गोधूमैः तप्तधान्यस्तमन्वितैः । तिलतण्डुलपिण्डैर्वा दातव्यो धर्मलिप्सुभिः ॥३

ताम्बूलसदृशैः पर्वते रक्ता वल्ली समञ्जरी । वाटीषु ग्राममार्गेषु प्रोत्थिता पर्वतेऽपि च ॥४

मेघपाल्यां धान्यतैलगुडकुंकुमहैमनान् पदानपि च कुर्वन्ति जना वाणिज्यजीवनाः ॥५

पापं सत्यानृतं कृत्वा द्वयलुब्धाः फलान्विताः । अर्थं इत्वा मेघपाल्यै नाशयन्ति क्षणादिह ॥६

मानोन्नानैर्जन्म मध्ये यत्पापं कुत्रचिल्कृतम् । तत्सर्वं नाशमायाति व्रतेननेन पाण्डव ॥७

मेघपाली शुभे स्थाने शुभे देशे समुत्थिता । पूजनीया वरस्त्रीभिः फलैः पूष्यैस्तथाक्षतैः ॥८

खर्जूरैर्नालिकैरश्च दाढिमैः करवीरकैः । गन्धधूपैर्दधिदीपैर्विरुद्धधन्यसञ्चयैः ॥९

अध्याय १७

मेघपालीतृतीयाव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर दे कहा—कृष्ण ! कदाचित् मनुष्यों को मेघपाली नामक द्रत का अनुष्ठान करते देखा गया है, इसलिए मुझे जानने की इच्छा है कि उसके सुसम्पन्न करने से किस पुण्य की प्राप्ति होती है, और उसके अनुष्ठान के विधान तथा वह वल्ली किस भाँति की होती है बताने की कृपा करें । १

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! आश्रित मास की कृष्ण तृतीया के दिन श्रद्धा भक्ति समेत स्त्री पुरुष को मेघपाली व्रत सुसम्पन्न करना चाहिए । उसमें अर्थं प्रदान पूर्वक गेहूँ, सप्त धान्य समेत तिल तण्डुल के पिंड प्रदान करना उन धर्मर्थियों को बताया गया है । ताम्बूल के समान उसके पर्व (पारे) और मंजरी (गुच्छे) विभूषित रक्त वर्ण की वल्ली होती है । गाँवों, भार्ग के छोटे-छोटे पुरवे और पर्वतों में वह ऊपर खड़ी की जाती है । मेघपाली तृतीया के दिन धान्य, तैल, गुड़, कुंकुम एवं सुवर्ण खण्डों समेत उसे व्यापारी लोग प्रत्येक स्थानों में रखते हैं अर्थात् उसी व्यापार द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं । द्वय के लोभ वश वे सदैव सत्य, असेत्य के व्यवहार करते रहते हैं जिससे उन्हें पाप भागी होना पड़ता है । उस पाप से मुक्त होने के लिए मेघपाली के दिन अर्थं प्रदान उन्हें अवश्य करना चाहिए जिससे उनके समस्त पाप क्षण मात्र में नष्ट हो जाय । २-६। पाण्डव ! जीवन में मानापमान द्वारा जहाँ कहीं जो कुछ पाप होता है, वह समस्त पाप इस ब्रतानुष्ठान द्वारा विनष्ट हो जाता है । शुभ देश और शुभ स्थान में समुत्थित मेघपाली की पूजा सुन्दरी स्त्रियों को फल, पुष्प, अक्षत, खजूर, नारियल, अनार, करवीर कनेर के पुष्प, गंध, धूप, दीप तथा बड़े हुए धान्यों के संचय समेत अर्थं प्रदान उन्हें रक्त वस्त्र से

रक्तवस्त्रैः समाच्छाद्य पिष्टातकविभूषिताम् । कृत्वार्थ्यः सम्प्रदातव्यो मन्द्रेणान्तेन भारत ॥१०
वेदोक्तेन द्विजो विद्वान्स्तच्च तस्यै निवेदयेत् । इत्येवं पूजयित्वा तां मेघपालीं पुमान्स्ततः ॥११
नारी वा पुरुषव्याघ्रं प्राप्नोति परमां श्रियम् । स्थित्वा वर्षशतं मर्त्ये सुखसौभाग्यगर्विते ॥१२
विष्णुलोकमवाप्नोति देहान्ते यानसंस्थितः । कुलानि सप्त नयति स्वर्गं स्वानि रसातलात् ॥
उद्भूत्य नात्र सन्देहस्त्वयाः कार्ये युधिष्ठिर ॥१३

नरकभीरुतयाः ददाति योऽर्थं फलायनुयुतं ननु मेघपालेः ।

उन्मानकूटकपटानि कुतानि यानि पापानि हन्ति सर्वितेव तमः प्ररोहान् ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे

मेघपालीतृतीयान्नतदर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१५

अथाष्टादशोऽध्यायः

रूपरम्भाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

स्त्रीणां सम्पद्यते यैन मर्त्यलोकं गृहं शुभम् । पतिप्रेम तथात्यन्तं तन्मे ब्रूहि व्रतं शुभम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

एकदा पार्वतीशम्भूं स्थितौ मुनिसुरावृतौ । कैलासशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते ॥२

आच्छादित और पीठी से विभूषित करके अर्थ प्रदान करना चाहिए । भारत ! वैदिक व्राह्मण द्वारा मंत्रोच्चारण करते हुए मेघपाली की पूजा पूर्वक उन्हें इस प्रकार के अर्थ प्रदान करने पर उस स्त्री या पुरुष को उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तथा पुरुष व्याघ्र ! इस मर्त्य लोक में सौ वर्ष के गर्वपूर्ण सुख सौभाग्य के अनुभव करने के उपरांत उसे उत्तम यान द्वारा विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर ! वह अपने सात पीढ़ियों को रसातल से स्वर्ग पहुँचाता है, इसमें सन्देह नहीं । अतः तुम इस व्रतानुष्ठान द्वारा अपने कुलों का उद्धार अवश्य करो । जो पुरुष नरक भीरु होकर फल समेत अर्थ प्रदान मेघपाली के लिए करता है, उसके कूट-कपट तुला मान आदि समस्त पाप सूर्य द्वारा अंधकार की भाँति विनष्ट हो जाते हैं ॥१६-१४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

मेघपाली तृतीया व्रत वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६।

अध्याय १८

रूपरम्भा नामक व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—इस मर्त्य लोक में स्त्रियों को शुभगृह और अत्यन्त पति-प्रेम किस व्रतानुष्ठान द्वारा प्राप्त होता है, बताने की छपा कीजिये । १

श्रीकृष्ण बोले—एक सगय पार्वती और शिव जी कैलास शिखर के उत्तम स्थान पर बैठे हुए थे, जो

नानादुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते । मुनिकिन्नर संघुष्टे गेयनृत्यसमाकुले ॥३
 शङ्कुरः पार्वतीं प्राह कि त्वया सद्व्रतं कृतम् । वामारूपेण भेत्यन्तं प्रियासि वरवर्णिनी ॥४
 आगच्छ जानुदेशं तु सुप्रसन्ना तथा प्रिये ! ब्रूहि चावितथं सर्वं त्वया पार्वति यत्कृतम् ॥५
 इत्युक्त्वः प्रणता भूत्वा गौरी प्राह शिवं शुभा । तृतीयायां मया चीर्णं दुरा रम्भाद्रतं शुभम् ॥६
 तेन मे त्वं मनोहारी भर्ता लब्धोऽस्ति शङ्कुर । ईश्वरी दाय्यहं स्त्रीणां तद देहार्द्धहरिणी ॥७

ईश्वर उदाच

कीदृशं तद्व्रतं भद्रे सर्वसौख्यप्रदायकम् । ब्रूहि पार्वति यत्नेन यच्चीर्णं पितुरन्तिके ॥८
 गौर्युवाच

पुराहं देव तिष्ठामि कुमारी भवने द्विः । हिमवद्गङ्गरे रम्ये सखीगणसमावृता ॥९
 ततोहं मेनया प्रोक्ता स्वदित्रा च हिमाद्विणा । पुत्रि रम्भाव्रतं कार्यं वरसौभाग्यवर्धनम् ॥१०
 येन प्रारब्धमात्रेण सर्वं सम्पत्स्थते तव । सौभाग्यं स्त्रीगणेभ्यर्थं महादेवीपदं तथा ॥११
 एवं करोमि वै मातर्नन चोक्तं पुरस्त्वया ! मनोभिलक्षितं येन येन प्राप्नोमि शङ्करम् ॥१२

मेनोवाच

अद्य शुक्लतृतीयायां स्नात्वा नियमतत्परा । कुरु पादर्वेषु पञ्चाग्नीञ्ज्वालमानान्हुताशनान् ॥१३

अनेक भाँति के धातुओं द्वारा चित्र विचित्र, अनेक भाँति के वृक्ष और लताओं से आच्छन्न तथा भाँति-भाँति के पुष्पों से सुशोभित था । महर्षियों और देवों का समाज भी वहाँ उपस्थित था । सभासदों के मनोविनोदार्थ किन्नरगण मिलकर वहाँ सुन्दर कलापूर्ण नृत्य कर रहे थे । उसी बीच भगवान् शंकर ने पार्वती जी से कहा—दर्जिनि ! तुमने कैन सा उत्तम व्रत सुसम्पन्न किया है, जिसके द्वारा तुम मेरी पत्नी होकर मुझे अत्यन्त प्रिय हो गई हो । प्रिये, आओ, मेरे इस जानु प्रदेश पर सुशोभित होकर इस हर्ष विभोर जन समाज में बताओ । पार्वति ! इसके लिए तुमने जो कुछ किया है, उसे सत्यतः कहना आरम्भ करो । उनके इस प्रकार कहने पर विनय विनम्र होकर पार्वती जी ने शिव जी से कहा—शंकर ! मैंने पहले समय (बाल्यावस्था) में तृतीया के दिन रम्भाव्रत के अनुष्ठान सुसम्पन्न किया था, जिसके द्वारा तुम मेरे मनोहारी भर्ता प्राप्त हुए हो और तुम्हारे देह की अधागिनी होती हुई समस्त स्त्रियों की ईश्वरी भी हुई हूँ । २-७

ईश्वर बोले—भद्रे, पार्वति ! समस्त सौख्य प्रदान करने वाला यह व्रत किस भाँति किया जाता है, जिसे तुमने अपने पिता के यहाँ रहकर सुसम्पन्न किया था । ८

गौरी बोली—देव ! पहले जिस समय मैं कुवांरी थी और अपने सखियों के साथ पिता के उस सुन्दर भवन में क्रीड़ा करती थी, उन्हीं दिनों मेरे माता मेना और पिता हिमालय ने कहा—पुत्रि ! सौभाग्य वर्द्धनार्थ इस रम्भा व्रत का अनुष्ठान करना आरम्भ करो, जिससे तुम्हें सौभाग्य, स्त्रीगणों के ऐश्वर्य और महादेवी पद की प्राप्ति पूर्वक सभी कुछ की प्राप्ति होती रहे । मैंने कहा—मात : जो कुछ आपने कहा है, मैं उसे अवश्य करूँगी, जिससे मुझे समस्त अभिलक्षित की प्राप्ति पूर्वक शंकर की प्राप्ति होगी । ९-१२

मेना बोली—आज शुक्ल पक्ष की तृतीया है, नियम पालन में तत्पर होकर स्नान करके पञ्चाग्नि

गर्हपत्यं दक्षिणाग्निमन्यं चाहवनीयकम् । पञ्चमं भास्करं तेज इत्येते पञ्च वद्वयः ॥१४
 एतेषां मध्यतो भूत्वा तिष्ठ पूर्वमुखा चिरम् । चतुर्भुजां ध्यानपरां पद्दत्योऽपि संस्थिताम् ॥१५
 मृगःजिनच्छन्नकुचां जटावल्कलधारिणीम् । सर्वाभरणसंयुक्तां देवीभिमुखीं कुरु ॥१६
 महालक्ष्मीमहाकाली महामाया महानतिः । गङ्गा च यमुना सिंधुः शतद्रुनर्मदा सही ॥१७
 सरस्वती वैतरिणी सैव प्रोक्ता भहासती । तस्याऽपि प्रेक्षणपरा भद्र तद्वावभासिता ॥१८
 होमं कुर्युर्यतात्मानो ब्राह्मणाः सर्वतोदिशम् । देव्याः पूजा ब्रकर्तव्या पुष्पधूपादिना ततः ॥१९
 बहुप्रकारनैवेद्यं नैवेद्यं धृतपाचितम् । स्थापयेत्पुरतो देव्याः पृथक्सौभाग्यमेव च ॥२०
 जीरकं कडुहुण्डश्चाप्यपूपान्कुरुमं तथा । निपाचां पादनतरां लक्षणं शर्करां गुडम् ॥२१
 पुष्पमण्डपिका कार्या गन्धपुष्पाधिवासिता । पद्मासनेन संतिष्ठेद्यादत्परिणतो रविः ॥
 ततः प्रणम्य रुद्राणीं मन्त्रमेतनुदीर्घेत् ॥२२
 वेदेषु सर्वशास्त्रेषु दिवि भूनौ धरातले । दृष्टः श्रुतश्च बहुशः शङ्काविरहितः रत्नवः ॥२३
 त्वं शक्तिस्वं स्वधा स्वाहा त्वं सावित्री सरस्वती । पर्ति देहि गृहं देहि वसु देहि नमोस्तु ते ॥२४
 एवं संक्षमयेद्वेदों प्रणिपत्य पुनः पुनः । देहि भक्त्या गृहं रम्यं विचित्रं बहुभूमिकम् ॥
 आच्छाद्यद्वारकेदारकपोतादिविभूषितम् ॥२५

तापने के लिए अपने चारों ओर प्रज्वलित अग्नि की स्थापना करो । गर्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय और अन्य अग्नि की स्थापना अपने चारों ओर करके पाँचवा भास्कर का तेज उसमें सम्मिलित किया गया है । इसे ही पंचाग्नि कहा जाता है । इन अग्नियों के मध्य पूर्वाभिमुख बैठकर देवी को प्रसन्न करो, जो चार भुजाओं को धारण किये दोनों चरण पर स्थित होकर (शिव) के ध्यान में निमग्न हैं और जटा वल्कल धर्तण पूर्वक गृहचर्म से कुच को आवृत किये समस्त आभूषणों से विकृष्टित हैं । महालक्ष्मी, महाकाली, महामाया महासरस्वती, गंगा, यमुना, सिंधु, शतद्रु नर्मदा, मही, सरस्वती तथा वैतरिणी आदि नाम उन्हीं महासती के हैं । इसलिए उनके सम्मुख अपलक नेत्रों से उन्हें देखती हुई तद्वाव में निमग्न हो जाओ । १३-१८। यतात्मा ब्राह्मणों द्वारा उनके चारों ओर हवन करना चाहिए । पुष्प, धूप, दीपादि द्वारा देवी जी की पूजा करके अनेक भाँति के नैवेद्य, जो धृतयुक्त हों, अपने सौभाग्यार्थ देवी जी को अर्पित करें । जीरे, कडुवे मसाले मिश्रित पूआ, कुसुम, अत्यन्त पावन निपाचा, लक्षण, शक्कर, गुड़ के अर्पण पूर्वक गंध पुष्प से अधिवासित पुष्प का मंडप उनके लिए बनाना चाहिए । उसमें देवी के सम्मुख पद्मासन द्वारा जब तक सूर्यास्त न हो, आसन बाँधकर बैठना चाहिए । पश्चात् भगवती रुद्राणी को करबद्ध प्रणाम करते हुए मंत्रोच्चारण पूर्वक क्षमा प्रार्थना करे—समस्त वेदों और शास्त्रों में यह लिखी हुई बात स्वर्ग तथा इस धरातल में अत्यन्त प्रस्वात है कि आप की स्तुति में किसी प्रकार की शंका सम्भव नहीं है—शक्ति, स्वधा, स्वाहा, सावित्री और सरस्वती तुम्हीं हो, अतः देवी ! गृहसमेत पति प्रदान करने की कृपा करें, मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ । १९-२४। इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करके बार-बार अनुनय विनय करते हुए कि मुझे रम्य, विचित्र एवं अत्यन्त भूमिकाले गृह को प्रदान कीजिये, जो अनेक भाँति के दरवाजे एवं कमरे से पूर्ण हो, तथा सुन्दर भित्ति (दीवाल), स्तम्भ, खिडकियों, मणि माणिडत तोरण से आवृत

कुड्यस्तन्मगवाक्षाद्यचं मणिमण्डिततारणम् । पद्मरागमहानीलवज्रवैदूर्यभूषितम् ॥२६
 गृहदानविधानेन ब्राह्मणाय यशस्विने । सपत्नीकाय सम्पूज्य सर्वोपस्करसंयुतम् ॥२७
 सुवासिनीभ्यस्त्वेयं नैवेद्यं सूर्यसंस्थितम् । निर्वर्त्य विधिनानेन तत्पश्चात्क्षमयेवधम् ॥२८
 दाप्त्यानि च भोज्यानि चतुर्थ्यं मधुरै रसैः । इन्युलमुम्पया चीर्णं हरं रम्भावतं परम् ॥२९
 व्रतान्तेऽगस्त्यमुनये दत्तं गृहवरं शुभम् । लोपामुद्रा प्रिया पत्नी तस्य वेशसनि पूजिता ॥३०
 तेन धर्मेण देव त्वं भर्ता लब्धोऽसि शङ्कुरः । अद्विकेऽपि स्थिता तेन याश्चरिष्यन्ति योगितः ॥३१
 कौतेय पुरुषो वापि व्यातं रम्भावतं भुवि । तासां पुत्राः गृहं भोगाः कुलवृद्धिर्भविष्यति ॥३२
 स्त्रीणां चातुर्यसौभाग्यं गार्हस्थ्यं सर्वकामिकम् । बालावृद्धासुमध्यानां रूपतावर्णपृष्ठं ॥३३
 सपत्नीदर्पदलनं वशीकरणमुत्तमम् ॥३३
 हिमवद्विंश्योर्मध्ये आर्याविंश्ये मनोहरे । उत्पत्य शोभने वासे पूर्वोत्पन्नधने कुले ॥३४
 मृतः शक्तपुरं याति ततो विष्णुपुरं व्रजेत् । ततः शिवपुरं याति व्यासस्य वचनं यथा ॥३५
 यद्रम्भया किल भयापहरं ततश्च गौर्या हिमाद्रिभवनस्थितयापि चीर्णम् ।
 तस्या व्रतं सुविकरोति रता च धर्मं ब्रह्मेशकेशदपतिं सुखदं लभेत ॥३६
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
 पञ्चाग्निसाधनात्यं रम्भातृतीयावतं नामाष्टादशोऽध्यायः । १८

और पद्मराग, महानील, वज्र, वैदूर्य मणि से विभूषित हो, पश्चात् गृहदान विधान द्वारा उस समस्त साधन सम्पन्न गृह को किसी संयमी प्रतिष्ठित ब्राह्मण विद्वान् की सपत्नीक पूजन करके उन दम्पत्ति के लिए अर्पित कर रहे और सूर्यास्त के पूर्व ही सुवासिनी (सधवा) स्त्रियों को नैवेद्य द्वारा तृप्त करके पुनः क्षमा प्रार्थी रहे । अनन्तर चौथ के दिन मधुर रसों के भोजन द्वारा उन दम्पति को संतृप्त करके विसर्जित करे । भगवती उमा ने कहा—हर ! इस भाँति मैंने इस रम्भावत को सविधान सुसंपन्न करके अनन्तर उस शुभ गृह को अगस्त्य मुनि के लिए अर्पित कर दिया था, जिसमें उनकी प्रेयसी पत्नी लोपामुद्रा पूजनीय होकर निवास करती है । देव, शंकर ! उसी व्रत द्वारा मुझे आप भर्तारूप में प्राप्त हुए हैं और उसी के प्रभाव से आपकी अर्धदेहा एवं ईश्वरी हुई हूँ । कौतेय ! भूतल में अत्यन्त प्रस्यात इस रम्भावत के अनुष्ठान को जो स्त्री अथवा पुरुष सुसम्पन्न करेगा उनके पुत्र, गृह, एवं भोगों की प्राप्ति पूर्वक कुल वृद्धि होती रहेगी । स्त्रियों को चातुर्य, सौभाग्य, गृहस्थ धर्म की समस्त कामनाओं की सफलता, तथा बाला, वृद्धा एवं मध्या स्त्रियों से अधिक रूप लावण्य की प्राप्ति होती है और सपत्नियों के दर्प दलने के लिए यह लक्ष्म वशीकरण है । इस व्रत के प्रभाव से हिमालय और विन्ध्य पर्वत के मध्य में स्थित इस मनोहर अर्यावर्त प्रदेश में किसी धनवान कुल में उसका जन्म होता है और देहावसान के समय उसे इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है तथा इन्द्रलोक से विष्णु लोक और विष्णु लोक से शिव लोक की प्राप्ति व्यास जी के वचनानुसार होती है । हिमालय के यहाँ रहती हुई गौरी जी ने इस व्रतानुष्ठान की सविधि समाप्ति की है अतः जो धार्मिक स्त्री इस व्रत को सुसम्पन्न करती है, उसे क्रमशः ब्रह्मा, शिव, और विष्णु की प्राप्ति पतिरूप में होती है । २५-३६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्बाद विषयक पञ्चाग्नि साधन रूपरम्भातृतीयावत के वर्णन नामक अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त । १८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

गोपदतृतीयाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे दिनोदये । तृतीयायां चतुर्थ्या च शुद्धायां प्रतिवत्सरम् ॥१

उपवासेन गृहीयाद्ब्रतं नाश्ना तु गोपदम् । स्नात्वा नरो वा नारी वा पुणःधूपविलेपनैः ॥२

दध्यक्षते श्री सलार्भिः पिष्ठकैर्वनमालया । अभ्यंजयेदगवां शृङ्गं खुरं दुच्छान्तमेव च ॥३

दद्याद्गवाह्निकं भक्त्या तासां पूर्वाग्नराह्योः । अननिपत्कं भृञ्जीत तैलक्षारविवर्जितम् ॥४

व्रजंतीनां गवां नित्यमायांतीनां च भारत । दुरद्वारेऽथवा गोष्ठे मन्त्रेणानेन मन्त्रविद् ॥५

अर्थं प्रदद्याद्गृष्टयां वा गवां पादेषु पाण्डव ।

माता दद्याणां दुहिता वसूनां स्वसा दित्यानाममृतस्य नाभिः ॥

प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ठ ॥६

॥इति गवां मंत्रः॥

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥७

इत्थं सम्पूज्य दत्त्वार्थं ततो गच्छेद्गृहाश्रमम् । पञ्चम्यां क्रोधरहितो भृञ्जीत गोरसं वधि ॥८

अध्याय १९

गोपदतृतीयाव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—पार्थ ! प्रतिवर्ष भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में शुद्ध तृतीया और चतुर्थी के दिन उपवास पूर्वक गोपद व्रत को सुसम्पन्न किया जाता है । उस दिन सूर्योदय के समय स्त्री या पुरुष को स्नान के उपरांत पुष्प, धूप, लेपन, दही, अक्षत, माला, पीठी, और वनमाला से गाय की सींग, खुर और अच्छ को विभूषित करना चाहिए । पूर्वाह्नि और अपराह्नि दोनों समय भक्तिपूर्वक गवादिक प्रदान के उपरांत अग्नि पाक और तेल क्षार को त्याग कर अन्य पदार्थ करना चाहिए । भारत ! घर से गौओं के जाते समय और आते समय नगर के दरवाजे अथवा गोष्ठ स्थान में उस सकृत प्रसूता गौ के चरण में अर्थं प्रदान करना बताया गया है । पाण्डव ! मन्त्रवेत्ता को इसी निम्नलिखित मंत्र द्वारा अर्थं प्रदान करना चाहिए—माता दद्याणां दुहिता वसूनां स्वसा दित्यानाममृतस्य नाभिः प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय गाम मनागामादिति वधिष्ठ ॥१-६। पश्चात् हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे कि—मेरे सामने, पीछे, और हृदय स्थान में गौए स्थित हैं इस प्रकार मैं गौओं के मध्य में सदैव निवास करता हूँ । इस प्रकार पूजन पूर्वक उन्हें अर्थं-प्रदान के उपरांत घर जाकर पञ्चमी में शान्त चित्त होकर गोरस (मट्ठा) और दही के

शालिपिष्ठं फलं शाकं तिलमन्नं च शोभनम् । भुक्तावसाने राजेन्द्र संयतस्तां निशां स्वपेद् ॥१
 प्रभाते गोपदं दत्त्वा ब्राह्मणाय हिरण्मयम् । क्षमयेच्च गवां नाथं गोविन्दं गरुडध्वजम् ॥१०
 अर्च्यतेऽत्र यथा गावस्तथा गोवर्धनो गिरिः । प्रणम्याच्युतमुद्दिश्य शृणु यत्फलमान्युयात् ॥११
 गोभत्तो गोवतं कृत्वा भक्त्या शक्त्या च गोष्यदम् । सौभाग्यं रूपलालव्यं प्राप्नोति पृथिवीतते ॥१२
 गोत्तर्णकाकुलं गेहं गोकुलं च समासतः । धनधान्यसमोपेतशालीक्षुरसमृद्धिमान् ॥१३
 सन्तानं पूजितं लब्ध्वा ततः स्वर्गेऽमरो भवेत् । दिव्यरूपधरः स्वर्णी दिव्यालङ्कारभूदितः ॥१४
 गन्धर्वांगीतवादेन सेष्यनानेऽप्सरोगणैः । दिव्यं युगशं छित्त्वा ततो विष्णुपुरं व्रजेद् ॥१५

यो गोपदक्षतमिदं कुरुते द्विरात्रं गा वै प्रपूजयति गोरसगूजनाच्च ।

गोविंदमादिपुरुषं प्रणतः सवित्रामलोकमुत्तममुपैति गवां पवित्रम् ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

तृतीयाकृते गोष्यदतृतीयाकृतं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९

अथ विंशोऽध्यायः

हरिकालीकृतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शुक्ले भाद्रपदस्यैव तृतीयायां समर्चयेत् । सर्वधान्यैस्तां विलङ्घां भूतां हरितशङ्कुलाम् ॥

साथ चावल चूर्ण, फल, शाक, तिल और उत्तम अन्न का भोजन करना चाहिए । पश्चात् राजेन्द्र ! संयम पूर्वक उस रात्रि में शयन करे । प्रातः काल होने पर स्नान नित्य कर्म को सुसम्पन्न करके सुदर्शन के गोपद ब्राह्मण को अपित करने के उपरांत उन गोस्वामी गरुडध्वज गोविन्द की प्रार्थना करे । जिस प्रकार गौओं की पूजा की जाती है, उसी प्रकार गोवर्धन पर्वत की भी अर्चना करके उन अच्युत भगवान् को प्रणाम करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, मुनो ! जो भक्त पुरुष भक्तिपूर्वक गोवत को सुसम्पन्न कर अपनी शक्ति के अनुसार गोपद ब्राह्मण को अपित कर सौभाग्य, और रूप लालव्य की प्राप्ति करता है तथा इस भूतल में उसे गाय, बछड़े, गृह, गोकुल धन-धान्य, शाली, क्षुर एवं समृद्धि की प्राप्तिपूर्वक पूजित संतान और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होती है । वहाँ देवरूप होकर युन्दर मालाओं और अलंकारों से विभूषित होने पर गन्धर्व गण और अप्सरायें गीत नाद्य से उसकी सेवा करती हैं । इस प्रकार वहाँ दिव्य सौ युग तक सुख के समय व्यतीत कर पश्चात् विष्णु लोक चला जाता है । इस भाँति जो पुरुष तीन रात्रि में इस गोपद वत को सुसम्पन्न करते हुए गौ पूजन, गोरत्स पूजन और आदिपुरुष गोविन्द का अनुनय विनय पूर्वक सूर्य देव को नमन करता है, उसे उत्तम एवं पवित्र गोलोक की प्राप्ति होती है । ७-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

गोपद तृतीया वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त । १९।

अध्याय २०

हरिकालीकृत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भाद्रपद मास की शुक्ल तृतीया के दिन भगवान् शंकर की बल्लभा हरि काली जी

हरकालीं देवदेवीं गौरीं शङ्करवल्लभाम्

॥१

गन्धैः पुष्टैः फलैर्धूपैनैवैद्यमोदकादिभिः । प्रीणयित्वा सप्ताच्छाद्य पद्मरागेन भास्त्वता ॥२
घटावाद्यादिभिर्गीतैः शुभैर्दिव्यकथानुगैः । कृत्वा जागरणं रात्रौ प्रभाते ह्युद्गते रवौ ॥३
सुवासिनीभिः सा नेया मध्ये पुण्यजलाशये । तत्स्मान्विसर्जयेत्पार्थं हरकालीं हरिप्रियाम् ॥४

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्हरकालीति का देवीं प्रोच्यते भुवि । आद्र्धान्धैः स्थिता कस्यात्पूज्यते स्त्रीजनेन सा ॥

पूजिता कि ददातीह सर्वं मे ब्रूहि केशव

॥५

श्रीकृष्ण उवाच

सर्वपापहरां दिव्यां मतः शृणु कथामिमाम् । आसीद्वक्षस्य दुहिता कालीनाम्नी तु कन्यका ॥६
वर्णनापि च सा कृष्णा नवनीलोत्पलभ्राम् । सा च दत्ता त्र्यम्बकाय महादेवाय शूलिने ॥७
विवाहिता विधानेन शङ्खनूर्यानुनादिना । यत्कुर्यादागतैर्देवैब्राह्मणानां च निस्त्वन्ते ॥८
निर्वर्तिते विवाहे तु तथा सार्धं त्रिलोचनः । क्रीडते विविधैर्भौरैर्मनसः प्रीतिवर्धने ॥९
अथ देवसमानस्तु कदाचित्स वृषध्वजः । आस्थानमण्डपे रम्ये आस्ते विष्णुसहायवान् ॥१०
तत्रस्थश्राह्वयामास नर्मणा त्रिपुरान्तकः । कालीं नीलोत्पलशयामां गणमातृगणावृताम् ॥११

की अर्चना करनी चाहिए जो समस्त धान्यों की हरियाली द्वारा विवर्द्धित एवं देव देवी गौरी के नाम से प्रस्थात है । उस दिन गंध, पुष्प, फल, धूप, दीप, नैवेद्य तथा मोदक आदि वस्तुओं से उन्हें प्रसन्न कर पद्मराग से आच्छादित करने के उपरांत धंटा वाद्य, गीत, और शुभ दिव्य कथाओं के प्रवचन द्वारा रात्रि जागरण करना चाहिए । पश्चात् प्रातःकाल होने पर सूर्योदय के समय सुवासिनी स्त्रियों द्वारा उन्हें किसी पवित्र जलाशय के मध्य में ले जाकर विसर्जित करे । १-४

युधिष्ठिर बोले—भगवान् ! भूतल में हरिकाली देवी की अत्यन्त प्रसिद्धि है, उन्हें हरे धान्यों में क्यों स्थापित किया जाता है, तथा सभी वर्ग उनकी पूजा किसलिए करता है और केशव ! पूजित होने पर वे कौन फल प्रदान करती हैं आदि सभी बातें बताने की कृपा कीजेये । ५

श्रीकृष्ण बोले—समस्त पापों के हरण करने वाली इस दिव्य कथा को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! दक्ष प्रजापति के काली नाम की एक कन्या थी, जो वर्ण से भी काली एवं नवीन नीलोत्पल के समान प्रभावपूर्ण थी । दक्ष ने त्र्यम्बक महादेव को, जो सदैव त्रिशूल धारण किये रहते हैं, बुलाकर उनके द्वारा अपनी उस पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार सविधान सुसम्पन्न कराया । उस विवाह में शंख तुरुही आदि वाद्य सभी देव वाद्य एवं सभी देवगण सम्मिलित थे । देवों तथा ब्राह्मणों के वेदध्वनि द्वारा उस मांगलिक संस्कार के समाप्त होने पर भगवान् त्रिलोचन ने उस कन्या को साथ लिये कैलास को प्रस्थान किया । वहाँ रहकर आत्मसंतुष्टि कारक एवं प्रीतिवर्द्धक अनेक भाँति के भोगों द्वारा उसके साथ क्रीडा करना प्रारम्भ किया । उन्हीं दिनों एक दिन वृषध्वज रमणीक मण्डप में सिंहासनासीन होकर जिसमें विष्णु भी उपस्थित थे, हास्य करते हुए अपनी हरिकाली प्रिया को बुलाया जो काली, नील कमल की भाँति श्यामल एवं गण और

एहेति त्वमितः कासि कृष्णांजनसमन्विते । कालसुन्दरि भव्याश्वर्वं ध्वले त्वमुपाविश ॥१२
 एवमुक्तिप्तमनसा देवी संकुद्धमानसा । श्वासयामास ताम्राक्षी बाष्पगदगदया गिरा ॥१३
 रुरोद सस्वरं बाला तत्रस्था स्फुरिताधरा । किं दैव योगात्ताम्रा गौर्गाँरी चेत्यभिधीयते ॥१४
 यस्मान्ममोपमा दत्ता कृष्णवर्णेन शङ्खर । हरकालीति वाहूता देवर्धिगणसेविता ॥१५
 तस्माद्देहस्मिं कृष्णं जुहोनि ज्वलितेऽनले । इत्युक्त्वा वार्यमाणा तु हरकाली रुषान्विता ॥१६
 मुमोच हरितच्छायाकान्तिं हरितशाद्वले । द्विक्षेप दोषं रागेण ज्वलिते हव्यवाहने ॥१७
 पुनः पर्वतराजस्य गृहे गौरी बभूव सा । महादेवस्य देहार्द्धे स्थिता सम्मूज्यते सुरैः ॥१८
 एवं सा हरकालीति गौरीशस्य व्यवस्थिता । पूजनीया नहादेवी मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥१९
 हरकर्मसमुत्पन्ने हरकाये हरप्रिये । मां त्राहीशस्य मूर्तिस्ये प्रणतास्तु नमोनमः ॥२०
 इत्थं सम्पूज्य नैवेद्यं दद्याद्विप्राय पाण्डव । तां च प्रातर्जले रम्ये मन्त्रेणैव विसर्जयेत् ॥२१
 आर्चितासि भया भक्त्या गच्छ देवि सुरालयम् । हरकाले शिदे गौरि पुनरागमनाद च ॥२२
 युद्ध यः पाण्डवश्रेष्ठ हरकालीन्नतं चरेत् । वर्षेऽर्चर्वं विधानेन नारी नरपते शुभा ॥२३
 सा यत्कलमवाप्नोति तच्छृङ्घुष्व नराधिप । मर्त्यलोके चिरं तिष्ठेत्सर्वरोगविवर्जिता ॥२४
 सर्वभोगसमायुक्ता सौभाग्यबलगर्विता । पुत्रपौत्रसुहन्मित्रनप्तृदौहित्रसङ्कुला ॥२५

मातृगणों से संयुक्त थी—कालि, दाले अंजन की भाँति वर्ण वाली काल सुन्दरि आओ, इसी ध्वल आसन पर मेरे पार्श्व में आकर तुम भी बैठो । इस प्रकार की उपेक्षा दृष्टि से अपमानित होने पर हरिकाली देवी अत्यन्त क्रुद्ध होकर दीर्घ निश्चास लेने लगी और पश्चात् वह ताम्राक्षी होकर आंसुओं से कण्ठ के अवरुद्ध होने पर गदगदवाणी द्वारा धून करने लगी । उस समय उस देवी का अधरोष्ठ क्रोध से फड़क रहा था । उन्होने कहा—शंकर ! क्या आप के साथ बैठने से गौरवर्ण हो जाऊँगी ; जो आप कृष्ण वर्ण से मेरी उपमा दे रहे हैं । इस देव ऋषि गणों के सामने आप ने हरिकाली नाम से बुजाकर कृष्ण वर्ण की उपमा दी है, इसलिए मैं इस कृष्ण वर्ण की देह को इसी प्रज्वलित अग्नि में आहृति रूप में डाल दूँगी । इतना कहकर हरि काली ने देवों के मना करने पर भी अत्यन्त रोपपूर्ण होने के नाते अपनी श्यामल कान्ति हरी धासों में डालकर देह को प्रज्वलित अग्नि में डाल दिया । पश्चात् वही गिरिराज के यहाँ गौरी के नाम से उत्पन्न होकर पुनः श्री महादेव जी की अर्धाग्निनी हुई, जो देवों से पूजित हैं । पाण्डव ! इस प्रकार गौरी शंकर भगवान् की हरिकाली की कथा जानकर उन महादेव की इस मंत्र द्वारा पूजा करनी चाहिए । ६-१९। हरकर्म के लिए उत्पन्न हर की देहार्द्धनी, और हरप्रिये, मेरी रक्षा करो, शिवमूर्तिस्थ आप को विनय पूर्वक नमस्कार कर रहा हूँ । पाण्डव इस भाँति उनकी पूजा करके उन्हें नैवेद्य अर्पित करे, और इसी दिन प्रातः काल मंत्र पूर्वक जल में विसर्जन करे—देवि ! भक्ति पूर्वक मैंने आपकी अर्चना की है, हरकालि, शिवे एवं गौरि अब आप देव लोक चली जाय और पुनः आवाहित होने पर आने की कृपा करती रहे । २०-२१। पाण्डव राजन् ! प्रति वर्ष जो स्त्री इस हरिकाली व्रत को सविधान सुसम्पन्न करती है, उसे जिस फल की प्राप्ति होती है मैं बता रहा हूँ सुनो ! नराधिप ! वह इस मर्त्यलोक में समस्त रोग से मुक्त होकर चिरकाल तक समस्त भोगों का उपभोग करती है उसका सौभाग्य फल अत्यन्त महत्वपूर्ण रहता है, तथा पुत्र, पौत्र, मित्र, नप्ता (नाती) और दोहित्र आदि परिवार से संयुक्त रहकर सौ वर्ष तक इस भूमण्डल पर सम्पूर्ण भोगों के उपभोग करने

सात्रं वर्षशतं यावद्द्वौगान्भुक्त्वा महीतते । ततोऽवसाने देहस्य शिवज्ञाना महामुने ॥२६
 चिरभद्रा महाकालनन्दीश्वरविनायकाः । तदाज्ञार्किकराः सर्वे महादेवप्रसाद्वतः ॥२७
 सम्पूर्णसूर्यगणसप्तविरुद्धशस्यां तां वै हिमाद्रितनयां हरकालिकाख्याम् ।
 सापूज्य जागरमनुद्धतगीतावार्यच्छन्ति या इह भवन्ति पतित्रियास्ताः ॥२८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
 हरकालीतृतीयात्रतं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०

अथैकविंशोऽध्यायः

ललितात्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अथ पृच्छामि भगवन्नतं द्वादशमासिकम् । ललिताराधनं नाम मासमासकमेण वा ॥१
 श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पाण्डव यत्नेन यथा वृत्तं पुरातनम् । शङ्करस्य महादेव्याः सम्बादं कुरुसत्तम् ॥२	कैलासशिखरे रम्ये बहुपुष्पफलोपगो । सहकारद्वमच्छन्ते चम्पकासोकभूषिते ॥३
कदम्बबुद्धामोदवशीकृतमधुत्रते । मयूररवसंघुष्टे राजहंसोपशोभिते ॥४	मृगर्क्षगर्जासंहृश्च शाखामृगगणावृते । गन्धर्वयक्षदेवर्षिसिद्धकिन्नरपन्नगैः ॥५

के उपरात देहावसान के समय शिव जी द्वारा ज्ञान प्राप्त कर कैलासवास करती है और महादेव जी की आज्ञा से चिरभद्रा, महाकाली, नन्दीश्वर एवं विनायक आदि उसकी सेवा करते हैं। इस प्रकार हिमाद्रितनया हरिकाली देवी जी पूजा एवं ब्रत को सुसम्पन्न करके गीत वाद्य द्वारा रात्रि जागरण करने वाली स्त्री समस्त सौभाग्य समेत अपने पति की अत्यन्त प्रेयसी होती है । २३-२८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
 हरिकाली तृतीया ब्रत नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त । २०।

अध्याय २१

ललितात्रतमाहात्म्य-वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवान् ! ललिताराधना नामक ब्रत के विधान, जो क्रमशः प्रत्येक मास में सुसम्पन्न होते हुए चार मास में समाप्त किया जाता है, मैं पूँछ रहा हूँ, बताने की कृपा करें । १

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! इस विषय का शंकर और महादेवी का सम्बाद मैं तुम्हें सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! कुरुथेष्ट ! एक बार कैलास पर्वत के उस रमणीक शिखर पर शंकर और महादेवी सुशोभित हो रहे थे, जो अत्यन्त पुष्प, फल वाले आम के वृक्षों से आच्छन्न, चम्पक अशोक से विभूषित, कदम्ब तथा वकुल की गन्ध से मत्त होकर भ्रमरवृन्दों से गुंजित मयूरवाणी से प्रशान्त, एवं राजहंस से अलंकृत था । वहाँ मुग, रीछ, गज, सिंह, और वानर गण स्वतन्त्र विचरण करते थे । उस स्थान पर

तपस्त्रिभिर्महाभागः सेवमानं समन्ततः । सुखासीनं महादेवं भूतसङ्घेः समावृतम् ॥६
अप्सरोभिः परिवृत्तमुमा नत्वाब्रवीदिदग् ॥

उमोदाच

भगवन्देवदेवेश शूलपाणे वृषध्वज ॥७
कथयस्व महेशान वृतीयान्नतमुत्तमम् । सौभाग्यं लभते येन धनं पुत्रान्यशूलम् ॥८
नारी स्वर्गं शुभं रूपमःरोग्यं श्रियमुत्तमाम् । एवमुक्तो दधितया भार्यया प्रीतिपूर्वकम् ॥९
विहस्य शङ्कुरः प्राह किं व्रतेन तव प्रिये ॥१०
ये कामास्त्रिषु लोकेषु दिव्या भूम्यन्तरिक्षजाः । सर्वेऽपि तेन चायत्ता वश्यस्तेऽहं यतः पतिः ॥१०

उमोदाच

सत्यमेतत्सुरेशान त्वयि दृष्टे न दुर्लभम् । किञ्चित्तिभुवनाभोगभूषणे शशिभूषणे ॥११
भक्त्याः स्त्रियो हि मां देव प्रजपन्ति शुभाशुभम् । विष्णाः सुलभाः काश्चिदपुत्रा बहुपुत्रकाः ॥१२
सुशीलास्तपसा काश्चिद्छश्रुभिः पीडिता भृशम् । शौचाचारसमायुक्ता न रोचन्तेऽथ कर्यचित् ॥१३
एवं बहुविधीर्दुःखैः पीडयमानास्तु दारणैः । शरणं मां प्रपन्नास्ताः कृपाविष्टा ततो ह्यहम् ॥१४
येन ताः सुखसम्भोगरूपलावण्यसम्पदा । पुत्रैः सौभाग्यवित्तौर्ध्यर्थुक्ताः स्युः सुरसत्तम् ॥१५
तन्मे कथय तत्त्वेन व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥१५

भूतगण समेत महादेव अपनी प्रिया (पार्वती) के साथ सुख पूर्वक बैठे हुए थे और गन्धर्व, यश, देव, कृषि, सिद्ध, किन्नर, पन्नग तथा महाभाग तपस्त्रियण उनकी सेवा में उपस्थित थे । अप्सराएँ अपने नृत्य गान से उन्हें मुग्ध कर रही थीं । उसी समय नमस्कार पूर्वक उमादेवी ने भगवान् शंकर जी से कहा—२-६

उमा बोली—भगवन् ! देवाधिदेव, शूलपाणि एवं वृषध्वज ! महेशान ! वृतीया व्रत के उस विधान को बताने की कृपा कीजिये जिसके अनुष्ठान मुसम्पन्न करने पर सौभाग्य, धन, पुत्र और पशुओं की प्राप्ति पूर्वक अत्यन्त सुख नारी, स्वर्ग, प्रेम रूप, आरोग्य एवं उत्तम श्री की प्राप्ति होती है । प्रीतिपूर्वक अपनी दधिता के इस भाँति कहने पर शंकर जी ने हँसकर कहा—प्रिये ! तुम्हें व्रत विधान की क्या आवश्यकता है, क्योंकि तीनोंलोकों में, स्वर्ग, पृथिवी और आकाश विषयक तुम्हारे सभी मनोरथ इसीलिए सफल हैं, कि पति रूप मैं तुम्हारे वशीभूत हूँ ॥७-१०

उमा बोली—मुरेशान ! आप का कहना सर्वथा सत्य है, क्योंकि नाग और चन्द्र से विभूषित आप ऐसे अनुपम पति के दर्शन से मुझे इस त्रिभुवन में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है, किन्तु भक्तिपूर्वक स्त्रियाँ अपने शुभाशुभ के निमित्त मेरी आराधना करती हैं—कूरुप, सुलभ, पुत्रहीना, एवं बहुपुत्रा होने के नाते और तपस्त्रिनी सुशीला होती हुई भी सास से अत्यन्त पीडित तथा पवित्र, आचार पूर्ण होने पर भी गृहकुटुम्ब से व्यथित और इसी भाँति के अन्य अनेक दारण दुःखों से दुःखी होकर स्त्रियाँ जब मेरी शरण में आती हैं, तो मुझे उनके ऊपर करणा करना ही पड़ता है । सुरसत्तम ! इसीलिए मेरी इच्छा है कि जिसके द्वारा उन्हें सुख संभोग, रूप लावण्य, पुत्र, सौभाग्य और अधिक वित्त की प्राप्ति हो सके, उस उत्तम व्रत को मुझे बताने की कृपा करें । ११-१५

ईश्वर उवाच

मादे मासि सिते पक्षे तृतीयायां यत्प्रताः । मुखं प्रक्षाल्य हस्तौ च पादौ चैव समाहिताः ॥१६
 उपवासस्य नियमं दन्तधावनपूर्वकम् । मध्याह्ने तु ततः स्नानं बिल्वैरामलकैः शुभैः ॥१७
 स्नात्वा तीर्थजले शुभ्रे वाससी परिधाय च । सुगन्धैः सुमनेभिश्च प्रभूतैः कुंकुमादिनिः ॥१८
 अर्चयन्ति सदा देवि त्वां भक्त्या भक्तवत्सले । कर्पूराद्यस्तथा धूपैर्नैविद्यैः शर्करादिभिः ॥१९
 यदृच्छालाभसम्पन्नैर्धूपदीपार्चनादिभिः । नामेशानीं^१ गृहीत्वा तु प्रतीक्षेदिकां ततः ॥२०
 पात्रे ताम्रमये शुद्धे जलाक्षतविभिन्निते । सहिरण्यं द्विं छत्वा भन्त्रपूर्वं समाधिना ॥२१
 शिरसि प्रक्षिपेत्तोयं ध्यायन्ति मनसेप्सितम् । ब्रह्मावर्तात्समाधातः द्व्रह्ययोर्नैविनिर्गता ॥२२
 भद्रेश्वरा ततो देवी ललिता शङ्करप्रिया । गङ्गाद्वाराद्वरं प्राप्ता गङ्गाजलपविश्रिता ॥२३
 सौभाग्यारोग्यपुद्रार्थमर्थार्थं हरवल्लभे^२ । आदाता घटिकां भद्रे प्रतीक्षस्व नमोननः ॥२४
 दत्त्वा हिरण्यं तत्समै प्राशनीयाच्चकुशोदकम् । आचम्य प्रयतो भूत्वा भूमिस्था भपयेत्कपाम् ॥२५
 ध्यायमाना उमां देवीं हरिते यवसंस्तरे । द्वितीयेति ततः स्नात्वा तथैवाभ्यर्थं पार्वतीम् ॥२६
 यथाशक्ति द्विजान्पूज्य ततो भुञ्जीत वाग्यता । एवं तु ब्रथमे मासि पूजनीयासि कालिके ॥२७
 द्वितीये पार्वतीं नाम तृतीये शङ्करप्रिया । भवान्यथ चतुर्थे त्वं स्कन्दमाताऽथ पञ्चमे ॥२८
 दक्षस्य दुहिता बष्ठे मैनाकी सप्तमे स्मृता । कात्यायन्यष्टमे^३ मासि नवमे तु हिमाद्रिजा ॥२९

ईश्वर बोले—माध मास की शुक्ल तृतीया के दिन संयम पूर्वक मुख, हाथ, चरण प्रक्षालन के उपरांत उपवास के लिए दंतधावन से ही नियम करना चाहिए । मध्याह्न के समय बेल और आँवले मिश्रित किसी तीर्थ जल से स्नान करके शुभ एवं शुद्ध दो वस्त्र धारण पूर्वक सुगन्ध, सुगन्धित तुष्ण, तथा कुंकुमादि वस्तुओं द्वारा भक्ति समेत तुम्हारी भक्तवत्सला की अर्चना करते हुए जिसमें कपूर, धूप, नैवेद्य, शक्कर एवं यथाशक्ति धूपादि वस्तुएँ सम्मिलित हो, ईशानी देवी के नामोच्चारण करके घटिका का दर्शन करे । पश्चात् ताम्रपात्र में जल, अक्षत रखकर उसे ब्राह्मण को सुवर्ण दक्षिणा देने के उपरांत देवी के ध्यान पूर्वक शिर पर छोड दें और इस प्रकार प्रार्थना करें कि—ब्रह्मयोनि से निकलने और ब्रह्मावर्त से आगमन करने के नाते भद्रेश्वर और पश्चात् ललिता शंकर प्रिया आप का नाम हुआ है । हर वल्लभ ! गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में हर से मिलकर गंगाजल से पदित्र हुई हो अतः सौभाग्य, आरोग्य, पुत्र एवं धन की प्राप्ति के लिए मैं आप की आराधना कर रहा हूँ, आप यहाँ आकर इस घटिका का निरीक्षण करें आपको बार-बार नमस्कार है । १६-२४। अनन्तर उस कुशोदक के आचमन पूर्वक भूमिशयन करते हुए हरे यव के आसन पर उमा देवी के ध्यान करके रात्रि व्यतीत करे । द्वूसरे दिन पुनः उसी प्रकार समान नित्य कर्म के उपरांत पार्वती पूजन और यथाशक्ति ब्राह्मण को दान देकर वाक् संयम पूर्वक भोजन करे । कालिके ! इसी नाम से आपकी प्रथम मास की अर्चना होनी चाहिए । इसी भाँति द्वूसरे मास में पार्वती, तीसरे में शंकर प्रिया, चौथे में भवानी, पाँचवें में स्कन्दमाता, छठे में दक्ष-दुहिता, सातवें में मैनाकी (मैना की पुत्री), आठवें में

१. च तत्त्वतः । २. ततः सायं गृहीत्वा तु । ३. जनवल्लभे ।

दशमे मासि विख्याता देवि सौभाग्यदायिनी । उमा त्वेकादशे मासि गौरी तु द्वादशे परा ॥३०
 कुशोदकं पयः सर्पिर्गांमूलं गोमयं फलम् । निष्प्रपत्रं कण्टकारी गवां शृङ्गोदकं दधि ॥३१
 पञ्चगव्यं तथा शाकः प्राशनानि क्रमादसी । मासिमासि स्थिता ह्येवमुपवासपरायणा ॥३२
 ददाति श्रद्धयैतानि वाचके ब्राह्मणोत्तमे । कुसुमभमाज्यं लवणं जीरकं गुडमेव च ॥३३
 दत्तैरेभिः सूर्यस्था त्वं सूर्यस्था तुष्यसि प्रिये । मासिमासि भवेन्मन्त्रो गकारो द्वादशाकारः ॥३४
 ओङ्कारपूर्वको देवि नमस्कारान्त ईरितः । एभिस्त्वं पूजिता मन्त्रैस्तुप्यसि व्रतः प्रिये ॥३५
 तुष्टा त्वमभीप्सितान्कामान्ददासि प्रीतिपूर्वकम् । तमान्ते तु व्रते तस्मिन्ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥३६
 सहितं भार्ययाभ्यर्थं गन्धपुष्पादिभिः शुभैः । द्विजं महेश्वरं कृत्वा उमां भार्या तथैव च ॥३७
 अन्नं सदक्षिणं दद्यात्तथा शुक्ले च वाससी । रक्तं वासोयुगं दद्यात्त्वामुद्देश्य हरप्रिये ॥३८
 ब्राह्मणे श्रद्धया युक्तस्तस्यां फलमिदं शृणु । दशदर्षराहस्याणि लोकान्प्राप्य परापरान् ॥३९
 मोदते भर्तुसहिता यथेन्द्रेण शर्ची तथा । मानुषत्वं पुनः प्राप्य स्वेन भर्त्रा सहैव सा ॥४०
 उण्णे कुले श्रिया युक्ता नीरोगा सुखमश्नुते । सप्त जन्मानि यावच्च न दैद्यव्यमवाप्नुयात् ॥४१
 पुत्रान्भोगान्स्तथा रूपं सौभाग्यारोग्यमेव च । एकपत्नी तथा भर्तुः प्राणेभ्योऽप्यधिका भवेत् ॥४२
 शृणुयाद्वाच्यमानं तु भक्त्या या ललिताव्रतम् । मया स्नेहेन कथितं सापि तत्फलभगिनी ॥४३

कात्यायनी, नवे में हिमाद्रिजा (गिरिजा) दशवें में सौभाग्यदायिनी, यारहवें में उमा और बारहवें मास में परमोत्तम गौरी नाम से तुम्हारा पूजन होना चाहिए । उन मासों में क्रमशः कुशोदक, पय, धी, गोमूल, गोमय, फल, निष्प्रपत्र, कंटकारी, गौका शृङ्गोदक, दही, पञ्चगव्य तथा शाक का प्राशन करना चाहिए । श्रद्धा भक्ति समेत प्रत्येक मास में उपवास रहकर वाचक ब्राह्मण को कुसुंभ, धी, लवण, जीरा और गुड का दान जो स्त्री प्रदान करती है और प्रतिमास में पूजनोपरांत ओंकार सहित द्वादशाकार गकार के उच्चारण पूर्वक नमस्कार करती है, प्रिये ! सूर्यस्थ होकर तु उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होती हो और इस मंत्र द्वारा पूजित होने पर तुष्ट होकर तुम उसके मनोरथ सफल करती हो । प्रीतिपूर्वक व्रत के समाप्त होने पर वेद के निष्णात विद्वान् को भार्या समेत बुलाकर उत्तम गंध पुष्पादि द्वारा ब्राह्मण को महेश्वर और ब्राह्मणी को उमा की भावना से पूजन करके अन्न, दो शुक्ल वस्त्र, तथा दो रक्त वस्त्र उन्हें प्रदान करे । हरप्रिये ! श्रद्धा समेत इस कर्म को सुसम्पन्न करने पर जिस उत्तम फल की प्राप्ति होती है, उसे मैं बता रहा हूँ सुनो ! दश सहस्र वर्ष तक उत्तम लोक में पहुँच कर वह स्त्री पति समेत इन्द्र युक्त इन्द्राणी की भाँति समस्त भोगों के उपभोग करती है और पश्चात् उत्तम मानुष कुल में जन्म ग्रहण कर पुनः उसी पति के साथ लक्ष्मी और आरोग्य की प्राप्तिपूर्वक सभी सुखों का अनुभव करती है, सात जन्म तक विधवा नहीं होती है । २५-४१ पुत्र, उत्तमभोग, रूप, सौभाग्य, तथा आरोग्य की प्राप्ति समेत वह अपने पति की अत्यन्त प्राण प्रिय एवं एक पत्नी होती है । भक्ति पूर्वक जो स्त्री इस ललिता व्रत को कथा वाचक द्वारा थ्रवण करती है, वह भी इसी के समान फलों की प्राप्ति करती है । मैंने स्नेहवश इस व्रत विधान को तुम्हें सुना दिया ; इस प्रकार लक्ष ललिता देवी के पूजन पूर्वक सलिलांग यज्ञि और गंधोदक मिश्रित उस अमृत घटी को अपने शिर पर जो

१. मुदा । २. मृदानी चाष्टमे मासि ।

सम्पूज्य लक्षलितां ललिताङ्गयष्टिं गन्धेदकामृतगर्टीं शिरसि क्षिपेद्वः ।
सा स्वर्गमेत्य ललितासु ललानभूता भूपाधिपं पतिमवाप्य भुवं भुनक्ति ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
ललितातृतीयाव्रतमहात्म्यं नामैकविशोऽध्यायः ॥२१

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

अवियोगतृतीयाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

इहापिगोगसासाद्य भर्तुबन्धुजनैःसह । वद नारी नरश्रेष्ठ द्रजेदेन शिवालयम् ॥१
विधवा च परे लोके भूयोऽपि न वियुज्यते । सुखसन्दोहसौभाग्ययुक्ता भवति भास्मिनी ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

उभयान्वितं यत्नाद्ववाग्ललितामृतम् । लब्ध्वा हि भवतो जन्म दक्षकोपाद्वियुक्तया ॥३
महासौभाग्यसन्दोहं दृष्ट्वा देव्या महात्मना । अरुन्धत्या वशिष्ठेन पूर्णेन द्विथितं शृणु ॥४
मासि मार्गशिरे प्राप्ते चन्द्रवृद्धो शुचि स्मिता । द्वितीयायां समासाद्य नक्तं भुञ्जीत पायसम् ॥५
आचम्य च शुचिर्भूत्वा दण्डवच्छङ्करं नमेत् । मुदान्विता नमस्कृत्य विज्ञाप्य परमेश्वरम् ॥६

स्त्री छोड़ती है वह सर्वाङ्ग सुन्दरी बनिता होकर स्वर्ग सुख भोगने के उपरांत राजाधिराजपति की प्राप्ति
कर भूतल के समस्त सुखों के अनुभव करती है । ४२-४४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्बाद में
ललिता तृतीया व्रत माहात्म्य वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त । २१।

अध्याय २२

अवियोगतृतीया व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—नरश्रेष्ठ ! इस लोक में उत्तम कुल में जन्मग्रहण पूर्वक उत्तम पति और
बान्धवों के साथ रहकर गृहसुख के अनुभव करते हुए देहावसान के समय शिवलोक की प्राप्ति और समस्त^{१-२}
सुख सौभाग्य की उपलब्धि भास्मिनियों को किस के अनुष्ठान द्वारा होती है, बताने की कृपा
कीजिये ।

श्रीकृष्ण बोले—दक्ष के ऊपर रुष्ट होकर शरीर त्याग करने के उपरांत पुनः जन्मग्रहण करके
पार्वती ने ललिता व्रत को प्रयत्नपूर्वक युसम्पन्न कर महासौभाग्य संदोह की प्राप्ति की । उसे देखकर देवी
अरुन्धती ने महात्मा वशिष्ठ जी से पूछा, उन्होंने जो कुछ कहा है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! मार्गशीर्ष
(अग्रहन) मास की शुक्ल द्वितीया के दिन पवित्रता पूर्वक उपवास रहकर रात में पायस का नक्त भोजन
करने के उपरांत आचमन पूर्वक पवित्र होकर शंकर जी को दण्डवत् नमस्कार कर, पश्चात् प्रातः काल

औदुस्वरनृजुं गृह्ण भक्षयेदंतधावनम् । उत्तराशागतं साग्रं सत्वचं निर्वणं शुभम् ॥७
द्वितीयायां परे वाह्नि गौरीं शम्भुं च पूजयेत् । शालिपिष्टमये कृत्वा रूपे स्त्रीपुंतयोः शुभे ॥
पात्रे संस्थाप्य सम्पूज्य जागरं निशि कल्पयेत् ॥८

विधिवत्पूजयित्वा तु शङ्करं कीर्तयन्स्वपेत् । प्रभाते ते गृहीत्वा तु आचार्याय निवेदयेत् ॥९
भोजयेन्मृष्टनन्नाद्यं शिवभक्त्या द्विजोत्तमान् । दाम्पत्यानि च तत्रैव शक्त्या तान्यपि भोजयेत् ॥१०
प्रतिमासं प्रकुर्वीत विधिना तेन संयता । कार्तिकात्ते ततो मासि मार्गशीर्षे समुद्यमेत् ॥११
नामानि च प्रवक्ष्यामि प्रतिमासं क्रमाच्छृणु । पूजाजाप्यनिमित्तं च सिद्धदर्थं चेति तत्स्य च ॥१२
एवं पौषे तु सम्प्राप्ते गिरिशं पार्वतीं तथा । समभ्यर्च्य चतुर्थ्या तु पञ्चगव्यं पिबेत्सुधीः ॥१३
एतत्पारजमुद्दिष्टं मार्गादौ मार्गागोचरम् । न चान्यत्पञ्चगव्यादि पावनं परमं स्मृतम् ॥१४
भवं चैव भवानीं च मासि माघे प्रपूजयेत् । फालुने तु महादेवमुम्या सहितं भतम् ॥१५
ललितां शङ्करं देवं चैत्रे सम्पूजयेत्ततः । स्थाणुं वैशाखमासे तु लोलनेत्रायुतं यजेत् ॥१६
ज्येष्ठे वीरेश्वरं देवमेकजीरोक्षमन्वितम् । आषाढ़े पशुनाथं च शक्त्या सार्द्धं त्रिलोचनम् ॥१७
श्रीकण्ठं श्रावणे देवं सुतान्वितमथार्चयेत् । भीमं भाद्रपदे मासि दुर्गाया सहितं यजेत् ॥
ईशानं कार्त्तिके मासि शिवादेवीयुतं यजेत् ॥१८

जप्यध्यानार्चनायैव नामान्येतानि सुन्नत । स्मृतानि विधिना राजन्वतसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥१९
प्रतिमासं तु पुष्पाणि यानि पूजासु योजयेत् । तानि क्रमात्प्रवक्ष्यामि सद्यः प्रीतिकराणि वै ॥२०

प्रसन्न रहकर शंकर जी को नमस्कार और उनसे इस व्रत का विज्ञापन करके गूलर की सीधी लकड़ी का दंत धावन करे, जो अत्यन्त शुद्ध, लम्बी, तथा (छिलका) समेत द्रण रहित और मनोहर दिखाई दे । अनन्तर अग्नि एवं गौरी शिव जी की उस प्रतिमा की अर्चना करो, जो साठी चावल के चूर्ण से अत्यन्त सुन्दर बनायी गयी हो । किसी पात्र में रखकर पूजन करने के उपरांत आधीरात तक जागरण करके अनन्तर सविधान पूजन करके शंकर नाम का कीर्तन करते हुए शयन करे । प्रातःकाल प्रतिमा समेत वह सब आचार्य को अपित कर शिवभक्त द्राह्याणों को उत्तम भोजन कराते हुए आचार्य दम्पत्ती को भी यथा शक्ति दान समेत भोजन कराकर इसी विधान द्वारा संयम पूर्वक प्रतिमास यह अनुष्ठान करते हुए कार्तिक के अंत में समाप्त करे । ३-११। प्रत्येक मास में पूजा, जप, एवं व्रतसिद्धि के निमित्त उपयोग करने के लिए उनके नाम भी बता रहा हूँ, सुनो ! पौष मास में इसी भाँति गिरीश और पार्वती जी के पूजन करके चतुर्थी के दिन पंचगव्य का प्राशान पारण रूप में करे, क्योंकि मार्गशीर्ष और पौष मास के पारण विधान में इसी का पारण बताया गया है और पंचगव्य से उत्तम पारण के लिए अन्य कोई वस्तु नहीं है । इसी प्रकार माघ मास में भव-भवानी, फालुन में महादेव उमा, चैत्र में शंकर ललिता, वैशाख में स्थाणु लोलनेत्रा, ज्येष्ठ में वीरेश्वर एकजीरा, आषाढ़ में शक्ति सहित त्रिलोचन पशुनाथ, श्रावण में सुता समेत श्रीकण्ठ, भाद्रपद में भीम दुर्गा और कार्तिक में ईशान और शिवा जी की पूजा करनी चाहिए । १२-१८। सुन्नत ! उनके जप ध्यान एवं अर्चना में नामों का उपयोग करना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार सविधान इसे सुसम्पन्न करने पर निश्चय व्रत की सिद्धि हो जाती है । राजन् ! प्रत्येक मास के पूजन में सद्यः प्रीतिदायक पुष्पों को भी बता रहा हूँ,

आदौ नीलोत्पलं योज्यं तदभावेऽपराण्यपि । पवित्राणि सुगन्धीनि योजयेद्गुक्तितोऽर्चने ॥२१
 करवीरं विल्वपत्रं किंशुकं कुञ्जमल्लिका । पाटलाब्जकदम्बं च तगरं द्वोणमालती ॥२२
 एतान्युक्तक्रमेणैव मासेषु द्रादशस्वपि । भक्त्या योज्यानि राजेन्द्र शिवयोस्तुष्टिहेतवे ॥२३
 वत्सरान्ते वितानं च धूपेऽक्षेपं सघण्ठिकम् । ध्वजं दीपं वस्त्रयुगं शङ्कराय निवेदयेत् ॥२४
 स्नापयित्वा च लिप्त्वा च सौवर्णं मूर्धन्पद्मंजम् । पूपयुगमं च पुरतः शालिपिष्टमयं न्यसेत् ॥२५
 नैवेद्यं शक्तितो दत्वा नत्या च विधिवच्छिवम् । कुर्यान्तीराजनं शम्भोस्ततो गच्छेत्स्वकं गृहम् ॥२६
 तत्र गत्वा त्रिकोणच्च चतुरक्षं च कारयेत् । त्रिकोणे ब्राह्मणी भोज्या चतुरक्षे द्विजोत्तमा ॥२७
 व्रतिनो भोजयेत्पश्चादद्वादशैव द्विजोत्तमान् । मिथुनानि च तावन्ति शक्त्या भक्त्या च पाण्डव ॥२८
 उमामहेश्वरं हैमं कारयित्वा सुशोभनम् । मौक्तिकानि चतुःषष्टिस्तावन्तोऽपि प्रवालका: ॥
 तावन्ति पुष्परागाणि तास्त्रपत्रोपरि न्यसेत् ॥२९

दस्त्रेण वेष्टयित्वा च गन्धैर्धूपैस्तथाचर्येत् । एतत्सम्भारसंयुक्तमाचार्यायि निवेदयेत् ॥३०
 व्रतिनां ब्राह्मणानां च दम्पतीनां च भारत । इत्वा हिरण्यवासांसि क्षमयेत्प्रणिपत्य च ॥३१
 चत्वारिंशत्तथाष्टौ च कुम्भांश्छत्रमुपानहैं । सहिरण्याक्षतान्सर्वान्दिद्यात्पुष्पोदकान्वितान् ॥३२
 दीनाध्युःखितानां च तद्दिने दा निवारितम् । कल्पयेदन्नदानं चालोचयञ्चकित्मात्मनः ॥३३
 न्यूनाधिकं च कर्तव्यं स्ववित्तपरिमाणतः । सम्पूरेत्कल्पनया वित्तशाठयं न कारयेत् ॥३४

मुनो ! मार्गशीर्ष मास के पूजन में नील कमल होना चाहिए, उसके प्रभाव में अन्य पुष्प भी अपित किया जा सकता है, किन्तु उसे अत्यन्त सुगन्धित एवं पवित्रता पूर्ण होना चाहिए। उसी प्रकार करवीर (कनेर) विल्वपत्र, किंशुक, कुञ्जमल्लिका (मालती), रक्त-कमल, कदम्ब, तगर, द्वोणमालती पुष्पों को शिव शिवा के बारह मास के पूजन में अपित करना चाहिए। राजेन्द्र ! इस प्रकार भक्ति पूर्वक शिव शिवा को संतुष्ट करते हुए वर्ष की समाप्ति में शंकर को वितान, धूप, घटिका, ध्वज, दीप, चार वस्त्र अपित करे। उन्हें स्नान कराकर अंग में लेप और शिर में सुवर्ण के कमल से विभूषित करके चालव पूर्ण वा पूआ, नैवेद्य सविधान समर्पित करते हुए नमस्कार पूर्वक उनका नीराजन करे। अनन्तर घर जाकर त्रिकोण और चतुष्कोण की रचना करके त्रिकोण पर ब्राह्मणी एवं चतुष्कोण में उत्तम ब्राह्मण बैठाकर उन्हें तथा अन्य बारह ब्रती ब्राह्मणों को भोजन कराने के उपरांत ब्रती को स्वयं भोजन करना चाहिए। पाण्डव ! भक्तिपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार दम्पती ब्राह्मण (जोड़े) को भोजन कराकर उमा महेश्वर की सुवर्ण प्रतिमा को, जो चौंसठ मोती, चौंसठ प्रवाल (मूँगे) और उतने ही पुष्पों से विभूषित की गई हो, वस्त्र से आवेष्टित करके ताम्रपात्र में स्थापित करे और गन्ध, धूपादि से उनकी अर्चना करने के उपरांत वह प्रतिमा आचार्यों को अपित करे। १९-३१। भारत ! व्रती दम्पति ब्राह्मणों को सादर निमन्त्रित कर सुवर्ण और वस्त्र के समर्पण पूर्वक उनकी क्षमा प्रार्थना करे। उस समय अङ्गतालीस घट, छत्र, उपागह, (जूते) सुवर्ण, अक्षत और पुष्पोदक ब्राह्मण को अपित कर अपनी शक्ति के अनुसार दीन, अन्धे, एवं दुःखी जनों को भी पुत्र वस्त्र के दान से सन्तुष्ट करना चाहिए। ३२-३४। अपने धन के अनुसार न्यूनाधिक भी कर सकता है। किन्तु धन रहते हुए वित्त शठता कभी न करनी चाहिए। इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर रूप

अवियोगवत्तरं चैतद्वूपसौभाग्यवित्तदम् । आयुः पुत्रप्रदं स्वर्वं शिवलोकप्रदायकम् ॥३५

सम्यक्पुराणपतितं ब्रतचर्यमेतत्तत्वं चराचरणुरोहृदयज्ञमायाः ।

पूजां विधाय विधिवन्न वियोगमेति साध्वीस्वर्भर्तुसुतबन्धुजनैर्धनैश्च ॥३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरर्पणे अवियोगतृतीयात्रतं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२

अथ त्रयोर्विंशोऽध्यायः:

उमामहेश्वरव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

केन धर्मेण नारीणां व्रतेन नियमेन च । सौभाग्यं जायतेऽतीव पुत्राश्च बहवः शुभाः ॥१
धनं धान्यं सुवर्णं च वस्त्राणि विविधानि च । अवियोगं च सततं लभते पुत्रपौत्रयोः ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थं प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् । यत्कृत्वा सुभगा नारी ब्रह्मपत्या च जायते ॥३
धनं धान्यं हिरण्यं च दासीदासादिकं बहु । उत्पद्यते गृहे येन तद्वतं कथयामि ते ॥४
उमामहेश्वरं नाम अप्सरोभिः पुरा कृतम् । विद्याधरैः किन्नरैश्च कृषिकन्याभिरेव च ॥५
रूपिण्या रम्भया चैव सीतयाहल्यया तथा । रोहिण्या दमयन्त्या च तारया चानसूयया ॥६
एताभिश्चरितं पार्थं व्रतं सर्वव्रतोत्तमम् । सौभाग्यारोग्यफलदं दारिद्र्यव्याधिनाशनम् ॥७

सौभाग्य, वित्त, आयु, पुत्र, स्वर्वं भोग और शिव लोक की प्राप्ति होती है। इस व्रत के अनुष्ठान में चर-अचर एवं समस्त ब्रह्मण्ड के गुरु शिव जी और उनकी हृदयाधिष्ठित पार्वती जी की पूजा सविधान सुसम्पन्न करने पर पति-भक्ता स्त्री को अपने पति, पुत्र, बान्धव और धन का वियोग कभी नहीं होता है। ३५-३६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरर्पण में अवियोग तृतीया व्रत वर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त। २२।

अध्याय २३

उमामहेश्वर व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—किस धर्म अथवा व्रत नियम द्वारा स्त्रियों को अत्यन्त सौभाग्य, अनेक पुत्र, धन धान्य, सुवर्ण अनेक भाँति के वस्त्र, और पुत्र पौत्र का सतत अवियोग प्राप्त होता है। १

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं उस सर्वोत्तम व्रत के विधान बता रहा हूँ, जिसके द्वारा स्त्री को अनेक सन्तानों की प्राप्ति होती है और उसके घर में धन धान्य, सुवर्ण एवं उनके दास दासीगण सदैव वर्तमान रहते हैं। पार्थ ! उमामहेश्वर नामक व्रत सभी व्रतों से उत्तम ब्रताया गया है। इसी व्रत को सर्व प्रथम अप्सराओं ने सुसम्पन्न किया था पश्चात् विद्याधर, किन्नर कृषियों की कन्यायें, रूपिणी, रंभा, सीता, अहिल्या, रोहिणी दमयन्ती तथा तारा ने भी इसे सुसम्पन्न किया है जो सौभाग्य, आरोग्य के प्रदान पूर्वक

मर्त्यलोके स्त्रियो याक्षं दुर्भगा रूपवर्जिताः । अपुत्रा निर्धनाश्चैव सर्वभोगविवर्जिताः ॥८
 तासां हितार्थं पार्वत्या उमामहेश्वरं ब्रतम् । अवतारितं पुरा पार्थं न जानत्यधमाः स्त्रियः ॥९
 पूर्वं मार्गशिरे मासि नारी धर्मपरायणा । शुक्लपक्षे तृतीयायां सोपवासा जितेन्द्रिया ॥१०
 स्नातवा सम्पूज्य लजितां हरकायार्द्धवासिनीम् । पुनः प्रभातसमये स्नानं चाकृत्रिमे जले ॥
 कृत्वा देवीस्तर्पित्वा इदं वाक्यमुदीरयेत् ॥११
 नमो नमस्ते देवेश उमादेहार्द्धधारक । महादेवि नमस्तेऽस्तु हरकायार्द्धवासिनि ॥१२
 हृदि कृत्वा शिवं देवीं जपेद्यादद्गृहं गता । पूजयेद्वेमीशानं पुष्ट्यैः कालोऽद्वैस्ततः ॥१३
 वामपाश्वं उमां देवीं दक्षिणे तु महेश्वरम् । धूपं वा गुणुलं वापि दहेत्पश्चात्सुभाविता ॥
 नैवेद्यं तु यथाशक्ति धृतपदं निवेदयेत् ॥१४
 कारयेद्वैश्वदेवं तु तिलाज्येन सुसंस्कृतम् । पञ्चगव्यं ततः प्राशय आत्मकायविशोधनम् ॥१५
 एवं द्वादशनासांस्तु पूजयित्वा महेश्वरम् । उद्यापनं ततः कुर्यात्प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१६
 शिवं रूप्यसमयं कृत्वा उसां हैममर्थीं तथा । आरुहौ वृषभे रौप्ये सर्वलङ्घारभूषितौ ॥१७
 चन्दनेन शिवं चर्च्य कुड़कुमेन च पार्वतीम् । अर्चयेत्कुसुमैः पश्चात्सुगन्धैः सुमनोहरैः ॥१८
 देष्येच्छुक्लवस्त्रेण शिवं रक्तेन पार्वतीम् । पश्चाद्गूपं दहेन्नारी भक्तिभावेन भाविता ॥१९
 भोजयेच्छिवभक्तांश्च ब्राह्मणादेवारगान् । भक्तेभ्यो दक्षिणा देया भक्त्या शाठचविवर्जिता ॥२०

दरिद्र रूपी व्याधि को शमन करता है। इस मर्त्यलोक में जितनी स्त्रियाँ दुर्भगा, रूपहीन, अपुत्रा, निर्धन और स्त्री भोगों से वञ्चित हैं, उन्हीं के हित के लिए पार्वती जी ने इस उमामहेश्वर नामक ब्रत को अवतारित किया है किन्तु अधम स्त्रियाँ इसे नहीं जानती हैं। पहले मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल तृतीया के दिन धर्मपरायण रहकर स्त्री संयमपूर्वक उपवास रहने का दृढ़ निश्चय (संकल्प) करके स्नान करने के उपरांत भगवान् ही की अर्धांगिनी ललिता देवी की अर्चना करे और पश्चात् प्रातः समय किसी जलाशय में स्नान करके देवी की पूजनीपरांत इस प्रकार प्रार्थना करके कि—उमादेहार्द्ध को धारण करने वाले देवेश! आप को बार-बार नमस्कार है और हर की शारीर की अर्धांगिनी महादेवी को नमस्कार कर रहा हूँ। अनन्तर घर पहुँचने तक अपने हृदय में शिव और देवी का स्मरण करता रहे। वहाँ पहुँचने पर शिव देव की इस भाँति पूजा करे कि दाहिनी ओर शिव और उनके बायें भाग में उमा देवी स्थित रहें। गुणुल का धूप देते हुए नैवेद्य तथा धृत-पक्व भोजन उन्हें अपित करें। २-१४। तिल और धी से भली भाँति सुसंस्कृतपदार्थ से बलि वैश्व करके पञ्चगव्य के प्राशन द्वारा अपनी देह का संशोधन करे। इस प्रकार बारह मास महेश्वर जी की पूजा करके अन्त में प्रसन्न चित्त होकर ब्रतोद्यापन सुसम्पन्न करे। शिव की चाँदी की प्रतिमा उमा की मुवर्ण की प्रतिमा बनवा कर उन्हें उनके उस वृषभ वाहन पर स्थापित कराये, जो चाँदी द्वारा सौन्दर्य पूर्ण बनाया गया हो और उन्हें सभी आभूषणों से मुसज्जित कर चन्दन से शिव की और कुंकुम द्वारा उमा जी की अर्चना करे। पूजन के समय शुक्ल वस्त्र से शिव और रक्त वस्त्र से उमा देवी को विभूषित करके अत्यन्त शद्वा भक्ति समेत स्त्री को उन्हें धूप देना चाहिए। १५-१९। अनन्तर शिवभक्त एवं वैदिक विद्वान ब्राह्मणों को भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा उन्हें प्रदान करके प्रदक्षिणा के उपरांत इस

ततः प्रदक्षिणीकृत्य इदमुच्चारयेदृथः । उमामहेश्वरौ देवौ सर्वलोकपितामहौ ॥
 व्रतेनानेन सुप्रीतौ भवेतां मम सर्वदा ॥२१
 एवमुक्त्वा जितक्रोधे ब्राह्मणे वेदपारगे । व्रतं निवेदयेद्वक्त्या वाचके वा गुणान्विते ॥२२
 इदं कृत्वा व्रतं नारी महेशार्पितमानसा । प्रयाति परमं स्थानं यत्र देवो नहेश्वरः ॥२३
 शिवलोके वसेत्तावद्यावदिन्द्राश्रतुर्दश । अप्सरोभिः परिवृता किन्नरीभिस्त्यैव च ॥२४
 यदा मानुष्यभायाति ज्ञायते विमले कुले । रूपयौवनसम्पन्ना बहुपुत्रा पतिव्रता ॥२५
 धनधान्यसमायुक्ते तुवर्णमणिमणिहृते । यावज्जीवं गृहे रम्ये तिष्ठत्यव्याहतेन्द्रिया ॥२६
 वियोगं नैव सा पल्येद्वृत्तिनित्रमुतादिकैः । नृता शिवपुरं याति शिवगौरीप्रसादतः ॥२७
 हैमीभुमां रजतपिण्डमयं महेशं रौप्ये सुल्पवृषभै च समास्थितौ तौ ।
 सम्पूज्य रक्तसितदस्त्रयुगावगृढौ नारी भवत्यविधवा सुतसौख्ययुक्ता ॥२८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरे एवणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
 उमामहेश्वरव्रतं नाम त्र्योर्विशतिमोऽध्यायः । २३।

अथ चतुर्विशोऽध्यायः

रम्भातृतीयावत्वर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

रम्भातृतीयां वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् पुत्रसौभाग्यफलदां सर्वामयनिवारणीम् ॥१

प्रकार धर्मा ग्रार्थिना करे कि उमा और महेश्वर देव, जो समस्त लोक के पितामह हैं, मेरे इस व्रतानुष्ठान से सदैव प्रसन्न रहें। इतना कहकर किसी विद्वान् ब्राह्मण अथवा गुणीवाचक के लिए भक्तिपूर्वक व्रतनिवेदन करे। इस प्रकार महेश के ध्यानपूर्वक इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर वह स्त्री महेश लोक को प्रस्थान करती है। वहाँ चौदह इन्द्रों के समान काल तक अप्सराओं और किन्नरियों से मुसेवित रहकर कभी मनुष्य कुल में आने की इच्छा होने पर उत्तम कुल में उसका जन्म होता है। रूप यौवन से सम्पन्न होकर वह पतिव्रता अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक धन-धान्य एवं सुवर्ण मणित गृह में आजीवन इन्द्रियों के अवाध सुख का अनुभव करती है। उसे भर्ता, मित्र, एवं पुत्रों के वियोग कभी नहीं होते शिव गौरी के प्रसाद से पुनः देहावसान होने पर शिव लोक को प्रस्थान करती है। उमा की सुवर्ण प्रतिमा, शिव की चाँदी की प्रतिमा और चाँदी की ही वृषभ की प्रतिमा बनाकर जो स्त्री रक्त और श्वेत वस्त्र से क्रमशः उन्हें आवृत कर सविधान उनके पूजन सुसम्पन्न करती है, वह स्त्री सदैव सध्वा रहकर सुत और सौख्य से सदैव परिपूर्ण रहती है। २०-२८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बाद में
 उमामहेश्वर व्रत नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त । २३।

अध्याय २४

रम्भातृतीया व्रत-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं इस रम्भा तृतीया व्रत का वर्णन कर रहा हूँ, जो समस्त पापों के उन्मूलन करने

सर्वदुष्टहरां पुण्यां सर्वसौख्यप्रदां तथा । सपत्नीदर्पदलनां तथैश्चर्यकरीं शिवाम् ॥२
शङ्करेण पुरा प्रोक्ता पार्वत्याः प्रियकाम्यया । तामिमां शृणु भूपाल सर्वभूतहिताय वै ॥३
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां नराधिप । शुक्लायां प्रातर्ख्याय दन्तधावनपूर्वकम् ॥

उपवासस्य नियम गृह्णीयाद्बृक्तिभाविता ॥४

देवि सम्वत्सरं यावसृतीयायामुपोषिता । प्रतिमासं करिष्यामि पारणं चापरेऽहनि ॥

तदविघ्नेन मे यातु प्रसादात्तप यार्वति ॥५

इदं सङ्कल्प्य विधिवत्कौतेय कृतनिश्चयः । भक्त्या नरो वा नारी वा स्नानं कुर्यादितनिहतः ॥६

नद्यां तडागे शाप्यां गृहे वा नियतात्मवान् । पूजयेत्पर्वदीर्तीं नाम रात्रौ प्राश्य कुशोदकम् ॥७

प्रभाते भोजयेद्विद्वाच्छ्वभक्तान्यशेषतः । हिरण्यं लवणं चैव तेषां दद्यात् दक्षिणाम् ॥

गौरीश्वरं यथाशक्ति भोजयेत्प्रयत्ना सत्ती ॥८

अनेन विधिना राजन् यः कुयोन्मासि पौषके । गोमूत्रं प्राशयेद्वात्रौ प्रभाते भोजयेद्विजान् ॥९

हिरण्यं जीरकं चैव स्वशक्त्या दापयेत्ततः । कदुहुण्डं च कनकं तेष्यो दत्त्वा विसर्जयेत् ॥१०

वाजपेयातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोत्यसंशयः । शक्लोके वसेत्कलं ततः शिवपुरं व्रजेत् ॥११

माघे मासि तृतीयायां सुदेवीं नाम पूजयेत् । गोमयं प्राशयेद्वात्रौ ततश्चैकाकिनी स्वपेत् ॥१२

बाली एवं पुत्र और सौभाग्य के प्रदान पूर्वक सम्पूर्ण व्याधियों को विनष्ट करती हैं तथा समस्त दुष्टों के अपहरण करती हुई, समस्त सौख्य प्रदायक, सपत्नी के दर्प को दलने वाली एवं ऐश्वर्यकारिणी और कल्याणस्त्रप है। भूपाल ! पार्वती जी की प्रिय कामनावश शंकर जी ने पहले ही समय में इसकी व्याख्या उनसे की थी, जिसमें समस्त प्राणियों का हित निहित है, मैं उसे बता रहा रहा हूँ, सुनो ! नराधिप मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल तृतीया के दिन प्रातःकाल उठकर शद्वा भक्ति समेत दंत धावन पूर्वक उपवास के लिए दृढ़ संकल्प करते हुए प्रार्थना करे कि देवि ! संवत्सर की समाप्ति पर्यन्त प्रत्येक मास की तृतीया में उपवास के नियम पालन पूर्वक दूसरे दिन पारण करूँगा, अतः गिरिजे ! मेरी प्रार्थना है कि यह मेरा व्रत आप के प्रसाद से निर्विघ्न समाप्त हो । १-५। कौतेय ! इस प्रकार सविधान संकल्प करके स्त्री अथवा पुरुष को भक्ति पूर्वक आलस्यरहित होकर किसी नदी, सरोवर, बावली अथवा गृह में संयमपूर्वक स्नान करके पार्वती जी की पूजा करे और रात्रि में कुशोदक के प्राशन करके पुनः प्रातः काल होने पर विशेषकर शिव भक्त ब्राह्मणों को भोजन कराये तथा सुवर्ण एवं लवण की दक्षिणा प्रदान करके यथाशक्ति प्रथल पूर्वक उस साध्वी स्त्री को गौरी और महेश जी को भोजन करना चाहिए । ६-८। राजन् ! इस विधान द्वारा जो स्त्री पौष मास की तृतीया के व्रत को सुसम्पन्न कर रात्रि में गोमूत्र प्राशन करके प्रातः काल ब्राह्मणों के भोजन, और यथाशक्ति सुवर्ण एवं जीरा के दान अर्पित करते हुए कदु हुण्ड समेत कनक समर्पित कर विसर्जन करती है उस वाजपेय और अतिरात्र यज्ञ के फल निश्चय प्राप्त होते हैं । देहावसान होने पर इन्द्र लोक में सभी सुखों के उपभोग करने के उपरांत वह शिवलोक प्राप्त करती है । ९-१। माघ मास की तृतीया के दिन सुदेवी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में गोमय प्राशन पूर्वक एकाकिनी शयन करे

प्रातः कुमुम्भं कनकं दद्यान्त्तकत्या द्विजातिषु । विष्णुलोके चिरं स्त्यत्वा प्राप्नोति शिवसाम्यताम् ॥१३
 गौरीति फालगुने नाम गोक्षीरं प्राशयेन्निशि । प्रभाते भोजयेद्विद्वा अच्छवभक्तान्सुवासिनीः ॥१४
 कुडुहुंडं सकनकं तेभ्यो दत्त्वा विसर्जयेत् । वाजसेयातिरात्रान्यां फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥१५
 चैत्रे मासि विशालाक्षीं पूजयेद्वृत्तितत्त्वर । दधि प्राश्य स्वपेत्प्रातर्दद्याद्वेम सकुंकुमस् ॥
 सौभाग्यं महदाप्रोति विशालाक्ष्यः प्रसादतः ॥१६
 वैशाखस्य तृतीयायां श्रीमुखीं नाम पूजयेत् । धृतं च प्राशयेद्वात्रौ ततश्चैकाकिनीः स्वपेत् ॥१७
 शिवभक्तान्द्विजान्प्रातर्भौजयित्वा यथेष्पितम् । ताम्बूलं लवणं दत्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥
 अनेन विधिना दत्त्वा पुत्रानाप्रोति शोभनान् ॥१८
 आषाढे माधवीं नत्वा प्राशीन्याच्च तिलोदकम् । प्रभाते भोजयेद्विप्रान्दक्षिणायां गुडः स्मृतः ॥
 सकाञ्चनः शुभाल्लोकान्प्राप्नोति हि न संशयः ॥१९
 श्रादणे तु श्रिदं पूज्य पिवेदगोशृङ्गजं जलम् । शिवभक्तांश्च सम्पूज्य दद्याद्वेमफलैः सह ॥
 स च लोकेश्वरो भूत्वा सर्वकामानवास्तुयात् ॥२०
 भाद्रे चैव तृतीयायां हरतालीति पूजयेत् । माहिषं च पिवेद्वृद्धं सौभाग्यमनुलं लभेत् ॥
 इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥२१

पश्चात् प्रातः काल होने पर ब्राह्मणों को भोजनोपरांत पूष्य समेत सुवर्ण के दान अपित करने वाली स्त्री विष्णु लोक में चिरकाल तक निवास करती है और अनन्तर शिव लोक में पहुँच कर शिव का सारूप्य मोक्ष प्राप्त करती है । फाल्गुन मास में गौरी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में गो दुध का प्राशन और प्रातः काल होने पर शिवभक्त एवं विद्वान् ब्राह्मणों को भोजनोपरांत कडुहुंडं समेत सुवर्ण के दान पूर्वक विसर्जन करने वाली स्त्री को वाजपेय और अतिरात्र यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं इसमें संशय नहीं । चैत्र मास में विशालाक्षी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में दही के प्राशन पूर्वक शयन करके पश्चात् प्रातः काल सुवर्ण और कुंकुम के दान जो स्त्री करती है उसे विशालाक्षी के प्रसाद से महान् सौभाग्य की प्राप्ति होती है । १२-१६। उसी प्रकार वैशाख मास की तृतीया के दिन श्रीमुखी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में धृत के प्राशन पूर्वक एकाकिनी शयन करे । प्रातः काल होने पर शिव भक्त ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजन कराकर ताम्बूल समेत लवण दान करके विनय पूर्वक विसर्जन करने पर उस साध्वी को अनेक सौन्दर्यपूर्ण पुत्रों की प्राप्ति होती है । आषाढ़ मास में तृतीया के दिन माधवी देवी की पूजा करके तिलोदक के प्राशन पूर्वक रात्रि में शयन करने के उपरांत प्रातः काल के समय ब्राह्मणों को भोजनोपरांत गुड़ समेत सुवर्ण के दान अपित करने पर उसे उत्तम लोक की प्राप्ति होती है । श्रावण मास में श्री जी की पूजा करके रात्रि में शृङ्गोदक के प्राशन पूर्वक शयन कर पुनः प्रातः काल शिवभक्त ब्राह्मणों को भोजन कराकर फल समेत सुवर्ण की दक्षिणा अपित करने पर समस्त लोकों के ऐश्वर्य समेत प्रभुत्व की प्राप्ति पूर्वक निखिल कामनाओं की सिद्धि होती है । भाद्रपद मास की तृतीया के दिन हरिताली देवी की पूजा करके रात्रि में महिषी (भैस) के दुर्ग श्रावण करने से उसे अतुल सौभाग्य की प्राप्ति होती है और इस लोक में समस्त सुखों के अनुभव पूर्वक अन्त में देहावसान के समय शिव लोक की प्राप्ति होती है । १७-२१। आश्विन मास की तृतीया के दिन

आश्विने तु तृतीयायां गिरीपुत्रीति पूजयेत् । सम्प्राण्य तण्डुलजलं प्रातर्विश्रान्श्च पूजयेत् ॥२२
 दक्षिणा चापि निर्दिष्टा कनकं च सचन्दनम् । सर्वयज्ञफलं प्राप्य गौरीलोके महीयते ॥२३
 पद्मोद्भवा कार्तिके च पञ्चगव्यं पिबेत्ततः । रात्रौ प्रजागरं कुर्यात्प्रभाते भोजयेद्द्विजात् ॥२४
 सप्तलीकाञ्छुभाचारान्माल्यवस्त्रविभूषणैः । पूजयेच्छिवभक्तांश्च कुमारीश्वैव भोजयेत् ॥२५
 उमामहेश्वरं हैमं समाप्ते कारयेत्पृष्ठ । यथादिभवतारेण वितानं पञ्चवर्षकम् ॥२६
 अशनं च शुभं दद्याच्छ्वेतच्छत्रं कमण्डलुम् । पादुकोपानहौ दिव्यर्वसन्युग्मैश्च पाण्डव ॥२७
 पीतयज्ञोपवीतैश्च दीपनैत्रैः समुज्ज्वलैः । शङ्खशुक्लिसमोपेतदृष्टिर्पूर्णैश्च सुशोभितैः ॥२८
 उमामहेश्वरं स्थाप्य पूजयित्वा यथाविधिः नानाविधैः सुगन्धैश्च पत्रैः पुष्पैः फलैस्तथा ॥२९
 घृतपक्वैश्च नैवेद्यैर्दीपमालाभिरेत च । शर्करानालिकैरेत्तत्र दाढिमैर्बीजपूरकैः ॥३०
 जीरकैर्लवणैश्वैव कुमुखैः कुंकुमैस्तथा । सताप्रभाजनैर्दिव्यर्योदकै रससंयुतैः ॥
 पूजयेद्देवदेवेशं क्षमयेत्तदनन्तरम् ॥३१

शङ्खादित्रिनिर्धोर्षैर्वदध्वनिसमन्वितैः । एवं कृते फलं यत्स्यात्तत्र शक्यं स्योदितुम् ॥३२
 पूर्वोक्तकलभानीस्यात्तर्वदेवैश्च पूज्यते । कल्पकोटिशतं यावत्सर्वकामानदास्युयात् ॥३३
 तदन्ते शिवसायुज्यं प्राप्नोतीह न संशयः । पुरुतद्रंभया चीर्णं तेन रन्भान्तं स्मृतम् ॥३४
 योऽहं सा च सूता गौरी या गौरी स महेश्वरः । इति मत्वा महाराज शरणं व्रज पार्वतीम् ॥३५

गिरी पुत्री की पूजा करके तण्डुल जल के प्राशन पूर्वक रात्रि व्यतीत करने के उपरांत प्रातः काल ब्राह्मणों को भोजनोपरांत चन्दन समेत सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करने पर उसे समस्त यज्ञों के फल प्राप्ति पूर्वक गौरी लोक में अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त होतीहै । उसी भाँति कार्तिक मास की तृतीया के दिन पद्मोद्भवा देवी की पूजा करके पञ्चगव्य के प्राशन पूर्वक रात्रि में जागरण करने के उपरांत प्रातः काल ब्राह्मणों को पली समेत भोजन कराकर माला और वस्त्रों एवं आभूषणों से विभूषित करे अनन्तर कुमारियों को भोजन कराये । नृप ! इस प्रकार व्रत के समाप्त होने पर अपनी शक्ति के अनुसार उमा और महेश्वर की सुवर्ण की प्रतिमा बनवाकर पांच रंग के वितान, शुभ भोजन, श्वेतचन्दन, कमण्डलु, पादुका, उपानह, दिव्ययुग्म वस्त्र, पीत यज्ञोपवीत, दीप, शंक, शुक्रि आँख सौन्दर्य पूर्ण दर्पणों से सज्जित कर उन्हें स्थापन और सविधान पूजन कर अनेक भाँति के सुगन्ध पत्र, पुष्प, फल, घृतपक्व नैवेद्य, दीप माला, शक्कर, नारियल, अनार, बीजौरा नीबू, जीरा, लवण, कुसुम पुष्प, कुंकुम, ताम्र पात्र एवं दिव्यमोदक समेत देवाधिदेव की अर्चना के उपरांत उनकी क्षमा प्रार्थना करे । २२-३१ । उस समय शंख तथा अन्य वादित्र की ध्वनि और वेद ध्वनि होनी चाहिए । पाण्डव ! इस प्रकार उनकी अर्चना करने पर जिन फलों की प्राप्ति होती है मैं उसे बताने में असमर्थ हूँ, पूर्वोक्त फलों की प्राप्ति पूर्वक सम्पूर्ण देवों से पूजित होकर सौ कोटि कल्प तक सभी कामानाओं की सफलता पूर्वक सुखानुभव करने के उपरांत अन्त समय में शिवसायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है इसमें संशय नहीं । महाराज ! सर्वप्रथम रम्भा ने ही इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, इसीलिए इसका रम्भा व्रत नामकरण हुआ है । मैं गौरी हूँ और गौरी ही महेश्वर है, ऐसा जानकर पार्वती जी की शरण में श्रीघ्र पहुँच जाना चाहिए । २२-३५ । हिमालय की पुत्री पार्वती की प्रिय कामनाओं के

एषा हिमाद्रिकुहिनुदयिता तृतीया रम्माविधानमनभूवि तत्कृतेति ।
सत्प्राशितैहृदितनामयुतामुपोष्य प्राप्नोति वांछितफलान्य बलाबहूनि ॥३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
रम्भातृतीयाव्रतं नाम चतुर्विंशतिसोऽध्यायः ॥२४

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सौभाग्याष्टकवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तथैवान्यप्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् । सौभाग्यशयनं नाम यत्पुराणविदो विदुः ॥१
पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवः स्वर्महादिषु । सौभाग्यं सर्वलोकानामेकस्थमभवतदा ॥२
तच्च वैकुण्ठमासाद्य विष्णोर्वेक्षस्थले स्थितम् । ततः कालेन महता पुनः सर्गविधौ नृप ॥३
अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते । स्पर्द्धायां च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णयोः ॥४
पिङ्गाकारा समुद्भूता ज्वाला दक्षस्थली तदा । तयाभितप्तस्य हर्वेक्षसस्तद्विनिःसृतम् ॥५
यद्वक्षस्थलमाश्रित्य विष्णोः सौभाग्यमात्मितम् । रसरूपतया तावत्प्राप्नोति वसुधातलम् ॥६
उत्क्षप्तमन्तरिक्षस्यं ब्रह्मपुत्रेण धीमता । दक्षेण पीतमात्रं तु रूपलावण्यकारणम् ॥७

कारण उत्पन्न इस रम्भा व्रत को सविधान सुसम्पन्न करके क्रमशः प्रत्येक मास के प्राशन और देवी की अर्चना उपवास रहकर समाप्त करने पर इस भूतल में स्त्री को समस्त यथेच्छ फलों की प्राप्ति होती है ॥३६

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
रम्भा तृतीया व्रत वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४।

अध्याय २५

सौभाग्याष्टक-वर्णन

कृष्ण जी बोले—मैं उसी भाँति का एक अन्य व्रत का विधान बता रहा हूँ, जो संमूर्णकामप्रदायक है, तथा पौराणिक विद्वानों ने जिसका नाम सौभाग्य शयन बताया है । १। पहले समय में भूर्भुवः, स्वर और महरादि लोकों के प्रलाप विलीन हो जाने पर समस्त लोकों का सौभाग्य एकरूपी हो जाता है, जो वैकुण्ठाधिपति भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में परम सुरक्षित रहता है । नृप ! पुनः महान कालों के व्यतीत होने के उपरांत सृष्टि विधान के अवसर पर जब कि समस्त लोक प्रधान पुरुष अहंकार द्वारा सर्वथा आवृत सा रहता है और वंद्या तथा कृष्ण का आपस में भयानक स्पर्द्धा उत्पन्न रहती है, विष्णु के वक्षःस्थल से पिङ्गवर्ण की एक भीषण ज्वाला उत्पन्न हुई । उससे संतप्त होने पर विष्णु के दक्षस्थल से वह सौभाग्य निकल कर रस और रूप के आकार में पृथ्वी तल में पहुँच रहा था कि मध्य मार्ग में दक्ष ने उसके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर उसे और ऊपर अन्तरिक्ष में फेंक कर पान कर लिया, जिससे दक्ष

इलं तेजो भहज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः । शेषं यदपतद्भूभावष्टधा तदजायत ॥८
इक्षवस्तवराजं च निष्पादाजाजिधान्यकम् । विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुद्धुमं तथा ॥

लवणं चाष्टमं तत्र सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥९

पीतं यद्दग्धुपुत्रेण योगज्ञानविदा तथा । दुहितास्याभवत्समाद्या सतीत्यनिधीयते ॥
लोकानतीत्य लालित्याल्ललिता तेन चोच्यते ॥१०

त्रैलोक्यसुन्दरीरेतामुपयेमे पिनाकधृत् । त्रिविडवसौभाग्यमयी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥११
आराध्य तामुमां भक्त्या स्त्री राजन्कन्न विन्दति ॥१२

युधिष्ठिर उवाच

कथमाराधनं तस्य जगद्वात्र्या जनार्दनं । यद्गिधानं च तत्सर्वं जगन्नाथ वदस्व मे ॥१३

श्रीकृष्ण उवाच

वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां युधिष्ठिर । शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्ने तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥१४

तस्मिन्नहनि सा देवी किल विश्वात्मना सती । पाणिग्रहणकैर्मन्त्रैरुद्धाह्या वरदर्णिनी ॥१५

तथा सदैव देवेशं तृतीयायामथार्चयेत् । फलैर्ननाविधैर्धूपदीपनैवेद्यसंयुतैः ॥१६

पञ्चगव्येनानुमासां तथा गन्धोदकेन च । स्नपयित्वार्चयेद्गौरीमिन्दुशेखरसंयुताम् ॥१७

पाटलां शम्भुसहितां पादयोस्तु प्रपूजयेत् । त्रियुगां शिवसंपुत्तां गुल्फयोरुभरयोरपि ॥१८

अत्यन्त तेज की प्राप्ति हुई तथा शेष भाग आठ भागों में विभक्त होकर पृथ्वी पर प्राप्त हुआ, जो इक्षु, स्वराज, निष्पाप, जाजिधान्य, दही, कुसुम्भप्राप, कुकुम और लवण के नाम से लोक में प्रव्यात है और इसे ही सौभाग्याष्टक भी कहा जाता है । योग ज्ञान के प्रखरविद्वान् दक्ष ने इसी का शयन किया था, इसीलिए उनके यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न होकर सती जी ने विश्व विस्याति प्राप्ति की । समस्त लोकों से अत्यन्त ललित होने के नाते उनकी ललिता नाम से ख्याति हुई और उस त्रैलोक्य सुन्दर का पाणिग्रहण भगवान् शंकर ने सुसम्पन्न किया, जो तीनों लोकों में अत्यन्त सौभाग्यमयी एवं मुक्ति और भुक्ति प्रदान करती है अतः राजन् ! भक्ति पूर्वक जो स्त्री उनकी आराधना करती है उसे किस फल की प्राप्ति नहीं होती है । अर्थात् वह समस्त फलों के उपभोग करती है । २-१२

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन ! जगन्नाथ ! उस जगद्वात्री की आराधना किस भाँति की जाती है, उसके समस्त विधान की व्याख्या बताने की कृपा कीजिये । १३

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! वसंत (चैत्र) मास की शुक्ल तृतीया के दिन पूर्वाह्न काल में तिल से स्नान करके उत्तमाङ्गीं सती देवी का पाणिग्रहण विश्वात्मा शंकर जी के साथ उसी दिन सुसम्पन्न करके । देवेश शिव जी के साथ अनेक भाँति के फल, धूप, दीप, पंचगव्य और गंधोदक द्वारा सती देवी की अर्चना करे । इन्दुशेखर समेत गौरी की पूजा करते हुए दोनों चरणों में शम्भु संहित पाटला (रक्तवस्त्र) देवी, दोनों गुल्फों (एड़ियों) में शिव संयुक्त त्रियुगा देवी की पूजा करनी चाहिए । उसी भाँति दोनों

भद्रेश्वरेण सहितां विजयां जानुनोर्युगे ! ईशानीं हरिकेशं च कटचां सम्पूजयेद्भुधः ॥१९
 कोटिनीं शूलिनं कुक्षौ मञ्ज्ञलां शर्वसंयुताम् । उदरे पूजयेद्राजन्मामं रुद्रं कुचद्रये ॥२०
 अनन्तां त्रिपुरघं च पूजयेत्करसम्पुटे । कण्ठे भवं भवानीं च मुखे गौरीं हरं तथा ॥२१
 सर्वात्मना च सहितां ललितां मस्तकोपरि । अद्वाकारपूर्वकैरतैर्नमस्कारान्तयोजितैः ॥
 पूजयेद्भूक्तिसहितो गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥२२
 एवमन्यचर्यं विधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः । स्थापदेत्स्त्वन्ननिष्पावान्कुसुमभं क्षीरजीरकम् ॥२३
 तवराजेक्षुलवर्णं कुइकुमं च तथाष्टमम् । दत्तं सौभाग्यकं यस्मात्सौभाग्याष्टकमुच्चते ॥२४
 एवं निवेद्य तत्सर्वं शिवयोः प्रीयतामिति । चैत्रे शृङ्खोदकं प्राशय^१ स्वप्यादभूमावरिन्दम् ॥२५
 ततः प्रातः समुत्थाय कृतत्राणं जयः शुचिः । सम्पूज्य द्विजाम्पत्य माल्यवस्त्रविभूषणैः ॥
 सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सौवर्णं चरणद्वयम् ॥२६
 प्रीयतामत्र^२ ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत् । एवं संवत्सरं यावत्तीयायां सदा नृप ॥२७
 प्राशने नामजन्त्रे च विशेषोऽप्य निवोध मे । गोशृङ्खोदकमाद्ये स्याद्वैशाखे गोमयं पुनः ॥२८
 ज्येष्ठे मन्दारपुष्पं च बिल्वपत्रं शुचौ रमृतम् । श्रावणे दधि सम्प्राशयं नभस्ये च कुशोदकम् ॥२९
 क्षीरमाशयुजे तद्वत्कार्तिके पृष्ठदाज्यकम् । मृगोत्तमाङ्गे गोमूत्रं पौषे सम्प्राशयेद् घृतम् ॥३०

जानुओं में भद्रेश्वर समेत विजय देवी, कटि प्रदेश में हरि केश समेत ईशानी देवी, कुक्षि में शूली समेत कोटिनी देवी, उदर में शर्व समेत सर्वमंगला देवी, दोनों कुचों में रुद्रसहित उमा देवी, करसंपुट में त्रिपुरघन रामेत अनन्ता देवी, कंठ में भव समेत भवानी, मुख में हर और गौरी और मस्तक के ऊपर सर्वात्मा समेत ललिता देवी की सविधान तथा ओंकार पूर्वक नमस्कारांत पद के उच्चारण करते हुए (ओं इन्द्र शेरवासहितायै गौर्यै नमः) इस रीति से पूजन करे । भक्ति थदा पूर्वक गन्ध, माला एवं अनुलेपन द्वारा उनकी अर्चना करके उनके आगे सौभाग्याष्टक स्थापित कर, जो निष्पाप, कुसुमं, क्षीर, जीरा, तवराज, इक्षु, लवण और कुंकुम नाम से विख्यात है । ये सौभाग्य रूप हैं, इनके अर्पण करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है, अतः ये सौभाग्याष्टक कहे जाते हैं । १४-२४। अरिन्दम ! उस चैत्र मास की तृतीया के दिन सविधान उनकी अर्चना समेत अर्पण करके शिवयो प्रीयताम् (शिवसमेत शिवा) प्रसन्न हों । इस प्रकार क्षमा प्रार्थी होने के उपरांत शृङ्खोदक के प्राशन पूर्वक रात्रि में शयन करके पुनः प्रातःकाल उठकर शौचादि नित्यनियम धर्म से निवृत होने पर माला, वस्त्र, और आभूषण द्वारा द्विज दायपति की पूजा करके उनके चरण पर सुवर्ण सहित सौभाग्याष्टक अर्पित करते हुए ललिता देवी प्रीयतमाम् (ललिता देवी प्रसन्न हों) कहकर उसे ब्राह्मण को समर्पित करके । नृप ! इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ष भर प्रत्येक मास की तृतीया के दिन उनकी पूजा करें । उसमें प्राशन और नाम मंत्र की विशेषता को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! चैत्र में गोशृङ्खोदक वैशाख में गोमय, ज्येष्ठ में मंदारपुष्प, आषाढ़ में बिल्वपत्र, श्रावण में दही, भाद्रपद में कुशोदक, आश्विन में दुधध, कार्तिक में वृषदाज्य, मार्गशीर्ष में गोमूत्र, पौष में धी । २५-३०। माघ में काले तिल, और फाल्गुन

१. प्राप्य । २. प्रीयतां ललिता देवी ।

मार्ये कृष्णतिलान्स्तद्वत्पञ्चगव्यं च फल्युने । ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदाश्रिता ॥३१
 वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमलासती । उमा च दानकाले तु श्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥३२
 मलिकाशोककमलकदम्बोत्पलमालति । कुडमलं करवीरं च बाणमन्नानकुंकुमम् ॥
 सिन्दुवारं च मासेषु सर्वेषु क्रमशः स्मृतम् ॥३३
 जपा कुमुम्भकुमुमं जालती शतपत्रिका । यथालाभं प्रदेयानि करवीरं च सर्वदा ॥३४
 एवं संवत्सरं यग्वद्योष्य विधिवन्नरः । स्त्री नक्ते तु कुमारी वा शिवामभ्यर्च्य शक्तिः ॥
 व्रतान्ते शयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥३५
 उमामहेश्वरं हैमं दृष्टभं च गवा सद । स्थाणयित्वा तु शयने ब्राह्मणःय निवेदयेत् ॥३६
 अन्यान्यपि यथाशक्ति मिथुनान्यम्बरादिभिः । धन्यालङ्करणैर्दानैरन्दैश्च धनसञ्चयैः ॥
 वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेद्गतविस्मयः ॥३७
 एवं करोति यः सम्यक्सौभाग्यशयनव्रतम् । सर्वान्कामानवाप्नोति पदं चानन्त्यमश्नुते ॥३८
 सौभाग्यारोग्यरूपार्युर्दस्त्रालङ्काररूपणैः । न वियुक्तो भवेद्राजन्वष्टयुतशतत्रयम् ॥३९
 यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनं व्रतम् । करोति सप्त चाष्टौ वा श्रीकण्ठभुवनेश्वरैः ॥
 पूज्यमानो भवेत्सम्यग्यावत्कल्पायुतत्रयम् ॥४०
 नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा नरेश्वर । सापि तत्कलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ॥४१
 शृणुयादपि यश्वैतत्प्रदद्यादथ वा मतिम् । सोऽपि विद्याधरो भूत्वा स्वर्गलोकं चिरं वसेत् ॥४२

गौरी, मंगला, कमला, सती, तथा उमा नामक देवियों के नामोच्चारण करते हुए दान के समय देवी प्रीयताम् कहे । उसी प्रकार प्रतिमास में क्रमशः मलिका (मालती), अशोक, कमल, कदम्ब, उत्पन्न, मालती, कुण्डल, करवीर, वाण, कुंकुम एवं सिंदुवार पूष्प से सुसज्जित करते हुए करवीर (कनेर) सर्वदा अर्पित करना चाहिए । इस भाँति पूर्ण वर्ष तक उपवास रहकर उनकी सविधान अर्चना करके स्त्री अथवा कुमारी शिवा देवी को व्रत के अंत समय समस्त सामग्री समेत शयन कराये । ३१-३५ । उमा, महेश्वर और वृषभ (वाहन) की सुवर्ण आदि की प्रतिमा बनवाकर सम्पूर्ण वस्तु सुसज्जित शय्या पर स्थापित करके ग्राह्यण को समर्पित करना चाहिए । यथा शक्ति अन्य युगल वस्त्र, धान्य, अलंकार, एवं सुर्वणादि के प्रदान द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हुए अर्चना करनी चाहिए । पूजा के प्रत्येक समय में वित्त शाठ्य दोष पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है । ३६-३७ । इस प्रकार जो भली भाँति इस सौभाग्य शयन व्रत को सविधान सुसम्पन्न करता है, उसे समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक अनन्त पद की प्राप्ति होती है । राजन् ! सौभाग्य, आरोग्य, रूपलावण्य, आयु, वस्त्र, अलंकार, आदि सुख के साधन उसे तीन सौ वर्ष तक निरन्तर प्राप्त होता रहता है । जिसने बारह वर्ष या सात आठ वर्ष निरन्तर इस सौभाग्य शयन व्रत को सुसम्पन्न किया है अथवा जो करते हैं, वह तीस सहस्र कल्प तक विष्णु तथा महेश्वर द्वारा सम्मानित होता है । नरेश्वर ! स्त्री अथवा कुमारी को इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर देवी की अनुकूल्या द्वारा उपरोक्त सभी फल की प्राप्ति होती है । ३८-४१ । जो इसका श्रवण करते या इसके लिए अनुमति प्रदान करते हैं, वे भी विद्याधर होकर चिरकाल तक

इदमिह मदनेन पूर्वमिष्टं चरितमिदं शशबिन्दुना व्रतं वै ।
 सुरपतिधनदेशावायुसोमैश्चरितामिदं करणेन^१ बन्दिना च ॥४३
 यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर्दानानि धर्मर्थयशस्कराणि ।
 निर्मल्यवन्ति प्रतिमानि तानि त नाम साधुः पुनराददानः ॥४४
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि सौभाग्यष्टकतृतीयायाव्रतं
 नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५

अथ षड्विंशोऽध्यायः रसकल्याणीव्रतवर्णनम् युधिष्ठिर उवाच

सौभाग्यारोग्यफलदं विपक्षक्षयकारकम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं किञ्चिद्व्रतं ब्रूहि जनार्दन ॥१
 श्रीकृष्ण उवाच

यदुमायै पुरा दैव उवाचासुरसूदनः । कथामु सम्प्रवृत्तासु ललिताराधनं प्रति ॥२
 तदिदानीं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । नराणामथ नारीणामाराधनमनुत्तमम् ॥३
 शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वपापप्रणाशनम् । नभस्ये वाथ वैशाखे पुनर्मार्गिशिरेऽथ वा ॥४

स्वर्ग निवास करते हैं । इस व्रत को सर्वप्रथम मदन, इन्द्र, कुबेर, ईश, वायु, सोम, और वहण ने सुसम्पन्न निया है । जिन नरेन्द्रों ने इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए धर्म अर्थ एवं यश के प्राप्यर्थ उत्तम दान समेत प्रतिमा को प्रूजित कर ब्राह्मण के लिए अपित किया है, उन्ही के नाम प्रशंसनीय होने के नाते सभी लोगों के द्वारा ग्रहण हो रहे हैं ॥४२-४४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में सौभाग्याष्टक तृतीया व्रत वर्णन
 नामकृ पञ्चविंशति अध्याय समाप्त ॥२५।

अध्याय २६ रसकल्याणीव्रत-वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जनार्दन ! कोई इस भाँति के व्रत बताने की कृपा करें, जिसके अनुष्ठान द्वारा सौभाग्य, आरोग्य, शत्रुशमन एवं मुक्ति-भुक्ति की प्राप्ति हो ॥१

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में ललिता देवी की आराधना की चर्चा करते हुए असुर सूदन शिव ने उमादेवी से जो कुछ कहा था, उसे मैं बता रहा हूँ, उसके सुसम्पन्न करने पर भुक्ति मुक्ति की निश्चित प्राप्ति होती है, इसलिए स्त्री पुरुषों के लिए वह परमोत्तम आराधना है और समस्त पापों का विनाश होता है, अतः सावधान होकर सुनो ! श्रावण, वैशाख अथवा मार्गशीर्ष मास की शुक्ल तृतीया के दिन

शुक्तप्रश्नतृतीयायां स्नातः सद्गौरसर्षयैः । गोरोचनसुगोमूत्रमुस्तागोशकृतं तथा ॥
दधिचन्दनसम्मश्रं ललाटे तिलकं न्यसेत् ॥५
सौभाग्यारोग्यकुद्यत्यात्सदा च ललिताप्रियम् । प्रतिपक्षं तृतीयायां बद्धवा वा पीतवाससी ॥६
धारयेदथ चा रक्तपीतानि कुसुमानि च । विधवाप्पुरक्तानि कुमारी शुक्लवाससी ॥७
देव्यर्चा पञ्चगव्येन ततः क्षीरेण केवलम् । स्त्रपयेन्मधुना तद्वत्पुष्पगन्धोदकेन च ॥८
पूजयेच्छुक्लपुष्पैश्च फलैनानाविधैरपि । धान्यकाजाजिलवणगुडक्षीरधृतादिभिः ॥९
शुक्लाक्षतैस्तिलैरच्चर्यां ललितां यः सदार्चयेत् । आपदाद्यर्चनं कुर्याद्गौर्याः सम्यक्यसमासतः ॥१०
वरदायै नमः पादै तथा गुलझौ श्रिये नमः । अशोकायै नमो जंघे भदान्यै जानुनी तथा ॥११
ऊर्ह माङ्गल्यकारिण्यै कामदेव्यै तथा कटिम् । पद्मोद्भवायै जठरनुरः कामप्रिये नमः ॥१२
करौ सौभाग्यवासिन्यै बाहू शशिमुखश्रियै । मुखं कन्दर्पवासिन्यै पार्वत्यै तु स्मितं तथा ॥१३
गौर्यै नमस्तथा नासां सुनेत्रायै च लोचने । तुष्ट्यै ललाटफलकं कात्यायन्यै शिरस्तथा ॥१४
नमो गौर्यै नमः सृष्ट्यै नमः कान्त्यै नमः श्रियै । रम्भायै ललितायै च नासुदेव्यै नमोनमः ॥१५
एवं सन्पूज्य विधिवदगतः पद्मालिखेत् । पत्रैद्वादिशभिर्युक्तं कुंकुमेन सर्कणिकम् ॥१६
पूर्वं विन्यसेद्गौरीमण्डा च ततः परम् । भवान्ती दक्षिणे तद्वदुदार्णो च ततः परम् ॥१७
विन्यसेत्पश्चिमे सौम्यां ततो मदनवासिनीम् । वायव्यां पाटलावासामुत्तरेण ततो ह्यमाम् ॥१८
लक्ष्मीं स्वाहां स्वधां तुष्टिं मङ्गलां कुमुदां सतीम् । रुद्राणीं मध्यतःस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि ॥

स्नान करने के अनन्तर गौर वर्ण की राई, गोरोचन, गोमूत्र, मुस्ता, गोशकृत, दधि और चन्दन मिश्रित का भाल में तिलक लगायें । २-५। क्योंकि उससे सौभाग्य और आरोग्य की प्राप्ति होती है तथा वह ललिता देवी को अत्यन्त प्रिय भी है । प्रत्येक पक्ष की तृतीय के दिन पीत वस्त्र से विभूषित करके रक्त, पीत वस्तुओं से सुमज्जित करे । विधवा स्त्री को रक्त वस्त्रों द्वारा और कुमारियों को शुक्ल वस्त्रों द्वारा उन्हें विभूषित करके सर्वप्रथम पञ्चगव्य, क्षीर, मधु, और गुष्ठ गंधोदक द्वारा क्रमशः स्नान कराकर शुक्ल पूष्प, अनेक भाँति के फल, धान्यक, जजि, लवण, गुड़, क्षीर, धी, आदि समेत शुक्ल अक्षत और तिल द्वारा ललिता देवी की सदैव विधिवत् अर्चना करे । उस समय गौरी देवी की प्रत्येक अंग के पूजन में पृथक्-पृथक् नामोच्चारण करना चाहिए । वरदायैनमः से चरण, श्रियै नमः से गुलक, अशोकायै नमः से गंध, भवान्यै नमः से जानु, मांगल्यकारिण्यै से ऊर्ह, कामदैव्यै से कटि, पद्मोद्भवायै से जठर, कामप्रियायै नमः से हृदय, सौभाग्यवासिन्यै नमः से कर, शशिमुखश्रियै नमः से बाहू, कन्दर्पनासिन्यै से मुख, पार्वत्यैनमः से मन्दहास, गौर्यैनमः से नासिका, सुनेत्रायै नमः से नेत्र, तुष्ट्यैनमः से माल, कात्यायन्यै नमः से शिर की पूजा करके । ६-१४। गौरी, सृष्टि, काति, कहकर क्षमा प्रार्थना करने के अनन्तर उनके आगे सविधान कमल निर्माण करे । उसमें बारहपत्तों से उसे युक्त कर कुंकुम द्वारा उसकी कर्णिका के निर्माण पूर्वक पूर्व की ओर गौरी, अपर्णा और भवानी, दक्षिण की ओर रुद्राणी, पश्चिम की ओर सौम्या, मदनवासिनी, वायव्य में रक्त वस्त्रा तथा उत्तर की ओर उमा, लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा, तुष्टि, मंगला,

कुमुसैरक्षतैः शुभ्रैर्नमस्कारेण विन्यसेत्

॥१९॥

गीतमङ्गलघोषं च कारयित्वा सुवासिनीः । पूजयेद्वक्तवासोभी रक्तमाल्यानुलेपनैः ॥२०॥

सिन्दुरं स्नानचूर्णं च तासां शिरसि पातयेत् । सिन्दुरं कुंकुमं स्नानमिष्टं सत्याः सदा यतः ॥२१॥

नभस्ये पूजयेद्गौरीसुत्पत्तर्सितैस्तथा । दन्धुजीवैराश्युजे कार्तिके शतपत्रकैः ॥२२॥

कुन्दपुष्पैर्मार्गिशिरे पौषे वै कुंकुमेन च । मध्ये तु पूजयेद्वीं सिन्दुवारेण भक्तिः ॥२३॥

जात्या तु फालगुने पूज्या पार्वतीं दण्डनन्दन । चैत्रे च मल्लिकाशोकैर्वेशाखे गन्ध पाटतैः ॥२४॥

गोमूत्रं गोमयं धीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । बिल्वपत्रार्कपुष्पं च गवां शृङ्गोदकं तथा ॥

पञ्चगव्यं तथा बिल्वं प्राशयेत्क्रमशः सदा ॥२५॥

एतद्भाद्रपदाद्यं तु प्राशनं समुदाहृतम् । प्रतिपक्षं द्वितीयायां सया प्रोक्तं वरानन्ते ॥२७॥

ब्राह्मणं ब्राह्मणीं चैव शिवं गौरीं ब्रकल्प्य च । भोजयित्वाच्चयेद्भूत्या वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥

पुंसे पीताम्बरे दत्त्वा श्रियै कौसुम्भवात्सी ॥२८॥

निष्यावाजाजिलवणमिक्षुदणं गुणान्वितम् । स्त्रैयै दद्यात्कलं पुंसे सुवर्णोत्पलसंयुतम् ॥२९॥

यथा न देवदेवेशस्त्वां परित्यज्य गच्छति । तथा मां सम्परित्यज्य पतिर्नान्यत्र गच्छतु ॥३०॥

कुमुदा विमलानन्ता भवानी वसुधा शिवा । ललिता कमला गौरी सती रम्भाय पार्वती ॥३१॥

नभस्यादिषु मासेषु प्रीयतामित्युदीरयेत् । व्रतान्ते शयनं दद्यात्सुवर्णं कमलान्वितम् ॥३२॥

कुमुदा, सती और स्त्रीणी को मध्य भाग में स्थापित कर ललिता को कर्णिका के ऊपर अक्षत कुसुमों द्वारा नमरकार पूर्वक स्थापित करे । गीत, मंगल घोष समेत रक्त वस्त्र, रक्तमाला और अनुलेपन द्वारा उस सुरवासिनी देवी की अर्चना करके सिन्दूर तथा कुंकुम चूर्ण द्वारा उन देवियों के शिर विभूषित करे । क्योंकि सिन्दूर और कुंकुम के स्नान सती देवी कोसदैव प्रिय हैं । श्रावण मास में गौरी की पूजा नील कमल द्वारा और आश्विन में बन्धूक (उपहरिया), कार्तिक में कमल, मार्गशीर्ष में कुन्द पुष्प, पौष में कुंकुम, माघ में सिन्दुवार, फालगुन में जाती (चमेली) द्वारा पार्वती की पूजा चैत्र में मल्लिका अशोक वैशेष ख में गंध पाटल, ज्येष्ठ में कमल, मन्दार, आषाढ में कमल, श्रावण में कदम्ब, मालती, द्वारा उमा की पूजा करते हुए प्रत्येक मास में क्रमशः गोमूत्र, गोमय, धीर, दधि, धी, कुशोदक, बिल्वपत्र, अर्कपुष्प गोशृंगोदक, पञ्चगव्य, तथा बिल्व का भाद्रपदमास से प्रारम्भ कर प्राशन करना चाहिए । प्रत्येक पक्ष की द्वितीया के दिन ब्राह्मण ब्राह्मणी को शिव गौरी की कल्पना करके भक्ति पूर्वक वस्त्र, माला, और अनुलेपन द्वारा उन दम्पति की अर्चना करते हुए पुरुष को पीताम्बर और स्त्री की कुसुमी वस्त्र से विभूषित करने का विशेष ध्यान रखें । पश्चात् स्त्री को निष्पाप (धान्य राशि), सफेद जीरा, लवण, ऊख के दान करके फल समेत सुवर्ण पुरुष को अर्पित करे और इस प्रकार क्षमा प्रार्थी हो कि जिस प्रकार देवाधिदेव (महेश) तुम्हें वियोग कष्ट कभी नहीं देते हैं, उसी भाँति मेरा पति मुझे छोड़कर कहीं न जाये । १५-३०। अनन्तर कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, वसुधा, शिवा, ललिता, कमला, गौरी, सती, रम्भा, एवं पार्वती जी की श्रावण आदि प्रत्येक मास में क्रमशः पूजनोपरांत प्रीयताम् (प्रसन्न हो) कहकर व्रत की समाप्ति के समय सुवर्ण कमल से सुसज्जित कर शाय्या दान उस दम्पति को अर्पित करे । चौबीस, बारह

मिथुनानि चतुर्विंशतदर्ढं सङ्कुचर्चयेत् । अष्टावष्टावथ उनश्चातुर्मास्ये समर्चयेत् ॥३३
 तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्यत्नतो गुरुम् । न पूज्येत गुरुर्यत्र सर्वस्तत्राकलाः क्रियाः ॥३४
 उक्तानन्ततृतीयैषा सदानन्तफलप्रदा । सर्वापहरा देवी सौभाग्यारोग्यवर्धिनी ॥३५
 न चैतां वित्तशाठयेन कदाचिदपि लङ्घयेत् । नरो वा यदि वा नारी वित्तशाठयात्पतत्यधः ॥३६
 गर्भिणी सूतिकानक्तं कुमारी चाथ रोगयुक् । श्रद्धा तदान्येन क्रियमाणं तु कारयेत् ॥३७
 इमामनन्तफलदां तृतीयां यः समाचरेत् । कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके स पूज्यते ॥३८
 वित्तहीनोऽपि कुर्वीत वर्षयमुपोषणं । पुण्यात्रविधानेन^१ सोऽपि तत्फलमास्रुयात् ॥३९
 नारी वा कुरुते या तु कुमारी विध्वा तथा । साऽपि तत्फलमास्रोति गौर्यनुग्रहभाविता ॥४०

इति पृति शृणोति वा य इत्थं गिरितनयावतमिन्दु लोकसंस्थः ।

मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनकिनरैश्च पूज्यः ॥४१

॥(इति अनन्ततृतीयाव्रतम्)॥

रसकल्याणीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् । रसकल्याणिनीं नाम पुरा कल्पविदो विंदुः ॥४२
 माघमासे तु सम्प्राप्य तृतीयां शुक्लपाक्षिकीम् । प्रातर्गच्छेन पयसा तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥४३

अथवा एक ही बार या आठ आठ बार चौमासे मैं अर्चना करते हुए उपदेव का भी पूजन करे और गुरु की अर्चना में विशेष प्रयत्नशील रहे क्योंकि जिस व्रत के आरम्भ में गुरु की पूजा नहीं होती है, उसकी क्रिया निष्फल हो जाती है । सदा आनन्द फलप्रद होने के नाते वह अनन्त तृतीया के नाम से प्रख्यात है । उस दिन देवी की आराधना अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि समस्त पापों के अपहरण पूर्वक देवी उसके सौभाग्य और आरोग्य को सदैव वृद्धि करती रहती है । वित्त की शठतावश कभी इस तृतीया का उल्लंघन न करे क्योंकि वित्तशाठ्य दोष के द्वारा स्त्री पुरुष सभी का अधः पतन निश्चित हो जाता है । इस प्रकार गर्भिणी, प्रसूता, कुमारी, रोगिणी को जिस समय विशेष श्रद्धा भक्ति उत्पन्न हो उसी समय स्वयं उस व्रत को सुसम्पन्न करे, इसलिए कि इस अनन्त फल दायिनी तृतीया के दिन जो व्रतानुष्ठान सुसम्पन्न करता है, उसे सौ कोटि कल्प तक शिवलोक में निवास प्राप्त होता है । निर्धन को भी पत्र पुष्प द्वारा तीन वर्ष तक उपवास पूर्वक इस व्रत के सुसम्पन्न करने से उपरोक्त सभी फल प्राप्त होते हैं । स्त्री, कुमारी, विध्वा को भी इसे सुसम्पन्न करने पर गौरी की अनुकूल्या द्वारा उसी फल की प्राप्ति होती है । इस प्रकार इस अनन्त तृतीया व्रत के अध्ययन, थ्रवण, करने से जो हिमालय पुत्री (ललिता) के नाम से प्रख्यात है, वह तथा उपदेष्टा भी देवों तथा उनकी स्त्रियों और परिजनों द्वारा सदैव सुसेवित होता है । ३१-४१

रसकल्याणी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अन्य एक और पापनाशिनी तृतीया को बता रहा हूँ, कल्प के विद्वानों ने जिसका रसकल्याणिनी नाम बताया गया है । माघमास की शुक्ल तृतीया के दिन प्रातः काल गो दुग्ध और तिल

१. पुष्पमंत्रविधानेन ।

स्नापयेन्पाद्मुना देवीं तथैवेक्षुरसेन च । पुनः पूजा प्रकर्तव्या जात्या वा कुंकुमेन वा ॥४४
दक्षिणाङ्गानि सम्पूज्य ततो वामानि पूजयेत् । ललितायै नमः पादौ गुल्फं तद्वदथार्चयेत् ॥४५
जम्बे जानू तथा सत्यै तथोरश्च श्रियै नमः । मदनालसायै तु कटि मदनायै तथोदरम् ॥४६
स्तनौ मदनवासिन्यै कुमुदायै च कन्धरम् । भुजान्पुजाग्रं माधव्यै कमलायै हृपस्थकम् ॥४७
भूललाटे च रुद्राण्यै रुदङ्करायै तथालकान् । मुकुटं विश्ववासिन्यै पुनः कान्त्यै तथालकान् ॥४८
नेत्रं चक्रावधारिण्यै पुष्टचै च वदनं पुनः । उत्कण्ठिण्यै नमः कण्ठमनन्तायै तु कन्धरम् ॥४९
रम्भायै वामबाहुं च विशोकायै नमः परम् । हृदयं मन्मथादित्यै पाटलायै नमोनमः ॥५०
एतं सम्पूज्य दिघिदिद्विजदाम्पत्यमर्चयेत् । भोजयत्विक्षुदानेन मधुरेण विमत्तरः ॥५१
सलडुकं वारिकुम्भं गुक्लाम्बरपुरां ततम् । इत्वा सुवर्णकलशं गन्धमाल्यैरथार्चयेत् ॥५२
प्रीयतामन्त्र कुमुदा गृह्णीयाल्लवण्वतम् । अनेन विधिना देवीं मासिमासि समर्चयेत् ॥५३
लवणं वर्जयेन्मासे फाल्गुने च गुडं पुनः । तद्वराजं तथा चैत्रे वर्ज्यं च मधु माधवे ॥५४
पारकं ज्येष्ठमासे तु आषाढे जीरकं तथा । श्रावणे वर्जयेत्क्षीरं दधि भाद्रपदे तथा ॥५५
घृतमश्युजे तद्वद्वर्जयेद्या च मज्जिका ! धान्यकं मार्गशीर्षे तु पौषे वर्ज्या तु शर्करा ॥५६
व्रतात्ते करका पूणा एतेषां मासिमासि च । दद्याद्विक्षुलावेलायां भक्षपात्रेण संयुतान् ॥५७
तण्डुलान्वचेतवर्णश्च संयावमधुपूरिकाः । धारिका घृतपूरांश्च मण्डकान्कीरशाककम् ॥५८
दध्यन्तं षड्डीधं चैव भिण्डयः शाकवर्तीकाः । माधादौ क्रमशो दद्यादेतानि करकोपरि ॥५९
कुमुदा माधवी गौरी रम्भा भद्रा जया शिवा । उमा शची सती तद्वन्मङ्गला रतिलालसा ॥६०

द्वारा स्नान करके मधु और ऊल रस द्वारा देवी को स्नान कराने के उपरांत चमेली, और कुंकुम द्वारा उनकी अर्चना करे । उसमें प्रथम दक्षिणांग की पूजा करके पश्चात् वामाङ्ग के पूजन करना चाहिए । ललितायै नमः से चरण, गुल्फ, जंधा और जानू, श्रियै नमः से उह, मदनालसायै नमः से कटि, मदनायै नमः से उदर, मदनवासिन्यै नमः से कुच, कुण्डायै नमः से कंधा, माधव्यै नमः से भुजा, कमलायै नमः से कर रुद्राण्यै नमः से भौंहे और भाल, शंकरायै नमः से शिर के दक्षिण केश, विश्ववासिन्यै नमः से मुकुट, कान्त्यै नमः से शिर के वामकेश, चक्रावधारिण्यै नमः से नेत्र, पुष्ट्यै नमः से मुख, उत्कण्ठिण्यै नमः से कण्ठ, अनंतायै नमः से कंधा, रम्भायै नमः से वामभुजा, विशोकायै नमः से दक्षिण भुजा, मन्मथादित्यै से हृदय की अर्चना करके पाटलायै नमोनमः से प्रार्थना करे । इस प्रकार देवी की विधिवत् पूजा करके द्विजमप्ति की अर्चना करे, पश्चात् अन्न दान द्वारा निर्मत्सर होकर मधुर पदार्थ का भोजन कराये । तदुपरांत लड्डु समेत जलपूर्ण घट, चार शुक्ल वस्त्र, सुवर्ण कलश, गंध और माला आदि से सविधान अर्चना करके 'कुमुदा देवी प्रीयताम्' प्रसन्न हों, और इस लवण व्रत को ग्रहण करने पर । इस प्रकार अक्षमा प्रार्थी होकर पुनः प्रत्येक मास में देवी की पूजा सुसम्पन्न करता रहे । उस समय माध में लवण, फाल्गुन में गुड़ चैत्र में तावराज, वैशाख में मधु (शहद), ज्येष्ठ में पारक, आषाढ़ में जीरा, श्रावण में क्षीर, भाद्रपद में दधि । ४२-५५ । आश्विन में घृत, कार्तिक में मज्जिका, मार्गशीर्ष में धनियाँ और पौष में शक्कर के त्याग पूर्वक, ब्रतानुष्ठान के समाप्त होने पर प्रत्येक मास में करवापूर्ण समेत श्वेत तण्डुल पूर्ण भोजन पात्र दान देने चाहिए । उस समय करवा के ऊपर लप्सी, शहद, पूरी, धारिका, घृतपूरी, मट्ठा, क्षीर शाक, दधि में पक्क अन्न जो छें भाँति का बनाया जाता है, तथा भिण्डी के शाक भी रखकर माध मास आदि सभी मासों में दान करते हुए 'कुमुदा' माधवी, गौरी,

क्रमान्माधादि सर्वत्र प्रीयतामेति कीर्तयेद् । चर्वन्तं पञ्चगव्यं च प्राशनं समुदाहृतम् ॥६१
 उपवासी भवेन्नित्यमशक्तो दक्षिणे करे । मुनस्थिरे तु सम्प्राप्य शर्करां करकोपरि ॥६२
 कृत्वा तु काञ्चनीं गोधां पञ्चरत्नसमन्विताम् । उमामङ्गुष्ठमात्रां च सुधासूत्रे कमण्डलुम् ॥६३
 तद्वृद्गोमिथुनं सर्वं सुवर्णास्यं सितं परम् । सवस्त्रभाजनं दत्त्वा भवानी प्रीयतामेति ॥६४
 अनेन विधिना यश्च रसकल्याणिनीव्रतम् कुर्यात्सं सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥६५
 भवार्बुद्दत्तहत्यं तु न दुःखी जायते क्वचित् अग्निष्टोमस्तहस्तेण यत्कलं तदनाप्नुयात् ॥६६
 नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा युधिष्ठिर । विधवा वा वराकी वा सापि तत्फलभागिनी ॥
 सौभाग्यः राग्यतस्पन्ना गौरी लोके महीयते ॥ ६७

इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गात्सकलकलुषमुक्तः पार्वतीलोकमेति ।
 मतिमपि च नराणां दो ददाति प्रियार्थं विगुलमतिज्ञानं नायकः स्यादमोघम् ॥६८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णं युधिष्ठिरसंवादे
 रसकल्याणिनीव्रतवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः । २६

रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, शची, सती, मङ्गला, और रतिलालसा देवी प्रीयताम् (प्रसन्न हों) क्रमशः प्रत्येक मासों में विनयविनम्र होकर कहता रहे । चह एवं पञ्चगव्य के प्राशन और उपवास उसे सदैव वरना चाहिए, किन्तु असर्मर्थ होने पर दाहिने हांथ में परिमाण मात्र का भक्षण करे । इस प्रकार व्रत विधान को सुसम्पन्न करते हुए, पुनः माघ मास में उस दिन शमकर पर करवा रख कर उसके ऊपर पंच रत्न समेत सुवर्ण की उमा की अंगुष्ठ समान प्रतिमा रखकर सुधा, सूत्र, कमण्डलु और गो मिथुन जिसके मुख सुवर्ण रचित हों एवं काय इवेतवर्ण, वस्त्र और भोजनादि पात्र अर्पित करते हुए 'भवानी प्रीयताम्' कहकर क्षमाप्रार्थी होना चाहिए । इस विधान द्वारा जो इस कल्याणिनी व्रत को सुसम्पन्न करता है, उसे तत्काल समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है । तथा सहस्रर्बुद्ध वर्षपर्यन्त उसे संसार का कष्ट नहीं होता है, अपितु सहस्र अग्निष्टोम यज्ञ के फलों की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर ! इसी प्रकार स्त्री, कुमारी, विधवा, अथवा बारकी (दीनहीना) के भी उसके सुसम्पन्न करने पर वे ही फल प्राप्त होते हैं—सौभाग्य और आरोग्य सम्पन्न होकर इस लोक में समस्त सुखानुभव करने के उपरांत देहावसान के समय गौरी लोक में पहुँच कर सुसम्मानित होता है । इस भाँति इस कथा प्रसङ्ग को अध्ययन अथवा श्रवण करने वाला समस्त पापों से मुक्त होकर पार्वती लोक की प्राप्ति करता है और इस व्रतानुष्ठान के लिए अपनी सम्मति प्रदान करने वाली सभी अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि वाले जनसमूहों का सफल नायक होता है । ५६-६८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्बाद में
 रस कल्याणिनी व्रत-वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त । २६।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

आद्रानन्दकरीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तथा चान्यां प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् । लोकेषु नाम्ना विख्यातामाद्रानन्दकरीमिमाम् ॥१
 यदा शुक्लतृतीयायामाषाढक्षं भद्रेत्क्वचित् । ब्रह्मक्षं चाथ मार्गं वा क्लं ग्राह्यं तदा शुभम् ॥२
 दर्भगन्धोदकैः स्नानं तदा सम्यक्सप्तमाचरेत् । शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥३
 भवानीमर्चयेद्भूक्त्या शुक्लपुष्टैः^१ सुगन्धिभिः । यहादेवेन सहितामुपविष्टां वरासने ॥४
 वासुदेव्यै नमः पादौ शङ्कराय नमो हरे । जड्डे शोकविनाशिन्यायानन्दाय नमः प्रभो ॥५
 रम्भायै पूजयेद्भूरु शिवाय च पिनाकिनः । आदित्यै च कटि दूज्या शूलिनः शूलपाण्ये ॥६
 माधव्यै च तथा नाभिमथ शम्भोर्भवाय वै । स्तनावानन्दकारिण्यै शङ्करायेन्दुधारिणे ॥७
 उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठं नीलकण्ठाय वै हरे । करावुत्पलधारिण्यै रुद्राय जगतीप्तोः ॥८
 बाहुं च परिरम्भिण्यै नृत्यशीलाय वै हरे ॥९
 देव्या मुखं विलासिन्यै वृषेशाय पुनर्विभोः । स्मितं सस्मरशीलायै दिश्ववक्त्रायै^२ वै विभोः ॥१०
 नेत्रं मदनवासिन्यै विश्वधान्ने त्रिशूलिने । भुवौ रतिप्रियायै च ताण्डवेशाय वै विभोः ॥११
 देव्यै ललाटमिन्द्राण्यै हव्यवाहाय वै विभोः । स्वाहायै मुकुटं देव्या विभोः पञ्चशराय वै ॥१२

अध्याय २७

आद्रानन्दकरीव्रत-वर्णन

कृष्ण जी बोले—अन्य एक पाप प्रणाशिनी तृतीया बता रहा हूँ, जिसे लोक में आद्रानन्दकरी कहा जाता है। जिस शुक्ल तृतीया के दिन आषाढ़ नक्षत्र (उत्तराषाढ़, पूर्वाषाढ़), ब्रह्म नक्षत्र अथवा मृगशिरा की प्राप्ति हो, उसी समय इस व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ करना चाहिए। उस समय व्रती को गध समेत कुशोदक स्नान करके शुक्लाम्बर धारण और शुक्ल गन्ध के लेपन करने के उपरांत भक्ति पूर्वक सुगंध, रक्त, पुष्प, द्वारा महादेव समेत उत्तमासनासीन भवानी की अर्चना करनी चाहिए। १-४ वासुदेव्यै नमः शंकराय नमः से शिव और भवानी के चरण शोकविनाशिन्यै आनन्दायनमः से जंघा, रम्भायै शंकराय नमः से ऊरु, आदित्यैकशूलपाण्ये नमः से कटि, माधव्यै भवाय नमः से नाभि, आनन्द करिण्यै शंकराय इन्दुधारिणे नमः से स्तन, उत्कण्ठिन्यै नील कंठाय नमः से कण्ठ, उत्पलधारिण्यै रुद्राय नमः से कर, परिरम्भिण्यै नृत्यशीलाय नमः से बाहु, विलासिन्यै वृषेशाय नमः से मुख, सस्मरशीलायै विश्ववक्त्राय नमः मन्दस्मित, मदनवासिन्यै, विश्वधान्ने त्रिशूलिने नमः से नेत्र, रतिप्रियायै ताण्डवेशाय नमः से भू, इन्द्राण्यै देव्यै हव्य वाहाय नमः से भाल और स्वाहायै पञ्चशरायनमः से मुकुट, की पूजा करके क्षमा

१. रक्तपुष्टैः । २. विश्वचक्राय ।

विश्वकारै विश्वमुखै विश्वपादकरौ शिवौ । प्रसन्नवदनौ बन्दे पार्वतोपरभेष्वरौ ॥१३
एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः शिवयोः पुनः । पद्मोत्पलानि च तथा नानावर्णानि कारयेत् ॥१४
शङ्खचक्रे सकटके स्वस्तिकं वर्द्धमानकम् । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥१५
शृङ्गोदकं बिल्वपत्रं वारि कुम्भान्वितं तथा । उशीरनीरं तद्वच्च यद्यूर्णोदकं ततः ॥१६
तिलोदकं च सम्माप्य स्वप्न्यात्मर्गशिरादिषु । प्रतिपक्षद्वितीयायां प्राशानं समुदाहृतम् ॥१७
सर्वद शुक्लपुष्पाणि प्रशस्तान्ति शिवार्चने । दानकालेषु तर्वेषु मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥१८
गौरी मे प्रीयतां नित्यमधनाशाय भञ्ज्णला । सौभाग्यायास्तु ललिता भवानी^१ सर्वसिद्धये ॥१९
संवत्सरान्ते लवणं गुडकुम्भं सर्मजितम् । चन्दनं नेत्रपट्टं च सितवस्त्रयुगान्वितम् ॥
उमामहेश्वरं हैमं तद्विक्षुफलैर्युतम् ॥२०

प्रस्तरावरणं शश्यां सविश्रामां निवेदयेत् । सप्तलीकाय विप्राय गौरी मे प्रीयतान्विति ॥२१
आद्रानन्दकरी नाम तृतीयैषा सनातनी । यामुपोष्य नरो याति शम्भोस्तत्परमं पदम् ॥२२
इह लोके द्यानन्दं प्राप्नोति धनसञ्चयात् । आयुरारोग्यसम्पदो न किञ्चिच्छोकमाप्नुयात् ॥२३
नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवा तथा । सापि तत्कलमाप्नोति देव्यनुप्रहलालिता ॥२४
प्रतिपक्षमुपोष्यैवं मन्त्रार्चनदिधानतः । रुद्राणीलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥२५

प्रार्थना करे कि विश्वरूप शरीर धारण करने वाले विश्व में सर्वप्रधान, तथा विश्व के चरण एवं कर शिव शिवारूप और प्रसन्न मुख वाले आप पार्वती परमेश्वर की मैं बदना कर रहा हूँ । ५-१३। इस प्रकार सविधान पूजन समाप्त करके। उसके सम्मुख अनेक भाँति के रक्त कमल और नीलकमल की रचनापूर्वक शंख-चक्र, वलय, कङ्घा, स्वस्तिक (टीका) एवं वर्द्धमानक से उन्हें सुसज्जित करे। गोमूत्र, गोमय, दुध, दधि, धी, कुशोदक, शृङ्गोदक, बिल्वपत्र, जलपूर्ण घट, उशीर नीर (खस) जय चूर्ण समेत जल, तिलोदक आदि मार्गशीर्ष आदि प्रत्येक मासों के क्रमगः प्रतिपक्ष की द्वितीया के प्राशान बताये गये हैं। शिवार्चन में सर्वथा शुक्ल पुष्प ही प्रशस्त बताया गया है। और सभी दान के समय इसी मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—गौरी मेरे ऊपर सदैव प्रसन्न रहे, उसी भाँति पापनाश के लिए मंगलादेवी, सौभाग्य के लिए ललिता, और सर्व सिद्ध भवानी प्रसन्न हों। अनन्तर वर्ष की समाप्ति में लवण, गुड, घट, चन्दन, सूक्ष्मवस्त्र और चार श्वेत वस्त्र समेत उस शुभा और महेश्वर की सुवर्ण प्रतिमा को इक्षुफल के साथ साधन सम्पन्न उत्तम शश्या पर स्थापित कर पूजन विधाम कराने के उपरांत उसे सप्तलीक ब्राह्मण को अर्पित करते हुए ‘गौरी मुङ्ग पर प्रसन्न हों’ कहे । ४-२१। इस सनातनी तृतीया को आनन्दकरी बताया गया है, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य शम्भु के परम पद की प्राप्ति करता है, और धन संचय समेत समस्त आनन्द, आयु एवं आरोग्य से सुसम्पन्न होकर उसके सुखमय जीवन में किसी प्रकार का शोक नहीं होता है । २२-२३। नारी, विधवा, एवं कुमारी को भी इसके सुसम्पन्न करने पर देवी के अनुग्रह वश सभी फल प्राप्त होते हैं। इसी भाँति प्रत्येक पक्ष में उपवास रहकर सविधान एवं मंत्रोच्चारण पूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उसे उस रुद्राणी लोक की प्राप्ति होती है, जहाँ पहुँचने पर पुनः जलप्रहण नहीं करना पड़ता है। जो मनुष्य इस कथा को सुनते या सुनाते हैं वे

य इदं शृणुयाज्ञित्यं श्रावयेद्वापि मानवः । शक्तलोके सगन्धर्वे पूज्यतेऽब्दशत्रयम्^१ ॥२६
 आनन्ददां सकलदुःखहरां तृतीयां या स्त्री करोति विधिवत्सध्वाधवा च ।
 सा स्वे गृहे सुखशतान्यनुभूय भूयो गौरीपुरं सदयिता मुदिता प्रयाति ॥२७
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 आदर्वानन्दकरीतृतीयाक्रतं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७

अथाष्टविंशोऽध्यायः

चैत्रभाद्रपदमाघवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

चैत्रे भाद्रपदे माघे रूपसौभाग्यपुत्रदम् । तृतीयाक्रतमेतन्मे कृष्ण कस्मात् कीर्तिम् ॥१
 किमहं भक्तिरहितस्त्रीमार्गातिगो नरः । सुप्रसिद्धं जगत्येतद्गोपितं केन हेतुना ॥२
 भवान्सर्वार्थानुकूलं सर्वज्ञ इति मे मतिः

श्रीकृष्ण उवाच

व्रतं चैतज्जगत्व्यातं नाश्यातं तेन ते मया
 यद्यस्ति श्रवणे बुद्धिः श्रूयतां पाण्डुनन्दनं । कोऽन्यः श्रोता जगत्यरिमन्भवता सदृशो भुवि ॥४

इन्द्र लोक में तीन सौ वर्ष तक गन्धर्वों एवं अप्सराओं आदि द्वारा प्रूजित होते रहते हैं । आनन्द प्रदायिनी और समस्त दुःख के अपहरण करने वाली इस तृतीया व्रत को जो भी विधिवत् सुसम्पन्न करती है, उसे अपने घर में समस्त सुखों की अनुभूति होने के उपरांत देहावसान के समय प्रसन्नतापूर्ण गौरी लोक की प्राप्ति होती है । २४-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्बाद में
 आदर्वानन्दकरी तृतीया व्रत वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त । २७।

अध्याय २८

चैत्र, भाद्रपद तथा माघ का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—कृष्ण ! चैत्र, भाद्रपद और माघमास की इन तीनों तृतीया का, जो सौभाग्य और पुत्रप्रद बंतायी गयी है, आप ने वर्णन क्यों नहीं किया । क्या मुझे भक्तिहीन एवं वेदमार्ग के प्रतिकूल चलने वाला पुरुष आपने समझ लिया है । यदि ऐसा नहीं है, तो आप मेरी सम्मति से सर्वथानुकूल एवं सर्वज्ञ है, अतः यह बताने की कृपा कीजिये कि—यह तृतीया विश्व में इतनी प्रख्यात कैसे हुई । १-२

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुनन्दन ! यह व्रत अत्यन्त विश्वविश्यात है, इसीलिए इसकी व्याख्या मैंने तो नहीं की । यदि आप की इच्छा यही सुनने की है, तो मैं वह कह रहा हूँ, सुनो ! क्योंकि इस संसार में

१. अब्दशतद्वयम् ।

जया च विजया चैव उमायाः परिचारिके । आगत्य मुनिकन्याभिः दृष्टेऽभीष्टफलेच्छ्या ॥५
अव्यत्यौ सर्वदा देव्याश्रित्तवृत्तिविदौ किल । देन व्रतोपचारेण कस्मिन्नहनि पार्वती ॥

शूजिता त्रुष्टिमभ्येति मन्त्रैः कैश्च वरानने ॥६

तासां तद्वचनं श्रुत्वा जया प्रोवाच सादरम् । श्रूयतामभिधास्यामि सर्वकामफलप्रदम् ॥

व्रतमुत्सवसंयुक्तं नरनारी मनोरमम् ॥७

चैत्रे सिततृतीयायां दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्थ नियमं गृह्णीयाद्वक्तिभावितम् ॥८

सुकुम्बूलं सिन्दूरं रक्तवाससी । विधवा^१ सोण्वासाप्यवैद्यव्यकरणं परम् ॥९

विधवा यान्ति भार्गेण कुमारी तु यदृच्छ्या । कुर्दिभ्यर्चनविधिं श्रूयतां मन्त्रविक्रमः ॥१०

नेत्रपटटपटीवस्त्रैर्वेस्त्रमण्डपिकां शुभाम् । कारयेत्कुमुमानोदिव्याभरणःभूषितम् ॥११

प्रदाललम्बितव्रतामन्तर्दिव्यवितानिकाम् । विन्यस्तपूर्णकलशां सत्पीठस्थापिताद्विजाम् ॥१२

पुरतः कारयेत्कुण्डं हस्तमादं समेखलम् । ततः स्नातानुलिप्ता च परिधाय सुवाससी ॥१३

देवान्पितृन्तसमभ्यर्च्य ततो देवीगृहं बजेत् । नामाष्टकेन सम्पूज्या गौरी गोपतिवल्लभा ॥१४

तत्कालप्रभवैः पुष्पैर्गन्धालिबकुलाकुलैः । कुंकुमेन समालभ्य^२ कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥१५

आपके समान अन्य कोई श्रोता भी नहीं है । एक बार उमादेवी की जय-विजयार्थी नामक दोनों परिचारिकाओं से मुनि कन्याओं ने वहाँ आकर पूछा कि—वरानने ! हमें कुछ अपना अभीष्ट सिद्ध करना है, और आप दोनों देवी की चित्तवृत्ति जानती हैं इसलिए आप यह वताने की कृपा करें कि किस व्रत के अनुष्ठान एवं किस दिन में पूजा करने पर पार्वती जी प्रसन्न होकर अभीष्ट प्रदान करती है और उसमें किस मंत्र का उच्चारण किया जाता है । उन दोनों की बाते सुनकर जया ने सादर कहा—मैं उस व्रत को बता रही हूँ, जो उत्सव संयुक्त होने पर समस्त कामनाओं को सफल करते हुए स्त्री पुरुष सभी के लिए अत्यन्त मनोरम है । चैत्रमास की शुक्ल तृतीया के दिन अत्यन्त भक्तिपूर्वक दातून करने से ही आरम्भ कर उपवास के नियम को ग्रहण करे । ३-८। अनन्तर स्नानादि नित्यनियम के उपरांत कुंकुम, ताम्बूल, सिन्दूर, दो रक्त वस्त्र से देवी जी की सविधि अभ्यर्चना करनी चाहिए । विधवा को भी इसी भाँति अपने अवैद्यव्य के निमित्त पूजन करना चाहिए और कुमारियों के लिए यथेच्छ पूजन करना बताया गया है । सुनो, आगे मंत्र विधान भी बताऊँगा । सर्वप्रथम सूक्ष्म वस्त्र और चार अन्य वस्त्र पूजन के लिए रखकर सौन्दर्य पूर्ण मंडप के भीतर सुसम्पन्न वेदी पर, जो चारों ओर प्रवाल समूह, भीतर दिव्य वितान और पूर्ण कलश से सुसज्जित किया गया हों, सिंहासन पर शिवा शिव की प्रतिमा स्थापित कर पुष्प, गन्ध एवं दिव्य आभूषणों से मुोभित करके उनके सामने हस्त मात्र के एक कुण्ड की रचना करे, जो मेखला आदि से विभूषित हो, उपरांत आन अनुलेपन नित्य नियम देव-पितृ पूजन पूर्वक पवित्र स्वच्छ वस्त्र धारण कर देवी जी की सेवा में उपस्थित हो और वहाँ मुस्तिर चित्त से गोपति (भगवान शंकर) की प्राण वल्लभा गौरी जी की नामाष्टक का उच्चारण करते हुए सामयिक पुष्प—गन्ध, बकुलपुष्प वृन्द, कुंकुम, कपूर, अगर, चन्दन द्वारा सविधि

१. विभूयात्सोपवासापि । २. समालध्य ।

एवं सम्पूज्य विधिवत्सद्धूपेनाधिवासयेत् । पार्वती ललिता गौरी गान्धारी शाङ्करी शिवा ॥

उमा सती भसुहिष्टं नामाष्टकमिदं मया

॥१६

लङ्कैः खण्डदेष्टश्च गुडैः सिहकेसरैः

सोमालकैः कोकसरैः खण्डखाद्यकरम्बकैः ॥१७

घृतपञ्चर्वाहुविद्यैः सुपक्वफलकल्पितैः

दृष्टिप्राणहरैर्हृद्यनवैद्यैः प्रीणयेदुभास् ॥१८

कटुखण्डं जीरकं च कुड्कुमं लवणाद्रकम् । इक्षुदण्डानैक्षवं च हरिद्रादान्पुरो न्यसेत् ॥१९

नारिकेलानामलकान्मातुजुञ्जान्सदाडिमात् । कूम्भाण्डकर्तीवृन्तनारङ्गन्तसादिकान् ॥२०

कालोद्वानि चान्यःनि फलानि विनिवेदयेत् । गृहाद्युलूखलशिलाशूर्पन्निरणतिभिः सह ॥२१

नेत्राञ्जनशलाकाश्च नदरे चनकानि च । दर्पणं वंशपात्राणि भवान्यै विनिवेदयेत् ॥२२

शङ्खपूर्वनिनादेन गीतमङ्गलनिस्वनैः । भक्त्या सम्पूजयेद्वेदीं स्वशक्त्यः शिववल्लभास् ॥२३

ततोऽस्तसमये भानो कुमार्यैः करकैर्नवैः । स्नानं कुर्युर्मुदा युक्ताः सौभाग्यारोग्यवृद्धये ॥२४

यामेयामे गते स्नानं देवीपूजनमेद च । तैरेव नामभिर्होमस्तिलाज्येन प्रशस्यते ॥२५

पद्मासनस्थिता साध्वी तेनैवाद्रेण वाससा । गौरीमुखेक्षणपरा तां रात्रिमतिवाहयेत् ॥२६

काश्चिद्वाद्यन्ति संहष्टाः काश्चिन्नृत्यन्ति हर्षिताः । कथयन्ति कथाः काश्चिद्वेव्यास्तत्र महोत्सवे ॥२७

गीततालानुसम्बद्धमनुद्धतमनाकुलम् । नृत्यन्ति स्म पुरे देव्याः काश्चिदुल्लसितभ्रुवः ॥२८

पूजन करे । अनन्तर उत्तम धूप द्वारा उनका अधिवासन भी । पूजन के समय पार्वती, ललिता, गौरी गान्धारी, शांकरी, शिवा, उमा और सती के इसी नामाष्टक का सप्रेम उच्चारण करना बताया गया है । १९-१६। लङ्कैः खण्डं के पदार्थ, सिह केसर, सोमाल, काकेसर, खण्ड खाद्य करम्बक और पके फल समेत घृत पक्व अनेक प्रकार के नैवेद्य, जो इतने प्रिय हों कि उसके देखने से ही अपनी सुधि-बुधि भूल जाये, भी उमा देवी को सप्रेम समर्पित करके कटु खंड, जीरा, कुकुम, एवं लवण से आर्द्ध किया हुआ तथा ईच्छ दंड, गुड और हरिद्रा से आर्द्ध किया हुआ पदार्थ तथा नारियल, आँवला, बिजौरा नीबू, अनार, कूम्भाण्ड, ककड़ी वच, नारङ्गी, कटहल एवं सामयिक अन्य फलों को भी उन्हें सादर अर्पित करें । गृह के ओखली मूसल, तिल, नेत्र में अंजन लगाने की शलाका (सलाई) और नख रंजित करने का पदार्थ, दर्पण, वांस के पात्र (पुष्प संचयार्थ) सूर्य के प्रणाम पूर्वक उनकी सेवा में अर्पित करना चाहिए । भक्तिपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार शिववल्लभा भगवती पार्वती जी की पूजा के समय शंख, तुरुही, की ध्वनि समेत गीत के तथा, अन्य मांगलिक ध्वनि होना चाहिए । अनन्तर सूर्य के अस्त हो जाने पर कुमारियों को नवे करवें के जलों से सौभाग्य एवं आरोग्य के वृद्धर्थ स्नान पूर्वक प्रत्येक प्रहर में देवी की पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए और पूजनोपरांत तिल धी के हवन उन्हीं नामों के उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करे । उस साध्वी स्त्री को उसी आर्द्ध (भीगे) वस्त्र को पहने पद्मासन से बैठकर गौरी जी के मुखारविन्द को देखते वह रात्रि व्यतीत करना परमोत्तम बताया गया है । १७-२६। उस रात्रि देवी जी के उस महोत्सव के उपलक्ष में किसी स्त्री को प्रसन्नता पूर्ण होकर वाद्य ध्वनि, किसी को हर्षात्मिरेक के कारण नृत्य, और किसी को उनकी पवित्र कथाओं के उद्गार प्रकट करने चाहिए । गीत के ताल-स्वर शान्त एवं स्थिर चित्त से आरम्भ होना चाहिए । कुछ स्त्रियों को देवी के समक्ष हाव-भाव के विलास पूर्वक नृत्य करना चाहिए क्योंकि नृत्य करने

नृत्येन हृष्यति हरो गौरी गीतेन तुष्यति । सद्भावेनाथ वा सर्वे गच्छन्ति परमां मूदम् ॥२९
 सुवासिनीयस्ताम्बूलं कुंकुमं कुरुमानि च । प्रदेयं जागरदत्या चान्येषामपि किञ्चन ॥३०
 नटैर्विटैर्भटैश्चैव तथा प्रेक्षणकोत्सवैः । सखिभिः सहिता राङ्कि गायन्तृत्यन्हितां नयेत् ॥३१
 एवं प्रभातसमये स्नात्वा सम्पूज्य पार्वतीम् । ततो वै सा समारोहेद्वस्त्रालङ्घकृतोरणम् ॥३२
 तोलयेत्सा तथासीनं गुडेन लवणेन च । कुद्कुमेनाथ वा शक्त्या कर्पूरागारुचन्दनैः ॥३३
 पर्वतानामपिच्छेदैः केचिदिच्छन्ति सूरयः । कुण्डमण्डपसम्भारैर्मैत्रस्तत्रैव शोभयेत् ॥३४
 लहणेन सहात्सा हि तोल्यते च गुडेन वा । क्यापि भक्तिपरया सौभाग्यमतुलीकृतम् ॥३५
 एवं देवीं प्रणम्यार्थं क्षमाप्य गृहमाविशेत् । आमंत्र्य शास्त्रकुशलानाचारविधिपारगान् ॥३६
 अन्नं च मधुरप्रायं भोजगित्वा सुवासिनीः । सवयं भूंजीत सहसा ज्ञातीजनबुद्धैः स्वकैः ॥३७
 यच्च देव्याः पुरो दत्तं नैवेदादि तदिच्छया । गृहं प्रतिनयेत्सर्वं विभज्याभ्रान्तिमानसा ॥३८
 ततो दद्याद्गृहस्थेभ्यः कृतकृत्या भवेत्तदा । विधिर्भाद्रपदेऽप्येष सुसौन्दर्यप्रदायकः ॥३९
 सप्तधान्यस्वरूपां च शूर्पे सम्पूजयेदुमाम् । गोमूत्रप्राशानं हृत्र तेन गोमूत्रसंज्ञिता ॥४०
 माघमासतृतीयायां विशेषः शूयतामिति ! पूर्वोक्तं सकलं कृत्वा प्रभाते यवसंस्तरम् ॥
 तोलायित्वा कुन्दपुष्टैः पूजयेत्तसुतामिति ॥४१
 एतेन कारणेनोक्ता चतुर्थी कुन्दसंज्ञया । तृतीयाल्पं भयैतते कथितं सर्वकारणम् ॥

से शिव और गीत द्वारा गौरी अत्यन्त प्रसन्न होती है। उसी समय अत्यन्त सद्भावना समेत जागरण कराने वाले को उचित होता है कि वह ताम्बूल, कुंकुम, और उत्तम पुष्प से सुवासिनी (सौभाग्यवती) स्त्रियों तथा अन्य कुमारियों आदि को सुसम्मानित करे। नट, विट, भट, तथा अन्य उस महोत्सव के दर्शनगण एवं सखियों के साथ नृत्य-गीत करते हुए वह रात्रि व्यतीत करनी चाहिए। पश्चात् प्रातः काल होने पर स्नान नित्य नियमोपरांत पार्वती जी की पूजा करके वस्त्र-विभूषित एवं तोरण सम्पन्न उस आसन पर बैठकर गुड लवण, कुंकुम, अथवा शक्ति हो तो, कपूर, अग्रह चन्दन के साथ तौल करे। कुछ विद्वानों ने पर्वतों के टुकड़ों से भी तौलने को बताया है। सुसज्जित कुण्ड और मण्डप को उसके संभार एवं मंत्रोच्चारण द्वारा सुशोभित करते हुए लवण अथवा गुड द्वारा अपने को तौलना चाहिए। भक्त शिरोमणि कुछ स्त्रियाँ उपरोक्त सभी वस्तुओं अथवा सौभाग्याष्टक से अपने को तौलती हैं। इस भाँति आर्या देवी को प्रणाम पूर्वक क्षमा प्रार्थना करने के उपरांत अपने घर पहुँचकर शास्त्र कुशल एवं उत्तम सदाचारी और सौभाग्यवती स्त्रियों को अन्न तथा मधुर पदार्थों द्वारा पूर्ण तृप्त करके वान्धवगण और परिजन समेत स्वयं भी भोजन करे। देवी जी के निमित्त अपित उनके सामने की मधुरादि वस्तुओं को घर ले जाकर विभाजन करके शुद्ध चित्त से सभी गृहस्थों के यहाँ भिजवा देने से वह स्त्री कृतकृत्य होती है। भाद्रपद मास के ब्रतानुष्ठान में यह सौन्दर्य प्रदायक विधान बताया गया है, जिसमें शूर्प (सूप) में उमा की सप्तधान्य रचित प्रतिमा को स्थापित कर पूजन करने के लिए कहा गया है और इसमें गोमूत्र का प्राशान किया जाता है अतः इस तृतीया की गोमूत्र संज्ञा हुई है। २७-४०। अब माघ मास की विशेषता को मैं बता रहा हूँ। पूर्वोक्त समस्त कर्म समाप्त कर प्रातः काल जवा के संस्तरण पूर्वक तौलकर कुन्द-पुष्टों द्वारा गौरी की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि इसीलिए चतुर्थी की कुन्द संज्ञा हुई है। इस प्रकार मुनि कन्याओं के लिए

जयया मुनिकन्यानां यत्पुरा समुदाहृतम्

॥४२

श्रीकृष्ण उवाच

आसीद्विदर्भनगरे वेश्या सबंडसुन्दरी । तथा ब्राह्मणवाक्येन सर्वमेतत्कृतं पुरा ॥४३
भुक्त्वा भोगान्महीपृष्ठे दत्त्वा दानं पथेष्यत् ॥४४

कालेन समनुप्राप्ता मरणं मनुजेश्वर ! अचिन्त्या राजदुहिता सा ब्रह्मवातिशेभना ॥
अवन्तिसुन्दरी नाम देवानामपि मुन्दरी ॥४५

यदि वक्त्रतहमाणां सहलं स्यात्कथञ्चन ! तथापि निर्वर्णयितुमशक्या सा युलोचना ॥४६
चैत्रतृतीयामाहात्म्यात्सा ब्रह्मव भ्रम्भवती । मातापित्रोरतिप्रेष्ठा शिष्टान्यजनवल्लभा ॥४७

लब्धाद्विदत्तम्भवा यद्यक्ष्येनाक्लिष्टकर्मणा । ततः सा बुधुजे भोगान्मर्त्रा सार्द्धं मुदा सती ॥४८
यददाद्ब्राह्मणेभ्यः सा भूषणं कटकादिकम् । तत्रभावेष सा लेखे सौभाग्यं किं ततः परम् ॥४९

पुत्रांश्च जनयामास दिङ्गुशक्रपराक्रमान् । सर्वास्त्रशस्त्रकुशलान्वेदोक्तविधिपारगान् ॥५०
एवं रूपं महत्प्राप्य सौभाग्यं पुत्रसम्पदम् । भर्त्रा सह वै मरणसन्ते प्राप्य पतिव्रता ॥५१

शक्रादेलोकपालानां भवनेषु यथाक्रमम् । आक्रम्य ब्रह्मलोकं च जगाम शिवसात्भताम् ॥५२
एदं यन्यापि कुरुते नारी ग्रतमिदं शुभम् । सा रूपसौभाग्यसुतान्प्राप्य स्वर्गं महीयते ॥५३

जया द्वारा बताये गये तृतीया विषयक सभी कारणों को मैंने तुम्हें बता दिया । ४१-४२

श्रीकृष्ण बोले— विदर्भ नगर में एक सर्वाङ्ग सुन्दरी वेश्या रहती थी, जिसने किसी विद्वान् ब्राह्मण की आज्ञा शिरोधार्य कर इस ब्रत को सविधान सुसम्पन्न किया था । मनुजेश्वर ! इस पृथ्वीतल में उसने यथेच्छ दान करके समस्त भोगों का उपभोग किया और समयानुसार देहावसान होने पर उसने परम सुन्दरी राजपुत्री के रूप में जन्म ग्रहण किया, जो देवों से भी अधिक सुन्दरी थी । उसका नाम अवन्ति सुन्दरी था । उसके रूप लावण्य का वर्णन करना सभी के लिए अशक्य था, यहाँ तक कि सहस्र मुख वाले शेष के यदि सहस्र मुख और हो जायें, तो भी उस मुलोचना के सौन्दर्य वर्णन करने में वे अमर्य ही रहेंगे । चैत्र तृतीया के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने से तो उसके प्रभाव द्वारा वह अत्यन्त प्रभा पूर्ण थी । अपने पिता माता के लिए जिस प्रकार वह प्रेम की एक सजीव मूर्ति थी, उसी प्रकार शिष्ट एवं अन्य लोगों के लिए भी उतनी ही मनमोहक थी । जिस भाँति भगवान् कृष्ण को प्राप्त कर समुद्र पुत्री लक्ष्मी ने समस्त भोगों के उपभोग को प्राप्त किया है, उसी भाँति उसने भी आजीवन अपने भर्ता के साथ निखिल भोगों का उपभोग किया है । ४३-४८ । उसने ब्राह्मणों को दान रूप में अपने कटक (कंकड़) आदि आभूषण प्रदान किये थे, जिसके प्रभाव से परमोत्तम सौभाग्य और विष्णु इन्द्र के समान पराक्रमी पुत्रों को जन्म दिया जो सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र में परम कुशल एवं वेदोक्त विधानों के निष्णात विद्वान् थे । इस प्रकार पराकाष्ठा का रूप लावण्य, परम सौभाग्य, अनेक पुत्र, और समस्त निधि के उपभोग करने के उपरांत अपने भर्ता के साथ सामयिक देहावसान प्राप्त कर उस पतिव्रता ने क्रमशः इन्द्र आदि लोकपालों के भवनों में देव दुर्लभ प्रतिष्ठा सुख का अनुभव करती हुए ब्रह्मलोक की प्राप्ति की और पश्चात् शिव का सायुज्य मोक्ष । इसी भाँति जो अन्य स्त्री इस शुभ्रत्र का अनुष्ठान सुसम्पन्न करती है, उसे भी रूप सौन्दर्य, सौभाग्य, और पुत्रों

न दुर्भगा कुते तस्याः काच्छिद्वति कन्यका । न दुर्विनीतश्च सुतो न भृत्योऽप्रियकृद्वेत् ॥५४
न दारिद्र्यं गृहे तस्मिन्न व्याधिरूपजायते । यत्र ज्ञा रमते साध्वी घ्नातचामीकरप्रभा ॥५५
अन्याश्च याश्वरिष्वन्ति ब्राह्मणानुमते व्रतम् । सम्पूज्य वाचकं भजत्या भूषणाच्छादनादिभिः ॥५६
ताः सर्वसुखसम्पन्ना अविपन्नमनोरथाः । भविष्यन्ति कुरुशेषं तस्यै देवि नमोस्तु ते ॥५७

माघे महाद्युषमणिमण्डितपादपीठां चैत्रे विचित्रकुसुमोत्करच्छचिताङ्गीम् ।

शूर्पप्ररूढनवसरयमयी नभस्ये सप्तपूज्य शम्भुदयितां प्रभवन्ति नार्यः ॥५८

इति श्रीभविष्ये भहापुराणे उत्तरपर्वद्विंश्चित्तरसंवादे

चैत्रभाद्रपदमाघतृतीयाव्रतवर्णनं नामाङ्गविंशतिमोऽध्यायः ।२८

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

अनन्तरतृतीयाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

शुक्लपक्षतृतीयास्तु बहवः समुदाहृताः । आनन्तर्यन्तं ब्रूहि तृतीयोभयसंयुतम् ॥१
हिताय सर्वभूतानां ललनानां विशेषतः । नाम प्रशननैवेद्यर्मासिसासि पृथक्पृथक् ॥२

की प्राप्ति पूर्वक स्वर्ग की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । उसके कुल में कोई दुर्भगा कन्या उत्पन्न नहीं होती है, न उद्धण्डपुत्र, और न अप्रिय भाषी कोई सेवक होता है । उसके गृह में दरिद्रता का निवास कभी नहीं होता और न कभी वह रुग्ण होती है । जिस महल में वह साध्वी निवास करती है, वह अग्नि में संतप्त किये गये सुवर्णों की प्रखर प्रभा से विभूषित रहता है । गुरुशेष ! ब्राह्मणों की अनुमति शिरोधार्य कर जो अन्य स्त्रियाँ भी इस व्रत को सुसम्पन्न करती हैं और भक्ति पूर्वक वाचक को भूषण वस्त्रादि समर्पित करती है, वे समस्त सुखों की प्राप्ति पूर्वक सदैव सफल मनोरथ होती रहती है, इसलिए उस देवी को बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार स्त्रियाँ माघ मास में बहुमूल्य मणियों से अलंकृत सिहासन पर सुशोभित चैत्र मास में विचित्र कुसुमों के इत्र आदि से चर्चित और भाद्रपद में सूर्य द्वारा परिवर्द्धित नवे सस्यों के स्वरूप धारण करने वाली शिव दयिता पार्वती की पूजा करके उपरोक्त समस्त फल समेत अत्यन्त प्रभाव शालिनी होती है । ४९-५८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्बाद में

चैत्र भाद्रपद और माघ तृतीया व्रत वर्णन नामक अट्टाईसवाँ अध्याय समाप्त । २८।

अध्याय २९

अनन्तरतृतीया व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—आप ने शुक्ल पक्ष की तृतीया के अनेक व्रत सुनाये हैं, किन्तु अब मुझे आनन्तर्य व्रत बताने की कृपा कीजिये, जो द्वितीया तृतीया उभय संयुत में सुसम्पन्न किया जाता है और समस्त प्राणियों एवं विशेष कर ललनाओं के लिए अत्यन्त हितैषी है तथा प्रत्येक मास में उसके नाम, प्राशन और नैवेद्य भी । १-२।

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैर्थोक्तं सुरसत्तमैः । अपूर्वं सर्वमन्नाणामानंतर्यन्नतंशृणु ॥३
 आदौ मार्गशिरे मासि व्रतमेतत्समाचरेत् । नक्तं कुर्याद्द्वितीयायां तृतीयायामुपोषिता ॥४
 उमां देवीं समभ्यर्च्य पुष्पगन्धादिभिः क्रमात् । शर्करापुत्रिकां शक्त्या प्रणिपत्य निवेदयेत् ॥५
 सम्प्राश्य दधि रात्रौ च स्वप्याद्विग्रहत्तमत्सरा । प्रभाते विधिवद्वूक्त्या मिथुनं भोजयेत्सुधीः ॥६
 अश्वमेधमताप्नोति समग्रं नात्र संशदः । तथा कृष्णतृतीयायां सोपवासा जितेन्द्रिया ॥७
 जपेत्कालात्यायनीं नाम नालिकेर निवेदयेत् । स्वप्यात्प्राश्य पयों रात्रौ कामक्रोधविर्जिता ॥८
 दाम्पत्यं सुभगं भोज्यं गोमेधफलमाप्नुयात् ॥९
 पौषस्यादितृतीयायां सोपवासा जितेन्द्रिया । गौरीं नाम तु सन्पूज्य लड्डुकारन्विनिवेदयेत् ॥१०
 स्वप्यात्प्राश्य धृतं रात्रौ त्यक्त्वा कामं तदग्रतः । प्रभाते मिथुनं भोज्यं नरमेधफलं भवेत् ॥१०
 एवं कृष्णतृतीयायां पार्वतीमिति पूजयेत् । निवेदशान्नं शङ्कुल्यो गोमर्गं प्राशयेन्निशि ॥११
 दाम्पत्यं विविधं भोज्यमस्वमेधफलं लभेत् ॥११
 माघस्य शुक्लपक्षे तु तृतीयायामुपोषितः । सुरनागिकां च सन्पूज्य खण्डबिल्वं निवेदयेत् ॥१२
 ततः कुशोदकं प्राश्य स्वप्याद्भूमो जितेन्द्रिया । प्रभाते मधुरान्ते तं मिथुनं भोज्य भक्तिः ॥१२

श्रीकृष्ण जी बोले—ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर आदि थ्रेष्ठ देवों ने जिस प्रकार इसका वर्णन किया है और जो सभी मंत्रों से अपूर्व है, मैं उसी आनन्दर्य व्रत का उसी प्रकार वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! मार्गशीर्ष मास के प्रारम्भ में इस व्रत का अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए। द्वितीया के दिन नक्त व्रत रहकर तृतीया के दिन उपवास पूर्वक पुष्प गंधादि द्वारा उमा देवी की समभ्यर्चना करके शक्तरा पुत्रिका (प्रतिभा) को नमरकार पूर्वक उस व्रत के निवेदन कर रात्रि में दही प्राशन के उपरांत शान्ति पूर्वक पवित्र भावना से शयन करे। प्रातः काल होने पर सविधान द्विज दम्पत्ति को भोजन कराये तो उसे अश्वमेध यज्ञ के सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं। उसी भाँति कृष्ण तृतीया के दिन संयम पूर्वक उपवास रहकर कात्यायनी देवी के पूजन जप कर नारियल अर्पित करते हुए रात्रि में क्षीर के प्राशन पूर्वक काम-क्रोध रहित होकर शयन करे। पश्चात् प्रातः काल परम सौभाग्य एवं सौभाग्यवान् दम्पती को सप्रेम रुचिकर भोजन कराने से गोमेध के फल की प्राप्ति होती है। पौष मास के आरम्भ में तृतीया के दिन इन्द्रिय संयम पूर्वक उपवास रहकर गौरी नामक देवी की पूजा करके लड्डु निवेदन करे अनन्तर रात्रि में धृत के प्राशन पूर्वक काम के त्याग समेत उनके आगे शयन करे और पश्चात् प्रातः काल होने पर सौभाग्यवान पुरुष स्त्री के जोड़े को भोजन से संतृप्त करने पर नरमेध के फल की प्राप्ति होती है। ३-११। इसी भाँति पौष कृष्ण तृतीया के दिन पार्वती जी की पूजा करके अन्न की शङ्कुली (पूरी) उन्हें समर्पित करे गोमय प्राशन द्वारा रात्रि व्यतीत करे। पुनः प्रातः काल होने पर उत्तम दम्पत्ति के सुरचि भोजन कराने से अश्वमेध फल की प्राप्ति होती है। माघ मास की शुक्ल तृतीया के दिन उपवास रहकर सुरनायिका नामक देवी की पूजा करके बिल्व का मधुर खण्ड निवेदित करते हुए कुशोदक के प्राशन पूर्वक संयम पूर्वक भूमि शयन कर रात्रि व्यतीत करे। प्रभातः समय भक्तिपूर्वक सुभग ब्राह्मण-त्रादृशी को मधुर अन्नों

क्षमाप्यान्ते नमस्टृत्य इति स्वर्णफलं लभेत्

॥१३

पुनरेतत्तो मादे कृष्णपक्षे शुचिव्रता । आर्या नाम्ना प्रपूज्याथ खाद्यकानि निवेदयेत् ॥१४
मधु प्राश्य स्वपेद्रात्रौ कामकोथविवर्जिता । मिथुनं भोजयित्वा तु वाजपेयफलं भवेत् ॥१५
एवं वै फालगुने मासि सोपवासा शुचिव्रता । भद्रों नाम प्रपूज्याथ कासारं विनिवेदयेत् ॥१६
सुप्राश्य शर्करां चाथ स्वप्यादात्रौ विमत्सरा । प्रभाते मिथुनं भोज्यं सौत्रामणिफलं लभेत् ॥१७
पुनः कृष्णतृतीयायां फालगुनस्यैव भारतः विशालाक्षीं समभ्यर्च्य पूरिकः विनिवेदयेत् ॥१८
सोदकान्त्संडुलान्दत्त्वा स्वप्याद्भूमौ भनस्विनी । भोजयेन्मिथुनं प्रातरप्रिष्ठोमफलं लभेत् ॥१९
चैत्रस्यादितृतीयायां शुचिर्भूता जितेन्द्रिया । श्रियं देवो यजेद्द्रक्त्या वटकान्विनिवेदयेत् ॥२०
बिल्वपत्रं ततः प्राश्य स्वप्याद्वचानपरायणा । प्रातरुत्थाय मद्दूकस्या मिथुनं पूजयेत्सुधीः ॥

प्रणित्य क्षमाप्यैवं राजसूयफलं लभेत्

॥२१

पुनः कृष्णतृतीयायां चैत्रे सम्युपोषिता । कालीं नाम समभ्यर्च्य पिष्ठं प्राश्य स्वरेत्तिशि ॥२२
पूरकानि निवेद्याथ उर्याद्रित्रौ प्रजागरम् । मिथुनानि च सम्भोज्य अतिरात्रफलं भवेत् ॥२३
एवं वैशालीमासे गु सोपवासा जितेन्द्रिया । पूजयेच्चण्डिकां देवीं मधुकानि निवेदयेत् ॥२४
श्रीखण्ड चन्दनं लिप्त्वा स्वप्यादेव्यग्रतो भुवि । भोजयित्वा च दाम्पत्यं चान्द्रायणफलं लभेत् ॥२५
तथा कृष्णतृतीयायां सोपवासा विमत्सरा । पूजयेत्कालर्त्तिं तु गन्धपुष्टैः सदीपकैः ॥२६

द्वारा संतुष्ट कर क्षमा प्रार्थना के उपरांत नमस्कार करने से स्वर्ण फल की प्राप्ति होती है । पुनः मादकृष्ण तृतीया के दिन उसी भाँति पवित्रता पूर्ण व्रत-नियमों के ग्रहणपूर्वक आर्या नामक देवी की अर्चना के उपरांत उन्हें अत्यन्त शुचिकर भक्ष्य पदार्थ अपित करके मधुप्राशन कर रात्रि में काम-क्रोध के त्यागपूर्वक शयन करे । अनन्तर प्रातः काल स्त्री-पुरुष ब्राह्मण को भोजनों द्वारा प्रसन्न करने से वाजपेय फल की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार फालगुन मास में पवित्रता पूर्ण उपवास रहकर भद्री नामक देवी का भी अर्चना करके उन्हें कासार अपित कर शक्कर के प्राशनपूर्वक रात्रि में शुद्ध भाव से शयन करे । पुनः प्रातः काल ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजन कराने से सौत्रामणि यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है । भारत ! फालगुन कृष्ण तृतीया के दिन विशालाक्षी नामक देवी की पूजा करके पूरी समर्पित करे । और उदक समेत तण्डुल के दान एवं प्राशन करके उस मनस्विनी स्त्री को शयन कर रात्रि व्यतीत करनी चाहिए । प्रातः काल होने पर ब्राह्मण के जोड़े को भोजन कराने से अग्निष्ठोम के फल की प्राप्ति होती है । चैत्र मास की आदितृतीया के दिन पवित्रता पूर्ण एवं संयम पूर्वक श्रीनामक देवी की भक्ति समेत पूजा करके वटका (वरिआ) समर्पित करे । रात्रि में बिल्वपत्र के प्राशनपूर्वक उनके ध्यान परायण होकर शयन करके रात्रि व्यतीत करे । प्रातः काल होने पर मेरी भक्ति समेत ब्राह्मण मिथुन की अर्चना करते हुए भोजनोपरांत नमस्कार पूर्वक क्षमाप्रार्थना करने से राजसूय फल की प्राप्ति होती है । १२-२१। उसी प्रकार चैत्र कृष्ण तृतीया के दिन भली भाँति उपवास रहकर काली नामक देवी की अर्चना करके पीठी के प्राशन पूर्वक जागरण कर रात्रि व्यतीत करे । उस रात्रि पूआ उन्हें अपित करना चाहिए । प्रातः काल होने पर ब्राह्मण ब्राह्मणी को भोजन कराने से अतिरात्र यज्ञ के फल प्राप्ति होते हैं । वैशाख मास में उपवास रह कर जितेन्द्रिय होकर चण्डिका देवी की पूजा कर उन्हें मधुपूर्ण मधुर पदार्थ अपित करके श्रीखण्ड चन्दन से अपने शरीर को

सुराज्यं यावकं दत्त्वा तिलान्मुञ्जन्स्वपेशिशि । प्रभाते मिथुनं भोज्यमतिकृच्छफलं लभेत् ॥२७
ज्येष्ठे सिततृतीयायां हृष्पवासद्वतां दरा । शुभां देवीं समस्यर्च आम्राणि विनिवेदयेत् ॥
सम्प्राशयमलकं रात्रौ गौरीं ध्यात्वा सुखं स्वपेत् ॥२८
ततःप्रातः समुत्थाय दम्पती रूपशास्त्रिनौ । भोज्यित्वा विधानेन तीर्थयात्राफलं लभेत् ॥२९
पुनः कृष्णतृतीयायां सोपवासा सुवासिनी । रक्तन्दमातेति सम्पूज्य इडायै विनिवेदयेत् ॥३०
प्राशयेत्पञ्चगव्यश्च स्वप्यादेव्यप्रतस्तः । प्रभाते मिथुनं भोज्यं कन्यादानफलं लभेत् ॥३१
आषाढमासे सम्प्राप्ते पूजयेत्च यशोधनम् । करंजकं च नैवेदं गोशृष्टज्ञाम्भः सिद्धेशिशि ॥
प्रभाते मिथुनं भोज्यं कन्यादानफलं लभेत् ॥३२
तथा कृष्णतृतीयायां कूप्याण्डीं शक्तिः यजेत् ; सकूनगुडाज्ञसमुक्तान्पुरतो विनिवेदयेत् ॥३३
कुशोदकं च सम्प्राशय स्वप्याद्रात्रौ जितेन्द्रिया । प्रभाते मिथुनं भोज्यं गोसहस्रफलं लभेत् ॥३४
श्रावणे सोपवासा च चण्डां घटाणं प्रपूजयेत् । कुलमाषास्तत्र नैवेदयं पिबेत्पुष्पोदकं पुनः ॥३५
प्रभाते शक्तिः दद्याद्भोजनं मिथनस्य तु । प्राज्ञोत्यभ्यदानस्य फलं नैवात्रं तंशयः ॥३६
तद्वक्षणतृतीयायां रुद्राणीं नामभिर्यजेत्^१ । सिद्धपिण्डानि दिव्यानि नैवेदं दापयेत्तथा ॥३७

विभूषित करते हुए उनके समुख भूमि शयन कर रात्रि व्यतीत करे । प्रातः काल होने पर ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजन-तुप्त करने से चान्द्रायण के फल की प्राप्ति होती है । २२-२५। वैशाख की कृष्ण तृतीया के दिन उपवास रहकर शुद्ध हृदय से गंध, पुष्प, धूप दीप द्वारा कालरात्रि की पूजा करके सुरा, धी, अर्पित कर रात्रि में तिल के प्राशन पूर्वक शयन करना चाहिए । पुनः प्रातः काल के समय ब्राह्मण जोड़े को भोजन कराने से अति कृच्छ के फल की प्राप्ति होती है । २६-२७। ज्येष्ठ की शुक्ल तृतीया के दिन उपवास रहकर शुभा नामक देवी की अर्चना करके आमों को अर्पित करे अनन्तर रात्रि में आँवले के प्राशन पूर्वक गौरी के ध्यान करते हुए सुख, शयन द्वा रा रात्रि व्यतीत करे । पश्चात् प्रातः काल होने पर रूप लावण्य युक्त ब्राह्मण दम्पत्ति के पूजन और भोजन सविधान कराने से तीर्थयात्रा के फलों की प्राप्ति होती है । पुनः कृष्ण तृतीया के दिन उपवास रहकर स्कन्द माता इदा की पूजा करके नैवेद्य अर्पित करें । और पञ्चगव्य के प्राशन पूर्वक देवी के समक्ष शयन करके पुनः प्रातः काल होने पर ब्राह्मण मिथुन को भोजन कराने से कन्यादान के फल प्राप्त होते हैं । आषाढ मास की तृतीया के दिन यशोधन नामक देवी की अर्चना करके करंजक फल समेत नैवेद्य अर्पित कर शृंगोदक के प्राशन पूर्वक रात्रि व्यतीत करे । अनन्तर प्रातः काल होने पर ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजन कराने से कन्यादान का फल प्राप्त होता है । २८-३१। उसी भाँति कृष्ण तृतीया के दिन शक्त्यनुसार कूप्याण्डी देवी की आराधना करके सतुआ, गुड़ और धी उन्हें अर्पित करे और कुशोदक के प्राशन करके संयम पूर्वक शयन कर रात्रि व्यतीत करे । उपरात प्रातः काल होने पर सुभगा ब्राह्मण जोड़े को भोजन कराने से गो सहस्र दान के फल प्राप्त होते हैं । श्रावण मास की तृतीया के दिन घटा समेत चंडा देवी की पूजा करके उरद के भोजन समेत नैवेद्य अर्पित कर रात्रि में पुष्पोदक के प्राशन पूर्वक शयन करे । अनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजनादि से प्रसन्न करने से अभय दान के फल प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं । उसी भाँति कृष्ण तृतीया के दिन रुद्राणी देवी की पूजा करके सिद्ध पिंड के नैवेद्य अर्पित कर

१. सम्प्रपूजयेत् ।

पिण्याकं प्राशयित्वा तु स्वप्याद्रात्रौ विमत्सरा । सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यमिष्टा पूर्वफलं लभेत् ॥३८
 भाद्रे^१ शुक्लतृतीयायां पूजयेत् हिमाद्रिजाम् । गोधूमान्नं निवेद्यैव प्राशयेच्चन्दनं सितम् ॥३९
 गंधोदकं ततः प्राशय सखीभिः सहिता स्वपेत् । प्रभाते मिथुनं भोज्यं मार्गपालीशतं लभेत् ॥४०
 तद्वृष्णितृतीयादां दुर्गा देवीं समार्चयेत् । दद्यात्पिष्टफलान्दिव्यानुडाज्यपरिपूरितान् ॥४१
 प्राशयित्वा तु गोमूत्रं स्वप्याच्छान्तेन देतसा । प्रातस्तु मिथुनं भोज्यं सदासत्रफलं लभेत् ॥४२
 भासि चाश्वयुजे भक्त्या देवीं नारायणीं यजेत् । सोपवासः खण्डपूषाक्षैवेद्यं परिकल्पयेत् ॥४३
 प्राशयेच्चन्दनं रत्नं स्वप्याच्च गतमत्सरा । प्रभाते भोज्यं दाम्पत्यमग्निहोत्रफलं लभेत् ॥४४
 तथा कृष्णतृतीयायां स्वस्ति नाम प्रपूजयेत् । शाल्योदनं गुडोपेतं नैवेद्यं निर्वपेत्ततः ॥४५
 कुसुंभवीजान्सम्ब्राशय त्यक्त्वा कामं स्वपेन्निशि । सम्भोज्य मिथुनं प्रातर्गच्छिकफलं लभेत् ॥४६
 कार्तिकस्य तृतीयायां स्वाहानाम्नीं प्रपूजयेत् । क्षीरं खण्डघृतोपेतं नैवेद्यं दापयेच्च ताम् ॥४७
 स्वप्याद्रात्रौ जितक्रोधा प्राशयं कुंकुमकेशरान् । प्रभाते मिथुनं भोज्यमेकभक्तफलं लभेत् ॥४८
 तथा कृष्णतृतीयां स्वधानं न्नों प्रपूजयेत् । मुद्गौदनं निवेद्याथ घृतं प्राशय स्वपेन्निशि ॥४९
 प्रातः सम्भोज्य मिथुनं नक्तव्रतफलं लभेत् । एवं सम्वत्सरं कृत्वा मुक्तपापा शुचिर्भवेत् ॥५०

अनन्तर तिल की खली के प्राशन पूर्वक शुद्ध भावना से रात्रि व्यतीत करे । पुनः प्रातः काल द्विज दम्पत्ति को प्रसन्न करने से इष्टापूर्व फल की प्राप्ति होती है । ३३-३८। भाद्र शुक्लतृतीया के दिन हिमालय पुत्री पार्वती की अर्चना करके गोधूमान्न के भक्ष्य पदार्थ उन्हें अपित कर श्वेत चन्दन और गंधोदक के प्राशन पूर्वक सखियों समेत शयन करे । प्रातः काल होने पर ब्राह्मण के जोड़े को भोजन से तृप्त करने पर सौ मार्ग-पाली फल की प्राप्ति होती है । उसी प्रकार कृष्ण तृतीया के दिन उभा देवी की पूजा करके पीठी के दिव्य फल जो गुड धी से बनाये गये हों, अपित करके गोमूत्र प्राशन पूर्वक शान्त चित्त से शयन कर रात्रि व्यतीत करे । प्रातः काल होने पर मिथुन (स्त्री-पुरुष) ब्राह्मण को भोजन कराने से सत्र यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं । आश्विन मास की शुक्ल तृतीया के दिन भक्ति पूर्वक नारायणी देवी की उपवास रहकर पूजा करने के उपरांत खांड समेत पूआ अपित करे । अनन्तर रात्रि में शुद्ध मख से रत्न चन्दन के प्राशन पूर्वक शयन करके पुनः प्रातः काल के समय द्विज दम्पत्ति को भली भाँति तृप्त करने से अग्निहोत्र के फल प्राप्त होते हैं । कृष्ण तृतीया के दिन स्वाति नामक देवी की पूजा करके गुड मिश्रित साठी चावल के मधुर पदार्थ उन्हें अपित करे । अनन्तर कुसुंभ बीज के प्राशन कर रात्रि में काम के त्याग पूर्वक शयन करके पुनः प्रातः काल दम्पत्ति ब्राह्मण को भोजन कराने से गवाह्लिक फल की प्राप्ति होती है । ३९-४६। कार्तिक तृतीया के दिन स्वाहा नामक देव की पूजा करके क्षीर, खांड, और धी से बने भक्ष्य पदार्थ उन्हें अपित कर कुंकुम केशर के प्राशन पूर्वक क्रोध त्याग कर शयन करे । अनन्तर प्रातः काल होने पर ब्राह्मण दम्पत्ति के भोजन कराने से एक भक्त का फल प्राप्त होता है । उसी प्रकार कृष्ण तृतीया के दिन स्वधा नामक देवी की अमराधना करके मूँग के लड्डू अपित कर धी के प्राशन पूर्वक शयन कर रात्रि व्यतीत करे । अनन्तर प्रातः काल होने पर शुभ ब्राह्मण दम्पत्ति को तृप्त भोजन कराने से नक्तव्रत के फल प्राप्त होते हैं । इस प्रकार पूर्ण वर्ष तक

१. एवं भाद्रपदस्यादौ पूजयेत्कमलालयाम् ।

शुक्लपक्षे तृतीयायां सोपवासा निरामया । विज्ञाय च द्रुतं भवत्या उमां शास्त्रार्थबोधकैः ॥५१
 मण्डलं च ततो लिख्य नवनाभं वरप्रदम् । सौवर्ण कारयेद्वमुमया सहितं प्रभुम् ॥५२
 ताम्यां नेत्रेषु दातत्व्यं सौक्तिकं नीलमेव च । प्रवालमोऽथयोर्द्यात्कर्णयो रत्नकुण्डले ॥५३
 उपवीतं तु देवस्य देव्या हरं तथोरसि । रक्तवस्त्रधरां देवीं सितवस्त्रं महेश्वरम् ॥५४
 चतुःस्मेन वालस्य पुष्पैर्धूपैररथार्च्चयेत् । मण्डले पूजयित्वा च होमं कुर्यात्ततोऽगुरोः^१ ॥५५
 ततोपराजितां नाम देवीं तत्रैव पूजयेत् । शृत्नां सम्प्राशयित्वा च रात्रौ कुर्यात्प्रज्ञागरम् ॥५६
 गीतदायोत्सर्वैर्हृदैर्वर्णामङ्गलपाठकैः । रात्रिमेवं जपेद्वक्त्या यावदुद्गच्छते रविः ॥५७
 तूलीगण्डकसञ्ज्युक्ते पर्यङ्गेत्यन्तशोभिते । उद्दृत्य मण्डलादेवं पर्यङ्गोपरि दिन्यसेत् ॥५८
 वितानध्वजमालालिकिंगीदर्प्णणान्वितम् । पुष्पमण्डपिकाच्छङ्गं धूपगुग्गुलवासितम् ॥५९
 तस्याप्ने भोजयेद्वक्त्या स्वशक्त्या मिथुनान्वितम् । प्रीणयेद्वक्त्यभोजयैश्च पक्कान्नैर्मधुरैः शुभैः ॥६०
 ततो दत्त्वाऽक्षतान्हस्ते ताम्बूलं विनिवेदयेत् । प्रीयतां मे उमाकान्तः पार्वत्या सहितःशिवः ॥६१
 उच्छिष्टं शोधयित्वा तु तुनः प्रोक्ष्य समन्ततः । रक्तवर्णं सुशीलां च सुरूपां सुपर्यस्त्वनीम् ॥६२
 शृङ्गाभ्यां दत्तकनकां राजतखुरसंयुताम् । कांस्यदोहनकोपेतां रक्तवस्त्रावगुणिताम् ॥६३
 घटाभरणशोभादद्यां देवदेव्याग्रसंस्थिताम् । पादुकोपानहच्छत्रभोज्यभाजनसंयुताम् ॥

इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करने से वह पापों से मुक्त हो जाती है । शुक्ल पक्ष में तृतीया के दिन तन्द्रा रहित उपवास के नियम ग्रहण कर भक्ति श्रद्धासमेत उमा के स्मरण पूर्वक नव कोष्ठ के मण्डल की रचना कर उसके भीतर उमा और महेश्वर की सुवर्ण की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कर—दोनों देवों के नेत्र स्थान में मोती और नील, ओष्ठ में प्रवाल (मूँगा), एवं कान में रत्न के कुण्डल सुशोभित करके शिव जी का वक्षःस्थल यज्ञोपवीत द्वारा और उमादेवी का उरस्थल हार से विभूषित करते हुए देवी को रक्तवस्त्र और महेश्वर को श्वेतवस्त्र से सुसज्जित करके चारों ओर से उस मण्डल की पूजा, धूप द्वारा अर्चना करके मध्य में उन देवों की पूजा के उपरांत हवन प्रारम्भ करना चाहिए । अनन्तर अपराजिता देवी की उसी स्थान पर अर्चना करके प्रशस्त मृत्तिका के प्राशन पूर्वक गीत, वाद्य, वीणा आदि वाद्य मङ्गल पाठ अथवा अन्य उत्सव द्वारा जागरण कर रात्रि व्यतीत करे । पुनः सूर्योदय होने पर तोशक तकिया एवं ऊँचे गढ़े आदि से सुसज्जित ऊस शय्या पर देव को मण्डल से उठाकर स्थापित करे, जो वितान, ध्वजा, मालाओं के समूह, किंकड़ी दर्पण से सुशोभित, पुष्प मण्डप से आच्छन्न, धूप एवं गुग्गुल से सुवासित हो । तथा उन्हीं के समक्ष ब्राह्मण दम्पति को यथाशक्ति भोजनादि मधुर पक्वान द्वारा भली भाँति तृप्त करके अक्षत समेत ताम्बूल हाथ में देकर क्षमा प्रार्थना करे कि—पार्वती समेत उमाकांत शिव मुङ्ग पर प्रसन्न हों । ४७-६० । तदुपरांत वहाँ के उच्छिष्ट (जूठे) स्थानों को चारों ओर से शुद्ध कर उमा समेत महादेव जी के समक्ष एक रक्तवर्ण की गौ को जो सुशील, सुरूप, एवं अधिक दूध देती हो, और सुवर्ण से उसकी सींग चाँदी से चारों खुर विभूषित करके रक्त वस्त्र से उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग आच्छन्न हों तथा गले में घंटा रूपी आभूषण से सुशोभित कर उसके समीक पकांसे की दोहनी रखी हो, स्थित कर चरण पादुका, उपानह, छत्र, पाक करने के समस्त

१. ततः ।

त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्या गुरोः सर्वं निवेदयेत् ॥६४

उमामहेश्वरं देवमवियोगं सुरार्चितम् । अव्यवच्छेदभूतं च सुप्रीतं तदिहास्तु मे ॥६५
प्रणम्य शिरसा भूमौ क्षमस्वेति गुरुं बदेत् । एवं समाप्यते देव्याः^१ आनन्तर्यव्रतोद्यमन् ॥

यः प्रकुर्यात्सुमान्त्री वा तस्य पुण्यफलं शृणु ॥६६

गन्धर्वयक्षलोकांश्च विद्याधरमहोरागान् । ऋषिसिद्धामरं ज्ञाहृं विष्णुलोकं सनातनम् ॥६७

भुक्त्वा भोगान्तरेषांश्च एकविंशत्कुलान्वितः । रत्नयाने समाळढो गुह्याप्सरतंवृतः ॥६८

देवविद्याधरैर्यक्षैर्वृतो याति शिवालयम् । तत्र भुक्त्वा महाभोगान्तः भूत्के शिववद्वृहूद् ॥६९

भुक्त्वा भोगान्त्यदा भूतः कदाचित्तपसः क्षयात् । पृथिव्यां दु समागम्य भवेत्सकलभूगिषः ॥७०

स्त्री वा समाचरेद्या तु सहादेवी तु जायते । आनन्तर्यव्यवच्छिन्नान्भोगान्देवी उमा यथा ॥

त्रैलोक्यपतिरुद्गेज सा भूत्के सहिता तथा ॥७१

मनुर्देव्या यथामह्या शच्या शक्रो दयासुखम् । नैरत्यर्य यथा सौख्यं सा भूत्के पतिना सह ॥७२

मुनेररुद्धन्ती यद्यद्विष्णोऽन्नीर्हृदि स्थिता । तया तयोर्महत्तौख्यं नैरन्तर्यं हि जायते ॥७३

सावित्री ब्रह्मणो यद्वद्गङ्गा तोयनिर्धेयथा । अव्यवच्छिन्नयोः प्रीतिस्तथा जन्मनिजन्मनि ॥७४

अथ जन्मन्यहोन्यस्मिन्नतमेतत्कृतं भवेत् । तेनैव पतिना तार्द्धं न 'वियोगमुपैति सा ॥

पात्र भी वहाँ रखकर तीन प्रदक्षिणा करने के उपरांत उन सभी वस्तुओं को गुरु के लिए अपित करे । ६१-६४। उस समय साज्जलि उनके सामने यह कहे कि जिस प्रकार देव पूजित उमा और महेश्वर का अवियोग और सुखद अव्यवहित सदैव रहा करता है, उसी भाँति मेरा भी अविच्छिन्न एवं सुखद साथ रहे—इतना कह कर पृथ्वी में शिर से प्रणामपूर्वक गुरु से 'क्षमस्त्व' कहे। इस प्रकार इस आनन्तर्य व्रत विधान को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को जिस फल की प्राप्ति होती है, वह रहा हूँ, सुनो! गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, महोराग, कृषि, सिद्ध, देव, ब्रह्मा, विष्णु के उस सनातन लोकों के अशेष उपभोग करने के उपरांत इक्कीस पीढ़ी समेत रत्न भूषित विमान पर बैठकर गुह्य, अप्सरागण, देव, विद्याधर, एवं पक्षों से सुसेवित होते हुए शिवलोक की प्राप्ति करता है, वहाँ पहुँच कर शिव जी की भाँति समस्त सुखों के उपभोग के उपरांत कदाचित् तप के धीण होने पर पुनः इस भूमण्डल में जन्म ग्रहण कर महाराजीय होता है। और जो स्त्री इस व्रत को सुसम्पन्न करती है, वह उमादेवी की भाँति महादेवी होकर समस्त सुखों के अविच्छिन्न उपभोग त्रैलोक्यपति रुद्र के साथ करती है। पुनः पृथ्वी पर उत्पन्न होकर जिस प्रकार मही देवी के साथ मनु और इन्द्राणी के साथ इन्द्र महान् सौख्य का निरन्तर उपभोग करते हैं उसी भाँति वह अपने पति के साथ सदैव सुखोपभोग करती है। वशिष्ठ अस्त्विती और विष्णु के हृदय में सुखासीन लक्ष्मी विष्णु की भाँति उन दोनों (पति-पत्नी) में निरन्तर महान् सौख्य होता है। ६५-७३। तथा जिस प्रकार सावित्री और ब्रह्मा का गंगा जल की भाँति पवित्र एवं अगाध प्रेम सदैव प्रव्यात है। उसी भाँति उन दोनों के प्रत्येक जन्म में गाढ़ प्रेम सदैव बना रहता है। इस व्रत के प्रभाव से वह अगले जन्म में उसी पति के साथ निरन्तर

योज्जनायुतसाहस्रे सुरूपा मण्डले भवेत् । अर्घाद्वारा सुभगा साध्वी पुत्रपौत्रैरलङ्घक्ता ॥७५
एततेनिखिलं प्रोक्तमानन्तर्यन्तं मया । भक्त्या सुविनीताय कथितव्यं न चान्यथा ॥७६

एषा विशेषविहिताभिहिता तृतीया यानन्तरीत्यविधवाभिरुदीरितोच्चैः ।

ऐतामुपोष्य विधिवत्प्रतिपक्षयोगान्वैवान्तरं सुतसुहस्त्वजनैरुपैति ॥७७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादे

अनन्तरतृतीयाक्रतवर्णनं नामैकोऽन्नशत्तमोऽध्यायः । २९

अथ त्रिशोऽध्यायः

अक्षयतृतीयद्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

बहुनात्र किमुक्तेन कि बहुक्षरमालया । वैशाखस्य तितामेकां तृतीयां शृणु पाण्डव ॥१
स्नानं दानं ज्ञपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । यदस्यां क्रियते किञ्चित्तर्व स्यात्तद्विहाक्षयम् ॥२
आदौ कृतयुगस्येयं युगादिस्तेन कथयते । सर्वपापप्रशमनी सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥३
शाकले नगरे कश्चिद्दर्मनामाभवद्विग्निक् । प्रियंवदः सत्यरतो देवब्राह्मणपूजकः ॥४
तेन श्रुतं वाच्यमानं तृतीया रोहिणी पुरा । यदा स्याद्वधसंयुक्ता तदा सा च महाकला ॥५

आनन्दोपभोग करती है तथा दश सहस्र योजन के मण्डल में वह असाधारण सौन्दर्य की प्राप्ति पूर्वक बहुमूल्य आभूषणों से भूषित होकर वह पतिव्रता पुत्र-पौत्र समेत अत्यन्त सुभगा होती है । इस प्रकार मैंने इस आनन्तर्य व्रत का समस्त विधान बता दिया, जो विन ब्र भक्त को ही बताया जा सकता है अन्य को नहीं इस आनन्तर्य तृतीया को उपवास रहवार सविधान प्रत्येक पक्ष में सुसम्पन्न करने वाली स्त्री सुत, मित्र आदि अपने स्वजनों के साथ चिरकाल तक निरन्तर सुखोपभोग करती है । ७४-७५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्बाद में

अनन्तर तृतीया व्रतवर्णन नामक उत्तीसवाँ अध्याय समाप्त । २९।

अध्याय ३०

अक्षयतृतीया व्रत का वर्णन

कृष्णजी बोले—पाण्डव ! अन्यतृतीया की बहुत व्याख्या एवं वाक्योजना करने की अपेक्षा वैशाखशुक्ल तृतीया की व्याख्या, जिसमें स्नान, दान, जप, हवन, स्वाध्याय और पितृतर्पण आदि जो कुछ किया जाये वह सब अक्षय होता है सुनो मैं बता रहा हूँ, सुनो ! यह व्रत कृतयुग के आदि का है इसीलिए इसे युगादि कहा गया है, जिसके अनुष्ठान से समस्त पापों के शमन पूर्वक अखिलसौख्य की प्राप्ति होती है । १-३। शाकल नामक नगर में धर्म नामक एक वैश्य रहता था, जो प्रिय एवं सत्यवक्ता और देव ब्राह्मण-पूजक था उसने किसी कथावाचक विद्वान् से यह सुनकर—कि रोहिणी नक्षत्र समेत बुधवार के दिन तृतीया होने से

तस्यां यद्दीयते किञ्चित्तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् । इति श्रुत्वा स गङ्गायां सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥६
 गृहमागत्य करकान्सान्नानुदकसंयुतान् । अस्तुपूर्णान्गृहै कुन्भःक्लभान्निःशेषतस्तदा ॥७
 यवगोधूमचणकसत्तुदध्यौदनं तथा । इक्षुकीरविकारांश्च सहिरण्यांश्च शक्तिः ॥८
 शुचिः शुद्धेत् मनसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ वणिक् । भार्यया वार्यगाणोऽपि कुटुम्बासक्तचिन्तया ॥९
 तावत्स च स्थितः सत्त्वे भृत्वा सर्वं विनश्वरम् । धर्मार्थकामं शक्तस्तु कालेन बहुना ततः ॥१०
 जगाम पञ्चत्वमसौ वासुदेवं स्मरन्नुहुः । ततः स क्षत्रियो जातः कुशालत्यां नरेश्वरः ॥११
 बभूव चाक्षया तस्य समृद्धिर्दर्शनिर्जिता । इयाज स महायज्ञैः भमाप्तवरदक्षिणैः ॥१२
 ददौ गोभूहिरण्यादि दानान्यस्यामहीनशम् । बुभुजे कामतो भोगान्दीनार्तास्तर्प्यञ्जनान् ॥१३
 तथाप्यक्षयमेवास्य क्षयं याति न तद्वन्म् । श्रद्धापूर्वं तृतीयायां यदृतं विभवं विना ॥१४
 एतद्वत्तं भयाख्यातं श्रूयतामन्त्रं यो विधिः । उदकुन्भान्दकरकान्सादसर्वसैर्युतान् ॥१५
 ग्रैमिष्कं सर्वमेवात्र सस्यदानं प्रशस्यते । छत्रोपानत्प्रदानं च गोभूकाञ्चनवाससाम् ॥१६
 यद्यदिष्टतमं चान्यतद्देवमविशंकया । एतत्ते सर्वमाख्यातं किमन्यच्छ्रौतुमिच्छसि ॥१७
 अनाव्येयं न मे किञ्चिदस्ति स्वरस्यस्तु तेऽनंग ॥१८

अस्यां तिथौ शयमुपैति हुतं न दत्तं तेनाक्षया च मुनिभिः कथिता तृतीया ।
 उद्दिश्य यत्सुरपितृनिक्यते मनुष्यैस्तच्चाक्षयं भवति भारत सर्वमेव ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे-

अध्यतृतीयाक्षतवर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः । ३०

वह महान् फल प्रदान करती है, उस दिन जो कुछ थोड़ा बहुत दान दिया जाये, वह सब अक्षय होता है—गंगा में स्नान पितृ-तर्पण आदि करके पुनः घर आकर जलपूर्ण कलश, जवा, गेहौं, चना के सत्तु, दही, चावल, गुड धी और अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण की दक्षिणा ब्राह्मणों को अर्पित करना आरम्भ किया । उस समय कुटुम्ब के भरण-पोषण में व्यस्त रहने वाली उस आपनी स्त्री के वरण करने पर भी वह निखिल वस्तुओं को नश्वर यानकर उसी भाँति दान करता रहा । इस भाँति धर्म, अर्थ और काम में आसक्त रहने वाले उस वैश्य का बहुत समय के उपरांत वासुदेव के स्मरण पूर्वक निधन हो गया । पश्चात् कुशावती नगर का वह नरेश्वर होकर उत्पन्न हुआ । पिछले जन्म के उस व्रत के प्रभाव से उसके अगाध सम्पत्ति हुई जिसके द्वारा उसने अनेक महान् यज्ञों को सुसम्पन्न किया और उनके प्रारम्भ में उसने गौ, भूमि, सुवर्ण आदि के दान रात-दिन किये तथा दीन-हीनों को यथोचित तृप्त करते हुए अनेक भाँति के समस्त सुखों के उपभोग किये, किन्तु उसका वह धन श्रद्धा समेत तृतीया में दान करने के नात वैसे ही अक्षय बना रहा । इस प्रकार इस व्रत को मैने तुम्हें बता दिया । अब इसके विधान को बता रहा हूँ, मुझो ! जलपूर्ण कलश और करवा के जो स्नान एवं समस्त रसों से पूर्ण हो, दान ग्रीष्मकृतु में अत्यन्त प्रशस्त बताया गया है तथा यथाशक्ति छत्र, उपानह, गौ, भूमि और सुवर्ण एवं अन्य अभीष्ट वस्तु के दान भी उसे निःसंकोच करना चाहिए । अनघ ! यह तो मैने सुना दिया अब और क्या सुनना चाहते हो, क्योंकि तुमसे कुछ भी गुप्त मैं नहीं रखना चाहता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो । भारत ! इस तिथि में हवन अथवा दान करने से वह क्षीण नहीं होता है, इसीलिए मुनियों ने इसे अक्षय तृतीया कहा है क्योंकि देव पितृ के उद्देश्य से किये गये सभी कर्म इसमें अक्षय होते हैं । ४-१९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्बाद में

अक्षय तृतीया व्रत वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त । ३०।

अर्थैकांत्रिशोऽध्यायः
अङ्गारकचतुर्थीव्रतवर्णनम्
युधिष्ठिर उवाच

रूपसौभाग्यसुखदं नरनारीजनश्रियम् । पापापहं बहुफलं सुकरं सूपवासकम् ॥१
 क्रद्धिवृद्धिकरं स्वर्गं यशस्यं सर्वकामदम् । तन्मे वद व्रतं किञ्चिद्विद्वि तुष्टोऽसि माधवं ॥२

माधव उवाच

शृणु पार्थ परं गुह्यं यन्मया कथितं न च । पुरा तव वनस्थस्य तदव्य प्रवदाम्यहम् ॥३
 शिवयोरतिसंहर्षद्विक्तबिन्दुश्च्युतः क्षितौ । मेदिन्या स प्रयत्नेन विघृतो धृतियुक्त्या ॥४
 तस्माज्जातः कुमारोऽसौ रक्तो रक्तसमुद्भवः । अङ्गं प्रसिद्धमेदेहाङ्गारको वेग उच्यते ॥५
 शिवाङ्गादभसा जातस्तेनाङ्गारक उच्यते । अगस्योऽङ्गारकान्तिश्च अङ्गप्रत्यङ्गसम्भवः ॥६
 सौभाग्यारोग्यकृद्यस्मात्स्मादङ्गारकः स्मृत । शक्त्या चतुर्थ्या नक्तेन यस्तु श्रद्धासमन्वितः ॥७
 तं पूजयति यत्नेन नारी वाजन्न्यमानसा । तस्य तुष्टः प्रयच्छेत्स यत्त्वया समुदाहृतम् ॥
 रूपं सौभाग्यसम्पन्नं नरनारीमनोहरम् ॥८

अध्याय ३१
अङ्गारक चतुर्थीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यादव ! यदि आप मेरे ऊपर अधिक प्रसन्न हैं, तो व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिस के अनुष्ठान द्वारा रूप सौभाग्य सुख की प्राप्ति पूर्वक जो स्त्री पुरुषों को परम प्रिय, पापनाशक एवं अत्यन्त फलदायक हो और उपवास रहकर उसे सुसम्पन्न करने पर क्रद्धि, वृद्धि, स्वर्ग, यश एवं समस्त कामनाओं की सफलता अत्यन्त सुलभ हो । १-२

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले तुम्हारे वनवास के समय भी जिस गुह्य व्रत को नहीं बताया था, आज उसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ । पार्वती-शिव के काम-केलि के समय जो रक्त बिन्दु पृथिवी पर च्युत हुआ उसे इस भूमि ने अत्यन्त प्रयत्न के साथ धारण किया था, जिस इस रक्तवर्ण के कुमार की उत्पत्ति हुई है । अंगारक नामक वेग का है, शिवजी के अंग से शीघ्रता से उत्पन्न होने और अंग में रहकर उसकी कांति समेत अंग प्रत्यंग से जन्मग्रहण एवं सौभाग्य आरोग्य प्रदान करने के नाते भी उन्हें अंगारक कहा जाता है । श्रद्धा भक्ति समेत चतुर्थी के दिन नक्त व्रत समेत उनकी अर्चना करने वाले स्त्री पुरुष को वे प्रसन्न होकर उपरोक्त सभी फलप्रदान करते हैं और वह रूप-सौभाग्य सम्पन्न एवं नर नारी को अत्यन्त प्रिय भी हैं । ३-८

१. यादव ।

युधिष्ठिर उवाच

एतन्मे^१ वद देवेश अङ्गारकविधिं शुभम् । सहोममन्त्रसंस्थानं साधिवासविधानतः ॥१
श्रीकृष्ण उवाच

पूर्वं तु कृत सङ्कल्पः स्नानं कृत्वा बहिर्जिते । स्नानार्थं मृत्तिकां नंत्रैर्गृहीयादम्भरि स्थितः ॥१०
त्वं सृदे वन्दिता पूर्वं कृष्णेनोद्घरताकिल । तेन ते दह दापौर्वं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ॥११
इमं मन्त्रं पठन्मार्दं आदित्याय प्रदर्शयेत् । आदित्यरशिमसन्तप्तां गङ्गागङ्गलकणोक्षिताम् ॥१२
तां सृदं शिरसि प्रार्थ्य पूर्वं दत्त्वाङ्गसञ्चिष्टु । ततः स्नानं प्रकुर्वीत मन्त्रेणान्तर्जलेतुः ॥१३
त्वमापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवरक्षसाम् । स्वेदजोद्भ्रूज्ययोनीनां रसानां पतये नमः ॥१४
स्नातोऽहं सर्वतोर्थेषु सर्वप्रक्षवणेषु च । नदोपु देवखातेषु स्नानं तेषु च भे भवेत् ॥१५
ध्यायन्धनिमिःमन्त्रं ततः स्नानं समाचरेत् । ततः स्नान्त्वा शुचिर्भूत्वा गृहमागत्य न स्पृशेत् ॥१६

न जन्मेच्च न वीक्षेत क्वचित्पापिष्ठमेव हि
द्वूर्वासवत्थौ शमीं स्पृष्ट्वा मां च मन्त्रेण मन्त्रित् । द्वूर्वामप्यस्य मन्त्रेण युतेन समुपस्थिताम् ॥१७
त्वं द्वूर्वेऽमृतजन्मासि सर्वदेवेश वन्दिता । वन्दिता वह तत्सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥१८

(इति द्वूर्वामन्त्रः)

पवित्राणां पवित्रं त्वं काश्यपी पठयसे श्रुतौ । शमी शमय तत्यापं यन्मयां दुरनुष्ठितम् ॥१९
(इति शमीमन्त्रः)

युधिष्ठिर ने कहा—देवेश ! इस अंगारक के शुभ विधान को, होम और अधिवास समेत बताने की कृपा कीजिये । १

श्रीकृष्ण जी बोले—सर्वप्रथम संकल्प करने के उपरांत स्नान के निमित्त जल में खड़े होकर मन्त्रोच्चारण पूर्वक मृत्तिका ग्रहण करे—मृत्तिके ! उद्धार करने के समय कृष्ण ने सर्वप्रथम तुम्हारी बन्दना की है, इसलिए मेरे भी पापों को नष्ट करो, मैंने भी पूर्व पापों का संचय किया है, इस मंत्र को कहते हुए वह मृत्तिका सूर्य को दिखाकर पुनः अपने शिर एवं अंग प्रत्यंग में लेपन कर सूर्य की रश्मि से स्पृष्ट गंगाजल में स्नान करते हुए यह मंत्र कहे कि दैत्य, दानव राक्षस आदि सभी को उत्पन्न करने वाले, तथा स्वेदज, उद्ध्रिज एवं समस्त रसों के पति तुम्हें नमस्कार है, मैं आप में स्नान कर रहा हूँ। इसलिए यह मेरा स्नान समस्त तीर्थों, झरनों, नदियों एवं देव कुण्डों के स्नान का फल प्राप्त करे। इस प्रकार कहते हुए स्नान करके घर आने पर किसी का स्पर्श एवं बातचीत बिना किये (मौन रहकर) पहले यह देव ले कि यहाँ कोई पापी तो नहीं है। पश्चात् द्वूर्वा, अश्वत्थ्य (पीपल), शमी और मेरे मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्पर्श करे। प्रथम द्वूर्वा के स्पर्श में—दूर्वे ! अमृत द्वारा तुम्हारा जन्म हुआ है और समस्त देवों से तुम अर्चित हो अतः मैं भी तुम्हारी बन्दना कर रहा हूँ, मेरे सभी दुष्कृतों का दहन करो। १०-१८। अनन्तर शमी वृक्ष के समीप जाकर इस प्रकार कहते हुए उसका स्पर्श करे तुम अत्यन्त पवित्र, और वेद में काश्यप भी कहे जाते हो, अतः शमी वृक्ष ! मेरे सभी पापों को विनष्ट करो। १९। अश्वत्थ के समीप

अश्वत्थमङ्गं लभते मन्त्रमेतं निबोध मे । अक्षिस्पंदं भुजस्पंदं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ॥
शत्रुणां च समुत्थानमश्वत्थ शमयस्व मे ॥२०

(इत्यश्वत्थमन्त्रः)

गां दद्यात् ततो देवीं सवत्सां सप्रदक्षिणाम् । रामालभ्य तु मन्त्रेण मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥२१
सर्वं देवमये देवि ईवतैस्त्वं सुपूजिता । तस्मात्स्पृशामि दन्दामि वन्दिता पापहा भव ॥२२

(इति गोमन्त्रः)

एवं मन्त्रं पठन्पार्थं भक्तिभावेन भावितः । प्रदक्षिणां यः कुरुते गां दृष्ट्वा वरवर्णनीम् ॥२३
प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी नात्र सशयः । एवं ज्ञानेन चागत्य वन्द्यान्वन्द्य गृहं गृजेत् ॥२४
प्रक्षाल्य च मृदा पादौ आहिताऽग्निशृंहं विशेत् । होमं तत्र प्रकुर्वीत एभिर्मत्रैः पदैर्वर्दैः ॥२५
शर्वाय शर्वपुत्राय पार्वत्या गोः सुताय च । कुजाय लोहिताङ्गाय ग्रहेशाङ्गारकाय च ॥

भूयोभूयोद्याहुत्या दुन्वाहुत्वा जुहोति वै ॥२६

ओंकारपूर्वकैर्मत्रैः स्त्राहाकारान्तर्योजितैः । अष्टोत्तरशतं पार्थं अद्वमध्यार्थमेव च ॥२७
एभिर्मत्रैर्वर्दैर्भक्त्या शक्त्या वा काममेव दा । सामद्भिः खादिरीभिश्चै घृतदुर्धैस्तिलैर्दैवैः ॥२८
भक्ष्यैर्नानाविधैरन्दैः शद्यत्य वा मन्त्रविद्वशी । हुन्वाहुतीस्ततः पार्थं देवं संस्थापयेत्क्षितौ ॥२९
स्नपनं^२ केचिदिच्छन्ति सगुडे ताप्त्रभाजते । सौवर्णं रक्तवर्णं च शक्त्या दारुमयं तथा ॥३०
कृष्णामारुमयं चैव श्रीखण्डघटितं पुनः । सौवर्णपात्रे रौप्ये वा अर्चं कुंकुमकेसरैः ॥३१
अन्वैरालोहितैः पार्थं पुष्पवर्षस्त्रैः फलैः शुभैः । राजन् रत्नैश्च विविधैरर्थवान्भक्तितोऽर्चयेत् ॥३२

जाकर करबद्ध होकर कि—अश्वत्थ ! अशुभनेत्र एवं भुजा के स्फुरण, दुःस्वप्न, तथा शत्रुओं के समुत्थान का शमन करो । २०। उसी प्रकार गौ के सभीप जाकर जो नवी के निमित्त दान की गई हो धमा प्रार्थी हो कि सर्वदेवमये, देवि ! समस्त देवों ने तुम्हारी अर्चना की है, इसलिए मैं भी तुम्हारे स्पर्शं एवं वन्दना करता हूँ, मेरे पापों का अपहरण करो । २१-२२। पार्थ ! इस प्रकार अत्यन्त भक्ति में तन्मय होकर जो उत्तम गौ की प्रदक्षिणा करते हैं, वे समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते हैं, इसमें संदेह नहीं । पुनः मौन ही रहकर वन्दनीयाँ की वन्दना पूर्वक पृत्तिका से हाथ चरण शुद्ध कर अग्नि शाला में जहाँ आहिताग्नि स्थापित हो, जाकर मंत्रोच्चारण पूर्वक हवन आरम्भ करे—मैं उन मंगलों के निमित्त आहुति प्रदान करता हूँ, जो शर्वरूप, शर्वपुत्र, तथा पार्वती और गौ के पुत्र कहे गये हैं, तथा लोहित अंग, गृहेश एवं अंगारक कहे जाते हैं एवं जिसके लिए बार-बार आहुति प्रदान की जाती है । इस प्रकार ओंकार पूर्वक उनके नाम के अंत में स्वाहा पद लगाकर (कुजाय नमः स्वाहा) एक सौ आठ, आधा अथवा तदर्द्ध आहुति अपनी शक्ति के अनुसार खेर आदि की लकड़ी की प्रज्वलित अग्नि में घृत, दुग्ध, तिल, जवा और अनके भाँति के भक्ष्य पदार्थों समेत डालकर अनन्तर देव को पृथ्वी में स्थापित कर गुड़ समेत ताँबें के पात्र अथवा सुवर्ण या काष्ठ के रक्तवर्ण पात्र में जो कृष्ण अग्रह तथा श्रीखण्ड से विभूषित हो, अथवा कुंकुम केसर युक्त सुवर्ण चाँदी के पात्र में रखकर रक्तवर्ण के पुष्प वस्त्र उत्तम फल एवं रत्नों द्वारा उनकी अर्चना करें । २३-३२। राजन् ।

यादद्वि शक्यते चित्तं वित्तवानभक्तिभावितः । तावद्वि वर्धते पुण्यं दातुः शतसहस्रिकम् ॥३३
 किञ्चित्तास्रमये पात्रे बंशजे मृष्मयेषि वा । पूजयन्ति नरा रक्तैः पुष्टैः कुंकुमकेशरैः ॥३४
 (ॐ अङ्गारकाय नमः शिरसि । ॐ कुजाय नमः वदने । ॐ भौमाय नमः स्कंधयोः । ॐ मङ्गलाय नमः
 बाह्वोः । ॐ रक्ताय नमः उरसि । ॐ लोहिताङ्गाय नमः कटचाम् । ॐ आराय नमः जंघयोः ।
 ॐ महीधरायै नमः पादयोः एषाष्टपुष्पिका । पुरुषः कृतिं कृतः पात्रे कुञ्जं मंत्रैः समर्चयेत् ।
 गुग्गुलं धृतसंयुक्तं कृष्णागरहस्यमन्दितम् । धूपं सद्रव्यजं वापि दद्यात्तत्र समाधिना ॥३५
 होमं कुर्वात् पूर्वोक्तैर्मंत्रैर्मङ्गलसंज्ञितैः । एवं प्रणम्य देवेश ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥३६
 निष्पावकं भोजनं वा दद्याच्छक्तया सदक्षिणम् । दित्तशाठयं हि कुर्वण्णो न मुख्यकलभाग्भवेत् ॥३७
 पश्चाद्गुञ्जीत मौनेन सूर्यं कृत्वा तु भाजनम् । मन्त्रेणानेन चालभ्य तन्निवोद्ध मयोदितम् ॥३८
 सर्वोषधिरसादासे सर्वदा सर्वशास्त्रिनी । त्वत्तले भोक्तुकामोऽहं तद्वक्तममृतं ध्वेत् ॥३९

युधिष्ठिर उवाच

अङ्गारकेण संयुक्ता चतुर्थी नक्तभोजनैः । उपोष्ट्या कृतिमात्रा सा किमेका दद यादव ॥४०

श्रीकृष्ण उवाच

चतुर्थी च चतुर्थी च यदाङ्गारकसंयुता । उपोष्ट्या तत्रतत्रैव प्रदेयो विधिना कुजः ॥

अत्यन्तं भक्तिं श्रद्धासमेत यथाशक्ति दान करने से सैकड़ों एवं सहस्रों गुना पुण्य की वृद्धि होती है । बाँस अथवा मृत्तिका के कुछ रक्तपुष्प, कुंकुम, केशर द्वारा मनुष्यों को ओं अंगारकाय नमः से शिर, ओं कुजाय नमः से मुख, ओं भौमाय नमः से कधे, ओं मंगलायनमः से बाहुओं रक्तायनमः से उर, ओं लोहिताङ्गाय नमः से कटि, ओं आराय नमः से जंघे, ओं महीधरायनमः से चरण, की पूजा करनी चाहिए । पुरुषाकार आकृति बनाकर पात्र में स्थापन पूर्वक इस आठ पुष्पिका रूप कुज के मंत्र द्वारा उनकी संविधान अर्चना करना बताया गया है । पूजन के समय धृत, कृष्ण अग्रह समेत गुग्गुल की अथवा किसी उत्तम वस्तु की धूप अपित करना चाहिए । पश्चात् उस समाधिनिष्ठ पुरुष को पूर्वोक्त मंगल मंत्र के उच्चारण द्वारा हवन करके प्रणाम पूर्वक उस देव को ब्राह्मण के लिए अपित करे । यथाशक्ति दक्षिणा समेत अग्नि पवक के अतिरिक्त अन्य भोजन अपित करना चाहिए । वित्तशाद्य तो कभी करना ही न चाहिए, क्योंकि उसके करने से मुख्य फल की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती है । तदुपरान्त मौन होकर भूमि पर भोजन पात्र रखकर इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भोजन करें—समस्त औषधों के रस से सुवासित सर्वदा सब कुछ देने वाली पृथिवी देवी ! मैं तुम्हारे तल के ऊपर भोजन करने की इच्छा प्रकट कर रहा हूँ, अतः वह मेरे भुक्त पदार्थ अमृत के समान होये । ३३-३९

युधिष्ठिर ने कहा—यादव ! अंगारक संयुक्त चतुर्थी का नक्त भोजन द्वारा एक ही तिथि में उपवास करना चाहिए अथवा अनेक चतुर्थी तिथि में इसे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा कीजिये । ४०

श्रीकृष्ण जी बोले—पाण्डव ! अंगारक युक्त प्रत्येक चतुर्थी तिथि में उपवास रह कर संविधान

वित्तहीनाः प्रतीक्षन्ते यावद्वितोपलम्भनम्

॥४१

चतुर्थ्या च चतुर्थ्या च विधानं शृणु प्राण्डव । ज्ञौवर्णपात्रे कृत्वा तु अङ्गारकमङ्गत्रिमम् ॥

॥४२

दश सौदर्णिं सुख्यं दशाद्विद्धभयापि वा

विंशत्यलानि पात्राणि विंशत्यद्वप्लानि च । विंशत्कर्षणि वा पार्थ अतो न्यूनं न कारयेत् ॥४३

प्रतिष्ठाप्य कुञ्जं भन्त्रैवस्त्रैः सम्पर्चितेष्टितस् । पुष्पमण्डपिकां कृत्वा दिव्यां सद्गृह्यैषिताम् ॥४४

तत्र^१ सम्पूजयेद्वं पूर्वमन्त्रैविधानतः । नक्त्या भोज्यैरनेकेन्न फलैरल्तैश्च सागरैः ॥४५

वस्त्रैः प्रावरणैयानैः शय्योपानद्वरास्तनैः । छत्रैः पुष्पैर्गन्धवरैः शक्त्या वित्तानुसारतः ॥४६

ततो दिप्रं परीक्षेत व्रतशौचसमन्वितम् । वेदाध्यथसम्पन्नं शास्त्रज्ञं निरहंकृतिम् ॥४७

अङ्गारकविदिं यश्च सम्पर्जनानाति शास्त्रतः । आह्वानविधिमन्त्रांश्च होमार्चनविसर्जनम् ॥४८

सम्पूज्य वस्त्राभरणैस्तत्त्वै देयः कुजोत्तदः । पथा श्रुतो यथा ज्ञातस्तथा भक्त्या हुपोषितः ॥४९

वित्तसारेण तुष्य त्वं मन भौम भवाद्द्रव । पठोन्निमं मन्त्रवरं ब्राह्मणाद निवेदयेत् ॥

ब्राह्मणश्चायसौ विद्वन्मन्त्रमेतमुदाहरेत् ॥५०

मङ्गलं प्रतिगृह्णामि उभयोरस्तु मङ्गलम् । दातृप्रतिग्राहकयोः क्षेमारोग्यं भवत्विति ॥५१

प्रतिग्राहकमन्त्र

एवं चतुर्थे सम्प्राप्ते धनप्राप्तिर्ण विद्यते । तदामन्त्रार्चनपरः पुनरेतां समाचरेत् ॥५२

मंगल के लिए अर्चना की वस्तुएँ अपित करनी चाहिए । निर्धन लोगों को धन प्राप्ति के निमित्त अंगारक युक्त प्रत्येक चतुर्थी का विधान विस्तार पूर्वक बता रहा हूँ, मुनो ! पार्थ ! अंगारक की अङ्गत्रिम प्रतिमा सुवर्ण के उस पात्र में जो दश तोले, तदर्ध (पौँच), तदर्ध (ढाई), बीस पल, दश पल अथवा बीस कर्ष के परिमाण का बना हो, इससे न्यून का पात्र कभी न बनाना चाहिए, स्थापित कर वस्त्र से आवेष्टित करने के उपरांत पुष्प मण्डपिका में पूर्वोक्त मंत्रों के उच्चारण पूर्वक सविधान दिव्य धूप आदि वस्तुओं से उनकी अर्चना करे । पुनः भक्तिपूर्वक भोज्यार्थ अनेक फल, समुद्र रत्न, ऊनी वस्त्र, पान, शव्या, उपानह, उत्तमासन, छत्र, पुष्प, गन्ध आदि यथाशक्ति समुपार्जित वस्तुओं का समर्पण कर किसी व्रती, पवित्रता पूर्ण, वेदाध्याय धनसम्पत्र, शास्त्र मर्मज्ञ एवं निराभिमानी ब्राह्मण को सादर बुलाकर जो अंगारक के शास्त्रीय विधान को भली भाँति जानता हो, तथा आह्वान, हवन, अर्चन और विसर्जन का मर्मज्ञ हो, वस्त्र और आभूषणों द्वारा उसकी पूजा करके मंगल की वह उत्तम प्रतिमा उन्हें अपित करे । उस समय इस मंत्र के उच्चारण करते हुए ब्राह्मण को सादर समर्पित करना चाहिए—शास्त्र में जिस प्रकार सुना और जिस भाँति मेरी बुद्धि में इसकी धारणा हुई उसके अनुसार भक्ति पूर्वक मैंने उपवास रहकर अपनी शक्ति के अनुसार आपकी अर्चना की है, अतः भव (शिव) द्वारा उत्पन्न भौमदेव ! मेरे ऊपर प्रसन्न हो । दान-प्रतिग्रहीता उस विद्वान् को भी उस समय यह मंत्रोच्चारण करना चाहिए कि मंगल की यह उत्तम मूर्ति मैं अपना रहा हूँ, इसलिए दोनों (दाता प्रतिग्रहीता) के यहाँ मंगल होता रहे तथा वे दोनों कुशल एवं

१. तत्रस्थमर्चयेन्मन्त्रैः पुष्पधूपैर्विधानतः । २. शुभैः ।

आशरीरनिपातादा यथोक्तफलभाभवेत् । अत्यवित्ते यथा शक्त्या सर्वमेतत्समाचरेत् ॥५३
 अङ्गारके संयुक्ता वस्त्रां तिलशराविकःम् । अनेन विधिना दत्त्वा यथोक्तफलभाभवेत् ॥५४
 एवं चतुर्थी यो भक्त्या कुजयुक्तामुपोपयेत् । तस्य पुण्यफलं यच्च तन्निबोध युधिष्ठिर ॥५५
 इह स्थित्वा चिरं कालं पुत्रपौत्रश्रिया वृतः । देहावसाने दिव्यौजा दिव्यगन्धानुलेपनः ॥५६
 दिव्यनारीणवृत्तो दिमानवरभास्तितः । याति देवतुर्ह हृष्टो देवैः सहाभिनन्दितः ॥५७
 स तत्र रथते कालं देवैः सह सुरेश वत् । चतुर्थीगानि एष्टत्रिंशत्तः कालान्तरे पुनः ॥५८
 इह नागत्य राजासौ कुले महिति जायते । रूपवान्धनवान्दत्तमः दानशीलो दयपरः ॥५९
 नारी च रूपसम्पन्ना मुभगा जातिसंयुतः । पुत्रपौत्रैः परिवृता भर्त्रा सह रमेच्चिरम् ॥६०
 रमित्वा मुचिरं कालं पुनः स्वर्गतिं लनेत् । एष ते कथितो राजन्सरहस्यो विधिस्तथा ॥
 दुर्लभो ये मनुष्याणां देवानां भद्रमस्तु ते ॥६१

अङ्गारकेण सहिता तु सिता चतुर्थी शक्ता मुराच्चर्चनविधौ पितृपिण्डदाने ।

तस्यां कुञ्जं कुरुकुलोद्धह येऽर्जयन्ति भूमौ भवन्ति बहुमङ्गलभाजनास्ते ॥६२

इति श्रीभविष्ये नहापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

चतुर्थीन्नते अङ्गारकचतुर्थीन्नतवर्णनं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३१ ।

आरोग्य रहें । ४१-५१। इस प्रकार चतुर्थी के दिन पूजन करने पर यदि धन लाभ न हो तो यंत्र के पूजन पूर्वक पुनः अंगारक युक्त चतुर्थी में मंगल की पूजा प्रारम्भ कर आजीवन करता रहे, तो अवश्य फलभागी होगा । निर्धन व्यक्ति को भी अंगारक युक्त सभी चतुर्थी के दिन उपवास पूर्वक कुज के लिये वस्त्र, तिल, एवं कसोरा आदि के समर्पण पूर्वक सविधान उनकी अर्चना करनी चाहिए, जिससे उसे भी समस्त फल प्राप्त होते हैं । युधिष्ठिर ! इस प्रकार मंगल युक्त चतुर्थी के दिन उपवास रहकर अर्चना समेत उन्हें उपरोक्त वस्तुओं के समर्पण करने से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! इस मर्त्य लोक में चिरकाल तक पुत्र-पौत्र आदि परिवार समेत अनेक सुखों के उपभोग करने के उपरांत देहावसान होने पर दिव्य तेज, द्वारा आनन्द मग्न देवों के साथ देवलोक की यात्रा करता है । वहाँ पहुँचकर इन्द्र की भाँति देवों के साथ समस्त सुखोपभोग करते हुए छत्तीस चतुर्थी व्यतीत करता है । अनन्तर कदाचित् पृथिवी पर जन्मग्रहण करके उत्तम कुल में रूपवान्, धनवान्, सत्यवत्ता, दानी, एवं दयाशील राजा होता है । इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी रूप सौन्दर्य, सौभाग्य एवं उत्तमगति की प्राप्ति पूर्वक पुत्र-पौत्र समेत अपने पति के साथ चिरकाल तक रमण करती है और देहावसान होने पर पुनः स्वर्ग की प्राप्ति करती है । राजन् ! इस प्रकार मैंने सरहस्य इस अंगारक चतुर्थी के विधान को सुना दिया जो मनुष्यों एवं देवों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है । तुम्हारा मंगल हो । कुरुकुलोद्धह ! शुक्ल पक्ष की चतुर्थी अंगारक युक्त होने पर देवाचना और पितरों के पिण्डदान के लिए उत्तम बतायी गयी है । अतः जो कोई उस दिन मंगल की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करते हैं, उन्हें इस भूतल में अत्यन्त कल्याण की प्राप्ति होती है । ५२-६२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्बाद में
 चतुर्थी व्रत के मध्य अंगारक चतुर्थी व्रत वर्णन नामक एकतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३१ ।

अथ द्वार्तिशोऽध्यायः
विनायकस्तपनचतुर्थीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यन्न सिद्धचन्ति कर्मणि प्रारब्धानि नरोत्तमैः । तत्केन कारणेनैतत्पृष्ठो मे ब्रूहि माधव ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

विनायकोर्थसिद्धचर्य लोकस्य विनियोजितः । गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ऋत्युणा तथा ॥२
 तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत । स्वन्देऽवगाहृतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥३
 काषायवाससस्त्रैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति । अन्त्यर्जार्जिभैरूष्टैः सहैकत्रावतिष्ठते ॥४
 ब्रजमानस्तथात्मानं भन्यते तु गतं परैः । विमना विफलारम्भः ससीदत्यनिमित्ततः ॥५
 पातकीं विहीनञ्छायो म्लानत्वहेतुलक्षणः । करभारुद्धमात्मानं महिवरगं तथा ॥६
 यातुधानाश्रितं यनं इमशानस्यान्तिकं नृप । दीक्षेत कुरुशार्दूलं स्वप्रान्ते नात्र संशयः ॥
 तैलाद्वमात्रं स्वं देहं करवीरविभूषितम् ॥७

तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः । कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भमंगना ॥८
 आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा । वणिगलाभं न चाप्नोति कृषिं चैव कृषीवलः ॥९

अध्याय ३२
विनायकस्तपनचतुर्थीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—माधव ! मुझे यह जानने की इच्छा है कि उत्तम मनुष्यों द्वारा भी आरम्भ किये गये कर्म सफल न होकर अधूरे रह जाते हैं, इसका क्या कारण है, बताने की कृपा कीजिये ।

श्रीकृष्ण बोले—लोक में अर्थसिद्धि के निमित्त ब्रह्मा और शिव जी ने गणाधिपति विनायक की स्थापना की है । उन्होंने यह बताया है कि उनके पूजन करने पर जिन लक्षणों का प्रादुर्भाव स्वप्न में होता है, उन्हें बता रहा हूँ, जो शुभाशुभ के सूचक हैं, सुनो ! स्वप्न में अगाध जल का अवगाहन, काषाय वस्त्र धारी मुण्डी (संन्यासी) का दर्शन, राक्षसारोहण, शूद्र, गधे और ऊँटों के साथ एकत्र स्थिति, तथा चलते हुए अपने को दूसरे द्वारा अन्यत्र प्राप्त होना आदि देखने वाले पुरुष के आरम्भ निष्फल होते हैं तथा म्लान मुख होकर उसे कष्ट का अनुभव करना पड़ता है । पातकी और छायाहीन पुरुष म्लान मुख होता है । हाथी के शिशु, महिष अथवा गधे पर बैठना, राक्षस रक्त के स्पर्श, इमशान समीप यात्रा, तथा कुरुशार्दूल ! तैल से आद्र होना और कनेर पुष्ट से विभूषित होने के स्वप्न देखने वाले राजपुत्र को राज्य की प्राप्ति कुमारी को पति की प्रप्ति, सधवा को पुत्र, वेदाध्यायी को आचार्यत्व, शिष्य को अध्ययन, वैश्य को लाभ,

१. प्रासादानुगतम् ।

स्तपनं तस्य कर्तव्यं पुण्डेऽहि विधिपूर्वकम् । गौरसर्षपकल्केन वस्त्रेणाच्छादितस्य तु ॥१०
 सर्वोषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा । शुक्लपक्षे चतुर्थ्या तु वारे वा धिषणस्य तु ॥११
 पुण्डे च वीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप । भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिर्वाच्या द्विजैः शुभैः ॥१२
 चत्वारं ऋग्यजुः सामार्थवर्णप्रवणास्ततः । व्योमकेशं तु सम्पूज्य पार्वतीं भूमिं तथा ॥१३
 कृष्णस्य यितरं चाथ अवतारं सितं तथा । धिषणं क्लेदपुत्रं च कोणं लक्ष्मीं च भारत ॥
 विद्युतुदं बाहुलेयं नन्दकस्य च धारिणम् ॥१४

अश्वस्थानादगजस्थानाद्रूल्मीकात्संगमाद्हृदात् । मृत्तिकां रोचनां रत्नं गुग्गुलं चाप्सु निक्षिपेत् ॥१५
 यदाहृतं ह्रौकवर्णेश्वर्तुभिः कलशर्हदात् । दर्ढप्यानडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं तथा ॥१६
 सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् । तेन त्वामभिर्षिचामि पावगान्यः पुनंतु मे ॥१७
 ॐ भगं ते वरणो राजा भगं सूर्यो वृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥१८
 यते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि । ललाटे कर्णयोरक्षणोरापस्तद्धनंतु सर्वदा ॥१९
 स्नातस्य साशर्पं तैलं सुवेणौदुम्बरेण तु । जुहुयान्मूर्धिन शक्लान्सव्येन प्रतिगृह्य च ॥२०
 मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटङ्कादौ । कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्ते स्वाहासमन्वितैः ॥२१
 नामभिर्विलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः । दद्याच्चतुष्पथे सूर्ये कुशानास्तीर्यं सर्वतः ॥२२
 कृताकृतान्स्तण्डुलांश्चचपलौदनमेव च । मत्स्यान्हृपक्वांच तथा मांसमेतावदेव तु ॥२३

कृषक को कृषी की प्राप्ति नहीं होती है । २-९। उसको किसी पुण्य दिन में दुर्निमित्त के शांत्यर्थ सविधान स्नान करना चाहिए । राजन् ! गौर सर्षप (राई) अलसी की खली के स्पर्श समेत वस्त्र के आच्छन्न होकर समस्त औषध एवं सम्पूर्ण गंध के लेपन शिर में लगाकर शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में वृहस्पति के दिन पुण्य नक्षत्रं संयुक्त होने पर उनके सामने भद्रासन पर बैठकर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन कराये । जो क्रहग, यजु, साम तथा अर्थव वेद के मर्मज्ञ विद्वान हो, पश्चात् शिव, पार्वती और मंगल, कृष्ण जनक वासुदेव, वृहस्पति, क्लेदपुत्र, कोण, लक्ष्मी, खड्गसमेत राहु की पूजा करने के उपरांत अश्व, गज के स्थान, वल्मीक (विभीष) तथा संगम की मृत्तिका, गोरोचन, रत्न एवं गुग्गुल । उस चार कलशों के जल में डालकर, जो एक वर्ण के सौन्दर्य पूर्ण बनाये गये हों रक्त वृषभ के चर्मासन पर, जो भद्रतापूर्ण सुरचित हो, उन्हें स्थापित कर स्नान कराते हुए इन मंत्रों के उच्चारण करे—ऋषियों ने जिसके सैकड़ों धारों को सहस्राक्ष बना अत्यन्त पावन कर दिया है, उसी शत धारा वाले जल के द्वारा तुम्हारा अभिषेक कर रहा हूँ, अत्यन्त पवित्र भाजन होकर मुझे पावन करो । १०-१७। ओंकार समेत राजा वरुण, सूर्य वृहस्पति, इन्द्र, वायु, एवं सप्तर्षियों ने तुम्हें प्रदान किया है, इसलिए तुम्हारे केश, सीमन्त (के वृन्द के सौन्दर्य) शिर, भाल, कान, और आँखों में स्थित दुर्भाग्य को यह जल शमन करे । स्नान के उपरांत गूलर के स्रुवा द्वारा दाहिने हाथ से राई के तेल की आहुति छोड़ते समय मित, सम्मित, शाल कटंकट, कूष्माण्ड, और राजपुत्र के अंत में स्वाहा पद लगाकर (मिताय स्वाहा) उच्चारण करता रहे । अनन्तर चौराहे पर पहुँच कर सूप में चारों ओर कुश बिछाकर नमस्कार पूर्वक नाम मंत्रोच्चारण करते हुए पुथक्-पुथक्-कच्चे-पक्के चावल, मांस,

पुष्पान्वितं सुगच्छं च मुरां च त्रिविधाभयि । मूलकं पूरिका पूपास्तथैवोंडेरकक्षजः ॥२४
 दध्यश्चं पायसं चैव गुडवेष्टिमोदकम् । विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोम्बिकाम् ॥
 द्वूर्वासर्पपुष्पाणां दत्त्वाधर्य पूर्णमञ्जलिम् ॥२५
 रूपं देहि जयं देहि भां भवति देहि मे । पुत्रादेहि धनं देहि सर्वान्कःमांश्र देहि मे ॥२६
 प्रबलं कुरु मे देवि बलविल्यातिसम्भवम् । शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥
 भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरेपि ॥२७
 एदं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः । कर्मणां फलमाप्नोति शिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥२८
 आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा । नहागणपतेऽश्च कुर्वन्तिमद्विमवानुयात् ॥२९
 वैनायकं दिनयसत्त्ववतां नराणां स्नानं प्रशस्तमिह विघ्नदिनाशकारि ।
 कुर्वति ये विधिवदत्र भवन्ति तेषां कार्याण्यभीष्टफलदानि स संशयोऽत्र ॥३०
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
 विनायकस्नपनचतुर्थीव्रतं नाम द्वात्रिशत्तमोऽध्यायः ॥३२

अथ त्र्यास्त्रशत्तमोऽध्यायः

विनायकचतुर्थीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथाविष्टकरं राजन्कथयाम व्रतं तव । येन सम्यक्कृतेनेह न विघ्नमुपजायते ॥१

कच्चे-पक्वके मत्स्य पुष्पसमेत मुगन्धित तीनों भाँति के मद्य, मूलक, पूरी, पूआ, अंडेरक की माला । दधि-अन्न, खीर, मोदक समेत गुड़ की पीठी की बलि प्रदान करने के उपरांत विनायक की जननी भगवती अम्बिका के समीप जाकर द्वूर्वा, राई, समेत, पुष्पों के अर्ध प्रदान कर साञ्जलि क्षमा प्रार्थना करे कि भवति ! मुझे रूपसौन्दर्य, जन, तेज, पुत्र और धन के प्रदान समेत समस्त कामनाओं की सफलता प्रदान करें और देवि ! मुझे प्रस्यात बलवान् बनाये । पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण एवं श्वेत गंधानुलेपन पूर्वक ब्राह्मण भोजन हो जाने पर गुरु के लिए युग्म वस्त्र अर्पित करे । इस प्रकार विनायक के पूजनोपरांत ग्रहों की समर्चना करने पर आरम्भ कर्मों के फल तथा उत्तम श्री की प्राप्ति होती है । आदित्य की नित्यपूजा और महागणपति के नित्यतिलक करने से निश्चित सिद्धि प्राप्त होती है । इस प्रकार विनायक-विनायक पुरुषों के लिए विघ्नविनाशकारी एवं प्रशस्त विनायक देव की पूजा बता दी गयी है, जिसे सविधान सुसम्पन्न करने पर अभीष्ट सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है इसमें संदेह नहीं । १८-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्बाद में
 विनायक स्नपन चतुर्थीव्रत वर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त । ३२।

अध्याय ३३

विनायकचतुर्थी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! मैं तुम्हें विघ्नविनाशक एक व्रत भी बता रहा हूँ, जिसे सविधान सुसम्पन्न

चतुर्थ्यां फालुने मासि गृहीतव्यं द्रतं त्विदम् । नक्ता हारेण राजेन्द्र तिलान्नं पारणं स्मृतम् ॥२
तदेव वह्नौ होतव्यं ब्राह्मणाय च तद्भवेत् ॥३

शूराय वीराय गजाननाय लम्बोदरायैकरदाय चैव ।

एवं तु सम्पूज्य पुनर्श्वं होमं कुर्याद्वृती विघ्नविनाशहेतः ॥४

वातुमास्यां व्रतं चैव कृत्वेत्यं दद्वच्छेत तथा । सौवर्णं गजवद्वं तु कृत्वा विप्राय दापयेत् ॥५

ताम्रपात्रेः पायसभूतेष्टुभिः सहितं नृप । पञ्चमेन तिलैः सार्द्धं गणेशाधिष्ठितेन च ॥६

मृष्मयान्यपि पात्राणि वित्तहीनस्तु कारयेत् । हेरम्बं राजतं तद्विद्विधिनानेन दापयेत् ॥

इत्थं व्रतमिदं कृत्वा सर्वविद्वैः प्रमुच्यते ॥७

हयनेधस्य विद्वने तु सज्जाते सगरः पुरा ! एतदेव व्रतं चीर्त्वा पुनरश्वं प्रलब्धवान् ॥८

तथा रुद्रेण देवेन श्रियुरं निधनता पुरा । एतदेव कृतं यस्मात्तिपुरस्तेन धातितः ॥९

मया समुद्रं विशातां एतदेव व्रतं कृतम् । तेनादिद्वुमसयुक्ता पृथिवी पुनरुद्धता ॥१०

अन्यैरपि महीपालैरेतदेव कृतं पुरा : ततोर्थिभिर्यज्ञ सिद्धैर्विद्वं स्मात्परन्तप ॥११

अनेन कृतमात्रेण सर्वविद्वैः प्रमुच्यते । मृतो रुद्रपुरं याति वराहवचनं यथा ॥१२

करने पर कभी विघ्न नहीं होता है । राजेन्द्र !, फालुन मास की शुक्ल चतुर्थी के दिन इस व्रत नियम के पालनपूर्वक नक्त भोजन कर तिल का पारण करे । उसी (तिल) का हवन एवं ब्राह्मण भोजन भी कराये । शूर, वीर, गजानन, लम्बोदर, एकदंत, आदि के उच्चारण करते हुए सप्रेम उनकी पूजा करके विघ्नविनाशार्थ व्रती को हवन करना चाहिए । चार मास तक इस भाँति व्रत एवं पूजन करने के अनन्तर पाँचवें मास के सुवर्ण के एक गजदाँत बनाकर ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक अर्पित करना चाहिए । नृप ! चार मास तक पायस और ताम्रपात्र के प्रदान द्वारा उनकी पूजा करके पाँचवें मास में तिल के साथ गणेश की प्रतिष्ठा-पूजन करना चाहिए । निर्धन व्यक्ति को अन्य पात्र अथवा मृतिका पात्र में पूजन करना बताया गया है । इस प्रकार हेरम्ब (गणेश) के निमित्त अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण अथवा चाँदी की प्रतिमा की सविधान अर्चना कर ब्राह्मण को अर्पित करे इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह समस्त विद्वां से मुक्त हो जाता है । १-७। क्योंकि पहले समय में अश्रमेध यज्ञ के अनुष्ठान में विघ्न हो जाने पर राजा सगर ने इसी व्रतानुष्ठान द्वारा इस अश्व की पुनः प्राप्ति की थी । उसी भाँति रुद्र देव के त्रिपुरासुर के वध के समय पहले इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे त्रिपुरासुर का निधन हुआ था । समुद्र प्रवेश के समय मैंने भी इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे पर्वत एवं वृक्षों समेत इस पृथ्वी का पुनरुद्धार कर सका । तथा अन्य राजाओं और तपस्वियों ने अपने अभीष्ट सिद्धार्थ इसे सुसम्पन्न किया है । परंतप ! इस व्रत के अनुष्ठान मात्र से प्राणी समस्त विद्वां से मुक्त हो जाता है और देहावसान होने पर बराह के कथनानुसार वह रुद्रपुर की प्राप्ति करता है । ८-१२। इस प्रकार जिसने विश्वेश्वर की जो सप्तमी के चन्द्र-खण्ड की कांति से विभूषित होने की भाँति शुभ्र गजदाँत से सुशोभित है, चतुर्थी के दिन नक्त भोजन

विद्वनि तस्य न भवन्ति गृहे कदाचिद्द्वर्मार्थकामसुखसिद्धिविधातकानि ।
यः सप्तमीन्दुशकलाकृतिकां तदन्तं विद्वनेशमर्चयति नक्तकृती चतुर्थाम् ॥१३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंतादे
विद्वयकचतुर्थीव्रतं नाम त्र्यस्त्रिशोऽध्यायः ॥३३
॥ इति चतुर्थीकल्पः समाप्त ॥

अथ चतुर्स्त्रिशोऽध्यायः

शान्तिद्रवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शान्तिव्रतं प्रवक्ष्यामि भृणुष्वैकमनाधुना । येन चीरेण शान्तिः स्यात्सर्वदा गृहमेधिनाम् ॥१
पञ्चम्यां शुक्लपक्षस्य कार्तिके शासि पार्थिव । आरभ्य वर्षमेकं तु ह्यश्नीयादम्लवर्जितम्^१ ॥२
नक्तं देवं च सम्पूज्य हरिं शेषोपरिस्थितम् । अनन्तायेति पादौ तु धृतराष्ट्राय वै कटिम् ॥३
उदरं तक्षकायेति उरः कर्कटकाय च । पद्माय कर्णो सम्पूज्य महापद्माय दोर्युगम् ॥४
शङ्खपालाय वक्षस्तु कुलिकायेति वै शिरः । एवं विष्णुं सर्वगतं पृथगेव प्रपूजयेत् ॥५
क्षीरेण ऋपनं कुर्याद्विरमुद्दिश्य वाग्यतः । तदग्रे होमयेत्क्षीरं तिलैः सह विचक्षणः ॥६

और तिल पारणपूर्वक सविधान अर्चना की है, उसके घर धर्म, अर्थ, एवं काम की सुखसिद्धि सदैव होती रहती है तथा किसी प्रकार का कभी भी विद्व नहीं होता है ॥३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
विनायक चतुर्थीव्रत वर्णन नामक तैतीसर्वां अध्याय समाप्त ॥३३
॥ चतुर्थी कल्प समाप्त ॥

अध्याय ३४

शान्तिद्रवत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं अब तुम्हें उस शांति व्रत का विधान बता रहा हूँ, जिसके अनुष्ठान द्वारा गृहस्थों को सर्वाय पूर्ण शांति प्राप्त होती है, सावधान होकर सुनो ! पार्थिव ! कार्तिकमास की शुक्ल पञ्चमी से आरम्भ कर वर्ष की समाप्ति पर्यन्त आँवले के त्यागपूर्वक भोजन करे, तथा नक्त के समय शेषशायी भगवान् विष्णु की सर्वाङ्ग आराधना—अनंताय नमः से चरण, धृतराष्ट्राय नमः से करि, तक्षकाय नमः से उदर, कर्कटिकाय नमः से हृदय, पद्माय नमः से कान, महापद्माय नमः से बाहू, शांखपालाय नमः से वक्षःस्थल, कुलिकाय नमः से शिर की पूजा करते हुए इस प्रकार सर्वगत विष्णु देव की पृथक् पूजा करने के उपरांत हरि के उद्देश्य से मौन होकर क्षीर से स्नान के उपरांत उनके सम्मुख क्षीर समेत तिल का हवन

एवं संवत्सरस्यात्ते कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । अच्युतं काञ्चनं कुत्वा सुवर्णं तु विचक्षणः ॥७
गां सवत्सां वस्त्रयुग्मं कांस्यपात्रं सपायसम् । हिरण्यम् च यथाशक्तिः ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥८
एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतमेतन्नराधिप । तस्य शान्तिर्भवेन्नित्यं नागानामभयं तथा ॥९

शेषाहि भोगशयनस्थमयोगसूर्णि सम्पूज्य यज्ञपुरुषं पतगेन्द्रनाथम् ।
ये पूजयन्ति मधुरैः सितपञ्चनीषु तेषां न नागजनितं भयमभ्युपैति ॥१०

इति श्रीभद्रिज्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

शान्तिवतं नाम चतुर्मिश्रत्तमोऽध्यायः । ३४

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

सारस्वतव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

मधुरा भारती केन व्रतेन मधुसूदन । तथैव जनसौभग्यमतिदिधासु कौशलम् ॥१
अभेदश्चापि दम्पत्योस्तथा बन्धुजनेन च । आयुश्च विषुलं पुंसां जायते केन क्रेशव ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

सम्यक्यृष्टस्त्वया राजञ्ज्ञृणु सारस्वतं व्रतम् । यस्य सङ्कीर्तनादेव तुष्यतीह सरस्वती ॥३

करे । इस प्रकार वर्ष की समाप्ति तक सविधान इसे सुसम्पन्न करके अनन्तर ब्राह्मण भोजन भगवान् की सुवर्ण की प्रतिमा, सवत्सा गौ, चार वस्त्र, काँसे का पात्र, पायस, तथा हिरण्य यथाशक्ति ब्राह्मण को अर्पित करे । नराधिप ! इस प्रकार भक्तिपूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उसे सदैव शांति प्राप्त रहती है और नागों से भय कभी नहीं होता है । इस भाँति शेषशायी भगवान् यज्ञपुरुष की जो पतगेन्द्र नाथ कहे जाते हैं, शुक्ल पञ्चमी के दिन मधुर पदार्थों द्वारा अर्चना करते हैं, उन्हें सभी प्रकार की सुखशांतिपूर्वक नागों से भय कभी नहीं होता है । १-१०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

शांति व्रत वर्णन नामक चौतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३४।

अध्याय ३५

सारस्वत व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—मधुसूदन ! केशव ! किस व्रत के अनुष्ठान द्वारा मधुरवाणी, सौभाग्य पराकाष्ठा की विद्या, कौशल, दम्पति में सदैव अविच्छिन्न गाढ़प्रेम, बन्धुओं के अवियोग, और दीर्घायु की प्राप्ति होती है । १-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! आप ने अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है, अतः मैं सारस्वत व्रत के विधान बता रहा हूँ, जिसके अनुष्ठान करने से सरस्वती देवी अत्यन्त प्रसन्न होती है, सावधान होकर सुनो ! जो

योऽयं भक्तः दुसान्कुर्यादितद्वन्नतमनुत्तमम् । तद्वत्सरादौ सम्पूज्य विप्रेण तं समाचरेत् ॥४
अथ चादित्प्रवरेण ग्रहताराबलेत च । पायसं भोजयित्वा च कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् ॥५
शुक्लवस्त्राणि दद्याच्च सहिरप्यानि शक्तिः । गायत्रीं पूजयेद्बूक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥
एभिर्मन्त्रपदैः पश्चात्पूर्वं कृत्वाङ्कुराज्ञलिः ॥६

यथा तु देवि भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः । त्वां परित्यज्य नो तिष्ठेत्तथा भव दरप्रदा ॥७
वेदशास्त्राणि सर्वाणि नृत्यगीतःदिकं च यद् । वाहितं यत्त्वया देवि तथा ने सन्तु सिद्धयः ॥८
ज्ञस्मीर्घाः वरारिष्टिर्गारी तुष्टिः प्रभा मरिः । एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मासरस्वति ॥९
एवं सम्पूज्य गायत्रीं वीणाक्षमणिधारिणीम् । शुक्लपक्षेऽक्षतैर्भक्त्या सकमण्डलुपुस्तकाम् ॥१०
मौनव्रतेन भूञ्जीत सायं प्रातश्च धर्मवित् । पञ्चस्यां प्रतिपक्षे च पूजयित्वा सुवासिनैः ॥११
तिलश्च तण्डुलप्रस्थं धृतपात्रेण संयुतम् । क्षीरं तथा हिरण्यं च गायत्री प्रीयतामिति ॥१२
सन्ध्यायां च ततो मौनं तद्वन्नतं तु समाचरेत् । नान्तरा भोजनं कुर्याद्यावन्मासास्त्रयोदयम् ॥१३
समाप्ते तु व्रते दद्याद्ब्रोजनं शुक्लतण्डुलैः । पूर्णं सुवस्त्रयुग्मं च गां च विप्राय भोजनम् ॥१४
देव्यै वितानं घटां च सितनेत्रं पटान्वितम् । चन्दनं वस्त्रयुग्मं च दध्यनं शिरैर्युतम् ॥१५
तथोपदेष्टारमपि भक्त्या सम्पूजयेद्गुरुन् । वित्तशाठयेन रहितो वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥१६

कोई भक्तपुरुष इस व्रत का अनुष्ठान आरम्भ करे, उसे चाहिए कि वर्ष के आरम्भ में ब्राह्मण की आज्ञा शिरोधार्य कर व्रत ग्रहण करे । अपने ग्रह एवं ताराबल को भली भाँति देखकर किसी रविवार के दिन पायस भोजन द्वारा ब्राह्मण को संतुष्ट कर स्वस्ति वाचन कराये । यथाशक्ति ब्राह्मण को शुक्ल वस्त्र, और सुवर्ण प्रदान करने के उपरांत भक्तिपूर्वक शुक्ल माला, गंध और अनुलेपन द्वारा गायत्री की अर्चना मंत्रोच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करके साङ्गति क्षमा प्रार्थना करे कि—देवि ! जिस प्रकार लोक के पितामह भगवान् ब्रह्मा तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाते हैं, मेरे लिए भी वैसा ही करने की कृपा करें । तथा देवि ! समस्त वेदशास्त्र एवं नृत्यगीत आदि जो कुछ आप के पास निधि है, वे सभी सिद्धियाँ मुझे भी प्राप्त हों । सरस्वति ! आप अपनी लक्ष्मी, मेधा, वरा, रिष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा एवं मसि, आदि विभूतियों (अंगों) द्वारा मेरी रक्षा करें । इस प्रकार शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन वीणा, अक्षमाल, मणि, कमण्डलु और पुस्तक से सुशोभित गायत्री देवी की अर्चना भक्तिपूर्वक सुसम्पन्न करके उस धार्मिक व्रती को सायं प्रातः मौन होकर भोजन कराना चाहिए । प्रत्येक पक्ष की पञ्चमी के दिन तिल, तंडुल, धी, क्षीर, सुवर्ण द्वारा सौभाग्यवती स्त्री की अर्चना करके अञ्जलि बाँधकर गायत्री देवी मुझ पर प्रसन्न हों, कहकर क्षमा प्रार्थी होये । ३-१२। इसी प्रकार सायंकाल के समय भी मौनव्रत धारणपूर्वक उनकी पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए । प्रातः और सायंकाल पूजा सुसम्पन्न करने के उपरांत ही भोजन करने का विधान बताया गया है । इस प्रकार तेरह मास तक प्रतिदिन पूजन करने के अनन्तर उसकी समाप्ति में इवेत तण्डुल पूर्ण पात्र, युग्म वस्त्र, और गौ ब्राह्मण के लिए अपित कर देवी के लिए भी वितान (चाँदनी) घटा, शुभ नेत्र, चन्दन, युग्म वस्त्र, दध्यन, और शिखर समर्पित करके भक्तिपूर्वक अपने उपदेष्टा गुरु की भी यथा शक्ति वस्त्र, माला, अनुलेपन द्वारा पूजा करे । दान के समय वित्तशाठय दोष पर विशेष ध्यान रखना चाहिए । इस

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्सारस्वतं व्रतम् । विद्यावानर्थयुक्तश्च रक्तकण्ठश्च जायते ॥१७
 सरस्वत्याः प्रसादेन व्यासवत्तु कविर्भवेत् । नारी वा कुरुते या तु सापि तत्फलभागिनी ॥
 ब्रह्मलोके वसेत्तावद्यावत्कल्पायुतत्रयम् ॥१८
 सारस्वतं द्रतं यस्तु शृगुयादपि यः पठेत् । विद्याधरपुरे सोऽपि वसेत्कल्पायुतत्रयम् ॥१९
 संवत्सरं व्रतवरेण सरस्वतीं ये सम्पूजयन्ति जगतो जननी जनित्रीम् ।

विद्यावदातहृदया मधुरस्वरास्ते रूपान्विता बहुकलाकुशला भवन्ति ॥२०
 इति श्रीभविष्यद्वे महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 सारस्वतद्रतनिरूपणं नाम पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः । ३५

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

नागपञ्चमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पञ्चमी दियिता राजश्वागानन्दविवर्द्धनी । पञ्चम्यां किल नागानां भवतीत्युत्तवो महान् ॥१
 वासुकिस्तक्षकश्चैव कालिको माणिभद्रकः । धृतराष्ट्रो रैवतश्च कर्कोटकधनंजयौ ॥
 एते प्रयच्छन्त्यभयं प्राणिनां प्राणजीविनाम् ॥२
 पञ्चम्यां स्नपयन्तीह नागान्कीरेण ये नराः । तेषां कुले प्रयच्छन्ति अभयं प्राणिनां सदा ॥३

विधान द्वारा सारस्वत व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष विद्यावान, धनवान् एवं रक्त कण्ठ होता है तथा सरस्वती जी की प्रसन्नता से वह व्यास की भाँति महान कवि, नारी भी इस के अनुष्ठान द्वारा उपरोक्त फल प्राप्त करती है और तीस सहस्र कल्प तक ब्रह्मलोक में सुसम्मानित होती है । इस सारस्वत नामक व्रत को सुसम्पन्न करने एवं सुनने वाले प्राणी विद्याधर के लोक में तीससहस्र कल्प तक सुप्रतिष्ठित होते हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ष इस उत्तम व्रत विधान द्वारा जो जगजननी सरस्वती जी की अर्चना करते हैं, वे निष्णात् विद्वान्, पवित्र हृदय, मधुरस्वर, रूप सौन्दर्य प्राप्ति पूर्वक कलाओं में अत्यन्त कुशल होते हैं । १३-२०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
 सारस्वत व्रत-वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त । ३५।

अध्याय ३६

नागपञ्चमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! पञ्चमी तिथि नागों के लिए, अत्यन्त प्रिय है और इसी पञ्चमी तिथि में नागों का महान उत्सव भी होता है । वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, धृतराष्ट्र, रैवत, कर्कोटक, और धनञ्जय नामक नागगण प्राणियों को अभय-प्रदान करते हैं । पञ्चमी के दिन जो मनुष्य क्षीर द्वारा नागों को

शप्ता नागा यदा मात्रा इद्वामानः दिवानिशम् । निर्वापिता गवां क्षीरैस्ततः प्रभृति बल्लभाः ॥४

युधिष्ठिर उवाच

मात्रा शप्ता: कथं नागाः किमुद्दिश्य च कारणम् । कथं दा तस्य^१ शापस्य विनाशोऽभूज्जनार्दन ॥५

श्रीकृष्ण उवाच

उच्चैऽभद्रश्वराजश्च इवेतवर्गोऽमृतोद्भूवः । तं दृष्ट्वा चाब्रवीत्कूर्त्तर्गानां जननीं स्वसाम् ॥६
अश्वरत्नमिदं इवेतं पश्यपश्यामृतोद्भूवम् । कृष्णश्च वीक्ष्यसे बालान्सर्वश्वेतानुताद्य वै ॥७

विनतोवाच

सर्वश्वेतो हयवरो नायं कृष्णो न लोहितः । कथं त्वं दीक्षसे कृष्णं विनतोवाचं तां स्वसाम् ॥८

कद्रूरुवाच

बीक्षेऽहमेकतयना कृष्णबालसमन्वितम् । द्विनेत्रा च त्वं विनते न पश्यति पणं कुरु ॥९

विनतोवाच

अहं दासी भवित्री ते कृष्णकेशे प्रदर्शिते । न चेद्दर्शयसे कद्रु मम दासी भविष्यति ॥१०
एवं ते विषणं कृत्वा गते क्रोधसमन्विते । सुषुप्ते प्राज्यदोषे तु कद्रूर्जिह्वर्मचितयत् ॥११

स्नान कराता है, उसके कुल में वे नागगण अभय दान देते हैं। क्योंकि अपनी माता के द्वारा शाप प्राप्त कर जिस समय अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे, उस समय उसी पञ्चमी के दिन गौओं के दुग्ध द्वारा स्नान कराने पर उनकी पीड़ा शान्त हो गई थी, इसीलिए वह उन्हें अत्यन्त प्रिय है। १-४

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन ! माता द्वारा नागों को शाप क्यों मिला, उसका उद्देश्य एवं कारण क्या है ? और उस शाप का शमन कैसे हुआ, बताने की कृपा कीजिये ।५

श्रीकृष्ण बोले—एक समय अश्वराज उच्चैश्वरा को देखकर नागों की माता कद्रु ने जो अमृत के साथ उत्पन्न होने के नाते श्वेत वर्ण का था, अपनी भगिनी विनता से कहा—इस अश्व रत्न को देखो, जो अमृत से उत्पन्न बताया जाता है, उसके सूक्ष्म काले बाल तुम्हें दिखायी दे रहे हैं या समस्त अंग में श्वेत ही बाल देख रही हो । ६-७

विनता ने कहा—यह सर्वश्रेष्ठ अश्व सर्वाङ्ग श्रेत है, और न कृष्ण न रक्तवर्ण और तुम उसे कृष्ण वर्ण कैसे देख रही हो ? इस प्रकार विनता के कहने पर ।८

कद्रू बोली—विनते ! मेरे एक ही नेत्र है किन्तु मैं उसके काले बाल को देख रही हूँ, और तुम्हारे दो नेत्र हैं, तू नहीं देख रही है ? अच्छा तो प्रतिज्ञा कर ! ९

विनता ने कहा—यदि काले बाल उसमें दिखायी दें तो मैं तुम्हारी दासी होकर आजीवन सेवा करूँगी । और कद्रू ! यदि तुम वैसा न दिखा सकी तो तुम्हें मेरी दासी होना पड़ेगा । इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त कुद्ध होकर प्रतिज्ञा करने के उपरांत शयनागार में पहुँच कर शयन किया, किन्तु कद्रू ने कुछ कपट

आहूय पुत्रान्प्रोवाच बाला भूत्वा हृयोत्तमे । तिष्ठध्वं विपणौ जेष्ठे विनतां जयगृद्धिनीम् ॥१२
 प्रोचुस्ते जिह्यबुद्धिं तां नागाः कद्म् विगृह्ण च । अधर्म एष तु महान्करिष्यामो न ते वचः ॥
 अशपद्विषिता कद्मः पावको वः प्रधक्ष्यति ॥१३
 गते बहुतिथे काले पाण्डवो जनमेजयः । सर्पसत्रं स कर्ता वै भूमावन्यैः सुदुष्करम् ॥१४
 तस्मिन्सत्रे च तिरमांशुः पावको भक्षयिष्यति । एवं शप्त्वा तदा कद्मः प्रत्युवाच न किञ्चन ॥१५
 मात्रा शप्तस्तदा नागः कर्तव्यं नान्वपद्यत । वासुकिर्दुखसंपत्तः पपात भुवि सूच्छितः ॥१६
 वासुकिं दुखितं दृष्ट्वा ब्रह्मा प्रोवाच सांत्वयन् । मा शुचो वासुकेऽत्यर्थं शृणु मद्वचनं परम् ॥१७
 यायादरकुले जातो जरत्कारुरिति द्विजः । भविष्यति महातेजास्तस्मिन्काले तपोनिधिः ॥१८
 भगिनीं च जरत्कारं तस्य त्वं प्रतिदास्यसि । भविता तस्य युत्रोऽसावस्तीक इति विश्रुतः ॥१९
 स तत्सत्रं प्रवृद्धं वै नागानां भवदं महत् । निषेधयिष्यति मुनिर्वाग्मिभः सम्पूज्य पार्थिवम् ॥२०
 तदियं भगिनी नाग रूपौदार्यगुणान्विता । जरत्कारुर्जरत्कारोः प्रदेया हृविचारतः ॥२१
 यदासौ प्राश्यतेऽरण्ये यत्किञ्चित्प्रवदिष्यति । तत्तदर्तव्यमशेषेण इच्छेच्छेयस्तभूतमनः ॥२२
 पितामहवचः श्रुत्वा वासुकिः प्रणिपत्य च । तथाकरोद्यथा चोक्तं यत्नं परममास्थितः ॥२३
 तच्छ्रुत्वा पन्नगाः सर्वे प्रहर्षोऽफुलललोचनाः । पुनर्जर्तमिवात्मानं भेनिरे भुजगोत्तमाः ॥२४

पूर्ण व्वहार करने का निश्चय किया उसने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा—तुम लोग सूक्ष्म रूप से उस श्रेष्ठ अश्व के अङ्ग में प्रविष्ट हो जाओ, जिससे मैं उस जयाभिमानी विनता को इस प्रतिज्ञा में पराजित कर दूँ । नागों ने उसकी कृपट बुद्धि जानकर कहा—ऐसा करना महान् अधर्म है, अतः तुम्हारी इस आज्ञा को हम लोग नहीं स्वीकार करेंगे । इसे सुनकर कद्म ने उन्हें शाप दिया कि पावक तुम्हें भस्मसात् कर दे । बहुत दिनों के व्यतीत होने पर पाण्डव जनमेजय सर्पसत्र नामक यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ करेंगे जो इस धरातल में अन्य लोगों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है । उसी यज्ञ में प्रचण्ड पावक तुम्हें दग्ध करेगा । इस प्रकार शाप प्रदान कर कद्म ने पुनः कुछ नहीं कहा । माता के शाप प्रदान करने पर वासुकी नाग कर्तव्य च्युत होते हुए अत्यन्त दुःखसंपत्त होने के कारण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । ब्रह्मा ने वासुकी को दुखी देखकर उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—वासुके ! इस प्रकार चिन्तित न हो, और सावधान होकर मेरी बात सुनो ! यायावर देश-देशान्तर में भ्रमण करने वाले के कुल में महातेजस्वी एवं तपोनिधि जरत्कार नामक द्विज उत्पन्न होंगे । उस समय तुम जरत्कार नामक अपनी भगिनी उन्हें अर्पित कर देना, जिससे उनके आस्तीक नामक पुत्र उत्पन्न होगा । जिस समय नागों का भयदायक वह सर्प यज्ञ प्रारम्भ होगा, वह आस्तीक पुत्र वाणी द्वारा राजा को प्रसन्न करते हुए उस यज्ञ को स्थगित करा देगा । इसलिए जरत्कार नामक यह तुम्हारी भगिनी के जो रूप एवं उदार गुण भूषित हैं, जरत्कार नामक द्विज को समर्पित करने में किसी प्रकार के विचार करने की आवश्यकता न रहेगी । उस अरण्य में जरत्कार द्विज के मिलने पर अपने आत्मकल्याणार्थ तुम्हें उसकी सभी आज्ञाओं का पालन करना होगा । पितामह की ऐसी बातें सुनकर नागवासुकी ने विनय-विनश्च होकर सहर्ष उसकी स्वीकृति प्रदान की और उसी समय से उसके लिए प्रयत्न भी करना आरम्भ किया । १०-२३ । इसे सुनकर सभी श्रेष्ठ नागों के नेत्र अत्यन्त हर्षातिरेक द्वारा

अप्लदे तु निमग्नानां घोरे यज्ञाग्निसागरे । आत्तीकस्तत्र भविता प्लब्भूतोऽभयप्रदः ॥२५
 श्रुत्वा स चाग्निराजानमृत्विजस्तदन्तरम् । निवर्तयिष्यति यां नागानां भोहनं परम् ॥२६
 पञ्चम्यां तच्च भविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान् । तस्मादियं^१ महाराज पञ्चमी दयिता शुभा ॥२७
 नागानां हर्षजननो दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा । दत्ता तु भोजनं पूर्वं ब्राह्मणानां तु कामतः ॥२८
 विसुज्य नागाः प्रीयन्तां ये केचित्पृथिवीतले । हिमाचले ये वसन्ति येऽंतरिक्षे दिविस्थिताः ॥२९
 ये नदीषु महानागाः ये सरःस्वभिगामिनः ॥३०

नागान्विप्रांश्च सन्मूज्य विसुज्य च यथार्थसः । ततः पश्चाच्च भुञ्जीयात्सह भृत्यैर्न्नराधिष्ठ ॥३१
 पूर्वं मधुरम्ब्रीयात्स्वेच्छया तदनन्तरम् । एवं^२ नियमयुक्तस्य यत्कलं तन्निबोध मे ॥३२
 भूतो नागादुरं याति पूज्यमामोऽन्सरोगांः । विमानवररगारुदो रुमते कालमीप्तितम् ॥३३
 इह चागत्य राजासौ सर्वराजवरो भवेत् । सर्वरत्नसमृद्धश्च बाहनाढदद्यच जायते ॥३४
 पञ्चजनमन्यसौ राजा द्वापरेद्वापरे भवेत् । आधिव्याधिविनिर्मुक्तः पत्नीपुत्रसङ्हायवान् ॥३५
 तस्मात्मूज्याश्च नागाश्च^३ घृतक्षीरादिना सदा

विकसित कमल की भाँति खिल उठे । उस दिन उन लोगों ने अपने को पुनः जन्म ग्रहण करने के समान समझा । सभी लोगों में यह चर्चा होने लगी कि—उस घोर एवं अगाध यज्ञ-अग्निसागर के प्रस्तुत होने पर उससे पार होने के लिए केवल आस्तीक ही, अभ्यप्रद नौका होंगे तथा आस्तीक भी इसे सुनकर नागों के सम्मोहनार्थ आरम्भ यज्ञ को स्थगित करने के लिए अग्नि, राजा, और क्रत्विजों को क्रमशः विनय-विनाप्रपूर्वक उसरो निवृत्त करने की चेष्टा करेंगे । ब्रह्मा ने लेलिहों (नागों) को बताया है कि यह सब पञ्चमी के दिन होगा । इसीलिए महाराज ! यह पञ्चमी तिथि नागों को अत्यन्त प्रिय है जिस हर्षजननी को पहले ब्रह्मा ने नागों को प्रदान किया था । अतः उस दिन ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजनों से संतुष्ट करके ‘नागगण मुक्त पर प्रसन्न रहें’ ऐसा कहकर कुछ लोग इस भूतल में उनके विसर्जन करते हैं । नराधिष्ठ ! हिमालय, अन्तरिक्ष, स्वर्ण नदी, सरोवर, बावली, एवं तडाग आदि में निवास करने वाले उन महानागों को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार नागों और ब्राह्मणों को प्रसन्नता पूर्वक विसर्जन करके पश्चात् परिजनों समेत भोजन करना चाहिए । सर्वप्रथम मधुर भोजन पश्चात् यथेच्छ भोजन करने आदि सभी नियमों के सुसम्पन्न करने वाले को जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, मुनो ! २४-३२। देहावसान होने पर यह परमोत्तम विमान पर सुखासीन एवं अप्सराओं द्वारा सुसेवित होकर नागलोक की प्राप्ति कर यथेच्छ समय तक सुखोपभोग करने के अनन्तर इस मर्त्य लोक में जन्म ग्रहण कर सर्वश्रेष्ठ राजा होता है, जो समस्त रत्नों से सुसृद्ध एवं अनेक प्रकार के वाहनों से सदैव सुसज्जित होता है । पाँच जन्म तक प्रत्येक द्वापर युग में सर्वमान्य राजा होता है, जो आधि व्याधि रोगों से मुक्त होकर पत्नी पुत्र समेत सदैव, आनन्दोपभोग करता है । इसलिए धी, क्षीर आदि से सदैव नागों की अर्चना करनी चाहिए । ३३-३५

१. इह । २. एतेन ब्रतमुख्येन । ३. मान्याश्च ।

युधिष्ठिर उवाच

दशन्ति यं नरं कृष्ण नागाः क्रोधसमन्विताः । भवेत्किं तस्य दष्टस्य विस्तराद्बूहि मां हरे ॥३६

श्रीकृष्ण उवाच

नागदष्टो नरो राजन्प्राप्य मृत्युं व्रजत्यथः । अधों गत्वा भवेत्सर्वे निर्दिष्टो नात्र संशयः ॥३७

युधिष्ठिर उवाच

नादष्टः पिता यस्य भ्राता माता सुहृत्सुतः । स्वसा वा दुहिता भार्या किं कर्तव्यं वदत्त्व मे ॥३८

मोक्षाय तस्य गोविन्द दानं व्रतमुपोषितम् । बूहि मे यदुशार्दूल घेन स्वर्गतिमाप्नुयात् ॥३९

श्रीकृष्ण उवाच

उपोष्या पञ्चमी राजन्नागानां पुष्टिर्द्विनी । वर्षमेकं तु राजेन्द्र विधानं शृणु यादृशम् ॥४०

मासे भाद्रपदे या तु शुक्लपक्षे महीपते । सा च पुण्यतमा प्रोक्ता ग्राह्या सद्गतिकाम्यया ॥४१

जेया द्वादश वर्षाते पञ्चम्ये भरतर्षभः । चतुर्थ्यमिकः भक्तं तु तस्यां नक्तं प्रकोर्तितम् ॥४२

भूरिचन्द्रमयं नागमध्यवा कलघौतजम् । कृत्वा दारुमयं चापि उत्ताहो मृण्मयं नृपैः ॥४३

पञ्चम्यामर्चयेद्दूकत्या नामं पञ्चफणं शृणु । करवीरैस्तथा पद्मर्जातीपुष्पैः सुखोभनैः ॥४४

गन्धपुष्पैः सनैवेद्यैः पूज्य पन्नगसत्तमम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद् घृतपायसमोदकैः ॥४५

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! कुद्ध होकर नाग जिसे काट लेता है, उसकी कौन गति होती है, विस्तार पूर्वक बताने की कृपा कीजिये । ३६

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! नाग के काटने पर मृत्यु द्वारा वह प्राणी अधोगति (पाताल) पहुँच कर विषहीन सर्प होता है । ३७

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन् ! नाग के काट लेने पर उस प्राणी के प्रति उसके पिता, माता, मित्र, पुत्र, भगिनी, पुत्री, और स्त्री का क्या कर्तव्य होता है ? गोविन्द, यदुशार्दूल ! उस प्राणी के मोक्षार्थ इस प्रकार कोई दान व्रत अथवा उपवास आदि बताने की कृपा कीजिये, जिसे सुसम्पन्न करने पर उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो जाये । ३८-३९

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! उस प्राणी के मोक्षार्थ इसी पञ्चमी विधि का सविधान उपावस करना चाहिए, जो नागों के लिए अत्यन्त पुष्ट वर्द्धनी है । राजेन्द्र मैं उसके विधान को बता रहा हूँ, जो एक वर्ष तक निरन्तर सुसम्पन्न किया जाता है, सावधान होकर सुनो ! महीपते ! भाद्रपद की शुक्ल पञ्चमी अत्यन्त पुण्यतमा होने के नाते प्राणियों की सद्गति कामना के लिए अत्यन्त प्रशस्त बतायी गयी है । भरतर्षभ ! बारहवर्ष तक निरन्तर उसके सुसम्पन्न करने के उपरांत उसके व्रतोदयापन के निमित्त चतुर्थी में एक भक्त नक्त भोजन करके पञ्चमी के दिन नागी की उस सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा की, जो सुवर्ण, रजत (चाँदी) काष्ठ अथवा मृतिका द्वारा प्रयत्न पूर्वक निर्मित रहती है, और पाँच फलों से सुसज्जित भी करें, कमल, चमेली एवं अन्य सुगन्धित पुष्प, और नैवेद्य द्वारा अर्चना करके घृत समते पायस एवं मोदक

नारायणबलिः कार्यः सर्पदष्टस्य देहिनः । दाने पिण्डप्रदाने च ब्राह्मणानां च तर्पयेत् ॥४६
 वृषोत्सर्गस्तु कर्तव्यो गते सम्वत्सरे नृप । स्नानं कृत्वोदकं दद्यात्कृष्णोऽत्र प्रीयतामिति ॥४७
 अनन्तो वासुकिः शेषः^१ पद्मः कम्बल एव च । तथा तक्षक नागश्च नागश्चाभ्यर्थे नृप ॥४८
 धृतराष्ट्रः शङ्खपालः कालियस्तदकस्तथा । पिङ्गलश्च महानागो मासिमासि प्रकीर्तिः ॥
 वत्तरान्ते पारणं स्थानमहाब्राह्मणभोजनम् ॥४९
 इतिहासविदे नागः काञ्चनेत छृतो नृप । तथार्जुनी प्रदातव्या सवत्सा कांस्यदोहना ॥५०
 एष पारणके पार्थ विधिः प्रोक्तो विचक्षणैः । कृते द्रवत्वरे तस्मिन्सद्गतिं यान्ति बान्धवाः ॥५१
 ये दन्वश्चकरदनैर्दष्टाः प्राप्ततः द्वाधोगतिष्ठ । वर्षमेकं चरिष्यन्ति भक्त्या ये व्रतमुत्तमम् ॥
 दांष्ट्रिकं मोक्षयते तेषां शुभं स्थानमवाप्स्यति ॥५२
 यश्चेदं शृणुयान्नित्यं पठेद्भूक्त्या समन्वितः । न वै कुटुम्बे नागेभ्यो भयं भवति कुत्रचित् ॥५३

श्रीकृष्ण उवाच

तद्वद्वाद्रपदे मासि पञ्चम्यां श्रद्धयान्वितः । यस्त्वालिख्य नरो नागान्कृष्णवर्णादिवर्णके ॥
 पूजयेद्गन्धपुष्पैस्तु सर्पिर्गुणलुपायसैः ॥५४
 तस्य तुष्टिं समायान्ति पन्नगास्तक्षकादयः । आसप्तमात्कुलात्तस्य न भयं नागतो भवेत् ॥५५

के भोजन से ब्राह्मण को अत्यन्त संतुप्त करें । पश्चात् उस सर्पदष्ट प्राणी के मोक्षार्थ नारायण बलि भी करनी चाहिए । नृप ! दान और पिण्ड दान के समय ब्राह्मणों को भली भाँति संतप्त कर वर्ष के अन्त में उसके लिए वृषोत्सर्ग नामक यज्ञ भी करना चाहिए । स्नान करके उदक दान करते समय ‘कृष्ण प्रसन्न हों’ कहकर पुनः प्रत्येक मास में अत्यन्त अनन्त वासुकी, शेष, पद्म, कम्बल, तक्षक, अवश्यतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक, पिंगल आदि महानागों के नामोच्चारण पूर्वक पूजनोपरांत वर्ष के अन्त में महाब्राह्मण को भोजनादि से तृप्त कर पारण करना चाहिए । इतिहास वेत्ता ब्राह्मण को बुलाकर नाग की सुवर्ण प्रतिमा, जो सवत्सा गौ, और काँसे की दोहनी दान से सुसज्जित रहती है, सप्रेम अर्पित करनी चाहिए । पार्थ ! उसके पारण के निमित्त विद्वानों ने यही विधान बताया है । बन्धुओं द्वारा इस प्रकार इसे सुसम्पन्न करने पर उस प्राणी की अवश्य सकृति होती है । सर्पों के काट लेने पर अधोगति प्राप्त उस प्राणी के निमित्त जो एक वर्ष तक इस उत्तम द्रवत को सुसम्पन्न करेंगे, उससे उस प्राणी की शुभस्थान की प्राप्ति पूर्वक अवश्य मुक्ति होगी । इस प्रकार भक्ति श्रद्धा पूर्वक जो इसे श्रवण अथवा अध्ययन करेंगे, उनके परिवार में नागों का भय कभी नहीं होगा ।४०-५३

श्रीकृष्ण बोले—भाद्रपद मास की पञ्चमी के दिन श्रद्धा भक्ति पूर्वक जो कृष्णादि वर्ण (रंग) द्वारा नागों की प्रतिमा सुनिर्मित कर गन्ध, पुष्प, धृत, गुग्गुल, और खीर द्वारा उसकी अर्चना करता है, उस पर तक्षक आदि नाग गण अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं और उसके सात पीढ़ी तक के वंशजों को नाग भय नहीं होता

१. शङ्खम् । २. पठेद्वा श्रद्धयान्वितः ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नागान्सम्भूजयेहृष्टः । तथा चाभ्युजे मासि पञ्चस्यां कुरुनन्दन ॥५६
 कृत्वा कुशभयान्नागानिंद्राण्या सह पूजयेत् । घृतोदकाभ्यां पयसा स्नापयित्वा विशाम्पते ॥५७
 गोधूमैः पद्मसा स्त्वन्नैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा । यस्त्वस्यां विविधान्नागान्तुचिर्भवत्या समन्वितः ॥५८
 उजयेत्कुरुशार्दूलं तस्य शेषादयो नृप । नागः प्रीता भवन्तीह जान्तिं प्राप्नोति शोभनाम् ॥
 स शान्तिलोकमासाद्य भोदते शाश्वतीः समाः ॥५९
 इत्येतत्कथितं वीर पञ्चमीव्रतमुत्तमम् । तत्रायमुच्यते मंत्रः सर्वदोषनिषेधकः ॥६०
 (ॐ कुरुकुल्ले^१ हुं फट् स्वाहा)

भक्तेन भक्तिसहिताः शतपञ्चमीषु ये पूजयन्ति भुजगाकुमोपहारैः ।
 तेषां गृहेष्वभयदः हि सदैव सर्पाः शश्वत्प्रमोदपरमा रूचयो भवन्ति ॥६१
 इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 नागपञ्चमीव्रतदर्णनं नाम षट्क्रिशतमोऽध्यायः ॥३६

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

श्रीपञ्चमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कथमासाद्यते लक्ष्मीरुद्धर्लभा भुवनत्रये । दानेन तपसा वापि व्रते नियमेन वा ॥१

है । कुरुनन्दन ! अतः नागों की पूजा के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए । विशाम्पते उसी प्रकार आश्विन मास की पञ्चमी के दिन नागों की कुश की प्रतिमा बना कर इन्द्राणी के साथ उन्हें स्थापित कर घृत, उदक और क्षीर के क्रमशः स्नान पूर्वक गेहूँ के चूर्णं (आंटा) और घृत के अनेक भाँति के व्यजनों के समर्पण करते हुए उन्हें श्रद्धा भक्ति समेत अत्यन्त प्रसन्न करता है, उससे कुल में शेष आदि नाग गण अत्यन्त प्रसन्न होकर सदैव शांति प्रदान करते हैं तथा देहावसान के समय शांति लोक प्राप्त कर अनेक वर्षों तक सुखोपभोग करता हूँ । वीर ! इस प्रकार मैंने इस परमोत्तम पञ्चमी व्रत की व्याख्या सुना दी जिसमें समस्त दोष के निवृत्यर्थ यह 'ओं कुरु कुल्ले हुं फट् स्वाहा' मंत्र बताया गया है । भक्ति भावना समेत जो लोग लगभग एक सौ पञ्चमी व्रत एव उस दिग्म पुष्य आदि उपहारों द्वारा नागों की अर्चना करते हैं उनके गृह में सदैव अभय और निरन्तर सौख्य प्रदान नाग गण किया करते हैं ॥५४-६१

श्री भविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
 नाग पञ्चमी व्रत वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६।

अध्याय ३७

श्रीपञ्चमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यदुश्रेष्ठ ! आप मेरे विचार से सम्पूर्ण वेत्ता हैं, अतः मुझे यह बताने की कृपा

१. ओं वाच कुल्ले हुं फट् स्वाहा । २. सुभगोपहारैः ।

जपहोमनमस्कारैः संस्कारैर्वा पृथग्विधैः । एतद्वद् यदुश्रेष्ठ सर्ववित्तं मतो मम ॥२
श्रीकृष्ण उवाच

भृगोः ख्यात्यां स्मुत्पश्चः पूर्वं श्रीः श्रूयते शुभा । वासुदेवाय सा दत्ता मुनिना मानवृद्धये ॥३
वासुदेवोऽपि तां प्राप्य पीनोऽन्तपयोधराम् । पद्मपत्रविशालाक्षीं पूर्णचन्द्रानिभाननाम् ॥४
भाभासितदिग्गभोगं साक्षात् भानोः प्रभामिव । नितम्हाडम्बरवर्तीं मत्तमातङ्गगामिनीम् ॥

रेमे सह तदा राजन्विभ्रमेद्भ्रान्तचित्तया ॥५

सा च विष्णुं जगन्जिष्णुं पतिं त्रिजगतां पतिम् । प्रत्य कृतार्थमात्मानं भेने मानयशोधना ॥६
हृष्टं पुष्टं जगत्सर्वमभवद्भावितं तदा । लक्ष्या^१ निरीक्षितं चैव सानन्दं हि महीतलम् ॥७
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यमनाकन्दमनाकुलम्^२ । जगदासीदनुद्भ्रान्तं प्रशान्तोपद्रवं तथा ॥८
दिवि देवा मुमुदिरे दानवा दैत्यमागताः । विस्फारितफणाभोगा नागाश्रैव रक्षातले ॥९
हृष्टये ब्राह्मणैर्वैदौ भुज्यते त्रिदिवैर्हविः । चातुर्वर्णमहङ्कारीं पात्यते पार्थं पार्थिवं ॥१०
दिरोचनभृतिभिरुष्ट्वैवं दैत्यसत्तमैः । तपस्तप्तुमध्यारब्धमग्रिमाश्रित्य संयतेः ॥११
सोमसंस्थाहविः संस्थापाकसंख्यादिभिर्मतेः । सदाचारैः समारब्धमिष्टं स्वष्टाभिलाषिभिः ॥१२

कीजिये कि—तीनों लोकों में पर दुर्लभ लक्ष्मी की प्राप्ति किस दान, तप, व्रत, नियम, जप, हवन, नमस्कार एवं अन्य पृथक् संस्कार द्वारा होती है । १-२

श्रीकृष्ण बोले—सर्वप्रथम भी श्री का जन्म भृगु के यहां हुआ था, यही सुना जाता है । उसे महर्षि ने मानवृद्धर्थ उस लक्ष्मी को वासुदेव के लिए अर्पित किया । वासुदेव ने भी उस लक्ष्मी को, जो स्थूल एवं उत्तम पर्योधर, कमल पत्र के समान विशाल नेत्र, पूर्ण चन्द्र के समान मुख आदि अंगों से अत्यन्त मनमोहक थी, प्राप्त कर राजन् ! अपनी आभा से समस्त दिशाओं को पूर्ण प्रकाशित करने वाली एवं साक्षात् सूर्य प्रभा के समान प्रभा पूर्ण, विशाल कमनीय निलम्ब से विभूषित और मत्तगजेन्द्र की भाँति गमन करने वाली उस नारी रत्न लक्ष्मी के साथ विष्णु ने रमण करना आरम्भ किया, जो विलास पूर्ण दृष्टि से भ्रान्त चित्त वाले व्यक्ति की भाँति इधर-उधर देख रही थीं । संसार के सर्वश्रेष्ठ विजेता, एवं तीनों लोकों के प्रभु भगवान् विष्णु को पतिरूप में प्राप्त कर उस यशस्विनी एवं मानिनी लक्ष्मीने भी अपने को कृतार्थ माना । उसकी प्रसन्नता वश यह सम्पूर्ण जगत् अत्यन्त हृष्ट पुष्ट हो गया था । लक्ष्मी श्री कृष्ण दृष्टि से अनुग्रहीत होने पर इस भूमण्डल में चारों ओर आनन्द सागर उमड़ रहा था—सर्वशा क्षेम, सुभिक्ष, आरोग्य, एवं सुख शांति का आवाह था । उस समय जगत् में किसी प्रकार का कष्ट प्रद कलह एवं अशान्ति नहीं थी—स्वर्ग में देवगण, दानव, दैत्य और रसातल में नागलोक अपने फणों को विस्तृत किये सुखोपभोग कर रहे थे । ब्राह्मणों द्वारा अग्नि में डाली गयी हवि की आहुतियों को ग्रहण कर देवगण अत्यन्त आनन्द मन्न थे । पार्थिव गण चारों वर्णों का उत्तम पालन पोषण कर रहे थे । उसे देखकर विरोचन आदि श्रेष्ठ दैत्यों ने क्षोभ प्रकट करते हुए संयम पूर्वक अग्निहोत्र समेत तप करना आरम्भ किया । ३-११ सोम, हवि, एवं पाक आदि द्वारा अनेक भाँति के यज्ञ भी उन लोगों ने सुसम्पन्न किया, क्योंकि सदाचार आदि द्वारा वे लोग अपना

१. लक्ष्यायं पालपञ्चम्यां सदृष्टे च महीतलम् । २. अनामयम् ।

एवं धर्मप्रधानैस्तैर्वेदवादरत्नमधिः । जगदासीत्समाकान्तं विक्रमेण क्रमेण तु ॥१३
लक्ष्मीविलासप्रभवो देवानामभवन्मदः । मदाच्छीलं च शौचं च सत्यं सद्यो व्यनीनशन् ॥१४
सत्यशौचविहीनान्तान्देवान्संत्यज्य चञ्चलान् । जगाम दानवकुलं कुलदेवानुरागतः ॥१५
लक्ष्मा भावितदेहैस्तैः उनरुद्धत्तमानसैः । व्यवहर्तुं समारब्धमन्यायेन मदोद्धैः ॥१६
वयं वेदा वयं ज्ञाना वयं विद्या वयं जगत् । ब्रह्मविष्णुशङ्कराद्या वयं सर्वे दिवौकौसः ॥१७
अहङ्कारविमूढान्स्ताञ्जात्वा दानवसत्तमान् । सागरं सा विवेशाथ भ्रान्तचित्ता भृगोः सुता ॥१८
क्षीराब्धिमध्यगतया लक्ष्म्या क्षीणार्थसञ्चयम् । निरानन्दगतश्रीकमभवद्भूवनत्रयम् ॥१९
मतश्रीकमथात्मानं मत्वा शम्बरसूदनः । प्रच्छाङ्गिरसं विश्वं ब्रूहि किञ्चिद्दहतं मम ॥२०
येन सम्प्राप्यते लक्ष्मीर्लभ्या न चलते पुनः । निश्चलापि सुहृन्मित्रैर्भूर्ग्या भवति सा सुते ॥२१
न सा श्रीत्यभिमन्तव्यः कन्या सा पाल्यते गृहे । परार्थं या सुहृन्मित्रैर्भूत्यैर्नेषोपभुज्यते ॥२२
शक्तस्यैतद्वचः श्रुत्वा बृहस्पतिर्हदारधीः । कथयामास संचित्य शुभं श्रीपञ्चमीव्रतम् ॥२३
यत्पुरा कस्यचित्प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । तदस्मै कथयामास सरहस्यमरोषतः ॥२४
तच्छुत्वा कर्तुमारब्धं सुरेशोन् सुरैस्तथा । दैत्यदानवगन्धवर्यक्षेः प्रक्षोणकलमष्टैः ॥२५
सिद्धैः प्रसिद्धचरितविष्णुद्वा प्रभविष्णना । ब्राह्मणैर्ब्रह्मतत्त्वज्ञैः समर्थैः 'पार्थिवैः सह ॥२६

अभीष्ट सिद्ध करना चाहते थे । कुछ दिनों में उन लोगों के वेद-वाद परायणता आदि धर्म के कृत्यों और विक्रयों द्वारा सम्पूर्ण जगत् आक्रान्त हो उठा और देवों को लक्ष्मी पिलास के कारण उस समय सर्वथा उन्माद हो गया था । जिससे उस मद के कारण उनका शील, शौच (पवित्रता) और सत्य उसी समय नष्ट हो गया : पुनः सत्य शौचादि से हीन एवं चञ्चल उन देवों को त्याग कर लक्ष्मी ने अनुराग पूर्ण होकर दानव कुल में प्रस्थान किया । लक्ष्मी-विलास में आसक्त होने के नाते उन मदोद्धै दानवों ने भी सर्वत्र अन्याय पूर्ण व्यवहार करना आरम्भ किया—वेद, यज्ञ, विद्या, जगत्, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर एवं समस्त देवता हमीं लोग हैं—इस भाँति अहंकार विमूढ़ दानवों को देख कर भृगुपुत्री लक्ष्मी ने भ्रान्त चित्त होकर सागर में प्रविष्ट हो गई । क्षीर सागर के मध्य में लक्ष्मी के प्रविष्ट हो जाने पर सभी जगह अर्थ संचय क्षीण होने लगा और कुछ ही दिन में तीनों लोक से आनन्द और श्री की समाप्ति हो गई । उस समय शम्बर सूदन (इन्द्र) ने अपने को भी हीन देखकर अंगिरा पुत्र वृहस्पति से कहा—विप्र ! किसी इस प्रकार के व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिसके द्वारा ऐसी लक्ष्मी की प्राप्ति हो, जो चल न हो अर्थात् सदैव अचल बनी रहे । मुने ! निश्चल होने पर भी सुहृद मित्र आदि द्वारा उसका उपभोग भली भाँति हो किन्तु उसे भी न समझकर कन्या की भावना से अपने घर पालन-पोषण करे और परार्थ होने पर सुहृत् मित्र एवं सेवक आदि उसका उपभोग न कर सके । शक्र की ऐसी बात सुनकर उदारचेता वृहस्पति ने कहा—श्री के निमित्त इस परमोत्तम पञ्चमी व्रत को सविधान सुसम्पन्न करना चाहिए । १२-२३ । यह उत्तम व्रत पहले समय में किसी के लिए बताया गया था, उसी को मैं सरहस्य तुम्हें बता रहा हूँ । यह सुनकर सुरेश ने उसे सविधान सुसम्पन्न किया और उसी भाँति दैत्य, दानव, गंधर्व, निष्पाप यक्ष, सिद्ध, प्रभावशाली विष्णु और राजाओं के साथ ब्रह्मतत्ववेत्ता ब्राह्मणों ने सुसम्पन्न किया किन्तु उसी ने सात्विक भावना से राजस और

कैश्चित्सत्त्वकभावेन राजसेनापैररपि । तामसेन तथा कैश्चित्कृतं व्रतमिदन्तथा ॥२७
 व्रते समाप्ते भूयिष्ठे निष्ठया परया प्रभो । देवानां दानदानां च युद्धमासीदथोद्गतम् ॥२८
 निर्मथ्य भुजवीर्येण सागरं सरितां पतिम् । समाहरामो ह्यमृतं हिताय त्रिदिवौकसाम् ॥२९
 इत्येवं समयं कृत्वा भग्नन्युर्वरणालयम् । मन्थानं मन्दरं कृत्वा वेत्रं कृत्वा तु दामुकिम् ॥३०
 मथ्यमानजलाज्जातश्चन्द्रः शीतांशुरुज्ज्वलः । अनन्तरं समुत्पन्ना लक्ष्मीः शीराब्धिमध्यतः ॥३१
 तथा विलोकिताः सर्वे दैत्यदानदसत्तमाः । आलोक्य तत् जगामाशु विष्णोर्वक्षःस्थलं शुभम् ॥३२
 विधिना विष्णुना चीर्णं व्रतं तेनाब्धिसम्भवाऽ । शरीरस्था द्वूषास्य विभ्रमोद्भ्रान्तलोचना ॥३३
 औं च राजसभावेन शक्रेणैतकृतं यतः । ततस्त्रिभुवनैर्घर्यं प्राप्तं तेन महर्द्विकम् ॥३४
 तमरावृतचित्तैस्तु सञ्चीर्णं दैत्यदानवैः । तेन तेषामथैर्घर्यं दृष्टनष्टमभूतिक्ल ॥३५
 एवं सश्रीकमभवत्सदेवासुरमानुषम् । जरच्च जगतां श्रेष्ठं व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥३६

युधिष्ठिर उवाच

कथमेतद्व्रतं कृष्णं क्रियते मनुजैः कदा । प्रारम्भते पार्थते च सर्वं वद यदुत्तम ॥३७

श्रीकृष्ण उवाच

मार्गशीर्णं सिते पक्षे पञ्चम्यां पतगोदये । उपवासस्य नियमं कुर्यादाशुषुहृदि ॥३८
 स्वर्णरौप्यारकूटोत्था ताम्रमृतकाष्ठजाथ वा । चित्रपट्टगतां देवीं लक्ष्मीं क्षमापाल कारयेत् ॥३९

तामस भावना से भी किसी किसी ने इसका आरम्भ किया था, जिससे व्रत के समाप्त होने पर देवों और दानवों का महान् भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ । उसी बीच विष्णु ने देवों के साथ यह नियम दिया कि—देवों के हितार्थ सरित्पति क्षीर सागर को अपनी भुजाओं द्वारा मथ कर अमृत निकालना परमावश्यक है, यह सोंचकर उन्होंने सब के साथ उस वरुणालय (सागर) का मंथन करना आरम्भ किया, जिसमें मंदराचल मथानी, नागवासुकी रससी बनाये गये थे । सर्वप्रथम उस सागर मंथन से उज्ज्वल एवं शीत किरण वाले चन्द्रमा का जन्म हुआ और तदनन्तर क्षीर सागर के मध्य से लक्ष्मी उत्पन्न होते ही सभी देव, ने श्रेष्ठ दानवों को भी देखा किन्तु भगवान् विष्णु के ही वक्षःस्थल का ही उन्होंने आश्रय लिया इसलिए कि विष्णु ने उत्तम विधान द्वारा उस व्रत को सुसम्पन्न किया था । विलास पूर्ण एवं मदभरे नेत्र वाली लक्ष्मीसदैव के लिए विष्णु का ही शरीर अपनाया और शक्र (इन्द्र) ने राजस भाव से उस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे उन्हें तीनों लोक का बहुमूल्य ऐश्वर्य प्राप्त हुआ । दैत्य तथा दानवों ने तामस भाव से उनकी उपासना की थी, जिससे उन्हें ऐश्वर्य की प्राप्ति तो हुई किन्तु देखते देखते वह नष्ट भी हो गया । उसी समय से देव, असुर और मनुष्यों को श्री प्राप्ति होने लगी । २४-३६

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण, यदुत्तम ! मनुष्यों को यह व्रत किस प्रकार और कब प्रारम्भ एवं समाप्त करना चाहिए, बताने की कृपा कीजिये । ३७

श्रीकृष्ण बोले—मार्गशीर्ण मास की शुक्ल पञ्चमी के दिन सूर्योदय होने पर उपवास समेत व्रत के नियमों का पालन आरम्भ करना चाहिए । सुवर्ण, चांदी, पीतल, ताँबे अथवा काष्ठ पर लक्ष्मी की सुन्दर प्रतिमा का निर्माण करे, जिसमें उनके हाथ में छल, पद्म वर्ण, और कमल दल के समान विकसित

पद्महस्तां पद्मवर्णं पद्मा पद्मदलेक्षणाम् । दिग्गजेन्द्रैः स्नाप्यमानां काञ्चनैः कलशोत्तमैः ॥४०
 ततो यामन्त्रये जाते निश्चगायां गृहेऽथ वा । स्नानं कुर्यादिसम्भ्रान्तं शक्रबदुपचारतः ॥४१
 देवान्पितृंश्च सन्तार्प्य ततो देवगृहं ऋजेत् । तत्रस्थां पूजयेदेवीं पुष्पैस्तत्कालसम्भवैः ॥४२
 चप्लायै नमः पादौ चंचलायै च जानुनी । कटि॒ कमलवासिन्यै नार्भं स्थात्यै नमोनमः ॥४३
 स्तनौ मन्मथवासिन्यै ललितायै भुजद्वयम् । उत्कंठितायै कण्ठं च माधव्यै मुखमण्डलम् ॥४४
 नमः श्रियै शिरः पूज्य दद्यान्नेवद्यमादरात् । फलानि च यथालाभं विशुद्धान्धान्यज्ञचयान् ॥४५
 ततः सुवासिनी पूज्या कुसुमैः कुंकुमेन च । भजेयेभूदुरान्नेन प्रणिपत्य दिसर्जयेत् ॥४६
 ततस्तु तण्डुलप्रस्थं धृतपात्रेण संयुतम् । ब्राह्मणाय प्रदातव्यं श्रीशः सम्रीयतामिति ॥४७
 निर्वर्त्य तदशेषेण ततो भुञ्जीत वायतः । मासानुमासं कर्तव्यं विधिनानेन भारत ॥४८
 श्रीर्लक्ष्मीः कमला सम्पदुमा नारायणी तदा । पद्मा धृतिः स्थितिः पुष्टिर्द्विः सिद्धिर्थाक्रमम् ॥
 मासानुमासं राजेन्द्र प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥४९
 ततश्च द्वादशे भासि सम्प्राप्ते पञ्चमे दिने । वस्त्रमण्डपिकां कृत्वा गुष्पगन्धाधिवासिताम् ॥५०
 शश्यायां स्थापयेल्लक्ष्मीं सर्वोपस्कारसंयुताम् । मौत्तिकाष्टकसंयुक्तां नेत्रपट्टावृत्तस्तनीम् ॥५१
 सप्तधान्यसमोपेतां रसधातुसमन्विताम् । पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसत्कृताम् ॥५२
 दद्यात्सम्पूज्य विधिवद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । व्यासाय वेदविदुषे यस्य वा रोचते स्वयम् ॥
 सोपस्कारां सवत्सां च धेनुं दत्त्वा क्षमापयेत् ॥५३

एवं विशाल नेत्र हों, और दिक्षपाल (गजेन्द्र गण), सुवर्ण कलशों द्वारा उन्हें स्नान करा रहे हों । तदनन्तर वसंत तीसरे पहर किसी नदी अथवा गृह में इन्द्र की भाँति उपचार समेत स्नान करके देव पितृतर्पण आदि नित्य कर्म की समाप्ति के अनन्तर देव मन्दिर में प्रविष्ट होकर समाप्ति के पुष्पों द्वारा उनकी सविधि अर्चना करे । चपलायै नमः से चरण, चंचलायै नमः से जानुनी (घुटने), कमलवासिन्यै नमः से कटि, स्थात्यै नमः से नाभि, मन्मथवासिन्यै नमः से रत्न, ललितायै नमः से वाद्, उत्कण्ठितायै नमः से कण्ठ, माधव्यै नमः से मुख, और श्रियै नमः से शिर की अर्चना करके उन्हें सादर फल, हरे भरे सस्य अर्पित करे । ३८-४५। पश्चात् पुष्प, और कुंकुम द्वारा सौभाग्यवती की पूजा और मधुर भोजन से तृप्त कर अनुनय विनय पूर्वक विसर्जन करने के उपरांत धृत फल समेत एक सेरे तण्डुल ब्राह्मण को अर्पित करते हुए श्रीशः प्रीयताम् (भगवान् विष्णु प्रसन्न हों) कहकर अनन्तर सबके साथ मौन होकर भोजन करे । भारत ! इस प्रकार प्रत्येक मास के विधान कर्तव्य में श्री, लक्ष्मी, कमल, सम्पद, उमा, नारायणी, पद्मा, धृति, स्थिति, वृष्टि, और सिद्धि नामों के उच्चारण पूजन एवं संकीर्तन करता रहे । बारहवें मास में पञ्चमी के दिन पुष्प और सुगन्ध से अधिवासित परमोत्तम वस्त्र के सौन्दर्य पूर्ण मण्डप बना कर उसमें सुसज्जित शश्या पर जो समग्र साधनों से विभूषित की गयी हो, अधिवासन के उपरांत लक्ष्मी की प्रतिमा को उस पर स्थापित करके, जिनके आठ मोतियों से केश, सूक्ष्म वस्त्र से स्तन और परिधान (साड़ी) वस्त्र से सुसज्जित हो, और सप्तधान्य, रस, धानु, पादुका, उपानह, छत्र, भोजन, वस्त्र, आसन आदि से सुशोभित हों, पूजनोपरांत किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को जो व्यास की भाँति वेद का निष्णात विद्वान् अथवा जिसे इच्छा हो सादर समर्पित कर कांस की दोहनी समेत सवत्सा गौ के दान करके क्षमा प्रार्थना करे—क्षीर सागर के

शीराविधमथनोद्भूते विष्णोर्वक्षस्थलालये । सर्वकामप्रदे देवि कृद्धिं यच्छ नमोस्तु ते ॥५४
ततः सुवासिनीः पूज्या: वस्त्रैराभरणैः शुभैः । भोजयित्वा स्वयं पश्चाद्बूज्यीत सह बन्धुभिः ॥५५
एवं यः कुरुते पार्थं भक्त्या श्रीपञ्चमीव्रतम् । तस्य श्रीर्भवने भाति कुलानामेकविंशतिः ॥५६
नारी वा कुरुते या तु प्राप्यानुज्ञां स्वर्भर्तृतः । सुशागा दर्शनीया च बहुपुत्रा च जायते ॥५७

श्रीपञ्चमीव्रतमिदं दयितं मुरारेर्भक्त्या सप्ताचरति पूज्यभूगोस्तनूजाम् ।

राज्यं निजं स भूवि भव्यजनोपभोगान्भुदत्वा प्रयाति भूवदं मधुसूदनस्य ॥५८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

पञ्चमीव्रतकल्पे पञ्चमीव्रतनिरूपणं नाम सप्तर्त्रिशोऽध्यायः । ३७

अथाष्टट्रिशोऽध्यायः

विशोकषष्ठीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

षष्ठीविधानमधुना कथयस्व जनार्दन । सर्वव्याधिप्रशमनं सर्वकर्मफलप्रदम् ॥१
श्रुतं मया पूज्यमानो भानुः सर्वं प्रयच्छति । दिवाकराराधनं मे तस्मात्कथय केशव ॥२

मंथन से उत्पन्न विष्णु के वक्षस्थल में निवास करने वाली एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाली देवि ! मुझे यथेच्छ कृद्धि प्रदान कीजिये, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ ! अनन्तर सौभाग्यवती स्त्री की वस्त्र और आभूषणों द्वारा पूजन एवं उत्तम भोजन से संतुष्ट करने के पश्चात् वान्धवों समेत स्वयं भोजन करे । पार्थ ! इस प्रकार भक्तिपूर्वक इस पञ्चमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी के गृह में इक्कीस पीढ़ी तक लक्ष्मी का अचल निवास रहता है, तथा पति की आज्ञा प्राप्त कर इसे सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी सौभाग्यवती, परमसौन्दर्य और अनेक पुत्रों की प्राप्ति करती है । इस प्रकार पञ्चमी व्रत को जो भगवान् मधुसूदन को अत्यन्त प्रिय है, सुसम्पन्न करते हुए भृगुपुत्री लक्ष्मी की भक्ति पूर्वक आराधना करता है, वह इस भूतल में राज्य पद पर भूषित होकर अनेक भव्य भोगों के उपरांत देहावसान के समय सादर विष्णु लोक की प्राप्ति करता है । ४६-५८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बाद के पञ्चमी व्रत कल्प में

श्रीपञ्चमी व्रत वर्णन नामक संतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३७।

अध्याय ३८

विशोकषष्ठीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन ! मुझे इस समय वह षष्ठी विधान बताने की कृपा कीजिये, जिससे समस्त व्याधियों के शमन और समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त होती है । केशव ! मैंने यह भी सुना है कि भानु की आराधना करने पर समस्त सुखों की प्राप्ति होती है, अतः दिवाकर का आराधना-विधान बताने की कृपा अवश्य करें । १-२

श्रीकृष्ण उवाच

विशोकषष्ठीमतुलां वक्ष्यामि मनुजोत्तम । यामुपोष्य नरः शोकं न कदाचिदिह जायते ॥३
 माघे कृष्णतिलैः स्नातः पञ्चम्यां शुक्लपक्षतः^१ । कृताहारः कृशराया दन्तधावनपूर्वकम् ॥४
 उपवासनतं कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि । ततः प्रभाते चेत्थाय कृतस्नानस्ततः शुचिः ॥५
 कृत्वा तु काञ्चनं पञ्चमकोऽयमिति पूजयेत् । करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च ॥६
 पथा विशेषं भद्रं त्वयैवादित्यसर्वदा । तथा विशोकता मे स्यात्तद्वक्तिर्जन्मजन्मनि ॥७
 एवं सम्पूज्य षष्ठ्यां तु शक्त्यां सम्पूजयेद्द्विजान् । सुप्त्वा सम्प्राय गेमूत्रमुत्थाय कृतनिश्चयः^२ ॥८
 सम्पूज्य विप्रमन्त्रेण गुडपात्रसमन्वितः । सुसूझमवस्त्रयुगलं ब्राह्मणाय निदेदयेत् ॥९
 अतैललब्धं भक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः । ततः पुराणश्वर्णं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥१०
 अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः । कुर्याद्यावत्युनर्माधशुद्धपक्षस्य सप्तमी ॥११
 ब्रतान्ते कलशं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् । शश्यां सोपस्करां तद्वत्कपिलां च पयस्त्वनीम् ॥१२
 अनेन विधिना यस्तु वित्तशाठ्यविवर्जितः । विशोकषष्ठीं कुरुते स याति परामं गतिम् ॥१३
 यावज्जन्मसहस्राणां साश्रकोटिशतं भजेत् । तावन्न शोकमभ्येति रोगदौर्गत्यवर्जितः ॥१४
 यं यं प्रार्थयते काङ्गं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम् । निष्कामं कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति ॥१५

श्रीकृष्ण बोले—नरश्रेष्ठ ! मैं तुम्हें अनुपम विशोक षष्ठी के विधान बता रहा हूँ, जिसमें उपवास रहने पर मनुष्य को कभी किसी प्रकार का शोक नहीं होता है । माघ मास में कृष्ण पञ्चमी के दिन काले तिल से स्नान कर कृशराज (खिचड़ी) के भोजन कर रात्रि में ब्रह्मर्चय ब्रत पालन करने के उपरांत प्रातःकाल दंतधावन पूर्वक उपवास के नियम पालन करते हुए पवित्रता पूर्ण स्नान नियम के उपरांत सुवर्ण के अष्टदल कमल को सूर्य मान कर रक्त कनेर पुष्प एवं रक्त वस्त्र द्वारा उनकी अर्चना कर क्षमा प्रार्थी होकर कहे कि—अदित्य देव ! आपकी प्रसन्नता से सभी ब्राह्मणों का शोक नष्ट होता है, अतः मुझे भी सर्वदा के लिए शोक हीन करते हुए प्रत्येक जन्म में अपनी भक्ति प्रदान करते रहे । षष्ठी के दिन इस प्रकार उनकी आराधना करके ब्राह्मणों की पूजा के उपरांत गोमूत्र पान पूर्वक शयन कर रात्रि व्यतीत करे परश्वात् सप्तमी के दिन प्रातः काल नित्य नियम सुसम्पन्न करे गुड पात्र और दो सूक्ष्म वस्त्र समेत ब्राह्मण पूजन एवं तेल, लवण के त्याग पूर्वक भोजनोपरांत मौन होकर अपने ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ पुराण कथा श्रवण करना आरम्भ करे । इस विधान द्वारा दोनों पक्षों की षष्ठी में ब्रतानुष्ठान सुसम्पन्न करते हुए अगले माघ की शुक्ल सप्तमी के दिन सुवर्ण कमल समेत कलश, साधन समेत शश्या, कपिला एवं पयस्त्वनी गौ, के दान पूर्वक उसकी समाप्ति करे । इस विधान द्वारा जो पुरुष अपने वित्तशाठ्य दोष से सतर्क रहकर इस विशोक षष्ठी ब्रत को भक्ति पूर्वक सुसम्पन्न करता है, उसे परम गति की प्राप्ति पूर्वक सौ कोटि जन्म तक रोग, दुर्गति, एवं शोक हीन सुखों की प्राप्ति होती है, और जिस पदार्थ की कामना करता है उसकी सफलता शीघ्र हो जाती है । जो पुरुष निष्काम होकर इसको सुसम्पन्न करता है उस पर ब्रह्म की प्राप्ति

१. कृष्णपक्षतः । २. कृतनैत्यकः ।

यः चठेच्छृष्टाद्वापि षष्ठों शोकदिनाशनीम् । सोर्पीद्र लोकमास्तोति न दुःखी जायते क्वचित् ॥१६

ये भास्करं दिनकरं करवीरपुण्ड्रः सम्पूजयन्त्यभिनमन्ति कृतपेपवासाः ।

ते दुःखशोकरहिताः सहिताः सुहृद्भूमौ विहृत्य रविलोकमवाम्बुद्वन्ति ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वद्विंश्चत्त्रिशोऽध्यायः । ३८

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

कमलषष्ठीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि पद्मषष्ठों शुभां तथा । यामुपोष्य नरः पापविमुक्तः स्वर्गभागभवेत् ॥१

मार्गशीर्षे शुभे मासि पञ्चम्यां नियतव्रतः । षष्ठीमुपोष्य कमलं कारणित्वा सुकाञ्चनम् ॥२

शर्करासंयुतं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । रूपं च काञ्चनं कृत्वा फलस्यैकस्य धर्मेदित् ॥३

दद्यात्प्रातः कृत्वानां भानुर्में प्रीयतामिति । भक्त्या द्वु विप्रान्सम्पूज्य सप्तम्यां क्षीरभोजनम् ॥४

कृत्वा कुर्यात्कलत्यागं या च स्यात्कृष्णसप्तमी । एतामुपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु ॥५

तद्वै हैमं फलं दत्त्वा भुवर्णं कमलान्वितम् । शर्करापात्रसंयुक्तवस्त्रमालासमन्वितम् ॥६

षष्ठ्योरुभयोर्महाराज यावत्सम्बत्तरं ततः । उपोष्य दद्यात्क्रमशः सूर्यमन्त्रानुदीरयेत् ॥७

होती है। इस प्रकार उस शोक शमन करने वाली षष्ठी को सुसम्पन्न एवं उसकी कथा पढ़ता या सुनाता है, उसे भी इन्द्र लोक की प्राप्ति पूर्वक कभी दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है। उपवास पूर्वक जो कनेर पृष्ठ द्वारा भास्कर के पूजन एवं नमस्कार करता है, उसे दुःख रहित होकर इस धरातल पर अपने मित्रों समेत समस्त सुखोपभोग करने के उपरांत सूर्य लोक की प्राप्ति होती है। ३-१७

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

विशोक षष्ठी व्रत वर्णन नामक अङ्गतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३८

अध्याय ३९

कमलषष्ठी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पद्म षष्ठी नामक एक अन्य व्रत-विधान बता रहा हूँ, जिसमें उपवास रहकर पुरुष पाप मुक्त होकर स्वर्ग की प्राप्ति करता है। मार्गशीर्ष मास की शुभ पञ्चमी में संयम पूर्वक व्रत नियम पालन करते हुए षष्ठी में सुवर्ण कमल की पूजा कर शक्कर समेत उसे सादर किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करते हुए सुवर्ण या चाँदी का एक फल भी प्रातः स्नान के उपरांत समर्पण करे और सूर्य मुङ्ग पर प्रसन्न हों, कह कर ब्राह्मण के पूजन पूर्वक सप्तमी के दिन क्षीर भोजन कर समाप्त करे। इसी क्रम से कृष्ण पक्ष की सप्तमी भी उपवास रहकर फल के त्याग (दान) पूर्वक सुसम्पन्न करना चाहिए। उसमें सुवर्ण के कमल और सुवर्ण का ही फल होना चाहिए, जो शक्कर, वस्त्र और माला समेत पूजनोपरांत ब्राह्मण को अर्पित किया जाता है। महाराज! इस प्रकार दोनों पक्षों की षष्ठी को पूरे वर्ष तक सुसम्पन्न

भानुरको रविर्बह्या सूर्यः शुक्रो हरिः शिवः । श्रीमान्विभावसुस्त्वव्या दरुणः प्रोयतामिति ॥८
 प्रतिमासं च रत्नम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत् । प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत् ॥९
 व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूजयेद्वस्त्रभूषणैः । शक्तराकलशं दद्याद्वैमपद्यफलान्वितम् ॥१०
 यथा फलकरो मासस्त्वद्वृत्तानां सदा रवे । तथानन्तफलादाप्तिरस्तु जन्मनिजन्मनि ॥११
 इमामनन्तफलदां फलष्ठीं करोति यः । स सर्वपापनिनुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥१२
 सुरापानादिकं किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम् । तत्सर्वं नाशमायाति सूर्यलोकं स गच्छति ॥१३
 भूतान्भव्यांश्च पुश्यांस्तारयेदेकविंशतिम् । शृणुयाद्यः पठेद्वापि सोपि कल्याणभाग्भवेत् ॥१४
 हैः फलं सकमलं कलशं सितायाः षष्ठीमुपोष्य विधिवदद्विजपुञ्जवाय ।
 दद्यात्सुरानुरशिरोमणिघृष्टपादं भानुं प्रणम्य फलसिद्धिमुरैति मर्त्यः ॥१५
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वदणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 कमलषष्ठीव्रतं नामैकोत्यारिंशोऽध्यायः । ३९

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

मंदारषष्ठीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् । सर्वकामप्रदां पुण्यां षष्ठीं मन्दारसंज्ञिताम् ॥१

करते हुए प्रत्येक मास में सूर्य के नाम मंत्रों के उच्चारण करने चाहिए । १-७। भानु, अर्क, रवि ब्रह्मा, सूर्य, शुक्र, हरि, शिव, श्रीमात्, विभावसु, त्वष्टा, और वरुण के क्रमशः प्रत्येक मास की सप्तमी में नामोच्चारण पूर्वक 'मुङ्ग पर प्रसन्न हो' कहते हुए सुवर्ण के त्याग करता रहे । पुनः व्रत के समाप्ति में युगल ब्राह्मणों की वस्त्र, आभूषण, शक्तर, कलश, एवं सुवर्ण के कमल और फल के प्रदान समेत पूजनोपरांत क्षमा प्रार्थना करे कि—रवे ! जिस प्रकार आप के भास सदैव फल प्रदान करते रहते हैं, उसी भाँति मुङ्ग भी प्रत्येक जन्म में अनन्त फलों की प्राप्ति होती रहे । इस प्रकार अत्यन्त फलप्रद षष्ठीको जो (विधान) सुसम्पन्न करता है, वह समस्त पाप से मुक्त होकर सूर्य लोक में सम्मानित होता है और लोक परलोक में सुरापान आदि जो कुछ किये रहता है, उसके नाश पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति करता है और अपने भूत एवं भविष्य के इक्कीस पीढ़ी के उद्धार भी करता है । इसके सुनने अथवा पढ़ने वाला भी कल्याण भागी होता है । इस प्रकार इस शुक्ल षष्ठी के व्रत को उपवास रहकर सुवर्ण के कमल, कलश और फल के दान स्त्री श्रेष्ठ ब्राह्मण को अर्पित कर देवों एवं अमुरों के किरीट मुकुट की मणियों से अभिवन्दित चरण वाले सूर्य को भक्ति पूर्वक प्रणाम करता है, उसे शीघ्र अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है । ८-१५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्बाद में कमल षष्ठी व्रत वर्णन
 नामक उनतालिसवाँ अध्याय समाप्त । ३९।

अध्याय ४० मंदारषष्ठी-व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें उस मंदार नामक षष्ठी के विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापों के

माघस्यानलपक्षे तु पञ्चम्यां लघुभृद्दन्तः । उत्तकाष्ठं ततः कृत्वा षष्ठीमुपवसेद्बृद्धः ॥
 विप्रान्सम्पूज्य विधिवन्मंदारं प्राशयेन्निशि ॥२
 ततः प्रभाते चोत्थाय कृतस्नानः पुनर्द्विजात् । भोजयेच्छक्तिः कृत्वा मन्दारकुसुमाष्टकम् ॥३
 सौवर्णं पुरुषं तद्विद्वहस्तं सुशोभन्तम् । पदं कृष्णतिले: कृत्वा ताम्रपात्रोऽष्टपत्रकम् ॥४
 पूज्य मन्दारकुसुमैभास्करायेति पूर्वतः । नमस्कारेण तद्वच्च सूर्यायित्यनले दले ॥५
 दक्षिणे तद्वदर्काय तथार्थमणे न नैर्द्रते । पश्चिमे वसुधात्रे च वायव्ये चण्डभानवे ॥६
 पूष्णे हृष्टरतः पूज्य आनन्दायेत्यतः परम् । कणिकायां तु पुरुषः पूज्यः सर्वात्मनेति च ॥७
 शुक्लवरत्रैः समावैष्टग्न भद्रैर्माल्यकलादिभिः । एवमस्तर्च्य तत्सर्वं दद्याद्वेदविदे पुनः ॥
 भुञ्जीतातैललवर्णं वायतः प्राइमुखो गृही ॥८
 अनेन विधिना सर्वं सप्तम्यां मासिसासि च । कुर्यात्सम्बत्सरं यावद्वित्तशाठचविर्जितः ॥९
 एतदेव व्रतान्ते तु निधाय कलशोपरि । गोभिर्विर्भवतः साहृदाय भूतिनिच्छता ॥१०
 नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च । त्वं च वै तारयस्वास्मानस्मात्सरकर्दमात् ॥११
 अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मन्दारं व्रतम् । विपाप्मा स सुखी मर्त्यः कल्पं च दिवि मोदते ॥१२
 इमा श्लोधपटलध्वान्तसद्वृत्तिदीपिकाम् । गच्छन्प्रगृह्य संसारशर्वर्या न स्खलेन्नरः ॥१३

प्रणाश पूर्वक समस्त कामनाओं को सफल करने वाली एवं पुण्य रूप है। माघ मास की शुक्ल पञ्चमी के दिन लघु आहार करके षष्ठी के प्रातः काल दातून करने आदि से प्रारम्भ कर उपवास के सभी नियम पालन और ब्राह्मण पूजन के उपरांत रात्रि में मंदार के प्राशन करके शयन करे। अनन्तर सप्तमी के दिन प्रातः काल रनान एवं नित्य नियम सुसम्पन्न करने के उपरांत यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन सुदर्शन निर्मित मंदार के आठ पूष्प, और सुवर्ण के पुरुष निर्माण करे, जिसके साथ सुवर्ण कमल से विभूषित हो, पुनः उस अष्टदल कमल को जो काले तिल समेत कणिका समेत स्थित हो ताम्र पात्र में स्थापित कर उस मंदार कुसुमों द्वारा उस कमल दल में भास्कराय नमः से पूर्व, सूर्याय नमः से अग्निकोण, अर्काय नमः से दक्षिण, अर्थमणे नमः से नैऋत्य, वसुधायै नमः से पश्चिम, भानवे नमः से वायव्य, पूष्णे नमः से उत्तर, आमन्दाय नमः से ईशान कोण की अर्चना करके कणिका में उस सुवर्ण पुरुष की शुक्ल वस्त्र से आवेष्टित कर माला एवं भक्ष्य फल आदि द्वारा भक्ति पूर्वक अर्चना सुसम्पन्न करे। इस प्रकार उसकी सविधान पूजा के उपरांत उसे सादर वेद निष्णात विद्वान् को अर्पित कर घर में तेल लवण के त्याग पूर्वक पूर्वाभिमुख मौन होकर भोजन करे। इसी विधान द्वारा प्रत्येक मास की प्रति सप्तमी में यथाशक्ति पूर्ण वर्ष तक पूजन दान करने के अनन्तर उसकी समाप्ति में कलश के ऊपर उपरोक्त वस्तुएँ स्थापित कर अपने कल्याणार्थ धन, और गौ आदि के पूजन करते हुए क्षमा प्रार्थना करे कि मंदार नाथ एवं मंदार विधान को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ, इस संसार कीचड़ से मेरा उद्धार करें। १-११। इस प्रकार सविधान इस मंदार व्रत को सुसम्पन्न करने वाला मनुष्य पाप मुक्त होकर इस भूमण्डल में सुखोपभोग करने के उपरांत देहावसान होने पर कल्प तक स्वर्ग का सुखोपभोग करता है। पाप समूह को नष्ट करने वाली इस षष्ठी व्रत रूप प्रज्वलित बत्ती से युक्त दीपक को हाथ में लिए यात्रा करता है, उसे इस संसार रूप रात्रि में कोई कष्ट न

मन्दारषष्ठो विख्यातामीसितार्यफलप्रदाम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि सोर्पि पापैः प्रमुच्यते ॥१४
 षष्ठीमुपोष्य तिलपद्मजकणिकायां सम्पूज्य भास्करमहो सुरवृक्षपुष्पैः ।
 यत्प्राप्नुवन्ति पुरुषा न हि तत्कदाचिद्गोभूहिरण्यतिलदाः पदमाप्नुवन्ति ॥१५
 इति श्रीभविष्ये महापुराणष उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णद्विधिष्ठिरसंवादे
 मन्दारषष्ठीनृतनिरूपणनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः ललिताषष्ठीव्रतवर्णनम् श्रीकृष्ण उवाच

भद्र भाद्रपदे मासि शुक्लषष्ठयां युधिष्ठिर । योषित्सुवेषा सुभगा सर्वलोकमनोहरा ॥१
 प्रातः स्नानं महानद्यां कृत्वा संगृह्य बालुकाम् । नवे वंशमये पात्रे यायाद्गृहमतन्त्रिता ॥२
 सोपवासा प्रयत्नेन देवीं तत्र प्रसूजयेत् । कृत्वा वस्त्रगृहं रम्यं दीपनेत्रपटावृतम् ॥३
 तत्र संस्थाप्य तां देवीं पुष्पैः सम्पूजयेन्नवैः । ध्यात्वा ललितिकां गौरीं तपोवननिवासिनीम् ॥४
 मन्त्रेणानेन कुसुमैश्रंपकस्य सुशोभनैः । चम्पकं करवीरं च नेमालिं मालतीं तथा ॥
 नीलोत्पलं केतकीं च संगृहा तगरं तथा ॥५
 एकैकस्य त्वष्टशतमष्टाविशतिरेव वा । अक्षतैः कलिका ग्राह्यास्तैस्तु देवीं समर्चयेत् ॥६

होकर अच्युत सुख से मार्ग समाप्त करता है । अभीष्ट फलदायक इस मंदार षष्ठी व्रत को पढ़ने अथवा
 सुनने वाला भी समस्त पापों से मुक्त होता है । इस भाँति इस षष्ठी के दिन उपवास पूर्वक तिल निर्मित
 कमल की कर्णिका में मन्दार पुष्पों द्वारा भास्कर की पूजा करने पर मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती
 है उसे गो, भूमि और सुवर्ण के एवं तिल दान करने वाले नहीं प्राप्त कर सकते हैं । १२-१५

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में मंदार षष्ठी व्रत वर्णन
नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०।

अध्याय ४१ ललिता षष्ठी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भद्र, युधिष्ठिर ! भाद्रपद मास की शुक्ल षष्ठी के दिन सौभाग्यवती स्त्री को
 चाहिए कि अपने वेष भूषा को मनमोहक बनाकर प्रातः काल किसी महा नदी में स्नान करने के उपरांत
 नवीन वाँस के पात्र में घर लौटते समय बालू भी लेती आये । घर पहुँच कर उपवास रहते हुए बालू द्वारा
 देवी की सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा बनाकर सूक्ष्म वस्त्रादि से विभूषित करने के उपरांत उस प्रतिमा को वस्त्र के
 सुसज्जित मण्डप में स्थापित कर नवीन पुष्पों द्वारा तपोवन निवासिनी ललिता देवी के ध्यान पूर्वक उसकी
 सविधान पूजन करे । उनकी अर्चना में चम्पा के पुष्प होने चाहिए अथवा कनेर, नेमालि, मालती, नील
 कमल, केतकी और तगर भी होने चाहिए । १-५ जिसकी एक एक संस्था आठ सौ, अथवा अड्डाइस हों तथा

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते । स्नात्वा कनखले तीर्थे हरं लद्धवती वजेत् ॥७
ललितेललिते देवि सौभ्यसौभाग्यदायिनि । या सौभाग्यसमुत्पन्ना तस्ये देव्ये नमोनमः ॥

एवमध्यर्थं विधिना नैवेद्यं पुरतो न्यसेत् ॥८

कूषमाण्डः कर्कटीवृत्तैः कर्कोटैः कारवेल्लकैः । वृन्ताकैरक्षतैरङ्गदीपधूपाद्यलत्तकैः ॥९

सार्द्धं सगुडकैर्धूपैः सोहालककरम्बकैः । गुडपुष्पैः कर्णयेष्टैर्मोदकैर्मुखमोदकैः ॥१०

एवमध्यर्थं विधिवद्रात्रौ जागरणं ततः । गीतवाद्यनटच्छत्रप्रेक्षणीयैः सुशोभनैः ॥

सखीभिः सहिता साध्वी तां रात्रीं प्रशमन्नयेत् ॥११

न च सम्मीलयेन्नेत्रे नारी यामचतुष्टम् । दुर्भगा दुर्गता वन्ध्या नेत्रसम्मीलनाद्ववेत् ॥१२

एवं जागरणं कृत्वा सप्तम्यां सरितं नयेत् । गन्धपुष्पैरथाभ्यर्थं गीतवाद्यपुरःसरम् ॥१३

तच्च द्व्याद्विजेन्द्राय नैवेद्यादि नरोत्तम । स्नात्वा शृहमुपागम्य हुत्वा वैश्वानरं क्रमात् ॥

देवान्पितृन्मनुष्यांश्च पूजयित्वा मुवात्स्तीम् ॥१४

कुमारिका भोजनीया ब्राह्मणा दशपञ्च च । भज्यभोज्यैर्हुविधैर्देया तेभ्यः सुदक्षिणा ॥

ललिता प्रीतियुक्ताऽस्तु इत्युक्त्वा तान्विसर्जयेत् ॥१५

यः कश्चिद्वाचरेदेतद्वृक्त्या ललितिकाव्रतम् । नरो वा यदि वा नारी तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१६

तन्नास्ति मानुषे लोके तस्य यन्नोपद्यते । सुखसौभाग्यसंयुक्ता गौरीलोकमवाप्न्यात् ॥१७

अक्षत कलियों से भी देवी की उत्तम अर्चना की जा सकती है । पूजन के समय—उस गंगाद्वार (हरिद्वार) में जो कुशाओं एवं बिल्व से संयुक्त नीलपर्वत पर सुशोभित है, तथा कनखल तीर्थ में स्नान पूर्वक शिव को प्राप्त करके ही विशाम किया है, और सौभ्य एवं सौभाग्य दायिनी ललिते देवि ! आप सौभाग्य रूप हैं, अतः मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रही हूँ, इस प्रकार उच्चारण कर उनके समक्ष नैवेद्य रखकर कुष्मांड, ककड़ी, अखरोट, करेला, अक्षत पपीता, धूप, दीप, अलत्कत (महावर) सोहालक करम्बक, महुआ के पुष्प, कुण्डल और मोदक द्वारा उनकी सविधान अर्चना करने के उपरांत रात्रि में गीत, वाद्य, सुन्दर नाटकादि दृश्य के द्वारा सखियों समेत जागरण करे । रात्रि के उस चार प्रहर के समय में निद्रा के कारण कुछ भी नेत्र निमीलन न होने पाये, क्योंकि नेत्रनिमीलन (झपकी) होने से स्त्री को दुर्भगा दुर्गति एवं वंद्या होना पड़ता है । पश्चात् सप्तमी के दिन प्रातः काल गन्ध पुष्पादि द्वारा अर्चना करने के उपरांत गायत वाद्य करते हुए उस प्रतिमा को किसी नदी में छोड़ दें और उसकी सभी वस्तुएं किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित कर स्नान कर घर आने पर हवन, देव-पितृ तर्पण के अनन्तर सौभाग्यवती स्त्री की पूजा, कुमारी भोजन, दश या पांच ब्राह्मणों को दक्षिणा समेत अनेक भाँति के भोजन से तृप्त कर 'ललिता देवी अत्यन्त प्रसन्न हों' कहते हुए उनके विसर्जन करे । ६-१५। इस भाँति ललिता देवी की भक्ति पूर्वक आराधना सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो ! उसके सुख सौभाग्य प्राप्ति पूर्वक उपभोगार्थ कोई वस्तु इस लोक में अप्राप्तव्य नहीं रहती है और देहावसान के समय गौरी लोक की प्राप्ति होती है । इस प्रकार षष्ठी के दिन जल के भीतर प्रविष्ट होकर

षष्ठ्यां जलान्तरगता वरवंशपात्रे संगृह्य पूजयति या सिकताः क्रमेण ।
नक्तं च जागरमनुद्घतगीतनृत्यैः कृत्वा हृसौ त्रिभुवने ललितेव भाति ॥१८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ललिताष्ठोन्नतवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

कार्त्तिकेयपूजावर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

येयं मार्गशिरे माति षष्ठी भरतसत्तम । पुण्या पापहरा धन्या शिवा शान्ता गृहप्रिया ॥१
निहत्य तारकं षष्ठ्यां गुहस्तारकराजवत् । रराज तेन दियता कार्त्तिकेयस्य सा तिथिः ॥
स्नानदानादिकं कर्म तस्यामक्षयमुच्यते ॥२
यस्यां पश्यन्ति गाङ्गेयं दक्षिणापथनाश्रितम् । ब्रह्महत्यादिवापैस्ते मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥३
तत्मादत्यां सोपवातः कुमारं स्वर्णसम्भवम् । राजत वा महाराज मृण्मयं वापि कारयेत् ॥४
अपराह्ने ततः स्नात्वा समाचम्य यत्करती । पद्मासनस्थो गाङ्गेयं ध्यायंस्तिष्ठेत्समाधिना ॥५
ब्राह्मणस्तु ततो विद्वान् गृहीत्वा करकं नवम् । पातयेत्स्य शिरसि धारां वै दक्षिणामुखः ॥६

स्नानोपरांत बाँस के पात्र में बालुकाओं को लेकर उसकी सुन्दर प्रतिमा के पूजन, गीत एवं नृत्य, वाद्य द्वारा रात्रि जागरण करने पर वह तीनों लोक में प्रस्थाति प्राप्त ललिता देवी की भाँति सुशोभित होती है ॥६-१८

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
ललिता षष्ठीव्रत वर्णन नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

अध्याय ४२

कार्त्तिकेय पूजा का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भारत सत्तम ! मार्गशीर्ष मास की पष्ठी अत्यन्त पुण्या, पापहारिणी, धन्या, कल्याणिनी, शान्त एवं गृह प्रिय है । १-२। इसी पष्ठी के दिन कुमार को तारकासुर का निधन कर लोकोत्तर स्वाति प्राप्त की है, इसीलिए उन कार्त्तिकेय को यह तिथि अत्यन्त प्रिय है। इस दिन स्नान एवं दान आदि जो कुछ कर्म किये जाते हैं, अक्षय कल प्रदान करते हैं। इस तिथि में गंगेय (कुमार) के दक्षिणा पथ आधित होते हुए जो लोग दर्शन करते हैं, उनके ब्रह्महत्यादि सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं इनमें सदेह नहीं। महाराज ! इसलिए इस तिथि के दिन सुवर्ण चाँदी अथवा मृत्तिका की कुमार की प्रतिमा बनाकर अपराह्न के समय संयम पूर्वक स्नान-नित्य नियम के उपरांत पद्मासन द्वारा बैठकर गङ्गा पुत्र (स्कन्द) के ध्यान में समाधिनिष्ठ होकर उस विद्वान् ब्राह्मण को दक्षिणाभिमुख होकर नवीन करवा द्वारा उनके शिर पर स्नानार्थ जल गिरायें उस समय कहना चाहिए कि—गंगाकुमार ! शिव जी की विभूति की भाँति

चन्द्रमण्डलभूतानां भवभूतिपवित्रितः । गङ्गाकुमारधारेयं पतिता तव मस्तके ॥७
 एवं स्नात्वा समभ्यर्च्य भास्करं भुवनाधिप । पुष्पधूपादिना पश्चात्पूजयेत्कृत्तिकामुतम् ॥८
 देवसेनापते स्कन्द कार्त्तिकेय भवोद्भूव । कुमार गृह गाङ्गेय शक्तिहस्त नमोऽस्तु ते ॥९
 एँभव्यमिषदैः पूज्य नैवेद्यं विनिवेदयेत् । फलाति दक्षिणान्नानि चन्दनं मलयोद्भूवम् ॥१०
 पार्थस्थौ पूजयेच्छागकुञ्जकूटौ स्वामिवल्लभौ । सकलापां मधूरं च प्रत्यक्षां हिमजां तथा ॥११
 कुत्तिकाकटकं पार्थं सम्पूज्य स्कन्दवल्लभम् । तेनैव नामभिर्होणः कार्यः साज्यैस्तिलैस्तथा ॥१२
 एवं निर्वर्त्य विधिवद्वलमेवं युधिष्ठिर । भक्षयित्वा स्वपेद्भूमौ स्वास्तृते इर्भसंस्तरे ॥१३
 नातिकेरं मातुलुंगं नारिंगं पनसं तथा । जन्मीरं दाढिं द्राक्षां हृद्यान्यान्नफलानि च ॥१४
 श्रीफलामलकं तद्वत्पुंसं कदलीकलम् । क्लेषण भक्षयेऽजाजसंयतो नियतव्रती ॥
 अलाभे कलकालौघफलमद्यादतन्द्रितः ॥१५

प्रत्यक्षो हेमधटित्वांचागो वा कुकुटोऽथवाः प्रातर्दद्याद् द्विजायैतत्सेनानीः प्रीयतामिति ॥१६
 सेनायां स च सम्भूतः क्रौञ्चारिः षण्मुखो गृहः । गाङ्गेयः कार्त्तिकेयश्च स्वामी बालग्रहाग्रणीः ॥१७
 छागप्रियशक्तिधरो द्वारे द्वादशमः स्मृतः । प्रीयतामिति सर्वेषु क्रमान्मासेषु कोर्तयेत् ॥१८
 ब्राह्मणान्भोजयित्वादौ पश्चाद्भृजीत वाग्यतः । एवं संवत्सरस्यान्ते कार्त्तिके मासि शोभने ॥१९
 कार्त्तिकेयं समभ्यर्च्य वासोभिर्भूषणैः सह । गाङ्गेयः कार्त्तिकेयश्च सकृदेवैतमाचरेत् ॥२०
 सम्वत्सरविधिं कृत्वा जपं होमपुरस्कृतम् । दद्याद्विप्राय राजेन्द्र वाचकाय विशेषतः ॥२१
 एते विश्राः स्मृता दिव्या भौमास्त्वन्ये द्विजातयः । पालितेऽस्मिन्नते पार्थ तीर्णः स्याद्भूवसागरात् ॥२२

अत्यन्त पवित्र यह धारा चन्द्र मण्डल के आकार में तुम्हारे मस्तक पर गिर रही है । भुवनाधिप ! इस प्रकार स्नान कराकर पुष्प, एवं धूप आदि द्वारा उन कृतिका सुत की अर्चना करके देव सेनापति, स्कन्द, कार्त्तिकेय, भवपुत्र, कुमार, गृह, गाङ्गेय, और शक्ति हस्त को नमस्कार है, कहते हुए उन्हें नैवेद्य, फल समेत दक्षिणा तथा मलय चन्दन आदि सुगन्ध की वस्तुएँ सादर समर्पित करनी चाहिए । पश्चात् उनके पार्थ में स्थित छाग (बकरी) कुकुट (मुर्गा), कल्प समेत मधूर और पार्वती जी की पूजा करते हुए उनके पार्थ में स्थित स्कन्द प्रिय कृतिका कटक की अर्चना करके उन्हीं नामों के उच्चारण पूर्वक घृत और तिल का हवन करे । युधिष्ठिर ! तदुपरांत फल भक्षण कर भूमि में कुश के आसन पर शयन करे । नारियल, मातुलुञ्ज (विजौरा नीदू), नारञ्जी, कटहल, जन्मीर, अनार, द्राक्षा, प्राण, श्रीफल, आंवला, ककड़ी, केला, आदिफलों के भक्षण क्रमशः प्रतिग्राम में उस व्रती द्वारा करना चाहिए । और उसके अजा लाभ का लौघ फल व्रत में छाग (बकरी) और कुकुट मुर्ग की अथवा किसी एक की सुवर्ण की प्रतिमा बना कर पूजनोपरांत सादर किसी ब्राह्मण विद्वान् को अर्पित करे । और सेनानी प्रसन्न हों, कहकर विसर्जन करे सेनानी, क्रौञ्चारि, षण्मुख, गुह, गाङ्गेय, कार्त्तिकेय, स्वामी, बाल गृह, प्राणी, घटाप्रिय, शक्तिधर, और द्वारा नामों के उच्चारण क्रमशः प्रत्येक मासों में करके उनकी अर्चना सुसम्पन्न करना चाहिए तथा ब्राह्मण भोजन के उपरांत मौन होकर स्वयं भोजन करे । इस प्रकार वर्ष की समाप्तिके अवसर पर उस उत्तम कार्त्तिक मास में वस्त्राभूषण द्वारा कार्त्तिकेय की पूजा, सम्वत्सर विधान और जप हवन के उपरांत उसे ब्राह्मण वाचक को सादर समर्पित करे । ३-२१. राजेन्द्र ! यही दिव्य एवं भौम ब्राह्मण ही इस व्रत में व्रती द्वारा पूजित होने योग्य बताये गये हैं । पार्थ ! व्रत में इनकी पूजा करने से वह व्रती भवसागर को पार करता है ।

एवं यः कुरुते भक्त्या नरो योषिदशापि वा । स प्राप्येह शुशं कामं गच्छतीन्द्रसलोकतास् ॥२३
 सदैव पूजनीयस्तु कार्तिकेयो महीयते । कार्तिकेयादृते नान्यो राजां पूज्यः प्रवक्ष्यते ॥२४
 सङ्ग्रामं गच्छमानो यः पूजयेत्कृत्तिकासुतम् । स सर्वं जयते वीरो यथेन्द्रो दानवान् रणे ॥२५
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेच्छंकरात्मजम् । पूज्यमानस्तु सद्भक्त्या रावान्कामान्प्रयच्छति ॥२६
 यस्तु षष्ठ्यां नरो नक्तं कुर्याद्वारात्मसत्तम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो गाङ्गेयस्य सदा वजेत् ॥२७
 श्रृत्वैवं दक्षिणां भासं गत्वा श्रद्धासमन्वितः । पूजयेद्देवदेवेण स गत्वा शिवमन्दिरम् ॥२८
 स्कन्दं गुहं शरवणोद्भूदनादिदेवं शम्भोः सुतं सदयितं गिरिराजपुत्र्याः ।
 स्तर्ये निरग्निमुखान्यनुभूयते न सेनापतिर्भवति राज्यधुरन्धरोऽसौ ॥२९
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 तारकवधकार्तिकेयपूजाष्ठीव्रतवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशतमोऽध्यायः ।४२

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

विजयसप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सप्तमी च यदा देव केन कालेन पूज्यते । किफला नियमः कश्चिद्वद् देवकिनन्दनः ॥१

इस भाँति भक्तिपूर्वक व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री अपनी कामनाओं की सफलता पूर्वक अन्त में इन्द्रलोक प्राप्त करती है । महीपते ! इसलिए कार्तिकेय जी की सदैव पूजा करनी चाहिए और कार्तिकेय के अतिरिक्त अन्य कोई देव राजाओं के लिए पूज्य है भी नहीं क्योंकि संग्राम के लिए उत्सुक प्राणी कृतिका की पूजा करके यदि रणस्थल में प्रयाण करता है, तो वह वीर दानवों को इन्द्र की भाँति शत्रुओं को पराजित कर विजय प्राप्त करता है । अतः उन शिवात्मज कुमार की पूजा के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करने पर समस्त कामनाओं की सफलता प्राप्त होती है । भारत सत्तम ! इस प्रकार जो पुरुष षष्ठी में नक्त व्रत सुसम्पन्न करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर कुमार लोक की प्राप्ति करता है । दक्षिण पथाश्रित उन्हें सुनकर श्रद्धा समेत शिवजी के मन्दिर में जाकर शिव एवं पावर्ती के पुत्र कार्तिकेय की जो देवनायक के पद पर प्रतिष्ठित हैं, तथा स्कन्द, गुह, शरवणोद्भव आदि नामों से प्रव्यात है, सविधान अर्चना करता है करने पर वह राज्य धुरंधर होकर समस्त सुखों के उपभोग करने के उपरांत स्वर्ग में सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित होता है । २२-२९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
 तारक वध कार्तिकेय पूजा षष्ठी व्रत वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४२।

अध्याय ४३

विजयसप्तमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—देव, देवकिनन्दन ! सप्तमी की पूजा किस समय की जाती है, और उसके फल, तथा नियम बताने की कृपा करें । १

श्रीकृष्ण उवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् । सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम् ॥२
 स्नानं दानं जपो होम उपवासस्तथैव च । सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् ॥३
 प्रदक्षिणां यः कुरुते फलैः पुष्टैः दिवाकरम् । स सर्वगुणसम्पन्नं पुत्रं प्राप्नोत्यनुतमन् ॥४
 प्रथमा नालिकेरैस्तु द्वितीया रक्तनागरैः । दृतीया मातुलुङ्ग्नेश्च चतुर्थी कदलीफलैः ॥५
 पञ्चमी वरकूष्माण्डः षष्ठी पक्वेस्तु तैऽतुकैः^१ । वृत्ताकैः सप्तमी देया अष्टोदत्तरशतेन च ॥६
 मौत्तिकैः पद्मारागैश्च नीलैः कर्केतनंस्तथा । गोमेदैर्वज्रवैङ्मयैः शतेनाष्टाधिकेन तु ॥७
 अक्षोटैर्बदरैर्बिलवैः करमर्दैः सर्वर्बारैः । आम्रात्तकजंबीरैर्जंबुकर्कोटिकाफलैः ॥८
 पुष्टैर्धूपैः फलैः पत्रैर्मोदकर्मणैः शुभैः । एधर्विजयसप्तम्यां भानोः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥९
 अन्यैः फलैश्च काम्यैश्च ऐक्षवैर्ग्यथिवर्जितैः । रवैः प्रदक्षिणा देया फलेन फलमादिशेत् ॥१०
 न विशेषं च सञ्जलेन च कविन्द्रिद्वेदपि । एकचित्ततया भानुश्चिन्तनाय प्रयच्छति ॥११
 वत्सोर्धारा प्रदातव्या भानोर्गवयेन सर्पिष्या । चन्द्रातपत्रं बृद्धनीदाज्जयं किंकिणिकायुतम् ॥१२
 कुंकुमेन समालभ्य पुष्पधूमैश्च पूजयेत् । गुरुं निवेद्य नैवेद्यं ततः पश्चात्क्षमापयेत् ॥१३
 भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्चे दिवाकरः आरोग्यमायुविजयं पुत्रं देहि नमोऽस्तु ते ॥१४

श्रीकृष्ण बोले— शुक्लपक्ष की सप्तमी के दिन रविवार होने से वह सप्तमी विजयानाम से ख्याति होती है, इसलिए उसमें दान करने से महान् फल की प्राप्ति होती है। स्नान, दान, जप, हवन, और उपवास आदि सभी कर्म विजया सप्तमी के दिन सुसम्पन्न होने पर महान् पातकों के नाश करते हैं। उस दिन फल पुष्ट समेत जो भगवान् दिवाकर की प्रदक्षिणा करता है, उसे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र की प्राप्ति होती है। नारियल समेत पहली, रक्तनागर सेत दूसरी, बिजौरा नीबूं से तीसरी, केला से चौथी, कूष्माण्ड से पाँचवीं, तिनी के चाबल समेत छठी और एक सौ आठ वृत्ताक (पीता) आदि फलों द्वारा आठवीं सप्तमी में सूर्य की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। उसी भांति मोती, पद्माराग, नील, कर्केतन, गोमेद, वज्र, वैदूर्य की भी संख्या एक सौ आठ होनी चाहिए। अखरोट, बेर, बिलव, करनर्द, बर्वर, आम, आँवला, जम्बूर, जामुन, और कोटिका फल समेत पुष्ट, धूप, फल, पत्र, एवं उत्तम मोदक द्वारा विजया सप्तमी के दिन सूर्य की प्रदक्षिणा की जाती है। इसी प्रकार अन्य फलों और गांठहीन ऊख के द्वारा सूर्य की प्रदक्षिण की जाती है, क्योंकि फल प्रदान के अनुसार ही उसे फल की प्राप्ति होती है। भानुदेव की आराधना के समय किसी के घर प्रस्थान और किसी के साथ बातचीत करना अवैध बताया गया है। इसलिए उस समय केवल तन्मय होकर उनकी आराधना ही करनी चाहिए। २-११। हवन के समय उन्हें गाय के धी का वसोर्धारा और पूजन के समय चाँदी का सौन्दर्य पूर्ण छत्र एवं किकड़ी (छंटियों) से विभूषित करना बताया गया है। कुंकुम के लेपन कर पुष्ट धूप से पूजन करने के अनन्तर उत्तम नैवेद्य से उन्हें तृप्त कर धमा प्रार्थना करे कि भानो, भास्कर, मार्तण्ड, चण्डरश्चे, एवं दिवाकर! प्रसन्न होकर आप मुझे आरोग्य, आयु, विजय एवं पुत्र प्रदान करने की कृपा करें, आपको मैं नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार उपवास,

१. षष्ठिपक्षस्तु तण्डुलैः ।

उपवासेन नक्तेन तथैवायाच्चितेन च । कृता नियमयुक्तेन या त्विदं जयसप्तमी ॥१५
रोगी विमुच्यते रोगाद्विद्विः श्रियमाभ्यात् । अपुत्रो लभते पुत्रं विद्या विद्यार्थिनो भवेत् ॥१६
शुक्लपक्षे यदा पार्थ सादित्यसप्तमी भवेत् । तदा नक्तेन मुद्गाशी क्षण्येत्सप्त सप्तमीः ॥१७
भूमौ पलाशपत्रेषु स्नात्वा हृत्वा द्यश्विधि । समाप्ते तु व्रते दद्यात्सौबर्णं मुद्गमिश्रितम् ॥१८
मुद्गं श्रेष्ठाय विप्राय वाचकाय विशेषतः । सप्तम्यां सप्तिसंयुक्त आदित्येन नरोत्तम ॥१९
उपोष्य विधिनानेन मन्त्रप्राशनपूजनैः । षड्क्षरेण मन्त्रेण सर्वं कार्यं विजानता ॥२०
अर्चनं द्वित्कार्यं च शतमष्टोतरं नरः । समाप्ते तु व्रते पश्चात्तुवर्णेन घटापितम् ॥२१
सौबर्णं भास्करं पार्थं रुक्मपात्रगतं शुभम् । रक्तम्बरं च काषायं गन्धं दद्यात्सदक्षिणम् ॥२२
मन्त्रेणानेन विप्राय कमेसिद्धै द्विजातये । ॐ भास्कराय नुदेवाय नमस्तुभ्यं यशस्कर ॥२३
भमाद्य समीहितार्थप्रदो भव नमोनमः । दानानि च भ्रदेयानि गृहाणि शयनानि च ॥२४
श्राद्धानि पितृदेवानां शाश्वतीं तृप्तिमिच्छता । यात्राप्रशस्ता यातृणां राजां च जयमिच्छताम् ॥२५
विजयो जायतेऽवश्यं यतीनां च नृणां तदा । अतोर्थं विश्रुता लोके तदा विजयसप्तमी ॥२६
एवमेषा तिथिः पार्थं इह कामप्रदा नृणाम् । परत्र नुखदा सौम्या सूर्यलोकप्रदायिनी ॥२७
दाता भोगी च चतुरो दीर्घायुनीरुजः सुखी । इहागत्य भवेद्राजा हस्त्यश्वधनरत्नवान् ॥२८
नारी वा कुरुते या तु सापि तत्पुण्यभागिनी । भवत्यत्र न संदेहः कार्यः पार्थं त्वया क्वचित् ॥२९

नक्तव्रत, अयाच्चित, अन्न के भोजन आदि नियमों के पालन पूर्वक इस जया सप्तमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी रोगों से युक्त, दरिद्र को लक्ष्मी, अपुत्री को पुत्र, विद्यार्थीं, को विद्या की प्राप्ति होती है । पार्थ ! युक्त पक्ष में रविवार के दिन सप्तमी होने पर नक्त व्रत में मूँग के भोजन करते हुए सातों सप्तमी को सत्विधि—भूमि शयन, पलाश पत्र में भोजन तथा स्नान और हवन गुसम्पन्न कर व्रत के समाप्ति में कथावाचक को मूँग के लड्डू में सुवर्ण रखकर प्रदान करना चाहिए । १२-११। नरोत्तम ! इस भाँति आदित्य युक्त सातों सप्तमी में सविधान उपवास मंत्रोच्चारण, प्राशन और पूजन में उस व्रती को षड्क्षर मंत्र के उच्चारण द्वारा सुसम्पन्न कर एक सौ आठ आद्वृति अग्नि देव को प्रदान करना चाहिए । पार्थ ! पुतः व्रत की समाप्ति में भास्कर की सुवर्ण की प्रतिमा को सुवर्ण या चाँदी के पात्र में स्थापित कर रक्तवर्ण के कौशेय (रेखमी) वस्त्र से सुसज्जित करके दक्षिणा समेत गन्ध आदि उत्तम वस्तुओं द्वारा उनकी एवं उस वाचक व्राह्मण की पूजा करके क्षमा प्रार्थना करे कि—यशस्कर, एवं सुदेव भगवान्-भास्कर देव को मैं नमस्कार करता हूँ, आज आप मेरी अभिलाषा की पूर्ति करें । तत्पश्चात् अनेक भाँति के दान, गृह, शश्या आदि के दान से उन्हें तृप्त करे । देव पितरों के थाद्व में उन्हें निरन्तर तृप्त रखने की मनुष्य और विजयार्थ यात्रा के लिए उत्सुक राजाओं तथा अन्य यात्रियों को व्रतानुष्ठान अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए । इससे उन्हें विजय की प्राप्ति अवश्य होती है । पार्थ ! इसीलिए लोक में यह विजय सप्तमी के नाम से प्रस्त्यात है, जो मनुष्यों को इस लोक में समस्त सुख और परलोक में पहुँचने पर सूर्यलोक प्रदान करती है । १९-२७। पश्चात् जन्म ग्रहण करने पर दाता, भोगी, चतुर, दीर्घायु, आरोग्य एवं समस्त सुख की प्राप्ति पूर्वक हाथी, अश्व, एवं धन रत्नों से विभूषित राजा होता है । पार्थ ! इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी पुण्य भागिनी होकर उपरोक्त फल प्राप्त करती है । इसमें संदेह नहीं । इस प्रकार स्वर्ग, मनोरथ, सुख

स्वर्ण्या समीहितमुखार्थफलप्रदा च या मृग्यते मुनिवरैः प्रतरा तिथीनाम् ।
 सा भानुगादकमलार्चनंचितकानां पुंसां सदैव विजया विजयं ददाति ॥३०
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 विजयसप्तमीव्रतकथनं नाम त्रिचत्वारिशोऽध्यायः ॥४३

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

आदित्यमण्डलविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथान्यदपि ते वच्चिम दानं श्रेयस्करं परम् । आदित्यमण्डलं नाम सर्वशुभविनाशनम् ॥१
 यवचूर्णेन शुभ्रेण कुर्याद्गोधूमजेन वा ; सुपक्वं भानुबिम्बाभं गुडगब्याज्यपूरितम् ॥२
 तस्मूज्यं भास्करं भक्त्या तदग्रे प्रणलं शुभम् । रक्तचन्दनजं कुर्यात्कुंकुमं वा विशेषतः ॥३
 मण्डलं तत्र संस्थाप्य रक्तवस्त्रैः सुपूजितम् । ब्राह्मणाय प्रदातव्यं मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥४
 आदित्यतेजसोत्पन्नं राजतं विधिनिर्मितम् । श्रेयसे भम विप्र त्वं प्रतिगृह्णेदमुत्तमम् ॥५

(इति दानमंत्रः)

कामदं धनदं धर्म्यं पुत्रदं सुखदं तत्र । आदित्यप्रीतये दत्तं प्रतिगृह्णामि मण्डलम् ॥६

(इति प्रतिगृहणमन्त्रः)

एवं धन आदि फल प्रदान करने वाली यह विजया सप्तमी, जो तिथियाँ श्रेष्ठ, एवं महर्षिगण जिसके लिए सदैव लालायित रहते हैं, उस दिन भानु के चरण की आराधना करने वाले प्राणी को सदैव विजय प्रदान करती है । २८-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में विजयसप्तमीव्रतवर्णन नामक तैतालीसवां अध्याय समाप्त । ४३।

अध्याय ४४

आदित्यमण्डलविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें आदित्य मण्डल नामक एक अन्य दान बता रहा हूँ, जो परम श्रेयस्कर और समस्त पापों का विनाशक है । जबा अथवा गेहूं के चूर्ण (आटे) में गुड और गौ के धी डालकर सूर्य के विष्व के समान बनाकर और परिपक्व कर उसे भास्कर की अर्चना के उपरांत उनके समक्ष में भक्ति पूर्वक रक्तचन्दन अथवा कुंकुम द्वारा मण्डल बनाकर वस्त्र से विभूषित एवं पूजित कर मंत्रोच्चारण पूर्वक ब्राह्मण को अर्पित करे । पाण्डव ! अर्पित करते समय इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—विष ! सूर्य के तेज से उत्पन्न, रजत (चांदी) द्वारा सविधान निर्मित इसे मेरे कल्याणार्थ आप ग्रहण करें । प्रतिग्राही को भी इस प्रकार कहना चाहिए—कि आदित्य के प्रीत्यर्थ प्रदान कियें गये इस मण्डल को, जो कामनाओं, धन, धर्म, पुत्र, एवं सुख प्रदान करने वाला है, मैं सादर ग्रहण कर रहा हूँ । राजन् ! इस प्रकार का दान

एवं इत्वा नरो राजन्तर्यवदिवि राजते । सर्वकामसमृद्धार्थो मण्डलाधिपतिर्भवेत् ॥७
दातव्यं जयसप्तम्यां तदारभ्य दिनेदिने । भास्करस्य महाराज शक्त्या भावेन भावितः ॥८

गोथूमचूर्णजनितं शतचूर्णं वा आदित्यमण्डलमखण्डगुडाद्यपूर्णम् ।

कृत्वा द्विजाय विधिवत्प्रतिपादयेद्यो भूमौ भदत्यमितमण्डलमण्डितासौ ॥९

इति श्रीभविष्यं महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

आदित्यमण्डलविधिवर्जनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

त्रयोदशवर्ज्यसप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यामुपोष्य नरः कामान्प्रङ्गोति मनसेप्तितान् । तामेकां वद मे देव सप्तमीं धनसौख्यदाम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

भानोऽङ्गे सिते पश्चे अतीते चोत्तरादणे । पुनामाह्वयनक्षत्रे शृङ्खीयात्सप्तमीव्रतम् ॥२

सर्वीहिकान्यवतिलान्सह माषमुद्गैर्गैर्धूममांसमधुमैयुनकांस्यपात्रम् ।

अभ्यंजनांजनशिलातलचूर्णितानि षष्ठ्यचां परं परिहरेदहनि प्रसिद्धै ॥३

करने वाला पुरुष सूर्य के समान स्वर्ग में सुशोभित होता है अनन्तर समस्त कामनाओं की समृद्धता पूर्वक मण्डलाधीश्वर होता है । महाराज ! पुनः उसी दिन से आरम्भ कर सदैव जयसप्तमी के दिन भास्कर देव की भावनाओं से प्रेरित होकर अपनी शक्ति के अनुसार मण्डल का दान करते रहना चाहिए । इस भाँति गेहूं अथवा जवा के चूर्ण में गुड धी डाल कर (सूर्य के विश्व के समान) बना कर एवं परिपक्व कर उस मण्डल को सविधान द्वाह्यण को अर्पित करने वाला इस भूतल में मण्डलेश्वर पद पर प्रतिष्ठित होता है । १-९

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
आदित्य मण्डल विधि वर्णन नामक चौवालिसवां अध्याय समाप्त । ४४।

अध्याय ४५

त्रयोदशवर्ज्यसप्तमी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—देव ! मुझे उस सप्तमी का विधान बताने की कृपा कीजिये, जिसके उपवास रहने से मनुष्य को मनोरथ की सिद्धि, धन एवं सौख्य की प्राप्ति होती है ।

श्रीकृष्ण बोले—सूर्य के दक्षिणायन होने पर शुक्ल सप्तमी के दिन रविवार एवं पुनर्वसु नक्षत्र होने पर व्रत विधान, आरम्भ करते हुए उसे पूर्व षष्ठी के दिन से ही वृद्धि, जव, तिल, उरद, मूंग, गेहूं, मांस, मधु, मैथुन काँस्य पात्र, अभ्यञ्जन, और काले शिलातल के चूर्ण के त्याग करने चाहिए । पुनः सप्तमी के

देवान्मुनीन्पितृगणान्सज्जलांच्जलीभिः संतर्प्य पूज्य गगनंगणहस्तभुक्तात् ।
 हुत्वान्ते तिलयवान्बहुशो धृताक्तान्भूमौ स्वपेद्विदि निधाय हि तं सवित्रम् ॥४
 यानि त्रयोदशजनैरिह वर्जितानि द्रव्याणि तानि परिहृत्य परिद्विषष्टचा ।
 सम्प्राश्य शुद्धचणकानिह वर्षमेकं प्राप्नोति भारत सुखं मनसेस्ति च ॥५
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरर्पर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
 त्रयोदशवर्ज्यसप्तमीन्नतं नाम एच्चवत्वरिंशोऽध्यायः ॥५

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

कुकुटीमर्कटीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उदाच

लोमशो नाम विप्रविर्मथुरायां गतः पुरा । सोर्चितो वसुदेवेन देवक्या च युधिष्ठिर ॥१
 उपविष्टः कथाः पुण्याः कर्मयित्वा मनोहराः । ततः कथयितुं भूयः कथामेतां प्रचक्षमे ॥२
 कंसे हते मृताः पुत्राः पुत्रा जाताः पुनः पुनः । मृतवत्सः देवकि त्वं पुत्रदुःखेन दुःखिता ॥३
 यथा चन्द्रमुखी दीप्तिर्भूव मृतपुत्रिका । पश्चाच्चीर्णव्रता सैव बभूवाक्षतवत्सका ॥
 त्वमेक देवकि तथा भविष्यसि न संशयः ॥५

प्रातः काल देव, मुनि और पितरों से निमित्त तर्पण करने के उपरान्त गगन प्राङ्गण में विहार करने वाले सूर्य की सविधि अर्चना एवं धृतयुक्त (धी में डुबे डुए) तिल जवा के हवन करके रात्रि के समय सूर्य के ध्यान पूर्वक भूमि में शयन करे । भारत ! उपरोक्त तेरह निषिद्ध वस्तुओं के त्याग पूर्वक केवल शुद्ध चने द्वारा ही जीवन निर्वाह करते हुए एक वर्ष का समय पूरा करने पर उसे यथेच्छ सुख की प्राप्ति होती है ॥२-५

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरर्पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में
 त्रयोदशवर्ज्य सप्तमी व्रत वर्णन नामक ऐतालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

अध्याय ४६

कुकुटीमर्कटीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—युधिष्ठिर ! एक समय महर्षि लोमश के मथुरा जाने पर वसुदेव और देवकी द्वारा सुपूजित होने के उपरान्त पवित्र एवं मनमोहक कथाओं के प्रसङ्ग में उन्होंने यह भी कहना आरम्भ किया कि—देवकि ! कंसके निधन होने पर भी तुम्हारे अनेक पुत्र हुए किन्तु दुर्भाग्य वश रह न सके, इसलिए पुत्र दुःख से दुःखी होकर तुम यह जो मृतवत्सा होने का अनुभव कर रही हो, चन्द्रमुखी रानी के समान, उसने अनेक संतानों के निधन होने के दुःख को अनुभव करती हुई इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर अनेक अक्षय संतानों का सुख प्राप्त किया है, तुम्हें भी वैसा ही सुख होगा, इसमें संशय नहीं ॥१-४

देवकयुवाच

का सा चन्द्रमुखी ब्रह्मन्बभूव बहुपुत्रिका

१५

चरितं किं व्रतवरं बहुसन्ततिकारकम् । सतां सदर्थकरणं सौभाग्यारोग्यवर्द्धनम् ॥६

लोमश उवाच

अयोध्यायां पुरा राजा नहृषो नाम विश्रुतः । तस्य राजो महादेवी नामा चन्द्रमुखी पुरा ॥७
 पुरोहितस्य तस्यैव पत्न्यासीनमानमानिका । तयोरासी दृढा भ्रीतिः स्पृहणीया परस्परम् ॥८
 अथापि तेऽपि मित्रिण्यौ स्नानार्थं सरयूजले । प्राप्ते प्राप्ताश्च तत्रैव बद्धयश्च नगराङ्गनाः ॥९
 स्नात्वा तु मण्डलं चक्रः स्वपतेर्यक्तरूपिणिः । लेखयित्वा शिष्ठं शान्तमुमया सह शङ्करम् ॥१०
 गन्धपुष्पाक्षतेर्भक्त्या पूजयित्वा यथाविधि । प्रणम्य गन्तुकामात्ता: पृष्टास्ताभ्यां नरस्त्रियः ॥११
 ता ऊचुः शङ्करोऽस्माभिः पार्वत्या सह पूजितः । स्वर्णसूत्रमयस्तंतुः शिवायात्मा निवेदितः ॥१२
 धारामयमिदं तावद्यावत्प्राणावधारणम् । तासां तु हचनं श्रुत्वा दित्रिण्यौ तेऽपि भारत ॥१३
 तस्यैव समयं तत्र बद्धवा दोर्भ्यं तु दोरकैः । ततस्ता: स्वगृहाङ्गजग्मुः स्वसखीभिः समावृताः ॥१४
 कालेन महता यातं तस्या वै तद्वतं नृप । चन्द्रवत्याः प्रमत्ताया विस्मृतः स तु दोरकः ॥१५
 मृता कैश्चिद्वहोरात्रैः सा बभूव प्लवङ्गमी । मानी च कुक्कटी जाता प्रायः सनिकटञ्चरे ॥१६
 तथैव जाते मित्रिण्यौ पूर्वजातिस्मरे तथा । संभूय भूमसमयं प्राग्भूतं चक्रतुः पुनः ॥१७
 तद्दिने तत्र सम्प्राप्ते पुनः कालेन ते मृते । तत्रैव मात्रके देशे जाते गोकुलसंयुते ॥१८

देवकी ने कहा—ब्रह्मन् ! अनेक पुत्रों का सुख प्राप्त करने वाली वह चन्द्रमुखी कौन है, और उनके संतान प्रदायक श्रेष्ठ व्रत को, जो सज्जन के मनोरथ, सौभाग्य आरोग्य वर्द्धक हैं, उसने सुसम्पन्न किया है १५-६

लोमश बोले—पहले समय में अयोध्यापुरी के राजा नहृष थे, जिनकी प्रधान रानी का नाम चन्द्रमुखी था। उनके पुरोहित की मानमानिका नामक पत्नी के साथ उसकी घनिष्ठ मित्रता थी। अनन्तर सरयू जल में स्नानार्थ उन दोनों के प्रस्थान करने पर नगर की अनेक सुन्दरियोंका भी यहाँ समागम हुआ। स्नान करके व्यक्त पति के मण्डल तथा उमा के साथ शांत शिव की प्रतिमा बनाकर गन्ध पुष्प, एवं अक्षतों द्वारा भक्तिपूर्वक अर्चना तथा प्रणाम करके घर के लिए प्रस्थित उन स्त्रियों से इन दोनों के पूछने पर कहा कि—हम लोगों ने पार्वती समेत शिव जी की पूजा की है, और सुवर्ण सूत्र उनके हाथ में बांधकर उन्हें अपनी आत्मा सौंप दी है कि—यह धारामय होकर आजीवन वर्तमान रहे। भारत ! उन लोगों की बातें सुनकर इन दोनों मित्र स्त्रियों ने भी (शिव के हाथ में) सुवर्णसूत्र बांधकर अपनी सखियों समेत अपने अपने भवन को प्रस्थान किया। नृप ! अधिक समय व्यतीत होने पर भी उस प्रमक्त चन्द्रमुखी को व्रतसूत्रक उस सूत्र बन्धन की बातें स्मरण न हो सकी। कुछ काल के उपरात निधन होने पर वह वानरी के रूप में हुई और पुरोहित की वह मानी स्त्री कुक्कटी (मुर्गी) की योनि में। किन्तु, पूर्व स्मरण के कारण उन दोनों ने उसी मित्रता के नाते एक दूसरे के सन्निकट रहकर अपने जीवन को व्यतीत करते हुए उस शरीर के त्याग किया। रानी चन्द्रमुखी अपने पितृ नगर गोकुल में ही राजा पृथ्वीनाथ

राजो जाया बस्त्रवाथ पृथ्वीनाथस्य वा पुनः । ईश्वरी नाम विल्याता राजी राजेन्द्रवल्लभा ॥१९
 अग्निमीला^१ द्विजस्याभूद्भूर्यार्यं भूषणनामिका । पुरोहितस्य कालेन कुकुटी बहुउत्रिणी ॥२०
 जातिस्मरा पच्छहस्ता अष्टपुत्रा सृतप्रजा । पुनर्निरन्तरा प्रीतिर्बभूवाथ तयोर्नृप ॥२१
 तत्रेश्वरी पुत्रमेकं प्रसूता चैव रोगिणम् । नववर्षस्तु पञ्चत्वमगात्स च दुधिष्ठिर ॥२२
 ततस्तां भूषणां द्रष्टुमथैषा पुत्रदुःखिता । सखीभावादतिलेहात्सर्वपुत्रसमन्विता ॥
 अमुक्ताभरणा नित्यं स्वभावेनैव भूषिता ॥२३
 तां दृष्टा पुत्रिणीं भव्यां प्रजज्वलेश्वरी रुषा । ततो गृहं प्रेष्य च तां सखीं वै तीव्रमत्सरा ॥२४
 चिन्तयामास सा रात्र्यां तस्याः पुत्रवर्धं प्रति । हताहताश्च तत्पुत्रा पुनर्जीवन्त्यनामयाः ॥२५
 कदाचिदाहय सर्लोऽभूषणां पुरतः स्थिताम् । ईश्वरी प्राह किमिदं सखि पुण्यं त्वया कृतम् ॥२६
 येन ते निहताः पुत्राः पुनर्जीवन्ति नो भयम् । बहुपुत्रा जीवदत्सा अमुक्ताभरणा कथम् ॥
 शोभसेऽभ्यधिकं भद्रे विद्युत्सौदामिनीव हि ॥२७

भूषणोवाच

भद्रे भाद्रपदे मासि सप्तम्यां सलिलाशये । स्नात्वा शिवं मण्डलके लेखयित्वा सहाम्बिकम् ॥२८
 भक्त्या सम्पूज्य समयं कुर्याद्विद्ध्वा करे गुणम् । यावज्जीवं मया वातच्छिवस्यात्मा निवेदितः ॥२९

की सहधर्मिणी हुई, जिस राजमहिं की प्रस्त्याति ईश्वरी नाम भूपा प्रज्वलित था । और पुरोहित की अनेक पुत्र वाली वह स्त्री, जो कुकुटी हुई थी, भूषणा नाम से प्रस्त्यात होकर अग्निमीला ब्राह्मण की पत्नी हुई । उसे जातिस्मरण, लक्ष्मी के समान सुख और अष्टपुत्रों के निधन होने पर भी उसके पुत्र जीवित थे । नृप ! उन दोनों में पुनः गाढ़मैनी स्थापित हुई । उस समय ईश्वरी के ही रोगी पुत्र उत्पन्न किया था, जो नववर्षं जीवित रहने के उपरांत स्वर्गीय हो गया । युधिष्ठिर ! उस समय पुत्रदुःख से अत्यन्त दुःखी ईश्वरी ने सखी भावना से प्रेरित एवं अत्यन्त स्नेह के कारण भूषणा को मिलने के लिए बुलवाया । भूषणा ने समस्त आभूषणों से मुसज्जित होकर एवं सभी पुत्रों को साथ लिए रानी के महल में प्रवेश किया । उस समय उसे मुसज्जित रूप एवं पुत्रों को देखकर अत्यन्त रुष्ट होकर प्रज्वलित अग्नि की भाँति क्रोध से जल उठी । उसे इतना महान् मत्सर उत्पन्न हुआ कि वह उस अपनी सखी को किसी प्रकार बिदाकर उस रात्रि उसके पुत्रों के बधार्थ ही उपाय सोचती रही । पश्चात् उसने अनेक पुत्रों के वध कर दिये, किन्तु वे पुनः जीवित होकर सर्वथा स्वस्थ रहते थे । बहुत दिनों के अनन्तर उसने अपनी भूषणा सखी को पुनः बुलाकर उस ईश्वरी ने उसके सामने ही कहा—सखि ! तुमने कौन सा पुण्य किया है कि जिसके नाते तुम्हारे ये मृतक पुत्र पुनः जीवित होकर सदैव के लिए निर्भय हो जाते हैं । इस प्रकार अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक तुम सदैव भूषण रहित होकर विद्युत् की भाँति सुशोभित हो रही हो । १७-२७

भूषणा बोली—भद्रे ! भाद्रपद मास की सप्तमीके दिन किसी जलाशय में स्नान कर अम्बिका समेत शिव जी का मण्डल प्रतिमा बनाकर भक्ति पूर्वक पूजनोपरांत हाथ में मुवर्ण सूत्र बांधकर यह प्रतिज्ञा किया कि आजीवन मैंने अपनी आत्मा तुम्हें अपित की है । इस प्रकार अविज्ञापूर्वक उसी समय से उस

१. अग्निमाला ।

इत्येवं समयं कृत्वा ततःप्रभृति दोरकम् । म्वर्जरौप्यस्य वापि करशालासु धारयेत् ॥३०
 मण्डकं वेष्टिकां दद्याच्छ्वशूपक्षे द्विजे तु वा । स्वयं च ता न भोक्तव्या व्रतभङ्गभयात्सखि ॥३१
 परितो मुद्रिका रौप्या सौवर्णी च दुधिष्ठिर । ताम्रपात्रोऽरि स्याप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥३२
 सोहालकानि कांसारं दद्याद्भुञ्जीत च स्वयम् । मण्डलं सद्ब्र वित्तं च शिवं शक्तिसमन्वितम् ॥३३
 सम्पूज्य सखि दुष्प्राप्य त्रैलोक्येऽपि न विद्यते । तदेवं समयः पूर्वं त्वया सह मया कृतः ॥३४
 स मया पालितो भवत्या ततोऽहं सुस्थिता सखि । त्वया ह्य भग्नः समयो दर्पात्त्यर्थः शरीरयोः ॥३५
 तेन सन्ततिविच्छिन्ना राज्येऽपि सति दुःखिता । एष प्रभावः कथितो व्रतस्यात्म्य मया ततः ॥३६
 अर्द्धं तव प्रदास्यामि तस्य धर्मस्य सुव्रते । सलीभावात्प्रतीच्छ त्वं नात्र कार्या विचारणः ॥३७
 इत्युक्त्वा प्रतिजग्राह व्रतदानफलं ततः । दधूव मुप्रजाः साध्वी मोक्षं प्राप्य सुरेश्वरी ॥३८
 व्रतस्यात्म्य प्रभावेण सुपुत्रा त्वं च देवकि । भविष्यसि त्रिलोकेशं पुत्रं च जनयिष्यसि ॥३९
 इत्येवं कथयित्वास्यै लोमशो युनिपुङ्गवः । जगाम नभसा पार्थं ययाऽप्येतत्तदेवोदितम् ॥४०
 ये चरिष्यन्ति मनुजा व्रतमेतद्युधिष्ठिर । कृकवाकुप्रसङ्गात्प्लं देवक्या चरितं शुभम् ॥४१
 तेषां सन्ततिविच्छेदो न कदाचिद्भविष्यति । स्त्रियश्च याश्चरिष्यन्ति, व्रतमेतत्सुतप्रदम् ॥
 मर्त्यलोके सुखं स्थित्वा यास्यन्ति शिवमन्वितम् ॥४२

सुवर्ण अथवा चांदी के ढोरे को अङ्गुलियों में धारण कर उस मण्डल और वस्त्र आदि श्वसुर पक्ष के ब्राह्मण को अपित करे । तथा सखि ! व्रतभंग के भय से स्वयं भोजन करे । युधिष्ठिर ! उस सुवर्ण अथवा चांदी की मुद्रिकाओं को ताँबें के पात्र पर स्थापित कर उसे ब्राह्मण को निवेदित करते हुए मधुर पक्वान्न से भी तृप्त कर पश्चात् स्वयं भोजन करे । सखि ! इस प्रकार यथाशक्ति मण्डल एवं शक्ति समेत शिव की आराधना करने पर उसे तीनों लोक में कोई वस्तु अग्राप्य नहीं रहती है । सखि ! यही प्रतिज्ञा पहले तुम्हारे साथ मैंने की थी, भक्ति पूर्वक मैंने उसका पालन किया और तुमने अहंकार वश उसके त्याग करने से अपने को शरीर के भी त्याग किया है । इसीलिए राज्य प्राप्ति करने पर भी संतान विच्छेद दुःख का अनुभव तुम्हें करना पड़ रहा है । इस प्रकार मैंने तुम्हें इस व्रत का प्रभाव सुना दिया । सुव्रते ! मैं अपने धर्म के आधे भाग को तुम्हें दे रही हूँ, और सखी भाव से तुम इसके अपनाने में कोई विचार मत करो । इतना कहने पर उसने उस व्रत दान को स्वीकार किया, जिससे उस सुरेश्वरी साध्वी को अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हुई । देवकि ! इस प्रकार तुम भी इस व्रत के प्रभाव से अनेक पुत्रों से युक्त होने पर भी त्रैलोक्य के अधीश्वर को पुत्र रूप में उत्पन्न करोगी । पार्थ ! इतना कहकर मुनि श्रेष्ठ लोमश ने आकाश मार्ग से प्रस्थान कर दिया । वही सब बातें मैंने भी तुम्हें बताया है । २८-४०। युधिष्ठिर ! इस व्रत को जो देवकी द्वारा सुसम्पन्न एवं (कृकवाकु) के प्रसङ्गों से प्रस्थात है, सुसम्पन्न करने वाले के संतान विच्छेद कभी नहीं होगा । इसे सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी पुत्र की प्राप्ति पूर्वक इस भूतल में सुखानुभूति के उपरांत शिव लोक प्राप्त करती है । इस भाँति इस उत्तम व्रत को, जो कुकुटी (मुर्गी) तथा वानरी चरितापूर्ण है, चराचर के ईश शिव को ध्यान पूर्वक सुसम्पन्न करने वाला पुरुष समस्त कलि

यः कुकुटीव्रतवरं प्लवगीसमेतं चक्रे चराचरणुरुं हृदये निधायः
तद्वच्चाकरोति कलुषौथविधातरक्षां सा स्त्री युवां भवति शोभनगीतवत्सा ॥४३

इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कुकुटीसर्मक्टीव्रतवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्याय ॥४६

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

उभयसप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सप्तमीव्रतकल्पयुतमम् । माघमासात्सनारथ्य शुक्लपक्षे युधिष्ठिर ॥१
सप्तम्यां कुरु सङ्कल्पमहोरात्रे व्रते नृप । वर्षणेत्यर्चित्यत्वा तु ब्रह्मकूर्वं तुं कारयेत् ॥२
अष्टम्यां भोजयेद्विप्रांस्तिलपिष्टं गुडौदनम् । अग्निष्ठोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३
सप्तम्यां फालगुने मासि सूर्यमित्यभिपूजयेत् । वाजपेयस्य यज्ञस्य यथोक्तं लभते फलम् ॥४
सप्तम्यां चैत्रमासे तु वेदांशुमभिपूजयेत् । उक्थाध्वरसमं पुण्यं नरः प्राप्नोति भक्तिमान् ॥५
वैशाखस्य तु सप्तम्यां धातारमभिपूजयेत् । पशुबन्धवध्वरे पुण्यं सम्यक्प्राप्नोति मानवः ॥६
सप्तम्यां ज्येष्ठमासस्य इन्द्र इत्यभिपूजयेत् । वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥७
आषाढ़मासे सप्तम्यां पूजयित्वा दिवाकरम् । बहुवर्णस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥८

कल्प के विध्वंस एवं सौख्य प्राप्त करता है और स्त्री भी सुन्दर संतानों से युक्त होती है । ४१-४३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
कुकुट व्रत वर्णन नामक छियालिसवाँ अध्याय समाप्त । ४६।

अध्याय ४७

उभयसप्तमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें एक अन्य सप्तमी का विधान बता रहा हूँ सुनो ! नृप !
माघमास की शुक्ल सप्तमी के दिन संकल्प पूर्वक उपवास रहकर वरण की अर्चना के उपरांत ब्रह्म कूच करके
अष्टमी में तिल में गुड़ मिश्रित भोजन से ब्राह्मण को संतुष्ट करने पर उस पुरुष को अग्निष्ठोम यज्ञ के फल
प्राप्त होते हैं । फालगुन मास की सप्तमी के दिन सूर्य, नाम से पूजनादि करने पर वाजपेय यज्ञ के फल प्राप्त होते
हैं । चैत्रमास की सप्तमी में 'वेदांशु' नामक (सूर्य) की अर्चना करने पर उस भक्तिमान पुरुष को उक्था यज्ञ के
समान फल प्राप्त होते हैं । वैशाख मास की सप्तमी के दिन 'धाता' नामक सूर्य की अर्चना करने पर पशुबंधन
यज्ञ के सभी पुण्य तथा ज्येष्ठ सप्तमी के दिन इन्द्र नामक सूर्य की पूजा करने पर वाजपेय यज्ञ के दुर्लभ फल,
ज्येष्ठ सप्तमी के दिन इन्द्र नामक सूर्य की पूजा करने पर वाजपेय यज्ञ के दुर्लभ फल प्राप्त होते हैं । १-७।
आषाढ़ मास की सप्तमी में दिवाकर नामक सूर्य की अर्चना करने से बहुवर्ण यज्ञ के फल, श्रावण मास

सप्तम्यां श्रावणे सासि मातापि नाम पूजयेत् । सौत्रामणिफलं सप्तम्यकग्राप्नोति पुरुषः शुभम् ॥९
 रविं प्रौष्ठपदे मासे सप्तम्यामर्चयेच्छुचिः । तुलापुरुषदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥१०
 आश्वदयुक्तुक्लसप्तम्यां सवितारं प्रपूज्य च । गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥११
 कार्तिके शुक्लसप्तम्यां दिनेशं सप्तवाहनम् । योऽर्घ्यर्वयति पुण्यात्मा पौण्डरीकं स विन्दति ॥१२
 भानुं भार्गसिते पक्षे पूजयित्वा विधनतः । राजसूयस्य यज्ञस्य फलं दशगुणं अजेत् ॥१३
 भास्करं पौषमासे तु पूजयित्वा यथाविधि ! नरमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥१४
 तदेव कृष्णसप्तम्यां नाम सम्पूजयेद्बूधः । सोपवासः प्रयत्नेन वर्षमेकं युधिष्ठिरः ॥
 पश्चात्समाप्ते नियमे सूर्ययागं समाचरेत् ॥१५
 शुचिर्भूमौ समे देशे लेपयेद्रक्तचन्दनैः । एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुर्हस्तमयापि वा ॥१६
 सिंहरौरिकाभ्यां च सूर्यमण्डलमालिखेत् । रक्तपुष्टैः सपद्वैश्च धूपैः कुन्दुरकादिभिः ॥
 सन्पूज्य द्व्याघैवेद्यं विचित्रं धृतपाचितम् ॥१७
 पुरतः स्थापयेत्कुम्भान्सहित्यान्नसंयुतान् । अग्निकार्यं ततः कृर्यात्समभ्युक्ष्य हुताशनम् ॥१८
 आकृष्णेनेति मन्त्रेण समिदिभञ्चार्कसम्भवैः । तिलैराज्यगुडोपेतैर्द्यादशशताहृतीः ॥१९
 ततस्तु दक्षिणा देया ब्राह्मणानां युधिष्ठिर । भोजयित्वा रक्तवस्त्रैः शुक्लान्यपि पिधापयेत् ॥२०
 द्वादशात्र प्रशंसन्ति गावो वस्त्रान्विताः शुभाः । छत्रोपानहयुग्मं च एकैकाय प्रदापयेत् ॥
 एवं विसृज्य तान्विप्रान्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२१

की सप्तमी में 'भारतीय' नामक सूर्य की पूजा करने पर उस पुरुष को सौत्रामणि यज्ञ के फल और भाद्रपद भास की सप्तमी में रवि की अर्चना करने से तुला पुरुष दान के फल प्राप्त होते हैं । आश्विन शुक्ल सप्तमी में सविता की अर्चना करने पर सहस्र गोदान फल, कार्तिक शुक्ल सप्तमी के दिन सप्तवाहन नाम सूर्य की आराधना करने पर उस पुण्यात्मा को पुण्डरीक के फल प्राप्त होते हैं । मार्गशीर्ष में सप्तमी के दिन भानु की पूजा करने पर राजसूय यज्ञ के दशगुणे फल अधिक प्राप्त होते हैं । उसी प्रकार पौषमास में भास्कर की सविधान अर्चना करने पर नरमेध यज्ञ के पुण्यफल प्राप्त होते हैं और कृष्ण सप्तमी में भी उसी नाम द्वारा अर्चना करनी चाहिए । युधिष्ठिर ! इसी प्रकार एक वर्ष तक उपवास समेत सप्रयत्न व्रत सुसम्पन्न करने के उपरांत सूर्ययाग को सविधान सुसम्पन्न करने के उद्देश्य से किसी पवित्र भूमि में रक्त चन्दन से लेपन करके एक दो चार हाथ का विस्तृत एवं सौन्दर्य पूर्णं सूर्य मण्डल को सिन्दुर और गेरू द्वारा बनाये । अनन्तर रक्त पुष्प, कमल, धूप एवं कुदुरकादि से सविधान अर्चना करके धृत युक्त नैवेद्य अर्पित करे और उनके समक्ष पूर्ण कलश सुवर्ण समेत रख स्थापित पूर्वक कुश कण्डिका विधान समेत हवन आरम्भ करते हुए 'आकृष्णेनेति' मंत्र द्वारा मंदार के लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में तिल, धी, एवं गुड़ की दश आढ़ुति डाल कर ब्राह्मणों को रक्त वस्त्र और श्वेत वस्त्र धारण कराकर भोजन से तृप्त कर यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे । दक्षिणा के विषय में बारह वस्तुओं की यहाँ प्रशंसा की गयी है—गौ, वस्त्र, छत्र, उपानह आदि वस्तु सौ में से प्रत्येक को वितरण करना चाहिए । इस प्रकार उस ब्राह्मणों को सम्मान पूर्वक विसर्जन करने के उपरांत स्वयं मौन होकर भोजन करे । ८-२१। पर्थ ! इस प्रकार इस सप्तमी व्रत को

य एवं कुरुते पार्थं सप्तमीवतमुत्तमम् । नीरुजो रूपदान्वागमी दीर्घायुद्वैव जायते ॥२२
सप्तम्यां सोपवासस्तु भानोः पश्यन्ति ये मुखम् । सर्वपापविनिर्मुक्ताः सूर्यलोकमवाप्नुः ॥२३
व्रतमेतन्महाराजं सर्वाशुभविनाशनम् । सर्वदुष्टप्रशमनं शरीरारोग्यकारकम् ॥
सूर्यलोकप्रदं चान्ते ग्राहैवं नारदो मुनिः ॥२४

ये सप्तमीमुपवसन्ति सितासितां च नामाक्षरैरहिनदीधितिमर्चयन्ति ।
ते सर्वरोगरहिताः सुखिनः सदैव भूत्वा रवेरनुचराः सुचिरं भपन्ति ॥२५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
उभयसप्तमीवतवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः । ४७

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

कल्याणसप्तमीवतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्दुर्गसंसारसागरोत्तारकारकम् । किञ्चिद्वतं समाचक्ष्व स्वर्गारोग्यसुखप्रदम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् । तदा सा तु महापुण्या विजया तु निगद्यते ॥२
प्रातर्गच्छेन पयसा स्नानमस्यां समाचरेत् । शुक्लाम्बरधरः पद्ममक्षतैः परिकल्पयेत् ॥३

सुराम्पन्न करने वाला पुरुष आरोग्य, रूपवान्, सत्यनिष्ठ, और दीर्घायु होता है । सप्तमी के दिन उपवास रहकर सूर्य मुख के दर्शन करते वाले पुरुष समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं । महाराज ! समस्त पापनाशक, सम्पूर्ण दुष्टों के विद्धवसक, आरोग्य, और अन्त में सूर्य लोक प्रदान करने वाले इस व्रत को नारद मुनि ने इसी भाँति वर्णन किया है । इस प्रकार कृष्ण एवं सप्तमी के दिन उपवास रहकर उपरोक्त नामोच्चारण पूर्वक सूर्य की सविधान एवं भक्ति पूर्वक अर्चना सुसम्पन्न करते हैं, वे समस्त रोगों से मुक्त एवं सम्पूर्ण सुखों के अनुचर हो जाते हैं । २२-२५

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

उभयसप्तमी व्रत नामक वर्णन नामक सैतालिसवाँ अध्याय समाप्त । ४७।

अध्याय ४८

कल्याणसप्तमीवत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! इस घोर संसार सागर को पार करने के लिए मुझे एक ऐसा व्रत विधान की कृपा कीजिये, जिसे सुसम्पन्न करने पर स्वर्ग, आरोग्य एवं समस्त सुखों की प्राप्ति हो । १

श्रीकृष्ण बोले—शुक्ल सप्तमी के दिन रविवार होने से वह महापुण्य स्वरूपा विजया के नाम से प्रस्तात होती है । प्रातः काल गौ के क्षीर से स्नान एवं शुक्ल वस्त्र परिधान पूर्वक अक्षतों द्वारा कर्णिका

प्राइमुखोष्टदलं सध्ये तद्विचित्रां च कर्णिकाम् । सर्वेष्वपि इलेष्वेव विन्यसेत्पूर्वतः क्रमात् ॥४
 पूर्वेण तपनायेति मार्तण्डायेति वै नमः । याम्ये दिवाकरायेति विधात्रे नैऋतेन च ॥५
 पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति वानिले । सौम्ये च वरुणायेति रवयेत्येष्टमे दले ॥६
 आदावत्ते च तत्मध्ये ननोऽस्तु परमात्मने । सन्त्वैरेवं समस्यच्च नमस्कारान्तदीपितैः ॥७
 शुक्लवस्त्रफलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनैः ! स्थण्डिले पूजयेद्गृहक्ष्या गुडेन लवणेन च ॥८
 ततो व्याहृतिहोमेन विभज्य द्विजपुञ्जावान् ! शक्तिस्तप्तपैद्गृहक्ष्या गुडक्षीरथृतादिभिः ॥९
 तिलपात्रं हिरण्यं च गुरुवे च निवेदयेत् । एवं नियमकृत्सनाद्वा प्रातरुत्थाय भानवः ॥१०
 कृतस्नानजपे विप्रैः सहैव धृतपायसम् । भुक्त्वा च वेदविद्धिर्बैद्यलव्रतदर्जितैः ॥११
 एवं सम्वत्सरस्यात्ते कृत्वैतदखिलं नृप । उद्यापेत्यथाशक्ति भास्करं संसारन्हृदिः ॥१२
 धृतपात्रं सकरकं सोदकुम्भं निवेदयेत् । वस्त्रालङ्घारसञ्चुक्तां चुवणस्त्यां पयस्त्वनीम् ॥१३
 एकान्नप्रिप्रदद्यादगां दितहीनोः विमत्सरः : वित्तशाठ्यं न कुर्वीत ततो मोहात्पतत्यधः ॥१४
 अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कल्याणसप्तमीम् । शृणुयाद्वा पठेद्वापि सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥१५

यश्चाष्टपत्रकमलोदरकर्णिकायां सम्पूजयेत्कुमुमधूपविलेपनाद्यैः ।

षष्ठ्याः परेऽहनि नवार्त्तिहरं दिनेशं कल्याणभाजनमसौ भवते हि जन्तुः ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वदणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

कल्याणसप्तमीवत्वर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।४८

समेत अष्टदल कमल का सुनिर्माण करके समस्त दलों में क्रमशः (सूर्य) के नामोच्चारण करते हुए स्थापन पूजन करना चाहिए—पूर्व में तपनाय नमः, अग्निकोण में भार्तण्डयनमः, दक्षिण में दिवाकराय नमः, नैऋत्य में विधात्रे नमः, पश्चिम में वरुणाय नमः, वायव्य में भास्कराय नमः उत्तर में वरुणाय नमः और ईशान में रवये नमः, तथा आदि, मध्य एवं अन्त में नमः परमात्मने कहकर आवाहन स्थापन के उपरांत शुक्ल वस्त्र, उत्तम, फल, धूप, माला, अनुलेपन द्वारा उस कमल एवं हवन वेदी की भक्ति पूर्वक पूजा करके गुड़-लवण समेत की व्याहृति हवन के उपरांत थेष्ठ ब्राह्मणों को यथा शक्ति गुड, क्षीर एवं धृत आदि के मधुर भक्ष्य द्वारा अत्यन्त प्रसन्न कर सुवर्ण तिल पात्र गुरुके लिए समर्पित करे । प्रातः काल होने पर उस व्रती पुरुष को स्नान जप करने के अनन्तर विद्वान् ब्राह्मणों के साथ ही, जो विडाल व्रत के त्याग हों, धृत समेत पायस भोजन करना चाहिए । नृप ! इस प्रकार वर्ष के अन्त में हृदय में भास्कर के स्मरण पूर्वक यथाशक्ति धृत समेत करवा, जलपूर्ण कुम्भ, वस्त्र एवं अलंकार से सुसज्जित पयस्त्वनी एक गौ की मत्सरहीन होकर निर्धनावस्था में किसी प्रकार प्रदान करना ही चाहिए । वित्त शाढ्य (धन रहते देव निमित्त व्यय न करना अथवा अत्य करना) का विशेष ध्यान न रखने पर उस का अधः पतन होता है । इस प्रकार इस कल्याण सप्तमी को सुसम्पन्न करने अथवा श्रवण या अध्ययन करने वाला समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । इस भाँति जो पुरुष सप्तमी के दिन कर्णिका समेत अष्टदल कमल के भीतर (नामोच्चारण पूर्वक) पुष्ट, धूप, माला, एवं अनुलेपन आदि से दिवानायक सूर्य की आराधना करता है, वह समस्त कल्याणों का दृढ़ भाजन होता है । २-१६

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

कल्याण सप्तमी व्रत वर्णन नामक अङ्गतालिसवाँ अध्याय समाप्त । ४८।

अथैकोनपञ्चाशोऽध्यायः

शर्करासप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उचाच

शर्करासप्तमीं वक्ष्ये सर्वकल्पणाशिनीम् । आयुरारोग्यमैश्वर्यं ययानन्तं प्रजायते ॥१
 माधवस्य सिते पक्षे सप्तम्यां शद्व्यान्वितः । प्रातः स्नात्वा तिलैः शुद्धैः शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥२
 स्थण्डिले पद्मसलिल्यं कुंकुमेन सकर्णिकम् । तस्मिन्म्रमः सवित्रेति गृह्यपुष्पं निवेदयेत् ॥३
 स्थापयेदुदककुम्भं च शर्करापात्रसंयुतम् । रक्तवस्त्रैः स्वलंकृत्य शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥४
 सुदर्णाश्रसमायुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत् । दिश्वेदेवमयो यस्माद्वेदवादीति पठयते^१ ॥५
 त्वदेवामृतसर्वस्वमतः पाहि सनातन । सौरसूक्तं जपं स्तिष्ठेत्पुराणश्रवणेन वा ॥६
 अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां कृतनित्यकः । सर्वं च वेददिदुषे ब्राह्मणायोगपादयेत् ॥७
 भोजयेच्छक्तिर्विप्राञ्छक्राघृतपायसैः । भृज्जीत तैललवणं स्वयमप्यथ दाग्यतः ॥८
 अनेन विधिना सर्वं भासि मासि समाचरेत् । वत्सरान्ते पुनर्द्याद्याहृणाय समाहितः ॥९
 शयनं वस्त्रसम्बीतं शर्कराकलशान्वितम् । सर्वोपस्कारसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम् ॥१०
 गृहं च शक्तिर्विद्यात्तमस्तोपस्करान्वितम् । सहस्रेणापि निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा ॥११

अध्याय ४९

शर्करासप्तमीव्रत का दर्शन

कृष्ण जी बोले—मैं तुम्हें शर्करा नामक सप्तमी का विधान बता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर समस्त पापों के नाश पूर्वक न्याय, आरोग्य एवं अनन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है सुनो ! चैत्रमास की शुक्ल सप्तमी के दिन श्रद्धा समेत प्रातः काल स्नान करके शुद्धतिल, श्वेत माला एवं अनुलेपन से विभूषित वेदी के ऊपर कुंकुम द्वारा कर्णिका समेत पुष्पदल कमल के निर्माण के उपरांत ‘सवित्रे नमः’ कहकर गंध और पुष्प के निवेदन करते हुए शर्करा पात्र समेत जल पूर्ण कुम्भ की याचना करने और रक्त वस्त्र, श्वेत माला एवं अनुलेपन के द्वारा उसे सुसज्जित कर सुवर्ण निर्मित अश्व के समेत मंत्रोच्चारण पूर्वक उसकी सप्रेम अर्चना करे । दैव ! वैदिक विद्वान् यतः आप ही अमृत सर्वदेव को विश्वदेव मय बतलाते हैं, अतः सनातन ! आप मेरी रक्षा करें । अनन्तर सौरसूक्त के जप अथवा (सूर्य) पुराण के श्रवण करते हुए रात्रि व्यतीत करने के उपरांत अष्टमी के दिन नित्य कर्म सुसम्पन्न कर उसे किसी विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करके यथाशक्ति शक्कर धी, मुक्त पायस द्वारा ब्राह्मणों को भली भाँति तृप्त करे । १-७। अनन्तर तैल लवण के त्याग पूर्वक मौन होकर स्वयं भी भोजन करे । इस विधान द्वारा प्रत्येक मास में समस्त सप्तमी व्रत को सुसम्पन्न करते हुए व्रत की समाप्ति में पुनः ब्राह्मण को सुसज्जित शश्या, शक्कर एवं समग्र साधन समेत कलश, तथा एक पयस्विनी गौ अर्पित करके यथाशक्ति साधन सम्पन्न गृह अथवा उसके निष्क्रय के रूप में एक सहस्र

दशभिर्द्विभिर्निष्कैस्तदर्थेनापि भक्तिः । सुवर्णाश्चः प्रदातव्यः पूर्ववन्मन्त्रवचनम् ॥१२
 वित्तशाठयं न कुर्वीत कुर्वन्दोषान्तमश्नुते । अमृतं पिबतो वक्रात्सूर्यस्यामृतबिन्दवः ॥१३
 निषेतुरेत उत्थाय शालिमुद्गेक्षवः स्मृताः । शर्करा च परं तस्मादिक्षुरसोद्भवा मता ॥१४
 इष्टः रवेरतः पुण्या शर्करा हृव्यक्व्ययोः । शर्करासप्तमी चैषा वाज्ञमेधफलप्रदा ॥१५
 सर्वे^१ हृष्पशमं यान्ति पुनः सन्तिर्वद्धनी । यः द्वुर्यात्परया भक्त्वा न परं ऋग्य गच्छति ॥१६
 कल्पमेकं वसेत्स्वर्गं ततो याति परं पदम् ॥१७

इदमनथ शृणोति यः स्मरेद्वा परिपठतीह सुरेश्वरस्य लोके ।
 मतिमपि च ददाति यो जनानाममरवधूजनकिन्नरैः स पूज्यः ॥१८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 शर्करासप्तमीव्रतवर्णनं नामैकोपञ्चाशोऽध्यायः ।४९

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कमलासप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तद्वक्तमलसप्तमीम् । यस्याः संकीर्तनादेव तुष्टितीह .दिवाकरः ॥१

निष्टक, अथवा सौ, दश, दो तीन या उसके आधे निष्टक प्रदान करते हुए पूर्व की भाँति मंत्रोच्चारण पूर्वक सुवर्ण के अश्व प्रदान करना चाहिए । दान के समय वित्तशाठ्य दोप पर विशेष ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि वैसा न करने से दोष भागी होना पड़ता है । अमृत पान करते समय सूर्य के मुख से गिरे हुए अमृत की बूंदों से शाठी (चावल) मूँग और ईख का उत्पन्न होना बताया जाता है तथा ऊख के रस से उत्पन्न होने के कारण शक्कर उन्हें अत्यन्त प्रिय है । इसीलिए रूप के हृव्य कव्य में पुष्प शक्कर का सम्मिलित रहना परम आवश्यक है । और अश्वमेध फल प्रदान करने वाली इस शर्करासप्तमी को भक्तिपूर्वक सविधान सुसम्पन्न करने वाला पुरुष समस्त उपद्रव के शमन पूर्वक सन्तान की निरन्तर वृद्धि और परन्नत्य की प्राप्ति करता है । एक कल्प तक स्वर्ग में सुखोपभोग करने के उपरांत परमपद की प्राप्ति करता है । अनंथ ! इस प्रकार इस व्रत विधान का श्रवण पठन अथवा सम्मति प्रदान करने वाला पुरुष स्वर्ग में पहुँच कर देवों की स्त्रियों एवं किन्नरों द्वारा सुपूजित होता है । ८-१८

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बाद में
 शर्करासप्तमी व्रत वर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ।४९।

अध्याय ५०

कमलासप्तमीव्रत का वर्णन

कृष्ण जी बोले—मैं तुम्हें कमला सप्तमी नामक व्रत का विधान बता रहा हूँ, जिसके संकीर्तन मात्र

दसन्तेऽमलसप्तम्यां स्नातः संगौरसर्वैः । तिलपात्रे च सौवर्ण निधाय कमलं शुभम् ॥२
 वस्त्रयुगमवृतं कृत्वा गन्धपुष्पैरथार्थार्चयेत् । नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥३
 दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते । ततो द्विकालवेलायामुदकुम्भसमन्वितम् ॥४
 विप्राय द्यात्सम्पूज्य वस्त्रमात्यविभूषणैः । अहोरात्रे गते पश्चादस्तम्यां भोजयेदिद्वजान् ॥५
 यथाशक्त्याथ भुञ्जीत विमांसं तैलवर्जितम् । अनेन विधिना शुद्धलसप्तम्यां मासिमासि च ॥६
 सर्वं समाचरेद्वृक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः । ब्रतान्ते शयनं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ॥७
 गावं^१ स दद्याच्छक्त्या तु सुवर्णाङ्गां पयस्त्विनीम् । भाजनासनदीपादीन्दद्यादिष्टानुपस्करान् ॥८
 अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कमलसप्तमीम् । लक्ष्मीमत्तामभ्येत्य सूर्यलोके च मोदते ॥९
 कल्पेकल्पे तथा लोकान्सप्तगत्वा पृथक्पृथक् । अप्सरोभिः परिवृत्सत्तते याति पराङ्गंतिम् ॥१०

यः पश्यतीदं शृणुयान्मुहूर्तं पठेच्च सुमोर्ति इदाति ।

सोऽप्यत्र लक्ष्मीमद्वलामवाप्य गन्धर्वविद्याधरलोकमेति ॥११

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

कमलासप्तमीव्रत वर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५०

करने से दिवाकर देव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । वसन्त मास की शुक्ल सप्तमी के दिन स्नान करके तिल के पात्र में (पीली राई) समेत सुवर्ण निर्मित कमल को स्थापित कर दो वस्त्रों से उसे आच्छन्न करने के उपरांत गन्ध पुष्प द्वारा सविधि अर्चना करके कर कमल विभूषित, विश्व को धारण करने वाले, दिवाकर एवं प्रभाकर देव को बार बार नमस्कार है । क्षमा प्रार्थना करे । अनन्तर दोनों वेला में जलपूर्ण धर को वस्त्र, माला एवं भूपण भूषित करके पूजा के उपरांत ब्राह्मण को समर्पित करे । इस प्रकार दिन-रात व्यतीत कर अष्टमी में तेल मांस वर्जित मधुर भोजनों द्वारा यथाशक्ति ब्राह्मणों को प्रसन्न करे । इसी भाँति प्रत्येक मास की शुक्ल सप्तमी में अनुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए ब्रत के अंत में सुसज्जित शश्या पर सुवर्ण कमल स्थापित कर पूजनोपरांत उसे तथा सुवर्ण समेत पयस्त्विनी गौ, भोजन पात्र, आसन दीप आदि सभी साधन ब्राह्मणों के लिए सादर समर्पित करना चाहिए । इस भाँति सविधि कमलसप्तमी को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष अनन्त लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक सूर्य लोक का सुखानुभव करता है—एक एक कल्प तक पृथक्-पृथक् सातों लोकों के सुखानुभव पूर्वक अप्सराओं से सुसेवित होते हुए उत्तम गति प्राप्त करता है । इस ब्रत विधान को देखने, सुनने अथवा मुहूर्त मात्र ही पढ़ने वाला या उपदेश देने वाला पुरुष भी अचल लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक गन्धर्वविद्याधर के लोकों की प्राप्ति करता है । १-११

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

कमला सप्तमी व्रत वर्णन नामक पञ्चाशत्तमोऽध्याय समाप्त ।५०।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शुभसप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि शोभनां शुभसप्तमीन् । यामुपोद्य नरो रोगाच्छोकदुखात्प्रमुच्यते ॥१
 पुण्य आश्वयुजे मासि कृतस्नानः ययः शुचिः । वाच्येच्च ततो विश्रानारभेच्छुभसप्तमीन् ॥२
 कपिलं पूजयेद्बृकत्या गन्धमाल्यानुलेपनैः । नमाग्नि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालयाम् ॥३
 त्वामहं शुभकल्याणशरीरां सर्वसिद्धये । अथाहत्य तिलप्रस्थं तान्नपात्रेण संयुतम् ॥४
 काञ्चनं वृषभं तद्द्विस्त्रमाल्यगुडान्वितम् । दद्याद्विकालवेलायामर्यमा प्रीयतामिति ॥५
 पञ्चगव्यं च सम्प्राशय रवप्यादभूमौ विमत्सरः । ततः प्रभाते सञ्जाते भक्त्या सन्तर्पयेद्द्विजान् ॥६
 अनेन विधिना दद्यान्मासिमासि सदा नरः । वाससी वृषभं हैमं तद्देनोस्तु पूजनम् ॥७
 सम्वत्सरान्ते शयनमिक्षुदण्डगुडान्वितम् । स्तोपधानकविश्रामं भाजनासनसञ्जुतम् ॥८
 तान्नपात्रं तिलप्रस्थं सौवर्णवृषसञ्ज्युतम् । दद्याद्वेदविदे सर्वं दिव्यात्मा प्रीयतामिति ॥९
 अनेन विधिना राजन्कुर्याद्यः शुभसत्तमोम् । तस्य श्रीर्विमला कीर्तिर्भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥१०
 अप्सरोगणगन्धर्वैः पूज्यमानः सुरालये । वसेदगणाधिपो भूत्वा यावदाभूतसप्लवम् ॥११
 स कल्पादवतीर्णस्तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । ब्रह्महत्यासहस्रस्य भूणहत्याशतस्य च ॥१२

अध्याय ५०

शुभसप्तमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें एक अन्य शुभ एवं शोभन सप्तमी का विधान बता रहा हूँ, जिसका उपवास रहकर मनुष्य रोग, शोक एवं दुःखों से मुक्त होता है। पुण्य कार्तिक मास की सप्तमी के दिन यमपूत स्नान करके कथा आरम्भ पूर्वक शुभ सप्तमी का अनुष्ठान आरम्भ कर गन्ध, एवं अनुलेपन द्वारा कपिलागौ की पूजा करके क्षमा प्रार्थना करे कि सूर्य से उत्पन्न, निखिल भुवनों के आधार एवं शुभ कल्याण की साक्षात् मूर्ति आप को मैं सर्व सिद्धर्थं नमस्कार करता हूँ। अनन्तर तान्नपात्र में एक सेर तिल रखकर उसके ऊपर वृषभ की सुवर्ण प्रतिमा को वस्त्र माला एवं गुड़ से सुशोभित कर द्विकाल वेला में 'अर्यमा प्रसन्न हों' कह कर ब्राह्मण के लिए अपित कर रात्रि में पञ्चगव्य के प्राशन पूर्वक भूमि शयन कर अनन्तर प्रातः काल में भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को तृप्त करे। १-६। इसी विधान द्वारा प्रत्येक मास में वस्त्र, वृषभ की सुवर्ण प्रतिमा, और गौ के पूजन पूर्वक वर्ष की समाप्ति में सुसज्जित शय्या, ऊख, गुड़ भोजन पात्र, तान्नपात्र, एक सेरतिल, सुवर्ण की वृषभ प्रतिमा आदि वस्तुएँ पूजनोंपरांत 'विश्वात्मा प्रसन्न हों' कहकर किसी विद्वान् ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए। राजन्! इस विधान द्वारा इस शुभ सप्तमी को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष भी निर्मल कीर्ति प्राप्ति करके प्रत्येक जन्म में करते हुए अन्त में अप्सराओं और गन्धर्वों से पूजित होकर स्वर्ग में गणाधिप होकर प्रतिष्ठित होता है। पुनः सृष्टि के आरम्भ होने पर सातों द्वीपों का अधीश्वर होता है और यह शुभ

नाशङ्करोति पुण्येयं कृता वै शुभसप्तमी

॥१३

इमां पठेद्यः शृणुयान्मुहूर्तं वीक्षदते सङ्गादपि दीयमानम् ।

सोऽप्यत्र सम्बाध्य विमुक्तदेहः प्राप्नोति विद्याधरनायकत्वम् ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

शुभसप्तमीव्रतनिरूपणं नामैकोपचासततोऽध्यायः ।५१

अथ द्विपञ्चाशतमोऽध्यायः

स्नपनसप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

किमुद्गेगाद्वृवेक्ष्यमलक्ष्मीः केन हन्यते । मृतवत्सादिकार्येषु दुःस्वप्ने च किमिष्यते ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यत्र युधिष्ठिर । रोगदौर्त्यरूपेण तथैवेष्टविधातनः ॥२

तद्विधाताय वक्ष्यामि सदा कल्याणसप्तमीम् । सप्तमीस्नपनं नाम व्याधिर्पीडाविनाशनम् ॥३

बालानां मरणं यत्र क्षीरपानं प्रशस्यते । तदद्वद्वातुराणां च यौवने वाणि वर्तताम् ॥४

शान्तये तत्र वक्ष्यामि मृतवत्सादिके च यत् । एतदेवाद्भुतोद्गच्छन्ताविभ्रममानसम् ॥५

वराहकल्पे सम्प्राप्ते मनोर्वेस्वतेऽन्तरे । कृते युगे महाराज हैहयो रूपवर्द्धनः ॥६

सप्तमी सुसम्पन्न होने पर सहस्र ब्रह्म हत्या तथा सौ भ्रूण हत्या के पाप विघ्नसंकरती है । इस प्रकार इसके अध्ययन, श्रवण अथवा मुहूर्त मात्र दर्शन करने वाले पुरुष भी निःसंग होकर विद्याधर के नायक पद पर प्रतिष्ठित होते हैं । ७-१४

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्बाद में
शुभ सप्तमी व्रत वर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।५१।

अध्याय ५२

स्नपनसप्तमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—मनुष्यों के उद्गेग (अशांति) और दुर्भाग्य किस उपाय द्वारा नष्ट होते हैं तथा
मृतवत्सा आदि दोषों के निवारण एवं दुःखस्वप्नों के कर्तव्य बताने की कृपा कीजिये । १

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर जन्मान्तरीय पापों के परिणाम स्वरूप मनुष्यों के रोग, दुर्गति और
अभीष्ट के हनन रहते हैं । अतः इनके विधातार्थ मैं कल्याण सप्तमी के विधान तुम्हें बता रहा हूँ, मुझो !
सप्तमी में स्नान करने से व्याधियों एवं तज्जनित पीडाओं के शमन होते हैं । बच्चों के निधन होने पर
प्रशस्त क्षीर पान की भाँति वृद्ध और आतुरों के लिए मृतवत्सादि दोषों के अपहरणार्थ इसी सप्तमी के
व्रत सुसम्पन्न किया जाता है तथा उद्गेग एवं चिंता जर्जर प्राणियों के लिए भी । बाराह कल्प में वैवस्वत

आसीन्त्योत्तमः पूर्वं कृतवीर्यः प्रतापवान् । स सप्तद्वैषमखिलं पालयामास भूतलम् ॥७
 यावद्वृष्टसहन्त्राणि सप्तसप्तति भारत । जातमात्रं च तस्याथ शुभं पुत्रशतं किल ॥८
 यवनस्य तु शापेन विनरामगमत्युरा । कृतवीर्यः समाराध्य सहस्रांशु दिवाकरम् ॥९
 उपवासवत्तैर्दिव्यवैद्यसूक्तेश्च भारत । दर्शयामास चात्मानं कृतवीर्येस्व भातुमत् ॥१०
 कृतवीर्येण वै पृष्ठः प्रोवाचेदं बृहस्पतिः । अतिक्लेशेन^१ महता पुत्रतत्व नराधिप ॥११
 भद्रिष्यति चिरञ्जीवी किं तु कल्मणनाशनम् । सप्तमीस्तपनं वाप्यां कुरु पापविनाश्ये ॥१२
 जातस्य मृतवत्सायाः सप्तमे माति भूपते । ग्रहतराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मण दत्तचनम् ॥१३
 बालस्य जन्मनक्षत्रं दर्जयेत्तां तिथिं बुधः । सद्वृद्धातुरगां तु कृतं स्यादिति तेषु च ॥१४
 गोमयेनोपलिप्तायां भूमादेकाग्रचितवान् । तज्ज्ञते रक्तशालेयैर्दरुणाक्षीरं संयुतम् ॥१५
 निर्वपेत्सूर्यमुद्गाभ्यां मातृभ्योऽपि विधानतः । कीर्तयेत्सूर्यदैवत्यं सप्तार्चिषि घृताहुतीः ॥१६
 जुहुयादुद्दूसूक्तेन तद्वृद्धाय भारत ! होतव्याः समिधश्चाद तत्र वार्कपलाशजाः ॥१७
 यथकृष्णतिलैर्होमः कर्तव्याष्टशतं पुनः । हुत्वा स्नानं च कर्तव्यं मध्ये गाङ्गेन धीमता ॥१८
 विप्रेण वेदविदुषा विधिवद्भर्त्याणिना । स्थापयित्वा चतुष्कोणे चतुष्कुम्भान्प्रशोभनान् ॥१९
 पञ्चमं च पुनर्मध्ये चाक्षतेन विभूषितम्^२ । स्थापयेद्वर्षणाक्रान्तं सप्तर्षिणाभिमन्त्रितम् ॥२०
 सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णचन्द्रमलान्वितम्^३ । सर्वान्सर्वार्षधियुतान्पञ्चभङ्गजलान्वितान्^४ ॥२१

मन्वन्तर के समय कृत युग में महाराज हैह्य वंश के भूषण स्वरूप कृतवीर्य नामक प्रतापी राजा राज करता था, जो इस वसुन्धरा पर सातों द्विषों का अधीश्वर था । भारत ! सतहत्तर सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर उनके सौन्दर्य पूर्ण सौ पुत्र उत्पन्न हुए, किन्तु यवन के शाप द्वारा उत्पन्न होते ही विनष्ट भी हो गये थे । अनन्तर भारत ! उपवारा, व्रत, एवं दिव्य वेद ग्रन्थों द्वारा सहस्रांशु भगवान् दिवाकर की आराधना करने पर सूर्य ने कृतवीर्य को साक्षात् दर्शन प्रदान किया । कृतवीर्य के पूर्छने पर बृहस्पति (सूर्य) ने उनसे कहा—तराधिप ! अत्यन्त क्लेश सहन करने पर आप को कठिनाई से एक चिरञ्जीवी पुत्र की प्राप्ति होगी किन्तु, सर्वप्रथम कल्मष नाशक इस सप्तमी का अनुष्ठान अपने पाप विनाशार्थ आरम्भ करो ॥२-१२। भूपते ! सातवें मास में पुत्र उत्पन्न होने पर (रानी के) मृतवत्सादि दोष निवारणार्थ ग्रह तारा बल देखकर ब्राह्मण द्वारा स्वस्ति वाचन पूर्वक बालक के जन्म नक्षत्र तिथि को त्यागकर गोमय से शुद्ध की हुई भूमि में रक्त वर्ण के साठी चावल एवं वरुणाक्षीर द्वारा सूर्य की प्रतिमा बनाकर सविधान अर्चना करने के उपरांत प्रज्वलित अग्नि में धृत की आहुति प्रदान करे । भारत ! रुद्र मूर्ति सूर्य प्रसन्नार्थ रुद्र सूक्त के पाठ करते हुए मंदार अथवा पलाश की समिधा (लकड़ी) से प्रज्वलित अग्नि में जवा और काले तिल की एक सौ आठ आहुति प्रदान करके मध्याह्न के समय गङ्गा जल में स्नान करने के अनन्तर हाथ में कुश लिए हुए वैदिक विद्वानों द्वारा चारों कोने पर चार कलशों के स्थापन करते हुए उनके मध्य में सौन्दर्य पूर्ण पाँचवें कलश की प्रतिष्ठा कर जो दर्पण से विभूषित, सप्तर्षियों से अभिमन्त्रित हो । उस कलशों का सौर तीर्थ के जल, कपूर, समस्त औषधियाँ, पंच पल्लव, पंच रत्न, और फलों से पूर्ण एवं वस्त्र

१. अतिक्रमेण । २. दक्षिणम् । ३. कर्मसंयुतमित्यर्थः । ४. पञ्चभङ्ग पञ्चपल्लवाः—इत्यर्थः ।

पञ्चरत्नफलैर्युक्ताऽछालाभिरपि वेष्टितान् । गजाश्वरश्याराजद्वार्वल्मीकाद् ध्रदगोकुलात् ॥२२
 सुशुद्धांमृदमानीय सर्वेष्वेव विनिक्षिपेत् । चतुष्वर्षपि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम् ॥२३
 गृहीत्वा ब्राह्मणं चात्र सौरान्मन्त्रानुदीरयेत् । नारीभिः सप्तसंख्याभी रथाङ्गाङ्गाभिरत्र च ॥२४
 भोजिताभिर्यथाशक्तिमाल्यवस्त्रविभूषणैः । सविप्राभिश्च कर्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम् ॥२५
 दीर्घायुररस्तु बालोऽयं जीवपुत्रा च भाविनी । आदित्यचन्द्रमासार्थं ग्रहनक्षत्रमण्डलम् ॥२६
 शक्रः सलोकपालो वै ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः । एते चान्ये च वै देवाः सदा पान्तु कुमारकम् ॥२७
 मासनिर्मासि हुतशुद्धमा च बालग्रहा क्वचित् । पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मातृजनकस्य वै ॥२८
 ततः शुक्लाम्बरधराः कुमारं पतिसंयुताः । सप्तकं पूजयेद्ब्रूक्त्या पुष्पैर्गन्धैः फलैः शुभैः ॥२९
 काञ्चनों च ततः कृत्वा तिलपात्रो परिस्थिताम् । प्रतिमां धर्मराजस्य गुरवे विनिवेदयेत् ॥३०
 वस्त्रकाञ्चनरत्नैर्यर्भक्ष्यैः सघृतपायसैः । पूजयेद्ब्राह्मणांस्तद्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥
 शुक्लत्वा च गुरुणा चेयमुच्चार्या मन्त्रसन्ततिः ॥३१
 दीर्घायुरस्तु बालोऽयं यावदर्षणतं सुखी । यत्किञ्चिद्दस्य दुरितं तत्क्षिप्तं वडवामुखे ॥३२
 ब्रह्मा रुद्रो विष्णुः स्कन्दो वायुः शक्रो हुताशनः । रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदा यान्तु सर्वदा ॥३३
 एवमादीनि चान्यानि वदतः पूयजेद्गुरुन् । शक्तिः कपिलां दत्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥३४
 चरुं च पुत्रसहितम् प्रणस्य रविशङ्करौ । हुतरोषं तदानीयादादित्याय नमोऽस्तु ते ॥३५

से आवेष्टित कर हाथी, घोड़े, शश्या राजद्वार, वल्मीक, सरोवर, और गौओं के निवास स्थान की शुद्ध मृत्तिका उन कलशों में डाले पूजनोपरान्त मध्यम कलश के जल द्वारा ब्राह्मणों और सात स्त्रियों से जो भोजन कराकर यथाशक्ति माला, वस्त्र, एवं आभूषणों से भूषित की गई हो, मृतवत्सा स्त्री का अभिषेक होना चाहिए। यह पुत्र दीर्घ जीवी हो, और यह स्त्री अब रो जीवितपुत्रा हो एवं सूर्य, चन्द्र, समस्त ग्रह, नक्षत्र, मण्डल, लोकपाल समेत इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर देवों सदैव इस कुमार की रक्षा करें। मांस एवं निर्मास भोजी बाल ग्रह इस शिशु, तथा इसके माता पिता को कभी पीड़ित न करें—इस प्रकार अभिषेक करने के अनन्तर श्वेत वस्त्र धारण किये पति समेत सात स्त्रियों के पुष्प, गन्ध, एवं शुभ फलों द्वारा इस कुमार की पूजा करने के उपरांत तिलपात्र में स्थापित धर्म राज की उस काञ्चनी प्रतिमा को गुह के लिए अर्पित कर वित्तशाढ्यदोष को ध्यान में रखते हुए यथाशक्ति वस्त्र, सुवर्ण, एवं रत्नों और धृत समेत पायस के भोजनों द्वारा ब्राह्मणों को तृप्त करके गुहदेव की अर्चना करे, जो उस समय भोजनों द्वारा गद्गदचित्त होकर—यह बालक चिरजीवि हो, 'बारह वर्ष तक निरन्तर सुखी रहे, इसके जो कुछ शेष दुरित हों, वह बड़वामुख (अग्नि) में प्रक्षिप्त होकर विनष्ट हो जाय, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, स्कन्द, वायु, शक्र, अग्नि आदि देव समस्त अनिष्टों से इसकी रक्षा करते हुए सदैव वरदायक रहें—आदि आशीर्वाद मंत्रोंचारण रूप में प्रदान करता रहे। तदुपरांत यथाशक्ति सुसज्जित कपिला गौ के दान और नमस्कार करके विसर्जन करे। १३-३४। परचात् पुत्र समेत उस स्त्री को यदि चाहिए कि सूर्य और शंकर के प्रणाम पूर्वक हुत शेष चरु को ग्रहण करते हुए आदित्य को नमस्कार कर रही हूँ, कहकर क्षमा प्रार्थना करे। यही

१. शिशु अवस्था में बारह वर्ष तक पूतना आदि (अभोगा) रोग का भय रहता है।

अथमेव द्वूतं योगो हृद्भुतेषु च शस्यते । कर्तुर्जन्मनि वृक्षाणां देवान्तसम्यूजयेत्तदा ॥
शप्त्यर्थं शुक्लसप्तम्यामेतत्कुर्वन्न सीदति ॥३६
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सप्तमीस्तपनं रविः । कथयित्वा नरश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत ॥३७
स चानेन विधानेन कार्तवीर्येऽर्जुनो नृपः । सम्वत्सराणामयुतं शशास वृथिवीमिमाम् ॥३८
आरोग्यं भास्कारारादिच्छेद्वन्मिच्छेद्वताशनात् । शङ्कराज्ञानमिच्छेत्तु गतिमिच्छेज्जनार्दनात् ॥३९

एतन्महापातकनाशनं स्यादप्यक्षयं वेदविदः पठन्ति ।
भृणोति यश्वैनमनन्यचेतास्तस्यपि सिद्धिं मुनयो वदन्ति ॥४०
इति श्रीभद्रिष्ये भहापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
स्नपनसप्तमीव्रतदर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५२

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अचलासप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अध्युवेण शरीरेण सुपक्वेनापि किं फलम् । माघस्नानविहीनेन यत्यक्षं यदुनन्दन ॥१
प्रातः स्नानासमर्थानां शरीरं पश्य देहिनाम् । किं तेन वद कर्तव्यं माघे संसारभीरुणा ॥२

अद्भुत योग उद्वेग आदि को शमनार्थ प्रशस्त बताया गया है । बालक जन्म, तथा मृतेवत्सा आदि दोषों के शान्त्यर्थ इसी शुक्ल सप्तमी का व्रतानुष्ठान सुसम्पन्न करने वाला पुरुष कभी दुःख का अनुभव नहीं करता है । नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार इस पुण्य, पवित्र, आगुप्रद सप्तमी के स्नान आदि के वर्णन कर सूर्य देव उसी समय अन्तर्हित हो गये नृप ! इसी विधान द्वारा इस सप्तमी को सुसम्पन्न करने के परिणाम स्वरूप वह कृतवीर्य का पुत्र सहस्रार्जुन ने दश सहस्र वर्ष तक इस समस्त पृथ्वी का निर्बाध शासन किया । आंस्कर से आरोग्य, अग्नि से धन, शंकर से ज्ञान और जर्नादन भगवान् से उत्तम गति की प्राप्ति मनुष्यों को करनी चाहिए । इसके अनुष्ठान द्वारा महापातक का विध्वंस होता वेद निष्णात विद्वानों ने कहा है । अनन्य भाव से इसके श्रवण करने वाले की भी सिद्धि होती है, ऐसा मनुष्यों का कहना है । ३५-४०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में स्नपन सप्तमी व्रत वर्णन
नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ।५२।

अध्याय ५३

अचलासप्तमीव्रत का दर्णन

युधिष्ठिर बोले—यदुनन्दन ! इस नश्वर शरीर को प्राप्त कर मनुष्य यदि माघस्नान से वंचित रहा, तो वृद्धावस्था तक इसे धारण करने का कौन फल उसे प्राप्त हुआ ? और माघ गास के प्रातः स्नान करने में असमर्थ इस संसार भी ह जीवों के कर्तव्य बताने की कृपा कीजिये । यदूतम ! शरीर की सुकुमारता एवं

कायक्लेशसहा नार्थे न भवन्ति यद्वत्तम । सौकुमार्यं शारीरस्य अचलत्वात्तथैव च ॥३
कथं च ताः सुरूपाः स्युः सुभगाः सुप्रजास्तथा । सुकृतस्येह पुण्यस्य सर्वमेतत्कलं यतः ॥४
अल्पायासेन सुमहद्येन पुण्यमवाप्यते । स्त्रीभिर्मधे मम ब्रूहि स्नानं तत्त्वं च माधव ॥५

श्रीकृष्ण उवाच

भूयतां पाण्डवश्रेष्ठ ! रहस्यमृषिभाषितम् । यन्मया कस्यचिन्नोक्तमचलासप्तमीवतम् ॥६
वेश्या चेन्दुमती नाम रूपौदार्थगुणान्विता । आसीत्कुरुकुलश्रेष्ठ मग्नधस्य विलासिनी ॥७
तनुमध्या सुजघना पीनोन्नतपयोधरा ! सम्यविभक्तावयवा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥८
सौदर्यं सौकुमार्यं च तस्याः कामेन गीयते : यस्याः सन्दर्शनादेव कामः कामातुरो भवेत् ॥९
मूर्तिः शशभारस्येव नयनानन्दकारिणी । वशीकरणविद्येव सर्वलोकमन्तोहरा ॥१०
एकस्मिन्दिवसे प्रातः सुमुखस्थितया तया । चिंतिता हृदये राजनसंसारस्यानवरित्थितिः ॥११
सन्निमज्ज्य जगदिदं विषये कायसागरे । जन्मगृत्युजराप्राहं न कश्चिद्वबुद्धयते ॥१२
अपाको भूतभाङ्डानां धातृशिल्पविनिर्मितम् । स्वकर्मसंधनसम्बीतं एच्यते बालवह्निना ॥१३
ये यान्ति दिवसाः पुंसां धर्मकामार्थवर्जिताः । न ते पुनरिहायान्ति हरभक्ता नरा यथा ॥१४
स्नानं दानं तपो होमं स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । यस्मिन्दिवे न क्रियते वृथा स दिवसो नृणाम् ॥१५

अचल होने के नाते स्त्रियाँ शारीरिक क्लेश सहन करने में असमर्थ होती है, किन्तु, सौन्दर्य पूर्ण, सौभाग्य और शोभन सन्तान की प्राप्ति उन्हें किस प्रकार होती है, क्योंकि ये समस्त मुन्दर फल सुकृत जन्म पुण्य द्वारा ही उपलब्ध होते हैं। सुमाधव ! व्रत अल्प आयास द्वारा महान पुण्य की प्राप्ति तथा माघ में स्त्रियों के स्नान मुझसे कहने की कृपा कीजिये । १-५

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव श्रेष्ठ ! इस अचला सप्तमी के दिधान रहस्य को जिसे कृष्णियों ने बताया है और मैंने, अभी तक किसी से कहा नहीं है, कह रहा हूँ, सुनो ! कुरुकुल श्रेष्ठ ! रूप लावण्य एवं उदारादि गुण भूषित इन्दुमती नामक वेश्या मग्नध में परम विलासिनी स्त्रियों में से थी, जिसकी कटि अत्यन्त सूक्ष्म, शोभन जाँधें, पीन एवं उन्नत पयोधर तथा उस विधुवदनी के समस्त अंग मनमोहक थे । उसके सौन्दर्य और सौकुमार्य का वर्णन स्वयं मन्मथ ने मुक्त कण्ठ से किया था, क्योंकि उसके दर्शन मात्र से वह स्वयं कामातुर हो जाता था । चन्द्रमा की प्रतिमा की भाँति वह सदैव नेत्रों को तृप्त करने वाली, तथा वशीकरण की भाँति समस्त लोकों के लिए मनोहर थी । राजन ! एक दिन प्रातः काल उस सुमुखी ने संसार की असारता पर विचार करना आरम्भ किया कि सम्पूर्ण संसार इस शरीर रूपी विषय सागर में निमग्न होकर इसमें रहने वाले जन्म, मृत्यु एवं जरा (बुद्धाई) रूपी भीषण ग्राह (घड़ियाल) को कुछ भी ध्यान नहीं दे रहा है । ब्रह्मा रूपी शिल्पी द्वारा सुनिर्मित यह शरीर, जो भूतों (प्राणियों) का अपाक भाजन है, स्वकर्म रूपी ईधन से प्रज्वलित बाल अग्नि द्वारा पक्व होता है । मनुष्यों के जितने दिन धर्म, अर्थ एवं काम से वञ्चित होकर व्यतीत हो जाते हैं, शिवभक्त मनुष्यों की भाँति वे पुनः लौट कर नहीं आते हैं । स्नान, दान, तप, हवन, स्वाध्याय, एवं पितृ तर्पण आदि पुण्य कर्म का सम्पादन जिस दिन नहीं होता है, मनुष्यों का वह दिन व्यर्थ निकल जाता है । ६-१५। पुत्रों तथा स्त्री और घर में यह मन इतना आसक्त रहता है

पुत्राणां दारगृहकसमासकं हि मानसम् । वृक्कीवोरणसासाद्य मृत्युर्द्वाराय गच्छति ॥१६
इत्येवं चिंतयित्वा तु वेश्या चेन्दुमती ततः । वशिष्ठस्याश्रमं पुण्यं जगाम गजगामिनी ॥१७
वशिष्ठमृषिसासीनं प्रणस्य विनयात्ततः । कृताञ्जलिपुटा भूत्वा इदं वचनमन्त्रवीत् ॥१८

इन्दुभत्युवाच

दशसूनासमश्वकी दशचक्रिसमो ध्वजः । दशध्वजसमा देश्या दशवेश्यासमो नृपः ॥१९
भया न दत्तं न हुतं नोपवासो ऋतं कृतम् । भक्त्या न पूजितः शम्भुः श्रितो^१ नैको धनी नरः ॥२०
साम्प्रतं वर्तमानाया ऋतं किंचिद्दृद्दस्व मे । येन दुःखाम्बुपापौष्टिरामि भदर्णावात् ॥२१
एतदस्याः सुबहुशः श्रुत्वा धर्मं परन्तपः । वशिष्ठः कथयामास महाकारणिको मुनिः ॥२२

दशिष्ठ उवाच

माघस्य सितसप्तम्यां सर्वकामफलप्रदम् । तपः सौभाग्यजननं स्नानं तव वरानने ॥२३
कृत्वा षष्ठ्यामेकभुक्तं सप्तम्यां निश्चलं जलम् । रात्र्यन्ते चालयेथास्त्वं दत्त्वा शिरसि दीपकम् ॥२४
माघस्य सितसप्तम्याचलं चालितं भया । जलामलानां सर्वेषां कृतं न चलनं तथा ॥२५
वशिष्ठवचनं श्रुत्वा तस्मिन्नहनि भूपते । सर्वं चकारेन्दुमती स्नानं दानं यथाविधि ॥२६
ऋहस्नानप्रभावेण^२ भुक्त्वा भोग्यान्यथेप्सितान् । इन्द्रलोकेप्सरः सङ्घे नायिकात्वमवाप सा ॥२७

कि रण में पहुँचकर भेड़िये की भाँति अनायास मृत्यु के मुख में पहुँच जाता है । इस प्रकार विचार कर उस गज गामिनी इन्दुमती वेश्या ने महर्षि वशिष्ठ जी के पुण्य आश्रम को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर सुखासीन वशिष्ठ जी को सविनय प्रणाम करने के उपरांत अञ्जली बाँधकर उसने यह कहना आरम्भ किया । १६-१८

इन्दुमती ने कहा—दश भाँति की हिंसा के समान एक चक्री, दश चक्री के समान एक ध्वज, दश ध्वज के समेन एक वेश्या और दश वेश्या के समान एक राजा होता है । अतः देव ! मैंने न कोई दान दिया, न हवन किया, और न उपवास रहकर कोई ब्रतानुष्ठान ही सुसम्पन्न किया तथा शिव जी के आश्रित रहकर भक्ति समेत उनकी कभी भी अर्चना नहीं की । इसलिए इस समय मेरे लिए कोई व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिसके द्वारा मुझ पापिनी का भी इस संसार सागर से उद्धार हो जाये । इसके ऐसे अनेक धार्मिक वचनों को सुनकर परम तपस्वी वशिष्ठ जी ने अत्यन्त करुणा के नाते आद्रि होकर उपदेश देना आरम्भ किया—१९-२१

वशिष्ठ जी बोले—वरानने ! माघ शुक्ल सप्तमी के दिन स्नान करना तुम्हारे लिए अत्यन्त हितकर है, क्योंकि समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक वह अत्यन्त सौभाग्य के दिन रात्रि के पिछले समय दीप दान समेत उस (जलाशय के) निश्चल जल का संचालन (स्नान) करे । उस समय कहे भी कि—माघ शुक्ल सप्तमी के दिन जब कि उस निर्मल जल का संचालन नहीं हुआ था, उस निश्चल जल का संचालन मैंने किया है । नृप ! वशिष्ठ जी की बातें सुनकर उसी दिन उस इन्दुमती वेश्या ने उनके कथनानुसार स्नान दान आदि कर्मों को सविधान सुसम्पन्न किया । उस स्नान के प्रभाव वश उसके इस लोक के समस्त सुखों के उपभोग करने के अनन्तर इन्द्र लोक की समस्त अप्सराओं का नायिकत्व पद प्राप्त

१. श्रितः आश्रित इत्यर्थः । २. अहो स्नानप्रभावेण ।

अचलासप्तमीस्नानं कथितं च दिशाम्पते । सर्वपापप्रशमनं सुखसौभाग्यवर्द्धनम् ॥२८
युधिष्ठिर उवाच

सप्तमीस्नानमाहात्म्यं श्रुतं न च विशेषतः । साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि विधिमन्त्रसमन्वितम् ॥२९
श्रीकृष्ण उवाच

एकभक्तेन सन्तिष्ठे त्रष्ण्यां सम्पूज्य भास्करम् । सप्तम्यां तु ब्रजेत्प्रातः सुगम्भीरं जलाशयम् ॥३०
सरित्सङ्गं तडां च देवखातमथापि वा । सुखावगाहसत्तिलं दुष्टसत्त्वैरहूपितम् ॥३१
पशुभिः पक्षिभिर्त्रैव जलजैर्मृतस्यकच्छपैः । न जलं चाल्यते यावत्तादत्सन्निनं समाच्छ्रेत् ॥३२
नमस्ते रुद्ररूपाय रत्नानां पतये नमः । वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तु ते ॥३३
यावज्जन्म कृतं पापं नया जनसु सप्तसु । तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ॥३४
जननी सर्वभूतानां सप्तमीसप्तसप्तिके । सर्वव्याधिहरे देवि नमस्तै रविमण्डले ॥३५
जलोपरितरं दीपं स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः । चन्दनेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सर्कणिकम् ॥३६
मध्ये शर्वं स्तप्तनीकं प्रणवेन तु पूजयेत् । भानुं शक्रे दले पूज्य रविं वैश्वानरे दले ॥३७
याम्ये विद्वस्वान्नैर्त्रृत्ये भास्करस्येति पूजयेत् । पश्चिमे सविंता पूज्यः पूज्योऽकर्णो वायुना जले ॥३८
सौम्ये सहस्रकिरणः शेषे सर्वात्मनेति च । पूज्याः प्रणवपूर्वास्तु नमस्कारान्तयोजिता ॥३९
पुष्पैः सुगन्धधूपैश्च वस्त्रेणाच्छाद्य भास्करम् । विसर्जयेत्ततः पश्चात्स्वस्थानं गम्यतामिति ॥४०

किया । विशाम्पते ! इस प्रकार अचला सप्तमी का स्नान महत्व मैंने तुम्हें सुना दिया, जो समस्त पापों के शमन पूर्वक सुख सौभाग्य का वर्द्धक है । २३-२८

युधिष्ठिर ने कहा—सप्तमी के स्नान का महत्व मैंने सुना, किन्तु इस समय विशेषकर मैं मंत्र समेत उसका विधान सुनना चाहता हूँ । २९

श्रीकृष्ण बोले—षष्ठी के दिन भास्कर की पूजा के उपरांत एकाहार रहकर रात्रि व्यतीत करे, पश्चात् सप्तमी के दिन प्रातः काल किसी जलाशय नदी, सरोवर, देव कुण्ड अथवा अन्य जलाशय में उस समय पहुँच कर जब कि पशु, पश्ची, मत्स्य, कच्छप अथवा अन्य दुष्ट जीव द्वारा उस जलाशय का जल सञ्चालित न किया गया हो, स्नान कर प्रार्थना करे । समस्त रसों के अधीश्वर रुद्ररूप, एवं वरुण देव को नमस्कार है, जिसमें स्वयं विष्णु निवास करते हैं—मेरे सात जन्मों के किये हुए समस्त पाप, रोग एवं शोक आदि दुःखों के शीघ्र अपहरण यह मकर की सप्तमी करे । उनचास रूप धारण करने वाली देवि ! तुम समस्त प्राणियों की जननी एवं रविमण्डल रूप हो, अतः मेरी समस्त व्याधि का अपहरण करो, मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ । पश्चात् जल के ऊपर दीपक रखकर स्नान तर्पण आदि करके चन्दन द्वारा कर्णिका समेत, अष्ट दल कमल का सुन्दर निर्माण करने के उपरांत मध्य में पार्वती समेत शिव जी की ओंकार करते हुए पूजन करके पूर्व में भानु, अग्नि कोण में रवि, दक्षिण में विवस्वान्, नैऋत्य में भास्कर, पश्चिम में सविता, वायव्य में अर्क, उत्तर में सहस्र किरण और ईशान में सर्वात्मा के नामोच्चारण द्वारा स्थापन पूजन पुष्प, सुगन्ध एवं धूप अर्पित करते हुए सुसम्पन्न कर वस्त्र से आच्छान्न उन भास्कर का अपने स्थान

तात्रपात्रे सुविस्तीर्णं मृण्मये वा युधिष्ठिर । स्थापयेत्तिलचूर्णं च सघृतं सगुडं तथा ॥४१
 काञ्चनं तालकं कृत्वा हृसिक्तिस्तिलचूर्णकम् । संस्थाप्य रक्तवस्त्रैस्तु पुष्पैर्धूपैस्तथार्चयेत् ॥४२
 ततस्तं ब्राह्मणे दद्यादत्त्वा मन्त्रेण तालकम् । आदित्यस्य प्रसादेन प्रातः स्नानफलं भजेत् ॥४३
 दुष्टदौर्भाग्यदुःखेभ्यो मया दत्तं दु तालकम् । ततस्ततालकं कृत्वा ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥४४
 सुपुत्रपशुभृत्याय मैज्जर्णयं प्रीयतामिति । ततो ब्रतोपदेष्टारं पूजयेद्वस्त्रगोतिलैः ॥४५
 विप्रानन्यान्यथाशक्त्वा पूजयित्वा गृहं ब्रजेत् । एतने कथितं कार्यं रूपतौभाग्यकारकम् ॥४६
 अचलासप्तमीस्नानं सर्वकामफलप्रदम् ॥४७

इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गत्कलिकलुषहरं वै सप्तमीस्नानमेतत् ।

मतिमधि नयनानां यो ददाति प्रसङ्गात्सुरभवनगतोऽसौ पूज्यते देवसन्धैः ॥४८

इति श्रीभविष्य महापुराणे उत्तरर्पणे श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 अचलासप्तमीब्रतविधिवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः । ५३

अथ चतुर्ष्वाशत्तमोऽध्यायः

बुधाष्टमीब्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

बुधाष्टमीब्रतं भूयो ब्रवीमि शृणु पाण्डव । येन चीर्णेन नरकं नरः पश्यति न ब्रवित् ॥१

पधारने की कृपा कीजिये, कहकर विसर्जन करे । पूजन करते समय ओंकार पूर्वक नमस्कारान्त पद का उच्चारण करना चाहिए । युधिष्ठिर ! विस्तीर्ण तात्र पात्र अथवा किसी मृत्तिका के पात्र में तिल के चूर्ण को घी गुड़ स्थापन पूर्वक मूर्वण के तालक को काले तिल के चूर्ण समेत स्थापित करके वस्त्र से सुणोंभित करते हुए पुष्प धूप आदि से अर्चना करने के उपरांत उस विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करे । ऐसा करने से आदित्य देव प्रसन्न होकर उसे स्नान फल प्रदान करते हैं । दुष्ट, ग्रह, दौर्भाग्य एवं अनेक दुःखों के अपहरणार्थ मैंने यह तालक ब्राह्मण को अर्पित किया है, इससे पशु, पुत्र, एवं सेवक आदि समेत मुझ पर भगवान् सूर्य प्रसन्न हों पश्चात् व्रत के उपदेष्टा (गुरु) तथा अन्य ब्राह्मणों की यथाशक्ति वस्त्र, गौ और तिल द्वारा पूजन करके गृह का प्रस्थान करे । रूपसौभाग्यदायक इस अचला सप्तमी के स्नान को मैंने तुम्हें बता दिया, जिससे समस्त कामनायें सफल होती हैं । इस प्रकार इस कलि कलुष के अपहरण करने वाले सप्तमी स्नान को पढ़ने, सुनने अथवा प्रसङ्ग वश उपदेश देने वाले पुरुष देवों से सुसेवित होकर देव लोक की प्राप्ति करते हैं । ३०-४८

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरर्पण में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में
 अचला सप्तमी ब्रत विधान वर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त । ५३।

अध्याय ५४

बुधाष्टमी ब्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! बुधवार संयुक्त अष्टमी ब्रत का विधान जिसके सुसम्पन्न करने पर मनुष्य

पुरा कृतयुगस्यादौ इलो राजा बभूव ह । बहुभृत्यमुहून्मन्त्रमन्त्रभिः परिवारितः ॥२
जगाम हिमवत्पार्श्वं महादेवेन वारितः । योऽन्यः प्रविशते भूमौ सा स्त्री भवति निश्चितम् ॥३
स राजा मृगसंगेन प्राविशत्तदुमावने । एकाकी तुरगोपेतः क्षणात्स्त्रीत्वं जगाम ह ॥४
सा ब्राम वने शून्ये पीनोन्नतपयोधरा । कुतोऽहमागतेयेवं न त्वबुध्यत किञ्चन ॥५
तां ददर्श बुधः सौम्यां रूपौदार्यगुणान्विताम् । अष्टम्यां बुधवारेण तस्यास्तुष्टो बुधो ग्रहः ॥६
दधौ गर्भं तद्दर्दे इलायां रूपतोषितः । पुत्रमुत्पादयामास योजसौ ख्यतः उरुरवाः ॥७
चन्द्रवंशकरो राजा आद्यः सर्वमहीक्षिताम् । ततः प्रभृति पूज्येयमष्टमी बुधसञ्चुता ॥८
सर्वप्राप्रशामनी सर्वोपद्रवनाशिनी । अथान्यदपि ते वच्चिम धर्मराज कथानकम् ॥९
आसीद्राजा विदेहानां निधिलायां स वैरिभिः । सङ्ग्रामे निहतो वीरस्तस्य भार्या दरिद्रिणी ॥१०
ऊर्मिला नाम ब्राम महीं बालकसंयुता । अवन्ती विषयं प्रात्ता ब्राह्मणस्य निवेशने ॥११
चकारोदरपूर्यर्थं नित्यं कण्डनपेषणे । हृत्वा स्तोकगोधूमान्ददौ बालकयोस्तदा ॥१२
कारण्यान्मातृवात्सत्याक्षुधासांगीडयमानयोः । क्लालेन बहुना साध्वी पञ्चत्वमगमच्छुभा ॥१३
पुत्रस्तस्या विदेहायां गत्वा स्वपितुरासने । उपविष्टः सत्त्वयोगाद्वभुजे गामनाकुलः ॥१४

को नरक का भय नहीं होता है, तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! पहले समय में कृतयुग के समय भूमण्डल के अधीश्वर राजा इल थे, जो अपने सेवक, मित्र, एवं मित्रगणों समेत हिमालय के समीप वाले प्रदेश की यात्रा के लिए प्रस्तुत हुए थे । महादेव जी के इस प्रकार निवारण करने पर भी कि—इस भूमि प्रदेश में भेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी यात्रा करने पर निश्चित स्त्री का रूप प्राप्त करेगा । उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर मृगया के त्याग से उस उत्तम वन में घोड़े पर बैठकर वह राजा एकाकी वन में ज्यों पहुँचा, उसी क्षण अश्व समेत स्त्री रूपमें परिणत हो गया ! पीत एवं उन्नत यशोधर से भूषित वह उस जंगल में भ्रमण करते हुए ‘मैं कैसे और कहाँ आ गई’ इसका कुछ भी ज्ञान नहीं कर पा रहा था, उसी बीच बुध देव से भेट हुई । उसके सौम्य रथ को देखकर जो उदारादि गुणों से विभूषित था, बुध देव को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । उस दिन अष्टमी समेत बुधवार था । बुध देव ने उसके रूप लावण्य पर अत्यन्त तुष्ट होकर उसे गर्भाधान कराया, जिससे पुरुषवा नामक एक प्रत्यात पुत्र का जन्म हुआ, जो समस्त चन्द्रवंशी राजाओं में सर्वप्रथम राजा था । उसी दिन से बुध संयुक्त इस अष्टमी का पूजन आरम्भ हुआ, जो समस्त पाप एवं उपद्रवों को निरन्तर विनष्ट करती है । धर्मराज ! तुम्हें एक बन्ध भी कथानक सुना रहा हूँ सुनो ! एक बार विदेहराज की मिथिला नगरी का राजा रण स्थल में अपने शत्रुओं द्वारा आहत हुआ । दरिद्र दुःख से पीड़ित होने पर उसकी ऊर्मिला नाम पत्नी ने अपने शिणुओं समेत घर से निकल कर इधर उधर पृथ्वी पर भूलती भटकती उनकी नगरी में पहुँच कर एक ब्राह्मण के यहाँ शरण प्राप्त किया । उनके घर नित्य गृह के कार्य कूटने पीसने एवं सफाई आदि करती हुई अपनी जीविका का निर्वाह कर रही थी, उसी बीच उसने एक दिन ब्राह्मण के घर से थोड़ा गेहूँ अपने बच्चों को क्षुधा निवर्त्यर्थ दे दिया जो उस समय उस अत्यन्त क्षुधा पीड़ित हो रहे थे । उनकी अवस्था देखकर उससे न रहा गया, करुणा और मातृवत्सलता के नाते वह स्वयं भी अधीर थी । कुछ समय के उपरांत उस साध्वी का निधन हो गया । १-१३ । और पुत्र ने विदेह नारी में आकर पुनः अपने पैतृक गृह आदि को अपने अधीन किया और निश्चिन्त होकर जीवन के दिन व्यतीत

अन्विष्य धर्मराजो वै सा कन्या सिथिवंशज्ञः । विवाहिता हिता भर्तुः सा महानायिकाऽभवत् ॥१५
श्यामला नाम चार्वंगी प्रसिद्धा श्रूयते श्रुतौ । तामुवाच दरारोहां धर्मराजः स्वयं प्रियरम् ॥१६
वह्स्व सर्वव्यापारं श्यामले त्वं गृहे मम । कुरु स्वजनभृत्यानां दानक्षेपं यथेप्सितम् ॥१७
किं त्वेते पञ्जराः सप्त कीलकैरतियन्त्रिताः । कदाचिदपि नोद्वाटचास्त्वया वैदेहनन्दिनी ॥१८
एवमस्त्विति तामुक्त्वा निजं कर्म चकार ह । कदाचिदव्याकुलीभूते धर्मराजे विदेहजा ॥

उद्घाटयित्वा प्रथमं ददर्श जननीं स्वकाम् ॥१९

सा पच्यमाना क्रन्दन्ती भीषणैर्यमिकड्डैः । हेलयः क्षिप्यते बद्ध्वा तप्ततैले पुनः पुनः ॥२०
तथैव तालकं दत्त्वा वीडितासा मनस्त्वनी । द्वितीये पञ्जरे तद्वत्सा तामेवं ददर्श ह ॥२१
चुधादलिलप्यमानां तां शिलातलेष्टकेन तु । तृतीयपञ्जरे तद्वां ददर्श स्वमातरम् ॥

क्रकचैः पाद्यते सूर्णिं घण्टायुतैः करोल्बणैः ॥२२

चतुर्थे पञ्जरे स्थाने भीषणैर्दरूणानन्तैः । भक्ष्यमाणां श्वापदैश्च क्रन्दन्तीं तां पुनः पुनः ॥२३
पञ्चमे निहिता भूमौ कण्ठे पादेन पीडिता । संदंशैर्वनघातैश्च विदीर्णा क्रियते रुषा ॥२४
षष्ठे चेष्टुयन्त्रगतां मस्तके मुद्गराहताम् । सम्पीडयमानामनिशं सुदृढामिक्षुखण्डवत् ॥२५
सप्तमे पञ्जरे चीर्णस्वनां पूतिकगत्थिनीम् । दृष्ट्वा तथा गतां तां तु भातरं दुःखक्षिता ॥

करने लगा, किन्तु उसकी भगिनी ने धर्मराज के साथ अपना पाणिग्रहण सुसम्पन्न कराकर अपने पति की अत्यन्त बल्लभा नायिका का पद ग्रहण किया । उस सुन्दरी का नाम श्यामला था, जिसने अत्यन्त प्रस्याति प्राप्त की है । अनन्तर धर्म राज ने अपनी उस मनोनीत प्रेयसी से कहा—प्रिये, श्यामले ! मेरे इस गृह को तुम अपना गृह समझ कर इसका भार वहन करो—परिवार एवं सेवक आदि के यथेच्छ पालन पोषण तथा देना लेना आदि सभी संभालो, किन्तु लोहे के इन सातों पिंजड़ों को, जो लोहे की कीलों से अत्यन्त दृढ़ नियन्त्रित कर दिये गये हैं, वैदेह नन्दिनि ! इन्हें कभी न खोलना । ‘तथात्सु’ कहकर उसने भी स्वीकार किया और अपने गृह कार्यों में तन्मयता से परिश्रम प्रारम्भ किया । एकबार धर्मराज के किसी कार्य में अत्यन्त व्यस्त रहने पर विदेह नन्दिनी श्यामला के पहले पिंजड़े को खोला तो उसमें उसे अपनी माता का दर्शन हुआ । १४-११। जो भीषण यमदूतों द्वारा नरकों में पकायी जाने के कारण करुण क्रन्दन कर रही थी और वे यमदूत उसे बाँधकर बार बार तप्त लेते के कडाहे में उसे डाल रहे थे वह मनस्त्वनी उस दृश्य को देखकर अत्यन्त लज्जित हुई और अन्त में उसे वैसे ही बन्द कर दिया । दूसरे पींजड़े को खोलते पर उसमें भी अपन माता को देखा, जो पत्थर की शिला और ईटों के अन्दर चुनी जा रही थी । तीसरे में भी उसने देखा कि भीषण हाँथों से आरा खीचते हुए यमदूत उसके शरीर को शिर से आरम्भ कर दो भागों में विभक्त कर रहे हैं । चौथे पींजड़े में भयानक दाँत वाले कुत्ते उसके मांस काट काट कर खा रहे हैं और वह पूर्व की भाँति करण क्रन्दन कर रही है । पाँचवें में उसने देखा कि भूमि पर शयन कराकर जंगली हिंसक जन्तु अपने चरण द्वारा उसे कण्ठ को पीड़ित करते हुए उसके शरीर को विदीर्ण कर रहे हैं । छठे में इष्टुयन्त्र (कोल्ह) में ऊंख के टुकड़े की भाँति उसके शरीर खण्ड को निष्पीन कर रहे हैं । और ऊपर से मस्तक पर मुद्गर के प्रहार करते उसने देखा । तथा सातवें में उसने देखा कि मल दुर्गंध के कुण्ड में वह निमग्न की जा

श्यामला म्लानवदना किंचिन्नोवाच भासिनी ॥२६

अयागतं यमं प्राह सरोषा श्यामला पतिम् । किं तवापहृतं राजन्मम मात्र सुदारुणम् ॥

येनेयं विविधैर्थतैर्बध्यते बहुधा त्वया ॥२७

यमः प्राह प्रियां दृष्ट्वा भद्रे हृद्वाटितास्त्वया । एते पञ्जरकाः सप्त निषिद्धा त्वं मया पुरा ॥२८

तत्र मात्रा सुतस्नेहादगोधूमा ये हृतः किल । किं न ज्ञानासि तद्भूद्वे येन शष्टा समोपरि ॥२९

द्वहृत्वं प्रणायादभुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् । तदेव चौर्यरूपेण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥३०

गोधूमास्त इमे भूताः कृमिरूपाः सुदारुणाः । दे पुरा ब्राह्मणगृहे हृतास्तव कृतेऽनया ॥३१

श्यामलोवाच

जानामि तदहं सर्वं यन्मे मात्रा कृतं पुरा । तथापि त्वां समासाद्य सा च जामातरं शुभम् ॥

मुच्यते कृमिराशित्वाद्यथा तदधुना कुरु ॥३२

तच्छुद्वा चिन्तयादिष्टश्विरं स्थित्वा जगाद ताम् । धर्मराजः सहासीनां प्रियां प्राणधनेश्वरीम् ॥३३

इतश्च सप्तरेतीते जन्मनि ब्राह्मणां शुभा । आसीस्तर्त्स्मस्त्वया सङ्गात्सखीनां पर्युपासिता ॥

बुधाष्टमी नुसन्पूर्णा यथोक्तफलदायिनी ॥३४

तत्फलं यद्दास्यस्यै सत्यं कृत्वा ममाग्रतः । तेन मुच्यते ते माता नरकात्पापसंकटात् ॥

रही है। इस प्रकार अपनी माता को अगाध दुःख सागर में निमग्न देखकर उस साध्वी श्यामला ने अपने मुख को केवल म्लान करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा। किन्तु धर्म राज के आने पर भासिनी श्यामला ने रोपपूर्ण शब्दों में अपने पति से कहा—राजन्! मेरी माता ने तुम्हारा क्या अपहरण किया है, जिससे आप उसे असेक भाँति के दारण आघातों द्वारा पीड़ित कर रहे हैं। यम ने भी अपनी प्रेयसी को देखकर कहा—भद्रे! इसीलिए मैंने इन पीजडों को खोलने के लिए पहले से ही रोक दिया था, किन्तु पूछ रही हो, तो बता रहा हूँ। भद्रे! तुम्हारी माता ने पुत्र स्नेह के कारण गेहूँ की चोरी जो की थी, क्या तुम उसे नहीं जानती है, जो मुझ पर कुद्ध हो रही है—प्रेमवश ब्राह्मण के धन का उपभोग करने पर सात पीढ़ी का नाश हो जाता है—और चोरी कार्य तो तारा समेत चन्द्रमा को भी विनष्ट कर देता है। जिस गेहूँ की चोरी इसने पुत्र के लिए ब्राह्मण के घर की थी, वे (गेहूँ के दाने) भीषण रूप कीड़े होकर इसे पीड़ित कर रहे हैं। २०-३१

श्यामला ने कहा—मेरी माता ने पहले जो कुछ किया है, उसे मैं भली भाँति जानती हूँ, किन्तु, तुम्हारे ऐसे कल्याण मूर्ति जामाता (जमाई) को प्राप्त कर भी उसकी वैसी ही दुर्दशा होती रहे, यह उचित नहीं है। इन कीड़ों से मुक्त होने के लिए आप कोई उपाय शीघ्र करे। इसे सुनकर थोड़ी देर तक गम्भीर भाव से विचार कर धर्मराज ने उस अपनी प्रेयसी से, जो उनके एवं प्राण एवं धन आदि की ईश्वरी (स्वामिनी) थी, कहा—प्रिये! आज से पूर्व सातवें जन्म में तुमने ब्राह्मणी के यहाँ उत्पन्न होकर सखियों के साथ में बुध युक्त अष्टमी व्रत का नियम पालन किया था, जो समैस्त फल प्रदान करती हूँ। यदि मेरे सम्मुख संकल्प पूर्वक उस फल को अपनी माता के लिए अप्तित करो, तो अवश्य इस नारकीय पाप संकट से

तच्छ्रवा त्वरितं स्नात्वा ददौ पुण्यं स्वकं कृतम् । स्वप्नातुः श्यामला तुष्टा तेन मोक्षं जगाम सा ॥३५
उर्मिला रूपसम्पन्ना दिव्यदेहधरा शुभा । विमानदरसारुढा दिव्यमात्याम्बरावृता ॥३६
भर्तुः समीपे स्वर्गस्था दृश्यतेऽद्यापि सा जनैः । बुधस्य पाश्वर्ण नभसि मिथिराजसमीपतः ॥
विस्फुरन्ती महाराजबुधाष्टम्या प्रभावतः ॥३७

युधिष्ठिर उवाच

यद्येव प्रवरा कृष्ण सा तिथिर्वै बुधाष्टनी । तस्य एव विधिं शूहि यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ॥३८

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पाण्डव यत्नेन बुधाष्टम्या विंश्चि शुभ्म् । यदा यदा सिताष्टम्यां बुधवार्ते भवेद्यदि ॥
तदातदा च सा ग्राहा एकभक्ताशनैर्नैभिः ॥३९

स्नात्वा नद्यां तु पूर्वाल्ले गृहीत्वा कलशं नवम् । जलपूर्णं तु सद्रव्यं पूर्णपात्रसमन्वितम् ॥४०

अष्टवारान्नप्रकर्तव्या विधानैस्तु पृथक्पृथक् । प्रथमा मोदकैः कार्या द्वितीया फेणकैस्तथा ॥४१

तृतीया घृतपूषैश्च चतुर्थी वटकैनृप । पञ्चमी शुभ्रकारैश्च षष्ठी सोहालकैस्तथा ॥४२

अशोकवर्तिभिः शुभ्रैः सप्तमी खण्डसंयुतैः । अष्टमी फलपुष्पैश्च केवलाखण्डफेणिकैः ॥

एवं क्रमेण कर्तव्या सुहृत्स्वजनबाध्यवैः ॥४३

सह कृत्वा स्थितैर्भोज्यं भोक्तव्यं स्वस्थमानसैः । उपोष्याणामिदं श्रेष्ठं कथयक्षिद् शनैः शनैः ॥४४

तुम्हारी माता मुक्त हो जाये । इसे सुनते ही श्यामला ने उसी समय स्नान करके उस अपने पुण्य का दान संकल्प पूर्वक माता के लिए सुसम्पन्न किया, जिससे उसकी माता उसी समय मुक्त हो गई । दिव्य देह धारण करने के नाते रूप लावण्य से सुशोभित होकर (उसकी माता) उर्मिला दिव्यमाला, वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित होती हुई दिव्य विमान द्वारा अपने पति के साथ स्वर्ण में आज भी दिखायी दे रही है । महाराज ! इस बुधाष्टमी व्रत के प्रभाव से मिथिलाराज के समीप बुध देव के पाश्वभाग में वह आज भी चमक रही है । ३२-३७

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! यदि बुधाष्टमी व्रत का इतना महान् महत्त्व है, तो उसके विधान भी बताने को कृपा कीजिये और प्रभो ! यदि मुझ पर अत्यन्त तुष्ट हैं तो सर्वे प्रथम इसी के विधान बताने की कृपा कीजिये । ३८

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! बुध के संयुक्त होने पर उस विशिष्ट अष्टमी का विधान मैं बता रहा हूँ, सुनो ! जब कभी शुक्ल पक्ष की अष्टमी बुधवार युक्त हो, तो सप्तमी के दिन एकाहार रहकर मनुष्य को अष्टमी का दिन उस का व्रत सुसम्पन्न करना चाहिए । उस दिन प्रातः काल नदी में स्नान करके नवीन घट में जल समेत समस्त वस्तुओं द्वारा उसे सुशोभित कर पूजनोपरांत पूर्णपात्र समेत दान करना चाहिए । इस भाँति आठ बार अष्टमी विधान पृथक् पृथक् सुसम्पन्न करने में पहली बार मोदक द्वारा दूसरी फेणक (मट्ठा) तीसरी थी के पूआ, चौथी, बटक (बाटी), पाँचवी श्वेत द्रव्य छठीं सोहाल, सातवीं अशोक और आठवीं फल पुष्प एवं अखंड फेणिक द्वारा क्रमशः उसे सुसम्पन्न कर परिजनों समेत स्वस्थ चित्त होकर भोजन करे । उस उपवास व्रती को धीरे धीरे कथा कहते या सुनते हुए भोजन करते रहने पर

श्रुत्वाष्टमीबुधस्यापि माहात्म्यं भोजनं त्यजेत् । तावदेव न भोक्तव्यं कथा यावत्समाप्त्यते ॥४५
 तथा भुक्त्वा बुधस्याप्रे आचम्य च पुनः पुनः । विप्राय वेदविदुषे तम् बुवन्प्रतिपादयेत् ॥४६
 साक्षतं सहिरण्यं च जातरूपमयं शुभम् । अर्चितं विविधैः पुष्टिर्घूपदीपैः सुगन्धिभिः ॥४७
 पीतवस्त्रैः सप्ताच्छन्नं बुधं सोमात्मजाय नमः । माषकेण सुवर्णेन तदर्थार्थेन वा पुनः ॥४८
 ॐ बुधाय नमः । ॐ सोमात्मजाय नमः । ॐ दुर्बुद्धिनाशनाय नमः । ॐ सुवुद्धिप्रदाय नमः । ॐ
 ताराजाताय नमः । ॐ सौम्यग्रहाय नमः । ॐ सर्वसौख्यप्रदाय नमः ।
 एतेष्टमी तु यत्रा पूर्णा तदा राज्ञिसत्तम । ब्राह्मणान्भोजयेदष्टौ गां दद्याच्च
 सर्वतिसकाम् ॥४९

वस्त्रालङ्कारणैः सर्वैभूषणैविविधैरपि । सप्तनीकं समभ्यर्थं कर्णमात्राङ्गुलीयकैः ॥
 मन्त्रेणानेन कौन्तेय दद्यादेवं समाच्चरन् ॥५०
 बुधोऽयं प्रतिगृह्णातु द्रव्यस्थोऽयं बुधः स्वयम् । दीयते बुधराजाय तुष्ट्यतां च बुधो मम ॥५१
 (इति इनमंत्रः)

बुधः सौम्यस्तारकेयो राजपुत्रं इलापतिः । कुमारो द्विजराजस्य यः पुरुरवसः पिता ॥५२
 (इति प्रतिग्रहणमंत्रः)

दुर्बुद्धिबाधजनितं नाशयित्वा च मे बुधः । सौख्यं च सौमनस्यं च करोतु शशिनन्दनः ॥५३
 इत्युच्चार्यं गृहीत्वा तु दद्यान्मन्त्रपुरः सरम् । सप्तजन्मनि राजेन्द्र जातो जातिस्मरो भवेत् ॥५४
 धनधान्यसमायुक्तः पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनः । दीर्घायुर्विपुलान्भोगान्भुक्त्वा चैव महीतले ॥५५

कथा समाप्ति के साथ ही भोजन भी त्याग देना चाहिए । योकि बताया गया है कि जब तक कथा होती रहे भोजन तभी तक करे और उसकी समाप्ति के साथ ही उसका त्याग भी । पश्चात् आचमन आदि द्वारा मुख शुद्धिपूर्वक किसी ब्राह्मण विद्वान् को बुध की वह अक्षत सुवर्ण प्रतिमा, जो सौन्दर्य पूर्ण विनिर्मित अनेक भाँति के पुष्ट, धूप, दीप एवं सुगन्धि से अर्पित एवं पीताम्बर से आच्छन्न की गयी हो, और एक मासा, आधे, अथवा उसके अर्ध भाग (चौथाई) सुवर्ण से की हो, सादर समर्पित करे । पूजन के समय ओं बुधाय नमः, ओं सोमात्मजाय नमः, ओं दुर्बुद्धिनाशकाय नमः, ओं सुवुद्धिप्रदाय नमः, ओं ताराजाताय नमः, ओं सौम्यग्रहाय नमः, ओं सर्वसौख्यप्रदायनमः मंत्रों के उच्चारण करने चाहिए । राज्ञिसत्तम ! अष्टमी व्रत के समाप्त होने पर आठ ब्राह्मणों के भोजनोंपरांत सवत्सा गौ का दान वस्त्र, अलंकार, भूषणों, और अंगुठियों से सुविशूषित दम्पति की पूजाकर उन्हें सादर समर्पित करे । कौतेय ! उस समय 'इस द्रव्य में स्वयं बुध देव स्थित होकर इसे स्वीकार करें, मैं राजाबुध के लिए यह अर्पित कर रहा हूँ, मेरे ऊपर वे प्रसन्न हों, कहते हुए दान करना चाहिए और प्रतिग्रहीता को 'सौम्य मूर्ति बुध तारा के पुत्र, राजपुत्र इला के पति, द्विजराज (चन्द्र) के कुमार एवं पुरुरवा के पिता है । ३९-५१ । कहकर ग्रहण करना चाहिए अनन्तर क्षमा प्रार्थना करे कि—बुध देव, शशिनन्द ! आप मेरी दुर्बुद्धि के अपहरण पूर्वक समस्त सौख्य प्रदान करते हुए मेरे चित्त को सदैव प्रसन्न रखें । राजेन्द्र ! इस प्रकार मंत्रोच्चारण पूर्वक आदान प्रदान करने से सात जन्म तक जाति स्मरण और इस भूतल में दीर्घायु, एवं विशाल भोगों के उपभोग करने के उपरांत किसी पवित्र

ततः सुतीर्थं भरणं ध्यात्वा नारायणं विभुष् । मृतोऽसौ स्वर्वामाप्नोति पुरन्दरसमो नरः ॥५६
 वसते दावदासृष्टेः पुनराभूतसम्प्लवम् । एवमेतन्मया ख्यातं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥५७
 एवेवं च मयाख्याता गुह्या पार्थं बुधाष्टमी । यां श्रुत्वा ब्रह्महा गोद्धः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५८
 यच्चाष्टमीं बुधयुतां समवाप्य भक्त्या सम्पूजयेद्विवृतुं कनपृष्ठसंस्थम् ।
 पक्वान्नपादसहितैः सहिरण्यवस्त्रै पश्येदसौ यमपुरं न कदाचिदेव ॥५९
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुग्मिष्ठिरसंबादे
 बुधाष्टमीव्रतवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशतमोऽध्यायः ॥५४

अथ पञ्चपञ्चाशतमोऽध्यायः

जन्माष्टमीवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि विस्तेरणं ममाच्युते । कस्मिन्काले समुत्पन्नं किं पुण्यं को विधिः स्मृतः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

हते कंसासुरे दुष्टे मथुरायां युधिष्ठिर । देवकी मां परिज्वज्य कृत्वोत्सङ्घे रुरोद ह ॥२
 तत्रैव रङ्गवाढेन मञ्चारुद्धजनोत्सवे । मल्लयुद्धे पुरावृते समेते कुकुराऽन्धके ॥३

तीर्थ में नारायण भगवान् के स्मरण करते हुए निधन प्राप्त होता है, अनन्तर स्वर्ग में पहुँच कर पुरंदर (इन्द्र) के समान महाप्रलय पर्यन्त समस्त सौख्य का उपभोग करता है । पार्थ ! इस प्रकार मैंने इस बुधाष्टमी व्रत को, जो सभी व्रतों में परमोत्तम स्वयं जिसे सुनकर वह्य हत्या आदि समस्त पाप समूल नष्ट हो जाते हैं । जो बुध समेत इस अष्टमी में उपावस पूर्वक बुध की सुर्वण प्रतिमा के पूजा करके पक्वान, हिरण्य, वस्त्र से उन्हें विभूषित करने वाला पुण्य यमराज से भयभीत कभी नहीं होता है । ५२-५९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

बुधाष्टमी व्रत वर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥५४।

अध्याय ५५

जन्माष्टमी का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—अच्युत ! जन्माष्टमी व्रत का माहात्म्य वर्णन करने की कृपा कीजिये, किस समय यह व्रत उत्पन्न हुआ और इसे सुसम्पन्न करने से कौन-न्सा पुण्य प्राप्त होता है, तथा विधान क्या है ।

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर मथुरा में दुष्ट कंसासुर के निधन होने पर देवकी मुझे अपने (गोद) में बैठा कर रोदन करने लगी । उस समय वहाँ मंचानां पर बैठे एवं इतर आगन्तुक दर्शकों का महान् समूह एकत्र था, जहाँ पहले हमलोगों के साथ राक्षसों का मल्ल युद्ध भी हो चुका था । अपने प्रेमी बन्धुओं एवं

स्वजनैर्वधुभिः स्निर्गद्यः समं स्त्रीभिः समावृते । वसुदेवोऽपि तत्रैव वात्सल्यात्प्रस्तरोद ह ॥४
 समाकृष्य परिष्वज्य पुत्रपुत्रेत्युवाच ह । सगद्गदस्वरो दीनोबाष्पर्याकुलेक्षणः ॥५
 बलभद्रं च मां चैव परिष्वज्य मुदा पुनः । अद्य मे सफलं जन्म जीवितं यत्सुजीवितम् ॥६
 यदुभाभ्यां सुपुत्राभ्यां समुद्भूतः समागमः । एवं वर्षेण दाम्पत्ये हृष्टं पुष्टं तथा ह्यभूत् ॥७
 प्रणिपत्य जनाः सर्वं बभूवस्ते प्रहृष्टिः । एवं महोत्त्वं दृष्ट्वा मामाह सकलो जनः ॥८
 प्रसादः कियतां नाथ लोकत्यास्य प्रसादतः । यस्मिन्दिने जगन्नाथ देवकी त्वामजीजनत् ॥९
 तद्दिने दैहि वैकुण्ठं कुर्मस्तेऽत्र नमोनमः । सम्याभाक्तप्रपन्नानां प्रसादं कुरु केशव ॥१०
 एवमुले जनौघने वसुदेवोऽतिदिस्मितः । विलोक्य बलभद्रं च मां च कृत्वा रुरोद ह ॥
 एवमस्त्विति लोकानां कथयस्व यथा तथा :: ॥११
 ततश्च पितुरादेशात्तथा जन्माष्टमीव्रतम् । मथुरायां जनौघने पार्थ सम्यकप्रकाशितम् ॥१२
 पौरजना जन्मदिनं वर्जेदर्थं भमोदितम् । पुनर्जन्माष्टसीं लोके कुर्वन्तु ब्राह्मणादयः ॥
 क्षत्रिया वैश्यजातीया शूद्रा येन्येऽपि धार्मिकाः :: ॥१३
 सिहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले । मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके ॥
 वृष्णराशिस्थिते चन्द्रे नक्षत्रे रोहिणीयुते :: ॥१४
 वसुदेवेन देवक्यामहं जातो जनाः स्वयम् । एवमेतत्समाख्यातं लोके जन्माष्टमीमवतम् ॥१५

स्त्रियों के उस संकुल में वसुदेव भी वात्सल्य के नाते रोदन करने लगे । 'पुत्र-पुत्र कहते हुए पकड़ कर मुझे अपने क्रोड (गोद) में बैठाकर गद्गद वाणी द्वारा, आखों में आसंभरे दीन की भाँति हर्षातिरेक के नाते बार बार मेरे और बलभद्र का आलिङ्गन करते हुए वे कहने लगे कि –आज मेरा जन्म सफल हुआ एवं मेरा जीवन सार्थक हुआ, क्योंकि मेरा अपने दोनों पुत्रों से आज सुखद मिलन हो रहा है । वे प्रसन्न होकर इतने हृष्ट पुष्ट हो गये जितना कोई पूर्ण वर्ष में होता है । वहाँ की उपस्थित जनता नम्रता पूर्ण अत्यन्त हर्षित हो रही थी, जो उस महोत्सव में आमन्वित की गयी थी । वह जन समुदाय मुझे देखकर कहने लगा कि नाथ ! इन जनों को अपनाकर आनन्दित करें तथा जगन्नाथ ! देवी देवकी ने जिस दिन आप को उत्पन्न किया है, उस दिन लोगों को वैकुण्ठ का आभास प्रदान करने की कृपा करें, हम लोग आपको बार-बार नमस्कार कर रहे हैं । केशव ! अपने प्रणत भक्तों को यही सदा प्रदान करें । २-१०।
 उस जन समुदाय के इस प्रकार कथम को सुनकर आश्चर्य चकित हो कर वसुदेव मुझे और बलभद्र को देखकर रोदन करने लगे । जिस किसी प्रकार मैंने 'तथास्तु' कहकर उन लोगों को आश्वासन दिया और पिता की आज्ञा से मथुरा में उस जन समुदाय को जन्माष्टमी व्रत का वर्णन करना आरम्भ किया । पार्थ ! उसके अनुसार समस्त पुरवासी प्रत्येक वर्ष मेरे जन्म दिन का महोत्सव करने लगे और लोक में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इस जन्माष्टमी व्रत को भली भाँति सुसम्पन्न कर सके । इसलिए भी मैंने इसको पूर्ण विवेचन किया था । जनवृन्द ! सिहराशि पर सूर्ये के गमन करने पर भादों की कृष्णाष्टमी में आधी रात के समय वृष राशिस्थ चन्द्रमा और रोहिणी नक्षत्र के समागम के मेघाच्छन्न होने पर वसुदेव देवकी द्वारा मैंने जन्म ग्रहण किया है । राजन् ! इस प्रकार यह जन्माष्टमी व्रत लोक में

भगवत्पार्थितो राजन्बहुरूपं महोत्सवम् । मथुरायास्ततः पश्चाल्लोके स्वार्ति गमिष्यति ॥
शान्तिरस्तु सुखं चास्तु लोकाः सन्तु निरामयाः ॥१६

युधिष्ठिर उवाच

तत्कीदृशं व्रतं देव लोकैः सर्वैरनुष्ठितम् । जन्माष्टमीव्रतं नामं पवित्रं पुरुषोत्तमम् ॥१७
येन त्वं तुष्टिमायासि लोकानां प्रभुरव्ययः । एतन्मे भवत्वन्वृहि प्रसादान्मधुसूदन ॥१८

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ तद्विसे प्राप्ते दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्य नियमं गृह्णीयात्तद्वक्तिभावितः ॥१९
एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनन्दन । सर्वजन्मकृतैः यापैर्नुच्यते नात्र संशयः ॥२०
उपावृतस्य पायेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह । उपवास स विजेयः सर्वभोगविवर्जितः ॥२१
ततः सात्वा च मध्याह्ने नद्यादौ विमले जले । देव्याः सुशोभनं कुर्याद्विवक्याः सूतिकागृहम् ॥२२
पद्मरागैः पत्रेनैर्मडितं चर्चितं शुभैः । रन्यं तु वनमालाभी रक्षामणिविभूषितम् ॥२३
सर्वं गोकुलवत्कार्यं गोपीजनसमाकुलम् । घट्टमर्दलङ्घीतमङ्गल्यकलशान्वितम् ॥२४
यदार्थं स्वस्तिका कुडचैः शत्रुवादित्रसङ्कुलम् । बद्धानुरा लोहखड्गैः प्रियच्छगसमन्वितम् ॥२५
धान्ये विन्यस्य मुसलं रक्षितं रक्षपालकैः । षष्ठ्या देव्या च सम्पूर्णैविद्यैर्विद्यैः कृतैः ॥२६
एवमादि यथाशेषं कर्तव्यं सूतिकागृहम् । एतन्मध्ये प्रतिष्ठाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता ॥२७

प्रसिद्ध हुआ पश्चात् अनेक रूपधारी यह महोत्सव मथुरा में भगवान् के पार्श्व से लोक में स्थाति प्राप्त करेगा, लोक में सुखशान्ति हो, सभी प्राणी आरोग्य रहे । ११-१६

युधिष्ठिर बोले—देव ! पुरुषोत्तम लोगों ने इस व्रत को किस विधान द्वारा सुसम्पन्न किया, जो जन्माष्टमी नाम से प्रख्यात एवं परम पवित्र है । भगवन्, मधुसूदन ! इसके सुसम्पन्न करने से अव्यय एवं प्रभु रूप आप अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, अतः कृपा कर इसी की व्याख्या कीजिये । १७-१८

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! उस दिन प्रातः काल भक्ति मन्त्र होकर दातून करने से आरम्भ कर उपवास के नियमों को ग्रहण करना चाहिए क्योंकि कुरुनन्दन ! एक ही उपवास करने से उस जन्म के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं । और उपवास का अभिप्राय भी यही होता है कि पाप निवृत्त एवं समस्त भोगों के त्याग पूर्वक सात्त्विक गुणों द्वारा (उत्तरे) समय व्यतीत करना (उपवास कहलाता है) तदुपरांत मध्याह्न के समय किसी नदी आदि जलाशय में निर्मल जल में स्नान करके देवकी देवी के सूतिका गृह को पद्मराग मणि एवं पत्र नेत्र से भली भाँति विभूषित करते हुए रक्षामणि से भी सुसज्जित करे; वहाँ के सभी कार्य (व्यवहार) गोकुल की भाँति ही होने चाहिए। अनेक भाँति की सुसज्जित गोपियों से अलंकृत घट्टा, मृदङ्ग आदि के वाद्य, माङ्गलिक कलश, जवार्ध, स्वस्तिका, शंख आदि वाद्यों की ध्वनि, बैंधा हुआ अमुर, लोहे खड्ग, और प्रिय छाग (बकरी) से सुशोभित करके फैलाये गये धान्य पर रखकर रक्षपालों द्वारा सुरक्षित मुश्ल तथा अनेक भाँति के सुमधुर नैवेद्य आदि सभी शेष पदार्थों द्वारा उस सूतिका गृह को विभूषित करना चाहिए। उसी के मध्य में सुर्वा, चाँदी, ताँब, पीतल मृत्तिका,

काञ्चनी राजती ताम्री पैतली मृण्मयी तथा । दार्ढि मणिमयी चैव कर्णिका लिखिताय वा ॥२८
 सर्वतक्षणसम्पन्ना पर्यकेचार्द्धसुप्तिका । प्रतप्तकाञ्चनाभासा मया सह तपस्त्विनी ॥२९
 प्रस्तुता च प्रसूता च तत्क्षणाच्च प्रहरिता । मां चापि बालकं मुक्तं पर्यके स्तनपायिनम् ॥३०
 शीवत्सवक्षसं पूर्णे नीलोत्पलदलच्छविम् । यशोदा चापि तत्रैव प्रसूता वरकन्यकाम् ॥३१
 तत्र देवगृहं नागा यक्षविद्याधर नरः । प्रणता: पुष्टमालाप्रव्यग्रहस्ताः सुरामुरा ॥३२
 सञ्चरत्त डवाकाशे प्राकरैरुदितोदितैः । वसुदेवोऽपि तत्रैव खडगचर्मधरः स्थितः ॥३३
 कश्यपो वसुदेवोयमितिश्चापि देवकी । बलभद्रः शेषनागो यशोऽदित्यजायत ॥३४
 नन्दः पञ्चागतिरक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः । एषोऽवतारे राजेन्द्र कंसोऽयं कालनेमजः ॥३५
 तत्र कंसनियुक्ता ये दानवा विविधायुधाः । ते च प्राहारिकाः सर्वे सुप्ताः निद्रादिमोहिताः ॥३६
 गोधेकुकुञ्जराश्रास्य दानवाः शस्त्रपाणयः । नृत्यंत्यप्सरसो हृष्टः गन्धर्वा गीततप्तराः ॥३७
 लेखनीयश्च तत्रैव कालिये पमुनाङ्गदे । रम्यमेदं विधिं कृत्वा देवकीं नवरूपिकाम् ॥३८
 तां पार्थः पूजयेद्दूक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः । कूणमाण्डनालिकेरैश्च खंजूरैर्दाढिभीफलैः ॥३९
 बीजपूरैः पूगफलैर्ल्लुकुचैस्तपुस्तथा । कालदेशोद्भूवैर्मृष्टैः पुष्पैश्चापि युधिष्ठिर ॥४०
 ध्यात्वावतारं प्रागुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥४१

काष्ठ, एवं मणि की सुन्दर देवकी जी की प्रतिमा अथवा चित्र आदि जो समस्त लक्षणों से अंकित हो । सुसज्जित शश्या के आधे भाग पर शयन किये वह संतप्त सुर्वा की प्रतिमा आसनप्रसदा मेरे प्रसन्नार्थ प्रस्तुत दिखायी देती हो, और प्रसन्न होने पर उसी समय हर्ष निमग्न उस प्रसूता के साथ मुझे भी बालक रूप में वहाँ शयन कराये, जो शयन किये दुग्ध पान करते हो, शीवत्स से विमूषित वक्षःस्थल और नीलकमल दल की माधुरी छवि से सम्पन्न हों, और यशोदा भी वहाँ उत्तम कन्या के प्रसव समेत स्थित हों । भगवान् के उस सूतिका गृह में नाग, यक्ष, विद्याधर एवं मनुष्य, नम्रता पूर्ण पुष्प मालाओं से सुशोभित इस भाँति दिखायी दें, जो दर्शनार्थ आकाश में जैसे व्यग्र होकर इधर उधर संचरण कर रहे हों । खडग और चर्म (ढाल) लिए वसुदेव की भी प्रतिमा वहाँ रहनी चाहिए । कश्यप जी वसुदेव अदिति देवकी, शेष नाग बलभद्र, दिति यशोदा, प्रजापति दक्ष नन्द, और चतुर्मुख ब्रह्मा गर्ग के रूप में अवतारित थे । राजेन्द्र ! उसी प्रकार यह कंस काल नेमि का पुत्र था । मेरे प्रकट होने के समय कंस द्वारा नियुक्त किये गये सूतिका गृह द्वार के सभी दानवगण, जो अनेक भाँति के अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित थे, तथा इतर गण, जो वहाँ सावधानी से पहरा दे रहाथा, निद्रमग्न होकर भूमि शायी हो गये । नृत्य करती हुए अप्सराए, हर्ष मग्न एवं गान करते हुए गन्धर्व एवं यमुना कुण्ड में निवास करते हुए कालिया नाग की प्रतिमा बनानी चाहिए । पार्थ ! इस प्रकार देवीकी भी उस सूतिका गृह का निर्माण करने भक्ति पूर्वक गन्ध, पुष्प, अक्षत, फल, कूष्माण्ड, नारियल, खंजूर, अनार, विजौरानीबू, सुपारी बडहर, पायस आदि कृतु फलों एवं पुष्पों द्वारा उनकी अर्चना करते हुए उनके ध्यान एवं भंत्रोच्चारण पूर्वक पूजन करना चाहिए । १९-४१। युधिष्ठिर ! उस मनोरम रूप वाली एवं सुबदन देवमाता देवकी की सर्वदा जय हो, जो मुझ बालक को साथ लिए सुसज्जित

गायद्विः किन्नरादैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादै र्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रमरकृतकरैः सेव्यमाता मुनीद्वैः । पर्यंडुः स्वास्तृते या मुदिततरमनाः पुत्रिणी सम्प्यगास्ते सा देवी देवमाता जयति सुवदनः देवकी कान्तलूपा ॥४२ पादावभ्यंजयन्ती श्रीदेवक्याश्ररणान्तिके । निषणा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै च मंत्रतः ॥४३ ॐ दैवक्यै नमः । ॐ वासुदेवाय नमः । ॐ श्रीकृष्णाय नमः । ॐ सुभद्रायै नमः ।

ॐ नन्दाय नमः । ॐ यशोदायै नमः ।

एवमादीनि नामानि समुच्चार्यं पृथक्पृथक् । पूज्येयुद्घिजाः सर्वे शुद्राणाममन्त्रकम् ॥४४ विघ्नतरमदीच्छन्ति केचिदत्र द्विजोत्तमाः । चन्द्रोदये शशाङ्काय अर्थ्य दद्याद्विरिं स्मरेत् ॥४५ अनघं वासनं शौरि वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् । वासुदेवं हृषीकेशं साधवं मधुसूदनन् ॥४६ वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं खाहाणप्रियत् । दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् ॥४७ गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम् । अधोक्षजं जगद्वौजं सर्गस्थित्यन्तकारणम् ॥४८ अनादिनिधनं विष्णुं त्रैलोक्येशं त्रिविक्रमम् । नारायणं चतुर्बाहुं शत्रुघ्नं चक्रगदाधरम् ॥४९ पीतास्त्ररधरं नित्यं वनमालाविभूषितम् । श्रीवत्साङ्गं जगत्सेतुं श्रीधरं श्रीपतिं हरिम् ॥५० योगेश्वराय योगेश्वराय योगपतये गोविन्दाय नमोनमः ।

(इति स्नान मंत्रः)

यज्ञेश्वराय यज्ञसम्भवाय यज्ञपतये गोविन्दाय नमोनमः ॥५१

इत्यनुलेपनार्थाद्यर्चनथूपमन्त्रः । विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वसम्भवाय विश्वपतये गोविन्दाय नमोनमः ॥५२

(इति नैवेद्यमन्त्रः)

शय्या पर अत्यन्त मुदित होकर शयन किये हो, वेणु वीणा द्वारा गान करते हुए किन्नरसाठा, एवं अगस्त्य आदि महर्षियों से आवृत हैं । देवकी देवी के चरण के समीप उनके चरण की सेवा करती एवं कमल पर गुह्योभित की भी पूजा करे । उस समय 'नमो देव्यै' मंत्र का उच्चारण करना चाहिए, तथा 'ओ देवक्यै नमः' ओं वासुदेवाय नमः, 'ओं वलभद्राय नमः', 'ओं श्रीकृष्णाय नमः', 'ओं सुभद्रायै नमः', 'ओं नन्दाय नमः', 'ओं यशोदायै नमः', आदि नामों के उच्चारण पूर्वक पृथक् पृथक् पूजा करना ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्यों को बताया गया है । उसी प्रकार स्त्री और शूद्रों को विना मंत्र के कुछ विद्वानों के विधान में भी मतभेद है—चन्द्रोदय होने पर भगवान् के स्मरण पूर्वक चन्द्रमा को अर्थ्य प्रदान करना चाहिए । अनघ, वामन, शौरि, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम, वासुदेव, हृषीकेश, माधव, मधुसूदन, वाराह, पुण्डरीकाक्ष, नृसिंह, ब्राह्मणप्रिय, दामोदर, पद्मनाभ, केशव, गरुडध्वज, गोविन्द अच्युत, कृष्ण, अनन्त अपराजित, अधोक्षज, जगत् के बीच एवं उसी की सृष्टि, स्थिति, विनाशक, तथा आदि अंत से शून्य विष्णु त्रैलोक्येश, त्रिविक्रम, नारायण, चतुर्बाहु, शंख, चक्रगदाधारी, पीतास्त्ररधारी, नित्यवनमाला से विभूषित एवं श्रीवत्सांक, जगत्सेतु, श्रीधर, श्रीपति, हरि, योगेश्वर, योगेश, भव, योगपति तथा गोविन्द को नमस्कार है—इसके उच्चारण पूर्वक स्नान कराना चाहिए । ४२-५०। यज्ञेश्वर, यज्ञद्वारा उत्पन्न, यज्ञपति एवं गोविन्द को बार-बार नमस्कार है, इसके उच्चारण द्वारा लेपन, अर्थ्य अर्चन एवं धूप आदि प्रदान करना चाहिए । विश्वरूप, विश्वेश्वर, विश्वसृष्टा, विश्वपति तथा गोविन्द को नमस्कार है, इसके उच्चारण से नैवेद्य अर्पित करना

धर्मेभरय धर्मपतये धर्मसन्धाय गोविन्दाय नमोनमः ॥५३
 (इति दीपासनमंत्रः)

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव । गृहणार्थं शशाङ्केन्द्रो रोहिण्या सहितो मम ॥५४
 स्थण्डले स्थापयेद्वैं सचन्द्रां रोहिणीं तथा । देवकीं बसुदेवं च यशोदां नन्दमेव च ॥५५
 बलदेवं तथा पूज्य सर्वापैः प्रमुच्यते । अर्द्धरात्रे वसोद्वारां पातयेदगुडसर्पिषा ॥५६
 ततो बद्धपिनं षष्ठीनामदिकरणं शम । कर्तव्यं तत्क्षणाद्रात्रौ प्रभाते नवमीदिने ॥५७
 यथा शम तथा ज्ञायो भगवत्या महोत्सवः । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या तेभ्यो द्वाच्च दांकणाम् ॥५८
 हिरण्यं काञ्चनं गावो वासांसि कुमुमानि च । यद्यदिष्टतमं तत्कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥५९
 यमेवं देवकी देवी बसुदेवादजीजनन् । भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥६०
 सुजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा तु विसर्जयेत् ॥६१
 एवं यः कुरुते देव्या देवस्याः सुमहोत्सवम् । वर्षेवर्षे भगवतो भद्रक्तो धर्मनन्दन ॥६२
 नरो वा यदि वा नारी यथोक्तफलमान्युयात् ॥६३

पुत्रसन्तानमारोग्यं धन्धान्यादिसद्गृहम् । शालीक्षुयवसम्पूर्णनण्डलं सुमनोहरम् ॥६४
 तस्मिन्राष्ट्रे प्रभुर्भुक्ते दीर्घायुर्मनसेप्सितान् । परचक्रभयं नास्ति तस्मिन्राज्येऽपि पाण्डव ॥६५
 पर्जन्यः कामवर्दी स्यादीतिभ्यो न भयं भवेत् । यस्मिन्नाहे पाण्डुपुत्र क्रियते देवकीव्रतम् ॥६६
 न तत्र मृतनिष्कांतिर्न गर्भपतनं तथा । न च व्याधिभयं तत्र भवेदिति शर्तिर्भम् ॥६७

बताया गया है। धर्मेभर, धर्मपति, धर्मात्मा धर्मसम्भव उस गोविन्द को नमस्कार है, के उच्चारण पूर्वक दीप और आसन तथा उसी भाँति क्षीर सागर से उत्पन्न, एवं अत्रि महर्षि के नेत्र से प्रकट होने वाले चन्द्र देव ! रोहिणी समेत मेरे इस अर्थ को ग्रहण करें। पश्चात् देवी के (ऊपर देव (कृष्ण) चन्द्रमा समेत, रोहिणी, देवकी सुदेव, यशोदा नन्द और बलदेव की अर्चना करने से समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त होती है। आर्धीरात के समय गुड समेत धी का वसोद्वार प्रदान कर बद्धपिन और षष्ठी में नामकरण आदि संरकार रात्रि के उसी समय करना चाहिए। प्रातः काल नवमी के दिन मेरे समान ही भगवती का महोत्सव करना बताया गया है। ब्राह्मण भोजनोपरांत उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करते समय—सुवर्ण, गौ, वस्त्र, एवं कुसुम आदि, भगवान् की इष्ट वस्तुएँ उन्हें सादर सर्पिष कर रहा हूँ, भगवान् कृष्ण मेरे ऊपर प्रसन्न हों। देवकी देवी के बसुदेव द्वारा भगवान् को मौन और ब्रह्मा के रक्षार्थ उत्पन्न किया है, अतः उस ब्रह्मात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। अनन्तर बासुदेव, एवं ब्राह्मण के हितार्थ शोभन जन्म ग्रहण करने वाले (भगवान्) शान्ति एवं कल्याण प्रदान करें—कहकर विसर्जन करे। धर्मनन्दन ! इस प्रकार प्रतिवर्ष मुङ्ग समेत देवकी देवी के महोत्सव करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को उक्त फल प्राप्त होता है—५१-६३। पुत्र, आरोग्य, धन धान्य समेत उत्तम प्रह, शाली (साठी), ऊख, और जवा आदि से सुसम्पन्न उस राष्ट्र में वे दीर्घायु होकर इच्छित भोगों के उपभोग करते हैं। पाण्डव ! उस राज्य में उसे कभी भी शत्रुभय नहीं होता है। मेघ सदैव इच्छानुसार जलप्रदान करते रहते हैं, इति का भय कभी नहीं होता है। पाण्डुपुत्र ! जिस गृह में देवकी का व्रत सविधान सुसम्पन्न किया जाता है, उस घर में मरण-प्रसव अथवा गर्भपतन कभी नहीं होता है और उसी भाँति व्याधि भी नहीं होता है, ऐसा

न वैद्यजनसंयोगो न चापं कलहो गृहे । सम्पर्केणापि यः कश्मित्कुर्याज्जन्माष्टमीव्रतम् ॥
विष्णुलोकमवाप्नोति सोऽपि पार्थं न संशयः ॥ १६८

जन्माष्टमी जनमनोनयनाभिरामा पापापहा सपदिनन्दितनन्दगोपा ।
यो देवकीं सदयितां यजतीह तस्यां पुत्रानवाप्य समुपैति यदं स विष्णोः ॥ ६९
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
जन्माष्टमीव्रतवर्णनं नाम पञ्चपन्नाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

द्वार्षष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शुक्ले भाद्रपदस्यैव पक्षेऽष्टम्यां युधिष्ठिर । द्वार्षष्टमीव्रतं पुण्यं यः कुर्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ १
न तस्य क्षयन्तःप्रोति सन्तानं सप्तपौरुषम् । नन्दते वर्द्धते नित्यं यथापूर्वं तथा कुलम् ॥ २

युधिष्ठिर उवाच

कुत एष समुत्पन्ना द्वार्या कस्माच्चरापुषा । कस्माच्च सा पवित्रा च लोकनाथ ब्रवीहि मे ॥ ३

मेरा कहना है। न कभी वैद्यों की आवश्यकता होती है, और कलह का काम नहीं रहता है। पार्थ! किसी के सम्पर्क द्वारा भी इस जन्माष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले को विष्णु लोक की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं। इस प्रकार जनमनरंजन, नयनाभिराम एवं पापहारी इस जन्माष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करते हुए प्रसन्नता पूर्ण नंद गोपियों समेत देवी देवकी की अर्चना करने पर उसे पुत्र प्राप्ति विष्णु पद की प्राप्ति होती है। १६४-६९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में

जन्माष्टमी व्रतवर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५।

अध्याय ५६

द्वार्षष्टमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! भाद्र शुक्लाष्टमी के दिन श्रद्धालु होकर द्वार्षष्टमी व्रत के विधान, जो अत्यन्त पुण्य रूप हैं, सविधि सुसम्पन्न करने वाले पुरुष की सात पीढ़ियों में संतान एवं पौरुष का विच्छेद नहीं होता है, पूर्वक की भाँति सदैव प्रसन्नता पूर्ण उनकी वृद्धि होती रहती है। १-२

युधिष्ठिर ने कहा—लोकनाथ! इस द्वार्षष्टमी का जन्म, किस भाँति और किसके द्वारा हुआ है, तथा यह महान् पवित्र क्यों है। मुझे बताने की कृपा कीजिये। ३

श्रीकृष्ण उवाच

क्षीरोदसागरे पूर्वं मध्यमानेऽमृतार्थिना । विष्णुना बाहुजंयाभ्यां यद्धृतो मन्दरो गिरः ॥४
 भ्रमितो वै स वेगेन रोमाण्युद्घिष्ठितानि वै । तान्येतानि जलोर्मीभिरुत्क्षप्तानि तदर्णवात् ॥५
 अजायत शुभा द्रूर्वा रस्या हरितशाद्वला । एवमेषा समुत्पन्ना द्रूर्वा विधुतनूरुहा ॥६
 तस्याश्रोपरि विन्यस्तं मथितामृतमुत्तमम् । देवदानदगत्थर्वेयक्षविद्याधरस्तथा ॥७
 तत्राप्यमृतकुम्भस्य पेरुक्षिष्यन्दबिन्दवः । तैरियं स्पृष्टमात्राभूद्वर्वा रस्याऽजरामरः ॥८
 वन्दा पवित्रा देवस्तु वन्दिताभ्यर्चिता पुरा । अष्टभ्यो फलपुष्पैस्तु खर्जूरैन्नालिकेरके: ॥९
 द्राक्षाक्षोटकपित्यैश्च बर्बरैलकुचैस्तथा । नारिंगैर्जबुकैरान्नैबर्जपूरैश्च दाढिमै: ॥१०
 दध्यक्षतैः सुपुष्पैश्च धूपनैवेद्यदीपकैः । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र शृणुत्वावहितेन च ॥११
 त्वं द्रूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दिता च सुरासुरैः । सौभाग्यं सन्ततिं कृत्वा सर्वकार्यकरी भव ॥१२
 यथा शालाप्रशालाभिर्विस्तृतासि महीतते । तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरे ॥१३
 एवमेषा पुरा पार्थं पूजिता त्रिदशोत्तमैः । तेषां पत्नींवधूभिर्भ्रम भगिनीभिस्तथैव च ॥१४
 पूजिताभ्यर्हिता वाचा गौर्या राजच्छ्रया तथः । मर्त्यलोके वेददत्या दमयन्त्यापि सीतया ॥१५
 सुकेश्या च धृताच्या च रम्भया च सुकेश्या । सहन्या कामकन्दन्या मेनकोवेशिकादिभिः ॥१६
 स्त्रीभिरेवार्चिता द्रूर्वा सौभाग्यसुखदायिनी । स्नाताभिः शुचिवस्त्रभिः सखीभिः समुहृज्जनैः ॥१७
 दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यः फलं दत्त्वार्चयेत्प्रभोः । तिलपिष्टकगोधूमसप्तधान्यानि पाण्डव ॥१८

श्रीकृष्ण बोले—प्राचीन काल में क्षीर सागर के मथन करने के लिए भगवान् विष्णु ने मंदराचल को अपनी जंघाओं पर धारण किया था । वेग से उसके भ्रमण करने पर धर्षित होने (घिसने) पर उनके लोम समुद्र की तरङ्गों द्वारा ऊपर आकर हरी हरी एवं शुभ द्रूर्वा का रूप धारण किया । इसी प्रकार इस चन्द्रवदना द्रूर्वा के जन्म ग्रहण करने पर उसी के ऊपर रखकर उसे भक्षने से अमृत का प्रादुर्भाव हुआ । देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष तथा विधाधरो द्वारा ले जाते समय उस कलश से अमृत के विन्दु गिर पड़े थे, उसके स्पर्श होने के नाते यह द्रूर्वा अजर अमर एवं देवों द्वारा वन्दित हुई है । इसलिए उस अष्टमी के दिन फल, पुष्प, खर्जूर, नारियल, द्राक्षा, अलरोट, कैथ, बर्बर, बड़हर, नारंगी, जामुन, आम, बिजौरा नींबू, अनार, दही, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य द्वारा उसकी अर्चना करनी चाहिए । राजेन्द्र, उसका विधान में बता रहा हूँ, साक्षात् होकर सुनो ! द्रूर्वे ! तुम्हारा जन्म अमृत द्वारा हुआ है, सुर एवं असुरों ने तुम्हारी अर्चना की है, अतः सौभाग्य तथा संतान के प्रदान पूर्वक मेरे समस्त कार्यों को सफल करो । हे अजर अमर रहने वाली द्रूर्वे ! इस पृथ्वी तल पर जिस प्रकार शाखाओं एवं शाखाओं द्वारा अविच्छिन्न विस्तृत हुई हो, उसी भाँति एवं उनकी पत्नी, पुत्रवधू, भगिनी, तथा सरस्वती, गौरी लक्ष्मी और मर्त्यलोक में वेदवती, दमयन्ती, सीता, सुकेशी, धृताची, रम्भा और सुकेश, सहन्या, कामकन्दनी, मेनका, तथा उर्वशी आदि स्त्रियों ने इस सौभाग्य एवं सुख दायिनी द्रूर्वा की अर्चना की है । स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण पूर्वक सवियों एवं सहृदय जनों समेत ब्राह्मणों को दान देने के उपरांत भगवान् की अर्चना करनी चाहिए । अनन्तर तिल चूर्ण, गेहूँ, और सप्त धान्य के भक्षण सुहृद, सम्बन्धी, एवं स्वजन के साथ करे । ४-१८।

भक्षणिता मुहूर्मिद्वस्त्र्यधिस्वजने तथा । या नार्यो विज्ञरिष्यन्ति व्रतमेतत्पुरातनम् ॥१९
 द्वूर्वाष्टमीति विख्यातं पुण्यं सन्तानकारकम् । ताः सर्वाः सुखसौभाग्यपुत्रपौत्रादिभिस्तथा ॥२०
 मर्त्ये लोके चिरं स्थित्वा ततःस्वर्गं गताः पुनः । देवैरानन्दितास्तत्र भर्तृभिः सह ब्राह्मद्वैः ॥२१
 वसन्ति रममाणस्ता यावदाभूतसंप्लवम् ॥२२

मेघावृतेऽम्बरतले हरिने बनान्ते या साष्टनी शुभफला सफला नभस्ये ।

द्वूर्वाष्टलाङ्कततिलैः प्रतिपूज्य दोषिद्वृद्धेव वृद्धिमुपयति सुतैः सुहृद्भिः ॥२३

इति श्रीभद्रिष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुग्मिष्ठरसवादे
 द्वूर्वाष्टमीव्रतवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कृष्णाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कृष्णाष्टमीव्रतं पार्थं शृणु पापभयापहम् । धर्मसंजननं लोके रुद्रप्रीतिकरं परम् ॥१
 मासि मार्गशिरे प्राप्ने दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्य नियमं कुर्यान्नित्यस्य वा पुनः ॥२
 अशक्तशक्तभेदेन गृहान्निष्क्रम्य बाह्यतः । कृष्णाष्टम्यां वर्षमेकं गुरुं पृष्ठा विचक्षणः ॥३
 ब्रह्मचारी जितक्रोधः शिवार्चनजपे रतः । ततोऽपराह्लसमये स्नात्वा नद्यां विशुद्धधीः ॥४

इस प्रकार पुण्य तथा संतानकारक इस द्वूर्वाष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्रियाँ सुख, सौभाग्य, पुत्र पौत्र आदि समेत इस भ्रूमण्डल में चिरकाल तक समस्त भोगों के उपभोग करने के अनन्तर अन्त में स्वर्ग लोक प्राप्त करती हैं । वहाँ पहुँच कर अपने पतियों आदि के साथ देवों से मुसेवित रहकर महाप्रलय के समय तक रमण करती है । इस प्रकार भाद्र शुक्लाष्टमी के दिन मेघाच्छन्न आकाश के समय हरे भरे उपवनों में दूर्वा, अक्षत तथा तिल द्वारा इस द्वूर्वाष्टमी के व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह स्त्री सुहृत बन्धुओं समेत दूर्वा के समान ही वृद्धि प्राप्त करती है । १९-२३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युग्मिष्ठर के सम्बाद में
 द्वूर्वाष्टमी व्रत वर्णन नामक छप्पनबाँ अध्याय समाप्त ॥५६।

अध्याय ५७

कृष्णाष्टमी का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पाप नाशक, धर्मजनन एवं रुद्र दीप्तिकारक कृष्णाष्टमी व्रत मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी के दिन दन्तधावन पूर्वक उपवास के नियम ग्रहण कर नक्त व्रत समेत उसे सुसम्पन्न करे । अशक्त होने पर गृह से बाहर निकल कर पूछने पर गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए एक वर्ष तक ब्रह्मचारी, ब्रोधहीन होकर शिवार्चन एवं जप में तन्मय रहे । १-३।

शिवलिङ्गं समभ्यच्च सुमनोभिः सुगन्धिभिः । गुणगुलुं च शुभं दग्धवा द्वयान्नैवेद्यमुत्तमम् ॥५
 ततो देवस्य पुरतो होमं कुर्यात्तिलैः गुरुः । मार्गशीर्षं शुभे मासि शङ्करायेति पूजयेत् ॥६
 गोमूत्रप्राशनं कृत्वा स्वप्याद्भूमौ ततो निशि । अतिरात्रस्य यजस्य फलमाप्नोति मानवः ॥७
 एवं पूष्येऽपि सम्पूज्य शस्मुं नाम नहेश्वरम् । कृष्णाष्टम्यां घृतं प्राश्य वाजपेयफलं भजेत् ॥८
 मावे माहेश्वरं नाम कृष्णाष्टम्यां प्रसूजयेत् । निशि दीत्वा गवां क्षीरं गोमेधाष्टकमाप्नुयात् ॥९
 फाल्गुने च महादेवं सम्पूज्य प्राशयेत्तिलान् । राजसूदस्य यजस्य फलमष्टगुणं भजेत् ॥१०
 चैत्रे च स्थाणुनामानं कृष्णाष्टम्यां शिवं यजेत् । यवाहारोऽवसेवस्य यजस्य फलमाप्नुयात् ॥११
 वैशाखे शिदनामानमिष्ट्वा रात्रौ कुशोदकम् । पीत्वा पुरुषसेवस्य फलं दशमुणं भजेत् ॥१२
 ज्येष्ठे पशुपतिं पूज्य गवां शृङ्गोदकं दिबेत् । गवां लक्षप्रदानस्य नरः फलमवाप्नुयात् ॥१३
 आषाढ़े द्योग्रनामानमिष्ट्वा सम्प्राश्य गोमयम् । वर्षणां नियुतं साप्रं रुद्रलोके महीयते ॥१४
 श्रावणे शर्वनामानमिष्ट्वार्कं निशि भक्षयेत् । बहुस्वर्णस्य यजस्य नरः फलमवाप्नुयात् ॥१५
 नासि भाद्रपदेऽष्टम्यां अस्मद्कं नाम पूजयेत् । बिल्वपत्रं निशि प्राश्य अन्नदीक्षाफलं भजेत् ॥१६
 भवनामार्णिणे पूज्यः प्राशयेत्ताङ्गुलोदकम् । पौण्डरीकस्य यजस्य फलं शतगुणं भजेत् ॥१७
 कार्तिके रुद्रनामानं सम्पूज्य प्राशयेद्धधि । अग्निष्टोमस्य यजस्य फलं त्राप्नोति मानवः ॥१८
 अब्दान्ते भोजयेद्विप्राञ्छिवभक्तिपरायणान् । यायसं भद्रं संयुक्तं घृतेन समभिष्टुतम् ॥

पश्चात् अपराह्ण के समय नदी के विशुद्ध जल में स्नान करके शोभन पुण्य एवं सुगंध द्वारा शिवलिङ्ग की सप्रेम अर्चना करनी चाहिए। गुणगुल की धूप, और मधुर नैवेद्य सादर अर्पित करने के उपरांत उनके समुख तिल द्वारा गुरु से हवन सुसम्पन्न कराये। मार्गशीर्ष मास में ‘शंकर, की अर्चना, गोमूत्र के प्राशन, और रात्रि में भूमि शयन करने पर मनुष्य को अतिरात्र यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार पौष मास में कृष्णाष्टमी में महेश्वर के इस शम्भु नामोच्चारण द्वारा पूजन, एवं घृत के प्राशन करने पर वाजपेय यज्ञ के फल प्राप्त हैं। माघ की कृष्णाष्टमी के दिन ‘महेश्वर’ नामोच्चारण पूर्वक पूजन, और रात्रि में गोक्षीर के प्राशन करने से आठ यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। फाल्गुन में ‘महादेव की अर्चना तथा तिल के प्राशन करने से राजसूय यज्ञ का आठ गुना फल प्राप्त होता है। ४-१०। चैत्रमास में कृष्णाष्टमी के दिन ‘स्थाणु’ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वैशाख मास में ‘शिव’ नामक उच्चारण एवं पूजन करके रात्रि में कुशोदक के प्राशन करने से नरमेध यज्ञ के दश गुने फल प्राप्त होते हैं। ज्येष्ठ मास में ‘पशुपति’ नाम शिव की पूजा एवं गोशृङ्गोदक के प्राशन करने से मनुष्य को लक्ष गोदान के फल प्राप्त होते हैं। आषाढ़ मास में ‘उग्र’ नामक शिव की आराधना तथा गोमय के प्राशन करने से दशसहस्र वर्ष तक रुद्रलोक में सम्मानित होता है। श्रावण में ‘शर्व’ नामक (शिव) की अर्चना करके रात्रि में मंदार के प्राशन करने से मनुष्य को बहुसुर्वण वाले यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। भाद्रपद मास की अष्टमी के दिन ‘अयम्बक’ नामक शिव की आराधना और रात्रि में बिल्वपत्र के प्राशन करने से अन्नदीक्षा के फल प्राप्त होते हैं। आग्निं में ‘भव’ नामक शिव की पूजा तथा ताङ्गुलोदक के प्राशन करने से पुण्डरीक यज्ञ के सौ गुने फल प्राप्त होते हैं। ११-१७। कार्तिक मास में ‘रुद्र’ नामक शिव की अर्चना और दधि के प्राशन करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार व्रत के समाप्त होने पर वर्ष के अन्त में शिव भक्त ब्राह्मणों को भद्र एवं धी परिष्ठूण पायस

शक्त्या हिरण्यवासांसि भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् ॥१९॥

सतिला॒ कृष्णकलशा॒ भक्ष्यभोज्येन संयुताः । द्वादशात्र ब्रदत्व्याङ्गत्रोपानद्युगान्विताः ॥

निवेदय॑ त रुद्राणां गां च कृष्णां पयस्विनीम् ॥२०॥

वर्षमेकं चरेदेवं नैरन्तर्यर्थं यो नरः । कृष्णाष्टमीकृतं भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२१॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः सवैश्वर्यसमन्वितः । सोदते भूपवनित्यं मर्त्यलोके शतं त्तमाः ॥२२॥

अनेन विधिना देवाः सर्वे देवत्वमागताः । देवी देवोत्तमापन्ना शुहः स्कन्दत्वमागतः ॥२३॥

ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो हृहं विष्णुत्वमागतः । इन्द्रश्च देवराजत्वं गणपत्यं गणो गतः ॥२४॥

नारी वा शुरुयो दापि कृत्वा॑ कृष्णाष्टमीकृतम् । अखण्डितं महाराज पुण्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥२५॥

सूर्यकोटिप्रतीक्षार्थिमःनैः सर्वकामिकैः । रुद्रकन्यादत्माकीर्णहस्सारससंयुतैः ॥२६॥

नृत्यवादित्रसंयुक्तैरुत्कृष्टध्वनिनादितैः । दोधूयमानश्वरैः स्तूपमानः सुरासुरैः ॥२७॥

त्रिनेत्रः शूलपाणिश्च शिवैश्वर्यसमन्वितः । आस्ते शिवपुरे तावद्यावत्कल्पेषु चाष्टकम् ॥२८॥

इत्येतत्ते समाख्यातं पार्थं कृष्णाष्टमीकृतम् । यच्छ्रुत्वा सर्दपापेभ्यो॑ मुच्यते नात्र संशयः ॥२९॥

कृष्णाष्टमीकृतमिदं शिवभावितात्मा सत्याशनैरुदितनामयुतैरुपोष्य ।

कृष्णान्ददाति कलशान्सतिलान्नयुक्तान्योसौ प्रयाति पदमुत्तमिन्दुमौले ॥३०॥

इति श्रीभविष्येभापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

कृष्णाष्टमीकृतवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशतमोऽध्यायः ।५७.

से संतुप्त कर यथाशक्ति सुवर्ण, वस्त्र, तिल समेतं बारह कृष्ण कलश, अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ, छत्र, उपानह पयस्विनी कृष्णा गौं सादर सर्मपित करना चाहिए । इस प्रकार एक वर्ष तक निरन्तर भक्तिपूर्वक कृष्णाष्टमी के व्रत सुसम्पन्न करने से जिस फल की प्राप्ति होती है गैं वह कह रहा हूँ, शुगो ! समस्त पापों से मुक्त होकर समस्त ऐश्वर्य समेत इस भूतल पर राजा की भाँति सौ वर्ष तक सुखोपभोग करता है । इस विधान द्वारा इसे सुसम्पन्न कर देवी देवों ने देवत्व, गुहस्कन्द, ब्रह्मा ब्रह्मत्व और मैने विष्णुत्व प्राप्त किया है । उसी भाँति इन्द्र ने देवराजत्व और गण ने गणपतित्व की प्राप्ति की है । महाराज ! इस कृष्णाष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करते पर नारी अथवा पुरुष को अखण्ड पुण्य प्राप्त होता है, अनन्तर यथेच्छ सुखोपभोग से पूर्ण एवं कोटि सूर्य के समान प्रकाशित विमान पर बैठकर जो रुद्रकन्याओं से आच्छन्न तथा हंस सारस से संयुक्त तथा नृत्य-गान की उत्कृष्ट ध्वनि से निनादित रहता है, शिवलोक की प्राप्ति करता है । सुर असुर चामर डुलाते हुए उसकी वन्दना करते हैं । शिव के समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर शूलपाणि एवं त्रिनेत्र शिव की भाँति सुखोपभोग करते हुए आठकल्प तक वहाँ निवास करता है । पार्थ ! इस प्रकार मैने कृष्णाष्टमी व्रत का विधान तुम्हें बता दिया, जिसके श्रवण कङ्गे पर प्राणी समस्त पापों से मुक्त हों जाता है, इसमें सन्देह नहीं । कल्याण मूर्ति इस कृष्णाष्टमी को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न करते हुए वर्षान्त में तिल और पूर्ण बारह कलशों को प्रदान करने वाला मनुष्य चन्द्रशेखर का उत्तम पद प्राप्त करता है । १८-३०

श्रीभविष्येभापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर-सम्बाद में

कृष्णाष्टमी व्रत वर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।५७।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अनधाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मपुत्रो महातेजा अत्रिनामि महानृषिः । तस्य पत्नी महाभाग अनसूया पतिव्रता ॥१
 तयोः कालेन सहता जातः पुत्रो महातपाः । दत्तो नन्न महायोगी विष्णोरंशो महीतले ॥२
 द्वितीयो नाम लोकेस्मिन्ननघश्चेति विश्रुतः । तस्य भार्या नदी नाम बभूव सहचारिणी ॥३
 अष्टपुत्रा जीवदत्सा सर्दज्ञाहयुर्वृत्ता । अनयोर्विष्णुरुपेण लक्ष्मीश्चैवनदी स्मृता ॥४
 एवं तस्य सभार्यस्य योगाभ्यात्तरतस्य वा । आज्ञमुः शरणं देवा: शुम्भदैत्येन पीडिता: ॥५
 ब्रह्मलब्धप्रसादेन द्रुतं गत्वामरावतीम् । सरुद्धां जस्म्भदैत्येन दिव्यवर्षशतं नृप ॥६
 दैत्यदानवसंयोगे पातालादेत्य भारत । तस्य सैन्यमसंख्येण दैत्यदानवराक्षसः ॥७
 तेन निर्णिशिता देवा: सेन्द्रचन्द्रपरुद्गणाः । त्याजिताः स्वानि दिष्ण्यानि त्यक्त्वा जग्मुर्दिशो दश ॥८
 अग्रतः प्रलयं यातः सेन्द्रा देवा भयादिताः । पृष्ठतोनुव्रजन्ति स्म दैत्या जस्म्भपुरःसराः ॥९
 युध्यन्तः शरसन्धार्नेगदामुसलमुद्गरैः । नर्दन्तो वृषभारुदाः केचिन्महिषवाहनाः ॥१०
 शरभैर्गडकैर्व्याधैर्वानिरै रभसैर्द्रताः । मञ्चन्तो यान्ति पाषाणाऽच्छत्थनीस्तोमराञ्छरान ॥११

अध्याय ५८

अनधाष्टमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाभाग ! ब्रह्मा के पुत्र अत्रि की जो महातेजस्वी एवं महान् कृषि थे, पतिव्रता पत्नी का नाम अनसूया था । बहुत दिनों के व्यतीत होने पर दोनों के संयोग से 'दत्त' नामक महातेजस्वी एक पुत्र दत्त, जो विष्णु का अंश एवं महायोगी था । उसी समय में एक अनध नामक परम तपस्वी कृषि थे, उनकी सहचारिणी का नाम नदी, जो आठ पुत्रों से संयुक्त, जीवित पुनिका, एवं द्वाहूण गुणों से युक्त थी । अनध विष्णुरूप और नदी लक्ष्मी रूप थी । पत्नी समेत योगाभ्यास करते हुए उन कृषि की शरण में प्राप्त होकर शुभ्म दैत्य से पीड़ित देवों ने उनकी प्रार्थना की थी । नृप ! ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर दैत्य ने शीघ्र अमरावती को प्रस्थान कर उसे चारों ओर से धेर लिया और दिव्य सौ वर्ष तक वहाँ का सुखोपभोग करता रहा । भारत ! उसकी दैत्य, दानव एवं राक्षसों की असंख्य सेनाएँ स्वर्ग में पहुँच कर इन्द्र चन्द्र एवं मरुदगण आदि देवों को अपने स्थानाधारातों से जर्जरित कर पराजित किया, पश्चात् देवों ने भी अपने स्थानों को त्याग कर इधर-उधर पलायन करना आरम्भ किया आगे जाने पर राक्षसों द्वारा विनष्ट हो जाने पर भय से इन्द्रादि देवों के इधर उधर भागने पर उनके पीछे जम्भादि राक्षसों ने भी धावा किया । १-९। उस तुमुल संग्राम में शर, गदा, मुशल, एवं मुदगर आदि शास्त्रास्त्रों से सुसज्जित वे दैत्यगण, जो नर्दमान वृषभ, महिष, क्षरभ, गैङ्गा, व्याघ्र एवं वानरों पर बैठे हुए वेग से शत्रुओं पर आधात कर रहे थे, तथा पाषाणों और गोतियों की दर्पण देवों का पीछा करते हुए विन्ध्यगिरि के समीप पहुँच

यावद्विन्धगिरिं ग्राप्तास्ततस्याश्रमम्" डलम् । अनदश्चानदी चैव दाम्पत्यं यत्र तिष्ठति ॥१२
 तयोः समीपं सम्प्राप्तास्ते नरा: शरणार्थिनः । अनघोऽपि च तान्देवाँल्लीलयैव सवासवान् ॥१३
 अभ्यन्तरे प्रविश्याथ तिष्ठध्वं विगतज्वराः । तथेति नाम ते कृत्वा सर्वे तुर्प्ति समास्थिताः ॥१४
 दैत्या अपि द्रुतं प्राप्ता ग्रन्थः प्रहरणेररीन् । इत्युचुरुल्बणा घोरः गृह्णीध्वं ज्ञाहणीं मुनेः ॥१५
 द्रुतं द्रुमानाक्षिप्तध्वं पुष्पोगगफलोपगतन् । अयारोप्यानयं सूर्धिन दैत्या जन्मुस्तदाश्रमान् ॥१६
 तत्क्षणाच्चापि दैत्यानां श्रीर्बूद्धि शिरोगता । दत्केनापि ते दृष्टा नष्टा ध्यानाग्निनः क्षणात् ॥
 निस्तेजसो ब्रह्मूर्धिः निःश्रीका मध्यपण्डिताः ॥१७

देवैरपि गृहीतास्ते दैत्याश्च हरणे र्जे । रुदन्तो निम्ननन्तश्च निश्चेष्टा ज्ञहूकण्टकाः ॥१८
 ऋषिः करणैः शूलैस्त्रिशूलैः परिधैर्धनैः । एवं ते प्रलयं जगमुस्तत्रभावान्मुनेस्तदा ॥१९
 असुरा देवशस्त्रौधैजिता इन्द्रेण घातिताः । देवा अपि स्वराष्ट्रेषु तस्थुः सर्वे यथा पुरा ॥
 मुरैरपि मुनेस्तस्य देवर्षेभिर्हिमाऽशवत् ॥२०

ततः स सर्वलोकानां भवाय सततोर्थितः । कर्मणा मनसा वाचा गुभान्येव समाचरत् ॥२१
 काष्ठनुडग्यशिलामूत ऊर्ध्वबाहुर्महातपाः । ब्रह्मोत्तरं नाम तपस्तेषे सुविनयतत्रतः ॥२२
 नेत्रे ह्यनिमिषे कृत्वा भ्रुवोर्मध्ये विलोकयन् । त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यान्नीति हि नः श्रुतम् ॥२३
 तथोद्दरेतसस्तस्य स्थितस्यानिमिषस्य हि । योगाभ्यासप्रयत्नस्य माहिष्मत्याः यतिः प्रभुः ॥२४

गये । देवों ने उस जंगल में उस आश्रम में पहुँच कर जहाँ अनघ और नदी का दाम्पत्य जीवन योगाभ्यास में सदैव तन्मय रहा करता था, उनसे शरण की याचना की । उसे सुनकर अनघ ने भी इन्द्र समेत उन देवों को (गिरि गहर के) अभ्यन्तर में सुरक्षित रखकर उनसे कहा—शान्त एवं सुखमय जीवन व्यतीत करो । देवगण भी उसे स्वीकार कर वहीं अत्यन्त सन्तुष्ट रहने लगे । अपने आधातों से शत्रुओं को पीड़ित करते हुए दैत्यों ने भी वहाँ पहुँच कर कठोर एवं विषमय दाणी का प्रयोग किया 'गुनि की इस ज्ञाहणी को पकड़ कर ले चलो' और पुष्प फल समेत इन वृक्षों को उखाड़ कर इन्हें आच्छन्न कर दो । अनन्तर दैत्यों ने अनघ महर्षि के शिर पर वृक्ष समूहों को प्रक्षिप्त कर अपने स्थान को प्रस्थान किया, उसी समय दैत्यों की श्री उनके शिरोमणि से निकली थी और उसी क्षण दस्तक के देखने एवं ध्यान करने पर अग्नि में भस्म होकर समूल नष्ट हो गई । पश्चात् श्रीहीन उन मूर्ख दैत्यों को देवों ने पकड़ कर अपने ऋषिष्ठि, करण, शूल, त्रिशूल, परिध एवं धन आदि के आधातों द्वारा मुनि के प्रभाव से उन्हें समूल नष्ट कर दिया, जो उस समय रोदन एवं कहणक्रन्दन करते हुए निश्चेष्ट हो रहे थे । इस प्रकार इन्द्र आदि देवों के शस्त्रास्त्र आधातों द्वारा दैत्यों के समूल नष्ट होने पर देवगण अपने अपने राष्ट्रों में पहले की भाँति सिहासनासीन होकर सुखोपभोग करने लगे । देवों के निमित्त देवर्षि मुनि की इस प्रकार की महिमा जागरूक होने पर समस्त लोकों के कल्याणार्थ उन्होंने मन वाणी और शरीर द्वारा कार्य करना आरम्भ किया--काष्ठ एवं पत्थर शिलाओं के समान अचल होकर उस महातपस्वी ने संयम पूर्वक ऊर्ध्व बाहु होकर ब्रह्मोत्तर नामक तप करना आरम्भ किया । १०-२२ । अपने अपलक दोनों नेत्रों से भ्रु के मध्य में देखते हुए उन्होंने दिव्य तीन सहस्र वर्ष तक घोर तपस्या की । ऊर्ध्व बाहु होकर एकाग्र दृष्टि से ध्यान पूर्वक योगाभ्यास में महर्षि के तन्मय

एकाहादुत्तमस्येत्य कार्तवीर्यर्जुनो नृपः । शुश्रूषा विनयं चक्रे दिवारात्रमतिन्द्रितः ॥२५
 गात्रसम्बाहनं पूजां मनसा चिन्तितं तथा । सम्पूर्णं नियमे वृत्ते दृढतुष्ट्या समन्वितः ॥२६
 तस्मै ददौ वरान्युष्टांश्चतुरो भूरितेजसः । पूर्वं बहुसहस्रं तु स वक्रे प्रथमं वरम् ॥२७
 अधर्मांदीयमानस्य सद्भिस्तस्मान्निवारणम् । धर्मेण पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् ॥२८
 संग्रामान्सुबहूच्छित्वा हत्वा वीरान्सहस्रशः । सङ्ग्रामे पुरुषस्मानस्य वधो मे स्थाद्वरे: करात् ॥२९
 तेन दत्तेन लोकेऽस्मिन्दत्तं राज्यं महीनले । कार्तवीर्यव कौतेय योगाभ्यासः सदिस्तरः ॥
 चक्रदर्तिएवं चैव अष्टसिद्धिरामन्वितम् ॥३०

तेनापि पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा सपर्वता । सप्तमुद्राकरवती धर्मेण विधिना जिता ॥३१
 तस्य बहुसहस्रं तु प्रभादत्तिक्ल धीमतः । यागाद्यथो ध्वजश्चैव प्रादुर्भवति मायथा ॥३२
 दशयज्ञसहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तसु । निरर्लालि वृत्तानि स्वयं वै तस्य पाण्डव ॥३३
 सर्वे यज्ञा नहावाहो प्रसन्ना भूरिदक्षिणाः । सर्वे काञ्चनवेदिक्याः सर्वे यूपैश्च काञ्चनैः ॥३४
 सर्ववैरेवैर्महाभासैविमानस्थैरलद्भृताः । गन्धर्वैरास्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥३५
 तस्य यज्ञे जगुर्गाथां गन्धर्वा नारदस्तथा । चरितं राजसिंहस्य महिमानं निरीक्ष्य ते ॥३६
 न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं दास्यन्ति पार्थिवाः । यज्ञदानैस्तपोभिर्वा विक्रमेण श्रुतेन च ॥३७
 द्वीपेषु सप्तसु स वै खड्गाचर्मशरासनी । व्यचरच्छयेनवद्यो वै दूरादारादवैक्षत ॥३८

होने पर महिमति का अधीश्वर सहस्रबाहु ने एक ही दिन में वहाँ पहुँच कर अनुनय विनय समेत उनकी सेवा में रात-दिन तत्पर रहने लगा । वह उन्हीं महर्षि की पूजा, एवं ध्यान करते हुए उनकी बाद संवाहन (हाथ पैर दाबना) आदि शारीरिक शुश्रुषा भी करने लगा । इस प्रकार सम्पूर्ण नियम के सुसम्पन्न होने पर प्रसन्न होकर उन्होंने इसे चार वरदान प्रदान किया सहस्रबाहु होने का पहला, अधार्मिक अध्ययन का सज्जनों द्वारा निराकरण दूसरा, धर्म द्वारा पृथिवी को प्राप्त कर धर्म द्वारा उसका पालन करना तीसरा और अनेक संग्रामों में अनेक वीरों के धराशायी होने पर रणस्थल में ही भगवान् के हाथों द्वारा अपना निधन रूप चौथा वरदान प्राप्त कर इस महीतल पर उस दुष्ट ने समस्त राज्य उन्हें प्रदान किया और कौतै ! (महर्षि ने) योगाभ्यास के विस्तार पूर्वक अष्टसिद्धि समेत उस चक्रवर्ती पद की प्राप्ति की । सहस्रबाहु ने भी समुद्र पर्यन्त समस्त पृथिवी को धर्म द्वारा अपने अधीन किया । पाण्डव ! प्रथम उस धीमान् के सहस्र बाहु उत्पन्न हुए और अनन्तर माया द्वारा यज्ञ से रथ और ध्वज निकला । सहस्रबाहु ने सातो द्वीपों में दशसहस्र यज्ञ को सविधान स्वयं सुसम्पन्न किया, महाबाहो ! जो उस समय विशाल संभार से सम्पन्न तथा जिसमें यथेच्छ दक्षिणा द्वारा सभी लोग अत्यन्त संतृप्त थे और उन यज्ञों की समस्त वेदियों तथा यूप (स्तम्भ) सुवर्ण निर्मित और सुवर्ण सुसज्जित थे । उस समय सभी देव गण अपने विमानों पर स्थित रहते हुए अलंकृत किये गये थे, अप्सराएँ नित्य गान करती थीं, तथा गन्धर्व नारदादि उसकी गाथा का गान कर रहे थे । पार्थिव ! इस भाँति उस राजसिंह की महामहिमा को देखकर यह निश्चय होता है कि वैसा करने पर तुम भी उस सहस्रबाहु के समान गति प्राप्त करोगे । उसने यज्ञ, दान, एवं तप आदि के क्रम से तथा विक्रम और वेदों के द्वारा सातों द्वीपों समेत इस पृथिवी पर खड्ग, चर्म, धनुषबाण, धारणकर चारों ओर निःशङ्क विचरण करै रहा था । २३-३८। वह दूर और समीप सभी

अनष्टद्वयता चास्य न शोको न च वैक्लमः । प्रभावेण महीराजोरक्षद्वर्मेण च प्रजाः ॥३९
 पञ्चशीतिसहस्राणि वर्षणां दै नराधिप । समुद्रवसनायां स चल्लवर्ती बभूव ह ॥४०
 स एव पशुपालोभूत्केत्रपालः स एव च । स एवं वृष्ट्यां दर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् ॥४१
 स वै बाहुसहस्रेण ज्यागातकठिनत्वचा । वार्ति रश्मिसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ ॥४२
 स हि नागमनुष्ट्रैस्तु माहिष्मत्यां महाद्युतिः । कर्कोटाहे: सुताञ्जित्वा पुरि तत्र न्यवेशयत् ॥४३
 त वै पत्नीं समुद्रस्य प्रावृद्धकालेम्बुजेक्षणाम् । क्रीडते च मदोन्मत्तः प्रतिस्रोतश्वकार ह ॥४४
 ललितं क्षीडता तेन फलनिष्ठन्दमालिनी । ऊर्मीभृकुटिमत्येवं शंकितास्येति नर्सदा ॥४५
 तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ । भवन्त्यालोननिश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः ॥४६
 तूष्णीकृतो महाभाग लीनाहीनमहामतिः । चकारोत्तुञ्जलुब्धोनिं दोःसहस्रेण सागरम् ॥४७
 क्रान्ता निश्चलमूर्ढनो बभूदुञ्च महोरगः । सायाहे कदलीखण्डान्निर्यातनिहता इव ॥
 जिता धनुर्धरा: सर्वे सुत्यैतः पञ्चभिः शरैः ॥४८
 लङ्काधिपं मोहयित्वा सबलं रावणं बलात् । निर्जित्य वशमालीय माहिष्मत्यां दबन्ध च ॥४९
 ततोभ्येत्य पुलस्त्यस्तु अर्जुनं सम्प्रतादयन् । मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पौलस्त्येनानुगामिना ॥
 तस्य बाहुसहस्रस्य बभूद ज्यातलस्वनः ॥५०
 क्षुधितेन कदाचित्स प्रार्थितश्चित्रभानुना । सप्तद्वीपां चित्रभानोः प्रादाद्विक्षां महीमिमाम् ॥५१

स्थानों में दिखायी देता था । उसकी सम्पत्ति कभी क्षीण नहीं हुई और न कभी शोक चिता । नराधिप !
 इस प्रकार उसने धार्मिक उपायों द्वारा प्रजाओं की रक्षा करते हुए पचासी सहस्र वर्ष तक इस समुद्र पर्यन्त
 समस्त पृथ्वी का चक्रवर्तीं पद सुशोभित किया, तथा वही पशुपाल और क्षेत्रपाल भी हुआ था वर्षा के लिए
 ऐध एवं योग द्वारा अर्जुन भी हुआ ! उसने अपने उन सहस्र बाहुओं द्वारा, जो धनुष प्रत्यंचा के संघर्ष से
 अत्यन्त कठोर हो गये थे । विस्तृत स्याति प्राप्त कर महासगर को भी क्षुब्ध कर दिया था । ३९-४२।
 एक बार उस महातेजस्वी ने कर्कोटक नामक सप्तधीश्वर की पुत्री को विजय रूप में प्राप्त कर अपनी
 महिष्मती पुरी में लाया और वर्षा क्रतु में उस कमलनयनी प्रेयसी के साथ समुद्र में क्रीडा करते हुए दूसरी
 नदी का निर्माण ही कर दिया । वह सदोन्मत्त होकर बहुधा नर्मदा में क्रीडा करता था, इसीलिए क्रीडा
 करते समय अत्यन्त प्रसन्न रहने पर भी तरञ्ज शून्य होकर नर्मदा सदैव संशक्ति रहती थी । उसके
 सहस्रबाहुओं द्वारा समुद्र के क्षुब्ध होने पर पाताल निवासी असुर गण मौन होकर दीन हीन रहने लगे तथा
 दो सहस्र बाहुओं से सागर को विचलित करते देख कर अत्यन्त विषधर सर्पराज शेष उसके आक्रमण करने
 पर भी सर्वथा अपने शिर को निश्चल रखते थे और सायंकालीन कदली खण्ड की भाँति अपने को निहत
 भी समझते थे । उसने अपने तीक्ष्ण पाँच बाणों द्वारा लंकाधीशवर रावण को बलात् मोहित कर पकड़ कर
 अपने अधीन किया और महिष्मती में लाकर बाधि दिया । ४३-४९। अनन्तर पुलस्त्य ने वहाँ जाकर उसे
 (सहस्रार्जुन को) प्रसन्न कर अपने पौत्र (रावण) को मुक्त कराया । एक बार उसकी बाहु प्रत्यंचा के
 आधात से टकराकर महान् भव्य हुआ था और एक समय क्षुधा पीड़ित चित्रभानु के याचना करने पर उसने
 सातों द्वीप समेत इस पृथ्वी को मिक्षा रूप में उन्हें दान दिया था जो वहाँ कुण्ड में शयन करने वाले

कुण्डेश्वरस्ततोऽद्यापि दृश्यते भगवान्हरिः । निम्बादित्यश्र प्रत्यक्षो जाग्रत्संस्तस्य वेशमनि ॥

बभूव हुहितुहेतोः शरदोऽद्यापि तिष्ठति ॥५२

स एवं गुणसंयुक्तो राजासूर्दर्जुनो भुवि । अनघस्य प्रसादेन योगचार्यस्य पांडव ॥५३

तेनेयं वरलब्धेन कर्तवीयेण येगिना । प्रवत्तिता मर्त्यलोके सिद्धिः हृनधाटमी ॥५४

अथं पापं सूतं लोके तच्चापि त्रिविधं भवेत् । यस्मादधं नाशयति तेनासावनया सूतता ॥५५

तस्याष्टगुणमैश्वर्यं विनोदार्थं विभाव्यते । अणिमा महिमा प्राप्तिः प्राकाम्ये लघिमा तथा ॥५६

ईशित्वं च वशित्वं च सर्वकामावसाधिता । इत्यष्टौ योगसिद्धस्य सिद्धयो मोक्षलक्षणाः ॥५७

समुत्पदा इत्तकस्य लोके प्रत्ययकारकाः । यात्रासमाप्तौ संगृह्य यद्यपिनि तथैव वा ॥५८

जगत्समस्तमनधं कुर्यादिस्मादतोऽनधा । मदंशो मद्गतप्राणो लोकेस्मिन्नृतकोऽ द्विजः ॥५९

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं पुण्डरीकाक्ष स वै राजार्जुनो व्रतम् । चक्रे वा त्रिषु लोकेषु कैर्मन्त्रैः समयैश्वर्कैः ॥

कस्मिन्काले तिथौ कस्यामेतन्मे वद केशव ॥६०

श्रीकृष्ण उवाच

कृष्णाष्टम्यां मार्गशीर्षे दम्पती दर्भनिर्मितौ । अनघं चानधां चैव बहुपुत्रैः समन्विताम् ॥६१

भगवान् आज भी दिखायी देते हैं । निम्बादित्य भी उसके घर में पुत्री के निमित्त प्रत्यक्ष होकर आज भी शरद रूप में वर्तमान है । पाण्डव ! इस प्रकार अनघ महर्षि की असीम अनुकम्या द्वारा वह राजा समस्त भूतल में सर्वगुण सम्पन्न राजा हुआ । और उनके द्वारा वरदान प्राप्त सहस्रार्जुन इस मर्त्यलोक में इत्य अनधाष्टमी का प्रचार किया है : अथ नाम पाप का बताया गया है, जो लोक में तोन भाँति का होता है । तथा उस अथ को नष्ट करने वाले को अनघ कहा जाता है । उसके विनोदार्थ आठ गण समेत यह ऐश्वर्य सदैव वहाँ वर्तमान रहता था—अणिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा । प्रभुत्व, वशित्व और समस्त कामनाओं को सफल करने वाली यही आठ योग सिद्धियाँ बतायी गयी हैं, जो मोक्ष लक्षण सम्पन्न हैं । लोक के दृढ़ ज्ञानार्थ ये सिद्धियाँ दत्तक के लिए प्रत्यक्ष हुई थी, यात्रा की समाप्ति में जिसका संग्रहण भी उन्होंने किया था । समस्त जगत् को पाप मुक्त करने के नाते उस ब्राह्मण का नाम अनघ और इस अष्टमी का अनधा नाम हुआ है, जो ब्राह्मण मेरे अंश, मेरे लिए सदैव चिन्तन करने वाला एवं इस लोक में प्रख्यात वृत्तक है ॥५०-५९

युधिष्ठिर ने कहा—पुण्डरीकाक्ष ! उस राजा ने इस व्रत को किस भाँति, किस समय एवं किस मंत्र के उच्चारण द्वारा सुसम्पन्न करते हुए तीनों लोकों में प्रख्यात किया है, और केशव ! उसकी तिथि भी बताने की कृपा करें ॥६०

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी के दिन कुश की निर्मित प्रतिमा अनघ

पुरा कृतीकृतौ शान्तौ भूमिभागे स्थितौ शुभौ । स्नात्वैवमर्चयेत्पुष्टैः ससुगन्धीयुधिष्ठिर ॥६२
ऋग्वेदोक्तऋचा विष्णुं ध्यात्वा ममशजम् । अनघं वासुदेवेनानघां लक्ष्मीं वजां तनुम् ॥

प्रद्युम्नादिपुत्रवर्गं हरिवंशे पथोदितम् ॥६३

“ॐ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्षमे । पृथिव्याः सप्तधामभिः ।
इदं विष्णुर्विचक्षमे त्रेधा निदधे पदम् । समूलहमस्यपां तुरे त्रीणि पदा विचक्षमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् । विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो द्रष्टव्यां पत्परेण ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा । तदिष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुरः ततम् ।
तद्विप्रासो विपन्त्यवो जागृत्वांसः सर्वमिधते । विष्णोर्यत्परतं पदम्” ॥

लोकोद्भूदैः फलैः कन्दैः शृङ्गारैर्बदैः शुभैः । दितैश्च धान्यैः गुण्यश्च गन्धधूपैः सदीपकैः ॥६४

यः पूजयेद्भूक्तियुक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते । ततो द्विजान्भोजयेच्च मुहूरतसबन्धिबान्धवान् ॥६५

व्रतावसाने गृह्णीयात्कश्चिदेको नरो व्रतम् । तेषां मध्ये दृढाश्रक्तुरनयव्रतपारगा ॥६६

इदं जीवनधाती चेतसत्यं तु समयोसितम् । वर्षसेकं ततः स्वेच्छा इदं तवानयव्रतम् ॥६७

तत्रोपेक्षणं कर्त्तव्यं नटनर्तकगायकैः । प्रभाते तु नवम्यां तं तोयमध्ये विसर्जयेत् ॥६८

एवं यः कुरुते यात्रां वर्षवर्दं च हर्षितः । भक्तियुक्तः श्रद्धया च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६९

कुटुम्बं वर्दुते तस्य यस्य विष्णुः प्रसीदित । आरोग्यं सप्त जन्मानि ततो यान्ति परां गतिम् ॥७०

एतामधौघशमनामनधाष्टमीं च कौतेय सम्प्रति मया कथितां हिताय ।

कुर्वत्यनन्यमनसः स्वयशोभिवृद्धै ऋद्धिं प्रयान्ति कृतवीर्यसुतानुरूपाम् ॥७१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

अनधाष्टमीव्रतवर्णनं नामाष्टापञ्चाशतमोऽध्यायः ॥५८

की और अनेक पुत्रों समेत अनधा की सु भूमि भाग में स्थापित कर स्नान एवं सुगन्धित पुष्टों द्वारा अर्चना करने के उपरांत ब्राह्मण को विष्णु, मेरे अंश, अनघ, और वासुदेव की अनधा रूप धारिणी लक्ष्मीं तथा हरिवंश में बताये गये के अनुसार प्रद्युम्नादि पुत्रों के ध्यान ऋग्वेदोक्त ऋचाओं द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। सामयिक फल, कन्द, शृङ्गार, बरे, धन, धान्य, पुष्ट, गंध, धूप दीप द्वारा भक्ति पूर्वक जो उनकी पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होता है। अनन्तर सत्त्वदृष्टि, सम्बन्ध एवं बन्धु वर्गों समेत ब्राह्मण भोजन कराये। व्रत की समाप्ति में कुटुम्ब के किसी एक पुरुष को यह व्रत अपनाना चाहिए और उनके बीच किसी अनध व्रत मर्मज को इस प्रकार सान्त्वना देना चाहिए कि यह व्रत जीवनधाती नहीं अपितु जीवन को सर्वथा परमोन्नत करने वाला है क्योंकि मैंने एक वर्ष तक इस तुम्हारे अनध व्रत को यथेच्छ पालन किया, अनन्तर न टनतक एवं गायकों द्वारा अनुरचित समाज द्वारा नवमी के प्रातः काल किसी जलाशय में उसका विसर्जन करे। इस प्रकार हर्ष पूर्ण श्रद्धा भक्ति समेत प्रति वर्ष इसकी यात्रा (क्रिया) सुसम्पन्न करने वाले का समस्त पाप विनष्ट होता है और विष्णु के प्रसन्न होने पर सात जन्म तक कुटुम्ब बृद्धि, आरोग्य एवं शेष सुखोपभोग के उपरांत उत्तम गति होती है। कौतेय ! पापसमूह नाशिनी इस अष्टमी की व्याख्या मैं तुम्हें सुना दी, इसे सुसम्पन्न करने वाले पुरुष की यशोऽभिवृद्धि पूर्वक सहस्रार्जुन की भाँति ऋद्धि प्राप्त होती है। ६१-७१

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्बाद में

अनधाष्टमी व्रत वर्णन नामक अद्वावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५८।

अथैकोनष्टचित्तमोऽध्यायः

सोमाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि व्रतं श्रेयस्करं परम् । शिवलोकप्रदं पुण्यं विधिवन्मे निबोधताम् ॥१

वारे सोमे सिताष्टम्यां पक्षे तोमं समर्चयेत् ! विधिनः चन्द्रचूडालं प्राप्यमेतत्स चन्द्रकम् ॥२

दक्षिणार्धं हर्व ध्यात्वा मध्ये तु परितः प्रभुम् । पञ्चामृतादिना देवं स्थापयित्वा यतवती ॥३

चन्दनेनेन्द्रुयुक्तेन दक्षिणार्धं विलेपयेत् । हरभागं नीलरक्तं शिवस्योपरि मौक्तिकम् ॥४

पश्चात्युष्यैः समम्बर्च्य तितै रक्तैरनुत्तमैः ! नीराजनं पुनः कुर्यात्पञ्चविशतिदीपकैः ॥

अथ^१ सिद्धैः शुभैर्भव्यैर्वेद्यं दिनिवेदयेत् ॥५

एवंकृतेयवासस्तु प्रभाते पूर्ववच्छिवम् । सम्पूज्यात्यं तिलैर्मिश्रं जुहुयाज्जातवेदसि ॥६

व्रतिनो ब्राह्मणः न्यश्राद्भूजयित्वा विधानतः । मिथुनानि तु सम्भोज्य यथाशक्त्यनुपूजयेत् ॥७

आवर्त्य पितरावर्च्य विधिनः तेन सुन्नत । सम्बत्सरान्ते कर्तव्यं यत्तत्सर्वं निबोध मे ॥८

प्रागुक्तविधिना पूज्या तितीपात्युगद्वयम् । दद्याद्वितानकं चैव पताकां घटकीं तथा ॥९

धूपगन्धारसी चापि दीपबृंङ्गं सुशोभनम् ! एवमादीनि योज्यानि पूर्ववृद्धोज्यमाचरेत् ॥१०

अध्याय ५९

सोमाष्टमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें एक परम श्रेयस्कर व्रत का विधान देता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर पुण्य शिवलोक की प्राप्ति होती है, सावधान होकर भुनो ! शुक्ल पक्ष की अष्टमी में सोमवार के दिन चन्द्रमा तथा चन्द्र चूड शिव की सविधान अर्चना करनी चाहिए चन्द्रमा समेत सुसज्जित उनकी प्रतिमा में दक्षिणार्ध में हरि और मध्य में चारों ओर प्रभु के ध्यान पूर्वक स्थापना एवं पञ्चामृत आदि द्वारा स्नान के उपरान्त उस यतवती को उसके दक्षिणार्ध भाग को चन्दन और नीलरक्त शिवभाग को मोतियों से सुशोभित करना चाहिए । पश्चात् इवेत, रक्त वर्ण वाले परमोत्तम पुष्पों द्वारा पूजन और पञ्चीस दीपक (पृथक् पृथक् वत्तियों) द्वारा नीराजन (आरती) करके पापवरणार्थ शुभ एवं मधुर भक्ष्य अर्पित करे । इस प्रकार उपवास पूर्वक रात्रि व्यतीत होने के अनन्तर प्रातः काल में पूर्ववत् शिव की अर्चना करके प्रज्ञलित अग्नि में धी तिल की आहुति प्रदान कर ब्रती ब्राह्मणों को भोजन से तृप्त करे । सुव्रत ! ब्राह्मण दम्पत्ती को यथाशक्ति आभूषण वस्त्र एवं भोजन से तृप्त कर शिव शिवा की पुनः पूजा कर उसकी समाप्ति करनी चाहिए । १-८। वर्ष के अन्त में व्रत की समाप्ति के दिन सुसम्पन्न किये जाने वाले कर्मों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! पूर्वोक्त विधान द्वारा पूजनोपरांत श्वेत और पीत वर्ण के वितान (चंदोवा), पताका, घंटा, धूप, गंध, रस, और दीप वृक्षों से उन्हें सुशोभित कर पूर्व की

१. अद्यसिद्धैः ।

चतुरस्त्रं त्रिकोणं च मण्डलं कारयेत्ततः । त्रिकोणे पार्वतीं ध्यायेच्चतुरस्त्रे महेश्वरम् ॥११
सञ्ज्ञल्प्य द्विजदाम्पत्यं वासोभिर्भूषणैस्तथा । पूज्यित्वा यथाशक्त्या कुर्यान्नीराजनं शुभैः ॥

दीपकैः पञ्चविशशिद्भौजयित्वा विसर्जयेत् ॥१२

अब्दपञ्चकमेकं वा एवं यः कुरुते नरः । उभाभ्यां लोकमासाद्य यदं यास्यत्यनामयम् ॥१३
आ देहपतनाद्यस्तु नित्यमेतत्समाचरेत् । इहैव स हरिः साक्षात्तरस्त्रो दिभाव्यते ॥१४
न स्पृशन्त्यापदस्तत्य न दुःखी भवति त्वचित् । ज्वरप्रहादिभिर्नैव पीडयतेऽसौ कदाचन ॥१५

श्रीकृष्ण उवाच

अथ वा तेन मार्गेण तास्त्वेहि सिताष्टमीस् । सत्प्राप्यादित्ययोगेन प्राप्तिश्चानेत चास्यसेत् ॥१६

किन्तुं दक्षिणतन्त्रस्थं भास्करं वार्द्धयेदृथः । पद्मरागेण दिव्येन सुवर्णेन च पार्वतीस् ॥१७

कुंकुमेन समालभ्य चन्दनेन शिवं तथा । अभावे सर्वरत्नानां हैम सर्वत्र योजयेत् ॥१८

रुद्रबीजं परं पूतं प्रियं रुदस्य सर्वदा । रक्तमाल्याम्बरधरं नैवेद्यं धृतपार्चितम् ॥१९

शेषः पूर्वविधानेन कर्तव्यो विधिविस्तरः । तिथौ पूर्णे च कुर्वीत गव्येनानध पारणम् ॥२०

एतत्प्राक्त्र विधायाब्दं पञ्चाब्दानेवमेव च । द्वृत्वा सूर्यादिलोकेषु भुक्त्वा भोगान्वजेत्परम् ॥२१

पतञ्जल्यत्प्रतापी स्यादहीनश्च जनप्रियः । अस्मिन्नरोगो न बाधेत धनवान्पुत्रवान्भवेत् ॥२२

भाँति भोजन आदि सभी कर्मों के उपरांत चौकोर और त्रिकोण मण्डल की स्थापना करते हुए त्रिकोण में पार्वती और चौकोर में महेश्वर का ध्यान पूजन, और द्विज दम्पत्ती को विविध भाँति के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित एवं यथाग्रकृत पूजन करके पचीस दीपों के नीराजन (आरती) तथा ब्राह्मण भोजन के अनन्तर विसर्जित करे। इस प्रकार पाँच अथवा एक ही वर्ष तक इस व्रत विधान द्वे सुसम्पन्न करने पर दोनों लोक के सुखोपभोग करने के अनन्तर उत्तम पद की प्राप्ति होती है। इस व्रत को आजीवन सुसम्पन्न करने वाला पुरुष इस लोक में वह नर रूप में साक्षात् विष्णु माना जाता है। उसे किसी प्रकार की आपत्ति या दुःख तथा ज्वर प्रहादि पीड़ा कभी नहीं होती है। १९-१५

श्रीकृष्ण बोले—अथवा उसी प्रकार की शुक्लाष्टमी रविवार के दिन प्राप्त होने पर पूर्व विधान द्वारा उसकी (अष्टमी) निरंतर अर्चना करते हुए दक्षिण तन्त्रस्थ भास्कर की उपासना करे—पद्मराग अथवा दिव्य सुवर्ण द्वारा पार्वती को विभूषित कर कुंकुम द्वारा उन्हें और चन्दन से शिव को समलकृत करना चाहिए। समस्त रत्नों के अभाव में सर्वत्र सुवर्ण का ही प्रयोग करना चाहिए। अत्यन्त पवित्र एवं प्रिय होने के नाते रुद्र बीज द्वारा शिव और रक्तमाला वस्त्र से उमा को सुसज्जित करके धृतप्लुत नैवेद्य से उन्हें सुत्रप्त करे। अनध ! शेष विधान पूर्व की भाँति सुसम्पन्न करते हुए तिथि के समाप्त होने पर गोधृत के पारण करना चाहिए। इस व्रत को एक नर्ष सुसम्पन्न करके पुनः पाँच वर्ष तक उसी भाँति सुसम्पन्न करने पर सूर्यादि लोकों में समस्त सुखोपभोग की प्राप्ति पूर्वक परम पद की प्राप्ति होती है। १६-२१। वह सूर्य की भाँति प्रतापी, अदीन, तथा जनप्रिय होता है, कभी रोग बाधा नहीं होती है। धन-पुत्र से सदैव परिपूर्ण रहता है। कुस्कुलोद्धर ! शुक्लपक्ष की अष्टमी सोम या रविवार के दिन आने पर उपवास पूर्वक उस

यद्यष्टमी भवति सोमयुता कदाचिदर्केण वा कुरुकुलोद्ध्रह तामुपोष्य ।
पूज्यो मणा सह हरं हरिणांकचिह्नं भक्त्यायुषां पदमुपैति पदम् पुरारे: ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सोमाष्टमीव्रतवर्णनं नामैकोऽनष्टितमोऽध्यायः ।५९

अथ षष्ठितमोऽध्यायः

श्रीवृक्षनवमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

समुत्पन्नेषु रत्नेषु क्षीरोदमथने पुरा । दैत्यानां मोहनार्थाय योषिद्भूते जनार्दने ॥१
बिल्वे वृक्षे क्षणं श्रांता विश्रान्ता कमलालया ! यामेवमिति वान्योन्यं पुयुधुर्देवदानवाः ॥२
जिताः सर्वे पुरा पार्थं युद्धे कृष्णेन चक्षिणा । पातालं गमिता दैत्याः सश्रीकः स्वयमायपौ ॥३
श्रीः समावःसिता यस्माद्ध्रीवृक्षस्तु ततः स्मृतः । तस्माद्ब्राह्मपदस्यैव शुक्लपक्षे कुरुत्तम् ॥४
नवम्यामर्चयेद्भूक्त्या ईषत्सूर्योदये नगम् । श्रीवृक्षं दिविधैः पुष्टैरनग्निपाचितैः फलैः ॥५
तिलपिष्टानग्नोधूमैर्धूपान्धक्षगम्बरैः । ईषद्भूनुकरातान्नताश्रीकृतनभस्तले ॥६
मन्त्रेणानेन राजेन्द्रं कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् । ततो भुज्जीत मौनेन तैलक्षारविवर्जितः ॥

दिन मेरे साथ शिव और चन्द्रमा की भक्तिपूर्वक अर्चना करने से उसे मुरारि पद की प्राप्ति होती है । २२-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
सोमाष्टमी व्रत वर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ।५९।

अध्याय ६०

श्रीवृक्षनवमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में क्षीर सागर के मंथन करने पर (१४) रत्नों का आविर्भाव हुआ, जिसके निमित्त दैत्यों को मोहित करने के लिए भगवान् जनार्दन ने (मोहिनी) स्त्री का रूप धारण किया । भ्रांत उस कमला (मोहिनी) ने विल्व वृक्ष के नीचे एक क्षण विश्राम किया । जिससे उसी समय उसे अपनाने के निमित्त उन मुग्ध देव-दानवों में महान् युद्ध आरम्भ हुआ । पार्थ ! चक्रधारी ! भी कृष्ण ने उन दैत्यों को पहले ही पराजित किया था, इसीलिए श्री समेत उनके वहाँ आने पर दैत्य गण पाताल चले गये । १-३। श्री के (उस क्षणिक) निवास करने के नाते उस वृक्ष को श्रीवृक्ष कहा जाने लगा । अतः कुरुत्तम् ! भाद्रपद मास की शुक्ल नवमी के दिन सूर्योदय के समय भक्ति पूर्वक उस वृक्ष की अर्चना करनी चाहिए । राजेन्द्र ! अनेक भाँति के पुष्ट, अनग्नि पाक फल, तिल-चूर्ण, गेहूँ-चूर्ण, धूप, गन्ध, माला एवं वस्त्र द्वारा प्रभातकालीन सूर्य के रक्तविम्ब से नभस्तल के रक्तिम होने के समय भी वृक्ष की सविधान अर्चना सुसम्पन्न कर ब्राह्मण भोजन के उपरांत वाणी संयम पूर्वक तैल-छार रहित भोजन करे जो अनग्नि

अनग्निपाकं भूपात्रे दधिपुष्पफलैः शुभम्

॥७

द्वं यः कुरुते पार्थं श्रीवृक्षस्यार्द्दनं नरः । नारी वा दुःखशोकाम्यां मुक्त्यते नात्र संशयः ॥८
सप्तजन्मान्तरं यावत्तुखसौभाग्यसंयुता । श्रीमती फलिनी धन्या मर्त्यलोके महीयते ॥९

श्रीवृक्षमक्षतफलं वसितं नवम्यां नैवेद्यपुष्पफलवस्त्रविचित्रधान्यः ।

पूज्यः प्रभातसमये पुरुषोत्तमेष्ट साप्राप्नुदन्ति पुश्पाः पुरुषेन्द्रवन्द्याम् ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
श्रीवृक्षनवमीव्रतवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः । ६०

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

ध्वजनवमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

महिषासुरे विनिहते भगवत्या महासुरैः । पूर्ववैरमनुस्मृत्य संग्रामा ब्रह्मः कृताः ॥१
नानरूपधरा देवी अवतीर्य पुनः पुनः । धर्मसंस्थापनार्थाय निजघ्ने दैत्यसत्तमान् ॥२

पाक फलों, पुष्पों, एवं दधि समेत भूपात्र पर सुसज्जित किया गया हो । पार्थ ! इस प्रकार वृक्ष की पूजां सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री शोक दुःख से मुक्त होती है, इसमें संदेह नहीं । सात जन्म तक वह श्रीमती सुख सौभाग्य संयुक्त होकर पुत्र-पौत्रादि रूपी फल समेत इस मर्त्य लोक में अत्यन्त सम्मानित होती है । इस प्रकार नवमी के दिन प्रातः काल सूर्योदय के समय नैवेद्य, पुष्प, फल, वस्त्र, एवं अनेक प्रकार के धान्य द्वारा अक्षत फल वाले श्री वृक्ष की जो पुरुषोत्तम का परम प्रिय है, सविधान पूजन करने पर मनुष्यों को परम पद की प्राप्ति होती है । ४-१०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
श्रीवृक्षनवमी व्रत वर्णन नामक साठवाँ अध्याय समाप्त । ६०।

अध्याय ६१

ध्वजनवमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भगवती जगदम्बिका द्वारा महिषासुर के निधन होने पर भी उसी वैर को स्मरण कर उन महान् असुरों ने अनेक बार संग्राम किया किन्तु देवी ने भी धर्म के संस्थापनार्थ अनेक भाँति के रूप धारण कर उन महान् असुर योद्धाओं का बार-बार हनन किया । तदुपरांत महिष पुत्र महाबली रक्तासुर

अथ रक्तासुरे नाम महिषस्य मुतो महान् । आसीतेन तगस्तप्तं वर्षणां नियुतानि षट् ॥
 तस्मै ददौ चतुर्वक्षो राज्यं त्रैलोक्यमण्डले ॥३
 तेन लब्धं वरेणाथ मेलयित्वा दनोः मुतान् । प्रारब्धं सह शक्रेण युद्धं गत्वाऽमरावतीम् ॥४
 तद्वाटा दानवबलं सन्नद्वात्युद्धत्थवजम् । युयुधे दानवैः सार्द्धं सुरैः शक्रपुरस्तरैः ॥५
 तत्र प्रावर्तत नदी शोणांघतरञ्जिणी । खड्गमस्त्यगदाग्राहवसुनन्दककच्छपा ॥
 वहन्ती पितृलोकाय नुरासुरभयानका ॥६
 अथ रक्तासुरे रोषाद्युयुधे विबुधैः सह । ते हन्यमाना विबुधा रक्ताक्षेण महारणे ॥७
 भ्रष्टाः स्वर्गं परित्यज्य त्यक्तपहरणा द्रुतम् ; करच्छत्रां पुरीं प्राप्ता यत्रास्ते भववलभा ॥८
 दुर्गा चामुण्डया सार्धं नवदुर्गासमन्विता । आद्या तावन्महालक्ष्मीर्नदा क्षेमकरी तथा ॥९
 शिवहृती महारूण्डा भ्रामरी चन्द्रमञ्जला । रेवती हरसिद्धिस्तु नवैताः परिकीर्तिताः ॥
 एतासां ते स्तुतिं चल्लस्त्रिदशाः प्रणताननाः ॥१०

अमररपतिमुकुटचुम्बितन्तरणाम्बुजसकलभुवनसुखजननी ।
 जयति जगदीशवन्दिता सकलामलनिष्कला दुर्गा ॥११
 विकृतनखदशानभूषणरुद्धिरवशाच्छुरितक्षतखड्गहस्ता ।
 जयति नरमुण्डमुण्डितपिशित सुराहारकृच्चण्डी ॥१२

के साठ सहस्र वर्ष तक घोर तप करने पर चतुर्मुख व्रह्या ने इस त्रैलोक्य मण्डल में उसे पुनः राज्य प्रदान किया । वरदान प्राप्त कर उस राक्षस ने दनु वंशजों को प्रोत्साहन देकर अपने पक्ष में मिलाया और असंख्य सैनिकों समेत अमरावती में पहुँच कर इन्द्र के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया । १-४। दानवों की भीषण सेना देख कर देवों ने इन्द्र को आगे कर उन उद्धृत ध्वजा वाले दानवों के साथ घोर संग्राम किया, जिससे एक शोणित वाहिनी भीषण नदी उत्पन्न हो गयी तथा जिसमें गदा, ग्राह, वसु और नंदक (तलवार) कच्छप के समान भीषण रूप धारण कर उन देवों एवं असुरों को पितृ लोक के लिए आवाहित करते थे । अनन्तर देवों के साथ युद्ध करते हुए रक्तासुर के तीक्ष्ण प्रहारों द्वारा आहत होकर देवों ने शास्त्रास्त्रों के त्याग पूर्वक स्वर्ग पुरी का भी त्याग कर भववलभा (भवानी) की करच्छत्रा नामक पुरी को प्रस्थान किया । जहाँ चामुण्डा एवं अपने नवरूपों समेत श्री महादुर्गा जी आवास करती हैं—आद्या महालक्ष्मी, नन्दा, क्षेमकरी, शिवदूती, महारूण्डा, भ्रामरी, चन्द्र मञ्जला, रेवती और हरसिद्धि, उनके नाम बताये गये हैं । वहाँ पहुँच कर देवों ने विनष्ट होकर उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया । ५-१०। ब्रह्माण्ड के समस्त प्राणियों को सुख प्रदान करने वाली उस दुर्गा जी की जय हो, जिसके चरण कमल को सुरेश का मुकुट सदैव चुम्बन करता है, और जगदीश की बन्धा, कलायुक्त, अमलच्छवि एवं निर्णय रूप हैं । नरमुण्ड की माला एवं राक्षसों के मांस-रक्त के पान करने वाली चण्डी देवी की जय हो, जो भूषण रूप नख और दशनों के विकृत होने के नाते

प्रच्छादितशिखिगणोद्भुलविकटजटाबद्धचन्द्रमणिशोभा ।
 जयति दिगम्बरभूषा सिद्धवटेशा महालक्ष्मीः ॥१३
 करकमलजनितशोभा पद्मासनद्वयपद्मवदनः च ।
 जयति कमण्डलुहरता नन्दा देवी नतार्तिहरा ॥१४
 दिग्बसना विकृतमुखा फेकारोद्भूमपूरितदिशौघा ।
 जयति विकरालदेहा क्षेमझूर्ती रौद्रभावस्था ॥१५
 क्रोशितब्रह्माण्डोदरसुखरमुखरहुंकृतनिन्दादा ।
 जयति सदातिमिहस्ता शिवदूती प्रथमशिवशक्ति ॥१६
 मुक्ताद्वाहसभैरवदुःसहतरचकितसकलदिक्चक्षु ।
 जयति भुजगेन्द्रमणिशोभितकर्णा महातुण्डा ॥१७
 पटुपटहमुरजमर्दलज्ञल्लरिज्ञङ्गारन्तितावयवा ।
 जयति मधुवतरूपा दैत्यहरी भ्रामरी देवी ॥१८
 शान्ता प्रशान्तवदना सिंहवरा ध्यानयोगतन्निष्ठा ।
 जयति चतुर्भुजदेहा चन्द्रकला चन्द्रमण्डला देवी ॥१९
 पक्षपुटचंचुधातैः संचूर्णितविविधशत्रुसङ्घाता । जयति शितशूलहस्ता बहुरूपा रेवती भद्रा ॥२०

प्रवाहित रक्त की धारा वश क्षत अंगों में चमकने वाले खड़ग को धारण करती हैं : दिगम्बर वेष धारिणी, एवं सिद्धों की स्वामिनी महालक्ष्मी की जय हो, जो अपनी विकराल जटा में बाँधे हुए चन्द्रमणि की शोभा को मधूरों द्वारा आच्छादित करती हैं । कर में कमण्डलु लिए एवं प्रणत भक्तों की आर्तिहरिणी नन्दा देवी की जय हो, जो अपनी करकमल-जनित शोभा को कमलासन में आबद्ध सा किये एवं कमल मुखी परम सुन्दरी हैं । दिगम्बर वेश, विकृत मुख, अपनी रोष पूर्ण श्वास की ज्वाला से चारों दिशाओं को प्रज्वलित करने वाली, विकराल देह एवं रौद्रमास से स्थित रहने वाली क्षेमकरी देवी की जय हो ॥१-१५ । शिव की शिव दूती नामक उस आधा शक्ति की जय हो, जो इस ब्रह्माण्ड के उदर में क्रन्दन करने वाले देवेन्द्र की उस गुखरता को अपने हुंकार विवाद से नष्ट करती हैं । और अत्यन्त प्रमत्त होकर अपने हात में मत्स्य धारण करती है । भुजगेन्द्र से अपने कर्ण को आबद्ध करने वाली उस महातुण्डा देवी की जय हो । जो अपने भीषण एवं अत्यन्त दुःसह अद्वृहास से सम्पूर्ण दिशाओं को चकित करती हैं । पटह, मुरज, मर्दल एवं झालरि वाद्यों के अलङ्घारों से सात शरीर के अंग को नचाने वाली, मधुवत्र रूप एवं दैत्य धातिनी भ्रामरी देवी की जय हो । चार भुजाओं से भूषित, चन्द्र कलाओं से पूर्ण उस चन्द्र मण्डल देवी की जय हो, जो शांत स्वभाव, अत्यन्त शान्त मुख, और परमोत्तम सिंह पर सुशोभित होकर योगियों की भाँति ध्यान मग्न रहती है । भद्र रूप धारिणी रेवती देवी की जय हो, जो अपने दोनों पक्षों और चोंच के

पर्यटति जगति हृष्टा पितृवननिलगेषु योगिनीसहिता ।

जगति हरसिद्धिनाम्नी हरसिद्धिर्विदिता सिद्धैः॥२१

इति नवदुर्गासंस्तवमनुपमभार्याभिरपररात्रू कृत्वा । इदमूचे सह देवैस्त्राह्यस्मान्सर्वभीतिःयः ॥२२
 पुनः पुनः प्रणम्योचुर्भवानां सिंहवाहिनीम् । अस्माकं भयभीतानां शरण्ये शरणं भव ॥२३
 देवानां तद्वचः श्रुत्वा दत्त्वा तेभ्योऽभयं ततः । सिंहारुद्धा विनिर्गत्या दुर्गांभः सहिता पुरा ॥२४
 पुण्यधे दानवेस्तार्थं महासमरदुर्दिनम् । कुमारी विंशतिभुजा घनविद्युल्लतोपमा ॥२५
 तेऽयि तत्रासुरा प्राप्तःः प्रचण्डा दद्रुलपिणः । सर्वे लब्धवराः शूराः सुतप्ततपसस्तथा ॥२६
 महाग्राहपराक्रान्ता दुष्टमायाविनष्टये । अब्राह्यण्यादृद्यमिषा नामतश्च निजोद्यतात् ॥२७
 इन्द्रमारी असत्क्लेशः प्रलम्बो नरकः सुतः । कुष्ठः पुलोमा शरभः शम्बरो दुन्दुभिः खरः ॥२८
 इल्वलो नमुचिर्भौमो वातापिर्धेनुकःकलिः । मायावृतौ बलौ बद्धुर्मधुकैटभकालजित् ॥२९
 रहः प्रौडादिदैच्येन्द्रः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः । एतनामोभिर्जनाः सर्वे सन्नद्धाः स्वग्रतो ध्वजः ॥३०
 रूपतो वर्णिताश्रैद ध्वजास्तेषां पृथक्पृथक् । प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः ॥३१
 काञ्चनाः काञ्चना पीडाः काञ्चनखगलंकृतः । पताका विविधैर्वलैरुच्छ्रुता लक्षणान्विताः ॥३२

आधातों द्वारा अनेक शत्रु संघ का मर्दन करती हैं तथा तीक्ष्ण शूल हाथ में लिए अनके रूप धारण करती हैं । १६-२०। उसी भाँति सिद्धों से सुसेवित हर सिद्धि देवी की जय हो, जो हर्ष मान्य होकर योगिनियों समेत अपने पिता हिमालय के वन निवेशों में स्वतन्त्र विचरण किया करती हैं । इस प्रकार आर्या छन्द वाली स्तुतियों द्वारा नवदुर्गा की स्तुति करने के उपरांत देवराज इन्द्र ने देवों के साथ यह भी कहा कि—समस्त भय से हम लोगों की रक्षा करो पश्चात् प्रणत होकर अनुत्तय विनय पूर्वक बार-बार उस सिंह वाहिनी भवानी से कहा—शरण्ये ! हग भय भीतों की शरण हो । सिंहारुद्ध होकर देवी ने अपनी विभूतियों समेत देवों को अभय दान प्रदान कर पुर से बाहर निकल कर दानवों के साथ महासमर आरम्भ किया । उस समय कुमारी रूप भगवती के बीस भुजा और स्वयं धन धमण्ड की विद्युल्लता की भाँति प्रकाशित हो रही थी । २१-२५। समराङ्गन में दैत्य गण भी, जो शूर वीर, कठिन तप द्वारा वरदान प्राप्त कर प्रचण्ड एवं रुद्र रूप दिखायी देते थे, उन दुष्टों की माया के विनष्ट करने के लिए महाग्राह रूपी देवी द्वारा आक्रान्त होने पर जो इन्द्रमारी, अलत्क्लेश, प्रलम्ब, नरक, कुष्ठ, पुलोमा, शरभ, शम्बर, दुन्दुभि, खर, इल्वल, नमुचि, भौम, वातापि, धेनुक, कलि मायावी दोनों बन्धु मधुकैटभ और कालजित् एवं प्रौडादि नामों से प्रख्यात थे, अपनी ध्वजाओं को आगे किये रण क्रीड़ा के लिए सन्नद्ध थे । २६-३०। उन अशुद्ध आमिषभोजी राक्षसों के, जो सामग्री समेत उपस्थित थे, रूपों के वर्णन कर दिये गये, उनकी ध्वजाएँ भी पृथक्-पृथक् प्रज्वलित अग्नि की भाँति दिखायी देती थी । काञ्चनमय, काञ्चन-खचित, और काञ्चन की मालाओं से विभूषित वे पताकाएँ उन्नत लक्षणों से अंकित थी, जो नील, पीत, श्वेत-रक्त, और कृष्ण वर्ण की चौकोर

नील्यः पीता रक्ता छणास्त्रा पञ्चवर्णकाः । तत्र पट्टपटीसौत्राः कृतदुद्वुद्कर्दुराः ॥३३
 घताकाकान्तिरनला नर्तक्य इव शोभनाः ॥३४
 ततो हलहलारावं चक्रुत्ते दानवोत्तमाः । प्रास्कालयन्त एणवभेरीज्ञरगोमुखान् ॥
 न्यवादयन्तानकान्ये शत्त्वाडम्बरडिंडिमान् ॥३५
 एवं ते समयुध्यन्त भवानीं दैत्यदानवाः । समाज्ञतुः शरैः शूलैः परिधैः शक्तिमरैः ॥
 कर्णकैरीषणैः कुत्तैः शतध्नीकूटमुदगरैः ॥३६
 आहृत्य मानरोषेण जज्वलुः समरेऽधिकम् । सिहारूढाद्रुतं देवो रणमध्ये प्रशादिता ॥३७
 आच्छिद्याच्छिद्य चिह्नानि ध्वजान्नानाविधांस्तथा । बलात्कारेण दैत्यानामनाथसमरे रुधा ॥३८
 चिह्नकानि ददौ तुष्टा देवेभ्यः शीघ्रचारिणी । सुरैरपि गृहीतानि जय देवीति वादिभिः ॥३९
 अम्बिका तु भृशं तुष्टा तेषां चक्रे क्षणात्क्षयम् । कालरात्री दानवानां मारीव निपपात सा ॥
 जीवितानि च ज्यग्राह दैत्यानां देवनन्दिनी ॥४०
 अथ रक्तासुरं कण्ठे गृहीत्वापात्य भूत्तते । देवो जघान तीक्ष्णेन त्रिशूलेन भृशं दिवि ॥४१
 स भिन्नहृदयः पश्चाद्भूमौ तत्र प्रपोथितः । तथापि देव्या निहतः पपात च ममारं च ॥४२
 देवास्तानसुराच्छित्वा गत्वा शत्रुपुरं जितम् । ददृशुत्ते रणप्रान्ते लम्बमानान्महाध्वजान् ॥
 यात्रां चक्रुः सम्प्रहृष्टा नवम्या ध्वजचिह्नितम् ॥४३

एवं सूत्रों की चित्र-विचित्र चित्रकारियों से सुसज्जित थीं, तथा प्रज्वलित अग्नि वर्ण की नर्तकियों की भाँति उस समय उनकी कान्ति मनमोहक थी । उसी राग उन श्रेष्ठ दानवों के कोलाहल भयानक शब्द सुनायी पड़े, जो पणव, भेरी, झर्णर, गोमुख, आनक, शांख, आडम्बर, और डिंडिम की ध्वनियों से परिवर्द्धित था । तदुपरांत भगवती के साथ उन दैत्य दानवों का समर प्रारम्भ हुआ, जिसमें शर, शूल, परिधि, तोमर शक्ति, कर्णके, इष्ण, कुंत, शतध्नी एवं कूट मुदगर के आधातों से रुष्ट होकर भगवती अत्यधिक प्रज्वलित (कुद्ध) हो उठी, और सिंह पर सुशोभित होकर उस रण में आक्रमण के साथ, छत्र, चिह्न, एवं अनेक भाँति की ध्वजाओं को बलात् दैत्यों से छीन कर उन देवों को प्रदान किया । ३१-३८। शीघ्रचारिणी देवी द्वारा प्राप्त चिह्नों को सहर्ष स्वीकार कर देवों ने 'जय-जय' की ध्वनि करना आरम्भ किया, जिससे प्रसन्न होकर देवी अम्बिका ने उसी क्षण दैत्यों का वधकर उन्हें धराशायी कर दिया । कारकात्री ने मारी की भाँति दानवों का संहार किया, देवनन्दिनी उन्हें जीवित पकड़ कर भक्षण कर जाती थीं । पश्चात् देवी ने अपने तीक्ष्ण त्रिशूल द्वारा रक्तासुर के कण्ठ को भेदन कर आकाश में उछाल कर पृथिवी पर गिरा दिया । भूमि पर गिरते ही हृदय के विदीर्ण होने के अवसर कुछ स्वस्थ होना चाहा, किन्तु देवी ने उसे पुनः आधात द्वारा गिराया जिससे गिरने पर आहत होते ही उसके प्राण निकल गये । तदुपरांत देवों ने शत्रुओं के आवास स्थानों पर अधिकार किया और यह भी देखा कि वहाँ ऐसे विशाल ध्वज लगे हुए हैं, जो रण के अंत तक लम्बे दिखायी देते थे । पाण्डव । देवों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर नवमी के दिन ही वह ध्वज चित्तित

अतोद्यापीह भूपालैर्जयलब्धीच्छयादृतैः । उपेष्ठते नरैर्भक्तैर्नारीभिश्चेद पाण्डव ॥४४

युधिष्ठिर उवाच

कीदृग्विधानं तस्यास्तु नवम्या ब्रूहि मे प्रभो । सरहस्यं समन्त्रं च येन तुष्यति चण्डिका ॥४५

श्रीकृष्ण उवाच

पौषस्य शुक्लपक्षे या नवमी सम्परिश्रुता । तत्यां स्नात्वा शुभैः पुष्टे रचनीया हरेः स्वत्ता ॥४६

कुभारी सुभाना देवीं तिहस्वन्दनगामिनी । ध्वजानानाविधान्कृत्वा पुरस्तस्याश्र यूजयेत् ॥

मालतीकुसुमैर्दीर्घपैर्गन्धपूपविलेपनैः ॥४७

हतिभिः पशुनिर्मध्यैः सुरामांसासृगम्बरं । दधिचन्दनचूर्णश्च भग्नश्वानप्रिपाचितैः ॥

मन्त्रेणानेन कौतैय ब्रह्मणोप्यथवा ननु ॥४८

भद्रां भगवतीं दृष्टां विश्वस्य जगतो हिताम् । सम्वेशिनीं संयमनीं ग्रहनश्वत्रमालिनीम् ॥४९

प्रपत्नोहं शिवां रात्रीं भद्रे पारय मे व्रतम् । सर्वभूतपिशादेभ्यः सर्वसत्वसरीसृपैः ॥

देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च भयेभ्यो रक्ष मां सदा ॥५०

ततश्चारोपयेद्राजा देवीनां भवने तथा । भोजयेत कुमारों च प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥५१

उपवासेन कुर्वीत एकभक्तेन वा पुनः । भक्त्या भूपालपञ्चास्य भक्तिस्तस्या गरीयसी ॥५२

यात्रा आरम्भ की थी । इसीलिए जयाभिलाषी राजा, पुरुष एवं स्त्रियाँ भक्ति पूर्वक उसमें उपवास रहते हैं । ३९-४४

युधिष्ठिर ने कहा—प्रभो ! उस नवमी के उपवास आदि विधानों को सहर्ष बताने की कृपा कीजिये, जिसके समन्त्रक प्रयोग करने पर भगवती चण्डिका शीघ्र प्रसन्न होती हैं ॥४५

श्रीकृष्ण बोले—पौष मास की शुक्ल नवमी के दिन स्नान करके सुगन्धित एवं मनोरम पुष्टों द्वारा हरि की भगिनी (देवी) की सप्रेम अर्चना करनी चाहिए । सिंह के स्पन्दन पर सुशोभित उन सुभगा कुमारी देवी के सम्मुख अनेक भाँति की ध्वजाओं के स्थापन पूर्वक मालती पुष्ट, दीप, गच्छ, धूप, अनुलेपन, पशु की बलि—उसके मध्य, मांस रक्त एवं चर्म सुरा, दधि, चन्दन, और अनग्नि पवक कफलों द्वारा मंत्रोच्चारण करते हुए उसकी पूजा करे भद्रे ! ब्रह्म विश्व के हितार्थ आविर्भूत होने वाली कृष्ण एवं भगवती भद्रा की शरण में प्राप्त हूँ, जो आब्रह्माण्ड की संवेशिनी, संयमन करने वाली एवं ग्रह, नक्षत्र-मालाओं से विभूषित है । तथा शिवा एवं कालरात्रि रूप हैं । भद्रे ! मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ, समस्त भूत, पिशाच, सभी प्राणियों, सर्प, देव, और उभय भाँति के मनुष्यों से मेरी सदैव रक्षा करो । अनन्तर राजा को चाहिए उन्हें देवी के भवन में आरोपित करके कुमारियों के भोजनोपरांत क्षमा प्रार्थना करे । भूप ! उपवास रहकर अथवा एकाहारी रहकर ध्वजा-रोपण करना प्रशस्त कहा गया है और भक्ति पूर्वक उनके मन्दिर का निर्माण करने वाला पुरुष एवं उसकी भक्ति अत्यन्त गौरव शालिनी बतायी

एवं ये पूजयिष्यन्ति ध्वजैर्भगवतों नराः । तेषां दुर्गां दुर्गमार्गं चोरव्यालाग्नि संकटे ॥५३
रणे राजकुले गेहे युद्धमध्ये जले स्थिते । रक्षां करोति सततं भवानीं सर्वजड्जला ॥५४
अस्यां बभूव विजयो नवम्यां पाण्डुनन्दन । भगवत्यास्तु तेनैषा नवमी सततं प्रिया ॥५५
धन्या पुण्या पापहरा सद्योपद्रवनाशनी । अनुष्ठेया प्रयत्नेन सर्वान्कामानभीप्सुभिः ॥५६
देव्यर्चनाहितमतिर्मनुजो नवम्यां हैमत्रजं धन्जवरं स हि रोपयेद्यः ।
भोगानदाप्य मनसोभिस्तान्प्रकामं देहं विहाद् समुपैति स वीरलोकम् ॥५७
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ध्वजनवमीव्रतवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः । ६१

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

उल्कानवमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

उल्काख्यां नवमीं राजन्कथयामि निबोधताम् । या काश्यपेन बायथता तारकस्यार्तिनाशिनी ॥१
अश्वयुक्त्युक्तपक्षे या नवमी लोकविश्रुता । नद्यां न्नात्वा समभ्यर्च्य पितृदेवीं यथाविधि ॥२
पश्चात्सम्पूजयेदेवीं चामुण्डां भैरवप्रियतम् । पुष्पैर्धूपैसनैवेद्यर्मासमत्स्यसुरासवैः ॥३
पूजयित्वा स्तवं कुर्यात्मन्नेणानेन मानवः । समारोप्याङ्गलिं सूर्द्धिं जानुभ्यामवनीं गतः ॥४

गयी है। इस प्रकार ध्वजाओं द्वारा भगवती की आराधना करने वाले मनुष्य के दुर्गम मार्ग में स्थित होकर भवानी सर्व मंगला देवी चौर, सर्प, अग्नि संकट, रण, राजकुल, गृह, युद्ध, जल मध्य से उसकी निरन्तर रक्षा करती हैं। पाण्डुनन्दन ! इसी नवमी के दिन विजय होने के नाते भगवती को यह नवमी अत्यन्त प्रिय है। इसलिए समस्त कामनाओं की सफलता के इच्छुकों को इसी दिन में अनुष्ठान एवं स्तुति करनी चाहिए, जो धन्य पुण्य, पापहारिणी तथा समस्त उपद्रवों को शमन करने वाली है। इस प्रकार देवी की आराधना में तन्मय रहने वाले मनुष्य को, जो नवमी के दिन सुवर्ण की माला समेत को आरोपित करते हैं, समस्त सुखोपभोग के अनन्तर देवी लोक की प्राप्ति होती है। ४६-५७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
ध्वज-नवमी व्रत वर्णन नामक एकसठवाँ अध्याय समाप्त । ६१।

अध्याय ६२

उल्कानवमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! उल्का नवमी का व्रत विधान मैं तुम्हे बता रहा हूँ, जिस तारक के दुःख शमनार्थ बृहस्पति ने उन्हें बताया था । सुनो ! आश्विन मास की शुक्ल नवमी के दिन नदी में स्नान करके पितृ एवं देव के तर्पण करने के उपरांत पुष्प, धूप, नैवेद्य, सुरा, मांस, मत्स्य द्वारा भैरव प्रिया चामुण्डा देवी की अर्चना सुसम्पन्न करके उस मनुष्य को घुटने के बल भूमि पर बैठे और अञ्जलि को शिर से लगा

महिषष्ठि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । द्रव्यमारोग्यविजयौ देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥५
 कुमारीभींजयेत्पश्चान्नवनीलसुकंचुकैः ॥६ परिधानैर्भूषणैश्च भूषयित्वा क्षमापयेत् ॥६
 सप्त पञ्चाप्यथैकां वा चित्तवित्तानुरूपतः । शद्या तुष्यते देवी इति वीरानुशासनम् ॥७
 अस्युक्ष्य मण्डलं कृत्वा गोमयेन शुचिस्मितः । इत्तासने चोपविशेषत्यात्रं च पुरतो न्यसेत् ॥८
 ततः सुसिद्धमन्नं यत्तत्सर्वं परिवेषयेत् । सधृतं पायसं चापि स्थापयेत्पात्रसशिधौ ॥९
 त्रृणानि षष्ठिमादाय चादाय धर्मनीं तथा । प्रज्ञालयेत्ततो भोज्यं यदद्युक्ततिं पावकः ॥१०
 प्रशान्ते भोजनं त्यक्त्वा समाचम्य प्रसन्नधीः । चामुण्डां हृदये ध्यात्वा गृहुद्वृत्यपर्णे भवेत् ॥११
 अनेन विधिना सर्वं मासिमासि समाचरेत् । ततः संवत्सरस्यान्ते भोजयित्वा कुमारिकाः ॥१२
 वस्त्रैराभरणैः पूज्य प्रणिपत्य क्षमापयेत् । सुवर्जं शक्तितो दद्याद्गां च विप्राय शोभनाम् ॥१३
 य एवं कुरुते पार्थं पुरुषो नवीनतम् । न तस्य शत्रवो नार्तिः स राजा नष्टतस्करः ॥१४
 भूताः प्रेताः पिशाचा नो जनयन्ति भयं गृहे । समुद्यतेषु शस्त्रेषु हन्ता तस्य न विद्यते ॥१५
 तं रक्षति सदेश्युक्ता सर्वास्वापत्सु चण्डिका । नरो वा यदि वा नारी ऋतमेतत्समाचरेत् ॥
 उल्कावत्स सपत्नानां ज्वलक्ष्मास्ते सदा हृदि ॥१६

कर इस भाँति स्तुति करनी चाहिए । कि महिषासुर धातिनि एवं मुण्डमाला धारण करने वाली चामुण्डे महाभागे ! मैं आपको बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, मुझे द्रव्य समेत आरोग्य तथा विजय प्रदान करने की कृपा करें । अनन्तर कुमारी भोजन तथा नवीन एवं नीलरंग की चोली वस्त्र और आभूषण से उन्हें विभूषित करके अपने चित्त वृत्ति के अनुसार सात, पाँच अथवा एक ही बार शद्वा समेत क्षमा प्रार्थना करने पर देवी प्रसन्न होती हैं, ऐसा बताया गया है । भूमि को जल अभिसिञ्चित कर उस मण्डल को गोमय से लीप कर शुद्ध करे, पश्चात् आसन पर बैठकर उनके सम्मुख सत्पात्र में सिद्ध अन्त को, जो घृतप्लुत एवं खीर युक्त हो, रखकर साठ की संख्या में तृण रखकर धमनी (धौंकनी) द्वारा अग्नि प्रज्वलित करके जब तक वह जलता रहे भोजन करे उसके शांत होने पर भोजन त्याग कर अत्यन्त प्रसन्नता से आचमन करे और हृदय में चामुण्डा देवी के ध्यान पूर्वक गृहकार्य करता रहे । इस प्रकार प्रतिमास में सविधान उसे सुसम्पन्न करते हुए वर्ष की समाप्ति में कुमारियों के भोजनोपरांत वस्त्राभूषणों से उनकी पूजा करके न भ्रतापूर्वक क्षमा प्रार्थना करे । ब्राह्मण के लिए यथाशक्ति सुवर्ण और शोभन गौ का दान अवश्य करना चाहिए । १-१३। पार्थ ! इस प्रकार नवमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष को शत्रु राजा एवं तस्कर जनित संकट, भूत, प्रेत एवं पिशाच के भय नहीं होता है और चलित अस्त्रों के मध्य भी उसका हन्ता कोई नहीं हो सकता है । सभी आपत्तियों में चण्डिका देवी उसकी रक्षा करती है । इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी अपनी सपत्नियों के हृदय में उल्का की भाँति सदैव प्रज्वलित रहती है । इस प्रकार नवमी के दिन

१. नवनीलकुंसंभक्तैः ।

तां शुष्ककोहरमुखों प्रकटोरुदांष्ट्रां कापालिनों समवलम्बितमुण्डमालाम् ।
उक्तद्वेषु पुरुषो नवमीषुचण्डों सम्पूज्य कस्य हृदये न च शं करोति ॥१७
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुग्मिष्ठिरसंवादे
उल्कानवमीव्रतदर्गनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।६२

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

दशावतारचरित्रवत्वर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पूर्वं कृतयुगत्यादौ भृगोर्भार्या महासती । दिव्यारामाश्रमे इस्या गृहकार्यकतत्परा ॥१
बभूव सा भृगोनित्यं हृदयेष्टिकारिणी । तस्यां मुनिर्महातेजा । अग्निहोत्रं निधाय च ॥२
विष्णोस्त्रासाद्वानवानां कुलत्राणसमाकुलम् । मुक्त्वा युद्धस्थितं पार्श्वं समर्प्य मुनिपुङ्गवः ॥३
दत्त्वा निषेपकं रथं^१ दिव्यायै सुमहातपाः । जगाम हिनवत्पार्श्वं हरं तोषयितुं रहः ॥४
संजीवनीकृते नित्यं कर्णधूममधोमुखः । परौ दानवराजस्य विजयाय पुरोहितः ॥५
अजगाम गते तस्मिन्गरुडेनाश्रितो हरिः । अभ्येत्य जल्पनं चक्रे चक्रेणोत्कृत्सकन्धरम् ॥६

चण्डिका देवी की, जो शुष्क हरमुख, ऊरु और दाँतों को प्रकट किये, कपाल लिए एवं लम्बायमान मुण्डमाला से विभूषित है, आराधना करने पर किसके हृदय को अपने अधीन नहीं कर सकता है। अर्थात् सभी उसके दासानुदास होने के लिए लालायित रहते हैं । १४-१७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युग्मिष्ठिर के सम्बाद में
उल्कानवमी व्रत-वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ।६२।

अध्याय ६३

दशावतार चरित्र का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में कृतयुग के आरम्भ में भृगु (शुक्र) की स्त्री महासती दिव्या अपने आश्रम से रहती हुई गृहकार्य को अत्यन्त परिश्रम एवं पटुता से सुसम्पन्न कर रही थी, जिससे वह अपने पति मनु की हृदयेष्वरी बन गयी थी । महातेजा मुनि ने उस अपनी वल्लभा को अग्नि होत्र सौंप कर विष्णु के ब्रात से भयभीत दानवों के क्रृष्णार्थ युद्धस्थिति को रोककर तथा अपनी प्रिया दिव्या को धरोहर रूप में उसे प्रदान कर आशुतोष हर को प्रसन्न करने के लिए हिमालय के समीप प्रदेश को प्रस्थान किया । संजीवनी विद्या की प्राप्ति के लिए उन्होंने कठिन तप आरम्भ किया—अधोमुख होकर धूप कण का पान करते हुए आराधना आरम्भ की । दानव राज के विजयार्थ पुरोहित भृगु के उस कठिन व्रत के लिए जंगल चले जाने पर उनके गृह गरुड पर बैठे विष्णु का आगमन हुआ । भगवान् विष्णु ने

गलद्वुधिरसम्पन्नं लोहितार्णवदसंनिभम् । दृष्ट्वासुरबलं सर्वं निहतं विष्णुना तदा ॥
 दिव्या संशप्तुकामाशूद्विष्णुं साक्षाविलेक्षणा ॥१७
 यावज्ञोच्चरते वाचं चक्रेण कृत्कंधरम् । तावन्निपातयामासशिरस्तस्याः सकुण्डलम् ॥८
 प्राप्य संजीवनों विद्यां यावदयात्यसौ मुनिः । तावत्स दैत्यान्नापश्यत्पश्यति खन निपातितम् ॥९
 रोषाच्छाप च हरिं भ्रुकुटीकुटिलाननः । अवश्यभावभावित्वाद्विश्वस्य हितकारणात् ॥१०
 यस्मात्त्वया हता दैत्यः ब्रह्मणो मत्परिग्रहाः । तस्मात्त्वं मानुषे लोके दश वारान्यमिष्यसि ॥११
 अतोऽर्थं मानुषे लोके रक्षार्थं च महीक्षिताम् । अवतारं चकारहं भूयोऽस्यः पृथग्विधम् ॥१२
 पूर्वोक्तैः कारणैः पार्थं अदत्तीर्णं महीतले ; मां नरा येऽर्चयिष्यन्ति तेषां वासस्त्रिविष्टये ॥१३

युधिष्ठिर उवाच

व्रतं दशावतारात्मं कृष्ण द्वूहि सविरतरम् । समस्तं सरहस्यं च सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४
 श्रीकृष्ण उवाच

प्रोष्ठपदे सिते पक्षे दशम्यां नियतः शुचिः । स्नात्वा जलाशये स्वच्छे पितृदेवादितर्पणम् ॥१५
 कृत्वा कुरुकुलश्रेष्ठ गृहमागत्य मानवः । गृह्णीयाद्वान्यर्चूर्णस्य द्विहस्तशसृतित्रयम् ॥१६
 क्रमेण पावयेतां तु पुंसंज्ञं घृतसंश्रितम् । वर्षे वर्षे दिने तस्मिन्यावद्वर्षाणि वै दश ॥१७
 प्रथमे पूरिकान्वर्षे द्वितीये घृतपूरकान् । तृतीये शुक्लकांसारं चतुर्थे मोदकाङ्गुभान् ॥१८

वहाँ पहुँच कर कुछ बातें की और अपने चक्र द्वारा उनके कंधे में आघात किया, जिससे उसने (दिव्या ने) देखा कि समस्त असुर सैनिकों के शरीर से शोणित नदी प्रवाहित हो रही है। इस प्रकार विष्णु द्वारा असुर सेना को विनष्ट देख कर दिव्या ने अशुमुखी होकर प्रचण्ड रूप धारण किया और विष्णु को शाप देने के लिए कटिबद्ध हुई। जब तक नह गुज से कुछ कहे कि विष्णु ने अपने चक्र द्वारा कुण्डल समेत उसके शिर को काट कर भूमि पर गिरा दिया। अनन्तर संजीवनी विद्या को प्राप्त कर मुनि ने घर आकर दैत्यों के नाश देखने के पूर्व अपना ही (दिव्या का निधन) सर्वनाश देखा, जिससे भौंहे और मुख को कुटिल करते हुए उन्होंने अत्यन्त रोष से विष्णु को शाप प्रदान किया—जस अवश्यंभावी को, जो विश्व का एक मात्र हित साधन था, कौन टाल सकता था। उन्होंने कहा—जो ब्रह्म होकर तुमने दैत्यों और विशेष कर मेरे परिजनों का संहार किया है, अतः मनुष्य लोक में तुम्हें दश बार जन्म ग्रहण करना पड़ेगा। पार्थ ! इसीलिए मैं मर्त्य लोक में राजाओं के रक्षार्थ बार-बार पृथक-पृथक अवतार धारण करता हूँ और पूर्वोक्त कारणों वश मैं अभी इस पृथ्वी तल पर अवतरित हूँ। इसलिए मेरी अर्चना करने वाले मनुष्यों का आवास स्थान स्वर्ग में अवश्य निश्चित रहता है। १-१३

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! समस्त पापों के शमन करने वाले इस दशावतार नामक व्रत की व्याख्या विस्तारपूर्वक सरहस्य एवं मंत्र समेत बताने की कृपा कीजिये। १४

श्रीकृष्ण बोले—भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन संयम पूर्वक किसी जलाशय में पवित्रता पूर्ण स्नान एवं देवपितृ तर्पण करने के उपरांत अपने घर आकर तीन अञ्जली धान्य के पूर्ण में धीकुवार को मिलाकर उसी के नैवेद्य क्रमशः प्रत्येक वर्ष प्रदान करता रहे। पहले वर्ष में पूरी, दूसरे में

सोहालकान्पञ्चमेऽब्दे षष्ठेऽब्दे खण्डवेष्टकान् । सप्तमेऽब्दे कोकरसानपूर्पांश्व तथाष्टमे ॥१९
नवमे कण्वेष्टस्तु दशमे खण्डकान्धुभान् । दश धेनूर्दशहरे दशविश्राय दापयेत् ॥२०
ऋग्नेण भक्षयित्वा च यथोक्तं भरतर्षभ । अर्द्धाद्दृं पिष्टयेदेवमद्दाद्दृं वा द्विजातये ॥
स्वत एवार्थमन्नीयादगता रम्ये जलाशये ॥२१

दशावतारानभ्यर्थं पुष्पधूपविलेपनः । मन्त्रेणानेन मेधावी हरिमम्बुद्ध्य वारिण ॥२२
रत्स्यं कूर्म दराहं च नरसिंहं त्रिविक्रमम् । श्रीरामं रामकृष्णौ च बुद्धं चैव सकल्किनम् ॥२३
गतोऽस्मि शरणं देवं हरिं नारायणं प्रभुम् । प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥२४
छिन्तु वैष्णवीं मायां भक्त्या जातो जनार्दनः । इवेतद्वीपं नयस्यस्मान्समात्सन्ति निवेदयेत् ॥२५
एवं यः कुरुते पार्थ विधिनानेन युव्रत । दशादतारनामाख्यं तस्य पुष्पफलं शृणु ॥२६
श्रूयन्ते यास्त्विगालोच्य पुरुषाणां दशा दश । ताश्छिन्नति न संदेहः शक्नप्रहरणैर्हरिः ॥२७
संसारसागरे धोरे मज्जंतं तत्र मां हरिः । इवेतद्वीपं नयत्वाशु द्रतेनानेन तोषितः ॥२८
किं तस्य न भवेल्लोके पस्य तुष्टो जनार्दनः । सोऽहं जनार्दनो राजन्कालरूपी धरासुतः ॥
मर्त्यलोके स्वयं पार्थ भूभारोत्तारकारणम् ॥२९

या स्त्रीवत्तमिदं पार्थं चरिष्यति मयोदितम् । सा लक्ष्म्याऽचलया युक्ता भर्तुपुत्रसमन्विता ॥३०
मर्त्यलोके चिरं स्थित्वा विष्णुलोके महीयते । विष्णुलोकाद्वालोकं ततो याति परं पदम् ॥३१

घृत पूरक, तीसरे में शुक्ल कांसार, चौथे में मोदक, पाँचवें में सोहाल, छठे में खांड पूरी, सातवें में कोकरस, आठवें में मालपूआ नवें कण्वेष्ट और दशवें में खांड के शुभ पदार्थ अर्पित करते हुए दश विष्णु के निमित्त दश गोदान दश ब्राह्मणों को प्रदान करे और उपरोक्त पदार्थ के भक्षण करते हुए इस व्रत को सुसम्पन्न करता रहे । भरतर्षभ ! सर्वप्रथम उस भक्ष्य चूर्ण का चौथाई देव और तदर्थ ब्राह्मण को अर्पित कर किसी जलाशय के समीप जाकर उस आधे भाग का भोजन करना चाहिए । इस भाँति उस मेधावी पुरुष को चाहिए कि पुष्प, धूप, एवं लेपन द्वारा विष्णु के दश अवतारों की अर्द्धना करके इस मंत्र द्वारा भगवान् को अभिषेक करे—मत्स्य, कूर्म (कच्छप), वराह, नरसिंह, वामन, श्रीराम, रामकृष्ण, बुद्ध तथा कल्की उस नारायण प्रभु की शरण में मैं प्राप्ना हूँ, जगन्नाथ को मैं प्रणाम कर रहा हूँ, विष्णु देव मुझ पर प्रसन्न हो । मैं भक्तिपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि जनार्दन देव मेरी वैष्णवी-मायाबंधन को दूर करें, मैं आत्म निवेदन कर रहा हूँ कि मुझे इवेत द्वीप पहुँचाने की कृपा करें । सुव्रत पार्थ ! इस प्रकार सविधान इस दशावतार नामक व्रत को सुसम्पन्न करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो ! १५-२६ । भगवान् विष्णु इन्द्र के आयुधों द्वारा पुरुषों के इस प्रत्यात दश दशाओं का विच्छेद अवश्य करते हैं, इसमें संदेह नहीं । मेरे इस व्रत से संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु इस भीषण संसार सागर में निमग्न होते हुए मुझे शीघ्र श्वेतद्वीप पहुँचाएँ । भगवान् जनार्दन के सन्तुष्ट होने पर भक्त की कौन कामना सिद्ध नहीं होती है ! राजन्, पार्थ ! मैं वही जनार्दन इस पृथ्वी के भार को नष्ट करने के लिए इस पृथ्वी पर कालरूप से अवतरित हूँ । पार्थ ! मेरे इस प्रकार बताये हुए इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री अचल लक्ष्मी युक्त होकर इस मर्त्यलोक में पति पुत्र समेत चिरकाल तक सुखोपभोग करके विष्णु लोक में सम्मानित होती है और विष्णु लोक से रुद्ध लोक तथा परम पद की

ये पूजयन्ति पुरुषाः पुरुषोत्तमस्य ग्रन्थादिकांस्तु दशमीषु दशावतारान् ।
मर्त्या दशस्वपि दशासु सुखं विहृत्य ते यान्ति यानमधिरह्य सुरेशलोकान् ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरर्पवणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दशावतारचरित्रवर्णं नामं त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३

अध्य चतुष्प्रष्टितमोऽध्यायः

आशादशमीवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ पार्थिववृन्दानां लुखपङ्कजसद्वे । शृणुष्वावहितो वच्चम तवाशादशमीव्रतम् ॥१
नलनामाभवत्तूर्वं निषधेषु महीपते । स भ्रात्रा निर्जितो राज्ये पुष्करेणेति नः श्रुतम् ॥२
अक्षैर्दूर्तेन राजेन्द्रं निर्ययो भार्यया सह । वनं प्रतिभयं शून्यं झिल्लीकाणनदिवतम् ॥३
स गत्वा प्रत्यहोरात्रं जलमात्रेण वर्तयन् । ददर्श वनमध्यस्थाञ्छकुनीकाञ्चनच्छवीन् ॥४
ग्रहीतुमिच्छन्तान् राजन्समाच्छाद्य स्ववासता । खमापेतुः खगास्तर्णं गृहीत्वा वसनं शुभम् ॥५
आससाद समाः काश्चिद्द्रुतवासाः सुदुःखितः । दमयन्तीं समाप्राप्य निद्रयापहृतां तदा ॥

प्राप्ति करती है। इस प्रकार दशमी के दिन भगवान् के मत्स्यादि दश अवतारों की अर्चना करने वाले पुरुष इस मर्त्यलोक में दशावस्थाओं में सुखोए भोग करके अंत में विमान द्वारा देवलोक प्राप्त करते हैं। २७-३२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरर्पव में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर-सम्बाद में
दशावतारचरित्र वर्णं नामक तिरसठवां अध्याय समाप्त ॥६३।

अध्याय ६४

आशादशमी का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें आशादशमी व्रत का विधान बता रहा हूँ, जो राजसमूहों के मुख कमल को विकसित करने के लिए उत्तम रवि रूप है। सावधान होकर सुनो ! पहले समय में निषध देश के राजा नल प्रतिष्ठित राजा हुए थे। उन्होने अपने भ्राता (पुष्कर) के साथ द्यूत कीड़ा (जूआ खेलना) प्रारम्भ किया। जिसके परिणाम स्वरूप राज्य छोड़कर, अपनी भार्या दमयन्ती को साथ लेकर उस घोर अरण्य का यात्री होना पड़ा है, जहाँ हिंसक पशु, एवं झिल्लीक गण से वह सदैव मुखरित रहता था। वहाँ पहुँचने पर केवल जलपान के द्वारा अपने दिन व्यतीत करते हुए उन्हें वन के मध्य स्वर्ण छवि वाली पक्षियाँ दिखायी पड़ी। राजन् ! नल ने उन्हें बकङ्गने के लिए उन पर अपने वस्त्र डाल दिये किन्तु, वे पक्षियाँ उनके उस शुभ वस्त्र को लेकर अत्यन्त शीघ्रता से आकाश में उड़कर अदृश्य हो गयी। अनन्तर वस्त्र के अपहरण से भी अत्यन्त दुःखी होकर दमयन्ती के साथ किसी सभा (स्थान) में पहुँच कर वे विश्राम करने लगे। वहाँ भ्रान्त दमयन्ती

दुःखादुत्सृज्य गतवान्भाग्यतः प्राप्तनेश्वरम् ॥१६
 गते तु नैषधे भैमी प्रबुद्धै वाञ्छितानना । अपश्यन्ती नलं वीरं वीरं भीमसुता वने ॥
 इतश्चेत्तच्च ब्रह्माम हाहेति रुदती मूरुः ॥१७
 दुःखशोकसमाक्रान्तां नलदर्शनलालसा । आससाद दिनैः कैश्चित्सा चैद्यपुरमंजसा ॥८
 उन्मत्तवत्परिवृता शिशुभिः कौतुकाकुलैः ! सा दृष्टा येदिराजस्य जनन्यः जनवेष्टिता ॥९
 चन्द्रलेखेद पतिता भूमौ जासितदिङ्मुखा । आरोप्य सा स्वभवनं गृष्टा का त्वं वरानने ॥१०
 उदाच भैमी सन्नीडं सैरधीं भां निबोधताम् । न धावयेयं चरणौ नोच्छिष्टं भक्षयाम्यहम् ॥११
 यदि प्रार्थयते कश्चिद्दंडथस्ते साम्प्रतं भवेत् । प्रतिज्ञयानया देवि तिष्ठेयं तत्र वेशमनि ॥
 एवमस्त्वनवद्यांगि राजमाताप्युवाच ताम् ॥१२
 एवंविधा तद्वाने कञ्चित्कालमनिंदिता । उवास वसनार्द्धेन प्रवृत्तान्ते विल द्विजः ॥
 अन्यामास मुदितो दमयन्तीं गृहं पितुः ॥१३
 मात्रा पित्रा समायुक्ता सुतैर्भ्रतिभिरेव च । दमयन्ती तथाम्यास्ते दुःखं नैषधर्वजिता ॥१४
 प्रोवाच विमनाहूय ऋतं दानमथापि वा । कथयध्वं यथा मे स्यादिष्टेन सह सङ्गमः ॥१५
 तत्रेतिहासकुशलो विप्रः प्रोवाच बुद्धिमान् । भद्रे त्वमाशादशर्मीं कुरुष्वेप्सितसिद्धिदाम् ॥१६

को अत्यन्त निद्रित अवस्था में छोड़कर (भाग्यवादी की दृढ़ आज्ञा से) उन्होंने कुबेर-हिमालय के पहले वाले प्रदेश (अयोध्या) को प्रस्थान किया । १-६। उनके चले जाने पर प्रबुद्ध होकर उस चन्द्रमुखी भीम सुता दमयन्ती ने राजा नल को न देख कर उहैं इधर-उधर बनों में खोजती हुई 'हाय हाय' कहते रुदन करती, दुःख शोक के शार से पीड़ित, नल के दर्शन की इच्छा से कितने दिनों के मार्ग को कष्ट से पार कर राजा वैद्य की पुरी में पहुँचौ । वहाँ पहुँच कर वह उन्मत्त की भाँति दिखायी देने लगी, जिससे शिशु-वृन्दों ने उसे अपना कौतुक-लक्ष्य बना कर चारों ओर से घेर लिया था । उसी बीच चेदिराज की माता ने उधर देखा कि किसी स्त्री को कुछ लोग चारों ओर से घेर कर खड़े हुए हैं, जो भूमि में गिर कर दिशाओं को पूर्ण प्रकाशित करने वाली चन्द्र लेखा की भाँति दिखायी देती थी, शीघ्र अपने भवन में उलवाकर उससे पूछा—'सुन्दरि ! तुम कौन हो और क्या चाहती हो ? भैमी ने लज्जा पूर्वक कहा—मैं सैरन्धी (दासी) हूँ, और वही अपना सेवा कार्य चाहती हूँ, किन्तु देवी ! चरण प्रक्षालन (पैर धोना) एवं उच्छिष्ट भोजन का भक्षण नहीं करूँगी, तथा मुझसे अनुचित प्रार्थना करने वाला उसी समय दण्डित किया जाये । इसी प्रतिज्ञा पर मैं आप के महल में सेवा कार्य के लिए रहना स्वीकार करूँगी । 'तथास्तु' कहकर राजमाता ने उस प्रश्नस्त-वदना की बात स्वीकार किया । इस प्रकार उसने वही आधे वस्त्र पहने उस राजभवन में कुछ समय तक निवास किया अनन्तर समाचार ज्ञात होने पर उसके पिता भीम ने ब्राह्मण द्वारा उसे अपने यहाँ बुला लिया । वहाँ पहुँचने पर माता, पिता, सुत और भ्राताओं द्वारा सुसेवित होने पर भी दमयन्ती को नल के वियोग में अत्यन्त कष्ट ही था । उसने खिल्ल मन से कहा विप्र ! ऋत, दान अथवा अन्य जिस उपाय से मेरा और नल का साथ हो सके, मुझे बताने की कृपा करें । ७-१५। इसे सुनकर इतिहास कुशल उस ब्राह्मण ने कहा—'भद्रे ! मनोरथ सिद्ध करने वाली इस आशादशर्मी का व्रत विधान प्रारम्भ करो' । पुराण

चकार सर्वम् तन्वज्ञी यत्पुराणविदा तदा । ख्यातमात्यतविदुया दमनेन पुरोधसा ॥१७
ब्रतस्यास्य प्रभावेण दमयन्त्य नरोत्तम । सञ्जातः सुखदोऽत्यर्थं भत्रा सह समागमः ॥१८

युधिष्ठिर उवाच

कथमाशादशम्येषा गोविन्द क्रियते कदा । सर्वमेतत्समाचक्ष भां सर्वज्ञोऽसि यादव ॥१९
श्रीकृष्ण उवाच

राज्याशया राजपुत्रः कृष्यर्थं तु कृषीवलः । भार्यार्थं तु वणिकुत्रः पुत्रार्थं गुर्विणी तथा ॥२०
धर्मार्थकालसंसिद्धै लोककन्या वरार्थिनी । यष्टुकामो द्विजवरो रोगी रोगापनुत्तये ॥२१
द्वित्रप्रवासिते कान्ते कल्लेन धृतिपण्डिता । एतेष्वन्येषु कर्तव्यमाशाक्रतमिदं सदा ॥२२
यदा यस्य भवेदर्दत कार्यते हि तदा तत्तम् । शुक्लपक्षे दशम्यां तु स्नात्वा राम्पूज्य देवताः ॥२३
नन्तं तदाशाः सम्पूज्या पुष्पालत्कक्षन्दनैः । गृहाङ्गणे लेखदित्वा यदैः पिष्टातकेन वा ॥
दत्त्वा धृतात्तं नैवेद्यं पुनः कार्यं निवेदयेत् ॥२४

आशाद्वाराशाः सदा सन्तु विद्यन्तां च मनोरथाः । भवतीनां प्रशादेन सदा कल्याणमस्त्विति ॥२५
एवं सम्पूज्य भुज्जीत दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । अनेन क्रमयोगेन मासिमासि समाचरेत् ॥२६
यावन्मनोरथः पूर्णस्ततः पश्चात्समुद्यमात् । मासि पूर्णे च षण्मासे वर्षे वर्षे द्वये गते ॥२७
सौवर्णा कारयेदाशा रौप्यपिष्टातकेन वा । ज्ञातिबन्धुज्ञैः सार्द्धं स्नातः सम्यगलंकृतः ॥२८

निष्णात एवं आव्यान के विद्वान् उस दमन पुरोध ने जैसा कहा, उसे उस कोमलाङ्गी ने बैसा ही सविधान सुसम्पन्न किया, नरोत्तम् ! इस ब्रत के प्रभाव से दमयन्ती का भर्ता (तत) के साथ अत्यन्त सुखद समागम हुआ । १६-१८

युधिष्ठिर ने कहा—गोविन्द एवं यादव आप मातों के अधिनायक हैं अतः यह आशादशमी किस विधान द्वारा और कब सुसम्पन्न की जाती है आदि सभी कुछ मुझे बताने की कृपा करें । १९

श्रीकृष्ण बोले—‘राज्य की आशा से राजपुत्र, कृषि के निमित्त कृषक, भार्या प्राप्त्यर्थ वैश्य-पुत्र, पुत्र प्रसव के लिए गर्भिणी धर्म, अर्थ और काम के सिद्धार्थ जनवर्ण, अनुकूल वर की कामना से कन्याओं, यज्ञ के सुसम्पन्नार्थ उत्तम ब्राह्मणों, रोगापहरणार्थ रोगी और चिरकाल से पति के प्रवासी होने पर धैर्य धारण करने वाली वियोगिनी स्त्री को तथा अन्य कामनाओं की पूर्ति के लिए भी इस आशादशमी व्रत का अनुष्ठान सुसम्पन्न करना चाहिए । तथा जिस किसी समय किसी भाँति का कष्ट अनुभव होने लगे, तो उसके अपवारणार्थ इस ब्रत का अवश्य पालन करना चाहिए । शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन स्नान देव पूजन आदि करके गृहाङ्गण में पिष्टातक (चूर्ण) द्वारा सुन्दर प्रतिमा बनाकर पुष्प, अलत्कक, एवं चन्दनादि द्वारा भक्ति पूर्वक आशा की अर्चना करके धृतपूत्र नैवेद्य अर्पित करने के उपरांत प्रार्थना करे कि—‘आशादेवि ! आप समस्त आशा रूप हैं और सदैव रहें, मेरे मनोरथों को सफल करती रहें और आपके प्रसाद से सदैव कल्याण हो । अनन्तर ब्राह्मण को भोजन एवं दक्षिणा से तृप्त कर स्वयं भोजन करे और इसी क्रम से प्रत्येक मास की दशमी का सविधान ब्रत मनोरथ पूर्ण होने तक करता रहे । ढाई वर्ष के उपरांत ब्रत के समाप्त होने पर गृहाङ्गण में सुवर्ण, चाँदी अथवा सुगन्धित चूर्ण द्वारा आशा की सौन्दर्यपूर्ण प्रतिमा बनाकर बन्धुओं समेत स्नान एवं तूतन वस्त्रादि से सुसज्जित होकर

पूज्येन्मन्त्रसन्दर्भेरभिध्यात्वा गृहाङ्गये । तत्र सन्निहितः शक्तः सुरासुरनमस्कृतः ।
पूर्वा चन्द्रेण सहिता ऐन्द्रीदिग्देवते नमः ॥२९

अग्ने: परिग्रहादार्थं तवसाग्रेयोति पठयते ; तेजोमयी परा शक्तिरागनेयी वरदा भव ॥३०
देवराजं समाप्ताद्य तोकः संयमयत्यसौ । तेन संयमती यासि यास्त्रे कर्मप्रदा भव ॥३१
खड्गं सहातिविकृता नैऋतिस्त्वमुपाभृता । तेन नैऋतनान्नीत्वं कृतवान्मनधवा सदा ॥३२
त्वय्यासते भवनाधारवरुणो यादसां पतिः । इष्टकामार्थसिद्ध्यर्थं वारणिप्रभवा भव ॥३३
अधिश्रितात्मि यस्मात्त्वं वायुना जगदायुनी । वायव्ये त्वमतः शान्तिं नित्यं यच्छ नमोनमः ॥३४
कुबेरवासतः सौम्य! प्रत्याता त्वमथोत्तरा । ऐशानी जगदीशेन शम्भुनां त्वमलंकृता ॥
अतस्त्वं शिवसान्निध्यं देवि देहि शिवे नमः ॥३५

सर्पाष्टककुलेन त्वं सेवितासि तथाप्यथः । नागांगनाभिः सहिता हिता नः मर्वदा भव ॥३६
सप्तलोकैः परिगता सर्वदा त्वं शिवा यतः । तनकाद्यैः परिवृता ब्राह्मी जिह्वानपाकुरु ॥३७
नक्षत्राणि च सर्वाणि ग्रहास्ताराग्रहास्तथा । नक्षत्रमातरो ये च भूतप्रेतदिनायकाः ॥
सर्वे मसेष्टसिद्ध्यर्थं भवन्तु प्रणाताः सदा ॥३८

एभिर्मत्रैः समस्यर्थं पूष्पधूपादिना ततः । वासोभिरभिसंस्थाप्य फलानि विनिबेदयेत् ॥३९
तत्त्वाध्वनिधोषेण गौतमङ्गलनिःस्वनैः । नृत्यन्तीभिररस्त्रीभिस्तां रात्रिमतिवाहयेत् ॥४०

मन्त्रोच्चारण पूर्वक ध्यान-पूजन करे—पूर्वदिक् देवता को मैं नमस्कार करता हूँ, जो देव एवं असुर वन्दित इन्द्र का सम्पर्क सदैव प्राप्त करती है और उदीयमान चन्द्रमा से संयुक्त रहती है । आर्यं (अग्निदिक्) ! अग्नि के साथ परिग्रह होने के नाते 'आग्नेयी' के नाम से तुम्हारी प्रस्ताति है, आप तेजोमयी एवं पराशक्ति रूप हैं अतः मुझे वरदान प्रदान करें । २०-३०। यास्त्रे (दक्षिणदिक्) ! देवराज इन्द्र को प्राप्त कर तुम लोक का संयमन करती हो उसी से तुम्हें लोग संयमनी कहते हैं अतः मेरे लिए भी कामप्रदा हो । (नैऋत्य दिक्) ! खड्गस्त्रहन करने वाली, विकृत एवं निकृति से अलंकृत हो, इसीलिए मधवा इन्द्र नैऋत्य नाम से तुम्हारी स्वाति की है । वारणि ! समुद्र के जल-जन्तु के अधीश्वर वरुण के भवन का आधार तुम हो अतः मेरे इष्ट काम और अर्थ की सिद्धि प्रदान करो । इस ब्रह्माण्ड के आयु स्वरूप वायु के आश्रित रहने के नाते तुम्हें वायव्य कहा गया है, अतः मुझे नित्य शान्ति प्रदान करने की कृपा करो मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । सुन्दरि ! कुबेर के वशीभूत होने के नाते तुम्हें लोग उत्तरा भी कहते हैं । ऐशानी देवि ! जगन्नियन्ता शम्भु द्वारा तुम सदैव अलंकृत हो, अतः शिवे देवि ! मुझे भी शिव सान्निध्य प्रदान करने की कृपा करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । सर्पराज के आठ कुलों द्वारा सुसेवित होने पर भी तुमने अधोलोक को ही अपनाया है, अतः अधोदेवि ! नागांगनाओं समेत सदैव मेरे हितार्थ उद्यत रहो । ३१-३६। सातो लोकों में व्याप्त रहकर तुम सदैव कल्याण की निधि हो, अतः सनकादि ब्रह्मिर्यिणों से आवृत होकर सदैव मेरे लिए कल्याण प्रदान करो । उसी भाँति नक्षत्र, समस्त गृह, तारा, नक्षत्र मातृकाएँ, भूत, प्रेत, पिशाच एवं विनायक आदि देवगण मेरे इष्ट सिद्ध्यर्थं सदैव नम्र-विनम्र रहे । इन्हीं मन्त्रोच्चारण द्वारा पुष्प, धूप, वस्त्र, आदि से उनका अलंकार और अर्चना करके अनेक भाँति के फल अर्पित करे । तुरुही आदि वाद्य, गीत, मांगलिक शब्द और सुन्दरियों के नृत्य द्वारा उस रात्रि को व्यतीत करती हुई उन्हें

कुंकुमक्षोदतीव्रेण दानमानादिभिः सुखम् । प्रभाते वेदविदुषे सर्वं तत्प्रतिपादयेत् ॥४१
 अनेन विधिना सर्वं क्षमयन्प्रणिपत्य च । भुञ्जीत मित्रसहितः सुहृद्वन्धुजनैरपि ॥४२
 य एवं कुरुते पार्थं दशमीव्रतमादराद् । स सर्वकाममान्नोति भनसाभीप्सितं नदः ॥४३
 स्त्रीभिर्विशेषतः कार्यं व्रतमेतद्युधिष्ठिर । लघुचित्ता यतो नार्थः सदा कामपरायणाः ॥४४
 धनं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम् । कथितं ते महाराज भया व्रतमनुत्तमम् ॥४५

ये नानवा मनुजायुज्ञद कामकामाः सम्पूजयन्ति दशमीषु सदा दशाशाः ।
 तेषां विशेषनिहिता हृदये प्रकाममाशाः फलत्यलमलं द्वन्द्वोदितेन ॥४६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरतंतवादे

आशादशमीव्रतं नाम चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ।६४

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

तारकद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अहं त्वागस्करः पापः पृथिवीक्षयकारकः । परिपृच्छामि गोविन्दं त्वां नमस्कृत्य पादयोः ॥१
 गुह्यादगुह्यतरं ब्रूहि व्रतं किञ्चिदनुत्तमम् । तरामि येन पापौदं भीष्मद्रोणवधार्णवम् ॥२

कुंकुम, अक्षौद, दान एवं मान आदि से प्रसन्न करके पुनः प्रातः काल किसी विद्वान् ब्राह्मण को वह सब अपित करे । इस विधान द्वारा व्रत सुसम्पन्न कर क्षमा प्रार्थना के उपरांत मित्र-बन्धुओं समेत भोजन करे । पार्थ ! इस प्रकार सादर इस दशमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष की समस्त कामनाएँ सफल होती हैं । युधिष्ठिर ! स्त्रियों को यह व्रत विशेषकर सुसम्पन्न करना चाहिए क्योंकि वे लघुचित एवं सदैव कामपरायण होती हैं । महाराज ! इस प्रकार धन्य, यशस्वी, आयु एवं, समस्त कामना प्रदान करने वाले इस उत्तम व्रत का विधान तुम्हें बता दिया गया । दशमी के दिनों में इस आशा दशमी के दश व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाले मनुज पुण्यांवों के हृदय में यह आशा अनेक फलों से युक्त होकर प्रतिफलित होती है । ३७-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
 आशादशमी व्रत वर्णन नामक चौंसठवा अध्याया समाप्त ।६४।

अध्याय ६५

तारकद्वादशी का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—गोविन्द ! मैं पृथिवी का क्षय करने वाला, पापी एवं आप का महान् अपराधी हूँ,
 अतः आप के चरण की बन्दना करके मैं पूछ रहा हूँ कि—सर्वथेष्ठ एक गूढ़ से भी गूढ़ व्रत बताने की कृपा
 कीजिये । जिससे भीष्म-द्रोण के वध-जनित उस अगाध पाप-सागर को पार कर सकूँ । १-२

श्रीकृष्ण उवाच

आसीतुरोत्तरो नामा विदर्भयां कुशध्वजः । सांतःपुरसुतो यश्च दक्षे राज्यमतंद्रितः ॥३
 जघान तापसं सोऽथ प्रमादान्मृगयां गतः । मृगं मत्वा महारण्ये ब्राह्मणं दैवमोहितः ॥४
 तेन कर्मविपाकेन देहान्ते नरकं गतः । तत्रासौ यातना घोरा अनुभूयातिपीडितः ॥५
 तस्मादिहागतो भर्त्ये रौद्रो विषधरोऽभवत् । अदशत्सोऽपि राजेन्द्र ब्राह्मणं चरणे स्था ॥६
 लब्ध्वा सह च पञ्चत्वं जगाम छिजसंयुतः । विपन्नस्तु ततः सिंहो द्वितीयेऽभूत्सुदारणः ॥७
 विदारितमुखो हिंसो नानास्त्वद्भयकरः । जघानासौ पुनः श्वेषं राजन्यं मृगया गतम् ॥८
 ततोऽपि द्वुभिः शस्त्रै राजलोकैर्निपातितः । पुनर्व्याघ्रो बभूवासौ तृतीयेऽपि भवत्तरे ॥९
 तीक्ष्णपादनखाधातव्यापादितमृगान्वयः । तेनापि दैश्यो निधनं नीतः किंच्चद्वनान्तरस् ॥१०
 स नीतः कृमिराशित्वं लोकैः ज्ञातनिपातनात् । सञ्जातस्तु महानृक्षो नखराहतजन्तुरुक् ॥११
 जघान बालं चण्डालादसौ मृत्युमवायुमयत् । पञ्चमे मकरो जातः समुद्रेऽतिभयकरः ॥१२
 स्त्रियं जघान तरुणीं भनातुकामामयागताम् । प्रभाते शङ्खरस्याग्रे शशाङ्कग्रहणे निशि ॥१३
 तत्रापि बडिशं दत्त्वा जनैः प्राणैर्वियोजितः । पुनः षष्ठे भवे जातः पिशादः पिशिताशनः ॥१४
 कूरश्छिद्रपरः लुद्रो नरप्राणविदेजकः । सोऽवतीर्णो नरस्यांगं कर्षयामास कस्यचित् ॥१५

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में विदर्भ देश का अधीश्वर राजा कुशध्वज था, जो अपने स्त्री-पुत्र समेत सतत प्रयत्न द्वारा प्रजाओं के पालन-पोषण में सदैव व्यस्त रहता था । एक बार मृगयार्थ जंगल में जाकर दुर्दैव वश मोहित होकर प्रमादी की भाँति धूमते हुए उस राजा ने मृग के धोखे में एक तपस्वी ब्राह्मण की हत्या की । उस दुर्विपाक के परिणाम-स्वरूप उसे देहावसान होने पर नरक जाना पड़ा । वहाँ की धोर यातनाओं के अत्यन्त कटु अनुभव करने के उपरांत इस मर्त्यलोक में अत्यन्त राद्रै एवं विषधर सर्प की योनि-ग्रहण किया । राजेन्द्र ! पश्चात् उसने अत्यन्त रुद्ध होकर एक ब्राह्मण के चरण में काट लिया, किन्तु उस ब्राह्मण के साथ उसका भी निधन हो गया । दूसरे जन्म में वह दारूण सिंह हुआ, जिसका अत्यन्त विशाल मुख और स्वयं हिंसक एवं समस्त प्राणियों के लिए भयकर था । मृगया के लिए आये हुए किसी राजा का उसने पुनः वध किया, किन्तु, राजा के अनेक सेवकों ने अपने अस्त्रों द्वारा उसका भी निधन किया । तीसरे जन्म में वह भीषण व्याघ्र हुआ, जो अपने चरण के तीक्ष्ण नखों द्वारा जंगल के जन्तुओं का सदैव वध करता था । अनन्तर उस प्रदेश में आये हुए एक वैश्य का उसगे वध किया और अनेक लोगों ने मिलकर उसे भी वहाँ से भगाया, जिससे वह आगे चल कर एक गड्ढे में गिर गया और उसी कारण उसके अंग में असंख्य कृमि उत्पन्न हो गये । उस दुःसह पीडा को सहन करते अनेक दिनों में निधन होने पर कृक्ष योनि प्राप्त किया, जो अपने नखों से जीव जन्तुओं को पीड़ित करते रहते हैं । किसी बालक का हनन करने पर किसी चण्डाल द्वारा उसकी भी मृत्यु हो गयी । पांचवें जन्म में वह समुद्र में भीषण मगर हुआ । ३-१२। एक बार चन्द्र ग्रहण में रात्रि में प्रातः समय शिवालय के सामने समुद्र जल में स्नान करने वाली एक तरुणी स्त्री का उसने वध किया किन्तु उपस्थित लोगों ने उसी समय बडिश द्वारा उसे भी पकड़ कर काल कवलित कर दिया । पुनः छठे जन्म में मांस-भोजी पिशाच हुआ, जो क्रूर, छिद्रान्वेशी, क्षुद्र और मनुष्यों का प्राणहन्ता था । किसी मनुष्य के अंगों के कर्षण करने

मन्त्रेणाहृय सिद्धेन बातिकेन व्यसुः कृतः । सप्तमे स पुनर्जातो दुर्निरीक्ष्यवपुर्भृशम् ॥१६
 कूरदंष्ट्रः करालास्यो मांसशोणितभोजनः । दिग्बासा मरुभूमीषु वाशिष्ठो ब्रह्मराक्षसः ॥१७
 स राष्ट्रं जर्जरं शून्यं सर्वं चक्रे विषादिषु । आकम्य भीमदासेन राजा राक्षसशत्रुणा ॥१८
 समानोप्य धनुः सङ्ख्ये ब्रह्मास्त्रेण निपातितः । भूयोऽशवव्याघ्रसमः स्वजन्मन्यष्टमे भुवि ॥१९
 वनेचराणां कुद्धाङ्गोऽग्नाह्यणात्रिधनं गतः । ततो हस्ती च भल्लूको मातङ्गेन धनुर्भूता ॥२०
 एकादशोऽपि पाञ्चालो भवमध्येऽपि भीषणः । ऊर्ध्वकेशोत्तिरक्ताक्षो जातो हस्ततनुर्दृढः ॥२१
 पापो धर्मध्वजो रक्षो देवतोऽज्ञितमाल्यधृक् । स दण्डपाशिकेनैव दृक्षाग्रे हृवलम्बितः ॥२२
 द्वादशे स पुनर्जातः पुष्टलक्लेशभाजनः । भक्ष्यलोभाद्विलगतो व्याधेन विनिपातितः ॥२३
 तेन चासीकृतं पूर्वं तारकद्वादशीव्रतम् । तस्य प्रभावाज्ञातोऽपि दुष्टयोनौ पुनः पुनः ॥२४
 अवाप शीघ्रं पञ्चत्वं संरारभवत्सागरे । पुनरेवाभवद्राजा विदर्भाद्यां सुधार्मिकः ॥२५
 भूयश्चोपोषितः तेन तारकद्वादशी शुभा । दृश्यतां व्रतमाहात्म्यं जातोजातः पुनः पुनः ॥२६
 व्रतप्रभावद्भुवने भुक्त्वा राज्यमकण्टकम् । प्राप्त विष्णुपुरे स्थानं यावदःभूतसंप्लवम् ॥२७

युधिष्ठिर उदाच

कथमेतद्वतं कृष्ण कर्तव्यं पुरुषोत्तमैः । स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन स्नानदानज्ञपादिकम् ॥२८

(खण्डोचने) पर उसने भी किसी सिद्ध तांत्रिक द्वारा उसका निधन कराया । सातवें जन्म में अत्यन्त दुर्निरीक्ष्य ब्रह्म राक्षस हुआ, जो विकराल, दाँत, भीषणमुख, मांस-शोणितभोजी, दिग्म्बर, भूमिवासी और वाशिष्ठ कुल के समान धातक था । गुर्जर प्रदेश के राष्ट्र को अत्यन्त निर्जन बना देने पर वहाँ के राजा भीमदास ने जो उस राक्षस का महान् शत्रु था अपने धनुष पर वह्यास्त्र के प्रयोग द्वारा उसका निधन किया । आठवें जन्म में पुनः व्याघ्र के समान ही एक अन्य हिसक जंतु हुआ, वनेचरों के लिए सदैद काल स्वरूप था । किसी ग्राहण द्वारा निधन होने पर हस्ती, पश्चात् भल्लूक (रीछ) हुआ किसी धनुर्धारी किरात (वनचर) द्वारा वध होने पर पाञ्चाल (पंजाब) प्रदेश में अतिभीषण राक्षस हुआ, जो उर्ध्वकेश किये, रक्तनेत्र, लघु एवं दृढ़काय, पापी, अर्धम् की मूर्ति एवं सदेव त्यक्त मालाओं को धारण करता था । वह सदैव दण्ड और पाश अस्त्र लिए एक वृक्ष की शिखा पर स्थित रहता था । बारहवें जन्म में अत्यन्त क्लेश भाजन (सर्प) योनि प्राप्त किया जो भक्ष्य के लोभवश विल में प्रवेश करते समय किसी व्याघ्र द्वारा आहत किया गया था । उसने पूर्व काल में तारक नागक द्वादशी व्रत का विधान सुसम्पन्न किया था, जिसके प्रभाव से इस संसार सागर में बार-बार दुष्ट योनियों में जाने पर भी शीघ्र निधन प्राप्त करता था । तदुपरांत वह विदर्भ देश का परम सुधार्मिक राजा हुआ । उसने पुनः उस तारक नामक द्वादशी व्रत का अनुष्ठान उपवास पूर्वक सविधान सुसम्पन्न किया, जिसके प्रभाव से बार-बार जन्म ग्रहण करने पर भी इस भूतल में निष्कंटक राज्य के अनन्त सुखोपभोग करने के उपरांत महाप्रलय समय पर्यन्त विष्णु-लोक का अविच्छिन्न निवास प्राप्त किया । १३-२७

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! पुरुष श्रेष्ठों को किस भाँति इस व्रत को सुसम्पन्न करना चाहिए और पतिव्रताओं को पति की आज्ञा प्राप्त होने पर स्नान दान, एवं जप आदि समेत इसे कैसे सुसम्पन्न करना बताया गया है । २८

श्रीकृष्ण उवाच

मार्गशीर्षे सिते पक्षे गृहीत्वा द्वादशीन्नतम् । अकृत्रिमे जले स्नानमपराह्लै समाचरेत् ॥२९
 प्रणम्य भास्करस्याथ कृत्वा देवार्चनं तथा । होमश्च तावत्स्यातव्ये यावदस्तमितो रविः ॥३०
 ततो भुक्त्वा फलैः पुष्टैर्गन्धधूपविलेपनैः । सजलं सक्षतं कृत्वा सहिरण्यं शुभैः फलैः ॥३१
 रम्ये ताम्रमये पात्रे जानुभ्यां धरणीं गतः । पूर्वामुखः प्रदोषाग्रे सूर्धिर्न कृत्वार्घ्यभाजनम् ॥३२
 भूमौ तु मण्डलं कृत्वा गोमयेन सत्तारकम् । चन्दनेन समालिख्य ध्रुवं हि नगनोन्मुखः ॥३३
 सहस्रशीर्षामन्त्रेण भूमौ शक्त्या शनैः स्वयम् । तारकाणां कुरुश्छेष दद्यादर्घ्यमतन्द्रितः ॥३४
 पर्युक्ष्य धूमसुक्षिप्य दग्धाद्विप्राय दक्षिणाम् । क्रमेण सर्वं निर्वर्त्य भोज्यं भोज्यं निशागमे ॥३५
 प्रार्गशीर्षे खण्डखाद्यं पौषे सोहालकं तथा । तिलतण्डुलकं याधे गुडापूर्णं च फालयुने ॥३६
 मोदकांश्चैत्रमासे तु वैशाखे खण्डवेष्टकम् । ज्येष्ठे सक्तुभृतैः पात्रैराणाढे गुडपूरकैः ॥३७
 श्रावणे मधुशीर्षेण नभस्ये पायसेन च । धृतपर्णेश्चाश्वयुजे कांसारैः कार्तिके क्रमात् ॥३८
 एभिद्वादशभिर्वर्षेभोजयित्वा द्विजान्त्वयम् । भुज्जीत भक्त्या राजेन्द्र पश्चादेवं क्षमापयेत् ॥३९
 समाप्ते तु व्रते कृत्वा राजतं तारकागणम् । दृष्ट्वा वा पूर्वविधिना पूजयित्वा क्षमापयेत् ॥४०
 कुम्भा द्वादश दात्तव्याः सोदका मोदकाश्रिताः । ब्राह्मण्यां प्ररिधानं च पद्मरागः सकुंचकः ॥४१
 ब्राह्मणे बलगुललाटं लक्षपुष्पोपशोभितम् । चालकेनोपवीतं च पुष्पं दत्त्वा क्षमापयेत् ॥४२

श्रीकृष्ण बोले—मार्गशीर्ष मास की शुक्ल द्वादशी के दिन अपराह्ल समय किसी नदी अथवा अन्य अकृत्रिम जलाशय में स्नान, भास्कर को प्रणाम और देवार्चना के उपरांत सूर्य के अस्त होने समय तक हवन कार्य सुसम्पन्न करके भोजनानन्तर प्रदोष के समय ताम्र पात्र में फल, पुष्प, गन्ध, धूप, अनुलेपन, अक्षत, जल और सुवर्ण रखकर धूटने के बल पूर्वाभिमुख बैठकर गोमय से मंडलाकार लिपी हुई भूमि में चन्दन द्वारा ताराओं की निर्मित प्रतिमा के लिए आकाश की ओर देखते हुए 'सहस्रशीर्ष' मंत्र के उच्चारण पूर्वक धीरे धीरे अर्घ्य प्रदान करे । पश्चात् धूम का पर्युक्षण (सिंचन) करके वे सभी वस्तुएं दक्षिणा समेत किसी विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित कर क्रमशः सभी कार्यों के सुसम्पन्न होने पर ब्राह्मण भोजन तथा स्वयं भोजन करे । इसी प्रकार प्रतिमास में इसे सुसम्पन्न करते हुए मार्गशीर्ष मास में खांड की वस्तु, पौष में सोहाल, माघ में तिल चावल के लड्डू, फालयुन में गुड का प्रूआ, चैत्र में मोदक, वैशाख में खांड का पदार्थ, ज्येष्ठ में सामग्री समेत सतू का पूर्ण पात्र, आषाढ़ में गुड समेत पूरी, श्रावण में मधु मिथित पदार्थ भाद्रपद में पायस, अश्विन में धृत का तरल पदार्थ और कार्तिक में कसेल के भोजन करना चाहिए । राजेन्द्र ! इस प्रकार बारह वर्ष तक व्रत को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण भोजनोपरांत भोजन करे और भक्ति समेत देव की क्षमा प्रार्थना करे । २९-३१ । व्रत के समाप्त होने पर चाँदी की तारागण की प्रतिमा बनवाकर पूर्वोक्त सविधान पूजन तथा क्षमा प्रार्थना करके मोदक समेत जलपूर्ण बारह घट, ब्राह्मणी के लिए साड़ी, कञ्जकुकी (चौली) और पद्मरागमणि के भूषण, ब्राह्मण के लिए सौन्दर्य पूर्ण शिरोभूषण जो एक लक्ष पुष्पों से विभूषित किया गया हो, तथा चालक द्वारा (निर्मित) उपवीत एवं पुष्प अर्पित कर

अनेन विधिना राजन् यः करोति व्रतं नरः । नारी चा भरतश्रेष्ठ भक्तिभावपुरः सरा ॥४३
 नक्षत्रलोकं व्रजति विमानेर्कवर्चसा । अप्सरोगणगन्धर्वयक्षविद्या धरामरैः ॥४४
 सहस्रभर्ता स्वलोके पूज्यमाने दिवाकरैः । वसेत्कल्पायुतं यावत्पुनर्विष्णुपुरं व्रजेत् ॥४५
 एतद्व्रतं पुरा चीर्ण शब्दा रात्मा श्रियेभ्या । सीतया दमयंत्या च हृक्षिमण्या सत्यभास्या ॥४६
 मेनाया रंभया स्वर्गे उर्वशया देवदत्तया । अन्याभिरपि नारीभिः पुरुषैश्च पृथग्वधैः ॥४७
 चीर्णमेतद्व्रतं पार्थ सर्वपापभ्यापहम् ॥४८

जन्मान्तरेष्वपि कृतानि हरत्यथानि या संदहत्यहरहः सुकृतोपयोगात् ।

सा द्वादशी जग्नाते तारकनामपेया तन्नास्ति यन्न विद्धाति कृता ननुष्टैः ॥४९

इति श्रीभविष्यमहापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

तारकद्वादशीव्रतं नाम पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः । ६५

अथ श्टूषष्ठितमोऽध्यायः

अरण्यद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्नूहि मे सम्यगरण्यद्वादशीव्रतम् । सप्राशनं सोपवासं सरहस्यं समन्वकम् ॥१

क्षमा प्रार्थना करे। राजन्, भरतश्रेष्ठ ! इस विधान द्वारा इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को सूर्य के समान प्रकाशित विमान पर सुशोभित और अप्सराओं, गन्धर्व, यशः एवं विद्याधर-देवों तथा साक्षात् दिवाकर से पूजित होकर नक्षत्र लोक की प्राप्ति होती है। दश सहस्र कल्प तक वहाँ के सुख पूर्ण निवास करने के उपरान्त विष्णुलोक की प्राप्ति होती है । ४०-४१। पार्थ ! पहले समय में इन्द्राणी समेत इन्द्र, लक्ष्मी सहित मैं, सीता, दमयन्ती, रुक्मिणी, सत्यभामा, मेना, रम्भा, उर्वशी एवं देवदत्ता और अन्य स्त्री-पुरुषों ने पृथक्-पृथक् इस समस्त भयहारी व्रत को सविधान सुसम्पन्न किया है। सुकृत कर्मों के योग से जो जमान्तरीय एवं नित्य के पापों का शमन करती है, उसे संसार में तारक द्वादशी के नाम से स्वात किया गया है, इसलिए इस व्रत को सभी मनुष्य अत्यन्त प्रेम से सुसम्पन्न करते हैं । ४६-४९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में

तारक द्वादशी व्रत वर्णन नामक पैसठवाँ अध्याय समाप्त । ६५।

अध्याय ६६

अरण्यद्वादशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! मुझे आप अरण्य द्वादशी व्रत के विधान, प्राशन, उपवास, रहस्य एवं मन्त्र समेत बताने की कृपा करें । १

श्रीकृष्ण उदाच

कौन्तेय यत्पुरा चीर्णं सीतया वनसंस्थया । व्रतं राघवाक्षयेन प्रशस्तं दोषवर्जितम् ॥२
 लोपामुद्गालये साध्यो मुनिपत्न्यो बहुप्रजाः । भोजितास्तर्पिताः सर्वराहारैः सर्वकामिकैः ॥३
 पश्चिनीपश्चविस्तीर्णे सोपदंशैर्यथा नवैः । भृण्यभूज्यैस्तथा लेहैश्चोष्यैश्चापि यदृच्छया ॥४
 तामिहैकमनाः पार्थः शृणुष्वात्रण्डादशीम् । मार्गशीर्षे सिते पक्षे एकादश्यां दिनोददे ॥५
 स्नात्या नरः सोपवासः छृत्वा पूजां जनार्दने । गन्धपुष्याक्षतैर्घृष्णैर्यैर्जगिरणैनिशाम् ॥६
 नीत्वा प्रभाते गत्वा च वने वेदाङ्गपारगान् । भोजयित्वा फलप्रायं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥७
 पञ्चग्रव्यं प्राशयित्वा पूर्वमेवाथ तद्दिने । वर्षमेकं शुभं पूर्णं पारयित्वा युधिष्ठिरः ॥८
 श्रावणे कार्त्तिके भाद्रे^१ चैत्रे वाथ समर्चिते । सोपदंशैः पत्रशाकैस्तिलशङ्कुलिकः दिभिः ॥९
 अपूर्वैः^२ खण्डवेष्टैश्च मरीचैः सिंहकेसरैः । धूलीमुखरमृतफलैः स्वादुकोकरसैः शुभैः ॥१०
 शीतलैस्तर्पयेद्विद्वानर्कपुष्पैः सुमालकैः । दधिक्षीराज्यपाणिज्यैश्चातुर्जातिकरञ्जितैः ॥११
 कर्पूरनखविद्वैश्च मधुरैः पन्तोत्तमैः । बहुतृक्षं वनं गत्वा सुस्वादुसङ्गितं शिवम् ॥१२

श्रीकृष्ण बोले—कौतेय ! वनवास के समय जानकी जी ने अपने पति राघव की आज्ञा शिरोधार्य कर इस दोषहीन एवं प्रशस्त व्रत को सुसम्पन्न किया था । उसी प्रकार (अगस्तपत्नी) लोपामुद्गा के आश्रम निवासिनी अनेक मुनिपत्नियों ने, जो अनेक संतानों से सुशोभित थीं, समस्त प्रकार के यथेच्छ भोजनों द्वारा ब्राह्मणों को संतुष्ट करती हुई, इस व्रत को सुसम्पन्न किया । उन्होंने कमल के विस्तृत पत्र पर लेहन, चोष्ण, नवीन उपदंश्य आदि अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्यों द्वारा विप्रों को तृप्त किया था । पार्थ ! उसी अरण्य द्वादशी का व्रत विधान मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । मार्गशीर्ष मास की शुक्ल एकादशी के दिन प्रातः सूर्योदय के समय स्नान करके उपवास नियम के ग्रहण पूर्वक गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप द्वारा भगवान् जनार्दन के सप्रेम पूजा सुसम्पन्न करके जागरण करते हुए रात्रि व्यतीत करें । उपरात रात्रि अवधि अनेक भगवान् की पूजा करके उपदंश्य, पत्र, शाक, तिलमिश्रित शङ्कुली, खांडपूर्ण एवं मिर्च नागकेसर आदि सुगन्धित वस्तु मिश्रित मालपूआ, अत्यन्त सुस्वादु, सरस, मनोहर एवं अमृत के समान मधुर धूली मुख आदि फल शीतल, सुस्वादु एवं मधुर जल से भलीभाँति विद्वान् को तृप्त करे, जो अर्कपुष्प की माला सुशोभित किया गया हो । दही, क्षीर एवं धूत प्लुत पदार्थों और कर्पूर वासित मधुर कटहल फल अर्पित करे । २-१। अनन्तर अनेक वृक्ष के सघन जंगल के निवासी बारह ब्राह्मण विद्वानों को भद्रासन

सुखासनोपविष्टांश्र प्रागुद्भुखवच्छुचीन् । भोजयेद्श च द्वौ वा सुनीनारण्यवासिनः ॥१३
एकदण्डीस्त्रिदण्डींश्र गृहस्थांश्रापि सुव्रतान् । ब्राह्मणीर्विविधाः सप्त एकपत्नीः पतिव्रताः ॥१४
चार्वंग्यश्वार्चिताः स्नाताः सर्वावियमशोभनाः । सुवस्त्राः कुंकुमाक्ताङ्गाः सुगन्धकुमुमाञ्चिताः ॥१५
अङ्गीर्वा भोजनीयस्तास्ताश्रादित्यस्य देवताः । वासुदेवजनार्दनदामोदरमधुसूदनाः ॥१६
पद्मनाभकृष्णविष्णुगोवर्द्धनविविक्षिमाः । श्रीधरश्च हृषीकेशः पुण्डरीकाक्ष आदिवाराहः ॥१७
एभिद्वादशभिर्मन्त्रैर्नमस्कारान्तप्योजितः । गन्धचन्दनसम्बस्त्रं धूपं दत्ता पृथक्पृथक् ॥१८
भोजयित्वा शुभान्नानि इद्यात्ताभ्यः सुदक्षिणाम् । प्राणम्य प्रार्थयेद्भूक्त्या विष्णुर्मे प्रीयताभिति ॥१९
ततो भुञ्जीत सहितो भूत्यैः प्रेष्यजनेन च । आगताभ्यागतैर्लोकैः सुहृत्सन्बन्धबन्धुभिः ॥२०
एवं कौन्तेय कुरुते योऽरण्यद्वादशीं नरः । स देहान्ते विमानस्थो दिव्यकन्यासनावृतः ॥
याति ज्ञातिसमायुक्तः द्वेतद्वीपं हरे: पुरम् ॥२१
यत्र लोकाः पीतवस्त्राः श्यामदेहाश्रुतुर्भुजाः । शङ्खचक्रगदापद्मचारुहस्तः सकौस्तुभाः ॥२२
गरुडामनाः साभरणा मुकुटोत्कटकुण्डलाः । नीलोत्पलोद्दामपद्मभालयालकृतोरसः ॥२३
लक्ष्मीधरा मेघवर्णाः कपूराङ्गदभूषणाः । तिष्ठन्ति विष्णुसामान्ये यावदाभूतसंप्लवम् ॥२४

पर पूर्व और उत्तराभिमुख सुखासीन कर उपरोक्त वस्तुओं के भोजन से तृप्त करना चाहिए जिनमें एक दंडी और त्रिदण्डी संन्यासी तथा कर्मनिष्ठ गृहस्थ भी हो। उस समय सात ब्राह्मणी के भोजन भी सुसम्पन्न करे, जो अपने पति की एक वही पत्नी एवं पतित्रता हो। उन सुन्दरियों को सर्वाङ्ग स्नान लेपन (उपटन) सुवासित सुन्दर वस्त्र, कुंकुम, सुगन्ध और पुष्पों द्वारा अंग प्रत्यंग, सुशोभित कर सुन्दर भोजनोपरांत वासुदेव, जनार्दन, दामोदर, मधुसूदन, पद्मनाभ, कृष्ण, विष्णु, गोवर्द्धन, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष एवं आदिवाराह, के अंत में नमस्कार पद जोड़कर (वासुदेवायनमः) गंध, चंदन, वस्त्र, धूप द्वारा पृथक्-पृथक् उनकी पूजा करके दक्षिणाओं से अत्यन्त प्रसन्न करे। पश्चात् प्रणाम पूर्वक प्रार्थना करे कि—‘विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों,। इस प्रकार इस विधान द्वारा सुसम्पन्न करके सेवक, दूत, आगन्तुक, मित्र, एवं बन्धुओं समेत भोजन करे। कौतेय! अरण्य द्वादशी व्रत को इस प्रकार सुसम्पन्न करने वाला मनुष्य देहावसान के समय विमान पर स्थित होकर दिव्य कन्याओं से सुसेवित होते हुए अपने बन्धुओं समेत श्वेत द्वीप नामक विष्णु के लोक की प्राप्ति करता है जिस लोक के निवासी के पीत वस्त्र, श्यामल देह, चारभुजाएं शंख चक्र, गदा, पद्म से भूषित रहती है, कौस्तुभमणि, गरुड वाहन, भूषण, मुकुट कुण्डल से भूषित और नीलकमल की भाँति सूत्र में गुरुथी हुई कमल की माला से सुशोभित वक्षःस्थल है। लक्ष्मी धारी, मेघ वर्ण एवं कपूर्व, अङ्गद भूषण भूषित वे निवासी सामान्यतः वहाँ विष्णु समान ही दिखायी देते हैं। महाप्रलय तक वहाँ सुखोपभोग करने के अनन्तर इस भूतल में जन्म ग्रहण करने पर महातेजस्वी,

तत्सादेत्य महातेजाः पृथिव्यां दृपद्युजिताः । मर्त्यतोके कीर्तिमन्तः सम्भवन्ति नरोत्तमाः ॥२५
ततो यान्ति धरं स्थानं मोक्षमार्गं शिवं शुभम् । यत्र गत्वा न शोचन्ति न संसारे भ्रमन्ति च ॥२६

ये द्वादशीमुपवसन्ति सितामरण्यनाम्रीं वने द्विजवरानथं भोजयन्ति ।
साध्यः स्त्रियः सुचरिताभरणाश्र तासां विष्णुः प्रसादमुपयाति ददाति मोक्षम् ॥२७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अरण्यद्वादशीव्रतं नाम षट्षष्ठितमोऽध्यायः ।६६

अथ सप्तषष्ठितमोऽध्यायः

रोहिणीचन्द्रव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

घनावृते वरे देवे वर्षाकाले छुपस्थिते । मयूरकेकाकुलिते दर्दुरारावपूरिते ॥१

राजाओं के पूज्य एवं प्रख्यात कीर्तिमान होते हैं । पश्चात् देहावसान होने पर शिव प्रसाद उस परम पद (मोक्ष) की प्राप्ति करते हैं । जहाँ पहुँच कर किसी प्रकार कर शोक और संसार भ्रमण (जन्म मरण) नहीं होता है । इस प्रकार द्वादशी के दिन उपवास पूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले, जिसमें अरण्य निवासी ब्रह्मण विद्वानों को भोजन और पतिव्रता स्त्रियों को भोजन एवं आभूषण वस्त्र से सुसम्पन्न किया जाता है, पुरुष को प्रसन्नता पूर्ण होकर विष्णु मोक्ष प्रदान करते हैं । १२-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बाद में
अरण्यद्वादशी व्रत वर्णन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त । ६६ ।

अध्याय ६७

रोहिणीचन्द्रव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—कृष्ण ! वर्षा काल के समय घनाच्छादन आकाश को देखकर मयूर और दादुर (मेंढक) अपनी वाणियों से मुखरित करते हैं, उन दिनों कुल स्त्रियाँ किस देवता की पूजा करती हैं,

कुलस्त्रियः प्रयच्छन्ति कस्यान्नं काऽत्र देवता । किं ब्रतं कृष्ण विष्ण्यात्मनं कस्यां तिथौ भवेत् ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

प्रवृत्ते श्रावणे मासि कृष्णपक्षे ह्युपस्थिते । एकादश्यां शुचिर्भूत्वा सर्वोषधिजलैः शुभैः ॥३
भाष्वचूर्णेन राजेन्द्र कुर्याद्दुरिकाशनम् । मोदकांश्च तथा पञ्च धृतपक्वान्तुर्निर्मलान् ॥४
नरमेकैकमुद्दिश्य ततो गत्वा जलाशयम् । दुष्ट्यादोविहितं सतोयं जलजैर्युतम् ॥५
तस्यैव पुलिने रम्ये जुष्टान्ने गोमयादिना । कृत्वा मण्डलकं वृत्तं पिष्टकःदिभिरच्चितम् ॥६
चर्चितं गन्धकुमुमैर्घूपदीपाक्षतोज्ज्वलन् । तत्र चन्द्रं लिखेदेव रोहिण्या सहितं विभुम् ॥
अर्चयेच्च सभार्यो दै मन्त्रेणःनेन भावितः ॥७

रोगराज नमस्तुभ्यं रोहिण्ये ते नमोनन्दः । महासति महादेवि सम्पादय ममेप्सितम् ॥८
एवं सम्युज्य तस्याप्य नैवेद्यं देयमन्तिम् । हत्रैव ब्राह्मणे दद्यात्सोमो मे प्रीयतामिति ॥
प्रीयतामिति मे देवी रोहिणी सहितप्रिया ॥९

एवमुच्चार्य दत्त्वा च ततोऽतर्जलमाविशेत् । कण्ठान्तं कटिमात्रं वा गुल्फान्तं दा जलाशये ॥१०
ध्यायेच्च मनसा सोमं रोहिणीसहितं तदा । यावत्समस्तं तद्वृक्तं भुक्त्वा चान्तस्तटे स्थितः ॥११

भोजनार्थ कौन अन्न अर्पित करती हैं, उस व्रत का नाम क्या है, और किस तिथि में किस पुत्र की प्रधानता बतायी गयी है : १-२

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! श्रावण मास की कृष्ण एकादशी के दिन समस्त औषधमिश्रित जल से पवित्र होकर उरदी के चूर्ण का इन्दुरिकाशन और धृतपदव निर्मल मोदक प्रत्येक व्यक्ति के पर्याप्त भोजनार्थ एक एक के उद्देश्य से बनाकर प्रह आदि दुष्ट जन्तु से ही किसी उत्तम जलाशय के रमणीक तट पर गोमय से मण्डलाकार लीप कर चूर्ण आदि से सुशोभित करे अनन्तर गंध, कुसुम, धूप, दीप से अर्चना करते हुए श्वेत-अक्षतों द्वारा रोहिणी समेत चन्द्रमा को मुन्दर प्रतिमा बनाकर इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सप्रेम उनकी पूजा करे—सोमराज को नमस्कार है, और महासती एवं महादेवी रोहिणी को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ, आप लोग मेरी कामनाशीघ्र सफल करे । इस भाँति भक्ति पूर्वक पूजन करके नैवेद्य अर्पित करे और उसे उसी स्थान ब्राह्मण को प्रदान करते समय 'रोहिणी देवी समेत चन्द्र देव मुञ्च पर प्रसन्न हों' ॥३-९ । ऐसा कहते हुए जल के भीतर कठ, कठि या गुल्फ (एड़ी) तक के जल में प्रविष्ट होकर रोहिणी समेत सोम का ध्यान करते हुए उसका भक्षण करे और उसके समाप्त होते ही तत्पर स्थित हो जाये । नियम पूर्वक वहाँ रहकर अन्त में ब्राह्मण भोजन और दक्षिणा से उन्हें तृप्त कर दृढ़ प्रतिज्ञा करे

नियम्य वसताम् चान्ये ततो विप्राय भोजनम् । दक्षिणासहितं देयं निश्चयं वाचि कल्पयेत् ॥
 भक्त्या शक्त्या यथाचित्तं यथावित्तं तथा तथा
 ॥१२
 यः करोति गरो राजन्नारी वाथ कुमारिका । वर्षेवर्षे विधानेन पार्थेदं रोहिणीन्नतिम् ॥१३
 इह लोके चिरं स्थित्वा धनधान्यसमाकुले । गृहाश्रमे शुभां लब्ध्वा पुत्रपौत्रादिसन्ततिम् ॥१४
 ततः सुतीर्थं नरणं ततो ब्रह्मपुरं ब्रजेत् । तस्माद्विष्णुपुरं पार्थं ततो रुद्रपुरं शुभम् ॥१५
 खे रोहिणी शशधारभिमता हिता च किं कारजं शृणु नरेन्द्र निवेदयामि ।
 सम्पूर्णसापरचितेन्द्रिकाशितुं यद्वृक्तं जटे गुडघृतेन फलं तदेतत् ॥१६
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 रोहिणीचन्द्रव्रतं नाम सप्तषष्ठितमोऽध्यायः ॥६७

अथाष्टषष्ठितमोऽध्यायः

अवियोगव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अवियोग व्रतं ब्रूहि मम यादवनन्दनं । विधानं तस्य कीदृक्च किं पुण्यं काऽत्र देवता ॥१

कि—‘मैं भक्ति पूर्वक यथाशक्ति मनोनुरूप इस व्रत को मुसम्पन्न करता रहूँगा’। इस प्रकार इस रोहिणी व्रत को मुसम्पन्न करने वाले कुमार अथवा कुमारी को इस लोक में धन धान्य समेत गृहस्थाश्रम के एवं पौत्रादि समेत सुखोपभोग करने के उपरांत किसी प्रतिष्ठा सुतीर्थ में देहावसान होने पर ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है। पार्थ ! पश्चात् विष्णु लोक और रुद्र लोक की भी क्रमशः उसे प्राप्ति होती है। इस भाँति नरेन्द्र ! मनुष्य को ऊपर सदैव रोहिणी समेत चन्द्रमा के प्रसन्न रहने का कारण मैं बता रहा हूँ मुनो ! इस व्रत के अनुष्ठान के समय जल के भीतर प्रविष्ट होकर माष (उरदी) के चूर्ण में गुड़ धी डाल कर चन्द्रमा के आकार बने उस मधुर भक्ष्य (इन्द्रादि का) के भक्षण करना ही इस का मुख्य कारण बताया गया है। १०-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

रोहिणी चन्द्र व्रत वर्णन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६७।

अध्याय ६८

अवियोगव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यादवनन्दन ! मुझे अवियोग व्रत के विधान, उसके पुण्य और प्रधान देवता के बताने की कृपा कीजिये । १

श्रीकृष्ण उवाच

श्रुणु पाण्डव यत्नेन कथ्यमानं यथाखिलम् । अवियोगव्रतं नाम व्रतानामुत्तमोत्तमम् ॥२
 प्रौष्ठपदे शुक्लपक्षे द्वादश्यां प्रातःतरुत्थितः । यस्तु शुक्लाम्बरधरः स्नात्वा पूर्वं जलाशये ॥३
 हृद्ये रस्ये सौधटे हरिं लिख्येत मण्डले । गोधूमचूर्णपिष्टेन लक्ष्मीं तत्पार्षवर्तनीम् ॥४
 तत्रैव च हरं गौरीं सावित्रीं ब्रह्मणा सह । राजीसहितं च रविं त्रैलोक्योद्योतकारकम् ॥५
 गन्धैः पुण्येश्च धूपैनैवैद्यरर्चयेद्यथाशक्त्या । अवियोगव्रततच्चरी मन्त्रेणानेन राजेन्द्र ॥६
 नारी वा पुरुषो वा अवियोगमर्तिं दृढां कृत्वा । भक्त्या धारानीं मौनीं दास्पत्यं पूजयेद्वद्म् ॥७
 सहस्रमूर्ढा पुरुषः पद्मनाभो जनार्दनः । व्यत्सोऽपि कपिलाचार्यो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥८
 नारायणो मधुलिहौ विष्णुर्दामोदरो हरिः । महावराहो गोविन्दः केशवो गरुडध्वजः ॥९
 श्रीधरः पुण्डरीकाक्षो दिव्यधूलपस्त्रिविक्रमः । उपेन्द्रो वामनो रामो वैकुण्ठो माधवो ध्रुवः ॥१०
 वासुदेवो हृषीकेशः कृष्णः संकर्षणोऽच्युतः । अनिरुद्धो महायोगी प्रद्युम्नो नन्द एव च ॥११
 नित्यं स मे शुभः प्रीतः सश्रीकः केशशूलिनः । उमापर्तिनीर्लकण्ठः स्थाणुः शम्भुर्भगाक्षिणा ॥१२
 ईशानो भेरवः शूली व्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः । कपर्दीशो महालिंगी महाकालो वृषध्वजः ॥१३
 शिवः शर्वो महादेवो रुद्रो भूतमहेश्वरः । ममास्तु सह पार्वत्या शङ्करः शङ्करश्चिरम् ॥१४
 ब्रह्मा शम्भुः प्रभुः स्त्रष्टा पुष्करी प्रपितामहः । हिरण्यगर्भं वेदज्ञः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥१५
 चतुर्मुखः सृष्टिकर्ता स्वयंभूः कमलासनः । विरच्चिं विद्योनिश्च ममास्तु वरदः सदा ॥१६

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! समस्त व्रतों में परमोत्तम इस अवियोग नामक व्रत की व्याख्या विस्तार पूर्वक तुम्हें बता रहा रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी के दिन प्रातः काल किसी जलाशय में स्नान नित्य कर्म सुसम्पन्न करने के अनन्तर उसी जलाशय के सुरभ्य तट पर गेहूँ के चूर्ण (आटे) द्वारा विष्णु लक्ष्मी, हर-गौरी, ब्रह्मा-सावित्री, और राजी समेत त्रैलोक्य निर्माता सूर्य की सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा बनाकर यथा शक्ति गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य समेत भक्ति पूर्वक मंत्रोच्चारण करते हुए सविधि अर्चना करनी चाहिए । उसी समय स्त्री पुरुष स्त्री को अवियोग व्रत के लिए दृढ़ संकल्प भक्ति समेत ध्यान, एवं मौन होकर देव दम्पत्तियों की पूजा प्रारम्भ कर अन्त में क्षमा प्रार्थना भी करते रहना चाहिए कि—सहस्र शीर्षा (शिर) वाले पुरुष, जिन्हें, पद्मनाभ, जनार्दन, व्यास, कपिलाचार्य, भगवान् पुरुषोत्तम, नारायण, मधुलिह, विष्णु, दामोदर, हरि, महावराह, गोविन्द केशव, गरुडध्वज, श्रीधर, पुण्डरीकाक्ष, विश्वरूप, त्रिविक्रम, उपेन्द्र, वामन राम, वैकुण्ठ, माधव, ध्रुव, वासुदेव, हृषीकेश, कृष्ण, संकर्षण, अच्युत, अनिरुद्ध, महायोगी प्रद्युम्न, और नन्द कहा जाता है श्री समेत मेरे लिए शुभ प्रदान करते हुए परम प्रसन्न हों । जप-त्रिशूल से सुशोभित उमापति, नीलकंठ, स्थाणु, शम्भु, भगाक्षिणा, ईशान, भेरव, शूली, व्यम्बक, त्रिपुरान्तक, कपर्दी, ईश, महालिंगी, महाकाल, वृषध्वज शिव, शर्व, महादेव, रुद्र, भूत महेश्वर, एवं पार्वती समेत शंकर जी मेरे लिए सदैव शंकर कल्पाणप्रद हों । तथा ब्रह्मा, शंभु, प्रभु, स्त्रष्टा, पुष्करी, प्रपितामह, हिरण्यगर्भ, वेदज्ञ, परमेष्ठी, प्रजापति, चतुर्मुख, सृष्टिकर्ता स्वयं भू, कमलासन, विरच्चिं एवं पद्योनि मेरे लिए सदैव वरदायक हों । २-१६। उसी भाँति आदित्य, भास्कर, भानु,

आदित्यो भास्करो भानुः सूर्योऽर्कः सविता रविः । मार्तण्डो मण्डलज्योतिरप्त्रिरश्मिर्जनेष्वरः ॥१७
 प्रभाकरः सप्तसप्तिस्तरणिः सरणिः खगः । दिवाकरो दिनकरः सहस्रांशुर्मरीचिमान् ॥१८
 पद्मप्रबोधनः पूषा किरणी मेरुभूषणः । निकुञ्जो वर्णभो देवः सुप्रीतोऽस्तु सदा मम ॥१९
 लक्ष्मीः श्रीः सम्पदा पद्मा भा विभूतिर्हरिप्रिया । पार्वती ललिता गौरी उमा शङ्करवल्लभा ॥२०
 गायत्री प्रकृतिः सृष्टिः सावित्री वेघसो मता । राज्ञी भानुमती संज्ञा नित्यभा भास्करप्रिया ॥२१
 इति पद्मनाभशङ्करपितामहाकर्कदीनसप्तिरात्मन्त्रज्य । इत्वादत्त्वा दानं भुक्त्वा चान्ते ब्रजेद्वेशम् ॥२२
 द्वादशयां चरति नरो व्रतमेतद्वक्तिभावितो लोके । भद्रति यशोधनभागी सन्ततिमान्विगत्तसन्तापः ॥२३
 हरिहरहिरण्यगर्भप्रभाकराणां क्रमेण लोकेषु । भुक्त्वा भोगान्विपुलानश्य योगी निर्दृतो भवति ॥२४
 स्त्रीपुंसयोर्यदि युग्मं पुरुषो वा यदि समाचरति कश्चित् । नारी वा व्रतमेतच्चीर्त्वा धात्यालयं विष्णोः ॥२५
 इति श्रीभद्रिष्ठ्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 हरिहरहिरण्यगर्भप्रभाकराणामवियोगव्रतं नामाष्टषष्ठितमोऽध्यायः । ६८

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

गोवत्सद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अक्षौहिण्यो दशाष्टौ च मद्राज्यार्थं क्षयं गताः । तेन पापेन मे चित्ते जुगुप्सातीव वर्तते ॥१

सूर्य, अर्क, सविता, रवि, मार्तण्ड, मण्डल ज्योति, अग्नि रश्मि, जनेश्वर, प्रभाकर, सप्त सप्ति, तरणि, सरणि, खग, दिवाकर, दिनकर, सहस्रांशु, मरीचिमान्, पद्मप्रबोधन, पूषा, किरणी, मेरुभूषण, निकुञ्ज और वर्णभ देव मुझ पर सदा प्रसन्न रहे । लक्ष्मी, श्री, सम्पदा, पद्मा, भा, विभूति, हरिप्रिया, पार्वती, ललिता, गौरी, उमा, शंकरवल्लभा, गायत्री, आकृति, सृष्टि, सावित्री व्रह्मप्रिया, और राज्ञी, भानुमती, संज्ञा, नित्यभा, तथा भास्करप्रिया आदि देवियाँ पति समेत सदैव भुजा पर प्रसन्न रहें । इस प्रकार पद्मनाभ (विष्णु), शंकर, पितामह, एवं सूर्य आदि देवों को पत्नी समेत अर्चना पृथक्-पृथक् दान और व्राह्मण भोजन के उपरांत स्वयं भी भोजन करके घर का प्रस्थान करे । इस प्रकार द्वादशी के दिन भक्ति भावना से इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्य यश, धन, सौभाग्य, एवं संतति की प्राप्ति पूर्वक सदैव विगत संताप रहता है । अनन्तर विष्णु, शिव, ब्रह्मा और सूर्य के लोकों में क्रमशः विपुल सुखोपभोग करने के उपरांत महायोगी की भाँति निर्वाण पद प्राप्त करता है । पुरुष अथवा स्त्री को उपरोक्त देवों की पत्नियों समेत उनकी सविधान पूजा करने पर विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । १७-२५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

हरिहरहिरण्यगर्भ और प्रभाकर के अवियोग व्रत वर्णन नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त । ६८।

अध्याय ६९

गोवत्सद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जगत्पते ! मेरे राज्य प्राप्ति के निमित्त अट्ठारह अक्षौहिणी सैनिकों का वध हुआ

तत्र श्राहृणराजन्यवैश्यशुद्धादयोः हताः । भीष्मद्वेषकलिङ्गादिकर्णशल्यमुयोधनाः ॥२
तेषां वधेन यत्पापं तन्मे मर्माणि कृतति । पापप्रक्षालनं कठिच्छद्र्घं ब्रूहि जगत्पते ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

सुमहत्पुण्यजननं गोवत्सद्वादशीव्रतम् । अत्ति पार्थं महाबाहो पाण्डवनां धुरन्धर ॥४

युधिष्ठिर उवाच

केयं गोद्वादशी नाम विधानं तत्र कीदृशम् । कथमेषा समुद्रन्ना कस्मिन्काले जनार्दन ॥५
एतत्सर्वं हरे ब्रूहि पाहि मां नरकार्णवात् ॥६

श्रीकृष्ण उदाच

पुरा कृतयुगे पार्थं मुनिकोटिः समागतः । तपश्चार विपुलं नामव्रतधरा गिरो ॥७
हर्षेण नहताविष्टा देवदर्शनकाशयः । जम्बूमार्गं महापुण्ये नामतीर्थविमूषिते ॥८
पात्रियात्रे सिद्धपात्रे रम्ये तन्दुलिकाश्रमे । टन्टाविरितिः विष्वाते उत्तमे शिखरे नृप ॥९
तापसारण्यमतुलं दिव्यकाननमण्डितम् । वशिष्ठशुक्राङ्गरसक्रतुदक्षादिभिर्वृत्तम् ॥१०
बल्कलाजिनसम्भीतैर्भृगोराश्रममण्डलम् । नानामृगगणैर्जुष्टं शाखामृगगणैर्युतम् ॥११

है, उस पाप के कारण मेरे चित्त में अत्यन्त जुगुप्ता हो रही है। क्योंकि उस युद्ध में ब्राह्मण, धनिय, वैरूप्य एवं शूद्र जाति के अनेक सैनिक आहत हुए हैं और भीष्म, द्वोण, कलिंगादिकर्ण, शल्य तथा सुयोधन समेत इन सभी के दध जनित पाप मेरे मर्मस्थल को विदीर्ण कर रहा है। अतः इन पापों के प्रक्षालनार्थ किसी धर्माचरण का उपदेश करने की कृपा कीजिये। १-३

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डवों के धुरन्धर, महाबाहो, पार्थ ! अत्यन्त पुण्य जनक गोवत्स द्वादशी नामक व्रत का विधान तुम्हें बता रहा हूँ। ४

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन ! गोद्वादशी किसे कहते हैं, उसका विधान क्या है, और किस समय (इस लोक में) उसका अविभावि हुआ है, हरे ! इन सबके विस्तार पूर्वक उत्तर देते हुए आप मुझे इस नरक सागर से रक्षित रखने की कृपा करें। ५-६

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले समय में कोटि मुनियों ने देव दर्शन की अभिलापा से हर्षमग्न होकर अनेक भाँति के ब्रतानुष्ठान पूर्वक उस पर्वत शिखर पर तप करना आरम्भ किया। जो ‘टटावि’ के नाम से प्रस्त्यात जम्बू मार्ग में परमोत्तम, महापुण्य एवं अनेक तीर्थों से सुशोभित है। उस आश्रम का नाम तन्दुलिकाश्रम है, जो सोमापर्वत और सिद्ध प्रदेशों से सम्मिलित है। नृप ! उस तपसारण्य के विस्तृत क्षेत्र में दिव्य वन की अनुल शोभा सदैव निखरी सी रहती है जो बल्कल एवं मृग चर्म धारी वशिष्ठ, शुक्र, अंगिरापुत्र, क्रतु दक्ष आदि से चारों ओर से आवृत एवं भृगु के आश्रम मण्डल से विभूषित है। वहाँ जगल के सभी प्रकार के जन्तुगण आपस में प्रीति पूर्वक निवास करते हैं। शाखामृग गण (वानरों) के मनोहरदृश्य सदैव होते रहते हैं। सिंह और हरिण, अत्यन्त शांत दिखायी देते हैं। वहाँ सभी वस्तु तथा सभी भाँति के वृक्ष हैं, जो इस प्रकार गहन, निर्झृत, रम्य एवं, अनेक प्रकार की लताओं से आच्छन्न उस

प्रशान्तसिंहरिणं सर्ववस्तुगतद्वम्बम् । गहनं निर्द्वत् रम्यं लतासंतानसंकुलम् ॥१२
 सिंहव्याघ्रगजैर्भिन्नं हरिणः शबरैः शशैः । वराहैरूपमिश्रितैः समन्तादुपशोभितम् ॥१३
 तपस्यता तत्र तेषां मुनीनां दर्शनार्थिनाम् । व्याजं चक्रे महीनाथ द्वादशार्धार्घलोचनः ॥१४
 बभूव ब्राह्मणो वृद्धो जरापाण्डुरमूर्ढजः । इत्थच्चर्मतनुः कुब्जो यष्टिपाणिः सवेष्युः ॥
 उमापि चक्रे गोरूपं शृणु तत्पार्थं यादृशम् ॥१५
 क्षीरोदतोपसम्भूता याः पुरामृतमन्यदेः पञ्च गावः शुभाः पार्थं पञ्चलोकस्य भातरः ॥१६
 नन्दा सुभद्रा सुरभी सुशीला बहुला इति । एता लोकोपकाराद देवानां तर्पणाय च ॥१७
 जगदग्निभरद्वाजवशिष्ठासित गौतमाः । जगृहुः क्षामदाः पञ्च गावो दत्ताः सुरैस्ततः ॥१८
 गोमयं रोचना मूत्रं क्षीरं दधि धृतं शवाम् । षड्ङाणिं पवित्राणि संशुद्धिकरणानि च ॥१९
 गोमयादुत्थितः श्रीमान्बिल्ववृक्षः शिवप्रियः । तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीः श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः ॥
 वीजान्युत्पलपद्मानां पुनर्जर्तानि गोमयात् ॥२०
 गोरोचना च माङ्गल्या पवित्रा सर्वसाधिका । गोमूत्रादगुणगुलुर्जर्तः सुगन्धितः प्रियदर्शनः ॥
 आहारः सर्वदेवानां शिवस्य च विशेषतः ॥२१
 यद्वीजं जगतः किञ्चित्तज्ज्ञेयं क्षीरसम्भवम् । दधुः सर्वाणि जातानि मङ्गलान्यर्थसिद्धये ॥

आश्रम की भूमि में सिंह व्याघ्र, गज, हरिण, शम्बर, शश, वराह, तथा अनेक भाँति के रुह (मृग) स्वच्छन्द चारों ओर निर्वाध भ्रमण करते हैं । उस आश्रम में उन दर्शनार्थी महात्माओं की तपोनिष्ठा को देखकर विनेश शिवजी ने जो पंचदण्ड (१५) नेत्रों से भी अलंकृत है, कुछ व्याज पूर्ण व्यवहार करना आरम्भ किया—उन्होने वृद्ध वाह्यण का रूप धारण किया, वयोवृद्ध होने के नाते उनके शिर के केश अत्यन्त पीत वर्ण के होते थे, शरीर की त्वचा (मांस से) शिथिल होकर झूल रही थी, शरीर में कूबर निकल आया था और वे स्वयं हांथ में षट्पिका (छडी) लिए हिलते काँपते चल रहे थे । पार्थ ! उधर उमादेवी ने भी जिस प्रकार का गोरूप धारण किया था, मैं बता रहा हूँ, भुनो ! पहले समय में क्षीरसागर के मध्यने पर उसमें से पाँच सौन्दर्य पूर्ण गौओं की उत्पत्ति हुई थी, जो लोक माताएँ कही जाती है नंदा, सुभद्रा, सुरभी, सुशीला और ब्रह्मा के नाम प्रख्यात होकर लोक के उपकार और देवों की तृप्ति के लिए आविर्भूत हुई थी । इन पाँचों कामधेनु गौओं को देवों के सप्रेम प्रदान करने पर जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित, एवं गौतम ने सहर्ष प्रहण किया । गौओं के षडंग पदार्थ गोमय, गोरोचन, मूत्र, क्षीर, दधि और धृत, अत्यन्त पवित्र एवं संशुद्धिकारक माने जाते हैं । क्योंकि गोमय से उत्पन्न होने के नाते बिल्ववृक्ष भी सम्पन्न तथा शिवप्रिय है । उस वृक्ष पर पद्महस्ता लक्ष्मी सदैव सुशोभित रहती है, इसीलिए उसे भी श्री वृक्ष कहा जाता है । उसी गोमय द्वारा नील कमल के बीज भी उत्पन्न हुए हैं । ७-२०। गोरोचन, मांगलिक, पवित्र एवं सर्वसाधक है । गोमूत्र से अत्यन्त सुगन्ध द्वारा मनोहरी गुगल की उत्पत्ति हुई है । जो समस्त देवों एवं विशेषकर शिव जी का आहार है । इस समस्त जगत् का जो कुछ थोड़ा बहुत मूल बीज है, वह (गो) क्षीर से ही उत्पन्न हुआ है । जो अर्थ सिद्धि के निमित्त मंगल परम्परा का विधान कहा गया है ।

धृतादमृतमुत्पन्नं देवानां तृप्तिकारणम् ॥१२२
 ब्राह्मणाश्रेव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् । एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥१२३
 गोषु यज्ञाः प्रवर्तते गोषु देवाः प्रतिष्ठिताः । गोषु देवाः समुत्कीर्णाः सषडंगपदक्रमाः ॥१२४
 शृङ्गसूले गवां नित्यं ब्रह्मा विज्ञुश्च संस्थितौ । शृङ्गात्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि च ॥१२५
 शिवो मध्ये महादेवः सर्वकारणकारणम् । ललाटे संस्थिता गौरी नासावंशे च षष्मुखः ॥१२६
 कम्बलांबतरौ नागौ नासापुटसमाश्रितौ । कर्णयोरश्चिनौ देवौ चक्षुर्यां शशिशास्करौ ॥१२७
 दन्तेषु वसवः सर्वं जिह्वायां वरुणः स्थितः । सरस्वती च कुहरे यमयक्षौ च गण्डयोः ॥१२८
 सन्ध्याद्ययं तथेष्टाभ्यां ग्रीवायां च पुरन्दरः । रक्षांसि कुद्रे द्यौश्च पार्षिणकाये व्यवस्थिताः ॥१२९
 चतुष्पात्सकलो धर्मो नित्यं जड्घासु तिष्ठति । खुरमध्येषु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पञ्जाः ॥१३०
 खुराणां परिच्छेभागे राक्षसाः सम्प्रतिष्ठिताः । रुद्रा एकादश पृष्ठे वरुणः सर्वसन्धिषु ॥१३१
 श्रोणीतटस्थाः पितरः कपोलेषु च मानवाः । श्रीरपाने गदां नित्यं स्वाहालङ्कारमाश्रिताः ॥१३२
 आदित्य रश्मयो वालाः पिण्डीभूता व्यवस्थिताः । साकाशगंगा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता ॥१३३
 त्र्यम्बन्तरेवकोटयो रोमकूपे व्यवस्थिताः । उदरे पृथिवी सर्वा सैंलवनकानना ॥१३४
 चत्वारः सागराः प्रोक्ता गावां ये तु पयोधराः । पर्जन्यः क्षीरधारासु मेघा विन्दुव्यवस्थिताः ॥१३५
 जठरे गार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्हृदि स्थितः ।
 कण्ठे आह्वनीयोऽग्निः सम्योऽप्रिस्तातुनि स्थितः ॥१३६
 अस्थिव्यवस्थिताः शैला मज्जासु क्रतवः स्थिताः । ऋग्वेदोऽयर्वदेश्च सामवेदो यजुस्तथा ॥१३७

धृत से अमृत की उत्पत्ति हुई है जिससे देवों को परम तृप्ति हुई है । १२१-१२२। इस प्रकार ब्राह्मणों और गौओं के कुल एक ही हैं किन्तु उसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया है—मंत्र एकत्र स्थित हैं और हवि अन्यत्र गौओं में समस्त यज्ञ एवं देव गण प्रतिष्ठित हैं तथा षडंग वेद पद क्रम आदि समेत उनमें व्याप्त है । गौओं के शृंग सूल में ब्रह्मा, विज्ञु सदैव निवास करते हैं, शृंग के अग्रभाग में समस्त तीर्थ, स्थावर और चर स्थित हैं, मध्यभाग में समस्त कारणों के मूलकारण महादेव शिव विराजते हैं, ललाट में गौरी, नासा वंश में षडानन, नासापुट में कम्बल और अश्वतर नामक नाग, कान में अश्वनीकुमार, नेत्रों में चन्द्र सूर्य, दांतों में सभी वसुगण, जिह्वा में वरुण, कुहर में सरस्वती, गंडस्थल में भाग में यज्ञ यज्ञ, ग्रीवा में दोनों इष्ट संघर्ष समेत पुरन्दर, कुकुद (डिल) में रक्षोगण, पार्षिण (एडी) में आकाश पृथिवी, तथा चार चरण समेत धर्म उनकी जंघाओं में नित्य निवास करता है । खुर के मध्य में गन्धर्व, अग्रभाग में पत्रग (सर्प), खुर के पीछे भाग में राक्षस, पृष्ठ भाग में एकाशशी रुद्र, समस्त सन्धियों में वरुण, भोगीतट में पितर गण, कपोल में मानव, अपान स्थान में भी स्वाहा से अलंकृत होकर सदैव रहती है । आदित्य की उदयकालीन समस्त किरणें समस्त शरीर में स्थित हैं गोमूत्र में साक्षात् गंगा, गोमय में यमुना, रोम कूपों में तैतीस कोटि देवता, और उदर में समस्त शैल एवं कानन समेत पृथिवी, तथा पयोधर में चारों सागरों, क्षीरधारा में पर्जन्य विन्दुओं में मेघगण स्थित है । १२३-१३५। उसी प्रकार जठर में गार्हपत्यार्णि, हृदय में दक्षिणाग्नि कंठ में आह्वनीय अग्नि, तथा तालु में सम्याग्नि अस्थियों में पर्वत गण, मज्जा में क्रतु (यज्ञ), गौओं के सुरक्ष, पीत तथा कृष्ण आदि वर्ण में ऋग्वेद, अथर्ववेद, सामवेद और यजुर्वेद सुव्यवस्थित है । युधिष्ठिर ! इस प्रकार

मुरक्तपीतकृष्णादौ गवां वर्णं व्यवस्थितः । तासां रूपमुमा त्सृत्वा चुरभीणां युधिष्ठिर ॥३८
 संस्मृत्य तत्क्षणाद्गौरी इयेष सदृशीं तनुम् । आत्मानं विदधे देवी धर्मराज शृणुष्व ताम् ॥३९
 षडुन्नतां पञ्चनिन्नां मण्डकक्षीं सुवालधिम् । तात्रस्तनीं शैप्यर्कटं सुखरीं सुमुखीं सिताम् ॥४०
 सुशीलां च सुतस्नेहां सुक्षीरां सुपयोधराम् । गोरुपिणीमुमां स्पृष्ट्वा स्वामिनीं तां सदत्सिकाम् ॥४१
 दर्यगः प्रतरन्हृष्टो महादेवः स्वचेतस्ति । शैनः शनैर्यथौ पार्थं विश्रल्पी महाश्रनम् ॥४२
 दत्त्वा कुलपतेः पादर्वं भृगोस्तां गां न्यवेदयत् । तपस्त्विना महातेजास्तां च सर्वेषु पाण्डद ॥४३
 न्यासरूपां ददौ धेनुं रक्षित्वा तां दिनद्वयम् । यादत्क्षात्वः इतस्तीत्वा जम्बूमार्गं वियाप्यहम् ॥४४
 रक्षित्यामः प्रतिज्ञाते मुनिभिः सुरभीमिमाम् । अन्तर्द्दिसगमदेवः पुनर्वर्द्धं द्वयं बभूव ह ॥४५
 वज्रचक्रनखो दर्वीं ज्वलत्पिङ्गललोचनः । जिह्वा करालवदनो जिह्वालाङ्गूलदारुणः ॥४६
 सन्ध्रायादाश्रमपदं तां च धेनुं सवंत्सिकाम् । त्रासयामास तां देव मुनीनां दिक्षवस्थितः ॥४७
 ऋषयोऽपि रामाकान्ता आर्तनादं प्रचक्रिरे । हहेत्युच्चैः केचिद्वृचुर्द्दुर्हुकारैस्तथापरे ॥४८
 तालास्फोटान्ददुः केचिद्व्याघ्रं दृष्ट्वातिभैरवम् । सापि हम्भारवांश्को गौरश्चुत्य सवत्सिका ॥४९
 तस्या व्याघ्रभयार्तायाः कपिलाया युधिष्ठिरः । पलायन्त्या शिलामध्ये क्षणं खुरचतुष्टम् ॥५०
 व्याघ्रवत्सक्योस्तत्र वन्दितं सुरक्षन्नरैः । दृश्यतेऽतीव सुव्यक्तं तदद्यापि चतुष्टयम् ॥५१

सुरभी के उन रूपों के स्मरण करके गौरी जी ने उनके समान रूप धारण किया । धर्मराज ! देवीजी ने जिस प्रकार का रूप धारण किया है मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ३६-३९। उनके उस मनोहारी शरीर के ये अंग उन्नत, पाँच दिन्ह, मेढ़क के समान नेत्र, सुन्दर वालों से विभूषित पूछ, तात्रपत्र के रामान रत्कर्वण के स्तन, श्वेत वर्ण की कटि, सौन्दर्य पूर्ण खुर, सुशोभन मुखसित वर्ण था । उमा के उस सवत्सा और स्वामिनी गोरुप को देखकर जो सुशील पूर्ण सुत स्नेह से कातर, सुन्दर क्षीर और पयोधर से विभूषित था, अपने हृदय में अत्यन्त हर्षित होते हुए महादेव उसके पीछे धीरे-धीरे चल रहे थे । पार्थ ! विश्रल्प धारी एवं महातेजा महादेव ने उस आश्रम में पहुँच कर कुलपति भृगु महर्षि के पार्श्व में स्थित होकर सभी तापसों के समक्ष निवेदन किया । पाण्डव ! उन्होंने कहा कि— न्यास (धरोहर) रूप में यह गौ आप लोगों के पास रख रहा हूँ, जम्बूमार्ग (तीर्थ) में स्नान कर मैं दो दिन में लौट आऊंगा, आप लोग तब तक इसकी रक्षा करे । हम लोग इस सुरभी की रक्षा अवश्य करेंगे इस भाँति मुनियों के प्रतिज्ञाबद्ध होने पर महादेव ने अन्तर्हित होकर पुनः व्याघ्र का रूप धारण किया । वज्र के समान कठोर एवं तीक्ष्ण कर चरण के नख, दर्वीं (करछी) के समान लम्बी चौड़ी जिह्वा, जपत्वं प्रज्वलित अंगार के समान पिंगल नेत्र, कराल मुख, दारुण लांगूल (पूँछ) थी । उस आश्रम में इस भीषण रूप से वे मुनियों की ओर अवस्थित होकर सवत्सा उस गौ का व्रस्त कर रहे थे । उसके आक्रमण से भयभीत होने वाले महर्षिगण आर्तनाद करने लगे—४०-४७ई। उच्च स्वर से कोई हाय हाय कर रहा था, कोई हुकार और उस भीषण व्याघ्र को देखकर कोई ताली पीट रहाथा वह गौ भी अपने बछड़े समेत गोओं की 'हभा' बोली द्वारा करण क्रन्दन करती हुई पलायन करते लगी । युधिष्ठिर ! व्याघ्र से भयभीत होकर उस कपिला के पलायन करने पर शिलाओं के मध्य में व्याघ्र और वत्स के चारों ओर खुर के चित्त अंकित हैं, जो सुरक्षन्नरों से वन्दित हैं, आज भी

सजलं शिवलिंगं च शम्भोस्तीर्थं तदुत्तमम् । यस्तस्त्वशार्तं राजेन्द्र स गोदध्यां व्यपोहर्ति ॥५२
 तत्र स्नात्वा महातीर्थे जम्बूमार्गे नराधिप ! ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥५३
 ततस्ते मुनयः कुद्धा ब्रह्मदत्तां महास्वताम् । जच्छुर्धटां सुरैर्दत्तां गिरिकन्दरपूरणीम् ॥५४
 शब्देन तेन आयां द्वायां पुक्त्वा गावं सदत्सिकाम् । विप्रैस्तत्र कृतं नाम दुण्डागिरिरिति श्रुतिः ॥
 तं प्रपश्यन्ति दे पार्थ ते एद्वा नात्र संशयः ॥५५
 अथ प्रत्यक्षतां श्रेष्ठस्तेषां देवो महेश्वरः । शूलपाणिस्त्रिपुरहृष्ट कामनो वृषभे स्थितः ॥५६
 उमासहायो वर्त्तः सत्वानी सविनायकः । सनन्दिः समहाकालः सभृङ्गी तमनो हरः ॥५७
 वीरभद्रा च चामुण्डा घण्टाकर्णादिभिर्वृता । मातृभिर्भूतसङ्घातैर्यक्षराक्षरागुह्यकैः ॥
 देवदानवगन्धर्वमुनिविद्याधरोरगैः ॥५८
 प्रणम्य देवेदेवाय पत्नीभिः सहितैरुमा । गोरुपिणी सवत्सा च पूजिता ब्रह्मचारिभिः ॥५९
 कार्त्तिके शुक्लपक्षे^१ तु द्वादश्यां नन्दिनीव्रतम् । ततः प्रभृति राजेन्द्र अदत्तीर्थं महीतते ॥६०
 उत्तानपादेन तथा व्रतं चीर्णपिदं शृणु । उत्तानपादनामासीत्खत्रियः पृथिवीपते ॥६१
 तस्य भार्या द्वयं चासीद्वुचिशुभ्रीति विश्रुतम् । शुभ्रीजातो ध्रुवः पुत्रो वामपादधरोऽलसः ॥६२
 रुच्याः समर्पितः शुद्ध्या ध्रुवोऽयं रक्ष्यतां सखि । अहं करिष्ये शुश्रूषां भर्तुस्तावत्सदा स्वयम् ॥६३

अत्यन्त स्फुट दिखायी देते हैं । राजेन्द्र भगवान् शम्भु का वह सजल एवं परमोत्तम शिवलिंग तीर्थ वहाँ सुशोभित है, जिसके स्पर्श करने से मनुष्य गो हत्या पाप से शीघ्र मुक्त हो जाता है । नराधिप ! वहाँ के जम्बू मार्ग नामक महातीर्थ में स्नान करने पर द्रह्म हत्यादि पाप से प्राणी अवश्य मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं । अनन्तर उन मुनिवृन्दों ने कुद्धा होकर भीषण स्वपन करने वाले उस देव दत्त नामक घटा को बजाया, जो मुरगण प्रदत्त था उसके भीषण रव से व्याप्त होने पर गिरि कन्दरों द्वारा भीषण प्रतिघ्वनि हुई, जिसके कारण उस व्याघ्र ने उस बछड़े समेत गाय को छोड़ दिया । ब्राह्मणों ने उस स्थान की 'दुण्डागिरी' से ख्याति की है । पार्थ ! उसके दर्शन करने वाले अवश्य रुद्र रूप हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं । ४८-५१। तदुपरान्त महादेव ने उन ऋषियों के सम्मुख प्रत्यक्ष होकर उस रूप से दर्शन दिया, जो अत्यन्त सौम्य था—त्रिपुरान्तक एवं कामविनाशी शिव हाँथ में त्रिशूल लिए, उमासमेत वृषभ वाहन पर शोभित, स्वामी कार्तिकेय, विनायक, नंदी, महाकाल, भृगी, वीरभद्रा, चामुण्डा, और घटाकर्ण आदि से विभूषित थे । मातृकाएँ, भूतगण, यक्ष, राक्षस गुप्तक, देव, दानव, गन्धर्व, मुनि, विद्याधर, पन्नग, आदि ब्रह्मचारी गणों ने उमासमेत देवाधि देव भगवान् शिव को प्रणाम कर वत्स समेत गोरुप धारिणी उमा की कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन अर्चना की है । राजेन्द्र ! उसी समय से इस पृथ्वी तल पर यह व्रत अवतरित हुआ है । (राजा) उत्तानपाद ने भी इस व्रत को सविधान सुसम्पन्न किया है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! पृथ्वीपते ! उत्तानपाद नामक एक क्षत्रिय (राजा) थे । रुचि और शुभ्री नामक उनकी दो स्त्रियाँ थीं । शुभ्री पुत्र ध्रुव के उत्पन्न होने पर, जो बालपन के चरण से विभूषित उस समय अत्यन्त सौन्दर्य पूर्ण दिखायी देते थे । शुभ्री ने अपनी पत्नी रुचि को वह पुत्र अर्पित कर दिया और कहा—‘सखि ! इस

१. कृष्णपक्षे तु ।

रुची रसवर्तीं नित्यं प्रत्यहं कुरुते गृहे । अकरोद्भूशुश्रूषां शुद्धनी नित्यं पतिद्रता ॥६४
 कदाचित्कोथमात्सर्यात्सपत्न्यं दर्शतं तया : स्वयं रुच्या निहत्यासौ शिशुः खण्डलशः कृतः ॥६५
 तापिकायां तथा स्थाल्यां पक्षसिद्धः सुसंस्कृतः । अन्नभोजनवेलायां ददाति नृपभाजने ॥६६
 तं वै भजनितुं दुष्टः सामिन् भोजनं किल । अथ भोजनवेलायां वदे जीवितमाप्तवान् ॥६७
 तथैव प्रहसन्वालो मातुरुत्सङ्गजोऽभवत् । तं दृष्टा महदाश्रव्यं रुची प्रपञ्च विस्मिता ॥६८
 किमेतदश्वहि वृत्तान्तं कस्येयं द्युष्टिरुत्तमा । किं त्ययाचरितं किञ्चिद्वत्तं दत्तं हुतं तथा ॥६९
 सत्यंसत्यं पुनः सत्यं देन जीवितं ते सुतः । मयायं सप्त वारांस्तु विशल्य शकलौ कृतः ॥७०
 पक्षवः स्वयं हृतः स्थाल्यां व्यञ्जनैः सह भोजनैः । परिविष्यभाणः स पुनः वारं जीवितमाप्तवान् ॥७१
 किं ते सिद्धा महाविद्या सृतसञ्जीवनी शुभा । रत्नं मणिर्महारत्नं योगाङ्गनमहौषधम् ॥७२
 कथयस्व महाभागे सत्यंसत्यं भगिन्यसि । एवमुक्ते रुचिस्तस्यै व्याचब्यौ वत्सगोव्रतम् ॥७३
 कार्तिके चैव द्वादश्यां यथा दानुष्ठितं पुरा । व्रतस्यास्त्वं प्रभावेज पुनर्जीविति से सुतः ॥७४
 वत्सो मे वत्सवेलायां भृतोऽर्थं नभते पुनः । सप्तगमश्च भवति व्रतैः प्रवसितैरपि ॥७५
 यथार्थमेतद्वच्यत्वयतं ते च गोद्वादशीव्रतम् । तवापि रुचि तत्सर्वं भविष्यति शुभं प्रियम् ॥७६
 एवमुक्तं व्रतं चीर्णं रुच्या पुत्राः सुखं धनम् ! संप्राप्ता जीवितान्ते च ध्रुवस्थाने निवेशिताः ॥७७

बालक ध्रुवकी देखभाल तुम करो ।५६-६३। मैं सदैव पति की शुश्रूषा ही करनी चाहती हूँ । इसलिए इसके पालन करने का समय मुझे नहीं है । रुचि सदैव अपने पति के निर्मित रसागार भंडार गृह में भोजन भी बनाती थी और पतिव्रत शुद्धनी नित्य पति की ओर सेवा करती थी एक बार सापल्य बैर के नाते अत्यन्त कुद्ध होकर रुचि शुद्धनी के पुत्र ध्रुव को खंड खंड करके भोजन पात्र में रखकर प्रज्वलित चूल्हे पर चढ़ा दिया । भोजन के समय राजा के सामने बालक के उत्तर पक्ष वालों को भी रखा । उपरात भोजन के समय वह पुत्र जीवित हो कर अपनी माता के अंक में हैंसते खेलते दिखायी दिया । उसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर रुचि ने शुद्धि से पूछा कि—इस वृत्तान्त को तुम बताओ—यह किस सत्कर्म का परमोत्तम फल है, तुमने किस व्रत का अनुष्ठान, हवन अथवा दान किया है । वह सत्य, और सत्य एवं परमसत्य है । क्योंकि उसी कारण यह तुम्हारा जीवित है । मैंने इसे सात बार स्वयं अपने हाथों से खंड खंड करके परिपक्व किया है और अन्य व्यञ्जनादि भोजनों में इसे उलट पुलट कर अत्यन्त सम्मिलित कर दिया था । फिर भी कैसे यह जीवित हो गया ! क्या तुम उस सिद्ध एवं अमृत संजीवनी महाविद्या को जानती हो, अथवा तुम्हारे पास कोई रत्न, मणि, महारत्न, योगाङ्गन या महौषध है ।६४-७२। महाभागे ! इस वृत्तान्त को सत्य-सत्य बताना, क्योंकि तुम मेरी भगिनी हो । इस प्रकार रुचि के कहने पर शुद्धनी ने इस वत्सगोव्रत की व्याख्या सविधान उसे सुनाया—पहले समय में मैंने कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन इस व्रतानुष्ठान को सविधान सुसम्पन्न किया था, जिसके प्रभाव से यह मेरा पुत्र पुनर्जीवित हुआ है । और यह मेरा वत्सवत्स वेला (सायंप्रातःकाल) में अमृत प्राप्त करता है, तथा प्रवासी होने पर भी इसका समागम होता है । इस प्रकार मैंने इस गोद्वादशी व्रत का माहात्म्य यथार्थ वर्णन कर दिया । इसलिए रुद्र देवि ! तुम्हारी भी इष्ट इससे सिद्ध होगा । इस प्रकार शुद्धन के बताते हुए उस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न कर रुचि ने भी धन पुत्र समेत सुखोपभोग करने के अनन्तर ध्रुव लोक में स्थान प्राप्त किया ।७३-७७। और सृष्टि निर्माता ब्रह्मा के

ब्रह्मणा सृष्टिकारेण रुचिर्भर्ता तहासिता । दशनक्षत्रसंयुक्तो ध्रुवः सोऽध्यापि दृश्यते ॥
ध्रुवर्क्षे च यदा दृष्टे लोकः पापैः प्रमुच्यते ॥७८

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं तद्विधानं च तन्मे ब्रूहि जनार्दन । यत्कृतं शुचिनवचनाद्वच्या यदुकुलोद्भव ॥७९
श्रीकृष्ण उवाच

सन्न्नाप्ते कार्तिके मासि शुक्लपक्षे कुरुत्तमः द्वादश्यां कृतसंकल्पः स्तात्वा प्रुणे जलाशये ॥
नरो वा यदि वा नारी एकभक्तं प्रकृत्ययेत् ॥८०

ततो ग्राध्याद्वालसमये दृष्ट्वा धेनुं सवत्तिकाम् । सुशीलां दत्सलां श्वेतां कपिलां रक्तरुदिणीम् ॥८१

ज्ञाहृणक्षित्रयविशं शूद्राणां स्त्रीजनेश्वर । यथाक्रमेण पूज्यैनां गन्धपृष्ठजलाक्षतैः ॥८२

कुंकुमालक्तकैर्दीपैर्माषान्नवटकैः शुभैः । कुसुमैर्वत्सकं चापि सन्त्रेणानेन पाण्डव ॥८३

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।

प्रनुवोचं चिकितुजे जनाय मा गामनाग्नमदिति वधिष्ठ" नन्मो नमः स्वाहा ॥८४

इत्थं सप्तपूज्यं गां पृष्ट्वा पश्चात्तां च क्षमापयेत् । ॐ सर्वदेवमये देवि लोकानां शुभनन्दिनि ।

मातर्मसाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि ॥८५

एवमम्भर्येदेकां गामेतद्वि गवाह्निकम् । पर्युक्ष्य वारिणा भक्त्या प्रणम्य सुरभीं ततः ॥८६

तद्विने तापिकापक्वं स्थालीपाकं च वर्जयेत् । भूमौ स्वयं ब्रह्मचारी शयीत फलमाप्नुयात् ॥८७

यावन्ति गात्रे रोमाणि गवां कौरवनन्दन । तावत्कालं स वसति गोलोके नात्र संशयः ॥८८

समान अपने पति के साथ रुचि सदैव सुशोभित हुई रहती है । दश नक्षत्रों समेत ध्रुव आज भी दिखायी देते हैं, उनके नक्षत्र के दिन उनके दर्शन करने से मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं । ७८

युधिष्ठिर ने कहा—यदुकुलोद्भव, जनार्दन ! इस व्रत का विधान मुझे बताने की कृपा करें, जिसे शुघ्नी के कहने पर रुचि ने सुसम्पन्न किया है । ७९

श्रीकृष्ण बोले—कुरुत्तम ! कार्तिक मास की शुक्ल द्वादशी के दिन प्रातः किसी पुण्य जलाशय में स्नान करके व्रत के लिए संकल्प करते हुए उस स्त्री या पुरुष को एकाहारी होना चाहिए । अनन्तर मध्याह्न के समय सवत्सा गौ का दर्शन पूजन करे सुशीला एवं वत्सला हो । उसी प्रकार ऋत्रिय, वैश्य, शूद्रों को भी क्रमशः श्वेत, कपिल एवं रक्तरुदिणी की गौ के पूजन बताया गया है । गन्ध, पृष्ठ, जल, अक्षत, कुंकुम, अलक्तक, दीप, और माषान्न (उरदी) के सुशोभन वटक (बड़ा) द्वारा गौ की ओर कुसुमों द्वारा उसके वत्स (बछड़े) की समत्र अर्चना होनी चाहिए । पाण्डवों की माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्याना ममृतस्य नाभिः" आदि मंत्रों द्वारा उस गौ वत्स की पूजा सुसम्पन्न कर पश्चात् आकार पूर्वक प्रार्थनां करे—समस्त देवमय एवं लोक के कल्याण प्रदान करने वाली मातः कुरुनन्दिनि ! मेरी कामना सफल करो ।" इस प्रकार एक गौ की अर्चना की थी क्षमा प्रार्थना के अनन्तर सभी वस्तुओं को जल से अभिसिञ्चित करते हुए सुरभी को भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और उस दिन पक्व भोजन के त्याग पूर्वक भूमि शयन करने से उस ब्रह्मचारी को जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो ! कौरवनन्दन ! गौ के शरीर में जितने लोम होते हैं, उतने दिन वह गोलोक का निश्चल निवास प्राप्त करता है, इसमें सन्देह

मेरोः पुर्यष्टकं रस्यमिन्द्राग्नियमरक्षसाम् । वरुणानिलयक्षाणां रुद्रस्य च युधिष्ठिर ॥
तासाम्नुपरि गोलोकस्तत्र याति स गोदत्ती ॥८९

ऊर्जे सिते द्विदशमेऽहनि गां सवत्सां याः पूजयन्ति कुसुमैर्घटकैश्च हृद्यैः ।
ताः सर्वकामसुखभोगविभूतिभाजो मर्त्ये वसन्ति सुचिरं बहुजीवत्साः ॥९०
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
गोवत्सद्वादशीव्रतं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे देवशयनोत्थापनद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थं प्रवक्ष्यामि गोविन्दशयनं व्रतम् । कटदानं समुत्थानं चातुर्मास्यव्रतक्रमम् ॥१
युधिष्ठिर उवाच

किं देवशयनं नाम देवस्त्वपिति चाप्यसौ । देवः किमर्थं स्वपिति किं विधानं सदा वद ॥२
के मन्त्राः के च नियमः व्रतान्यथं क्रिया च का । किं ग्राह्यं किं च भोक्तव्यं सुप्ते देवे जनार्दने ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

मिथुनस्थे सहस्रांशौ स्थापयेन्मधुसूदनम् । तुलाराशिगते तस्मिन्युनरूप्त्वांपयेद्व्रतम् ॥४

नहीं, जो मेरु पर्वत रहने वाली इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, यक्ष एवं रुद्र की रमणीयक इन आठ पुरियों के ऊपर स्थित हैं। युधिष्ठिर ! इस भाँति कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन कुसुम और वटक (बड़ा) द्वारा सवत्सा गौ की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करने वाला इस मर्त्य लोक में अपने अनेक परिवार समेत चिरकाल तक सभी प्रकार के सुखोपभोग करता है । ८०-९०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बाद में
गोवत्स द्वादशी व्रत वर्णन नामक उन्हतरवाँ अध्याय समाप्त । ६९।

अध्याय ७०

श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में देवशयनोत्थापनद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें गोविन्दशयन नामक व्रत का विधान बता रहा हूँ, जिसमें कट दान, भगवानकार उत्थान, और चातुर्मास्य व्रत का क्रम बताया है, सुनो । १

युधिष्ठिर ने कहा—(देव !) शयन किसे कहा जाता है, क्या भगवान् भी शयन करते हैं! और उनका शयन किमर्थ होता है ! अतः उसके विधान, मन्त्र, नियम, व्रत, उसकी क्रिया, और भगवान् जनार्दन के शयन करने पर भक्ष्य-भोज्य में किस वस्तु का ग्रहण होता है और किसके त्याग आदि सभी बातों को बताने की कृपा कीजिये । २-३

श्रीकृष्ण बोले—सूर्य के मिथुन राशिस्थ होने पर भगवान् मधुसूदन की स्थापना और तुलाराशि

अधिमासे च पतिते एष एव विधिकमः । नान्यथा स्थापयेद्वेवं न चैवोत्थापयेद्वर्तिम् ॥५
 आवादस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः । स्थापयेद्वक्तिमान्विष्णुं शत्रुचक्रगदाधरम् ॥६
 पीताम्बरधरं सौम्यं पर्यञ्जुः स्वास्त्रते शुभे । शुक्लवस्त्रसमाच्छन्ने सोपधाने युधिष्ठिर ॥७
 इतिहासपुराणज्ञो विष्णुभक्तोऽपि यः पुमान् । स्नापयित्वा दधिक्षीरघृतक्षौद्रजलैरत्था ॥८
 समालन्यं शुभैर्गृहीर्घैर्पूर्वस्त्रैरलङ्घितम् । पूजयित्वा कुड्कुमादैर्यत्रेणानेन पाण्डव ॥९
 सुप्ते त्वयि जगन्नाथं जगत्सुप्तं भवेदिदम् । विबुद्धे त्वयि बुधयेत जगत्सर्वं चराचरम् ॥१०
 एवं तां प्रतिरातं दिष्णोः स्थापयित्वा युधिष्ठिर । तस्यैवाप्ये स्वयं वाचं गृह्णीयान्नियमांस्ततः ॥११
 चतुरो वार्षिकः न्मासान्देवस्योत्थापनावधि । स्त्री वा नरो वा भद्रक्तो धर्मार्थं सुदृढव्रतः ॥१२
 गृह्णीयान्नियमः नेतान्दंदधावनपूर्वकम् । तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्कर्तृणां पृथक्पृथक् ॥१३
 मधुरस्वरो भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् । तैलस्य वर्जनात्पार्थं सुन्दराङ्गः प्रजायते ॥१४
 कटुतैलपरित्यागाच्छ्रुक्षयमवान्यात् । मधुकतैलत्यागेन सौभाग्यमतुलं भवेत् ॥१५
 पुष्पादिभोगत्यागेन स्वर्गे विद्याधर्ते भवेत् । योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात् ॥१६
 कटुकाम्लतिक्तमधुरक्षारकाषायमेव च । दो वर्जयेत्स वैरूप्यं दौर्मिंयं नाप्नुयात्क्वचित् ॥१७
 ताम्बूलवर्जनाद्वोगी रक्तकण्ठश्च जापते । घृतत्यागात्सुलावण्यं सर्वसिद्धिः पुनर्भवेत् ॥१८

की संक्रान्ति में उत्थापन करना चाहिए । उस समय अधिक मास के उपस्थित होने पर भी वही विधान एवं क्रम बताया गया है और अन्य रूप से उनकी शयन-स्थापना होनी चाहिए तथा न जागरण रूप उत्थान ही होना चाहिए । आपादङ् शुक्ल एकादशी के दिन उपवास पूर्वक श्वेतस्त्र तथा उपधाव (तोशक-तकिया से) सुसज्जित शय्या के ऊपर भगवान् विष्णु की उस प्रतिमा को, जो शंख, चक्र, गदा एवं पद से सुशोभित और पीताम्बर से विभूषित हो, शयनार्थ स्थापित करें । इतिहासपुराण वेत्ता एवं विष्णु-भक्त उस पुरुष को चाहिए कि—दधि, क्षीर, घृत, मधु, शहद और अन्य में जल से प्रतिमा का स्नान करा कर सुगन्ध के विलेपन पूर्वक धूप वस्त्र से अलंकृत करते हुए कुंकुम आदि के समंत उनकी अर्चना सुसम्पन्न करे । पाण्डव ! तदुपरातं—‘जगन्नाथ, देव ! न्याय के शयन करने पर यह सारा संसार शयन कर जाता है और पुनः प्रबुद्ध होने पर समस्त पराया जगत् जागृत होता है । इस प्रकार की प्रार्थना समेत विष्णु की उस प्रतिमा को शय्या पर स्थापित कर उन्हीं के समक्ष संकल्प पूर्वक चातुर्मासिक-नियम का ग्रहण करे । युधिष्ठिर ! विष्णु देव के जागरण-अवधि तक के चातुर्मासिक नियमों के भक्ति पूर्वक ग्रहण करने वाले सभी प्रथम पुरुष को, जो मेरे परमभक्त एवं धर्मार्थ उस व्रत के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा रहते हैं, और दंतधावन पूर्वक ही नियम का पालन करना आरम्भ करते हैं, प्राप्त होने वाले तत्कर्तृक फलों को पृथक्-पृथक् बता रहा हूँ, सुनो ! नियम ग्रहण करने पर उन्हें दियाँ गुड के त्याग करने पर वह मधुरवाणी राजा होता है । पार्थ ! तैल के त्याग से सुन्दर शरीर, कटुतैल के त्याग से शत्रुपक्ष, मधूक (महवा) तेज के त्याग से अतुल सौभाग्य की शोभा होती है । ४-१५। उसी भाँति पुष्प आदि भोगों के त्याग से स्वर्ग में विद्याधर एवं योगाभ्यास से ब्रह्मपद की गदी तथा कटु आम्ल (खट्टे), तिक्त, मधुर, क्षार एवं काषाय के त्याग से अंग-वैरूप्य और दुर्गति कभी नहीं होती है । ताम्बूल के त्याग से रक्त कण्ठ भोगी, घृत और त्याग से लावण्य

फलत्यागाच्च मतिमान्बहुपुत्रश्च जायते । शाकपत्राशनाद्गोगी अपक्षवादोऽमलो भवेत् ॥१५-
पादाभ्यङ्गपरित्यागाच्छिरोभ्यङ्गाच्च पार्थिव । दीन्तिमान् दीप्तकरणो यक्षो द्रव्यपतिर्भवेत् ॥२०
दधिदुर्ध तकनियमाद्गोलोकं लभते नरः । इन्द्रातिथित्वमाप्नोति स्थालीपाकविवर्जितात् ॥२१
लभेत् संततिं दीर्घा तापपत्तस्य शक्षणात् । भूमावस्तरशायी च विष्णोरनुचरो भवेत् ॥२२
सदा मुनिः सदा योगी मधुमांसस्य वर्जनात् । निर्व्याधिर्नीरुजस्वी सुरामद्यविवर्जनात् ॥२३
एवमादिपरित्यागाद्वर्मः स्याद्वर्मनन्दनः । एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ॥२४
धारणं नखरोमाणां गङ्गास्नानं दिनेदिने । मौननन्ती भवेद्यस्तु तस्याज्ञाऽस्खलिता भवेत् ॥२५
भूमौ भुद्भक्ते सदा यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत् । नमो नारायणायेति जपतोनशनं फलम् ॥२६
पादाभिवंदनाद्विष्णोर्लभेद्गोदानजं फलम् । विष्णुपादाम्बुद्संस्पर्शात्कृतकृत्यो भवेन्दनः ॥२७
विष्णुदेवकुले कुर्यादुपलेपनमर्वनन् । कल्पस्थायी भवेद्वाजा स नरो नात्र संशयः ॥२८
प्रदक्षिणाशतं यस्त्र करोति स्तुतिपाठकः । हंसयुक्तविज्ञानेन स च विष्णुपुरं व्रजेत् ॥२९
गीतवाद्यकरो विष्णोर्गार्दधर्व लोकमाप्नुयात् । नित्यं शास्त्रविज्ञानेन लोकान्यस्तु प्रबोधितः ॥३०
स व्यासरूपी भगवान्ते विष्णुपुरं व्रजेत् । पुष्पमालादिभिः पूजां कृत्वा विष्णुपुरं व्रजेत् ॥३१
नित्यस्नायी नरो यस्तु नरकं स न पश्यति । भोजनं च जयेद्यस्तु स स्नानं पौष्करं लभेत् ॥३२
कृत्वा प्रेक्षणं दिव्यं राज्यं सोऽप्सरसां लभेत् । अयाजितेन प्राप्नोति वापीकूपे यथा फलम् ॥३३

समेत सर्वसिद्धि तथा फल त्याग से अनेक पुत्र की प्राप्ति होती है । शाक-पते के भोजन से रोगी और अपक्व-भोजन मे निर्मल चित्त, चरण तथा शिर के अम्बंग त्याग से दीप्यमान् एवं दीप्तिकरण युक्त द्रव्याधीश्वर होता है । पार्थिव ! दधि-धीर तथा तक (मट्ठे) के त्याग करने से गोलोक का निवास, और (वटलोई) पात्र में परिपक्व मध्य के त्याग से इन्द्र का सम्मानित अतिथि होता है । केवल ताप-पक्व वस्त्र के भक्षण करने से अविच्छिन्न संतति, भूमि शायी होने से विष्णु के अनुसार, मधुमांस त्याग से सदैव मुनि, योगी, सुरा-मद्य के त्याग से व्याधि हीन तथा ओर्जपूर्ण आरोग्य करता है । कर्म-नन्दन ! इस प्रकार आदि वस्तु के त्याग से धर्म, एकांत उपवास से ब्रह्मलोक का सम्मान अदा होता है । नख-रोम (गिटकोटा आदि) के धारण पूर्वक मौन व्रत एवं प्रतिदिन स्नान करने वाले की सभी बातें सार्थक होती हैं । सदैव भूमि पर भोजन करने वाला पृथिवी का अधीश्वर होता है, किन्तु 'नमोनारायण' के जप पूर्वक अशन (भोजन) करने से ही उच्च फल की प्राप्ति होती । १६-२६। विष्णु की चरण-वन्दना करने से गोदान के फल प्राप्त होते हैं, और विष्णु का पादारविन्द का स्पर्श करने से मनुष्य व्रत में कृत-कृत्य हो जाता है । कुल परम्परा में विष्णु देव की सदैव लेख अर्चन करने वाला मनुष्य कल्य स्थायी राजा होता है, इसमें संशय नहीं । स्तुति पाठ पूर्वक सौ प्रदक्षिणा करने वाला हंस युक्त विमान द्वारा विष्णु लोक का निवास प्राप्त करता है । विष्णु के विभिन्न गीत वाद्य करने से गन्धर्व-लोक की प्राप्ति होती है । नित्य शाखाओं की चर्चा करते हुये लोगों को जागरूक करने वाला पुरुष व्यास रूपी भगवान् कहलाता है अंत में उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है, तथा पुष्प-माला की प्राप्ति द्वारा पूजन करने वाले को भी । नित्य स्नान के फल, प्राप्त होते हैं । विष्णु के निमित्त प्रेक्षणवाद की रचना करने से अप्सराओं का दिया हुआ

षष्ठकालेन्नभोज्येत् स्थायी स्वर्गं नरो भद्रेत् । पर्जेषु यो नरो भुड़के कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ॥३४
 शिलायां भोजनान्नित्यं स्नानं प्रयागं भवेत् । यामद्वये जलत्यागान्न रोगैः परिभूयते ॥३५
 एवमादिव्रते पार्थं तुष्टिमायाति हेतुतः । सुप्ते सति जगन्नाथे केशवे गरुडध्वजे ॥३६
 निर्दर्तते क्रियाः सर्वश्चातुर्दर्शस्य भारतः । विवाहव्रतबंधादिभूतसंस्कारदीक्षणम् ॥३७
 यज्ञश्च गृहवेशादि गोदानाच्च प्रतिष्ठितम् । पूज्यान्ति यानि कर्मणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥३८
 असंक्रान्तं तु मासं वै दैवे पित्र्ये वर्जयेत् । मलिम्लुच्मशौचं च सूर्यसकांतिवर्जितम् ॥३९
 प्राप्ते भाद्रपटे मासि एकादश्यां दिने हुरे । कटदानं भद्रेद्विष्णोर्महापूजां प्रवर्तयेत् ॥४०
 य एतदेव श्यानं तत्रेदं कारणं शृणु । पुरा तपःप्रभावेन तौषयित्वा हरिं विभुम् ॥४१
 ममापि ज्ञानयत्यज्ञं प्रार्थितो यांत्तिनिद्या । निरोक्ष्य ज्ञात्मनो देवा रुद्धं लक्ष्म्या उरः स्थृतम् ॥४२
 शहूङ्चक्षासिमार्गाद्यैर्बहुप्यथ वक्षसा । अधो नाभेर्विरुद्धं मे वैनतेदेन पक्षिणा ॥४३
 मुकटेन शिरो रुद्धं कुण्डलाभ्यां च कर्णकौ । ततो ददादहं तुष्टो नेत्रयोः स्थानामादरात् ॥४४
 चतुरो वार्षिकान्मासान्मासिता सा भविष्यति । योगनिद्रापि माहात्म्यं श्रुत्वा पौरातनं शुभम् ॥४५
 चकार लोचनावासमतोऽर्थं मे युधिष्ठिर । अहं च तां भावयित्वा ज्ञानयामि ननस्विनीम् ॥४६
 योग निद्रा महानिद्रा शेषाभिरायने स्थितः । क्षीरोदधौ च विध्यये धौतपादः समाहितः ॥४७

राज्य प्राप्त होता है । अपरिचित पुत्र के भोजन से वापसी और कूप के निर्माण फल, छठे काल में अन्य भोजन करने से स्वर्ग में स्थायी निवास, पत्र पर भोजन करने से कुरुक्षेत्र का पल और शिला पर भोजन करने से प्रयाग स्नान के पुण्य प्राप्त होते हैं । द्वितीय प्रहर में जल के त्याग करने से वह कभी रोग-पीड़ित नहीं होता है । पार्थ! इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर मैं अत्यन्त प्रसन्न होता हूँ । भारत ! गरुडध्वज केशव एवं जगन्नाथ के शयन करने पर चारों वर्णों की सभी क्रियाएँ विवाह, व्रतवंध, भूत-संसार, दीक्षा, यज्ञ, गृह प्रवेश आदि समस्त क्रियाएँ, जो योगदान द्वारा प्रतिष्ठित होती हैं वे सभी पूज्य कर्म इसमें निषिद्ध किये गये हैं । उसी भाँति संक्रान्ति हीन मास आदि मास में देव और पितृ की सभी क्रियायें स्थगित होने लगती हैं । भाद्रपद मास की शुक्ल एकादशी के दिन विष्णु के लिए केश-दान करना विष्णु की महापूजा का प्रवर्तक होता है । २७-४०। पार्थ! इस समय में शयन करने का कारण बता रहा हूँ, मुनो! योगनिद्रा देवी ने पहले समय में तप द्वारा भगवान् को प्रसन्न करके समान पूर्वक मेरे अंग-निवास की प्रार्थना की थी । उस समय वैसा देखकर देवो ने लक्ष्मी द्वारा मेरे स्थल को अवरुद्ध करा दिया और शहूङ्चक्ष एवं रबड़ आदि द्वारा बाहु तथा नाभि से नीचे भाग को वक्षःस्थल द्वारा गरुड़ ने अवरुद्ध कर दिया । उसी भाँति मुकुट द्वारा शिर और कुण्डल से कान अवरुद्ध होने पर मैंने अत्यन्त तुष्ट होने के कारण (योगमाया को) अपने नेत्रों में सादर स्थान प्रदान किया । और कहा कि वर्ष के हर चातुर्मास्य के समयवत मेरे आङ्गृति रहेगी । युधिष्ठिर! योगनिद्रा भी मेरे उस बात को सुनकर सभी से सहर्ष मेरे नेत्रों में निवास करती है । मैं भी उस समय शेषशायी होकर योगनिज एवं महानिज रूपी उस मनस्थित का भावना पूर्ण सुसम्मान करता हूँ । क्षीर-सागर में शेष-शायी होने के समय विधि के सम्मुख या प्रक्षालन

१. तद्वाक्यम् ।

लक्ष्मीकराम्बुजैरच्छैर्मृद्यमानपद्मयः । तस्मि-कालेऽपि मद्भूक्तो यो मात्सांश्चतुरः क्षिपेत् ॥४८
 व्रतेरनेकैनिर्गमैः पाण्डवश्रेष्ठ मानवः । कल्पस्थायी विष्णुलोकं स ब्रजेन्नात्र संशयः ॥४९
 ततोऽवृध्यते देवः श्रीमाञ्छह्नगदाधरः । कार्तिके शुक्लपक्षस्य एकादश्यां पूर्थकृष्ण ॥५०
 मन्त्रेणानेन राजेन्द्र देवमुत्थापयेदिद्वजः । इदं विष्णुर्दिव्यचक्रमे स्वासने च तदा नृप ॥५१
 समुत्थिते तदा विष्णौ क्रिया: सर्वाः प्रवर्तयेत् । महातूर्यरवे रात्रौ भ्रानयेत्स्यदने स्थितम् ॥५२
 उत्थिते देवदेवेशो नगरे पार्थिवः स्वयम् । दीयोद्रेककरे सार्गे नृत्यगीतजनाकुले ॥५३
 यं दं दामोदरः पश्येदुत्थितो धरणीधरः । तं तं प्रदेयं राजेन्द्र सर्वं स्वर्गाय कल्पते ॥५४
 रात्रौ प्रजागरे देवमेकादश्यां सुरालये । प्रभाते विमले स्नात्वा द्वादश्यां विष्णुमच्चयेत् ॥५५
 होमयेद्व्यजाहं च हव्यद्व्ययैर्वृतादिभिः । ततो विष्णुञ्छुभान्स्तत्वा भोजयेदन्नविस्तरैः ॥५६
 धृतदधिक्षौद्रकाद्यैर्गुडधूपैः समोदकैः । यजमानोऽपि संतुष्टस्त्वरा हास्यविवर्जितः ॥५७
 एकादश दशाष्टौ वा पञ्च द्वौ वा कुङ्क्तम् । अर्चयेच्चन्दनैर्धूपैः पुर्वैर्गन्धैर्द्विजोत्तमान् ॥५८
 श्रद्धोऽक्षविधिना पार्थ भोजयेद्वाग्यवान्यतोत् । आचांतेभ्यस्ततो दद्यात्यागं यत्किञ्चिचदेव हि ॥५९
 स्वदादा स्वमनोभीष्टपत्रपुष्पफलादिकम् । चतुरो वार्षिकान्मासान्निवस्तो यस्य यः कृतः ॥६०
 कथयित्वा द्विजेभ्यस्तं दद्याद्वक्त्वा सदक्षिणाम् । इत्वा विसर्जयेद्विग्रांस्ततो भुञ्जीत च स्वयम् ॥६१

पूर्वक मेरे विदित होने पर लक्ष्मी जी अपने कर कमलों से मेरी निरन्तर सेवा करती हैं । इसलिए पाण्डव ! उस समय में चार मास तक ब्रत-नियम द्वारा उसे व्यतीत करने से दृढ़ प्रतिज्ञा वाले मेरे भक्त पुरुष विष्णु लोक में एक कल्प का निवास प्राप्त करते हैं, इसमें संशय नहीं । पश्चात् कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन शह्न चक्र, गदाधारी श्री विष्णु देव के जागृत होने के लिए विधान बता रहा हूँ, सुनो ! राजेन्द्र ! इदं तिष्णुर्दिव्यचक्रमे, आदि इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उन्हें प्रबुद्ध करना चाहिए । क्योंकि नृप ! उनके शयनोत्थान करने पर ही समस्त धार्मिक क्रियाओं का आरम्भ होता है । उस समय राजा को चाहिए कि उन्हें सुसज्जित साधन (रथ) पर सुशोभित करके अनेक वाद्य-ध्वनियों के कोलाहल समेत भ्रमण करायें । ४१-५२। मार्ग में प्रकाश का आधिक्य और नृत्य-गीत करने वाले मनुष्यों का महान् संकुल होना चाहिए । उस समय जागृत होकर धरणीधर भगवान् दामोदर जिस जिस प्रदेय वस्तुओं के निरीक्षण करते हैं, वे सर्वा में सुसम्मानित होती हैं । एकादशी के दिन रात्रि में विष्णु देव के जागृत होने पर द्वादशी के प्रातः काल स्नान करके उनकी सप्रेम अर्चना सुसम्मान करे । हवनीय वस्तु-तिल, चावल, जवा, आदि धृतयुक्त करके प्रज्वलित अग्नि में आहुति प्रदान करे । तत्पश्चात् ब्राह्मणों को विविध भाँति के भोजन कराये, जो धृत, दधि, मधु, आदि एवं मनोरम गुड-मोदक से सुसम्पन्न किया गया हो । यजमान भी शीघ्रता एवं हास-परिहास का त्याग कर ब्राह्मण-सेवा में ही दत्त चित रहे । कुरुत्तम ! एकादश, दश, आठ, पाँच, प्रथम दो ब्राह्मणों को (भोजन के पहले० चन्दन, धूप, पुष्प, एवं गन्धों द्वारा सप्रेम अर्चना करनी चाहिए तथा पार्थ ! उस भाग्यवान् को श्रद्धा-भक्ति पूर्वक चार यतियों को भी भोजन कराना चाहिए । अनन्तर अपनी अभीष्ट वस्तु-पत्र, पुष्प एवं फल आदि जो कुछ हो, संकल्प पूर्वक दानरूप में उन्हें अर्पित करे । इस प्रकार चौमासे में जिस वस्तु का नियम पहले से कर लिया गया हो, उसके कथन पूर्वक दक्षिणासमेत उसे ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए विसर्जन के उपरात्त

यत्यक्तं चतुरो मात्तान्नवृत्तितस्य चाचरेत् । एवं य आचरेत्पार्थं सोऽनन्तं धर्ममाल्यात् ॥६२
 अवसाने तु राजेन्द्र वासुदेवुरों ब्रजेत् । यस्याविद्वैः समाप्तेत चातुर्मास्यव्रतं नृप ॥६३
 स भवेत्कृतकृत्यस्तु न पुनर्मातृको भवेत् । यो देवशयनं पार्थं मासं भासं समाचरेत् ॥६४
 उत्थानं चापि कृष्णस्य स हरेलोकमःन्यात् । शृणोति ध्यायति स्तौति जुहोत्याख्याति यो नरः ॥
 विष्णोर्भक्तिं परां पार्थं स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥६५

दुर्गाधार्बिभोगशयने भगवाननन्तोः शस्मिन्दिने स्वपिति यत्र विवृथते वा ।

तस्मिन्दन्यमनसामुपवासभाजां पुंसां ददाति सुगतिं गरुडाङ्गत्वं ॥६६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

देवशयनोत्थापनद्वादशीव्रतवर्णनं नामसंततिमोऽध्यायः ॥७०

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

नीराजनद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा बभूव राजर्षिरजपाल इति श्रुतः । प्रार्थितः स प्रजाभिस्तु सर्वदुःखान्तुतये ॥१
 दुःखापनोदं कुरु भो व्याधितानां नरेश्वर । एवमुक्तिश्चिरं ध्यात्वा कृत्वाव्याघोन्त्रजागणान् ॥२
 पालयामास हृष्टोऽसावजपालस्ततोऽभवत् । तेनैषा निर्मिता शांतिर्नान्ना नीराजता जने ॥३

स्वयं भोजन करे और चौमासे में अन्य वस्तु की पुनः सेवा करना आरम्भ करे । पार्थ ! इस ब्रत को सुसम्पन्न करने वाला अनन्त धर्म की प्राप्ति करता है तथा देहावसान के समय इन्द्रलोक की प्राप्ति करता है । राजेन्द्र ! नृप ! जिस पुरुष का चातुर्मास्य-ब्रत निर्विघ्न सुसम्पन्न होता है वह कृत कृत्य होकर पुनः मांस-जठर में प्रवेश नहीं करता है । पार्थ ! इस देव के शयन और उत्थान नामक ब्रत को प्रति (वर्षक) मास में सुसम्पन्न करता है, उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । पार्थ ! इस ब्रत के श्रवण, ध्यान, स्तवन, दान एवं आत्म्यान करने वाले को विष्णु की पराभक्ति समेत वैष्णव भक्ति की प्राप्ति होती है । इस प्रकार क्षीर-सागर शायी भगवान अनन्त देव के शयन और जागरण के दिन उपवास पूर्वक प्रबल प्रेम प्रकट करने वाले को गरुड वाहन भगवान् विष्णु उत्तम गति प्रदान करते हैं ॥५३-६६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में

देवशयन उत्थापन द्वादशी ब्रत वर्णन नामक सत्तरहवाँ अध्याय समाप्त ॥७०।

अध्याय ७१

नीराजन द्वादशी ब्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में राजर्षि अजपाल नामक राजा राज करते थे, उनकी प्रजाएँ अपने समस्त दुःखों के विनाशार्थ उनसे प्रार्थना की नरेश्वर ! हमलोग अत्यन्त व्याधि-पीड़ित हैं, पुनः हमें इससे मुक्त करने की कृपा कीजिए । प्रजाओं के इस प्रकार कहने पर राजा अजपाल ने चिरकाल तक ध्यान रहने के अनन्तर प्रजाओं को व्याधि मुक्त किया तथा अत्यन्त प्रसन्न रहकर उनके पालन-पोषण भी किया पाण्डव

तस्यास्तु पाण्डवशेष लक्षणं वच्चि ते शृणु ! राजा पुरोहितः सार्वमनुष्ठेया विधानतः ॥४
 तस्मिन्काले बभूवाथ रावणो राक्षसेश्वरः । लङ्घास्थितः सुरगणान्नियुनक्ति स्वर्कर्मसु ॥५
 अखण्डमण्डलं चन्द्रमातपत्रं चकार ह । इन्द्रं सेनापतिं चक्रे वायुं पांसुप्रमार्जकम् ॥६
 वरुणं बद्धकर्मस्थं धनदं धनरक्षकम् । यमं सयमनेऽरीणां युयुजे मंत्रेणे मनुम् ॥७
 मेधाश्छादन्ति नृपतिं द्रुमपुणःदिवंकिञ्चु । सप्तर्थ्यः शांतिपरा ब्रह्मणा सह संस्थिताः ॥८
 यामिका मध्यकक्षायां गन्धर्वा गीततत्पराः । प्रेक्षणीयेऽप्सरोवृदं बाह्ये विधाधरा वृताः ॥९
 गङ्गाःयाः सरितः पाने गार्हपत्ये हुताशनः । विश्वकर्मान्निसंस्कारे यमः शिल्पप्रयोजने ॥१०
 तिष्ठन्ति पार्थिवाः सर्वे पुरःतेवाविधायिनः । दृश्यन्ते भासुरे रत्नैः प्रभावंतो विभूषणैः ॥११
 संदृश्य रावणः प्राह् प्रशस्तं प्रतिहारवम् । सेवां कर्तुं सम स्थाने ब्रूहि॑ कोऽत्र समागतः ॥१२
 स उवाच प्रणम्यादे इण्डपाणिर्निशाच्चरः । एष कुत्स्थो मांधाता धुंधुमारो नलोऽर्जुनः ॥१३
 यर्यातिनहुषो भीमो राघवोऽयं विदूरथः । एते नान्ये च बहवो राजान इति आसते ॥१४
 मेधाकारास्तव स्थाने नाजपाल इहागतः । रावणः कुपितः प्राह् शीघ्रं दूतं व्यसर्जयत् ॥१५
 इत्युक्ते प्रहितो दूतो धूम्राक्षो नाम राक्षसः । धूम्राक्ष गच्छ ब्रूहि॑ त्वमजपालं ममाज्ञया ॥१६
 सेवां कुरु समागच्छ कबन्धो यस्य पार्थिवः । अन्यथा चन्द्रहासेन त्वं करिष्ये विकंधरम् ॥१७

थ्रेष्ठ ! उन्हीं राजा अजपाल द्वारा इस शांति का, जो मनुष्यों के लिए परमोत्तम एवं नीराजन के नाम से प्रस्यात है, लक्षण मैं बता रहा हूँ सुनो ! पुरोहितों को साथ लेकर राजा को सविधान इसका अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए । उन्हीं दिनों राक्षसाधीश्वर रावण ने लंका में रहकर देवगणों को अपने यहाँ प्रत्येक (उनके धोग्य) कार्यों में नियुक्ति किया था—चन्द्रमा को अखण्ड मण्डलाकार आतपत्र (छत्र), इनको सेनापति, वायु को गृहमार्जनक (ज्ञाहू लगाने वाला), वरुण को बद्धकर्म, ऊबेर धनाध्यक्ष, यम को शत्रुनियामक, मनु को मन्त्री एवं वृक्ष-पृष्ठ आदि की पंक्तियों में भेष द्वारा आच्छादन अजपाल कर रहे थे । उसी भाँति व्रह्मा के साथ राजर्षि गण शांति निदान में संलग्न थे । दक्षिण ओर की मध्य कक्षा में गन्धर्व गण गानकर रहे थे, प्रेक्षणीय स्थानों में अप्सराएँ और वाह्य भाग में विद्याधर नियुक्त थे । पान करने के लिए गङ्गा आदि सरिताओं की नियुक्ति की, गार्हपत्य के लिए अग्नि, भण्डार गृह (रसोई) में विश्वकर्मा, शिल्पि कार्य में यम और समस्त नृपतय आचरणों के भूतपौत्रों से भूषित होकर उसके समक्ष सेवा कार्य में संलग्न थे । उस समय रावण ने अपने प्रतिहारी प्रशस्ता से कहा—यहाँ मेरी सेवा के लिए कौन-कौन उपस्थित है, मुझे शीघ्र बताओ ! दण्डपाणि उस समय राक्षस ने प्रणाम पूर्वक उससे कहा—यह कुत्स्थ, मांधाता, धुंधुमार, नल, अर्जन, ययाति, नकुल, भीम तथा रघुवंशी राजा विदूरथ हैं और अन्य सभी राजगण उपस्थित हैं एवं भेष के रूप में यह राजा अजपाल की सेवा कर रहा है । जो सुनकर रावण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर (अजपाल के पास) शीघ्र दूत भेजने की आज्ञा प्रदान की—उसने धूम्राक्ष नामक दूत से कहा—‘धूम्राक्ष ! मेरी आज्ञा से तुम शीघ्र जाकर उस अजपाल से कहो कि जिसका राजा कबन्ध है वह शीघ्र आकर मेरी सेवा करो, अथवा चन्द्रहास (रावण) द्वारा विना कन्धे का कर दूँगा’ । १-१७। रावण

रावणेनैवमुक्तस्तु धूम्राक्षो गरुडो यथा । संप्राप्य तां पुरीं रम्यां तच्च राजकुलं गतः ॥१८
ददर्श यं तसेकं स अजपालमजावृतम् । मुक्तकेशं मुक्तकक्षं नैकमुक्तकमद्वयम् ॥१९
यष्टिस्कन्धं रेणुसृतं व्याधिभिः परिवारितम् । निहतानित्रशार्दूलं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥२०
मह्यमात्स्त्वा नामानि विनिश्चितं द्विषां गणम् । स्नातं भुक्तं शुभे स्थाने कृतकृत्यं मुनिं यथा ॥२१
दृष्ट्वा हृष्टमनाः प्राह धूम्राक्षो रावणोदितम् । साक्षेपमजपालोऽपि प्रत्युक्त्वा कारणांतरम् ॥२२
प्रेष्यामास धूम्राक्षं ततः कृत्यं समादधे । ज्वरमाकारयित्वा तु प्रोवाचेदं नहीपतिः ॥२३
गच्छ लङ्घाधिपस्थानमाचरस्व यथोऽचित्तम् । नियुक्तस्त्वदजपालेन ज्वरो राजञ्जगाम ह ॥२४
गत्वा च कंपयामास सगणं राक्षसेश्वरम् । रावणस्तं विदित्वा तु ज्वरं परमदाहणाम् ॥२५
प्रोवाच तिष्ठतु नृपत्सेन मे न प्रयोजनम् । ततः सविज्वरो राजा बभूव धनदानुजः ॥२६
तेनैषा निर्मिता शांतिरजपालेन धीमता । सर्वोपद्रवनाशिनो ॥२७
कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां रजनीमुखे । समुत्तियते विनिष्टे तु देवे दामोदरे तदा ॥२८
वेद्यंते रुत्नमालाभी रम्ये मालानुरञ्जिते । जनयित्वा नवं विष्णुं हुत्वा मन्त्रैर्द्विज्ञोत्तमैः ॥२९
वर्द्धमान्तरूप्तथाभिर्दीपिकाभर्तुताशनम् । कृत्वा महाजनः सर्वहरिं नीराजयेच्छनैः ॥३०
पुष्पैरभ्यर्थितं देवं समालब्धं च चन्दनैः । बदरैः कर्बुरैश्चैव त्रपुसैरिक्षुभिस्तथा ॥३१
गन्धैः पुष्पैरलंकारैर्वस्त्रै रत्नैश्च पूजितैः । तस्यैवानुमतां लक्ष्मीं ब्रह्माणं चण्डिकां तथा ॥३२

के इस प्रकार कहने पर धूम्राक्ष ने गरुड की भाँति शीघ्र उसकी रम्यपुरी में पहुँच कर राज दरबार में राजा अजपाल को देखा जो अजाओं (बकरियों) से आवृत था । उसके केश और कक्ष मुले थे तथा क्रमणः दोनों ही मुक्त थे, कन्धे पर घड़ी रखे, धूलि-धूस, स्वयं व्याधि-पारिवार से युक्त था । अपने शत्रु राजाओं का निहत्ता समस्त उपद्रवों का विनाशक, शत्रु गणों के नाम पार्थ ! पर लिख-लिख कर हनत करने वाला वह अजपाल, स्नान भोजन से निवृत्त होकर मुनि की भाँति कृत नृत्य कर्म एवं प्रसन्न मना राजसिंहासन पर सुशोभित था । धूम्राक्ष ने उन्हें देखकर उनसे रावण की सभी बातें सुनाया । राजा अजपाल ने भी साक्षेप (गर्वपूर्ण) उसका उत्तर देकर धूम्राक्ष को भेज दिया और उसके प्रति (रावणार्थ) अपना कृत्य आरम्भ किया—‘राजा ने ज्वर को बुलाकर कहा—लंका जाओ और रावण के पास पहुँच कर यथोचित व्यवहार करो।’ राजन् ! अजपाल के नियुक्त करने पर ज्वर वहाँ जाकर परिजन समेत राक्षस रावण को कमित करने लगा । अनन्तर रावण ने उस ज्वर को अत्यन्त भीषण जानकर कहा—उस राजा को रहने दो, (अर्थात् मेरी सेवा के लिए अजपाल को न बुलाओ), क्योंकि उससे मेरी कोई आवश्यकता नहीं है । पश्चात् वह रावण ज्वर से मुक्त हुआ । १८-२६ । उसी धीमान् अजपाल ने इस शांति का निर्माण किया है, जो समस्त रोग के शमन एवं सम्पूर्ण उपद्रवों की विनाशिनी है । कार्तिक मास को शुक्र द्वादशी के दिन सायंकाल के समय भगवान् दामोदर देव के जागृत होने पर माला और रत्न मालाओं से विभूषित एवं रमणीक वेदी स्थान भगवान् विष्णु के जन्मोत्सव पूर्वक श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा एवं दीपक वक्ष (रोशनी) आदि के उपरान्त धीरे-धीरे भगवान् का नीराजन (आरती) करे । उस समय विष्णु देव को पुष्प, चन्दन, वेर, कर्बुर त्रपु (रांगां) इच्छु, गन्ध, पुष्प, अलंकार, वस्त्र एवं रत्नों द्वारा पूजन पूर्वक सुसज्जित करने के उपरान्त उसी भाँति लक्ष्मी,

आदित्यं शङ्कुरं गौरीं यक्षं गणपतिं ग्रहान् । मातरं पितरं नागान्सर्वान्नीराजयेत्ततः ॥३३
 गवां नीराजनं कुर्यात्महिष्यादेश्च मण्डलम् । भ्रामयेत्त्रासयेसच्छर्दिघण्टावादनछादतैः ॥३४
 ता गावः प्रस्तुता यान्ति स्वापीडास्तबकाङ्गगदाः । सिन्दूरकृतशृङ्खाग्राः संभारवशवत्सकाः ॥३५
 अनुयाति सगोपालाः कालयन्तो धनानि ते । घेदानुलिप्तरक्ताङ्गा रक्तपीतसिताम्बराः ॥३६
 एवं कोलाहले वृते गवां नीराजनोत्सवे । तुरगांलक्षणैर्युक्तान्दिरदांश्च सुपूजितान् ॥३७
 राजचिह्नानि सर्वाणि उद्भूत्य स्वगृहाङ्गणे । राजा पुरोहितः सार्द्धं मन्त्रिनृत्यपुरःसरः ॥३८
 सिंहासनोपविष्टश्च शङ्कूर्यादिनिस्वनैः । पूजयेदगन्धकुसुर्मैर्वस्त्रदीपविलेपतैः ॥३९
 ततः स्त्रीलक्षणैर्युक्ता वेश्या वाथ कुलाङ्गना । रीर्णोपरि नरेन्द्रस्य भ्रामयेद्वारपात्रिकाम् ॥४०
 शांतिरस्तु समृद्धिश्च द्विजैश्च स्वजनेन च । ततो नीराजयेत्तसौम्यं हस्त्यश्वरथसङ्कुलम् ॥४१
 एवमेषा भहाशान्तिः ख्याता नीराजने जने । येषां राष्ट्रे पुरे ग्रामे क्रियते पाण्डुनन्दन ॥४२
 तेषां रोगाः शयं यांति सुभिक्षं वर्द्धते तदा । शान्तिर्नीराजनाल्लोके सर्वान्नरोगान्वयपोहति ॥४३
 लोकानावर्द्धपित्वा तु अजपालवरो यथा । एषां रोगादिपीडासु जन्मूनां हितमिच्छता ॥४४
 वर्षेवर्षे प्रयोक्तव्या शान्तिर्नीराजना इति ॥४५

बहा, चण्डिका, आदित्य, शंकर, गौरी, यक्ष, गणपति, गृहगण, मातृ-पितृ और नागो के नीराजन पूर्वक गौओं को नीराजन तथा महिषी आदि के मण्डल करना चाहिए, जो घंटावादन और आच्छादन द्वारा भ्रमण के समय भासित की जाती है। मयूरपिच्छ द्वारा भूषित करने तथा सीगों के अग्र भाग को सिन्दूरों से अनुराज्जित होने पर वे दस्त्र समेत भुसज्जित गौएँ आधिक दुर्ध देती हैं, जिनके एक वर्ण द्वारा अंग और रक्त पीत एवं श्वेत वस्त्रों द्वारा समस्त देह सुसज्जित रहती है। गोपालों को भी उसी भाँति सुशोभित होकर उनका पुनर्गमी होना चाहिए। २७-३६। इस प्रकार गौओं के कोलाहलपूर्ण नीराजन के समय सुलक्षणों से युक्त घोड़े, हाथियों, राजचिह्न आदि को गृहाङ्गण में रख कर राजा पुरोहित, मन्त्रिगण तथा परिजन समेत वहाँ पहुँच राजसिंहासन को स्वयं विभूषित करते हुए शंख तुरही आदि की ध्वनि पूर्वक पुष्प, वस्त्र, दीप एवं अलेपन द्वारा उन सब की अचंना करे। तदुपरांत सभी लक्षणों से विभूषित वेश्या अथवा कुलस्त्री सभी द्वारा राजा के शिर के ऊपर दारुपात्रिका का भ्रमण होना चाहिए। ग्राहणों तथा स्वजनों द्वारा शांति पाठ के अनन्तर हाथी, अश्व रथ के उस सौम्य समुदाय का नीराजन करे। पाण्डुनन्दन! इस प्रकार मनुष्यों के हितार्थ नीराजन विषयक यह महा शांति उत्पन्न हुई है, अतः जिस राष्ट्र नगर अथवा ग्राम में यह सुसम्पन्न होती है, वहाँ के सभी के रोग-शमन पूर्वक प्रदेश में अत्यन्त सुभिक्ष होता है। यह शांति नीराजन द्वारा लोक के समस्त रोगों को विनष्ट करती है। अजपाल के कथनानुसार प्राणियों के हितार्थ एवं उत्पन्न रोग का आदि के शमनार्थ इसे सुसम्पन्न करने पर अजावृद्धि होती है अतः प्रत्येक वर्ष इस नीराजना शांति को सुसम्पन्न करना परमावश्यक है। अजपाल के वाक्यों से यह निश्चित है कि नूतन जल धर के समान श्यामल भगवान विष्णु के नीराजन पूर्वक ब्राह्मण, रथ, गज, एवं राजचिह्नों के नीराजन करने वाले रोग

नीराजयन्ति नवमेविभं हरिं ये गोभ्रहाणान्रथगजांश्च नरेशचिह्नान् ।
ते सर्वरोगरहिताश्च नुता नरेन्द्रिंद्रप्रभा भुवि भवत्यजपालवाक्यात् ॥४६
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नीराजनद्वादशीव्रतवर्णनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

भीष्मपञ्चकव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यदेतदतुलं पुण्यं ऋतनामुत्तमं व्रतम् । कर्तव्यं कार्तिके मासि प्रयत्नाद्वीष्मपञ्चकम् ॥१
विधानं कीदृशं तस्य फलं च यदुसत्तम् । कथयस्त्व प्रसादान्मे मुनीनां हितमिच्छताम् ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

प्रवक्ष्यामि व्रतं पुण्यं ऋतनामुत्तमं व्रतम् । यथाविधि च कर्तव्यं फलं चास्य यथोदितम् ॥३
मयापि भृगवे प्रोक्तं भृगुं चोशनते इदौ । उशनामि हि विप्रेभ्यः प्रल्लादाय च धीमते ॥४
तेजस्विनां यथा वह्निः पवनः शीघ्रगामिनाम् । विप्रो यथा च पूज्यानां दानानां काञ्चनं यथा ॥५
भूलोकः सर्वलोकानां तीर्थानां जाह्नवी यथा । यथाभ्यमेधो यज्ञानां मथुरा मुक्तिकांक्षिणाम् ॥६
वेदो यथैव शास्त्राणां देवानामच्युतो यथा । तथा सर्वव्रतानां तु वरोक्तं भीष्मपञ्चकम् ॥७

मुक्त होकर इस धरातल पर इन्द्र की भाँति सौन्दर्य पूर्ण प्रजा से भूषित होते हैं । ३७-४६!

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में भी कृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
नीराजन द्वादशी व्रत वर्णन नामक इकहतरवाँ अध्याय समाप्त । ७१।

अध्याय ७२

भीष्मपञ्चकव्रतवर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कुरुसत्तम! आप ने कार्तिक मास में भीष्मपञ्चक-कर्तव्य को सुसम्पन्न करना परमावश्यक बताया है, अतः उस अतुल पुण्य वाले परमोत्तम व्रत का विधान और फल मेरे तथा महर्षियों के हितार्थ बताने की कृपा कीजिये ! १-२

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें पुण्य रूप एवं परमश्रेय व्रत का विधान एवं फल उसी प्रकार बता रहा हूँ, जिस प्रकार इसका वर्णन शास्त्र में किया गया है । सर्वप्रथम मैंनै मनु जी को और भृगु ने शुक्र को और शुक्र ने ब्राह्मणों एवं श्रीमान् प्रल्लाद को बताया था । जिस प्रकार तेजस्वी पुरुषों में अग्नि, शीघ्र गामियों में पवन, पूज्यों में विप्र, दान में सुवर्ण, सर्वलोकों में भूलोक, तीर्थों में गंगा, यज्ञो में अश्वमेघ, मुक्तेच्छुकों के लिए मथुरा, शास्त्रों में वेद एवं देवों में अच्युत का महत्व विशेष है, उसी भाँति समस्त व्रतों में यह भीष्म पञ्चक व्रत परमोत्तम बताया गया है । ३-७। भीष्म पञ्चक व्रत अत्यन्त दुष्कर वस्तु है, ऐसा भद्र पुरुषों का कहना है

दुष्करं भीष्ममित्याहुर्न शक्यं तदिहोच्यते । यस्तत्करोति राजेन्द्र तेन सर्वं कृतं भवेत् ॥८
 वशिष्ठभृगुभगद्यैश्चीर्णं कृतयुगादिषु । नाभागांगांबरीषाद्यैश्चीर्णं ब्रेतायुगादिषु ॥९
 सीरभद्रादिभिर्वैश्चैः शूद्रैरन्यैः कलौ युगे ! दिनानि पञ्च पूज्यानि चीर्णमेतन्महाव्रतम् ॥१०
 ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियाभिः । क्षत्रियैश्च तथा शक्त्या शौचन्रतपरायणैः ॥११
 पराधिः परिर्हत्य्यो ब्रह्मचर्येण निष्ठद्या । मद्यं मासं पारंत्यज्य मैथुनं पापभाषणम् ॥१२
 शाकाहारपरैश्चैव कृष्णाचर्तनपरैर्नरैः । स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन कर्तव्यं सुखवद्धेनम् ॥१३
 विधादाभिश्च कर्तव्यं पुत्रनौत्रादिवृद्धये । तर्वकामसमृद्धचर्यं मोक्षार्थमिति पाण्डव ॥१४
 नित्यं स्नानेन दानेन कार्तिकी धावदेव तु । प्रातः स्नात्वा विधानेन शध्यात्मे च तथा व्रती ॥१५
 नद्य निर्झरगते वा समालभ्य च गोमयम् । यवव्रीहितिलैः सम्पत्तर्पयेच्च प्रदत्ततः ॥१६
 देवानुषीत्यित्रृश्चैव ततोन्यान्कामचारिणः । स्नानं मौनं नरः कृत्वा धौतवासा इड़व्रतः ॥१७
 ततोऽनुपूजयेदेवं सर्वपापहरं हरिम् । स्नापयेच्चात्युतं भक्त्या मधुक्षीरघृतेन च ॥१८
 तत्रैव पञ्चगव्येन गंधचंदनवारिणा । चन्दनेन सुगंधेन ऊँकुमेनाथ केशवम् ॥१९
 कर्पूरोशीरभिश्चेण लेपयेदगङ्गडध्वजम् । अर्चयेद्वुचिरैः पुष्पैर्गंधौपसमन्वितैः ॥२०
 गुगुलुं घृतसंयुक्तं दहेत्कृष्णाय भक्तितः । दीपकं च दिवा रात्रौ दद्यात्पंचदिनानि तु ॥२१
 नैवेद्यं देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत् । ॐ नमो वासुदेवायेति जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥२२

अतः उसके महत्व का वर्णन अशक्य है। क्योंकि राजेन्द्र! जिसने इस व्रत को सुसम्पन्न किया है, उसने सभी कुछ कर लिया। कृत युग में वशिष्ठ, भृगु एवं गर्ग आदि, ब्रेतायुग में नाभाग, अम्बा, अम्बरीष आदि तथा कलियुग में शीरभद्रादि दैश्य और अन्य शूद्रों ने इस व्रत को सुसम्पन्न किया है। ब्रह्मचर्य के पालनपूर्वक जप, हवन-क्रियाओं द्वारा ब्राह्मणों को और यथा शक्ति पवित्रता पूर्ण व्रत के परायण द्वारा क्षत्रियों को पाँच दिन में इस महाव्रत को सुसम्पन्न कराना है। (व्रत के समय) ब्रह्मचर्य के पालन पूर्वक (अपने कर्तव्य द्वारा) किसी प्राणी को मानसिक पीड़ा न होने पाये, इसका विशेष ध्यान रखते हुए मद्य, मांस, मैथुन और पाप भाषण का सर्वथा परित्याग करना चाहिए। उस समय भगवान् कृष्ण की अर्चना और शाकाहारी होना बताया गया है। सध्वा स्त्री भी सुख समृद्धि वर्द्धक इस व्रत को अपने पति की आज्ञा से सुसम्पन्न कर सकती है और पाण्डव! विधवा स्त्रियों को अपने पुत्र-पौत्रादि के वृद्धयर्थ, समस्त कामनाओं की सफलता और मोक्षार्थ इसका अनुमान अवश्य करना चाहिए। कार्तिक मास में नित्य स्नान और दान करते हुए व्रती को प्रातः स्नान के उपरान्त मध्याह्न के समय किसी नदी, झरना अथवा सरोवर आदि जलाशय में जाकर शरीर में गोमय के अनुलेपन पूर्वक मौन स्नान करके जवा, धान, चावल और तिल समेत देवऋषि एवं पितृतर्पण करने के उपरान्त स्वच्छ वस्त्र को धारण कर संकल्प पूर्वक समस्त पापहारी भगवान् विष्णु की अर्चना आरम्भ करे। अन्युत भगवान् को मधु, क्षीर एवं घृत और पञ्चगव्य द्वारा स्नान कराकर सुगन्धि पूर्ण चन्दन, कुकुम, कपूर तथा अर्चना सुसम्पन्न करे। उस समय घृत पूर्ण गुगल की धूप अवश्य प्रदान करना चाहिए और पाँच दिन तक अखण्ड दीप की ज्योति होनी चाहिए। ८-२१। अनन्तर देवाधिदेव के सम्मुख परमोत्तम नैवेद्य अर्पित करते हुऐ 'ॐ नमो वासुदेवाय' मंत्र का एक सौ आठ

जुहुयाच्च धृताल्लोक्यं च तिलबीहीन्स्ततो ब्रती । षडक्षरेण मंत्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ॥२३
 उपास्य पश्चिमां सत्थ्यां प्रणम्य गरुदध्वजम् । जपित्वा पूर्ववन्मंत्रं क्षितिशायी भवेन्नरः ॥२४
 सर्वमेतद्विधानं च कार्यं पञ्चदिनेषु हि । संविशेषत्कंबले चास्मिन्पदपूर्वं शृणुष्व भृणुष्व मे ॥२५
 प्रथमेऽहिं हरे: पादौ पूजयेत्कमलैर्नरः । द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ॥२६
 पूजयेच्च तृतीयेऽहिं नाभिं भृङ्गरसेन च । मध्ये बिल्वजयाभिष्ठच ततः स्कंधौ प्रदूजयेत् ॥२७
 ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्याः कुसुमैर्नवैः । कार्तिक्यां देवदेवस्य भक्त्या तद्गतमन्तरः ॥२८
 अर्चपित्वा हृषीकेशमेकादश्यां समाहितः । संप्राशय गोमयं सम्यङ् मंत्रवत्समुपावसेत् ॥२९
 गोमूत्रं सन्त्रवत्कृत्वा द्वादश्यां प्राशयेद्दक्षतीः क्षीरं तत्र त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तदा दधि ॥३०
 संप्राशय कायशुद्धयर्थं^१ लङ्घयेत चतुर्दिनम् । पंचमे तु दिने स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम् ॥३१
 भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या तेष्यो द्वाच्च दक्षिणाम् । तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्वस्त्रभूषणैः ॥३२
 ततो नक्तं सतमन्तीयात्पञ्चगव्यपुरःसरम् । एवं समापयेत्सम्प्रथमोत्तं व्रतमुत्तमम् ॥३३
 सर्वपापहरं पुण्यं प्रख्यातं भीष्मपञ्चकम् । मद्यपो यस्त्यजेनमद्यं जन्मनो मरणांतिकम् ॥३४
 तद्वृष्टम् पञ्चकं त्यक्त्वा प्राप्नोत्यभ्यधिकं फलम् । ब्रह्मचर्यं नरश्चीत्वा सुघोरं नैष्ठिकं व्रतम् ॥३५
 यत्प्राप्नोति महत्पुण्यं तत्कृत्वा भीष्मपञ्चकम् : गात्राभ्यंगं शिरोऽभ्यंगं मधु मांसं च मैथुनम् ॥३६
 ब्रह्मलोकमवाप्नोति त्यक्त्वैकं भीष्मपञ्चकम् । संवत्सरेण यत्पुण्यं कार्तिकेन च यद्वेत् ॥३७

(एक माला) जप और धृत तिल-चावल की आहृति षडाक्षर मंत्र के अन्त में स्वाहा शब्द के उच्चारण पूर्वक प्रदान करे । २२-२३। सायंकाल के समय संध्या वन्दन के अनन्तर भगवान् गरुदध्वज को प्रणाम, और पूर्ववत् मंत्र-जप करके पृथिवी पर शयन करना चाहिए । उसी भाँति उसे पांच दिन तक करना चाहिए-कम्बल पर सुखासीन होकर प्रथम दिन कमल पुष्ट द्वारा भगवान् के चरण, दूसरे दिन नित्य पत्र द्वारा जानु (घटने), तीसरे दिन भूंग (भंगरैया) द्वारा नाभि, और विल्व तथा जणा द्वारा मध्यभाग और स्कन्ध-पूजन के उपरांत मालती पुष्टों द्वारा शिरोभाग की पूजा करनी चाहिए । कार्तिक-मास में देव नामक भगवान् विष्णु के ध्यान परायण रहकर एकादशी के दिन उन हृषीकेश की आराधना के अनन्तर अभिमंत्रित गोमय के अशन, द्वादशी के दिन गोमूत्र, त्रयोदशी में क्षीर, और चतुर्दशी में दधि के प्राशन करके इस प्रकार चार दिन शरीर शुद्ध होने के उपरांत-पांचवे दिन भगवान् केशव की सविधान अर्चना करे । शराबी ब्राह्मणों को भोजन एव दक्षिणा द्वारा अत्यन्त प्रसन्न करके वस्त्र-भूषण द्वारा उपरेशी की भी अर्चना करे । पश्चात् रात्रि में पंचगव्य के पान पूर्वक नक्त भोजन करके उस व्रत की समाप्ति करे, जो परमोत्तम, सर्वपापहारी, पुण्य एवं भीष्मपञ्चक के नाम से प्रख्यात है । जो मद्यपी (श्मावी) अपने मद्यप मद्य का भीष्म पञ्चक के दिन परित्याग करता है, उसे अधिक फल प्राप्त होता है । ब्रह्मचर्य के सुधोर एवं नैष्ठिक व्रत के पालयिता को जिस महान् पुण्य की प्राप्ति होती है, भीष्म पञ्चक व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह अत्यन्त सुलभतया प्राप्त होता है । शरीर एवं शिर के अभ्यंग, मधु-मांस, मिथुन, के त्याग पूर्वक एक भीष्म पञ्चक व्रत को सुसम्पन्न करने पर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । सम्पूर्ण वर्ष,

१. कार्यसिद्ध्यर्थम् ।

यत्कलं कार्तिकेनोक्तं भवेत्तद्रीण्मपञ्चके । व्रतमेतत्सुरैः सिद्धैः किञ्चरैन्नागगुह्यकैः ॥३८
 फलं समीहितं प्राप्य कृत्वाभ्यन्व्य जनार्दनम् । पापस्य प्रतिमा कार्या रौद्रबक्त्रातिभीषणम् ॥३९
 खञ्जहस्तातिविकृता सर्वलोकमयी नृप । तिलप्रस्थोपरि स्थाप्य कृष्णवस्त्राभिवेष्टिता ॥४०
 करवीरकुमारीडा चलत्काञ्चनकुण्डला । ब्राह्मणाय प्रदातव्यो कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥४१
 अन्येषामपि इत्तत्वं यत्कृत्वा वनु चांचितम् । कृतकृत्यः स्थिरो भूत्वा दिरक्तः संयतो भवेत् ॥४२
 शांतचेता निराबाधः परं पदमवाप्यात् । नीलोत्पलदलश्यामश्चतुर्द्वृश्चतुर्भुजः ॥४३
 अष्टपद्धैकनयनः शंकुकर्णो भ्रह्मस्वनः । जटी द्विजिह्वस्तामस्यो मृगराजतनुच्छदः ॥४४
 चितनीयो महादेवो यत्य रूपं न विद्यते । इदं भीष्मेण कथितं शरतल्पगतेन मे ॥४५
 तदेव ते समाख्यातं दुष्करं भीष्मपञ्चकम् । व्रतं च राजशार्दूलं प्रवरं भीष्मपञ्चकम् ॥४६
 यस्तर्स्मस्तोषयेद्वक्त्या तस्मै मुक्तिप्रदोऽच्युतः । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः ॥४७
 प्राप्नोति वैष्णवं स्थानं जत्कृत्वा भीष्मपञ्चकम् । ब्रह्महा मद्यपः स्तेषी गुणानी भद्राकृती ॥४८
 मुच्यते पातकात्सम्यक्कृत्वैकं भीष्मपञ्चकम् । नास्माद्व्रतात्पुण्यतमं वैष्णवेभ्यो यतोव्रतम् ॥४९
 अर्थात्स्मस्तोषितो विष्णुर्नृणां मुक्तिप्रदो भवेत् । श्रुत्वैतत्पठ्यमानं तु एतित्रं भीष्मपञ्चकम् ॥५०
 मुच्यते पातकेभ्यो वा पाठको विष्णुलोकभाक् । धन्यं पुण्यं पापहरं युधिष्ठिर महाप्रतम् ॥५१

तथा कार्तिक मास में कहे हुए फल भीष्मपञ्चक के व्रती को प्राप्त होते हैं । इस व्रत के अनुमान द्वारा सुर, सिद्ध, किञ्चर, गुह्यक और नाम गणों ने जनार्दन देव की समर्चना करके अपने अभीष्ट की सिद्धि की है । नृप! पाप की प्रतिमा- रौद्रमुख, अंतिभीषण काय, खञ्ज हाथ में लिए, अतिविकृति एवं समस्त लोकमयी-वनाकर काले वस्त्र से आवेष्टित करके एक सेर तिल के ऊपर स्थापित करे । कनेर-पुष्प, मयूरपुच्छ, और सुदर्ढ-कुण्डल से विभूषित करने के उपरांत 'कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों, वहते हुए ब्राह्मण को अर्पित करें तथा अन्य को भी प्रदान करना चाहिए । इसको सुसम्पन्न करने पर अभीष्ट धन की प्राप्ति तथा कृतकृत्य एवं स्थिर विरक्त संयत होता है और उस शांत चेता को निर्वाध परम पद की प्राप्ति होती है । नील कमल दल की भाँति श्यामल, चार दाँत, चार भुजाएँ, पन्द्रह नेत्र, शंकुकर्ण, महास्वन, जटीयुक्त, सर्पभूषित, तान्नमुख, और वाघम्बर धारण किये उस रूप हीन महादेव के इस रूप का ध्यान करना चाहिए । ऐसा भीष्म ने शरशय्या पर पड़े हुए मुझसे कहा था । राजशार्दूल! उसी प्रकार, एवं परमोत्तम भीष्मपञ्चक व्रत का वर्णन मैंने तुम्हें सुनाया है । उस व्रतानुष्ठान में प्रसन्न करने पर भगवान् अच्युत उसे मुक्तिप्रदान करते हैं । ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, अथवा संन्यासी को भीष्मपञ्चक व्रत सम्पन्न करने पर वैष्णवलोक की प्राप्ति होती है । भीष्मपञ्चक व्रत को एक ही बार सुसम्पन्न करने पर ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी, एवं गुरुतत्पग प्राप्ति के पाप से मुक्त हो जाता है । वैष्णव यतियों के लिए इसके अतिरिक्त कोई अन्य परमोत्तम व्रत नहीं हैं । इस पवित्र भीष्मपञ्चक व्रत के श्रवण, पाठ करने से पाप-मुक्ति पूर्वक विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर! इसलिए यह महाव्रत धन्य, पुण्य एवं अत्यन्त पापहरी है । २४-५१। पाण्डव! अन्य भोजन के त्याग

यद्भूष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रत्युतिपञ्चदशीनिरुद्धम् ।
अन्नस्य भोजननिवृत्तिवशाद्मुष्मिन्निष्टं फलं दिशति पाण्डव शार्ङ्गधन्वा ॥५२
इति श्रीभविष्ये महापुराण श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भीष्मपञ्चकवर्णनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

मल्लद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

शस्त्रचक्रगदापाणे श्रीवत्स गरुडासन । द्वौहि भे मल्लद्वादश्या विधानं देवकीसुत ॥१
श्रीकृष्ण उवाच

यदा भंडीरन्यग्रोधे वसामि यमुनातटे । गोपालमध्ये गोवत्तैरष्टवर्षोस्मि लीलया ॥२
कंसामुरवधार्थयि मथुरोपवने तदा । आबालो बालरूपेण गोपमल्लैर्बन्तोत्कटैः ॥३
समेत्य मल्लगोपस्य बलेन सह ज्ञानने । आस्फोटयन्ति नृत्यन्ति त्रिदशे त्रिदशा इव ॥४
सुरभद्रो मण्डलीकयोगवर्द्धनयोगदाः । यक्षेन्द्रभद्र इत्यादि तेषां नामानि गोकुले ॥५
गोपीनामपि नामानि प्राधान्येन निबोध मे । गोपाली पालिका धन्या विशाखा ध्याननिष्ठिका ॥६
इल्वानुगन्धा सुभगा तारका दशमी तथा । इत्येवमादिभिरहं सूपविष्टो वरासने ॥७

पूर्वक एकादशी से प्रारम्भ कर पूर्णिमा पर्यन्त इस भीष्मपञ्चक नामक व्रत को जो इस भूतल पर अत्यन्त प्रस्यात है, सुसम्पन्न करते हुए प्रसन्न करने पर शार्ङ्गपाणि भगवान् दिष्णु उसे अभीष्ट प्रदान करते हैं ॥५२

श्री भविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
भीष्मपञ्चक व्रत वर्णन नामक बहतरवाँ अध्याय समाप्त ॥७२।

अध्याय ७३

मल्लद्वादशी व्रत-वर्णन

युधिष्ठिर बोले—शंख, चक्र, गदा धारण करने वाले, श्रीवत्स (भृगुलता) भूषित एवं गरुडवाहन देवकीसुत! मुझे मल्ल द्वादशी व्रत का विधान बताने की कृपा कीजिए । १

श्रीकृष्ण बोले—जिस समय भण्डीरवन में यमुना तटवर्ती वटवृक्ष के नीचे गोपालों के मध्य रहकर गोवंसों के साथ अनेक भाँति की लीलाएँ करता था और कंसामुरवधार्थयि मथुरा के उपवन में अत्यन्त वलोत्कट गोमल्लों के साथ मेरी, बलभद्र एवं अन्य गोपमल्लों की मल्लकीडा होती थी-वे सब ताल ठोकते थे, नृत्य करते थे और तीनों समय में देवों के समान रहते थे, जिनके सुरभद्र, मण्डलीक, योगवर्द्धन, योगद और पक्षेन्द्रभद्र नाम थे, तथा गोकुल आदि की रहने वाली प्रधान गोपियों को भी बता रहा हूँ, सुनो! गोपाली, पालिका, धन्या, विशाखा, ध्याननिष्ठिका, इल्वा, अनुगन्धा, सुभागा, तारका और दशमी आदि

पूजितोऽस्मि सुरैः पुण्डरीपिदुग्धाक्षतैस्तथा । श्रुतानि श्रीणि षष्ठिश्च मल्लानां पूजयन्ति मासम् ॥८
 मल्लिन्यश्च सुरामांसौरङ्गंजागरनर्तनैः । मल्लयुद्धैबुविधेबाह्यर्मल्लश्टैः स्फुटैः ॥९
 भद्र्यर्भोर्ज्यस्तथा पानैर्दधिदुग्धधृतासवैः । गोदानैर्वृषदानैश्च श्रद्धया विप्रपूजनैः ॥१०
 गोष्ठीप्रसूतैर्धूनां स्नेहसंभाषणैर्मिथः । एवं द्वादशं द्वादशो ग्रहीतव्या यथेच्छया ॥११
 संबंधिभिः क्रमेणैव मल्लानां च पृथक्पृथक् । पूजयन्ति क्रमेणैव मासिमासि तनुं मम ॥१२
 मासादिकार्तिकांतं च भक्त्या द्वादशानामभिः । पारणेपारणे ददान्मल्लकानि द्विजःतये ॥१३

केशवनारायणमाधवगोदिन्दविष्णुमधुसूदनत्रिलिङ्कमवामन

श्रीधरहृषोकेशपद्मनाभदामोहराणां नमोनमः इति ॥१४

गन्धैः पुण्यैस्तथा धूपैर्दीपैर्जागरणैर्निशि । गीतवाद्यैश्च नृत्यैश्च मल्लद्वेडाङ्गयुद्धकैः ॥१५
 धृतदानैः क्षीरदानैः कृष्णो मे प्रीयतामिति । एवमेष्व विधिः प्रोक्तो मासैद्वंद्विशभिर्नृप ॥१६
 द्वादशी या मसाद्यापि मनसः प्रीतिवर्द्धनी । मल्लैः प्रवर्तिता पस्मादतोऽर्थं मल्लद्वादशी ॥१७
 तेषां परममल्लानां तेषां ज्ञानं युधिष्ठिर । ज्ञेष्ठे सुप्राज्यं गोमहिष्याद्यजाविकम् ॥१८
 मत्प्रसादादृष्टमपुत्र बलं कीर्तियशो धनम् । एवमन्येऽपि पुरुषा हृषबला मल्लद्वादशीम् ॥१९
 ये करिष्यन्ति मद्भूतास्तेषां दास्यामि हृद्गतम् । आरोग्यं बलमैश्वर्यं विष्णुलोकं च शाश्वतम् ॥२०

गोपियों समेत मैं वह सौन्दर्य पूर्ण उत्तम प्रासन पर सुखासीन होकर पुण्य, दधि, दुग्ध और अक्षतादि द्वारा सुपूजित होता था । आज भी वहाँ तीन सौसाठ मल्ल तथा मल्ल स्त्रियों द्वारा सुरा, मांस, जागरण और नृत्य से मेरी पूजा होती है । अनेक भाँति के मल्लयुद्ध करने वाले बाहरी मल्लभरों द्वारा मल्लयुद्ध के प्रदर्शन भक्ष्य शोज्य, दधि, क्षीर, एवं धृत और (आसवों) तथा गोदान, वृषदान, श्रद्धा समेत विप्रपूजन एवं सज्जन गोष्ठी और बन्धुओं में स्नेह पूर्ण भाषणों द्वारा वे हमारी सेवा करते हैं । इसी प्रकार अन्य भी वारह द्वादशी तक इस व्रत को सुसम्पन्न करना चाहिए । २-१। उपरोक्त गोपों की भाँति सम्बन्धियों द्वारा क्रमशः मल्लों की पृथक्-पृथक् युद्ध बन्धुओं से प्रतिमास मेरी शारीरिक पूजा करनी चाहिए । १२। मार्ग शीर्ष मास से आरम्भ कर कार्तिक मास वर्षन्ति भक्ति पूर्वक केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, एवं दामोदर को नमस्कार है' प्रतिमास में क्रमशः ऐसा कहते हुए प्रत्येक पारण में ब्राह्मणों को मल्ल अर्पित करना चाहिए । गन्ध, पुण्य, धूप, दीप द्वारा विष्णु के पूजन, रात्रि जागरण, गायन, वाद्य, नृप, नामोच्चारण पूर्वक अंग-अपंग के युद्ध, धृतधन और क्षीर दान अर्पित कर कृष्ण मुङ्ग पर प्रसन्न हों, कहकर अन्त में विसर्जन करे । नृप! इस प्रकार मैंने इन वारह द्वादशियों के विधान का वर्णन कर दिया, जो द्वादशी आज भी मेरे प्रेम की वृद्धि कर रही है तथा मल्लों द्वारा आरम्भ होने के नाते मल्ल द्वादशी के नाम से स्थात है । १३-१७। युधिष्ठिर! इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उन परम मल्लों के गोष्ठी सुप्राज्य, तथा गौ, महिला, बकरी और भेड़ विषपक ज्ञान की प्राप्ति पूर्वक मेरी प्रसन्नता से बल, कीर्ति, यश और धन की वृद्धि होती है । धर्मपुत्र! इसी प्रकार अन्य पुरुषों और स्त्रियों को भी जो भक्ति पूर्वक इस मल्ल द्वादशी व्रत को सविधान सुसम्पन्न करते हैं, मनोरथ सफल करता हूँ तथा अरोग्य, बल, ऐश्वर्य, और शाश्वत विष्णुलोक का निवास भी प्रदान करता हूँ । भाष्डीर वन में न्यग्रोद्ध

भाण्डीरपादवत्ते मिलितैर्महद्विर्मलैरनाकुलितबाहुबलैर्बलिष्ठः ।
 संप्रूजितः सपदि यत्र तिथौ ततश्च सा द्वादशी सुविदिता व्रत मल्लसंज्ञा ॥२१
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 नल्लहादशविवत्वर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोद्यताः ॥७३

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः
भीमद्वादशीद्रत्वर्णनम्
क्षीकृष्ण उवाच

विदर्भाधिपतिः श्रीमानात्सीत्पूर्वं सुधार्मिकः । दमयन्त्याः पिता पूर्वं नलस्य इवशुरो भुति ॥१
सत्यवादनशीलश्च प्रजापालनतप्तरः । क्षत्रधर्मरतः श्रीमान् संग्रामेष्वपराजितः ॥२
तस्यापि कुर्दतो राज्यं सास्त्रदृष्टेन कर्मणा । आजगाम महाभागः पुलस्त्यो छह्यणः सुतः ॥३
सर्वज्ञाननिधिः श्रीमांस्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः । तमागतमश्चो दृष्ट्वा छह्ययोनिमकलमष्म् ॥४
उत्थाय प्रददौ राजा स्वमासनमभीच्छित्तम् । अर्घ्यं पाद्यं च थत्किञ्चित्तत्स्मै प्रददौ स्वथयम् ॥५
राज्यं चैवात्मना साहूं निवेद्य स कृतांजितः । तेन चैवाभ्यनुज्ञातो निषसाद वरासने ॥६
प्रप्रच्छ कुशलप्रश्नं तपस्थ्ययने तथा । तथेति चोरक्त्वा स मुनिस्तं राजानमभाषत ॥७

(वट) की छाया में अनेक मल्ल योद्धाओं द्वारा द्वादशी के दिन मेरी पूजा होने के नाते इसे मल्ल द्वादशी कहा गया है। १८-२१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में
मल्ल द्वादशी व्रत वर्णन नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७३।

अध्याय ७४

श्रीकृष्ण बोले—पूर्व काल में विदर्भ देश के नरेश्वर (राजा भीम) परम धार्मिक पुरुष थे, जो दमयंती के पिता एवं राजा नल के श्वसुर थे। सत्यवादी, प्रजाओं के पालन-पोषण में सदैव तत्पर, क्षत्रिय धर्म निष्ठ, एवं रणस्थल में अजेय उस राजा के शास्त्रीय-विधान द्वारा राजशासन काल में एक बार ब्रह्मण के पुत्र महाभाग पुलस्त्य महर्षि का उनके यहाँ आगमन हुआ, जो समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं ब्रह्मतेज विभूषित थे। तीर्थ यात्रा के क्रम में कल्मषहीन उन ब्रह्म-पुत्र के आगमन को देखकर राजा ने सहसा आसन, से उठकर अपने अभीष्ट अर्द्ध-पाद्य द्वारा उनकी सेवा की तथा अंजली वाँधकर अपने समेत सम्पूर्ण राज्य उन्हें निवेदित किया। पश्चात् उनकी आज्ञा से राजसिंहासन को भूषित करते हुए उनके अध्ययन और तप का कुशल-मंगल पूछा। महर्षि ने राजा मे प्रश्न का यथोचित उत्तर देते हए कहा । १-७

पुलस्त्य उवाच

कच्चित्ते कुशलं राजन्कोशे जनपदे पुरे । धर्मे च ते मतिर्नित्यं कञ्चित्पार्थिव यर्तते ॥८

भीम उवाच

सर्वत्र कुशलं ब्रह्मन्येषां कुशलमिळ्छति । तब चागमनेताहं पावितः संगवारिणा ॥९
 एवं तौ संविदं कृत्वा संभाव्याथ परस्परम् । रेस्ते पूर्ववृत्तान्तः कथाभिरितरेतरम् ॥१०
 ततः कथांते राजेन्द्रं पुलस्त्यं जातिविस्मयः । प्रच्छ तर्तुलीकस्य हिताय जगतः पतिः ॥११
 भगवन्प्राणिनः सर्वे संसारार्णदमध्यगाः । दृश्यते विविधैर्द्दैः पीड्यमाना दिवानिशम् ॥१२
 नरके गर्भवासे^१ च व्याधिभिर्जन्मनः तथा । तथा कष्टवियेगादिदुःखार्दीत्यसंभवैः ॥१३
 लालप्यमाना ब्रह्मः परपौडोपजीविनः । एवं विधान्यनेकानि दुःखानि भुनिपुङ्गव ॥१४
 दृष्ट्वैव ततनि तान्येव भृशं मे व्याधितं मनः । तेषां दुःखानि भूतानां प्राणिनां भुवि मानव ॥१५
 उपकारकरं ब्रूहि नमानुग्रहकाम्यया । स्वल्पायासेन भगवञ्जायते सुमहत्कलम् ॥१६

पुलस्त्य उवाच

शृणु राजन्प्रवस्थ्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् । यदुपोष्य न दुखानां भाजनो जायते जनः ॥१७
 माधमासे सिते पक्षे द्वादशी पादनी स्मृता । तस्यां जलार्द्ववसन उपोष्य सुखभागभवेत् ॥१८

पुलस्त्य बोले—राजन्! आप के कोश एवं प्रजाएँ सकुशल हैं! तथा पार्थिव! तुम्हारी धार्मिक दृढ़-भावना सदैव अविरत रहती है! ८

भीम ने कहा—ब्रह्मन्! जिनके कुशल आप पूँछ रहे हैं, वे सभी सकुशल हैं और मैं तो आप के इस आगमन द्वारा इस संयोग (मिलन) रूपी दात्रि से अत्यन्त पवित्र हो गया। इसी प्रकार वे दोनों परस्पर के कुशलमंगल की जानकारी के उपरांत पूर्व वृत्तान्त एवं अन्योन्य कथाओं द्वारा अधिक समय तक मनोविनोद करते रहे। राजेन्द्र! कथाओं के अन्त में राजा भीम ने लोक कल्याणार्थ महर्षि प्रवर पुलस्त्य जी से पूछा—‘भगवान्! संसार में सभी प्राणी इस घोर भवसागर में निमग्न हो रहे हैं—वे अनेक व्याधियों द्वारा अहर्निश पीड़ित दिखायी दे रहे हैं—नरक वास, गर्भ वास, व्याधि पीड़ित जन्य, वियोगादि जन्य दुःख तथा दुर्गति की यातनाओं के सम्मुख कर रहे हैं। अनेक प्राणी तो लालन-पालन के योग्य होते हुए भी पर-पीड़ोपजीवी देखे जाते हैं। इस प्रकार अन्य अनेक भाँति के घोर दुःख हैं। मुनि पुङ्गव! इन दुःखों को देखने से मुझे अत्यन्त मानसिक पीड़ा होने लगती है अतः मानव! मुझ पर अनुग्रह करते हुए प्रायः इन भूतल के प्राणियों के उपकारार्थ कोई ब्रत आदि उपाय मुझे बताने की कृपा करे, भगवान्! जिससे स्वल्प प्रयत्न द्वारा थच्छे और महान् फल की प्राप्ति हो सके! ९-१६।

पुलस्त्य बोले—राजन्! मैंने तुम्हें एक परमोत्तम ब्रत बता रहा हूँ, जिसमें उपवास रहने पर मनुष्यों को दुःख भाजन नहीं होना पड़ेगा, (सावधान होकर) सुनो! माधमास की शुक्ल द्वादशी के दिन, जो अत्यन्त पावनी बतायी गयी है—जलार्द्ववसन के धारण पूर्वक उपवास करने से सुख की प्राप्ति होती है। १७-१८

भीम उवाच

कथं सा मुग्निशार्दूल उपोष्या द्वादशी भवेत् । विधिना केन विप्रेन्द्र तन्मे ब्रूहि यथाक्रमम् ॥१९

पुलस्त्य उवाच

शृणु राजन्नवहितो ततं पापप्रणाशनम् । तव गुश्शूषणाद्वाच्यं ममाप्येतन्न संशयः ॥२०
 अदीक्षिताय जो देया नाशिष्याय कदाचन । विष्णुभक्ताय शांताय धर्मनिष्ठाय चैव हि ॥२१
 वाच्यमेतन्महाराज भवतान्यस्य न क्यचित् । ब्रह्महा गुरुघाती च बालस्त्रीघातकस्तथा ॥२२
 इतज्ञो मित्रधुक्खौरः क्षुद्रो भग्नप्रतस्तथा । मुच्यते पातकैः सर्वेवंतेनानेन भूपते ॥२३
 शुद्धे तिथैः मुहूर्ते च मंडपं कारयेत्ततः । दशहस्तप्रमाणेन दशपूर्वोत्तरे एल्वे ॥२४
 तन्मध्ये एच्छहस्तां तु देविकां परिकल्पयेत् । शुक्लां सुकुट्टिमां भूमि वेद्यां कृत्वा प्रयत्नतः ॥२५
 विलिखेन्मंडलं तत्रैः पञ्चवर्णर्विधानतः । ब्राह्मणो देवसम्पन्नो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥२६
 पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः स्वाचाराभिरतस्तथा । कुण्डानि कल्पयेत्तत्र अष्टौ चत्वारि वा पुनः ॥२७
 ब्राह्मणांस्तेषु युंजीत चादुश्चरणिकऽच्छुभान् । मध्ये च मण्डलस्याथ कर्णिकायां जनार्दनम् ॥२८
 प्रत्यद्भुखं न्यसेदेवं चतुर्बाहुमरिंदम् । पूजयेत्त विधानेन शास्त्रोक्तेन विचक्षणः ॥२९
 गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैनैवैद्यविविधैरपि । एवं सम्पूज्य देवेशं ब्राह्मणः सह देशिकः ॥३०
 न्यसेत्तत्तंभद्र्यं पञ्चातिष्ठन्काष्ठसमन्वितम् । देवस्याभिमुखं तत्र पीठं तु परिकल्पयेत् ॥३१

भीम ने कहा—मुनि शार्दूल! किस विधान द्वारा उस द्वादशी का उपवास किया जाता है, विप्रेन्द्र! उसके सभी क्रम मुझे बताने की कृपा करें ॥१९

पुलस्त्य बोले—राजग्! तुम्हारी शुश्रूषा से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसमें संशय नहीं । अतः इस द्वादशी-क्रत का यह पापापहारी विधान तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! महाराज! दीक्षाहीन, अशिष्य एवं अन्य व्यक्ति को इसे कभी न बताना चाहिए । विष्णुभक्त ही इसके लिए अधिकारी हैं, जो अत्यन्त धर्म निष्ठ एवं शांत हो । भूपते! इसके सुसम्पन्न करने से ब्रह्महत्या, गुरुघात, बाल और सभी का घात कृतध्य, मित्रधोह, चोरी, क्षुद्र, और मानवत आदि समस्त घातक गण विनष्ट होते हैं । उस (द्वादशी) तिथि के दिन शुभ मुहूर्त में दश हाथ का विस्तृत मण्डप का निर्माण कर, जो पूर्व और उत्तर की ओर पनप (ढालू) हो, उसके मध्यभाग में पक्की सुसज्जित भूमि पर पाँच हाथ की वेदी की सुन्दर रचना करे, उस वेदी के ऊपर पाँच रगों से वैदिक, विष्णुभक्त एवं संयमी ब्राह्मणों द्वारा सौन्दर्य पूर्ण मण्डल (पंत्र) की संविधान रचना करके कुण्डों के निर्माण कराये । आठ अथवा चार ब्राह्मणों द्वारा, जो पञ्चीस तत्वों के मर्मज्ञ, आचार-निष्ठ, श्रममूर्ति एवं वेद के चतुर्पादाध्यायी हों, मण्डल के मध्य और कर्णिका में चतुर्बाहु भगवान् जनार्दन की प्रतिमा पश्चिमाभिमुख स्थापित करके शास्त्रीय विधान द्वारा गन्ध, पुष्प, धूप, एवं अनेक भाँति के नैवेद्य से उनकी अर्चना करते हुए अपने देशिक ब्राह्मणों द्वारा देवेश के पश्चाद्भाग में दोकाष्ठ स्तम्भ के न्याय पूर्वक देवाधिदेव के अभिमुख छत्तीस अंगुल के चौकोर पीठासन स्थापित करे ॥२०-३१

षट्त्रिंशद्वयुलं श्रेष्ठं चतुरक्षं समन्ततः । तत्र शिक्ष्यं समालभ्य सुवृत्तं सुदृढं नवम् ॥३२
 आरोपेद्वटं तत्र यादृशं तच्छृणुष्व मे । कलधौतं तथा रौप्यं तान्न वाप्यथ मृण्मयम् ॥३३
 सर्वलक्षणसंयुक्तं दृढं व्यांगविवर्जितम् । तत्सहक्षं शतं कुर्यादिकच्छिद्रमथापि वा ॥३४
 पुश्लत्वानुरूपेण पाशैकच्छिद्रमेव वा । सन्निधाने ततः कुर्यात्सलिलं वस्त्रपावनम् ॥३५
 होमार्थं कल्पयेच्चापि पालाश्यः समिधः शुभाः । तिला धृतं तथा क्षीरं शमीपत्राणि चैव ह ॥३६
 वेद्याः पूर्वोत्तरे भागे ग्रहपीठं प्रकल्पयेत् । तत्र पूज्या ग्रहाः सर्वे एहयज्ञविधानतः ॥३७
 पूर्वस्यां दिशि शक्रस्य पूजां कुर्वीत यत्नतः । दक्षिणस्यां यमस्याथ प्रतीच्यां वरुणस्य च ॥३८
 दुब्रेरस्य तथोदीच्यां बलिं कुर्यात्कलाक्षतैः । एवं संभृत्य संभारं शुक्लांबरधरस्तथा ॥३९
 समालभ्य शुभैर्यैर्भूर्भपाणिरतन्द्रितः । पीठमरोपयेयुस्ते यजमानं द्विजोत्तमा ॥४०
 यजमानोऽपि देवस्य सम्मुखः प्रयतः शुचिः । उपविश्य पठेन्मन्त्रं पुराणोक्तमिदं शृणु ॥४१
 नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भुवनेश्वर । ब्रतेनानेन मां पाहि परमात्मन्मोस्तु ते ॥४२
 ततोदक्ष्य धारास्ताः प्रत्यज्ञेषु समन्विताः । शिरसा धारयेत्तूष्णीं तद्गतेनान्तरात्मना ॥४३
 होमं कुर्युस्ततो विप्रा दिक्षु सर्वासु तत्पराः । पठेयुः शान्तिकाध्यायं विष्णुसंज्ञानि यानि वै ॥४४
 वादित्रैस्ताडधमानैश्च शत्रुग्नेयस्वनैस्तथा । पुण्याहज्यशब्दैश्च वेदस्वनविमिश्रितैः ॥४५
 मांगलैः स्तुतिसंयुक्तैः कारयेतन्महोत्सवम् । देवदेवस्य चरितं केशवस्य महात्मनः ॥४६
 हरिवंशादिकं सर्वं श्रावयेद्ब्राह्मणो वरः । सौपर्णिकमथाख्यानं भारताख्यानमेव च ॥४७

उसके रस्सी के सहारे अत्यन्त गोलाकार, दृढ़ एवं नवीन घर का जिस भाँति आरोपण होता है, मैं बता रहा हूँ सुनो! सुवर्ण, चाँदी, तर्बी अथवा मृत्तिका के सर्वलक्षण सम्पन्न, दृढ़ एवं सौन्दर्य पूर्ण घर को, जिसमें सहस्र, शत अथवा एक छिद्र किया गया हो और वह कुसे अथवा सूत्र (डोरा) से संयुक्त हो, उस पर स्थापित कर उसके सविधान में वस्त्रपूत जल की स्थापना करे। हवन के लिए पलाश की रसिम पर, तिल, धृत, क्षीर और रेशमीपत्र के स्थापन पूर्वक वेदी के पूर्वोत्तर भाग में ग्रह पीठासन पर पूज्य ग्रहों की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करे—पूर्व दिशा में देवराज इन्द्र, दक्षिण दिशा में यम, पश्चिम में वरुण, और उत्तर दिशा में कुबेर की अर्चना करके फल-अक्षत समेत बलि प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार यज्ञ-संभार संयुक्त तथा शुक्ल वस्त्रके धारण, गन्ध के ब्रतालेप और हाथ में कुश लिए उस तंडारहित यजमान को ब्राह्मणों द्वारा मण्डपपीठ पर शोभित होना चाहिए। उस समय यजमान को भी देवनायक (विष्णुदेव) के संमुख पवित्रता पूर्ण एवं सप्रयत्न बैठकर इस पुराणोक्त मंत्रों द्वारा बन्दना करनी चाहिए—देव देवेश एवं भुवनाधिपति को नमस्कार है, परमात्मन्! इस ब्रतानुष्ठान द्वारा भेरी रक्षा करो। मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ ॥३२-४२। अनन्तर प्रत्यंगो में समन्वित होने वाली उस उदक-धारा को तन्मय एवं मौन होकर शिर से धारण करने के उपरांत हवन सुसम्पन्न करके प्रति दिशाओं में स्थित ब्राह्मणों द्वारा विष्णु के शांति अध्याय के पाठ, वाद्य, शंख-ध्वनि गान, पुण्य एवं जय शब्दों के उच्चैः उच्चारण वेद पाठ एवं मांगलिक स्तुतियों द्वारा उस महोत्सव को सुसम्पन्न करे। देवाधिदेव भगवान् केशव देव के हरिवंशादि का ब्राह्मण द्वारा श्रवण, सौपर्णिक-भारत के आख्यान में कुशल विद्वानों के

व्याख्यानकुशलाः केचिच्छ्रावयेयुरतन्द्रिताः । अनेन विधिना सर्वा तां रात्रिं प्रीतिवर्द्धनीम् ॥४८
 यजमानो नयेद्वीमान्यावत्सूर्योदयो भवेत् । ब्राह्मणाश्चापि तां रात्रीं जुह्वतो जातवेदसम् ॥४९
 मंत्रैस्तु वैष्णवैर्दिव्यैः क्षपयेयुर्भृहीपते । वासुदेवस्य शिरसि वसोद्वारां प्रपातयेत् ॥५०
 क्षीरेणाज्येन वा राजन्सर्वसिद्धप्रदायिनीम् । ततः प्रभातसमये यजमानो द्विजैः सह ॥५१
 स्नानं कुर्यास्त्रृपश्चेष्ठ नद्यां सरसि वा पुनः । अथ वा शक्तिहीनस्तु यजमानोष्णवारिणा ॥५२
 ततः शुक्लानि वस्त्राणि परिधाय यतव्रतः । अर्घ्यं दत्त्वा भास्कराय सविधानं प्रसन्नधीः ॥५३
 पूजैःधूर्यैः सनैवेद्यैः पूजयेत्युरुषोत्तमम् । हुत्वा हुताशनं भक्त्या दत्त्वा पूर्णाहृतिं ततः ॥५४
 पूजयेद्ब्राह्मणान्सर्वान्होतारो यज्ञकल्पिताः । शव्याभोजनगोदानैर्वस्त्रैराभरणैस्तथा ॥५५
 आचार्यः पूजनीयोद्भ्रात्र सर्वस्वेनापि भारत । येन वा तत्य सन्तुष्टिर्देवतुल्यो गुरुर्दत्तः ॥५६
 वित्तशान्थविहीनस्तु भक्तिश्कृत्तमन्वितः । दीनानाथविशिष्टाश्च बन्दिनश्च समागताः ॥५७
 तेषामन्नं हिरण्यं च दद्याच्छुद्धेत् चेतसा । एवं संपूज्य विप्राय भोजयित्वा यथेष्मितम् ॥५८
 यथाविभवसारेण पश्चाद्भुज्जीत वाग्यतः । हविष्यमन्नं यजेन हविष्याः सतिलास्तथा ॥५९
 एवं यज्ञो महाराजांश्चोक्तस्ते संप्रकीर्तिः । दपिष्ठाः सर्वपापेभ्यो मुच्छांते नात्र संशयः ॥६०
 वाजपेयातिरात्राभ्यां ये यजंति शतं समाः । सर्वे ते विष्णुयागस्य कलां नार्हति दोडशीम् ॥६१
 सप्त जन्मानि सौभाग्यमायुरारोग्यसंपदः । प्राप्नोति द्वादशीमेतां तामुपेष्य विधानतः ॥६२

भाषण-श्वरण पूर्वक उस प्रीतिवर्द्धनी समस्त रात्रि को व्यतीत कर, जिसमें ब्राह्मणगण वैष्णव मंत्रों के उच्चारण पूर्वक अग्नि देव को प्रसन्न करते रहे, सूर्योदय होने पर यजमान क्षीर अथवा धूत की वसोद्वारा भगवान् वासुदेव के शिर पर गिराये । महीपते! ऐसी वसोद्वारा सर्वसिद्धि प्रदान करती है । राजन्! प्रभात होने पर ब्राह्मणों के साथ यजमान किसी नदी, सरोवर अथवा अन्य जलाशय में स्नान, एवं शुक्ल वस्त्र धारण कर प्रसन्न चित से सविधान सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे । नृपथेष्ठ! अशक्त यजमान को उच्छ जल से शुद्ध होना चाहिए । अनन्तर भक्ति पूर्वक पुष्प, दूध, नैवेद्य समेत भगवान् पुरुषोत्तम की अर्चना कर, अग्नि में पूर्णाहृति प्रदान करे । तदुपरात यज्ञ में अनुष्ठित सभी होता आदि ब्राह्मणों को शव्या, भोजन, गोदान, वस्त्र और आभूषणों द्वारा सुसम्मानित करके सर्वस्व समर्पित करते हुए आचार्य की पूजा करनी चाहिए । भारत! जिससे वे अधिक प्रसन्न हों उन्हें वही वस्तु अर्पित करें क्योंकि गुरु को देवतुल्य बताया गया है । वित्तशाठ्य (कृपणता) दोष के परित्याग पूर्वक भक्ति सहित यथाशक्ति दीन, अनाथ, वंदी एवं अन्य अभ्यागतों का शुद्ध भावना से यथा शक्ति अन्न और सुवर्णप्रदान करना चाहिए । इस प्रकार पूजनोपरान्त धनानुसार ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजनों से संतुप्त यज्ञ में अवशिष्ट शीतल हविस्यान्न का मौन होकर स्वयं भोजन करे । राजन्! इस भाँति मैंने (विष्णु) यज्ञ की व्याख्या तुम्हें बता दिया, जिसके सुसम्पन्न होने पर घोर पापी भी समस्त पातकों से मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं । वाजपेय एवं अतिरात्र यज्ञ को सौवार सुसम्पन्न करने पर प्राप्त होने वाले उसके सभी फल इस विष्णु-यज्ञ की सोलहवीं कला की भी समानता प्राप्त नहीं कर सकते हैं । ४३-६१। इस द्वादशी में सविधान उपवास रहने पर सात जन्म तक सौभाग्य, आयु एवं आरोग्य की प्राप्ति पूर्वक देहावसान होने पर

वृतो विष्णुपुरं माति विष्णुना सह मोदते । चतुर्युसानि द्वादशिंशद्विष्णुरूपधरः स्थितः ॥६३
 रुद्रलोके तथा राजन्युगानि द्वादशैव तु । ब्रह्मलोके तथा क्षीणि सूर्यलोके युगानि च ॥६४
 पुण्यक्षयादिहास्येत् राजा भवति धार्मिकः । पृथिव्यधिपतिः श्रीमान्विजितारिः प्रतापवान् ॥६५
 व्रतमेतत्पुरा चीर्णं सागरेण महात्मना । अजेन धुन्धुमारेण दिलीपेन ययात्तिना ॥६६
 अन्यैश्च पृथिवीपालैः पालिताशेषभूतलैः । स्त्रीभिर्वैश्यैस्तथा शूद्रैर्धर्मकामैः सदा नृप ॥६७
 भृगवैर्यमुनिभिः सर्वेषां हैवेदपरागैः । त्वया च पृष्ठेन मया कथितं ते नराधिप ॥६८
 अद्य प्रसृति चैवेयं ख्यातिं यास्यति भूतले । भीमाख्या द्वादशी चेति कृतकृत्या च भारत ॥६९
 एषा पुलस्त्यमुनिना कथिता कुरुनन्दन । यश्चैनां कथितां ध्यात्वा कुर्याद्वा भक्तिभावतः ॥७०
 विष्णुभक्तेन कर्तव्या संसारभयभीरुणा ॥७१

भीमेन या कित पुरा समुपोषिता च रात्रौ घटस्थिरसुशीतलवारिधारा ।

तां द्वादशर्ते दशमुखारिमुखाच्छुतां च सम्यग्वती चरति याति स विष्णुलोके ॥७२

इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरर्पद्धिणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

भीमद्वादशीव्रतवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४

विष्णुलोक में विष्णु देव के साथ आमोद-प्रमोद प्राप्त होता है । राजन् ! वहाँ बत्तीस चतुर्युग तक विष्णु रूप में सुखानुभूति करने के उपरान्त वारह युग तक रुद्रलोक, तीन युग तक ब्रह्मलोक और एक युग तक सूर्यलोक का सम्मान प्राप्त होता है । पश्चात् पुण्य क्षीण होने पर इस भूतल का विजेता, प्रतोपी, धार्मिक एवं श्रीमान् पृथिवीपति होता है । पहले समय में सर्वप्रथम महात्मा सगर, अज, धुन्धगार, दिलीप एवं ययाति तथा अन्य नृपगण, स्त्रियाँ, वैश्य, धर्मार्थी शूद्र, भृगु आदि मुनिवृन्द और वेद के पारदर्शी विद्वान् ब्राह्मणों ने इस व्रत की सुसम्पन्न किया है । नराधिप ! तुम्हारे प्रसन का इस प्रकार मैंने यथोचित व्याख्या में उत्तर प्रदान किया है । भारत ! इस कृत कृत्य भीम द्वादशी इस भूतल पर आज से अत्यन्त प्रस्त्याति होगी । कुरुनन्दन ! इस प्रकार पुलस्त्य मुनि ने इसकी व्याख्या उन्हें सुनायी थी । भक्ति भावना से इस पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में पूजित होते हैं । पार्थ ! दरिद्र पुरुष को भी वित्तशाद्य दोष के त्याग का विशेष ध्यान रखना चाहिए । संसार भय-भीरु विष्णु भक्त को यह व्रत अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए । राजा भीम ने जिस द्वादशी के दिन उपवास रह कर रात्रि में घट स्थापन पूर्वक सुशीतल वारिधारा का संचार किया है, उसी द्वादशी व्रत को रावण के निहन्ता (नृप) राम के मुख से सुनकर सुसम्पन्न करने वाला विष्णु लोक की प्राप्ति करता है । १२-७२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरर्पद में भी श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में

भीमद्वादशी व्रत वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । ७४।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

श्वर्वद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

उपवाससमर्थनां सदैव पुरुषोत्तमः । एका या द्वादशी पुण्या तां वदस्त्व ममानघ ॥१
श्रीकृष्ण उवाच

माति भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता । सर्वकामप्रदा पुण्या चोपवासे महाफला ॥२
सङ्गमे सरितां स्नात्वा द्वादश्यां समुपोषितः । अयत्नात्समवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम् ॥३
वृद्धश्वरणद्वादश्यामेवं वै संयतो भवेत् । अतीव महती तस्यां कृतं सर्वमथाक्षयम् ॥४
द्वादशी श्रवणोपेता यदा भवति भारत । सङ्गमे सरितां स्नात्वा गङ्गादिस्नानं फलम् ॥५
सोपवासः समाप्नोति नाश्रकार्या विचारणा ॥५

जलपूर्णे तथा कुमभे स्थापयित्वा विचक्षणः । पञ्चरत्नसमोपेतं सोपवीतं सुप्रजितम् ॥६
तस्य स्कन्धे सुवटितं स्थापयित्वा जनार्दनम् । यथाशक्ति स्वर्णमयं शङ्खशार्ङ्गविभूषितम् ॥७
स्नापयित्वा विधानेन सितचन्दनचर्चितम् । सितवस्त्रयुगच्छब्दं छत्रोपानद्युगान्वितम् ॥८
ॐ नमो वासुदेवायेति शिरः सम्पूजयेद्वरे: । श्रीधराय मुखं तद्वत्कण्ठं कृष्णाय वै पुनः ॥९
ॐ नमः श्रीमते वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे । व्यापकाय नमः कुक्षी केशवायोदरं नमः ॥१०

अध्याय ७५

श्वर्वद्वादशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पुरुषोत्तम अनन्ध ! उपवास रहने में असमर्थ प्राणियों के लिए एक ही किसी पुण्य द्वादशी की व्याख्या बताने वाले की कृपा कीजिये ।

ब्रैकृष्ण बोले—भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी श्रवण नक्षत्र प्राप्त होने पर समस्त काम प्रदायिनी, पुण्य एवं उपवास के लिए महाफलप्रदा बतायी गयी है । द्वादशी के दिन किसी सरिता-संगम में स्नान करके उपवास रहने पर अनायास बारहों द्वादशी के फल होते हैं । बुधवार के दिन श्रवण युक्त द्वादशी में संयमपूर्वक व्रती रहने से महान फल प्राप्त होते हैं—उसमें किये हुए सभी कर्म, अक्षय फल प्रदान होते हैं । भारत ! श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी के दिन सरिता-संगम में स्नान करने पर गंगा-स्नान के फल प्राप्त होते हैं । उसमें बिना विचारे हुए उपवास अवश्य रहना चाहिए । अनन्तर जल पूर्ण घट स्थापन करके उसके स्कंध भाग में भगवान जनार्दन पञ्चरत्न यज्ञोपवीत समेत स्थापित करते हुए यथाशक्ति सुवर्ण के शङ्ख और धनुष से विभूषित कर सविधान स्नान कराये और श्वेत चन्दन से चर्चित कर श्वेत दो वस्त्र, छत्र एवं उपानह आदि द्वारा—ॐ नमो वासुदेवाय मन्त्र के उच्चारण से उनके शिर, भू धराय नमः से मुख, कृष्णाय नमः से कंठ, श्रीमते नमः से वक्ष, सर्वास्त्रधारिणे नमः से बाहू, व्यापकाय नमः से कुक्षि, केशवाय

त्रैलोक्यजनकार्थेति एवं संपूजयेद्वरिम् । सर्वाधिपतये जड्डे पादौ सर्वात्मने नमः ॥११
 अनेन विधिना रःजन्पुष्ट्यैर्घूर्षैः समर्चयेत् । ततस्तस्याग्रतो देयं नैवेद्यं धृतपाचितम् ॥१२
 सोदकांश्च नवान्कुभाञ्छक्षणः दद्याद्विचक्षणः । एवं संपूज्य गोविंदं जागरं तत्र कारयेत् ॥१३
 प्रभाते विमले स्नात्वा संपूज्य गरुडध्वजम् । पूष्पधूपादिनैवेद्यैः फलैर्वस्त्रैः सुशोभने ॥
 ततः पुष्पाञ्जलिं बद्धा मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥१४
 नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्श्वण सज्जक । अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥१५
 एवं संपूज्य गोविंदं ब्राह्मणं पूजयेत्ततः । अनंतरं ब्राह्मणे वै वेदवेदान्तपारगे ॥
 पुराणज्ञे विशेषेण विधिवत्सप्रदापयेत् ॥१६
 द्वादश्यां श्रवणे युक्ते अशेषाहस्करान्विते । करकं संगमे स्नात्वा प्रीयतां मे जनार्दनः ॥१७

श्रीकृष्ण उवाच

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । महत्यरण्ये यद्वृत्तं भूमिपाल शृणुष्व तत् ॥१८
 देशो दशार्णको नाम तस्य भागे तु पश्चिमे । अस्ति कश्चिन्मरुदेशः सर्वसत्त्वभयकरः ॥१९
 सुतप्तसिकता भूमिर्यत्र दुष्टा महोरगाः । अल्पच्छायद्वामाकोणो मृतप्राणि समाकुलः ॥२०
 शमीखदिरपालाशकरीरैः पीलुभिः सह । तत्र भीमा द्वामाः पार्थ कण्टकैः शबला दृढ़ैः ॥२१
 दग्धप्राणिगणाकीर्णा यत्र भूर्दृश्यते क्वचित् । अन्नोदकं तो लभन्ते राजस्तत्र बलाहकाः ॥२२

नमः से उदर और त्रैलोक्य जनकाय नमः से समस्त की अर्चना करते हुए सर्वाधिपतये नमः से जंधाएँ और सर्वात्मने नमः से चरण की समर्चा सुसम्पन्न करना चाहिए । २-११। राजन्! इसी विधान द्वारा पुष्प, धूप, आदि से उन्हें प्रसन्न कर उनके सम्मुख धृत नैवेद्य, यथा शक्ति एक से अधिक (नव) जलपूर्ण पर अर्पित करे । १-९-३। इस प्रकार गोविन्द की अर्चना करके जागरण द्वारा रात्रि व्यतीत करने के उपरांत विष्णु की पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल एवं सुशोभन वर्त्रों द्वारा पूज्य करके पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर क्षमा प्रार्थना करे—बुध एवं थवण संज्ञा वाले गोविन्द देव को बार-बार नमस्कार है, मेरे पापौघ के विनाश पूर्वक समस्त सौख्य प्रदान करे । इस प्रकार गोविन्द की आराधना के समनन्तर ब्राह्मण की अर्चना करके उसी वेद-वेदान्त के मर्मज्ञ एवं पुराण निष्णात विद्वान् को वे सभी वस्तुएँ अर्पित करना चाहिए । बुधवार एवं थवण युक्त द्वादशी के दिन संगम में स्नान पूर्वक उपरोक्त ब्राह्मण को करक (कमण्डलु) के स्नान करते हुए 'जनार्दन देव मुझ पर प्रसन्न हों, कहना चाहिए । १२-१७

श्रीकृष्ण बोले—भूमिपाल ! इसी विषय का एक प्राचीन इतिहास उस महान् अरण्य में जो कुछ हुआ है—मैं बता रहा हूँ, सुनो ! दशार्ण देश के पश्चिम भाग में कोई मरु प्रदेश है, जिसमें समस्त प्राणियों को भयकर यातनाएँ प्राप्त होती हैं—वहाँ की सिकता (वालुका) मयी भूमि अत्यन्त सन्तप्त रहती है, एवं अनेक दुष्ट एवं महान् सर्पगण दिखायी देते हैं, अल्प छाया वाले वृक्ष मृतक प्राणियों से घिरे रहते हैं, सभी, खदिर (खैर), करीर (वांस) और पीलु वृक्ष अधिक हैं। पार्थ ! वहाँ के भीमकाय वृक्ष दृढ़ कंटकों से व्याप्त रहते हैं—तथा भूमि में दग्ध प्राणियों की महान् राशि दिखायी देती है । राजन् ! बलाहकों (दैत्यो आदि) को वहाँ अन्नोदक की प्राप्ति नहीं होती। भ्रमण करते पक्षीगण कभी-कभी दिखायी देते हैं । १८-२१३।

कदाचिदपि दृश्यन्ते भ्राम्यन्तो हि विहङ्गमाः । वृक्षांतरगतैर्नित्यं शिशुभिस्तृष्णितः समम् ॥

उत्कृतजीविता राजन्दृश्यन्ते विहगोत्तमाः:

४३२

तृष्णातुराश्च सहस्रः मुगाः सैकतमागताः । सैकतेष्वेव नश्यन्ति जलं सैकतसेतुवत् ॥२४

तस्मिस्तथाविधे देशे कश्चिद्वैववशाद्वर्णिक् । निजसार्थपरिभ्रष्टः प्रविष्टो मरुजागले ॥२५

पिशाचान्मलिनांस्तीक्ष्णानिर्मासान्भीमदर्शनान् । इतस्ततः संचरतो ददर्श वणिगुत्तमः ॥२६

ब्रामोद्भ्रान्तहृदयः क्षुत्सूष्यत्रमर्कर्षितः । क्व ग्रामः क्व जलं क्वाहं यारप्यामि न उबोध सः ॥२७

अथ प्रेतान्वदशरासौ तृष्णाव्याकुलितेद्वियान् । स्नायुबद्धास्त्वरणान्प्रेक्षमाणानितस्ततः ॥२८

प्रेतस्कंधसमारूढमेकं प्रेतं ददर्श ह । अपश्यद्वृहुभिः प्रेतैः समंतात्परिवारितम् ॥२९

आगच्छन्तं तमव्यग्रं क्षुत्शब्दपुरःसरम् । प्रेतस्कंधान्महीं गत्वा तस्यांतिकमुपानमस्तः ॥३०

स दृष्ट्वाऽवणिक्षेष्ठमिदं वचनमङ्गवीत् । अस्मिन्वै निर्जले देशे गमनं भवतः कथम् ॥३१

तमुवाच वणिग्धीमान्सार्थभ्रव्यस्य चैव मे । प्रवेशो दैवयोगेन पूर्वकर्मकृतेन तु ॥३२

तृष्णा मां बाधतेऽत्यर्थं क्षुहुनोति भृश तथा । प्राणाः कण्ठमनुप्राप्ता वचनं नश्यतीव मे ॥

अत्रोपायं न पश्यमि जीवेयं धेन केनचित् ॥३३

कृष्ण उवाच

इत्येवमुक्ते प्रेतस्तं वणिजं वाक्यमव्रवीत् । पुनागमिममाश्रित्य प्रतीक्षस्व मुहूर्तकम् ॥३४

राजन्! वहाँ के विहगगण वृक्षों के कोटरों में स्थित अपने शिशु-शावकों को पिपासा पीड़ित होने पर नित्य प्राण परित्याग करते देखते हैं—और यृषा से व्याकुल होकर मृगगण भी जलके भ्रमवश उस सैकत (बालू) प्रदेश में इधर-उधर से सहसा आ पहुँचते हैं, जहाँ सिकता (बालू) मय प्रलय की भाँति जल सर्वथा नष्ट हो जाता है। इस भाँति के उस मरुजंगल प्रदेश में एकबार कोई वेश्या अपने साथियों के साथ छूट जाने पर भूलता-भटकता आ पड़ूँचा। उसने मलिन, तीक्ष्ण, मांस रहित एवं भयंकर स्वरूप वाले वणिकू को इधर-उधर भ्रमण करते देखकर स्वयं भी अन्तर्चिंत, एवं सुधर-तृष्णा से पीड़ित होने के नाते कहीं स्मिरन रह सका—इधर-उधर धूमता ही रहा। कहाँ ग्राम, कहाँ जल हैं और मैं कहाँ जा रहा हूँ, इसका कुछ भी ज्ञान उसे नहीं था। २२-२१। अनन्तर उसने तृष्णा पीड़ित, इन्द्रिय शिथित, स्नानु सा आबद्ध प्राप्ति और चरण तथा इधर-उधर ध्यान से देखने वाले उत्त प्रेतों को देखते हुए यह भी देखाकि किसी प्रेत के कन्धे पर एक प्रेत स्थित है जिसे अनेक प्रेतगण चारों ओर से धेरे हुए हैं—एवं ‘स्तुतु’ शब्द करते हुए निर्भय उधर ही आ रहे हैं। प्रेत के कन्धे के उत्तर कर उस प्रेत ने उस वैश्य सेठ के समीप जाकर उससे कहा—इस निर्जल प्रदेश में आप का कैसे आगमन हुआ! बुद्धिमान् वैश्य ने कहाकि—दैवयोग से साथियों के साथ छूटने और जलान्तरीय कर्म के प्रभाव से मुझे यहाँ आना पड़ा—मैं तृष्णा एवं क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित ही रहा हूँ, प्राण निकलने के हेतु कंठ तक आगया है तथा बोल नहीं पा रहा हूँ। किन्तु जीवित रहने का यहाँ कोई उपाय दिखायी नहीं देता है। ३०-३३

श्रीकृष्ण बोले—इस भाँति उसके कहने पर प्रेत ने उस वैश्य से कहा—इसी पुनाग वृक्ष के नीचे प्रायः मुहूर्त मात्र मेरी प्रतीक्षा करें—मैं अभी आ रहा हूँ—मेरी इस अतिथि सेवा को स्वीकार करने के

कृतातिथ्यो यथातामं नन्निष्ठसि यथासुखम् । एवमुक्तस्तथा चक्रे त वणिक्तृष्णयादितः ॥३५
मध्याह्नसमये प्राप्ते ततस्तं देशमागतः । पुन्नागवक्षात्करको वारिधारामनोरमः ॥

दध्योदनसमायुक्तोऽवर्धमानेन संयुतः ॥३६

आगते करके तास्मन्नादादतिथये तदा । भुक्त्वान्नं च जलं पीत्वा वणिक्तुष्टिमुपागतः ॥
वितृष्णो विज्वरवचैव क्षणेन सम्पद्यते ॥३७

ततस्तु प्रेतस्तंघस्य भोक्तुकामस्य दै ददौ । दध्योदनं सपानीयं प्रेतास्तृप्तिं परं गताः ॥३८

अतिथिं तर्पयित्वा च प्रेतलोकं च सर्वशः । ततः स्वयं त द्वुभुजे भुक्त्वरोषं यथासुखम् ॥३९

तस्य भुक्त्वतश्चान्नं गानीयं च क्षयं यदौ । प्रेताधिपं ततस्तृप्तो वणिगवचनमब्रवीत् ॥४०

अश्चर्यमेतत्परमं दणेऽस्मिन्प्रतिभाति मे । अन्नपानस्य सम्प्राप्तिः परमस्य कुतस्तत्वं ॥४१

स्तोकेन च तथावेन बिभर्षि सुबहून्पृथक् । तृप्ताः परं कथं त्वेते निर्मासा भिन्नकुक्षयः ॥४२

अपरं च कथं चेह मम पापपरिक्षयः । हस्तावलंबनकस्त्वं सम्प्राप्तो निर्जने वने ॥

तृप्तश्चासि कथं ग्रासमात्रेण च शुभवत ॥४३

करत्वमस्यां सुधोरायामटव्यां तु कृतालयः । तमेतं संशयं छिंधि परं कौतूहलं मम ॥४४

एवमुक्तः त वाणिज्या प्रेतो वचनमब्रवीत् । शृणु भद्र प्रवक्ष्यामि दुष्कृतं कर्म चात्मनः ॥४५

शाकले नगरे रम्ये अहमासं सुदुर्मतिः । वाणिज्यासक्तिः पूर्वं कालो नीतो मयानघ ॥४६

धनलोभान्मया तत्र कदाचिच्च प्रमादिना । न दत्ता भिक्षवे भिक्षा तृष्णया पीडिताय च ॥४७

अनन्तर, आप अपने, अभीष्ट स्थान को सुख पूर्वक चले जाइयेगा । उसके कथनानुसार वैश्य ने वैसा ही किया—वह मध्याह्न के समय वहाँ पहुँचा था । उस पुराण वृक्ष के नीचे उसे कमण्डल में वारिधाराके मनोरम जल और दध्योदन (देहीमात), जो आवश्यकतानुसार बढ़ता रहता था, वहाँ आया । प्रेत ने सप्रेम उसे वैश्य को अपित किया । अन्न भोजन एवं जलपान करके वह वैश्य अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसके तृष्णादि के ज्वर क्षण मात्र में नष्ट हो गये । तत्प्रश्नात् उस प्रेत ने उन प्रेतों को भी दधि-चावलं तथा जलप्रदान किया जिससे वे लोग अत्यन्त तृप्त हो गये । इस प्रकार अतिरिक्त वैश्य और प्रेत मंत्रों के संतुप्त होने पर उसने शेष भाग स्वयं भोजन किया । अत्यन्त तृप्त होने पर उस वैश्य ने उस प्रेत नायक से कहा—मुझे अत्यन्त आश्र्वय हो रहा है, जो तुम्हें इस घोर जंगल में इस प्रकार के सुस्वादु पूर्ण भोजन की प्राप्ति जिस अल्प परिणाम भोजन से तुम पृथक्-पृथक् अनेक लोगों की संतुप्ति पूर्वक सदैव रक्षा करते हो । भिन्न कुक्षि वाले इन मांसहीन प्रेतों की संतुप्ति कैसे हो गयी! और इस निर्जन वन में मेरे पाप क्षीण कैसे हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप आप का कटावलम्बन मुझे प्राप्त हुआ—आप कैसे और कहाँ से आये । शुभवत! (भोजन के) ग्रास मात्र से तुम्हारी तृप्ति कैसे हो गयी और इस भयानक पृथकी में निवास करने वाले आप कौन हैं! कृपया मेरे इस संशय को दूर करें क्योंकि (इसके जानने के लिए) मुझे महान् कुत्रहल हो रहा है । वैश्य के इस प्रकार कहने पर प्रेत ने कहा—भद्र! अपने दुष्कृतों को मैं बता रहा हूँ, अनथ! पूर्व जन्म में मैं शाकल नगर का निवासी था, मेरी मन्दगति सदैव अपने वणिक-व्यवसाय में ही तन्मय रहती थी । इस प्रकार जीवन यापन करते हुए हम अत्यन्तलोभ के कारण तृष्णा पीडित रहते थे । ३४-४७।

प्रतिवेशे च तत्रासीद्ब्राह्मणो गुणदान्तसम् । श्रवणद्वादशीयोगे मासि भाद्रपदे तथा ॥४८
 स कदाचिन्मया सार्थं तोषां नाम नदीं यथौ । तस्याश्च सङ्ग्रहः पुण्यो यत्रासीच्चन्द्रभागया ॥४९
 चन्द्रभागा सोमसुता तोषा दैवार्कनंदिनी । तयोः शीतोष्णसलिलसंगमः सुमनोहरः ॥५०
 तत्तीर्थवरमासाद्य प्राति वेशः स च द्विजः । श्रवणद्वादशीयोगे स्नातश्चैवमुपोदितः ॥५१
 चन्द्रभागातोषयोश्च वारिधार्यैर्वैदृढैः । दध्योदनयुतैः सार्थं सम्पूर्णवर्धमानकैः ॥५२
 छत्रोपानद्युनं वस्त्रं प्रतिष्ठां निधिवद्वरे । चन्द्रभागाजीवनेन दध्योदनयुतं तदा ॥५३
 एतत्कृत्वा गृहं प्राप्तस्ततः कालेन केनचित् । पञ्चत्वम्हमासाद्य नास्तिक्षमात्प्रेततां गतः ॥
 अस्यामृटव्यां घोरायां यथा दृष्टस्त्वयानघ ॥५४
 ब्रह्मस्वहारिणस्त्वेते पापाः प्रेतत्वमागताः । परदाररताः केचित्स्वामिद्रोहरताः परे ॥५५
 मित्रद्रोहरताः केचिद्देशोऽस्मस्तु सुदारुणे । ममैते भृत्यतां याता अन्नपानकृतेन च ॥५६
 अश्यो भगवान्कृष्णः परमात्मा सनातनः । यदीयते तमुद्दिश्य अक्षयं तत्प्रकीर्तितम् ॥५७
 मद्या विहीनाः किं त्वेते वनेऽस्मिन्भृशदारुणे । पीडामनुभविष्यति दारुणां कर्मयोनिजाम् ॥५८
 एतेषां त्वं महाभाग ममानुग्रहकाम्यया । अनेकनामगोत्राणि गृहाण लेखनेन च ॥५९
 अस्तु कक्षागता चैव तव संपुटिका शुभा । हिमवत्यां तथासाद्य तत्र त्वं लप्स्यसे निधिम् ॥६०
 गयाशीर्षे ततो गत्वा शाद्वं कुरु महामते । एकमेकमयोद्दिश्य प्रेतं प्रेतं यथासुखम् ॥६१

किन्तु मेरे पड़ोस में रहने वाले एक विद्वान् ब्राह्मण ने एकबार भाद्रपदमास की शुक्ल, श्रवण युक्त द्वादशी के अवसर पर तोषा नामक नदी की यात्रा की, जहाँ तोषा और चन्द्रभागा का रमणीयक संगम हुआ है । सोम सुता चन्द्रभागा एवं चन्द्र ननिनी तोषा का संगम-जल शीतोष्ण और अत्यन्त मनोहर है । उस परमोत्तम तीर्थ में पहुँच कर उस प्रतिवेशी (पड़ोसी) ब्राह्मण ने उस योग में स्नान के अनन्तर उपवास नियम के पालन पूर्वक चन्द्रभागा और तोष्ण के नवीन, दृढ़ एवं वर्धमान वारिधार्य के चावल तथा दधि, धन, उपानह एवं युग्म वस्त्र द्वारा भगवान् विष्णु की उस सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा की सविधान अर्चना करके उसके साथ में कभी चन्द्रभागा के जल एवं उसी दध्योदन द्वारा प्राण रक्षा करते घर का प्रस्थान किया । कुछ काल के अनन्तर देहावसान होने पर नास्तिक होने के नाते मुझे प्रेत-योनि प्राप्त हुई । अनधि! उसी समय से मैं इस घोर अरण्य में रह रहा हूँ, जैसा कि आप देख रहे हैं । ४८-५४। ब्रह्मस्व के अपहरण करने वाले इन पापियों को भी प्रेत योनि प्राप्त हुई है—इनमें कोई परास्त्रीगामी, कोई स्वामि द्वोही और कोई मित्र द्वोही है, जो इस दारुण प्रदेश में रह रहे हैं । अन्न-पात से पालन-पोषण करने के नाते ये सभी मेरे सेवक हुए हैं । परमात्मा, एवं सनातन भगवान् कृष्ण अक्षय हैं, और उनके उद्देश्य से जो कुछ प्रदान किया जाता है वह भी अक्षय होता है, क्योंकि इस घोर प्रदेश में मेरे विना ये प्रेतगण कर्मनुसार अत्यन्त घोर पीडा का अनुभव करेंगे अतः महाभाग! मेरे ऊपर अनुग्रह करते हुए आप अनेक नाम गोत्र का उल्लेख कर दें । ५५-५९। अनन्तर हिमालय के कक्ष प्रदेश में पहुँचने पर आप को निधि प्राप्त होगी । महाशय! गया तीर्थ में पहुँच कर प्रत्येक प्रेतों के उद्देश्य से उनके नाम गोत्र के उच्चारण पूर्वक शाद्वं सुसम्पन्न कीजियेगा । इस प्रकार उस वैश्य के साथ सम्भाषण करते उस प्रेत राज की शरीर अग्नि तप्त

एवं सम्भाषमाणोऽसौ तप्तजांबूनदप्रभः । विमानवरमारुह्य स्वर्गलोकमितो गतः ॥६२
स्वर्गते प्रेतनाथे तु प्रभावात्स दणिकमुमान् । नामगोत्राणि संगृह्य प्रयातः स हिमाचलम् ॥६३
तत्र प्राप्य निधिं गत्वा विनिक्षिप्य स्वके गृहे । धनभागमुपादाय गयाशीर्षवर्णं यथौ ॥
प्रेतानां क्रमशस्तत्र चक्रे शाद्वं दिने दिने ॥६४

यस्य यस्य गयाश्रादं स करोति दिने वणिक् । स च तस्य सदा स्वप्रे दर्शयत्यात्मनस्तनुम् ॥६५
ब्रदीति च महाभाग प्रसादेन तवानघ । प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि वरमां गतिम् ॥६६
स छत्वा धनलोभाच्च प्रेतानां सङ्कृतिं वणिक् । जगाम स्वगृहं तत्र मारि भाद्रपदे तथा ॥६७
श्रवणद्वादशीयोर्गे पूजयित्वा जनार्दनम् । दत्तं च दत्त्वा विप्रेभ्यः सोपवासो जितेद्वियः ॥६८
महानदीसङ्घमेषु प्रतिष्ठं युधिष्ठिर । चकार विधिवदानं ततो विष्टांतमागतः ॥६९
अवाप परमं स्थानं दुर्लभं खात्र मानवैः । यत्र कामफला वृक्षा नद्यः पायसकर्दमाः ॥
शीतलामलपानीयाः पुष्करिण्यो मनोहराः ॥७०

तं देशमासाद्य वणिङ् महात्मा सुतप्तजांबूनदभूषितङ्गः ।
कल्पं समग्रं सह सुन्दरोभिः स्वर्गे स रेमे मुदितः सदैव ॥७१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
श्रवणद्वादशीव्रतवर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५

सुवर्ण की भाँति मनोहर हो गयी । उस समय वह एक परमोत्तम विमान पर सुखासीन होकर स्वर्ग चला गया । प्रेतराज स्वर्ग के चले जाने पर उससे प्रभावित होकर उस वैश्य ने प्रेतों के नाम-गोद्र के संकलन पूर्वक हिमालय की यात्रा की । वहाँ प्राप्त हुई निधि को अपने गृह में सुरक्षित रखकर शुभ निमित्तक कुछ धन समेत गया की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर उसने क्रमशः प्रत्येक दिन उनके शाद्व करना प्रारम्भ किया—वह वैश्य जिस दिन से प्रेत के उद्देश्य से शाद्व सुसम्पन्न करता था, वह प्रेत रूप में उसे (प्राप्त हुई) दिव्य शरीर का दर्शन प्रदान करते हुए कहता था कि—‘महाभाग अनधि ! तुम्हारी कृपा से प्रेत भाव के त्याग पूर्वक मुझे परम गति की प्राप्ति हुई ।’ इस भाँति उस वैश्य ने उन प्रेतों की सद्गति प्राप्ति कराने के अनन्तर अपने गृह का प्रस्थान किया । युधिष्ठिर ! प्रति वर्ष भाद्रपद के शुक्ल तथा श्रवण युक्त द्वादशी के दिन महानदी के संगम स्थल पर पहुँच कर उस वैश्य ने संयम पूर्वक स्नान, उपवास भगवान जनार्दन की सविधान आराधना और ब्राह्मण-दान सप्रेम सुसम्पन्न करता रहा अनन्तर देहावसान होने पर मानव मात्र दुर्लभ उस परम स्थान की प्राप्ति की, जो कामनानुसार फलप्रदायक वृक्षों, पायस रूपी कर्दम (पंक) पूर्ण नदियों और प्रयत्न, शीतल वारि पूर्ण बावलयों से सदैव सुसज्जित रहता है । उस परमोत्तम स्थान में पहुँच कर उस महात्मा वैश्य ने संतप्त जाम्बूनद (सुवर्ण) भूषित सुन्दरियों के साथ सम्पूर्ण कल्प आमोद-प्रमोद पूर्वक रमण किया । ६०-७१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
श्रवणद्वादशी व्रत वर्णन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । ७५।

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

विजयश्रवणद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

द्वादश्यस्ते तिथिः प्रोक्तः श्रावणे यो युधिष्ठिर । सर्वपापप्रशमनः सर्वसौत्यप्रदायकः ॥१
एकादशी यदा सा स्याच्छ्रवणेत् समन्विता । विजया सा तिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा ॥२
बलवानजितो दैत्यो बलिर्नामा महाबलः । तेन देवगणाः सर्वे त्याजिताः सुरमंदिरम् ॥३
ततो देवा गहाविष्णुं गत्वा वचनमूचिरे । त्वं गतिः सर्वदेवानां शौघ्रं कष्टात्समुद्धर ॥४
जहि दैत्यं महाबाहो बलिं बलनिषूदन । श्रुत्वा विष्णुस्तदा वाक्यं देवानां करुणोदयम् ॥५
उदाच वाक्यं कालज्ञो देवानां हितकाम्यया । जाने वेरोचनिं दैत्यं बलिं त्रैत्योक्यकण्टकम् ॥६
तपता भावितात्मानं शान्तं दान्तं जितेन्द्रियम् । मद्भक्तं मद्गतप्राणं सत्यसन्धं महाबलम् ॥

तपसोऽन्तः सुबहुना काले नास्य भविष्यति ॥७

यदा विनयसम्पन्नं ज्ञास्ये कालेन केनचित् । समाहृत्य प्रियं तस्य तदा दास्ये दिवौकसाम् ॥८
अदितिर्मा प्रपञ्चा वै पुत्रार्थं पुत्रलोभिनी । तस्यामतिहितं देवाः करिष्ये नात्र संशयः ॥९
तदेवानां हितं सर्वे चाहितं तु सुरद्विषाम् । तदगच्छधं निरुद्घिनाः कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥१०

अध्याय ७६

विजयश्रवणद्वादशी व्रत-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! श्रवण-द्वादशी वर्णन किया हुआ विधान समस्त पापों के शमन पूर्वक अत्यन्त सौख्य का वर्द्धक है । उसी भाँति श्रवण युक्त एकादशी का भी भक्तों के विजयप्रद होने के नाते विजया तिथि कहा गया है : बलवान्, अजेय एवं महाबली दैत्यराज बलि द्वारा परिणत होने पर देवों के अपने-अपने आवास स्थानों को त्याग कर महाविष्णु के यहाँ जाकर उनसे इस प्रकार कहा—‘महाबाहो ! हम समस्त देवों की गति, आप ही हैं, अतः इस कष्ट से शीघ्र उद्धार करने की कृपा करें । बलिनिषूदन ! उस दैत्यराज बलि का हनन शीघ्र होना चाहिए । देवों के इस करुण वाक्य को सुनकर कालवेत्ता भगवान् विष्णु ने देवों के हितार्थ-उनसे कहा—“मैं” उस विरोचन दैत्यराज बलि को भली-भाँति जानता हूँ वह पैलोक्य का महान् कण्टक है । उसने तपोबल द्वारा, अपने को शांत, पवित्र, जितेन्द्रिय, सत्यप्रतिज्ञ एवं महा बलवान् बना दिया है । वह सदैव मुझमें ही तन्मय रहने वाला मेरा महान् भक्त है । अतः उसके तप पुरुष के क्षीण होने में सभी बलवान् प्रवेक्षित हैं । इसलिए मैं किसी उपवास पर विनय- विनम्र की याचना द्वारा उसके समस्त प्रिय (वस्तुओं) का अपहरण कर देवताओं को प्रदान करता करेंगा । देववृन्द ! पुत्र की कामना प्राप्ति हेतु आराधना की है, अतः उसका परमहित मैं अवश्य करूँगा, इसमें सन्देह नहीं । १-१। इसमें देवों का भी अत्यन्त कल्याण एवं देव द्वोही राक्षसों का अहित होगा । इसलिए जाओ, और अनुद्विष्ट रहकर कुछ समय की प्रतीक्षा करो । इस प्रकार कहने पर देवों ने वहाँ से प्रस्थान

एवमुक्ता गता देवाः कार्यं विष्णुरचिंतयत् । सा चिन्तयित्वा सुचिरं देव्या गर्भावितारणम् ॥
अदितिर्वरयामास वांछितं मे भविष्यति ॥११
अथ काले बहुतिथे गते सा गर्भिणी ह्यभूत् । सुषुवे नदमे मासि पुत्रं सा वामनं हरिम् ॥१२
ह्लस्वपादं ह्लस्वकायं महच्छरसमर्भकम् । पाणिपादोदरक्षशं स्वयं नारायणं हरिण् ॥१३
दृष्ट्वा तु वामनं जातं यदि सा वक्तुमुद्यता । निरुद्धवाक्या ह्यभवद्वक्तुं किंचिन्न पारितम् ॥१४
एकादश्यां भाद्रपदे श्रवणेन नरोत्तम । तंचचाल मही जाते वामने तु त्रिविक्रमे ॥१५
भयं बभूव दैत्यानां देवानां तोषं आभवत् । जातकमार्दिकांस्तस्य संस्कारान्स्वयमेव हि ॥१६
नकार कश्यपे धीमात्रजापतिरनुद्यतः । आबद्धमेखलो दंडी धृत्वा यज्ञोपवीतकम् ॥१७
कुशस्वच्छोदकधरः कमङ्डलुदिभूषितः । बलर्वेलवतो यज्ञं जगाम बहुविस्तरम् ॥१८
दृष्ट्वा बलिमथोवाच वामनोऽभ्येत्य तत्क्षणम् । अथ चाह यज्ञपते दीयतां सम मेदिनी ॥१९
पादव्यप्रमाणेन पठनार्थं स्थितो ह्यसि । दत्तदत्ता तव स्या बलिः प्राह द्विजोत्तमम् ॥२०
ततो वर्द्धितुमारब्धे वामनोऽनंतविक्रमः । पादौ भूमौ प्रतिष्ठाय शिरसावृत्य रोदसी ॥२१
ताभ्यामिंद्रादिकाँल्लोकाँल्ललाटे ब्रह्मणः पदम् । न तृतीयं पदं लेभे ततो नेदुर्दिवौकसः ॥२२
तद्वृष्ट्वा महदाशचर्यं सिद्धा देवर्षयस्तथा । साधुसाधिति देवेशं प्रशाशसुर्मुदान्विताः ॥२३

किया और विष्णु देव ने उस कार्य के निमित्त विचार प्रारम्भ किया—उन्होंने देवी (अदिति) के गर्भावितार को स्मरण करते हुए कि—अदिति ने पुत्रार्थ मुझसे वरदान प्राप्त किया है—अतः मेरा कार्य वहीं से सम्पन्न होगा—ऐसा निश्चय किया । १०-११। अनेक समय के व्यतीत होने पर अदिति ने गर्भ धारण किया नवें मास में भगवान् के उस रूप को उत्पन्न किया, जो लघु चरण, लघुकाय, महाद् शिर, कृश हाथ, चरण और उदर सुसज्जित था । उस वामन रूप के उत्पन्न होने पर अदिति कुछ कहना चाहती थी किन्तु विश्वद्वंठ के नाते कुछ भी न कह सकी । नरोत्तम! भाद्रपदमास की श्रवण-युक्त एकादशी के दिन त्रिविक्रम वामन भगवान् के अवतरित होने पर पृथिवी में कम्प, दैत्यों में भय एवं देवों में हर्ष प्रवाह उत्पन्न हुआ । श्रीमात् तथा प्रजापति कश्यप जी ने स्वयं उनके जातकर्म आदि संस्कारों के सविधान सुसम्पन्न किया—मेखला से आबद्धकर दंड और यज्ञोपवीत धारण कराया । कुण्ड समेत स्वच्छ जल पूर्ण कमण्डलु से विभूषित होकर वामन भगवान् ने बलवान् बलिराज के उस विस्तृत यज्ञ-संभार के दर्शनार्थ प्रस्थान किया । वहाँ पहुँच कर उन्होंने उसी समय बलि से कहा—यज्ञपते! मुझे तीन पग भूमि प्रदान कीजिये । क्योंकि तुम इस समय दान करने के लिए स्थित हो । उसे सुनकर बलि ने उन ब्राह्मण से कहा—मैंने आपको (सहर्ष) उतनी भूमि प्रदान किया । अनन्तर अनन्त विक्रम वाले वामन देव ने अपनी शरीर की वृद्धि करना आरम्भ किया—दोनों चरण भूमि पर स्थिर कर शिर से, आकाश को आवृत कर लिया, और दोनों से इन्द्रादि लोक को आक्रान्त करते हुए ललाट में ब्रह्म स्थान स्थित किया । इस प्रकार तीसरे पग की भूमि की प्राप्ति न होने पर देवगण वायों द्वारा हर्ष ध्वनि प्रकट करने लगे । सिद्ध और देवर्षियों को वह देख कर महान् आश्र्वय हुआ । वे सब प्रसन्न होकर देवाधिदेव वामन की 'साधु-साधु' शब्दों के उच्चारण द्वारा अत्यन्त प्रशंसा करने लगे । १२-२३। पश्चात् त्रिभुवन को अपने अधीन करते

ततो दैत्यगणान् सर्वाङ्गजत्वा त्रिभुवनं वशो । बलिमाहृ ततो गच्छ सुतलं स्वबलानुगः ॥२४
 तत्र त्वमीप्सितान् भोगान् भुक्त्वा नद्वाहुगालितः । अस्येद्वस्यावसाने तु त्वमेवेन्द्रे भविष्यसि ॥२५
 एवमुक्तो बलिः प्रायान्नमस्कृत्य नरोत्तमम् । विसृज्येम बलिं देवान्सकलान् स उवाच ह ॥२६
 स्वानि धिष्यानि गच्छध्वं तिष्ठध्वं विगतज्वराः । देवेनोक्ता गता देवा हृष्टाः संपूज्य वामनम् ॥२७
 देवः कृत्वा जगत्कार्यं तत्रैवान्तर्द्धिनामगमत् । एतत्सर्वं समभवदेकादश्यां नराधिप ॥
 तेनेष्टा देवदेवस्य सर्वदा विजया तिथिः ॥२८
 एषा वै फाल्नुते मासि पुष्येण सहिता नृप । विजया प्रोच्यते सद्गृहः कोटिकोटिगुणोत्तरः ॥२९
 एकादश्यां सोपतासो रात्रौ संपूजयेद्वरिम् । तौप्ये सौवर्णपात्रे वा दाख्वंशमयेऽपि वा ॥३०
 कुण्डिकां स्थापयेत्पाश्वं छत्रं वै दाढुके तथा । शुभां च वैष्णवीं द्यस्तिं तथा सूत्रकमंडलू ॥३१
 आच्छाद्य पात्रं वासोभिः फलैश्चापि सुशोभनैः । मार्गचार्मणगन्धैश्च भक्त्या वा मृगचर्मणा ॥३२
 तिलाढकेन वित्ताढचः प्रस्थेन कुडवेन वा ! द्वीहिभिर्वार्थं गोधूमैः फलैः शुक्लतिलैर्भवेत् ॥३३
 पुष्पैर्णीं धूर्धूर्धूपदोपैः पक्वान्नरचयेद्वरिम् । नानाविधैश्च नैवेद्यभक्त्यभोज्यर्गुडैदनैः ॥३४
 स्वस्वनित्तानुसारेण सहिरण्यं च कारयेत् । मंत्रैः शतगुणं चैव भक्त्या लक्षगुणोत्तरम् ॥
 भक्तिमान्श्च गुणोपेतं कोटिकोटिगुणोत्तरम् ॥३६
 एभिर्मन्त्रपदैस्तत्र पूजयेदगरुडध्वजम् । उपहारैर्नरशेष्ठ शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥३६
 ॐ जलजोपमदेहाय जलजास्याय शंखिने । जलराशिस्वरूपाय नमस्ते पुरुषोत्तम् ॥३७

हुए उन संयमी वामन देव ने दैत्यगणों को पराजित कर बलि से कहा—अपने परिजनों समेत तुम सुतल लोक गें निवास करो । वहाँ भेरे द्वारा इस इन्द्र का अन्त होने पर इन्द्र पद की प्राप्ति होगी । बलि ने नमस्कार पूर्वक उसे स्वीकार किया । अनन्तर वामन देव ने देवों से कहा—अपने-अपने गृह जाकर सुख-शांति का अनुभव करो । उनके इस भाँति कहने पर देवों ने सहर्ष वामन की अर्चना पूर्वक अपने-अपने आवासस्थान को प्रस्थान किया—और देवाधिदेव जगत् कार्य सुसम्पन्न कर उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये । नराधिप! यह समस्त कार्य एकादशी के ही दिन सुसम्पन्न हुआ था, इसीलिए यह विजया तिथि देवाधिदेव को अत्यन्त प्रिय है । नृप! फाल्नुन मास में पुष्य नक्षत्र प्रद होने पर भी इसे विजया तिथि कहा गया है, जो उत्तरोत्तर कोटि-कोटि गुने अधिक फल प्रदान करती है । एकादशी के दिन उपवास रह कर रात्रि में सुर्वण, चाँदी, काष्ठ, एवं वांस के सौन्दर्य पूर्ण पात्र पर विष्णु देव को स्थापित कर उनके पूजन पूर्वक कुण्ड स्थापन, और उनके पार्श्व भाग में छत्र, पादुका (खड़ाऊँ), मनोरम वैष्णवी यस्ति (छड़ी), यज्ञोपवीत एवं कमण्डलु, आदि को वस्त्र से आच्छादित कर उत्तम फल, मृग नाभि, (कस्तूरी), अथवा मृगचर्म, ढाईसेर या वित्तानुसार, एक पाव तिल, धान्य या गोधूम (गेहूँ), श्वेत तिल, पुष्प, गंध, धूप, दीप और पक्वान्न, अपने भाँति के नैवेद्य, भक्ष्य-भोज्य, गुडोदन (मीणभात) और यथाशक्ति हिरण्य दान द्वारा भगवान् विष्णु देव की भक्ति-श्रद्धासमेत अर्चना सुसम्पन्न करते समय 'मंत्रांशत गुण आदि' मंत्रपदों के उच्चारण, जिनके उच्चारण सौ गुने, भक्ति समेत लक्ष गुने और भक्तिमान् को कोटि गुने फल प्राप्त होते हैं, तथा उन गरुड वाहनको उपहारों द्वारा सुसम्मानित करे ॥२४-३८। नरशेष्ठ! पवित्रता पूर्ण ध्यानावस्थित होकर—'कमल की भाँति देह एवं मुख से भूषित, शंख धारी उन जल राशि-स्वरूप वाले पुरुषोत्तम

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने । नमस्ते केशवानंत वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥३८
इति स्नानमन्त्रः । मलयेषु सगुप्तन्नं गन्धाढयं सुमनोहरम् । मया निवेदितं तुम्हं गृहण
परमेश्वर ॥३९

इति चन्दनमन्त्रः । वनस्पतिसमुद्भवं गन्धाढयं सुमनोहरम् । मया निवेदितं पुष्टं गृहण पुरुषोत्तम ॥४०
इति पुष्टमन्त्रः । नमः कमलकिंजल्कपैतनिर्मलवाससे । मनोहरवपुः स्कन्धधृतचक्राय शार्ङ्गिणे ॥४१

इति पूजामंत्रः

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः । रामो रामश्च कृष्णश्च नामभिर्वामनाय ते ॥
पादाद्यैककाङ्गस्य पूजनं शीर्षनं ततः ॥४२

इति सर्वाङ्गपूजा

धूपोऽयं देवदेवेश शत्रुघ्नकगदाधर । अच्युतानंत गोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥४३
इति धूपमन्त्रः

त्वमेव पृथिवी ज्योतिर्वायुराकाशमेव च । त्वमेव ज्योतिषां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥४४
इति दीपमन्त्रः

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् । भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं प्रसीद परमेश्वर ॥४५
अन्नं प्रजापतिर्विष्णुरुदेन्दशशिभास्कराः । अन्नं त्वष्टा यमोऽग्निश्च पापं हरतु मेऽव्ययः ॥४६

इति नैवेद्यमंत्रः

जगदादिर्जगद्गूपमनादिर्जगदन्तकृत् । जलशायो जगद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दनः ॥४७
इति प्रीणनमंत्रः

अनेककर्मनिर्बन्धवंसिनं जलशायिनम् । नतोऽस्मि मथुरावासं माधवं मधुसूदनम् ॥४८

को बार-बार केशव, अनन्त एवं वासुदेव को बार-बार नमस्कार है।' इन मंत्रों के उच्चारण करते हुए उन्हें सम्मान, और मलय देश में उत्पन्न एवं परम मनोहर गंधाढय को मैं निवेदित कर रहा हूँ, परमेश्वर! इसे ग्रहण करने की कृपा करें—से चन्दन अर्पित करके—'पुरुषोत्तम! वनस्पति द्वारा उत्पन्न सुमनोहर तथा अत्यन्त सुगन्धित पुष्ट तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ,—से आप भूषित करें। कमल-केशर समान पौत एवं निर्मल वस्त्र को धारण करने वाले, तथा मनोहर शरीर के अंग स्कन्ध वाले चक्र से सुसज्जित रहने वाले उन शार्ङ्गपाणि (विष्णु) को नमस्कार है, इसे पूजा का मन्त्र कहा गया है। मत्स्य, कूर्म (कच्छप), वराह, नरसिंह, वामन, राम, परशुराम, और कृष्ण नामों के उच्चारण करते हुए चरण से शिर तक के प्रत्येक अंग की पूजा करनी चाहिए। 'देवाधि देव, शंख, चक्र, गदाधारी, अच्युत, अनन्त, गोविन्द और वासुदेव को नमस्कार है, उच्चारण करते हुए—'पृथिवी, ज्योति, वायु, आकाश, और ज्योतियों के परम ज्योति तुम्हीं हो, इस दीप को ग्रहण करने की कृपा करो। के उच्चारण से दीप, तथा इन चार प्रकार के अन्न द्वारा बने हुए सुस्वादु, एवं षड्ग्रस युक्त, भक्ष्य-भौज्य तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, परमेश्वर! मुझ पर प्रसन्न हो। प्रजापति, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, शशि, भास्कर, त्वष्टा, यम और अग्नि, आदि सभी देव रूप जगत्-कारण भगवान् जनार्दन मुझ पर प्रसन्न हों। अनेक कर्मनिर्बन्धों के विनाशक, क्षीरशायी, मथुरा निवासी, उन माधव मधुसूदन को नमस्कार है । ३९-४१। तथा वामन रूप विविक्रम को सतत

नमोवामनरूपाय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम । नमस्ते नणिबन्धाय वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥४९
इति नमस्कारमन्त्रः

नमो नमस्ते गोविन्द वामनेश त्रिविक्रम ॥५०

अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वकामप्रदो भव ॥५१

इति प्रार्थनामन्त्रः

सर्वगः सर्वदेवेशः श्रीधरः श्रीनिकेतनः । विश्वेश्वरश्च विष्णुश्च श्रीशायी च नमोनमः ॥५२

इति शयनमन्त्रः

एवं संपूज्य यो रात्रावेकादश्यां नृपोत्तम । जागरं तत्र कुर्वीत गीतवादित्रनिस्वनैः ॥५३

या च श्रदण्डसंमुक्ता द्वादशी परमा तिथिः । तस्यां च सज्जमे स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५४

एवं संपूज्य यत्नेन प्रभाते विमले सति । प्रदेयं शास्त्रविदुषे ब्राह्मणाय च मंत्रतः ॥५५

ब्राह्मणश्चापि मन्त्रेण प्रतिगृहीत मंत्रवद् । वामनोऽस्य प्रतिग्राही दामनाय नमोनमः ॥५६

(ॐ गुह्ये ! ॐ शिरसि ! ॐ फादयोः ! ॐ नाभौ ! ॐ भुजयोः ! ‘सर्वांगे । सर्वात्मने नमः ।)

पुष्यं फलं च वैवेदं सर्वमेतद्यथाविधिः । नरो दद्यादुपोष्यैवमेकादश्यां समंत्रकम् ॥५७

पूर्वोक्तविधिना प्रातर्भोजनं पृष्ठदाज्यकम् । पूर्वं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः ॥५८

भूयोभूयोऽपि राजेन्द्र सर्वत्रैवं विधिः स्मृतः । समाप्ते तु व्रते राजन् यत्पुण्यं तत्त्विबोध मे ॥५९

चतुर्युगानि राजेन्द्र एकसप्ततिसङ्ख्यया । प्राप्य विष्णुपुरे राजन् क्रीडते कालमक्षयम् ॥६०

इहागत्य भवेद्राजा प्रतिपक्षक्षयंकरः । हस्त्यश्वरथपत्तीनां दाता भोक्ता विमत्सरी ॥६१

नमस्कार है । नंणि बंधन से आबद्ध वा सुदेव को नमस्कार है, देव! मेरे पाप-समूह के ध्वंसन पूर्वक समस्त कामनाओं को प्रदान करने की छूपा करें । इस क्षमा प्रार्थना करते हुए उन्हें—सर्व व्यापक, सर्वदेवेश, श्रीधर, श्रीनिकेतन, विश्वेश्वर, विष्णु और उन श्रीशायी को नमस्कार है—शयनकराये । नृपोत्तम! इस भाँति एकादशी की रात्रि में भगवान् की पूजा करके गीत वाद्य द्वारा जागरण करता रहे । श्वण संयुक्त उस परमद्वादशी तिथि के समय संगम में ज्ञान करने पर समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त होती है । इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक उनकी पूजा के उपरांत प्रातः काल के समय उस विमल वस्त्र को किसी विद्वान् ब्राह्मण को समंत्रक अर्पित करे और ब्राह्मण का भी मंत्रोच्चारण पूर्वक ही उसका ग्रहण करना चाहिए । इसके प्रतिग्राही वामन रूप को नमस्कार है—ओंकार के उच्चारण पूर्वक गुह्य, शिर, पाद, नाभि, बाहू, एवं सर्वाङ्ग के स्पर्श करते हुए उस सर्वत्मा को नमस्कार है, कह कर पुष्य, फल, चन्दन, एवं नैवेद्य द्वारा उस एकादशी के दिन उपवास रहकर समंत्रक उनकी अर्चना करनी चाहिए । अतः प्रातः काल सर्वप्रथम ब्राह्मण को धृत भोजन द्वारा संतुप्त करके पश्चात् स्वयं भोजन करे । राजेन्द्र! सर्वेश उनके बार-बार के पूजन इसी विधान द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए । राजन्! इस प्रकार व्रत के समाप्त होने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! ४९-५१। इकहत्तर चतुर्युगी के समय तक वह विष्णुलोक में क्रीडा करते हुए समस्त सुखानुभव के उपरांत इस धरातल पर शत्रुविनाशक भयंकर राजा होता है—हाथी, घोड़े, रथ एवं पदाति के दाता, भोक्ता, मत्सरहीन, रूप सौभाग्य सम्पन्न, दीर्घायु रोग एवं

हृष्टसौभाग्यसंपन्नोः दीर्घयुर्नीरुजो भवेत् । पुत्रैः परिवृतो जीवो जीवेच्च शरदः शतम् ॥६२
 एतस्याः फलमाल्यात्मेकादश्या मया तव । पूर्वमेव समाल्याता द्वादशी श्रवणान्विता ॥६३
 उपोष्यैकादशीं पश्चादद्वादशीमध्योषयेत् । न चात्र विधिलोदः स्यादुभयोर्देवता हरिः ॥६४
 (एकादशीद्वादश्योरन्यतरस्यां श्रवणयुक्तायां श्रवणयुक्तोपवासेनैव व्रतद्वयसिद्धिः । एकस्मिन् व्रते
 पूर्वमन्दां तिथिमुपोष्य पश्चादपारयित्वैवान्योपोष्यत इति यो विधिलोदः स एकदेवताकत्वेन न
 भवतीत्यर्थः) ।

बुधश्रवणसंयुक्ता द्वादशी सङ्ख्यमोदकम् । दान दध्योदनं सत्यमुपवासः परो दिधिः ॥६५
 सगरेण ककुत्स्थेन धुंधुमारेण गाधिना । एतेष्वान्यैश्च राजेन्द्र कृतं वै द्वादशीव्रतम् ॥६६

सा द्वादशी बुधयुक्ता श्रवणेन साकं स्पादै जयाय कृथिता ऋषिगिर्भस्ये ।

तामादरेण समुपोष्य नरोऽमरत्वं प्राप्नोति पार्थ अणिमादिगुणोपपन्नम् ॥६७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादे
 विजयश्रवणद्वादशीव्रतवर्णनं नाम षड्सप्ततितमोऽध्यायः । ७६

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

सम्प्राप्तिद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कृष्णपक्षे तु पौषस्य संप्राप्तं द्वादशीव्रतम् । पौषादिपारणं मासैः षड्भिर्ज्येष्ठान्तिकं स्मृतम् ॥१

अनेक पुत्रों से संयुक्त होकर सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करता है । इस प्रकार मैंने इस एकादशी का समस्त फल तुम्हें बता दिया और श्रवण युक्त द्वादशी के फल पहले ही बता दिये गये हैं । एकादशी के उपवास के अनन्तर द्वादशी के उपवास करने में विधिलोप (अवैधानिक) नहीं होता है क्योंकि दोनों के देवता भगवान् विष्णु ही हैं । 'एकादशी व्रतद्वय सिद्धिः अर्थात् एकव्रत-विश्वान को सुसम्पन्न करने के लिए पूर्वतिथि में उपवास रहकर बिना पारण किये हुए पुनः किसी दूसरी तिथि के उपवास करने पर प्राप्त होने वाला विधि लोप (निष्फल) रूप दोष दोनों विधियों के एक ही देवता होने पर नहीं होता है ।' अराः श्रवण युक्त द्वादशी बुधवार के दिन संगम जल से ज्ञान, दही भात के दान सत्य पूर्वक उपवास करना परमोत्तम विधान बताया गया है । राजेन्द्र! सागर, ककुत्स्थ, धुंधुमार, तथा गाधि राजाओं ने इस द्वादशी व्रत को सविधान सुसम्पन्न किया है । पार्थ! भाद्रपद मास में श्रवण शुक्ल द्वादशी बुधवार के दिन सादर उपवास करने पर मनुष्य को अणिमादि गुणों समेत अमरत्व की प्राप्ति होती है, क्योंकि ऋषियों ने विजया तिथि बताया है । ६०-६७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 विजय श्रवण द्वादशी व्रत वर्णन नामक छिह्नरवाँ अध्याय समाप्त । ७६।

अध्याय ७७

सम्प्राप्तिद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पौष मास के कृष्ण पक्ष की द्वादशी से आरम्भ कर ज्येष्ठ मास तक के मासों

प्रथमं पुण्डरीकाक्षं नाम कृष्णस्य गीयते । द्वितीये माधवाख्यं तु दिश्वरूपं तु फलगुने ॥२
 पुरुषोत्तमाख्यं तु ततः पंचमेऽच्युतसंज्ञकम् । षष्ठे जयेति देवेशगृह्यनाम प्रकीर्तिम् ॥३
 पूर्वोक्तेषु च मालेषु स्नानप्राशनयोस्तिताः । आषाढादिषु मासेषु पञ्चगव्यमुदाहृतम् ॥४
 स्नानं च प्राशनं चैव पञ्चगव्यं सदेष्यते । पूजयेत्पुण्डरीकाक्षं तैस्तंरेव च नामभिः ॥५
 प्रतिमासं च देवेश कृत्वा पूजां यथाविधि । विप्राय दक्षिणां दद्याच्छ्रद्धधानश्च भक्तिः ॥६
 पारणं चैव देवेश प्रीणनं भक्तिपूर्वकम् । कुर्वीत भक्त्या गोविन्दसद्भावेनार्चनं यतः ॥७
 नक्तं भुज्जीत सततं तैलक्षारविवर्जितम् । एकादश्यामुपोद्यैवं द्वादश्यामथ वा दिने ॥८
 एवं संवत्सरस्यांते गृदभिप्रेतमात्मनः । धनं वसु हिरण्यं च धान्यं भाजनमासनम् ॥
 शश्यां या श्राहणे दद्यात्केशवः प्रतिगृह्यताम् ॥९
 एतामुपोद्यै विधिना दिष्णुप्रीतौ च तत्परः । सर्वान् कामानवाप्नोति यद्यदिच्छति चेतसा ॥
 ततो लोकेषु दिव्यातं संप्राप्तं द्वादशीति वै ॥१०
 कृताभिलिषिता दृष्टा प्रारब्धा धर्मतत्परैः । पूर्वेदखिलान्कामान्संस्मृता वा दिनेदिने ॥११
 संप्राप्तिकामुपवसन्ति समीहितार्था ये मानदा मनुजपुङ्क्व विष्णुभक्ताः ।
 तेषां समीहितफलानि ददाति शश्वद्वासः सुरेशभवने भगवत्प्रसादात् ॥१२
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 संप्राप्तिद्वादशीव्रतं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥१३

के पारण विधान बता रहा हूँ—प्रथम मास में कृष्ण के पुण्डरीकाक्ष नाम, दूसरे में माधव, फलगुन में विश्वरूप, चौथे में पुरुषोत्तम, पाँचवे में अत्यन्त और छठे में जग देवेश के इन ग्राह्य नामों के उच्चारण एवं तिल के स्नान और प्राशन करना चाहिए। आषाढ़ आदि मासों में पञ्चगव्य ही प्रशस्त बताया गया है अतः उसी के स्नान और प्राशन होना चाहिए। उन मासों में भी उपरोक्त नामोच्चारण पूर्वक भगवान् की प्रतिमास की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करते हुए श्राहण को श्रद्धा भक्ति पूर्वक दक्षिणा, पारण और देवेश की क्षमायाचना करनी चाहिए। इस प्रकार भक्तिपूर्वक गोविन्द की अर्चना करके तेल और क्षार (नमक) रहित रात्रि में भोजन करे। इस व्रत के विधान में एकादशी अथवा द्वादशी के दिन उपवास करना चाहिए। इस भाँति वर्ष के अन्त में अपने अभीष्ट वस्तु—चाँदी, सुवर्ण, धान्य, पात्र, आसन और शश्या—अर्पित करते हुए ‘भगवान् केशव इसे स्वीकार करें’ कहकर उनमें सप्रेम तन्मय रहे। ऐसा करने से उसकी मन इच्छित सभी कामनाएँ सफल होती हैं और लोक श्याति भी प्राप्त होती है। मनुजपुंगव! इस प्रकार इसमें संप्राप्ति नामक द्वादशी सादर उपवास पूजन करने वाले मनुष्यों को भगवत्प्रसाद अभीष्ट सिद्धि और देवेन्द्र भवन का अविच्छिन्न निवास प्राप्त होता है। १-१२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
 संप्राप्ति द्वादशी व्रत वर्णन नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

गोविन्दद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उदाच

तथान्यामपि ते बच्चि गोविन्दद्वादशीं शृणु । तस्याः सम्यग्नुष्ठानात्प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ॥१
पौषे मासे सिते पक्षे द्वादश्यां समुपेषितः । सम्यक्संपूज्य गोविन्दनाम्ना देवमधोक्षम् ॥२
धूपपुष्पोपचारैश्च नैवेद्यैश्च समाहितः । गोविन्देति जपेन्नाम पुनस्तद्गतसान्तः ॥३
विप्राय इक्षिणां दद्याद्यथाशक्त्या नराधिप । स्वयं विबुद्धस्तुलितो गोविन्देति च कीर्तयेत् ॥४
पाखण्डिभिर्विकर्मस्थैरालापांश्च विवर्जयेत् । गोमूत्रं गोमयं वापि इद्धि क्षीरमयापि वा ॥५
गोदोहतः समुद्भूतं प्राशनीयादात्मशुद्धये । द्वितीयेऽह्नि पुनः स्तानं तथैवाभ्यर्च्य केशवम् ॥६
तेनैव नाम्नः संपूज्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । ततो भुज्जीत गोदोहं संभूतेन समुद्भवम् ॥७
इवमेवाखिलान्मासानुदोष्य प्रयतः शुचिः । दद्याद्गवाह्निकं विद्वान्प्रतिमासं तु शक्तिः ॥८
पारिते च पुनर्वर्षे गोविन्दं पद्मया सह । गोविन्दः प्रोतिमायातु इतेनानेन मे सदा ॥९
विशेषतः पुनर्दद्यात्तस्मिन्नह्नि गवाह्निकम् । भक्त्या परमया राजञ्छृणु यत्कलमाप्नुयात् ॥१०

अध्याय ७८

गोविन्दद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें गोविन्द द्वादशी व्रत विधान बता रहा हूँ, सुनो! जिस अनुष्ठान को सविधान सुसम्पन्न करने पर मन इच्छित फल प्राप्त होता है। पौष मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन उपवास रहकर धूप, पुष्पादि उपचार और नैवेद्य द्वारा गोविन्द देव की अर्चना करके दत्तचित्त होकर 'गोविन्द' नाम का जप करना चाहिए। नराधिप! यथा शक्ति ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर देव-भावना से गोविन्द नाम का कीर्तन करता रहे। पाखण्डी एवं निन्दित पुरुषों के साथ संलाप के त्याग भी करे। प्रथमदिन दही, क्षीर अथवा गोदोहन के समय प्राप्त गोमय या गोमूत्र का प्राशान आत्म शुद्धर्य करना चाहिए। १-५४। इससे दिन अतः उसी भाँति पूर्वोक्तनामोच्चारण द्वारा भगवान् केशव की स्नान प्राप्ति अर्चना, तथा ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर गोदोहन के समय उससे उत्पन्न पदार्थों का भोज न करे। इस भाँति प्रतिमास की द्वादशी में उपवास और यथा शक्ति गोविन्द की अर्चना, करते हुए वर्ष की समाप्ति में लक्ष्मी समेत गोविन्द की अर्चना करके क्षमा प्रार्थना करे कि—'इस व्रतानुष्ठान द्वारा गोविन्ददेव सदैव मुन्न पर प्रसन्न रहे।' राजन्! उस दिन विशेष कर पुनः उन्हें भक्ति समेत गवाह्निक प्रदान करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो! तथा सुवर्ण खचित सींग और रजत (चौटी) भूषित खुरों वाली सौ गौओं समेत परमोत्तम नृपदान करने पर भी। निखिलभोगों के उपभोग करने के अनन्तर

स्वर्णभृंगं रौप्यखुरं गोशत्रवृषभं वरम् । इति मासं द्विजातिम्यो दत्त्वा यत्भोगमशनुते ॥११
 तदाप्नोत्यखिलं सम्यन्नतमेतदुपोषितः । तं च लोकमवाप्नोति गोविन्दो यत्र तिष्ठति ॥१२
 गोविन्दद्वादशीमेतां समुपोष्य विधानतः । विद्योतमाना दृश्यन्ते लोकेऽद्यापि शशांकवत् ॥१३
 गोविन्दमर्चयति गोरसभोजनस्तु ग वै विनोदयति तद्विद्याह्वाह्निकद्व ।
 यो द्वादशीषु कुरुराज कृतोपवतःसः प्रान्नोत्यसौ सुरभिलोकमपेतशोकम् ॥१४
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 गोविन्दद्वादशीव्रतवर्णनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

अखण्डद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

उपवासव्रतानां तु वैकल्यं यन्महामते । दत्तनिधर्मे कृतं प्रस्त्य विपाकं दद यादृशः ॥१
 श्रीकृष्ण उवाच

यज्ञानामुपवासानां व्रतानां च नरेश्वर । वैकल्यातफलवैकल्यं यादृशं तच्छृणुष्व ने ॥२
 १उपवासान्विना खण्डं प्राप्नुवन्त्येव तङ्छृणु । ऋष्टैश्चर्या निर्धनाश्च वसन्ति पुरुषाः पुनः ॥३
 रूपं तथोत्तरं प्राप्य व्रतवैकल्यदोषतः । काणाः कुञ्जाश्च षण्डाश्च भद्रंत्यन्धाश्च मानवाः ॥४

भगवान् गोविन्द के लोक की प्राप्ति होती है । सविधान गोविन्द द्वादशी के उपवास (एवं हरि पूजा) करने वाले आज भी चन्द्रमा की भाँति प्रकाश पूर्ण दिखायी देते हैं । कुरुराज! द्वादशी के दिन उपवास करते हुए गोविन्द की अर्चना, गोरस के भोजन, गौवों के विनोद एवं गवार्हिक के अर्पण करने वाले को शोक निवृति पूर्वक सुरभि लोक की प्राप्ति होती है । ६-१४।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
 गोविन्द द्वादशी व्रत वर्णन नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७८।

अध्याय ७९

अखण्डद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—महामते ! उपवास व्रत और दान धर्म के वैकल्य (भज्ज) होने पर जिस प्रकार के विपाक (फल) प्राप्त होते हैं, उन्हें बताने की कृपा कीजिये ।

श्रीकृष्ण बोले——नरेश्वर! यज्ञ, उपवास, एवं व्रतों का वैकल्य (भज्ज) होने पर जिस दुःखदायक फलों की प्राप्ति होती है, मैं कह रहा हूँ सुनो! तथा सर्वप्रथम उपवास के विना प्राप्त होने वाले दुष्फलों का बता रहा हूँ,—व्रत वैकल्य दोष के नाते पुरुष ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर सदैव निर्धन रहता है तथा एकाक्ष (काना) कूबड़ा, छक्का (हिजड़ा) और अन्धा होता है । २-४। वैसे पुरुष अपने अनुरूप पत्नी और सभी अपने

१. उपवासादिना राज्यं प्राप्वयन्त्येव ।

उपवासी नरः पत्नीं नारीं प्राप्य तथा पतिम् । वियोगं द्रत्वैकल्ये दुर्भगत्वमवाप्नुयात् ॥५
ये द्रव्ये सत्यदातारस्तथान्ने सत्यनग्नयः । कुले वसंति हुशैला हुञ्जुलाः शीलनिश्च ये ॥६
वस्त्रानुलेपनैर्हीना भूषणैश्चातिरूपिणः । विरूपरूपाश्च तथा प्रसाधकगुणान्विताः ॥७
ते सर्वे द्रत्वैकल्प्यात्फलवैकल्यमागताः । तत्सात्तद्रत्वैकल्यं द्रज्ञवैकल्यमेव च ॥
उपवासेन कृतेव्यं वैकल्याद्विकलं कलम् ॥८

युधिष्ठिर उवाच
कथंचिद्यदि वैकल्यमुपवासादिके भवेत् । किं तत्र वद कर्तव्यमच्छिद्रं येन जायते ॥९
श्रीकृष्ण उवाच

अखण्डद्वादशी होषः समस्तेऽवेव कर्मसु ॥१०
दैकल्यं प्रशमं याति शृणुष्व गदतो मम । मार्गशीर्षं सिते पक्षे द्वादशां नियतः शुचिः ॥
कृतोपवासो देवेशं समभ्यर्ज्य जनार्दनम् ॥११
स्नातो नारायणं शूद्यादभुञ्जन्नारायणं तथा । गच्छन्नारायणं देवं स्वपन्नारायणं पुनः ॥१२
पञ्चगव्यजलस्नातो विशुद्धात्मा जितेन्द्रियः । यदवनीहिसं पात्रं दत्त्वा विप्राय भक्तिः ॥
इदमुच्चारयेत्पश्चादेवस्य पुरतो हरे: ॥१३
सप्तजन्मनि यत्किञ्चिन्मया खण्डव्रतं कृतम् । भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखंडमिहास्तु भे ॥१४
यथाखंडं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम । तथाखिलान्यखंडानि व्रतानि मम संतु वै ॥१५
चतुर्भिरपि मासैस्तु पारणं प्रथमं स्मृतम् । प्रीणनं च हरे: कुर्यात्पारिते पारणे ततः ॥१६

अनुरूप पति की प्राप्ति कर सदैव वियोगी, व्रत-च्युति एवं भाग्यहीन रहते हैं । धन के रहते हुए दान न करने और अन्न के रहते अग्नि को आहुति न प्रदान करने वाले पुरुष सत्कुल में अश्लील एवं असत्कुल में शीलवान् होते हैं । वस्त्र अनुलेपन से हीन, भूषणों से अतिरूपवान्, विरूप, और साधकगुण सम्पन्न आदि से सभी पुरुष व्रत भंग दोष के कारण फल-वैकल्य (अंग विकार आदि) प्राप्ति करना चाहिए। अन्यथा उसका अनिष्ट फल होना निश्चित रहता है ॥५-८

युधिष्ठिर ने कहा—उपवास आदि कर्मों में किसी भाँति विघ्र हो जाने पर उस समय क्या कर्तव्य होता है, जिससे उसकी पूर्णता में कोई त्रुटि न रह सके, बताने की कृपा कीजिये ॥९

श्रीकृष्ण बोले—यह अखण्ड द्वादशी ही समस्त कर्मों में उत्पन्न वैकल्य दोष का प्रशमन करती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल द्वादशी के दिन संयम पूर्वक पवित्र होकर उपवास रहते हुए देवेश जनार्दन की अर्चना करके स्नान, भोजन, गमन, और शयन आदि सभी काल में ‘नारायण देव’ का नामस्मरण करना चाहिए । संयम पूर्वक पंचगव्य जल से विशुद्ध होकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को जवा और धान्य के पूर्णपात्र प्रदान कर नारायण देव के समक्ष क्षमा ग्रार्थना करे कि—‘भगवान्! आज से पिछ्ले सातजन्मों में मेरे जितने खण्डित व्रत हैं, आप के प्रसाद से वे व्रत अखण्ड हो जायें। पुरुषोत्तम! जिस प्रकार आप जगत् के प्रधान एवं अखण्ड हैं, उसी भाँति मेरे निखिल खण्डित व्रत अखण्ड रूप प्राप्त करें। इस व्रतानुमान में चार मास के अनन्तर प्रथम पारण बताया गया है ॥१०-१६।

चैत्रादिषु च मासेषु चतुर्मुखं तु पारणम् । तत्रापि सकृपात्राणि द्वाच्छ्रद्धासमन्वितः ॥१७
 श्रावणादिषु मासेषु कार्तिकान्तेषु पारणम् । तत्रापि धृतपात्राणि द्वयादिप्राय दक्षिणाः ॥१८
 सौवर्णं रौप्यं ताङ्गं च मृण्मयं पात्रमिष्यते । स्वशक्त्यवेक्षया राजन् पालाशं वापि कारयेत् ॥१९
 एवं तंवत्सरस्यांते ब्राह्मणान् स जितेन्द्रियः । द्वादशामन्त्य विप्रांश्च भोजयेद्धृतपायसैः ॥२०
 दस्त्राभरणदानैश्च प्रणिपला क्षमापयेत् । उपदेष्टारमप्यत्र पूजयेद्विधिवद्गुरुम् ॥२१
 एवं सम्यग्यथान्याव्यभिष्ठद्वादशीं नरः । समुपोष्य अखण्डस्य व्रतस्य फलमश्नुते ॥२२
 सप्तजन्मसु वैकल्यं यद्व्रतस्य वृत्तिकृतम् । करोत्यविकलं सर्वनखण्डद्वादशी तु तत् ॥२३
 तस्मादेवा प्रयत्नेत नरैः स्त्रीभिश्च सुव्रतः । अखण्डद्वादशी सम्यगुयोध्या फलकांक्षया ॥२४

ये द्वादशीव्रतमखण्डभिति प्रसिद्धं मार्गोत्तमाङ्गमधिकृत्य कृतेन येन ।

खण्डप्रतानि पुरुषैः सुकृतानि यानि संपूर्णतां समुपयान्ति हरेः प्रसादात् ॥२५.

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे-

उखण्डद्वादशीव्रतवर्णनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः । ७९

अथाशीतितमोऽध्यायः

मनोरथद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

फाल्गुनेऽमलपक्षस्य एकादश्यामुपोषितः । नरो वा यदि वा नारी समन्वयं जगत्पतिम् ॥१

पश्चात् विष्णु को प्रसन्न करते हुए शेष मासों के व्रतों को सुसम्पन्न करता रहे । चैत्र आदि मासों में चौगुना पारण कहा गया है, उसमें भी अद्वा समेत धृत पात्र का दान करना चाहिए । श्रावण से आरम्भ कर कार्तिक मास तक अर्चना धृत पूर्ण पात्र ब्राह्मण को अर्पित करे । राजन्! सुवर्ण, रजत, ताम्र, मृत्तिका, अथवा यथाशक्ति पलास-पत्र का वाल बनाये । इस प्रकार संवत्सर के अन्त में संयम पूर्वक द्वादश ब्राह्मणों निमंत्रित कर धृत पूर्ण पायस के भोजनोपरान्त वस्त्र और आभूषणों से प्रसन्न करके क्षमा याचना करे तथा उपदेष्टा भुरु की भी सविधान अर्चना करे । १७-२२। इस भाँति अखण्ड द्वादशी में यथोचित उपवास करके पुरुषों को फल की आकांक्षा से इस अखण्ड द्वादशी के उपवास के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए । इस अखण्ड द्वादशी व्रत को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न करने वाले के सभी खण्डित व्रत भगवान् विष्णु के प्रसाद से अखण्ड सम्पूर्णता प्राप्त करते हैं । २३-२५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
 अखण्ड द्वादशी व्रत वर्णन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त । ७९।

अध्याय ८०

मनोरथद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—फाल्गुन शुक्ल एकादशी केदिन नर-नारी सभी को चाहिए कि जगत्पति भगवान्

हरेनाम वदन्भक्त्या भावयुक्तो युधिष्ठिर । उत्तिष्ठन्नस्वपंश्वैव हरिमेवानुकीर्तयेत् ॥२
ततोन्यस्मिन्दिने प्राप्ते द्वादश्यां नियतो हरिम् । स्नात्वा सम्यग्सनभ्यर्च्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥३
हरिमुदिश्य चैवाग्नौ धृत्होमकृतक्रियः । प्रणिपत्य जगन्नाथमिति वाणीमुदीरयेत् ॥४
यातालसंस्थां वसुधां यां प्रसाद्य मनोरथान् । अवाप वासुदेवोसौ ऋद्यातु मनोरथान् ॥५
यमभ्यर्च्य दिवि प्राप्तः सकलांश्च मनोरथान् । भष्टराज्यश्च देवेन्द्रो यमभ्यर्च्यं जगत्पतिम् ॥६
मनोरथानभिनवान्प्राप्तवांश्च मनोहरान् । एवमभ्यर्च्यं पूजां च निष्पाद्य च हरेस्ततः ॥७

भुञ्जीत प्रयतः सम्यग्हविष्यं पाण्डुनन्दन ॥७
फालगुने चैत्रे दैशाखे ज्येष्ठे मासि च सत्तम । चतुर्भिः पारणं मासैरेभिन्निष्यादितं भवेत् ॥८
रक्तपुष्पैश्च चतुरो मासान्कुर्वीत चार्चनम् । दहेदु गुगुलुं प्राश्य गोशृङ्गक्षालनं जलम् ॥९
हविष्यान्नं च नैवेद्यनात्मनश्चापि भोजनम् । ततश्च श्रूयतां धार्थं आषाढादौ तु या क्षिया ॥१०
जातीपुष्णाणि धूपश्च शस्तः सार्जरसो नृप । प्राश्य दर्भोदकं चास्य शाल्यन्नं च निवेदनम् ॥११
स्वयं तदेव चाशनीयार्जेष्वं पूर्ववटाचरेत् । कार्तिकादिषु मासेषु गोमूत्रं कायशोधनम् ॥१२
सुगन्धिश्चेच्छया पूजा धूपं भृङ्गारकेन च । कांसारं चात्र नैवेद्यमशनीयात्तच्च वैस्वयम् ॥१३
प्रतिमासं च विप्राय दातव्या दक्षिणा तथा । पारणं चेच्छयां विष्णोः पारणे पावने मते ॥१४
यथाशक्त्या यथाप्रीत्या वित्तशाष्ठ्यं विवर्जयेत् । सद्ग्रावेनैव गोविंदः पूजितः प्रीयते यतः ॥१५
पारणांते यथाशक्ति स्नापितः पूजितो हरिः । प्रीणितश्चेप्सितान्कामांस्तान्ददात्यव्ययान्त्रृप ॥१६

विष्णु की अर्चना के अनन्तर भक्तिभावना से जागृत स्वप्न सभी काल में भगवान् के नामों का कीर्तन किया करें । पश्चात् दूसरे दिन द्वादशी के समय स्नान करके भगवान् की अर्चना, ब्राह्मण-दक्षिणा, और हरि के उद्देश्य से धी की आहृति प्रदान करके जगन्नाथ की विनय-विनम्र क्षमा याचना करे कि —पाताल स्थित होने पर भी वसुधा की प्राप्ति द्वारा अपने मनोरथों के सफल करने वाले भगवान् वासुदेव मेरे मनोरथों को सफल करें तथा राज्यच्युत देवेन्द्र ने जिस जगत्पति की आराधना द्वारा स्वर्ग के उस मनोरथों के सफल करते हुए मनोहर एवं अभिनव मनोरथों को भी सफल किया है । पाण्डुनन्दन! इस भाँति भगवान् विष्णु की भक्ति पूर्वक आराधना करके स्वयं हविष्यान्न का भोजन करे । सत्तम! इस प्रकार फालगुन चैत, नैशाख और ज्येष्ठ मास में पूजन करके पारण करना चाहिए । उन चारों मासों में रक्तपुष्प द्वारा पूजन, गुगुल की धूप, गोशृङ्ग-पूत जल, हविष्यान्न एवं नैवेद्य को अर्पित करते हुए स्वयं भी यही भोजन करे । पार्थ! अनन्तर आषाढ आदि मासों में चमेली के पुष्प सार्जरस (शाल वृक्ष के रस) के प्रशस्त धूप, साठी चादल के भोजन निवेदन करते हुए कुशोदक के प्राशन पूर्वक उन्हीं के भोजन करे । कार्तिक आदि मासों में पाकशुद्धयर्थं गोमूत्र के आशन, सुगंध, धूप, सुवर्ण-पात्र के जल, कसेरु मे नैवेद्य द्वारा पूजन करके स्वयं भी उसी के भोजन करे । प्रतिमास में ब्राह्मण की दक्षिणा तथा विष्णु का ऐच्छिक पारण यथा शक्ति एवं सप्रेम सुसम्पन्न करते हुए वित्त शाल्य (कृपणता) दोष का त्याग करे । क्योंकि सद्ग्रावना द्वारा ही पूजित होने पर गोविन्द प्रसन्न होते हैं । १-१५। नृप! पारणान्त में न्नान-पूजन करने पर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसे

वर्षते प्रतिमाभिष्टां कारणित्वा सुशोभनाम् । स्वर्णकेन यथा शक्तया शङ्खशार्ङ्गविभूषिताम् ॥१७
 पुष्पवस्त्रयुगच्छान्नं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । द्वादशब्राह्मणांस्तत्र भोजयित्वा क्षमःपयेत् ॥१८
 द्वादशात्र प्रदातव्यः कुंभाः सान्नजलाक्षताः । उत्त्रोपानद्युगौः सार्द्धं दक्षिणाभिश्च भारत ॥१९
 एषा पुण्या पापहरा द्वादशी फलनिष्ठताम् । यथाभिलषितान् कामान् ददाति नृपसत्तमः ॥२०
 पूरयत्यखिलान्भक्त्या यतश्चैषां इनोरथान् । मनोरथः ह्रादशीयं ततो लोकेषु विश्रुता ॥२१
 उपोष्यैतां त्रिभुदनं लब्धमिन्द्रेण वै पुरा । आदित्याचेष्टिताः पुरा धनमौशनता तथा ॥२२
 धौम्येनाध्ययनं प्राप्तमन्यैश्चाभिमतं कल्पत् । रजर्षिभिस्तथा विप्रैः स्त्रीविद्शूद्रैश्च भूतले ॥२३
 यं यं काममभिध्याय ब्रतनेतदुपोषितम् । ततदःस्तोत्यतांदिव्यं विष्णोराराधनोद्यतः ॥२४
 यपुत्रो लभते पुत्रमधनोऽ लभते धनम् । रोगाभिभूतश्चारोग्यं कन्या प्राप्नोति सत्पतिम् ॥२५
 समागमं प्रवसनैरुपोष्यैतामवाप्यते । सर्वान्कामानवाप्नोति मृतः स्वर्गं च मोदते ॥२६
 नापुत्रो नाधनो ज्येष्ठो विष्णोगी न च निर्गुणः । उपोष्यैतद्व्रतं मर्त्यः स्त्रीशूद्रो वापि जायते ॥२७
 स्वर्गलोके सहस्राणि वर्षणामयुतान्निं च । भोगानभिमतान्भुक्तवा तत्र तत्र पथेच्छ्या ॥२८
 इह पुण्यवतां नृणां धनिनां लघुशालिनाम् । गृहे प्रजायते राजन् सर्वव्याधिविर्जितः ॥२९

मनोनुकूल फल प्रदान करते हैं । वर्ष के अन्त में उनकी सुवर्ण-प्रतिमा को शंख एवं शार्ङ्ग से भूषित कर पुण्य तथा युग्म (चार) वस्त्रों से सुसम्पन्न करके ब्राह्मण को अपि त कर और बारह ब्राह्मणों को भोजन से संतुष्ट कर क्षमा यावना करते हुए वारह सान्नोदक कुंभ, छत्र, उपानह एवं दक्षिणा से उन्हें सम्मानित करे । भारत! यह पुण्य एवं पापहारिणी द्वादशी सविधान सुसम्पन्न करने पर मन इच्छित कामनाएँ प्रदान करती है । नृपसत्तम! भक्ति समेत इसे सुसम्पन्न करने पर निखिल मनोरथ सफल होते हैं, इसीलिए लोक में वह मनोरथ द्वादशी नाम से स्थात है । पुरातन काल में इसमें उपवास करने पर इन्द्र को त्रिभुवन, आदित्य को इच्छित पुत्र, शुक्र को धन, धौम्य को अध्ययन और अन्यों को भी उनके अभिमत फल प्राप्त हुए हैं । उसी प्रकार राजर्षि, ब्राह्मण, सभी वैद्य, एवं शूद्रों ने इस भूतल पर जिन कामनाओं के उद्देश्य इस व्रत को उपवास रहकर सुसम्पन्न किया है, वे सभी कामनाएँ इस विष्णु की आराधना द्वारा निःसंदेह सफल हुई है । अपुत्र को पुत्र, निर्धन को धन, रोगी को आरोग्य, और कन्याओं को सत्पति की प्राप्ति होती है । १६-२५। इसके उपवास से प्रवासी को गृह समागम तथा समस्त कामनाओं की सफलता के अनन्तर देहावसान होने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है । इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर पुरुष सभी अथवा शूद्र भी कभी अपुत्र, निर्धन, ज्येष्ठ, वियोगी एवं निर्गुण नहीं होते तथा राजन्! स्वर्ग में दशसहस्र वर्ष तक ऐच्छिक भोगों में उपभोग करने के उपरांत धनी-मानी कुल में जन्म ग्रहण कर सदैव नीरोग रहते हैं । जो

१. अलब्धः ।

न द्वादशीभुपदसन्ति मनोरथाख्यां नैवर्चयंति पुरुषोत्तमसादिदेवम् ।
गोद्धाहृणांश्च न नमन्ति न पूज्यन्ति ये ते मनोभिलबितं कथनाप्नुवन्ति ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
मनोरथद्वादशीव्रतवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

उल्कानवमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अल्पायासेत् भगवन् धनेनाल्पेन वा विभो । यापं प्रशममायाति येन तद्वद्गुमर्हसि ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ परं पुण्यं द्वादशीं पापनाशिनीम् । यामुपोष्य परं पुण्यमान्युयाच्छृद्धयान्वितः ॥२
माघमासे च संप्राप्ते आषाढक्षं श्वेद्यदि । मूलं वा कृष्णपक्षस्य द्वादश्यां नियतव्रतः ॥३
गृह्णीयात्पुण्यफलदं विधानं तस्य मे शृणु । देवदेवं समर्प्यर्च्य सुस्नातः प्रयतः शुचिः ॥४
कृष्णनाम्ना च संपूज्य एकादश्यां महामते । उपोषितो द्वितीयेहि पुनः संपूज्यं केशवम् ॥५
संस्तूप नाम्ना तेनैव कृष्णाख्येन पुनःपुनः । दद्यात्तिलांश्च विप्राय कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥६

लोग मनोरथ द्वादशी में उपवास, पुरुषोत्तम देव की अचेना, को ब्राह्मणों को नमन नहीं करते हैं उनकी अभीष्ट सिद्धि कैसे होती है । २६-३०

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
मनोरथ द्वादशी व्रत वर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त । ८०।

अध्याय ८१

उल्कानवमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भगवान् विभो! अल्प धन तथा अल्प प्रयत्न पूर्वक जिस व्रत द्वारा पाप का प्रशमन हो सके, आप बताने की कृपा करें! १

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! मैं उस पुण्य, पापनाशिनी एवं परा द्वादशी की चर्चा कर रहा हूँ, जिसमें श्रद्धा भक्ति समेत उपवास करने पर अत्यन्त पुण्य की प्राप्ति होती है । माघमास की कृष्ण द्वादशी के दिन आषाढ़ नक्षत्र प्राप्त होने पर संयम पूर्वक इस पुण्य व्रत को आरम्भ करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! महामते! एकादशी के दिन स्नान-पवित्र होकर देवेश विष्णु के कृष्ण नामोच्चारण करते हुए रात्रि व्यतीत होने के उपरांत द्वादशी के दिन उपवास रहकर उसी कृष्ण नामोच्चारण स्तुति एवं केशव देव के पूजन सुसम्पन्न करके ‘कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों’ कहते हुए ब्राह्मण को तिल प्रदान करे और

ततश्च प्राशयेच्छस्तस्तथा कृष्णतिलाश्रूप । विष्णुप्रीणनमंत्रोरेऽ समाप्ते वर्षपारणे ॥७
 कृष्णकुंभास्तिलैः सादृशं पक्वान्नेन च संयुताः । छत्रोपानद्युगैर्वस्त्रैः सहिता अन्नगर्भिणः ॥
 ब्राह्मणेभ्यः प्रदेयास्ते यथावन्माससंख्यया ॥८
 तिलप्रोहोजायंते यावत्संख्यास्तिला नृप । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥
 अरोग्यो जायते नित्यं नरे जन्मःनि जन्मनि ॥९
 अन्धो न बधिरस्त्वैव न कुष्ठो न च कुत्सितः । भवत्येतामुषित्वा तु तिलाल्खां द्वादशौ नरः ॥१०
 अनेन पार्थ विधिना तिलदाता न संशयः । मुच्यते पातकैः सर्वैरनायासेन मानवः ॥११
 इनं विधिस्तथा श्रद्धं सर्वपातकशांतये । नार्थः प्रभूतो नायासः शरीरे नृपसत्तम ॥१२
 सर्वोयभोगनिरतोऽहि परे दशम्यां स्नानं तिलस्तिलनिवेदनकृतिलाशी ।
 दत्त्वातिलान्द्विजवराय विराजकेतु संपूज्य विष्णुपदवीं समुपैति मर्त्यः ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 उल्कानवमीव्रतवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१

पश्चात् स्वयं उसी का आशन करे ! नृप! इस प्रकार विष्णु का नामोच्चारण मंत्र द्वारा जपते हुए वर्ष के अन्त में तिलसमेत एवं पक्वान्न समेत कृष्ण कुम्भ, छत्र, उपानह, चार वस्त्र एवं मिष्ठान के नैवेद्य माससंख्या (वारह) के अनुसार ब्राह्मण को सादर अर्पित करे । नृप! उन तिलों द्वारा उत्पन्न तिल की संख्या के समान उतने वर्ष यह व्रती स्वर्ग लोक के सम्मान प्राप्ति के अनन्तर प्रत्येक जन्म में व्याधि रहित रहता है । इस तिल नामक द्वादशी के उपवास करने से मनुष्य कभी भी अंधा, वधिर, कुष्ठी एवं कुत्सित (निन्दित) नहीं होता है । पार्थ! इस विधान द्वारा तिल दान करने वाला समस्त यातकों से निःसंदेह मुक्त हो जाता है । नृप सत्तम! समस्त पातकों के शमनार्थ श्रद्धा समेत इस व्रत के अनुष्ठान एवं दान करने से न अधिक धन की आवश्यकता है और न शारीरिक परिश्रम की । इस प्रकार दशमी के दिन समस्त भोगों के त्याग पूर्वक तिल द्वारा स्नान, भोजन निवेदन, आशन, तथा ब्राह्मणों को दान तथा हरि की अर्चना करने पर उसे विष्णु लोकप्राप्त होता है । २-१३।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
 उल्कानवमी व्रत वर्णन इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त । ८१

अथ द्वचशीतितसोऽध्यायः

सुकृतद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यन्न तापाय वै पुंसां भृत्यामुष्मिकं कृतम् । तदपापाय भवति तदाचक्ष्व यद्गृह्यतम् ॥१
उपवासप्रभावं वै कृष्णाराधनकांक्षणाम् । कथयेह महाबाहो वैव तृप्यासि जल्यतः ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

श्रूयतां पर्थ यत्पृष्ठाः कौतुकाद्ववता व्रयम् । आमुष्मिकं न तापाय प्रतापाय च जर्यते ॥३
उपोशितप्रभावं च कृष्णाराधनकांक्षणाम् । कथगामि यथावृत्तं पूर्वमेव नरोत्तम ॥४
वैदिशं नाम नगरं प्रख्यातं नृपसत्तम् । तत्र वैश्येऽश्वत्पूर्वं सीरभद्र इति श्रुतः ॥५
भार्यदा मातृदुहित पुत्रपौत्रैः समन्वितः । प्रभूत भृत्यवर्गश्च बद्धुव्यापारकारकः ॥६
पुत्रपौत्रादिभरणे व्यासक्तिर्मतिरेव च । परलोकं ग्रति पतिस्तस्य नासीत्कदाचन ॥७
चकारानुदिनं सोऽयं न्यायान्यायैर्द्वनार्जनम् । सर्वत्रान्यत्र निःङ्गेहः पुनर्स्नेहपरिप्लुतः ॥८
न जुहोत्युदिते काले न ददात्यतिरुष्णया । ब्रह्मूब चोद्यमस्तस्य पुत्रादिभरणे परः ॥९
नित्यनैमित्तिकानां च हानिं चक्रे स्वकर्मणा । तृष्णाभिभूतो राजेन्द्र स्ववर्गभरणोज्जितः ॥१०

अध्याय ८२

सुकृतद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यद्गृह्यतम्! मनुष्यों के उन ऐहिक कर्मों को जिससे किसी प्रकार का संतोष नहीं होता है प्रत्युत पुण्य ही होता है, बताने की कृपा कीजिये । महाबाहो! कृष्ण की आराधना करने वालों के उपवास का वर्णन करें क्योंकि आप की कथाओं से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है । १-२

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! आप ने कौतुकवश मुझसे जो प्रश्न किया है कि—‘मनुष्यों के ऐच्छिक कर्म, जो ताप की अपेक्षा प्रताप उत्पन्न करते हैं, तथा कृष्ण की आराधना के अभिलाषुकों के उपवास प्रभाव बताने की कृपा करें।’ नरोत्तम! मैं उसका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ, सुनो! । ३-४। नृपसत्तम! विदिशा नगरी में सीरभद्र नामक एक प्रख्यात वैश्य रहता था, जो स्त्री, माता, सभी पुत्र, एवं पौत्रों से संयुक्त रह अनेक भृत्यों द्वारा सदैव अनेक भाँति का सफल व्यापार करता था । अपने पुत्र-पौत्रादि परिवार के भरण-पोषण में अहोरात्र संलग्न रहने के नाते उसने कभी-भी परलोक-विषयों का ध्यान ही नहीं किया । वह प्रतिदिन न्याय-प्रयास से धनोपार्जन करते हुए सदैव पुत्र स्नेह में आत्म-विभोर रहता था और अन्य विषयों से निःस्पृही प्रतिरृष्णा क्रान्त होने के नाते उसने कभी हवन-यज्ञ एवं किसी प्रकार का दान नहीं किया । उसके सभी प्रकार के उद्यम पुत्रादिकों के भरण-पोषणार्थ ही होते थे । राजेन्द्र! इस प्रकार उसने प्रति तृष्णा के नाते अपने ही हाथों अपने नित्य नैमित्तिक की अपार क्षति की । ५-९। इस प्रकार अनेक

कलेनागच्छतासोऽय मृतो विंध्याटवीतटे । यस्तनावेहमुत्प्रेतो गीष्मकालेऽभवदृप् ॥११
तं ददर्श महाभागो दिव्याननसनन्वितः । वेदवैदाङ्गविहीणी विपीतो नाम वै द्विजः ॥

भास्करस्यांशुभिर्दीप्तद्वंतमतिदारणः ॥१२

प्रत्यक्षालुकामध्ये तृष्णतं आतिपीडितम् । ज्ञुत्कामकंठं गुण्कास्य तथोद्वृतविलोचनम् ॥

निष्कामतज्ज्ञामद्वेषु विस्फोटः सर्वतदितम् ॥१३

निश्चासायासलेदेन विद्वलं पीडितोदरम् । निजेन कर्मणा बहुमसमर्थ प्रसरणे ॥१४

तथादृशनथो दृष्ट्वा गर्भभेदो महानृष्टिः । दिवीक्षः प्राह राजेन्द्र कारण्यमारितं वचः ॥१५

जानश्चादि यथाप्रस्तं तस्याउष्टानजं रक्षम् । जंतोस्तस्योपकाराय सर्वतो हलादयन्निव ॥१६

विपीत उवाच

अधः सूर्याशुनिस्तप्तैर्बहुभिः पथि पांशुभिः । उपर्यक्करैस्तीर्णैस्तृलावातनिपीडितम् ॥१७

अन्यस्तत्राणकर्घोरैरविषहौःसुदारणैः । कथयेह यथातत्प्रमेकाकी दद्युसे कथम् ॥१८

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा विपीतस्य सवेदनः । वेदनार्त उवाचेदं कुच्छ्रादुच्छ्रवस्य मन्दकम् ॥१९

सीरभद्र उवाच

ब्रह्मनालोचितं पूर्वं कथमते भविष्यति । अशाश्वते शाश्वतधीस्तेन दद्यामि दुर्भितिः ॥२०

इदं करिष्याम्यपरं त्विदं कृत्वात्तिदं तुनः । इतीच्छा शतमारुद्धस्तेन दद्यामि दुर्भितिः ॥२१

समय व्यतीत होने के उपरांत देहावसान होने पर वह विंध्याटवी के समीप प्रेत योनि में उत्पन्न होकर उस (प्रचण्ड) यीष्म समय में शारीरिक यातनाओं के अत्यन्त कठु अनुभव कर रहा था । उस समय विपीत नामक एक बाह्यण ने उसे देखा, जो दिव्यान युक्त एवं वेद-वेदाङ्ग का महान् देषी था । वह भास्कर जी अति दारण एवं प्रखर किरणों द्वारा संतुष्ट एवं उस प्रज्ञलित बालुकाओं के बीच, अत्यन्त तृष्ण पीडित था । क्षुधापीडित होने के नाते उसके क्षीणकण्ठ, शुष्क बदन एवं नेत्र ऊपर निकले जैसे आ रहे थे । जिह्वा मुखसे निकली हुई थी, और अंगों में अनेक फोड़े (फलके) हो गये थे । इस प्रकार उष्ण एवं उर्ध्व (लम्बी) श्वासों से विद्वान्, उदर पीडित, एवं निजकर्मों से आबद्ध होने के नाते चलने में असमर्थ उस प्रेत को देख कर विपीत नामक, गर्दन में महर्षि ने करुणा पूर्ण वाणी से कहा । राजेन्द्र! यद्यपि वह बाह्यण जानता था कि—यह किस कर्म का फल अनुभव कर रहा है—तथापि जीव के उपकारार्थ उसने उसे सभी प्रकार से आच्छादित करने की भाँति कहना आरम्भ किया । १०-१६

विपीत बोले—सूर्य के प्रखर किरणों द्वारा संतुष्ट हुई मार्ण-धूलियों (रजकणों) से और प्रचण्ड मार्तण्ड के तीक्ष्ण किरणों तृष्णा और वात से पीडित होते हुए आप एकाकी यहाँ क्यों दग्ध हो रहे हैं, इसका मूल कारण बताइये! विपीत की ऐसी बातें मुनकर वेदना-पीडित उस प्रेतने उर्ध्व (लम्बी) श्वास लेने के कारण अत्यन्त कठिनाई से कहना आरम्भ किया । १७-१९

सीरभद्र ने कहा—ब्रह्मन्! मैंने (अपने कर्मों पर) कभी नहीं द्यान दिया कि—इसका परिणाम क्या होगा । इस अशाश्वत जगत् को सदैव जाग्न्तु मानता रहा इसीलिए मुझे ऐसी दुर्दशा हो

शीतोष्णवर्षादिभवं लोभात्तोहं मयाऽशुभन् । तदेव हि न धर्मार्थं तेन द्वृग्गामि दुर्भितिः ॥२२
 पितृदेवमनुष्याणामदत्त्वा योषिता हि ये । ते गता नापि वर्तते द्वृग्गाम्येकोऽत्र दुर्भितिः ॥२३
 पुत्रक्षेत्रकलत्रेषु ममत्वाहृतवेतसा । बहूसाधु कृतं कर्म तेन द्वृग्गामि दुर्भितिः ॥२४
 मृते मयि धने तस्मिन्नन्यायोपार्जिते सदा । रूपवंतोऽभिवर्तन्ते द्वृग्गाम्येकोऽत्र दुर्भितिः ॥२५
 न मया पूजिता गेहाश्चिर्गता द्विजसत्तमाः । स्वदर्वग्मिह कामेन तेन द्वृग्गाम्यहूमतिः ॥२६
 यन्नो न पूजिता देवाः कुटुम्बं परेषिं परम् । एकाकी तत्र द्वृग्गामि ये सुतास्तेऽन्यतो गताः ॥२७
 नित्यं नैमित्तिकं कर्म पूर्वेषां चैव नो कृतम् । एकाकी तेन द्वृग्गामि गतस्ते फलभोगिनः ॥२८
 दाराः पुत्राश्च भृत्याश्च पापदुद्घाच मया शृताः । एकाकी तेन द्वृग्गामि ये भुक्तास्तेऽन्यतो गताः ॥२९
 दाराः पुत्राश्च भृत्यार्थं मया न्यायार्थसञ्चयः । कृतस्तेनात्र द्वृग्गामि ये भुक्तास्तेऽन्यतो गताः ॥३०
 क्षतपापां मया भुक्तमन्यैस्तत्कर्म सञ्चितम् । द्वृग्गाम्येकोऽहमत्यन्तं गतास्ते फलभोगिनः ॥३१
 यन्मस्त्वाभिभूतेन मया पापमुपार्जितम् । न तदन्यस्य कस्यापि, केवलं भास दुष्कृतम् ॥३२
 अन्तर्दुःखेन दग्धोऽहं बहिर्द्वृग्गामि भावयन् । तावहृःखं नवाभं तु पापमेजं द्विधा स्थितम् ॥३३
 कुरु तस्मात्मुद्धारं पश्यस्यमृतसागरम् । तद येनाहमाह्लादं प्राप्नुयां मुनिसत्तम् ॥३४

रही है। इस कार्य को सर्व प्रथम करके अनन्तर पुनः इसे करूँगा। इसी प्रकार सैवाङ्गो इच्छाओं में तल्लीन रहा करता था। मैंने लोभ वश शीतकाल उष्ण (गर्मि) काल एवं वर्षा काल के घोर प्रकोप का सहन किया, किन्तु धर्मार्थं न कर सका, इसीलिए मुझ दुर्भिति को इस प्रकार दग्ध होना पड़ रहा है। पितर, देव और (याद्यक) आदि मनुष्यों को कुछ भी न देकर सदैव कलत्र आदि का ही पोषण करता रहा, किन्तु वे सब तो नहीं करते और मैं एकाकी यहाँ दग्ध हो रहा हूँ। पुत्र, क्षेत्र एवं कलत्र आदि की ममता में सदैव तल्लीन रह कर मैंने अनेक असाधु कर्म किया है। मेरे निधन होने के पश्चात् मेरे उस धन के उपयोग, जिसके उपार्जन में मैंने न्याय-अन्याय का कुछ भी स्मरण नहीं किया था, सभी घर के लोग कर रहे हैं और मैं ही अकेला इस यातना को भोग रहा हूँ। घर पर आये हुए अतिथि का सम्मान मैंने नहीं किया, वे नियुक्त होकर लौट गये, केवल अपने ही वर्ग का पोषण करता रहा ! २०-२६। देवों के पूजन न कर मैंने सदैव कुटुम्ब-पोषण ही किया, किन्तु वे सुतादिक तो प्रथम रह गये और मैं यहाँ दग्ध हो रहा हूँ। पूर्व के नित्य-नैमित्तिक कर्मों के पालन मैंने कभी नहीं किया और सदैव निश्छलभाव से कलत्र, पुत्र और सेवकों का ही पालन करता रहा किन्तु वे सभी फल भागी तो चले गये और मैं एकाकी इसका अनुभव कर रहा हूँ। सभी पुत्र एवं भृत्यों के निमित्त मैंने अन्यायतः अर्थ सञ्चय किया, जिसके उपभोग करके वे सब जहाँ के तहाँ चले गये, किन्तु उन लोगों ने अपने संचित कर्मों का उपभोग किया और मैंने इस प्रकार के क्षीण पाप (दुर्विपाक कर्मों) का। ममता-मग्न होकर मैंने जितने पाप कर्म किये हैं, वे सब मेरे ही दुष्कृत हैं किसी अन्य के नहीं। इसीलिए अन्तः और ब्राह्म के उभयथा दुःखों से दग्ध हो रहा हूँ। जो मेरे एक ही भागों के दो रूप हैं। अतः मुनिसत्तम! आप को अमृत सागर अवश्य दिखायी दे रहा है, उससे मेरा उद्धार करने की कृपा करें जिससे आप के द्वारा मुझे भी कुछ आह्लाद की प्राप्ति हो जाये । २७-३४

विपीत उवाच

अल्पकालिक उद्धारे तब पश्यामि संशयम् ! प्रक्षीणं पापमेतावत्सुवृतं चास्ति ते परम् ॥३५
प्रतीते दशमे जन्मन्त्यच्युताराधनेच्छ्या : सुकर्मजयदा भद्रद्वादशीं समुपोषितः ॥
न च तस्याः प्रसादेन पापमत्यन्तदुर्जयम् ॥३६

अल्पैरहोमिः संक्षीणमामपात्रे यथा जलम् । अतं पापमयं हृत्याः प्रभावोऽत्यन्तदुर्लभः ॥३७
नाशं पापस्थं कुरुते जयं सुकृतकर्मणः । सकृत्कर्मप्रदा हृषा ततो वै द्वादशी स्मृता ॥३८
यथैतद्वृत्तार्त्तेन भवता परिदेवितम् । तमुवाचात्र सदेहो मम तापाय देव किम् ॥३९
पापमन्त्रं कुतं श्रेत्य भद्रं तापाय जापते । आह्लादाय तथा पुण्यमिह पुण्यकृतां नृगाम् ॥४०
सीरभद्रं समाधास्य यदत्वित्यं भ्रामुनिः । सोप्यलपेनैव कालेन ततो मोक्षमदाप्तवान् ॥४१
उपवासप्रभावद्वच कथितस्तं नरोत्तम । येनाल्पैरेव दिवसैर्भूरि पापं क्षयं गतम् ॥४२
तस्मान्नरेण पुण्याय दत्तितव्यं न पातकम् । उपवासाहच कर्तव्याः सदैवात्महितैषिणा ॥४३

युधिष्ठिर उवाच

अतैतत्कष्टपापात्मानां विपाको नरकस्थितैः । भुहैर्बुज्यते शश्वतं भोक्षं वह सत्तम् ॥४४

श्रीकृष्ण उवाच

जयासमेताः पुरुषाः सदा सुकृतकर्मणः । जया सा द्वादशी शस्ता नृणां सुकृतकर्मणाम् ॥४५

विपीत शोले—तुम्हारे अल्प कालिक उद्धार होने में मुझे सन्देह हो रहा है, क्योंकि इतना महा पाप तो तुम्हारा नष्ट अवश्य हो गया किन्तु अभी अधिकांश शेष है। आज के दशवें जन्म में मैंने भगवान् अच्युत को आराधना की कामना से जप और कल्याण प्रदायिनी इस सुकृत द्वादशी के उपवास (व्रत) सुसम्पन्न किया था। क्योंकि उसके समक्ष कोई दुर्जय पाप है ही नहीं। इसीलिए उसके अत्यन्त दुर्लभ अभाव के नाते मेरे सभी पाप अल्प काल में कच्चे पात्र में स्थित जल की भाँति अल्प काल में ही नष्ट हो गये। उन सुकृत कर्मों द्वारा पाप के नाश पूर्वक जप का अग्राप्य होता है और सुकृत कर्म प्रदान करने के नाते उसकी सुकृत द्वादशी नाम से ख्याति भी हुई है। ३५-३८। उस (प्रेत) ने कहा—देव! आपने मेरे दुःख में दुःख प्रकट किया है, अतः वह द्वादशी व्रत विधान बताने की कृपा कीजिये। आप ने प्रथम सन्देह भी प्रकट किया, जिससे मुझे कुछ विशेष सन्ताप अवश्य हुआ, किन्तु इस लोक में पापकर्म करने पर भरण के अनन्तर संताप, और पुण्य करने वाले मनुष्यों के पुण्य कर्म आह्लाद। (विशेष हर्ष) के लिए अवश्य होते ही हैं। अनन्तर उस महामुनि ने उसकी व्याख्या पूर्वक उसे सीरभद्र को आश्रासन प्रदान कर आगे की यात्रा की और वह (उस विधान द्वारा) अल्प काल में ही अपने घोर पापों से मुक्त हो गया। नरोत्तम! इस प्रकार मैंने उपवास के उस प्रभाव को, जिसके द्वारा अल्प समय में ही उसके अनेक पाप नष्ट हो गये, तुम्हें बता दिया। इसलिए मनुष्यों को सदैव पुण्य के लिए ही प्रयत्नशील रहना चाहिए, और आत्म कल्याण को ध्यान में रखते हुए उपवास भी करना चाहिए। ३९-४३

युधिष्ठिर ने कहा—सत्तम! कष्ट दायक विपाक कर्मों के दुर्विपाक (दुःखपरिणाम) नरक स्थित पुरुषों को निरन्तर भोगने पड़ते हैं, अतः उनके मोक्षार्थ उपाय बताने की कृपा करें। ४४

श्रीकृष्ण बोले—सुकर्म करने वाले पुरुषों के लिए जय प्रदान समेत (पाप विनष्ट करने वाली) वह

फाल्गुनामलपक्षस्य एकादश्यासुपोषितः । द्वादश्यां तु द्विजश्रेष्ठ पूजयेन्मधुसूदनम् ॥४६
 एकादश्यां समुत्तिष्ठन्विष्णोनामानुकीर्तयन् । पूजायां वासुदेवस्य भुञ्जीत सुसनाहितः ॥४७
 कामं क्रोधं च लोभं च मदं मोहं च वर्जयेत् । द्वोहादीन् वर्जयेद्वोषान् सर्वान्धनमदोद्भवान् ॥४८
 भाययेद्विष्णुभक्तश्च संसारेऽसारातां तथा । एवं भावितचित्तेन प्राणिनां हितमिच्छतः ॥४९
 नमो नारायणायेति दक्षव्यं स्वपता निशि । तथैव कुरुद्विद्वादश्यां नाम्ना क्षुत्पाराणं नृप ॥५०
 सौवर्णताम्रपात्राणि नृण्यान्यदि पांडव । यवपात्राणि पूर्वं हु दद्यान्मासवृष्टयम् ॥५१
 आषाढादिद्वितीयं तु पार्वेच्च महामते । तत्रापि घृतपात्राणि दद्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥५२
 कार्तिकादिषु मासेषु माघातेषु तथा तिलान् । दिप्राय दद्यात्पात्रं तु प्रतिमासमुपोषितः ॥५३
 नामत्रयमसेषेण मासिमासि दिनद्वयम् । तथैवोच्चारयन् दद्यान्मासिमासि यवादिकम् ॥
 प्रणम्य च हृषीकेशं कृतपूजः प्रसादयेत् ॥५४

विष्णो नमस्ते जगती प्रसोदे श्रीवासुदेवाय नमो नमस्ते ।

नारायणाख्यः प्रणतैर्विचित्यः करोतु मां शाश्वतपुण्यराशिश् ॥५५

प्रसीद पुण्यं जयमेति विष्णो श्रीवासुदेवद्विमुर्पैतु पुण्यम् ।

प्रयातु वाशेषमथोविनाशं मातेऽग्रिपद्मादितरत्र मे मतिः ॥५६

विष्णो पुण्योद्भवो मेस्तु वासुदेवास्तु मे शुभम् । नारायणोऽस्तु मे धर्मो जहि पापमरोषतः ॥५७

जया द्वादशी अत्यन्त प्रशस्त बतायी गयी है । द्विज श्रेष्ठ! फाल्गुन मास की शुक्ल एकादशी के दिन उपवास करके द्वादशी के दिन भगवान् मधुसूदन की सप्रेम अर्वना करनी चाहिए । एकादशी के प्रातः काल उठते ही विष्णु के नामानुजीर्तन प्रारम्भ कर पूजन आदि कर्मों में भी यथावसर करता रहे, भगवान् वासुदेव की पूजा के उपरात भोजन में भी समाहितमनस्क रहे । उस समय धन के भाव से उत्पन्न होने वाले इन सभी काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, और द्वोहादि के त्याग पूर्वक उस विष्णु भक्त को संसार की नश्वरता पर विशेष ध्यान रख कर उनकी प्रेम-भावना को अधिक आश्रय देना चाहिए । इस प्रकार भावना निमग्न होकर प्राणियों के हितार्थ रात्रि में शयन करते समय नमो नारायणाय का उच्चारण करे । नृप! उसी प्रकार द्वादशी के दिन भी नामोच्चारण पूर्वक ही क्षुधांशांत्यर्थ पारण करे । ४५-५०। पाण्डव! प्रथम के चारों मासों में सुर्वा, ताम्र, अथवा मृत्तिका के पात्र में जबा रखकर प्रदान करता रहे । महामते! आषाढ़ आदि मासों के दूसरे चौमासे में श्रद्धा समेत घृत पान, और कार्तिक आदि से माघ के अन्त समय तक तिल पात्र उपवास करते हुए प्रतिमास व्राह्मण को प्रदान करता रहे । प्रत्येक मास के दोनों (एकादशी-द्वादशी के) दिन भगवान् के विशेष नामों के उच्चारण और पवान्नादि के पूर्ण पात्र व्राह्मण को प्रतिमास अर्पित करते हुए भगवान् हृषीकेश की सप्रणाम पूजा करके क्षमा प्रार्थना करे—जगत्कारण विष्णु को नमस्कार है, और श्री वासुदेव को नमस्कार है । श्री नारायणदेव का वह मुखारविन्द, जिसका ध्यान सदैव प्रणत पुरुष किया करते हैं, मुझे शाश्वत पुण्य की राशि बनाये । विष्णो! आप प्रसन्न हों, और मेरा पुण्य श्री वासुदेव जी की पुण्य-जप रूप भक्ति प्राप्त करे (अर्थात् अतुल हो जाये) अथवा विनष्ट हो जाये, किन्तु मेरी बुद्धि आप के चरण-कमल का त्याग कभी न करे । विष्णो! मेरा पुण्योद्भव हो, अशेष पापों के विनाश हो, नारायण! मेरी धर्म-वृद्धि हो और अशेष पापों के विनाश । ५१-५६। उसी भाँति अनेक जन्मों

अनेकजन्मजन्मितं बाल्ययौवनवार्द्धके । पुण्यं वृद्धिमायातु यातु पापं च संक्षयम् ॥५८
 आकाशादिषु शब्दादौ श्रोत्रादौ महदादिषु । प्रकृतौ पुरुषे चैव ब्रह्मण्यपि च स प्रभुः ॥५९
 यथैक एव धर्मात्मा वासुदेवो व्यवस्थितः । तेन सत्येन पापं से नरकार्तिकप्रदं क्षयम् ॥६०
 प्रयातु सुकृतस्यास्तु समानु दिवसञ्ज्ञयः । पापस्य हानिः पुण्यस्य वृद्धिर्मस्तूत्तमोत्तमा ॥६१
 एवनुच्छार्य विश्राय इद्यात् यत् कथितं तद् । भुञ्जीत कृतकृत्यस्तु पारणेपारणे गते ॥६२
 पारणान्ते तु देवेश प्रीणनं शक्तितो नृप । कुर्वाति!खिलपाखण्डरालापं च विवर्जयेत् ॥६३
 एवं संवत्सरस्यान्ते काञ्चनीं प्रतिश्नां हरे: । पूजायित्वा वस्त्रपुष्पैर्धृतपात्रेण संयुतैः ॥६४
 गां सवत्सां च विप्राय इद्याच्छ्रद्धासमन्वितः । विलंबितं च दन्तूर्वं देवानन्यान् भजेद्विदि ॥६५
 तस्मिन्नहनि दातत्र्यं भोजने चानिवारितम् । इत्येषा कथिता पुण्या सुकृतस्य जयावहा ॥
 द्वादशी नरकं पार्थं यामुपोव्य न पश्यति ॥६६
 नाम्नयो न च शस्त्राणि न च लोहमुखाः खगाः । नारकास्तं प्रबाधन्ते मतिर्यस्य जनार्दने ॥६७
 नामोच्चारणमात्रेण विष्णोः क्षीणाघस्तञ्चय । भवत्यघविनाशश्च नरके पतनं कुतः ॥६८
 ननो नारायणं हरे वासुदेवेति कीर्तयन् । न याति नरकं मर्त्यः संकीणाशेषपातकः ॥६९
 तस्मात्पाखण्डिसंसर्गकुर्वन् द्वादशीमिमाम् । उग्रोव्यं पुण्योपचये न याति नरकं नरः ॥७०

मैं वाल्य, यौवन एवं वृद्धावस्था-जनित पुण्य की वृद्धिपूर्वक पापों का ध्वंस हो । आकाशादि पञ्च तत्त्वों शब्द आदि (रूप रस गन्धादि) विषय, श्रोत्र (कर्ण) आदि इन्द्रियाँ, महदादि (सोलह विकार), प्रकृति, पुरुष और ब्रह्मा में सदैव एक भाँति स्थित रहने वाले धर्मात्मा वासुदेव नारकीय दुःख प्रद मेरे पापों के विनाश कर सुकृत कर्मों की अनुदिन परमोत्तम वृद्धि होती रहे । इस प्रकार कहकर ब्राह्मण को दान करने के अनन्तर कृतकृत्य होते हुए प्रत्येक पारण में भोजन करे । नृप! पारण के अनन्तर पाखण्डों और असप्त आलापों के त्याग पूर्वक वर्ष की समाप्ति में भगवान् विष्णु की काञ्चनमयी प्रतिमा बनवा कर सविधान पूजन करके वस्त्र, पुष्प, धृतपात्र, तथा सवत्सा गौ श्रद्धा समेत ब्राह्मण को अर्पित करे । विलम्ब होने अथवा किसी अन्य देव की अर्चना उपस्थित होने पर भी उस दिन ब्राह्मण भोजन अवश्य होना चाहिए । पार्थ! इस प्रकार मैंने तुम्हें पुण्य एवं जयावह उस सुकृत द्वादशी का वर्णन सुना दिया, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य नरक-दर्शन नहीं करता है । ५७-६१। भगवान् जनार्दन के लिए बुद्ध्या प्रयत्न करने वाले मनुष्यों को अग्नि, शास्त्र, लोहमुख पक्षी गण जनित कष्ट और नारकीय यातनाएँ प्राप्त नहीं होती हैं । क्योंकि भगवान् विष्णु के नामोच्चारण मात्र से पापों के समूह विनष्ट हो जाते हैं तो नरक-पतन सम्भव कहाँ । नारायण, हरे, एवं वासुदेव आदि भगवान् के नामों के कीर्तन करने वाले मनुष्य निखिल पापों के विनष्ट हो जाने के कारण नरक के भी नहीं होते हैं । इसलिए पाखण्डों आदि के त्याग पूर्वक सुकृत द्वादशी के उपवास करने पर पुण्य वृद्धि के नाते उस पुरुष को नरक की प्राप्ति नहीं होती है । ६७-७०। जो द्वादशी सुकृत नाम से प्रव्यात होकर पाप-नाश, सुकृत-वृद्धि, अनुदिन वृद्धि-प्रदान एवं समस्त दोषों के अपहरण करती

पापं किंगोति सुकृतस्य करोति वृद्धिं वृद्धिं प्रयच्छति नियच्छति सर्वदोषान् ।
यद्द्वादशीह सुकृतःतिहितः च लोके कस्मान्न तासुषदसंति दिमूढचित्तः ॥७१
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तर वर्णण श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सुकृतद्वादशीव्रतवर्णन नाम द्वृष्टशीतितमोऽध्यायः ॥८२

अथ श्वशीतितमोऽध्यायः

धरणीव्रतवर्णनम्
युधिष्ठिर उवाच

ददेतपरमं गुह्यं सर्ववेदेषु पठन्ते । स देवः शुण्डरीकाक्षः स्वयं नारायणो हरिः ॥१
स एज्ञैर्विद्यैरिष्टैर्वृत्तैश्च दुसत्तम । प्राप्यते परमो देवः सनातनः कथञ्चन ॥२
बहुवित्तेन भगवन्त्कृत्विभिर्वेदपाराणः । प्राप्यन्ते सुसहारैश्च क्वचित्यक्ताः सुदुष्कराः ॥३
विसेन च विना दानं दातुं कृष्ण न शक्यते । विद्यमानेष्यि न मतिः कुटुम्बासक्तचेतसः ॥४
तस्य मोक्षः कथं कृष्ण सर्वाणां दुर्लभो हरिः । अल्पायासेन लभते येन देवः सनातनः ॥
तन्मे सामान्यतो द्वौहि सर्वदर्गेषु भद्रवेत् ॥५

श्रीकृष्ण उवाच

कथयामि परं गुह्यं रहस्यं देवनिर्मितम् । धरण्या यत्कृतं पूर्वं मज्जन्त्या वसुधातले ॥६

है, उस लोकहितैषिणी में मूळवेता प्राणी उपवास करों नहीं करते हैं! (अर्थात् सदैव करना चाहिए) ॥७१।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
सुकृत द्वादशी व्रत वर्णन नामक बयासीवां अध्याय सपाप्त ॥८२।

अध्याय ८३ धरणीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यदुसन्नम् ! समस्त वेदों में शुण्डरीकाक्ष एवं स्वयं नारायण विष्णु देव को परम गुह्य बताया गया है, अतः उन देवेश की प्राप्ति अनेक भाँति के अथवा काम्यव्रत, द्वारा होती है, अथवा अन्य उपाय द्वारा, बताने की कृपा कीजिये । कृष्ण ! यदि भगवान् की प्राप्ति बहुवित्त द्वारा होती है जिसमें वेद निष्णात कृत्वग् विद्वानों की सहायता अरेक्षित है अथवा किसी दुष्कर के त्याग द्वारा तो विना दान के वित की प्राप्ति सम्भव नहीं होती और धन के रहने पर अहोरात्र कुटुम्ब के भरण-पोषण में आसक्त रहने के नाते उधर (दान करने की ओर) बुद्धि ही नहीं जाती । इसलिए कृष्ण ! उस (वृद्धि) का मोक्ष किस प्रकार हो सकता है, क्योंकि भगवान् विष्णु तो सर्वथा दुर्लभ है । अल्पायास से सभी वर्ण के प्राणियों को भगवान् विष्णु सिद्ध हो सके, मुझे बताने की कृपा कीजिये ॥१-५

श्रीकृष्ण बोले—पार्थिव ! मैं इसके लिए दुर्घटें एक परम गुह्य एवं देव निर्मित रहस्य बता रहा हूँ,

पृथिव्या: पर्थिवपुरा सञ्जातः सङ्गमोऽम्बुधिः । तस्मिन्स्तलिलसंलग्ने मही प्रायाद्वसातलम् ॥७
सा भूतधात्रीधरणी रसातलगता शुभा । आराधयामास विभुं देवं नारायणं परम् ॥८
उपवासवतैर्देवी नियमैश्च पृथिविधैः । कालेन महता तस्याः प्रसन्नो गरुडध्वजः ॥
उज्जहार स्थितो चेमां स्थापयामात चाच्युतः ॥९

प्राप्ते शर्गशिरे भासे दशम्यां नियतात्मवान् । स्नात्वा देवार्चनं कृत्वा अग्निकार्यं यथाविधि ॥१०
शुचिवासाः प्रसन्नात्मा हृत्यत्पानं युसंस्कृतम् । भुक्त्वा पञ्चपदं कृत्वा पुनः शौचं च पादयोः ॥११
कृत्वाद्याइगुलमात्रं तु क्षीरद्विसमुद्भवम् । भक्षयेदन्तकाञ्छठं तु ततश्चाचम्य यत्नतः ॥१२
स्पृष्ट्वा न्यस्यान्यकर्मणि चिरं ध्यात्वा जनार्दनम् । शङ्खचक्रगदापाणिं पीताम्बरसमावृतम् ॥१३
एवमुच्चारयेद्वाचं तस्मिन्काले भहाद्युते । एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहम्परेऽहनिः ॥
सम्भोदये पुण्डरोक्तश्च शरणं मे भवाच्युत ॥१४
एवमुक्त्वा ततो देव देवदेवस्य सन्निधौ । जपेन्नारायणायेति रूपे तत्र विधानतः ॥१५
ततः प्रभाते विमले नदीं गत्वा समुद्गाम् । इतरां वा तडागं वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥१६
आनीय मृत्तिकां शुद्धां मन्त्रेणानेन मानवः । धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा ॥
तेन सत्त्वेन शां पाहि पापान्मोचय सुव्रते ॥१७

इति मृत्तिकामन्त्रः

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवेः । भवन्ति भूतानि सतां मृत्तिकामालभेत्युनः ॥१८

जिसे वसुधा तल में निमग्न होती हुई धरणी ने सर्वप्रथम सुसम्पन्न किया है । जिस समय यह सारा संसार सलिल मान होने लगता है, उस समय यह धारण करने वाली धरणी भी रसातल चली जाती है । उसी समय यह धात्री उपवास, व्रत, नियम एवं प्रथक् विधान द्वारा विभु एवं परम् उस नारायण देव की आराधना करती है । पश्चात् अनेक काल के व्यतीत होने पर भगवान् गरुड ध्वज प्रसन्न होकर उद्धार करके इसकी स्थापना करते हैं । मार्गशीर्ष मास की शुक्ल दशमी के दिन संयम पूर्वक स्नान, देवार्चन एवं सविधान करके पवित्र वस्त्र धारण कर प्रसन्नता पूर्ण सुसंस्कृत पवकान्त्र का अल्पभोजन करे । अनन्तर पंचपद पूर्वक चरण प्रक्षालन, के उपरांत क्षीर वृक्ष के आठ अंगुल की दातुन आचमन (कुल्ला) और स्नान करके (अंग और करके) व्यात पूर्वक शंख, चक्र, गदा से सुसज्जित एवं पीताम्बर भूषित भगवान् जनार्दन का चिरकाल तक ध्यान करते हुए इस प्रकार उनसे प्रार्थना करे कि पुण्ड्रीकाक्ष ! मैं इस एकादशी के दिन निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा । अतः अच्युत ! आप मेरे शरण हो । ऐसा कहकर उन्हीं देवाधिदेव के समीप सविधान नारायण नाम का जप करे । पुनः विमल प्रातः काल होने पर किसी समुद्र गामिनी नदी, तडाग, अथवा गृह कूप पर स्थित होकर संयम पूर्वक उसे इस मंत्र द्वारा शुद्ध मृत्तिका लाना चाहिए—देवि ! सदैव धारण पोषण तुम्हारे ही द्वारा होता आया है, अतः उसी बल द्वारा मेरी रक्षा कीजिये और सुन्त्रे ! पाप से मुक्त भी । अनन्तर इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक आदित्य का दर्शन करे—इस ब्रह्माण्ड के उदर मध्यवर्ती समस्त तीर्थ भगवान् सूर्य के किरणों से स्पृष्ट है, जिनके द्वारा निखिल प्राणियों की सृष्टि होती है अतः इस का आलम्भन कर रहा हूँ । ६-१८। इस प्रकार उस मृत्तिका को सूर्य के सम्मुख प्रदर्शन

इत्यादित्यादर्शनमन्त्रः

एवं मृदं रवेरपे कृतवाथात्मानमालभेत् । त्रिकृत्वाशेषमृदया कुण्डमालित्य वै जले ॥१९
 ततः स्नात्वा नरः सम्यक्चक्रवर्त्युपचारकः । आचम्यावश्यकं कृत्वा पुनर्देव गृहं ब्रजेत् ॥२०
 हमाराध्य महायोगं देवं नारायणं प्रभुम् : केशवाय नमः पादौ कटि दामोदराय च ॥२१
 ऊरुगमं नृसिंहाय उरः श्रीवत्सधारिणे । कण्ठं कौस्तुभनाथाय वक्षः श्रीपतये तथा ॥२२
 त्रैलोक्यविजयायेति बाहू सर्वात्मने शिरः । रथाङ्गधारिणे चक्रं शङ्खरायेति चान्बुजम् ॥२३
 गम्भीरायेति च गदामभयं शान्तमूर्तये । एवमध्यर्थं देवेशं देवं नारायणं प्रभुम् ॥२४
 पुनस्तस्याग्रतः कुम्भंश्वतुरः स्थापयेद्बुधः । जलपूर्णान्समाल्पांश्च सितचन्दनवर्चितान् ॥२५
 चतुर्भिर्स्तालपात्रैश्च स्थगितान्तरत्नसंयुतान् । चत्वारस्ते रुद्राद्वास्तु कलशाः परिकीर्तिताः ॥२६
 तेषां नद्ये तु सम्पीठं स्थापयेद्वस्त्रसम्बृतम् ! तस्मिन्सौवर्णं रौप्यं वा ताम्रं वा दारवं तथा ॥२७
 पात्रं तोयमृतं कृत्वा तस्य मध्ये ततो न्यसेत् ॥२८
 सौवर्णं मात्स्यरूपेण कृत्वा देवं जनार्दनम् । वेदवेदाङ्गसंयुक्तं श्रुतिस्मृतिदिभूषितम् ॥२९
 भक्ष्यर्बहुविद्यै राजन् फलैः पुष्ट्यश्च शोभितम् । गन्धैर्धूर्षमन्त्रवैरर्चयित्वा यथाविधिं ॥२१
 रसातलगता वेदा यथा देव त्वयाहृताः । मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवादुद्धर केशव ॥३०
 एवमुच्चार्यं तस्यामै जागरं तत्र कारयेत् । यथाविभवसारेण प्रभातेऽपि पुनः पुनः ॥१
 चतुर्णां ब्राह्मणानां तु चतुरो दापयेद्वटान् ॥३१

कर अपने शरीर के सर्वाङ्गों में उसका लेपन और समुख प्रदर्शन कर अपने शरीर के सर्वाङ्गों में उसका लेपन और उसी जल में शेष मृतिका द्वारा तीन बार कुण्ड के समान गोलाकार बनाकर चक्रवर्ती के उपचार पूर्वक स्नान करे । तदुपरांत आचमन आवश्यक (नित्य नैमित्तिक कार्य एवं देव पितृ तर्पण) करके देवमन्दिर में महायोगी एवं प्रभु नारायण देव की आरधना करे—केशवाय नमः से चरण, दामोदराय नमः से कटि, नृसिंहाय नमः से दोनों ऊँल, श्रीवत्सधारिणे नमः से उह, कौस्तुभनाथाय नमः से कण्ठ, श्रीपतये नमः से वक्ष, त्रैलोक्याय विजयाय नमः से बाहू, सर्वात्मने नमः से शिर, रथाङ्गधारिणेनमः से चक्र, शंकराय नमः से कमल, गम्भीराय नमः से गदा और शान्तमूर्तये नमः से सर्वाङ्ग की अर्चना करनी चाहिए । इस प्रकार देवाधि देव उन नारायण प्रभु की अर्चना करने के अनन्तर उनके समक्ष जलपूर्ण चार कलशों की स्थापना करे, जो मात्स्यभूषित एवं सितचन्दन चर्चित हो । उनकी सन्निधि में रत्न पूर्ण चार तिलपात्र भी रखना चाहिए । उन चार कलशों को चारों समुद्रों का प्रतिरूप बताया गया है । उन कलशों के मध्य वस्त्राच्छन्न एक सौन्दर्य पूर्ण पीठ स्थापन कर उसी के मध्य सुवर्ण, रजत, ताम्र अथवा काष्ठ के पात्र में पूर्ण जल रखकर स्थापित करे । १९-२७। पुनः उस जल के मध्य में भगवान् जनार्दन के मत्स्य रूप की सुवर्ण प्रतिमा रखकर, जो वेद-वेदाङ्ग युक्त एवं श्रुतिस्मृति विभूषित रहती है, अनेक भाँति के भक्ष्य, फल, पुष्टि, गंध, धूपद्वारा सविधान एवं श्रेष्ठ मंत्रवर्णों के उच्चारण पूर्वक उनकी अर्चना सुसम्पन्न करके अपनी धनशक्ति के अनुसार निर्मित एवं स्थापित कलशों को ब्राह्मणों के लिए अर्पित करे । २८-३१। विधान

पूर्वं तु बहुचे दद्याच्छन्दोगे दक्षिणं तथा । यजुः शास्त्रान्विते दद्यात्पश्चिमं घटमुत्तमम् ॥३२
 उत्तरं कामतो दद्यादेश एव विधिक्रमात् । ऋषवेदः प्रीयतां पूर्वं सामवेदश्च दक्षिणः ॥३३
 यजुर्वेदः पश्चिमो नाम्ना आथर्वायोत्तरं तथा । पूर्णपात्रैस्तु सतिलैः स्थगितान्कारयेद्वाटान् ॥३४
 ततस्तं जलपादस्थं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । दद्यादेवं महाभाग्नं ततः पश्चात्तु भोजयेत् ॥३५
 ब्राह्मणान्यायसान्नेन ततः पश्चात्स्वयं गृही । भुञ्जीत भृत्यसहितो वाग्यतः संयतेन्दिष्यः ॥३६
 अनेन विधिना यस्तु द्वादशीं क्षपयेन्नरः । तस्य पुण्यफलं राजञ्चृष्णु सत्यवतां द्वर ॥३७
 यदि वक्षसहस्राणि भवन्ति हि दुरोयुगे । आप्युत्रं ब्रह्मणत्सुल्यं भवेद्यदि महाभाग्ने ॥
 तदस्य फलसंख्यानं कर्तुं शक्यं न धारयेत् ॥३७

यः कृष्णद्वादशीमेतामनेन विधिना नृप । करोति ब्रह्मलोकं स समाप्नोति न संशयः ॥३९
 ब्रह्महत्यादिपापानि जन्मान्तरकृतान्यपि । अकामतः कामतो वा प्रणश्यन्ति न संशयः ॥४०
 तथैव पौषनासेन अमृतं मथितं सुरं । तत्र कूर्मोभवदेवः स्वदमेव जनार्दनः ॥४१
 तस्येण तिथिरुद्धिष्टा हरेर्वै कूर्मलपिणः । पौषमासं सनाताद्य द्वादशीं शुक्लसंयुताम् ॥४२
 तस्यां प्राग्वत्संकल्पः प्रातः स्नानादिकाः क्रियाः । निर्वर्त्यराध्येद्रात्र्यामेकादश्यां जनार्दनम् ॥
 प्रीयमन्त्रैर्नृपश्चेष्ठ देवदेवं जगद्गुरुम् ॥४३

कूर्माय पादौ प्रथमं सुपूज्य नारायणायेति कटि हरेस्तु ।
 सङ्कर्षणायेत्युदरं विशेषेत्युरोभवायेति च कण्ठपीठम् ॥४४

क्रम से पूर्व दिशा का कलश व ऋच (ऋग्वेद) के विद्वान् दक्षिण कलश छन्दोग (सामवेदी) पश्चिम कलश यजुः शास्त्राध्यायी और उत्तर कलश यथेच्छ व्यक्ति को देना चाहिए। पूर्व दिशा में स्थित ऋग्वेदी, दक्षिण सामवेदी, पश्चिम यजुर्वेदी, और उत्तर स्थित अथर्वेदी प्रसन्न हों। महाभाग ! सतिल एवं पूर्णपात्र समेत वह जल घट किती कुटुम्बी ब्राह्मण को सादर समर्पित करना चाहिए। पश्चात् ब्राह्मणों को पायस भोजनों द्वारा संतुप्त कर अनन्तर परिवार एवं परिजन समेत मौन तथा संयम पूर्वक भोजन करे। राजन् सत्यावतांवर ! इस विधान द्वारा इस द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्य जो जिस फल की प्राप्ति होती है मैं बता रहा हूँ, सुनो ! महाभाग ! यदि प्रत्येक युग में ब्रह्मा के समान आयु और सहस्रमुख धारण कर उसकी फल संख्या निर्धारित करना चाहें तो भी असर्थ रहेंगे। नृप ! उस विधान द्वारा कृष्ण द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष ब्रह्म लोक की प्राप्ति करता है इसमें संदेह नहीं। ३२-३९। ज्ञान अज्ञान वश कीगयी जन्मान्तरीय ब्रह्महत्या एवं अन्ध पापराशि भी सर्वथा, निर्मूल हो जाते हैं। उसी भाँति पौष मास में देवों के अग्रृत मन्थन समय में भगवान् जनार्दन देव ने स्वयं कच्छप रूप धारण किया था। इसलए कच्छप रूप धारी भगवान् विष्णु के लिए यह तिथि सर्वथा उद्दिष्ट है। पौष मास की शुक्ल द्वादशी के दिन पूर्व की भाँति संकल्प पूर्वक प्रातः स्नान आदि क्रियाओं को सुसम्पन्न करना चाहिए। नृपश्चेष्ठ ! एकादशी के दिन रात्रि के समय देवाधिदेव एवं जगद्गुरु भगवान् जनार्दन की सर्वाङ्ग अर्चना उनके प्रेयान मंत्रों द्वारा करनी चाहिए। कूर्माय नमः से चरण, नारायणाय नमः से कटि, संकर्षणाय नमः से उदर, और पुरोभवाय नमः से भुजार्णे, एवं सर्वांत्मने नमः

सुबाहवेत्येव भुजौ शिरञ्च सर्वात्मने पाण्डव पूजनीयौ ।
 स्वनाममन्त्रेण च शङ्खचक्रे गदा नमस्कारपरेण चैव ॥४५
 एभिर्मन्त्रैः पुष्पसुगन्धैर्घूपैनैवेद्यदीपैर्विविधैः फलैश्च ।
 अस्यर्च्च देवं कलशां तदप्रे संस्थापयेन्माल्यविलेपनाद्यम् ॥४६
 तं रत्नगार्भं सुसुगन्धतोयं कृत्वा ततो हैमस्यं त्वशक्त्या ।
 सागान्दरं कूर्ततनुं सुरेशं संस्थापयेन्वादं शुभे च पात्रे ॥४७
 धृतैश्च पूर्णे कलशोऽग्रसंस्थं सम्पूजयेज्ञागरनृत्यगीतैः ।
 सम्पूज्य विप्रान् धृतपायसेन निवेदय पूर्वं द्विजपुङ्गवाय ॥
 निर्वर्त्य सर्वं विधिवत्तत्त्वं भुज्जीत सन्तुष्टमनाः समृत्यः ॥४८
 एवं कृते कल्पयुगान्तराणि स्वर्गं व्यसेत्सर्वसमुद्भकामः ॥४९
 संसारचक्रं स विहाय श्री द्विभास्रोति लोके तु हरेः वुराणे ।
 प्रथान्ति पापान्ति द्विनाशमाशु श्रिया पुत्रो जायति सत्यर्थम् ॥५०
 अनेकङ्गमार्जितसंयुतानि नश्यन्ति पापानि नरस्य भक्त्या ।
 प्रागुक्तरूपं च फलं लभेत नारायणं दस्तुमुपैति सदाः ॥५१

एवं भाष्ये सिते पक्षे द्वादशीं धरणीधर । वराहस्य शृणु ज्वान्यां राजन् परमधार्मिक ॥५२
 प्रागुक्तेन विधानेन स्नानं सङ्कल्पयेव च । कृत्वा देवं समस्यर्च एकादश्यां समाहितः ॥५३
 धूपनैवेद्यगन्धेस्तु अर्चयित्वा पुनर्नरः । पश्चात्स्थापतः कुम्भं जलपूर्णं तु विन्यसेत् ॥५४

से शिर एवं सर्वाङ्ग की अर्द्धना करनी चाहिए । पाण्डव ! स्वनाम मंत्रोच्चारण पूर्दक शंख, चक्र, और गदा की अर्चना एवं नमस्कारान्त नाम मंत्रों द्वारा पुष्प, धूप, सुगन्ध, नैवेद्य, दीप और विविध प्रकार के फलों को अर्पित करते हुए उनकी अर्चना के उपरांत उनके सम्मुख माला भूषित एवं चन्दन चृच्छित उस कलश का स्थापन करे, जो अन्तः पीत रत्नों, सुगंध एवं मधुर जलों से परिपूर्ण हो । उसके ऊपर सुवर्ण निर्मित मन्दर समेत भगवान् कच्छप की हेममयी प्रतिमा किसी शुभ पात्र में रखकर स्थापित धृत पूर्णपात्र समेत अर्चना करने के अनन्तर नृप नान द्वारा रात्रि जागरण करे । पूजनोपरात धृत पूर्ण पायस भोजन द्वारा ब्राह्मण को सुतृप्त कर और समस्त विधि सुसम्पन्न हो जाने के अनन्तर प्रसन्नता पूर्ण रहकर गुह्य आदि के साथ स्वयं भोजन करे । इस भाँति इसे सविधान सुसम्पन्न करने पर देवहावसान के समय स्वर्ग पहुँचकर एक कल्पयुग समस्त कामनाओं के परिपूर्ण सुखोपभोग करते हुए इसी प्रकार समस्त संसार चक्र के परमोत्तम लोकों के भ्रमण करके उसे भगवान् विष्णु के उस पुराण लोक की प्राप्ति होती है । समस्त पापों के विनाश होने पर वह सदैव भी सम्पन्न एवं सत्य धर्म की मूर्ति रूप में स्थित रहता है । भक्ति पूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्यों को अनेक जन्मों के पाप नाश पूर्वक नारायण लोक की प्राप्ति होती है । ४०-५१। इसी प्रकार धरणीधर ! भाष्य शुक्ल द्वादशी के दिन भगवान् के वराहावतार की प्रतिमा का पूजन करना चाहिए । राजन् ! उस परम धार्मिक को पूर्वोक्त विधान द्वारा स्नान संकल्प पूर्वक एकादशी के दिन तन्मयता से भगवान् की अर्चा धूप, नैवेद्य एवं गन्ध द्वारा सुसम्पन्न कर उनके अग्रभाग में जलपूर्ण

बाराहायेति पादौ तु माधवायेति वै कटिम् । क्षेत्रज्ञायेति जठरं विश्वरूपेत्युरो हरे: ॥५५
 पूर्वत्रायेति कण्ठं तु प्रजानां पतये शिरः । प्रद्युम्नायेति च भुजौ दिव्यास्त्राय सुदर्शनम् ॥५६
 अमृतोद्भूवाय शंखं तु गदिने च गदां तथा । एवमध्यर्थ्यं मेधावी तस्मिन्कुम्भेऽपि विन्यसेत् ॥५७
 सौवर्णं रूपं तांचं वा पात्रं विभवशक्तिः । सर्वदीजस्तु सम्पूर्णं स्थापयित्वा विद्यक्षणः ॥५८
 तत्र शक्त्या च सौवर्णं बाराहं कारयेत्ततः । दंष्ट्राग्रेणोदरन् पृथ्वीं सर्वदत्तवनद्वामाम् ॥५९
 माधवं सधुहृत्तारं बाराहं रूपनास्तिथतम् । सर्वदीजमृतैः पात्रै रत्नगर्भधटोपारि ॥६०
 स्थाप्यत्वरमं देवं जातरूपमयं हरिम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं तांश्राभावे तु वैष्णवे ॥६१
 स्थाप्यार्चयेद्गन्धपुष्पै नैवैद्यर्थिविधैः फलैः । पुष्पमण्डपिकां दृष्ट्वा जागरं तत्र कारयेत् ॥६२
 प्रादुर्भावं हरेर्दिव्यं वाचयेद्वापयेद्वधः । एवं सनीयमस्यास्य प्रभाते उदिते रवौ ॥६३
 वेदवेदाङ्गविदुषे साधुवृत्ताय धीमते । विष्णुभक्ताय राजेन्द्र विशेषेण प्रदापयेत् ॥६४
 एवं सकृम्यं दत्त्वा च हरिं बाराहरूपिणम् । ब्राह्मणाय भवेद्यद्वत्कलं तन्मे निशाभय ॥६५
 इह जन्मनि सौभाग्यं श्रीकाल्नी पुष्टिमेदं च । प्राप्नोनि पुरुषो राजन् यद्यदिच्छति किञ्चन ॥६६
 एकाऽपि विधिनोपास्ता ददात्यमृतमुत्तमम् । किं तु नर्वर्षमेकं च करोति कुरुनन्दन ॥६७
 एषा च फाल्गुने मासि शुद्धलपक्षे तु द्वादशी । उपोष्या पूर्वविधिना हरिमाराधयेत्सुधीः ॥६८
 नरसिंहाय पादौ तु गोविन्दायोदरं तथा । कटिं विश्वसृजे पूज्ये अनिरुद्धत्युरो हरे: ॥६९

कलश की स्थापन करे । 'बाराहाय नमः से चरण, माधवाय नमः से कटि, क्षेत्रज्ञाय नमः से जठर, विश्वरूपाय नमः से उदर, पूर्वत्राय नमः से कण्ठ, प्रजानां पतये नमः से शिर, प्रद्युम्नाय नमः से बाहु, दिव्यास्त्राय नमः से सुदर्शन, अमृतोद्भूवाय नमः से शंख, और गदिने नमः से गदा की पूजा करके उस मेधावी को उस कलश पर बाराह भगवान् की प्रतिमा स्थापित करना चाहिए, जो सूर्वण, चाँदी, ताँबा अथवा अपने विभवानुसार किसी अन्य पात्र पर स्थित हो और सुवर्ण द्वारा निर्मित की गयी हो । समस्त बीजों समेत स्थापित करते हुए उस विचक्षण को मधुहृत्ता माधव के उस वरहारूप की प्रतिमा का इस भाँति निर्माण करना चाहिए । जिसमें वे अपने दंष्ट्रा (दाँत) के अग्रभाग पर समस्त पर्वत वन द्वाम समेत पृथिकी को रखकर उस का उद्धार कर रहे हों । रत्न गर्भित उस सौन्दर्य पूर्ण कलश पर भगवान् की उस सूर्वण प्रतिमा को श्वेत शाखाओं से आच्छन्न कर ताँबे आदि के अभाव में वाँस पात्र में ही स्थापित एवं गन्ध पुष्प, नैवेद्य और विविध भाँति के फलों से उनकी अर्चना के उपरांत पुष्प मण्डप में जागरण करता रहे । ५२-६२ । और उसी स्थान भगवान् का दिव्य जन्मोत्सव करे । इस भाँति नियम पालन के उपरांत प्रातःकाल सूर्योदय होने पर किसी वेद वेदाङ्ग के निष्णात विद्वान् ब्राह्मण को, जो साधु-शील, अत्यन्त धीमान् एवं विशेषकर विष्णु भक्त हो, भगवान् की बाराहरूपी प्रतिमा समेत वह कलश सादर समर्पित करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! राजन् ! इसी जन्म में सौभाग्य, श्री, काति, पुष्टि समेत मनोनीत कामनाएँ सफल होती हैं । कुरुनन्दन ! सविधान एक बार (वह व्रत) सुसम्पन्न करते पर परमोत्तम अमृत प्रदान करता है, और जो उसी भाँति सम्पूर्ण वर्ष तक उसे सुसम्पन्न करता रहता है, उसे पुनः क्या कहा जा सकता है । फाल्गुन मास की शुक्ल द्वादशी के दिन विद्वानों को उपवास रहते हुए भगवान् को सविधान अर्चन सुसम्पन्न करना चाहिए । ६३-६८ । 'नरसिंहाय नमः से चरण, गोविन्दाय नमः से

कण्ठं तु शितिकण्ठाय वैनतेयाय वै शिरः । असुरध्वंसनायेति चक्रं तोयात्मने नमः ॥७०
 शह्वमित्येव सम्पूज्य गन्धपुष्टैः फलैस्तथा । तदग्रे तु घटं स्थाप्य सितवस्त्रायुगान्वितम् ॥७१
 तस्योपरि नृसिंहं तु सौवर्णं ताम्रभाजने । हैमे च शक्तिः कृत्वा दाख्वंशमयेऽपि वा ॥७२
 रत्नगम्भेमये स्थाप्य भक्त्या सम्पूज्य मानवः । द्वादश्यां वेदविदुषे ब्राह्मणाव निवेदयेत् ॥७३
 एषा वन्द्या पापहरा द्वादशी भवते मया । कथिता च प्रयत्नेन शुतः च भवतेष्पिता ॥७४
 एवमेनां नरव्याघ्रं चैत्रे सङ्कूल्प्य द्वादशीम् । उपोष्याराधयेत्पश्चाद्वदेवं जनार्दनम् ॥७५
 कुण्डिकां स्थापयेत्याश्वें छत्रिकां पादुके तथा । अपलं वासनं स्थाप्य बृसीं कांसपरिच्छदाम् ॥७६
 फलैः पुष्टैः सुगन्धैश्च प्रभाते सदिद्वजातये । दापयेत्प्रीयतां विष्णुर्त्स्वरूपीत्युदीरयेत् ॥७७
 दासनाम्नात्र संयुक्तं प्रादुर्भावं विधानतः । प्रीयतामिति सर्वत्र विधिरेवं प्रकीर्तिः ॥७८
 अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् । ऋष्टराज्ये लभेद्राज्यं मृतं विष्णुपुरं व्रजेत् ॥७९
 क्रीडित्वा सुचिरं कालमिह मर्त्यमुपागतः । चक्रवर्तीं भवेद्वीमान् यथातिरिति नाहुषः ॥८०
 वैशाखेऽप्येवमेवं तु सङ्कूल्प्य विधिवद्धरः । तद्वस्तनानं मृदा तद्वत्ततो देवालयं व्रजेत् ॥८१
 तत्राराध्य हर्हि भक्त्या एभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः । जामदग्न्याय पादौ तु उदरं सर्वधारिणे ॥८२
 मधुसूदनायेति कटिमुरः श्रीवत्सधारिणे । क्षत्रान्तकाय च भुजौ मणिकण्ठाय कण्ठकम् ॥८३

उदर, विश्वसृजे नमः से कटि, अनिरुद्धाय नमः से उर, शितिकण्ठाय नमः से कण्ठ, वैनतेयाय नमः से शिर, असुरध्वंसनाय नमः से मुख, और तोयात्मने नमः से शंख, की अर्चना गंध पुष्ट, एवं फलों द्वारा सुसम्पन्न कर उनके समक्ष चार वस्त्रों से आच्छन्न घट के स्थापन कर भगवान् नृसिंह की मुर्वर्ण प्रतिमा किसी सुर्वर्ण, ताम्र, अथवा भक्त्यानुसार काष्ठ य। बांस के पात्र में रखकर उसी रत्न गर्भस्थ घट पर स्थापित एवं पुजित करना चाहिए। पुनः द्वादशी के दिन किसी वैदिक विद्रान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे। इस प्रकार मैंने इस वंदनीया पापहरा द्वादशी का वर्णन तुम्हें सुना दिया, जिसे आप ने सप्रयत्न श्रवण किया है। नरथेष्ठ ! इसी भाँति चैत्र मास की शुक्ल द्वादशी के दिन उपवास रहकर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन की आराधना करनी चाहिए। उनके पार्श्व भाग में कुण्डिका स्थापन पूर्वक छत्र, पादुका (खड़ाऊँ), वामन की प्रतिमा मृगचर्म कुशासन समेत स्थापित कर फल, पुष्ट, सुगन्ध आदि द्वारा अर्चना करने के अनन्तर प्रातः काल उन सभी वस्तुओं को 'लघुकाय (वामन) रूपी विष्णु प्रसन्न हों, कहते हुए किसी आचार नैष्ठिक ब्राह्मण के लिए सादर समर्पित करे। इसी प्रकार सभी मासों में ये नाम के अनुसार सविधान उनके प्रादुर्भाव एवं 'वे प्रसन्न हों' यही विधान सर्वत्र प्रशस्त बताया गया है। इसे सुसम्पन्न करने पर अपुत्री को पुत्र, निर्धन को धन, राज्य च्युत को राज्यकी प्राप्ति पूर्वक देहावसान होने पर विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। ६९-७१। वहाँ चिरकाल तक क्रीडा करने के उपरांत वह इस धरातल पर जन्म ग्रहण कर ययाति अथवा नहुषु कुल में चक्रवर्ती राजा होता है। वैशाख मास में भी सविधान एवं संकल्प पूर्वक मृत्तिका स्नान करके देव मन्दिर में इन मंत्रों के उच्चारण द्वारा भक्ति श्रद्धा संयुक्त भगवान् विष्णु की आराधना करे—जामदग्नये नमः से चरण, सर्वधारिणे नमः से उदर, मधुसूदनाय नमः से कटि, श्रीवत्सधारिणे नमः से उर क्षत्रान्तकाय नमः से बाहु, मणिकण्ठाय नमः से कण्ठ, मुख्याय नमः से मुख, पुनः जामदग्नये नमः से

पूजयेभियतो मूत्वा सुरुपायेति वै मुखम् । स्वनाम्ना शङ्खाचक्रे च शिरो ब्रह्माण्डधारिणे ॥८४
एवमन्यर्थ्यं मेधावी प्राद्यंशस्याग्रतो घटम् । चिन्यत्येत्युष्टवस्त्रादचं सितचन्दनर्चितम् ॥८५
दैणदेवभिनवे पात्रे स्थापयेन्मधुसूदनम् । जामदग्नयेन रूपेण कृत्वा सौवर्णमग्रतः ॥८६
दक्षिणं परशुं हस्ते तस्य देवस्य कारयेत् । सर्वगन्धैस्तु सम्पूज्य पुष्टैर्नानाविधैः शुभैः ॥८७
ततस्तस्याग्रतः कुर्याज्जागरं भक्तिभान्नरः । प्रभाते विमले सूर्ये ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥८८
एवं नियम्युक्तस्य यत्कलं तन्निबोध मे । काश्यपे ब्रह्मणो लोके चोषित्वाप्सरसाङ्गैः ॥
स्थित्वा झौते च सृष्टौ च चक्रवर्ती भवेत् ध्रुवम् ॥८९
ज्येष्ठे मासेऽप्येवसेव संकल्प्य विधिवल्लरः । अर्चयेत्परमं देवं पुष्टैर्नानाविधैः शुभैः ॥९०
नमो दामोदरायेति पादौ पूर्वं समर्चयेत् त्रिविक्रमायेति कटि धृतविश्वाय चोदरस् ॥९१
उरः सम्वर्तकायेति कण्ठं सम्वत्सराय च । सर्वासुधारिणे वाहुं स्वनाम्नाबजरथाङ्गके ॥९२
सहस्रशिरेऽभ्यर्थ्यं शिरस्तस्य महात्मनः । एवमन्यर्थ्यं विधिवत्प्रागुक्तविधिवन्न्यसेत् ॥९३
प्रत्यवद्वस्त्रसुगन्धैश्च सौषधौं रामलक्ष्मणौ । अर्चयित्वा दिधानेन प्रभाते ब्राह्मणाय तौ ॥
दातव्यौ मनसा काममीहता पुरुषेण तु ॥९४
अपुत्रेण पुरा पृष्ठो राजा दशरथेन तु । पुत्रकामेन यजता वशिष्ठः परमार्चितः ॥९५

शंख चक्र और ब्रह्माण्डधारिणे नमः से शिर की समर्चना करके उनके सम्मुख पुष्प वस्त्र से सुशोभित एवं चन्दन चर्चित कलश की स्थापना कर उसके ऊपर नूतन वाँस के पात्र में मधुसूदन भगवान् के परशुरामावतार की मुवर्ण प्रतिमा रखकर स्थापित करे, जिसके दक्षिण हांथ में परशु (कुठार) सुसज्जित हो । सुगन्ध और अनेक भाँति के पुष्प द्वारा उनको अर्चना करने के उपरांत इस भक्तिमान् पुरुष को उनके सम्मुख रात्रि जागरण करना चाहिए । पुनः निर्मल मन से प्रातः काल में सूर्योदय होने पर उसे सादर ब्राह्मण को अपित करे । इस प्रकार नियम पूर्वक उसे सुसम्पन्न करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ सुनो ! ब्रह्मलोक में अप्सरावृन्दों के साथ चिरकाल तक सुखानुभव करने के उपरांत इस भूमण्डल पर जन्मग्रहण कर चक्रवर्ती राजा होता है । ८०-८१। इसी प्रकार ज्येष्ठ मास में भी संकल्प पूर्वक सविधान अनेक भाँति के मांगलिक पुष्पों द्वारा भगवान् की अर्चना करनी चाहिए । सर्वप्रथम दामोदराय नमः से भगवान् की अर्चना करनी चाहिए—सर्वप्रथम दामोदराय नमः से चरण, त्रिविक्रमाय नमः से कटि, धृतविश्वाय नमः से उदर, संवर्तकाय नमः से उर, संवत्सराय नमः से कण्ठ, सर्वासुधारिणे नमः से बाहु, स्वनाम द्वार कमल चक्र, और सहस्र शिरसे नमः उन महात्मा के शिर की अर्चा करे । इस प्रकार सविधि अर्चना के उपरांत पूर्वोक्त की भाँति वस्त्र एवं सुगन्ध भूषित घट के ऊपर भगवान् राम लक्ष्मण की सुवर्ण प्रतिमा के स्थापन पूजन कर । पुनः प्रातः समय वे सभी वस्तुएँ किसी ब्राह्मण को अपित करने पर उस प्रशस्त द्विती पुरुष की पुत्रकामना समेत पुण्य कामनाएँ भी सफल होती है । ९०-९४। क्योंकि पूर्वकाल में पुत्रहीन राजा दशरथ के पुत्रकामनया पूजनोपरांत भी वशिष्ठ जी से पूछने पर उन्होंने इसी विधान का वर्णन किया था । रहस्य समेत अवगत होने पर इस विधान द्वारा उन्होंने उसे सुसम्पन्न किया, जिसके प्रभाव से भगवान् राम ने ही उनके पुत्र रूप में अवतरित हुए और अत्यन्त सन्तुष्ट

इदमेव विधानं तु कथमामास वै द्विजः । सरहस्यं विदित्वाश्च स राजा कृतवानिदम् ॥१६
तस्य पुत्रः स्वयं जज्ञे रामो नाम महाबलः । चतुर्द्वा सोऽव्ययो विष्णुः परितोषादजायत ॥
एतदेवं महाख्यातं परलोके सुखप्रदम् ॥१७

श्रीकृष्ण उवाच

आषाढेऽप्येवमेवं तु सङ्कूल्यं विधिना नरः । अर्चयेत्परमं देवं गन्धपुष्टैः समाहितः ॥१८
वासुदेवाय पादौ तु कर्णि सङ्कूर्षणाय च । प्रद्युम्नायेति जठरमनिरुद्धाय वै नमः ॥१९
चक्रपाणिं भुजौ कण्ठं मुखं भूपतये तथा । स्वनाम्ना शङ्खचक्रे तु पुरुषायेति वै शिरः ॥२००
एवमस्यर्च्यं मेधः वी प्राग्वत्स्याप्रतो घटम् । विन्यस्य वस्त्रसंयुक्तं हस्योपरि ततो न्यसेत् ॥
काञ्चनं वासुदेवेति चक्रबाहुं सनातनम् ॥२०१
तमस्यर्च्यं विधानेन गन्धपुष्ट्यादिभिः कळमात् । प्राग्वत्स्नाह्यणे दद्याद्वेदवादिनि सुव्रते ॥२०२
एषा हृषीपोषिता राजन्विद्यां विप्रे प्रयच्छति । राज्यं च भृष्टराज्यानामपुत्राणां सुतान्बहून् ॥२०३
मृतो विष्णुपुरे रन्ये क्रीडते कालमक्षयम् ॥२०४
मन्वन्तरर्णि षट्कृत्वशत्तः कालात्यये पुनः । इह लोके भवेद्राजा सप्तजन्मनि मानवः ॥
दाता यशः क्षमायुक्तस्ततो निर्वाणनाम्नायात् ॥२०५

श्रीकृष्ण उवाच

एवमेवं श्रावणे तु मासि सङ्कूल्यं द्वादशीम् । अर्चयेत्परमं देवं गन्धपुष्ट्यनिवेदनैः ॥२०६
बुधाय पादौ सम्पूज्य श्रीधरायेति वै कटिम् । पद्मोद्भवाय जठरमुरः सम्वत्सराय च ॥२०७

होने के नाते वे चार भाँति का रूप धारण कर वहाँ रह रहे थे । इस भाँति परलोक सुखावह इस विषय को मैंने तुम्हें बता दिया । १५-१७

श्रीकृष्ण बोले—इसी भाँति आषाढ मास में संकल्प पूर्वक सविधान गंध पुष्प द्वारा भगवान् की अर्चना करे—वासुदेवाय नमः से चरण, संकर्षणाय नमः से कटि, प्रद्युम्नाय नमः से जठर, तथा अनिरुद्धाय नमः से बाहु, कण्ठ, भूपतये नमः से मुख, स्वनाम द्वारा शंख चक्र और पुरुष नमः से शिर की अर्चना करे । इस भाँति पूजनोपरांत उस मेधावी पुरुष को चाहिए कि पूर्वोक्त की भाँति उनके समक्ष वस्त्र चन्दन भूषित कलश स्थापन कर उसके ऊपर सनातन एवं चन्द्रपाणि भगवान् वासुदेव की सुवर्ण मूर्ति स्थापित कर सविधान गंध पुष्प द्वारा क्रमशः उसकी अर्चना केअनन्तर उस सब को किसी वैदिक विद्वान् एवं नैषिक द्राह्यण को सादर समर्पित करे । राजन् ! इस प्रकार उपवास पूर्वक इसे सनियम सुसम्पन्न करने पर यह उस ब्रती द्राह्यण को विद्या प्रदान करता है । तथा राज्य-च्युत को राज्य, अपुत्री को अनेक पुत्र की प्राप्ति पूर्वक देहावसान होने पर विष्णु लोक में अक्षयं काल तक क्रोड़ा करता है । पुनः छत्तीस मन्वन्तरों के उस अनेक काल के व्यतीत होने पर इस भूमि में जन्म ग्रहण कर दाता, यश एवं क्षमा आदि अनेक गुण सम्पन्न राजा होता है और निधन होने पर निर्वाण की प्राप्ति करता है । १८-१०५

श्रीकृष्ण बोले—इसी प्रकार श्रावण मास की द्वादशी के दिन संकल्प पूर्वक सविधान गंध, पुष्प एवं क्षमायाचना आदि द्वारा परम विष्णु देव को सुपूजित करे—‘बुधाय नमः’ से चरण, श्रीधराय नमः से कटि, पद्मोद्भवाय नमः से उदर, संवत्सराय नमः से उर, सुग्रीवाय नमः से कण्ठ एवं चित्रबाह्वे नमः से बाहु की

सुग्रीदायेति वै कण्ठं भुजौ वैचित्रबाह्वे । प्राग्बद्धस्त्राणि सम्पूज्य ब्राह्मणाथ निवेदयेत् ॥१०८
अनेन विधिना सर्दा द्वादशीं समुपोषितः । शुद्धौदनेन तस्याभूत्स्वयं पुत्रो जनार्दनः ॥१०९
महतीं च श्रियं प्राप्य पुत्रपौत्रसमन्वितः । भुक्त्वा राज्यश्रियं सोऽथ गतः परनिकां गतिस् ॥११०
एष ते विधिरुद्धिष्ठः श्रावणे मासि सत्तमः । एकेकोपोषितात्प्यस्तु राज्यमेकैव यच्छति ॥
कि पुन्नद्वादशैवात्र दद्युरैन्द्रं महत्पदम् ॥१११

तद्वद्वाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे तु द्वादशीम् । सङ्कल्प्य विधिना देवमर्चयेत्तरमेश्वरम् ॥११२
नमोऽस्तु कल्किने पादौ हृषीकेशाय वै कटिम् । म्तेच्छग्राध्वंसनायेति जगन्मूर्ते तथोदरम् ॥११३
शितिकण्ठाय कण्ठं दु खड्गपाणीति वै भुजौ । शङ्खचक्रे स्वनाम्नात्र विश्वमूर्ते तथासतः ॥११४
एवमध्यर्च्य गोधावी प्राग्बत्स्याग्रतो घटम् । विन्यस्य कल्किनं देवं सौवर्णं तत्र कारवेत् ॥११५
सितदस्त्रयुग्मच्छन्नं गन्धपुष्पोपशोभितम् । कृत्वा प्रभाते विप्राय प्रदेयः शास्त्रवित्तमे ॥११६
एवं कृते भवेद्यतु तन्निबोध नृपोत्तम । दशावतारदानेन पूजने चैव तत्फलम् ॥११७
पूज्यते मत्यरूपेण सर्वज्ञत्वमभीप्सुभिः । स्ववंशभरणायाथ कूर्मरूपी तु पूज्यते ॥११८
भवोदधिनिमग्नैस्तु वाराहः पूज्यते हरिः । नृसिंहनवरूपेण तद्रत्यापभयान्नरः ॥११९
वामनं मोहनाशाय वित्तार्थं जमदग्निजम् । कूरशत्रुविनाशाय यजेदाशार्थं बुधः ॥१२०

अर्चना करके पूर्व की भाँति वस्त्राच्छन्न कलश और प्रतिमा के स्थापन पूजन करे अनन्तर ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । इसी विधान द्वारा समस्त द्वादशी के उपवास रहकर पूजन सुसम्पन्न करने पर उनके यहाँ भगवान् जनार्दन शुद्धोदन (बुद्ध) के रूप अदत्तरित हुए जिसे पुत्र, पौत्र की प्राप्ति तथा राज्य श्री का सुखोपभोग और निधन होने पर परमोत्तम गति की प्राप्त हुई । सत्तम ! इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रावण मास का विधान बता दिया जिसके एक ही द्वादशी के व्रतोपवास सुसम्पन्न करने पर वह द्वादशी राज्य प्रदान करती है और समस्त वर्ष की बाराह द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले को क्या कहना है, वह तो उसे ऐन्द्र पद प्रदान करता है । १०६-१११ । तद्रत्त भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी के दिन संकल्प पूर्वक सविधान भगवान् की अर्चना करे—कल्किने नमः से चरण, हृषीकेशायनमः से कटि, म्तेच्छ प्रध्वंसनाय नमः से और जगन्मूर्तये नमः से उदर, शितिकण्ठाय नमः से कण्ठ, खड्गपाणयेनमः से बाहु, स्वनाम द्वारा शंख चक्र और विश्वमूर्तये नमः से शिर की समर्चना सुसम्पन्न करे । अनन्तर पूर्ववत् सुसज्जित घट स्थापन कर उसके ऊपर कल्कि देव की सुर्वाय प्रतिमा को श्वेत वस्त्र से आच्छन्न कर गंध, पुष्पों द्वारा उसकी पुण्यर्चना करने के उपरांत उसे किसी शास्त्र निपुण विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । नृपोत्तम ! इस प्रकार उसकी अर्चना द्वारा जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, मुनो ! इसके पूजन सुसम्पन्न करने पर भगवान् के दश अवतारों के दान फल प्राप्त होते हैं, जो इस भाँति कहे गये थे कि—सर्वज्ञत्व की कामना से मत्स्यावतार, कुटुम्ब के भरण पोषणार्थ कच्छप भगवान्, संसार सागर को पार करने के लिए भगवान् की बाराह मूर्ति पापमय से नृसिंह, मोहनाशार्थ वामन, वित्त प्राप्यर्थ परशुराम, कूर शत्रुओं के विनाशार्थ राम, पुत्रकामनार्थ बलराम, कृष्ण रूप सौन्दर्यार्थ, बुद्ध और शत्रु

द्वलकृष्णौ यजेद्वीम्नपुन्नकामो न संशयः । रूपकामो यजेद्वृद्धं कल्किनं शत्रुघ्नातने ॥
सर्वा दत्त्वा विधानेन पूजां प्राप्नोति वाञ्छित्तम् ॥१२१

श्रीकृष्ण उवाच

तद्वदाभ्युजे मासि शुक्लपक्षे तु द्वादशीम् । संकल्प्यायच्चेदेवं पद्मनाभं सनातनम् ॥१२२
पद्मनाभाय पादौ तु कटिं वै पद्मयोनये । उदरं सर्वदेवाय पुष्करक्षाय वा उरः ॥

अव्ययाय तथा शीर्षं प्राप्तवदस्त्राजि पूजयेत् ॥१२३

ततस्तस्याग्रतः कुम्भं माल्यवस्त्रसमञ्चितम् । यथाशक्त्या काञ्चनेन पद्मनभेति भूषितम् ॥१२४
रात्रौ तु ज्ञात्वा विमले ततः । आहारे तत्प्रदातव्यं संसारभयभीरुणा ॥१२५

एवं कृते तु यत्पुण्यं तद्वकुं शक्यते कथम् । ब्रह्महत्यादिप्राप्तानि किं तु पञ्चैव भास्त ॥

नश्यन्ति कृतपुण्यस्य विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥१२६

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन् महाबाहो कार्तिके मासि द्वादशीम् । उपोष्य विधिनायेन यथास्याः प्राप्यते फलम् ॥१२७
प्राप्तिविधानेन संकल्प्य वासुदेवं प्रपूजयेत् । अनुलोमेन देवेशं पूजयित्वा विचक्षणः ॥

नमो दामोदरायेति सर्वाङ्गं पूजयेद्वरिम् ॥१२८

एवं सम्पूज्य विधिना तस्याश्र चतुरो घटान् । स्थापयेद्वलगर्भाश्र सितचन्दनचर्चितान् ॥१२९

हननार्थ भगवान् के कल्पि रूप की अर्चना की जाती है सविधान पूजन सुसम्पन्न होने पर इन सभी के दान फल प्राप्त होते हैं । ११२-१२१

श्रीकृष्ण बोले—आश्विन शुक्ल की द्वादशी के दिन संकल्प पूर्वक सविधान सनातन पद्मनाभ भगवान् की अर्चना करनी चाहिए—पद्मनाभाय नमः से चरण, पद्मयोनये नमः से कटि, सर्वदेवाय नमः से उदर, पुष्करक्षाय नमः से उर, अव्ययाय नमः से शिर और पूर्व की भाँति अस्त्रों की पूजा करे । पुनः उसके समक्ष माला और वस्त्र से विभूषित घट स्थापन कर उसके ऊपर भगवान् पद्मनाभ की सुवर्णी प्रतिमा की यथाशक्ति आराधना करनी चाहिए । रात्रि में जागरण करने के उपरांत विमल प्रभात के समय संसारभय भीर उस व्रती को चाहिए कि वह सब वस्तु किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । इस प्रकार इसे सुसम्पन्न करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करना सामर्थ्य के परे है । भारत ! उसके विषय में इतना ही कहना ही कहना पर्याप्त होगा कि ब्रह्महत्या आदि पाँच दारूण पापों का विनाश केवल विष्णु के नामानुकीर्तन द्वारा ही हो जाता है । १२२-१२६

श्रीकृष्ण बोले—महाबाहो, राजन् ! कार्तिक मास की शुक्ल द्वादशी के सविधान उपवास एवं पूजन करने से जिस प्रकार फलों की प्राप्ति होती है, कह रहा हूँ, सुनो ! पूर्वोक्त विधान द्वारा संकल्प पूर्वक वासुदेव की पूजा करनी चाहिए—उनके चरण से आरम्भ कर शास्त्र समेत शिर तक अनुलोम क्रम द्वारा प्रत्येक अंगों की अर्चना करते हुए 'नमःदामोदराय' से विष्णु के सर्वाङ्ग की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार सविधान पूजनोपरांत उनके सम्मुख रत्न गर्भित एवं चन्दन चर्चित चार कलशों के स्थापन पूजन

स्थगदामालम्बितप्रीवान्सितवस्त्रैश्च गुणितान् । स्थगितांस्तान्प्रपात्रे तु तिलतूर्णेः सकाञ्चनैः ॥१३०
 चत्वारः सागरास्ते च कथिता राजसत्तम । तन्मध्ये प्राग्दिधानेन सौवर्णं स्थापयेद्वरिम् ॥१३१
 योगेश्वरनङ्गनिधिं विरक्तं पीतवाससम् । तद्वदेवं च सम्पूज्य जागरं तत्र कारयेत् ॥१३२
 कृत्वा तु वैष्णवं योगं यजेद्योगेश्वरं हरिम् । षोडशो वै रथांगेषु रजोभिर्बहुभिः कृते ॥१३३
 एवं कृत्वा प्रभाते तु ब्राह्मणान् पञ्च भोजगेत् । चत्वारः कलशा देयाश्चतुर्गां पञ्चमस्य हि ॥१३४
 योगेश्वरं च सौवर्णं दापयेत्प्रयतः शुचिः । ब्राह्मणाय समं दत्तं द्विगुणं देववादिने ॥१३५
 वेदवेदाङ्गविदुषे सहस्रगुणितं भवेत् । पञ्चमस्य रहस्यं तु ससमं नोपपादयेत् ॥१३६
 विधानं तस्य पञ्चवै दत्त्वा कोटिगुणोत्तरम् । इतिहासपुराणदे दत्तं चैवाक्षयं भवेत् ॥१३७
 पञ्चदत्त्वा विधानेन द्वादश्यां विष्णुमर्च्य च । विप्राणां भोजनं दद्याद्यथाशक्तया सदक्षिणम् ॥१३८
 दीनानाथादिकान्सर्वान्यूजयेच्छक्तितो नृप ॥१३९
 धरणीव्रतमेतत्तु पुरा कृत्वाप्रजापतिः । ध्रजां लेभे ततो मुक्तिर्ब्रह्मणा विष्णवे शुद्धे ॥१३९
 युवनशब्दो हि राज्यधिरनेन विधिना पुरा । मान्धातारं सुतं लेभे परं ब्रह्म च शाश्वतम् ॥१४०
 तथा हैह्यदायादः कृतवीर्यो नराधिपः । चक्रवर्तिसुतं लेभे सहस्रार्जुनमूर्जितम् ॥१४१
 शकुन्तलाप्येवमेव ब्रतं चीर्त्वा नरोत्तमम् । लेभे शाकुन्तलं पुत्रं दुष्यन्तश्वकर्वतिनम् ॥१४२
 तथा पुराणराजानो वेदोक्ताश्वकर्वतिनः । अनेन विधिना प्राप्ताश्वकर्वतित्वमुत्तमम् ॥१४३

करे, जो कण्ठ से नीचे भाग तक लटकती हुई मालाओं से विभूषित, और वस्त्रों से सुसज्जित हों तथा ताम्र पात्र में काञ्चन समेत तिल पूर्ण सस्थित किये गये हों ! राजसत्तम ! इन चारों को सागर बताया गया है । उनके मध्य में पूर्व विधान द्वारा भगवान् की सुवर्ण प्रतिमा, जो योगेश्वर के रूप में निर्मित एवं पीताम्बर भूषित हो, स्थापित कर पूजनोपरांत रात्रि जागरण करे । विष्णु पूजन, योगेश्वर मंत्र के जप और चक्र में अधिक रज दृष्टि गोचर हो, इसके लिए उसकी षोडशोचार अर्चा करनी चाहिए । अनन्तर प्रातः काल पाँच ब्राह्मणों को भोजन द्वारा सुतृप्त कर चार को चार कलश और पाँचवें ब्राह्मण को योगेश्वर की सुवर्ण भूति का दान सादर प्रदान करे । किसी सामान्य ब्राह्मण को कलश दान अर्पित करने पर सम, वेदवेत्ता को देने पर दुगुने एवं वेद वेदाङ्ग निष्णात विद्वान् को अर्पित करने पर सहस्र गुणे फल प्राप्त होते हैं । वह सुवर्ण प्रतिमा भी उस पाँचवें सामान्य ब्राह्मणों को अर्पित करने पर साधारण, वेदनिष्णात को देने पर कोटि गुणे और इतिहासपुराण मर्मज्ञ को अर्पित करने पर अक्षय फल प्राप्त होता है । इस प्रकार पाँचों ब्राह्मणों को दान, सविधान विष्णु का द्वादशी में अर्चन, यथाशक्ति दक्षिणा समेत ब्राह्मण भोजन एवं दीन अनाथ आदि प्राणियों को भी यथाशक्ति तृप्त करना चाहिए । १२७-१३८। नृप पूर्वकाल में प्रजापति ने इस धरिणी व्रत को सुसम्पन्न कर शाश्वत ब्रह्मलोक की प्राप्ति की । राजपि युवनाश्व ने इसी विधान द्वारा इसे सुसम्पन्न कर शाश्वत ब्रह्मलोक की प्राप्ति की । इसी प्रकार हैह्यवंशीय कृतवीर्य ने सहस्रार्जुन नामक चक्रवर्तीं पुत्र प्राप्त किया और दुष्यन्त शकुन्तला ने इस परमोत्तम व्रत को सुसम्पन्न कर भारत नामक पुत्र प्राप्त किया था । इसी प्रकार वेदोक्त अनेक चक्रवर्तीं राजाओं ने सविधान इसे सुसम्पन्न कर चक्रवर्तीं पद की प्राप्ति की है । १३९-१४३। और सर्वप्रथम धरणी ने पाताल लोक में

धरण्या अथि पाताले मग्नयाचरितं पुरा । व्रतमेतत्ततो नान्ना धरणीव्रतमुच्यते ॥१४४
समाप्तेऽस्मिन्स्तदा देवी हरिणा क्रोडलक्षणा । उद्भूता दशनाग्रेण स्थापिता नौरिवाम्भसि ॥१४५
धरणीव्रतमेतते कथितं पाण्डुनन्दन । य इदं शृण्याद्बूक्त्या यथा कुर्याक्षरोत्तम् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमावजेत् ॥१४६

चीर्ण रसातलतले गतया धरण्या तेन प्रसिद्धिमग्नद्वरणीव्रतेति ।
सद्यः रामावरति धर्मरितर्द्विरित्र्यामुद्भूत्य सप्त पुरुषान्स दरं प्रयाति ॥१४७
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
धरणीव्रतं नान्न अशीतितमोऽध्यायः ॥८३

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

विशोकद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

किम् रीष्टविष्योगशोकसंह्वालघु इह समुपोषतां द्रतं वा ।
विभवोद्भूवकारि भूतलेऽस्मिन्भवति विभो भयसूदनं च पुंसाम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

परिमृष्टमिदं जगत्प्रियं ते विबुधानामपि दुर्लभं महत्वात् ।
तत्वं भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये व्रतमिन्द्रासुरदानवेषु गुह्यम् ॥२

निमग्न होने पर इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे 'धरणी व्रत' नाम से इसकी प्रख्याति हुई । व्रत के समाप्त होने पर बाराह मूर्ति भगवान् को द्रष्टा (दाँत) के अग्रभाग पर जल में नौका की भाँति स्थित होकर उनके द्वारा इस पृथ्वी का उद्धार हुआ था । पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार मैंने यह धरणी व्रत तुम्हें सुना दिया जिसे भक्ति पूर्वक श्रवण करने पर समस्त पापों से मुक्त होकर वह विष्णु सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है । रसातल में पहुँचने पर धरणी के इसे सविधान सुसम्पन्न करने पर धरणीव्रत नाम से इसकी प्रख्याति हुई । इसलिए इस भूतल पर इसे सुसम्पन्न करने पर उस धार्मिक पुरुष के सात पीढ़ी परिवार विष्णु के परमोत्तम लोक प्राप्त करते हैं । १४४-१४७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसम्बाद में
धरणीव्रतवर्णन नामक तिरासीर्वाँ अध्याय समाप्त ॥८३।

अध्याय ८४

विशोकद्वादशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—विभो ! उपवास रहने वाले पुरुषों के अभीष्ट सिध्यर्थ किसी इस भाँति के लघुव्रत बताने की कृपा कीजिये, जो इस धरातल पर ऐश्वर्य वृद्धि के लिए प्रख्यात एवं भय विनाशक हो । १

श्रीकृष्ण बोले—लोकहितार्थ तुम्हारे इस प्रश्न एवं भक्ति को देखकर मैं तुम्हें ऐसा व्रत बता रहा हूँ, जो महत्वपूर्ण, देव दुर्लभ एवं देव दानव और राक्षसों के लिए परम गुण है । आश्विन मास की शुक्ल

पुण्यमान्बद्धुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम् । दशन्यां लघुभुग्विद्वानः रभेन्निष्ठमेन तु ॥३
 उदद्भुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम् । एकादश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य केशवम् ॥४
 विधिवत्त्वां समस्यर्च्य भोक्ष्यमि अपरेऽहनि । एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्राप्तरूप्त्याय मानवः ॥५
 स्नानं सर्वोषधैः कुर्यात्पञ्चगव्यजलेन तु । शुक्लमाल्याम्बरस्तद्वृजयेच्छीशमुत्पलैः ॥६
 विशोकाय नमः पादौ जड्डे च वरदाय वै । श्रीशाय जानुनी तद्वृलु च जलशायिने ॥७
 कन्दर्पाद नमो गुट्टे वाधवाय नमः कटिम् । दामोदरायेत्युदरं पार्श्वं च विपुलाय वै ॥८
 नाभिं च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै । श्रीधराय विभोवक्षः करौ मधुभिदे नमः ॥९
 चक्रिणे नाम बाहुं च दक्षिणं गदिने नमः । नैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै ॥१०
 नासामशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी ! ललाटं वामतायेति किरीटं दिश्वरूपिणे ॥११
 नमः सर्वात्मने तद्वच्छर इत्यभिपूजयेत् । एवं सम्पूज्य गोविन्दं फलमाल्यानुलेपनैः ॥१२
 ततस्तस्याग्रतो भव्यं स्थणितं कारयेन्मृदा । चतुरब्दं समन्ताच्चारात्लिमात्रमुदारभद्रम् ॥१३
 नदीवालुक्याः पूर्णं लक्ष्म्याकृतिं कृती न्यसेत् । स्थणिते सूर्यपारोप्य लक्ष्मीमित्यर्चयेद्बुधः ॥१४
 नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियैः नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमो^१ दृष्ट्यै नमोनमः ॥१५
 विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे । विशोका वास्तु सन्तत्यै विशोका सर्वसिद्धये ॥१६

दशमी के दिन लघु आहार करके उस पुण्य विशोक द्वादशी व्रत विधान को नियम पूर्वक उत्तर अथवा पूर्वाभिमुख दंत धावन (दातून) करने से ही प्रारम्भ करना चाहिए। एकादशी के दिन उपवास रहते हुए भगवान् केशव की साविधि अर्चना सुसम्पन्न कर मैं दूसरे दिन भोजन करूँगा' इस भाँति नियम करके शयन करने के अनन्तर प्रातः काल उस पुरुष को समस्त औषध मिथ्रित पञ्चगव्य के जल से स्नान और शुक्ल दर्पण की माला एवं वस्त्र धारण करके कमल पुष्पों द्वारा श्री पति विष्णु भगवान् की अर्चना करनी चाहिए—‘विशोकाय नमः से उनके चरण युगल, वरदाय नमः से जंधा, श्रीशाय नमः से घुटना, जलशायिने नमः से कटि, दामोदराय नमः से उदर, विपुलाय नमः से पार्श्वं भाग, पद्मनाभाय नमः से नाभि, मन्मथाय नमः से हृदय, श्रीधराय नमः से वक्ष, और मधु भिदेनमः से कर, चक्रिणे नमः से वाम बाहु, गदिने नमः से दक्षिण बाहु, वैकुण्ठाय नमः से कण्ठ, यज्ञ मुखाय नमः से मुख, अणोकनिधये नमः से नासा, वासुदेवाय नमः से दोनों नेत्र, वामनाय नमः से भाल, विश्वरूपाय नमः से किरीट, और सर्वात्मने नमः से गोविन्द के शिर की पूजा फल, माला, एवं विलेपन द्वारा सुसम्पन्न करके उनके सम्मुख मृत्तिका थी मुन्दर देवी की रचना करे, जो चौकोर, अरति मात्र विस्तृत उत्तर की ओर से ढालू और नदी की वालुकाओं से परिपूर्ण हो। उस पर लक्ष्मी की प्रतिमा स्थापित कर सूर्य के आवाहन पूर्वक उनकी पूजा तथा क्षमा प्रार्थना करे। २-१४। देवी को नमस्कार है, एवं शान्ति, लक्ष्मी श्री, पुष्टि, तुष्टि और दृष्टि रूप को नमस्कार है। विशोक दुखों का नाश पूर्वक मुझे वर प्रदान करे और संतति प्रवाह को अविच्छिन्न रखती हुई विशोका मेरी सम्पूर्ण सिद्धि करती रहे। १५-१६। अनन्तर शुक्लाम्बर धारी वह पुरुष वेष्टन भूषित सूप की

१. हृष्ट्यै कृष्ट्यै नमोनमः ।

ततः गुब्लाम्बरधरो शूर्पं संवेष्ट्य पूजयेत् । भक्षैर्नानिविधैस्तद्विर्गकमलेन च ॥१७
 रजनीयु च सर्वासु पिबेद्भौदकं भ्रती । ततस्तु नृत्यगीतादि कारयेत्सर्वात्रकम् ॥१८
 यामत्रये व्यतीते तु सुप्त्वा स्वस्थोपशानसः । अभिगम्य च विप्राणां मिथुनानि सदार्चयेत् ॥१९
 शक्तिस्त्रीणि चैकं वा वस्त्रमाल्यातुलेपने । शयनास्थानि पूज्यानि नमोऽस्तु जलशायिने ॥२०
 ततस्तु गीतवाद्यादै रात्रौ जागरणे कृते । प्रभाते विमले स्नानं हृत्वा दाम्पत्यमर्दयेत् ॥२१
 भोजनं च यथशक्त्या वित्तशाठयविवर्जितः । भुक्त्वा शुद्धा पुराणानि तद्दिनं त्वतिवाहयेत् ॥२२
 अनेन विधिना सर्वं मासिनासि समाचरेत् । व्रतान्ते शयनं दद्याद्गुडधेनुसमन्वितम् ॥
 सोपधानकविश्रामसास्तरावरणं शुभम् ॥२३
 यथा न लक्ष्मीदेविंश त्वां परित्यज्य गच्छति । तथा कुरु यथादोग्यमशोकं चास्तु मे सदा ॥२४
 यथा देवेन रहिता न लक्ष्मीजयिते क्वचित् । तथा विशोकता मेऽस्तु भक्तिरभ्या च केशवे ॥२५
 मन्त्रेणानेन ध्यात्वा तु गुडधेनुसमन्वितम् । शूर्पं च लक्ष्यां सहितं दातव्यं भूतिमिच्छताः ॥२६
 उत्तमातं करवीरं च ब्राणमस्तान कुण्डलम् । केसरं सिदुवारं च मलिकागन्धपाटलम् ॥
 कदम्बैः कुंकुमैर्जातिया तथान्यैरपि पूजयेत् ॥२७

युधिष्ठिर उवाच

गुडधेनुविधानं भे त्वमाचक्ष्व जगत्पते । किरूपा केन मन्त्रेण दातव्या तदिहोच्यताम् ॥२८

पूजा अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ तथा सुवर्ण कमल द्वारा सुसम्पन्न करके रात्रि में कुण्डोदक के प्राशन और नृत्य, गीत द्वारा जागरण करता रहे । तीन प्रहर व्यतीत हो जाने पर रात्रि के चौथे प्रहर में शयन से उठकर तथा स्वस्थचित्त होकर (नित्य नैमित्तिक के पश्चात्) ब्राह्मण दम्पति की सदैव अर्चना करनी चाहिए । यथा शक्ति वस्त्र, माला एवं लघुलेपन द्वारा तीन अथवा एक ब्राह्मण दम्पति और उनके शयन स्थान की पूजा 'नमोऽस्तु जलशायिन' मंत्र द्वारा ही करना बताया गया है । इस भाँति नृत्य, गीत और वाद्यों द्वारा रात्रि जागरण करने के पश्चात् विगल प्रातः काल के समय स्नान, दम्पति पूजन, यथाशक्ति एवं वित्त शाठ्य (कृपणता) दोष ध्यान गें रखते हुए अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ से ब्राह्मणों को तृप्त कर स्वयं भी भोजन करके पुराण श्रवण द्वारा दिन व्यतीत करे । इसी विधान द्वारा प्रत्येक मास में व्रत पूजन करते हुए उसके अन्त में गुड, धेनु युक्त उस भाँति की शय्या जो उत्तम आस्तरावरण (चढ़ार) एवं तोशक तकिये से सुसज्जित हो, अर्पितकरके क्षमा प्रार्थना करे कि—देवेश ! जिस प्रकार तुम्हें छोड़कर लक्ष्मी कभी कहीं नहीं जाती है, उसी भाँति मुझे सदैव के लिए शोक रहित करें । जिस प्रकार देव रहित होकर लक्ष्मी कहीं नहीं जाती है, उसी प्रकार शोक रहित करते हुए मुझे केशव की उत्तम भक्ति प्राप्त हो । इस मंत्र से ध्यान करते हुए अपने ऐश्वर्यर्थ गुड धेनु समेत एवं लक्ष्मी भूषित सूप का दान तथा उत्पात, कनेर, वाण, अम्लान कुण्डल, केसर, सिदुवार, मालती, गंध पाटल, कदम्ब, कुंकुम और जाती पुष्पों द्वारा पूजन सदैव करना चाहिए । १७-२७

युधिष्ठिर ने कहा—जगत्पते ! गुड धेनु का विधान बताने की कृपा करें । उसका स्वरूप क्या है और किस मंत्र द्वारा उसका दान किया जाता है ॥२८

श्रीकृष्ण उवाच

गुडधेनुविधानं च यद्रूपमिह यत्कलम् ! तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥२९
 कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्रागेवं विन्यसेद्भुवि । गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः ॥३०
 लब्धेन काञ्चनं तद्वत्समं च परिकल्पयेत् । खाइमुखी कल्पयेद्देनुमुदकपादां सदत्तिकाम् ॥३१
 उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सव्वा भार चतुष्पद्याः वत्सं भारेण कुर्वीत द्वाःयां वै मध्यमा स्मृता ॥३२
 अर्द्धभारेण वत्सः स्यात्कर्णिष्ठा भारकेण तु ; चतुर्थशेन वत्सः स्याद्गृहवित्तानुसारितः ॥३३
 धेनुदत्सौ कृतावेतौ सितसूक्ष्मास्वरावृतौ । शुक्तिकर्णार्विक्षुपादौ शुक्तिमुक्ताफलेक्षणौ ॥३४
 सितसूत्रशिरालौ तु सितकम्बलकम्बलौ । ताप्रगल्लकपृष्ठौ तौ सितचानररोमकौ ॥३५
 विद्वस्मन्त्रयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ । क्षौमपृष्ठौ कांस्यदोहाविन्दनीलकतारकौ ॥३६
 सुवर्णशृङ्गाभरणौ राजतखुरसञ्च्युतौ । नानाफलसमायुक्तौ ध्राणगन्धकरण्डकौ ॥३७

इत्येवं रचयित्वा तु धूपदीपैरथरार्चयेत् ॥३७
 या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मन्त्र जापं व्यपोहतु ॥३८
 विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहायां च विभावसौ । चन्द्रार्कशक्तिर्क्षक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये ॥३९
 चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च । या लक्ष्मीर्लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे ॥४०
 स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां पुनः । सर्वपापहरे धेनोत्समाद्भूतिं प्रयच्छ मे ॥४१

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें गुडधेनु का विधान, उसका स्वरूप और फल बता रहा हूँ, जो समस्त पापों का शमन करता है । गोमय (गोबर) से लिपी हुई भूमि में चार हाथ का विस्तृत कृष्ण मृगचर्म विछाकर, जिसके चारों ओर कुश बिछाये गये हों, उसी पर पूर्वी की ओर मुख और उत्तर की ओर चरण किये उस रावत्सा गौ की कल्पना करनो चाहिए चार भाग गुड की धेनु सदैव परमोत्तम मानी गयी है । उस समय उसके बछड़े का निर्माण एक भार गुड से होना चाहिए । दो भाग गुड की बनी हुई धेनु, जिसमें आधे भार गुड का बछड़ा बनाया जाता है, मध्यमा और अपने गृह वित्तानुसार एक भार गुड की कल्पित धेनु, जो चौथाई भार गुड निर्मित बछड़े से संयुक्त रहती है, कनिष्ठा बतायी गयी है । इस प्रकार सवत्सा धेनु का निर्माण कर इवेत वर्ण के सूक्ष्म वस्त्रों से आवृत करना चाहिए, जिनके शुवित्त (सीप) से कान, ऊँक से चरण, मुक्ताफल, (मोती) से नेत्र, इवेत सूत्र से नाडियाँ, इवेत कम्बल से गले के कम्बल (लोमसमूच्चर्म), ताप्रगल्लक से पृष्ठ पीठ, श्वेत चामर से रोम, मूँगे की शौहै, नवनीत के स्तन, क्षौम (रेशम) से पूँछ, कांसे की दोहनी, इन्द्रनील मणि से आँखों की तारिका बनी हो और सुवर्ण से सींग, रजत (चाँदी) से खुर सुसज्जित कर अनके फलों द्वारा उसके नासा पुट एवं छिद्रकी रचना की गयी हो । इस प्रकार उसकी रचना करके धूप दीप आदि से उनकी अर्चा करने के अनन्तर भसा प्रार्थना करे । २९-३७। समस्त प्राणियों में तथा देवों में स्वयवस्थित रहने वाली लक्ष्मी देवी अपने धेनु रूप द्वारा मेरे पापों को नष्ट करे । विष्णु के वक्षस्थल पर विभूषित, अग्नि में स्वाहा रूप से वर्तमान रहने वाली चन्द्र सूर्य एवं इन्द्र की शक्ति रूप लक्ष्मी अपने धेनुरूप द्वारा मेरी भी समृद्धि करे । उसी प्रकार चतुर्मुख ब्रह्मा, कुबेर, एवं लोक पालों की लक्ष्मी अपने धेनुरूप से मुझ पर प्रदान करे । तुम पितरों की स्वधा और यज्ञभोक्ता की स्वाहा हो, अतः पाप हारिणी इस अपने धेनुरूप से मुझे ऐश्वर्य प्रदान करने की कृपा करो । ३८-४१। इस प्रकार उस धेनु का निर्माण

एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय गिवेदयेत् । विधानमेतद्देनूनां सर्वासामिह पठयते ॥४२
यास्तु पापविनाशिन्यः श्रूयन्ते दश धेनवः । तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप ॥४३
प्रथमा गुडधेनुः स्याद् घृतधेनुरथापरा । तिलधेनुस्तृतीया स्याच्चतुर्थी मधुधेनुका ॥४४
जलधेनुः पञ्चमी तु षष्ठी तु क्षीरसम्भवा । सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुरथाष्टमी ॥
रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात्स्वरूपतः ॥४५

कुंभां स्पुर्दशधेनूनामितरासां तु राशयः । सुदर्शधेनुग्राम्यत्र केविदिच्छन्ति मानवाः ॥४६
नवनीतेन रत्नैश्च तथाप्यन्ये महर्षयः । एतदेव विधानं स्यात् एवोपस्कराः स्मृताः ॥४७
मन्त्राद्वहनसंयुक्तां शदा पर्वणिर्पर्वणि । यथाश्रद्धं प्रहतज्ञा भुक्तिमुक्तिकलप्रदा ॥४८
गुडधेनुप्रसङ्गेन सर्वात्तिव मयोदिताः । अशेषयज्ञफलदाः सर्वपापहरः शुभाः ॥४९
व्रतानामुक्तम् यत्त्याद्विरोक्तादशीव्रतम् । तदङ्गत्वेन चैवैषा गुडधेनुः प्रशस्यते ॥५०
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथ वा पुनः । गुडधेन्वादयो देया उपरागादिपर्वत्सु ॥५१
विशोकद्वादशी चैषा सर्वपापहरा शुभा । यामुपोष्य नरो याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५२
इह लोके तु सौभाग्यस्त्युरारोग्यमेव च । वैष्णवं पदमाप्नोति मरणे सद्गतिर्भवेत् ॥५३
भवार्बुदसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित् । न शोकदुःखदौर्गत्यं तस्य सञ्जायते नृप ॥५४
नारी वा कुरते यातु विशोकद्वादशीमिमाम् । नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमाप्नुयात् ॥५५

एवं पूजन करके विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करे । यही विधान समस्त धेनुओं के दान में बताया गया है । नराधिप ! मैं उन दशधेनुओं के स्वरूप एवं नाम बता रहा हू, जिन्हें पापविनाशिनी बताया गया है । सर्वप्रथम गुडधेनु, दूसरी घृतधेनु, तीसरी तिलधेनु, चौथी मधुधेनु, पाँचवीं जलधेनु, छठीं क्षीरधेनु, सातवीं शर्कराधेनु, आठवीं दधिधेनु, नवीं रसधेनु और दशवीं स्वरूपतः (अर्थात् साक्षात्) धेनु कहीं गयी है । कुछ विद्वानों का कहना है कि दश धेनुओं के निर्माण में दुम्भ और अन्य धेनुओं के लिए राशि की कल्पना की जाती है और सबसे पृथक् एक सुवर्ण धेनु भी होती है । अन्य महर्षियों की सम्मति में नवनीत और रत्नों द्वारा धेनुओं का निर्माण होता है । किन्तु सब के विधान और साधन यही एक मात्र है । सदैव प्रत्येक पर्वों के अवसर पर श्रद्धानुकूल इन भुक्ति एवं मुक्ति प्रदायिनी धेनुओं के दान अवश्य करना चाहिए । इस प्रकार मैंने इस गुड धेनु के प्रसंग में उन सभी धेनुओं का वर्णन तुम्हें सुना दिया, जो निखिल यज्ञों के फल प्रदान करने वाली समस्त पापहारिणी और शुभ मूर्ति है । यह विशोक द्वादशी व्रत समस्त व्रतों से प्रमोत्तम व्रत है और उसी भाँति तदंगत्वेन इस गुड धेनु की अत्यन्त प्रशंसा की गयी है । ४२-५०। दोनों अयन, विषुव, पुण्य काल, व्यतीपात योग एवं ग्रहण आदि पर्व तिथियों के अवसर पर इन गुड धेनु आदि के दान अवश्य करना चाहिए । यह विशोक द्वादशी समस्त पापों के शमन करने वाली एवं शुभ है, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य विष्णु के परम पद की प्राप्ति करता है । इस धरातल पर सौभाग्य, आयु और आरोग्य की प्राप्ति पूर्वक सुखानुभव के अनन्तर देहावसान होने पर सद्गति रूप में विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । नृप ! इस अनुष्ठान के सुसम्पन्न करने पर अट्ठारह, अर्बुद सहस्र वर्ष तक उसे धर्म वेत्ता को शोक, दुःख, और दुर्गति नहीं होते हैं । इस विशोक द्वादशी व्रत के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाली उस स्त्री को भी, जो नृत्य गीत द्वारा रात्रि जागरण करती है, उपरोक्त सभी फल प्राप्त होते हैं । ५१-५५। इस

इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यद् मधुपुरनरकारेरचनं यश्च पश्येत् ।
सतिमपि च जनानां यो ददातीन्द्रलोके वसति स विबुधाद्यैः पूज्यमानः सदैव ॥५६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विशोकद्वादशीव्रतं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

विभूतिद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु भूपाल वक्ष्यामि विष्णुन्रतमनुत्तमम् । विभूतिद्वादशोः नाम सर्वमित्रनमस्कृतम् ॥१
कार्तिके वाथ वैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने । आषाढे दा दशम्यां च शुक्लायां लघुभुद्ग्रन्तः ॥२
कृत्वा सायन्तरीं सन्ध्यां गृहीयान्नियमं ब्रुधः । एकादश्यां निराहारः समस्यचर्यं जनार्दनम् ॥३
द्वादश्यां द्विजसंयुक्तः करिष्ये भोजनं विभो । तददिश्नेन मे यातु सङ्कल्पं मधुसूदनः ॥४
ततः प्रभात उत्थाय कृतम्बानजपः शुचिः । पूजयेत्पुण्डरीकाक्षं शुक्लमात्यानुलेपतैः ॥५
भूतिदाय नमः यातौ विशोकाय च जानुनी । नमः शिवायेत्पूरु च विश्वमूर्ते नमः कटिम् ॥६

प्रकार इसके पारायण एवं भली भाँति श्रवण करने और मधुहन्ता भगवान् के पूजन दर्शन तथा इसके लिए मनुष्यों को सन्मति प्रदान करने वाले पुरुष देव वन्दनीय होकर सदैव इन्द्रलोक में सुखानुभव करते हैं ॥५६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसम्बाद में विशोक द्वादशी व्रत वर्णन नामक चौरसीवाँ अध्याय समाप्त ॥८४।

अध्याय ८५

विभूतिद्वादशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भूपाल ! मैं तुम्हें विभूति द्वादशी नामक व्रत का वर्णन सुना रहा हूँ, जो विष्णु के व्रतों में परमोत्तम एवं समस्त देवों से पूजित है । सावधान होकर सुनो ! कार्तिक, वैशाख, मार्गशीर्ष (अग्रहन), फाल्गुन अथवा आषाढ़ मास की शुक्ल दशमी के दिन लघु आहार करके सायंकालीन संध्या के अनन्तर उसका नियम पालन आरम्भ करना चाहिए । विभो ! एकादशी के दिन निराहार रहकर भगवान् जनार्दन की अर्चना एवं द्वादशी के दिन ब्राह्मणों के साथ भोजन करेंगा । मधुसूदन ! वह निर्विघ्न समाप्त होकर मुझे संकल्प पूर्वक शयन करने पर पुनः प्रातःकाल स्नान जप आदि से पूर्ण पवित्रता प्राप्त करते हुए श्वेतमाला और अनुलेपन आदि वस्तुओं से भगवान् पुण्डरीकाक्ष की अर्चना करनी चाहिए । १-५। ऐश्वर्यदायक को नमस्कार है, कहकर चरण युगल, शोक हीन रहने वाले को नमस्कार है, कहकर शिव को नमस्कार है, कहकर उर्ल विश्वमूर्ति को नमस्कार है कहकर कटि, कन्दर्प

कन्दर्पय नमो मेद्रमादित्यः य नमः करौ । दामोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनौ ॥७
 माधवायेति हृदयं कण्ठं वैकुण्ठिने नमः । श्रीधराय मुखं केशान् केशवः येति पाण्डव ॥८
 पृष्ठं शार्ङ्गधरयेति अवणौ वरदाय वै । स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदापरशुपाण्ये ॥९
 सर्वात्मने शिरे राजन् नम इत्यभिषूजयेत् । दशावतारलग्नाणि प्रतिनासं कल्पान्लृप ॥१०
 दत्तात्रेयं यथा व्यासमुत्पलेन समन्वितम् । दद्यादनेन विधिना पाखण्डानपि वर्जयेत् ॥११
 समाप्यवै यथाशक्त्या द्वादशं द्वादशीर्नरः । तत्त्वत्सरान्ते लक्षणपर्वतेन सह प्रभो ॥
 शश्यां दद्यान्मुनिश्चेष्ठ गुरुवे रससंयुताम् ॥१२
 ग्रामं च शक्तिमान्दद्यात्क्षेत्रं वा भवनान्वितम् । गुरुं सम्पूज्य विधिवद्वस्त्रालङ्घारभूषणैः ॥१३
 अन्यानपि यथाशक्त्या भौजयित्वा द्विजोत्तमान् । तर्पयेद्वस्त्रगोदानैरन्यत्र धनसञ्चयात् ॥१४
 अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोकंस्तोकं समाचरेत् । यश्चातिनिः स्वः पुरुषो भक्तिमान् माधवं प्रति ॥
 पुष्पार्चनविधानेन स कुर्याद्वित्सरत्रयम् ॥१५
 अनेन विधिना दस्तु विभूतिद्वादशीक्षतम् । कुर्यात्स पापनिर्मुक्तः पितृणां तारयेच्छतम् ॥१६
 जन्मनां शतसाहस्रं न शोकफलभागभवेत् । न च व्याधिः वित्स्य न दारिद्र्यं न बन्धनम् ॥१७
 वैष्णवो वाथ शैवो वा भवेज्जन्मनिजन्मनि । यावद्युगसहक्षाणां शतमष्टोतरं भवेत् ॥

को नमस्कार है, कहकर मेद्र (लिङ्ग), आदित्य को नमस्कार है, कहकर दोनों हाथ, दामोदर को नमस्कार है, कहकर उदर, वासुदेव को नमस्कार है, कहकर स्तन, माधव को नमस्कार है, कहकर हृदय, वैकुण्ठपति को नमस्कार है, कहकर कण्ठ, श्रीधर को नमस्कार है, कहकर मुख, केशव को नमस्कार है, कहकर केश, शार्ङ्गधर को नमस्कार है, कहकर पृष्ठ, वरद को नमस्कार है, कहकर दोनों श्वरण, स्वनाम के उच्चारण कर शंख, चक्र, तलवार और परशुपाणि को नमस्कार है, कहकर गदा, एवं सर्वात्मा को नमस्कार है, कहकर उनके शिर की अर्चना करती चाहिए । राजन् ! इस प्रकार भगवान् के दश अवतारों की प्रतिमाके क्रमशः प्रतिमास पूजन करके कमल पुष्प भूषित दत्तात्रेय और व्यास की प्रतिमा इस विधान द्वारा ब्राह्मणों को अपित करे और पाखण्डों के सर्वथा परित्याग भी । इस भाँति बारह द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने के अनन्तर व्रत की समाप्ति में लवण पर्वत समेत सुसज्जित एवं संयुत शश्या विष्णु के निमित्त गुरु को अपित करते हुए उस शक्तिमान् पुरुष को चाहिए कि ग्राम अथवा सुसज्जित भवन समेत क्षेत्र भी अपित करे । वस्त्र और आभूषणों द्वारा सविधान गुरु की अर्चना करने के उपरांत अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भी यथाशक्ति भोजन से संतुष्ट कर वस्त्र, गोदान और धन दान द्वारा संतुष्ट करना चाहिए । अल्प वित्त वाले यथाशक्ति योड़े थोड़े धन के व्यय द्वारा उसे सुसम्पन्न करते रहना चाहिए । अत्यन्त निर्धन पुरुषोत्तम भाधव भगवान् का अन्य भक्त हो, पुष्पार्चन द्वारा तीन वर्ष तक उस व्रत नियम का पालन करना बताया गया है । ६-१५। इस विधान द्वारा इस विभूति द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष समस्त पातकों से मुक्त होकर पूर्वजों की सौ पीढ़ियों के उद्धार करता है । सैकड़ों एवं सहस्रों जन्म तक वह शोक ग्रस्त नहीं होता है । उसे न कोई व्याधि होती है न दरिद्र एवं न किसी बंधन में पड़ता है । प्रत्येक जन्म में वह वैष्णव अथवा शैवमत ग्रहण कर एक सौ आठ सहस्र युग के

तावत्स्वर्गं वसेद्राजन्भूपतिश्च पुनर्भवेत्

॥१८

पुरा रथन्तरे कल्पे राजासीत्पृथ्यवाहनः । नाम्ना लोकेषु विख्यातस्तेजसा सूर्यसन्निभः ॥१९
तपसा तस्य तुष्टेन चतुर्वक्त्रेण भारत । कमलं काञ्चनं दत्तं यथाकामगतिः सदा ॥२०
सम्प्रस्त्रभृत्यसहितः सःन्तः पुरपरिस्थितः । द्वीपानि सुरलोकं च यथेष्टं विचरत्यसौ ॥२१
कल्पादौ सप्तमे द्वीपे तेन पुष्करवासिनः । लोके सम्पूजिता यस्मात्पुष्करद्वीप उच्यते ॥२२
तदैव ब्रह्मणा दत्तं यानमस्य यतो नृप । पुष्पवाहनमित्याहुस्तस्मातं देवदानवाः ॥२३

नागस्य तस्यास्य जगत्त्रयेऽपि ब्रह्मास्म्बुजस्थस्य तपोऽनुभावात् ।

पत्नी च तस्याप्रतिमा नरेन्द्र नारीसहस्ररभितोऽभिनन्द्या ॥२४

नाम्नां च लावण्यवती बभूव या पार्वतीवेष्टतमा भवस्य ।

तस्यात्मजानामयुर्तं दभूव धर्मात्मनामप्यधनुर्द्वराणाम् ॥२५

तदात्मनः सर्वमवेक्ष्य रजा मुहुर्मुहुविस्मयमाससाद् ।

सोभ्यागतं पूज्य मुनिप्रवीरं पचेतसं वाचमिमां बभाषे ॥२६

कस्माद्विभूतिरमला मम मर्त्यपूज्या जायां च सर्वविजितामरसुन्दरी या ।

भार्या त्वनल्पतपसा वसुतोषितेन दत्तं समास्म्बुजगृहं परमप्रसादात् ॥२७

यस्मिन्प्रविष्टमपि कोटिशतं नृपाणां सामात्यकुञ्जरनराधघनावृतानाम् ।

नालक्ष्य सम्बाधतया हि बाधस्तारागणरपि सुरासुरलोकपालैः ॥२८

काल पर्यन्त स्वर्ग में निवास कर अन्त में पुनः भूपति होता है । राजन् ! पहले समय में रथन्तर कल्प के समय एक पुष्पवाहन नामक राजा राज करता था, जो इस पृथ्वी तल पर प्रख्यात एवं सूर्य के समान तेजस्वी था । भारत ! उसके तप से अत्यन्त तुष्ट होकर चतुर्मुख ब्रह्मा ने उसे एक सुवर्ण कमल प्रदान किया, जो सदैव मनोवाञ्छित सफल करता था । अपने समस्त सेवक और अन्तःपुर समेत वह सदैव द्वीपों एवं देवलोक में यथेच्छ विचरण करता था । कल्पादि में उसे सातवाँ पुष्कर द्वीप (ब्रह्मा द्वारा) दिया हुआ । वहाँ के निवासी लोक पूजित हैं इसी लिए उसका पुष्कर (श्रेष्ठ) द्वीप नामकरण हुआ था । नृप ब्रह्मा ने वह द्वीप उसे उसी समय प्रदान किया था । वह वहाँ के लोगों का वन्दनीय हुआ इसीलिए देव दानवों ने पुष्पवाहन' नाम से उसकी प्रख्याति की । १६-२३। नरेन्द्र ! तप के प्रभाव से ब्रह्मा द्वारा सुवर्ण कमल प्राप्त उस सर्वश्रेष्ठ राजा की पत्नी भी उस समय अद्वितीय थी, जिसका सदैव चारों ओर सहस्रों नारियों द्वारा अभिनन्दन होता था । भगवान् शंकर की प्रियतमा पार्वती की भाँति वह लावण्यवती रानी भी अपने पति की अत्यन्त प्रेयसी स्त्री हुई । उस स्त्री से उस राजा के दशसहस्र धनुर्धर एवं परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ । राजा ने अपने इस वैभव एवं इस प्रकार की स्त्री पुत्रों को देखकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था । एक बार मुनि प्रवर प्रचेता के आगमन होने पर राजा ने उनकी अम्यागत सेवा करने के अनन्तर उनसे इस प्रकार कहा, देव मेरी यह अमल विश्रुति तथा मानव वन्दनीया एवं देवाङ्गनाओं से परम सुन्दरी किस पुण्य द्वारा मुझे प्राप्त हुई है । क्योंकि ऐसी स्त्री की प्राप्ति अल्प पुण्यों द्वारा नहीं हो सकती है । अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने मुझे कमल गृह प्रदान किया है । २४-२७। जिसमें सौ कोटि राजाओं अथवा उनके मंत्री समेत असंख्य घोड़े प्रविष्ट होने पर उसी प्रकार नहीं दिखायी देते हैं । जिस भाँति असुर लोकपाल रूपी

तस्मात्किमन्यजननीजठरोद्भवेन धर्मादिकं कृतमशेषजनातिगं स्यात् ।

सम्युद्भयाथ तनयैरनया महर्षे माहार्यया तदखिलं कथय प्रचेतः ॥२९

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ध्यानेनावेक्ष्य चाखिलम् । प्रचेतास्तमुवाचाथ शृणु भूप पुरातनम् ॥३०
लुब्धकस्त्वं पुरा राजन्सर्वसत्त्वभयंकरः । आतीदसाधुचरितः सुहृन्मित्रविवर्जितः ॥३१
यत्प्रथ्यो हृष्ट्वकेशः कृष्णाङ्गो रक्तलोचनः । धनुष्णार्णिवनगतः कृतान्तकसमो भवान् ॥३२

अभूदनादृष्टिरतीद रौद्रा कदाचिदाहारनिमित्तरोषः ।

पद्मान्ध्यथादाय ततो बृहनि गतं पुरं वैदिशनामधेयम् ॥३३

उन्मूल्य लोभाच्च पुरं समस्तं भ्रान्तं त्वयाशेषमहतदासीत् ।

क्रेता न कश्चित्कमलेषु जातस्तोके भृशं कृत्परिपीडितश्च ॥३४

उपविष्टस्त्वमेकस्मिन्सभार्ये भवनाङ्गणे । अथ मङ्गलशब्दस्तु त्वया रात्रौं तथा श्रुतः ॥३५
समाप्य माघमासस्य द्वादश्यां लवणाचलम् । निवेदयंती गुरवे शश्यां चोपस्करान्विताम् ॥३६
अलंकृत्य हृषीकेषं सौर्दण्डं परमं पदम् । साथ दृष्टा ततस्ताम्यामिदं चित्तेवधारितम् ॥३७
किमेभिः कमलैः कार्यं वरं विष्णुरलंकृतः । इति भक्तिस्तदा जाता दाम्पत्यस्य नरेश्वर ॥३८
तत्प्रसङ्गात्सम्भ्यर्च्य केशवं लवणाचलम् । शश्या च पुष्पप्रकरैः पूजिताभूच्च सर्वदा ॥३९

तारागणों के बीच आकाश में नौका नहीं दिखायी देती हैं । महर्षे ! इसलिए मैंने कहाँ किस जननी के जठर में जन्म ग्रहण कर कौन धर्म का आचरण किया, जिससे इस प्रकार की श्रेष्ठता, उत्तम युक्तों एवं ऐसी (अनुपम) स्त्री की प्राप्ति मुझे हुई है । प्रचेतस् ! आप मेरे इन सभी प्रश्नों के यथोचित उत्तर प्रदान करने की कृपा करें । उस राजा की उन सभी बातों को मुनकर महर्षि प्रचेता ने ध्यान द्वाराउसके सम्पूर्ण रहस्य को जानकर राजा से कहना आरम्भ किया राजन् ! मैं पुरातन बातें कह रहा हूँ, सुनो ! पहले जन्म में तुम अत्यन्त भयंकर लुब्धक (बहेलिया) थे । दुश्चरित्र होने के नाते तुम्हारे कोई मित्र आदि नहीं था । मध्यम कद, छोटे-छोटे केश, कालावर्ण, रक्तलेत्र, और हाथ में धनुष लिए तुम सदैव उस वन के मध्य यम की भाँति दिखायी देते थे । एकबार अनावृष्टि होने के कारण आहार न मिलने पर तुम्हें अत्यन्त रोष उत्पन्न हुआ । शिकार के बदले तुमने अनेक कमलों को तोड़कर साथ लिए अपने विदिशा नगर का प्रस्थान किया । लोभवश समस्त कमलों को तोड़कर वहाँ लाने पर तुम्हारे इस कर्म पर नगर के सभी लोग भ्रान्त से दिखायी पड़ने लगे—अर्थात् । कुछ भी देकर उन कमलों का कोई क्रेता (खरीददार) नहीं हुआ । अत्यन्त क्षुधा से पीड़ित होकर तुम पत्नी समेत किसी घर के अंगने में बैठे-बैठे रात्रि व्यतीतकर रहे थे कि उसी समय मांगलिक शब्दों की ध्वनि कहीं से सुनायी पड़ी । २८-३५। पश्चात् शब्दानुकरण करने पर तुम्हें वह स्त्री दिखायी पड़ी जो इस ब्रतानुष्ठान की समाप्ति में माघ मास की द्वादशी के दिन भगवान् हृषीकेश की सुवर्ण प्रति को अलंकार वस्त्रों से विभूषित एवं पूजित कर लवण पर्वत समेत समस्त साधन सम्पन्न एवं सुसज्जित शश्या गुह को समर्पित कर रही थी । उसे देखकर तुम दोनों के चित्त में ऐसी भावना उत्पन्न हुई कि इन कमलों से भगवान् विष्णु अलंकृत क्यों न किया जाय । नरेश्वर ! दम्पति में इस प्रकार की भक्ति उत्पन्न होने पर उसी प्रसङ्ग में लवण पर्वत समेत केशव और उस शश्या को उन पुष्पों द्वारा

अथानङ्गवती तुष्टा तयोर्हेनशतत्रयम् । प्रादादृगूहीतं ताम्यां च न तत्सर्वाचलस्वनात् ॥४०
 अनङ्गवती च पुनस्तयोरन्नं चतुर्दिव्यन् । आनाथ्योपहृतं कृत्वा भुज्यतामिति भूपते ॥४१
 ताम्यां तु तदपि त्यक्तं भोज्यावः श्वो वरानने । प्रसङ्गाच्छोपदासेन तवाद्यास्तु सुखावहः ॥४२
 जन्मप्रभृति पापिष्ठावादां देवि दृढदते । सत्त्रसंगाढुर्मध्ये धर्मस्लाभस्तु चावयोः ॥४३
 इति जागरणं ताम्यं प्रसङ्गात्तदनुष्ठितम् । प्रभाते च तया दत्ता शश्या सलवणाचला ॥४४
 ग्रामश्च गुरवे भल्ल्या विप्रेभ्यो द्वादशैव हि । वस्त्रालङ्घारयुक्ताङ्गां गावश्च कनकाञ्चिताः ॥४५
 भोजनं च सुहिमित्रदीनान्धकृपणः तमम् । तनु लुब्धकदाम्पत्यं पूजयित्वा विसर्जितम् ॥४६
 भवांस्तु लुब्धको जातः सपत्नीको नरेश्वरः । पुष्पाणां प्रकरे तस्मात्केशवस्य प्रपूजनम् ॥४७
 प्राप्तं सुदुर्लभं वीरं त्यापुष्करमन्दिरम् । तस्य सर्वस्य माहात्म्यादलं न तपसा नृप ॥४८
 यथा कामगतं दक्षं पश्योनिं दिरिञ्चिना । सन्तुष्टस्तस्य राजेन्द्र ब्रह्मरूपी जनार्दनः ॥४९
 शश्यानङ्गवती वेश्या कामदेशस्य साम्प्रतम् । पत्नी सपत्नी सञ्जाता रत्या प्रीतिरिति श्रुता ॥५०
 लोकेष्वानन्दजननी सकलतप्रपूजिता । तदप्युत्सृज्य राजेन्द्र निर्वाणं समवाप्स्यति ॥५१
 इत्युद्धवा स मुनिः सर्वं तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् । राजा यथोक्तं च पुनः स चक्रे पुष्पवाहनः ॥५२

सुसज्जित एवं पूजित किया । अनन्तर अनंगवती ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए उसके उपलक्ष में उन दोनों को तीन सौ प्रदान किया, किन्तु उन लोगों ने उसका कुछ ही अंश स्वीकार किया । अंगवती ने पुनः चार भाँति के भक्ष्य पुनः उन्हें लाकर दिया और कहा इसे भोजन कर लो । भूपते ! उस समय उन दम्पति ने उसका भी त्याग करते हुए कहा—वरानने ! मैं प्रातः समय इसका भोजन करूँगा प्रसङ्ग वश आप दोनों उस रात्रि उपवास किया, जिसका आज सुखावह परिणाम प्राप्त हुआ । आपने उस समय कहा—दृढवृत करने दाली देवि ! हम लोग जन्म ग्रहण के समय से ही पाप करना आरम्भ किया है, इसलिए महान पापी हैं, किन्तु जीवन में सत्संग वंश आज इतना धर्म लाभ भी हुआ । इस प्रकार कहते सुनते प्रसंग वश रात्रि जागरण भी हो गया । प्रातः काल होने पर अनंगवती नामक उस स्त्री ने लवण पर्वत समेत सुसज्जित शश्या, और गाय भक्ति पूर्वक अपने गुरु को अर्पित कर उन द्वादश ब्राह्मणों को वस्त्र, आभूषण एवं सुवर्ण भूषित गौओं के दान से सुसम्मानित कर सुहत, मित्र दीन, अन्धे और कृपणादि व्यक्तियों को भोजन से सन्तुष्ट किया । अनन्तर उस लुब्धक (शिकारी) दम्पति को भी सुसम्मानित कर विदा किया । वही सपत्नीक लुब्धक (बहेलिया) आप नरेश्वर रूप में उत्पन्न हुए हैं । वीर ! आप ने पुष्प समूहों से भगवान् केशव की सुखद अर्चना की है, जिससे अत्यन्त दुर्लभ इस पुर्जर मन्दिर (पुष्कर द्वीप) की प्राप्ति हो हुई है । नृप ! उसी सब का महत्व है, धन परिवार समेत यह तपो दुर्लभ सुवर्ण कमल ब्रह्मा द्वारा तुम्हें प्राप्त हुआ है । राजेन्द्र ! ब्रह्मरूपी जनार्दन देव इस व्रत के अनुष्ठान के ऊपर विशेष सन्तुष्ट होते हैं । इसीलिए वह अनंगवती वेश्या इस समय कामदेव (काम) की पत्नी रति की सपत्नी रूप से उत्पन्न हुयी है, जो लोगों में सतत आनन्द प्रदायिनी एवं देवों की वन्दनीय है । राजेन्द्र ! आप उसे (स्त्रीको) भी त्याग कर निर्वाण पद प्राप्त करेंगे । ३६-५१। इस प्रकार राजा से कहकर मुनि देव उसी समय अन्तर्हित हो गये । राजा पुष्पवाहन ने मुनि के कथनानुसार धर्माचरण

इमामाचरते अहमखण्डन्नतमाचरेत् । मथाकथित्वत्कालेन द्वादश द्वादशीर्मुते ॥
कर्तव्यः शक्तितो देया दिप्रेभ्यो दक्षिणा नृप ॥५३

इति कलुषविदारणं जनानामिति पठति भृणोति चातिभक्त्या ।

मतिमपि च ददाति देवलोके वसति स परःशतानि बत्सराणाम् ॥५४

इति श्रीभदिष्ये भगवुराण उत्तरपर्पणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंबाहे

दिभूतिद्वादशीव्रतवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥५५

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

मदनद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

श्रोतुमिच्छानि भगवन्मदनद्वादशीव्रतम् । सुतानेकोनपञ्चाशीव्रते लेभे दितिः पुरा ॥१

श्रीकृष्णउवाच

तद्विषिष्टादिभिः प्रोक्तमित्येका तिथिरुत्तमा । विस्तरेण तदेवेदं भत्सकाशान्निबोधत ॥२

चैत्र मासे सिते पक्षे द्वादश्यां नियतव्रतः । स्थापयेदव्रण कुम्भं सिततण्डुलपुरितम् ॥३
नानाफलयुतं तद्विक्षुदण्डसमन्वितम् । सितवस्त्रपुगच्छ्रां सितचन्दनचर्चितम् ॥४

करते हुए इस द्वादशी व्रत का अखण्ड व्रत पालन किया और अन्य को भी उचित है कि इस द्वादशी के बारह व्रतों को नुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे । इस प्रकार इस कलुष विघ्वसंक द्वादशी का भक्तिपूर्वक पारायण श्रवण थथा सम्मति प्रदान करने वाला पुरुष सौ वर्ष तक देव लोक में उत्तम सुखानुभव करता है । ५२-५४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में
विभूति द्वादशी व्रत वर्णन नामक पचासीबाँ अध्याय समाप्त । ५५।

अध्याय ८६

मदनद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर—भगवन् ! मुझे मदन द्वादशी व्रत सुनने की इच्छा हो रही है, जिसके अनुष्ठान, द्वारा दिति को उन्नास पुत्रों की प्राप्ति हुई है । १

श्रीकृष्ण बोले—विशिष्ट आदि महर्षियों ने इसके विषय में बताया है कि ‘यही एक परमोक्तम तिथि है’ उसी को विस्तार रूप से मैं सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! चैत्र शुक्ल द्वादशी के दिन संयम पूर्वक व्रत नियम पालन करते हुए श्वेत तण्डुल पूर्ण सुन्दर कलश की स्थापना करे, जो अनेक भाँति के फल और ऊख दण्ड से संयुक्त तथा श्वेत वस्त्र से आच्छान्न, श्वेत चन्दन (मलयागिर) से चर्चित, एवं अनेक भाँति के

नानाभक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यं च शक्तिः । ताम्रपात्रं गुडोपेतं तस्योपरि निवेदयेत् ॥५
 तस्योपरि तथा कामं कदलीदलसंस्थितम् । कुर्याच्छक्करयोपेतमिति तस्य समीपतः ॥६
 गन्धं पूष्यं तथा दद्याद्गीतं वाचं च कारयेत् । तदलाभे कथां कुर्यात्कामकेशव्योर्नरः ॥७
 कामं नाम्ना हरेरच्च शापयेदग्नधवारिणा । शुक्लपूष्याक्षतिलैरच्येन्मधुसूदनम् ॥८
 कामाय पादौ सम्पूज्य जड्हे सौभाग्यदाय च । भन्मथाय तथा भेदं माधवाय कट्ट नमः ॥९
 शान्तोदरायेत्युदरमनङ्गयेत्युरो हरेः । मुखं पद्ममुखायेति बाहुं पञ्चशराय वै ॥१०
 नमः सर्वात्मने नौलिमर्चयेद्विति केशवम् । ततः प्रभाते कृष्णं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥११
 ब्राह्मणान् भोजयेद्वक्त्या स्वयं च लवणादृते । भक्त्यार्थं दक्षिणां दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥१२
 प्रीयतामत्र भगवान्कामरूपी जनार्दनः । हृदये सर्वभूतानां यथा वेदोऽभिधीयते ॥१३
 अनेन विधिना सर्वं भासिमासि समाचरेत् । फलमामलकं प्राश्य द्वादश्यां भूतले स्वपेत् ॥१४
 ततस्त्रयोदशे भासि धृतधेनुसमन्विताम् । शश्यां दद्याद्द्विजेन्द्राय तर्वोपस्त्करसंयुताम् ॥१५
 काञ्चनं कामदेवं च शुक्लां गां च पयस्त्विनीम् । वसोर्भिर्द्विजादापत्यं पूज्य शक्त्या विभूषणैः ॥१६
 होमः शुक्लतिलैः कार्यः कामनामानि कीर्तयेत् । गव्येन सर्पिषा तत्र पायसेन च धर्मवित् ॥१७

भक्ष्य भोज्य और यथाशक्ति हिरण्य से भूषित हो । ताम्रपात्र में गुड़ रख कर उसके ऊपर रखते हुए कदलीदल और शक्कर भी रखना चाहिए । अनन्तर उसके समीप भगवान् की प्रतिमा का गंध पुष्पादि द्वारा अर्चन तथा गीत वाद्य करना चाहिए । उसके प्रभाव में केशव की कथा चर्चा होनी चाहिए । २-७। भगवान् के नामों के उच्चारण पूर्वक भगवान् मधुसूदन एवं काम की अर्चना गंध मिश्रित जल, श्वेत पूष्य, अक्षत तथा तिल द्वारा सुसम्पन्न करते हुए—काम को नमस्कार है, इससे उनके चरण युगल सौभाग्य दायक को नमस्कार है, कहकर जाँघे, मन्मथ को नमस्कार है कहकर कटि, शान्तोदर को नमस्कार है, कहकर उदर, अनंग को नमस्कार है, कहकर उरु, पद्ममुख को नमस्कार है, कहकर मुख, पञ्चशर को नमस्कार है, कहकर बाहू, और सर्वात्मा को नमस्कार है, कहकर उनके शिर की अर्चना करनी चाहिए । इस प्रकार भगवान् विष्णु केशव की अर्चना सुसम्पन्न कर पुनः प्रातः काल वह कलश किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । अनन्तर ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक भोजन और यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान द्वारा संतुष्ट कर इस प्रकार धमा प्रार्थना करे कि—‘कामरूपी भगवान् जनार्दन इस व्रतानुष्ठान द्वारा मुझ पर उसी प्रकार प्रसन्न हों, जिस प्रकार समस्त प्राणियों के हृदय में वेद भगवान् धारण करने पर निहित रहते हैं । पश्चात् लवण हीन भोजन कर उसकी समाप्ति करे । इस भाँति प्रत्येक मास में सविधान इसे सुसम्पन्न करते हुए उस द्वादशी के दिन आँवले का प्राशन और भूमि शयन करना चाहिए । ८-१४। तदुपरांत तेरहवें मास में ब्रत के समाप्त होने पर धृत धेनु समेत सब साधन सम्पन्न सुशश्या किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित कर काम देव की सुवर्ण प्रतिमा श्वेत वर्ण की पयस्त्विनी (कपिला) गौ, यथा शक्ति वस्त्राभूषण द्वारा द्विज दम्पति के पूजन और काम के नामों के उच्चारण पूर्वक श्वेत तिल का हवन करना चाहिए । अनन्तर उस धार्मिक को चाहिए कि—गौ के धृत पूर्ण खीर के भोजन द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते हुए कृपणता का त्याग करें और

विप्रेभ्यो भोजनं दद्याद्वितशः उच्चं विवर्जयेत् । इक्षुदण्डाश्वरो दद्यात्पुष्पमालां च शक्तिः ॥१८
यः कुर्याद्विधिनानेन मदनद्वादशीमिमाम् । सर्वपापदिनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदम् ॥१९
इह लोके वरान्युत्रान्सौभाग्यं सुखमग्नुते । कशयगो वत्साहात्म्यादागत्य परया मुदा ॥२०
चकारकर्कशां भूयो रूपतावण्यसंयुक्ताम् । वरेण छ्छन्दयामास या च वदे वरं वरम् ॥
उत्रं शत्रुवधार्थाय समर्थममितैजसम् ॥२१

प्रार्थयामि महाभाग्यं सर्वामरनिषूदनम् । कश्युपः प्राह तां भद्रे एवमस्तु सुशोश्नने ॥२२
सम्बवत्सरशतं त्वेकं गर्भो धार्यः सुखेष्या । सन्ध्यायां नैव भौत्कृत्यं गर्भिष्या व्रतवर्णिनि ॥२३
न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षसूलेषु सर्वदा । नोपस्कारे भुवि विशेन्मुसलोलूखतादिषु ॥२४
जलं न चावगाहेत शून्यागारं विवर्जयेत् । वर्जयेत्वालहं गेहे गावभङ्गं तथैव च ॥२५
मुक्तकेशी न तिष्ठेत नाशुचिः स्त्यात्कथञ्चन । न शयीतोश्तशिरा न चात्म्यर्देशिराः व्वचित् ॥२६
न वस्तुहीना नोद्विशा नार्दपादा न भूतले । नामङ्गल्यां वदेद्वाचं न च हास्यशरा भवेत् ॥२७
कुर्याच्च गुरुशुश्रूषां नित्यं सङ्घालतात्परा । सर्वोषधीभिः कोष्णेन वारिणा लानमाचरेत् ॥२८
कुस्त्रियो नाभिभाषेत वस्त्रवातं विवर्जयेत् । मृतवत्सादिसंसर्गं परगेहं च सुन्दरि ॥२९
न शीघ्रं मार्गमाक्रामेत्तद्व्ययेन्न महानदीम् । न च वीभत्सकं किञ्चिन्नुवेद्रक्षयेद्यानकम् ॥३०
गुरुवातुलमाहारमजीर्णं न समाचरेत् । सम्पूर्णार्गभिष्यायामं व्यायामं वा दिव्वर्जयेत् ॥३१

यथाशक्ति उक्त दण्ड एवं पुष्प माला से भूषित कर दक्षिणा समेत उन्हें विसर्जित करें । इस विधान द्वारा मदन द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने पर समस्त पातकों के विनाश एवं परम पद की प्राप्ति होती है । तथा इस लोक में सुख सौभाग्य की प्राप्ति पूर्वक अनेक उत्तम पुरों की प्राप्ति भी होती है । इसी व्रत महात्म्य से अत्यन्त प्रसन्न होकर महर्षि प्रवर कश्यप जी ने कोमलाङ्गी एवं रूप लावण्य सम्पन्न उस अपनी दिति नामक भार्या के पास पहुँच कर उसे यथेच्छ वर याचना की अनुमति प्रदान की । उस सुन्दरी ने कहा—देव ! महाभाग ! शत्रुओं के वध करने के लिए समर्थ एवं अमित तेजस्वी पुत्र की मैं प्रार्थना कर रही हूँ, जो समस्त देव वृन्दों का समूल विनाश कर सके । इसे सुनकर कश्यप जी ने कहा—भद्रे ! ऐसा ही होगा । किन्तु सुशोभने ! इस सुख वाञ्छा की पूर्ति के लिए तुम्हें सौ वर्ष तक एक गर्भ धारण करना पड़ेगा । व्रतवर्णिनी ! गर्भिणी को सन्ध्या काल में भोजन करना निषिद्ध है, वृक्षों के मूल भाग पर न चढ़ना एवं न बैठना चाहिए । उसी भाँति भूमि में मूशल उलूखल (ओखली) पर या उसके सहारे बैठना, किसी जलाशय में प्रविष्ट होकर स्नान, शून्य गृह में निवास, गृह में कलह, तथा गोत्र भंग न करना चाहिए उसी भाँति खुले वेश और किसी प्रकार अपवित्र न रहना चाहिए । उन्नत शिर करके शयन जलाद्रि शिर, वस्तुहीन, उद्विग्न एवं चरण प्रक्षालन कर भूमि में चलना निषिद्ध है । उन्हें कभी भी अमांगलिक वाणी के उच्चारण एवं हास्य न करना चाहिए । मंगल भावना से नित्य गृह सेवा और समस्त औषध मिश्रित कुछ गर्भ जल से स्नान करना आवश्यक होता है । १५-२८। दुष्प्रकृति वाली स्त्रियों के साथ बात चीत तथा वस्त्र की वायु का सेवन उन्हें नहीं करना चाहिए । सुन्दरि ! मृतवत्सा (अल्पायु संतान वाली) आदि स्त्रियों के साथ, पर गृह गमन, शीघ्रतापूर्वक मार्ग गमन, तथा महा नदी का उल्लंघन अथवा संतरण न करना चाहिए । किसी बीभत्स एवं भयानक का दर्शन, गुरु भोजन, वायुरोग एवं अजीर्ण रोग उत्पन्न कारक भोजन निषिद्ध है । गर्भिणी को परिश्रम या व्यायाम कभी न करना चाहिए । उन्हें सदैव औषधों

गर्भो रक्ष्यः सदौषध्या हृदि धार्यो न मत्सरः । अनेन विधिना साधिव शोभनं पुत्रमामृथात् ॥३२
 अन्यथा गर्भपतनं स्तम्भनं वा प्रवर्तते । तस्मात्प्रवर्तनया वृत्या गर्भोत्संश्व समाचरेः ॥
 भविष्यति शुभः पुत्रः सर्वाविषयवसुन्दरः ॥३३
 स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि तथेत्युक्तस्तया च सः । पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तहितोभवत् ॥३४
 ततः सा कश्ययोक्तेन विधिना सन्तिष्ठत ! अथाए पुत्रान्तचाशदेकोनान्पाण्डुनन्दन ॥३५
 एवमन्यापि या नारी मदनद्वादशीनिमार्ग । करोति पुत्रानाम्नोति सह भर्त्रा सुखी भवेत् ॥३६
 एकोन्तमर्द्धशतमापि दितिः सुतानां येन ज्ञतेन बलवीर्यसमर्चितःज्ञाम् ।
 मर्त्यः समाचरित पुत्रधनान्निलाषी तत्सर्वत्र सफलं भवतीह पुंसः ॥३७
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 मदनद्वादशीन्नितवर्णनं नाम षडशीतमोऽध्यायः ॥४६

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अबाधकद्वत्वर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कान्तारवनदुर्गेषु सुप्रसन्नाटवीषु च । समुद्रतरणे दाने सह्यामे तस्करादीने ॥१
 कां देवतां स्मरेत्कृष्ण परित्राणाकरीमिह । कथं च देवः पुरुषः परित्राणं स्मृतो जनैः ॥२

द्वारा गर्भ रक्षा का विशेष ध्यान रखना और मन में कभी मत्सर आदि दोष न आने पाये । साधिव ! इस विधान द्वारा उसे उत्तम पुत्र की प्राप्ति होती है, अन्यथा गर्भ के पतन या स्तम्भन होने का भय रहता है । इसलिए तुम इन विधानों द्वारा इसकी रक्षा करो । इससे सर्वाङ्ग सुन्दर एवं एक शुभ पुत्र का जन्म होगा । अनन्तर 'स्वस्त्यस्तु' (तुम्हारा कल्याण हो) कहकर सब के देखते उसी स्थान अन्तर्हित हो गये और दिति ने भी उनकी बातों को स्वीकार कर उसी विधान को आरम्भ किया । पाण्डुनन्दन ! कश्यप जी के बताये हुए विधान पालन के फल स्वरूप उसे (दिति) को उन्चास पुत्रों की प्राप्ति हुई । इसी भाँति अन्य स्त्रियाँ भी इस मदन द्वादशी के अनुष्ठान द्वारा अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक पति समेत सुखी रह सकती है । इस ब्रतानुष्ठान द्वारा दिति ने बलवीर्य सम्पन्न उन्चास पुत्रों की प्राप्ति की है, अतः पुत्र धन की अभिलाषा वाले मनुष्य भी इस अनुष्ठान द्वारा सम्पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकेंगे । २९-३७

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व के श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में

मदन द्वादशी व्रतवर्णन नामक छियासीर्वां अध्याय समाप्त । ४६।

अध्याय ८७

अबाधकद्वत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! घोरवन, दुर्ग, जंगलों की भाँति विस्तृत ऊसर भूमि, समुद्र तरण, दान, संग्राम, तथा तस्कर जनित उपद्रव के समय किस रक्षक देवता का स्मरण किया जाता है एवं उस देव थेष्ठ पुरुष को मनुष्यों ने अपना त्राण कर्ता कैसे समझा । १-२

श्रीकृष्ण उदाच

सर्वमङ्गलभागत्यां दुर्गां भगवतीमिमाम् । नाप्रौति दुःखं पुरुषः संस्मरन्सर्वमङ्गलाम् ॥३
 अलक्ष्यां लक्ष्यभूतानां संस्मरन्सर्वमङ्गलाम् । न भयं समवाप्नोति पुरुषः पार्थ कुत्रचिद् ॥४
 यदा तां प्रतिज्ञानुरवन्त्यामहमागतः । पुरा सन्धीपनिः पार्थ ब्लेन तह भारतः ॥५
 प्रात्तविद्येन च मया प्रतिज्ञातात्य दक्षिणः । दिव्यं स्तवं विदित्वा मे तेनाहं याच्नितः प्रभो ॥६
 प्रभासतीर्थे पुत्रो मे गतः केनात्यसौ हतः । तमानय महाबाहो सत्यं कुरु वचो मम ॥७
 उपाध्यायस्य वचनाद्वैवस्वतपुरे मया । प्राप्तः सन्दीपने पुत्रः सम्मनीतः क्षणादसौ ॥८
 दक्षिणां तामुदाहृत्य प्रस्थितो पुनरागतौ । स्थानमेतत्स्वपदांकं कृत्वावां गृहमागतौ ॥९
 ततः प्रश्नुति पुत्रार्थः पूजयन्ति जनाः सदा । मां चैव बलभद्रं च मध्यस्थां सर्वमङ्गलाम् ॥१०
 दासे नारायणो हंस एवमेव च के भवेत् । अबाधकं स्वर्चयते तृतीयं कुन्तिनन्दन ॥११
 श्रयोददश्यां सिते एवे भासिमासि यत्प्रतः । नक्तेनैवोपवासेन एकभक्तेन वा पुनः ॥१२
 गन्धपुण्ड्रैश्च मधुभिः सीधुभिश्च सुरासवैः । मृण्मयीं काञ्चनीं वापि कृत्वा प्रतिकृति तु यः ॥१३
 यक्षगन्धबलिक्षेपैः पललौदनसंसृजैः । योऽभ्यर्चदति राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१४
 नारी वा भर्तुसहिता स्वर्गलोके महीयते ॥१५

श्रीकृष्ण बोले—सर्वमङ्गल रूप, एवं मांगलिक कार्यों के लिए प्रस्थात भगवती दुर्गा के स्मरण करने पर मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता है । पार्थ ! उस सर्वमङ्गला भगवती के स्मरण करने पर जो प्राणियों के दृष्टि गोचर न होती हुई भी समस्त मंगल प्रदान करती है, पुरुषों को किसी प्रकार का भय नहीं होता है । भारत ! उसके प्रति जिज्ञासा प्रकट करते हुए मैं बलभद्र के साथ जिस समय अवन्ति नगरी के सुप्रतिष्ठित संदीपन ब्राह्मण के घर आपसे और उनसे विद्याध्ययन कर अन्त में गुह दक्षिणा की प्रतिज्ञा करते समय मुझसे उन्होंने दिव्य भावना से प्रेरित होकर कहा—प्रभो ! मेरे पुत्र को प्रभासतीर्थ में किसी ने आहृत कर दिया है, महाबाहो ! मैं चाहता हूँ कि मेरी बात को सत्य करते हुए आप उसे अवश्य लायेंगे । मैंने अपने उपाध्याय (अध्यापक) की बातें सुनकर यमराज के यहाँ जाकर उन संदीपन के पुत्र को उसी समय वहाँ से लाया और दक्षिणा रूप में उन्हें सौंप कर पुनः हम दोनों इसी स्थान से होकर अपने घर गये । उसी समय से संसार के सभी लोग मुझे बलभद्र को तथा मध्य में सर्वमङ्गला दुर्गा भगवती की पूजा करते हैं । कुन्ति उनके बायें भाग नारायण, बलभद्र और तीसरा उन्हें अबाध रूप से जो प्रतिमास की शुक्रत्रयोदशी के दिन संयम पूर्वक नक्त ब्रत, उपवास अथवा एकाहार करके गंध, पुण्य, मधु, ईख का मध और सुरासव द्वारा उनकी सुवर्ण प्रतिमा अथवा मृत्तिका की मृत्ति की अर्चीना यक्षगन्ध की धूप बलि प्रदान एवं मांस भात द्वारा सुसम्पन्न करते हैं, उनके सभी पातक विनष्ट हो जाते हैं । राजेन्द्र ! स्त्री भी इसे सुसम्पन्न करने पर पति समेत स्वर्ग की पूजनीय होती है । ३-१५। इस प्रकार शुक्र त्रयोदशी के दिन अम्बा अम्बिका

अम्बाभ्यिके द्विवशमेऽहिं सिते सदैव यः पूजयेत्सुममांसमुरोपहारैः ।
 नश्यन्ति तस्य भवनेष्वतिभीषणानि चौराण्डिराजजनितानि भयानि सद्यः ॥१६
 इति भविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 अबाधकव्रतवर्णनं नाम सप्तशीतितमोऽध्यायः ॥८७

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

मन्दारकनिम्बार्कव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

ब्रूहि मे यदुशार्दूल ब्रतं गन्धविनाशनम् । कटुतिकाम्लदेहोत्थदौर्भाग्यशमनं तथा ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

इमं प्रश्नं पुरा पार्थ जाजुकण्यो महामुनिः । पृष्ठो राज्या विष्णुभक्त्या कालनन्दनजातया ॥२
 कथयामास सम्पृष्टः सूपविष्टा भृणोति सा । देवी कृताञ्जलिपुटा जाजुकण्योऽवदद्व्रष्टम् ॥३
 ज्येष्ठे माति सिते पक्षे त्रयोदश्यां युधिष्ठिर । ऋत्वा पुण्यनदीतोये पूजयेच्छुभदेशम् ॥४
 श्वेतमन्दारकनर्कं वा करवीरं च रक्तकम् । निम्बं च सूर्यदेवस्य बल्लभं दुर्लभं तथा ॥५
 पुष्पैनैवैद्यधूपादैर्मंत्रेणानेन पाण्डव । निरीक्ष्य गगने सूर्यं ध्यात्वा हृदि समुच्चरेत् ॥६
 सूर्यं श्वेतारमन्दारश्वेतार्कार्स्यसंशयम् । करवीर नमस्तुम्यं निम्बवृक्षं नमोऽस्तु ते ॥७

भगवती की अर्चना पुष्प, मांस, आसव एवं बलिदान द्वारा सुसम्पन्न करने पर उसके गृह की समस्त बाधा चोर, अग्नि, एवं मृगी आदि से रोगजनित सभी दोष उसी समय नष्ट होते हैं ॥६

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में

अबाधक व्रत वर्णन नामक सतासीर्वा अध्याय समाप्त ॥८७।

अध्याय ८८

मन्दार निम्बार्क व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यदुशार्दूल ! मुझे एक ऐसा व्रत बताने की कृपा कीजिये जिसके अनुष्ठान द्वारा कटु, तिक्त और अम्ल (खट्टा) रसपूर्ण उसदेह जनित दुर्गंध का विनाश एवं दुर्भाग्य का शमन होता है ॥१

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले समय में कालनन्दनजाति में उत्पन्न उस विष्णु भक्ता रानी ने यही प्रश्न जाजुकण्य महर्षि से किया था । उसके पूछने पर जाजुकण्य ने कहना आरम्भ किया और वह बैठी हुई हांथ जोड़े सुन रही थी—युधिष्ठिर ! ज्येष्ठ मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन नदी के पवित्र जल से स्नान करके किसी शुभ स्थान में उत्पन्न श्वेत मंदार, अर्क, रक्त कनेर, अथवा सूर्य देव के अत्यन्त बलभ नीम की जो अन्य के लिए दुर्लभ है, पुष्प, नैवेद्य, धूप, आदि द्वारा भंत्रोऽच्चारण पूर्वक अर्चना करनी चाहिए । पाण्डव ! आकाश मध्य में सूर्य का निरीक्षण एवं हृदय में ध्यान करते हुए सूर्य, श्वेत मंदार, श्वेत अर्क तथा

इत्यं योऽर्कप्रतेर्भेक्त्या वर्जवर्षं पृथद् नरः । मूलमन्त्रेण नृश्रेष्ठ वा नारी भक्तिसंयुता ॥
तस्याः शरीरदौर्मन्थं दौर्भाग्यं वा अजाविकम् ॥१८

निम्बं नवार्ककरवीरलतां सुपुष्पां याः पूजयन्ति कुमुकाक्षतधूपहीपैः ।
ताः सर्वकामसुखभोगसमृद्धिभाजो दौर्भाग्यदेष्वरहिताः कुभगा भवन्ति ॥१९
इति श्रीभविष्यते महापुराण उत्तरपर्वतिं श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंदावे
मन्दारनिम्बार्ककरवीरद्रवतवर्णनं नामाष्टरौतितमोऽध्यायः ॥८८

अथैकोननवतितमोऽध्यायः

श्रयोदशीद्रत्वर्णनम्
युधिष्ठिर उवाच

यमस्याराधनं शूहि श्रीवत्स पुरुषोत्तम । कथनं न गम्यते कृष्ण नरकं नरकेसरिन् ॥१
श्रीकृष्ण उवाच

द्वारवत्यां पुरा पार्थ स्नातोऽहं लवणाम्भसि । दृष्टवान्मुनिमायान्तं मुद्गलं नाम पार्थिव ॥२
प्रज्वलन्तमिवादित्यं तपसा द्योतितान्तरम् । तं प्रणम्याद्यसत्कारैः पप्रच्छाहं युधिष्ठिर ॥३
यमादर्शननामैतद्वतं जन्तुभयापहम् । कथायामास सकलं मुद्गलो विस्मयान्वितः ॥४

कनेर एवं निम्ब वृक्ष को नमस्कार है। कहकर उसकी समाप्ति करे। इस प्रकार प्रति वर्ष व्रद्धा भक्ति समेत मूल मंत्र के उच्चारण पूर्वक सूर्य की आराधना करने वाले मनुष्य (स्त्री या पुरुष) की शरीर के दुर्गंध और दुर्भाग्य समूल विनष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार नीम, श्वेतार्क, श्वेत मंदार, और कनेर की पुष्पित लता की पुष्प, अक्षत, धूप, दीप द्वारा अर्चना करने वाली स्त्रियों और पुरुषों के शरीर के दुर्गंध की शांति पूर्वक उन्हें समस्त सुखभोग एवं समृद्धि सौभाग्य प्राप्त होते हैं। २-९

श्रीभविष्यते महापुराण के उत्तरपर्वत में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बाद में
मन्दार निम्बार्क करवीर व्रत वर्णन नामक अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८८।

अध्याय ८९ श्रयोदशीद्रत्व का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—श्रीवत्स पुरुषोत्तम एवं नरकेसरिन ! मुझे यम की आराधना बताने की कृपा कीजिये तथा कृष्ण ! नरक गमन न करने के लिए क्या उपाय है । १

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले समय में मैं द्वारका पुरी में रहकर एक समय लवण (खारी) समुद्र में स्थान कर रहा था, उसी समय मुद्गल नामक महर्षि आते हुए दिखायी दिये। पार्थिव ! वे ज्वलन्त सूर्य की भाँति अपने तप अग्नि से पूर्ण प्रकाशित होने के नाते दिखायी देते थे। युधिष्ठिर ! मैंने प्रणाम पूर्वक अर्घादि सत्कार से सुसम्मानित करने के अनन्तर उनसे पूछा। उसे सुनकर मुद्गल ने आश्चर्य चकित होकर उस व्रत की कथा कहना आरम्भ किया जिस समय के दर्शन न होने एवं जन्तुओं के समस्त नष्ट हो जाते हैं। २-५।

मुद्गल उच्चाच

अकस्मात्कृष्ण मूर्च्छा मे पतितोऽस्मि धरातले । पश्यामि दण्डपुरुषैर्भृहत्प्रज्वलन्निव ॥५
 अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो बलादाकृष्य रोषितः । दद्धो यमभट्टगांडं नीयते देववादिभिः ॥६
 क्षणात्तमायां पश्यामि यमं पिङ्गललोचनम् । कृष्णावदातं रौद्रास्यं मृत्युं व्याधिशतान्वितम् ॥७
 चातपिञ्जमहाङ्गलेज्यैसूर्तिन्दिभृष्णासितम् । कासशोफज्वरन्तकस्फोटिकालूतमारिभिः ॥८
 ज्वरगर्दभशीर्षादिभञ्ज्ञदरमलक्षये: । गज्जमालाक्षिरोगीश्च मूत्रकृच्छ्रहोवरणैः ॥९
 वेदनामिः प्रमेहैश्च पिटकैर्डबुद्धैः । विषूचिकागलप्राहरिद्वाभूततस्करैः ॥१०
 इत्थं बहुविधै रौद्रैननालहृपभग्नंकरैः । करातशस्त्रहस्तैश्च संग्रामैर्नरकैत्तथा ॥११
 राक्षसैर्दर्जनैर्वैरुद्ग्रैरुपविष्टैः पुरः स्थितैः । धर्माधिकरणस्तेष्व चित्रगुप्तादिलेखकैः ॥१२
 सिहव्याद्वैर्वराहैश्च तरक्षैश्चानुजन्तुकैः । वृश्चिकैर्दशमशकैः शिवास्त्वैः सजुण्डुभैः ॥१३
 गृधैरूलैर्बहुद्विभिर्मत्कुण्डलक्षिनीप्रहैः । अपस्मारस्मरोन्मादवृद्धिकारेवतीप्रहैः ॥१४
 पिण्डावेर्यक्षकूज्माण्डैः पाशखण्डनुर्द्वैः । मुक्तकैश्चित्तासकरैर्भृकुटीकुटिलाननैः ॥१५
 बृहत्कायैनर्नरकीयैः पापिष्ठानां नियामकैः । असिपत्रवनाङ्गारैः क्षारगतांडदायकैः ॥१६
 असिभञ्जामिषच्छेदलधिरक्षावकादिभिः । आस्थाने सम्भूतो भाति यमो मृत्युपमोसमः ॥१७
 स आह किङ्ग्लरान्सर्वान्धर्मराजो जनार्दन । किमयं मुनरानीतो युज्मभिर्भ्रातिनामभिः ॥१८

मुद्गल बोले—कृष्ण ! एक बार मुझे अकस्मात् मूर्च्छा आ गई जिससे मैं भूमि में गिर गया । उस समय मुझे दिखायी देता था कि यम के दूत हाथ में दण्ड लिए, जो वेद वादी भी माने जाते हैं, मेरी देह से एक अंगुष्ठ शात्र के पुरुष को जो अत्यन्त प्रदीप्त था, बलात् निकाल कर दृढ़ बन्धनों से बांधे लिये जाते हों । क्षण मात्र में मैंने सभा में पहुँच कर पिंगल नेत्र कृष्ण वर्ण, भीषण मुख और सैकड़ों मृत्यु व्याधियों से घिरे यम को देखा । वे वात, पितृ, महाश्लेष्मा मूर्ति मान होकर उनकी उपासना कर रहे थे और कास (खांसी), शोफ, ज्वरांतक, स्फोटक, लूता, मारी (मृगी) गर्दभशिखर सिंज्वर, भगंदर, गंडमाला, नेत्र रोग, मूत्रकृच्छ, हरवण, वेदना, प्रमेह, पिटक, गंडबुद्बुद, विषूचिका, गलग्रह, दरिद्रता, भूत तस्कर, आदि अनेक भाँति के रौद्र एवं भीषण रूपवाले तथा कराल शस्त्र धारीसंग्राम, नरक, दानव, और धर्माधिकारी चित्रगुप्त आदि लेखकों से संयुक्त थे । सिंह, व्याघ्र, वाराह, तरक्षु (लकडबग्धा), जम्बूक, विच्छी, दंश (डसा) मशक (मसा) शिवासर्व, दुरुंभ, गीध, उल्लू, मत्कुण (खटमल) वृन्द, डाकिनी, प्रह, अपस्मार, स्मरोरभाद, वृद्धिका, रेवती गृह, पिण्डाच, यक्ष, कूज्माण्ड, एवं पाश, खड्ग, धनुष लिए केश बिखरे, हाथों द्वारा मास दिखाने, भौंहे टेढ़ी मुख कुटिल एवं बृहत्काय वाले वे नारकीय दूत गण जो पापियों परे नियंत्रण रखते हैं, अपने असिपत्र, वनांगार, क्षारगति (गड्ढा) दण्ड दायक वहाँ उपस्थित थे जो तलवार भञ्ज व्याज से नारकीय प्राणियों के अंगच्छेद कर उधिर स्राव कर रहे थे । ५-१७। जनार्दन ! उस समय धर्मराज ने अपने दूतों से कहा—तुम लोगों ने भ्रम में पड़कर नाम वाले इस महर्षि को क्यों यहाँ उपस्थित किया । मैंने

१. जानुंजम्बुकैः ।

मुदगलो नाम कौडिन्ये नगरे भीष्मकात्मजः । धश्चियोऽस्ति त अनेयः क्षीणायुस्तयज्यतां मुनिः ॥१९
इत्युत्कास्ते गतास्तस्मादायाताः पुरनेव ते । ऊर्जुर्यमभटः प्रहृष्टा धर्मराजं सविस्मयाः ॥२०
अस्माभिस्तत्र क्षीणायुर्नल देही लक्षितो गतैः । न जानीमो भानुसूनो कथञ्चित्तद्भ्रान्तभानसाः ॥२१

यमराज उवाच

प्रायेण ते न दृश्यन्ते पुरवैर्यनक्तकरैः । कृता त्रयोदशी नरकात्तिविनाशिनी ॥२२
उज्जयिन्यां प्रयागे वा भैरवे वाथ पै मृताः । तेलाम्बगोहिरण्यः दि दत्तं यैश्च गवाह्निकम् ॥२३

द्रूत उवाच

कीदूशं तद्वतं स्वाभिज्ञांस नो भःस्करात्मज । किं तत्र वद कर्तव्यं पुरुहैस्तज त्रुष्टिदम् ॥२४

यम उवाच

पूर्वाह्ने मार्गशीर्षादौ वर्षमेंकं निरन्तरम् । त्रयोदश्यां सौम्यदिने सूर्यागारवर्जितः ॥२५
मम् नाम्नः द्विजानष्टौ पञ्च चैव तमाहृयेत् । वेदान्तगाम्नात्तिशुद्धाव्याप्तिशुशोभनात् ॥२६
वाचकश्चापि तन्मध्ये सदा भास्करवल्लभान् । दिनस्य प्रथमे यामे शुचौ देशे समास्थितान् ॥२७
अन्तर्वासोवृत्तान्भक्तान्सोपदिष्टदिगुन्मुखान् । अम्यज्ञयेच्छरोदेशात्तिलतैलेन मर्दयेत् ॥२८
स्तापयेदगन्धकाषायैः मुखोष्णाम्बुभिरेव च । पृथक्ष्यथक्स्नापयित्वा सर्वनिव द्विजोत्तमान् ॥२९

कौडिन्य नगर के निवासी भीष्मवंशज एवं क्षत्रिय बुलोत्यन्न उस मुदगल को यहाँ लाने के लिए कह रहा था ।
अतः इस मुनि को छोड़ दो और उसी को ले आओ । इस भाँति उनके कहने पर द्रूत गण वहाँ जाकर पुनः लौट
आये और विनीत भाव से आश्र्वय प्रकट करते हुए धर्मराज से कहने लगे—भानु पुत्र ! भ्रान्त होने के नाते हम
लोग वहाँ जा कर भी किस क्षीण पुवाल देही को नहीं देखा, नहीं जानते कि इसका रहस्य क्या है ॥१८-२१

यमराज बोले—किकर वृन्द ! तुमलोग आप उन पुरुषों को नहीं देख सकते हो, जिन्होंने नरक दुःख
विनाशिनी इस त्रयोदशी व्रत का अनुष्ठान मुसम्पन्न किया है । उज्जयिनी, प्रयाग एवं भैरव स्थान में जिसने
तिल, पुत्र, गौ, और हिरण्य इस प्रकार के गवाह्निक दान किया है, उसे देखना असम्भव है ॥२२-२३

द्रूतों ने कहा—स्वामिन् भास्करात्मज किस प्रकार का यह व्रत है, और उसमें आप के प्रसन्नार्थ
पुरुषों का त्या कर्तव्य है, हमें बताने की कृपा करें ॥२४

यमराज बोले—मार्गशीर्ष (अगहन) मास से प्रारम्भ कर प्रत्येक त्रयोदशी चन्द्रवार के पूर्वाह्न
समय मेरे नाम पर इस प्रकार के तेरह ब्राह्मणों को निर्मनित करे, जो अद्यात्म निपुण, अति शुद्ध,
शांतचित्त, एवं परम मुशोभन हों । उनके मध्य में किसी भास्कर प्रिय को वाचक पद पर प्रतिष्ठित करे ।
दिन के प्रथम भाग में पवित्र स्थान में स्थित उन लंगोटीधारी, भक्त एवं रूप दिष्ट ब्राह्मणों के शिर आदि
प्रत्येक अंग में तिल तैल मर्दन कर गन्ध पूर्ण एवं किंचित उष्ण को आसनासीन करे । अनन्तर उस व्रती
एवं भक्ति परायण पुरुष को चाहिए कि स्वयं उनकी शुश्रूषा करके पृथक् सभी की पूर्वाभिमुख दैठकर

शुचिर्भूत्वा तथाचान्तो ब्रती भक्तिपरायणः । स्वयं सम्मृत्य शुश्रूषां तेषां कृत्वा नरोत्तम ॥३०
 प्राइमुखानुपविष्टांश्च द्रयोदश पृथक्पृथक् । भोजयेच्छालिमुद्गाद्यं मुडपूपान्सुखोचितान् ॥३१
 सुव्यञ्जनं सुपक्ष्वाक्षं भूयोभूयो निवेदयेत् । शूचिर्भूत्वा तथाचान्तो हृचर्येत्तिलतण्डुलैः ॥३२
 प्रस्थमात्रैरथैकैं ताम्रपात्रसमन्वितैः । सदक्षिणैः सञ्चत्रैश्च जलकुम्भैः पदित्रैकैः ॥३३
 व्रद्धप्रावरणैः थ्रेष्ठेस्तेषां दत्त्वा विसर्जयेत् । सन्त्रेणानेन राजेन्द्र अर्चयेत्तन्पृथक्सुधीः ॥
 ब्राह्मणान्वाचकं वापि यंत्किंभेदं न कारयेत् ॥३४
 ॐ ततः शनैश्चरो मृत्युर्दहस्तो विनाशकः । अभावः प्रलयः सौरिर्दुखन्नः शमनोऽतकः ॥३५
 लोकपात्रो ह्यतिकूरो रौद्रो घोराननः शिवः । यमः प्रसन्नमनस्को दद्यान्मेऽभयदक्षिणाम् ॥३६
 (स्वाहा)

इत्युक्त्वा सम्प्रयच्छेच्छ देणं दत्त्वा ज्ञाती पुनः । द्विजाऽश्रानुवज्जेत्पतान्मृहाऽश्चार्चितर्चार्चितान् ॥३७
 एवं यः पुरुषः कश्चित्सङ्कृदकृतमिदं चरेत् । स मृतोऽपि नरोमर्त्यो नायाति मम मन्दिरम् ॥३८
 अदृष्टो मम मायाभिर्विमानेनार्कमण्डलम् । स चायाति पुरीं विष्णोस्ततः शिवपुरं वजेत् ॥३९
 कृतं चीर्णं ब्रतं तेन मुद्गलेन ममोदितम् । तेन नायात्यसौ लोके मम क्षत्रियपुङ्गवः ॥४०
 इति कालवचः श्रुत्वा तेऽपि द्रुता गतास्तु मे । अहं पुनः समापनस्त्वूर्णं कालैविर्सज्जितः ॥
 स्वशरीरं पुनः प्राप्य नीरोगः पुनरस्तिथतः ॥४१
 त्वां द्रष्टुमागतः प्रोक्तमेतद्वृत्तं सद्या तव । इत्युक्त्वा मुद्गलो राजन्प्रयातः स्वगृहं प्रति ॥४२

चावल, मूंग के भक्ष्य एवं गुड के पूआ से उन्हें संतुप्त करें । नरोत्तम ! अनेक भाँति के उन पक्वान एवं सुव्यजनों का बार-बार निवेदन कर आचमन, (मुखशुद्धि) करने के उपरांत ताम्रपात्र में एक से तिल चावल, दक्षिणा, छव, जलपूर्ण कलश और चर्मवस्त्र (ऊनी वस्त्र) समेत अर्पित कर उन्हें बिदा करें । राजेन्द्र ! पृथक् पृथक्; सभी विद्वानों की अर्चना करते हुए पंत्कि भेद का विशेष ध्यान रखे । वाचक को भी उसी भाँति सुसम्मानित करना चाहिए । २५-३४। उन्हें दान प्रदान करते समय ऐसा कहना नाहिए—शनैश्चर को नमस्कार है, मृत्युरूप, दण्ड लिए, विनाशक, प्रभाव, प्रलय एवं दुःख नाशक सूर्य पुत्र यम को नमस्कार है, जो लोकपाल, अतिकूर, रौद्र, भीषण मुख, शिव (कल्याण) पूर्ति है । यम प्रसन्न होकर मुझे अध्यय दक्षिणा प्रदान करें । ऐसा कहते हुए ब्राह्मण को दान देने के उपरांत उस ब्रती को उन ब्राह्मणों के सम्मानार्थ अनुगमन करके अपने गृह जाना चाहिए । इस प्रकार इस विधानद्वारा इस व्रतानुष्ठान को एक बार भी सुसम्पन्न करने वाले पुरुष निधन होने पर यमपुरी का प्रस्थान नहीं करते अपितु मेरी माया द्वारा अदृष्ट होकर सुसज्जित विमानों पर सुशोभित होते हुए सूर्य मण्डल के मार्ग से विष्णु पुरी का प्रस्थान करते हैं, और तदनन्तर शिवपुरी कैलाश का मुद्गल ने मेरे कहे हुए इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न किया है, इसीलिए वह क्षत्रिय पुङ्गव मेरी पुरी में नहीं आ रहा है । काल की ऐसी बाँति सुनकर वे द्रूत गण मुझे छोड़कर चले गये । और मैं भी काल से परित्यक्त होने के नाते उसी समय अपनी शरीर में प्रविष्ट होकर नीरोग उठ बैठा । ३५-४१। अनन्तर तुम्हारे दर्शन के लिए यहाँ आकर तुम्हें यह वृत्तान्त सुनाया । राजन् ! इतना

इदं कुरुष्व कौन्तेद त्वमप्यत्र नहींतले । ततो यास्यस्यसन्दिग्धं द्वच्चयित्वा यमं भूतः ॥४३
 एवं येऽन्येऽपि पुरुषाः स्त्रियो वापि युधिष्ठिर । ब्रयोदश्यां ब्रयोदश्यां च चरिष्यन्ति^१ भूतले ॥४४
 एकभक्तेन नक्तेन उपवासेन वा पुनः । यमदर्शनमाल्यातं गतं सर्वव्रतोत्तमस् ॥४५
 सर्वपापदिनिर्मुक्ता दिव्यमानं समाश्रिताः । यास्यन्तीन्द्रपुरं हृष्टा अप्सरोगणसम्बृताः ॥४६
 दोधूयमानाश्रमर्तेःस्तूयमानाः भुरत्तुरैः । गन्धवृत्तूर्यनादेन च्छत्रपंक्तिदिराजिताः ॥४७
 अदृष्टो घोररूपास्यैर्यमदृतैर्युधिष्ठिर । अनदितो व्याधिगणरदृष्टो यमकिङ्कूरैः ॥४८
 अदाहितो महरौद्रैर्नानाप्रहरणोत्तमैः । यमदृष्टिपथान्मुक्ताः सर्वसौख्यसमन्विताः ॥४९
 सर्वसौख्यसमायुक्ताः शिववत्सौख्यदर्शनाः । स्वर्गं वसन्ति मुचिरं भाविताः स्वेन कर्मणः ॥५०
 स्नाय्य ब्रयोदश मुनीन्धृतपायसेन सम्मूज्य पूज्यतिलतण्डुलवस्त्रदानैः ।
 कुर्वन्ति ये व्रतमिदं त्रिदशेत्ति पूताः वश्यन्ति ते यममुखं न कदाचिदेव ॥५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 यमदर्शनत्रयोदशीव्रतवर्णनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ।८९

कहकर मुदगल अपने घर चले गये । कौतेय ! इस महीतल पर तुम भी इस अनुष्ठान को सुसम्पन्न करो, जिससे देहावसान के समय यम को बच्चित करते हुए विष्णु लोक भी निश्चित प्राप्त कर सको । युधिष्ठिर ! इसी प्रकार अन्य स्त्री अथवा पुरुष इस भूतल पर रहकर अपने जीवन में प्रत्येक ब्रयोदशी के दिन एवं वाहार नक्त व्रत उपवास द्वारा इस यमदर्शन नामक श्वेष व्रत को सुसम्पन्न करके सगःस्त पापों से मुक्त होते हुए अप्सराओं से सुशोभित विमानों द्वारा स्वर्ग का प्रस्थान करते हैं । युधिष्ठिर ! उस समय देव एवं असुर वृन्द स्तुति करते हुए उसके चामर डुलाते हैं और गन्धर्वों के तुरही वाद्य की ध्वनियों एवं छत्र पंक्तियों से विभूषित होता है भीषण काय एवं मुख वाले यमदूत उसे देख नहीं सकते । किसी व्याधि द्वारा पीड़ित होता, यमकिन्नरों से सर्वदा अदृष्ट रहता है, महान् एवं रौद्र अस्त्रों से कभी आर्त नहीं होता और यम मार्ग से सर्वथा मुक्त रहता है । समस्त सौख्य की प्राप्ति पूर्वक शिव की भाँति सौम्य दर्शन प्राप्त कर चिरकाल तक स्वर्ग निवास करता है । इस प्रकार ब्रयोदशी के दिन स्नान करके धृत युक्त पायस (खीर) तिल, तन्दुल एवं वस्त्र द्वारा मुनियों की अर्चना करते हुए इस व्रतानुष्ठान को सदैव सुसम्पन्न करने पर उन्हें यममुख का भीषण दर्शन कभी नहीं होता है । ४२-५१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में
 यमदर्शन ब्रयोदशी व्रत-वर्णन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।८९।

अथ नवतितमोऽध्यायः

अनङ्गंत्रयोदशीव्रतवर्णनम्
युधिष्ठिर उवाच

भगवन्मूतभव्येश संसारार्णदत्तारक ! द्रष्टं कथय किञ्चिन्मे रूपसौभाग्यदायकम् ॥१
श्रीकृष्ण उवाच

किं कृतैर्बहुभिः पार्थ इत्तरमत्तचेष्टितैः । कायत्तेशकरैः कूरैरसारैः फलसाधनैः ॥२
वरमेकापि वरदा कृतानङ्गंत्रयोदशी । प्रसिद्धं समनुप्राप्ता भत्यें कामप्रदायिनी ॥३
सौभाग्यरोग्यजयदा सर्वातङ्गनिवारिणी । सर्वदुष्टोपशमनी सर्वमङ्गलवर्धनी ॥४
शृणुष्व तां महाबाहो कथयामि सविस्तरम् । पुरा दग्धेन कामेन त्रिनेत्रनयनाग्निना ॥५
भस्मीभूतेन लोकानां सङ्गल्पिता पुरानम् । अनङ्गेन कथा ह्रेष्ठा तेनानङ्गंत्रयोदशी ॥६
हेमन्ते समनुप्राप्ते मात्सि सार्गीशिरे शुभे । शुक्लपक्षे त्रयोटश्यां सोपवासो जितेन्द्रियः ॥७
स्नानं नद्यां तडागे च गृहे दा नियतात्मवान् । कृत्वा समन्यर्च्यं विभुं विधिनां शशिशेखरम् ॥८
धूपदीपैः सनैवेद्यैः पुष्ट्यैः कालोद्भूवैस्तथा । शंभुनामान्यथोच्चार्यं होमःकार्यस्तिलाक्षतैः ॥९

अध्याय ९०

अनंग त्रयोदशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन् ! आप जीवों के परम हितैषी एवं संसार सागर के उद्धारक हैं, अतः
मुझे कोई रूपसौभाग्यदायकव्रत बताने की कृपा कीजिये ।

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! (उसमें) उन्मत्त की भाँति चेष्टा रख कर ऐसे अन्य अनेक व्रतों को जो
काय को क्लेशित करने, क्रूर, प्रसार एवं फल साधक हैं, सुसम्पन्न करने से क्या लाभ है, जब कि इस
वरदायिनी अनंत त्रयोदशी को एक ही बार सुसम्पन्न करने से मनुष्य की स्थाति पूर्वक अनेक भौंति की
सभी काननार्दें सफल हो सकती हैं । यह अनंग त्रयोदशी, सौभाग्य, आरोग्य, एवं जय प्रदान करती हुई
समस्त पातकों की निवृत्ति करती है तथा सभी दुष्टों की शांति पूर्वक समस्त मण्डलों का वर्धन करती है ।
महाबाहो ! मैं विस्तार पूर्वक उसका वर्णन करता हूँ, सुनो ! अनंग ! पहले समय में भगवान् शंकर के
तीसरे नेत्र की अग्नि द्वारा काम के भस्मसात् होने पर लोगों ने अनंग कथा पूर्ण इसी अनंग त्रयोदशी की
कल्पना की है । हेमन्त कृतु के समागम में मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन उपवास
रहते हुए संयम पूर्वक किसी नदी, सरोवर अथवा गृह, कूप आदि के जल से स्नान करके व्यापक रहने वाले
भगवान् चन्द्रचुड (शिव) की सविधान धूप, दीप, नैवेद्य, एवं सामयिक पुष्ट फल द्वारा अर्चना करके उनके
नेत्रों के उच्चारण पूर्वक तिल-अक्षत के हवन । २-९। अंग नामों की पूजा, एवं मधु प्राशन रात्रि शंयन करना

अनञ्जनाम्ना सम्पूज्य मधु प्राश्य स्वपेत्तिशि । नैवेद्यर्थुरैदिव्यैः सुस्वादैधृतपाचितैः ॥१०
 धूपं सुगन्धिं दद्याच्च रक्तपुष्टैस्तु पूजनम् । रम्भातुल्या भवेत्सा तु रूपयौवनशालिनी ॥११
 मधुवत्स्यात्समधुरः कामरूपधरस्तथा । दशानामध्येधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥१२
 पुष्ट्यमासत्य चैवोक्तं चन्दनं प्राशयेत्तिशि । योगेश्वरं तु सम्पूज्य भाजतीकुसुमैः शुभैः ॥१३
 नैवेद्यं धृतपूराश्र इनशान्तात्स्तु ताः स्त्रियः । सौन्यशीतिसुगन्ध्यादध्यचन्दनप्राशनोद्भवैः ॥१४
 राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् । भादे नटेश्वरं नाम पूजयेत्पञ्चजेन तु ॥१५
 नैवेद्यं क्षीरखण्डाद्यमर्मीक्तं प्राशयेत्तिशि । बहुपुत्रा भवेत्सा तु धनं सौभाग्यमुत्तमम् ॥१६
 मुक्ताचूर्णनिर्भैर्त्रैर्यद्वा स्यात्तद्वेद हि : गौरीतुल्या भवेत्सा तु कोमलाङ्गी ऋजायते ॥१७
 तप्तजाम्बूनदाभासो भवेदिव्यतनुर्महान् । गोमेधस्य सहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥१८
 फाल्नुने भासि सम्पूज्य देवदेवं हरेश्वरम् । कर्णिकरस्य पुष्पाणि नैवेद्य बीजपूरकम् ॥१९
 कङ्कोलं प्राशयेद्वात्रौ सौन्दर्यमतुलं लभेत् । चैत्रे सुरूपकं नाम पूजयेद्भनेत् तु ॥२०
 नैवेद्यं धूपकं दद्याद् धृतखण्डविपाचितम् । कर्पूरं प्राशयेद्वात्रौ सौभाग्यं महदाप्नुयात् ॥२१
 चन्द्रश्र चन्द्राकान्तिश्र चन्द्रवर्त्यहरावृते । नरमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति शोभनम् ॥२२
 वैशाखे च महारूपं पुष्ट्यैर्भालिकार्चनम् । कारम्बकैस्तु नैवेद्यं दातव्यं चातिशोभनम् ॥२३

चाहिए । मधुर, दिव्य, मृतप्लुत एवं अत्यन्त सुस्वादु नैवेद्य को समर्पित करते हुए सुगन्धित धूप तथा रक्त पुष्ट द्वारा पूजन करने पर वह स्त्री रम्भा के समान रूप यौवन सम्पन्न होकर उत्तम वराङ्गना होती है । पुरुष उसके सुसम्पन्न करने पर मधुर भाषी, काम की भाँति यथेच्छ सौन्दर्य समेत दश अश्वमेध के फल प्राप्त करता है । १०-१२। पौष मास में उसी उपरोक्त विधान द्वारा उनवी अर्चना करके चन्दन के प्राशन पूर्वक रात्रि में शयन करे । मालती के सुन्दर पुष्प, और धृत प्लुत नैवेद्य द्वारा योगेश्वर शंकर की आराधना तथा पन्द्र, सुरांध एवं शीतल चन्दन के प्राशन करने पर उन स्त्रियों को राजसूय यज्ञ के उत्तम फल प्राप्त होते हैं । माधमास में नटेश्वर शिव की कमल, नैवेद्य, क्षीर के नैवेद्य द्वारा अर्चना और रात्रि में जल का प्राशन करने वाली स्त्री बहुपुत्र, धन एवं उत्तम सौभाग्य प्राप्त करती है, और उसके नेत्र मोती चूर्ण के समान चमकीले होते हैं तथा वह गौरी की भाँति कोमलाङ्गी होती है । उसी प्रकार पुरुष भी तपाये गये सुवर्ण की भाँति कान्त पूर्ण दिव्य देह समेत सहस्र गोमेध यज्ञ के फल की प्राप्त करता है । फाल्नुन मास में कर्णिकार (हरदी) के पुष्ट एवं नैवेद्य द्वारा देवाधिदेव हर की अर्चना और जम्बीर पूर्ण कंकोल के प्राशन करने से अतुल सौन्दर्य प्राप्त होता है । चैत्र मास में संयम पूर्वक नैवेद्य, धूप एवं धृत खांड के भक्षण द्वारा सुरूप नामक शिव की अर्चा और रात्रि में कपूर के प्राशन करने पर महान् सौभाग्य प्राप्त होता है । तथा चन्द्रच्छविपूर्ण शंकर की भाँति वह दिखायी देता है, जो चन्द्र कांति पूर्ण चन्द्र से संयुक्त है । और नरमेध के परमोत्तम फल प्राप्त होते हैं । १३-२२। वैशाख मास में पुष्ट, मनसिल (मैनसिल) द्वारा महारूप नामक शिव की अर्चना करम्ब (मिश्रित) परम मधुर नैवेद्य अर्पित करते हुए जाति फल (जायफल) के प्राशन

१. तु जवीरकम् । २. षड्गुणम् ।

जातीफलं तु सम्प्राशय जातिमानोत्यनुतमान् । सफलास्तस्य सर्वांशा भवन्ति भूवि भारत ॥२४
 गोसहस्रफलं प्राप्य ब्रह्मलोके महीयते । ज्येष्ठे मासे तु प्रद्युम्नं पूजयेन्मलिलकामुमैः ॥२५
 नैवेद्यं खण्डवर्तिं च लवद्वं प्राशयेन्मिशि । ज्येष्ठं पदमवाप्नोति तथा लक्ष्मीं जनार्दनात् ॥२६
 सर्वसौख्यसमोपेतः स्थित्वा भूवि शतं ज्ञातः । वाजपेयस्य यज्ञस्य शतमष्टगुणोत्तरम् ॥२७
 आषाढे चैव सम्प्राप्ते उमाभर्तरमर्मचर्येत् । पुष्टधूपादिनैवेद्यैः प्राशनोयाच्च तिलोदकम् ॥२८
 तिलोत्तमारूपधरा सुखी स्याच्छरदः शतम् । श्रावणे उमापतिं नाम तिलपुष्टैस्तु पूजयेत् ॥२९
 नैवेद्यं लड्कान्दद्यात्कृष्णांश्च प्राशयेत्तिलान् । पौडरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनाकुलम् ॥३०
 तदन्ते राजराजः स्याच्छत्रुणक्षक्षयंकरः । सद्योजातं भाद्रपदे पूज्य कुंकुमकेशरैः ॥३१
 नैवेद्यं सोलिकां दद्यात्प्राशयेदगुरुं निशि । अगुरुं प्राशयित्वा तु गरुर्भवति भूतले ॥३२
 पुत्रपौत्रैः परिवृत्तो भुक्त्वा भोगान्मनोऽनुगान् । उत्क्यज्ञफलं प्राप्य विष्णुलोके नहीयते ॥३३
 निदशाधिपतिमश्वयुजि पूज्य सिन्दूरकद्वैः । स्वर्णादिकं तु सम्प्राशय स्वर्णवर्णं प्रजायते ॥३४
 रूपदान्तुभगो वाग्मी भुक्त्वा भोगान्महीतले । सुवर्णकोटिदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३५
 विश्वेश्वरं^१ कार्तिके तु सर्वपुष्टैस्तु पूजयेत् । दमनस्य फलं प्राशय दमनेन पुमान् भवेत् ॥३६
 दमनोन्मादकर्ता च सर्वस्य जगतः प्रभुः । भवेद्भुजबलोपेतस्ततः शिवपुरं द्रजेत् ॥३७

करने पर उत्तम जाति की प्राप्ति होती है । तथा भारत ! इस भूतल पर उसकी सभी कामनाएँ सफल होती रहती है । इस प्रकार गोसहस्र के फल प्राप्ति पूर्वक वह ब्रह्मलोक में पूजनीय होता है । ज्येष्ठ मास में मालती पुष्प की माला और खांड पूरित नैवेद्य के अर्पण द्वारा प्रद्युम्न की आराधना एवं रात्रि में लवंग के प्राशन करने से ज्येष्ठ पद समेत भगवान् जनार्दन से लक्ष्मी प्राप्त होती है । इस धरातल पर सैकड़ों वर्ष तक समस्त सुखों के अनुभव एवं एक सौ आठ गुने वाजपेय यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं । आषाढ मास में पुष्प, धूप आदि नैवेद्य द्वारा उमापति महादेव की अर्चना और तिलोदक के प्राशन करने से तिलोत्तमा के समान रूप लावण्य प्राप्त कर वह स्त्री सौ वर्ष तक सुखी जवन व्यतीत करती है । श्रावण मास में तिल पुष्प, एवं लड्डू के नैवेद्य द्वारा उमापति की अर्चना तथा कृष्ण तिल के प्राशन करने से पौडरीक (विष्णु) यज्ञ के फल प्राप्ति समेत वह शत्रु पक्ष का विनाशक राजा होता है । भाद्रपद मास में कुंकुम केसर द्वारा सदाशिव की अर्चा सोलिका नैवेद्य के समेत रात्रि में अगुरु के प्राशन करने पर वह व्रती इस भूतल पर गुरु होता है । २३-३२। और अपने पुत्र पौत्र समेत अनेक भाँति के मनोनीत सुखभोग करके उत्तम यज्ञ की फल प्राप्ति पूर्वक विष्णु लोक में पूजनीय होता है । आश्विन मास में सिद्धूर पुष्प की माला से त्रिदशाधिपति (देवनायक शिव) की आराधना सुवर्णादि के प्राशन करने पर सुवर्ण के समान उत्तम वर्ण प्राप्त होता है, तथा रूपवान्, सुभग, सत्यवत्ता होते हुए अनेक भाँति के उपभोग एवं कोटि सुवर्ण दान के फल प्राप्त करता है । कार्तिक मास में समस्त पुष्पों से भगवान् विश्वेश्वर की अर्चना और दमन फल प्राशन करने से वह दमन की भाँति गुण प्राप्त कर उसके समान उन्माद कर्ता एवं समस्त संसार का प्रभु होता है । अपने भुजाओं के असीम बल द्वारा

१. विश्वेश्वरम् ।

एवं संवत्सरस्यान्ते पारितेऽस्मिन्वतोत्तमे । दत्कर्तव्यं तदधुना श्रूयतं कुरुनन्दन ॥३८
 अते विघ्नो यदा च स्यादशक्त्या सूतकेन वा । उपोष्यमेवोपवसेत्तदा हुमपुरः पुनः ॥३९
 पूर्वोक्तमेवं निर्वत्य सौवर्णी कारयेच्छिवम् । ताम्रात्रे तु संस्थाप्य कलशोपरि विन्यसेत् ॥४०
 शुक्लवस्त्रेण सज्जाद्य पुष्पनैवेद्यपूजितम् । ब्राह्मणाद्य प्रदातव्यं शिवभक्ताय सुव्रत ॥४१
 शक्तिमाञ्छयनं दद्याङ्गां संवत्सां पर्यस्त्विनीम् । छत्रोपानात्प्रदातव्यं कलशः सोदकास्तथा ॥४२
 शान्ताश्च केचिदिच्छन्ति शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् । पञ्चामृतेन स्नानं च तस्मिन्नहनि कारयेत् ॥४३
 देवदेवस्य राजेन्द्र पुष्पदीपान्नसंयुतम् । भोजनं च यथा शक्त्या षड्समधुरोत्तमम् ॥४४
 प्रदद्याच्छिवभक्तेभ्यो विशुद्धेनान्तरात्मना । एवं निर्वत्यं विधिवत्कृतकृत्यः पुमान्भवेत् ॥४५
 नारी वा भरतश्चेष्ठ कुमारी वा यतद्रता । पारिते तु दते पश्चात्कुर्याच्च सुमहोत्सवम् ॥४६
 अनेन विधिना कुर्याद्यस्त्वनङ्गत्रयोदशीम् । स राज्यं निहतामित्रं^१ कोर्तिभायुर्यशो बलम् ॥४७
 सौभग्यं महदाप्नोति यावज्जन्मशतं नृप । ततो निर्वाणमायाति शिवलोकं च गच्छति ॥४८

कामेन या किल पुरा समुपोषितासीच्छुभ्रा तिथिस्त्रिदशमी सुशुभ्रा ङ्ग्नहेतोः ।

तां प्राशनैरुदितनामयुतैरूपेतां कृत्वा प्रयाति परमं पदमिन्दुमौलेः ॥४९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वण्यनङ्गत्रयोदशीव्रतवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥५०

सुखोपभोग करने के अनन्तर शिवलोक की प्राप्ति करता है । ३३-३७। यदुनन्दन ! इस भाँति सम्वत्सर (वर्ष) की समाप्ति होने पर इस परमोत्तम व्रत के विषय में मनुष्यों के क्या कर्तव्य होते हैं, तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! इस व्रतानुष्ठान के समय अशक्त होने अथवा सूतक प्राप्ति द्वारा किसी भाँति के विघ्न उपरिथित होने पर उसे उपवन (बगीचे) में उपवास रहकर उसके समस्त नियमों के पालन करना चाहिए । भगवान् शंकर की सुवर्ण प्रतिमा ताम्रपात्र में स्थापित कर कलश के उपर रखे और वस्त्र से आच्छन्न करते हुए पुष्प, नैवेद्य द्वारा उसकी सविधान अर्चना करने के उपरान्त किसी शिव भक्त एवं विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । सुनते ! उस शक्ति सम्पन्न व्रती को उस समय सुसज्जित शश्या, दूध देने वाली सवत्सा गौ, धन, उपानह और जलपूर्णी कलश के दान करना चाहिए । कुछ शांत वादियों ने शक्ति समेत दक्षिणा प्रदान करना बताया है । राजेन्द्र ! उस दिन देवनायक शिव की प्रतिमा को पंचामृत द्वारा स्नान, और पुष्प दीप आदि से अर्चना करने के अनन्तर यथा शक्ति षड्स के मधुर भोजनों द्वारा शिवभक्त एवं विद्वान् ब्राह्मणों को विशुद्ध अन्तः करण भली भाँति तृप्त करने वाला पुरुष कृतकृत्य हो जाता है । भरत श्चेष्ठ ! नारी अथवा संयम पूर्वक व्रत को सुसम्पन्न करने वाली कुमारी को व्रत समाप्ति के दिन परम महोत्सव करना चाहिए । नृप ! इस विधान द्वारा इस अनंग त्रयोदशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष शशुहीन राज्य कीर्ति आयु, यश, बल एवं महान् सौभाग्य की प्राप्ति पूर्वक अपने सैकड़ों जलों तक प्राप्त सुखानुभूति करते हुए अन्त में निर्वाण पद एवं शिवलोक की प्राप्ति करता है । इस प्रकार अपने सर्वाङ्ग सुन्दर होने हेतु कामदेव ने इस शुभ तिथि त्रयोदशी में उपवास एवं (शिवके) पूजन किया था । अतः प्रत्येक मास में बताये गये उपरोक्त प्राशनों द्वारा उस तिथि में उपवास और पूजन करने पर चन्द्रचूड (शिव) का पावन परम पद प्राप्त होता है । ३८-४९
 श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में अनंग त्रयोदशी व्रत वर्णन नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त । ५०।

अथैकनवतितमोऽध्यायः

पालीब्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अम्बुपूर्णतडगेषु महातोयाशयेषु च । कस्यार्थं सम्प्रयच्छन्ति कृष्णैताः कुलयोषितः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

मासि भद्रपदे प्राप्ते शुक्ले शूततिथौ नृप । तडागपात्यां दातव्यं वरुणःयार्थमुत्तमम् ॥२
 हात्याणः क्षत्रियैर्देश्यैः शूद्रैः स्त्रीभिस्तथैव च । तस्मिदिने भक्तिनभैर्देयादध्यं युधिष्ठिर ॥३
 गुणैः फलस्तथा दस्त्रैर्दीपालत्ककचन्दनैः । अनग्निपाकसिद्धान्वैस्तिलतण्डुलमिश्रकैः ॥४
 खर्जूरैनालिकैरश्च वीजपूर्णरक्तस्तथा । द्राक्षादाङ्गिमपौर्णश्च त्रिपुरैश्चापि पूजयेत् ॥५
 आलिख्य मण्डले देवं वरुणं वारुणोयुतम् । मन्त्रेणानेन राजेन्द्रं पूजयेद्भक्तिभावतः ॥६
 वरुणाय नमस्तुभ्यं नमस्ते यादसाम्पते । अयाम्पते नमस्तेऽस्तु रत्तानाम्पतये नमः ॥७
 मा क्लेदं मा च दौर्गीर्थं विरस्यं मा मुखेऽस्तु मे । वरुणो वारुणीभर्ता वरदोऽस्तु सदाः मम (स्वाहा) ॥८
 एवं यः पूजयेद्भक्त्या वरुणं वरुणालयम् । भध्याह्वे सरसि स्नात्वा नग्निपाकी वती नृपैः ॥९
 चातुर्वर्ण्यथ वै नारी व्रतेनानेन पाण्डव । नैवेद्यं ब्राह्मणे देयं यन्नैवेद्ये प्रकल्पितम् ॥१०

अध्याय ११

पालीब्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! अगाध सरोवर आदि महान् जलाशय में ये कुल वधुएँ किसके लिए निमित्त (अर्ध्य) प्रदान करती हैं मुझे बताने की कृपा कीजिए ।

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! भाद्रपद मास के शुक्ल चतुर्दशी के दिन ‘तडाग’ ‘पाली’ व्रत विधान करने लिए अर्ध्य प्रदान करना बताया गया है । युधिष्ठिर ! उस दिन भक्ति पूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, एवं स्त्रियों को इस प्रकार अर्ध्य प्रदान करना चाहिए जिसमें पूज्य, फल, वस्त्र, दीप, अलत्कक (महावर), चन्दन, अनामि, पाकं तिल चावल मिश्रित सिद्धान्व, खजूर, नारियल, बिजौरा नीबू, द्राक्षा (किसमिस) दाढिम (अनार), पूंगीफल (सुपारी) और ककडी फल मिश्रित हो । राजेन्द्र ! मण्डल में वरुण दम्पति की मूर्ति स्थापित कर इस भंत्र द्वारा भक्ति भावना से पूजन करे वरुण को नमस्कार है, जलनिधि को नमस्कार है, जल पति एवं रसों के अधीश्वर को नमस्कार है देव ! क्लेश, दुर्दृष्टि एवं नीरसता मेरे मुख में कभी न हो अपने वरुण भर्ता समेत वारुणी मेरे लिए सदैव वरदानार्थ प्रस्तुत रहें । २-८। नृप ! इस प्रकार विधान द्वारा भध्याह्वे के समय सरोवर में स्नान कर नग्नि पाकी रहकर चारों वर्ण के सभी नारी नर इस व्रत को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण को शास्त्र निर्णीत नैवेद्य प्रदान करें । इस भाँति परमोत्तम पाली

एवं यः कुरुते पार्थ पालीव्रतमुत्तमम् । तत्कणात्सर्वपापेभ्यो नुच्यते नात्र संशयः ॥११
 संरुद्धशुद्धसलिलातिबलां विशालां पालीमुपेत्य दहुभिस्तरभिः कृतालीम् ।
 ये पूजयन्ति वरुणं सहितं नमुद्देशेषां गृहे भवति मूत्रिलब्धनाशः ॥१२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 पालीव्रतवर्णनं नामैकनदत्तितमोऽध्यायः ॥१३

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

रम्भावतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अस्मिन्नेव दिने पार्थ शृणु ब्रह्मसभातले । देवलेन पुरा गीतं देवर्षिगणसन्निधौ ॥१
 अप्सरोगणगन्धर्वैर्देवैः मर्वैः समर्चितम् । संसारासारतां दृष्ट्वा तत्रस्थकदलीद्वुमे ॥
 शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मात्सि भाद्रपदे नृप ॥२
 दत्तमध्यं वरस्त्रीभिः फलैर्नानाविधैः शुभैः । विरुद्धैः सप्तधान्यैश्च दीपालक्तकचन्दनैः ॥३
 दधिदूर्वाक्षितर्वस्त्रैनैविद्युर्धृतपाचितैः । जातीफलैर्लवङ्गैश्च तथैलालवलीफलैः ॥४
 कदलैः कन्दरभट्टर्मोऽचा सात्र निगद्यते । तस्मिन्नेहनि दातव्यं स्त्रीभिः सर्वाभिरप्यलम् ॥५

व्रत को सुसम्पन्न करने वाला उसी समय समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है । शुद्ध जल के अवरोध करने वाली उस बलातिक्रांत एवं विशाल पाली में पहुँच कर जो अनेक तरुणों से सुसज्जित की जाती है, समुद्र समेत वरुण दम्पति के सविधान पूजन करने वाले को अचल भूमि की प्राप्ति होती है ॥१-२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में पालीव्रतवर्णन नामक इक्यानवेदां अध्याय समाप्त ॥१॥

अध्याय ९२

रम्भा-व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले समय में इसी (चतुर्दशी) दिन देवल जी ने देव एवं ऋषि गणों के बीच ब्रह्म सभा में बताया है । संसार की प्रसारता को ध्यान में रखकर अप्सराओं गन्धर्व एवं देवों ने वहाँ कदली वृक्ष पर उसी अनुसार उसी भावना से पूजन भी किया था, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! नृप ! भाद्रपद मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन सभी स्त्रियों को अनेक भाँति के शुभ फल, हरे सप्त धान्य, दीप, अलक्तक, चन्दन, दही, दूर्वा, अक्षत, वस्त्र, धृत प्लुत नैदेय, जाप फल लवंग, इलायची, लवली फल, कदली, तथा कदंर भट द्वारा जिसे मोंचा भी कहा जाता है, वह अर्थं मंत्रोच्चारण पूर्वक प्रदान करना

मन्देगानेन चैवाद्यं शृणुत्वं च नराधिप ! चित्या त्वं कन्दलदलैः कदले कामदायिनि ॥
 शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नसोऽस्तु ते ॥६
 इत्थं यः पूजयेद्राजा पुरुषो भक्तिमान्तृप । नारी वानगिनाकान्ता चातुर्वर्ण्या युधिष्ठिर ॥७
 तस्या: कुले न भवति क्वचिक्षारी कुलाटनी । दुर्गता दुर्भगा वन्ध्यास्वैरिणी पापकारिणी ॥८
 विलासिनी वा वृषली पुनर्भूः पुनरेतसी । गणिका स्वैरिणी बोडा मूल्यकर्मकरी खला ॥९
 भर्तु ऋतात्प्रचलिता न कदाचित्प्रजायते । भवेत्सौभाग्यसौख्याद्यथा पुत्रपौत्रैस्तथावृता ॥
 आयुष्मती कोर्तिमती र्त्वेद्वृष्टतेर्भुवि ॥१०
 एकं रम्भा व्रतं चौर्णं गायश्च स्वर्गसंस्थया ! तथा गौर्द्धा च कैलास इन्द्राय नन्दने बने ॥११
 श्वेतद्वीपे तथा लक्ष्म्या राज्ञ्या च रदिप्रण्डले । अरुन्धत्या दाववने स्वाहया मेहपूर्वते ॥१२
 सीतादेव्या त्वयोध्यायां वेदवत्या हिमाचले । भानुमत्या नागपुरे व्रतमेतदनुष्ठितम् ॥१३
 एतद्वतं पर्थिवेन्द्रं सासि भाद्रपदे सिते । या करोति न सा दुःखैः कदाचिदपि पीडयते ॥१४
 संभिन्नकन्दकदलौं च मनोज्ञरूपाणि याः पूजयन्ति कुमुमाक्षतधूपदीपैः ।
 तासां गृहेषु न भवन्ति कदाचिदेव नार्थस्तदनार्थचरिता दिधवा विरूपाः ॥१५
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 रम्भाव्रतवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥१२

चाहिए ॥१-५। नराधिप ! अनन्तर इस प्रकार क्षमायाचना करके कि कदली दल में निवास करने वाली कामदायिनी देवि ! इन कदली पुष्टों द्वारा अनि (के समान) प्रज्वलित होती है । मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ, मुझे आरोग्य एवं रूप लावण्य प्रदान करने की कृपा करे । नृप ! इस प्रकार जो राजा, भक्तिमान् पुरुष अश्वा नारी इसे सुसम्पन्न करती है, युधिष्ठिर ! उसके कुल में कोई स्त्री कुलटा, दुर्गति दुःखी, दुर्भगा, वंद्या, स्वतन्त्र बिहार करने वाली, यापिनी, विलासिनी, वृषली (शूद्री), पुनर्भू, निवार्हित, व्यभिचारिणी, गणिका, स्वतन्त्र भारवाहिनी, सदैतनिक दासी नहीं है । किन्तु वह अपने पतिव्रता धर्म से कभी भी विचलित नहीं होती है । अपने पुत्र पौत्र समेत अगाध सुख सौभाग्य के अनुभव पूर्वक आयुष्मती और यशस्विनी रहकर इस भूतल पर सैकड़ों वर्ष तक पति के साथ विहार करती है । इसी एक रम्भा व्रत को स्वर्ग में रहकर गायत्री, कैलास में गौरी, नन्दन बन में इन्द्राणी, इवेत द्वीप में लक्ष्मी, सूर्य मण्डल में उनकी बली राज्ञी दारून में अरुन्धती, मेरू पर्वत पर स्वाहा, अयोध्या पुरी में सीता जी, हिमालय पर वेदवती और नागपुरी में भानुमती देवी ने सविधान सुसम्पन्न किया है । पार्थिवेन्द्र ! भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में इस व्रतानुष्ठान को न करने वाली स्त्री अनेक दुःखों का अनुभव करती है । इस प्रकार किसी कदली वृक्ष में नमोहर रूप की भादना कर पूष्य, अक्षत धूप, एवं दीप आदि द्वारा सविधान पूजन करने वाली स्त्रियों के कुल में कोई स्त्री अनार्थचरित, विधवा एवं कुरुपा नहीं होती है ॥६-१५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में
 रम्भा व्रत वर्णन नामक बानबेंवाँ अध्याय समाप्त ॥१२।

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

आग्नेयीचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

चतुर्दशी महाराज हृषभुद्यिता शुभा । नष्टस्तदा हृष्ववाहः पुनस्तित्वमाप्तवान् ॥१॥

युधिष्ठिर उवाच

कथमग्निः पुरा नष्टो देवकार्येष्युपस्थितः । केनान्तित्वं कृतं तत्र कथं हि विदितोऽनतः ॥
एतद्वदस्व देवेश सर्वं हि विदितं तत्वं ॥२॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा सुरा महाराज तारकेण पराजिताः । अपृच्छन्निभ्वकर्तारं तारकं को वधिष्यति ॥३॥

उवाचासौ चिरं ध्यात्वा रुद्रोमाशुक्रसम्भवः । गङ्गास्वाहाग्नितेजोजः शिशुर्देत्यं वधिष्यति ॥४॥

एवं श्रुत्या गता देवा यत्र शम्भुः त्वहोमया । प्रणम्य ते तमूचुर्हि यदुकं ब्रह्मणा तदा ॥५॥

प्रतिपन्नं च रुद्रेण उमया सहितेन तत् । प्रथलमकरोते च य उक्तोमरसत्तमैः ॥६॥

दिव्यं वर्षशतं साग्रं गतः कालोऽथ मैथुने । न चाप्युपरमस्तत्र तयोरासीत्कथञ्चन ॥

भयं च सुमहत्तेषां देवानां समजायत ॥७॥

अध्याय ९३

आग्नेयीचतुर्दशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! चतुर्दशी तिथि अग्नि की परम प्रेयसी है, क्योंकि नष्ट होते हुए भी अग्नि देव में इसी दिन पुनः अस्तित्व प्राप्त किया था ॥१॥

युधिष्ठिर ने कहा—देवेश! पहले समय में एकबार देवकार्य में संलग्न रहने पर भी अग्नि देव सर्वथा विनष्ट हो चुके थे, तो किसके द्वारा उन्हें अग्नित्व प्राप्त हुआ और अनन्त नाम से उनकी स्थाति कैसे हुई? इसका रहस्य आप को भली भाँति मालूम है अतः मुझे बताने की कृपा करें ॥२॥

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में तारकासुर द्वारा पराजित होने पर देवों ने विश्वसष्टा ब्रह्मा के पास जाकर उनसे पूछा कि— तारकासुर का वध कौन करेगा । चिरकाल तक ध्यान करने के अनन्तर उन्होंने कहा—रुद्र-उमा के तेज से उत्पन्न पुत्र, जिसे गंगा, स्वाहा और अग्नि के तेज से उत्पन्न होना भी बताया जायेगा, उस दैत्य का वध करेगा । इसे सुनकर देवों ने उमा समेत शिव जी जिस स्थान में रहता था, वहाँ जाकर ब्रह्मा की कही हुई सभी बातें उनसे कहा—अनन्तर देवों के कथनानुसार रुद्र ने उमा समेत उस प्रथल को प्रारम्भ किया । मैथुन करते हुए उनके दिव्य सौ वर्ष व्यतीत जाने पर भी उन दोनों का किसी प्रकार विराम नहीं हुआ । इसे देखकर देवों को अत्यन्त भय हुआ ॥३-७॥ उन्होंने सोचा—रुद्र से उत्पन्न

स रुद्रसम्भवो यो वै भविष्यति महाबलः । स दैत्यान्दानवगणान्वधिष्यति न संशयः ॥८
 केन कालेन भवति रतेर्विरतिरेतयोः । एतद्विचिन्त्य प्रहितौ देवस्तत्रानिलानन्तौ ॥९
 गतौ तौ चोमया दृष्टौ समस्थौ विषमस्यथा । शशाप च रुषा देवी देवानार्भविवर्जिता ॥१०
 यस्मात्तर्जनितो विघ्नो मेषपत्यार्थं दिवौकसाम् । तस्मात्ते स्वेषु दारेषु जनयिष्यन्ति न प्रजाः ॥११
 अथोवाच तदा देवो देवान्सर्वगणाऽच्छनैः । अग्निर्गृह्णतु श्रीर्थं से संभृतं सुचिरं हि यत् ॥१२
 एवमुक्तोथ रुद्रेण नष्टोऽग्निर्देवसङ्कुलात् ! न स्वस्थो न भुविस्थो वा न सूर्यस्थो न च भूतले ॥१३
 देवा अन्वेषणे यत्नमकुर्वस्त्रियनदर्शने । कुमिकीटपतञ्जलश्च अष्टौ च त्रिदिवोक्तः ॥१४
 हंसाः केकाः शुकाः वह्निः शीत्रं शरदणं गताः । शशापाग्निर्गजा जिह्वा द्विगुणो वा भविष्यति ॥१५
 दृष्ट्वा यिबुधाः सर्वे पक्षिणं पक्षिणां वरस् । जीवं जीवकनामानं भोभोः सत्यं वदस्व नः ॥१६
 कञ्चिद्वृष्टस्त्वया वह्निर्वनेऽस्मिन्नश्टतः सदा । नाभद्रं नायि भद्रं वा किञ्चिदेव वचोऽब्रवीत् ॥१७
 भूयोभूयस्तु पृष्ठोऽपि न गामुच्चारयेच्चरम् । तुष्टस्तस्याख्वादोद्वहिर्जीवंजीवं वदामि ते ॥१८
 यस्मान्न किञ्चिदुक्तं ते हस्तमाच्चत्रतनूरुहाः । जौव जीव पुनर्जीवं यावदिच्छा तथातुषः ॥१९
 द्वितीयं ते वरं द्वयो जीवंजीवकं शोभनम् । व्यक्ता ते मानुषी वाचा स्पष्टार्थाच भविष्यति ॥२०
 कश्चिद्यदि तत्वाधस्थाद्बुधः स्नानं करिष्यति । वंध्या वा षोडशव्वीया क्षणाद्वालो भविष्यति ॥२१
 मासं यश्च तृतीयं वै भक्षयिष्यत्वनिदितम् । अजरः सोऽमरश्चैव सर्वकालं भविष्यति ॥२२

होने वाला अवश्य महाबली होगा और दैत्य-दानव गणों का वध भी करने में समर्थ होगा, किन्तु इन दोनों के रति का विराम कब होगा! यह सोचकर देवों ने विप्र और अग्नि को वहाँ भेजा । वे दोनों गये और मैंने देखा भी कि वे विषम परिस्थित में फंस गये हैं—देवी को गर्भ नहीं हुआ था, इसी लिए रुष्ट होकर उन्होंने देवों को शाप दिया कि—देवों के निमित्त संतान उत्पन्न करने में तुम लोगों ने विघ्न उपस्थित किया है (अतः तुम्हारी स्त्रियों को कोई सन्तान न होगी ।) अनन्तर शक्त देव ने समस्तदेव गणों से कहा कि—इस मेरे चिर संचित वीर्य को अग्नि ग्रहण करें। इस प्रकार कहकर रुष्ट के निकले हुए तेजरूप वीर्य से अग्नि सर्वथा नष्ट हो गये आकाश, भूतल एवं सूर्य के यहाँ कहीं भी उनका पता न चला । वहाँ देवों ने भी अग्नि दर्शनार्थ उनके अन्वेषण में अत्यन्त प्रयत्न किया—दृष्टि, कीट, पतंग, आठ भाँति के देव, हंस, केका (मयूर) तथा शुक्र आदि के स्थानों में खोजा । अग्नि नहीं मिले । अग्नि शरवण में पहुँच गये थे । अग्नि को शाप दिया था कि—गज की भाँति दुगुनी जिह्वा तुम्हारी होगी । अनन्तर देवों के एक सर्वोत्तम पक्ष देखा जिसे जीवक कहा जाता है, और कहा—भो! हम लोगों से सत्य-सत्य बताइये—इस पुण्य में भ्रमण करते आप ने कहीं अग्नि का देखा है, इसके अनन्तर में उस पक्षी ने शुक्र-प्रशुक्र कोई बात नहीं कही । यहाँ तक कि बार-बार पूछने पर भी बहुत समय तक उसने कुछ बोला ही नहीं । इससे प्रसन्न होकर अग्नि के जीव-जीवक पक्षी से कहा—तुमने कुछ नहीं कहा, इससे मैं प्रसन्न होकर वरदान दे रहा हूँ कि—जीवंजीव! तुम अपनी इच्छानुसार आयु प्राप्त कर जीवित रहो । मैं तुम्हें एक सुन्दर वरदान दे रहा हूँ कि—तुम्हारी वाणी मनुष्य की भाँति स्पष्ट अर्थ बताने वाली होगी, तुम्हारे नीचे विद्वान् अथवा वंध्या सभी कोई भी सौलह वर्ष की आयु वाले यदि स्नान करेंगे तो उसी समय बालक रूप हो जायंगे । ८-२१ और निदित मांस का भोजी सदैव अजर-अमर होगा । इस प्रकार उसे वर प्रदान करने

इदं दत्त्वा वरांस्तस्य बहित्वमय आप्तवान् । विदुधा अपि तदैव तमदृश्यतं वंशगम् ॥२३
ऊम्या जातकल्माणं ज्ञात्वा संदृष्टमानसः । तुष्टा वंशमयोचुस्ते देवास्त्रभुद्देश्वराः ॥२४
ऊम्या कल्मणीभूय ह्यग्निर्गर्भं धरिष्यति । यो गृही वैणवीं यज्ञं ब्रह्मचारी च नैष्ठिकः ॥२५
पण्डाग्निपालने पुण्यं यदृष्टं ब्रह्मवादिभिः । बदं कल्मणीयष्टितं प्राप्नोति द्विजोत्तमम् ॥२६
वंशस्थानुग्रहं कृत्वा देव्यादृतिनथाद्वन् । गृहीत शुक्रं भद्रस्य तव पुत्रो भविष्यति ॥२७

युधिष्ठिर उवाच

यदाग्निर्नष्टे देवानां केत्तग्नित्वं तदा दृष्टम् । भूयोऽपि केन कालेन अग्निरग्नित्वमाप्तवान् ॥२८

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्प्रत्येकं इन्हौ येनाग्नित्वं कदाचन । यस्मिन्काले तिथौ यस्यां पुनरग्नित्वमाप्तवान् ॥२९

उत्थादिङ्ग्नरत्नोः पूर्वमासीद्वयतिकरो महान् । अहं विद्यातपोभ्यां वै तद्यन्यायाद्युतेन च ॥

उत्थ्येनैवमुक्तस्तु अङ्गिराः प्राह तं मुत्रिम् ॥३०

गच्छावो ब्रह्मसदनं मरीचिप्रमुखैर्इजैः । उपेतं चान्यमुनिभिर्ब्रह्मराजर्षिसत्तमैः ॥

उत्थ्यः प्राहसद्ब्रह्मनृषीस्तान्स्तान्स्तब्धमानसः ॥३१

ज्यायन्वा कतमोस्माकमिति नः कथ्यतां स्फुटम् ॥३२

अथोवाच मुनिर्ब्रह्मा तावुभौ कुद्धमानसौ । आनयथं द्रुतं गत्वा विदुधान् भुवनेश्वरान् ॥३३

के अनन्तर उन्होने अग्नित्व प्राप्त किया, जहाँ देवगण भी अपने उस रूप वंशग को देख रहे थे ।१९-२३। (अग्नि की) गर्भी से वहाँ (धूएँ द्वारा) अंधेरा होने देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए देवों एवं त्रिभुवनेश्वरों ने अग्नि की प्रशंसा करते हुए कहा—अपनी उष्मा द्वारा कल्मष (धुआँ) उत्पन्न कर अग्नि निश्चय गर्भ धारण करेंगे। गृहस्य अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी को वेणु-यज्ञि (बाँस की छड़ी) ग्रहण कर न वही पुण्य प्राप्त होता है, जो पण्डिति के पालन करने में ब्रह्म वेत्ताओं ने बताया है। द्विजोत्तम! उसी भाँति कल्मणी यज्ञि भी उसे कहने वाले को ही प्राप्त होता है। देवी (पार्वती) ने भी अपने वंश के ऊपर अनुग्रह करते हुए कहा—कल्याण स्वरूप शिव के वीर्य को तुम लोग धारण करो, उससे तुम्हें पुत्र अवश्य होगा। २२-२७

युधिष्ठिर ने कहा—देवकायर्थं उपस्थित अग्नि को किस ने नष्ट किया, उन्हें किसके द्वारा अग्नित्व प्राप्त हुआ और पुनः अग्नि को किस समय अग्नित्व प्राप्त हुआ था ।२८

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अग्नि कैसे नष्ट हुए, अग्नित्व कैसे प्राप्त हुआ और किस समय अग्नि को पुनः अग्नित्व की प्राप्त हुई। मैं बता रहा हूँ, सुनो! पहले समय में उत्थ्य और अंगिरा नामक ऋषियों में महान् विवाद आरम्भ था, विद्या, तप एवं वेदाध्याय मैं ही सर्व श्रेष्ठ हूँ, उत्थ्य के ऐसा कहने पर अंगिरा ने उनसे कहा—मरीचि आदि प्रमुख द्विजों के साथ हम लोग ब्रह्मा के भवन में चलकर वहाँ इसका निर्णय कर लें। श्रेष्ठ ब्रह्मर्थि एवं राजर्थि तथा अन्य ऋषियों के साथ वहाँ पहुँचने पर उत्थ्य ने कुछ सम्मित-सा होकर ब्रह्मा तथा उन ऋषियों के समक्ष कहा कि—आप लोग यह स्पष्ट बताने की कृपा करें कि—हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है! अनन्तर ब्रह्मा ने उन दोनों कुद्ध मुनियों से कहा—सर्व प्रथम तुम दोनों शीघ्र जाकर सभी

ततो विवादं पश्यामि भवतां तैः समेत्य च । ततस्तौ सहितौ नत्वाऽऽनिच्यतुश्च ब्रह्मीस्तदा ॥३४
 लोकपालात्महेन्द्रादीनसयमान्वारणानिलान् । साध्यान्मरुदगणान्विश्वानृषीन्मूरदग्निनोददान् ॥३५
 गन्धर्वान्वित्तरक्षोष्णान्राक्षसान्देत्यदानवान् । नायातस्तत्र तिम्मःशुः सर्वे चान्ये समागताः ॥३६
 दृष्ट्वा तु विबुधान्सर्वान्नद्या प्रेवाच तानृषीन् । आन्तर्यामितः सूर्यं सान्ना दंडेन दा पुनः ॥३७
 एवमुक्तो गतत्तावद्युतस्थः सूर्यमण्डलम् । स गत्वा प्राह मार्तण्डं शीघ्रमैहोव संविदम् ॥३८
 स उत्थमथेवाच कथं ब्रह्मन्दजाम्भद्यहम् । एवमुक्त्वा गतः सूर्यो भुवने मायि निर्गते ॥३९
 एवमुक्तो मुनिः प्रायात्सर्वं देवसमागमम् । आचक्षे च यत्प्रेक्षं भास्यता तपनं प्रति ॥४०
 उवाचमङ्गिरसं ब्रह्मा शीघ्रमैनं त्वमानय । स तथोक्ते गतस्तद्य यत्रासौ तत्ते रविः ॥४१
 एहोहि भगवन् सूर्यं तप्यते भवतान्वहम् । एवमुक्तो गतः सूर्यो यत्र देवाः समागताः ॥४२
 स्थित्वा मुहूर्तं प्रोवाच किं वा कार्यमुपस्थितम् । पृञ्जलमेव भार्तैँ ब्रह्मा प्रोवाच सादरम् ॥४३
 गच्छ शीघ्रं न दहते भुवनं यावदङ्गिराः । लब्धप्रायं तु गोलोकं वर्तते कृष्णपिङ्गलम् ॥४४
 पाटलो हरितः शोणः श्वेतो वर्णः प्रणतिरितः । शाकद्वीपं कुशद्वीपं कौञ्चद्वीपं सप्तनगम् ॥
 दग्धमङ्गिरसा सर्वं सूर्योऽपि प्रदहिष्यति ॥४५
 यावच्च दहते सर्वं भुवनं तपसांगिराः । गच्छ तावदितः शीघ्रं स्वस्थाने तप भास्कर ॥४६

देवों एवं भुवनाधीश्वरों को यहाँ ले आओ । २९-३३। तदुपरांत उनके समक्ष इसी भवन में इस विवाद का निर्णय किया जायेगा । इसे सुनकर वे दोनों सभी ऋषियों आदि को बुला लाये जिसमें लोकपाल महेन्द्र आदि देव, यम, वरण, वायु, साध्य, मरुदग्ण, विश्वावसु, भृगु, अग्नि, नारद आदि ऋषि, धन-रक्षक गन्धर्व, राक्षस, दैत्य, दानव सभी उपस्थित थे । किन्तु प्रखर किरण वाले सूर्य न जा सके । ब्रह्मा ने देवगण आदि सभी को वहाँ देखकर भी उन ऋषियों से यह कहा कि—साम (शान्ति) अथवा दण्ड उपाय द्वारा यहाँ सूर्य को अवश्य लाओ । ऐसा कहने पर उत्थय ने सूर्य-मण्डल का प्रस्थान किया । ३४-३८। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने सूर्य से कहा कि—आप शीघ्र यहाँ पहुँचने का प्रयत्न करें, यही समाचार है । ऐसा कहने पर उन्होंने उत्थय ऋषि से कहा—‘ब्रह्मान्! मैं कैसे चल सकता हूँ! इतना कह कर सूर्य मेरे उस भवन में चले गये जहाँ मैं रह नहीं रहा था । और उत्थय ने भी उनकी बात सुन कर देवों के बीच आ सुनाया । जिसे सूर्य ने उनसे कहा था । इसे सुनकर ब्रह्मा ने अंगिरा से कहा—तुम इहें शीघ्र लाओ! उन्होंने स्वीकृति प्रदान कर वहाँ का प्रस्थान किया जहाँ रहते हुए सूर्य अपने अदण्ड तेज प्रकाशित कर रहे थे । ३९-४१। उन्होंने कहा—भगवान् सूर्य! आप नित्य ऐसे ही तपा करते हैं! आइये, आइये मेरे साथ चलिये । ऐसा कहने पर सूर्य सहर्ष चल पड़े और देवों के बीच पहुँच कर क्षण के उपरांत उन्होंने कहा—‘मेरे योग्य कौन कार्य उपस्थित है । मार्तण्ड के ऐसा पूछने पर ब्रह्मा ने सादर कहा—अंगिरा ऋषि उस अपने को दग्ध कर देना चाहते हैं अतः उसके सूर्य वहाँ पहुँच जाओ । प्रायः जो लोक की शेष रहा है, किन्तु फिर भी कृष्ण-पिंगल ही हो गया, नये रक्त-हरितस्व और रक्त वर्ण दिखायी देता है । उसका श्वेत वर्ण तो सर्वथा नष्ट हो गया । शाक द्वीप, कुश द्वीप और अलग समेत क्रौंच द्वीप आदि समस्त को अंगिरा ने दग्ध कर डाला है तथा फिर भी करने के लिए उद्यत हैं । भास्कर! जब तक अंगिरा समस्त लोकों के दहन न करें, उसके पूर्व ही तुम यहाँ से शीघ्र प्रस्थान कर पुनः अपन स्थानस्थित रह कर प्रकाश करो । ४२-४६। विप्र ब्रह्मा के

एवमुक्तः स विभुता स्वस्थानमधिरूदचान् । विश्वज्ञवानंगिरसं सकाशमनृतशिनाम् ॥४७
 गत्वाज्ञिरा उवाचेदं गतः किं करवाण्यहम् । देवा अज्ञिरसं प्राहुस्तपोराशिमकल्पदम् ॥४८
 संप्रशस्योचुरगिनत्वं कुरु तावन्महीतले । पूर्वं यथाग्निः कृतवांस्तथा त्वमपि सत्तम् ॥४९
 यावदग्निं प्रपश्यामः कासौनष्टः क्व तिष्ठति । एवमुक्तः सदेवैस्तु अग्नित्वं कृतवांस्तथा ॥५०
 देवैवदृष्टो यथा हृग्निसत्ते लर्वं निवेदितम् । देवकार्ये कृते तस्मिन्देवावहिमयथाबुवन् ॥५१
 अग्नेऽग्नित्वं कुरुष्व त्वमज्ञिरास्तु यथा पुरा । एवमुक्तः सुरैर्वहिमिच्नियामास दुःखितः ॥५२
 केन भेष्यहृतं तेजः केनाग्नित्वं कृतं त्विह । दृष्टाथाग्निरज्ञिरसं तेजोराशिमकल्पदम् ॥५३
 उवाच मुञ्च मत्स्थानं बचस्तोषकरं शृणु । अहं ते तनयश्चेष्टो भविष्ये प्रथमे शुभे ॥५४
 ब्रह्मस्पतीति नामा वै तथान्ये बहवः सुताः । एवमुक्तो शुनिष्टुष्टो बहुश्चाजनयत्सुतान् ॥५५
 वहिं संज्ञनयामास पुत्रान्यौद्रांस्तदाज्ञिराः । अदाप पुनराग्नित्वमग्निस्तस्यां तिथौ नृप ॥५६
 सर्वमेव चतुर्दश्यां संजातं हव्यवाहनम् । हव्यवाहनदेवानां भूतानां गुह्यचारितम् ॥५७
 ततोष्टज्ञतिपत्वे च रुद्रेण प्रतिपादितम् । पूजितेयं तिथिर्वैदिविष्यैश्च नृपरपि ॥५८
 पैलजाबालिमन्वाद्यैरन्यैश्च नहुषादिभिः । विषशस्त्रहतानां च संप्रमेन्यश्च ते क्वचित् ॥५९
 अज्ञातावृषपापैश्च व्यालैर्य व्याप्य हिंसिताः । नदीप्रवाहपतिः समुद्रे पर्वतेऽध्वनि ॥६०

इस प्रकार कहने पर सूर्य अपने स्थान पर अधिकार प्राप्त किया । देवों के साथ अंगिरा को भी वहाँ से विसर्जित करने पर अंगिरा ने देवों के पास जाकर उनसे कहा—मेरे योग्य कौन कार्य है! इसे सुनकर उस तपोनिधि अंगिरा से देवों ने प्रशंसा पूर्वक कहा—सत्तम! पूर्व काल में जिस भाँति अग्नि द्वारा सभी कार्य सुसम्पन्न होता था, उसी भाँति इस भूतल में तुम भी अग्नित्व की स्थापना करो । हम लोग तब तक अग्नि का अन्वेषण करेंगे कि—अग्नि कहाँ पर छिपा दिये हैं और कहाँ रह रहे हैं । देवों के इस प्रकार कहने पर उन्होंने अग्नि की स्थापना की । इस भाँति मैंने देवों को जिस प्रकार पुनः अग्नि दर्शन न प्राप्त हुआ तुहं बता दिया । देवकार्य करने के अनन्तर देवों ने अग्नि से कहा अग्नि! जिस प्रकार पहले अंगिरा ने अग्नित्व की स्थापना की है, आप भी वैसा ही कीजिये! देवों के इस भाँति कहने पर अग्नि देव चिन्तित होकर दुख प्रकट करने लगे कि—किसने मेरे तेज का अपहरण किया है और अग्नित्व का स्थापन यहाँ किसने किया! अनन्तर अग्नि ने उन तेजों विधान एवं कल्पष हीन अंगिरा कृषि को देखकर उनसे कहा—आप मेरे स्थान का परित्याग कर दें, मैं आप को अत्यन्त संतोष की बात बता रहा हूँ—मैं आप का प्रथम एवं विप्रहितीपी पुत्र हूँगा, मेरा नाम ब्रह्मस्ति होगा तथा अन्य भी अनेक पुत्र होंगे । ऐसा कहने पर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने अनेक पुत्रों को उत्पन्न किये । अग्नि ने भी अनेक पुत्र-पौत्रों को उत्पन्न किया । ४७-५५६। नृप! उसी (चतुर्दशी) तिथि में अग्नि को पुनः अग्नित्व (तेज) की प्राप्ति हुई । चतुर्दशी के दिन हव्य वाहन (अग्नि) के उत्पन्न होने के नाते उन्हें सर्वदेवों का गुप्तचर बनाया गया और भगवान् रुद्र ने भी दिग्पालों का आधिपत्य प्रदान किया । इसीलिए यही तिथि समस्त स्वर्गवासी देवता, नृपण, पैल, जाबाल आदि ऋषि, एवं अन्य ऋषि आदि राजाओं द्वारा पूजित हुई है । ५६-५८६। विषय शस्त्रद्वारा संप्राम में आहत, अथवा अत्यन्त कहीं निधन होने पर, अज्ञात निधन, वृषपाप, सर्प के काटने, नदी प्रवाह अथवा

पर्वताः पर्वतेभ्यश्च तोयाग्निदहने मृताः । उदध्या पालिता ये च ये के चातमहनो जनाः ॥
 तेषां शस्तं चतुर्दश्यं श्राद्धं स्वर्गमुखप्रदम् ॥६१
 श्राद्धानि चैव दत्तानि दानानि सुलघून्यपि । प्रसूनफलभोज्यानिउपतिष्ठंति तात्परान् ॥६२
 एवं तिथिरियं राजन्नग्नेयी प्रोच्यते' जनैः । रौद्रीं च केऽचिदित्याहू रुद्रोग्निः स च पठ्यते ॥६३
 यरयां भनोरथं यंयं समुद्दिश्य हृष्पोषति । ददाति तस्य तद्विहिः साये संवत्सरे गते ॥६४
 चतुर्दश्यां निराहारः समस्यर्च्च त्रिलोचनम् । युष्मधूपादिनैवेद्ये रात्रौ जागरणाश्रः ॥
 पञ्चगव्यं निशि प्राद्य स्वप्याद्भूमैः विमत्सरः ॥६५
 श्यामाकमथवा भूक्ता तैलक्षारविवर्जितम् । होनः कृष्णतिलैः कार्यः शतमष्टोत्तरं नृप ॥६६
 अग्नये हृव्यवाहनाय सोमायांगिरसे नमः । ततः प्रभाते विमले स्नाय्य पंचामृतैः शिवम् ॥६७
 पूजयित्वा विधानेन होमं कृत्वा तथैव च । उद्दीरयेन्मन्त्रमेतं कृत्वा शिरसि चांजलिम् ॥६८
 नमस्त्रिमूर्तये तुम्यं नमः सूर्यान्निरूपिणे । पुत्रान्त्यच्छ मुखं यच्छ मोक्षं यच्छ नमोऽस्तु ते ॥६९
 नीराजनं ततः कृत्वा पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः । एवं संवत्सरस्यांते कृत्वा सर्वं यथोदितम् ॥७०
 हौवर्णं कारयेदेवं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् । वृषस्कंधगतं सौम्यं सितवस्त्रयुगान्वितम् ॥७१

समुद्र में पतन होने, पर्वतीय मार्गा पर्वत से गिर कर, जल में डूबने, अग्नि में जल कर, ऊपर कूदने और आत्म हत्या करने वाले प्राणियों के उद्धारार्थ चतुर्दशी के दिन श्राद्ध करने तथा किसी छोटी वस्तु के प्रदान करने से स्वर्ग का सुख प्राप्त होता है । उस दिन पुष्य, फल जो कुछ दान किया जाता है उस पुरुष को अवश्य प्राप्त होता है । राजन्! इस प्रकार इस तिथि को कुछ लोग आग्नेयी (अग्नि की प्रेयसी) और कुछ लोग रुद्र की प्रेयसी कहकर रौद्री अग्नि कहते हैं । जिस मनोरथ के उद्देश्य से जो कोई इसमें उपवास करता है, अग्नि उसे सफल करता है । वर्ष के आरम्भ में चतुर्दशी के दिन उपवास करते हुए त्रिलोकनाथ को त्रिलोचन (शिव) की पुष्य, धूप एवं नैयेद्य आदि द्वारा अर्चना करके रात्रि जागरण एवं पञ्चगव्य के प्राशान करते हुए भूमि-शयन करना चाहिए । ५९-६५। नृप! मन्साहीन हृदय से तेल और क्षार (नमक आदि) के त्याग पूर्वक श्यामाक के भोजन वाले तिल की एक सौ आठ आहुति, अग्नि, हृव्य वाहन, सोम और अंगिरा को नमस्कार है, कहते हुए प्रदान करनी चाहिए । तदुपरांत निर्मल प्रातः काल के समय पंचामृत द्वारा शिव जी का सविधान स्थान-पूजन करके पूर्व की भाँति हवन कार्य के अनन्तर शिरसे प्रणाम पूर्वक क्षमा याचना करे । ६६-६८। कि—त्रिमूर्ति को नमस्कार है, तथा सूर्य और अग्नि रूप तुम्हें नमस्कार है । मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, मुझे अनेक पुत्रों समेत सुखानुभव और (देहावसान के समय) मोक्ष देने की कृपा करें । अनन्तर नीराजन करके मौन होकर भोजन करें । इसी भाँति प्रत्येक मास की चतुर्दशी के दिन सविधान सुसम्पन्न करने वर्ष के अन्त में पूर्वोक्त के अनुसार ही उसकी समाप्ति करना चाहिए—उस दिन सर्वप्रथम त्रिनेत्र एवं शूलपाणि भगवान् शिव की सुवर्ण प्रतिमा ताम्र पात्र में, जो वृष (वैल) के कंधे पर स्थित, स्वयं सौम्य रूप सम्पन्न, श्वेत चार वस्त्रों से सुसज्जित, चन्दन-चर्चित और मालाओं से

चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं स्तिमाल्योपशोभितम् । स्थापयित्वा ताम्रपात्रे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
 सर्वकालिकगेतते कथितं व्रतमुत्तमम् ॥७२
 संवत्सरं समाप्तं हि व्रतस्य तु यदा भवेत् । काले गते बहुतिथे तीर्थस्य शरणं भवेत् ॥
 मृतस्य देहो दिव्यस्थो दिव्यालंकारभूषितः ॥७३
 दिव्यानारोगणवृत्तो विमानवरमास्थितः । देवदेवैः समः लंभोः क्लीडति त्रिषुरे चिरम् ॥७४
 इह चागत्य कालान्ते जातः स च नृपो भवेत् । दाता यज्ञा धनी दक्षो द्वाहुणो ब्राह्मणप्रियः ॥७५
 श्रीभान्वागमी कृती धीमान्पुत्रपौत्रसमन्वितः । पत्नीगणसमायुक्तशिरं भद्राणि पश्यति ॥ ७६
 ये दुर्लभा भुवि सुरोरगमानदानं कामा ह्यनुत्तमगुणेन युताः सदैव ।
 तानाप्नुवत्ति सितभूततिथौ सुरेणं तत्पूज्य सोमतिलकं विधिवन्मनुष्याः ॥७७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 'आग्नेयीचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३

विभूषित हो, स्थापित करके पूजनोपरांत किती विद्वान् ब्राह्मण को ताम्रपात्र पर समर्पित करे । मैंने इस भाँति दुम्हें इस सर्वकालिक एवं परमोत्तम व्रत का वर्णन सुना दिया, जिस व्रत के वर्ष समाप्ति के अवसर पर पूजन करने के अनन्तर बहुत समय व्यतीत होने पर जसे तीर्थ शरण (निवास) प्राप्त होता है और वहाँ के निधन होने पर दिव्य देह की प्राप्ति पूर्वक दिव्यालंकार से सुसज्जित होकर उत्तम विमान में अप्सरा वृन्दों से सुशोभित होता है । अनन्तर उस शिव पुरी में देव-नाथ के साथ चिरकाल तक क्लीडा करता है । कभी इस लोक में आने के समय दाता, यज्ञा (यज्ञकर्ता) ब्राह्मण प्रिय और ब्राह्मण कुल में राजा होता है । श्रीसम्पन्न, सत्यवक्ता, कृतकृत्य एवं धीमाद् वह राजा पत्नी गण एवं पुत्र-पौत्र समेत चिरकाल तक कल्याण-परम्परा के प्रमुख पूर्वक जीवन व्यतीत करता है । उत्तम गुण सफल मनुष्यों के देव शुक्लचतुर्दशी के दिन चन्दनचूडशिव की सविधान आराधना करने पर निःसंदेह सफलता प्राप्त होती है । ६९-७७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 आग्नेय (आनन्द) चतुर्दशी व्रत वर्णन नामक तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त । ९३ ।

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

अनन्तचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अनंतव्रतमस्त्यन्यतसर्वपापहरं शिवम् । सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणां चैव युधिष्ठिर ॥१
शुक्लपक्षे चतुर्दशयो भासि भाद्रपदे शुभे । तस्यानुष्ठानमात्रेण 'सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२

युधिष्ठिर उवाच

कृष्ण कोऽयं त्वयाख्यातो हृनत इति विश्रुतः । किं शेषनाग अहोस्त्विनंतस्तक्षकः स्मृतः ॥३
परमात्माथ बानंत उताहो ब्रह्म उच्यते । क एषोऽनन्तसंज्ञो वै तथं ब्रूहि केशव ॥४

श्रीकृष्ण उवाच

अनंत इत्यहं पार्थ मम नाम निबोधय । आदित्यादिषु वारेषु यः काल उपपद्यते ॥५
कलाकाष्ठामुहूर्तादिदिनरात्रिशरीरवान् । पञ्चमासर्तुवर्षादियुगकल्पव्यवस्थ्या ॥६
योऽयं कालोमयाख्यातस्तद धर्मभृतां दर । तोऽहं कालोऽदत्तीर्णोऽत्र भुवो भारावतारणात् ॥७
दानवानां विनाशाय वसुदेवकुलोऽद्विष्ट । मां विद्धधनंतं पार्थं त्वं विष्णुं जिष्णुं हरं शिवम् ॥८
ब्रह्माणं भास्करं सर्वव्यापिनमीश्वरम् । विश्वरूपं महात्मानं सृष्टिसंहारकारकम् ॥९
प्रत्ययार्थं मयाख्यातं सोऽहं पार्थं न संशयः ।

अध्याय ९४

अनन्तचतुर्दशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! समस्त पापापहारी, कल्याण स्पृष्ट यह अनन्त व्रत भी सभी पुरुषों की
सम्पूर्ण कामनाओं को सफल करता है । भाद्रपद मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन उसके अनुष्ठान मात्र से
समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त होती है । १-२

युधिष्ठिर के कहा—कृष्ण! आप ने अभी कहते समय अनन्त का नाम लिया है । वह अनन्त कौन
है, शेषनाग अथवा तक्षक! परमात्मा या ब्रह्म! केशव! मुझे यह तथ्य बताने की कृपा कीजिये—यह
अनन्त नाम किसका है! ३-४

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! इसे भलीभाँति जान लो, अनन्त यह नाम मेरा है । रविवार आदि दिनों जितने
काल (समय) उपस्थित होते हैं—कला, काष्ठ, एवं मुहूर्त आदि दिन-रात्रि, तथा पक्ष, मास, ऋतु एवं वर्ष
आदि, जिसके द्वारा युग तथा कल्प की व्यवस्था की गयी है । धर्म धुरन्धर! इनमें जो काल नाम से बताया
जाता है, भूभार के अपहरणार्थ यह काल रूप मैं ही अवतरित हूँ । पार्थ! दानवों के विनाशार्थ वसुदेव के कुल में
उत्सन्न मुज्जे ही, अनन्तजयी, विष्णु, हर, शिव, ब्रह्मा, भास्कर, शेष, सर्वव्यापी ईश्वर, विश्वरूप, महात्मा, एवं
सृष्टि संहारी जानों । पार्थ! इसमें संशय नहीं कि तुम्हारे विश्वासार्थ मैंने व्याख्या पूर्वक कहा है । ५-९

१. सर्वपापं प्रणश्यति ।

युधिष्ठिर उवाच

अनन्तव्रतमाहात्म्यविधिं वद विदां वर

॥१०

किं पुण्यं किं फलं चास्य ह्यनुष्ठानवतां नृणाम् । केन वादौ पुरा चीर्णं मर्त्ये केन प्रकाशितम् ॥११
एवं समस्तं विस्तार्य ब्रूह्यनन्तव्रतं हरे ।

श्रीकृष्ण उवाच

आसीत्पुरा कृतयुगे शुरुतो नाम वै द्विजः

॥१२

वशिष्ठगोत्रे चोत्पन्नः सुल्पश्च भृगोः सुताम् । दीक्षां नामोपयेमे तां वेदोक्तविधिना ततः ॥१३
तस्याः कालेन संजाता दुहितानंतलक्षणा । शीला नाम सुशीला सा वर्धते पितृसद्गतिं ॥१४
माता च तस्याः कालेन हरदाहेन पीडिता । विनाश नदीतीरे मृता! स्वर्गपुरं यथौ ॥१५
सुमंतोऽपि ततोऽन्यां वै धर्मपुंसः सुतां पुनः । उपयेमे विधानेन कर्कशां नाम नामतः ॥१६
दुःशीलां कर्कशां चंडीं नित्यं कलहकारिणीम् । सापि शीला पितुर्गेहे गृहार्चनरता विभो ॥१७
कुडशस्तंभुलाधारदेहलीतोरङ्गादिषु । चातुर्वर्णकरं वैश्यनीलपीतसितःसितः ॥१८
स्वस्तिकं: शंखपद्मैश्च अद्देयन्ती पुनःपुनः । पित्रा दृष्टा सुमत्तेन स्त्रीचिह्ना यौदने स्थिता ॥१९
कस्मै देया मया शीला विचार्यैवं सुदुःखितः । पिता ददौ मुनीन्द्राय कौँडिन्याय शुभे दिने ॥२०
स्मृत्युक्तशास्त्रविधिना विवाहमकरोत्तदा । निवर्त्येद्वाहिकं सर्वं प्रोक्तवान् कर्कशां द्विजः ॥२१

युधिष्ठिर के कहा—विदांवर! मुझे अनन्त व्रत का माहात्म्य और विधान बताने की कृपा करें। इसके अनुष्ठान करने पुरुष को किस पुण्य और किस फल की प्राप्ति होती है? तथा इस मृत्युलोक में सर्वप्रथम किस व्यक्ति ने इसका अनुष्ठान सुसम्पन्न किया है? इस प्रकार समस्त बातों की विस्तृत व्याख्या पूर्वक भगवान् विष्णु के अनन्त व्रत बताने की कृपा करें। १०-११

श्रीकृष्ण बोले—पहले सतयुग के समय सुमन्त नामक एक दाह्यन था, जो बसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न, एवं परम सुन्दर था। उसने सविधान द्वारा भृगु-पुत्री दीक्षा का पाणिग्रहण किया। कुछ समय व्यतीत होने पर उस स्त्री से शीला नामक एक कन्या का जन्म हुआ, जो अनन्त लक्षणों से भूषित एवं परम सुशीला थी। पिता के घर पर वह (चन्द्र कला की भाँति) वढ़ रही थी, उसी समय नदी-तट पर उसकी माता कालरूपी हरदाह से पीड़ित होकर निधन होने के अनन्तर स्वर्ग चली गयी। उपरांत सुमन्त ने एक अन्य धर्म पुरुष की कन्या का पाणिग्रहण किया, जो कर्कशा नाम से प्रख्यात थी। वह दुःशीला, कर्कशा, एवं चण्डी रूप धारण कर नित्य कलह करने वाली थी। विभो! शीला अपने पिता के घर में रहती हुई उसकी स्वच्छता के लिए दिन-रात अथक परिश्रम करती थी। गृह की भित्ति (दीवाल) स्तम्भ, तुलाधार, देहली, एवं तोरण आदि को नील, पीत, श्वेत तथा कृष्ण (काले) रंगों से सुशोभित और स्वास्तिक तथा शंख, पद्म चिन्हों से उसे अंकित करती हुई उसे उसके पिता ने देखाकि—यह युवावस्था को प्राप्त हो रही है, क्योंकि सभी चिह्न इसमें स्पष्ट प्रतीत हो रहे हैं। अतः मैं इस शीला कन्या को किसे अर्पित करूँ। यह विचार कर उसके पिता दुःखी होने लगे। अनन्तर सर्व सम्पत्ति से उन्होंने शुभ मुहूर्त में मुनि श्रेष्ठ कौँडिन्य को अपनी पुत्री प्रदान किया। १२-२०। स्मृति-शास्त्र के विधान द्वारा विवाह संस्कार

किञ्चिदायादिकं देयं जामातुः पारितोषिकम् । तज्जुत्वा कर्कशा कुद्धा प्रोदृत्य गृहनण्डपम् ॥२२
 कपाटे सुस्थिरं कृत्वा गम्यतामित्युवाच ह । भोज्यावशिष्टचूर्णं पाथेयं च चकार सा ॥२३
 कौडिन्योऽपि विवाहैनां पथि गच्छञ्जनैःशनैः । शीलां सुशीलामादाय नवोढां गोरथेन हि ॥२४
 मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य सरित्तटे । ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससम् ॥२५
 चतुर्दश्यमर्चयन्तं भक्त्या देवं पृथक्ष्युथक् । उपगम्य शनैः शीला प्रपञ्चं स्त्रीकादम्बकम् ॥२६
 नार्यः किनेतन्मे ब्रूत किंनाम वत मीदृशम् । तत ऊच्यौषितः सर्व अनन्तो नाम विश्रुतः ॥२७
 साक्षवैद्यहमप्येवं करिष्ये व्रतमुत्तमम् । विधानं कीदृशं तत्र किं दानं कस्य पूजनम् ॥२८

स्त्रिय ऊचुः

शीले पक्वान्नप्रस्थस्य पुन्नान्नः सुकृतस्य तु । अर्द्धं विप्राय ददत्यमर्हमात्मनि भोजनम् ॥२९
 कर्तव्यं तु सरित्तीरे कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ! अनंतानंतमर्थर्च मंडले गंधदीपकैः ॥३०
 धूपैः पुष्टैः सनैवेद्यैः पीतालात्कैश्चतुरुःशनैः । तस्याग्रतो दृढं सूत्रं कुंकुमात्तं सुदोरकम् ॥३१
 चतुर्दशाद्विषयुं वामे^१ स्त्री दक्षिणे पुमान् । मंत्रेणानेन राजेन्द्र यावद्वर्षं समाप्यते ॥३२

सुसम्पन्न हो जाने के उपरांत उन्होंने अपनी कर्कशा नामक आर्या से कहा—जामाता जा रहे हैं, अर्तः इन्हें अपने कुछ हाथ भाग द्वारा सम्मानित करना चाहिए । यह सुनकर कुछ होकर कर्कशा ने गृह मण्डप की सभी वस्तुएँ किंवाङ्ग के भीतर रखकर उसको दृढ़ बन्द कर कहा—‘चले जाओ (कुछ नहीं मिलेगा) । केवल भोज्य का कुछ अवशिष्ट बचा रह गया था । पाथेय (मार्ग- व्यय) रूप में वही उसने उन्हें दिया । विवाह होने के अनन्तर कौडिन्य भी उस नवोढा शीला को साथ लिए गोरथ (वैलगाड़ी-वहन) पर बैठे धीरे-धीरे मार्ग में जा रहे थे ; मध्याह्न के समय नदी को पार कर उस भोजन बेला के समय शीला ने देखा कि—यहाँ इस नदी तट पर रक्त वस्त्र भूषित कुछ स्त्रियों का सधूह उपस्थित है, जिसमें सभी स्त्रियाँ पृथक-पृथक श्रद्धा भक्ति पूर्वक अनन्त भगवान् की सविधान अर्चना उस चतुर्दशी के दिन कर रही थीं । शीला ने धीरे-धीरे वहाँ जाकर उन स्त्रियों से पूछा—आप लोग यह कौन व्रत सुसम्पन्न कर रही हैं, मुझे बताने की कृपा करें । इसे सुनकर उन सभी स्त्रियों ने कहा—‘अनन्त’ नाम से इसकी प्रस्थाति है । शीला ने कहा—मैं भी यह परमोत्तम व्रत सुसम्पन्न करूँगी, किन्तु इसका विधान दान, और किसका पूजन होगा । बताने की कृपा करें । २१-२८

स्त्रियों ने कहा—शीले! भली भाँति बनाये हुए एक सेर के पक्वान के आधे भाग ब्राह्मण को अर्पित कर शेष स्वयं अथवा परिसर के लिए सुरक्षित रखे । किसी नदी के तट पर इस कथा के श्रवण पूर्वक मण्डल में स्थापित अनन्त देव की गन्ध, दीपक, धूप, पुष्ट, नैवेद्य, तथा चार सौ पीत अलक्तक द्वारा सविधान अर्चना करके उनके सम्मुख दृढ़ सूत्र का बना हुआ जो कुंकुम में भली भाँति भीगा हो, चौदह गांठ का एक सुन्दर डोरा रख पूजनोपरांत सभी स्त्रियाँ बायें हाथ और पुरुष दक्षिण हाथ में बाँधकर वर्ष की समाप्ति तक सुरक्षित रखे । २९-३२। राजेन्द्र! उसे हाथ में बाँधते समय इस प्रकार क्षमा प्रार्थी होना चाहिए—वासुदेव!

अनन्तं संसारमहासमुद्रे ममनन्तमभ्युद्धर वासुदेव ।

अनन्तरूपे विनियोजितात्मा हृनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥३३

अनेन दोरकं बद्धवा भोक्तव्यं स्वस्थमानसैः । ध्यात्वा नारायणं देवमनंतं विश्वरूपिणम् ॥३४

भुक्त्वा चांते वजद्वेशम् हींदं प्रेक्षं व्रतं तव । सापि श्रुत्वा व्रतं चके शीला बद्धा सुदोरकम् ॥३५

भर्ता तस्याः समागत्य तां दर्दश महाधनाश् । पाथेदशेषं विप्राय दत्त्वा भुक्त्वा तथैद च ॥३६

पुनर्जगाम सा हृष्टा गोरथेन स्वप्नाभ्रमम् । भर्त्रा सहैव शनके: प्रत्यक्षं तत्क्षणादभृत् ॥

*तेनानन्तप्रभावेण शुभगोधनसङ्कुलः ॥३७

गृहाश्रमः श्रिया गुक्तो धनधान्यसमायुतः । लाकुलो व्याकुलो रम्यः सर्वत्रातिथिपूजनः ॥३८

राष्ट्रि माणिक्यकांचीभिर्मुक्ताहारविभूषिता । दिव्यांगवस्त्रसंछन्ना सावित्रीप्रतिमाभवत् ॥३९

कदाचिहुपविष्टेन दृष्टं बद्धं सुदोरकम् । शीलात्मा हस्तमूले तु साक्षेपं त्रोटितं रक्षा ॥४०

तेन कर्मदिपाकेण तस्य सा श्रीः क्षयं गता । गोधनं तस्करैर्नीतं गृहं चःगिनविदाहितम् ॥४१

यद्यदेवगतं गेहे तत्र तत्रैव नश्यति । स्वजनैः कलहो मित्रवैचनं न जनैस्तथा ॥४२

अनन्ताक्षेपदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे । न कश्चिद्वदते लोकस्तेन साद्दं युधिष्ठिर ॥४३

अनन्त! इस संसार में निमग्न प्राणियों का उद्घार करें। अनन्त रूप में मैंने अपनी आत्मा को संलीन कर अनन्त रूप आप को बार-बार नमस्कार करता हूँ। डोरा बाँधने के उपरांत स्वस्थ चित्त से नारायण एवं विश्वरूपी अनन्त देव के व्यान पूर्वक भोजन करके सप्रेम अपने गृह का प्रस्थान करे। इस प्रकार मैंने तुम्हें यह व्रत बता दिया। शीला ने भी इसे सुनकर व्रत नियम पालन पूर्वक एक डोरा हाथ में बाँध लिया। उसी समय उसके पति ने वहाँ आकर उसे महाधन सम्पन्न देखा। शीला ने पाथेय याज्ञा (मार्ग व्यय) धन रख कर शेष धन के दान और भोजन द्वारा ब्राह्मणों को सुसम्मानित किया। भोजन करके वह हर्षित होती हुई गोरथ (बहल) द्वारा अपने आश्रम आई। वहाँ पहुँचते उसने यह देखा कि—पति समेत उसके उस आश्रम में पहुँचने के साथ उसी अनन्त व्रत के प्रभाव से वहाँ गौओं का समूह उत्पन्न हो गया है, उसका प्रारम्भ-गृह धन-धान्य पूर्ण भी सम्पन्न दिखायी दे रहा है। उसकी ओर से चारों ओर लोग, अतिथि पूजन में व्याकुल हो रहे हैं। शीला भी उसी समय माणिक्य आदि के आभूषणों से अंग-प्रत्यंग मुसञ्जित, मुक्ताहार भूषित और दिव्य वस्त्रों से आच्छन्न होना सावित्री की साक्षात् प्रतिमा मालूम होने लगी। इस प्रकार अनन्त सुखानुभवि करती हुई उस शीला के साथ बैठे हुए उसके पति ने एक बार कभी उसके हाथ में बंधे हुए उस (अनन्त के) डोरे को देखा। उन्होंने रुष्ट होकर आक्षेप करते हुए शीला के हाथ से उस डोरे को तोड़ कर फेंक दिया। उस कर्म के दुःखदायी परिणाम स्वरूप उनकी समस्या भी नष्ट हो गयी। गौओं को चोरों ने चुरा लिया, और अग्नि होत्र (अग्नि) ने गृह त्याग दिया। ३३-४१। अर्थात् जो धन जहाँ से आया था वह वहाँ चला गया—नष्ट हो गया। स्वजनों में कलह, मित्रजनों से बात-चीत न हो—आदि दुःखों के साथ अनन्त भगवान् के अपमान के नाते उनके घर में साङ्घोपाङ्घ दारिद्र का निवास हो गया। उसके कारण युधिष्ठिर! उनके साथ कोई भी पुरुष बात नहीं करता

ततो जगाम कौटिन्यो निर्वेदाद्वनगद्वरम् । मनसा ध्यायतेऽनंतं कदा द्रष्ट्यामि केशवम् ॥४४
व्रतं निरशनं गृह्ण ब्रह्मचर्यं जपन्हरिम् । विह्वलः प्रययौ पार्थं अरण्यं जनवर्जितम् ॥४५
तत्रापयन्महावृक्षं फलितं पुष्पितं तथा । तमपृच्छत्त्वयानंतः कच्चिद्दृष्टो महाद्रुमः ॥
तद्भूहि सोप्युवानेवं नानंतं वेद्यम्यहं द्विज ॥४६

एवं निरीक्षितस्तेन गां ददर्श सवत्सकाम् । तृणमध्ये प्रधावन्तीमितश्चेतश्च पाण्डव ॥४७
सोद्वर्वोद्देनुके ब्रूहि यद्यनंतस्त्वयेकितः । गौरुवाचाय कौडिन्यं नानंतं वेद्यम्यहं विभो ॥४८
ततो जगामाय वने गोवृषं शाद्वले स्थितम् । दृष्टा प्रपञ्च गोस्वामिन्ननंतो लक्षितस्त्वया ॥४९
गोवृषस्त्वमुवाचाय नानन्तो वीक्षितौ भया । ततो व्रजन्ददशग्रे रम्य पुष्करिणीद्वयम् ॥५०
अन्योन्यजलकल्लोलवीचिनिः परिशोभितम् । छन्नं कुमुदकह्नारैः कुमुदोत्तरलमण्डितम् ॥५१
सेवितं भ्रमरैर्हैसैश्चक्षैः कारंहैर्वैकैः । ते अपृच्छ द्विजोऽनन्तो भवद्यां नोपलक्षितः ॥५२
ऊचतुः पुष्करिण्यै तं नानंतं विद्वहे द्विज । ततो ब्रह्मन्ददशग्रे गर्दभं कुञ्जरं तथा ॥५३
ततःपृष्ठकौ शुभतेन तस्यापि विनिवेदितम् । नावाभ्यां वीक्षितोऽनंतस्तच्छुत्वा निषसाद ह ॥५४
तस्मिन्क्षणे मुनिवरे कौण्डिन्ये ब्राह्मणोत्तमे । कृपयानन्तदेवोऽनि प्रत्यक्षः समजायत ॥५५
वृद्धब्राह्मणरूपेण इत एहीत्युवाच तम् । प्रवेशयित्वा स्वगृहं गृहीत्वा दक्षिणे करे ॥५६
तां पुरीं दर्शयामास दिव्यनारीनर्युताम् । तस्यां निविष्टमःत्मानं वरसिंहासने नृप ॥५७

था । अनन्त उस दुःख से दुःखित कौडिन्य ने घोर जंगल का प्रस्थान किया । मन में सदैव यही चिन्ता करते थे कि—मैं अनन्त भगवान् केशव को कहाँ और कैसे देखूँ । ब्रह्मचारी रहकर उपवास पूर्वक व्रत के पालन करते हुए भगवान् अनन्त के दर्शनार्थ कौटिन्य व्याकुल होकर निर्जन जंगल में चले गये । पार्थ! वहाँ पहुँचने पर उन्हें कल-पुष्प भूषित एक महावृक्ष दिखायी दिया । उसे देखकर उन्होने कहा—महाद्रुम! तुमने कहाँ अनन्त देव को देखा है? उसने कहा—द्विज! मैं अनन्त को नहीं जानता हूँ । पाण्डव! इसी भाँति चारों ओर देखते हुए वह (विप्र) जा रहा था, मार्ग में बछड़े समेत एक गौ दिखायी पड़ा । जो उस हरे-भरे तृण समूहों में दौड़ रही थी । उससे उन्होने कहा—धेनुके! मुझे दत्ताओ, तुमने कहाँ अनन्त को देखा है । इसके प्रत्युत्तर में गौ ने कहा—विभो! कौडिन्य! मैं अनन्त को नहीं जानती । अनन्तर वन में आने जाने पर उन्होने हरी धास में एक वृष (बैल) देखा । उससे गोस्वामिन्! तुमने कहीं अनन्त देव को देखा है । उसने कहा—अनन्त को मैं कहीं नहीं देखा । आगे बढ़ने पर उसे दो सुन्दर पुष्करिणियाँ दिखायी पड़ी, जो आपस में जल-कल्लोल करने वाली तरङ्गों से सुशोभित हो रही थी, और कुमुदिनी के कुञ्जल (कलियों) से आच्छन्न एवं कुमुद तथा कमल से विभूषित एवं भ्रमरगण, हंस, चकोर, कारण्डव और वकुलों से सुशोभित थीं । ब्राह्मणों ने उनसे पूँछा—आप लोगों ने कहीं अनन्त को देखा है! उन लोगों ने उत्तर दिया—द्विज! हम लोगों ने अनन्त को कहीं नहीं देखा है । उपरात आगे जाने पर गर्दभ (गधा) और गजराज दिखायी पड़ा । उन दोनों से भी उन्होने निवेदन किया । किन्तु उनके ऐसा उत्तर देने पर कि हमें कहीं नहीं अनन्त दिखायी दिये । वे ब्राह्मण देव वहीं बैठ गये । उसी समय मुनि श्रेष्ठ एवं ब्राह्मणोत्तम कौडिन्य के ऊपर भगवान् अनन्त देव ने कृपा करते वहाँ उन्हें प्रत्यक्ष रूप से दर्शन दिया ।४२-५१। वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर उन्होने (अनन्त देव ने) उन ब्राह्मणों से कहा—यहाँ

पार्श्वस्थशस्त्रं चक्रासिगदागरुडशेभितम् । दर्शयामास विप्राय पूर्वोक्तं विश्वरूपिणम् ॥५८
 विभूतिभेदेश्चानन्तमनन्तं परमेश्वरम् । तं दृष्टा तु द्विजोऽनन्तमुवाच परया मुदा ॥५९
 पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः । पाहि नां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव ॥६०
 अच्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । चूतवृक्षो वृषः कस्तु का गौः पुस्करिणीद्वयम् ॥
 गर्दभं कुञ्जरं चैव देव मे ब्रूहि तत्त्वतः ॥६१

अनन्त उवाच

चूतवृक्षो हि विप्रोऽसौ विद्वान्यो वेदगर्दितः । विद्वादानं नोपकुर्विञ्छिष्यस्तरुतां गतः ॥६२
 सा गौर्वभुन्धरा दृष्टा निष्ठुला या त्वयेक्षिता । स हर्षो वृषभो दृष्टो लाभार्थं प्रस्त्वया चृतः ॥६३
 धर्माधिर्मव्यवस्थानं तच्च पुष्करिणीद्वयम् । खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुञ्जरे धर्मदूषकः ॥
 ब्राह्मणोऽसावनंतोऽहं गुहासंसारगहरे ॥६४
 इत्युक्तं ते भया सर्वं विप्र गच्छ पुनर्गृहम् ॥६५
 चरानंतदत्तं तत्त्वं नव वर्षाणि पंच च । ततस्तुष्टः प्रदास्यामि नक्षत्रस्थानमुत्तमम् ॥६६
 भुक्त्वा च विपुलान्भोगान्सर्वान्कामान्यथेष्वितान् । पुत्रपौत्रैः परिदृतस्ततो मोक्षमवाप्यत्ति ॥६७

आवो, यहाँ आवो । उनका दाहिना हाथ पकड़ कर वृद्ध ब्राह्मण रूप धारी अनन्त ने अपने गृह के भीतर ले जाकर दिव्य सभी-पुरुषों से सुशोभित उस पुरी को दिखाया जहाँ सिंहासन पर उन्हीं का रूपान्तर अपने पार्श्व भाग में शंख, चक्र, खड़, गदा और गरुड़ से युक्त होकर विभूषित हो रहा था । नृप, उन ब्राह्मण को उन्होंने अपना पूर्वोक्त विश्वरूप दिखाया, जो अनेक भार्ति की विभूतियों (सौख्यों) से सुसम्पन्न होने के नाते उनकी अनन्तता का परिचायक था । ब्राह्मण देव कौँडिन्य ने परमेश्वर अनन्त देव को देख कर अपनी परम प्रसन्नता प्रकट करते हुए उनकी क्षमा अर्चना की—कमलनेत्र! मैं स्वयं पाप स्वरूप, पापकर्मी, पापोत्तमा और पाप से ही उत्पन्न हुआ है । अतः समस्त पापों के अपहरण पूर्वक आप मेरी रक्षा करें । आज मेरा जन्म सफल हुआ और जीवन सुजीवन हुआ । देव! मार्ग में मुझे मिलने वाले वे आप के वृक्ष, वृषभ, गौ, दो पुष्करिणी गधा और हाथी कौन थे, बताने की कृपा करें । ५६-६१

अनन्त बोले—आम का वृक्ष वह ब्राह्मण है जो अपनी वेद विद्या के मद में अंधा रहने के नाते शिष्यों को कभी पढ़ाया ही नहीं, इससे उसे वृक्ष होना पड़ा । वह गौ निष्फला भूमि थी जिसे तुमने देखा था । वह प्रसन्न चित वृक्ष जिसे तुमने भलीभांति देखा था, लोभाक्रान्त तुमने जिसको अपनाया था वह वही था । धर्मा धर्म की व्यवस्था (स्थान) रूप वे दोनों पुस्करिणियाँ थीं । वह गधा क्रोध का रूप और वह हाथी धर्मदूषक था । इस संसार की घोर अन्धकारमय इस गुफा में यह ब्राह्मण रूप अनन्त मैं हूँ । विप्र! इस प्रकार मैंने तुम्हें सभी कुछ बता दिया अब तुम अपने घर लौट जाओ और चौदह वर्ष तक इस अनन्त व्रत-तत्त्व की उपासना करते रहो । तदुपरांत प्रसन्न होकर मैं तुम्हें उत्तम नक्षत्र स्थान प्रदान करूँगा । मनोनुकूल विपुल भोगों के उपभोग करते हुए तुम अपने पुत्र-पौत्रों समेत देहावसान के समय

इति दत्त्वा दरं देवस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् । कौण्डिन्योऽप्यागतो गेहं चचारानन्तसद्ब्रतम् ॥६८
शीलया सह धर्मात्मा भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् । अंते जगाम च स्वर्गं नक्षत्रं च पुनर्वसूम् ॥६९
कल्पस्थानी च संभूतो दृश्यतेऽद्यपि स ज्वलन् । अनंतब्रतधर्मेण सम्यक्त्वीर्णन कौरव ॥७०
एतते कथितं पार्थं व्रह्मानामुत्तमं व्रतम् । यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशयः ॥७१
ये च शृण्वन्ति सततं वाच्यमानं नरोत्तम । ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यास्यन्ति परमां गतिम् ॥७२

संसारसागरगुहा समुखं विहर्तु दाङ्छन्ति ये कुरुकुलोद्भव शुद्धसत्त्वा ।

सम्पूज्य ते त्रिभुवनेशमनंतदेवं बध्नाति दक्षिणाकरं वरदोरकं मे ॥७३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

अनंतचतुर्दशीकृतदर्शनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।९४

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

श्वणिकाव्रतम्

युधिष्ठिर उवाच

लोके प्रसिद्धाः श्रूयते श्रावण्यो नाम देवताः । एताः काः किं च कुर्वति धर्मं चासां ब्रवीहि मे ॥१

मोक्ष प्राप्त करोगे ।६२-६७। इस भाँति वरदान देकर अनन्त देव उसी स्थान अन्तर्हित हो गये । धर्मात्मा कौडिन्य भी घर आकर उस उत्तम अनन्त ब्रत को सुसम्पन्न किया, जिससे शीला के साथ समस्त मनोरथ सुखों के उपभोग करते हुए देहावसान के समय उन्हें स्वर्गं में पुनर्वसु नक्षत्र का लोक प्राप्त हुआ । कल्प स्थायी रह कर उस अनन्त ब्रत धर्म के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने के नाते आज भी प्रकाश पूर्ण दिखायी देते हैं । कौरव! पार्थ! इस प्रकार मैंने तुम्हें एक परमोत्तम ब्रत की व्याख्या सुनायी, जिसके अनुष्ठान द्वारा प्राणी समस्त पातकों से मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं । नरोत्तम! इसके श्रवण करने वाले भी समस्त पापों से मुक्त होकर परमोत्तम गति प्राप्त करते हैं । कुरुकुल-भूषण! इस प्रकार संसार-सागर की गुफा में सुखी जीवन व्यतीत करने की वाञ्छा से पुनान्तःकरण शुद्धि पूर्वक त्रिभुवनाधीश्वर अनन्त की आराधना और मेरे उस डोरे को दक्षिण हाथ में बाँधना चाहिए । ६८-७२।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में

अनन्त चतुर्दशी ब्रत वर्णन नामक चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९४।

अध्याय ९५

श्वणिकाव्रत-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—लोक प्रसिद्ध श्रावणी नामक देवताओं के नाम मैं प्रायः सुना करता हूँ, वे कौन हैं, क्या करते हैं और उनके धर्म क्या हैं! मुझे बताने की कृपा करें! १

श्रीकृष्ण उवाच

विद्यन्ते देवताः पुण्याः श्रावण्यो नाम पांडव । ब्रह्मणा प्रथमं सृष्टा नियोगश्च जने कृतः ॥२
यो यद्वदति लोकेस्मिन्द्युभं वाप्यथ वाशुभम् । श्रावयंति हि तच्छीत्रं द्वाहाण्यः कर्मगोचरम् ॥३
जातास्त्रिलोके पूज्यास्तु नियमेन प्रजापते । द्वूराच्छृवणविज्ञानं द्वूरादर्शनगोचरम् ॥४
तासामस्तीह सा शक्तिरचिन्त्या तर्कहेतुभिः । नरैत्युष्टैश्च दत्प्रोक्तं कार्यकार्यस्य कारणात् ॥५
दद्वृष्ट्यदंति यतः पार्थ नैकाः श्रावणिका मताः । यथा देवा यथा दैत्या यथा विद्याधरा नराः ॥६
यथा हि सिद्धगंधर्वा नागाः । किंपुरुषाः खगाः । राक्षसाश्च पिशाचाश्च देवानामष्ट्योनयः ॥

तथैताः पुण्यनामान्नो वंद्याः श्रावणिकाः स्मृताः ॥७.

ता समुद्दिश्य कर्तव्यं ब्रतं नारीनरैरिह । किं तु तासां महोर्यं तु ब्रतं संयमनं नदा ॥८
आद्याय धूपं पक्वाक्षं जलं चागन्धमेव च । दातव्या पुनरन्यातां नारीणां भोज्यपारणा ॥९
अदन्त्या यदि मृत्युः स्थादन्तरालेऽपि पाण्डव । तदा लग्नग्रहैर्प्रस्ता लग्ना हृपरिकारटम् ॥
सफेनिलैर्मुखै रौद्रैर्मिश्रियन्ते नीचदुःखिताः ॥१०

श्रूयते हि पुरा पार्थ पृथिव्यां नहुषो नृपः । तस्य भाद्रो नहादेवी जयश्रीनर्तमि भारत ॥११
प्रत्यक्षरूपसंपन्ना दर्शनीयतरा शुभा । पीवरोरुस्तना इयामा मृदुकुञ्चितमूर्द्धजा ॥१२
शब्दगद्गदसंभाषा मत्तमातंगामिनी । यथारूपा तथा शीला सती चेष्टा महीतले ॥१३

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव! पुण्य रूप श्रावणी नामक देवताओं की भी स्थिति लोक में है ही जिन्हें सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने उत्पन्न कर इस लोक के आप के प्राणी के (द्रष्टा) के रूप में नियुक्त किया है । इस लोक में प्राणी जो कुछ शुभ-अशुभ कहता है, उसे वे ब्रह्मा को शीघ्र सुनाती हैं । अतः वे त्रिलोक की पूज्य हैं । उन्हें सभी के द्वार से श्रवण विज्ञान और दूर से ही दर्शन भी होते हैं इसलिए उनलोगों की शक्ति तर्क (उहापोह) अथवा हेतुकारण, द्वारा अनुमेय नहीं है । पार्थ! अपने कार्यकार्य कर्तव्य के अनुसार प्रसन्न होकर मनुष्यों द्वारा कही गयी वातों को वे एक ही नहीं अपितु सभी श्रवणिकायें सुनती हैं । जिस प्रकार देव, दैत्य, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, नाग, किंपुरुष (किन्नर), नाग, राक्षस और पिशाच देवों की आठ योनियाँ बतायी गयी हैं, उसी भाँति वंदनीय तथा ये पुण्य नाम वाली श्रवणिका भी हैं । उनके उद्देश्य से इस लोक में नारी-नर सभी को ब्रतानुष्ठान करना चाहिए । किन्तु उनके उस महान् उग्र ब्रत को संयम पूर्वक सुसम्पन्न करते हुए धूप, अक्रान्त जल और सुगन्ध पारण भोजन के समय पुनः अन्य स्त्रियों को अर्पित करे । २-१। पाण्डव! उस समय यदि उपरोक्त वस्तुओं के दान के पूर्व मृत्यु हो गयी, उस समय की घटना के कारण उसके मुख का आकार भीषण एवं उससे फेनिल फेन की भाँति लार टपकते हुए उस नीच की दुःखद मृत्यु होती है । पार्थ! पहले समय में इस वसुधा के अधीश्वर राजा नहुष थे । उनकी प्रधान रानी का नाम जयश्री था । भारत! उसका रूप-लावण्य अनुपम होने के नाते वह अत्यन्त दर्शनीय एवं कल्याण मूर्ति थी । उसके उरु और स्नाव स्थूल, स्वयं श्यामा, कोमल एवं टेढ़े शिर के बाल थे । गद्गदवाणी में शब्दोच्चारण करने के नाते उसकी भाषा मुश्य करने वाली थी और मतवाले गजराज की भाँति गमन करने वाली थी । इस धरातल पर जिस भाँति

सा कदाचिद्गता स्नातुं गङ्गायां चाश्रमे मुनेः । बशिष्ठस्य ददर्शीथ सतीं भार्यासरुधतीम् ॥१४
भोजयतीं मुनीनां तु पत्नीर्नानाश्रभोजनैः । तया च प्रणिपत्याथ पृष्टा देव्या महासती ॥१५
पूज्यं भगवति शूहि किमेतद्व्रतमुच्यते ॥१६

अरुन्धत्युवाच

जयश्रिये शृणुच्च त्वं नाम्ना श्रावणिकाद्रत्म् । एतद्वृत्ता समाख्यातं वशिष्ठेन महर्षिणा ॥१७
गूढं ब्रह्मर्षिसर्वस्वं मुरतिव्रतम् शुभम् ! गच्छ वा तिष्ठ वा राज्ञि त्वातिथ्यं करोम्यहम् ॥१८
एवमुक्ता जयश्रीस्तु भोज्ये तस्मिन्यदृच्छया । बुभुजे सापि तत्रैव अरुन्धत्या कृताद्वरा ॥१९
भुक्तव्यादस्य जगामाद्य स्वपुरं परमेश्वरम् । कालेन विस्मृतं तस्यास्तद्व्रतं तस्य भोजनम् ॥२०
ततस्तु त्तमये पूर्णे न्रियमाणा महासती । जयश्रीर्घर्धरं गंतुं कुर्वणा कंठगदगदम् ॥२१
फेनं लालाविलाद्वकादुदिग्रान्तीं मुहुर्मुहुः । स्थिता पञ्चदशाहानि बीभत्सा दाशनानाम् ॥२२
ततः षोडशके प्राप्ते दिने स्वयमरुधती । प्रविश्याम्यतंरं पूर्णं तां राजीमवलोक्य च !! ॥२३
नहुषाय समाचख्यौ यदुक्तं श्रावणी व्रते ॥२४
तच्छ्रुत्वा नहुषो राजा द्रुतं भोज्यं प्रचक्रमे । यथोक्तं तदरुधत्या यच्च यावदभीप्सितम् ॥२५
दद्वा च करकानष्टौ तामुद्दिश्य जयश्रियम् । क्षणाञ्जगाम पञ्चत्वं करकाणां प्रदानतः ॥२५

वह रूप शील से विभूषित थी उसी भाँति वह महासती भी थी । एक बार गंगा स्नान के लिए प्रस्थान कर उसने गुरु एवं मुनि वशिष्ठ जी के आश्रम में जाकर उनकी धर्म पत्नी एवं सती मूर्ति अरुन्धती का दर्शन किया । उस समय अरुन्धती अनेक भाँति के अन्न भोजनों द्वारा मुनि पत्नियों को संतृप्त कर रही थीं । उसी बीच देवी जयश्री ने महासतीं अरुन्धती से विनय-विनश्च प्रश्न पूछा कि—भगवति! आज यह कौन पूज्य व्रत है, जिसे आप तुष्ट्या से सुसम्पन्न कर रही हैं ! मुझे बताने की कृपा करें । १०-१६

अरुन्धतीं बोली—जयश्रिये! मैं तुम्हें इस श्रावणिका की व्याख्या मुना रही हूँ, सावधान होकर सुनो! मेरे पति वशिष्ठ महर्षि ने इसे मुझे बताया था । यह व्रत अत्यन्त रहस्य पूर्ण, ब्रह्मचर्य का सर्वस्य, एवं अत्यन्त शुभ पतिव्रत धर्म है । राज्ञि! जाना चाहती हो तो, जाओ अथवा ठहरो । मेरा आतिथ्य सत्कार स्वीकार करो । अरुन्धती के इस प्रकार कहने पर जयश्री ने सहर्ष उस भोज में सम्मिलित होकर उनके उस सादरसत्कार को स्वीकार किया । भोजनोपरांत वह अपनी उत्तम पुरी अयोध्या को लौट आई । इससे देहावसान के समय वह महासती जयश्री धाघरा नदी के तट पर स्थित रह कर उसी के पवित्र जल से अपने कंठ को गन्ध करती रही, किन्तु उसके मुख से बार-बार केनिल लार टपक रहा था । पन्द्रह दिन वहाँ निवास करने पर उसका मुख अत्यन्त वीभत्स एवं भयानक हो गया था । उसकी उस घोर पीड़ा को सुनकर सोलहवें दिन महासती अरुन्धती स्वयं वहाँ आई और कफ पूर्ण ढंग से धुरधुर शक करती हुई उस रानी की पीड़ा का कारण उन्होंने राजा नहुष से श्रवणिका व्रत विषयक पूर्वोत्तर सभी बातें बतायी । १७-२३ । उसे सुन कर राजा नहुष ने अरुन्धती के आदेशानुसार उनके मनोनीत वस्तुओं का (अत्यन्त्सीघ्र) भोज्य आरम्भ किया और रानी जयश्री के उद्देश्य से आठ करवों के दान सुसम्पन्न किया । उसी करवों के प्रदानानन्तर क्षण मात्र में रानी का निधन हुआ । सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण

जगाम शक्तलोकं सा विमानेनार्कवर्चता । दोधूयमाना चमरैः स्त्रूयमाना सुरासुरैः ॥२६

श्रीकृष्ण उवाच

मार्गशीर्षादिप्रातेरु द्वादशस्वपि पाण्डव । द्रव्यप्राप्तिश्च भक्तिश्च दानकाले प्रशस्यते ॥२७
 भुक्तदा यज्ञे चतुर्दश्यामष्टम्यां वा युधिष्ठिर । व्रती स्नात्वा तु पूर्वाह्ने नद्यादौ विमले जले ॥२८
 आमन्त्रयेदृशैकैका लारीगौरीस्त्वरूपिणीः । यताचाराः सुवेषाऽच लाहृणीर्वा स्वगोत्रजाः ॥२९
 द्वादश लाहृणांस्तत्र वेदवेदाङ्गपाराम् । मन्त्रज्ञनितिहासजानुपसान्तःञ्जितेन्द्रियान् ॥३०
 सर्वं दद्याद्विधानेन पावकालनपूर्वकम् । चन्दनेन सुगन्धेन पुष्पधूपादिना तथा ॥३१
 ग्रीवासूत्रकसिन्दूरकुद्धुमेन च भूययेत् । तासामग्ये प्रदातस्य वर्द्धन्यो द्वादशैव तु ॥३२
 अच्छिद्वा जलपूर्णास्तु सुवृत्ताः सूत्रवेष्टिताः । सोहालकादिभिर्श्छन्नाः पुष्पमालाविभूषिताः ॥३३
 चन्दनेन समालब्धाः सहिरण्याः पृथक्पृथक् । तन्मध्ये वर्द्धनीं चैकां स्वके शीर्षं निवेशयेत् ॥३४
 स्थित्वा मण्डलके मध्ये यज्ञमानः स्वयं तदा । द्वात्मदे यज्ञ कौमारे वर्द्धके वापि यत्कृतस् ॥
 तत्सर्वं नाशमायातु पितृदेवर्णिणां नृणाम् ॥३५

इमा मे समयं स्वर्णं तारयस्व भवार्णवात् । अद्याहं गन्तुमिच्छामि विष्णोः पदमनुत्तमम् ॥
 एवमस्त्वति ता श्रूपः स्त्रियः सर्वा युधिष्ठिर ॥३६

विमान पर सुशोभित एवं देव और असुर द्वारा चलते हुए चामरों से सुसेवित होकर वह इन्द्रलोक पहुँच गयी । २४-२६

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! पाण्डव ! मार्गशीर्ष आदि बारहों मासों में दान के समय द्रव्य प्राप्ति और भक्ति दोनों प्रशस्त कहे गये हैं । चतुर्दशी अथवा अष्टमी के दिन यज्ञ में भोजन करने के उपरान्त उस व्रती को पूर्वाह्न के समय नदी आदि किसी जलाशय के निर्मल जल में स्नान करके दश स्त्रियों को आमन्त्रित करना चाहिए, जो एक-एक करके सभी स्त्रियाँ गौरी की भाँति सुरूपवती, सदाचारिणी एवं उनके वेष-भूषा उत्तम हों और ब्राह्मणी हों अथवा अपने गोत्र की । पुनः वेद-वेदाङ्ग निष्णात, मंत्र-इतिहास के मर्मज्ञ, उपदेश कुशल एवं जितेन्द्रिय बारह ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए । २७-३० । सर्वप्रथम उनके पाद प्रक्षालन करके चन्दन, सुगन्ध, पुष्प, धूप आदि द्वारा उन स्त्रियों के पूजन और कण्ठ सूत्र, सिन्दूर एवं कुंकुम से उन्हें विभूषित करके उनके सम्मुख बारह वर्द्धनी पात्र रखे, जो छिद्ररहित, जलपूर्ण, सुन्दर गोलाकार, सूत्र से आवेष्टित, सोहालक आदि से छिन्न, माला विभूषित, चन्दन-चर्चित और हिरण्य युक्त हों । पृथक-पृथक् उन्हें स्थापित कर पूजनोपरान्त यजमान उस मण्डल के मध्य में स्थित होकर मध्य की वर्द्धनी सिर में स्पर्श किये ऐसा कहे कि—बाल्य, कौमार एवं वृद्धावस्था में मैंने जो कुछ उत्कर्ष किया है, इस देव, ऋषि, पितृ एवं मनुष्यों के तर्पण द्वारा विनष्ट हो जाये । ये सभी वर्द्धनी पात्र मेरे देहावसान के समय इस संसार-सागर से मेरा उद्धार करें और मैं आज ही विष्णु के उस परमोत्तम लोक की प्राप्ति करना चाहता हूँ । ३१-३५ । युधिष्ठिर ! उस समय उन सभी स्त्रियों को 'एवमस्तु (ऐसा ही हो)' कहना

ततो ब्राह्मणमाहृग्य यजमान इदं वदेत् । ब्रूहि ब्राह्मण यन्मे त्वमधं येत् क्षयं व्लजेत् ॥३७
 उत्तीर्य श्रावणं सासं समुत्तारय साम्प्रतम् । उत्तारयेत मन्त्रेण ब्राह्मणो वर्धनीं च ताम् ॥३८
 उपोष्य शिरसो देव्याः समुत्तीर्य रुद्रुगात् । कटुकं निम्बवृक्षं वा ततो मधुकमारुह ॥
 ततो गच्छ महादेवं श्रवणे श्रवणोत्समे ॥३९

इति वर्धनिकोत्तारणमन्त्र

एवं तः समयं प्रोच्य दत्त्वाशीर्वचनानि च ॥४०
 तां वर्द्धनिकामेकान्ते विप्राय प्रतिपादयेत् । गृहीत्वा करकान्नार्थ्ये व्लजेतुः स्वेषु वेशमसु ॥४१
 यजमानोऽपि यातासु यथेष्टं कामनादरेत् । एवमाचरते पार्थ श्रावणीन्रतमादरात् ॥४२
 तस्य काले तु सम्प्राप्ते सुखं मृत्युः प्रजायते । निर्वाधिर्नीरुजो भोजी स्थित्वास्थित्वा शतं सुखम् ॥४३
 पुत्रपौत्रसमृद्धचादौ भुक्त्वा सर्त्यसुखानि च । रुद्धलोकमवाप्नोति सोमलोकं स गच्छति ॥४४
 स्त्रीणां तुल्यं स हीनोऽपि व्रती व्रतफलं व्लजेत् । गौरीभोज्येषु दत्तेषु एकादशसु यत्कलम् ॥४५
 तदेकेनाति लभते पार्थ श्रावणिकाव्रते । भक्त्या गच्छन्ति ते लोकान्विहृत्य सुखमादरात् ॥४६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादे
 श्रावणिकाव्रतं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः । १५

चाहिए । अनन्तर यजमान उन ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे कहे कि—ब्राह्मण ! जिसके द्वारा मेरा पाप नष्ट हो सके, कहने की कृपा करें और इस समय इस श्रावण मास (वर्द्धनी) को मेरे शिर से उतारने की भी । उस समय ब्राह्मणों को मन्त्रोच्चारण पूर्वक यजमान के शिर से उस वर्द्धनी को उतारना चाहिए और उतारते समय उन्हें ऐसा कहना चाहिए कि—उपवास पूर्वक तुम देवी के शिर से उतर कर कटुक और नीम के वृक्ष पर आरोहण कर पुनः मढ़ए के वृक्ष पर आरोहण करो । तदुपरान्त श्रवणोत्सम महादेव श्रवण की प्राप्ति करो । इस प्रकार प्रतिज्ञा रूप में कहकर आशीर्वाद देने के उपरान्त एकान्त में वर्द्धनी किसी ब्राह्मण को समर्पित करे । पश्चात् वे स्त्रियाँ करवो के ग्रहण पूर्वक अपने-अपने घर को प्रस्थान करें । तथा यजमान भी उन स्त्रियों के जाने के अनन्तर यथेच्छ कार्य प्रारम्भ करे । पार्थ ! इस प्रकार सादर इस श्रावणी व्रत को सुसम्पन्न करने पर देहावसान समय उसकी सुख पूर्वक मृत्यु होती है । व्याधिरहित अनेक भाँति के सुखों के उपभोग अपने पुत्र-पौत्रादि परिवार समेत करने के उपरान्त उसे रुद्ध लोक और चन्द्रलोक की क्रमशः प्राप्ति होती है । स्त्री रहित होने पर भी उस व्रती को स्त्रियों के तुल्य ही व्रत-फल की प्राप्ति होती है । पार्थ ! गौरी प्राप्ति के भोज्य में जाने वाले उन एकादश फलों के एक ही फूल प्रदान द्वारा भक्ति पूर्वक उस श्रावणिका व्रत को सुसम्पन्न करने पर उसे समस्त लोकों के विहार पूर्वक उत्तम लोक (मोक्ष) की प्राप्ति होती है । ३६-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
 श्रावणिका व्रत वर्णन नामक पञ्चानवेवाँ अध्याय समाप्त । १५।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथ नक्तोपदासस्य विधानं शृणु पाण्डव । येन विज्ञातमात्रेण नरो मोक्षमवाप्न्यात् ॥१
 येषु तेषु च सासेषु शुक्लपक्षे चतुर्दशीम् । ब्राह्मणं भोजयित्वा तु प्रारभेत ततो व्रतम् ॥२
 मासिमासिं भवन्ति द्वावष्टम्यौ च चतुर्दशी । शिवार्चनरतो भूत्वा शिवध्यानैकमानसः ॥
 दमुधाभाजनं कृत्वा भुज्जीयाशक्तभोजनम् ॥३
 उपवासात्परं भैश्यं भैश्यात्परमयाचित्तम् । अयाचितात्परं नक्तं तस्मान्तक्तेन भोजयेत् ॥४
 देवैश्च भुक्तं पूर्वाह्वाणे मध्याह्वे मुनिभिस्तथा । अपराह्वे च पितृङ्गिः सन्ध्यायां युह्यकादिभिः ॥५
 सर्वलोकानतिकम्य नक्तभोजी सदा भवेत् । हविष्यभोजनं क्षानं सत्यमाहारलाघवम् ॥६
 अत्रिकार्ये ह्राधःशय्यो नक्तभोजी सदा भवेत् । एवं संदत्सरस्यांतं व्रतपूर्णस्य सर्पिषा ॥
 पूर्णकुम्भोपरि स्थाप्य पूजयेच्च सुशोभने ॥७
 कपिलापञ्चगव्येन स्थापयेन्मृणमयं शिवम् । फलं पुष्टं यवक्षीरं दधिदूर्वाकुरांस्तथा ॥८
 तत्कुम्भानां जलोन्मिश्रमर्घमष्टांगमुच्यते । शिरसा धारयित्वा तु जानू कृत्वा महीतले ॥९
 महादेवाय दातव्यं गन्धपुष्टं यतोक्तमम् । भक्ष्यौदनैर्बलिं कृत्वा प्रणम्य परमेश्वरीम् ॥१०

अध्याय ९६

श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर संवाद

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! मैं तुम्हें उत्तम उपवास का वह विधान बता रहा हूँ, जिसके केवल ज्ञान मात्र से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होता है, सावधान होकर सुनो ! जिस किसी मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन ब्राह्मण भोजन पूर्वक उस व्रत का आरम्भ करना चाहिए। प्रत्येक मास की दोनों अष्टमी और चतुर्दशी के दिन सप्तम भगवान् शिव की अर्चना करते हुए उनके ध्यान एकाग्रचित्त होना चाहिए। अनन्तर ब्राह्मण भोजन कराकर स्वयं नक्त (स्त्रियाँ) भोजन करें। क्योंकि उपवास से भिक्षा के अन्न और उससे अयाचित एवं उससे नक्त परमोत्तम बताया गया है अतः नक्त भोजन सर्वथेष्ठ है। देवगण पूर्वाह्वा में, मुनिगण मध्याह्वा में, पितृगण अपराह्वा में और युह्यक आदि संघ्यां में भोजन करते हैं, इसलिए समस्त लोगों को (समय का) अप्रतिक्रमण कर सदैव नक्त भोजी होना चाहिए। नित्यस्नान, हविष्यान्न का लघु आहार, हवन एवं भूमिशयन नक्तभोजी के लिए परमावश्यक है। इस प्रकार इस धृत के व्रत सम्पूर्ण होने पर वर्ष के अन्त में सुशोभन जल पूर्वकलश के ऊपर स्थापित कर पूजा करनी चाहिए। १-७। उस समय कपिला गौ, शिव की मृणमयी प्रतिमा को स्थापन एवं पंचगव्य द्वारा स्नान पूजन करने के उपरान्त फल, पुष्ट, जवा, क्षीर, दही, कुश तथा सजल कुम्भ इन आठ वस्तुओं के मिश्रित अर्घ्य प्रदान करने के लिए उस कलश को शिर से स्पर्श किये दोनों घुटने पृथ्वी पर टेक कर महादेव जी के लिए क्रमशः अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। उपरान्त भक्ष्य-भात द्वारा परमेश्वरी को

धेनुं वां दक्षिणं द्वयाद्वृषं वाग्यि धुरंधरम् । श्रोत्रियाय दरिद्राय कल्पव्रतविदाय च ॥
 यो ददाति शिवे भक्त्या तत्य पुण्यफलं शृणु ॥११॥
 दिमानमर्कप्रतिमं हंसयुक्तमलङ्घतम् । आरुदोप्सरसां गीतैर्याति रुद्रालये सुखम् ॥१२॥
 स्थित्वा रुद्रस्य भवने वर्षकोटिशतत्रयम् । इह लोके नृपशेष ग्रामलक्षेभ्वरो भवेत् ॥१३॥
 यश्चाष्टमीषु च शिवासु चतुर्दशीषु नक्तं समाचरति शास्त्रविद्यानदृष्टम् ।
 स्वर्गांगनाकलरदाकुलितं दिमानमारह्य याति स सुखेन सुरेशलोकम् ॥१४॥
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे छण्डवतितमोऽध्यायः ॥१५॥

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

शिवचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु ज्ञावहितो राजन् वक्ष्ये माहेश्वरं ब्रतम् । त्रिषु लोकेषु विख्यातं नाम्ना शिवचतुर्दशी ॥१॥
 मार्गशीर्षश्योदश्यां सितायामेकभुजन्नरः । मासेष्वन्येषु वा राजन्पार्थं एवं न कारयेत् ॥२॥
 चतुर्दश्यां निराहारः समभ्यर्च्यं महेश्वरम् । सौवर्णं वृजभं दत्त्वा भक्ष्यामि च परेऽहनि ॥३॥
 एवं नियमकृत्सुप्तवा प्रातरत्थाय मानवः । कृतस्तन्नजपः पश्चादुमया सह शङ्करम् ॥४॥

सप्रणाम दलि प्रदान कर 'धेनु' दक्षिणा तथा उत्तम धुरंधर एक वृष (बैल) उस दरिद्र एवं कल्प ब्रत वेत्ता श्रोत्रिय को अर्पित करें। इस प्रकार भक्ति पूर्वक शिव जी को उपरोक्त वस्तुएँ अर्पित करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, कह रहा हूँ, सुनो! सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण, हंस युक्त एवं अलंकृत उस विमान पर सुखासीन होकर अप्सरा वृन्दों से सुसेवित होते हुए वह रुद्रलोक की प्राप्ति करता है। नृप श्रेष्ठ! वहाँ तीन सौ कोटि वर्ष तक सुखापभोग करने के अनन्तर इस लोक में वह लक्ष ग्रामों का अधीश्वर होता है। इस प्रकार अष्टमी और चतुर्दशी के दिन शास्त्र विद्यान द्वारा नक्त ब्रत को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी स्वर्गांगनाओं (अप्सराओं) के मधुरालाप से सुसम्मानित दिमान पर बैठ कर सुख पूर्वक इन्द्रलोक की प्राप्ति करते हैं । ८-१४

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में छानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

अध्याय ९७

शिवचतुर्दशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन! मैं तुम्हें वह माहेश्वर ब्रत बता रहा हूँ, जो तीनों लोकों में शिव चतुर्दशी के नाम से परम अस्यात है, सावधानतया सुनो! पार्थ! मार्गशीर्ष मास की शुक्लत्रयोदशी के दिन एकव्रती रहकर, जो कि किसी अन्य मास में करने के लिए निषेध किया गया है, चतुर्दशी के दिन उपवास पूर्वक भगवान् महेश्वर की अर्चना करके दूसरे दिन वृष (बैल) की सुवर्ण-प्रतिमा का दान करें । १-३। इस प्रकार नियम पालन करने वाले उस मानव को प्रातः काल उठकर ज्ञान-जप करने के पश्चात उमासमेत शंकर जी

पूजयेत्कुसुमैः शुक्लैर्गन्धैरूपानुलेपनैः ॥१४

पादौ नमः शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः । ललाटं तु त्रिनेत्राय नेत्राणि हरये नमः ॥१५
 मुखमिन्दुमुखायेति तथेशानाय चोदरम् । पार्वते चानंतधर्माय ज्ञानरूपाय वै कटिम् ॥१६
 ऊरु चानन्त्य वैराग्यं जानुनी चार्चयेद्बुधः । प्रधानाय नमो जंघे गुल्कौ व्योमात्मने नमः ॥१७
 ज्योमव्येमात्मरूपाय पृष्ठमभ्यर्चयेन्नरः । नमः सृष्टैँ नमस्तुष्टैँ पार्वतीं चापि पूजयेत् ॥१८
 ततश्च वृषभं हैममुदकुम्भसमन्वितम् : शुक्लमाल्यांबरयुतं पञ्चरत्नविभूषितम् ॥१९
 भक्ष्यैर्नानिदित्यैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । प्रीयतां देवदेवोऽत्र राद्योजातः पिनाकधृतः ॥२०
 पृष्ठदाय्यं च संप्राशय स्वप्यादृश्चभावुदड्मुखः । पञ्चदशयां ततः प्रातः सर्वमेतत्समाचरेत् ॥२१
 तर्दयित्वा ततोत्रेत्र ब्राह्मणाङ्गक्तिः शुभान् । सुहृत्पदातिसहितः पश्चाद्गूञ्जीत वाग्यतः ॥२२
 ततः कृष्णचतुर्दश्यमेतत्सर्वं समाचरेत् । चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्यात्पूर्ववर्दर्चनम् ॥२३
 ये च मासे विशेषाः स्युस्तान्निबोध क्रमादिह । मार्गशीर्षादिमासेषु स्वपञ्चतानुदीरयेत् ॥२४
 शंकराग नमस्तुष्म्यं नमस्ते करवीरक । त्र्यंबकाय नमस्तुष्म्यं महेश्वरमतः परम् ॥२५
 नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम् । नमः पशुपते नाथ नमस्ते शंभवे नमः ॥२६
 नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्द्धधारिणे । नमो भीमाय चोग्राय त्वामहं शरणं गतः ॥२७

की शुक्ल पृष्ठ, गन्ध, धूप एवं अनुलेपन (उपटन) समेत इनके द्वारा आराधना करे— ‘शिव को नमस्कार है, कहकर उनके चरण, सर्वात्मा को नमस्कार है, कहकर शिर, त्रिनेत्र को नमस्कार है, कहकर भाल, हरि को नमस्कार है, कहकर देश, चन्द्रमुख को नमस्कार है, कहकर मुख, ईशान को नमस्कार है, कहकर उदर, अनंत धर्म को नमस्कार है, कहकर दोनों पार्श्वभाग, ज्ञानरूप को नमस्कार है, नहकर कटि, अनन्त वैराग्य वो नमस्कार है, कहकर ऊरु और जानु (जंघे), प्रधान को नमस्कार है, कहकर जंघे, व्योमात्मा को नमस्कार है कहकर गुल्क, एवं व्योम और व्योमात्म रूप को नमस्कार है, कहकर पृष्ठ की अर्चना करते हुए (मनुष्य को), सृष्टि को नमस्कार है और तुष्टि को नमस्कार है, कहकर वे भगवती पार्वती की आराधना करनी चाहिए । ४-८। अनन्तर वृषभ (बैल) की सुवर्ण-प्रतिमा समेत जल कलश, जो शुक्लवर्ण की माला-वस्त्र, और पाँचों रत्नों से विभूषित किया रहता है, तथा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए । ९-१०। उस समय ‘इस कर्म द्वारा देवाधिदेव, एवं विनाकधारी शंकर प्रसन्न हों, कहकर दान करे और वृत का आशन कर उत्तराभिमुख भूमि में शयन करे । पुनः पञ्चदशी (पूर्णिमा) के दिन प्रातः समय उपरोक्त विधानों को सुसम्पन्न कर शुभमूर्ति ब्राह्मणों को यथाशक्ति अन्न भोजन से भलीभाँति संतुष्ट करें । अनन्तर मित्र-भृत्य के साथ स्वयं मौन होकर (वाक्संयमपूर्वक) भोजन करें । कृष्ण चतुर्दशी के दिन भी इसी विधान द्वारा इसे सुसम्पन्न करते हुए समस्त चतुर्दशी के दिन पूर्व की भाँति अर्चना करनी चाहिए । मास में जो विशेष करना होता है, उसे भी बता रहा हूँ, सुनो! मार्गशीर्ष आदि मासों में शयन के समय ऐसा कहना चाहिए । ११-१४। शंकर को नमस्कार है, करवीरक! तुम्हें नमस्कार है, अम्बक को नमस्कार है, महेश्वर को नमस्कार है, महादेव को नमस्कार है, स्थाणु को नमस्कार है, पशुपति को नमस्कार है, शंभु को नमस्कार है, परमानन्द को नमस्कार है, अर्धचन्द्रधारी को

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । पंचगव्यं तथा बिल्वं यवागूक्षीरवारिजम् ॥१८
 तिलांबं कृष्णान्विद्विवत्प्राचीनीयात्समुदाहृतान् । प्रतिमासं चतुर्दश्यामेकैकं प्राशनं स्मृतम् ॥१९
 मंदारैर्मालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि । सिंहवारैरसोकैश्च मल्लिकाकुञ्जपाटलैः ॥२०
 अर्कपुष्पैः कदंबैश्च शतपत्रैस्तदेत्पलैः । करवीरैश्च राजेन्द तथा पूज्यो महेश्वरः ॥२१
 एकैकेन चतुर्दश्यामर्चयेत्पार्वतीपतिम् । पुनश्च कार्तिके मासि संप्राप्ते तर्पयेद्द्विजान् ॥२२
 अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यर्वस्त्रैस्त्रियविभूषणैः^१ । कृत्वा नोऽन् वृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः ॥२३
 उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गदा सह । मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटामृतम् ॥२४
 सर्वोपस्करयुक्तायां शत्यायां विनिवेदयेत् । उदकुम्भयुतं तद्वच्छालितण्डुलसंयुतम् ॥२५
 स्थाप्य विप्राय शान्ताय वेदवत्पराय च । ज्येष्ठासामविदे देयं न च कुर्वन्ति ते वद्विचित् ॥२६
 अव्यङ्गय च सौम्याय सदा कल्याणकारिणे । सप्तनीकाय संपूज्य माल्यवस्त्रविभूषणैः ॥२७
 न वित्तशाठयं कुर्वीत कुर्वल्लोभात्पतत्यधः
 अनेन विधिना यस्तु कुर्याच्छ्वचतुर्दशीम् । सोऽश्वमेधसहस्ररथं फलं प्राप्नोति भानवः ॥२८
 ब्रह्महत्यादिकं पापं यदत्रामुत्र वा कृतम् । पितृभिर्मातृभिर्वापि तत्सर्वं नाशमाप्नुयात् ॥२९
 दीर्घयुरागोग्यकुलाभिवृद्धिरत्राक्षयान्त्र चतुर्भुजत्वम् ।
 गणाधिपत्यं दिवि कल्पकोटीः स्वर्गं उषित्वा पदमेति शम्भोः ॥३०

नमस्कार है, एवं भीम को नमस्कार है और उग्रदेव! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। गोमूत्र, गोमय, क्षीर, दही, धूत, कुशोदक, पंचगव्य, विल्वयवाग् (लप्सा) क्षीर, कमल, नाल, कृष्णतिल, का प्रत्येक मासों में क्रमशः सविधान आशन करना बताया गया है, प्रतिमास की चतुर्दशी के दिन क्रमशः उपरोक्त के आशन करते हुए मंदार, मालती, धत्तूर, सिंधवार, अशोक, चमेली, कुञ्ज, पोटल, अर्क-पुष्प, कदम्ब, कमल और करवीर (कनेर) पुष्पों द्वारा पार्वती पति की आराधना करते हुए व्रत की समाप्ति में कार्तिक मास के अवसर पर अनेक भाँति के अन्नों के भक्ष्य-भोज्य, वस्त्र, मालायें, और आभूषणों द्वारा ब्राह्मणों को संतुष्ट करना चाहिए। तथा वेद विधान द्वारा नीलवृषोत्सर्ग करते हुए उमा-महेश्वर और गौसमेत वृष की सुवर्ण प्रतिमा, जो आठ मुक्ताफल (मोती) के श्वेत नेत्र, धंटा भूषित एवं वस्त्राच्छन्न हों, तथा समस्त साधन सम्पन्न सुसज्जित शत्या उहें अर्पित कर साठी चावल युक्त जल कलश स्थापन-पूजन के उपरांत शात्, वेद-व्रत परायण किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करना चाहिए। जो प्रधान साम गायक, अव्यंग, सौम्य, सदा कल्याण कर्ता एवं सप्तनीक हों। माल्य वस्त्र, एवं आभूषणों द्वारा भूषित करने के उपरात उसे उपरोक्त के प्रदान से सुसम्मानित करे उस समय धन की कृपणता न करनी चाहिए, क्योंकि उससे उसका अधः पतन होता है । १५-२७। इस भाँति इस विधान द्वारा शिव चतुर्दशी व्रत को सुसम्पन्न करने पर उस मनुष्य को सहस्र अश्वमेघ यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। लोक-परलोक में पिता-माता द्वारा किये गये ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप भी विनष्ट हो जाता है । २८-२९। दीर्घयु, आरोग्य और अक्षीण कुल वृद्धि समेत सुखानुभव करने के उपरान्त देहावसान के समय गणाधिपत्य पद की प्राप्ति पूर्वक स्वर्ग में

१. माल्यानुलेपनैः ।

न बृहस्पतिरप्यत्मन्नरस्य फलमिन्द्रो न पितामहोऽपि वक्तुम् ।

न च सिद्धगणोऽप्यलं वाहं यदि जिह्वायुतकोटशपीह वक्त्रे ॥३१

भवत्यमरदल्लभः एठति यः स्मरेद्वा सदा शृणोत्यपि विमत्सरः सकलपापनिर्मोचनीम् ।

इमां शिवचतुर्दशीमभरकामिनीकोट्यः स्तुवंति द्विवि नदिताः किमु समाचरेद्यः सदा ॥३२

या पार्थं नारो कुरुतेऽतिभक्त्या भर्तारमपृच्छथ शुभं गुरुं दा ।

सापि प्रसादात्परमेश्वरस्य परं पदं याति पिनाकपाणेः ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरएवंणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

शिवचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ।९७

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

फलत्यागचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तथा सर्वफलत्यागमाहात्म्यं शृणु भारत । यदक्षयं परे लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥१

मार्गशीर्षं शुभे मासि चतुर्दश्यां धृतव्रतः । आरंभे शुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥२

अन्येष्वपि तु मासेषु अष्टम्यां नरसत्तम । सदक्षिणापायसेन शक्तिः पूजयेद्द्विजान् ॥३

अष्टादशानां धान्यानामन्यत्र फलमूलकम् । वर्जयेदब्दमेकं तु विधिनैषधकारकम् ॥४

पितामह, और सिद्धगण नहीं कर सकते हैं तथा किसी के मुख में दशशहस्र जिह्वा हो जाये तथापि वह भी असमर्थ होगा । मत्सरहीन होकर इसके स्मरण या श्रवण करने से समस्त पातक की मुक्ति पूर्वक उस पुरुष की देवाङ्गनाएँ सदैव सेवा प्रति करती हैं और जो इसे सुसम्पन्न करता है, उसे क्या कहा जा सकता है । पार्थ! अपने भर्ता अथवा गुरु आदि थेष्ठ लोगों की आज्ञा प्राप्त कर भक्ति पूर्वक इसे सुसम्पन्न करने वाली कभी भी परमेश्वर पिनाकपाणि (शिव) के प्रसाद से उनका लोक प्राप्त करती है । ३०-३३

श्रीभविष्यमहापुराण में शिव चतुर्दशी नामक व्रत वर्णन नामक सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त । ९७।

अध्याय ९८

फलत्याग चतुर्दशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भारत! मैं तुम्हें समस्त फल त्याग का महत्व बता रहा हूँ, जो समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक परलोक के लिए अक्षय रहता है । सावधान होकर सनो! मार्गशीर्ष मास की शुक्र चतुर्दशी के दिन व्रत के नियम-पालन पूर्वक ब्राह्मण द्वारा कथा श्रवण करना चाहिए । नरसत्तम! अन्य मास में भी अष्टमी के दिन दक्षिणा समेत पायस भोजन द्वारा ब्राह्मणों को पूजित करते हुए संतृप्त करना चाहिए । १-३। इस व्रत नियम के पालन में एक वर्ष तक अठारह प्रकार के धान्यों के फल-मूल का सेवन न

ततः संवत्सरस्याते चतुर्दशष्टमीनु च । अशक्तश्च व्रतं कर्तुं नहसैव प्रमुच्यते ॥५
 सौवर्णं कारयेद्गुदं धर्मराजं तथैह च । कूम्बाण्डं मातुलुङ्गं च वृत्ताकं वनसं तथा ॥६
 आग्नातकपित्थं च कलिंगं सर्ववाशकम् । श्रीफलं सवटाभ्वत्थं जंबीरं कदलीफलम् ॥७
 बदरं दाढिमं शक्त्या कार्याप्येतानि षोडश । मूलकामलकं जंबुपुङ्करं करमर्दकम् ॥८
 उदुम्बरं नालिकेरं दाढ़ा च बृहतीद्वयम् । कंकाली कांक्तुंडीरं करीरकुदजं शमी ॥९
 रौण्डाणि कारयेच्छक्त्या एलानोमानि षोडश । ताम्रं तालफलं कुर्यादिगस्त्यफलमेव दा ॥१०
 पिण्डीरकं च खज्जुंरं तथा सूरजं कंदकम् । पत्नसं लकुन्नं चैव कर्कटं तिंतिडिं तथा ॥११
 चिन्नादल्लीफलं तद्वत्कूटशालमलिकाफलम् । मधूकं कारबेलं च वल्लीं दुष्पटोलकम् ॥१२
 कारयेच्छक्तिरो धीमान्कलान्वेतानि षोडश । उद्कुंभद्वयं कुर्याद्वान्योपरि सवाससम् ॥

पञ्चपत्रद्वयोपेतं यमरुद्रसमन्वितम् ॥१३

धेन्वा सहैव शांताय विप्रायाथ कुटुम्बिने । सप्तनीकाय सम्पूज्य पुण्येऽहन्ति निवेदयेत् ॥१४
 यथा फलेषु सर्वेषु वसंत्यनरकोट्यः । तथा सर्वफलत्यागाच्छिवे भक्तिः सदास्तु मे ॥१५
 यथा शिवश्च धर्मश्च स्तानन्तफलप्रदौ । तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे वरप्रदौ ॥१६
 यथा फलानां कामस्य शिवभक्तस्य सर्वदा । यथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि ॥१७
 यथा भेदं न पश्यामि शिवविष्णवर्कपद्मजाम् । तथा भमास्तु विश्वात्मा शङ्करः शंकरः सदा ॥१८
 इत्युच्चार्यं च तत्सर्वमलंकृत्य विभूषणैः । शक्तश्चेच्छयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥

करना चाहिए, किन्तु औषध रूप में सेवन करने के लिए निषेध नहीं है। अनन्तर वर्ष की समाप्ति में चतुर्दशी और अष्टमी के दिन व्रत रहने में असमर्थ होने पर उसे रुद, धर्मराज, कूम्बाण्ड, विजौरा नीदू, वृत्ताक, कटहल, आम, अनार, कैथ, कुटज, सर्व वारुक, श्रीफल (विल्व), वरगद, पीपल, जंबीर नीदू, केला, वेर, अनार, के फलों की सुवर्ण-प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए। उसी प्रकार मूलक, आँवला, जामुन, पुस्तकर, करमर्दक, गूलर, नारियल, द्राक्षा, दो भटुकटैया, कंकाली, कांक्तुण्डी, कंरीर, कुटज और सभी इन सोलहों फलों की चांदी की प्रतिमा तथा ताल फल, अगसुपे फल, पिंडीरक, खजूर, सूरज, कन्द, कटहल, बड़हर, कर्कटी, ईमली, चिन्नावेल्ली, कूट, सेमस्फल, महुआ, कारबेल, वल्ली, और गुदपटोल इन सोलह फलों की तौबे की प्रतिमा होनी चाहिए। धान्य के ऊपर वस्त्राच्छब्द करके दो जल कलश की स्थापना पूर्वक दो पक्ष पात्र युक्त रुद और यम की प्रतिमा तथा नौ पूजनोपरांत शांत एवं कुटुम्बी किसी ब्राह्मण दम्पती को उस पुण्यहित सादर समर्पित करके क्षमा याचना करते हैं। ४-१४। जिस प्रकार सभी फलों में करोड़ों देवगण निवास करते हैं, उसी प्रकार समस्त फलों के त्याग करने पर शिव में मेरी अत्य भक्ति सदैव बनी रहे। शिव और धर्मराज सदा अनन्त फल दायक कहे जाते हैं, इसलिए उक्त फल प्रदान पूर्वक वे दोनों मेरे लिए वर प्रदान करते रहे। जिस प्रकार शिव भक्त को यथेच्छ फलों की प्राप्ति सदैव होती रहती है, उसी प्रकार मुझे भी प्रत्येक जन्म में अनन्त फलों की प्राप्ति होती रहे। शिव, विष्णु, सूर्य और लक्ष्मी में मुझे कभी-भी भेद संदेह नहो, इसके लिए विश्वात्मा भगवान् शंकर मेरा सदैव कल्याण करते रहे। १५-१८। ऐसा कहकर भ्रूषण-भूषित उपरोक्त के दान करें। सशक्त रहने पर समस्त साधन सम्पन्न एवं

अशक्तस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः ॥१९

तथोदकुभसहितौ शिवधर्मौ च काञ्चनौ । विप्राय दत्ता भुञ्जीत तैलक्षारविवर्जितम् ॥

अन्यानपि यथा शक्त्या भोजयेदिद्वजपुञ्जदत् ॥२०

न शक्तोति विहातुं चेत्सर्वाण्यदि फलान्युत । एकमेव परित्यज्य तदित्थं प्रतिपादयेत् ॥२१

एतत्यागव्रतानां तु गवे वैष्णवयोगिनाम् । शस्तं सर्वफलत्यात् व्रतं वेदविदो विदुः ॥२२

नारीभिश्च यथाशक्त्या कर्तव्यं राजसत्तम ॥२२

नैतस्मादपरं किञ्चिदिह लोके परत्र च । ऋतमहित मुनिश्चेष्ठ यदन्नं तत्कलप्रदम् ॥२३

सौवर्णरौप्यताम्रेषु यावतः परमाणवः । भवन्ति चूर्यमाणेषु फलेषु नृपसत्तम् ॥

तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥२४

एतत्समस्तकलुषापहरं जनानामाजीवनाय भनुजेश्वर सर्वदा स्यात् ।

जन्मान्तरेष्वपि न पुत्रकलत्रदुःखमाप्नोति धाम स पुरंदरजुष्टमेव ॥२५

यो वा शृणोति पुरुषोल्यधनो नरो वा यो ब्राह्मणस्तु भवनेषु च धार्मिकाणाम् ।

पापैर्विमुक्तश्च पुरं मुरारेनानंकृत्यरमुपैति नरेन्द्र सोऽपि ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

फलत्यागचतुर्दशीव्रतवर्णनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः । १८

सुसज्जित शश्या भी समर्पित करनी चाहिए और अशक्त रहने पर सविधान उपरोक्त फलों को भी । जल कलश समेत शिव और धर्मराज की सुवर्ण-प्रतिमा के दान करने के अनन्तर तेल और क्षार रहित भोजन करे । यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणों को भी भोजनों द्वारा संतुप्त करे और समस्त फलों के त्याग में असमर्थ होने पर ही फल का त्याग करे और कहे भी कि गौ, के निमित्त इसके त्याग एवं व्रत करने वाले वैष्णव योगियों के समस्त फलत्याग शास्त्र में बताये गये हैं ऐसा वैदिक विदानों का निश्चय है । राजसत्तम ! स्त्रियों को भी यथाशक्ति इस व्रत को सुसम्पन्न करना चाहिए । मुनिश्चेष्ठ ! लोक तथा परलोक में इसके समान कोई अन्य व्रत नहीं है, जिसमें अन्य दान द्वारा उपरोक्त फल की प्राप्ति हो सके । नृपश्चेष्ठ ! सुवर्ण, चाँदी, और ताँबे के परमाणु और फलों के पूर्ण की संख्या के सहस्रों युग रुद्र लोक में वह सम्मानित होता है । इस प्रकार महेश्वर ! समस्त पाप नाशक इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह व्रती आजीवन सुखीं रहता है और कालान्तर में भी पुत्र-स्त्री, विषयक दुःख न होकर उसे इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है । धार्मिकों के मन्दिरों में इसके श्रवण करने वाले अल्पधार्मिक पुरुष, ब्राह्मण और इसे सुसम्पन्न करने वाला नरेन्द्र भी समस्त पापों की मुक्तिपूर्वक मुरारिकृष्ण लोक को प्राप्त करता है । १९-२६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में

फलत्याग चतुर्दशी व्रत वर्णन नामक अठानवेवाँ अध्याय समाप्त । १८।

अथ नवनवतितमोऽध्यायः

पौर्णमासीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

**पौर्णमासी महाराज सोमस्य दयिता तिथिः । पूर्णमासो भवेद्यस्यां पौर्णमासी ततः सूता ॥१
पौर्णमास्यां च सञ्जातः सङ्ग्रामो जयलक्षणः । सोमस्यारिदुर्धैः सार्हं सर्वसत्त्वभयङ्करम् ॥२
तारायां चन्द्रमाः सत्त्वस्तस्या भर्ता वृहस्पतिः । तयोरभून्महायुद्धं भार्याकृत्येषु वै पुरा ॥३**

युधिष्ठिर उवाच

तारा कस्य सुता कस्मात्स कुद्धः समुरारिहा । सोमेन सह सङ्ग्रामं चक्रे चक्रगदाधर ॥४

श्रीकृष्ण उवाच

**प्रजापतेरभूत्कन्या तारा वृत्रस्य चातुजा । तां वृहस्पतये प्रदातृथिव्यामेकमुन्दरीम् ॥५
देवाचार्याय सा भार्या त्वनिर्देश्या तथाविधा । ल्लेणाभ्यां रूपवती सा निर्धूय व्यदस्थिता ॥६
वृहस्पतिं पर्यचरद्यथा चान्याः स्त्रियः क्वचित् । तां ददर्शायतापाङ्गीं तन्वङ्गीं चारुहासिनीम् ॥७
शीतांशुर्दशादेव कामस्य वशमीयिवान् । आबभाषे च मधुरं तारे एहोहि मा चिरम् ॥८
इङ्गिताकारकुशला तारा सोमस्य चेष्टितम् । बुद्धा शुद्धिमथो तन्वी प्राहेदं मधुराक्षरम् ॥९**

अध्याय ९९

पौर्णमासीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! पूर्णिमातिथि चन्द्रमा को अत्यन्त पवित्र है क्योंकि पूर्णमासी तिथि वहीं होती है जिसमें मास की पूर्ति हो और इसी पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा का देवों के साथ जयसूचक संग्राम हुआ था । जो समस्त प्राणियों के लिए भयावह था । पहले समय में तारा में प्रसक्त होने के नाते चन्द्रमा से और उसके पति वृहस्पति से भी यहाँ घोर संग्राम हुआ था । १-३

युधिष्ठिर ने कहा—चक्र एवं गदाधारी भगवन्! तारा किसकी पुत्री है और देवों समेत अपने शत्रु हन्ता वृहस्पति ने कुद्ध होकर चन्द्रमा के साथ घोर युद्ध क्यों किया । ४

श्रीकृष्ण बोले—प्रजापति (ब्रह्मा) की पुत्री जो वृत्रासुर की कनिष्ठा भगिनी है 'तारा' नाम से विख्यात है । उस त्रैलोक्य सुन्दरी को उन्होंने देवों के आचार्य वृहस्पति को सविधान अर्पित किया । यद्यपि उस सुन्दरी तारा के रूपलावण्य द्वारा वे दोनों अत्यन्त मदन व्यथित थे तथापि वह अन्य स्त्रियों की भाँति वृहस्पति की सेवा करती थी । उस विशाल लोचना को, जो सौन्दर्य के निधान एवं मुग्धहास करने वाली थी, देखते ही चन्द्रमा काम पीडित होने लगे । उन्होंने संकेत करते हुए उससे मधुर शब्दों में कहा—तारा! आओ, आओ! विलम्ब न करो । ५-८। इंगित आकार समझने वाली उस कुशल तारा ने

मुनेरंगिरसः पुत्रस्त्वं च सौम्योऽसि सोमराट् । अङ्गिरसो मुनेर्वीर सुषाहमुचितं न ते ॥
 सह सौम्येन यो योगस्तद सिद्धोऽभुतो महान् ॥१०
 अंगिरास्त्वां किल पुरा सुसुरासुरराक्षसैः । राजत्वे स्थापयामास नैतत्स्मरसि किं विधो ॥११
 कथमद्य निशानाथ हृनज्ञेनासि पीडितः । तस्माद् ब्रवीमि सिद्धिं हे रोचये घटितं कुरु ॥
 परचत्यस्मि भद्रं ते न गम्यास्मि दुधोत्तम ॥१२
 एवमुक्तस्तथा चासौ न चैतकृतवांस्ततः । गृहीत्वाकर्षयामास सोनोऽनज्ञवशीकृतः ॥१३
 बृहस्पतिस्तु तां ज्ञात्वा स तं सोनमग्न्यत् । प्रेषियष्यति मे भार्या स्वयमेव मम!न्तिकम् ॥१४
 एवं चिरेण विज्ञाय बृहस्पतिरहदारधीः । नासताद स्वकां भार्या रोजातप्रसुरिताधरः ॥१५
 आचल्यौ सर्वमिन्द्राद्य सोमस्येदं विचेष्टितम् । इन्द्रः समाद्वयामास देवानृषिगणांस्तथः ॥१६
 न सोनो गणयामास ततोऽबुध्यत देवराट् । आकार्य त्रिदशान्सर्वानाचल्यौ चन्द्रचेष्टितम् ॥१७
 तच्छुत्वा देवगंधर्वाः क्रोधान्धाः क्षुब्धमानसाः । प्रागृहीतप्रहरणा रथानामाशुरहः स्वकान् ॥१८
 सोमोऽपि देवान्सोद्योगऽन्नात्वा सुकृतनिश्चयान् । दैत्यदानवरक्षांसि समानीय व्यवस्थितः ॥१९
 आरुह्य च रथश्रेष्ठं युद्धयैव मनो दधे । प्रवृत्तं सुमहद्युद्धं शरतोमरकंपतैः ॥२०
 कौणपैः क्षमासुरैः शूलैर्देवदानवदारणम् । र तेषां सुमहद्युद्धं दत्त्वा तारागणाधिपः ॥

चन्द्रमा की उस चेष्टा को देखकर शुद्ध भावना से पूर्ण एवं मधुर अक्षरों में कहा—वीर! आप अंगिरा मुनि के पुत्र, सौम्य एवं सोमराट् हैं, और मैं भी उन्हीं अंगिरा मुनि की ही सूषा हूँ, अतः आप को मेरे साथ ऐसी चेष्टा करना उचित नहीं है । सौम्य होने के नाते ही आप की महान् एवं योग की सिद्धि हुई है—महर्षि-प्रवर अंगिरा ने देव, असुर और राक्षसों के लिए तुहें राज पद पर प्रतिष्ठित किया है, विधो! क्या इसका भी स्मरण नहीं हो रहा है! निशानाथ! आज आप काम-पीडित क्यों हो रहे हैं ॥९-१२। इसलिए मैं कह रही हूँ, आप का वह कार्य सिद्ध नहीं हो सकेगा । आप की जैसी इच्छा हो करें, किन्तु देवोत्तम! मैं पराये की हो चुकी हूँ, अब आप के साथ गमन करना उचित नहीं है । इस प्रकार तारा के कहने पर भी उन्होंने काम पीडित होने के नाते उस का कहना नहीं माना और उसे पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया । वृहस्पति ने उसे देखकर चन्द्रमा की बड़ी निन्दा की । अनन्तर बढ़त दिनों तक उन्हें यहीं निश्चय था कि—चन्द्रमा मेरी पत्नी स्वयं भेज देंगे । किन्तु चिरकाल की प्रतीक्षा के उपरांत भी उनके द्वारा माया के प्रेषण न करने पर उन्होंने अत्यन्त रुष्ट होकर, जिसमें उनके होंठ फड़क रहे थे, इन्द्र से चन्द्रमा की समस्त चेष्टाओं का विवरण निवेदन किया । उसे सुनकर देवराज ने समस्त देवों और क्रृषिगणों को अपने यहाँ, आवाहित किया । किन्तु इन्द्र को यह जानते देर नहीं लगी कि—चन्द्रमा ने मेरी आज्ञा की अवहेलना की है । उन्होंने समस्त देवों के समक्ष चन्द्रमा की उस अनीति का स्पष्ट विवेचन किया जिसे सुनकर देव और गन्धर्वगण क्रोधान्ध एवं अत्यन्त क्षुब्ध होकर अपने अस्त्र-शस्त्र समेत रथ पर बैठकर युद्धार्थ चल पड़े । चन्द्रमा ने भी युद्धोन्मुख देवों के निश्चय को भलीभांति जानकर दैत्य, दानव और राक्षसों को आवाहित कर रण की तैयारी की ॥१३-१९। एक परमोत्तम रथ पर बैठकर उन्होंने रण भूमि में पहुंचते ही संग्राम प्रारम्भ कर दिया । तारा गणाधीश्वर चन्द्रमा ने देव-दानवों के शर, तोमर, एवं शूलों! द्वारा प्रारम्भ उस

बभञ्ज देवान्सेन्द्रांश्च हिमवृष्टधा क्षपाकरः ॥२१
 स जित्वा देवगन्धर्दान्सोमो राजन्यसत्तम् । श्रिया परमया युक्तो यथा नान्यो हविर्भुजाम् ॥२२
 देवाश्च निर्जितास्तेन सोमेनाभितेजसा । आजगमः शरणं देवं शरणं स्वर्गवासिनाम् ॥२३
 इन्द्रः सर्वं समाचर्ष्यो सोमस्येदुग्धिचेष्टितम् । श्रुत्वा कुद्धो हृषीकेश आरह्ण गरुडं रुषा ॥
 गृहीत्वा 'चायुधं श्रेष्ठं युद्धायैव मनो दधे ॥२४
 प्रकर्तुं सुमहद्युद्धं चक्रशार्ङ्गदाधरः । जगाम विबुधैः सार्थं सोभस्योपरि रोषितः ॥२५
 विष्णुं विदित्वा संप्राप्तं सोमो दैत्यगणेः सह । युद्धाय समरामर्षी स्थितः 'प्रधमाय वारिजम् ॥२६
 स जित्वा देवसंघातं सेंद्रं^१ वायुपुरस्सरस् । विष्णुना सह संयुक्तं शस्त्रास्त्रैरसुभोजनैः ॥२७
 यदा नासावुपरमेद्युद्धाय सह विष्णुना । तदाऽद्वै रुषा विष्णुच्चकं क्रोधसमन्वितः ॥२८
 अथाह ब्रह्मा देवेशमजितं विष्णुमव्ययम् । योऽसौ मेघप्रपुष्टांगं यत्वा वच्चम निबोध तत् ॥२९
 नास्ति दध्यं त्रिभुवने चक्रस्यास्य तत्वानय । सोमो दिवाधिष्ठित्ये च भया समभिषेदितः ॥३०
 तस्माद्युज्यते देवकायेऽस्मस्तःद्विधीयताम् । अथाह भगवान्विष्णुः सुरब्रह्मिषसश्चिद्गौ ॥३१
 सिनीवाली कुहर्नाम तस्यां क्षपाकारः । विनष्टोऽपि पुनर्जन्म प्राप्त्यतीति न संशयः ॥३२

भयानक युद्ध में देवों का डटकर सामना करने के अनन्तर अपनी हिमवृष्टि द्वारा इन्द्रादि देवों को मर्माहत कर दिया । राजन्य सत्तम्! देव गन्धर्वों को पराजित करने पर हविभोक्ता अग्नि की भाँति उन्हें परमोत्तम श्री की प्राप्ति हुई । चन्द्रमा के तेज से आहत होने पर देवों ने स्वर्गवासियों के शरण भगवान् विष्णु की शरण में पहुँच कर चन्द्रमा की उस घृष्टता पूर्ण चेष्टा का विशद विवेचन किया और इन्द्र ने भलीभाँति उसका विवरण किया जिसे सुनकर भगवान् हृषीकेश ने रष्ट होकर अपने पुष्पक समेत गरुड वाहन पर बैठ कर युद्ध करने का निश्चय किया और भीषण युद्ध भारम्भ करने के लिए देवों समेत रणस्थल को प्रस्थान भी किया । युद्धार्थ रण भूमि में उपस्थित विष्णु को देखकर समरामर्षी चन्द्रमा ने भी दैत्यगणों समेत रणस्थल में पहुँच कर शंख ध्वनि द्वारा अपनी उपस्थित की सूचना दी । प्राण भक्षी शस्त्रास्त्रों द्वारा इन्द्र, वायु आदि प्रमुख देवों को पराजित कर उन्होंने विष्णु के साथ भी युद्ध करने के लिए निश्चय किया और उनके सम्मुख उपस्थित भी हो गये । चन्द्रमा को अपने साथ युद्ध स्थगित करते न देखकर भगवान् विष्णु ने अत्यन्त कुद्ध होकर उन पर प्रहारार्थ अपने चक्र को प्रहण किया । उस समय उन्हें कुद्ध देखकर ब्रह्मा ने देवेश, अजित एवं अव्यय भगवान् विष्णु से कहा—भगवान् अनन्द! आप मेघ में समान अत्यन्त पुष्ट अंगवाले हैं और इस चक्र द्वारा त्रिभुवन की रक्षा करते हैं अतः मेरी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देने की कृपा करें—मैंने चन्द्रमा को द्विजाधिष्ठित किया है । इसलिए देवकार्यार्थ युद्ध के लिए उपस्थित आप इस प्रकार का अनर्थ न करें । इसे सुनकर भगवान् विष्णु ने देवों और ब्रह्मिषयों के समक्ष कहा—सिनीवाली एवं कुह नामक अमावास्या तिथि के दिन यहाँ निशाकर चन्द्रमा नष्ट हो जायेगा और विनष्ट होकर पुनः नाम ग्रहण करेंगे इसमें संशय नहीं । २०-३२। राका (पूर्णिमा) को प्राप्त

१. विमलं चक्रम् । २. प्रधमातवारिजः । ३. विष्णुं चाभिप्रदुद्वे ।

राकां चानुभूतिं प्राप्य वृद्धिरस्य भविष्यति । आप्यायितश्च शुत्युतैः पितृपिण्डैः समन्वकैः ॥

ब्रह्मणीर्हव्यकव्यानि देवेभ्यः प्रतपयिष्यति ॥३३

वृद्धिः कृष्णेन चैवास्य न च जातस्य भूयसी । एवमेव विद्यर्द्धस्तस्याप्याय नमेव मे ॥३४

अमोघस्य न मोघत्वं भविष्यति कदाचन् । शप्तश्च सोमो दक्षेण स चादृयं भविष्यति ॥३५

सुदर्शनस्य च ग्रीतिरेवमेव भविष्यति । एवमस्त्विति देवेश यद्ग्रावान्पञ्चवीति वै ॥३६

ब्रह्मा प्रोवाच सोमं तु दिनीतवदुपस्थितम् । अर्दयस्त्र ग्रुरोर्भार्यां न कार्यं पुनरौदृशम् ॥३७

स तथोक्तः समानीय ददौ तारा बृहस्पते । पुनरुचे शशी स्पष्टं शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥३८

अस्यां गर्भोऽसीयोऽयं यदपत्यं ममैव तत् । बृहस्पतिरथोवाच मया गर्भः सनाहितः ॥३९

क्षेत्रे मदीदे चोत्यज्ञस्तस्मात्स मम एुत्रकः । उत्तं च वेद गास्त्रज्ञैर्क्षिभिर्दुर्भार्दिर्भिः ॥४०

उपतं वाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति । क्षेत्रिणस्तस्य तद्वीजं न बीजी फलभागभवेत् ॥४१

सम्यगुक्तं न भवता शशांकः प्राह तत्त्वविद् । माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव तः ॥

इति पौराणिकाः प्राहर्दुनयो च्यचक्षुषः ॥४२

विवदंतौ निवार्यथ ब्रह्मा प्रोवाच तां वधूम् । शनैरेकान्तनानीय गर्भोयं कस्य शंस मे ॥४३

एवमुक्ता तु सा तारा ह्रिया नोवाच किञ्चन । उत्सर्ज क्षणादगर्भं भाभासितमुरालयम् ॥४४

कर इनकी वृद्धि होगी । वृद्धि होने पर वे देवमंत्रो के उच्चारण पूर्वक ब्राह्मणों द्वारा दिये गये पिण्डदान को पिता गण और हव्यकव्य को देव लोग प्राप्त करेंगे । उत्पन्न होने पर इनकी वृद्धि कृष्ण पक्ष में न हो सकेगी । इस प्रकार के दृष्टिगोचर विधान में इनका अध्यापन (वृद्धि) भी ऐसा ही निर्मित है । और मेरे इस अमोघ (अस्त्रों) में कभी भी विफलता होना असम्भव है, किन्तु दक्ष द्वारा दिये गये शाप का फल भागी इन्हें अवश्य होना है ॥३३-३५। इसलिए इनका सुदर्शन प्रेम भी वैसा ही बना रहेगा । भगवान् देवाधीश के इस भाँति कहने पर ब्रह्मा ने कहा—देवेश! आप का सभी कहन परमोत्तम है । पुनः उन्होंने विनय-विनम्र उपस्थित उन चन्द्रमा से कहा—तुम गुरु बृहस्पति की भार्या लौटा दो और पुनः कभी ऐसा करने का उत्साह न करना, उन्होंने 'तथास्तु' कहकर तारा बृहस्पति को समर्पित कर दिया और उसी समय समस्त देवों के समक्ष यह भी कहा कि—इसमें जो गर्भ है वह मेरा है, अतः उत्पन्न होने पर वह संतान मेरी होगी । इसे सुनकर बृहस्पति ने भी कहा कि—गर्भ मेरी स्त्री में है, अतः मेरे क्षेत्र में उत्पन्न होने के नाते यह पुत्र मेरा होगा । क्योंकि वेद-शास्त्र के निपुण मर्मज ऋषियों ने कहा भी है कि—वायु द्वारा आहृत अथवा किसी प्रकार बोये गये बीज का अंकुर जिसके क्षेत्र में उत्पन्न होता है, वह बीज उसी क्षेत्र वाले का होता है न कि बीज बोने वाले का ॥३६-४१। इसे सुनकर तत्त्ववेत्ता शशांक ने कहा—‘आप ने भलीभाँति विचार कर नहीं कहा । क्योंकि नृप विशारद एवं पुराणमर्मज मुनियों ने वह बताया है कि—पुत्र की माता उसके पिता की भस्त्रा (माठी) के समान है, अतः उससे उत्पन्न होने वाला पुत्र पिता का ही होता है । ब्रह्मा ने इन दोनों विवाद निवारणार्थ तारा को एकान्त स्थान में ले जाकर उससे धीरे से कहा—मुझे बताओ, यह गर्भ किसका है! उनके ऐसा कहने पर तारा ने लज्जा वश नम्रमुख करके कुछ भी नहीं कहा । किन्तु उसी समय स्वर्ग को देवीप्यमान गर्भ का उत्सर्जन किया । ब्रह्मा ने उस पुत्र से कहा—पुत्र! आप किसके

तमुवाच ततो ब्रह्मा पुत्र कस्य सुतो भवान् । सोमस्याहं सुतो ब्रह्मनिति तथ्यं मयोदितम् ॥४५
 बुधोऽयं विबुधः प्राहुः सर्वज्ञानविदां दरः । गृहीत्वा पुत्रकं सोमो जगाम स्वं निवेशनम् ॥४६
 गुरुर्गृहीत्वा स्वां भार्या जगाम भवनं शनैः । सोमोऽपि तनयं लब्ध्वा हर्षव्याकुलमानसः ॥४७
 पौर्णग्रासी जमाल्याता प्राप्तपूर्णमनोरथा । प्राप्तः पुत्रो मया ह्यस्यां लब्धश्च विजयरत्था ॥४८
 तस्मादेनामुमासिष्ये विधिना व्रततत्परः । एवमन्योऽपि पूर्णार्थः पूर्णांशः पूर्णलक्षणः ॥४९
 यो मामक्यां तिथौ भक्त्या विधिवत्पूजयिष्यति । तस्य प्रसादभिमुखः सर्वदानप्रदो ह्यहम् ॥५०
 एवमेषा तिथिः पार्थ सोमस्य दयिता शुभा । पौर्णग्रासी रमाल्याता पूर्णोमासो भवेद्यथा ॥५१
 तदस्यां ज्ञोतसि द्वात्वा संतर्य एतृदेवताः । आलिख्य मंडले सोमं नक्षत्रैः सहितं विभुम् ॥५२
 पूजयेत्कुसुरैर्द्यैर्वैद्यैर्घृतपाचितैः । शुक्लक्षतैः शुक्लवस्त्रैः पूजयित्वा क्षनापयेत् ॥
 शकाहरणमुन्यन्नैनकं भुञ्जीत वाग्यतः ॥५३
 वस्त्रन्तबान्धव विधो शीतांशो स्वस्तिः नः कुरु । गगनार्णवमाणिक्यचन्द्रदाक्षायणीपते ॥५४
 'पक्षेषक्षे पौर्णमास्यां विधिरेष प्रकीर्तिः । कृष्णपक्षेऽपि यः करिच्चन्ध्रद्वावान्वै व्रती श्वेत ॥५५
 तस्याप्येष विधिः प्रोक्तः सर्वसौख्यप्रदायकः । आमावस्या तिथिरियं पितृणां दयिता सदा ॥
 अस्यां दत्तं तपस्तप्तं पितृणामक्षयं भवेत् ॥५६

पुत्र हैं! उसने कहा—ब्रह्मन्! मैं चन्द्रमा का पुत्र हूँ। मैंने कहा—यह तथ्य कह रहा है और देवों ने कहा—यह समस्त ज्ञानियों में परमोत्तम चेष्टा है अतः इसको बुध कहना चाहिए। अनन्तर चन्द्रमा ने पुत्र लेकर और वृहस्पति ने अपनी भार्या लेकर अपने-अपने गृह का प्रस्थान किया। पुत्र प्राप्ति होने पर सोम को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्होंने कहा—यह पूर्णमासी मनोरथ सफल करने वाली तिथि है। क्योंकि मैंने इसी दिन पुत्र और विजय दोनों की प्राप्ति की है। अतः सविधान व्रत को मुसम्पन्न करने के निमित्त मैं इसमें उपवास करूँगा। यद्यपि इसके समान अन्य व्रत भी मनोरथ सफल करने के लिए पूर्णांश एवं पूर्ण लक्षण युक्त हैं तथापि इस मेरी प्रेयसी तिथि के दिन भक्ति पूर्वक सविधान मेरी पूजा करने पर मैं प्रसन्न होकर उनकी सागर्ता कामनाएँ सफल करता हूँ। पार्थ! इस प्रकार यह तिथि रूप में की उत्पन्न प्रेयसी है और मैंने उस पूर्णमासी की समस्त व्याख्या कर दी जिसमें मास की पूर्ति होती है। इसलिए नदी में स्नान करके देव-पितृ तर्पण करने के उपरांत मण्डल की रचना कर उसके भीतर नक्षत्रों समेत विप्र सोम की अर्चना मनोहर पूष्य, धूतप्लुत नैवेद्य, श्वेत अक्षत और श्वेत वस्त्र द्वारा सुसम्पन्न करते हुए शाकाहार एवं मुनि के पुत्र का मौन होकर नक्त भोजन करे और इस भाँति क्षमा प्रार्थना करे कि—वस्त्र वान्धव एवं शीत किरण वाले विधो! हमें कल्याण चरम्परा प्रदान कर अनुगृहीत करो। आप, गगन-सागर की परमोत्तम रवि, चन्द्र तथा दाक्षायणी के पति हैं। यही विधान प्रत्येक मास की पूर्णिमा व्रत के लिए बताया गया है। और कृष्ण पक्ष में भी श्रद्धा-भक्ति पूर्वक कोई व्रती होना चाहे, तो उसके लिए भी यही समस्त सौख्य दायक विधान कहा गया है। इसी भाँति यह समस्त तिथि पितरों को सदैव प्रिय हैं। क्योंकि इसमें दिया गया दान तप पितरों के लिए अक्षय होता है। ४२-५६। महाराज! आमावस्या के दिन सप्रयत्न

अमावास्या भहाराज प्रयत्नैर्घ्योषिता । तैरक्षयं भवेद्वतं पितृभ्यस्तीर्थमुत्तमम् ॥५७॥
 यः कश्चिकुरते तस्मिन्पितृपिण्डोदकद्विग्याम् । स तारयति पुण्यात्मा^१ पुरुषानेकविंशतिम् ॥५८
 भवेद्युरक्षयास्तस्य लोकाः पितृनिषेदिताः । यदा तु इह कालांते तस्यात्रागमनं भवेत् ॥५९
 ब्राह्मणः पितृभक्तश्च सर्वदिव्याविशारदः । एवं जन्मनि राजेन्द्र भवेद्वनसमन्वितः ॥६०
 एवं संवत्सरस्याते हैर्यं कृत्वा सुशोभनम् । सोमं नक्षत्रसहितं विप्राय प्रतिपादपेत् ॥६१
 उपदेशं प्रयच्छेद्यत्स्तस्मै ब्रतकृते नरः । संपूज्य वस्त्राभरणमेणेत्यं निवेदयेत् ॥
 मः सेमासे विधिरयं ब्रतस्यास्य नराधिप ॥६२
 यो न शक्नोति वा कर्तुं पक्षं वाथ निरंतरम् । स एकाम्प्युपोष्यैव कुर्यादुद्यायनं सुधीः ॥६३
 यरचैतत्कुरते पार्थं पौर्णमासीव्रतं नरः । सर्वपापाविनिर्मुक्तश्चन्द्रवद्विवि राजते ॥६४
 पुत्रपौत्रधनोपेतो यज्ञा दाता प्रियंवदः । सन्ततिं विपुलां प्राप्य प्रयागे मरणं भजेत् ॥६५
 ततस्त्वैवाक्षयात्तलोकान्त्राप्नोति सुरसेवितात् । सेव्यमानः स गन्धर्वः स्तूयमानः सुरासुरैः ॥
 आस्ते संपूर्णसर्वांगे यावत्कल्पायुतत्रयम् ॥६६

उपवास करते हुए पितरों के उद्देश्य से दिया गया यह उत्तम तीर्थ अक्षय होता है। उस दिन पिण्डोदक क्रिया करने वाला वह पुण्य पुरुष अपनी इक्कीस पीढ़ी का उद्धार करता है। तथा उसका वह पितृ लोक सदैव के लिए अक्षय रहता है। राजेन्द्र! कदाचित् उसकी इस लोक में आगमन होने पर वह ब्राह्मण, पितृ भक्त और समस्त विधाओं में ख्याति प्राप्ति विद्वान् एवं धनवान् होता है। अनन्तर वर्ष के अन्त में नक्षत्र समेत चन्द्रमा^१ की सुवर्ण प्रतिमा बनाकर पूजनोपरांत ब्राह्मण को अर्पित करें। वस्तुतः इस व्रत के उद्देश्य को ही वस्त्राभूषण द्वारा सुसम्मानित करने के उपरांत प्रतिमा आदि समर्पित करना चाहिए। नराधिप! प्रत्येक मास में इसे सुसम्पन्न करने के लिए यही विधान बताया गया है। जो पुरुष प्रत्येक मास में इस व्रत को सुसम्पन्न करने में असमर्थ होता है, उसे एक ही व्रत को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न करने के अनन्तर इसका उद्यापन कर देना चाहिए। पार्थ! इस पौर्णमासी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष समस्त पातकों से मुक्त होकर स्वर्ग में चन्द्रमा की भाँति सुशोभित होता है। पुनः इस धरातल पर जल ग्रहण कर पुत्र, पौत्र, एवं धन समेत सुखी, यज्ञा, दाता एवं प्रियवादी होता है। सन्तति एवं विपुल भोग प्राप्त कर अन्त में तीर्थराज प्रयाग में प्राणोत्सर्ग होता है और अनन्तर सुरसेवित अक्षय लोकों की प्रस्ति होती है। वह वहाँ गन्धर्वां द्वारा सुसेवित और देवों-असुरों द्वारा वन्दनीय होते हुए तीन अयुत (तीस सहस्र) कल्प पर्यन्त सुखानुभव प्राप्त करता है। ५७-६६। पार्थ! इस प्रकार शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा में सोम और कृष्ण पक्ष की

अभ्यर्दयन्ति सितपञ्चदशीषु सोमं कृष्णासु^१ ये पितृगणं जलपिण्डदानैः ।
 तेषां गृहणि धनधान्यसुतादिसंपत्तूर्णानि पर्थिव भवंति विद्येविधानात् ॥६७
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 विजयसौर्णमासीवत्वर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥९

अर्थं शततमोऽध्यायः दैशाखीकार्तिकीमाघीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

संवत्सरे च याः काश्चित्तिथ्यः चुम्पत्तथाणाः । ता मे वद यदुश्रेष्ठ लाने दाने महाफलाः ॥१
 श्रीकृष्ण उवाच

वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः । स्नान-दानविहीनैस्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन ॥२
 तीर्थनानं तदा शस्तं दानं वित्तानुरूपतः । वैशाख्यां पांडवश्रेष्ठ श्रेष्ठा द्योतनिका मता ॥३
 कार्तिक्यां पुष्करारण्यं माघ्यां वाराणसी स्मृता । लानेनोदकदानेन तारयत्यपि दुष्कृतीन् ॥४
 कुम्भानस्वच्छांभसः पूर्णान्सहिरण्यान्नसंयुतान् । वैशाख्यां ब्राह्मणो दत्त्वा न शोचति कृते व्रते ॥५

अमावस्या के दिन जल-पिण्ड दान द्वारा पितरों की अर्चना करता है, उसे विधि के विधान द्वारा धन-धान्य, सुतादि और सम्पत्तिपूर्ण गृह उपलब्ध होते हैं । ६७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में
विजयपौर्णमासी-व्रत वर्णनामक निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

अध्याय १००

वैशाखी, कार्तिकी, माघी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यदुश्रेष्ठ! मुझे पूरे वर्ष की उन सभी पुण्य तिथियों के महत्व आदि बताने की कृपा कीजिए, जिनमें स्नान-दान करने से महान्-फलों की प्राप्ति होती है । १

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुनन्दन! वैशाख, कार्तिक और माघ मास की तिथियाँ अत्यन्त पूजनीय बतायी गयी हैं, उन्हें स्नान-दान से कभी विच्छिन्न न रखना चाहिए । पाण्डव श्रेष्ठ! वैशाख मास की तिथियों में तीर्थ-स्नान और अपने वित्तानुसार दान करना महर्षि प्रवरों ने अत्यन्त श्रेयस्कर बताया है । उसी प्रकार कार्तिक मास में पुष्कर और माघ मास में वाराणसी तीर्थ में स्नान एवं उदक दान करने से अत्यन्त पातकी का भी संतरण हो जाता है । वैशाख मास की तिथि में व्रत-पालन पूर्वक स्वच्छ जलपूर्ण घट के, जो सुवर्ण और अन्न से सुसज्जित हों, दान करने पर उसे कभी भी किसी प्रकार की चिंता नहीं होती है । २-५। उस

१. कृत्वा बलिम् ।

सधुगन्धरसैः पूर्णान्माजनान्कोज्ज्वलान् । गोभूहिरप्पवासांति विधिवत्प्रतिपाददेत् ॥६
 माच्यां मधासु च तथा संतर्प्य पितृदेवताः । तिलपात्राणि देयानि तिलांश्च पललौदनम् ॥७
 कार्पसदानमत्रैव तिलदानं च शस्यते । कम्बलः जिनरलानि मोक्षकी पापमोक्षकौ ॥८
 उपानदानमत्रैव कथितं सर्वकामदम् । यत्र वा तत्र वा स्नानं दानं वित्तानुरूपतः ॥९
 कलिकालोऽद्भुतं सर्वं शस्यते पाण्डुनन्दन । कार्तिक्यां तु वृषोत्सर्गो विवाहः पुण्यलक्षणः ॥
 कार्यं कुरुकुलश्चेष्ठ हरेन्नराजनं तथा ॥१०

गजाश्वरथदानं च धृतधेन्यादयस्त्या : प्रदेयाः पुण्यकृद्भूश्च तास्ताः सङ्खल्य देवताः ॥११
 फलानि यानि विद्वन्ते सुगच्छिमधुराणि च । जातीफलं च कड्डोलं लदङ्गं लवलीफलम् ॥१२
 खर्जूरीं नालिकेरांश्च कदल्याश्च फलानि च । दाढिमान्मातुलुङ्घांश्च कर्कोटांस्त्रपुसांस्तथा ॥१३
 वृत्ताकान्कारवेलंश्च बिम्बान्कूज्ञांडकर्बुरान् । अप्रदानेन येषां तु तिथयो यांति भारत ॥
 ते व्याधितरा दरिद्राश्च जायन्ते भुवि मानवाः ॥१४

न केवलं ब्राह्मणानां दानं सर्वस्य शस्यते । भगिनीभः गिनेयानां मातुलानां पितृल्पसुः ॥
 दरिद्राणां च बंधुनां दानं कोटिगुणोत्तरम् ॥१५

मित्रं कुलीनश्चापश्चो बन्धुदर्भादिद्यदुखितः । आशयाभ्यागतो द्वारात्सोऽतिथिः स्वर्गसङ्क्रमः ॥१६
 वनं प्रस्थापिते रामे ससीते सहलक्षणे । मातामहकुलादेत्य विशुद्धेनान्तरात्मना ॥
 सा सर्वैः श्रावितानेकैः कौशल्या भरतेन वै ॥१७

तिथि के दिन भधुर अन्न-रस से पूर्ण वे पात्र, जो सुवर्ण द्वारा देवीप्य मान हों, गौ, भूमि हिरण्य और वस्त्र के सहित दान करना चाहिए। उसी प्रकार माघ मास में मधा नक्षत्र के दिन पितु-देव के तर्पण पूर्वक तिल पात्र, तिल, मांस-ओदन (भात) कपाश और तिल दान करना प्रशस्त कहा गया है। कम्बल, मृगचर्म, एवं रत्नदान पाप मोक्षक बताया गया है और समस्त कामताओं को सफल करने वाला उपानह-दान भी इसी मास में करना चाहिए। पाण्डुनन्दन! मान चाहे जहाँ करो, किन्तु दान अपने अनुसार ही करना चाहिए। इस प्रकार कलिकाल में सभी प्रशस्त है। कुरुकुलश्चेष्ठ! कार्तिक (पूर्णिमा) के दिन वृषोत्सर्ग, पुण्य विवाह, भगवान् विष्णु के नीराजन अवश्य करना चाहिए और पुण्यात्माओं द्वारा तत्त्वदेवताओं के निमित्त संकल्प पूर्वक गज, अश्व, रथ, धृत और धेनु के दान तथा सुगच्छित एवं मधुर फलों—जातीफल, कंकोल, लवंग, लवलीफल, खजूर, नारियल, केला, कदलीफल, अनार, विजौरा नीबू, कर्कोटक, त्रपुस, भाँया आदि, नारिकेल, विम्ब, कूज्ञाण्ड, और कर्बुर फल के दान करना चाहिए। भारत! इन तिथियों को दान से वञ्चित रखने पर मानव इस पृथिवी में व्याधिप्रस्त होकर दरिद्र-मीडित होते हैं। ६-१४। उपरोक्त समस्या के दान वाले ब्राह्मणों के लिए ही नहीं प्रशस्त कहे गये हैं अपितु भगिनी, भागिनेय (भाज्ञा), मातुल और पिता को भगिनी के संतानों एवं दरिद्र वन्धुगणों को दिये गये दान कोटि गुने अधिक फल प्रदान करते हैं। मित्र, विपद्ग्रस्त कुलीन, दरिद्र वन्धु, और दूर से किसी आशा वश आया हुआ अभ्यागत, ये सभी अतिथि, क्रमशः स्वर्ग सोपान हैं। सीता और लक्ष्मण समेत भगवान् राम के बन जाने पर मातामह के यहाँ (तीन साल) से आने पर विशुद्ध अन्तः करण वाले भरत जी ने अपने को निरपराधी बताने के लिए कौशल्या के समक्ष अनेक प्रकार का शपथ किया। १५-१७। किन्तु कोशल पुत्री कौशल्या

यदा न प्रत्यं याति कथंचिकौशलाभज्ञा । तदा विशुद्धभादेन तिथयः श्राविताः पुनः ॥१८
वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽमरपूजिताः । अप्रदानवतो यांति पस्याद्योनुमते गतः ॥१९
एतच्छ्रुत्वा तु कौशल्या सहसा प्रत्यं गता । अंकमानीय भरतं सांत्वयामास दुःदितम् ॥२०
एतत्तीर्थानां माहूत्म्यं आत्मातं बहुविस्तरम् । शूष्यस्तु किं प्रवद्यामि तद राजन् महामते ॥२१

वैशाखकार्तिकमधासहिताद्य माघे या पूर्णिमा भवति पूर्णशशाङ्कचिह्ना ।

तस्यां जलान्नकनकाम्बरसातपत्रं दत्त्वा प्रशति पुरुषः पुरुहृतलोकन् ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुग्मिष्ठिरसंवादे

वैशाखीकार्तिकीमाघीव्रतवर्णनं नाम शतामोऽध्यायः । १००

अयैकाधिकशततमोऽध्यायः

युगादितिथिव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

युग्मिष्ठिर उवाच

पुनर्मे शूहि देवेश त्वद्भूक्त्या भावितात्मनः । कथ्यमानमिहेच्छामि शुभधर्मपदं नहत ॥१
यत्राण्वपि नरैर्दृतं जप्तं वा सुमहद्भूवेत् ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पांडव ते वच्चि रहस्यं देवनिर्मितम् । यन्मया कस्यचिन्नोक्तं सुप्रियस्यापि भारत ॥३

को उससे विश्वास होते न देख कर उन्होंने पुनः तिथियों का भी शपथ किया—‘वैशाखी, कार्तिकी और माघी (पूर्णिमा) तिथियाँ देव पूज्य हैं उसे वे फल दायक न हों।’ इसे सुनते ही कौशल्या जी ने विश्रस्त होकर सहसा उन्हें अपने गोद में लेकर दुःखनिवृत्यर्थ सान्त्वना देने लगी। महामते, राजन्! इन तिथियों का महत्व मैंने अत्यन्त विस्तृत रूप में तुम्हें सुना दिया, पुनः यदि जानना चाहते हो, बताओ। वैशाख, कार्तिक और मध्यायुक्त माघ की पूर्णिमा के दिन चन्द्र भूषित होने से जल, अश, सुवर्ण, वस्त्र, और छत्र के दान करने वाले को इन्द्र लोक की प्राप्ति होती है। १८-२२।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुग्मिष्ठिर के सम्बाद में

वैशाखी, कार्तिक और माघी (पूर्णिमा) के व्रत वर्णन नामक सौवाँ अध्याय समाप्त । १००।

अध्याय १०१

युगादितिथिव्रतमाहात्म्य का वर्णन

युग्मिष्ठिर ने कहा—देवेश! आप की भक्ति द्वारा प्रूतात्मा होने के नाते मुझे सतत यही इच्छा हो रही है कि आप कुछ न कुछ कहते रहें। अतः आप किसी ऐसे शुभधर्मात्मक एवं महान् व्रत—विकेवर्णन करने की कृपा करें जिसमें मनुष्यों को अणुमात्र दान अथवा जप करने से महान् फल की प्राप्ति हो सके। १-२

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव! मैं तुम्हें एक देव-निर्मित रहस्य बता रहा हूँ, जिसे किसी को आज तक

वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।

नभस्यमासस्य तु कृष्णपक्षे त्रयोदशीं पञ्चदशीं च माघे ॥४

वैशाखस्य तृतीया तु समा कृतयुतेन तु । नवमो कार्तिकी या तु त्रेतायुगसमागता ॥५
त्रयोदशी नभस्ये तु द्वापरेण समा मता । माघे पञ्चदशी राजन् कलिकालादिरूप्यते ॥६
एता चत्स्रो राजेन्द्र युगानां प्रभवादथा । युगादयश्च क्षयन्ते तथैताः सर्वसूरिभिः ॥७
उपवासस्तपो दानं जपहोमक्रियास्तथा । यद्यनु फ्रिदते किंदित्सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥८
दैशाखस्य तृतीयाणां श्रीसमेतं जगद्गुरुम् । नारायणं पूजयेथाः पुण्यधूपविलेपनैः ॥
वस्त्रालंकारसंभारैनैवैद्यविधैस्तथा ॥९

ततस्तस्याग्रतो धेर्नुर्लवणस्याढकेन तु । कार्या कुरुकुलश्रेष्ठं चतुर्भगिणं वत्सकः ॥१०
अविचर्मोपरि स्थाप्य क्षत्ययित्वा विधानतः । शास्त्रोक्तक्षमयोगेन ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥११
श्रीधरः श्रीपतिः श्रीमाङ्गृषीशः संप्रीयतामिति । अनेन विधिना दत्त्वा धेनुं विश्राय भारत ॥
गोसहस्रं दशगुणं प्राप्नोतीह न संशयः ॥१२

तथैव कार्तिके मासि नवम्यां नक्तभुड्नरः । स्नात्वा नदीतडाङ्गेषु देवखातेषु वा पुनः ॥१३
उमासहायं वरदं नीलकण्ठमथार्चयेत् । पुष्पधूपादिनैवैद्यरनिन्द्यैः शङ्करं शिवम् ॥१४
धेनुं तिलमर्यां दद्यात्पुराणोक्तविधानतः । अष्टमूर्तिर्नीलकण्ठः प्रीयतामिति चिंतयेत् ॥१५

बताया ही नहीं । भारत! वैशाखमास की तृतीया, कार्तिक शुक्ल नवमी, भाद्रपद कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी और माघ की अमावस्या ये तिथियाँ युग प्रवर्तक कही गयी हैं । वैशाखमास की शुक्ल तृतीया के दिन कृत (सत्य) युग, कार्तिक शुक्ल की नवमी के दिन सत्य युग और त्रेता युग, भाद्रपद की त्रयोदशी के दिन द्वापर और माघ की अमावस्या के दिन कलियुग का आरम्भ होता है । राजेन्द्र! ये चारों तिथियाँ युगों के प्रवर्तक होने के नाते समस्त विद्वानों की अनुमति से युगादि कही जाती है । इसलिए इन तिथियों में उपवास, तप, दान, जप और हवन क्रिया आदि जो कुछ किये जाते हैं वे कोटिगुणे अधिकफल प्रदान करते हैं । ३-८। वैशाख मासकी तृतीया के दिन श्री समेत जगद्गुरु नारायण की पुष्प, धूप, लेपन, वस्त्र, अलंकार, और विविधभाँति के मधुर नैवेद्यों के अर्पण द्वारां सप्रेम अर्चना करनी चाहिए । कुरुकुल श्रेष्ठ! तत्पश्चात् उनके सम्मुख एक आढक लवण द्वारा निर्मित धेनु और उसके चौथाई भाग द्वारा रचित वत्स (वच्छङ्गों) को शास्त्र विधान द्वारा अवि (भेंड) के चमर्शन पर स्थापित एवं पूजित कर ब्राह्मणों को समर्पित करे । उस समय उसको ऐसा कहना चाहिए कि-श्रीधर, श्रीपति, श्रीमान् और श्री के ईश भगवान् विष्णु मुङ्ग पर प्रसन्न हों । भारत! इस प्रकार से ब्राह्मण को गोदान प्रदान करना पर उसे दशसहस्र गौ के फल प्राप्त होते हैं इसमें संशय नहीं । उसी प्रकार कार्तिक मास की शुक्ल नवमी के दिन उस नक्तभोजी पुरुष को किसी नदी, सरोवर अथवा देव कुण्ड आदि जलाशय में स्नान करके उमापति, एवं वरदायक नीलकण्ठ भगवान् की उत्तम पुष्प, धूप एवं नैवेद्यादि द्वारा, अर्चना करनी चाहिए । कल्याण मूर्ति भगवान् शिव की पूजा के उपरांत विधान द्वारा तिलमर्यां गौ के दान करते समय 'अष्टमूर्ति भगवान् नीलकण्ठ प्रसन्न हों,

यदत्र प्राप्यते पुण्यं पार्थं तत्केन वर्ष्यते । दत्त्वा तिलमर्यां धेनुं शिवलोकमवाप्नुवात् ॥१६
 अयोदशी नभसि सा कृष्णमस्यां सन्चर्येत् । 'पितृन्यादसदानेन मधुना च घृतेन तु ॥
 भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या वेदवेदाङ्गपारगान् ॥१७

पितृनुहित्य दातव्या सवत्सा कांस्यदोहनी । प्रत्यक्षा गौर्महाराज तरुणी सुपर्यस्तिनो ॥१८
 पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । ग्रीवंतां गोप्रदानेन इति दत्यः विसर्जयेत् ॥१९
 कृतेनानेन राजेन्द्र यत्पुण्यं प्राप्यते नृभिः । तत्केन वर्णितुं याति वर्षकोटिशतैरसि ॥२०
 पुत्रान्यौत्रान्प्रपौत्रांश्च धनं च महीपित्तम् । इह चाप्नोति पुरुषः परत्र च शुभाः गतिम् ॥२१
 पञ्चदश्यां च मादस्य पूजयित्वा पितामहम् । गायश्च सहितं देवं वेदवेदाङ्गभूषितम् ॥२२
 नवनीतमर्यां धेनुं फलनीतिविध्युर्युताम् । सहिरण्णा सवत्सा च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
 कीर्तयेत्प्रीयतामत्र पद्ययोनिः पितामहः ॥२३

यत्स्वर्णं यच्च पाताले यच्च मर्त्यं सुदुर्लभम् । तदवाप्नोत्यसंदिर्धं पद्ययोनिप्रसादितः ॥२४
 यनि चान्यानि दानानि दत्तानि सुबहृत्यपि । युगादिषु महाराज अक्षयानि भवन्ति हि ॥२५
 अल्पमल्पं हि यः कश्चित्प्रदद्यान्निर्द्वन्द्वेऽपि सन् । तदक्षयं भवेत्सर्वं युगादिषु त संशयः ॥२६
 वित्तानुसारं स्वं ज्ञात्वा वित्तवान्यार्थिवौपि वा । अनुसारेण वित्तस्य असाध्येन समाधिना ॥२७
 भूर्हिरण्यं गृहं वासः शयनान्यासनानि च । उत्त्रोयानत्सुयुग्मानि ग्रदेयानि द्विजातिषु ॥२८

कहना चाहिए । पार्थ! इस व्रत-दान द्वारा जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करना सभी के लिए अशक्य है । तिलनिर्मित धेनु दान करने से शिव लोक की प्राप्ति होती है । भाद्रपद की कृष्ण अयोदशी के दिन मधु-घृत पूर्ण पायस (खीर) पिण्डदान द्वारा पितरों का संतुष्ट कर भक्ति पूर्वक वेद-वेदाङ्गमर्जन ब्राह्मणों को भोजन कराये और पितरों के उद्देश्य से सवत्सा गौ और कांसे की दोहनी भी प्रदान करना चाहिए । महाराज! उस तर्ही पयत्विनी एवं प्रत्यक्षस्थित गौ के दान करते समय कहना चाहिए कि— 'पिता, पितामह, और प्रपितामह इस गोदान द्वारा प्रसन्न हों । अनन्तर विसर्जन करे । राजेन्द्र! इस सुकृत द्वारा मनुष्यों को जिस पुण्य राशि की प्राप्ति होती है, सौ कोटि वर्ष में भी उसका वर्णन कोई नहीं कर सकता है । पुरुष को इस लोक में अनेक पुत्र-भौत्र- और यथेच्छ धन की प्राप्ति पूर्वक अन्त में शुभ गति प्राप्ति होती है । उसी प्रकार भाघ की कृष्ण पञ्चदशी (अमावस्या) के दिन गायत्री समेत वेद-वेदाङ्गभूषित पितामह (ब्रह्मा) की अर्चना के उपरांत नवनीतमर्यां धेनु की और अनेक भाँति के फल, हिरण्य समेत वच्छड़ी की अर्चना करके सादर ब्राह्मण को अर्पित करे और उस समय कहता रहे कि—'पद्ययोनि पितामह ब्रह्मा' इस कर्म से प्रसन्न हों । १-२३। पितामह ब्रह्मा की कृपा से जो स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक में उसे प्राप्त होती है इसमें संदेह नहीं । महाराज! इन युगादितिथियों के दिन अन्य वस्तुओं के भी किये गये दान अक्षय होते हैं । जो कोई निर्धन व्यक्ति इन दिनों अल्प भी दान करता है, वह सब अक्षय होता है इसमें संदेह नहीं । इसलिए कि—भूमि, हिरण्य, गृह, वस्त्र, शयन, आसन, छत्र और उपानह के दान

१. पितृनुहित्य

एवं दत्त्वा यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजानपि । पश्चात् अजीत मुमना दाग्यतः स्वजनैः सह ॥२९
 यत्किञ्चिन्मानसं पापं कायिकं वाचिकं तथा । तत्सर्वं नाशमायाति युगादितिथिपूजनात् ॥३०
 उद्गीयमानैः गन्धर्वैः स्तूपमानः मुरासुरैः । रमते चाक्षयं कालं स्वर्गलोके न संशयः ॥३१
 यद्दीयते क्रिमपि क्रोटिपुणं तदाहुः स्नानं जपोनियममक्षयमेव सर्वम् ।
 स्यादक्षयासु युगपूर्वतिर्थीषु राजन्यासादयो मुनिवराः समुदाहरन्ति ॥३२
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 युगादितिथिप्रतमाहात्म्यवर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ।१०१

अथ द्वचधिकशततमोऽध्यायः

वटसावित्रीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

स्मरामि हृषीकेश यन्नोक्तं भवता व्रतचित् । तत्सावित्रीव्रतं श्वौहि ममोपरि दयां कुरु ॥१
 श्रीकृष्ण उवाच

कथयामि कुलस्त्रीणां महाभाग्यं युधिष्ठिर । यथा चीर्णं व्रतवरं सावित्र्या राजकन्यया ॥२
 आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा सर्वभूतहिते रतः । पर्थिवोऽश्वपतिर्नामि पौरजानपदप्रियः ॥३

ब्राह्मणों को प्रदान करें । उपरांत ब्राह्मणों को यथा शक्ति भोजन कराकर परिवार समेत स्वयं भी मौन होकर भोजन करें । इन युगादितिथियों के पूजन करने से मन, बाणी एवं शरीर-जनित समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं । गन्धर्व गण उसका गुणगान करते हैं और सुर-असुर उसकी सदैव वन्दना किया करते हैं । इस प्रकार वह स्वर्गलोक में अक्षय काल तक रमण करता है । राजन्! व्यासादि मुनिवरों के कथनानुसार इन युगादितिथियों में स्नान, जप, दान आदि जो कुछ किया जाता है, वह कोटि गुने फल प्रदान करते हुए प्रक्षय रहता है । २४-३२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 युगादितिथिव्रत-माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ एक अध्याय समाप्त । १०१।

अध्याय १०२

वटसावित्रीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—हृषीकेश! मेरे ऊपर दया कर आप मुझे उस सावित्री व्रत को बताने की कृपा कीजिये, जिसे आप ने अभी तक किसी को बताया नहीं है । १।

श्री कृष्ण बोले—युधिष्ठिर! सावित्री आदि राजकन्याओं ने उसे जिस प्रकार मुसम्बन्न किया है, कुलस्त्रीयों के उस महाभाग्यशाली व्रत को मैं तुम्हें बता रहा हूँ । मद्र देश में अश्वपति नामक एक

क्षमावांश्च क्षितिपतिः सत्यवांश्च जितेन्द्रियः । स सभार्यो ब्रह्मिदं चचार नृपतिः स्वयम् ॥४
 सावित्रीब्रतसिद्धं तत्सर्वकामप्रदायकम् । तस्य तुष्टाभवद्वाजन् सावित्री ब्राह्मणः प्रिया ॥५
 शूर्भुवःस्वरितीत्येषा साक्षान्मूर्तिमती स्थिता । कमण्डलुधरा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥६
 उवाच दुहिता ह्येका तव राजन् भविष्यति । इत्येवमुक्त्वा तावित्री जगामादर्शनं पुनः ॥७
 कःलेन सा तथा राजन् दुहिता देवरूपिणी । सावित्र्या प्रीतमा दत्ता सावित्र्यः जप्तया तदा ॥८
 सावित्रीत्येव नामास्यास्चकृविप्राप्तथा पिता । सा गृहवती सश्रीर्वर्द्धत नृपात्मजा ॥
 सावित्री मुकुमाराङ्गो यौवनस्था बभूव ह ॥९
 तां सुमध्यां पृथुश्रेणीं प्रतिमां काञ्चनीनिव । प्राप्तेव देवकन्येति दृष्ट्वा ज्ञामितरे जनाः ॥१०
 सा तु पद्मपलाशाखी प्रज्वलंतीव तेजसा । चचार सा च सावित्रीब्रतं यद्भृगुणोदितम् ॥११
 अथेषोष्य शिरःक्षाता देवतामभिगम्य सा । हुत्वानि विधिवद्विप्रान्वाचयित्वेन्दुपर्वणि ॥१२
 तेष्यः सुमनसः शेषाः प्रतिगृह्य नृपात्मजा । साध्वी पतिव्रताभ्येत्य देवक्षीरिव रूपिणी ॥१३
 सोऽभिदाद्य पितुः पादौ शेषान्पूर्वं निवेद्य च । कृतांजलिर्वरारोहा नृपतेः पार्श्वतः स्थितः ॥१४
 तां दृष्ट्वा यौवनं प्राप्तां स्वच्छां तां देवरूपिणीम् । उवाच राजा संमन्त्र्य स्मृत्यर्थं सह मंत्रिभिः ॥१५

राजारहता था, जो धर्मात्मा, समस्त प्राणियों का हितैषी, पुरवासियों को अनन्तप्रिय, क्षमाशील, पृथिवीपति, सत्यवादी एवं इन्द्रियसंयमी था । स्त्री समेत उस राजा ने स्वयं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले उस सिद्ध सावित्री को सविधान सुसम्पन्न किया । राजन्! ब्रह्मप्रिया सावित्री ने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा को प्रत्यक्ष दर्शन दिया, जो शूर्भुवःस्वः की साक्षात् प्रतिमा मालूम होती थी । कमण्डलु लिए हुए उन सावित्री देवी ने अपनी प्रसन्नमुखमुद्रा एवं विकसित नेत्र से प्रसन्नता प्रकट करती हुई राजा से कहा—राजन्! तुम्हारे एक पुत्री होगी । इतना कह कर सावित्री पुनः अन्तर्हित हो गयी । राजन्! सावित्री के एक मात्र अटल प्रेम और उनकी अर्चना-वन्दना करने के नाते समयानुसार राजा के एक देव स्वरूपिणी कन्या की उत्पत्ति हुई । विप्रवृन्द! उसके पिता ने उस कन्या का सावित्री ही नाम रखा । वह मुकुमारी राज कुमारी धीरे-धीरे सौन्दर्य समेत बढ़ने लगी और कुछ ही काल में पूर्ण युवती हो गयी उस काञ्चनी प्रतिमा को देखकर जिसका मध्यभाग (कटि) अत्यन्त क्रमनीय एवं शोणिभाग पृथुल था, पुरवासी गण उसे देवकन्या ही मानते थे । कमल पूष्प की भाँति नेत्र एवं तेज से प्रज्जिलित रहने वाली उस सावित्री ने भृगुऋषि के बताये अनुसार सावित्री ब्रत सविधान सुसम्पन्न किया । २-११। राजकुमारी ने उस चन्द्र पर्व के दिन सर्वप्रथम उपवास पूर्वक शिर से स्नान, देव-पूजन, अग्नि में सविधान हवन, और ब्राह्मणों द्वारा कथा-पारायण कराने के उपरांत ब्राह्मणों से प्रसाद रूप पुष्प (मंत्राक्षत) ग्रहण किया । उस साध्वी पतिव्रता ने, जो साक्षात् देव श्री की मूर्ति दिखायी देती थी, अपने पिता के समीप पहुँच कर समस्त वृत्तान्तों के निवेदन पूर्वक हाथ जोड़कर उनके चरण का अभिवादन किया और अनन्तर वह वरा-रोहा राजा के बगल में बैठ गयी । राजा ने उस देवरूपिणी एवं अत्यन्त स्वच्छ अपनी कन्या को यौवन प्राप्त देखकर मंत्रियों के साथ विचार कर उससे कहा—सयुक्तिक और सामयिक विचार के अनुसार ही लोग

युक्तः प्रदानकालोऽस्यास्तेन कठिद्दृढं वृणोत्तिमस् । विचारमित्वा पश्यामि वरं तुल्यं महात्मनः ॥१६
देवादीनां यथा वाच्यो न लभेयं तथा कुरु । बोद्धयमानः भया पुत्रि धर्मशास्त्रेषु गच्छतम् ॥१७
पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंकृता । ब्रह्महत्या पितुस्तत्र सा कन्या वृषली स्मृता ॥१८
अतोर्थं प्रेषयामीति कुरु पुत्रि स्वयंवरम् । वृद्धैरमात्यैः सहिता शीघ्रं गच्छ विधारय ॥१९
एदमस्त्विति सावित्री प्रोक्ता तस्माद्विनिर्यथौ । तपोवतानि रम्पाणि राजर्षीणां जगाम सा ॥२०
मान्यानामत्र वृद्धानां कृत्वः पादाभिषेचनम् । ततोभिगम्य तीर्थानि सर्वाण्येवाश्रयाणि च ॥२१
आजगाम पुनर्वेशम् सावित्रीं सह मन्त्रिभिः । तत्रापश्यच्च देवर्षि नारदं पुरुः पितुः ॥२२
आसीनमास्तने विष्णं प्रजाय स्मितभृषिणी । कथयामास तत्सर्वं यथादत्तं वनेऽभवत् ॥२३

सावित्र्युवाच

आसीत्साल्वेषु धर्मात्मा क्षत्रियः पृथिवीपतिः । द्युमत्सेन इति ख्यातो दैवदत्तो बभूव सः ॥२४

नारद उवाच

अहो बत महत्कष्टं सावित्र्या नृपतेः कृतम् । बाल्यभावाद्यदनया न कृतः सत्यवान्नृपः ॥२५
सत्यं बदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते । उपेतोऽस्ति गुणैः सर्वद्युमत्सेनसुतो बली ॥२६

वरण आदि करते हैं अतः पहले अपनी ऐसी धारणा बताओ कि—मेरा वरण करने के लिए कोई प्रस्तुत है । मैं भी अपने विचारों से इसी निष्कर्ष पर पहुँच रहा हूँ कि—किसी महान् व्यक्ति के साथ सम्बन्ध हो तो अच्छा है और जहाँ तक हो सके मैं देवों की निन्दा का पात्र न बन सकूँ वैसा ही करना! अतः पुत्रि! मैं ने धर्मशास्त्रों के आलोकन से यह निश्चय किया कि—अब तुम अपना विवाह संस्कार अवश्य करो, क्योंकि विवाह संस्कार हीन कन्या अपने पिता के घर यदि रजोवती होती है तो उसके पिता को ब्रह्म हत्या का दोषभागी होना पड़ता है और वह कन्या वृषली कही जाती है । इसलिए पुत्रि! मैं तुम्हें कुछ मंत्रियों के साथ भेज रहा हूँ तुम स्वयं वर का अन्वेषण कर उसे अपनाओं । जाने के लिए शीघ्रता करो और मेरी बातों का ध्यान रखना । इसे स्वीकार कर सावित्री राजर्षियों के रमणीयक तपोदिन के लिए निकल पड़ी । वहाँ के मान्य एवं वृद्धों के चरण-पूजन करके वह सभी-कल्याण तीर्थों में गयी और मंत्रियों के साथ पुनः घर लौट आयी । घर आकर उसने अपने पिता के पास बैठे हुए देवर्षि नारद को देखा, जो उत्तम आसन पर सुशोभित हो रहे थे । मन्द मुसुकान करती हुई उसने उन विप्रदेव को प्रणाम कर उनके समक्ष जंगल के समस्त वृतान्त का निवेदन किया । १२-२३

सावित्री बोली—साल्व देश में द्युमत्सेन नामक क्षत्रिय राजा थे, जो धर्मात्मा, एवं दैव द्वारा प्रदत्त थे । उसे सुनकर नारद ने कहा । २४

नारद बोले—आश्चर्य एवं अत्यन्त खेद है कि सावित्री ने अपने लड़कपन (अज्ञानता) के कारण (सत्यवान के साथ अपना पाणिग्रहण संस्कार हेतु उनका वरण कर अपने पिता राजा को महान् कष्ट प्रदान किया है । यद्यपि सत्यवान् अत्यन्त गुणी पुरुष है और उसके पिता एवं माता सदैव सत्य बोलते हैं और वह द्युमत्सेन का पुत्र (सत्यवान्) बली तथा समस्त गुणों से युक्त भी है, तथापि उसमें एक महान्

एको दोषोऽस्ति नान्योऽस्य तोऽद्यप्रभृति स्त्वयदाक् । संवत्सरेण हीनायुर्देह त्यागं करिष्यति ॥२७
नारदस्य वचः शुत्वा तनयां प्राह पार्थिवः । पुत्रि सावित्रि गच्छ त्वमन्यं वरय सत्पतिम् ॥
संवत्सरेण सोल्पायुर्देहत्यागं करिष्यति ॥२८

सावित्र्युवाच

सकृज्जलसंति राजानः सकृज्जलसंति पंडिताः । सकृत्प्रदीयते कन्या श्रीण्डेतानि सकृत्सकृत् ॥२९
दीर्घायुरथ बाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा । सकृदृतो ममा भर्ता न द्वितीयं वृश्चम्यहम् ॥३०
मनसा निश्चर्यं कृत्वा ततो वाचाऽनिधीयते । क्षियते कर्मणा पञ्चात्प्रमाणं मे ननः सदा ॥३१

नारद उवाच

यद्येतदिष्टं दुहितुस्ततः शीघ्रं विधीयताम् । अविघ्नमग्रे सावित्र्याः प्रदाने दुहितुस्तव ॥३२
एवमुक्त्वा समुत्पत्य नारदस्त्रिदिवं गतः । राजा च दुहितुः सर्वं वैदःहिकमथाकरोत् ॥
शुभे मुहूर्तं पाञ्चर्त्स्यैब्रह्मणैर्वेदपारगैः ॥३३
सावित्र्यपि वरं लब्ध्वा भर्तारं मनसेप्सितम् । मुमुदेऽतीव तन्दङ्गी स्वर्णं प्राप्येव पुण्यकृत् ॥३४
एवं तत्राश्रमे तेषां वसतां प्रीतिपूर्वकम् । कालस्तपस्यतां कश्चिददतिचक्राम भारत ॥३५
सावित्र्यात्प्रमानायास्तिष्ठत्याश्च दिवानिशम् । नारदेन यदुक्तं तद्वाक्यं मनसि इर्तते ॥३६
ततः काले बहुतिथे व्यतिक्रान्ते कदाचन । सप्राप्तकालो म्नियेत इति संचिंत्य भामिनी ॥

दोष यह है—वह वर्ष के भीतर ही शरीर त्याग कर देगा । किन्तु यह उसका निजी दोष नहीं है क्योंकि वह तो आज जक सत्य ही बोलता आया है । नारद की ऐसी बाते सुनकर राजा ने अपनी कन्या से कहा—पुत्रि सावित्री! तुम जावो और किसी अन्य पति का शीघ्र वरण करो! क्योंकि वह (सत्यवान्) अल्पायु होने के नाते शीघ्र इसी वर्ष में शरीर का त्याग कर देगा । २५-२८

सावित्री बोलती—राजा और पण्डितों के कथन तथा कन्या दान ये तीनों एक ही बार होते हैं । अतः वे दीर्घायु, अल्पायु, सगुण, अथवा निर्गुण जो कुछ हों, मैंने भर्ता के रूप में उनका एक बार वरण कर लिया है अब दूसरे का वरण नहीं करूँगी । क्योंकि जो कार्य करना होता है उसे प्रथममन से निश्चय किया जाता है अनन्तर वाणी द्वारा प्रकट किया जाता है और तब वह कार्य आरम्भ होता है । इस कार्य में सदैव के लिए मेरा मन ही प्रमाण रूप है । २९-३१

नारद बोले—तुम्हारी कन्या का यदि यही निश्चय है तो इसे पूरा करने में शीघ्रता करो और तुम्हारे द्वारा कन्यादान होने पर इस तुम्हारी पुत्री सावित्री का आगे चल कर अमङ्गल भी नहीं होगा । इतना कहकर नारद जी स्वर्ग चले और राजा ने भी कन्या के विवाह सम्बन्धी सभी कार्यों को शुभ मुहूर्त में अपने पड़ोसी वैदिक ब्राह्मण द्वारा पूरा किया । कुशाङ्गी सावित्री भी मन इच्छित पति को पाकर स्वर्ग प्राप्त पुण्यात्मा की भाँति अत्यन्त प्रसन्न हुई । भारत! इस प्रकार उस आश्रम में दोनों को प्रीतिपूर्वक सुखी जीवन व्यतीत करते कुछ समय बीत गया । नारद की कही हुई बातों का सदैव मनमें ध्यान रख कर उसने दिन रात के घोर परिक्रमा से उन दिनों तपस्या भी आरम्भ की थी । बहुत दिनों के बीत जाने पर

प्रोष्ठपहे सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे ॥३७
 गणयन्ती च सावित्री नारदोक्तं वचो हृदि । व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रं विनाभवत् ॥३८
 ततस्त्रिरात्रं निर्वर्त्य ज्ञात्वा संतप्य देवताः । चतुर्येऽहनि मर्तव्यमिति संचिंत्य भासिनी ॥
 श्वश्रूषशुरयोः पातौ ववंदे चारुहासिनी ॥३९
 अथ प्रत्यन्ते परशुं गृहीत्वा सत्यवान्वगम् : सावित्र्यपि च भतोरं गच्छतः पृष्ठतोऽन्वगात् ॥४०
 ततोऽवदत्स भर्ता तां दृच्छस्त्वं श्वशुरो निजौ । तथेत्युक्तः हि पप्रच्छ नत्वा श्वश्रूपदानि सा ॥४१
 श्वशुराववदतां च न गन्तव्यं त्वयानघे । बाले त्वं परमं भीरः कथं गच्छसि काननम् ॥४२
 भूयोः भावेन साः प्रेते द्वच्छब्दं काननं मया । गच्छेति तां तदोचाते श्वशुरौ चारुहासिनीम् ॥४३
 ततो गृहीत्वा तरसा फलपुष्पसमित्कुशान् : यथा शुष्काणि दादाय काष्ठभारमकल्पयत् ॥४४
 अथ पाटयतः काष्ठं जाता शिरसि देदना : व्यथा मां बाधते बाले स्वप्तुमिच्छामि सुंदरि ॥४५
 विश्रमस्त्वं महाबाहो सावित्री प्राह दुःखिता । पश्चादुपगमिष्यामि स्वाश्रनं श्रमनाशनम् ॥४६
 यावदुत्संगके कृत्वः शिर आस्ते महीतले । तावद्वर्द्धं सावित्री पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ॥
 किरीटिनं पीतवस्त्रं साक्षात्सूर्यमिवोदितम् ॥४७
 तमुवाचाथ सावित्री प्रणन्य मधुपिङ्गलम् । कस्त्वं देवोऽथ वा दैत्यो मां धर्षयितुमागतः ॥४८

एक बार ऐसा सोचकर कि—‘समय आने पर यह (सत्यवान्) अवश्य मर जायेंगे।’ उसने भादो मास की शुक्र द्वादशी के संध्या समय हृदय में नारद की बातों का विशेष ध्यान रखकर त्रिरात्र व्रत आरम्भ किया। पश्चात् दिन रात के उस त्रिरात्र व्रत से निवृत्त होकर उसने मान और देवपूजन किया। वह भासिनी सोच रही थी कि—आज चौथे दिन (इनका) मरण अवश्य है, अतः सौभाग्य के लिए उस प्रसन्नवदना ने अपनी सास-ससुर की चरण-वन्दना की। उसी समय सत्यवान् कुल्हाणी लेकर बन की ओर चल पड़े। उसे उन्हें जाते देखकर सावित्री भी अपने पति के पीछे चल पड़ी। ३२-४०। उसे पीछे आती हुई देखकर सत्यवान् ने कहा—(प्रिये) ‘सास-ससुर की आज्ञा लेकर ही चलो।’ उसने ‘तथा’ (स्वीकार) कह कर सास-ससुर की चरण-वन्दना पूर्वक कहा—उनसे आज्ञा मांगी। किन्तु उन लोगों ने कहा—अनधे! तुम जंगल मत जाओ। और बोले! तुम तो अत्यन्त भीर हो, जंगल कैसे जा रही हो। उसने अत्यन्त विनम्रता से कहा—‘मुझे बन देखने की बड़ी इच्छा है। इसे सुन कर उसके सास-ससुर ने उस चारुहासिनी को सप्रेम बन जाने की आज्ञा प्रदान की। पश्चात् शीघ्रता से चलती हुई उसने फल, पुष्प समिधा (लकड़ी) और कुशाओं के संचय पूर्वक सूखी लकड़ियों का एक प्रहर बोझा तैयार किया। तदुपरांत लकड़ी काटते समय सत्यवान् के शिर में पीड़ा उत्पन्न हुई। उन्होंने कहा—बाले! मुझे अत्यन्त पीड़ा हो रही है, अतः मुन्दरी! मैं शयन करना चाहता हूँ। ४१-४५। उस समय उनके दुःख से दुःखी होकर सावित्री ने कहा—महाबाहो! आप थोड़ा विश्राम कर लें, पश्चांत अपने आश्रम लौट चला जायेगा। सावित्री ने ज्यों ही बैठकर उनके शिर को अपनी गोद में रखा त्यों हि एक कृष्ण-पिंगल वर्ण पुरुष उसे दिखायी दिया, जो किरीट और पीतवस्त्र-धारण किये साक्षात् सूर्य की भाँति मालूम हो रहा था। सावित्री ने प्रणाम पूर्वक उस काले पुरुष से कहा—मेरी धर्षणा करने के लिए आये हुए तुम देव अथवा दैत्य कौन हो? ४६-४८। पुरुषश्रेष्ठ! मुझे कोई

न चाहं केनचिच्छक्षया स्वधर्माद्वरोपितुम् । स्प्रष्टुं वा पुरुषं श्रेष्ठं दीप्ता वह्निशिखा यथा ॥४९

यम उवाच

यमः संयमनश्चास्मि सर्वलोकभयद्वूरः । क्षीणायुरेव ते भर्ता तं नयामि पतिव्रते ॥
न शक्यः किंकरैनेतुमतोऽहं स्वयमागतः ॥५०

एवमुक्ता सत्यवतः शारीरात्पाशशस्त्र्यैः । अङ्गुज्ञमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात् ॥
अथ प्रयातुमारेभे पंथानं पितृसेवितश्च ॥५१

सावित्र्यपि वरारोहा पृथ्यतोऽनुजगाम ह । नतिव्रतां तथा श्रांतां तामुवाच यमस्तदा ॥५२
निर्वर्त गच्छ सावित्रि स्वगृहे त्वमिहागता । एष मार्गो विशालाक्षि न केनाप्यनुगम्यते ॥५३

सावित्र्युवाच

न श्रमो न च मे ग्लानिः कदाचिदपि जायते । भर्तारमनुगच्छांति यास्तासां न श्रमादयः ॥५४
सतां संतो गतिर्नन्या स्त्रीणां भर्ता सदा गतिः । वेदो वर्णश्रमाणां च शिष्याणां च गतिर्गुरुः ॥५५
सर्वेषामेव जन्मनां स्थानमस्ति सहीतलम् । भर्तार एव मनुजस्त्रीणां नान्यः समाश्रयः ॥५६
एवमन्दैश्च विद्यधैर्दक्ष्यैर्द्वर्ष्यर्थसंहितैः । तुतोष सूर्यतनयः सावित्रीं चेदमब्दवीत् ॥५७
तुष्टोऽस्मि तव भद्रं ते वरं वरय भामिनी । सावित्र्यपि वरान्वदे विनयावनतानना ॥५८
चक्षुःप्राप्तिस्तथा राज्यं भवशुरस्य महात्मनः । पितुः पुत्रशतं चैव पुत्राणां शतमात्मनः ॥५९

अपने धर्म से विचलित नहीं कर सकता और प्रज्वलित अग्नि-शिखा की भाँति मेरा स्पर्श भी नहीं कर सकता है । ४९

यम बोले—पतिव्रते! मैं समर्त (पापी) लागों को भीषण रायमत (नियंत्रण) करने वाला यम हूँ । यह तुम्हारे पति (सत्यवान्) की आयु अब क्षीण हो चुकी है अतः इसे अब यमपुरी ले जा रहा हूँ । मेरे सेवक गण इन्हें ले जाने में असमर्थ थे इसीलिए मैं स्वयं आया हूँ । इतना कह कर यमराज ने बल प्रयोग द्वारा सत्यवान् की देह से पाश में बैधे अंगूठे मात्र के एक पुरुष को निकाला । अनन्तर पितरों के नार्ग से जाने का उपक्रम भी किया । किन्तु वह वरारोहा सावित्री भी उनके पीछे जाने लगी । उस पतिव्रता को शांत देखकर यम ने उससे कहा—विशाल नेत्रों वाली सावित्री! तुम अपने घर लौट जाओ, यहाँ क्यों आ रही हो । क्योंकि इस मार्ग से कोई दूसरा नहीं आ सकता है । ५०-५३

सावित्री बोली—मुझे कोई भ्रम अथवा ग्लानि नहीं हो रही है क्योंकि पति की अनुगामिनी स्त्रियों को भ्रम आदि का कष्ट होता ही नहीं । सज्जनों के सज्जन और स्त्रियों के पति ही सदा गीत रूप हैं । जिस प्रकार वर्णश्रमों की भाँति वेद, शिष्यों के गुरु, और समस्त जीवों का स्थान यह महीतल है उसी भाँति स्त्रियों के आशय पति ही होते हैं अन्य नहीं । इसी प्रकार अन्य अनेक धर्मर्थ विषय की उसकी बातें सुनकर यमराज अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने सावित्री से कहा—भामिनी! तुम्हारा कल्याण हो । मैं तुम्हारी बातों से अति प्रसन्न हूँ अतः यथेच्छ वर की याचना करो । उसने विनय-विनम्र होकर उनसे वर की याचना की । ५४-५८। हमारे समूह महोदय को आँख प्राप्ति समेत राज्य की प्राप्ति हो और उनके सौ पुत्र एवं

जीवितं च तथा भर्तुर्धर्मसिद्धिं शाश्वती । धर्मराजो वरान्दत्त्वा प्रेषयामास तां ततः ॥६०
अथ भर्तारमासाद्य सावित्री हृष्टमानसा । जगाम साश्रमपदं सह भर्त्रा निराकुला ॥६१
भाद्रस्य पौर्णमास्यां तु यथा चीर्णं व्रतं त्विदम् । माहात्म्यस्त्य नृपते कथितं सकलं मया ॥६२

युधिष्ठिर उचाच

कीदृशं तद्वतं देव सावित्र्या यदनुष्ठितम् । तस्मिन्भाद्रपदे मासि सिद्धान्तं तत्य कीदृशम् ॥६३
का देवता द्रते तस्मिन्नूहि कामं प्रति प्रभो । सविस्तरं हृषीकेश बूहि धर्मं सनातनम् ॥६४

श्रीकृष्ण उचाच

श्रूयतां पाण्डवश्रेष्ठ मावित्रीन्नमादरात् । फथ्यामि कथं चीर्णं तथा सत्यःयुधिष्ठिर ॥६५
त्रयोदश्यां भाद्रपदे दंतधावनपूर्वकम् । त्रिरात्रं नियमः कार्यं उपवासस्य भारत ॥६६
अशक्त्या तु त्रयोदश्यां नकं कुर्याञ्जितेन्द्रियः । अयाचितं चतुर्दश्यामुपवासेन पूर्णिमाम् ॥६७
नित्यं स्नात्यः महानद्यां तडागे चाथ निर्झरे । विशेषः पौर्णमास्यां तु स्नानं सर्वेषमृज्जलैः ॥६८
गृहीत्वा तिलकान्त्यात्रे प्रस्थस्तात्रं युधिष्ठिर । अथ वा धान्यमादाय यवशालितिलादिकम् ॥६९
ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् । सादित्रीप्रतिमा कृत्वा सर्वावयशोभनाम् ॥७०
सौवर्णीं मृण्मयीं वापि स्वशक्त्या रौप्यनिर्मिताम् । रक्तवस्त्रयुग्मां द्यात्सावित्र्यैः झङ्घणे तथा ॥७१

उन पुत्रों के सौ पुत्र हों तथा जीवनदान समेत मेरे पति की शाश्वती धर्मसिद्धि होती रहे । पश्चात् धर्मराज ने उसे वर प्रदान कर उसके घर भेज दिया । पति की प्रप्ति से सावित्री को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । अनन्तर उसने पति के साथ अत्यन्त स्वस्थ चित से अपने आश्रम का प्रस्थान किया । नृपते! इस प्रकार भाद्रों मास की पूर्णिमा के दिन जिस प्रकार यह व्रत मुसम्पन्न होता है मैंने उसका सफल भहत्त्व तुम्हें बता दिया । ५९-६२।

युधिष्ठिर ने कहा—देव! भाद्रों के मास में सावित्री ने जिस व्रत का अनुष्ठान किया या, उसका स्वरूप क्या है, उस व्रत में कौन सा सिद्धान्त खाया जाता है! प्रभो, हृषीकेश! अपनी कामना को सफल करने के लिए उस व्रत में किस देवता की आराधना की जाती है! मुझे विस्तार पूर्वक यह सनातन धर्म बताने की कृपा कीजिये । ६३-६४

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डवश्रेष्ठ! युधिष्ठिर! पतिव्रता सावित्री ने किस प्रकार इस व्रत को मुसम्पन्न किया है, सादर सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! भारत! भाद्रों मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन से ही दातून करने से लेकर उपवास पूर्वक उस त्रिरात्र व्रत नियम का पालन करना चाहिए । उस दिन से उपवास करने में असर्मर्थ होने पर इन्द्रिय संयम पूर्वक त्रयोदशी के दिन नक्त (रात्रि में) भोजन, चतुर्दशी के दिन अपचित अन्न के भोजन और केवल पूर्णिमा के दिन उपवास करे । ६५-६७ किसी महानदी, सरोवर अथवा झारना में नित्यस्नान करते हुए पूर्णिमा के दिन राई, मिट्टी समेत जल से विशेष स्नान करना चाहिए । युधिष्ठिर (वाँस के) पात्र में एक सेर तिल, धान्य, जवा, अथवा साठी चावल, रख कर उसे दो वस्त्रों से आवेष्टित करे, पश्चात् सुवर्ण, मिट्टी अथवा यथाशक्ति चाँदी की सावित्री की सर्वाङ्गसुन्दर प्रतिमा बना

सावित्रीं ब्रह्मणा सार्दमेवं भक्तयः प्रपञ्चेत् । गन्धैः सुगच्छिपुष्टैश्च धूपनैवेद्यदीपकैः ॥७२
 पूर्णैः कोशातकैर्भृषैः कूण्माण्डैः कर्कटीफलैः । नालिकेरैश्च खर्जूरैः कपित्थर्दाडिमोफलैः ॥७३
 जम्बूजम्बीरनारङ्गैः कर्कटैः पनसैस्तथा । जीरकैः कटुखण्डैश्च गुडेन लवणेन च ॥७४
 विरुद्धैः सप्तधन्तैश्च वंशपात्रे प्रकल्पितैः । राजन्या सूत्रकट्टैश्च शुभैः कुड्कुमदेशरैः ॥७५
 अवतारवतीत्येवं सावित्रीं ब्रह्मणः प्रिया । तामर्चयेत मंत्रेण सावित्रीं द्वाहृणः स्वयम् ॥
 इतरेषां पुराणोक्तमन्त्रोऽत्र समुदाहृतः ॥७६
 ॐकारस्युर्वके देवि वीणापुस्तकव्याहारिणि । वेदमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥७७
 एवं संपूर्णं विधिवज्ज्ञागरं कारयेत्ततः । गोतदादिश्रशब्देन हृष्टजारीकर्त्त बकैः ॥७८
 नृत्यहासैर्न्येद्रामित्रिं पृष्ठतश्च कथानकैः । सावित्र्याल्यानकं वापि वाचयेद्द्वैजसत्तमम् ॥
 यावतप्रभातसमयं गीत्या भावरसैः समम् ॥७९
 ततः प्रभाते दिमल उषःकाले हृपस्थिते । द्वाहृणे वेदविदुषि सावित्रीं विनिवेदयेत् ॥८०
 यथा सावित्रकल्पजे सावित्र्याल्यानवाचके । दैवज्ञ उच्छवृत्तौ च दरिद्रे चाप्रिहोत्रिणि ॥८१
 मंत्रेणानेन कौतेय प्रणम्य विधिपूर्वकम् । दर्भाक्षततिलैर्मिश्रा पूर्वशाभिमुखास्थिता ।
 सुधी विप्रवरो विप्र अङ्कारस्वास्तिपूर्वके ॥८२

कर स्थापित करे । रक्तवर्ण के द्वारा वस्त्रों से सावित्री और ब्रह्मा सुशोभित कर ब्रह्मा के साथ में ही सावित्री की भक्ति पूर्वक गंध, सुगच्छित पुष्ट, धूप, दीप, नैवेद्य और दीपक द्वारा विशेष अर्चना करे । ६८-७२। पूर्ण कोशातकी के भक्त्य, कूण्माण्ड (कुम्हड़ा), ककड़ी, नारियल, खजूर, कैथ, अनार, जामुन, जम्हीरी नीबू, नारङ्गी, कटहल, जीरा, कटुखण्ड, गुड़ और नगक मिश्रित वह भोजन होना चाहिए । नये सवाधान्य के अंकुर, राजन्या सूत्रकंट और शुभ कुंकम के सर से उस बाँस के पात्र को विभूषित रखे । जिसमें सावित्री देवी स्थापित हों । अवतारवती उस ब्रह्मणि सावित्री देवी की अर्चना वेदमंत्रोद्वारा ब्राह्मण को स्वयं करना चाहिए और इतर जनों को निम्नलिखित पौराणिक मंत्रोद्वारा—ओंकार पूर्वक उस (सावित्री) देवी को नमस्कार कर रहा हूँ, जो वीणा वाद्य और पुस्तक को धारण किये वैधव्य कानाश करती है और वेद की माता है । इस प्रकार सविधान पूजन करने के अनन्तर रात्रिं-जागरण करते हुए गीत, वाद्य, नृप के ह्रास और कथाओं के द्वारा रात व्यतीत करनी चाहिए । किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ द्वारा सावित्री का आल्यान और भाव-रस पूर्ण गीत गाते हुए रात व्यतीत करने के अनन्तर उस विमल ऊषा काल के किसी वैदिक ब्राह्मण विद्वान को सावित्री की वह प्रतिमा समर्पित करे । ७३-८०। ‘जिस प्रकार सावित्री कल्प के ज्ञाता और सावित्री-आल्यान के कथावाचक का सुसम्मान किया जाता है उसी प्रकार उच्छवृत्ति’ वाले ज्योतिषी, और दरिद्र अग्नि होत्री का सम्मान करना चाहिए । कौतेय! इस मंत्र द्वारा सविधि सावित्री देवी को प्रणाम करके निम्नलिखित मंत्रोच्चारण पूर्वक वह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करे—कुश, अक्षत, और तिल मिश्रित आसन पर पूर्वाभिमुख सुशोभित सती सावित्री देवी को हिरण्य समेत श्रेष्ठ एवं

१. किसानों द्वारा खेत काटकर छोड़ने के उपरांत उसमें कहीं-कहीं के शेष दानों को इकट्ठा कर उससे जीवका निर्वाह करना ।

सावित्रीयं मया इत्था सहिरण्या महासती : ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्रह्मण प्रतिगृह्णताम् ॥८३
 एवं दत्ता द्विजेन्द्राय सावित्रीं तां युधिष्ठिरः । नैवेद्यादि च तत्सर्वं ब्राह्मणं स्वगृहं नयेत् ॥
 ॥८४ स्वयं दशपदं गच्छेत्यवेऽम पुनराविशेत् ॥८५
 तत्र भुक्त्वा हविष्यान्नं ब्राह्मणं ब्राह्मणं ब्राह्मणं ब्राह्मणं ब्राह्मणं ब्राह्मणं ब्राह्मणं ब्राह्मणं ॥८६
 पञ्चवदश्यां तथा ज्येष्ठे बटके च महासती । त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनानेन पूजयेत् ॥८७
 साद्वं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यकदीपकैः । पृष्ठावलम्बनं कृत्या काष्ठभारं युधिष्ठिर ॥८७
 रात्रौ जागरणं कृत्वा नृत्यगीतपुरस्सरैः । प्रभाते विधिना पूर्वं पूर्वोक्तेन नरोहन्तम् ॥
 ॥८८ तत्सर्वं ब्राह्मणे दद्यात्प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥८९
 एतत्तु ते व्रतमिदं कथितं दिव्यधिवन्मया । याश्वरिष्व्यंति लोकेस्मिन्दुत्रपौत्रसमन्विताः ॥
 भुक्त्वा भोगांश्चिरं भूमौ यास्यन्ति ब्रह्मणः पदम् ॥९०
 एतत्तु ते व्रतमिदं कथितं विधिवन्मया । याश्वरिष्व्यंति लोकेस्मिन्दुत्रपौत्रसमन्विताः ॥
 भुक्त्वा भोगांश्चिरं भूमौ यास्यन्ति ब्रह्मणः पदम् ॥९१
 एतत्पुण्यं पापहरं धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् । जपतः शृण्वतां चैव सावित्रीवतनादरात् ॥९२
 स्मृत्यवेदजननीं सहशंभुजायां संपूजयेदिहं त्रिरात्रकृतोपवाता ।
 सावित्रीवत्पितृकुलं च तथा स्वर्भर्तुरुद्धारयेच्च विभुनक्ति चिरं सुखानि ॥९२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरर्पदिं श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 वटसावित्रीवतवर्णनं नाम द्वयधिकशततमोऽध्यायः । १०२

विद्वान ब्राह्मण के लिए अर्पित कर रहा हूँ । हे ब्राह्मण ! ओंकार पूर्वक स्वस्ति उच्चारण करते हुए ब्रह्मा के प्रत्यन्नार्थ इसका ग्रहण करो । युधिष्ठिर ! इस प्रकार सावित्री को, अर्पित करने पर वह ब्राह्मण उस प्रतिमा समेत नैवेद्य आदि सब वस्तु अपने घर ले जाये । उस समय (यजमान को) ब्राह्मण के साथ उसके सम्मानार्थ दण पग चल कर पुनः अपने घर लौट आना चाहिए । ८१-८४। पश्चात् सावित्री प्रीपताम् (प्रसन्न हों) कहकर विप्रों को सादर विसर्जित करे । युधिष्ठिर ज्येष्ठ भास की पूर्णिमा के दिन वट के नीचे त्रिरात्र व्रत के उपवास पूर्वक नारी को इसी विधान द्वारा पूजन करना चाहिए । परदे के भीतर लकड़ी के गढ़र समेत सत्यवान् के साथ सती सावित्री की फल, नैवेद्य, और दीपक आदि द्वारा अर्चना सुसम्पन्न करके नृत्य गीत करते हुए जागरण द्वारा रात्रि व्यतीत करे और विमल प्रभात होने पर पुनः पूर्वोक्त की भाँति प्रतिमा आदि सब कुछ सादर ब्राह्मण को अर्पित कर क्षमा याचना करे । इस प्रकार मैंने वह व्रत सविधान तुम्हें सुना दिया । जो स्त्रियाँ इस विधान द्वारा इस त्रिरात्र व्रत को सुसम्पन्न करेंगी, वे इस लोक में पुत्र-पौत्र समेत चिरकाल तक उत्तम भोगों के उपभोग करके अन्त में ब्रह्म पद प्राप्त करेंगी । इस सावित्री व्रत को सादर सुनने वाले प्राणी को पाप और दुःस्वप्न के विनाश पूर्वक पुण्य की प्राप्ति होती है । इस त्रिरात्र व्रत में उपवास पूर्वक स्मृति-वेद आदि की जननी (सावित्री) की पार्वती के साथ अर्चना करने पर वह सभी भी सावित्री की भाँति पितृ कुल और पति के उद्धार पूर्वक चिरकाल तक सुख का उपभोग करती है । ८५-९२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरर्पद में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में
 वट सावित्री व्रत वर्णन नामक एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त । १०२।

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

कार्तिककृत्तिकाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पूर्वमासीत्कृतयुगे क्षत्रिणी बहुपुत्रिणी । नाश्चा कलिंगभद्रेति रूपलावण्यसंयुता ॥१
 तुङ्गस्तनी एवनेत्रा हंसनागेन्द्रगामिनी । सौभाग्यगुणसंपूर्णा चंद्रबिंबनिभानना ॥२
 धनरत्नैरच सम्पूर्णा मध्यदेशे वृष्टस्थले । राज्ञः पत्नी तु सा देवी दिलीपस्य भ्रह्मत्सनः ॥
 कलिङ्गभद्रा ललिता महादेवी गुणान्विता ॥३
 महाप्रसादं मन्वाना बहुमानपुरस्सरम् । ब्राह्मणेभ्यश्च दानानि प्रयच्छति महासती ॥४
 त्यागसंभोगसौभाग्ये द्वितीयः नैव तादृशी । नारीणां तु नरश्रेष्ठ दिलीपस्य यथा विधा ॥५
 यथा च कार्तिके मासि गृहीतं क्षत्रियाव्रतम् । षष्मासेन व्रतं यावदिदं संचिन्त्य चेतसि ॥
 पारितं च तथा सर्वं किंचिन्मात्रं तु वर्तते ॥६
 पारणेपारणे वापि पुराणज्ञे द्विजोत्तमे । उद्यापनं प्रयच्छन्ती कालं नयति सुन्दरी ॥७
 कदाचिदर्धरात्रे तु सुप्ता भर्त्रा सहैव सा । दष्टा सर्पेण रौद्रेण जगाम निधनं क्षणात् ॥८
 तेन दोषेण सा बाला अजायोनौ ह्यजायत । वनेचरी धर्मपरा पूर्वजातिस्मरा दृढा ॥९

अध्याय १०३

कार्तिककृत्तिकाव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में कलिंगभद्रा नामक एक क्षत्रियाणी रानी थी, जो अनेक पुत्रों से युक्त एवं रूप-लावण्य सम्पन्न थी । उसके ऊँचे स्तन और कमल के समान नेत्र तथा हंस एवं गजराज की भाँति उसकी चाल थी । समस्त सौभाग्य के गुणों से युक्त वह चन्द्रमुखी मध्यदेश के वृष्टस्थल निवासी एवं महात्मा राजा दिलीप की पत्नी थी, जो धन-रत्नों से परिपूर्ण थे । महादेवी के गुणों से युक्त वह परमसुन्दरी रानी कलिंगभद्रा, जो उच्चकोटि की पतिव्रता थी, महाप्रसाद की भाँति अत्यन्त सम्मान पूर्वक ब्राह्मणों को दान देती थी । नरश्रेष्ठ! उस समय राजा दिलीप की प्रेयसी पत्नी कलिंग भद्रा के समान त्याग संभोग और सौभाग्य में सामना करने वाली कोई दूसरी स्त्री नहीं थी । १-३। ‘छः मास में वह व्रत समाप्त हो जायगा’ वह सोचकर उसने कार्तिक मास में क्षत्रिका व्रत का अनुष्ठान आरम्भ किया किन्तु अनुष्ठान का सब कुछ अंश समाप्त करने पर भी कुछ अवशेष रह गया । प्रत्येक पारण में वह सुन्दरी पुराणवेत्ता ब्राह्मण को उद्यापन में दान की समस्त वस्तुओं से सुसम्मानित करती थी । इस प्रकार अपने सुखी जीवन को व्यतीत करती हुई वह किसी दिन आधी रात के समय अपने पति के साथ शयन किये थी कि उसी बीच भीषण सर्प के काट लेने से उसकी मृत्यु हो गयी । जिसके कारण उस बाला को अजा (वकरी) की योनि में जाना पड़ा । ४-८। अजा (वकरी) रूप में भी वह जंगलों में धूमती हुई

पूर्वाभ्यासेन तेनैव गृहीतं कृत्तिकाव्रतम् । व्यस्ता यूथपरिभ्रष्टा उपवासपरिस्थिता ॥१०
 परक्षेब्रेण गच्छती अजा सस्यावर्मद्वन्नी । कार्तिक्यां गलके बद्धः शास्यकेण चिरागता ॥११
 दृष्टिक्रिणा महाभागा पूर्वजातिस्मरेण सः । कारणं बुध्य तां बुद्धा सहकालिंभद्रिकाम् ॥१२
 मोक्षिता बद्रीबद्धा चरंती कृत्तिकाव्रतम् । गोपालबंधनात्साध्वी अनिवेदपरा तु सा ॥१३
 संप्राप्य बद्रीपत्रं पीत्वा पुष्करिणीपदः । ममेत्युक्त्वा ह्यसंब्रांता पारयामास तद्वत्तम् ॥
 तस्यै योगं ततो दत्त्वा जगामात्रिस्तपेवनम् ॥१४
 सापि योगेश्वरी भूत्वा निंदित्वा जन्म चात्सनः । हत्याज योगात्स्वान्त्राजान्त्रस्थिता गौतमस्य हि ॥
 श्वर्वेष्वभूत्व दुहिता ह्यहल्या ॥१५
 योगलक्ष्मीति नान्ना सा कन्या गुणगणीर्युता । विद्येव दत्त्वा सा पित्रा शांडिल्याय महर्षये ॥
 तपोधनाय दान्ताय नित्यं राहचरी लभौ ॥१६
 ब्राह्मलक्ष्म्या दीप्यमाना साक्षादेवस्मृतिर्यथा । सरस्वती च स्वादा च शची चारुन्धती यथा ॥१७
 गौरी राजी तथा लक्ष्मीरायश्री चोत्तमा सती । महालक्ष्मीस्तथा राजञ्चाण्डिल्यस्य गृहे बभौ ॥१८
 पितृदेवमनुष्याणां नित्यं शुश्रूषणे रता । अथ तेनाक्रिणा दृष्टा पुनर्गर्भवती गृहे ॥१९
 भक्त्या भिक्षां प्रयच्छती ब्राह्मणानामनिदिता । योगाद्विदित्वा तामूचे भगवान्पूर्वद्वच्छनैः ॥२०

जन्मान्तरीय कर्मों के स्मरण के कारण कृत्तिका व्रत का पालन करना आरम्भ किया । वह अपने यूथ से अलग रह कर उपवास करने लगी । दूसरों के खेतों में जाना छोड़ दिया । अनन्तर उसी कार्तिक पूर्णिमा के दिन उसे कोई ग्रामीण पुरुष यहाँ बाँध रखा किन्तु अत्रि (महर्षि) ने चिरकाल के अनन्तर उधर से लौटते समय उसे देखा । पूर्वजन्म के स्मरण होने के नाते उसने उहाँ पहचान लिया और अपने बाँधे जाने के कारण को जानने के लिए उन्हें संकेत भी किया । महर्षि ने भी कृत्तिका व्रत का अनुष्ठान करने वाली अजा (बकरी) को कलिंग भद्रा जान कर उसे वेर के वृक्ष से बाँधे बंधन से मुक्त कराया । वह पतिव्रता उस अहीर के द्वारा बाँधे जाने पर भी अपने अल्प व्रत के नाते कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं कर रही थी । बंधन से मुक्त होकर उसने वेर का पत्ता खाया और पुष्करिणी का जल पीया । पश्चात् 'यह मेरा ही है' ऐसा कहकर निर्भाल्ति चित्त से उस व्रत के अनुष्ठान को पूरा किया । महर्षि अत्रि ने उसे योग का उपदेश देकर अपने तपोवन को प्रस्थान किया और उसने भी (योगाभ्यास द्वारा) योगेश्वरी होकर अपने उस जन्म की निन्दा करती हुई योग द्वारा अपने प्राण का परित्याग किया और पुनः गौतम ऋषि की पल्ली अहल्या के गर्भ से परमसुन्दरी कन्या होकर उत्पन्न हुई । १५-१५ । उसके पिता गौतम ने उसका योगलक्ष्मी नाम करण करके सर्वगुण सम्पन्न उस कन्या को विद्या की भाँति ही शांडिल्य महर्षि को प्रदान किया । वेद की सहचरी स्मृति की भाँति वह ब्राह्मलक्ष्मी से देवीप्यमान होकर उन तपोधनं एवं विशुद्ध शांडिल्य ऋषि की नित्यकी सहधर्मिणी होकर रहने लगी राजन् । सरस्वती, स्वादा, शची, अरुन्धती, गौरी, (सूर्य पल्ली) राजी, लक्ष्मी और परमसती गायत्री की भाँति ही वह शांडिल्य के घर की महालक्ष्मी हुई । १६-१८ । पितरों, देवों और अतिथि मनुष्यों की नित्य सेवा शुश्रूषा करती थी । तदुपरांत गर्भवती समय में महर्षि अग्नि से पुनः भेट हो गयी, जबकि वह भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को भिक्षा प्रदान कर रही थी । भगवान् अग्नि ने योगद्वारा

योगलक्ष्मि महाभागे वर्तंते कर्ति कृतिकाः । सायि जातिस्मरः प्राह भगवंतं महासती ॥
 षडुर्तंते महायोगिक्षेका परवशे स्थिता ॥२१
 तच्छ्रुत्यात्म्ये भगवता सकारम्बेन चैतसा । दत्तं वरं तथा मन्त्रो येन स्वर्गं जगाम सा ॥२२
 इह मुक्त्वा चिरं भोगान्नुब्रौपौत्रश्रिया वृता । ततः सा तत्पदं प्राप्ता पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२३

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं तद्वतं कृष्ण! मन्त्रश्चापि जनार्दन । विधानं कृतिकानां च तं च कालं वदस्व मे ॥२४

श्रीकृष्ण उदाच

कृतिकामु स्वयं सोमः कृतिकामु वृहस्पतिः । यदा स्यात्सोमवारेण सा महाकार्तिकी स्मृता ॥२५
 ईदृशी ब्रह्मिर्वर्षेद्युहुपूष्यैश्च लभ्यते । तथा सा न वृथा नेया यदीच्छेच्छेय आत्मनः ॥२६
 अन्यापि कार्तिकी पार्थं समुद्गेष्य विधानतः । तस्या विधानं राजेन्द्र शृणुष्वैकमना भव ॥२७
 कार्तिके शुक्लपञ्चम्य पूर्णमास्यां दिनोदये । नक्ताय निदनं कुर्यादित्तधावनपूर्वकम् ॥२८
 उपवासस्य वा शक्त्या ततः न्नात्वा जलाशये । कुरुक्षेत्रे प्रयागे वा पुष्करे नैमिषे तथा ॥२९
 शालग्रामे कुशावर्ते मूलस्थाने सकुन्तले । गोकर्णे वार्दुदे पुष्पेष्यथ वाप्यमरकंटके ॥३०
 पुरे वा नगरे वापि ग्रामे घोषेष्यथ पत्तने । यत्र वा तत्र वा न्नायान्नरो योषिदथापि वा ॥
 देवर्षिपितृपूजां च कृत्वा होमं युधिष्ठिर ॥३१

उसे पहचान कर पूर्व की भाँति पुनः उससे धीरे-धीरे पूछा—‘महाभागे—योगलक्ष्मि! कितनी कृतिकायें हों चुकी। उस महासती ने भी पूर्व जन्म के स्मरण द्वारा कहा—भगवन्! महायोगिन्! छह है किन्तु इस समय में फिर भी एक परवश है। इसे सुनकर भगवान् अपि ने कहणा प्रकट करते हुए उसके व्रत को पूरा करते हुए वह भंत्र भूतल में पुत्र-पौत्र समेत चिरकाल तक अनेक भाँति के भोगों के उपभोग करने के अनन्तर उस पद पर चली गयी जहाँ से कभी जन्म होता ही नहीं। १९-२३

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! जनार्दन! कृतिकाओं का वह व्रत और उसका विधान किस प्रकार का है, मुझे बताने की कृपा कीजिये। २४

श्रीकृष्ण बोले—कृतिकाओं में स्वयं सोम और वृहस्पति निवास करते हैं और सोमवार के दिन प्राप्त होने पर वह महाकार्तिक कही जाती है जो अनेवर्षों के पुण्य से प्राप्त होती है। इसलिए अपने श्रेय के इच्छुक को इसे वर्ष न निकल जाने देना चाहिए। पार्थ! राजेन्द्र! दूसरी कार्तिकी का भी सविधान उपवास आदि करना चाहिए। मैं उसका विधान बता रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो! कार्तिक मास की (शुक्र) पूर्णिमा को दिन निकलते समय दातून से आरम्भ कर नक्त (रात्रि तक) के समस्त नियमों के पालन करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। उपवास करने में अत्यधिक रहने पर कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, नैमिष, शालग्राम, कुशावर्त, सकुन्तल मूलस्थान गोकर्ण, अर्दुद अथवा पुष्प अमरकण्टक के किसी जलाशय में या पुर, नगर, गांव अथवा घर में जहाँ कहीं स्नान करके उस स्त्री या पुरुष को देव, ऋषि एवं पितरों की

ततोऽरत्तसमये प्राप्ते पात्रं नव्यस्य सर्पिषः । क्षीरस्य वा मुसंगूर्णं कृत्वा गुडफलान्वितम् ॥
षट्प्रमाणं दथा व्येन्नि कृत्तिकाशकटं न्यसेत् ॥३२

षट्कृत्तिकानां विम्बानि स्वर्णरौप्यमयानि च । रत्नगर्भाणि कुर्याच्च स्वशक्त्या पाण्डुनन्दन ॥३३

प्रथमः स्वर्णनिष्ठाना द्वितीया रौप्यकीकृता । तृतीया रत्नघटिता चतुर्थी नवनीतजा ॥३४

पञ्चमी कणिकाः पूना षष्ठी पिष्टमयीकृता । षट् कृत्तिकाः कृत्तिबिंबाः कृत्वालक्तकसूत्रिका ॥३५

रत्नगर्भाः कुंकुमात्तकाः पृष्ठतः स्तबकान्विताः । रिंदूरचन्दनभूतका जातीपुष्टैः मुपूजिताः ॥
३६

मंत्रेणनेत राजेन्द्र द्विजाय प्रतिपादयेत् ॥३६

“ॐ सप्तर्षिदारा हृनलस्य वल्लभा या ब्रह्मणा रक्षितयेति युक्ताः ।

तुष्टाः कुमारस्य यथार्थमातरे ममापि सुप्रीततरा भवतु—स्वाहा” ॥३७

एवमुच्चार्य विप्राय ब्रदेवाः कृत्तिका नृप । ब्राह्मणोऽपि प्रतीच्छेत मंत्रेणानेन पांडव ॥३८

धर्मदाः कामकाः सन्तु इमा नक्षत्रमत्तरः । कृत्तिका दुर्गसंसरात्तारयंत्वावयोः कूलम् ॥३९

अनेन विधिना दत्त्वा द्वृष्टा चैवांबरे स्थिताः । विमृज्य ब्राह्मणान्भक्त्या चानुवज्य पदानि षट् ॥

निवर्त्य च कथार्थं तु भृण्यात्कलमाप्नुयात् ॥४०

विमानेनार्कवर्णेन गत्वा नक्षत्रमंडलम् । दिव्येन वपुषा युक्ताः स्वकंचनविभूषितः ॥४१

दिव्यनारीगणवृतः सुखं भुक्ते ह्यनामयम् । दोधूयमानश्चमरै रत्नपङ्कत्या विराजितः ॥४२

पूजा और हवन करनी चाहिए। युधिष्ठिर! पश्चात् सूर्यास्ति के समय गौ का धृत अथवा दुर्घ गुड और फल समेत किसी पात्र में रख कर छः भागों में विभाजित करते हुए व्योम में स्थित कृत्तिकाशकट को अर्पित करे। पाण्डुनन्दन! छः कृत्तिकाओं के उन विम्बों को सुर्वा अथवा चाँदी के रत्नगर्भित बनाये यथाशक्ति पहला विम्ब सुर्वा का दूसरा चाँदी का तीसरा, रत्न का, चौथा नवनीत (मक्खन) का, पाँचवाँ गेहूँ के आटे (मैदा) का और छठाँ पीठी का बनाकर रत्नगर्भित उन्हें अलक्तक और कुकुम से भूषित कर उनके पृष्ठ भाग पुष्ट गुच्छों से सुशोभित करे। राजेन्द्र! सिन्दूर, चन्दन और चमेली का पुष्पों से विभूषित एवं पूजित कर किसी ब्राह्मण थ्रेष्ठ को समर्पित कर दे। नृप-पाण्डव! ब्राह्मण को अर्पित करते समय यह मंत्र कहना चाहिए। २५-३६। ‘कुमार के ऊपर सन्तुष्ट होने वाली वे मातायें, जो सप्तर्षियों की स्त्रियाँ एवं अग्नि की वल्लभा होकर ब्रह्म द्वारा सुरक्षित हैं, मेरे ऊपर भी उसी भाँति अत्यन्त प्रसन्न हों। इसे पूर्व में ओंकार शब्द और अन्त में स्वाहा शब्द समेत उच्चारण करते हुए सादर अर्पित करे। उसी प्रकार अतिग्राही ब्राह्मण भी उसे ग्रहण करते समय कहे कि—धर्म और कामनाओं को सफल करने वाली कृत्तिकाँ ए जो नक्षत्रों की जननी रूप हैं, इस दुर्गम संसार से हम दोनों के कुल का उद्धार करें। इस विधान से प्रदान करते समय आकाश में उनके दर्शन कर ब्राह्मण विसर्जित करे। उस समय (उनके सम्मानार्थ) कम से कम छः पग तक उनके पीछे चलना चाहिए। पश्चात् लौट कर कथा की यथार्थ बातें सुननें पर जो फल प्राप्त होते हैं सुनों। ३७-४०। सूर्य के समान प्रभापूर्ण विमान पर बैठ कर वह नक्षत्र मण्डल की यात्रा करना है। उस समय वह दिव्य शरीर धारण किये माला-चन्दन से भूषित एवं दिव्य नारियों से सुसेवित होते हुए उत्तम सुख का अनुभव करता है। उसके दोनों ओर चामर चलते रहते हैं, रत्नों की राशि सदैव लगी रहती है

पारिजातकमंदारपुष्पभारोपशोभितः । कृतार्थः परिपूर्णाशस्तिष्ठेदाभूतसंप्लवम् ॥४३
 ताराः कृत्वा न्रतोते वा गत्वा स्वर्गं सर्वतृका । रसते निर्भया साध्वी सर्वभोगसमन्विता ॥४४
 यश्चैतच्छृणुयात्पार्थं भक्तियुक्तः समाधिना । नारी वा पुरुषो वापि मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥४५
 सौवर्णरौप्यमणिगोनवनीतसिद्धाः षट् कृत्स्तिकाः कणिकपिष्टमयीश्च कृत्वा ।
 पात्रे निधाय कुमुदाक्षतधूपदीपैः संपूज्य जन्मगहनं न विरांति मर्त्याः ॥४६
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 कार्तिक्यां कृत्स्तिकाव्रतवर्णनं नाम अधिकशततमोऽध्यायः । १०३

अथ द्वतुरधिकशततमोऽध्यायः

पूर्णमनोरथव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पञ्चदश्यां शुक्लपक्षे फाल्गुनस्य नरोत्तम । पाखंडाम्पितां चैव तथैवान्त्यावसायिनः ॥१
 नास्तिकान्भन्नवृत्तांश्च पापिनो नैव चालयेत् । नारायणे गतमनाः पुरुषो हि जितेन्द्रियः ॥२
 तिष्ठन्नजन्मस्खलन्वा भुञ्जानोऽपि जनार्दनम् । कीर्तयेच्च क्रियाकाले सप्तकृत्वो महीपते ॥३

इस प्रकार पारिजात एवं मंदार आदि पुष्पों के भार से सुशोभित होकर वह कृतार्थ एवं समस्त आशाओं को पूरी कर महाप्रलय तक दर्तमान रहता है । व्रत के अन्त में नक्षत्रों की प्रतिमाओं के दान करने पर सभी पति समेत स्वर्घ पहुँच कर शुभ-पतिव्रता की भाँति समस्त सुखों का उपभोग करती हैं । पार्थ! भक्ति पूर्वक एकाग्र मन से इस पापों से मुक्त हो जाती है । इस प्रकार सुवर्ण, चाँदी, मणि, तथा गाय के मक्खन गेहूं का मैदा, अथवा पीठी से कृत्स्तिकाओं की प्रतिमा बनाकर पात्रों में उनके स्थापन पूर्वक पुष्प, अक्षत, धूप, और दीप द्वारा पूजन करने से मनुष्यों को जन्म ग्रहण करने के घोर दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है । ४१-४६।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 कार्तिक में कृत्स्तिका व्रत वर्णन नामक एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त । १०३।

अध्याय १०४

पूर्णमनोरथव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नरोत्तम! फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा के दिन पाखण्डी, पतित, शूद्र, नास्तिक, (अपनी जाति से) अन्य वृत्ति (जीविका) अपनाने वाले एवं पापी प्राणियों से किसी प्रकार की बात-चीत न करके केवल इन्द्रिय-संयम पूर्वक नारायण में चित लगाकर ठहरते, चलते, गिरते-उठते, खाते-पीते, और अन्य क्रियाओं के करते समय भी भगवान् जनार्दन के नामों का संकीर्तन करना चाहिए । इस भाँति सात प्रकार से उनका कीर्तन-सेवा करते हुए लक्ष्मी समेत जनार्दन भगवान् की शर्चना करे । १-३। संध्यादिसे

- लक्ष्या समन्वितं देवमर्चयेच्च जनाईनम् । संध्याहुपरमे चन्द्रस्वरूपं हरिसीम्बरम् ॥
रात्रौ च लक्ष्मीं संचिन्त्य सम्यगर्थ्येण पूजयेत् ॥४
- श्रीनिशाकररूपस्त्वं वासुदेव जगत्पते । मनोभिलिषितं देव पूरयस्व नमोनमः ॥५
मंत्रेणानेन दत्त्वार्थं देवदेवस्य भक्तिः । नक्तं भुञ्जीत न स्वरं तैलक्षारविदर्जितम् ॥६
तथैव चैत्रे वैशाखे ज्येष्ठे च नृपसत्तमः । अर्चयेच्च यथाप्रोक्तं मासिमासि च तद्दिने ॥७
निष्ठःदितं भवेदेकं पारणं पार्थं शक्तिः । द्वितीयं चापि वक्ष्यादि पारणं ते नरोत्तम ॥८
आषाढे श्रादणे मासि प्राप्ते भाद्रपदे तथा । तथैवाभ्युजेभ्यर्थं श्रीधरं पियथा सह ॥
अर्धं चन्द्रमसे दत्त्वा भुञ्जीताथ यथादिधि ॥९
- द्वितीयमेतदाख्यातं तृतीयं पारणं शृणु : कार्तिकादिषु मासेषु तथैवाभ्यर्थं केशदम् ॥
भूत्वा समन्वितं दद्याच्छाशाकाय तथा निशि ॥१०
- भुञ्जीत च यथाख्यातं तृतीयं पारणं शृणु । प्रतिपूज्य ततो दद्याद्वाहणोभ्यश्च दक्षिणाम् ॥
प्रतिमासं च वक्ष्यामि प्राशनं कायशुद्दये ॥११
- चतुरः प्रथमान्मासान्यन्वयमुदाहृतम् । कुशोदकं तथैवान्यदुक्तं मासचतुष्टयम् ॥१२
सूर्याशुतप्तं तद्वच्च जलं कायविशोधनम् । गीतवाद्यादिकं रात्रौ तथा कृष्णकथां शुभाम् ॥
कारयेच्चैव देवस्य पारणेपारणे गते ॥१३

निवृत्त होने पर चन्द्रस्वरूप एवं ईश्वर भगवान् विष्णु के ध्यान पूर्वक पूजन करना चाहिए और रात्रि में लक्ष्मी जी के ध्यान करते हुए अर्ध प्रदान करते समय इस संत्र का उच्चारण करे कि—‘वासुदेव। जगत्पते! आप भी निशा-पति चन्द्र की भाँति स्वरूप धारण किये हैं, अतः देव! मेरी अभिलाषा पूरी करें। मैं आप को बार-बार नमस्कार करता हूँ।’ देवाधि देव भगवान् विष्णु को इस भाँति भक्ति पूर्वक अर्ध प्रदान करके रात्रि में तेल रहित नक्त भोजन करे किन्तु यथेच्छ नहीं। नृपसत्तम! उसी प्रकार चैत्र, वैशाख, और ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन पूर्वोक्त रीति से भगवान् की अर्चना करके तीसरे मास के अन्त में बताये गये के अनुसार पारण करे। इस प्रकार यह पहला पारण हुआ और अब दूसरा बता रहा हूँ सुनो! पार्थ, नरोत्तम! आषाढ़, सावन और भाद्रों तथा आश्विन (कुवार) मास में प्रिया लक्ष्मी समेत भगवान् श्रीधर की अर्चना और चन्द्रमा को अर्ध प्रदान करके यथा विधान भोजन (पारण) करे। इस प्रकार यह दूसरा पारण बता दिया गया। अब तीसरा पारण बता रहा हूँ, सुनो! कार्तिक आदि चारों मासों में भगवान् केशव देव की अर्चना और रात्रि में शाशांक (चन्द्र) देव को अर्ध प्रदान करके भोजन (पारण) करे। इस प्रकार तीसरे पारण की व्याख्या करके पारण करने की वस्तु बता रहा हूँ, सुनो! सर्वप्रथम भगवान् की अर्चा और ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करने के अनन्तर मेरे बताये हुए वस्तु का शरीर शुद्धयर्थ पारण करे। ४-१। प्रथम (फालगुन आदि) के चौथे मास के अन्त में पञ्चगव्य, दूसरे (कार्तिक आदि के) तीसरे पारण में सूर्य किरण से संतुप्त जल के पारण शरीर-शुद्ध्यर्थ करना चाहिए। प्रत्येक पारण में रात्रि के समय गीत, वाद्य के उपरात भगवान् कृष्ण की शुभ कथा सुननी चाहिए। प्रथम पारण

जनार्दनं सप्तलीकमर्चयेत्प्रथमं ततः । सश्रीकं श्रीधरं तदनृतीये भूतिकेशवौ ॥१४
 प्रतिमासं तु नामानि कृष्णस्यैतानि भारत । कृतोपवासः सुन्नातः पूजयित्वा जर्नादिनम् ॥
 उच्चारयन्नरो याति यथालोकं यदासुखम् ॥१५

ततोविप्राय वै दद्यादुदकुम्भं सदक्षिणम् । उपानद्वस्त्रयुगमं च छ्यञ्च कनकमेव च ॥१६
 यद्वै सासगतं नाम स्रीदत्तामिति कीर्तिते । केशवं मार्गशीर्षं तु पौदे नारायणं तथा ॥१७
 माधवं माधभासे तु गोदिन्दमपि फालगुने । चैत्रमासे तथा विष्णुं वैशाखे लघुसूदनम् ॥१८
 ज्येष्ठे त्रिविक्रमो ज्ञेयस्तथाषाढाटे च दामनः । श्रीधरः श्रावणे तद्दृहृषीकेशेति चापरम् ॥१९
 रामो भाद्रपदे याति गीष्टते पुण्यकाङ्क्षिभिः । पद्मनाभमाश्वयुजि दामोदरमतः परम् ॥२०
 कार्तिके देवदेवेशं स्तुवस्तरति दुर्गतिम् । एवं संवत्सरस्यांते प्रतिमासे क्रमोदितम् ॥
 यदि दातुं न शक्नोति दद्याच्चैवैकहेतया ॥२१

विशेषश्चात्र कथितश्चन्द्रं दृत्वा हिरण्यवम् । पूजयित्वा फलैर्वस्त्रैब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२२
 स्तुवन्नेवं विधानेत् पाणोऽभ्यर्चयेत्प्रभुम् । तावंति जन्मान्यसुखं नाम्रोतीष्टादिदोगजम् ॥२३
 इहैव स्वस्थतां प्राप्य मरणे स्मरणं ततः । स्थानं तु मम संप्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥२४
 ततो मानुष्यमासाद्य निरातंको गतज्वरः । धनधान्यवति स्फीतेजन्म साधुकुलेर्हति ॥२५

के मासों में सप्तलीक जनार्दन देव, दूसरे में श्री समेत श्रीधर और तीसरे में भूति समेत केशव की पूजा करनी चाहिए। प्रति मास में भगवान् कृष्ण के इन्हीं नामों का कीर्तन करना चाहिए। उपवास करते हुए भगवान् जनार्दन की अर्चना के अनन्तर उनके नाम का कीर्तन करने पर मनुष्य परमोत्तम लोक की प्राप्ति पूर्वक यथेच्छ सुखों का उपभोग करता है। १२-१५। (उद्यापन के समय) जलपूर्ण कलश, दक्षिणा, उपानह, चारवस्त्र, छत्र और सुवर्णका दान आह्मण को सादर समर्पित कर उस समय में पूजित होने वाले भगवान् के नाम का कीर्तन करे। अगहन में केशव, पौष में नारायण, माघ में माधव, फालगुन में गोविन्द, चैत में विष्णु, वैशाख में मधुसूदन, ज्येष्ठ में त्रिविक्रम, आषाढ़ में दामन, सावन में श्रीधर, और हृषीकेश भादों में राम, आश्विन में पद्मनाभ और दामोदर तथा कार्तिक में देवदेवेश की स्तुति करने पर मनुष्य की दुर्गति नहीं होती है। इस प्रकार पूरे वर्ष के क्रमशः प्रति मास के नाम कीर्तन बता दिया गया। यदि उपरोक्त वस्तुओं के दान करने में असमर्थ हो तो एक ही किसी वस्तु का दान करे। १६-२१। विशेष दान भी बता रहा हूँ, सुनो! चन्द्रमा की सुवर्ण की मूर्ति बनवाकर फल-वस्त्र समेत इसी विधान द्वारा प्रत्येक पारण में उनकी पूजा करने पर वह भी अनेक जन्मों तक सुखों के उपभोग करते हुए प्रिय के वियोग दुःख का अनुभव नहीं करता है। तथा इस लोक में आजीवन स्वस्थ एवं सुखी रह कर अन्त में मेरे स्वर्ग लोक में सुसम्मानित होता है। २२-२४। पश्चात् मनुष्य की शरीर प्राप्त कर निर्भीक और चिन्ता हीन रहते हुए धन-धान्य सम्पन्न एवं पवित्र कुल में जन्म ग्रहण करता

श्रीशर्वरी मधुनि हा भगवाञ्छशांकः संकल्प्य चन्दनतिलाक्षतपुष्पभिश्रम् ।
यच्छ्रुतं येऽर्घमनया नृप पूर्णिमायां नूनं भवंति पर्तिपूर्णमनोरथात्ते ॥२६

इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
पूर्णमनोरथन्तं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः । १०४

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

विशोकपूर्णिमाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अशोकपूर्णिमां चान्यं शृणुष्व गदतो नम । यामुपोष्य नराः शोकं नानुवंति कदाचन ॥१
फाल्गुनामस्लपक्षस्य पौर्णिमास्यां नरोत्तम । मृगज्जलेन नरः स्नात्वा दत्वः शिरसि वै मृदम् ॥
मृत्प्राशनं ततः कृत्वा च स्थंडिलं मृदा ॥२

पुज्यैः पत्रैस्तथाभ्यर्च्य भूधरं नाम नामतः । धरणी च तथा देवीमशोकेत्यभिकीतयेत् ॥३
यथा विशोकां धरणे कृतवांत्त्वां जनार्दनः । तथा मां सर्वशोकेभ्यो मोचयाशेषधारिणि ॥४
यथा समस्तभूतदामाधारस्त्वं व्यवस्थिता । तथा विशोकं कुरु मां सकलेच्छाविभूतिभिः ॥५
ध्यानमात्रे तथा विष्णोः स्वास्थ्यं जानासि मेदिनी । तथा मनः स्वस्थतां मे कुरु त्वं भूतधारिणि ॥६
एवं स्तुत्वा तथाभ्यर्च्य चन्द्रयादर्थं निवेद्य च । उपोषितव्यं नक्तं वा भोक्तव्यं तैलवर्जितम् ॥७

है । नृप! पूर्णिमा के दिन भी निशापति भगवान् चन्द्र देव के लिए संकल्प पूर्वक चन्दन, तिल, अक्षत और पुष्प मिश्रित अर्घ्य प्रदान करने वाले मनुष्यों के मनोरथ निश्चय सफल होते हैं । २५-२६

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
पूर्णिमनोरथ व्रत वर्णन नामक एक सौ चौथा अध्याय समाप्त । १०४।

अध्याय १०५

विशोकपूर्णिमा व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं एक अन्य अशोक पूर्णिमा की व्याख्या तुम्हें बता रहा हूँ, जिसमें उपवास करने पर मनुष्य को कभी भी किसी प्रकार का शोक नहीं होता है सुनो! नरोत्तम! फाल्गुन मास की शुक्र पूर्णिमा के दिन मिट्टी समेत जो से स्नान, शिर में मिट्टी के लेप और मिट्टी के आशन करके पुष्प-पत्र द्वारा भूधर भगवान् और पृथिवी देवी की अर्चना करे अनन्तर धरणी के अशोक नाम का कीर्तन करके प्रार्थना करे—अखिल लोक धारण करने वाली देवि! जिस प्रकार भगवान् जनार्दन ने तुम्हें शोक रहित किया है, मुझे भी उसी भाँति समस्त शोकों से रहित करो तथा जिस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियों आदि का आधार तुम्हें बनाया गया है उसी भाँति मुझे भी समस्त इच्छाओं की पूर्ति समेत शोक हीन करने की कृपा करें। जीवों को धारण करने वाली मेदिनी देवि! ध्यान मात्र से जिस भाँति विष्णु मेरे मन को स्वस्थ करो । १-६। इस भाँति स्तुति पूजन और चन्द्रमा के लिए अर्घ्य प्रदान कर उपवास करते हुए रात्रि में

अनेनैव प्रकारेण चत्वारः फाल्गुनादयः । उपोष्ट्या नृपते भासाः प्रथमं पारणं स्मृतम् ॥८
 शाषाढादिषु मासेषु तद्वत्स्नानं सृदस्तुना : तथैव प्राशनं पूजा तद्विदोस्त्वशाहृणम् ॥९
 चतुर्ष्वन्येषु चैवोत्तं कार्तिकादिषु पारणम् । पारणचितये चैव चातुर्मासिकमुच्यते ॥१०
 विशेषपूजा दानं च तथा ज्ञागरणं निःगि । विशेषेणैव कर्तव्यं पारणेपारणे गते ॥११
 प्रथमे धरणी नान तुम्यं भासचतुष्टयम् । द्वितीये मेदिनी बाच्या वृत्तीदे च वसुन्धरा ॥१२
 पारणेपारणे पार्य युग्मानेवाच्चयेद्विजान् । धरणी देव देवं च तत्तत्स्थानेन केशवम् ॥१३
 वस्त्राभावे च सूत्रेण पूजयेद्वरणों तथा । वृत्ताभावे तथा क्षीरं शस्तं दा सलिलं हरे ॥१४
 एवं संवत्सरस्यान्ते यौः सक्षत्सा द्विजातये । प्रदेया धरणी देवी वस्त्रांलङ्घारसंयुता ॥१५
 पातालसंस्थया देव्या चीर्षमेतन्महावतम् । धरण्या केशवप्रीत्यं ततः प्राप्ता समुन्नतिः ॥१६
 देवेन चोक्ता धरणी वराहवपुषा पुरा । उपवासव्रतपरा समुद्रत्यं रसातलात् ॥१७
 द्वतेनानेन कल्याणि त्वयाहं परितोषितः । तस्मात्प्रसादमतुलं करोमि तव मुद्रते ॥१८
 यथैव कुरुदे भक्तया पूजां भम सुशोभन्तम् । तथैव तव कल्याणि प्रणतो यः करिष्यति ॥१९
 व्रतमेतदुपाखित्यं पारणं च यथादिधि । सर्वज्ञाधाविनिर्मुक्तो जन्मजन्मांतराण्यपि ॥
 विशोकः सर्वकल्याणभाजनं स्याक्षं संशयः ॥२०
 यथा त्वमेव वसुधे संप्राप्ता निवृतेः पदम् । तथा स परमेलोके सुखं प्राप्स्यति मानवः ॥२१

तेल-नमक रहित नक्त भोजन करे । नृप! इसी विधान द्वारा फाल्गुन आदि चार मासों के पूजनादि सुसम्भव कर अन्त में पारण करे । इसी प्रकार आषाढ़ आदि के चारों मासों में मिट्टी-जल स्नान और उसके अन्त में दूसरा पारण तथा कर्तिक आदि चारों मासों में पूर्वोत्तं विधान द्वारा पूजन-जागरण आदि करके तीसरा पारण करे । इन चातुर्मासिक पारणों में विशेष पूजा, दान और रात्रि में जागरण करते हुए प्रत्येक पारण में विशेष करने के लिए तत्पर रहना चाहिए । प्रथम पारण के चौमासे में धरणी, दूसरे में मेदिनी और तीसरे पारण में वसुन्धरा नाम का कीर्तन-पूजन करते हुए चार-चार ब्राह्मणों की अर्चा करे । ७-१३३३। धरणी और देवाधिदेव केशव की पूजा करते समय वस्त्राभाव में सूत्र से ही पूजन करने तथा घृत के अभाव में क्षीर अथवा जल द्वारा भगवान् की अर्चा करे । इस प्रकार वर्ष के अन्त में सवत्सा गौ और वस्त्रालंकार भूषित धरणी देवी ब्राह्मण को अर्पित करें । पाताल में रहते समय धरणी देवी ने इस महाव्रत का अनुष्ठान किया था जिससे प्रसन्न होकर भगवान् केशव देव ने उसकी उन्नति की । भगवान् ने उस समय वाराह रूप धारण कर उपवास परायण उस धरणी देवी का रसातल से उद्धार किया । उन्होंने कहा—कल्याणि! सुव्रते! मैं तुम्हारे इस अनुष्ठान से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हें, अनुपम प्रसन्नता प्रदान करूँगा । भक्तिपूर्वक तुमने जिस प्रकार मेरी परमोत्तम पूजा की है उसी भाँति अन्य प्राणी भी न ब्रता पूर्वक इस ब्रत का अनुष्ठान और सविधान पारण करेंगे, तो जन्म-जन्मान्तर की समस्त बाधा से वे मुक्त रहेंगे और शोकहीन रहकर वे सदैव कल्याण पान्त हैं इसमें संदेह नहीं । १४-२०। वसुधे! जिस प्रकार तुम्हें परम पद की प्राप्ति हुई है उसी प्रकार वह भनुष्य भी उत्तम लोक की प्राप्ति कर सुखोपभोग करता है । इसी प्रकार इस विशोक नामक ब्रत का जो

एवमेतन्महापुण्यं सर्वपापप्रशार्तिदम् । विशेषकाल्यं बतवरं सत्कुरुष्व भगवतन् ॥२२
 सम्यविशेषकरणी नृपपूर्णिमा ते ख्याता मया मनुमहेन्द्रसमानकीर्ते ।
 एवं करोति कुरुपुज्ज्वल्य यः प्रयत्नाच्छोको न तस्य भवतीह कुलेऽपि पुंसः ॥२३
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 दिशोऽकृपूर्णिमाव्रतं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः । १०५

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

अनन्तदत्तवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सर्वकामानवाप्नोति समाराध्य जनार्दनम् । प्रकारैर्बहुभिः कृष्ण यान्यानिच्छति चेत्सा ॥१
 नृणां स्त्रीजां च सर्वेषां नान्यच्छोकस्य कारणम् । अपत्यादधिकं किंचिद्दिव्यते ह्यत्र जन्मनि ॥२
 अपुत्रता भहादुःखमतिदुःखं कुपुत्रता । सुपुत्रः सर्वसौख्यानां हेतुभूतोमतो मम ॥३
 धन्यास्ते ये सुतं प्राप्नता: सर्वदुःखविवर्जितम् । शक्तं प्रशांतं बलिनं परां निर्वृतिमागतम् ॥४
 स्वकर्मभिरतं नित्यं देवद्विजपरायणम् । शास्त्रज्ञं सर्वधर्मज्ञं दीनानाथानुकंपिनम् ॥५
 विनिर्जितारिसर्वस्वं मनोहृदयनन्दनम् । देवानुकूलतायुक्तं युक्तं सम्यगुणेन च ॥६

महापुण्य रूप और समस्त पापों का विनाश करता है, अनुष्ठान अवश्य करो। मनु और महेन्द्र की भाँति कीर्ति प्राप्त करने वाले नृप! कुरुपुज्ज्वल! यह पूर्णिमा जिसकी व्याख्या मैंने तुम्हें भलीभाँति सुनाइ है जो प्रयत्न पूर्वक इसे सुसम्पन्न करते हैं उनके कुल में किसी प्रकार का शोक नहीं होता है । २१-२५

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में
 विशेषक पूर्णिमाव्रत वर्णन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त । १०५।

अध्याय १०६

अनन्तदत्तवर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! जो जिस-जिस की कामना करता है, उसे अनेक प्रकार से भगवान् जनार्दन की आराधना द्वारा प्राप्त करता है। इस जन्म में स्त्री पुरुषों के शोक का कारण सन्तान से अधिक अन्य कोई है भी नहीं। क्योंकि अपुत्रता भहादुःख और कुपुत्रता का अनुभव अति दुःख बताया गया है। मेरा विचार है कि उसी प्रकार सुपुत्र ही समस्त सौख्यों का कारण है। वे सब धन्य हैं जिन्होंने समस्त दुःख राहित, शक्त, प्रशान्त, एवं बलवान् पुत्र की प्राप्ति की है। उन्हें ही अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है। १-४। अपने कर्म में तत्पर, नित्य द्विज-देव की अर्चना करने वाले, शास्त्र और समस्त धर्म का मर्मज्ञ, दीन-अनाथ के ऊपर कृपा करने वाले, देव सौभाग्य युक्त, सर्व गुण सम्पन्न मित्र तथा अपने जन-परिजन द्वारा

—मिश्रस्वजनसन्मानलब्धं निर्वाणमुक्तमम् । यः प्राप्नोति सुतं तस्माशान्यो धन्यतरो भुवि ॥७
सोऽहमेवंदिधं श्रोतुं कर्मच्छामि महामते । येनेहूलक्षणः पुत्रः प्राप्यते भुवि मानवैः ॥८

श्रीकृष्ण उवाच

एवमेतन्महाभाग पुत्रापुश्वसमुद्भवम् । दुःखं प्रयात्युपशमं तनयान्नेह केनचिद् ॥९
अश्रापि श्रूयतां वृत्तं यत्कूर्वमभवन्मुने ! उत्पत्तौ कार्तवीर्यस्य हैहयस्य शहात्मनः ॥१०
कृतवीर्यो महीपालो हैहयो नाम वै पुरा । तस्य शीलधना नास बभूव वरवर्णिनी ॥११
पत्नीसहस्रप्रवरर भहिष्मी शीलमण्डना । सा त्वपुत्रा महाभागा भैत्रेयी पर्यपृच्छत ॥१२
गुणवत्तुत्रलाभाय कृतासनपरिपृहम् । तथा पृष्टाय सा सम्यद्भैत्रेयी ज्ञानादिनी ॥१३
कथयामास परमं नान्नानन्तत्वतं भहत् । सर्वकामफलावाप्तिकारणं पापनाशनम् ॥
तस्याः सुपुत्रलाभाय राजपुत्र्यास्तपस्त्विनी ॥१४

मैत्रेयुवाच

यो यमिच्छेत्रः कामं नारी वा वरवर्णिनी ॥१५
स तं तमाराध्य विभुं समाप्नोति जनार्दनात् । मार्गशीर्षं मृगशिरो भीमो यस्मिन्दिनेऽभवत् ॥१६
तस्मिन्संप्राप्त्य गोमूत्रंस्नातो निदत्तमानसः । पुर्वैर्धूपैस्तथा गर्थैरुपवासैश्च भक्तिः ॥
वामपादमनन्तस्य पूजयेद्वरवर्णिनि ॥१७

सुसम्मानित और अत्यन्त प्रशान्त सुत की प्राप्ति करने वाले इस भूतल में अत्यन्त धन्य हैं अन्य नहीं ।
महामते ! इस लिए मैं ऐसा ही कर्म जानना चाहता हूँ, जिसके सुसम्पन्न करने पर उपरोक्त लक्षण युक्त पुत्र
की प्राप्ति इस भूतल में होती है ।५-८

श्रीकृष्ण बोले—महाभाग ! पुत्र और अपुत्र-जनित दुःख-सुख की बात जो कह रहे हो वह सर्वथा
वैसा ही है । क्योंकि जिस प्रकार पुत्र द्वारा दुःखों के प्रशमन होते हैं वैसा अन्य किसी द्वारा नहीं । मुने!
इस विषय में तुम्हें पहले का एक वृत्तान्त सुना रहा हूँ, सुनो ! हैहय वंश में उत्पन्न महात्मा कृतवीर्य की
उत्पत्ति का इतिहास इस प्रकार है—पहले समय में हैहय नामक कृतवीर्य राजा रहते थे जिसके शीलधना
नामक परमोत्तम पत्नी थी । वह उनकी प्रधान रानी सहस्रों स्त्रियों में परमोत्तम और शील का निधान
थी किन्तु पुत्र हीन होने के नाते वह महाभाग एक बार भैत्रेयी से गुणवान् पुत्र उत्पन्न होने का कारण
पूछा । रानी के पूछनेपर ब्रह्मवादिनी भैत्रेयी ने उसे भलीभांति अनन्त द्रव का परम महत्व समझाया जो
समस्त कामनाओं को सफल करने वाला एवं पाप नाशक है । इस प्रकार उस तपस्त्विनी ने राजपुत्री के
सुपुत्र उत्पन्न होने की सभी बातें बतायी ।९-१४

भैत्रेयी बोली—सभी अथवा पुरुष जिस वस्तु की इच्छाकरते हैं वे भगवान् जनार्दन देव की
आराधनाद्वारा उस विभु से प्राप्त कर लेते हैं । उत्तमाङ्गि ! मार्गशीर्ष (अगहन) मास की मृगशिरा
नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन गोमूत्र के प्राशन पूर्वक स्नान करके एकाग्र चित्त से भगवान् अनन्त के बाँये चरण
की अर्चना पुष्प, धूप और गन्ध आदि द्वारा सुसम्पन्न करे । उपवास रहकर भक्ति पूर्वक पूजन करते

अनंतः सर्वकामानामनंतं भगवान्फलम् । ददात्वनन्तं च भुनस्तदेवान्द्र जन्मनि ॥१६
 अनंतपुण्योपचयमनन्तं तु महाद्रतम् । यथाभिलिषितावाप्तिं कुरु मे पुरुषोत्तम् ॥१७
 इत्युच्चार्याभिपूज्यैनं यथावद्विधिनः नरः । समाहितमना भूत्वा प्राणिपातपुरस्सरम् ॥२०
 विप्राय दक्षिणां दद्यादनंतः प्रीयतामिति । समुच्चर्यं ततो नक्तं भुञ्जीत तैलवर्जितम् ॥२१
 ततश्च पौषे पुष्यस्यं तथैव भगवत्कटिं । वामाभ्युच्चर्येदभक्त्या गोमूत्रप्राशनं ततः ॥२२
 अनंतः सर्वकामानामिति चोच्चारयेत्सुनः । भोजयेत तथा विप्रान्दाचयित्वा यथाविधि ॥२३
 माये मधासु तद्वच्च बाहुं देवस्य पूजयेत् । स्कन्ध्यै च मम फाल्गुन्योः फाल्गुने मासि भामिनि ॥२४
 चतुष्वर्तेषु गोमूत्रं प्राशयेन्नपतंदिनि । ब्राह्मणाय तथा दद्यात्तिलान्कनमेव च ॥२५
 देवस्य दक्षिणं स्तन्धं चैत्रे चित्रामु पूजयेत् । तथैव प्राशनं चात्र यच्चगव्यमुदाहृतम् ॥
 विप्रे प्रवाचके दद्याद्यान्मासचतुष्टयम् ॥२६
 वैशाखे च विशाखामु बाहुं सम्पूज्य दक्षिणम् । तथैवोक्तान्यवान्दद्यान्नकं कुर्याद्बुजिक्रियाम् ॥२७
 ज्येष्ठामु कटिपूजां च ज्येष्ठमासि शुभवते । अषाढामु तथाषाढे कुर्यात्पादार्चनं शुभे ॥२८
 पादद्वयं तु श्रवणे श्रावणे मासि पूजयेत् । धृतं विप्राय दातव्यं प्राशनीयं यथाविधि ॥२९
 श्रावणादिषु मासेसु प्राशनं दानमेव च । एतदेवं समाख्यातं देवांस्तद्वच्च पूजयेत् ॥३०
 गुह्यं प्रोष्ठपदायोगे मासि भाद्रपदेऽर्चयेत् । तद्वाभ्युजे पूज्यं हृदयं चाश्विनीषु च ॥३१

समय ऐसे कहता भी रहे कि—पुरुषोत्तम! भगवान् अनन्त मुझे समस्त कामनाओं का अनन्त फल प्रदान करें और अगले जन्म में भी अनन्त फल की प्राप्ति समेत अनन्त पुण्य एवं अनन्त महाद्रत का सौभाग्य प्राप्त हो । इस प्रकार मेरी सभी अभिलाषाओं को पूरी करने की कृपा करें । १५-१९। सावधान होकर अनन्त भगवान् की अर्चना के अनन्तर अनुनय-दिनय समेत ‘अनन्त भगवान् प्रसन्न हों’ कहते हुए बाह्मणों के पूरक अनन्त देव हैं, ऐसा वह कर भोजन करे और यथा विधान ब्राह्मण द्वारा कथा का श्रवण भी करे । दमिनि! नृप नन्दिनि! इसी भाँति माथ मास में मधा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन अनन्त भगवान् की बाहु और फाल्गुन मास में फाल्गुनी नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के अवसर पर उनके कधे की अर्चना करे तथा इन चारों मासों में गोमूत्र का ही प्राशन करता रहे । पूजनोपरांत ब्राह्मण को तिल और कनक के दान से सुसम्मानित करे । उसी प्रकार चित्रा नक्षत्र युक्त चैत्र की पूर्णिमा के दिन अनन्त देव के दाहिने कधे की पूजा, यच्चगव्य के प्राशन और चार मास के कथापारायण की दक्षिणा में ब्राह्मण को जवा प्रदान करे । वैशाख मास की विशाखा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन दद्याति बाहु के पूजनोपरांत पूर्व की भाँति जवा के दान और रात्रि में नक्त भोजन करे । २०-२७। शुभद्रवते! ज्येष्ठ मास की ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन उनके कटि की पूजा तथा आषाढ़ आषाढ़ मास की पूर्णिमा में उनके चरण की अर्चना करे । श्रवण नक्षत्र युक्त श्रावण (सावन) मास की पूर्णिमा के दिन दोनों चरण की अर्चना करके यथा विधान धृत के प्राशन और दान करे क्योंकि सावन आदि मासों में इसी का प्राशन तथा दान करना प्रमुख बताया गया है और उसी भाँति देवों की पूजा भी । २८-३०। भाद्रपद नक्षत्र युक्त भाद्रों की पूर्णिमा के दिन उनके गुह्य स्थान और अधिनी नक्षत्र युक्त आश्विन मास की पूर्णिमा में उनके हृदय की अर्चना, स्नान और आशन आदि सावधान होकर करे ।

कुर्यात् समाहितमना: ज्ञानं प्राशनमर्चनम् । अनन्तशिरसः पूजां कार्तिके कृत्तिकामु च ॥३२
 यस्मिन्यस्मिन्दिने पूजा तत्र तत्र तदा दिने । नासानंतस्य जप्तव्यं क्षुतप्रस्खलितादिषु ॥३३
 धृतेनानंतमुद्दिश्य पूर्वं मासचतुष्टयम् । कुर्वीत होमं दैत्रादै शालिना कुलनंदिनी ॥३४
 क्षीरेण श्रावणादौ च होमो मासचतुष्टयम् । प्रशत्तं सर्वनासेषु हविष्याश्वेन भोजनम् ॥३५
 एवं द्वादशभिर्मासैः परश्नात्रितयं शुभे । न्रतावस्ताने चानन्तं सौर्वर्णं कारयेच्छुभम् ॥३६
 राजतं मुसलं चैव हलं पार्श्वेषु विव्यसेत् । पुष्पधूपादिनैवेद्यैः पूजा कर्या यथाविधि ॥३७
 तात्रपीठोपरि हरेमन्त्रे भिर्यथाक्रमम् । नमोऽस्त्वनंताय शिरः पादौ सर्वात्मने नमः ॥३८
 शेषाय जानुयुगलं कामायेति कटिं नमः । नमोस्तु वासुदेवाय नश्वरं संपूजयेद्दरः ॥३९
 संकर्षणायेत्युदरं भुजं रथासुद्धारिणे । कण्ठं श्रीकण्ठनाथाय मुखमिंदुमुखाय च ॥४०
 हलं च मुसलं चैव स्वनाम्ना पूजयेद्युधुः । एवं सम्पूज्य गोविन्दं सितवस्त्रविभूषितम् ॥४१
 छत्रोपानमुत्तंयुक्तं व्याघ्रमालंकृतं तथा । नक्षत्रदेवताः पूज्या नक्षत्राणि च सर्वाशः ॥४२
 सोमो नक्षत्रराजज्ञच मासः संवत्सरं तथा । द्वादशात्र घटान्कुर्यात्सतोयांश्चान्नसंयुतात् ॥४३
 एवं संपूज्य विधिवदेवदेवं जनार्दनम् । स्नाहणं पूजयित्वा च वस्त्रैराभरणस्तथा ॥४४
 कणीगुलैः पवित्रैश्च शांतं दांतं जितेन्द्रियम् । पुराणज्ञं धर्मनित्यमव्यंगं सुप्रियं वदम् ॥४५

उसी भाँति कार्तिक मास की कृत्तिका नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन अनन्त भगवान् के शिर की पूजा सुसम्पन्न करे । ३-३२। जिस-जिस दिन उनकी पूजा बतायी गयी है उसमें स्नाते-स्नीते आदि सभी समय के नाम का कीर्तन करता रहे । कुलनन्दिनि! पहले (अग्रहन आदि) के चारों मासों में भगवान् अनन्त के उद्देश्य से धृत के हवन, चैत्रादि के मासों में साठी चावल के हवन करे तथा सभी मासों में प्रशस्त हविष्यान्न के भोजन । शुभे! वारह मास की तीन पारणों की समाप्ति के अनन्तर (उद्यापन में) अनन्त भगवान् की सुर्वर्ण की प्रतिमा बनवा कर चाँदी के हल और मूसलसे उनके दोनों पार्श्व भाग सुशोभित करे । ताँबे के पीठासन पर उन्हें स्थापित कर पुष्प, धूप, नैवेद्यादि द्वारा क्रमशः उनके अंगों की पूजा निम्नलिखित मन्त्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करे । 'अनन्त को नमस्कार है' से उनके शिर, 'सर्वात्माको नमस्कार है, से चरण, 'शेष को नमस्कार है' से 'दोनों जानु (घुटने)' 'काम को नमस्कार है' से 'कटि' 'वासुदेव को नमस्कार है' से दोनों पार्श्व भाग, 'संकर्षण को नमस्कार है' से उदर, 'प्राणीमात्र को धारण करने वाले को नमस्कार है' से भुजाएँ, 'श्रीकण्ठनाथ को नमस्कार है' से कण्ठ, 'इन्द्रमुख को नमस्कार है' से मुख और हल तथा मुसल की अर्चना करने वाले नाम मंत्र द्वारा सुसम्पन्न करे । ३-४०। इस प्रकार उन गोविन्द देव की, जो श्रेत वस्त्र से भूषित, छत्र और उपानह से युक्त एवं उत्तम पुष्प की मात्रा से अलंकृत किये गये हों, अर्चना करने के अनन्तर नक्षत्र के देवता और उन सभी नक्षत्रों की पूजा करे । पश्चात् नक्षत्र राज सोम (चन्द्र), मास तथा संवत्सर (वर्ष) की अर्चना करते समय अन्न समेत जल-पूर्ण कलश का भी पूजोपरांत दान करे । इस भाँति देवाधिदेव जनार्दन भगवान् की पूजा करके वस्त्र, आभूषण, कुण्डल, अंगूठी और पवित्री द्वारा उस पुराण-वेत्ता ब्राह्मण की पूजा करके जो शांत चित्त, इन्द्रिय-संयमी, धर्ममूर्ति, दोष-हीन मधुर भाषी हो, 'अनन्त देव प्रसन्न हों' कह कर उन्हीं को वह सब कुछ

तस्मै देयं समस्तं तदनन्तः प्रीयतामिति । अन्येषां ब्राह्मणानां च देयं शक्त्या यथेप्सितम् ॥४६
अनेत विधिना पार्थं द्रतं चैतत्समाप्यते । पारिते च समाप्नोति सर्वनिव मनोरथान् ॥४७
पुत्रार्थिभिर्वित्तकामैर्भृत्यदारानभीप्सुङ्गः । प्रार्थयद्विश्च मर्त्येऽस्मिन्नारेऽग्यफलसम्पदः ॥४८
एतद्वर्तं महाभागे पुण्यं स्वस्त्ययनप्रदम् । अनन्तवत्संज्ञं वै सर्वप्राप्तिशानम् ॥४९
तत्कुरुष्वैव देवि त्वं द्रतं शीलधने परम् । वरिष्ठं सर्वलोकस्य यदि पुत्रमभीप्ससि ॥५०

श्रीकृष्ण उवाच

इति शीलधना श्रुत्वा नैत्रेयीवचनं शुभम् । चकारैतद्व्रतवरं सा विष्णवाहितमानसा ॥५१
पुत्रार्थिष्यस्तत्स्तमाद्वतेनानेन सुव्रत । विष्णुस्तुतोऽप्तुष्टे च विष्णौ सा सुषुप्ते मुत्तम् ॥५२
तस्य वै जातमात्रस्य प्रवर्वौ चनिलः शुभम् । नीरजस्कमभूद्व्ययोम मुदं प्रापाखिलं जगत् ॥५३
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पापात च । प्रजगुर्वेवगन्धर्वा ननृदुश्चाप्सरोगणाः ॥५४
धर्मे मनः समस्तस्य पार्थं लोकस्य चाभवत् । तस्य नाम पिता चक्रे तनयस्यार्जुनेति वै ॥५५
कृतवीर्यमुत्तत्वाच्च कार्तवीर्यो ब्रह्मव सः । तेनापि भगवान्विष्णुर्ज्ञात्रेयस्वरूपवदान् ॥
आराधितोऽतिमहता तपसा पार्थं भूत्वा ॥५६
तस्य तुष्टो जगन्नाथश्चकर्तित्वमुत्तमम् । ददौ शौर्देधने^१ चापि सकलान्यायुधानि च ॥
सै वद्वै च वधो देव मम त्वत्तो भवेदिति ॥५७

अर्पित भी कर दे । अनन्तर अन्य ब्राह्मणों को भी यथाशक्ति यथेच्छ दान से सुसम्मानित करे । पार्थ!
इसी विधान द्वारा इस व्रत का अनुष्ठान सुसम्पन्न किया जाता है और इसके पूरा होने पर सम्पूर्ण मनोरथ
सफल होते हैं । इस मर्त्य (मनुष्य) लोक में पुत्र, वित, सेवक और स्त्री आदि की कामना वज्र इस व्रत को
सुसम्पन्न करने पर आरोग्य और सम्पत्ति समेत उसकी सभी कामनाएँ सफल होती हैं । महाभागे,
शीलधने! यदि तुम्हें समस्त लोगों से परमोत्तम पुत्र की अभिलाषा है तो इस व्रत का, जो पुण्यस्वरूप
कल्याणकारी समस्त पापों का नाशक है, अनुष्ठान अवश्य करो । ४१-५०

श्रीकृष्ण बोले—मैत्रेयी की इन शुभ वातों को सुनकर रानी शीलधना ने भगवान्-विष्णु में अपना
चित लगाकर पुत्र की कामना से इस व्रत को सुसम्पन्न किया । सुब्रत! उससे भगवान्-विष्णु अत्यन्त प्रसन्न
हुए, जिसके उत्पन्न होने पर कल्याणकारी वायु चलने लगा, आकाश अत्यन्त निर्मल हो गया, समस्त
संसार को हर्ष हुआ, देवताओं ने दुंदुभी बजायी और पुण्य की वर्षा की, देव-गन्धर्व गान करने लगे एवं
अप्सरायें नृत्य करने लगी । पार्थ! उस समय सम्पूर्ण लोकों की धर्म में अधिक प्रवृत्ति हुई । पिता ने उस
का 'अर्जुन' नाम करण किया और कृतवीर्य के पुत्र होने से कार्तवीर्य भी नाम हुआ । पार्थ! उस कार्तवीर्य
ने भगवान्-विष्णु के दत्तात्रेय स्वरूप की महान् तप द्वारा आराधना की, जिससे अत्यन्त तुष्ट होकर
भगवान् जगन्नाथ ने चक्रवर्तित्व प्रदान किया और उसके साथ-साथ शौर्य, बल एवं सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र
भी । उसने कहा-देव! आप के द्वारा ही मेरा निधन होये, किन्तु जगत्पते! स्मरणमात्र से मुझे

१. शौर्यबले । २. स वद्वै च वरं देव मम त्राता भवेति च ।

परं तु स्मरणं ज्ञानं भीतानामार्तिनशनम् । स्मरणादुपकारित्वं जगतोऽस्य जगत्पते ॥५८

तमाह देवदेवेशः उपज्ञाकनिभेक्षणः । सर्वमेतत्महाभागं तव भूयो भविष्यति ॥५९

यश्च प्रभाते रात्रौ च त्वां नरः कीर्तयिष्यति । नमोऽस्तुकार्तवीर्ययित्यभिधास्यति चैव यः ॥

तिलग्रस्थप्रदानस्य नरः पुण्यमवाप्यति ॥६०

अनष्टद्वयता! चैव तव नामानुकीर्तने । भविष्यति महीपालेत्युक्त्वः तं प्रययौ हरिः ॥६१

स वापि वरमासाद्य प्रसन्नादगृहड्ड्यजात् । पालयामास भूपालः सप्तद्वीयां वसुधाराम् ॥६२

तेनेष्वं विविधैर्यज्ञैः समाप्तदरदक्षिणैः । जित्वारिवर्गमखिलं धर्मतः पादिताः ब्रजाः ॥६३

अनंतव्रतमहात्म्यादासाद्य तनयं च तम् । पितुः उत्रोद्भवं दुःखं जार्सात्स्वल्पमपि प्रश्नोः ॥६४

एवमेतत्समाव्यातमनन्तात्यं व्रतं तव । यत्कृत्वा राजपत्नी सा कार्तवीर्यमसूयत ॥६५

यश्चैतच्छृणुयाज्जन्म कार्तवीर्यस्य मानवः । स्त्री वा दुःखमपत्योत्थं सप्तजन्मसु नाशनुते ॥६६

ऐश्वर्यमप्तिहृतं परमं विवेकं पुत्रानमित्रहृदयार्तिकरान्बहूंश्च ।

कृत्वा त्वनं इति यद्वत्तनामधेयं प्राप्नोत्यनंतविभवस्य विभोः प्ररादात् ॥६७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरर्पदिणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद

अनंतव्रतवर्णनं नामं बडिधिकशततमोऽध्यायः । १०६

इस जगत् के उपकारी होने एवं उसके स्मरण, ज्ञान और दुःखीजनों के दुःख दूर करनेका ज्ञान अधिक मात्रा में बना रहे । देवाधिदेव कमलनयन ने कहा—महाभाग! वह सब कुछ तुम्हें अधिकाधिक होता रहेगा । प्रातःकाल और रात्रि में तुम्हारेनाम का कीर्तन तथा ‘कार्तवीर्य’ को नमस्कार है’ कहेगा और एक से ८ तिल का दान करेगा तो उस पुरुष को पुण्य की प्राप्ति होगी, तथा महीपाल! तुम्हारे नाम के संकीर्तन करने से द्रव्यसञ्चय सटैव बना रहेगा । इतना कह कर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये और उस राजा ने भगवान् गरुड़ध्वज की प्रसन्नता से वरदान की प्राप्ति कर सातों द्वीप समेत इस पृथिवी का पालन करना आरम्भ किया । उन्होंने अनेक भाँति से इष्ट यज्ञ उत्तम दक्षिणा के प्रदान पूर्वक सुसम्पन्न किया । समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर धर्मतः प्रजाओं का पालन किया । प्रभो! अनन्त व्रत के महत्व द्वारा वैसे पुत्र की प्राप्ति कर उनके पिता को (दुर्गुण) पुत्र होने का स्वल्प भी कष्ट नहीं हुआ । इस प्रकार मैंने तुम्हें अनन्त व्रतका महत्व सुना दिया जिसके अनुष्ठान द्वारा रानी ने कार्तवीर्य नामक पुत्र उत्पन्न किया । कार्तवीर्य के जन्म की कथा को सुनने वाला पुरुष अथवा स्त्री सात जन्मों तक पुत्र-जनित दुःखों के अनुभव नहीं करती है । इस भाँति अनन्त नामक व्रत के अनुष्ठान करने पर उनके प्रसाद से अतुल ऐश्वर्य, परमज्ञान, शत्रु-विजेता अनेक पुत्र और अनन्त सम्पत्ति की प्राप्ति होती है । ५१-६७।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में

अनन्त व्रत वर्णन नामक एक सौ छठी अध्याय समाप्त । १०६।

:

१. सौभाग्यमिष्टजनलाभसुखं च लोकास्ते वै समस्तसुखदाः सुलभा भवन्ति ।

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

सांभरायणीवत्वर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अप्रत्यक्षं तथा दुःखमैश्वर्याद्वैररोत्तम । यथा मनोरथैः स्वैः स्वैर्नानादुःखं भवेन्नाम् ॥१
यथा मनोरथैर्बद्धैर्न स्यादुःखम् नृणाम् । ऐश्वर्याद्विच्छ्रुतो वापि संततेर्वत्तोकतः ॥२
अभीष्टादन्यतो वापि यदाधेन विनिष्टृतिम् । प्राप्नोति पुरुषो वाय नारी वा पुण्यसंचयात् ॥३
तन्ममाचक्ष्व भगवन्येन नाम्येति विच्छ्रुतिम् ॥४

श्रीकृष्ण उवाच

सत्यमेतन्महाभाग दुःखं प्राप्नोत्यसंशदः ॥५

ऐश्वर्योदयचित्तस्य बन्धुवर्गमुखस्य च । तदेतच्छ्रुतां दार्थं यथा नेष्टात्परिच्छ्रुतिः ॥५
स्वगदेजायिते सम्युगेवासदतां सततम् । द्वादशकर्णीणि राजेन्द्रं प्रतिमासं तु यानि वै ॥६
तन्ममाच्छ्रुतां चाच्छ्रुतं तेषु सम्यक्संपूजेन्नृप । पुष्ट्यर्थौपैस्तथांभोभिरभीष्टैरपररपि ॥७
आदितः कृतिकां कृत्वा कार्तिके नृपसत्तम । कृशरामन्त्रं नैवेद्यं पूर्वं मासं चतुष्प्रथम् ॥८
निवेदयेत्कालुनादि संयावं च ततः परम् । आषाढादिषु देवाय पायसं विनिवेदयेत ॥९

अध्याय १०७

सांभरायणीवत्त का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—नरोत्तम! मनुष्यों को ऐश्वर्य के न मिलने पर नाना भाँति का उतना दुःख नहीं होता है, जितना कि अपने मनोनीत ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर। जिस प्रकार मनुष्यों को सफल मनोरथ होने पर दुःख और भय नहीं होता है, उसी प्रकार ऐश्वर्य के और संतान एवं स्वर्ग आदि अभीष्ट लोकों के लोकों के च्युत हो जाने पर अधिक दुःख होता है, जो स्त्री अथवा पुरुष के पुण्य संचय रहने पर भी पाप के बदले में प्राप्त होता है। भगवान्! इसलिए मुझे वह उपाय बताने की कृपा कीजिये जिससे उपरोक्त के कभी वियोग ही न हो । १-३

श्रीकृष्ण बोले—महाभाग! यह सत्य ही है कि अभिवृद्धि ऐश्वर्य और बन्धुवर्ग के सुखी प्राणी को यह दुःख निःसदैह प्राप्त होता है। पर्य! इसलिए मैं वह उपाय बता रहा हूँ, जिससे उपवास पूर्वक व्रत मुसम्पन्न करने वाले सज्जनों को स्वर्ग आदि अपने अभीष्ट वस्तु का कभी वियोग ही न हो। राजेन्द्र! वारह मास में होने वाले बारहों नक्षत्रों से क्रमशः प्रतिमास में प्रतिनक्षत्र के नामोच्चारण पूर्वक भगवान् अच्युत की अर्चना पुष्ट, धूप तथा (तीर्थ आदि के) अभीष्ट जल द्वारा सुसम्पन्न करे। नृप सततम्! कार्तिक मास की कृतिका नक्षत्र युक्त पूर्णिमा से आरम्भ करके चार-चार मास के अन्त में निम्न लिखित वस्तुओं के पारण करे—पहले चार मास के पारण में कृशराम (खिचड़ी), और लड्डू, फालुन आदि चार मासों के पारण संयाव (लप्सी) और आषाढ आदि चार मासों में पारण का पारण करे। ४-९।

तैनैवाद्रेन राजेन्द्र ब्राह्मणनभोजग्रेद्भुधः । पञ्चगव्यजलज्ञानं तस्यैव प्राशनाच्छुचिः ॥१०
सम्प्रक्षंपूज्य राजेन्द्र तमेव पुरुषोत्तमम् । प्रणस्य प्रार्थमेद्विष्णुं शुचिः स्नातो यथाविधि ॥११

ननोनमस्तेऽच्युत मे क्षयेत्स्तु पापस्य वृद्धं समुपेतु पुण्यम् ।
ऐश्वर्यवित्तादि तथाऽक्षयं मेक्षयं च मा संतिरभ्युपैतु ॥१२
यथाच्युतस्त्वं परतः परस्मात्स ब्रह्मभूतः परतः परात्मा ।
तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं त्वं हररच्च पापं च तथाप्रमेय ॥१३

अच्युतानं गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् । तदक्षयममेयात्मन्कुरुज्ज्व पुरुषोत्तम ॥१४
एवमेवं समभ्यर्च्य प्रार्थयित्वा तथा शिवम् । नैवेद्यं स्वयमशनीयाक्षत्कं हंशुजितेच्युते ॥१५
ततः संवत्सरस्यांते 'सुखसुप्तोत्थितेऽच्युते । घृतपूर्णं ताम्रामात्रं ब्राह्मणाय निदेदयेत् ॥१६
शक्तितो दक्षिणां दद्यादच्युतः प्रोयतःमिति । ततस्तु सप्तमे दर्शे कुर्यादुद्यापनं बुधः ॥१७
कार्या चैदाच्युतस्यार्चा शक्तयः स्वर्णस्यी नृप । तदग्रे ब्राह्मणी स्थाप्या स्थविरा सांभरायणी ॥१८
महासती रौप्यमर्यी समानार्हा सदेवता । ततस्तौ पूजयित्वा च माल्यवस्त्रविलेपनैः ॥१९
मंत्रेणानेन राजेन्द्र प्रणिपत्य विधानतः । प्रतिवर्षं च दत्तं चेत्ताम्रं पात्रं द्विजातये ॥२०
तदेवहेलया दद्यात्सहिरण्याभ्यसंयुतम् । गाढच प्रदद्यात्संपूज्य सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥२१
एकां वा शक्तितो दद्याद्बृक्ष्या तुष्ट्यति केशवः । घटा सत्पात्रनिर्दिष्टः साश्राः पूर्णजलोज्ज्वलाः ॥२२

राजेन्द्र! उन दिनों उन्हीं पारण के अन्नों से ब्राह्मणों को मुतृप्त करते हुए पञ्चगव्य के जल से स्नान और उसी के आशन द्वारा कायशुद्धिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तम की सविधि अर्चना करके विष्णु देव की प्रार्थना करे—अच्युत! मेरे पापों के क्षय और पुण्य की प्राप्ति हो । उसी प्रकार मेरे ऐश्वर्य एवं धन आदि अक्षय हों और क्षय मास की वृद्धि हो । अप्रमेय! अच्युत! जिस प्रकार आप सब से परे ब्रह्म रूप परमात्मा हैं उसी प्रकार मेरे मनोरथ की उच्चकोटि की सफलता और पापों के अपहरण करें । अच्युत, अनन्त, गोविन्द, एवं पुरुषोत्तम! प्रसन्न होकर मेरे मनोरथ को अक्षय सफल करने की कृपा करें । इस भाँति भगवान् की अर्चना और शिव की प्रार्थना करके रात्रि में भगवान् अच्युत की पूजा के उपरांत नैवेद्य का नक्त भोजन करें । पश्चात् वर्ष के अन्त में भगवान् अच्युत के जागने पर घृत पूर्णं ताँबे का पात्र 'अच्युत प्रसन्न हो' कहते हुए दक्षिणा समेत ब्राह्मण को अर्पित करे । तदुपरांत सातवें वर्ष निम्न लिखित विधान द्वारा उद्यापन कर्म सप्रेम सम्पन्न करे—नृप! भगवान् अच्युत की यथाशक्ति सुवर्ण की प्रतिमा ब्राह्मणी की चाँदी की प्रतिमा स्थापित करे, जो महासती एवं देवता की भाँति पूजनीय है । राजेन्द्र! माला, वस्त्र और लेपन (उवटन) आदि से उन दोनों की सविधान पूजा और नमस्कार करके उसी भाँति प्रतिवर्ष ताँबे का पात्र ब्राह्मण को प्रदान करते रहे । १०-२०। सुवर्ण समेत अश्व, और कांसे की दोहनी समेत सवत्सा गौ भी उन्हें अर्पित करे । अपनी शक्ति के अनुसार एक ही गौ के प्रदान करने पर भी भगवान् केशव प्रसन्न हो जाते हैं । अन्न समेत जलपूर्ण घट छत्र, उपानह, रुई के गदेदार शश्या और

१. सुखव्युष्टोत्थिते । २. पूर्णजलान्विताः ।

छत्रोपानद्युगैः सार्थमेवं दत्त्वा विसर्जयेत् । शय्यां सतूलिकां दद्याद्गृहं चोपस्करैः सह ॥२३
 श्रिया च सह विष्णुं च पूजयेद्भूषयेत्प्रभुम् । वस्त्रंराभरणैश्चैव प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥२४
 कृतेनानेन राजेन्द्र च्युतिं नाम्नोति मानवः । संततेः स्वर्गवित्तादेरेश्वर्यस्य तथैव च ॥
 यद्वार्भमतमन्यच्च ततो न च्यवते नरः ॥२५
 तस्मात्सर्वप्रथर्वेन मासनक्षत्रपूजनैः । यजेताक्षयकामस्तु सदैव पुरुषोत्तमम् ॥२६

श्रीकृष्ण उच्चाच

अत्रापि श्रूयते कादित्तिद्वा स्वर्गं महावतः । नारी तपोधना भूत्वा प्रख्याता सांभरायणी ॥
 समस्तसंदेहहरा सदास्त्वर्गीकर्सां हि सा ॥२७

कप्यचित्त्वय कालस्य देवराजः शतक्रुः । पूर्वेन्द्रचरितं राजन्यप्रच्छेदं बृहस्पतिम् ॥२८
 पूर्वेन्द्रात्परतः पूर्वे ये अभ्युवः सुरेश्वराः । तेषां चरितमिच्छामि श्रोदुर्मांगिरसां वर ॥२९
 एवमुक्तस्तदा तेन देवेन्द्रेणासालद्युतिः । प्राह धर्ममृतां श्रेष्ठः परमर्षिर्बृहस्पतिः ॥३०
 नाहं चिरंतनान्वेद्य देवराज सुरेश्वरान् । आत्मनः समकालीनमवेहि च सुरेश्वर ॥३१
 ततः पद्मन्ड देवेन्द्रः कोस्माभिर्मुनिपुंगवः । प्रष्टव्योऽन्नं महाभागं कृतादिवसतिर्दिवि ॥३२
 बृहस्पतिश्चिरं ध्यात्वा ततः प्राह शचीपतिम् । तपस्विनीं महाभागां पृच्छतां सांभरायणीम् ॥३३
 इत्युक्तस्तेन देवेन्द्रः कौतूहलसमन्वितः । ययौ यत्र महाभागा सम्यगास्ते तपस्विनी ॥३४
 सा तौ दृष्ट्वा समायांतौ देवराजबृहस्पती । सम्यगर्घ्येण तंपूज्य प्रणिपत्याह सुवता ॥३५

साधन सम्पन्न गृह के दान किसी संत्यात्र को समर्पित कर विसर्जन करे । राजेन्द्र! लक्ष्मी के साथ भगवान् विष्णु की अर्चा वस्त्र और आभूषण द्वारा सुम्पन्न करके विनय-विनम्र क्षमा याचना करने पर मनुष्य को किसी का वियोग दुःख नहीं होता है । संतान, स्वर्ग, वित्त और ऐश्वर्य आदि तथा अन्य अभीष्ट वस्तु का वियोग कभी नहीं होता है अतः अत्यन्त प्रयत्न के साथ अपनी अक्षय कामना के लिए मास नक्षत्र द्वारा भगवान् पुरुषोत्तम की पूजा-प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए । २१-२६

श्रीकृष्ण बोले—इस विषय की एक कथा सुना रहा हूँ—स्वर्ग में सांभरायणी नामक एक प्रख्यात, सिद्धि, महाव्रत करने वाली एवं तपस्विनी थी, जो सदैव देवों के समस्त संदेह को दूर करती थी ।२७। राजन्! एक समय देवराज इन्द्र ने अपने से पूर्व के इन्द्रों का चरित बृहस्पति से पूँछा, कहा कि—अंगरिस प्रवर! मुझसे पूर्व और उनसे भी पूर्व के होने वाले इन्द्रों के चरित मुझे सुनने की इच्छा है, आप बताने की छपा करें । देवेन्द्र के ऐसा कहने पर निर्मल प्रभा पूर्ण, धार्मिक श्रेष्ठ एवं कृष्णप्रवर बृहस्पति ने कहा—देवराज! मैं चिरन्तन के इन्द्रों के विषय में कुछ नहीं जानता और मुझे भी अपना समवयस्क ही समझो! देवलोक (स्वर्ग) में कौन ऐसा श्रेष्ठ व्यक्ति है, जिससे यहाँ की आदि वसती (निवासी) के विषय में पूँछा जा सकता है । इसे सुनकर बृहस्पति ने चिरकाल तक ध्यान किया और पश्चात् शचीपति इन्द्र से कहा—आप उस महापुण्य स्वल्पा एवं तपोमूर्ति सांभरायणी से यह विषय पूँछें । उनके ऐसा कहने पर देवराज इन्द्र ने अत्यन्त कुतूहल से उस महाभाग एवं तपस्विनी सांभरायणी के यहाँ प्रस्थान किया । उस सुवता ने अपने यहाँ अतिथि रूप में आये हुए इन्द्र और बृहस्पति को देख कर

नमोऽस्तु देवराजाद तथैवाङ्ग्नरसे नमः । यद्वा कार्यं महाभागौसकलं तदिहोच्यताम् ॥३६
यदि कर्तुमया शक्यं तत्करिष्ये विमृश्य च ॥३७

बृहस्पतिरुचाच

आवामन्यागतौ प्रप्तुं त्वामत्रातिविवेकिनीम् । यच्च कार्यं महाभागे पृष्ठं तत्कथयस्व नः ॥३८
यदि स्मरसि कल्याणि पूर्वेन्द्रचरितानि दै । तदाख्याहि महाभागे देवेन्द्रस्य कुतूहलम् ॥३९

सांभरायण्युचाच

यो चै पूर्वं सुरेन्द्रस्य तत्तश्च प्रथमो हि यः । तस्मात्पूर्वतरो यस्य तस्यापि प्रथमश्च यः ॥४०
तेषां पूर्वतरा ये चे वेदि तानखिलानहम् । तेषां च चरितं कृत्वं जानाम्यगिरसां वर ॥४१
मन्वंतराण्यनेकानि चृष्टेश्च त्रिदिवौकसाम् । सप्तर्षीन्सुबहून्वेद्यि मनूनां च सुताम्बृपान् ॥४२
एवभुक्त्वा ततस्ताम्यां 'सुहृष्टा सांभरायणी । यथावदानष्ट तयोः पूर्वेन्द्रचरितं महत् ॥४३
स्वायंभुवे यस्तु मनौ मनौ स्वारोचिषे च यः । उत्तमे तामसे चैव रैवते चाक्षुषे तथा ॥४४
मे बभूवुर्हि देवेन्द्रास्तस्य तस्य तपस्विनी । तदा जगादं चरितं यथावत्सांभरायणी ॥४५
कथयामास चाश्चर्यं तच्चापि कथयामि ते । शंकुर्कण्स्तदा दैत्यो दश्मवात्यंतदुर्जयः ॥
स लोकपालान्समरे विजित्य सह दैवतैः ॥४६

अर्धर्यादि द्वारा उन लोगों की भलीभाँति पूजा की और पश्चात् नम्रता पूर्वक कहा—मैं देवराज इन्द्र एवं अंगिरस प्रवर बृहस्पति को नमस्कार कर रही है । यहाभाग! आप लोग जिस कार्य के लिए आये हैं, कहने की कृपा करें । यदि मैं कर सकूँगी, अर्थात् मेरे वश की बात होगी, तो विचार विमर्श पूर्वक उसे पूरा करने का प्रयत्न अवश्य करूँगी । २७-३७

बृहस्पति बोले—महाभागे! हम दोनों अतिथि विवेक-कुशलता से कुछ पूछने ही आये हैं अतः जो कुछ पूछना है कह रहा हूँ, उसे हमें बताने की कृपा करें । कल्याणि महाभागे! इन देवराज को इनसे पूर्व के इन्द्र के चरित जानने का बहुत बड़ा कुतूहल है अतः इसे बता सकें तो अवश्य कहने की कृपा करें । ३८-३९

सांभरायणी बोली—इन देवराज इन्द्र के पूर्व के इन्द्र, उनसे भी पहले वाले तथा उनके भी पहले वाले और इन सभी के पहले जो इन्द्र हों चुके हैं इन सब के चरित्र मैं भलीभाँति जानती हूँ—अंगिरसांवर! मैं अनेकों मन्वन्तरों, देवों की सृष्टि, सप्तर्षियों और मनु के समस्त पुत्रों के जन्म आदि जानती हूँ उन दोनों पुरुषों से ऐसा कहकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ उस सांभरायणी ने पूर्व कालीन इन्द्रों के महान् चरित्र उन दोनों से यथोचित कह सुनाया—स्वायम्भुव, स्वारोचिष्, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष मनु के समय में क्रमशः जितने इन्द्र हो चुके थे, उस सांभरायणी ने उन सबका यथावत् चरित्र वर्णन किया । बीच में उसने जो आश्र्य की बात कही थी, उसे भी बता रहा हूँ, सुनो! पूर्व के किसी इन्द्र के समय में एक शंकुकर्ण नामक दैत्य हुआ था जो अत्यन्त दुर्जय था । उसने रण स्थल में देवों समेत लोकपालों को

१. सा हृष्टा ।

इन्द्रस्यासाद्य भवनं प्रविवेश सुनिर्भयः

॥४७

तं दृष्ट्वा सहसा प्राप्तं शकः शश्यातलेऽतुठत् । जुगोप सहसात्मानं शंकुकर्णभयार्दितः ॥४८

दानवः शकशयने तस्मिन्नुपविवेश ह । इन्द्राण्यपि तथा भीता गता वाचस्पतेर्गृहम् ॥४९

अथ देवाः समाजमुभयाऽछृष्टं सुरद्विषम् । आसीनं शकशयने प्रणिपातपुरस्सराः ॥५०

वासुदेवोऽपि तत्रागात्तं द्वष्टुं देवकंटकम् । दृष्ट्वा कृष्णमनुप्राप्तं दानवः प्राह हर्षितः ॥५१

धन्योऽहं कृतकृत्येहैः यस्य मे गरुडध्वजः । शकशश्यासनस्थित्य द्रष्टुमन्वेति केशवः ॥५२

ततः करे समालंब्य शयनाभ्याशमानयत् । चकार कण्ठप्रहणं बान्धवस्येव हर्षितः ॥५३

ततः कृष्णस्तु सहसा गृह्ण दोभ्या इनोःशनैः । पीडयामास विहसन्नदन्तं भैरवान् रवान् !!

नमार दानवेन्द्रोऽसौ बलाद्वृग्रास्थिपञ्जरः ॥५४

निर्जगाम ततः शकः शश्यामूलाऽवाकिञ्चराः । तुष्टाव हरिमासीनं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥५५

एतद्वृष्टं मया शक वसन्त्या सुरसद्यनि ॥५६

ततः कुतूहलपरो देवराट् तां तपस्विनीम् । उवाच जानसि कर्त्तं त्वमेतान्सांभरायणि ॥५७

सांभरायण्युवाच

सर्व एव हि देवेन्द्राः स्वर्गस्था येऽमरेश्वराः । बभूवरेते चरितमेतेषां वेद्धि तेन वै ॥

पराजित कर उन पर अधिकार करके पश्चात् निर्भय होकर इन्द्र के महल में प्रवेश किया । ४०-४७। उसे सहसा आया हुआ देख कर इन्द्र अपनी शश्या पर पड़ गये और उस शंकुकर्ण के भय के नाते अपने को उसके भीतर छिपा लिया । वह दानव भी इन्द्र की उस शश्या पर बैठ गया जिसके भय से इन्द्राणी उसी समय बृहस्पति के घर चली गयी । तदुपरांत देवगण भी भय के नारे उस अपने शत्रु दानव को देखने के लिए जो इन्द्र की शश्या पर स्थित था, विनय-विनम्रता पूर्वक वहाँ उपस्थित हुए । देवों के कण्टक (काँटे) स्वरूप उस दैत्य को देखने के लिए भगवान् वासुदेव भी वहाँ पहुँचे । वहाँ कृष्ण को आये हुए देख कर हर्षित होकर उस दानव ने कहा—मैं धन्य हूँ और आज कृत कृत्य भी हो गयाकि इस इन्द्र की शश्या पर बैठे हुए मुझे देखने के लिए गरुडध्वज केशव भी आ गये । इतना कह कर उसने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें उसी शश्या पर बैठाना चाहा । उस समय भगवान् कृष्ण ने भी बन्धु आदि से मिलने की भाँति अत्यन्त हर्षित होकर उसका गला पकड़ा और हँसते हुए अपने दोनों हाथों से धीरे-धीरे उसके गले को इतने जोर से दबाया कि उसकी हड्डियाँ टूट गयीं और वह भीषण शब्द से चिल्लाते हुए मर गया । पश्चात् उस शश्या के मूल भाग से निकल कर नीचे शिर किये इन्द्र ने वहाँ स्थित एवं शंख-चक्र धारी भगवान् कृष्ण की स्तुति की । इन्द्र! इस देव पुरी (स्वर्ग) में रहती हुई मैंने यह सब अपनी आँखों देखा है । इसे सुनकर अत्यन्त कुतूहल से देवराज इन्द्र ने उस तपस्विनी से कहा—सांभरायणी! तुम इसे कैसे जानती हो! ४८-५७

सांभरायणी बोली—इस स्वर्ग के समस्त इन्द्र और देवों के चरित यहाँ रहने के नाते मैं भलीभाँति

१. महानुः । २. कृतपुण्योऽहम् ।

चरितं च मया तेषां श्रुतं दृष्टं तथैव च

॥५८

इन्द्र उवाच

किं कृतं वद धर्मजे त्वया येनेयमक्षया । स्वर्तोंके वसतिः प्राप्ता यथा नान्येन केनचित् ॥५९
 अहो सर्वव्रतानां तु ह्यपोषितमयाद् भुतम् । प्रधानतरमत्यंतं स्वर्गवासप्रदं मतम् ॥६०
 एवमुक्ता ततस्तेन देदेन्द्रेण तपस्त्विनी । प्रत्युवाच महाभागा यथावत्सांभगायणी ॥६१
 मासक्षेषं हृच्युतो देवः प्रतिमासं सुरेश्वर । यथोन्नक्षत्रम् सम्यक्त्रपत्ववर्षाणि पूजितः ॥६२
 तस्येयं कर्मणो व्युष्टिरच्युताराधनस्य मे । देवलोकादभिमता देवराजपहच्युतिः ॥६३
 स्वर्णन्द्रविभवैश्वर्दयं संततिं याति चाच्युतिम् । नरो वाच्छ्रुतिं तेनेत्यं तोषणीयस्ततः प्रभुः ॥६४
 एतते पूर्वदेवेन्द्रचरितं सकलं मया । स्वर्गवासाक्षयत्वं च मासक्षाच्युतपूजनाद् ॥

यथावत्कथितं देव पृच्छतस्त्रिदशेश्वर ॥६५

धर्मार्थकाममोक्षाश्च वाच्छ्रुता विबुधाधिष्प । विष्णोराराधनादन्यत्परमं सिद्धिकारणम् ॥६६
 तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवराजबृहस्पती । तत्थेत्यूच्यतुः साध्वीं नेरतुश्चापि तद्वक्तम् ॥६७
 तस्मात्पार्थं प्रयत्नेन प्रतिमासं समाहितः । मासक्षाच्युतपूजायां भवेथास्तन्मनाः सदा ॥६८

जानती हूँ तथा मैंने देखा भी और सुना भी है । ५८

इन्द्र बोले—धर्मजे! तुमने कौन उपाय किया है, जिससे तुम्हें इस स्वर्ग लोक का अक्षय निवास प्राप्त हुआ है, जिसे अन्य कोई नहीं प्राप्त कर सका । तुमने समस्त व्रतों से अत्यन्त अद्भुत एवं किसी सर्वथेष्ठ व्रत को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न किया है, जो मेरे सम्मति से अत्यन्त स्वर्गवास प्रदायक है । देवराज इन्द्र के ऐसा कहने पर उस महाभागा एवं तपस्त्विनी सांभरायणी ने उस व्रत की यथोचित व्याख्या की । उसने कहा—सुरेश्वर! पूर्वोक्त व्रत विधान द्वारा प्रतिमास में मासनक्षत्र के नामोच्चारण पूर्वक अच्युत देव की अर्चनाकरे और इस प्रकार उसे सात वर्ष तक सुमम्पन्न करता रहे । मुझे उसी अच्युतासधन कर्म के फल स्वरूप इस अभीष्ट देवलोक (स्वर्ग) का जहाँ से देवराज का पदच्युत हो जाता है, अक्षय निवास और स्वर्ग तथा इन्द्र के विभव एवं अटल ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई है । जो मनुष्य इस (फल) की अभिलापा करते हैं, उनका भगवान् का प्रसन्न करना परम कर्तव्य है । देव, त्रिदशेश्वर! तुम्हारे पूँछने पर इस प्रकार मैंने पूर्व के देवराजों के समस्त चरित और मासनक्षत्र के नामोच्चारण पूर्वक भगवान् अच्युत देव के पूजन द्वारा अक्षय स्वर्गवास की प्राप्ति का वर्णन कर दिया, जिसमें मन वाच्छ्रुत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति भी निहित है तथा विष्णु की आराधना से पृथक् एक परमसिद्धि का कारण भी है । उसकी ऐसी बातें सुनकर इन्द्र तथा बृहस्पति ने उसे साध्वी के कथन का समर्थन करते हुए उस व्रत को भी सविधान सुसम्पन्न किया । पार्थ! इसलिए प्रतिमास में मासनक्षत्र द्वारा भगवान् अच्युत की अर्चना के लिए तन्मयता पूर्वक प्रयत्नशील रहना परमावश्यक है । ५९-६८। इस प्रकार सांभरायणी के

ये तांभरायणिकयादरितव्रतेस्मिन्वर्षाणि सप्त विधिना सुधियो नर्यंति ।
ते स्वर्गलोकमभिगम्य कृताधिवासाः कल्पायुतायुतशतैरपि न च्यवंते ॥६९
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सांभरायणीव्रतवर्णनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः । १०७

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रपुरुषव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सुरूपता सनुव्याणां स्त्रीणां च यदुसत्तम । कर्मणा जायते केन तन्ममाख्यातुर्नहसि ॥१
सुरूपाणां सुगात्राणां सुवेषाणां तथैव च । न्यूनं तथाधिकं चापि यथा नाङ्गं प्रजायते ॥२
समस्तैः शोभनैरर्गैर्नराः केचिद्दृष्टम् । काणाः कुञ्जाश्चै जायते व्रुटितश्रवणास्तथा ॥३
नराणां योषितां चैव समस्ताङ्गमुरूपता । कर्मणा येन भवति तत्पूर्वं कथयामल ॥४
लावण्यगतिवाक्यानि सति रूपे महामते । कुर्वत्यभ्यधिकां शोभां समस्ताः परमागुणाः ॥५
वाक्यलादण्डसंकारविलासलिता गतिः । विडम्बना कुरूपाणां केवला सा हि जायते ॥६
रूपकारणभूताय कर्मणा प्रयतो भवेत् । तस्मात्तन्मे समाचक्ष्व कर्म यच्चारु रूपदम् ॥७

कथनानुसार उस व्रत को सात वर्ष तक सविधान सुसम्पन्न करने वाले विद्वद्गणों की स्वर्ग लोक में निवास प्राप्ति होने पर वहाँ से एक सौ वीस सहस्र कल्प तक च्युति न होगी । ६९।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में भी कृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में सांभरायणी व्रत वर्णन नामक एक सौ शातवर्ष अध्याय समाप्त । १०७।

अध्याय १०८

नक्षत्रपुरुषव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यदुसत्तम! स्त्रियों और पुरुषों को किस कर्म द्वारा उत्तम रूप की प्राप्ति होती है, मुझे बताने की कृपा करें। यदुसत्तम! मुरूप, सुन्दर शरीर और उत्तम देव की प्राप्ति होते हुए भी उसमें जिसमें हीनांग और अधिक अंग होने की संभावना न हो सके क्योंकि कुछ लोग सर्वाङ्ग सुन्दर और कुछ लोग काने, लंगड़े, और कनफटे देखे जाते हैं। अमल! महामते! पुरुषों और स्त्रियों को सर्वाङ्गसौन्दर्य की प्राप्ति जिस कर्म द्वारा होती है, कहने की कृपा करें क्योंकि रूप सौन्दर्य के रहने उसकी गति ('चाल') और वाक्य के भी परम सुरम्य होने पर उस व्यक्ति की शोभा अत्यधिक बढ़ जाती है। रूप के अनुरूप मनोरम वाक्य, उत्तम विलास और ललित गति के होने पर वे सब उसके विडम्बना मात्र होते हैं। इसलिए रूप-प्राप्ति होने के कारण भूत कर्म को सुसम्पन्न करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। आप मुझे भी उस रूप प्रदायक व्रत को बताने की कृपा कीजिये । १०८

श्रीकृष्ण उवाच

सम्यद्यूष्टं त्वया हीद्युपवासाश्रितं नृप । कथयामि यथा प्रोक्तं वशिष्ठेन नहात्मना ॥८
वशिष्ठमृषिमासीनं सप्तर्षिप्रवरं द्विजम् । पप्रच्छारुण्यती पृष्टा यदेतद्वता वयम् ॥९
तस्यास्तु परिपृच्छन्त्या जगाद् मुनिसत्तम् । यत्तज्ज्ञानुश्च कौतैव ममेदं बदतोऽखिलम् ॥१०

वशिष्ठ उवाच

श्रूपतां हृदहं पृष्टस्त्वयैतद्वर्वर्णिनि । मुरुपता नृणां येन योषितां द्योपजायते ॥११
अनन्यर्थं तु गोविंदमनाराध्य च केशवम् । रूपादिका गुणाः केन प्राप्यतेऽन्येन कर्मणा ॥१२
तस्मादाराधनीयोऽग्रे विष्णुरेव यशस्विनी । पारश्र्यं प्राप्तुकामेन रूपसंपत्सुतादिकन् ॥१३
यस्तु वाञ्छिति धर्मज्ञे रूपं सर्वांगासुन्दरम् । नक्षत्रपुरुषं भद्रे जितक्रोधो जितेद्विद्यः ॥१४
मुस्नातः प्रयताहारः संपूजयति योऽच्युतम् । भक्त्या योषिन्नरो वापि मुरुपांगः प्रजायते ॥१५
योषिता हि परं रूपनिच्छन्त्या जगतः पतिः । स एवाराधनीयोऽग्रे नक्षत्रांगो जनार्दनः ॥१६

अरुण्यत्युवाच

नक्षत्ररूपी भगवान्पूज्यते पुरुषोत्तमः । मुने येन विधानेन तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१७

श्री कृष्ण बोले—नृप! इस उपवास प्रधान कर्म (व्रत) का विषय लाकर आप ने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, मैं महात्मा वशिष्ठ के इस विषय के कथन को कह रहा हूँ, सुनो! कौतैय! एक बार सप्तर्षियों में सर्वथ्रेष्ठ महर्षि वशिष्ठ के सुखासीन होने पर उनकी पत्नी अरुण्यती ने उनसे इसे पूछा था। उस समय उनके पूँछने पर मुनि प्रवर वशिष्ठ ने जो कुछ कहा था, मैं वह सम्पर्ण तुम्हें बता रहा हूँ ॥८-१०

वशिष्ठ बोले—उत्तमज्ञि! पुरुषों और स्त्रियों को परमोत्तम रूप की प्राप्ति कैसे होती है, जो तुमने पूँछा है, मैं वह कर्म बता रहा हूँ । तुम्हारा प्रश्न था कि—भगवान् गोविन्द केशव की अर्चना एवं आराधना विना किये किस अन्य कर्म द्वारा रूप आदि परमोत्तम गुण की प्रस्ति होती है! मेरा उत्तर है कि किसी अन्य की आराधना द्वारा इस की प्राप्ति नहीं होती है अतः सर्व प्रथम भगवान् विष्णु की ही आराधना करनी चाहिए जिससे रूप, सम्पत्ति और पुत्रादि की प्राप्ति पूर्वक परलोक सुख की भी प्राप्ति हो सके। यशस्विनि एवं धर्मज्ञे! जो लोग सर्वाङ्गसुन्दर रूप की कामना करते हैं, उन्हें क्रोधहीन होकर संयमपूर्वक नक्षत्र पुरुष (भगवान्) की आराधना करनी चाहिए। भलीभांति स्नान और नियत आहार करते हुए भक्तिपूर्वक (स्त्री-पुरुष) जो कोई भगवान् अच्युत की अर्चना करता है उसे सर्वाङ्गसुन्दर रूप प्राप्त होता है। परमोत्तम रूप की कामना करने वाली स्त्री को भी सर्वप्रथम नक्षत्रों के अङ्ग—भूत भगवान् जनार्दन की अर्चना करनी चाहिए ॥११-१६

अरुण्यती बोली—मुने! जिस विधान द्वारा नक्षत्र रूपी भगवान् पुरुषोत्तम की अर्चना की जाती है, मुझे बताने की कृपा करें ॥१७

वर्शिष्ठ उवाच

चैत्रमासात्समारभ्य विष्णोः पादाभिपूजनम् । यथा कुर्वीत रूपार्थं तन्निशामय तत्त्वतः ॥१८
 नक्षत्रमेकमेकं वै स्नातः सम्यगुपोषितः । नक्षत्रपुरुषस्यांगं पूजयेच्च विचक्षणः ॥१९
 भूले पादौ तथा जंघे रोहिण्यामर्चयेच्छुभे । जानुनी चाश्विनोयोगे आषाढे चोरुसंज्ञिते ॥२०
 फालगुनीहितये गुह्यं कृत्तिकासु तथा कटिम् । पार्श्वे भाद्रपदः गुल्के द्वे कुक्षीः रंवर्तीषु च ॥२१
 अनुराधासूरः पृष्ठं धनिष्ठास्वभिपूजयेत् । भूजयुग्रम् विशालासु हस्ते चैव करद्वयम् ॥२२
 पुनर्वंसावंगुलीश्च आश्लेषासु तथा नखान् । ज्येष्ठायां पूजयेद्ग्रीदां श्रदणे श्रदणे तथा ॥२३
 पुष्ये मुखं तथा स्वातौ दशनानभिपूजयेत् । आस्यं शतभिषग्योगे मध्यायोगे च नासिकाम् ॥२४
 मृगोत्तमांगे नयने दूजयेद्ब्रह्मितः शुभे । चित्रायोगे ललाटं च भरणीषु तथा शिरः ॥२५
 संपूजनीया विद्वद्ब्रह्मद्राघ्यां च शिरोरुहाः । उपोषितो नरो ध्वे स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ॥२६
 वर्जनीयं त्रयतनेन रूपघ्नं तद्विनिर्विशेषत् । पूजयेत्तच्च नक्षत्रं नक्षत्रस्य च दैवतम् ॥२७
 सोमं नक्षत्रराजानं स्वमन्त्रर्चयेद्बुधः । प्रतिनक्षत्रयोगे च भोजनीया द्विजोत्तमाः ॥२८
 नक्षत्रज्ञाय दिपाय दानं दद्याच्च शक्तिः । अन्तराये समुत्पन्ने सूतकाशौचकारिते ॥२९
 उपोष्य वाचोपविशेषक्षत्रमपरं पुनः । एवं माधावसाने तु व्रतपारः समाप्यते ॥३०
 समाप्ते तु व्रते दद्याच्छक्त्या सोपस्करान्वितम् । नक्षत्रपुरुषं हैमं पूजयेत्तत्र शक्तिः ॥३१
 ब्राह्मणं ब्राह्मणीं चैव वस्त्रालङ्घारभूषणैः । शश्यायां तु समासनं गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥३२

वर्शिष्ठ बोले—रूप प्राप्त्यर्थं चैत मास से आरम्भ कर भगवान् विष्णु के चरण की पूजा जिस भाँति की जाती है मैं उसे सविधान बता रहा हूँ सुनो! उपवास रह कर स्नान करने के उपरात नक्षत्र पुरुष भगवान् विष्णु के अङ्गभूत नक्षत्रों की पूजा विद्वानों को करनी चाहिए—मूल नक्षत्र में उनके चरण, रोहिणी, नक्षत्र में उनकी शुभ जंधाओं, अश्विनी में जानु (घुटने), आषाढ़नक्षत्र में उह, फालुन नक्षत्र में पार्श्व भाग, रेती नक्षत्र में दोनों गुल्क (पैर की एंडी) और दोनों कुक्षि (कोरव), अनुराधा में पृष्ठभाग, धनिष्ठा में दोनों भुजाएँ, विशाखा में दोनों हाथ और उसकी अङ्गुलियाँ, आँखेषा में नख, ज्येष्ठ में ग्रीवा (गला), श्वरण में दोनों कान, पुष्य में मुख, स्वाती में दाँत, शतभिषा में कपोल, मधा में नासिका, मृगशिरा में नेत्र, चित्रा में ललाट, भरणी में शिर और आद्रा में शिरोरुह (बाल) की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। भद्रे! उपवास रह कर मनुष्य को अभ्यङ्ग स्नान न करना चाहिए क्योंकि वह रूप नाशक होता है। विद्वान् को चाहिए कि— नक्षत्र मंत्र द्वारा नक्षत्र के अधिदेव राजा सोम की सविधान पूजा करे और प्रत्येक नक्षत्र के अवसर पर उत्तम ब्राह्मणों को भोजन तथा यथाशक्ति नक्षत्रवेत्ता विद्वान् को दान अर्पित करे। १८-२८। बीच में सूतक अथवा अशौच रूप विद्ध आ जाने पर उपवास पूर्वक अगले नक्षत्र में पूजन करे। इस प्रकार माघ के अन्त में व्रत समाप्त हो जाता है और उसकी समाप्ति में यथाशक्ति साधन सम्पन्न नक्षत्र पुरुष की सुवर्ण प्रतिमा की अर्चना और ब्राह्मणी के वस्त्राभूषण से विभूषित करके सुसज्जित शश्या पर स्थापित करे। २९-३२। पश्चात् गन्धः

सप्तधान्यं यथालाभं गां सवत्सां पयस्त्विनीम् । छत्रोपानद्युगं चैव धृतपात्रं तथैव च ॥३३
मन्त्रेणानेन विप्राय मुशीलाय निवेदयेत् । यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायते क्वचित् ॥

तथा मुरुपतारोग्यसुखसंपदिहास्तु मे ॥३४

यथा न लक्ष्या शदनं तव शून्यं जनार्दन । शश्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥३५

एवं निवेद्य तत्स्वर्वं प्रणिपत्य भक्तापयेत् । शक्तिहीनस्तु गां दद्याद् धृतपात्रसमन्वितम् ॥३६

नक्षत्रपुरुषाख्योऽयं यथावत्कथितस्तद् । पापापनोदं कुरुते तन्यकृद्धावतां सताम् ॥३७

अङ्गोपाङ्गानि चैवास्य पादादीनि दशस्त्विनि । तुरुपाण्यभिजायते सदा जन्मान्तरणि वै ॥३८

गात्राणि चैव भद्राणि शरीरारोग्यमुत्तमम् । सन्ततिं मनसः प्रीतिं रूपं चातीव शोभनम् ॥३९

वाङ्माधुर्यं तथा कांतिं यच्चान्यदपि वाञ्छितम् । इदाति नक्षत्रपुरुषान्युजितश्च जनार्दनः ॥४०

वशिष्ठेन यथास्थातं सर्वं तत्ते निवेदितम् । नक्षत्रपुरुषं नाम ब्रतानामुत्सोत्तमम् ॥४१

हृद्वाहुजानुनयनोरुनितंबभागं दक्षैः प्रकल्प्य सुतनुं पुरुषोत्तमस्य ।

ये पूजयन्ति जितकोपमनोविक्षाराः कौत्तेय ते ननु भवन्ति मुरुपदहाः ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

नक्षत्रपुरुषव्रतवर्णनं नामाष्टाधिकरशततमोऽध्यायः । १०८

माला और लेपन आदि से उनकी पूजा करने के उपरांत सप्तधान्य सवत्सा धेनु गौ, छत्र, उपानह, तथा धृत पूर्ण पात्र किसी मुशील ब्राह्मण को मंत्र द्वारा अर्पित करे—जनार्दन! जिस प्रकार विष्णु-भक्तों को असफलता नहीं ही प्राप्त होती है उसी भाँति मुझे भी मुरुपता, आरोग्य और सुख सम्पत्ति की प्राप्ति हो। आप का शयन लक्ष्मी शून्य कभी नहीं होता है, उसी प्रकार प्रत्येक जन्म में मेरी भी शश्या अशून्य ही रहे। इस प्रकार नव्रता पूर्वक समस्त वस्तु उन्हें निवेदित कर क्रमा याचना करे। शक्तिहीन होते पर केवल धृतपात्र समेत गोदान ही करें। इस भाँति नक्षत्र-पुरुष का आव्यान जैसा सुना था तुम्हें बता दिया जो श्रद्धालु सज्जनों का सदैव पापापहरण करता रहता है। यशस्त्वित! उसके चरण आदि समस्त अङ्गोपाङ्ग प्रत्येक उत्तम आरोग्य, संतान, प्रसन्नता पूर्ण मन, परम-मनोहर रूप, मधुर वाणी, कांति और अन्य अभिलिषित पदार्थ नक्षत्र पुरुष भगवान् जनार्दन प्रदान करते हैं। समस्त ब्रतों से परमोत्तम इस नक्षत्र पुरुष नामक ब्रत को जिस प्रकार वशिष्ठ जी ने बताया था तुम्हें सुना दिया। कौत्तेय! इस प्रकार नक्षत्र देव भगवान् पुरुषोत्तम के हृदय, भुजा, जानु (धुटने), उरु, नयन, और नितम् आदि शरीर के समस्त अंगों की मनोहर रचना करके क्रोध एवं मनोविकार से रहित होकर पूजन करने वाले को निश्चय सौन्दर्य पूर्ण शरीर की प्राप्ति होती है। ३३-४२

श्रीभविष्य महापुराण में उत्तरपर्व के श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

नक्षत्रपुरुषव्रत वर्णन नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त । १०८।

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रात्प्रदत्तवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

उपावासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिष्ठतः । अनभ्यासेन योगद्वा किंमिष्टं द्रष्टमुच्यते ॥१
शिवस्योपरि यस्त स्पाद्युक्तिः सूर्यस्य संभवेत् । नक्षत्राख्यं व्रतं तेन कथं कार्यं वदस्द से ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्ठते । अस्मिन्वर्ते तदप्यत्र श्रूयते नक्षयं महत् ॥३
शिवनक्षत्रपुरुषं शिवभक्तिप्रदायकम् । यस्तिनक्षत्रयोगे तु पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥४
फाल्गुनस्यामले पक्षे यदा हस्तः प्रजायते । तदा ग्राह्यं व्रतं चैव नक्तेन शिवपूजनम् ॥५
शिवायेति च हस्तेन पादौ पूज्यतमौ स्मृतौ । शंकराय नमो 'गुल्फौ पूज्यौ चित्रासु पांडव ॥६
भीमायेति च स्वातीषु पूज्येत्पुरुषर्षभ । ऊरद्वयं विशाखासु त्रिनेत्रायेति पूजयेत् ॥७
मेढं चैवानुराधासु अनङ्गङ्गहराय च । कटिं ज्येष्ठासु च तथा सुरज्येष्ठेति चार्चयेत् ॥८
दानाख्याय नमो नाभिः पूज्या मूलेन शूलिनः । पूर्वोत्तराषाढयुगे पार्श्वे वै पार्वतीपतिः ॥९

अध्याय १०९

नक्षत्रव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—उपवास रहने में असमर्थ प्राणों को, जो पूर्वोक्त फलों की कामना करता है और योगाभ्यास भी नहीं कर सकता है, और शिवभक्त तथा सूर्यभक्त को यह नक्षत्र व्रत किस भाँति करना चाहिए भूज्ञे बताने की कृपा करें । १-२

श्रीकृष्ण बोले—इस व्रत के अनुष्ठान में उपवास करने में असमर्थ पुरुष को नक्त (रात्रि) में भोजन करना चाहिए तथा और भी अध्यय एवं महान फलदायक उपाय बता रहा हूँ, सुनो! पुराणमर्मज्ञों का कहना है कि जिस नक्षत्र में शिव नक्षत्र पुरुष की अर्चना करने से अत्यन्त द्रढ़ शिव-भक्ति प्राप्त होती है, कह रहा हूँ—फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में हस्त नक्षत्र के प्राप्त होने पर भी उसी दिन से इस व्रत का अनुष्ठान आरम्भ कर रात्रि में शिव जी की अर्चना करनी चाहिए । ३-५। पाण्डव! ‘शिवजी को नमस्कार है’ इस वाक्य से हस्तनक्षत्र में उनके अत्यन्त पूजनीय चरण, ‘शङ्कर को नमस्कार है’ से चित्रा नक्षत्र में उनकी गुल्फ (एड़ी) और ‘भीम को नमस्कार है’ से स्वाती नक्षत्र में जानु (धुटने) की अर्चना करनी चाहिए । पुरुषर्षभ! उसी प्रकार ‘त्रिनेत्र को नमस्कार है’ से विशाखा नक्षत्र में दोनों उह ‘अनङ्ग (काम) के अङ्गापहारी हर को नमस्कार है’ से अनुराधा नक्षत्र में लिङ्ग, ‘सुरज्येष्ठ को नमस्कार है’ से ज्येष्ठा नक्षत्र में कटि ‘दानविश्वात को नमस्कार है’ से मूल नक्षत्र में शिव जी की नाभि, ‘शूली को नमस्कार है’ से पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में पार्वतीपति शिव के पार्श्वभाग, ‘कपाली को नमस्कार है’, से श्वरण

१. अङ्गुल्यौ ।

श्रद्धेन तथा कुक्षी पूज्ये कपालिनेति च । वक्षः स्थलं धनिष्ठासु सद्योजातेति नाम च ॥१०
 वामेति पूजयेत्पर्य हृदयं शतभिषासु च । पूर्वोत्तरायुगे बाहू नमः खट्टांगधारिणे ॥११
 पूज्यं रुद्राय च तथा रेवतीषु करद्वयम् । नखः पूज्योऽश्विनीयोगे नमः खण्डेन्दुधारिणे ॥१२
 भर्णीषु ततः पृष्ठं वृषांकाय नमोऽस्तु ते । कृत्तिवासाय च तथा कृत्तिकासु कृकाटिकाम् ॥१३
 वाक्यपूज्या रेहिणीयोगे नमो वाचस्पतेति च । मृगोत्तमांगे दशनान्भैरवयेति वै नमः ॥१४
 आद्राम्भु पूज्यावधरौ स्थाणवेति युधिष्ठिर । नासा पुनर्वसौ पूज्या पूषदंतविनाशिने ॥१५
 पुष्ये नेत्रत्रयं पूज्यं नमस्ते सर्वदर्शिने । आश्लेषायां ललाटं च अ्यम्बकाय नमोनमः ॥१६
 मघासु च जटाजूटं पूजयेदंधकारये । पूर्वाकालयुनिकायुगमे शब्दे सोमधारिणे ॥१७
 नमोऽस्तु पाशांकुशपश्चशूलकपालतर्पेन्दुधनुर्द्वराय ।

गजासुरानङ्गःधुरान्धकादिविनाशःमूलाय नमः शिवाय ॥१८

शिरः सम्पूजयेद्विद्यात्तो धूपचिलेपनम् । ततस्तु रात्रौ भोक्तव्यं तैलक्षारविवर्जितम् ॥१९
 शालितण्डुलकप्रस्थं धृतमात्रेण संयुतम् । दद्यात्तर्त्तेषु नक्तेषु ब्राह्मणाय नृपोत्तम् ॥२०
 शक्तदेवावे न दोषः स्यादधिके चाधिकं फलम् । नक्षत्रयुगले प्राप्ते नक्तयुगमं समाचरेत् ॥२१
 सूतकाशैचदोषे तु पुनरन्यदुपोषयेत् । एवं क्रमेण संप्राप्ते पारणे पाण्डवादिके ॥२२
 ब्राह्मणान्भोजयेद्वक्त्या गुडक्षीरधृतदिभिः । काञ्चनं कारयेदेवमुमया सह शंकरम् ॥२३

नक्षत्र में दोनों कुक्षि, 'सद्योजात को नमस्कार है' से धनिष्ठा नक्षत्र में वक्षः स्थल 'वामदेव को नमस्कार है' से शतभिषा नक्षत्र में हृदय 'खड्गङ्गधारी को नमस्कार है' से पूर्वा और उत्तरा नक्षत्र में दोनों बाहू, 'रुद्र को नमस्कार है' से रेवती नक्षत्र में दोनों हाथ, 'चन्द्र खण्डधारी को नमस्कार है', से अश्विनी नक्षत्र में नख, 'वृषाङ्कु को नमस्कार है', से भरणी नक्षत्र में पीठ 'कृत्तिवास (चर्मवस्त्र) धारी को नमस्कार है', से कृत्तिका नक्षत्र में कण्ठ में रहने वाली धाटी, 'वाणीपति को नमस्कार है', से रोहिणी नक्षत्र में वाणी, 'भैरव को नमस्कार है', से मृगशिरा नक्षत्र में दाँत और 'स्थाणु को नमस्कार है', से आद्रा नक्षत्र में अधरोष्ठ की अर्चना करनी चाहिए। युधिष्ठिर! 'दंतविनाशक को नमस्कार है' से पुनर्वसु नक्षत्र में नासा (नाक), 'सर्वदर्शी को नमस्कार है' से पुष्य नक्षत्र में तीनों नेत्र, 'अ्यम्बक को नमस्कार है' से आश्लेषा नक्षत्र में ललाट, 'अंधकासुर निहता को नमस्कार है' से मघा नक्षत्र में जटाजूट, 'सोमधारी को नमस्कार है' से पूर्वाकालयुनी नक्षत्र में दोनों कान तथा 'पाश, अंकुश, पद्म, शूल, कपाल, सूर्य, चन्द्र और धनुष को धारण करने वाले एवं गजासुर, अनङ्ग (काम), धूर, तथा अन्धक आदि राक्षसों के निहन्ता शिव को नमस्कार है', से उनके शिर की अर्चना करके धूप और लेपन उन्हें समर्पित करे पश्चात् रात्रि में तेल-नमक रहित वस्तु का भोजन करना चाहिए। १६-११। नृपोत्तम! सभी नक्त भोजन के समय एक सेर साठी चावल धूत का दान ब्राह्मण को अर्पित करता रहे। इसमें अशक्त होने पर कोई दोष नहीं होता है और युगल नक्षत्र के एक साथ प्राप्त होने पर युगल नक्त भोजन करना चाहिए क्योंकि अधिक का अधिक ही फल प्राप्त होता है! पाण्डव! बीच में सूतक और अशौच के उपस्थित होने पर पुनः अन्य समय उपवास करते हुए सुसम्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार क्रमशः पूजन करते हुए व्रत की सम्पत्ति के अवसर पर पार्वती समेतशिव जी की सुवर्ण प्रतिमा को सुन्दर सुसज्जित एवं गाँठी आदि रहित शश्या पर स्थापित पर पूजनोपरांत

शश्यां सुलक्षणां कृत्वा विरुद्धग्रंथिवर्जिताम् । सोपधानकविश्रामां स्वस्तिरावरणां शुभाम् ॥२४
 भाजनोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः । भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः ॥२५
 तस्यां निधाय तं देवमलकृत्य गुणान्वितम् । कपिलां वस्त्रसंवीतां शुचिशीलां परस्त्विनीम् ॥२६
 सुवर्णभृङ्गीं रौप्यखुरां सवत्सां कांस्यदोहनाम् । दद्यान्मंत्रेण पूर्वाङ्गे न कालमभिलङ्घयेत् ॥२७
 यथा न देवशयनं तत्र पर्वतजातया । शून्यं वृत्त्याथ संतत्या तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥२८
 यथा देव न श्रेयोऽर्थस्त्वदन्यो विद्यते क्वचित् । तथा प्रामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥२९
 ततः प्रदक्षिणोकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् । शश्यागवादितत्सर्वं द्विजस्य भवनं नयेत् ॥३०

नैतद्विशीलाय न दांभिकाय कुरुकुदुष्टाय विनिंदकाय !
 प्रकाशनीयं ऋतमिन्दुमौलेर्यश्चापि लोभोपहतांतरात्मा ॥३१
 भक्ताय दांताय गुणान्विताय प्रदेयमेतच्छिवभक्तियुक्तैः ।
 इदं महापातककृत्त्राणामप्यक्षयं देवदिवो ददृति ॥३२
 या वाथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या भर्तारमाश्रित्य शुभं गुरुं वा ।
 न बंधुपुत्रैर्नदनैर्वियोगमाप्नोति दुःखं न सुहृत्समुत्थम् ॥३३
 इदं वशिष्ठेन पुराञ्जुनेन कृतं कुबेरेण पुरन्दरेण ।
 यत्कीर्तनादप्यखिलान्यद्यानि विद्वं समायांति न संशयोऽत्र ॥३४

भोजनादि पात्र उपानह, छाता, चामर, आसन, दर्पण, भूषण, फल, वस्त्र और लेपनादि युक्त, तथा सुवर्ण द्वारा सींग और चाँदी से खुर भूषित हो, और काँसे की दोहनी समेत अपराह्न काल में अर्पित कर क्षमा प्रार्थना करे—देव! जिस प्रकार आप शयन पार्वती वृत्ति एवं संतान से कभी शून्य नहीं होते हैं उसी प्रकार मुझे भी सभी सिद्धियाँ हैं । २०-२८। देव! जिस प्रकार आप से पृथक् कहीं भी कल्याण सम्भव नहीं होता है उसी प्रकार आप इस दुःख सागर रूप संसार रो मेरा उद्धार करने की कृपा करें। इस प्रकार क्षमा याचना करने के उपरांत प्रदक्षिणा करके, अनुनय-विनय समेत प्रणाम करते हुए विसर्जन करे और शश्या आदि ब्राह्मण के घर पढ़ूँचा दे । दुःशील, दम्भी, कुरुक की दुष्टता करने वाले निन्दक और अत्यन्त लोभी को चन्द्रमौलि (शिव) का यह व्रत कभी न बताना चाहिए । भक्त, पवित्र, एवं गुणवान् पुरुष को ही शिवभक्तों द्वारा यह व्रत दिया जाना चाहिए । वैदिक विद्वानों का कहना है कि यह व्रत महापातकी पुरुषों के लिए भी अक्षय फल प्रदान करता है । जो स्त्री अपने पति, अथवा गुरु आदि के आश्रित रह कर इस शुभ व्रत को सुसम्पन्न करती है उसे बन्धुवर्ग, पुत्र एवं धनादि के वियोग दुःख अथवा मित्र की ओर से किसी दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है । इस व्रत को सर्व पथम वशिष्ठ, अर्जुन, कुबेर और इन्द्र से सुसम्पन्न किया था, जिसके कीर्तन द्वारा भी समस्त पापों के विनाश पूर्वक विद्वों के शमन होते हैं इसमें संशय नहीं । २९-३४। जो पुरुष इस शिवपुरुष नामक व्रत को इस भाँति सुसम्पन्न अथवा

इति पठति शृणोति वा य इत्थं शिवपुरुषं पुरुषतवल्लभः स्यात् ।
 अपि नरकगतान्वितृनशेषान्विष्वभवनं नयतीह यः करोति ॥३५
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 शिवनशत्रपुरुषवत्वर्णनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः । १०९।

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

सम्पूर्णद्वत्वर्णनम्
 युधिष्ठिर उवाच

यदि कर्तुं न शक्नोति व्रतं नक्षत्रपौरुषम् । गृहीतं रभसा कृष्ण हृन्यद्वा व्रतमुत्तमम् ॥१
 संपूर्णं ज्ञायते येन यदचीर्णं पुरा स्थितम् । कुरु प्रसादं गुह्यार्थमेतन्मे वक्तुर्महसि ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

साधुताधु नहाबाहो कुरुराज युधिष्ठिर । रहस्यानां रहस्यं ते कथयामि व्रतोत्तमम् ॥३
 सम्पूर्णं नाम तच्चापि व्रतं सम्यक्फलप्रदम् । यच्चीर्णं नरनारीभिर्भवेत्सम्पूर्णकारकम् ॥४
 अवश्यं तच्च १कर्तव्यमक्षीणफलकांक्षिभः । किञ्चिद्भग्नं प्रमादेन यद्व्रतं व्रतिनां स्थितम् ॥
 तत्संपूर्णं भवेत्सर्वं व्रतेनानेन पाण्डव ॥५

पारायण या श्वरण करता है वह इन्द्रप्रिय होकर नरक में पड़े हुए अपने अशेष पितरों को शिवलोक पहुँचता है । ३५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 शिवनक्षत्र पुरुष व्रत वर्णन नामक एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त । १०९।

अध्याय ११० सम्पूर्ण व्रतों का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! यदि इस नक्षत्रपुरुष नाम व्रत को सुसम्पन्न करने में अशक्त होने अथवा शीघ्रतया किसी अन्य उत्तम व्रत को अपनाने पर सम्पूर्ण सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है, मुझे यह गुह्य बात बताने की कृपा करें । १-२

श्रीकृष्ण बोले—साधु-साधु! महाबाहो एवं कुरुराज युधिष्ठिर! मैं तुम्हें एक परमोत्तम व्रत बता रहा हूँ, जो अत्यन्त गुप्त है । उस व्रत का लाभ सम्पूर्ण है। जों समस्त फलों को प्रदान करता है और जिस सम्पूर्ण कारी व्रत को नर नारियों ने सुसम्पन्न किया है । उसे अक्षय फल चाहने वालों को अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए । पाण्डव! प्रमाद-वश व्रती पुरुषों का व्रत जो किसी प्रकार से कुछ खण्डित हो जाता है, इस व्रतानुष्ठान द्वारा उस सम्पूर्ण व्रत की सिद्धि हो जाती है । पार्थिव! (वृत्तारम्भ में) अनेक प्रकार के

१. सम्पूर्णफलकाङ्क्षिभः ।

उपद्रवैर्वहुविधैर्नदान्मोहाच्च पर्थिव । यद्भन्तं किञ्चिदेव स्याद्ब्रतं विघ्नविनायकैः ॥
 तत्सम्पूर्णं भवेत्पार्थं सत्यंसत्यं न संशयः ॥६
 काञ्चनं रौप्यकं रूपं शिल्पिना तद्वाटपयेत् । भग्नब्रते तु यो देवस्तत्स्वरूपं सुनिर्मितम् ॥७
 रूपं स्त्रीपुंसदोर्वापि प्रारब्धं यद्ब्रते किल । नवनिष्पादितं किञ्चिदैवात्सर्वं तथोत्थितम् ॥८
 द्विभुजं पद्मजाहूङ्दं सौन्यग्रहसिताननन् । निष्पादितं शिल्पभावात्सिस्त्रेव दिनेदिने ॥९
 तन्मासे च पुनः प्राप्ते झाहूणो विधिना गृहे । स्नाययेत्पयसा दध्ना घृतक्षीररसांबुधिः ॥१०
 गन्धचन्दनपुष्टैश्च ॑चर्चयेत्कुकुमादिना । तोयपूर्णस्य कुम्भस्य पृथिव्यां विन्यस्य चंदनैः ॥११
 धूपदीपाक्षतर्वत्स्त्रै रत्नैरप्युपहारकैः । अर्घ्यं दध्नाच्च तत्त्वाज्ञा मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥१२
 उपरात्रस्य दीनस्य प्रायश्चित्तद्वत्ताञ्जलेः । शरणं च प्रपन्नस्य कुरुष्वाद्य दयां प्रभो ॥१३
 परत्र भयभीतस्य भग्नखण्डव्रतस्य च । कुरु प्रसादं सम्पूर्णं ब्रतं सम्पूर्णमस्तु मे ॥१४
 तपश्चिद्द्रवं व्रतच्छिद्रं यच्छिद्रं भग्नके ब्रते । तव प्रसादादेवेश सर्वमच्छिद्रमस्तु नः स्वाहा ॥१५

(अमुकदेवाय नमः)

पूर्वतो दक्षिणतः पश्चिमत उत्तरतः । विदिक्षु चोपर्यधस्ताद्विक्ष्यालेभ्यो नमोनमः ॥१६
 इदमर्थ्यमिदं पाद्यं नैवेद्यं ते नमोनमः । एवं प्रोच्य ततः पादौः जानुनी कटिशीषके ॥१७
 ॑वक्षःकुक्षिदृष्टिपृष्ठबाह्वंसांकशिरोरुहान् । पूजयेत्स्य देवस्य ततः पश्चात्क्षमापयेत् ॥१८

उपद्रव, मद, तथा मोह आदि विघ्नविनाशक द्वारा ब्रत के कुछ भाग खण्डित होने पर सम्पूर्ण ब्रत द्वारा सत्य एवं (ध्रुव) सत्य सुसम्पन्न हो जाता है इसमें संदेह नहीं । पार्थ! ब्रतारम्भ के समय खण्डित ब्रत के प्रधान देवी सुवर्ण अथवा चाँदी की प्रतिमा शिल्पी द्वारा निर्माण करे, चाहे वह स्त्री अथवा पुरुष किसी की हो । दैव संयोग से उस मूर्ति रचना में कुछ नवीन भले आजाये, किन्तु रहे वह यथा कथित ही । दो भुजाओं, कमल पर सुशोभित, सौम्य (दर्शन) एवं प्रसन्न मुख का निर्माण उन्हीं दिनों में शिल्पी भादना (सौन्दर्यपूर्ण ढंग) से करना चाहिए । पुनः उस मास के प्राप्त होने पर ब्राह्मण को अपने घर में दूध, दही, घी, क्षीर, एवं जल का सविधि ज्ञान गंध, चन्दन, पुष्प और कुंकुम आदि से उन देवों की अर्चना करनी चाहिए । पाण्डव! जलपूर्ण कलश को पृथिवी में स्थापित कर चन्दन, धूप, दीप, अक्षत, वस्त्र रत्न एवं अन्य उपहार द्वारा उन्हें नाम मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस कलश पर अर्घ्य प्रदान करे और पश्चात् इस भाँति क्षमा याचना करे—प्रभो! आप के निकट आये हुए मुझ दीन के ऊपर, जो प्रायश्चित्तार्थ हाथ जोड़े आप की शरण में प्राप्त है, दया करें । ब्रत के खण्डित होने के नाते परलोक प्राप्ति के लिए भयभीत होने वाले मुझपर कृपा करते हुए आप इस सम्पूर्ण ब्रत द्वारा मेरे खण्डित ब्रत को सुसम्पूर्ण करें । देवेश! तप, ब्रत, अथवा जिसे किसी द्वारा खण्डित इस ब्रत का समस्त अंग सुसम्पूर्ण हो । अमुक देव को नमस्कार है । ३-१६। पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर की दिशाओं और विदिशाओं तथा ऊपर-नीचे के दिक्षालों को नमस्कार है । यह अर्घ्य, पाद्य एवं नैवेद्य आप के लिए अर्पित है और मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ । इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करने के अनन्तर उनके चरण, जानु (घुटने), कटि, शिर, वक्ष, कुक्षि (कोख), नेत्र, पीठ, बाहू, कन्धे और केशों की अर्चना करके उनकी क्षमा प्रार्थना करे—सुरोत्तम! नाथ!

१. कुसुमादिना । २ चक्षु-कुक्षी ।

पूजितस्त्वं यथाशक्त्या नमस्तेऽन्तु मुरोत्तम् । ऐहिकामुष्मिकीं नाथ कार्यसिद्धिं दिशस्त्व मे ॥१९
 एवं क्षमापयित्वा तु देवरूपं विधानतः । ततो द्विजस्य कौन्तेय विद्धिजस्योपपादयेत् ॥२०
 स्थित्वा पूर्वमुखो विप्रो गृहीयाद्भपाणिना । विप्रस्य हस्ते यच्छेच्च इता वै चोत्तरामुखः ॥
 मन्त्रेणानेन कौन्तेय सोपवासः प्रयत्नतः ॥२१
 इदं वतं मया खण्डं कृतमासीत्पुरा द्विज । भगवंस्त्वत्प्रसादेन संपूर्णं तदिहास्तु मे ॥२२
 ब्राह्मणोऽपि प्रतिच्छेत्तु मन्त्रेणानेन तद्द्वात्म । वाक्तस्मूर्णं मनःपूर्णं पूर्णं कायव्रतेन ते ॥
 सम्पूर्णस्य प्रसादेन भव पूर्णमनोरथः ॥२३
 ब्राह्मणा यत्प्रभाषते ह्यनुमोदन्ति देवताः । सर्वदेवमया विप्रा नैतद्वचनमन्यथा ॥२४
 जलधिः क्षारतां नीतः पावकः सर्वभक्षताम् । सहस्रनेत्रः शक्रोऽपि कृतो विप्रैर्महात्मभिः ॥२५
 ब्राह्मणानां तु वचनाद्ब्राह्मणत्वा प्रणश्यति । अश्वमेधफलं साग्रं प्राप्येत नात्र संशयः ॥२६
 व्यासवाल्मीकिवचनाद्ब्राह्मणवचनाच्च गर्गौत्तमपराशरधौम्याद्ब्रह्मसविष्ठनारदादि-
 मुनिवचनात्पूर्णं भवतु ते व्रतम् ॥२७
 एवंविधविधनेन गृहीत्वा ब्राह्मणो व्रजेत् । तदानं 'प्रेषयेत्स ब्राह्मणस्य गृहे स्वयम् ॥
 ततः पञ्च महायज्ञान्निर्वपेद्ब्रोजनादि च ॥२८
 एवं दः कुरुते भक्त्या व्रतमेतत्सकृत्यथा । तस्य संपूर्णतां याति तद्वतं यत्पुरा स्थितम् ॥२९

मैंने यथाशक्ति आप की अर्चना की है, अतः लोक-परलोक सम्बन्धी सभी कार्य सिद्धि मुझे प्रदान करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ । १७-११। कौतैय! इस प्रकार देव का सविधान क्षमा प्रार्थना करने के अनन्तर वह सब कुछ किसी विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करे । उस समय उस प्रतिगृहीता ब्राह्मण को हाथ में कुश लिए पूर्वाभिमुख और दाता को उत्तराभिमुख रहना चाहिए । उपवास पूर्वक प्रदान करते समय इस भाँति की प्रार्थना करनी चाहिए कि—द्विज! भगवान्! इस व्रत का अनुष्ठान पहले मैंने आरम्भ किया किन्तु सुसम्पन्न होकर खण्डित ही रह गया है अतः मेरी प्रार्थना है—इस व्रत द्वारा उस खण्डित व्रत को सुसम्पूर्ण करने की कृपा करें । ग्रहण करते समय ब्राह्मण को भी इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—‘तुम्हारे इस शारीरिक व्रत द्वारा वाणी और मन की पूर्ति समेत इस सम्पूर्ण नामक व्रतानुष्ठान द्वारा आप का मनोरथ पूरा हो । ब्राह्मणों के भावणों का देवतागण इसलिए सदैव अनुमोदन करते हैं कि ब्राह्मणों के वचन कभी अन्यथा नहीं होते । महात्मा ब्राह्मणों ने ही समुद्र और सहस्र नेत्र वाले को इन्द्र पद पर प्रतिष्ठित किया है । ब्राह्मणों के वचनों द्वारा ब्रह्म हृत्या दोष विनष्ट होता है एवं पूरे अश्वमेध मेर फल की प्राप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं । व्यास, ब्राह्मण, वाल्मीकि, गौतम, पराशर, धौम्य, अंगिरस, वशिष्ठ नारद आदि मुनियों के वचन से तुम्हारा व्रत पूर्ण हो । इस विधान से ब्राह्मण उसे स्वीकार कर अपने घर को प्रस्थान करे और (यजमान) स्वयं उस दान की सभी वस्तुओं को ब्राह्मण के घर भिजवा दे । २०-२१। पञ्च महायज्ञ और भोजन आदि कार्य सुसम्पन्न करे । इस प्रकार भक्ति पूर्वक जो एक बार भी इस व्रत को सुसम्पन्न करता है, व्रत देव के प्रसन्न होने पर उसका पहले का

१. प्रापयेत् ।

खण्डं सम्पूर्णतां याति प्रसन्ने व्रतदैवते । सम्पूर्णं च ततः हृत्वा सम्पूर्णाङ्गो भवेद्व्रती ॥३०
 भोगी भव्यो लसत्कीर्तिः स्वसम्पूर्णमनोरथः । स्थित्वा वर्षशतं मर्त्यं ततः स्वर्गेभ्यरो भवेत् ॥३१
 यथेष्टुचेष्टाचारी च ब्रह्मविभिष्वन्द्रपूजितः । स्वर्गलोके चिरं स्थित्वा पुनर्मोक्षमवाप्नुयात् ॥३२
 प्रायश्चित्तमिति प्रोक्तं पुरा गर्णेण मे प्रभोः । गोकुले गोकुलाकीर्णं मया बाल्येऽप्युपोषितम् ॥३३
 एवं त्वमपि कौतैय चर सम्पूर्णकं व्रतम् ॥३४

भग्नानि यानि मदमोहवराद्गृहीत्वा जन्मान्तरेष्वपि नरेण समत्सरेण ।
 सम्पूर्णपूजनपरस्य पुरो भवन्ति सर्दव्रतानि परिपूर्णफलप्रदानि ॥३५
 इति श्रीभृतिष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंदादे
 सम्पूर्णव्रतवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः । ११०

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

कामदानवेश्याव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

वर्णश्रिमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः । पण्यस्त्रीणां समाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥१
 का ह्यासां देवता कृष्ण किं व्रतं किमुपोषितम् । केन धर्मेण चैवेताःस्वर्गमाप्स्यन्त्यनुत्तमम् ॥२

खण्डित व्रत सुसम्पूर्ण हो जाता है । इस सम्पूर्ण व्रत को सुसम्पन्न करने पर व्रत करने वाले का समस्त अंग पूरा हो जाता है और वह भव्य भोगी, स्वाति प्राप्त कीर्तिमान तथा पूर्ण मनोरथ होता है । इस मर्त्य लोक में सौ वर्ष तक सुखोपभोग करने के उपरान्त स्वर्ग लोक में अमर पद प्राप्त कर ब्रह्म, विष्णु एवं इन्द्र द्वारा सुसम्मानित होकर यथेच्छ विचरण करता है । इस भाँति स्वर्ग लोक में चिर स्थायी रहकर पुनः मोक्ष की प्राप्ति करता है । प्रभो! इस प्रायश्चित्त को सर्वप्रथम गर्ग ने मुझे बताया और वहाँ गोकुल में गोकुल निवासियों के बीच रहते हुए मैंने अपने वाल्यकाल में इसे सुसम्पन्न भी किया था । कौतैय! इसलिए तुम भी इस सम्पूर्ण व्रत को अवश्य सुसम्पन्न करो । जन्मान्तर में भी मत्सरता पूर्व मनुष्यों के व्रतानुष्ठान, जो सम्पूर्ण नामक व्रत-पूजन द्वारा सुसम्पूर्ण होते हैं और उसके प्रभाव से सभी व्रत परिपूर्ण फल प्रदान करते हैं । २९-३५।

श्रीभृतिष्ये महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
 सम्पूर्ण व्रत वर्णन नामक एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त । ११०।

अध्याय १११ कामदानवेश्याव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! वर्णश्रम की उत्पत्ति तो मैंने पुराणों में सुन लिया । अब वेश्याओं का आचरण धर्म सविधान जानना चाहता हूँ । उनके दैवत कौन हैं, व्रत क्या है और उपवास किस भाँति करना चाहिए तथा किस धर्म द्वारा उन्हें परमोत्तम स्वर्ग की प्राप्ति होती है । १-२

श्रीकृष्ण उच्चाच

मम पल्लीसहन्नाणि सन्ति पाण्डव घोडश । रूपैदार्यगुणोपेता मन्मथायतनः शुभाः ॥३
ताभिर्वसंतसमये कोकिलालिकुलाकुले । पुष्टितोपवनोत्फुलकह्नारसरसस्तटे ॥
निर्भरापानगोष्ठीषु प्रसक्ताभिरलंकृते ॥४

कुरञ्जनयनः श्रीमान्मालतीकृतशेखरः । गच्छन्तमीप मार्गेण सत्त्वः परपुरञ्जयः ॥५
साक्षात्कन्दर्परूपेण सर्वाभिरण्मूषितः । अनञ्जशरतपत्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः ॥६
प्रवृद्धो मन्मथस्तासां सर्वाञ्जकोभदायकः । निरीक्ष्य तमहं सर्वं विकारं ज्ञानचक्षुषा ॥७
अशपं रुषितः सर्वा हरिस्यन्तीह इस्यवः । नयि स्वर्गमनुप्राप्ते भवतीः काममौहिताः ॥८
एतद्वाक्यमुपश्रुत्य बाष्यर्थाकुलेक्षणाः । मामूर्द्धद गोविन्द कथमेतद्विष्यति ॥९
भर्तारं जगताशीशं भवंतमपराजितम् । दिव्यानुभावां च पुरीं रत्नवन्ति गृहाणि च ॥१०
द्वारिकावासिनः सर्वान्देनरूपान्कुमारकान् । भगवन्सर्वलोकस्य इथं भोग्या भवामहे ॥११
दासभावमनुप्राप्त्य शशिष्वामः कथं पुनः । को धर्मः क समाचारः कथं वृत्तिर्भविष्यति ॥१२
तथा लालप्यमानास्ता बाष्पपर्याकुलेक्षणाः । मया प्रोक्ता युवत्यस्ताः सन्तापस्त्यज्यतामयम् ॥१३
जलक्रीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे । भवतीनां सगर्वाणां नारदोऽन्याशमागतः ॥१४
हुताशनसुताः सर्वा भवत्योऽप्सरसः पुरा । अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्ठः स योगवित् ॥१५

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव! मेरी सोलह सहस्र स्त्रियाँ हैं, जो रूप सौन्दर्य एवं उदार गुणों से युक्त होने के नाते कामदेव का शुभ मन्दिर ही कही जाती है। एक बार वसंत क्रतु के समय एक सरोवर के टट पर, जो कोकिल और भौंकों के समूह से सुशोभित, खिले हुए उपवन एवं खिली हुई कलियों से सुसज्जित था, आसव-न्पान में आसक्त उन युन्दरियों के समीप वाले मार्ग से श्रीमान् साम्ब जा रहे थे, जो मृग में समान नेत्र, मालती पुष्पों से मुगुम्फितशिर एवं शत्रुओं के विजेता थे। निखिल आभूषणों से विभूषित होने के नाते साक्षात् कामदेव की भाँति उन्हें देखकर मेरी स्त्रियाँ काम-पीड़ित होकर मुग्ध दृष्टि से देखने लगीं। अत्यन्त कामासक्त होने पर उन स्त्रियों के समस्त अंगों में पीड़ा होने लगीं। उस समय मैंने अपने ज्ञानचक्षु से उनके मनकी विकृति भावनाओं का देखकर आवेश में उन्हें शाप दे दिया—‘दस्युगण तुम लोगों का अपहरण करेंगे और मेरे स्वर्ग चले जाने पर तुम्हें काम पीड़ा होगी।’ इसे सुन कर आँखों में आँसू भरे ये स्त्रियाँ मुझसे कहने लगीं—गोविन्द! यह कैसे सम्भव होगा! भगवान् जगन्नियन्ता एवं अजेय आप को पतिरूप में प्राप्त कर इस प्रकार की दिव्यपुरी, रत्नों से भरे घर और देव रूप द्वारका वासी समस्त कुमारों के रहते क्या हमें सभी लोगों की उपभोग्या होना ही पड़ेगा! अस्तु दासी होने पर हमारे धर्म एवं आचार कैसे होंगे और वृत्ति (जीविका) क्या होगी! ३-१२। आँखों में आँसू भरे उन स्त्रियों के ऐसा कहने पर मैंने उनसे कहा—युवतिगण! अब सन्ताप करना छोड़ दो! क्योंकि पहले समय में एक बार मानसरोवर में जल- विहार करते समय तुम लोगों के समीप नारद क्रृषि आ गये थे। उस समय अग्नि के यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न होकर तुम सभी अप्सराएँ थीं। अभिमान वश विना प्रणाम किये ही तुम लोगों ने उन योगवेत्ता

कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश । तस्माद्वत्प्रदानं च शापदानमभूत्पुरा ॥१६
 शश्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः । सुवर्णोऽस्करोत्तर्गद्वादश्यां शुक्लपक्षतः ॥
 भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि ॥१७
 न कृते यत्प्रणामो मे रूपसौभाग्यमत्सरात् । परं षट्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वो भविष्यति ॥
 चौरैरप्हृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यत् ॥१८
 एवं नारदशापेन मच्छपेन च सांप्रतम् । न कार्यः संभ्रमः कश्चिद्दासीत्वं वो भविष्यति ॥१९
 इदानीरपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुध्यं वराननाः । पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु शतशः पुनः ॥२०
 तेषां नारीसहस्राणि शतशोऽथ सहस्रशः । परिज्ञीतानि यानि स्युर्बलाद्भुक्तानि यानि वै ॥२१
 तानि सर्वाणि देवेशः प्रोत्ताच वदतां दरः । वेशदाधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे ॥२२
 भक्तिस्तयो वरारोहास्तदा देवकुलेषु च । राजानः स्वामिनः स्तुत्या ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ॥२३
 तेषां गृहेषु तिष्ठध्वं सूतकं चापि तत्सम्म् । भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तिः ॥२४
 नचैकस्मिन्नरतिः कार्यं पुरुषे धन्त्रिजिते । अनुमान्यः प्रसाद्यश्च शुल्कदो देवबत्सदा ॥२५
 सुरूपो वा विरूपो वा द्रव्यं तत्र प्रयोजनम् । न तद्व्यतिक्रमः कार्यो ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ॥
 न चापि मन्त्रपाभिक्ष भाव्यं कौटिल्यबुद्धिभिः ॥२६
 यः कश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यति वः सदा । निश्छद्वैवापहर्यं तत्सर्वं दंभवर्जितम् ॥२७
 व्यभिदारो न कर्तव्यःस्वामिना सह कर्हिचित् । रूपयौवनदर्पणं धनलोभेन वा पुनः ॥२८

से पूँछा—हम लोगों को नारायण पति रूप में कैसे प्राप्त होंगे, इसका उपदेश दीजिये! उन्होंने व्रत का उपदेश कर उसी समय शाप भी प्रदान किया था । उन्होंने कहा—वसन्त क्रतु के दोनों मासों में शुक्ल द्वादशी के दिन सुवर्ण-साधन सम्पन्न दो शश्याओं के दान करने पर दूसरे जन्म में नारायण पति अवश्य प्राप्त होंगे । अपने रूप सौन्दर्य और सौभाग्य के मद से तुम लोगों ने विना ब्रणाम किये ही मुझसे पूँछा है, इसलिए चोरों द्वारा अपहरण होने पर तुम्हें वेश्या होना पड़ेगा । इस प्रकार पहले के नारद शाप और इस समय मेरे शाप वश तुम्हें दासी होना ही पड़ेगा । अतः भ्रम करना व्यर्थ है । अब इसके अतिरिक्त मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनो! वरानने! पहले देवासुर संग्राम में सैकड़ों दानवों का वध हुआ था । उनकी सैकड़ों एवं सहस्रों स्त्रियों को, जिनमें विवाहिता तथा बल प्रयोग द्वारा उपभोग की हुई थीं, देवेश ने कहा था—इस समय राज मन्दिरों में रहकर तुम सब वेश्या धर्म अपनाओं । वरारोहे! उन देव घरों में रहकर राज्य, उनके स्वामी और ब्राह्मण विद्वानों के गुणगान करो । उनके घरों में रहने से तुम्हें उनके समान ही सूतक होगा और यथा शक्ति सौभाग्य की प्रतिभी होगी । वहाँ रह कर निर्धन पुरुषों से रति क्रीडा कभी न करना और शुल्क देने वाले पुरुषों का सदैव देवों की भाँति सम्मान पूर्वक प्रसन्न करना, चाहे वह रूपवान् हो, अथवा कुरुप, तुम्हें तो केवल द्रव्य से प्रयोजन है । इसमें त्रिक्रम (उलटफेर) न करना, करने पर ब्रह्म हत्या का दोष भागी होना पड़ेगा । मद्य पान कर कभी कुटिल व्यवहार न करना । तुम लोगों के घर जो कोई शुल्क लिये सदैव आता रहे, दम्भ छोड़कर निष्कपट भाव से उसके रूपयों आदि के लेने की चेष्टा करना । १३-२७। उस आगन्तुक स्वामी के साथ कभी भी किसी प्रकार का अनाचारन करना । रूप सौन्दर्य

दासी भूत्वा च या काचिद्व्यभिचारं करेति च । पतिना^१ सह पापिष्ठा पापिष्ठां यात्यधोगतिम् ॥२९
 देवतानां पितृणां च पुण्ड्रहिं समुपस्थिते । गोभूहिरण्यधान्यानि प्रदेयानि च शक्तिः ॥३०
 ब्राह्मणेभ्यो वरारोहाः कार्याणि वचनानि च । यच्चाप्यन्यद्वतं सम्यगुपदेक्ष्यामि तत्त्वतः ॥३१
 अविचारेण सर्वभिरनुष्ठेयं च तत्पुतः । संसारोत्तराणायज्ञमेतद्विदो विदुः ॥३२
 यदा सूर्यदिने प्राप्ते पुण्यो वा! सपुत्रवैष्णवान् सन्यज्ञानारी समाचरेत् ॥३३
 तदा पञ्चशरस्यापि संनिधातृत्वमेष्यति । अर्चयेत्पुण्डरीकाक्षजननङ्गस्यापि कीर्तनम् ॥३४
 कामाय पादौ संपूज्य जंघे वै मोहकारिणे ! मेदैङ्गं कन्दर्पनिधये कटिं प्रीतियुजे नमः ॥३५
 नाभिं सौख्यसमुद्राय बामनाय तथोदरम् : हृदयं हृदयेशाद् स्तनावाह्नादकारिणे ॥३६
 उत्कण्ठायेति वै कंठमास्यमानन्दजाय च । बामासां पुष्पचापाय पुष्पबाणाय दक्षिणम् ॥३७
 नमोऽनन्ताय वै मौलिं विलोलायेति च ध्वजम् । सर्वात्मने शिरस्तद्वैदेवस्य पूजयेत् ॥३८
 नमः श्रीपतये तार्क्ष्यध्वजांकुशधराय च । गदिने पीतवस्त्राय शंखिने चक्रिणे नमः !!
 नमो नारायणायेति कामदेवः त्मने नमः ॥३९
 नमः शांतैर्वै नमः प्रीतैर्वै नमो रत्यै नमः शिष्ये । नमः पुष्टजै नमस्तुष्टचै नमः सर्वार्थदाय च !!४०
 एवं संपूज्य गोविन्दमनंगात्मकमीश्वरम् । गंधैर्मालैस्तथा धूपैर्नैवैश्चैव भास्मिनी ॥४१

और युवावस्था के मद में अथवा धनवान् होने के नाते जो कोई वेश्या उस पति के साथ अनाचार करती है, उस पापिनी को अत्यन्त भयावह अधोगति होती है । देवता-पितरों के पुण्य दिन उपस्थित होने पर गौ, भूमि, सुर्वण और धान्य आदि के दान यथाशक्ति ब्राह्मणों को अर्पित करते रहना और उनकी आज्ञाएँ मानना । इसके अतिरिक्त भी जिस व्रत के रहस्य को उपदेश कर्हणा सभी लोग विचारे ही उसे अवश्य सुसम्पन्न करना, क्योंकि संसार से पार होने के लिए वैदिक विद्वानों ने उसे ही समर्य बताया है । रविवार के दिन पुण्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र के उपस्थित होने पर नारी को समस्त औषधि मिश्रित खान करके अनङ्ग (काम) रूपात्मक भगवान् पुण्डरीकाक्ष की सविधि अर्चना करे—‘काम को नमस्कार है’ से उनके चरण की पूजा करके ‘मोहकारी को नमस्कार है’ से जंघाओं, ‘कन्दर्प निधि को नमस्कार है’ से लिङ्ग। ‘प्रीतिभाजन को नमस्कार है’, से कटि, सुखसागर को नमस्कार है’ से नाभि, ‘वामन को नमस्कार है’ से उदर, ‘हृदय-शायी को नमस्कार है’ से हृदय, ‘हर्षप्रदाता को नमस्कार है’ से स्तन। ‘उत्कण्ठ को नमस्कार है’ से कण्ठ, ‘आनन्द जन्मा को नमस्कार है’, से मुख, ‘पुष्पधन्वा को नमस्कार है’ से दाहिना कंधा, ‘अनन्त को नमस्कार है’ से मस्तक, ‘विलोल को नमस्कार है’ से ध्वजा, ‘सर्वात्मा को नमस्कार है’, से उन देवाधीश के शिर की अर्चना करनी चाहिए । गरुडध्वज एवं अंकुश धारी पति को नमस्कार है, गदा, पीताम्बर, शंख और चक्रधारी को नमस्कार है, नारायण को नमस्कार है, काम-देवात्मा को नमस्कार है, शान्ति को नमस्कार है, प्रीति मो नमस्कार है, रति को नमस्कार है, श्री को नमस्कार है, पुष्टि को नमस्कार है, तुष्टि को नमस्कार तथा सर्वार्थद को नमस्कार है ॥४८-४९। इस प्रकार माला, धूप, एवं नैवेद्य आदि से अर्चा करके उस कामिनी को एक ऐसे ब्राह्मण की गंध-प्रष्पादि द्वारा अर्चना करनी चाहिए, जो

१. स्वामिना ।

अत्र चाहुय धर्मज्ञं ब्राह्मणं वेदपारगम् । अव्यञ्जनव्यवं पूज्यं गन्धपुष्पादिभिस्तथा ॥४२
 शालेयतण्डुलप्रस्थं धृतपत्रेण संयुतम् । तस्मै विप्राय सा दद्यान्माधवः प्रीयतामिति ॥४३
 यथेष्टाहारभुक्तं च तमेव द्विजसत्तमम् । रत्यर्थं कामदेवोऽयमिति चित्तेऽवधार्ये च ॥४४
 यद्यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्त्वार्थाद्विलासिनी । तर्वभावेन चात्मानमर्पयेत्स्मितभाषिणो ॥४५
 एवमादित्यवरेण सदा तद्वत्तमाचरेत् । तण्डुलप्रस्थदानं च यावन्मासांस्तु द्वादशं ॥४६
 ततस्त्रयोदशे मांसं सम्प्राप्ते तस्य भाभिनी । विप्रस्योपसकरैर्युक्तां शश्यां दद्याद्विलक्षणाम् ॥४७
 सोपधानकविश्रामां स्वास्तरावरणां शुभाम् । दीपिकोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुताम् ॥४८
 सप्तलीकमलंकृत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः । सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकैर्धूपं माल्यानुलेपनैः ॥४९
 कामदेवं स्पत्नीकं गुड्कुम्भोपरि स्थितम् । ताप्रपात्रासनगतं हैमनेत्रपटावृतम् ॥५०
 सकांस्थ्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितम् । दद्यादेतैन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्त्विनीम् ॥५१
 यथांतरं न पश्यति कामकेशदयोः सदा । तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विष्णो सदा मन ॥५२
 यथा न कामिनीदेहात्प्रयाति तत्र केशव । तथापि मन देवेश शरीरस्थं पतिं कुरु ॥
 तथैव काञ्चनं देवं प्रति गृह्णन्द्विजोत्तमः ॥५३
 “क इदं कोऽदात्कस्मा अदात्कामः कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता काम समुद्रमाविशमैतत्त”
 इति वैदिकमन्त्रमीरयेत् । कोऽदात्विति पठेन्मन्त्रं ध्यायंश्चेतसि माधवम् ॥
 ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसृजेद्विजपुञ्जवम् । शश्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ॥५४

धर्म मर्मज्ञ, वेदनिष्ठात विद्वान् हो और उसकी शरीर के अङ्ग यथोचित हों । पश्चात् धृतपूर्ण पात्र समेत एक सेर साठी चावल के दान उन्हें अर्पित करते समय ‘माधव प्रसन्न हों’ कहे । ब्राह्मण के यद्येच्छ एवं प्रिय आहार करने पर विलासिनी को उसके पति ‘यह कामदेव है’ अपने मन में ऐसी भावना रख कर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण के सभी इच्छाओं की पूर्ति करनी चाहिए । इस प्रकार प्रत्येक रविवार के दिन एक सेर चावल के दान समेत पूरे वर्ष तक उस व्रत को सुसम्पन्न करे । पश्चात् तेरहवें मास साधन सम्पन्न एवं विलक्षण एक शश्या का दान करे, जिसमें सुन्दर तकिया, गदा और मनोरम चादर से भूषित हो और दीपक, उपानह, छाता, खड़ाऊँ आदि युक्त हो । पत्नी समेत उन कामरूप भगवान् को सुवर्ण सूत्र यज्ञोपवीत, अंगूठी, सूक्ष्म वस्त्र और बलटा (कंकड़ भृष्ण) भूषित एवं धूप माला से पूजित कर ब्राह्मण को अर्पित करें, जो पल्ली समेत गोलाकार कलश पर ताम्र में स्थित, सुवर्ण के नेत्र और वस्त्र से आच्छादन तथा कांस पात्र और ऊख दण्ड युक्त है । उनके साथ एक धेनु गौ का भी दान होना चाहिए । ४१-५१। पश्चात् इस भाँति प्रार्थना करे—विष्णो! काम और केशव में मैं कभी भी किसी प्रकार का भी अन्तर (भेदभाव) न देख सकूँ तथा मेरे सभी मनोरथ सदैव सफल होते रहे । देवेश! जिस प्रकार आप के देह से कामिनी (लक्ष्मी) पृथक् नहीं होती है, उसी भाँति पति को मेरे शरीरस्थ करने की कृपा करें । उस सुवर्ण प्रतिमा का ग्रहण करते हुए ब्राह्मण को भी ‘क इदं को’ दादिति मंत्र का उच्चारण करना चाहिए । तदुपरात्त माधव का ध्यान करते हुए प्रदक्षिणा करके ब्राह्मण को विदा करे और शश्या आदि सभी वस्तुओं को ब्राह्मण के घर

ततःप्रभृति योऽन्योपि रत्नद्यं गृहमागतः । स सम्यन्सूर्यवारेण समं पूज्ये यथेच्छया ॥५५
 एवमेकं द्विं शांतं पुराणज्ञं^१ विचक्षणम् । तमर्चयेत् च सदा अपरं वा तदाज्ञया ॥५६
 न प्राप्नोति तदा विघ्नं गर्भसूतकं व्वचित् । दैवं वा मानुषं वा स्यादुपरागेण वा ततः ॥५७
 साधारनब्यपशुवद्यथाशक्त्या^२ समापयेत् । एतद्वः कथितं सर्वं वेश्याधर्मसेषतः ॥५८
 पुरुहूतेन यत्प्रोक्तं दानवीषु ततो मदा । तदिदं च व्रतं सर्वं भवतीषु प्रकाशितम् ॥५९
 सर्वपापप्रशमनमन्तंफलदायकम् । कल्याणिनीनां कथितं कुरुध्वं तद्रानन्नाः ॥६०
 एतत्वार्थं महा पूर्वं गोपीनां तु प्रकाशितम् । पुराणं धर्मसर्वस्वं देश्याज्ञनसुखप्रदम् ॥६१

करोति याशेषमखण्डमेतत्कल्याणिनी माधवलोकसंस्था ।

सा पूजिता देवगणरशेषरःनन्दकुरुपैति विज्ञोः ॥६२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णद्युधिष्ठिरसंवादे

कामदानवेश्यावतवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

वृन्ताकव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातो वृत्ताकविधिं व्याख्यास्यामः । संवत्सर च षष्ठ्यासांस्त्रीन्मासान्वा न भक्षयेत् ॥

पहुँचाये ! पश्चात् उस दिन से जो कोई अन्य भी रति निमित्त आये, पूर्व की भाँति उसकी भी यथेच्छ पूजा करे । एक ऐसे शांत पुराण वेत्ता एवं विचक्षण वाह्यण की सदैव अर्चना करती रहे और अन्य की उसकी आज्ञा से ही करे । उससे उसे कर्म और सूतक जनित दैव-मानुष का अशौच और ग्रहण जनित अशौच नहीं होता है । क्योंकि वह एक स्थान पूजा की भाँति रहती अतः उसे (आगन्तुक का) यशाशक्ति पूजन करना चाहिए । इस प्रकार आप लोगों ने बताया है, जिस प्रकार पुरुहूत (इन्द्र) ने दानवीयों को बताया था । वरानने ! समस्त पापों के नाशक और अनन्त फल प्रदायक इस वेश्या धर्म को अपनाओं, जो कल्याण रूप स्त्रियों को बताया गया है । पार्थ ! मैंने इस वेश्या जनों को सुख देने वाले पुराने धर्म सर्वस्व को गोपियों को पहले से बताया था । इस प्रकार इस अशेष व्रत को अखण्ड सुसम्पन्न करने वाली वह कल्याणिनी समस्त देव वृन्दों से पूजित होकर विष्णु का प्रिय लोक प्राप्त करती है । ५२-६२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णद्युधिष्ठिर के सम्बाद में
 कामदानवेश्या व्रत वर्णन नामक एक सौ ग्रन्थवाँ अध्याय समाप्त । १११।

अध्याय ११२

वृन्ताकव्रतविधि का वर्णन

श्री कृष्ण बोले—मैं तुम्हें वृन्ताक विधि की व्याख्या बता रहा हूँ—जिसमें पूरा वर्ष, छः मास

अथ भरण्णां मधायां वा एकरत्रोपवासं कृत्वा स्थिण्डले देवानाहृय गन्धधूपपुष्पनैवेद्यदीपादिना पूजयेत् । दर्भयार्णिगन्धोदकेनावाहयेत् । यमराजानस्त्वाहयामि । कालमावाहयामि । नीलमावाहयामि । चित्रगुप्तमावाहयामि । वैवस्वतमावाहयामि । मृत्युमावाहयामि । परमेष्ठिनमावाहयामीति । ततोऽग्निमुपसमाधाय तिलाञ्जे जुहुयात् । यमराजाय स्वाहा । कालाय स्वाहा । नीलाय स्वाहा । चित्रगुप्ताय स्वाहा । वैवस्वताय स्वाहा । मृत्यवे स्वाहा । परमेष्ठिने स्वाहेति । अद्विर्मूर्धेत्याहुतीस्त्वष्टशतं हुत्वा स्विष्टकृतिं कृत्वा प्रायश्चित्तं हुत्वा ब्राह्मणः स्वयमेव करोति । इतरेषामाचार्यः । अथ सौदर्णं वृत्ताकं ब्राह्मणाण्य निवेदयेत् । कृष्णवृथभं गां च दद्यात् । कर्णवेष्टांगुलीयके छड्डब्रोपानहौ कृष्णयुगं कृष्णकन्द्वलं च दद्यात् । ब्राह्मणान्भोजयित्वा आशिषो बाचयेत् । पौड़रीकाश्मेष्टफलमवाप्नोति । सप्त कोटिसहस्राणि नाकपृष्टे भहीयते । सप्तजन्मांतरं यावद्यमलोकं न पश्यतीत्याहु भगवान्बौद्धायनः । वृत्ताकमप्रतिहतान्तरहेमसिद्धं दद्याद्विजाय धृतक्रसमन्वितं यः । कृत्वा ब्रतं वत्सरमासमेकं यान्यं न पश्यति पुरं पुरुषः कदाचित् ॥१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरर्पणि श्रीकृष्णद्विधिष्ठिरसंवदे
दृत्ताकव्रतविधिवर्णनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः । ११२

अथवा तीन मास तक भोजन न करना चाहिए । भरणी या मधा नक्षत्र के दिन उपवास रहकर भूमि की वेदी में देवों का आवाहन पूर्वक गंध, धूप, पुष्प, नैवेद्य एवं दीपक आदि द्वारा अर्चना करके—हाथ में कुश लिए यमराज का आवाहन कर रहा हूँ, काल का आवाहन कर रहा हूँ, नील का आवाहन कर रहा हूँ, वैवस्वत का आवाहन कर रहा हूँ, मृत्यु का आवाहन कर रहा हूँ और परमेष्ठी का आवाहन कर रहा हूँ । इरा प्रकार आवाहन करके अग्नि पूजन पूर्वक तिल-धृत द्वारा हवन करे—यमराज, काल, नील, चित्रगुप्त, वैवस्वत, मृत्यु और परमेष्ठी के नामों को क्रमशः चतुर्थन्त उच्चारण करते हुए अन्त में स्वाहा पद कह कर आहुति डालता रहे । ‘अग्निमूर्ध’ मंत्र से एक सौ आठ आहुति प्रदान कर पश्चात् स्विष्टकृत और प्रायश्चित्त हवन करे ये सभी कार्य ब्राह्मण को स्वधर्म और अन्य जाति को आचार्य द्वारा सुसम्पन्न कराना चाहिए । अनन्तर वह वृत्ताक की सुवर्ण-प्रतिमा कृष्ण डैल और गौ समेत ब्राह्मण को अर्पित करे । कुण्डल, अंगूठी, छत्र, उपानह, कृष्णयुग और काले कम्बल का भी दान उस अवसर पर करना चाहिए । उपरांत ब्राह्मण भोजन कराकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करे । इस प्रकार उसे सुसम्पन्न करने पर पौड़रीक अश्व-मेध की फल प्राप्त होता है । सात करोड़ सहस्र वर्ष स्वर्ग में सुसम्मानित रहकर अनन्तर सात जन्म तक उसे यमलोक नहीं जाना पड़ता ऐसा भगवान् बौद्धायन ने कहा है । इस प्रकार सुवर्ण, धृत, तक्र (मट्टा) के दान समेत इस अप्रतिहत शक्ति वाले वृत्ताक व्रत को एक वर्ष अथवा एक मास ही सुसम्पन्न करने वाले पुरुष को यमपुरी नहीं जाना पड़ता है । १

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरर्पण में श्रीकृष्णद्विधिष्ठिर के सम्बाद में
दृत्ताकव्रत विधान वर्णन नामक एक सौ वारहवाँ अध्याय समाप्त । ११२।

अथ ऋयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

ग्रहनक्षत्रव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रदक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमम् । येन लक्ष्मीनिर्वृत्तिस्तु पुष्टिशैवोपजायते ॥१
सर्वे ग्रहाः सदा सौम्या जायन्ते येन पाण्डव । आदित्यवारे हस्तेन पूर्वं गृह्ण विचक्षणः ॥२
नक्तोक्तविधिना सर्वं कुर्यात्पूजां तथा रवे । प्रत्यक्षं सप्त नक्तानि कृत्वा भक्तिपरो नरः ॥३
ततस्तु सप्तमे प्राप्ते कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् । भारकरं सर्वसौचर्णं कृत्वा यत्नेन मानवः ॥४
ताम्रपाढे स्थापित्वा रक्तपूष्यैः प्रपूज्य च । रक्तवस्त्रयुगच्छब्दं छत्रोपानद्युगान्वितम् ॥५
घृतेन स्नपनं कृत्वा 'लङ्घुकान्विनिवेद्य च । मंत्रेणानेन विदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥६
आदिदेव नमस्तुभ्यं सप्तसप्ते दिवाकर । त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात्संसारसागरतः ॥७
कृतेनानेन राजेन्द्र भवेदारोग्यमुन्नतम् । द्रव्यसंपत्तुनप्राप्तिरिति पौराणिका विदुः ॥८
अविसंवादिनी चेयं शान्तिपुष्टिप्रदा नृणाम् । तद्वच्चित्रासु संगृह्य सोमवारं विचक्षणः ॥९
सप्तमे च ततः प्राप्ते दत्त्वा ब्राह्मणभोजनम् । कांस्यभाजनसंस्थं वा राजतं राजतेऽथ वा ॥१०

अध्याय ११३

ग्रहनक्षत्रव्रतवर्णन

श्री कृष्ण बोले—पाण्डव! तुम्हें वह परमोत्तम रहस्य बता रहा हूँ, जिसके सुसम्पन्न करने पर अत्यन्त लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक पुष्टि एवं समस्त ग्रह सौदैव सौम्य बने रहते हैं । विद्वान् को चाहिए कि—रविवार के दिन हस्त नक्षत्र उपस्थित होने पर पूर्वोक्त नक्त विधान द्वारा सूर्य की अर्चना करें । और उसी प्रकार भक्ति पूर्वक सात नक्त व्रत रहने के उपरांत उस अन्तिम वाले सातवें व्रतानुष्ठान में किसी विद्वान् ब्राह्मण द्वारा कथा पारायण करायें—सर्वप्रथम सूर्य की सुर्वण प्रतिमा बनवा कर ताँबे के पात्र में उसके स्थापन पूर्वक समेत धृत से स्नान और भोजनार्थ लड्डू अर्पित करें । पश्चात् इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वह सब कुछ उसी ब्राह्मण को अर्पित कर दे । १-६। सात घोड़े पर चलने वाले आदि देव दिवाकर को नमस्कार है । मुझे इस संसार सागर से पार करने की कृपा करें । राजेन्द्र! इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उत्तम आरोग्य, द्रव्य सम्पत्ति, और पत्र आदि की प्राप्ति होती है ऐसा पुराणज्ञों का कहना है । यह मनुष्यों को अविकल शांति और पुष्टि प्रदान करती है । इसी भाँति सोमवार के दिन चित्रा नक्षत्र के उपस्थित होने पर सोमराज की अर्चना करे और सातवें व्रत के समय ब्राह्मण भोजन तथा सोमराज की रजत प्रतिमा का रजत पात्र अथवा काँसे के पात्र में स्थापित एवं श्वेत वस्त्र से आच्छन्न करके

१. तण्डुलान् ।

पात्रे कृत्वा सोमराजं भेतवस्त्रावगुठितम् । पादुकोपानहच्छत्रभाजनसंयुतम् ॥११
 दध्यन्नशिखरं दत्त्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् । मंत्रेणानेन राजेन्द्र तं शृणुष्व 'वदामि ते ॥१२
 श्रीमहादेवजावल्लीपुष्पगोक्षीरपांडुर । सोम सौम्यो भवास्माकं सर्वदा हुतमोत्तम् ॥१३
 एवं कृते महाराज सोमस्तुष्टिप्रदो भवेत् । भवन्ति तुष्टेऽन्तिसुते सर्वे सानुप्रहाः प्रहाः ॥१४
 स्वात्यामङ्गारकं गृह्य शपयेन्नक्तभोजनः । राप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते स्थापितं ताम्रभाजने ॥१५
 रक्षस्त्रयुगच्छत्रं कुंकुमेनानुलेपनम् । नैदेव्यं दुंतकारं च पूज्य धूपाक्षतादिभिः ॥१६
 मंत्रेणानेन तं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । दुजन्मत्रभवोऽपि त्वं मंगलः पठयसे बुधैः ॥
 अमंगलं निहत्याशु सर्वदा यच्छु मंगलम् ॥१७
 विशाखासु बुधं गृह्य सप्त नक्तान्यथा चरेत् । बुधं हेषमयं कृत्वा स्थापितं कांस्यभाजने ॥१८
 शुक्लवस्त्रयुगच्छत्रं शुक्लमाल्यानुलेपनैः । गुडैदनोपहारं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१९
 बुधः सदुद्धिजननो बोध्दः सर्वदा नृणाम् । तत्त्वावबोधं कुरु ते राजपुत्र नमोनमः ॥२०
 अनुराधास्वथाचार्यं देवानां पूज्य भक्तिः । दूर्वोत्तक्रमः गोगेन सप्त नक्तान्यथाचरेत् ॥२१
 हैमं हेममये पात्रे स्थापयित्वा वृहस्पतिम् । पीतांबरयुगच्छत्रं पीतयज्ञोपवीतिनम् ॥२२
 पादुकाच्छत्रसहितं सदंडं सकमण्डलुम् । संपूज्य पुष्पनिकरैर्दीपधूपाक्षतादिभिः ॥२३

पूजन करने के उपरांत चरणपादुका (खड़ाऊ आदि), उपानह, छत्र और भोजन पात्र के समेत दही से बने अन्न का शिखर (पर्वत) मंत्र द्वारा ब्राह्मण को अर्पित करे । राजेन्द्र! वह मंत्र मैं बता रहा हूँ, सुनो! श्री महादेव जी के द्वारा उत्त्व वल्ली'-पुष्प और गौ के क्षीर से पाण्डुर वर्ण दिखायी देने वाले सोमदेव! मेरे लिए परमोत्तम सौम्य होने की कृपा करें । महाराज! इस प्रकार उनकी अर्चना आदि करने पर सोमदेव तुष्टि प्रदान करते हैं और उन अत्रियुक्त (चन्द्र) के प्रसन्न होने सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं । १७-१४। स्वाती नक्षत्र में मंगलवार के दिन मंगल देव की अर्चना और नक्त भोजन करता रहे । पुनः सातवें व्रत के अवसर पर उनकी प्रतिमा को रक्त वस्त्र से आच्छादन कर ताँबे के पात्र में स्थापन पूर्वक कुंकुम का लेप हर्षप्रद नैवेद्य, धूप और अक्षत आदि द्वारा पूजनोपरांत मंत्रोच्चारण पूर्वक किसी बहुमुखी को अर्पित करे अनन्तर—मंगल देव! कु (पृथिवी और निदिन्त) जन्म होने पर भी आप मंगल ही कहे जाते हैं अतः समस्त अमंगल के विनाशपूर्वक मुझे सदैव मंगल प्रदान करते रहें । विशाखा नक्षत्र में बुध के दिन बुध के पूजन करे और सातवें व्रत के दिन बुध की सुवर्ण प्रतिमा काँस के पात्र में स्थापित कर शुक्ल वस्त्र से आवृत करके श्वेत पुष्प मालाओं आदि से पूजा तथा भीठा भात का उपहार ब्राह्मण को अर्पित करे । राजपुत्र! बुध देव मनुष्यों के सद् बुद्धिं और ज्ञान के प्रदाता बताये गये हैं अतः मुझे तत्त्व विशद बोध कराने की कृपा करें मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ । अनुराधा नक्षत्र में गुरुवार के दिन देवों के आचार्य वृहस्पति देव की भक्ति पूर्वक पूजा करे और इस भाँति सातवें नक्त व्रत के दिन वृहस्पति की सुवर्ण प्रतिमा सुवर्ण के पात्र में स्थापित कर पीताम्बर और पीत यज्ञोपवीत से भूषित करने के उपरांत पादुका, छत्र, दण्ड और कमण्डलु के प्रदान समेत पुष्प समूह, दीप, धूप एवं अक्षत आदि से उनकी अर्चना करे । १५-२३।

खण्डखाद्योपहारैक्ष द्विजाय प्रतिपादयेत् । धर्मशास्त्रार्थशास्त्रज्ञ ज्ञानविज्ञानपारगा ॥

अगाधबुद्धिगाम्भीर्य देवचार्य नमोऽस्तु ते ॥२४

शुकं ज्येष्ठासु संगृहा क्षायेन्नक्तभोजनैः । पूर्वोक्तक्रमयोगेन द्विजसंतर्पणेन च ॥२५

सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते सौवर्णं कारयेच्छुभ्यम् । रौप्ये वा वंशपात्रे वा स्थापयित्वा भृगोः चुतम् ॥२६

संपूज्य परया भक्त्या श्वेतदस्त्रविलेपनैः । अग्ने तस्य प्रदातव्यं पायसं घृतसंयुतम् ॥२७

दद्यादनेन मन्त्रेण ब्राह्मणाय विचक्षणः । भार्गवो भृगुपुत्रोऽसि शुक्र क्रमविशारद ॥२८

हत्वा प्रहृष्टान्वेषानापुरागोग्यदो भव । मूलेन सूयेतनयं गृहीत्वा भरतर्षभ ॥२९

तस्मिन्दिने पूजनीयं प्रहत्रितयमादरात् । शनैश्चरश्च राहुश्च केतुश्चेति क्रमात्पृष्ठ ॥३०

होमं तिलधृतैः कृपादगृहनान्ना तु मन्त्रवित् । अर्कः पलाशखदिरौ हृपामार्गोथ मिष्प्लः ॥३१

उदुम्बररशमीद्वयर्कुशाश्च समिधः क्रमात् । एकैकस्य त्वष्टशतमष्टविंशतिरेव वा ॥३२

होतव्यं मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना वा प्रायसेन वा । सप्तते त्वथ संप्राप्ते नक्तं सूर्यसुतस्य तु ॥३३

ग्रहास्त्रयोऽपि कर्तव्या राजंलौहाग्याः शुभाः । व्रतांते सर्वतश्चैतान्त्सौवर्णान्वाथ कारयेत् ॥३४

कृष्णवस्त्रयुगं दद्यादेकैकस्य क्रमात्पृष्ठ । मृगनाभ्या समालभ्य कृशरान्विनिवेद्य च ॥३५

होमावसाने सर्वं तद्ब्राह्मणायोपपादयेत् शनैश्चर नमस्तेऽस्तु नमोऽस्तु राहुदे तथा ॥३६

केतवे च नमस्तुभ्यं सर्वशांतिप्रदो भव । एवं कृते भवेद्यस्तु तन्निबोध नरेभ्वर ॥३७

यदि भौमो रविसुतो भास्करो राहुणा सह । केतुश्च मूर्धिन्द्रिं तिष्ठन्ति सर्वे पीडाकरा ग्रहाः ॥३८

पश्चात् खण्ड खाद्य का उपहार प्रदान कर ब्राह्मण को अर्पित करते हुए इस भाँति क्रमा याचना करे—देवचार्य! धर्मशास्त्र के अथवा शास्त्र के ज्ञाता और ज्ञान-विज्ञान के पारगामी एवं अगाधबुद्धि के विधान समेत शुक्र के दिन नक्त भोजन के विधान समेत शुक्र की अर्चा और पूर्व की भाँति ब्राह्मण भोजन आदि करे । सातवें व्रत के दिन शुक्र की सुवर्ण अथवा रजत प्रतिगा बाँस के पात्र में स्थापित करके भक्ति पूर्वक श्वेत वस्त्र, लेपन आदि द्वारा अर्चना करके उन्हें घृत पूर्ण पायस (खीर) मंजोच्चारण पूर्वक अर्पित करे—देव! आप भार्गव, भृगु-पुत्र एवं शुक्र क्रम के विशारद कहे जाते हैं अतः ग्रह जनित दोषों के उपशमन पूर्वक मुझे आयु और आरोग्य प्रदान करने की कृपा करें । भरतर्षभ! नृप! नक्षत्र में सूर्य-पुत्र शनि राहु और केतु की शनि के दिन अर्चना सादर सम्पन्न कर ग्रहों के नाम मंत्रो द्वारा तिल और घृत का हवन करे । अर्क (मदार), पलाश, खदिर (खैर), चिरचिरा, पीपल, गूलर, सभी दूर्वा तथा कुश की एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुति धी मधु, या दही, अथवा खीर के साथ प्रदान करना चाहिए । नृप! इस भाँति नक्त व्रत करते हुए सातवें व्रत के दिन तीनों ग्रहों की लौह प्रतिमा, जो ऊपर से सुवर्ण भूषित हों, कृष्ण वस्त्र, कस्तूरी से सुसज्जित और पूजित होने के अनन्तर कृशरान्त (खिचड़ी) अर्पित करे तथा हवन की समाप्ति में ब्राह्मण भोजन और वह सब ब्राह्मण को अर्पित करक्षमा प्रार्थना करे—शनैश्चरदेव! आपको नमस्कार है, राहुदेव! आप को नमस्कार है । २४-३६। एवं केतु को मैं नमस्कार कर रहा हूँ । मुझे सम्पूर्ण शांति प्रदान करने की कृपा करें । नरेश्वर! इस भाँति उस व्रत को सुसम्पन्न करने पर जो फल प्राप्त होते हैं, मैं बता रहा हूँ, मुनो! यदि भौम, शनि, सूर्य, राहु और केतु शिर स्थान में स्थित हों, तो सभी ग्रह उस

अनेत कृतमात्रेण सर्वे शास्यंतुपदवाः

॥३९

एवं यः कुरुते राजन्सदाभक्तिसमन्वितः । तस्य सानुग्रहाः सर्वे यच्छन्ति विजयं सुखम् ॥४०
यश्चैतच्छृणुयात्कल्पं प्रहाणां पठतेऽपि वा । तस्य तानुग्रहाः सर्वे शांतिं यच्छन्ति नान्यथा ॥४१
शनैश्चरं राहुकेतू लोहपात्रेषु विच्यसेत् । कृष्णाग्नः स्मृतो धूपो दक्षिणा चात्मशक्तिः ॥४२

सूर्यं विधुं कुज बुधौ गुरुशुक्रसौरीन्हस्तादिकःक्षसहितानुदितक्रमेण ।

संपूज्य हेमघटितान्द्विजपुज्ञवाय दत्त्वा पुमान्प्रहाणेन न योङ्गतेऽन् ॥४३

इतिश्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंज्ञादे
ग्रहनक्षत्रज्ञतवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः । ११३

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

शनैश्चरवतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा त्रेतायुगे पार्थ नावर्षत्पाकशासनः । कथंचिदनयाद्राजस्तस्य राष्ट्रे समंततः ॥१
ततो राष्ट्रं क्षुधाविष्टं बभूवतीवदारुणम् । पतञ्जसूषिकाकीर्ण चौरब्यालभयाकुलम् ॥२
तस्मिन्योराकुले काले सप्तनीकः सबालकः । कौशिकः स्वगृहं त्यक्त्वा परराष्ट्रमगाच्छनैः ॥३

(व्यक्ति) को पीड़ित करते हैं किन्तु उपरोक्त व्रतानुष्ठान को मुसम्पन्न करने पर सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं । राजन्! भक्तिपूर्वक सदा इस भाँति करते पर समस्त गृह अनुकूल होकर विजय एवं सुख प्रदान करते हैं । इस कल्प के थ्वण या पारायण करने पर सभी ग्रह अनुकूल होकर शांति प्रदान करते हैं जो अन्यथा सम्भव नहीं होता है । (पूजन के समय) शनि, राहु एवं केतु की प्रतिमा तथा यथाशक्ति दक्षिणा से सुसम्मानित करे । क्रमशः हस्त आदि नक्षत्रों में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु की सुवर्ण प्रतिमा का क्रमिक पूजन करके किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अर्पित करने पर ब्राह्मणों की पीड़ा नहीं होती है । ३७-४३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
ग्रहनक्षत्रवत्त वर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त । ११३।

अध्याय ११४

शनैश्चर व्रत-वर्णन

श्री कृष्ण बोले—पार्थ! एक बार पहले त्रेता युग में पाकशासन (इन्द्र) के किसी प्रकार वर्षा न करने पर उस राष्ट्र में चारों ओर महान् भयंकर अकाल पड़ा था, जिसमें परिगण, मूषक (चूहे), चौर और सर्प आदि का महान् भय उपस्थित हो गया था । उस भीषण काल के समय कौशिक मुनि ने सभी बच्चों को साथ लेकर दूसरे राष्ट्र का प्रस्थान किया । १-३। धीरे-धीरे मार्ग में चलते हुए महर्षि कौशिक ने कुटुम्ब-पालन

मार्गेऽय गच्छता तेन कौशिकेन महर्षिणा । त्यक्तः स बालको हृषके दुर्भरं च कुटुम्बकम् ॥४
 तस्मिन्काले विशेषेण क्षीणेन्नौषधि सञ्चये । कृत्वातिनिर्घृणं कर्म गतोऽसौ कौशिको मुनिः ॥५
 सोऽपि बालो रुदन्दीनो दिसो दीक्ष्य स्थितः पथि । उत्थाय पिप्पलन्दाधः फलान्यतुं प्रचक्रमे ॥६
 कूपे जलं पर्यौ नित्यं तत्रैवाश्रमंडले । इत्वा सम्पृक्तं स्थितो रौद्रं तेषे च विपुलं तपः ॥७
 अथाजगाम भगवान्नाश्रादो वेदपारगः । तं बृष्टुः दीनवदनं क्षुधार्तं द्विजपोतकम् ॥८
 दयदा तस्य संस्कारं चक्रे मौज्यादिबंधनम् । वेदानश्यापयामास सरहस्यपदक्रमः ॥९ ॥
 ददौ वैष्णवं मन्त्रं द्वादशाश्रमित्युत ॥१०

वेदाभ्यासरतस्यास्य विष्णुध्यानपरस्य च । प्रत्यहं पिप्पलादस्य विष्णुः प्रत्यक्षतां ययौ ॥१०
 वैनतेदसमारुद्धो नीलोत्पलदलच्छविः । चतुर्भुजः पीतवासाः शंखचक्रगदाधरः ॥११
 स उचाच तदा तुष्टो वरं बूहि यमिच्छसि । तच्छृत्वा नारदमुखं समालोक्य शिशुस्तदा ॥
 नारदेनाप्यनुजातो ज्ञाननिद्यामयाचत ॥१२

दत्त्वा ज्ञानं ज्ञोपदेशं योगाभ्युत्तं च निर्मलम् । नागारिगमनो विष्णुस्त्रैवान्तर्हितोभवत् ॥१३
 ततो राजन्महाजानी महर्षिः स शिशुस्तदा । नारदं परिप्रच्छ केनाहं पीडितो मुने ॥१४
 ग्रहेणाग्रहभूतेन बालरूपोऽपि दुःखितः । न मे पिता न मे माता जीवितोस्म्यतिपीडया ॥१५
 ब्राह्मणं भवता दत्तं दैवान्म द्विजोत्तम । एतच्छृत्वा शिशोर्वाक्यं कथयामास नारदः ॥१६

की असमर्थता वश एक पुत्र को मार्ग में ही छोड़ दिया । संचित अन्न एवं औषधि के समाप्त होने पर अतिवृष्टित कर्म करते हुए उन्होंने मार्ग को किसी भाँति पार किया । वह बालक भी दीन-दीन वेप में रुदन करते थार्ग में चारों दिशाओं की ओर देखते एक पीपल वृक्ष के नीचे फल खाकर कूर्हे का पानी पीते हुए किसी प्रकार अपना दिन व्यतीत करने लगा । इस भाँति उसने उस आश्रम मण्डल में रह कर अत्यन्त भीषण एवं विपुल तप किया । अनन्तर वेद पाठगामी भगवान् नारद एक बार वहाँ आये मलिन मुख एवं क्षुधापीडित उस ब्राह्मण बच्चे को देख कर दयावश मौजीबन्धन (यजोपत्रीत) आदि संस्कार सुसम्पन्न करके सरहस्य -पद क्रम आदि समेत वेदाध्ययन कराया । पश्चात् द्वादशाश्रम वैष्णव मन्त्र भी प्रदान किया । वेदाभ्यास में निमग्न रहने एवं विष्णु के अत्पद्ध्यान करने वाले उस बालक को प्रतिदिन उस पीपल के वृक्ष से निकल कर भगवान् विष्णु का साक्षात् दर्शन होने लगा । गरुड पर सुखासीन्, नील कमल दल की छवि, चार भुजाएँ, पीतवस्त्र, शंख, चक्र एवं गदाधारण करने वाले विष्णु ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस बालक से कहा—यथेच्छ वर की याचना करो । बालक ने नारद के मुख की ओर देखकर नारद की भी आज्ञा से ज्ञान विद्या (अध्यात्मविद्या) की याचना की । गरुड वाहन भगवान्-विष्णु ज्ञानोपदेश और निर्मल योगाभ्यास प्रदान कर उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये । ४-१३। राजन्! पश्चात् उस बालक ने महाजानी महर्षि होकर एक दिन नारद से पूछा—मुने! मैं किसके द्वारा पीडित हुआ था, ग्रह अथवा अन्य किसी द्वारा शिशु अवस्था में ही अत्यन्त दुःखित हुआ, जबकि मेरे पिता-माता नहीं थे, किन्तु फिर भी पीडित होते हुए भी जीवित रहा । द्विजोत्तम! दैवसंयोग से ब्राह्मणत्व तो मुझे आप ने प्रदान किया है । (अन्यथा उससे भी विच्छित ही रह जाता) । बालक की ऐसी बात सुनकर नारद ने कहा—कूर ग्रह शनि के द्वारा

शनैश्चरेण क्रूरेण ग्रहेण त्वं हि पीडितः । पीडितश्च समस्तोऽपि देशोऽयं मंदचारिणा ॥१७
 तेनैतते फलं प्राप्तं सैषः सौरिः शनैश्चरः । प्रज्वलन्नतिवर्षेण 'स्फुरतीव नभस्तले ॥१८
 एवमुक्तः शिशुः क्रोधात्प्रजज्वालेवपावकः । आलोक्य गगनाद्भूमौ पातयामास वै शनिम् ॥
 पतमानो गिरे: शृङ्गाद्भनः रुद्धो बभूव ह ॥१९
 धरण्यां पतिं दृष्ट्वा भास्करात्मजमादुरम् । नरीनर्ति भुजक्षेपैर्नारदो हृष्टमानसः ॥२०-
 हर्षदिवानथाहृष्य दर्शयामास तं शनिम् ॥२१
 अथ देवास्तथा प्राप्ता बहुरुद्गेन्द्रपावकाः । शनैः संशमयासुरुचुश्चेदमृषिं च तम् ॥२२
 स्नात्त तेऽत्तु महाभाग पिप्पलादेति स्थाति लोके गमिष्यति ॥२३
 अन्दर्थुक्तं विप्रेन्द्रं जीवितं पिप्पलादनात् ॥२४
 भगवन्निष्पलान्यत्वा जीवितोऽसि यतो गुने । ततश्च पिप्पलादेति स्थाति लोके गमिष्यति ॥२५
 ऐ च त्वां पूजयिष्यन्ति स्नात्वा पुष्टैर्महाकृष्णम् ॥२६
 इहाश्रमे समभ्येत्य उर्जस्मिन्बक्तिभाविताः । सप्तजन्मान्तरं यावत्पुत्रपौत्रानुगमिनः ॥२७
 तेषां ब्राधिकां सत्यं ग्रहपीडा भविष्यति । स्मरिष्यतोह ये च त्वां पिप्पलादेति नामतः ॥२८
 तेषां शनैश्चर कृता पीडा न प्रभविष्यति । क्षमास्वास्य महाभाग निर्देषोऽयं ग्रहाग्रणीः ॥२९
 चरन्वृक्षं शनैरेष शुभाशुभकलप्रदः । हतसाध्या ग्रहाशैते न भवन्ति कदाचन ॥२९
 बलिहोमनमस्कारैः शांतिं यच्छ्रुतं पूजिताः । अतोऽर्थमस्य दिवसे स्नानमभ्यंगपूर्वकम् ॥३०

तुम और यह समस्त देश पीडित हुआ है। इस मंदचारी शनैश्चर ने ही ऐसा फल प्रदान किया है, जो आकाश में प्रज्वलित होते हुए अभिमान स्थित है। नारद के ऐसा कहने पर उस बालक ने प्रज्वलित अग्नि की भाँति कुद्ध होकर आकाश की ओर देखते ही शनि को नीचे गिरा दिया। भास्कर पुत्र शनि को पृथिवी पर गिरा हुआ एवं व्याकुल देख महर्षि नारद हर्ष मग्न होकर भुजाओं को इधर-उधर डुलाते नृत्य करने लगे। पश्चात् देवों को बुलाकर गिरे हुए शनि को दिखाया। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, और अग्नि देवों ने शनि को धीरे-धीरे आश्रासन प्रदान कर पश्चात् कृषि से कहा—महाभाग! पिप्पलाद महामुने! नारद महर्षि द्वारा तुम्हारा बहुत बड़ा कल्याण हुआ। विप्रेन्द्र, भगवन् मुने! पीपल फल खाकर जीवित रहने के नाते आप ने अपने नाम को नामार्थ में भलीभाँति संघटित कर लिया और उसी नाते 'पिप्पलाद' नाम से तुम्हारी लोकप्रसिद्धि होगी। इस आश्रम में आकर जो कोई भक्तिभाव से स्नान करके पूष्यों द्वारा उस महा कृषि की अर्चना करेगा सात जन्म तक उसे स्वर्ग लोक की प्रप्ति होती रहेगी और ग्रह जनित बाधा कभी नहीं होगी। महाभाग! आप के इस पिप्पलाद नाम का जो कोई स्मरण करेगा, उसे शनि जन्य बाधा नहीं होगी। १४-२७। अतः इस प्रमुख ग्रह को आप क्षमा प्रदान करें, जो वृक्षों पर धीरे-धीरे चलते शुभाश्रम फल प्रदान करता रहता है तथा हवन करने से कोई ग्रह कभी भी अनुकूल नहीं होते हैं, चलिप्रदान, हवन और नमस्कार द्वारा पूजित होने पर ये सभी ग्रह शांति प्रदान करते हैं अतः इस ग्रह के उद्देश्य से शनि के दिन तेल के अम्बङ्ग पूर्वक स्नान करके अम्बङ्गार्थ

कार्यं देयं च । प्राणां तैलमध्यंगहेतवे । यस्तु संवत्सरं यावत्प्राप्ते शनिदिने नरः ॥३१
तैलं ददाति विप्राणां स्वशक्तयान्यजनेऽपि च । ततस्संवत्सरस्यांते प्राप्ते तस्य दिने पुनः ॥३२
लोहसंसंघटितं सौरिं तैलमध्ये विनिक्षिपेत् । लोहभाण्डकमध्यस्थं कृष्णवस्त्रयुगच्छदम् ॥३३
कृष्णगोदकिणायुक्तं कृष्णकम्बलशायिनम् । तिलतैलेन च ज्ञानं कृष्णपुष्टेः सुपूजितम् ॥३४
कृष्णगांधीः कृष्णधूपैः कृशरान्नैस्तिलोदनैः । पूजयित्वा सूर्यपुत्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥३५
संत्रेणानेन ब्रह्मर्षे शनोदेवीति 'भक्तिमान् । इतरेषांतु वर्णानां शृणु मन्त्रं द्विजोत्तम ॥३६
कूरावलोकनवशाङ्कुवनं नाशयिष्यतियो प्राप्ते रुषः । तुष्टो धनकनकमुखं ददाति सौरिः शनैश्चरः पातु ॥३७
यत्पुरा नष्टराज्याय नलाय ग्रददौ किल । स्वप्ने सौरिर्निंजं मन्त्रं शृणु कामफलप्रदम् ॥३८
कोडं^१ नीलाञ्जनप्रल्यं नीलवर्णसमवृत्तम् । छायामार्तण्डसङ्खूतं नमस्यामि शनैश्चरम् ॥३९

नगोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय नीहरवर्णजिनमेचकाय ।

शुत्वा रहस्यं भवकामदश्च फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र ॥४०

नमोऽस्तु प्रेतराज्याय कृष्णदेहाय दै नमः । शनैश्चराय कूराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने ॥४१
य एभिर्नामभिः स्तौति तस्य तुष्टो^२ भवाम्यहम् । मदीयं तु भयं तस्य त्वप्रेऽपि न भविष्यति ॥४२
एवमूडे शनिः पूर्वमतस्तं ब्राह्मणे ददेत् । एवमेतद्ब्रतं विप्र ये चरिष्यति मानवाः ॥४३
स्थवरेस्थावरे प्राप्ते वत्सरं यावदेव तु । तेषां शानैश्चरी पीडा देशोऽपि न भविष्यति ॥४४

ब्राह्मण को तेल प्रदान करना चाहिए । जो मनुष्य शनि के दिन पूरे वर्षभर यथाशक्ति तेल दान ब्राह्मण अथवा अन्य जनों को देते रहते हैं और पश्चात् वर्ष की समाप्ति में शनि के दिन शनि की लोह की मूर्ति को लोहे के पात्र में रखे हुए तेल में स्थापित दर दक्षिणा समेत कृष्णा गौ, काला कम्बल अर्पित करते हुए तैल में स्नान और काले पुष्पों से पूजा करे । कृष्ण गंध, कृष्णधूप, कृशरान्न भक्ति पूर्वक 'शनो देवी ति' मंत्र का उच्चारण करते हुए वह मूर्ति ब्राह्मण को सादर अर्पित करे । द्विजोत्तमः! इतर जाति के पुरुषों को जिस मंत्र द्वारा वह मूर्ति अर्पित करनी चाहिए मैं बता रहा हूँ, सुनो! रुष्ट होने पर अपनी क्रूर दृष्टि द्वारा लोक का विनाश और प्रसन्न होने पर सुवर्ण तथा सुख प्रदान करने वाले सूर्य पुत्र शनि मेरी रक्षा करें । जिस सौरि (शनि) ने पहले समय में राज्य के कूट जाने पर नल को स्वप्न में अपना वह मंत्र बताया था जिससे समस्त कामनाएँ सफल होती हैं तथा नील अञ्जन पर्वत के समान देह, नीलरंग की माला एवं सूर्य की छाया सभी से उत्पन्न होने वाले उस शनैश्चर को मैं नमस्कार करा रहा हूँ । सूर्य पुत्र! मैं उस अर्क पुत्र आप को नमस्कार कर रहा हूँ, जो श्याम वर्ण की चन्द्रिका सा भूषित और अपने रहस्य (मंत्र) के सुनने पर कामनाएँ सफल करते हैं, मुझे उत्तम फल प्रदान करने की कृपा करें । प्रेतराज, कृष्ण उस क्रूर ग्रह शनि को नमस्कार कर रहा हूँ । मेरे इन नामों द्वारा जो मेरी स्तुति करता है मैं उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होता हूँ और मेरा भय उसे स्वप्न में भी नहीं होता है । २८-४२। विप्र! शनि ने ही पहले ऐसा कहा था । अतः ऐसा कह कर वह मूर्ति ब्राह्मण को अर्पित करे । इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्यों को, जो पूर्ण वर्ष तक उनकी पीडा कभी नहीं होगी । इतना कह कर समस्त देव वृन्द जिस मार्ग से आये थे, चले

१. भक्तिः । २. स्वयम् । ३. कोद्रम् । ४. भवत्यसौ ।

एवमुक्त्वा सुरा : सर्वे प्रतिज्ञमुर्यथागतम् । शनैश्चरोऽपि स्वस्थाने चहंते खे प्रतिष्ठितः ॥४५
 पित्र्यलादोऽपि ब्रह्मज्ञो ब्रह्माज्ञां प्रतिपालयन् । शनैश्चरं तु सम्पूज्य तुष्टुद रचिताङ्गज्जलिः ॥४६
 कोणस्थः पिङ्गलो बभुः कुण्डो रौद्रोऽन्तको यमः । सौरि: शनैश्चरो मन्दः प्रीयतां मे ग्रहोत्तमः ॥४७
 शनैश्चरमिति स्तुत्यः पिप्पलादो महामुनिः । खे प्रज्वलन्विमानस्थो दृश्यतेऽयपि भानवैः ॥४८
 इदं शनैश्चरात्मानं ये श्रोत्यन्ति समाहिताः । तेषां कुरुवरश्चेष्ठ शनिः पीडः न इास्यति ॥४९

कृष्णायसेन धटितां यहराज्ञमूर्तिं लोहे निधाय कलशे तिलतैलपूर्णे ।
 यो ब्राह्मणाय रविं प्रदाति भक्त्या पीडा शनैश्चरकृतान हिं बाधते तम् ॥५०
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वदिग्नि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 शनैश्चरव्रतवणेन नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः । ११४

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यदिननक्तविधिदर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यदारोग्यकरं दुंसां यदनन्तफलप्रदम् । व्रतं तद्बूहि गोदिन्द सर्वपापप्रणाशनम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

यत्तद्विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्म सनातनम् । सूर्याग्निचन्द्ररूपेण तत्त्रिधा जगति स्थितम् ॥२

गये और शनि भी आकाश में ग्रहों के मध्य स्थित हुआ । ब्रह्मवेत्ता पिप्पलाद ऋषि ने भी ब्रह्म की आज्ञा शिरोधार्य कर शनि की अर्चना हाथ जोड़कर उनकी क्षमा दाचना की—कोने में स्थिति, पिङ्गल, बभु, कृष्ण वर्ण, रौद्र-स्वरूप, यम की भाँति प्राणान्त करने वाले सूर्यपुत्र, ग्रहोत्तम, एवं मन्दगामी शनैश्चर मुझ पर प्रसन्न हों । शनि की इस प्रकार स्तुति करने के नाते महामुनि पिप्पलाद विमान पर बैठे आज भी आकाश में मनुष्यों को दिखायी देते हैं । शनि के इस आख्यान को सावधानतया सुनने वाले व्यक्ति शनि पीडा से पीड़ित नहीं होते हैं । इस प्रकार जो कोई भक्ति पूर्वक शनि के दिन ग्रहराज शनि की लौहमूर्ति तिलसमेत तैल पूर्ण लोहे के पात्र में स्थापित एवं पूजित कर ब्राह्मण के समर्पित करता है उसे शनिपीडा नहीं होती है । ४३-५०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 शनि व्रत वर्णन नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त । ११४।

अध्याय ११५

आदित्य के दिन नक्त व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—गोविन्द! मनुष्यों को आरोग्य एवं अनन्त फल की प्राप्ति पूर्वक उनके समस्त पातकों को नष्ट करने वाले व्रत मुझे बताने की कृपा कीजिये । १

श्रीकृष्ण बोले—कुरुनन्दन! सनातन परब्रह्म विश्वात्मा (विराट रूप) भगवान् का धाम है,

तमाराध्य पुमान् कि न प्राप्नोति कुरुनन्दन । तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत् ॥३
 उत्पद्यते यदा भक्तिर्भानोरुपरि शाश्वतो । तदारम्भ सदा कार्यं नक्तमादित्यवासरे ॥४
 पूर्वोक्तविधिना चैव पूजयित्वा द्विजोत्तमान् : ततोऽस्तसमये भानो रलचन्दनपञ्जम् ॥५
 विलिख्य द्वादशदलं पूज्य सूर्येति पूर्वतः । दिवाकरं तथाग्नेये विवस्वत्तमतः परम् ॥६
 भगं तु नैऋते देवं वरुणं पश्चिमे दले । महेन्द्रं मारुतदले आदित्यं तु तथोन्तरे ॥७
 शांतमीरानभागे तु नमस्करेण विन्यसेत् । कर्णिकापूर्वपत्रे' तु सूर्यस्य तुरगान्यसेत् ॥८
 दक्षिणे यमगासानं सातां एश्चिमे दले । उत्तरेण रविं देवं कर्णिकायां तु भास्करम् ॥९
 अर्घ्यं दधात्ततः पार्थं सतिलालणचन्दनम् । फलाहतयुतं तद्विदिमं मंत्रमुदीरयेत् ॥१०
 कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः । यस्मादग्नींदुरूपस्त्वशतः पाहि प्रभाकर ॥११
 अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषे त्वोर्जे च भास्करे । अग्ने आयाहि वरद नमस्तो ज्योतिषां पते ॥१२
 अर्घ्यं दत्त्वा विसर्ज्यथ निशि तैलविवर्जितम् । भुज्जीत भावितमना भास्करं संस्मरन् मुहुः ॥१३
 प्राक्तनेऽति शनौ चैव तैलाभ्यङ्गं दिव्यजयेत् । वत्सरातं कारयित्वा काञ्चनं कमलोत्तरम् ॥१४
 पुरुषं च यथाशक्त्या कारयेद्विभुजं तथा ॥१५

सुवर्णशृंगां कपिलां महाध्याँ रौप्यखुरां कांस्यदोहां सवत्साम् ।
 पूर्णे गुडस्योपरि ताम्रपात्रे निधाय पदं च ततो निदध्यात् ॥१६

और वही सूर्य, अग्नि एवं चन्द्रमा रूप से इस जगत् में स्थित है, तो उसकी आराधना द्वारा मनुष्य वो क्या नहीं प्राप्त होता है? इसलिए रविवार के दिन सदैव नक्त भोजी होना चाहिए। (मनुष्य के हृदय में) सूर्य की शाश्वती भक्ति जब उत्पन्न हो जाये, उसी समय से आरम्भ कर सदैव रविवार के दिन नक्त भोजी रहना चाहिए। २-३। पूर्वोक्त विधान द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणों की अर्चना करके पुनः सूर्य के अस्त्व होते समय भानु के द्वादश दल कमल की रक्त चन्दन द्वारा रचना करके, 'सूर्य को नमस्कार है' से पूर्व की ओर, 'दिवाकर को नमस्कार है' से अग्नि कोण, विवस्वान को नमस्कार है, से दक्षिण दिशा, भग को नमस्कार है, नैऋत्य कोण, वरुण को नमस्कार है, से पश्चिम, महेन्द्र को नमस्कार है, से वायु कोण, आदित्य को नमस्कार है, जो उत्तर, शांत को नमस्कार है, से ईशान कोण में उन-उन देवों को स्थापित करके कर्णिका के पूर्वभाग में सूर्य के घोड़ों की स्थापना करे। दक्षिण दल में यम, पश्चिम दल में मार्तण्ड, उत्तर में रवि, और कर्णिका में भास्कर देव को तिल, रक्त चन्दन, फल और अक्षत समेत अर्घ्य प्रदान करते समय इस मंत्र का उच्चारण करे— प्रभाकर! आप कालात्मा, सर्वभूतात्मा, वेदात्मा, विश्वतो मुख एवं अग्नि और चन्द्र रूप हैं अतः मेरी रक्षा करें। ४-१। अग्निमीले और इषेत्वोर्जि भास्कर को नमस्कार है, परदायक अग्नि यहाँ आने की कृपा कीजिये। मैं ज्योतिष्यति को नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार अर्घ्य देकर विसर्जन करे और तैल-क्षार रहित नक्त भोजन करके करके प्रेमभाव से भास्कर देव का बार-बार स्मरण करता रहे। उसके पूर्व शनि के दिन तैलाभ्यंग (तैलमर्दन कभी न करे)। पुनः वर्ष की समाप्ति में कमल और दो बाहु वाले) पुरुष की यथाशक्ति सुवर्ण प्रतिमा बनवाकर कपिला गौ समेत, जिसकी सींग सुवर्ण से और खुर

१. पूर्वभागे तु ।

गां कल्पयित्वा पुरुषं सपदं द्व्यादनेकव्रतनाथकाशः
अव्यञ्ज्ञरूपाय जितेन्द्रियाय कुटुम्बने शुद्धमनुद्धताय ॥१७
नमोस्तु ऋक्सामयज्ञर्विधात्रे पद्मप्रबोधाय जगत्सवित्रे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने च त्रिलोकनाथाय नमो नमस्ते ॥१८

इत्यनेन विधानेन वर्षमेकं तु यो नरः । नक्षमादित्यवारेण कुर्यात्स नीरुजो भवेत् ॥१९
धनधान्यसागायुक्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः । मर्त्ये स्थित्वा चिरं कालं सूर्यलोकमवाप्न्यात् ॥२०
कर्मसंक्षयमवाप्य पार्थिवं शोकदुःखभयरोगविजितः ।
त्यादमित्रकुलकालमन्विभ्वः धर्ममूर्तिरमितौजिता युतः ॥२१
या च भर्तृशुरुदेवतत्परा देवमूर्तिदिननक्षमाद्वरत् ।
सापि लोकमभरेशपूजिता याति कौरव रवेश्च संशयः ॥२२
यः पठेदथ शृणोति वा नरः पश्यतीत्यस्थ वानुमोदयेत् ।
तोऽपि शक्रनवने दिवौकसैः कल्पकोटिशतमेकमीड्यते ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद
आदित्यदिननक्षमिधिवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः । ११५

चाँदी से सुसज्जित हो, तथा कांसे की दोहनी और वत्सा युक्त हो, गुड के ऊपर ताँबे के पात्र में कमल सहित रखे । पूजनोपरांत इन सभी वस्तुओं को उस ब्राह्मण के लिए अपित करनी चाहिए जो अनेक ब्रतों को सुसम्पन्न किये, अव्यंग रूप, इन्द्रिय संयमी सपरिवार, शुद्ध और शांत मूर्ति हो । पश्चात् क्षमायाचना करे—ऋग्वेद, सामवेद, एवं यजुर्वेद के विधाता, कमलों को विकसित करने वाले, जगत् के सविता, त्रयी (तीनों वेद) मय, त्रिगुणात्मक और तीनों लोकों के स्वामी (सूर्य) को मैं बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ । इस विधान द्वारा एक वर्ष तक इस ब्रत को सुसम्पन्न करने एवं रविवार को नक्ष भोज करने वाले पुरुष नीरोग होता है । धनधान्य सम्पन्न होकर पुत्र-पौत्र समेत इस धरातल पर चिर सुख का अनुभव करने के उपरांत उसे सूर्य-लोक की प्राप्ति होती है । कर्मों के क्षीण होने पर वह शोक, दुःख, भय एवं रोग हीन, शत्रुओं का काल, धर्म मूर्ति और अमित तेज युक्त राजा होता है । १२-२१। कौरव! जो भर्ता, गुरु और देवाराधन में तप्तर रहने वाली स्त्री भी वेदमूर्ति सूर्य देव के दिन नक्ष ब्रत रहती है देवराज इन्द्र द्वारा उसकी भी पूजा होती इसमें संशय नहीं । इस आस्थ्यान वो पढ़ने सुनने, देखने या अनुमोदन करने वाला पुरुष भी इन्द्र के भवन में सौ कोटि कल्प देवों द्वारा सुपूजित होता है । २२-२३

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
आदित्य के दिन नक्ष-ब्रत वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त । ११५।

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

संक्रांत्युद्यापनवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथान्यदपि ते वच्चिम संक्रांत्युद्यापने फलम् । यदक्षयं परं लोके पुराणकवयोः विदुः ॥१
 विषुवे अग्ने वापि संक्रांतिव्रतमारभेत् । पूवेद्युरेकभक्तेन दन्तधावनपूर्वकम् ॥२
 संक्रांतिवासरे प्राप्ते तिलैः स्नानं विद्योयते । अभिसंक्रमणं भूमौ चन्दनेनाष्टपत्रकम् ॥३
 पद्मं सकर्णिकं कुर्यात्तस्मिन्नावाहयेद्रविम् । कर्णिकायां न्यस्तेसूर्यनादित्यं पूर्वतस्ततः ॥४
 ननः सप्तार्दिषेऽग्ने याम्ये रुद्गमण्डलाय च । नमः सवित्रे नैऋत्ये वरुणं वास्त्वे यजेत् ॥५
 सप्तसप्तिं च वायव्ये पूजयेद्ब्राह्मतां पतिम् । मार्तडमुत्तरे विष्णुमीशाने विन्यसेद्वले ॥६
 गन्धमाल्यफलैर्भृतैः स्थणिडले पूजयेत्ततः । चन्दनोदकपुष्टैस्तु दत्त्वाद्यर्घं विन्यसेद्भूवि ॥७
 नमस्ते विश्वरूपाय विश्वधात्र्मे स्वयंभुवे । नमोऽन्तस्ते वरदं क्रक्षामयजुषां पते ॥८
 अनेन विधिना दत्त्वा भाजवेऽर्घ्यं नरोत्तम । द्विजाय सोदकं कुम्भं धृतपात्रं हिरण्मयम् ॥९
 कमलं च यथाशक्त्या कारणित्वा निवेदयेत् । विधिनानेन कर्तव्यं मासि मासि नरोत्तम ॥१०
 एकभक्ताशनैः पुनिः सर्वमेतद्याथाविधि । एकस्मिन्नात्मि कर्तव्यं वत्सरांतेऽथ वा पुनः ॥११

अध्याय ११६

संक्रान्ति उद्योपन का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें एक अन्य संक्रान्ति उद्योपन का फल बता रहा हूँ, जिसे पुराणवेत्ता कवियों ने इस लोक में अक्षय और परमोत्तम बताया है । विषुव अथवा अथन के समय संक्रान्ति व्रत आरम्भ करे और उसके पूर्व के दिन एक भक्त (एकाहार) करे । पश्चात् संक्रान्ति वाले द्वासरे दिन दातून करने से ही उस के नियम को पालन करते हुए तिल-मान करे और भूमि में चन्दन द्वारा कर्णिका समेत कमल की रचना करके कर्णिका में सूर्य का और उसमें रवि का आवाहन इस भाँति करे—‘आदित्य को नमस्कार है’ पूर्व की ओर, ‘सप्तर्चि को नमस्कार है’ अग्नि कोण, ‘रोगध्वंश को नमस्कार है’ नैऋत्य कोण, ‘वरुण को नमस्कार है’ पश्चिम दिशा, ‘भास्वत्पति सप्तसप्ति को नमस्कार है’ वायु कोण, ‘मार्तण्ड को नमस्कार है’ उत्तर की ओर और ‘विष्णु को नमस्कार है’ कह कर दल के ईशान कोण में आवाहित करें ॥१-६। पश्चात् गंध, माला, फल एवं भक्ष्य पदार्थों द्वारा वेदी पर उनकी अर्चना और चन्दन पुष्प समेत जल द्वारा अर्घ्य प्रदान कर क्षमा प्रार्थना करे—विश्व रूप, विश्वधाम और स्वयंभू को नमस्कार है तथा ऋक्, साम एवं यजु के अधीश्वर और वरदायक सूर्य को नमस्कार है । नरोत्तम! इस विधान द्वारा भानु देव को अर्घ्य प्रदान करने के अनन्त जलपूर्ण कलश धृतपूर्ण पात्र, सुवर्ण और वह सुवर्ण की प्रतिमा सविधान ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करे और इसी भाँति प्रतिमास करता रहे । नरोत्तम! पूर्व दिन एकाहारी रहकर यथा विधान एक दिन पूजन करके पुनः वर्ष की समाप्ति में पूजन करे ॥७-१। कौतेय! उस दिन धृत पूर्ण

कौन्तेय तस्मिन्धृतपायसेन संपूज्य वहिं द्विजपुं गवाय ।
 कुम्भान्युनदर्ढा दशधेनुयुक्तान्दौर्गत्ययुक्तः कुशलामथैकान् ॥१२
 निवेददेवद्वाहणपुङ्गवाय हेर्मी च दद्यात्पृथ्वीं ससस्याम् ।
 शक्तपाय रौप्याम्भ वापि ताम्रीं पैष्ठोभशक्तो बसुधां विधाय ॥१३
 सौवर्णसूर्येण समं प्रदद्यान्न वित्तशाठ्यं पुरुषोऽत्र कुर्यात् ।
 कुर्वन्नधो याति नरेन्द्रचन्द्रयावन्महेन्द्रप्रभुताः सुरेशाः ॥१४
 पृथ्वी च यावत्सकुलाह्लता च यावच्च सूर्यनिलवह्निवन्द्वाः ।
 तावत्सगन्धर्वकुलैरशेषैः संपूज्यते भारत नाकपृष्ठे ॥१५
 ततस्तु कर्मक्षयमाप्य सप्तद्वीपाधिष्ठानः स्यात्सुकुलप्रसूतः ।
 दिव्यैः सुखेर्युक्तवपुः सभार्यः प्रसूतपुत्रान्वयबन्धुवर्गः ॥१६
 इति पठति शृणोति योऽतिभक्त्या विधिमखिलं रविसंक्रमेषु पुण्यम् ।
 मतिमपि च ददाति सोऽपि ईवैरमरपतिप्रमुखैर्मृतस्तु पूज्यः ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 संक्रान्त्युद्यापनवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः । ११६

पायस की आहुति द्वारा अग्नि को तृप्त कर द्वादश कलश, उतनी ही गौ अथवा दरिद्रता का नाते एक ही गौ, सुवर्ण, चाँदी, ताँबे अथवा अशक्ततया पिष्टी की पृथ्वी सूर्य के साथ ही ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करना चाहिए । नरेन्द्र पूजनं आदि में किसी भाँति कृपणता न करे अन्यथा इन्द्र आदि देवों के समय तक उसकी अधोगति होती रहेगी । भारत! और उदार-भाव से पूजन करने पर पर्वतों समेत यह पृथ्वी, सूर्य, वायु अग्नि, और चन्द्रमा के समकालीन निखिल गंधर्वों द्वारा स्वर्ग में उसकी अर्चना होती रहेगी । पश्चात कर्म के क्षय होने पर उत्तम कुल में उत्पन्न होकर सातो द्वीप का अधीश्वर होता है और दिव्य शरीर धारण कर पुत्र-स्त्री और अपने वन्धुवर्गों समेत दिव्य सुख का अनुभव करता है । इस प्रकार इस आत्म्यान को संक्रान्ति के दिन भक्ति पूर्वक पढ़ने, सुनने, एवं सम्मति प्रदान करने वाले प्राणी देहावसान के समय प्रमुख देव नायकों द्वारा स्वर्ग में पूजित होता है । १२-१७

श्रीभविष्यमहापुराण में उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
 संक्रान्ति उद्यापन वर्णन नामक एक सौ सोलहर्वाँ अध्याय समाप्त । ११६।

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

विष्टिव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कृष्ण केयं जनैः सर्वेर्विष्टिर्भद्रेति चोच्यते ! कस्यात्मजेयं किंरूपा पूज्यते च कथं जनैः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

सुता मार्तग्डदेवस्य छायया जनिता धुरा । शनैश्चरत्य सोदर्या भगिन्यतिभयंकरी ॥२
 सा जातमाक्षा भुवनं प्रत्तुं समुपचक्रमे । कृष्णा करालदना सितंष्टोर्ध्वनूदजा ॥३
 निर्याति यदि कार्यण किञ्चत्तस्य दुरःस्थिता । विघ्नं करोति स्वपतो भुञ्जानस्य स्थितस्य वा ॥४
 यज्ञविघ्नकरी रौद्रा समाजोत्सवनाशिनी । नित्योद्गेगकरी रौद्रा विनाशयति सा जगत् ॥५
 तां तु दुर्विनायासक्तां दृष्ट्वा देवो दिवाकरः । चिन्त्यामास कस्यापि यच्छान्म्येनां सुमध्यमाद् ॥६
 कन्द्यदुर्विनियाच्चेह पिता दोषेण गृह्णते । युवत्यास्तु ततो भर्ता तस्माद्वृत्गृहं नयेत् ॥७
 विचिन्त्यैवं सुतां भद्रां यस्य यस्य प्रयच्छति । ते नमंति ज्ञेनैव सुरराक्षसकिन्नराः ॥८
 मण्डपं मण्डपारम्भे भंक्त्वा भीषयते जनम् । विवस्वांश्चिन्तयाविष्टः कस्येयं प्रतिपाद्यताम् ॥९
 विरूपा दुष्टहृदया स्वेच्छाचारविहारिणी । दत्ताप्येषा न दोषाय भवतीह कथंचन ॥१०

अध्याय ११७

विष्टिव्रतवर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! सब लोग जिसे विष्टि और भद्रा कहते हैं, वह दया वस्तु है, किससे उत्पन्न एवं उसका रूप कैसा है और क्यों सभी मनुष्य उसकी पूजा करते हैं । १

श्रीकृष्ण बोले—सूर्य देव की छाया नामक पल्ली द्वारा यह पहले ही उत्पन्न हुई थी, जो शनैश्चर की अतिभीपण भागिनी है । यह उत्पन्न होते ही तीनों भुवन को अपने मे विलीन करने के लिए तैयार हो गयी थी । काले वर्ण, करालमुख, श्वेत दाँत और ऊपर का उठे हुए केश वाली यह जो कोई कार्य वश कहीं बाहर निकलता है, उसके सामने खड़ी हो जाती है और शयन करने, खाते, अथवा बैठते समय उसका विघ्न करती है । यह रौद्रस्वरूपा यज्ञधर्वांस और समाजोत्सव का विनाश करती है तथा भीषण स्वरूप से नित्य उद्गेग उत्पन्न करती हुई इस भाँति जगत् का नाश करती है । इस दुर्विनीता को देख कर दिवाकर देव चिंतित होने लगे कि इसे किसे सौंपा जाय! क्योंकि कन्या के अविनीता होने पर पिता का ही दोष बताया जाता है और युवती होने पर पालनार्थ पति की आवश्यकता होती है इसलिए उसे पति के घर भेजा जाता है । २-७। इस प्रकार विचार कर वे अपनी वह भद्रा कन्या जिस किसी को सौंपते थे वे देव, राक्षस अथवा किन्नर गण उसी समय नमस्कार करते थे और उसके अपनाने की स्वीकृति प्रदान करते थे कारण कि मण्डप के आरम्भ होते ही यह मण्डप को छिन्नभिन्न कर लोगों को भयभीत करती थी । विवस्वान् (सूर्य) देव अत्यन्त व्याकुल होकर सोच रहे थे कि इसका पाणिप्रहण किसके साथ किया जाय, क्योंकि यह विरूपा,

वितर्कयन् यावदेवमास्ते देवो दिवस्थिः । तावत्या जगत्सर्वं दुष्ट्या समभिद्रुतम् ॥११
अथाजगाम सवितुः पाश्वे ब्रह्माऽण्डसंभवः । कार्यं निवेदयामास विष्टेदौष्टचमशेषतः ॥१२
भास्करस्तमुवाचाय ब्रह्माणं भुवनेश्वरम् । भवान्कर्ता च हर्ता च कस्मादेवं प्रभाषसे ॥१३
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा भास्करेणामितद्युतिः^१ । उवाच विष्टिमानाय शृणु भद्रे मयोदितम् ॥१४
करणे: सह वर्त्तस्व बबबालवकौलवै: । सप्तमेऽर्धदिने प्रान्ते यदभीष्टं कुरुष्व तत् ॥१५
यात्राप्रदेशमाङ्गल्यकृषिवाणिज्यकारणात् । भक्षणस्वाभिमुखगान्नरानुःसार्गामिनः ॥१६
उद्वेजनीयो नो हि जनो भस्या दिवसत्रयम् । पूज्या मुरामुराणां त्वं दिवसार्द्धं भविष्यति ॥१७
उल्लंघ्य ये प्रवर्तन्ते भद्रे त्वां निर्भया नराः । तेदां विनाशयाशु त्वं कार्यमार्यं सुखी भव ॥१८
एवमुक्त्वा गतो ब्रह्मा भद्रापि भुवनत्रयम् । ब्रन्नामोद्भ्रांतहृदाय भीषयन्ती मुरामुरान् ॥१९
एवमेवं समुत्पन्ना विष्टिरिष्टविनाशिनी । निवेदिताः ते कौत्तेय तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥२०

असितजलदवर्णा दीर्घनासोग्रहंस्त्रा विपुलहनुकपाला^२ पिण्डिकोद्बद्धजड्हा ।

अनलशतसहस्रं चोदिगरन्ती समंतात्पतति भुवनमधये कार्यनाशाय विष्टिः ॥२१

भानोः सुता केतुशताप्रजाता । कृष्णा कुमूर्तिः सततं कुचेला ।

देवैर्नियुक्ता करणार्थसंस्था विष्टिस्तु सर्वत्र विवर्जनीया ॥२२

द्रष्टा, एवं यथेच्छ आचार और बिहार, करने वाली है और किसी को देने पर भी इसका दोष नहीं माना जायगा (प्रत्युत मेरा ही समझा जायगा) । दिन नायक देव इस प्रकार जब तक विचार मग्न थे उसी बीच इस दुष्टा ने सम्पूर्ण जगत् को आक्रान्त कर लिया । ८-११। अनन्तर अण्ड कटाह से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा सूर्य के समीप आकर उस विष्टि (भद्रा) नामक कन्या की समस्त दुष्टता की चर्चा करने लगे । उसे मुनकर भास्कर देव ने भुवनेश्वर ब्रह्मा से कहा—आप (इस जगत् के) कर्ता और हर्ता हैं इसलिए आप यह क्या कह रहे हैं! उनके ऐसा कहने पर अमेय तेज वाले ब्रह्मा ने उनकी कन्या विष्टि को बुलवाकर उससे कहा—भद्रे! मेरी बात मुनो! बव, बालव और कौलव नामक करणों के साथ निवास करो तथा सातवें अर्ध-दिन में ही यथेच्छ कार्य करना । यात्रा, (गृह) प्रवेश आदि, मंगल कार्य, कृषी अथवा व्यापारार्थ स्वामि मुख आये हुए मनुष्यों का भक्षण करो जो कृपथगामी कहे जाते हैं । तीन दिन मनुष्यों को उद्वेजित न करना, दिन के आधे समय तक सुर-असुर तुम्हारी पूजा करेंगे । भद्रे! जो मनुष्य निर्भय होकर तुम्हारा उल्लंघन करके कार्य आरम्भ करें, उनका शीघ्र विनाश करना और सदैव सुखी रहो । इतना कह कर ब्रह्मा चले गये और भद्रा ने उद्ध्रान्त होकर देवों और राखसों को भयभीत करती हुई तीनों लोकों का भ्रमण किया । कौतैय! इस प्रकार मैंने इष्टविनाशिनी इस भद्रा की जन्म कथा सुना दी इसलिए इसका अवश्य त्याग करना चाहिए । तीनों लोकों में चारों ओर सैकड़ों एवं सहस्रों अग्नि का वगन करती विचरती हुई यह विष्टि कार्य-विनाश करती हैं, जो काले मेघ के समान वर्ण, दीर्घ नासिका (लम्बी नाक), तेज और बड़े दाँत, विशाल हनु (ठुन्डी) और कपोल, तथा पेढ़ू में बंधे हुए जंगे वाली दिखायी देती है । भानु के केतु आदि सैकड़ों सत्तानों में यह कृष्ण सर्व प्रथम उत्पन्न हुई है, जो कुरचप एवं कुवेला रूप है । देवों ने इस विष्टि को करण के साथ रहने के लिए नियुक्त किया है किन्तु सर्वत्र यह त्याज्य

१. महच्युतिः । २. विपुलहनुकपालो ।

मुखे तु घटिकाः पञ्च द्वे कण्ठे तु सदा स्थिते । हृदि चैकादश प्रोक्ताः चतस्रो नाभिमण्डले ॥२३
 कटचां पञ्चैव विज्ञेयास्तित्रः पुच्छे जयावहाः । मुखे कार्यविनाशाय ग्रीवायां धननाशिनी ॥२४
 हृदि प्राणहरा ज्ञेया नाभ्यांतु कलहावहा । कटचामर्थपरिभ्रंशो विष्टिपुच्छे ध्रुवो जयः ॥२५
 पृथिव्यां यानि कार्याणि सुशुभान्यशुभानि च । तानि सर्वाणि तिद्वयंति विष्टिपुच्छे न संशयः ॥२६
 धन्या दधिमुखी भद्रा महामारी खराननाः । कालरात्रिर्महारुद्रा विष्टित्वं कुलपुत्रिका ॥२७
 भैरवी च महाकाली असुराणां क्षमंकरी । द्वादशैव तु नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥२८
 न च व्याधिर्भवेत्स्य रोगी रोगात्प्रभुच्यते । प्रहा: सर्वेऽनुकूलाः स्युर्न च विघ्नादि जायते ॥२९
 रणे राजकुले धूते सर्वत्र विजयी भवेत् ॥३०

पश्च पूजयते नित्यं शास्त्रोक्तविधिना नरः । तस्य सर्वार्थसिद्धिस्तु भवतीह न संशयः ॥३१
 देनोपवासविधिना व्रतेन च 'यशस्विनी । पूजिता तुष्टिमभ्येति तदेव कथयामि ते ॥३२
 यस्मिन्दिने भवेद्द्वूद्रा तस्मिन्नहनि भारत । उपवासस्य नियमं कृद्यान्नारी नरोऽथ वा ॥३३
 यदि रात्रौ भवेद्विष्टिरेकभुक्तं दिनद्वयम् । कार्यं तेनोपवासः स्यादिति पौराणिकी श्रुतिः ॥३४
 प्रहरस्त्रोपरि यदा स्याद्विष्टिः प्रहरत्रयम् । तत्रोपवासः कर्तव्य एकभुक्तमतोऽन्यथा ॥३५
 सर्वोषध्युदकस्नानं सुगन्धामलकरथ । नद्यां तडागोऽथ गृहे लानं सर्वत्र शस्यते ॥३६
 देवान्मित्रून्नीणियित्वा ततो दर्भमर्यो शुभाम् । विष्टिं कृत्वा पुष्पधूपैन्वेद्येन च पूजयेत् ॥३७

करने योग्य है । १२-२२। मुख में दशघड़ी, कण्ठ में सदैव हृदय में एकादश (ग्यारह), नाभिमण्डल में चार, करि में पाँच और पूँछ में तीन घड़ी निवास करती है । मुख में ग्राण का अपहरण, नाभि में कलह, कटि में अर्थनाश और पूँछ में रहने से निश्चित जय प्रदान करती है । पृथ्वी में जितने शुभ अथवा अशुभ कार्य हैं विष्टि के पुच्छ निवास करने पर वे सब निश्चय तिद्वय होते हैं इसमें संदेह नहीं । धन्या, दधिमुखी, भद्रा, महामारी, खरानना, कालरात्रि, महारुद्रा, विष्टि, कुलपुत्रिका, भैरवी, महाकाली, और असुरक्षया भद्रा के इन बारह नामों को प्रातः काल शश्या से उठते ही जो पढ़ता है, उसे कोई व्याधि नहीं होती है, उस रोगी को रोग से शीघ्र मुक्ति हो जाती है, सभी प्रह अनुकूल हो जाते हैं विघ्न-बाधा कभी नहीं होती है । रणस्थल, राजकुल, धूत क्रीडा आदि सर्वत्र निश्चित विजय प्राप्त होती है । २३-३०। शास्त्र-विधान द्वारा इसकी पूजा करने वाले मनुष्य की सर्वार्थ सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं । भारत! जिस उपवास विधान द्वारा द्वातनुष्ठान में पूजित होने पर यह यशस्विनी (भद्रा) प्रसन्न होती हैं, तुम्हें बता रहा हूँ (सुनो!) नर-नारी सभी को भद्रा के दिन उपवास के नियम-पालन आरम्भ करना चाहिए । यदि भद्रा रात्रि में हो, तो (पूर्व-पर) दोनों दिन एकाहारी रहना चाहिए इसे भी उपवास कहा जाता है, ऐसी पौराणिकी जनश्रुति है और एक प्रहर से अधिक तीन प्रहर तक यदि भद्रा रहे तो उस दिन उपवास रहना चाहिए अन्यथा एकाहार करे । अनन्तर समस्त औपैध मिथित जल से लान करे, जिसमें सुगंध और आँवला पड़ा हो । यदि नदी अथवा सरोवर या कूप लान मुलभ हो तो अत्युत्तम, क्योंकि यह लान परमोक्तम बताया गया है । ३१-३६। स्नान, देव-पृतृ तर्पण कर्मों को सुसम्पन्न कर विष्टि की कुश की मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप नैवेद्य आदि द्वारा सविधान उसकी अर्चना करे

होमं कृत्वा विष्टिनामैरष्टोत्रशतं ततः । भुज्जीत दत्त्वा विप्राय तिलान् पायसमेद च ।

सतिलां कृशरां भुक्ता पश्चाद्भुज्जीत कामतः ॥३८

छायासूर्यसुते देवि विष्टिरिष्टरथदायिनि । पूजिताऽसि यथाशक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव ॥३९

उपोष्य विद्यननेन दश सप्त यथाक्रमम् । उद्यापनं ततः कुर्यात्पूर्ववत्पूज्य भास्मिनीम् ॥४०

स्थायथित्वायसे पीठे कृशरान्नं निवेद्य च । परिधाप्य कृष्णयुगं स्तुत्वा मंत्रेण तां पुनः ॥४१

द्वाह्यणाय पुनर्दद्यात्लोहं तैलं तिलास्तथा । कृष्णं सवत्सां गामेकां तथैकं कालकंबलम् ।

दक्षिणां च यथाशक्त्या दत्त्वा भद्रां विसर्जयेत् ॥४२

य एवं कुरुते पर्य सम्यगभद्रावतं नरः । विष्णो न जायते तस्य कार्यारम्भे कदाचन ॥४३

राक्षसाश्च पिशाचा वा पूतनाशाकिनीग्रहाः । न पीडयन्ति तं मर्त्यं यो भद्रावतमाचरेत् ॥४४

न चैवेष्टवियोगः स्यान्न हानिस्तस्य जायते । देहान्ते याति सदनं भास्करस्य न संशयः ॥४५

सूर्यात्मजातिदयिता भागिनी शर्नेर्या मर्त्ये भ्रमत्यतिरथा करणक्रमेण ।

तां कृष्णभासुरमुखीं सम्प्रोष्य विष्टिमिष्टिरसिद्धिमुद्घोऽपि पुमानुपैति ॥४६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

विष्टिव्रतवर्णं नाम सप्तदशाधिकशतमोऽध्यायः । ११७

और आहृति प्रदान करके तिल और पायस ब्राह्मणको अर्पित करे । अनन्तर तिलसमेत कृशरान्न (खिचड़ी) का भोजन करके पीछे यथेच्छ वस्तु का भोजन करे । उसकी क्षमा प्रार्थना इस भाँति करे—छाया और सूर्य की पुत्री, देवि! विष्टि! तुम अभीष्ट सिद्धि करती हो, मैंने तुम्हारी यथा शक्ति पूजा की है अतः मेरा कल्याण करने की कृपा करो । इस विधान द्वारा क्रमशः सत्रह उपवास कर लेने के उपरात पूर्व की भाँति उस भागिनी की अर्चना पूर्वक उद्यापन कार्य सुसम्पन्न करे—लोहे के आसन पर उसे स्थापित और काले चार वस्त्रों से आच्छब्र करके समंत्रक पूजन स्तुति करे । पश्चात् कृशरान्न (खिचड़ी), लोह, तिल, तैल, सवत्सा कृष्णा गौ, काला कम्बल और यथा शक्ति दक्षिणा से उसे सुसम्मानितकरे तथा वह सब वस्तु ब्राह्मण को अर्पित करके भद्रा व्रत को सुसम्पन्न करता है उसके कार्यारम्भ में कभी-भी विघ्न नहीं होता है । भद्रा व्रत के सम्पन्न करने वाले प्राणी को राक्षस, पिशाच, पूतना, शाकिनी, तथा गृहगण कभी पीडित नहीं करते हैं, न उसे कभी इष्ट वियोग हो और न उसकी कभी हानि ही सम्भव हो सकती है । देहावसान के समय उसे भास्कर लोक प्राप्त होता है । इस प्रकार उस भद्रा की, जो सूर्य की दयिता पुत्री और शनि की भगिनी होकर इस मर्त्य लोक में (वव) आदि करणों के साथ क्रमशः रथ का अतिक्रमण करने वाले वेग से विचरती है और जिसका मुख कृष्ण वर्ण एवं प्रदीप्त है, उपवास रह कर अर्चना करने पर मूढ़ पुरुष को भी इष्ट सिद्धि हो जाती है । ३७-४६

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

विष्टि व्रत वर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त । ११७।

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

अगस्त्यव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अगस्त्यव्रतमस्त्यन्यत्सर्वप्रणाशनम् । तच्छृणुष्व महीपाल कथ्यमानं मयानव ॥१
युधिष्ठिर उवाच

शृणोमि ब्रूहि मे कृष्ण देवर्षेस्तस्य चेष्टितम् । जन्म चैवार्घ्यदानं च कालमुद्गमनस्य च ॥२
श्रीकृष्ण उवाच

मित्रश्च वरुणश्चैव पूर्वमेतौ सुरोत्तमौ । मंदरस्य समीपे तु चेरतुर्धिपुलं तपः ॥३
तयोः संक्षेभणार्थाय वासवेन वराप्सराः । उर्वशी प्रेषिता तत्र रूपैदार्यगुणान्विता ॥४
तस्याः संदर्शनादेव खुभितौ तौ सुरोत्तमौ । विकारं मनसो बुद्धा कुंभे वीर्यं ससर्जतुः ॥५
निमेः शाशात्तद जातो वशिष्ठो भगवानृषि । अनन्तरमगस्त्यरत्नं जातो दिव्यस्तपोऽधनः ॥६
मलयस्थैकदेशे तु वैखानसविधानतः । सभार्यः संवृतो विप्रैस्तपस्तपे सुदुश्चरम् ॥७
थास्तां दैत्यौ पुरा दुष्टावादौ कृतयुगस्य तु । नाम्रा इल्वलवातापी देवनाह्यणकण्टकौ ॥८
तयोरेकोऽभवन्मैषो द्वितीयो भोज्यदायकः । श्राद्धक्रमेण तेनैव बहवो नाशिता द्विजाः ॥९

अध्याय ११८

अगस्त्यव्रतवर्णन

श्री कृष्ण बोले—महीपाल, अनघ! समस्त पापों को विनष्ट करने वाले एक अन्य अगस्ति नामक व्रत बता रहा हूँ, सुनो । १

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! उन देवर्षि का व्रत सुनने के लिए तो मैं तैयार हूँ, किन्तु मुझे उनका जन्म, अर्घ्यदान और उनके प्रस्थान करने का काल भी बताने की कृपा करें । २

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में मित्र और वरुण नामक दोनों श्रेष्ठ देवों के मन्दराचलपर तप करना आरम्भ किया । उनके विपुल तपश्चर्या को देख कर वासव (इन्द्र) ने उन्हें विचलित करने के लिए उर्वशी नामक एक श्रेष्ठ अप्सरा वहाँ भेजा, जो रूप-सौन्दर्य और उदारता आदि गुणों से सुविभूषित थी । उसे देखते ही क्षुब्ध होने पर उन दोनों देवों ने मनो विकार उत्पन्न होने के नाते कुम्भ (घड़े) में अपना वीर्य-निक्षेप किया । निमि द्वारा शाप होने के कारण उस घड़े से प्रथम वशिष्ठ का जन्म हुआ और पश्चात् दिव्यशरीर एवं तपोधन अगस्त्य का । ३-६। एक बार मलयाचल पर ब्राह्मण गण सखी समेत रहते हुए वैशाख-विधान द्वारा दुष्कर तप कर रहे थे । उस समय वहाँ इल्वल और वातापी नामक दो दुष्ट दैत्य कृत युग के आरम्भ से ही रहे थे, जो देवों और ब्राह्मणों के (मार्ग के) प्रमुख कंटक रूप थे । उनमें एक भेड़ा बन जाता था और दूसरा उसे मार कर शाद्द भोज्य देता था । इस शाद्द क्रम द्वारा उन दोनों ने बहुत

अथान्यस्मिन्देते दैत्यो ह्यगस्त्यं संन्यमन्वयत् । भोज्यार्थं ब्राह्मणः साद्वः भृगुर्गर्कुलोद्भवैः ॥१०
 अगस्त्योप्यभवच्छाद्वे धौरेयो रोषदर्पितः । सोऽपि हृत्वापचद्वह्नौ वातापिं सेषबलपिण्म् ॥११
 परिविष्वमःणेषु तेषु स्तिमितं प्राह दानवम् । अगस्त्यो भगवान्कुद्धः सर्वं मे दीयतामिति ॥१२
 मैषं सांसं ततः प्रादादिल्वलः कुपितस्तदा । भक्षयित्वाऽभवत्स्वस्थो निर्विकारो महामुनिः ॥१३
 शुचिर्बंधौ ततः प्राह वातापिमिल्वलः शनैः । निष्क्रमस्वं मुनेद्देहं भित्त्वा कस्माद्विज्ञम्बसे ॥१४
 तच्छ्रुत्वाऽगस्त्यविप्रोऽपि उद्गारं कृतवान्गुरुम् । कुतो निष्क्रमणं प्राह भक्षितः स मया पुनः ॥१५
 जीर्णोऽयं भस्म भूतोऽयं वातापिर्बहुकण्ठकः । इल्वलोऽपि स्फुरत्कोथः सोऽगस्त्येन निरीक्षितः ॥१६
 भस्मीभूतः क्षणेनैव ततः शांतं जगद्भौ । तेन वेरेण ते दुष्टा नष्टशेषास्तु दानवाः ॥१७
 संमन्व्य निश्चयं मेरौ ततोऽगस्त्यमुपागतः । विद्वर्द्धिष्यवस्तेजो मुनेरस्य दिवौकसः ॥१८
 तेऽगस्त्यमार्हुर्बहुर्षें समुद्रं शोषयस्व वै । तच्छ्रुत्वाऽगस्त्यविप्रोऽपि आग्नेयों धारणां दध्यत् ॥१९
 तथा पीतः समुद्रोऽपि आंतमीनोर्मिकच्छपः । पीते समुद्रतोयेऽपि देवैः कुद्धेस्तु दानवाः ॥२०
 क्षयं नीता: क्षणात्तर्वे क्रन्दनानाः पुनःपुनः । क्षेमं जगत्यभूतसर्वमगस्त्यर्थः प्रसादतः ॥२१
 अथ गंगानन्दीतोयैः तंपूर्णे सागरे पुनः । मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥२२
 ममन्थुः सहिताः सर्वे समुद्रं दैत्यदानवाः । अथोत्थिते रत्नसंघे सोमे श्रीकौस्तुभे गजे ॥२३

ब्राह्मणों का विनाश किया । तदुपरांत एक दिन भृगु गर्ग आदि कुल के ब्राह्मणों के साथ अगस्त्य ऋषि को भी उस देत्य ने भोजनार्थ अपने यहाँ निमंत्रित किया । जिसे अगस्त्य ने वहाँ पहुँच कर अपना रोप प्रकट कर दिया था । इल्वल ने वातापी को भेड़ा बनाकर मार डाला और उसके मांस को अग्नि में पका कर भोजनार्थ रखा । उस समय मण्डलाकार समस्त ब्राह्मणों के बैठ जाने पर भगवान् अगस्त्य ने कुद्ध होकर उस दानव से कहा—सब मांस मुझे दे दो । इल्वल भी कुपित होकर उस भेड़ का सम्पूर्ण मांस उड़ें दे दिया । महामुनि (अगस्त्य) ने वह सब मांस भक्षण कर पूर्व की भाँति ही स्वस्थ रहे, किसी प्रकार का विकार नहीं हुआ । हाथ मुख शुद्ध करने पर इल्वल मे वातापी से कहा—मुनि की देह विदीर्ण कर निकलो, विलम्ब क्यों कर रहे हो । ७-१४। उसे सुनकर ब्राह्मण अगस्त्य ने लम्बी डकार लेकर कहा—मैंने उसका भक्षण कर लिया है अतः अब उसका निकलना कैसे सम्भव है! ब्रह्म कण्ठक यह वातापी भस्म होकर (पेट में) पच भी गया । यह सुनकर कुद्ध होने ने नाते इल्वल का होठे फड़कने लगा । किन्तु अगस्त्य के देखने मात्र से वह भी उसी क्षण भस्म हो गया, जिससे सम्पूर्ण जगत् शांत हुआ था । पश्चात् उस पैर के कारण विनष्ट होने से शेष बचे हुए दानवों ने आपस में मंत्रणा करके मेरु पर्वत को प्रस्थान किया । देवों ने अगस्त्य मुनि के तेज को प्रज्वलित करने के विचार से उनसे कहा—ब्रह्मर्षे! समुद्र को सूखा कर दें । यह सुनकर ब्राह्मण अगस्त्य ने आग्नेयी मर्यादा धारण कर उस समुद्र का पान कर लिया, जिसमें मछलियाँ, भैंवर और कछुए आदि शान्त रहते हैं । पश्चात् देवों ने कुद्ध होकर क्षण मात्र में करुण क्रन्दन करने वाले दानवों का विनाश कर दिया । अगस्त्य ऋषि के प्रसाद से सारा संसार पुनः कल्याण मय हुआ और गंगा-जल द्वारा सागर को पूरा कर दिया । अनन्तर एक समय दैत्य दानवों ने मंदराचल की मथानी और वासुकी रस्सी बना कर समुद्र मन्थन आरम्भ किया । १५-२२। मन्थन करने से समुदाय—चन्द्र, लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, ऐरावत गजराज—के निकलने पर अत्यन्त लोभ वश पर्योनिधि

अतिजोभान्मथगमने सागरे पयसां निधौ । अथोलिथं ज्वलद्रौद्रं कालकूटं महाविषम् ॥२४
 येनासौ सुरसंधाते आशूर्जिता इवाभवत् । सागरं संप्रविष्टस्ते रात्रौ रात्रौ विनिर्ययुः ॥२५
 निर्गम्य च वधं चक्रमुनीनामूर्धवर्तेत्साम् । बभंजुर्यज्ञप्राणि दिवा तोये निलित्यरे ॥२६
 समुद्रमध्ये न ज्ञात्वा ब्रह्मा नारायणो हरः । वायुः कुबेरो वसवः सर्वे देवाः सवासवाः ॥२७
 ततो मन्दैः शंकरेणकिञ्चित्तत्रैव भक्षितन् । क्षणाद्वाग्धः स यंत्रोदपि नीलकंठीकृतो हरः ॥२८
 ब्रह्मापि चेतनां प्राप्य यत्रह्याग्मुवाच ह ! नात्ति यश्चज्जगत्यस्मिन्विषमापात्मुखीश्वर ॥२९
 अगस्त्यो दक्षिणाशायां लङ्घामूले महामुनिः । तदगच्छध्वं महाभागाः शरणं सवदाह्यासौ ॥३०
 एवमुक्ता गता देवा अगस्त्याश्रमदक्षिणाम् । देवान्वीक्ष्य च तान्हर्षादगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥३१
 ध्यानं चक्रे दिष्टं येन हिमाद्रौ संप्रदेशितम् । कंठीसूत्रं निकुंजेषु हिगर्पवर्तसानुषु ॥३२
 तस्मिन्काले विषं लग्नं किञ्चिच्छेषं दुशादिषु । उन्मत्तकरवीराकर्कस्थलसूमिजलानिले ॥३३
 तद्विषं चूर्जितं तेन क्षणातांकोचितं तथा । हिमवातेन दुष्टेन वहमानेन पाण्डव ॥३४
 मनुष्याणां तु जायते रोगा नाना विधा भुवि । ते च मासत्रयं सार्वं प्रवृहंति विषोल्बणाः ॥३५
 वृषसंक्रांतिमारभ्य सिंहांते शाम्यते विषम् । रोगदोषापनोदश्च भवेत्पार्थं प्रभावतः ॥३६
 एवं कालेन महता नीरुजे व्याधिवर्जिते । जगत्यस्मिन्पुरा पार्थं घनीभूते प्रजागणे ॥३७

सागर का मन्थन करना बन्द नहीं किया । अनन्तर ज्वलन्त एवं रौद्र कालकूट महाविष के निकलने पर सभी दैत्य गण मूर्च्छित से होने लगे । किन्तु वे लोग समुद्र में छिप गये और रात्रि के समय ही बाहर निकलते थे । इस प्रकार प्रत्येक रात्रि में बाहर निकल कर तेजस्वी महर्षियों का वध करते, उनके यज्ञपात्र तोड़ते और दिन में समुद्र में छिप जाते थे । २३-२६। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वायु, कुबेर, वसुओ इन्द्र आदि देवगण समुद्र के मध्य में उन्हें खोज नहीं सकते थे । अनन्तर मंत्र द्वारा शंकर ने कुछ विष का पान किया कि उसी क्षण मंत्र दग्ध हो गया और उन्हें नील कण्ठ होना पड़ा । कुछ समय में वेतना प्राप्त कर ब्रह्मा ने कहा—ईश्वर ! यह तो महान् अनथं उपस्थित हुआ । इस समस्त जगत् में इस विष का पान करने वाला कोई नहीं है अतः देव वृन्द ! दक्षिण दिशा में लङ्घा के समीप महामुनि अगस्त्य रह रहे हैं । तुम लोग उन्हीं दी शरण जाओ, क्योंकि वे सर्वदा शरण देते रहे हैं । उनके ऐसा कहने पर देवों ने दक्षिण दिशा में स्थित अगस्त्य आध्रम का प्रस्थान किया । देवों को वहाँ उपस्थित देख कर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य ने हिमालय में जिस के द्वारा वह विष प्राप्त हुआ था । उसका ध्यान किया । उन्होंने देखा—हिमालय की चोटी और निकुञ्जों में वह विष संलग्न है । और उसका कुछ थोड़ा -सा शेष अंश वृक्षों आदि में संलग्न दिखायी दिया, जो धूरा, मुचुकुन्द वृक्ष, कनेर, मदार की भूमि, जल और वायु में भी प्रविष्ट हो चुका था । उन्होंने उस विष को क्षण मात्र में ही पूर्ण कर संकुचित (अल्प मात्रा में) कर दिया । पाण्डव ! हिमालय की उस दुष्ट वायु के चलने पर इस धरातल में मनुष्यों के अनेक भाँति के रोग उत्पन्न होते हैं और वह विष-प्रज्ज्वलित वायु वृष संक्रान्तिसे आरम्भ होकर सिंह संक्रान्ति तक तीन मास चलती है और अन्त में शान्त हो जाती है, जिससे रोग दोष सभी शान्त हो जाते हैं । २७-३६। पार्थ ! पहले समय में इस जगत् के चिरकाल तक नीरोग और व्याधिहीन होने पर प्रजाओं की अत्यन्त वृद्धि हुई । मर्त्यलोक के इस प्रकार ऊपर हाथ

निरन्तरे भर्त्यलोके ऊर्ध्वबाहु प्रसारणो । बलवान्धूमनिर्देशान्मृत्युभ्राम्यति मूर्तिमान् ॥३८
 प्रजा व्यापादयन्कालादाजगाम महामुनेः । समीपं मूर्तिमान्कुद्दो मृत्युस्तेन निरीक्षितः ॥३९
 भस्मीबभूव पश्चाच्च द्वह्णः सुखकारणात् । व्याधिवृन्दरामोपेतो मृत्युरन्यो विनिर्मितः ॥४०
 तथान्यो दण्डकारण्ये श्वेतो नाम नृपोत्तमः । स्वमासमशनता तेन निर्वेदात्मार्थितो मुनिः ॥४१
 भगवन्सर्वमेवान्यद्वत्तं राज्यमदान्मया । अन्नं जलं वा श्राद्धं द । न दत्तं पापबृद्धिना ॥४२
 ततोऽगस्त्यः कारणया रत्नैः श्राद्धमकल्पयन् । श्राद्धे निवृत्ते सहसा दिव्यदेहः श्रिया वृतः ॥४३
 प्राप्तश्च परमस्थानमगस्त्यर्थः प्रसादतः । अथ विन्ध्यो महाशेषः सूर्यरोषाद्वचवर्धतः ॥४४
 कस्मान्मेहमिवास्तौ मम न करोति प्रदक्षिणम् । दृद्धमानं तु तं दृष्ट्वा ततो देवाः सवासवाः ॥४५
 एकीभूयाश्रमं गत्वा स्तुत्वा देवर्षिपुञ्जवम् । अगस्त्यमूर्च्छगवन्सूर्यमार्गनिरोधिनम् ॥४६
 विन्ध्यं निवारय स्वैनं स्थितौ स्थापय पर्वतम् । आगस्त्योपि द्रुतं गत्वा प्राहेदं विन्ध्यपर्वतम् ॥४७
 प्रस्थितं तीर्थयात्रायां विद्धि मामचलोत्तमं स्थितौ च स्थीयतां तावद्यावदागमनं मम ॥४८
 एवमुक्त्वा सम्प्रयातो नाद्यापि विनिवर्तते । दृश्यते भ्राजयन्नाशां दक्षिणां गगने ज्वलन् ॥४९
 त्रैलोक्यवंद्यचरणो लोपामुद्रासहायवान् । लोपामुद्रापि तं प्राह देवर्षि देवपूजितम् ॥५०
 तत्राश्रमस्थलिकायामृतुकाले ह्यपुस्थिते । भोक्तुमिच्छामि विषयांस्त्वया सह सुखैषिणी ॥५१
 भवेद्यदि गृहं रम्यं ^१सर्वरत्नविभूषितम् । गजै रथैश्च सम्पूर्णं शयनैः प्रवरासनैः ॥५२

फैलाये बढ़ते समय सबल मृत्यु धूम की भाँति मूर्ति मती होकर प्रजाओं का विनाश करती समयानुसार महामुनि अगस्त्य के समीप आई । उन्होंने मूर्तिमान् मृत्यु को कुद्द देखकर तुरन्त भस्मकर दिया किन्तु ब्रह्मा के सुखार्थ व्याधिवृन्द समेत एक अन्य मृत्यु की रचना की । एक बार दण्डकारण्य निवासी नृपोत्तम श्वेत ने, जो अपने मांस का भक्षण कर (प्रेत योनि का) जीवन व्यतीत कर रहा था, अत्यन्त दुःखो होकर मुनि अगस्त्य से प्रार्थना की—भगवन्? राज्य मद में आकर पाप बुद्धि मैंने सब कुछ का दान किया किन्तु अन्न, जल और श्राद्ध दान नहीं किया (उसी का यह दुष्परिणाम प्राप्त हुआ है) । इसे सुनकर अगस्त्य ने करुणया रत्नों द्वारा उसका श्राद्ध सम्पन्न किया जिस से श्राद्ध सम्पन्न होते ही उसे दिव्य देह की प्राप्ति पूर्वक उत्तमलोक की प्राप्ति हुई । एक बार विन्ध्याचल सूर्य के (ऊपर कुद्द होकर—क्यों ये मेरु का ही प्रदक्षिणा द्वारा सम्मान करते हैं—ऊपर (आकाश में) बढ़ने लगा) । उसे बढ़ते देख कर इन्द्रादि—देव गण एक साथ देवर्षि अङ्गव अगस्त्य के आथर्म में जाकर उनकी स्तुति करने लगे—भगवान्! सूर्य मार्ग का अवरोध करने वाले इस विन्ध्य पर्वत को आप (ऊपर बढ़ने से) रोकिये और यथा स्थान स्थित कीजिये । इसे सुनकर अगस्त्य ने शीघ्र वहाँ जाकर विन्ध्यपर्वत से कहा—अचलोत्तम! मैं तीर्थ यात्रा का प्रस्थान कर चुका हूँ, अतः जब तक मैं पुनः लौट न आऊँ तुम अपने यथा स्थान स्थित रहो । ३७-४१ इतना कह कर वे चले गये और आज तक न लौटे । दक्षिण दिशा की ओर आकाश में प्रकाश पूर्ण सुशोभित दिखायी देते हैं । उसी भाँति लोपा मुद्रा ने उस आथर्म भूमि में ऋतु काल उपस्थित होने पर त्रैलोक्य वन्दनीय एवं देव पूजित देवर्षि अगस्त्य से कहा—मुने! मैं उस की लिप्सा से तुम्हारे साथ विषयों का उपभोग करना चाहती हूँ । अतः एक ऐसा उत्तम गृह होना चाहिए, जो समस्त रत्नों, गजों और रथों से परिपूर्ण, उत्तम शय्या,

१. सर्वरत्नसमन्वितम् ।

दुकूलपृष्ठनेत्रैश्च दिलासैर्लितैर्मुने । त्वया सह समायोगं यास्येऽहं कुरु चिन्तितम् ॥५३
 एतच्छृत्वा मुनिर्हृष्टः प्राह्वद्वन्दवं क्षणात् । कारयामासभवनं संपूर्णं रत्नराशिभिः ॥५४
 तत्र ऐमे स भगवानगास्त्यः स्वाश्रमे सुखम् । तस्यैवं चेष्टितस्यर्थः प्रदच्छाप्य युधिष्ठिर ॥५५
 आस्तिक्यबुद्धया भक्त्या च धर्मं प्राप्त्यसि पाण्डव । कन्यायामागते सूर्ये अर्वाग्वै सप्तमे दिने ॥५६
 कन्यायां समनुग्राप्ते सूर्ये यः सन्निवर्तते । प्रत्यूषसमयेविद्वान्कुर्यादित्योदये निशि ॥५७
 स्नानं शुक्लतिलैस्तद्वच्छुक्लमाल्याम्बरो गृही । स्थापेद्वक्षणं कुम्भं माल्यवस्त्रविभूषितम् ॥५८
 पञ्चरत्नसमायुक्तं धृतपात्रेण संयुतम् । नानाभृत्यसमोपेतं सप्तधान्यसमन्वितम् ॥५९
 काञ्चनं कारपित्वा तु यथाशक्त्या सुशोभनम् । पुरुषाकृतिं प्रशान्तं च जपमण्डलधारिणम् ॥६०
 कमंडलुकरं शिष्यैर्मृगैश्च परिधारितम् । मृत्युं विषहन्तारं दर्भक्षेष्टकरं मुनिस् ॥६१
 तस्मिन्क्लेसे समालग्नं चन्दनेन ततो न्यसेत् । स्नापितं चानुलिप्तं च चन्दनेन सुगन्धिना ॥६२
 पूजितं चापि कुमुर्मैर्द्यूर्धूरैस्तु धूपितम् । ततश्चार्धं प्रदातव्यो यैर्द्रव्यैस्तानि मे शृणु ॥६३
 खर्जूरैर्नीलिकैरेष्वच कूष्माण्डस्त्रपुपौरपि । कर्वोटकारवेलैश्च कर्तूरैर्नीजपूरकैः ॥६४
 वृत्ताकैर्दाइमैश्वचै नारङ्गैः कदलीफलैः । द्रव्यकुरैः कुशैः काशैः पद्मैर्नीलोत्पलैस्तथा ॥६५
 नानाप्रकारैर्भक्ष्यैश्च गोभिर्वस्त्रै रसैः शुभैः । दिर्घ्वदैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रे निधापितैः ॥६६
 सौवर्णरौप्यपात्रेण ताम्रवंशमयेन च । मूर्धिनं स्थितेन नम्रेण जानुभ्यां पृथिवीतले ॥६७

पहनने के यथेच्छ वस्त्र तथा ललित विलास के साधन रूप शृङ्गारादि की वस्तुओं से सुसज्जित हो । इसलिए मेरे उस संयोग सुखार्थ प्रायः इन सभी आवश्यकताओं को पूरी करने की कृपा करें । यह सुनकर मुनि अगस्त्य ने प्रसन्न होकर उसी क्षण कुबेर को बुलाकर उनके द्वारा सम्पूर्ण रत्नराशिपूर्ण गृह बनवाया । पश्चात् भगवान् अगस्त्य ने उस अपने आथम में सुखपूर्वक रमण किया । अतः युधिष्ठिर! इस प्रकार की चेष्टाओं से सुसम्पन्न करने वाले उन अगस्त्य ऋषि के लिए अर्थं प्रदान करो । क्योंकि भक्ति पूर्वक इस प्रकार की आस्तिक बुद्धि रखने से तुम्हें धर्म की प्राप्ति होगी । पाण्डव! कन्या राशि पर सूर्य के आने के सात दिन पहले जो विद्वान् प्रातः काल सूर्योदय के साथ शुक्र तिल मिश्रित स्थान और श्वेत वस्त्र धारण कर एक वस्त्र रहित सुन्दर कलश, जो माला वस्त्र से विभूषित हो, पञ्चरत्न और धृतपूर्ण पात्र समेत स्थापित कर उसकी सविधि अर्चना करे । अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य, सप्त धान्य से उसे सुसम्मानित करके उन मुनिकी पुरुषाकार वाली सुवर्ण प्रतिमा स्थापित करे, जो यथाशक्ति सुवर्ण द्वारा रचित, सुशोभन, प्रशान्त, जय मण्डल धारण किये, हाथ में कमण्डल, चारों ओर शिष्य और मृगों से घिरे हों । मृत्यु और विषके हन्ता, दर्भक्षि और अभीष्ट प्रदायक उन मुनि के क्रमणः पूजन में सर्वप्रथम उन्हें चन्दन पर प्रतिष्ठित करके स्नान कराये और सुगन्ध पूर्ण चन्दन का लेपन करे । ४९-६२। अनन्तर मनोरम पुष्ट और उत्तम धूप से पूजन करने के उपरान्त जिस प्रकार का अर्थं उन्हें प्रदान करना चाहिए मैं बता रहा हूँ, शुनो! खजूर, कुम्हडा, बेल, करेला, कचूर, वृत्तक—, अनार, नारंगी, केला, दूवांझर, कुश, काश कमल, नील-कमल, अनेक भाँति के भक्ष्य गौ उत्तम वस्त्र सप्त धान्य की हरियाली को सुवर्ण, चाँदी, ताँबे अथवा वाँस के पात्र में रख कर जानु (घुटने) के बल पृथिवी में आसन पर बैठे हुए उस पात्र को अपने शिर

दक्षिणाभिमुखो भूत्वा हृष्यपाद्यादिकं च यत् । शीलेन चेतसा भस्या दद्यात्कौरवनन्दन ॥६८
काशापृष्पप्रतीकाश अग्निसारतसंभव । मित्रावरुणयोः पुत्र कुंभयोने नमोऽस्तु ते ॥६९
विंध्यवृद्धिक्षयकर मेषतोयविषापह । रक्तो बल्लभदेवर्षं लङ्घावास नमोऽस्तु ते ॥७०
वातापर्वक्षितो येन रम्भुद्राः शोषिताः पुरा । लोपामुद्रापतिः श्रीमान्योऽसौ तस्मै नमोऽस्तु ते ॥७१
नेनोदितेन पापानि प्रलयं यांति व्याधयः । तस्मै नमोऽस्त्वगस्त्वय सशिष्याय सुपुत्रिणे ॥
ब्राह्मणो वेदऋचया दद्यादर्थं नमोऽस्तु ते ॥७२

“अगस्त्यः खनमानश्च नित्यं प्राजापत्यं बलिभिर्छनानः ।

उभौ वर्णो दृष्ट्यनुग्रहार्थं नुपोष सत्यादेष्वशिष्यो जगान् ॥” ॥

दत्त्वैवमर्थं कौतेय प्रतिपूज्य च पुष्पकैः । विसर्जित्वागस्त्यं तं दिप्राय प्रतिपादयेत् ॥७३
दैवज्ञव्यासरूपाय वेदवेदांगवादिने । एवं यः कुशते भक्त्या हृगस्त्यप्रतिपूजनस् ॥
फलमेकं तथा धान्यं कोपं वासं परित्यजेत् ॥७४

सम्पूर्णे च ततो वर्षे पुनरन्यदुपक्रमेत् । दत्त्वादर्थं सप्तवर्षाणि क्रमेणानेन पाण्डव ॥
पुमान्फलमवाप्नोति तदेकाप्रामाननः शृणु ॥७५

ब्राह्मणश्चतुरो वेदान्सर्वशास्त्रविशारदः । क्षत्रियः पृथिवीं सर्वां प्राप्नोत्यर्णवमेखलाम् ॥७६
वैश्योऽयायुष्यमाप्नोति गोधनं चापि नंदति । शूद्राणां धनमारोग्यं सन्मानश्चाधिको भवेत् ॥७७
स्त्रीणां पुत्राः प्रजायंते सौभाग्यं वृद्धिऋद्धिमत् । विधवानां महापुण्यं वर्धते पाण्डुनन्दन ॥७८

से लगाये, दक्षिणाभिमुख, प्रसन्नचित्त एवं भक्ति पूर्वक उन्हें अर्ध्य प्रदान करे—कौरवनन्दन! पुनः उनकी इस प्रकार क्षमा याचना करे—काश पुष्प के समान (श्वेत रूप), अग्नि और वायु से उत्पन्न एवं मित्रा वरुण के पुत्र कुम्भ योनि अगस्त्य को नमस्कार है। विन्ध्यपर्वत की वृद्धि की क्षय, भेंडा, जल और विष के अपहारी, रक्तवर्ण वल्लभ देवर्षि एवं उन लंकावासी मुनि को नमस्कार है। वातापी का भक्षण और समुद्र शोषण करने वाले उदय होने पर समस्त पाप अनेक भाँति की व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं, शिष्य और सुपुत्र समेत उन अगस्त्य ऋषि को नमस्कार है । ६३-७२। वेद की ऋचा द्वारा ब्रह्मा को अर्ध्य प्रदान करने वाले ऋषि को नमस्कार है। आकाश में स्थित, नित्य प्राजापत्य बलिके इच्छुक, वृष्टि के हेतु दो भाँति के वर्ण अगस्त्य ने शिखाहीन ही यात्रा की। कौतेय! इस भाँति उन्हें अर्ध्य, पुष्पों से पूजित और विसर्जन करके वह प्रतिमा आदि किसी ज्योतिषी, व्यास रूप एवं वेद-वेदाङ्ग वेत्ता, विद्वान ब्राह्मण को अर्पित करे। इस भाँति भक्तिपूर्वक अगस्त्य की पूजा करने वाले को एक फल, एक अन्न और क्रोध का सर्वथा त्याग करना चाहिए तथा वर्ष की समाप्ति होने पर पुनः आरम्भ करना चाहिए। पाण्डव! इस प्रकार सात वर्ष तक इसी क्रम से अर्ध्य प्रदान करने वाले पुरुष को जिस फल की प्राप्ति होती है, सावधान होकर सुनो! ब्राह्मण चोरों वेद सहित सम्पूर्ण शास्त्रों का मर्मज्ञ विद्वान् होता है। क्षत्रिय को समुद्र से धिरी हुई समस्त पृथिवी प्राप्तिपूर्वक प्राप्त होता है। तथा शूद्रों को धन, आरोग्य और अधिक सम्मान प्राप्त होता है। उसी प्रकार स्त्रियों को अनेक पुत्र, भक्ति-वृद्धि समेत सौभाग्य प्राप्त होता है। पाण्डुनन्दन!

कन्या भर्तारसाम्नोति व्याधेर्मुच्येत दुःखितः ॥१७९
 येषु देशेष्वगस्त्यर्थेः पूजनं क्षियते जनैः । तेषु देशेषु पर्जन्यः कामवर्षी प्रजायते ॥८०
 ईतयः प्रशमं यान्ति नश्यन्ति व्याधयस्तथा । पठंति ये त्वगस्त्यर्थे: स्थानं शृण्वन्ति चापरे ॥८१
 ते सर्वे पापनिर्मुक्ताशिचरं स्थित्वा महीतले । हंसयुक्तविमानेन स्वर्गं यान्ति नरोनम ॥८२
 मर्त्यो यदीच्छति गृहं परमद्वियुक्तं भोगं शरीरमरुजं पशुपुत्रपुष्टिम् ।
 तत्सर्ववल्लभमुनेष्वदये महार्घ्यं यच्छेन्महार्घफलवस्त्रधनैः सहान्वैः ॥८३
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरस्वाद
 अगस्त्याविधिव्रतवर्णनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः । १ १८

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अभिनवचन्द्रार्घ्यव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थं पार्थिवं दिव्यस्त्रीमुखपङ्कजसेंदवे । शृणुव्याभिनवस्येदोरुदयेऽर्घ्यविधिं परम् ॥१
 रविद्वादशभिर्भगीर्वास्त्वा दृश्यते यदि । प्रदोषसमये पार्थं अर्घ्यं दद्यात्तदा विभो ॥२
 द्वितीयायां सिते पक्षे संध्याकाले हृषपस्थिते । संस्थाप्याभिनवं चन्द्रं स भूम्यां दृश्यते यदि ॥३

इसके द्वारा विधवाओं को महान् पुण्यफल, कन्या को मुहाग पति और रोगी रोगमुक्त होता है । ७३-७८।
 जिस-जिस देशों के निवासी अगस्त्य कृष्णि की सप्रेम अर्चना करते हैं, उन उन देशों में मेघवृन्द वहाँ की
 प्रजाओं के अनुकूल वर्षा करते हैं । नरोत्तम! अगस्त्य कृष्णि इस आख्यान को पढ़ने और सुनने वाले भी
 पाप मुक्त होकर इस भूतल में चिरकाल तक स्थायी रहते हैं और देहावसान के समय हंस युक्त विमान
 द्वारा स्वर्ग की यात्रा करते हैं । इस प्रकार उत्तम सिद्धि सम्पन्न गृह, उत्तम भोग, नीरोग शरीर और पशु
 तथा पुत्रों की पुष्टि चाहने वाले मनुष्यों को वल्लभ मुनि अगस्त्य के उदय होने पर प्रबोत्तर विधान द्वारा
 उत्तम फल वस्त्र आदि का अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । ७९-८३।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

अगस्त्यार्घ्य विधि और व्रत वर्णन नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त । ११८।

अध्याय ११९

अभिनवचन्द्रार्घ्यव्रतवर्णन

श्री कृष्ण बोले—पार्थ! नवीनचन्द्र (द्वितीया के दिन) उदय होने पर पार्थिव शरीर वाली दिव्य
 सभी के मुख कमल समेत चन्द्रमा को दिये जाने वाले अर्घ्य विधान सुनो! सूर्य के अपने द्वादश भागों समेत
 पश्चिम दिशा में दिखायी पड़ने पर उस प्रदोष काल में उन्हें अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । शुक्ल पक्ष की
 द्वितीया के सायं काल चन्द्रमा के भूमि दर्शन होने पर नवीन चन्द्र का स्थापन कर गोमय (गोबर) से

गोमयं मण्डलं कृत्वा चन्दनेन सुशोभितम् । रोहिण्या सहितं देवं कुमुदःसोदसंभवम् ॥४
पुष्पचन्दन धूपैश्च दीपाक्षतज्जलैः शुभैः । द्वार्वाकुरै रत्नवरैदैध्या वस्त्रैश्च पाण्डुरैः ॥५
मंत्रेणानेन राजेन्द्र क्षत्रियः सपुरोहितः । नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः ॥
आप्यादस्व समेत्वेदं सोमराज नमोनमः ॥६

अनेन विधिनान्दर्थं सर्वकामफलप्रदम् । यः प्रयच्छति कौतेय मासिमासि समाहितिः ॥७
स कीत्यां यशसा कांत्या धन्यश्च भुवि मानवः । पुत्रपौत्रैः परिवृतो गोधान्यथनसंकुलः ॥८
स्थित्वा वर्षशतं नर्त्ये ततः सोमपुरं बजेत् । तत्रात्ते दिव्यवपुषा थोगान्भुञ्जन्नपोत्तमः ॥
वरस्त्रीभिः सहात्यर्थं यावदाभूतसंप्लब्दम् ॥९

धर्मं समृद्धिमतुलां यदि वाञ्छिसि त्वं मासानुमासमिह भद्रचनं कुरुष्व ।
सोमस्य सोमकुलनन्दनधूपपुष्पैरर्घ्यं प्रयच्छ नतजानु नवोदितस्य ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिररांवादे
अभिनवचन्द्रार्घ्यव्रतवर्णतं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १११।

मण्डलाकार (गोल) लिये और चन्दन से सुशोभित करे । पश्चात् रोहिणो समेत चन्द्रदेव को वहाँ प्रतिष्ठित कर जो, कुमुद के आमोद द्वारा उत्पन्न हुए हैं, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप शुभ अक्षत जल, द्वार्वाकुर, उत्तम रत्न, दही एवं पाण्डुरंग वस्त्र द्वारा उनकी सविधि अर्चना करे और निम्रलिखित मंत्र का उच्चारण करता रहे—राजेन्द्र! पुरोहित समेत वह क्षत्रियं सोमराज! आप प्रति मास के अन्त में बार-बार नवीन होते रहते हैं उसी भाँति मेरी भी वृद्धि करने की कृपा कीजिये, मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ । १-६। कौतेय! इस विधान द्वारा जो प्रतिमास एकाग्रचित्त से समस्त कामनाओं के पूरक आचार्य को प्रदान करता रहता है, वह मनुष्य इस भूतल में कीर्ति, यश कांति की प्राप्ति पूर्वक धन्य होकर पुत्र-पौत्र गौ, धन, धान्य का सुखानुभव करके सौ वर्ष तक इस लोक में प्रतिष्ठित रहता है और देहावसान के समय चन्द्र लोक की प्राप्ति करता है । नृपोत्तम! वहाँ पहुँचने पर उसे दिव्याङ्गनाओं के साथ अपनी दिव्य शरीर द्वारा महाप्रलय काल तक सुखोपभोग प्राप्त होता है । सोमकुल नन्दन! यदि तुम्हें धार्मिक अतुल सम्पत्ति की चाह हो तो मेरी बातें स्वीकार करो—भूमि में घटने के बल बैठकर पूर्वोक्त विधान द्वारा धूप-पुष्प मिश्रित का अर्घ्य उन नवोदय चन्द्र को सप्रेम प्रदान करो । ७-१०।

श्रीभविष्य महापुराण में उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
अभिनव चन्द्रार्घ्य व्रत वर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त । १११।

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

शुक्रबृहस्पत्यर्घपूजा!विधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः शृणु भूपालं प्रतिशुक्रप्रशांतये । यात्रार्थं ग्राणे च तथा शुक्लोदयेष्विह ॥१
 शुक्रपूजा । प्रकर्तव्यां तां निशामय सारतः । राजते वाऽथ सौवर्णे कांस्यपात्रेऽय वा पुनः ॥२
 शुक्रलपुष्टपांदरयुते सितंतण्डुलपूरिते । निधाय राजतं शुक्रं शुचि मुक्ताफलान्वितम् ॥३
 सह तेन सवत्साङ्गां ब्राह्मणाय निवेदयेत् । नमस्ते सर्वदेवेश नमस्ते भृगुनन्दन ॥
 कवे सर्वार्थसिद्धचर्यं गृहाणाद्यं नमोऽस्तु ते ॥४
 दत्त्वैवमध्यं कौत्तेय प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥५
 यावच्छुक्रस्य न कृता पूजा सोहातकैः शुभैः । वटकैः पूरिकाभिश्च गोधूमैश्चणकैरपि ॥
 तावन्न दानं दातव्यं स्त्रीभिः कामार्थसिद्धये ॥६
 एवं तस्योदये कुर्वन्यात्रादिधु च भारत । सर्वसस्यागमं चैव सर्वान्मानामवास्तुयात् ॥७
 तह्वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर । सौदर्णपात्रे सौवर्णममरेशपुरोहितम् ॥
 पीतपुष्यांबरयुतं कृत्वा स्नात्वाथ सर्षपैः ॥८
 पालाशाश्वत्यभज्जेन पञ्चगव्यजलेन च । पीताङ्गरागवसनं धृतहोमं तु कारयेत् ॥९

अथ अध्याय १२०

शुक्र और बृहस्पति की अर्धपूजा-विधि

श्रीकृष्ण बोले—भूपाल! तुहें शुक्र शांति का विधान बता रहा हूँ, सुनो! यात्रा के आरम्भ अथवा प्रस्थान के समय और शुक्रोदय में जिस प्रकार शुक्र की अर्चना की जाती है उसका सार बता रहा हूँ । चाँदी, सुवर्ण, या काँसे के पात्र में शुक्र की चाँदी की प्रतिमा पवित्र मोतियों समेत स्थापित एवं पूजित कर सवत्सा गौ के साथ उसे ब्राह्मण को अर्पित करें और अर्धदान के समय क्षमा प्रार्थना करे—समस्त देवों के स्वामी भृगुनन्दन को नमस्कार है । कवे! मेरी कामनाओं को सफल करते हुए इस अर्ध्य को स्वीकार करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ । कौत्तेय! इस प्रकार अर्ध्य प्रदान करने के अनन्तर नमस्कार करते हुए विसर्जन करे । १-५। कामनाओं की सफलता के लिए शृंगार करके वड़ा और पूरी द्वारा शुक्र की पूजा किये विना स्त्रियों को अन्नदान न करना चाहिए । भारत! इस प्रकार शुक्रोदय के समय यात्रादिकाल में उनकी अर्चना करने पर समस्त धान्य की प्राप्ति पूर्वक सभी कामनाओं की पूर्ति होती है । ६-७। युधिष्ठिर! इसी भाँति बृहस्पति की पूजा बता रहा हूँ । सुवर्ण के पात्र में देवराज के पुरोहित बृहस्पतिकी सुवर्ण प्रतिमा पीतपुष्य और पीतवस्त्र से भूषित करके राई, पलाश, पीपल, भज्ज तथा पञ्च गव्य-जल से स्नान कराये और पीताङ्गराग एवं पीतवस्त्र अर्पित कर धृत की आहुति प्रदान करे । पश्चात्

प्रणम्य च गदा सार्द्धं ब्राह्मणाय निवेदयेत्

॥१०

नमस्तैऽङ्गिरसां नाथ वाक्पतेथ बृहस्पते । कूरप्रहैः पीडितानाममृताय भवस्व नः ॥११
एवं सुरगुरुं पूज्य प्रणिष्ठ्य क्षमापयेत् । संक्रातावुदये चात्ते सर्वान्कामानवास्यात् ॥१२
अथ वा मौक्तिकान्येव सुवृत्तानि बृहंति च । भार्वावांगिरसौ चित्य तान्येव प्रतिपादयेत् ॥१३
भक्त्या मौक्तिकदानेन दत्तेन कुरुनन्दन । विल्पता दृशोः पुंसां यात्रास्वस्युदयेषु च ॥
कुर्वन्बृहस्पते: पूजां न कदाचित्प्रजापते ॥१४

ये भाग्वोदयमवाप्य सवस्त्रपुष्यां कुर्वत्यनन्यमनसैऽङ्गिरसे च पूजाम् :

तेषां गृहे प्रविशतां प्रतिशुक्लजातं विघ्नं न संभवति भारत पुण्यभाजाम् ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

शुक्लबृहस्पत्यर्धपूजाविधानं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्रतपञ्चाशीतिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु भारत वक्ष्यामि पञ्चाशीतिन्नतानि च । नोक्तानि यानि कस्यापि मुनिभिर्धर्मदर्शिभिः ॥१
भविष्यमत्स्यमातंडपुराणेषु च वर्णितम् । वाराहं वैव संगृह्ण कथ्यन्ते तानि पाण्डव ॥२

प्रणाम पूर्वक गोदान समेत वह प्रतिमा आदि ब्राह्मण को समर्पित कर क्षमा याचना करे—अंगिरागोत्र वालो के स्वामी एवं वाक्पति बृहस्पति को मैं नमस्कार कर रहा हूँ, मेरी कूर प्रह-जनित बाधा शान्ति करें। इस प्रकार संक्रान्ति में बृहस्पति देव की अर्चा और नमस्कार पूर्वक क्षमा याचना करने वाले की सभी कामनाएँ सफल होती हैं। कुरुनन्दन! शुक्र अथवा बृहस्पति को सुन्दर मोतियों द्वारा प्रार्थना समेत सुसम्मानित करे। क्योंकि भक्तिपूर्वक मौक्तिकदान या अर्पण यात्रा और अम्बुदय के समय करने पर कभी-भी किसी प्रकार का अङ्गविकार नहीं होता है। भारत! शुक्रोदय के समय वस्त्र-पुष्य से भ्रष्टि बृहस्पति की अर्चना करने वाले उस अनन्य भक्त एवं पुण्य भाजन के गृह अनिष्ट शुक्र के आगमन होने पर उसे किसी भाँति की बाधा नहीं होती है। ८-१५

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

शुक्र बृहस्पति की अर्ध्य पूजा व्रत वर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२०।

अध्याय १२१ पचासीव्रतों का वर्णन

श्री कृष्ण बोले—भारत! मैं तुम्हें पचासी व्रत बता रहा हूँ, जिन्हें धर्मदर्शी मुनियों ने कभी किसी को बताया ही नहीं है! पाण्डव! जिसकी चर्चा मैं तुमसे कर रहा हूँ भविष्य, मत्स्य, मार्तण्ड और वाराह

यदभीष्टं सुमित्राय शिष्याय च सुताय च । न कथ्यते धर्मजातं किं तेनोदरवर्तिना ॥३
श्रुतिस्मृतिपुराणेभ्यो यन्मया हृवधारितम् । तते वच्चि कुरुशेष कस्यान्यस्योपदिश्यते ॥४
स्नात्वा प्रभातसंध्यायामुपगृह्य च विष्पलम् । तिलपात्राणि यो दद्यान्न स शोचेत तत्कृते ॥५
ब्रतानामुत्तमं हैतत्सर्वप्रणाशनम् । पात्रवतमितिख्यातं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥६
सुशुद्धस्य सुवर्णस्य सुवर्ण यः प्रयच्छति । पुण्येऽहिं विप्रकविते प्रीत्या पीतयुगान्वितम् ॥७
यत्र वाचस्पतेरेतद्ब्रलबुद्धिप्रदायकम् । वृत्रघ्रस्य पुराख्यातं पुरुणा सर्वकामदम् ॥८
लक्षणं कटुतिकं च जीरकं मर्चिचानि च । हिंगुशुणिसमायुक्तं सर्वं परिचयं तथा ॥९
चतुर्थ्यमिकभक्ताराहि सहृदस्त्वा कुटुम्बिने । गृहेषु सञ्चत्तु सदा शिलायुक्तानि भारत ॥१०
एतच्छिलाव्रतं नाम लक्ष्मीलोकप्रदायकम् । कर्तव्यमिह यत्नेन मुखपाटवकारकम् ॥११
नक्तमयं चरित्वा तु गदा शार्द्धं कुटुंबिने । हैमं चक्रं त्रिशूलं च दद्याद्विश्राय वाससी ॥१२
प्रणम्य भक्त्या देवेशौ प्रीयेतां शिवकेशवौ । एतदेवव्रतं नाम भूषापातकनाशनम् ॥१३
कृत्वैकभुक्तं वर्षते शक्त्या हैमवृपान्वितान् । धेनुं तिलमर्दीं दद्यात्सर्वेष्ठस्करणैर्युताम् ॥१४
एतदुद्व्रवतं नाम पापशोकप्रणाशनम् । यः करोति पुमान्राजान्स पदं याति शाङ्करम् ॥१५
सर्वोषध्युदकस्नातः पञ्चम्यां पूज्य पञ्चकम् । सप्तोपस्त्वरदानं च यः करोति गृहाश्रमी ॥१६
गृहाद्युलूखलं शूर्पः शिला स्थाली च पञ्चमी । उदकुम्भभ्व चुल्ली च एतेषामनुकिञ्चन ॥१७

पुराणों में उसकी रुचि विस्तृत व्याख्या हुई है, उसका संकलन ही कह रहा हूँ । और सुमित्र, शिष्य एवं
पुत्र की अभीष्ट बातें उनसे न कही जाये तो उसे न कहने वाले उदरकर (पैहू) से लाभ ही क्या हो सकता
है । कुरुशेष! अतः श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणों से इस विषय का जो ज्ञान मैंने प्राप्त किया है वह तुम्हें
बता रहा हूँ, उसका उपदेश और किसे दे सकता हूँ! प्रातः काल संध्या (सूर्योदय) के समय आन करके
पीपल वृक्ष के समीप तिलपात्र का दान करने वाला पुरुष दामी चिन्तित नहीं होता है । समस्त व्रतों में
श्रेष्ठ, सम्पूर्ण पाप नाशक यह व्रत पात्रवत नाम से विख्यात है मैंने इसे किसी को नहीं बताया है । १-६।
ब्राह्मण के बताये हुए किसी पुण्य दिवस में शुद्ध आचार विचारवाले ब्राह्मण को पीतयुग समेत सुवर्ण का
दान सप्रेम देना चाहिए । बल-ञुद्धि प्रदायक वह व्रत वाचस्पति का बताया गया है । गुरु बृहस्पति ने
वृत्तासुर के हन्ता इन्द्र को यह व्रत बताया था जिससे समस्त कामनाएँ सफल होती हैं । भारत! लवण
(नमक), कटु तिक्त, जीरा, मरिच, हींग, सोंठी, का शिला (सिल-वहा) समेत दान चौथ के दिन
एकाहारी रह कर दूसरे दिन सात घरों में परिवार वाले को देना चाहिए । लक्ष्मी प्रदायक यह व्रत
शिलाव्रत के नाम से ख्यात है । मुख पटु (चतुर) होने के निमित्त नक्तभोजी होकर सुवर्ण का चक्र, त्रिशूल
और दो वस्त्र भक्ति-नमस्कार पूर्वक शिव और केशव देव को अर्पित करे । पुनः वर्ष के अन्त में इस
महाधात्क व्रत के अनुष्ठान में एकाहारी रह कर यथाशक्ति सुवर्ण की बनी हुई बैल की प्रतिमा और
तिलमयी धेनु समस्त साधनों समेत ब्राह्मण को अर्पित करनी चाहिए । राजन्! पाप-शोक नाशक इस
रुद्रव्रत को सुसम्पन्न करने पर शिवलोक शीघ्र प्राप्त होता है । ७-१५। पञ्चमी के दिन सम्पूर्ण दिन सम्पूर्ण
आषध मिश्रित जल से स्नान और पाँचों देवों की पूजा करके गृह, ओखली, सूप, सिल-बट्टा, बटलोई, घड़ा,

एतानि गृहिणां गेहे प्रस्थाप्य पुरुषोत्तमम् । उपस्करोति या नारी न सीदति कदाचन ॥१८
 एतद्गृहव्रतं नाम सर्वसौख्यप्रदायकम् । अत्रिणा हृनसूयायाः कथितं पाण्डुनन्दन ॥१९
 यस्तु नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतम् । ददाति श्रद्धयोपेतो ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥२०
 स वैष्णवं पदं याति लीलाकृतिपिं स्मृतम् । आषाढादिद्वितुर्मासिमभ्यां वर्जयेन्नः ॥२१
 पारिते च पुनर्द्वयात्तिलतैलघटं नवम् । भोजनं दायसाज्यं च स याति अवनं हरेः ॥२२
 लोकप्रीतिकरं चैतत्प्रीतिव्रतमिहोच्यते । वर्जयित्वा मधौ यस्तु दधिक्षीरघृतैक्षवम् ॥२३
 हृद्याद्वस्त्रयुगं सूक्ष्मं रसपात्रैश्च संयुतम् । संपूज्य विप्रमिथुनं गौरी से प्रीयतामिति ॥२४
 एतद्गौरोव्रतं नाम श्वानीलोकदायकम् । पुरुषो यस्त्रयोदशयो कृत्वा नक्तमथो पुनः ॥२५
 संवत्सरांते तस्मिन्वा दिवसे विघ्नवर्जितम् । अशोककाञ्चनं दद्यात्सद्रस्त्रयुगसंश्रितम् ॥२६
 विप्राय वसुसंयुक्तं प्रद्युम्नः प्रीयतामिति । कल्पं विष्णुपदे स्थित्वा विशोकः स्यात्पुनर्तृप ॥२७
 एतत्कामव्रतं नाम सर्वशोकविनाशनम् । आषाढादिद्वितुर्मासिं वर्जयेन्नर्खकर्तनम् ॥२८
 वृत्ताक्षभक्षणं चैद मधुसर्पिर्घटान्वितम् । कार्तिक्यां तु पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२९
 रुद्ग्लोकमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् । एवं पञ्चदशैः स्मृत्वा एकभक्तेन मानवः ॥३०
 सम्पूज्य पूर्णिमां देवीं लिखित्वा चन्दनादिनः । ततः पञ्च घटान्यूर्णान्प्योदधिघृतेन च ॥
 मधुना सितलण्डेन ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥३१

और चूल्हे इन सात वस्तु का दान भगवान् पुरुषोत्तम की चर्चा पूर्वक करने पर कोई भी गृहस्थ स्त्री-पुरुष भी दुःखी नहीं होता है । पाण्डुनन्दन! समस्त सुखदायक यह गृहव्रत अत्रि ने अनसुइया से कहा था । श्रद्धा समेत सुवर्ण का नीलोत्पल शक्करपात्र समेत किसी कुटुम्ब ब्राह्मण को प्रदान करना पर उसे वैष्णव लोक प्राप्त होता है और इसे लीलाव्रत कहा गया है । आषाढ़ आदि चौमासे में अम्यज्ञ का त्याग कर पुनः चौमासे में अन्त में तिल, तेल, नवीन, घट, घृतपूर्ण पायस भोजन ब्राह्मण को अर्पित करने पर विष्णु भवन प्राप्त होता है । लोक प्रीति करने के नाते इसे प्रीतिव्रत कहा गया है । मधु (चैत) मास में दही, क्षीर, घृत और गुड़ के त्याग पूर्वक सूक्ष्म रसपात्र समेत चार वस्त्र का दान ब्राह्मण दम्पति को पूजनोपरांत प्रदान करते समय 'गौरी प्रसन्न हों, कहे । भद्रानीलोकदायक इस व्रत को गौरी व्रत कहा गया है । ऋयोदशी के दिन नक्त भोजन करते हुए वर्ष के अन्त में ऋयोदशी के दिन चार वस्त्र समेत अशोक की कांचनी प्रतिमा द्रव्य समेत ब्राह्मण को प्रदान करते समय 'प्रद्युम्न प्रसन्न हों' कहे । नृप! इस भाँति इसे सुसम्पन्न करने पर कल्प पर्यंत विष्णुलोक का सुखानुभव करके शोकहीन मानव होता है । समस्त शोक विनाशक होने के नाते इसे काम व्रत कहा गया है । आषाढ़ आदि चौमासे में नख न कटाये एवं वृत्ताक्षभक्षण करे । कार्तिक में पुनः अन्त में सुवर्ण कलश को अर्पित करनेपर रुद्ग्लोक की प्राप्ति होती है और इसे शिवव्रत कहा गया है । १६-२९३। इसी प्रकार पूर्णिमा के दिन एकाहारी रहकर चन्दन आदि से पूर्णिमा देवी की रचना करके पूजा करने के उपरांत दूध, दही, घी, शहद, और मिथ्री वा शक्कर के पूर्ण घट ब्राह्मण को सादर समर्पित करे और पुनः क्षमा प्रार्थना करे—'इन पाँच कलशों के प्रदान करने से जीवों की तुष्टि होती है मेरी भी उसी प्रकार तुष्टि होनी चाहिए। इस प्रकार ब्राह्मणों के नमस्कार करने से उसके सभी

मनोरथान्पूरयस्व संपूर्णान्पूर्णिमा हूसि । पञ्चकुम्भददानेत भूतानां तुष्टिरस्तु मे ॥
 द्विजानेवं नमस्कृत्य सर्वान्कामानवासुयात् ॥३२
 एतत्पञ्चघटं नाम व्रतं पुष्टिप्रदायकम् । वर्जयेद्यस्तु पुष्टाणि हेमंतशिशिराव्रतम् ॥३३
 पुष्टप्रयं च फालुन्यां कृत्वा शक्तयाथ काञ्चनम् । दद्यादौ कालवेलायां प्रीयेतां शिवकेशवौ ॥३४
 शिरःसौगन्ध्यजननं सदानन्दकरं नृणाम् । कृत्वा परपदं याति सौगन्ध्यव्रतमुत्तमम् ॥३५
 फालुनादित्रीयायां लदणं यत्तु दर्जयेत् । समाप्ते शदनं दद्याद्गृहे चोपस्करान्वितम् ॥३६
 सम्पूर्ण्य विश्रिमिथुनं भवानी प्रीयतामिति । गौरीलोके ब्रह्मेत्कल्प्यं सौभाग्यव्रतमुत्तमम् ॥३७
 सन्ध्यामौनं नरः कृत्वा समाप्ते धृतकुम्भदः । वस्त्रयुग्मं च घंटां च ब्राह्मणाय निवेदपेत् ॥३८
 सारस्वतं पदं याति पुनरावृति दुर्लभम् । एतत्सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदायकम् ॥३९
 लक्ष्मीभैर्येऽथ रञ्चस्यामुपवासी भवेन्नरः । समाप्ते हेमदःस्तरं दद्याद्देवुसमन्वितम् ॥४०
 स वैष्णवं एदं याति लक्ष्मीः स्याज्जन्मजन्मनि । एतलक्ष्मीद्रवतं नाम दुःखशोकविनाशनम् ॥४१
 या तु नारी पिबेत्तोयं जलधारां प्रपातयेत् । समाप्तधृतसंपूर्णा दद्याद्वृत्तिकां नवाम् ॥४२
 एतद्वाराव्रतं नाम सर्वरोगहरं परम् । कांतिसौभाग्यजननं सपलीदर्पनाशनम् ॥४३
 गौरीसमन्वितं रुदं लक्ष्म्या सह जनार्दनम् । राजीसमन्वितं सूर्यं प्रतिष्ठाप्य यथाविधि ॥४४
 धूपाक्षेपण सहितं सुघण्टां पात्रसंयुताम् । यो ददाति द्विजेन्द्राणां पुष्टैरभ्यर्च्यं पाण्डुरौः ॥४५

मनोरथ सफल होते हैं । तथा पुष्टिप्रदायक इस व्रत को पंच घट व्रत कहा जाता है । हेमन्त और शिशिर के मासों में पुरुषों के त्याग कर फालुन की पूर्णिमा में दिन तीन पुष्टों की यथाशक्ति काञ्चनी प्रतिमा बनवाकर संध्या समय शिव-केशव प्रसन्न हों, कहते हुए ब्राह्मण को अर्पित करे । इसे गुसम्पन्न करने पर शिर-सुगन्धि एवं आनन्द प्राप्ति समेत उत्तम लोक की प्राप्ति होती है । और इसे सौगंध व्रत कहा जाता है । ३०-३५। फालुनमास के आरम्भ में तृतीया के दिन लवण (नमक) के त्याग करते हुए व्रत की समाप्ति में ब्राह्मण दम्पती की अर्चना पूर्वक साधन सम्पन्न सुशब्द्या प्रदान करते समय 'भवानी प्रसन्न हों' कहे । पुनः इस सौभाग्य व्रत को सुसम्पन्न करने के नाते उसे कल्प पर्यंत गौरी लोक का निवास प्राप्त होता है । सायं काल में मौन व्रत रहते हुए समाप्ति के समय धृत पूर्ण कुम्भ दो वस्त्र और घंटा ब्राह्मण को अर्पित करने पर सारस्वत पद की प्राप्ति होती है जहाँ पहुँचने पर फिर लौटना दुर्लभ हो जाता है । इसी लिए रूप और विद्या प्रदान करने के नाते इसे सारस्वत व्रत कहा जाता है । पञ्चमी के दिन उपवास पूर्वक मध्य काल लक्ष्मी की अर्चना करते हुए समाप्ति के समय धेनु समेत सुवर्ण की लक्ष्मी प्रतिमा प्रदान करने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है, और प्रत्येक जन्म में लक्ष्मी का अचल निवास होता है अतः इस दुःख शोक विनाशक व्रत को लक्ष्मी द्रवत कहा जाता है । जलाहार और जलधारा प्रपात करते (गिराते) हुए व्रत समाप्ति के दिन धृत पूर्ण नवीन द्वन्तिका प्रदान करनी चाहिए । ३६-४२। इस प्रकार इस सर्वरोगापहारी धाराव्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री को काति, सौभाग्य की प्राप्ति-पूर्वक उसकी सपली का दर्पनाश होता है । गौरी शिव, लक्ष्मी जनार्दन, और राजी सूर्य की यथा विधान प्रतिष्ठा पूजा करके पात्र समेत सुघण्टा पीत पुष्टों द्वारा ब्राह्मण की अर्चनोपरांत उन्हें अर्पित कर दक्षिणा प्रदान, और प्रणाम

दक्षिणासहितां कृत्वा प्रणम्य च विशर्जयेत् । एतदेवत्रतं नाम दिव्यदेहप्रदायकम् ॥४६
 कृत्वोपलेपनं रामभोरग्रतः केशवस्य च । यावद्वृतं समाप्यैतदेनुं च सजलान्विताम् ॥४७
 जन्मायुतं स राजा स्यात्ततः शिवपुरे वसेत् । एतच्छुत्वा व्रतं नाम बहुकल्याणकारकम् ॥४८
 अश्वत्यं भास्करं गङ्गां प्रणम्यद च वाग्यतः । एकभूतं नरः कुर्यादिष्ट चैकं विमत्स्तरः ॥४९
 व्रतान्ते विश्वमिथुनं पूज्य धेनुव्रयान्वितम् । वृक्षं हिरण्यं दद्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥५०
 दिवि दिव्यविमानस्थः सेव्यतेऽप्सरसां गणैः । एतत्कीर्तिवतं नाम भूतिकीर्तिकलप्रदम् ॥५१
 घृतेन स्नपनं कृत्वा रामभोवां केशवस्य च । अह्मणो भास्करस्यापि गौर्या लंबोदरस्य वा ॥५२
 अश्वतैत्तु समं कुर्यात्पद्मं गोमयन्णडले । समाप्य हेमकमलं तिलधेनुसमन्वितम् ॥५३
 शुद्धभष्टाइनुगुलं दद्याच्छवलोके महीयते । सामग्राय नतश्चैतत्सामव्रतमिहोच्यते ॥५४
 नयस्यामेदभूतं तु कृत्वा कन्याश्च शक्तितः । भोजयित्वा समादद्याद्वैमकञ्चुकवाससी ॥५५
 हैमं च सिंहं चित्राय दत्त्वा शिवपुरं द्रजेत् । भवार्दुर्दं सुरूपश्च शशुभिश्चापराजितः ॥५६
 एतद्वीरव्रतं नाम नारीणां च सुखप्रदम् । यावत्समाइभेद्यस्तु पञ्चदश्यां पद्योव्रतः ॥५७
 समाप्ते श्रद्धया दद्याद्गाश्च पञ्च पद्यस्त्रिनीः । दासांसि च पिशागानि जलकुभयुतानि च ॥५८
 स याति वैष्णवं लोकं पितृणां तारयेच्छतम् । कल्पान्ते राजराजः स्वात्पितृव्रतमिदं स्मृतम् ॥५९
 ताम्बूलं समये नित्यं गौरौपुत्रं ददाति या । पूगचूर्णसमायुक्तं नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥६०

पूर्वक विसर्जन करें । दिव्य देहप्रदायक इस व्रत को देवत्रत कहा जाता है । शिव और केशव (विष्णु) को लेपन भूषित करते हुए व्रत की समाप्ति में जल समेत धेनु दान करने से दश सहस्र जन्म पर्यंत राजा होता है और देहावसान होने पर शिव पुरी में निवास प्राप्त होता है इसलिए यह बहुकल्याणकारक व्रत कहा जाता है । पीपल के वृक्ष, सूर्य और गङ्गा को मौन व्रत की समाप्ति में ब्राह्मण दम्पती की अर्चना पूर्वक उन्हें तीन धेनु समेत सुवर्ण का वृक्ष प्रदान करने पर अश्वमेध का फल प्राप्त होता है और अन्त में स्वर्ण में दिव्य विमान पर बैठे अप्सरागणों से सुसेवित होता है । ऐश्वर्य और कीर्ति प्रदान करने के कारण इसे कीर्तिव्रत कहा जाता है । शिव, विष्णु, सूर्य, गौरी और लम्बोदर (गणेश) को गोमय (गोबर) से लिपी हुई गोलाकार भूमि में, जिसमें अक्षत द्वारा समभाग का सुन्दर कमल बना हो, घृत से स्रान और पूजा करते हुए अंगुल का सुवर्ण कमल प्रदान करने पर शिव लोक की प्राप्ति होती है । सामवेद के गायन करने वाले इसे सामव्रत कहते हैं । ४३-५४। नवमी के दिन एकाहारी रह कर कन्या को यथाशक्ति भोजन कराये और सुवर्ण भूषित कंचुकी (चोली) और साड़ी अर्पित करे । व्रत की समाप्ति में सुवर्ण की सिंह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करने पर शिव पुरी प्राप्त होती है और दशकरोड़ जन्म पर्यंत सुखवान एवं शत्रु का अजेय होता है । इसे बीर व्रत कहा जाता है इससे नारियों को अत्यन्त सुख प्राप्त होता है । जो पूर्णिमा के दिन पदोव्रत आरम्भ कर व्रत की समाप्ति के दिन श्रद्धा: समेत धेनु, पीताम्बर, तथा जलपूर्ण कलश प्रदान करता है, वह अपने सौ पीढ़ी के पितरों को स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराते हुए स्वयं कल्प के अन्त में राजाधिराज (महाराज) होता है और इसे पितृव्रत कहते हैं । सुसज्जित ताम्बूल (पान का बीड़ा) गौरी पुत्र गणेश को नित्य अर्पित करते हुए वर्ष के अन्त में तृतीया के दिन सुवर्ण का ताम्बूल, जो मोती

वर्षस्यान्ते तु सौबर्णं कारणित्वा फलान्वितम् । मुक्ताफलमयं चूर्णनितम्^१ या प्रयच्छति ॥६१
 न सा प्राप्नोति दौर्भाग्यं च दौर्गन्धयं मुखस्य च । एतत्पत्रवतं नाम सौगन्ध्यजननं परम् ॥६२
 चैत्रादिवतुरो मासाभ्जलं कुर्यादियाचितम् । ज्येष्ठाषाढे च वा मासं पक्षं वा पाण्डुनन्दन ॥६३
 घृतान्ते शणिकं दद्यादभद्रदस्त्रमन्वितम् । घृतेन सहितं तद्वृत्सप्तधान्यसमन्वितम् ॥६४
 तिलपात्रं हिरण्यं च ब्रह्मलोके महीयते । कल्पांते राजराजः स्याद्वारिन्नतमिहोच्यते ॥६५
 पञ्चामृतेन लक्ष्मनं कृत्वा विष्णोः शिवस्य च । वत्सराते पुनर्देवाष्टेनुं पञ्चामृतैर्युताम् ॥६६
 विप्राय कनकं शंखं स पदं याति शांकरम् । राजा भवति कल्पांते वृत्तिन्नतमिहोच्यते ॥६७
 यो हिंसां दर्जित्वा तु मासं संवत्सरं तथा । व्रतांते हेमहरिणं कृत्वा शक्त्या विचक्षणः ॥६८
 तद्वृत्सवत्सां गां दद्यात्सोऽश्वनेधफलं लभेत् । अहिंसावत्तिनित्येत्सर्वशांतिप्रदं नुणाम् ॥६९
 माघमात्युर्षसि स्नानं कृत्वा दांपत्यमर्चयेत् । भोजित्वा यथा शक्त्या माल्यदस्त्रविभूषणैः ॥७०
 सौभाग्यं महदाप्नोति शरीरारोग्यमुत्तमम् । सूर्यलोके वसेत्कल्पं सूर्यकृतमिदं स्मृतम् ॥७१
 आषाढादिच्चतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः । विप्राद भोजनं दद्यात्कार्तिक्यां गोप्रदो भवेत् ॥७२
 घृतकुंभे ततो दत्त्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् । वैष्णवव्रतमित्युक्तं विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥७३
 अयनादयनं यावद्वर्जयेन्मधुसर्पिषी । तद्वन्ते पुण्यदानानि घृतधेन्वा सहैव तु ॥७४

पूर्ण से भूषित हो, अर्पित करने पर उस स्त्री अथवा पुरुष का दुर्भाग्य नहीं होता है और न कभी मुख-दुर्गन्धि होती है, अपितु सुगन्ध उत्पन्न होता है । और इसे पत्रवत कहा जाता है । पाण्डुनन्दन! चैत्र आदि के चार मासों में नित्य अयाचित जलदान (व्याऊ) करता है और आषाढ़ मास में घृते समय तक न कर पक्ष तक ही सीमित करते हुए व्रत की समाप्ति के दिन अन्न वस्त्र समेत मटका दान, जो घृत, सप्त धान्य, तिल पूर्ण पात्र और सुवर्ण युक्त हो, ब्राह्मण को अर्पित करने पर ब्रह्म लोक में पूजित होता है और कल्प के अन्त में राजराजा (महाराज) होता है । इसे वारित्रत कहा जाता है । विष्णु और शिव को पञ्चायतन से स्नान कराते हुए वर्ष के अन्त में पञ्चामृत समेत धेनु और सुवर्ण का शंख ब्राह्मण को अर्पित करने पर शंकर लोक की शीघ्र प्राप्ति होती है और कल्प के अन्त में राजप्रद प्राप्त होता है अतः इसे वृत्तिव्रत कहा गया है । हिंसा का त्याग रूप व्रत करते हुए मास अथवा वर्ष के अन्त में व्रत समाप्ति के दिन यथा शक्ति सुवर्ण रचित हरिण और सवत्सा गौ प्रदान करने पर उस बुद्धिमान् पुरुष को अश्वमेघ का फल प्राप्त होता है । मनुष्यों को शांति प्रदान करने के नाते यह अहिंसा व्रत कहा गया है । माघ मास में ऊषा काल (सूर्योदय के पूर्व शेष आराओं के रहते) स्नान करके दम्पती की अर्चना, भोजन, माला, वस्त्र और यथाशक्ति भूषण-भूषित करने पर महान् सौभाग्य तथा उत्तम आरोग्य की प्रतिपूर्वक अंत में सूर्य लोक में एक कल्प निवास प्राप्त होता है । इसे सूर्य व्रत कहते हैं । ५५-७३। आषाढ़ आदि के मासों में प्रातः काल स्नान, ब्राह्मण भोजन कराते हुए कार्तिक पूर्णिमा के दिन घृत पूर्ण कुम्भ (कलश) समेत गो दान करने से उस पुरुष को वैष्णव लोक प्राप्त होता है अतः यह वैष्णव व्रत कहा गया है । एक अयन से दूसरे अयन (अर्थात् सूर्य के दक्षिणायन होने से उत्तरायण अथवा उत्तरायण से दक्षिणायन) तक मधु (शहद) और घृत के

१. तृतीयायां प्रयच्छति ।

दत्ता शिवपदं याति दत्ता तु धृतपायसम् । एतच्छीलवतं नाम शौलारोग्यफलप्रदम् ॥७५
 संध्यादीपत्रदो यस्तु मासं तैलं विवर्जयेत् । समाप्ते दीपकं दद्याच्चक्रशूले च काञ्चने ॥७६
 वस्त्रपुरामं च विश्वाय स तेजस्वी भवेद्दृढम् । एतदीपत्रतं नाम सदा कांतिप्रदायकम् ॥७७
 एकभक्तेन सप्ताहं गौरीं वा यस्तु पूजयेत् । संपूज्य पार्वतीं भक्त्या गन्धपुष्पविलेपनैः ॥७८
 ततःसवात्तिनीभ्यां तु कुंकुमेन विलेपयेत् । पुष्पैर्विलेपयेच्चैनां कर्म्मरागशूलन्दनैः ॥७९
 ताम्बूलं शोभनं दत्ता नारिकेलफलं तथा । श्रीयतां कुमुदा देवीं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥८०
 एकेकां पूजयेदेवीं तप्ताहं यावदेव तु । पुनस्तु सप्तमे धूर्णे ताः सप्तैव निमंत्रयेत् ॥८१
 षड्सं भोजयित्वा तु यथा शक्त्या विभूषणैः । भूषयित्वा मात्यवस्त्रैः कर्जवेष्टांशुलीपकैः ॥८२
 कुमुदा नाधवीं गौरी भवानी पार्वती उमा । काली च दर्पणं हस्ते प्रत्येकं विनिवेदयेत् ॥८३
 ब्राह्मणं पूजयित्वैकं वाच्यः संपन्नमस्तु ते । सप्तसुन्दरकं नाम व्रतं चैत्युधिष्ठिर ॥८४
 करोति सुन्दरं देहं सौभाग्यं वच्छते परम् । वर्जयेच्चैत्रमासे तु यस्तु गन्धानुलेपनम् ॥८५
 शुक्तिं गन्धभूतां दत्ता विश्राय सितवाससी । शक्त्या च दक्षिणं दद्यात्सर्वान्कामान्समश्नुते ॥८६
 वारुणं च पदं याति तदेतद्वरुणव्रतम् । वैशाखमासे लवणं वर्जयित्वा यतन्नतः ॥८७
 मासांतेऽथ ततो दद्यात्सर्वतां गां द्विजातये । स्थित्वा विष्णुपदे कल्पं ततो राजा भवेदिह ॥८८
 एतत्कांतिन्नतं नाम कांतिकीर्तिप्रदायकम् । ब्रह्माण्डं कांचनं कृत्या तिलद्रोणोपरि स्थितम् ॥८९

त्याग करते हुए व्रत की समाप्ति में धृत, गो और धृत पूर्ण पायस समेत प्राप्त होता है इसीलिए इसे शील-व्रत कहां जाता है । मांस और तेल के त्याग पूर्वक संद्या समय दीप दान करते हुए व्रत के अन्त में दीप, सुवर्ण का चक्र और त्रिशूल समेत दो वस्त्र ब्राह्मण को प्रदान करने पर दृढ़ तेज प्राप्त होता है । सदैव ऋान्ति प्रद होने के नाते इसे दीपव्रत कहा जाता है । सप्ताह में प्रतिदिन एकाहारी रहकर गन्ध, पुष्प और लेपन द्वारा गौरी, पार्वती की सविधान अर्चना करके सौभाग्यवती दो स्त्रियों की कुंकुम के अनुलेपन पूर्वक पुष्प, कपूर, अगर, चन्दन, द्वारा अर्चा करे । पश्चात् सुशोभित ताम्बूल और नारियल प्रदान करते हुए 'कुमुदा देवीं प्रसन्न हों' कह कर विसर्जन करे । ७४-८०। इस सप्ताह में प्रत्येक दिन एक-एक की पूजा करके पुनः सातवें दिन उन सातों को निमंत्रित कर षड्स भोजन, यथाशक्ति भूषण माला, वस्त्र, कुण्डल, और अंगूठी, द्वारा कुमुदा, माधवी, गौरी, भवानी, पार्वती, उमा तथाकाली की अर्चा करे और प्रत्येक के हाथ में दर्पण अर्पित करते हुए एक ब्राह्मण की पूजा कर उनसे प्रार्थना करे—आप मेरे व्रत को सुसम्पन्न करने की कृपां करें मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ । युधिष्ठिर! इस भाँति इस सप्त सुन्दरक नामक व्रत को सुसम्पन्न करने पर सुन्दर देह और उत्तम सौभाग्य की प्राप्ति होती है । ऐत्र मास में गन्ध का लेपन त्याग करते हुए गंध-पूर्ण शुक्ति (सुतही) श्वेत दो वस्त्र और यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करने से सभी कामनाएँ सफल होती हैं तथा वरुण पद प्राप्त होता है अतः इसे वरुण व्रत कहा गया है । वैशाख मास में संयम पूर्वक लवण (नमक) के त्याग करते हुए मास के अन्त में सवत्सा गौ ब्राह्मणों को अर्पित करने पर एक कल्प तक विष्णुलोक का निवास प्राप्त होता है तदुपरांत राजा होता है । कांति और कीर्ति प्रदान करने के नाते इसे कांतिन्नत कहा जाता है । ८१-८८। ब्रह्माण्ड की कांचन प्रतिमा एक द्वोण (पसेरी) तिल के ऊपर स्थापित और

ऋहं तिलव्रती भूत्वा बहिं सतर्पयेद्विजस् । संपूज्य विप्रदांपत्यं मात्यवस्त्रविभूषणैः ॥१०
 शक्तिस्त्रिपलाद्वृद्धर्व विभ्वात्मा प्रीयतामिति । पुण्येऽहिं दद्यात्स परं ब्रह्म यात्यपुनर्भवम् ॥११
 एतद्वृहत्व्रतं नाम निर्वाणफलदं गृणाम् ॥१२
 पश्चोभयमुखीं दद्यात्प्रभूतकनकान्विताम् । दिनं पयोव्रतं तिष्ठेत्स याति परमं पदम् ॥१३
 ऋहं पयोव्रतः स्थित्वा काञ्चनं कल्पयादपम् । पलाद्वृद्धं यथा शक्त्या तण्डुलं रूपसंयुतम् ॥१४
 ऋदितं वरवासोभिः पुष्पमात्मादिन्नूषितम् । दत्त्वा स्वर्गं वसेत्कल्पं कल्पव्रतमिदं स्मृतम् ॥१५
 यस्तु वत्सतर्णे भव्याङ्गृष्टाभरणभूषिताम् । सुपर्याणा सुखस्पृष्टां खलीनालंकृताननाम् ॥१६
 मोदकोदकपात्रेण ताम्बूलेन समन्विताम् । स्थगितां स्थापयेत्पृष्ठे शृङ्गाग्रेषु हिमान्विताम् ॥१७
 ईदृग्विधां व्यतीपाते ग्रहणे चायनद्वये । अयाचितेन च स्थित्वा ततो दद्यादिद्वजातये ॥१८
 एतद्वरव्रतं नाम मार्गखेदाविनाशनम् । परलोकाद्विगमने क्लान्तिश्वनहरं परम् ॥१९
 नक्ताशी त्वष्टमीषु स्याद्वत्सरतोऽष्टगोप्रदः । पौरंदरं पदं याति सुगतिव्रतमुच्यते ॥२००
 यज्ञेच्यनप्रदो राजन्हेमंतशिंशरवतम् । धृतदेनुं प्रयच्छेत परं ब्रह्म त गच्छति ॥२०१
 शरीरारोग्यजननं द्युतिकान्तिप्रदायकम् । वैभ्वानरव्रतं नाम सर्वप्राप्तप्रणाशनम् ॥२०२
 एकादश्यां तु नक्ताशी यश्चक्रं विनिवेदयेत्^१ । तद्वच्छंखं तु सौवर्णं चेत्रे चित्रासु पांडव ॥२०३

पूजित करते हुए तीन दिन तिल-ब्रत करके अन्त में अग्नि तथा ब्राह्मण भोजन कराकर माला, वस्त्र, एवं भूषण द्वारा ब्राह्मण दम्पती की पूजा और यथा शक्ति तीन रत्न सुवर्ण का दान करते समय 'विभ्वात्मा प्रसन्न हों' कहे । इस प्रकार किसी पुण्य दिवस में इसे सुसम्पन्न करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है, जिससे पुनः जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता है । मनुष्यों जो निर्वाण फल प्रदान करने के नाते इसे ब्रह्मव्रत कहा गया है । अधिक परिणाम में सुवर्ण की उभयमुखी प्रतिमा कादान और दिन में केवल पय-आहार करते हुए चौथे दिन सुवर्ण का कल्प वृक्ष और यथाशक्ति एक पत्र से अधिक का तंदुलाकार, जो उत्तम वस्त्र एवं पुष्पमाला से विभूषित हो, अर्पित करने पर स्वर्ग में पुष्प कल्प का निवास प्राप्त होता है अतः इसे छोटा बच्चा-बछिया जो परम सुन्दरी, कण्ठाभरण भूषित, पीठपर चारजामा-जीनपोस आदि से सुसज्जित, लगाम की भाँति मुख में रस्सी (मोहरी) से बंधी हो, और पीठ तथा सींगों में चाँदी लगी है ताम्बूल समेत व्यतीपात, ग्रहण, अथवा अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन) के समय अयाचित ब्राह्मण को प्रदान करे । १९-२१ मार्ग में श्रम को विनाश करने वाले इस ब्रत को द्वारव्रत कहा जाता है । परलोक की यात्रा में आधे मार्ग पर पहुँचने में जितना श्रम और क्रान्ति होती है विनष्ट करता है । प्रत्येक अष्टमी तिथि के दिन नक्त भोजन करते हुए वर्ष के अन्त में आठ गौप्रदान करने पर पुरुन्दर (इन्द्र) पद प्राप्त होता अतः इसे सुगति ब्रत कहा गया है । राजन्! हेमन्त और शिंशिर ऋतु के मासोंमें ईन्धन (लकड़ी) दान करके धृत की धेनु प्रदान करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है । शरीरारोग्य और कांति के प्रदान पूर्वक समस्त पापों के विनाश करने के नाते इसे वैभ्वानर ब्रत कहा जाता है । १९-२०२१ पाण्डव! चैत्र मास की एकादशी को नक्तभोजन

१. विनिवेदयेत् ।

य एतत्कुरुते भक्त्या स विष्णोः पदमाश्रयत् । एतद्विष्णुव्रतं नाम कल्पादौ राज्यलाभकृत् ॥१०४
 पयोद्रवतस्तु पञ्चम्यां ब्रतान्ते गोयुगप्रदः । लक्ष्मीलोके वसेत्कल्पमेतद्वीव्रतं स्मृतम् ॥१०५
 सप्तम्यां नक्तभुग्दद्यात्समाप्ते गां पयस्त्विनीम् । सोऽर्कलोकमवाप्नोति भानुव्रतमिहोच्यते ॥१०६
 चतुर्थ्या नक्तभुग्दद्यादष्टं गा होमचारणम् । व्रतं वैनायकं नाम सर्वविघ्नविनश्ननम् ॥१०७
 महाफलानि पस्त्यक्त्वा चातुर्मासं द्विजातये । हैमानि कार्तिके दद्याद्गोयुगेन समं नरः ॥१०८
 सितं वस्त्रयुगं नाम ज्ञमूर्णाद्यघटानि च । एतत्कलब्रतं नान् फलावाप्तिकरं सदा ॥१०९
 गश्चोपवासी सप्तम्यां समांते हेमपञ्ज्जलम् । धेनुश्च शक्तितो दद्यात्सदत्त्वाः कांस्यदोहना ॥११०
 भक्त्या राजेन्द्र दिप्राय वाचकाय निवेदयेत् । एतत्सौरव्रतं नाम सूर्यलोकप्रदायकम् ॥१११
 द्वादश द्वादशीर्यस्तु नाम प्राशनसंयुतः । समुपोव्य समान्ते तु सवत्त्राः सोदका घटाः ॥११२
 द्वादशात्रप्रदेयाश्च सर्वकामप्रसिद्धये । गोविन्दव्रतमित्येतद्गोविन्दप्रदायकम् ॥११३
 कार्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् । स गोलोकमवाप्नोति वृषभतमिदं स्मृतम् ॥११४
 व्रतांते गौः प्रदातव्या भोजनं शक्तिः परम् । विप्राणामात्र कथितं प्राजापत्यमिदं व्रतम् ॥११५
 चतुर्दश्यां तु नक्ताशी समांते गोयुगप्रदः । शैवं पदमवाप्नोति ज्ञेयं च श्याम्बकव्रतम् ॥११६

करके सुवर्ण का चक्र और चित्रा नक्तव युक्त पूर्णिमा के दिन सुवर्ण शंख भक्तिपूर्वक प्रदान करने पर विष्णुपूर्व प्राप्त होता है । अतः इसे विष्णुव्रत कहा जाता है । जो कल्प के आदि में राज्य का लाभ प्रदान करता है । पञ्चमी तिथि के दिन दुग्धाहार करते हुए व्रत के अन्त में दो गौ प्रदान करने पर एक कल्पपर्यंत लक्ष्मी लोक का निवास प्राप्त होता है अतः इसे देवी व्रत कहते हैं । सप्तमी में नक्त व्रत करते हुए व्रत की समाप्ति ने धेनु गाय प्रदान करने पर सूर्यलोक प्राप्त होता है अतः इसे भानुव्रत कहते हैं । चतुर्थी के दिन नक्त भोजन करते हुए अन्त में आठ गौ प्रदान पूर्वक हवन सुसम्पन्न कर सम्पूर्ण विघ्नों का नाश करने के नाते यह वैनायकव्रत कहा जाता है । चौमासे में महाफलों के त्याग करते हुए कार्तिक पूर्णिमा के दिन दो गौसमेत सुवर्ण के फल चार श्वेत वस्त्र, और पूर्ण कलश प्रदान करने पर उत्तम फलों की प्राप्ति होती है अतः इसे फल व्रत कहा जाता है । राजेन्द्र! भक्ति पूर्वक सप्तमी के दिन उपवास करते हुए व्रत की समाप्ति में सुवर्ण-कमल, सवत्ता और काँसे की दीहनी समेत यथाशक्ति गौ वाचक ब्राह्मण को प्रदान करने पर सूर्य लोक की प्राप्ति होती है अतः इसे सौकर व्रत कहते हैं । प्रति द्वादशी के दिन उपवास रहकर नाम प्राशन करते हुए वर्ष के अन्त वस्त्र समेत जलपूर्ण वारह घट प्रदान करने पर समस्त कामनाएँ सिद्ध होती हैं । गोविन्द पद प्रदान करने के नाते इसे गोविन्द व्रत कहा जाता है । कार्तिकी पूर्णिमा के दिन वृषोत्सर्ग याग सम्पन्न करके नक्त भोजन करने पर गोलोक की प्राप्ति होती है अतः इसे वृषव्रत कहा जाता है । १०३-१४। ब्राह्मण को यथाशक्ति भोजन प्रदान करते हुए व्रत के अन्त में गौ प्रदान करना चाहिए । इसे प्रजायत्य व्रत कहा जाता है । चतुर्दशी के दिन नक्त भोजन करते हुए वर्ष के अन्त में चार गौ प्रदान करने पर शैव लोक प्राप्त होता है । इसे श्याम्बकव्रत कहते हैं । १५-१६। सात रात्रियां में उपवास पूर्वक ब्राह्मण को

सप्तरात्रेषितोदद्याद्घृतकुम्भं द्विजातये । ब्रह्मव्रतमिदं प्राहुर्ब्रह्मलोकप्रदायकम् ॥११७
 मासान्ते च स गां दद्याद्देनुमते पथस्त्वनीम् । शक्लोके वसेत्कल्पं शक्लव्रतमिदं स्मृतम् ॥११८
 कार्त्तिकस्य^१ सिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिष्ठ । सोपवासः पञ्चगव्यं द्विद्रात्रौ विचक्षणः ॥११९
 कपिलायास्तु गोमूर्चं कृष्णाया गोमयं तथा । सितधेन्वास्तथा क्षीरं रक्तायास्तु तथा दधि ॥१२०
 गृहीत्वा कर्बुरायास्तु धृतनेकत्र मेलयेत् । बेदोक्तमन्त्रै राजेन्द्र कुशोदकसमन्वितम् ॥१२१
 ततः प्रभातसमये स्नात्वा सन्तर्य देवताः । ब्रह्मणान्वचयित्वा तु भुज्जीयाद्वाग्यतः शुचिः ॥१२२
 ब्रह्मकूर्चव्रतं ह्येतत्सर्वपापप्रणाशनम् । यद्वाल्ये यच्च कौमारे वार्धक्ये चापि यत्कृतम् ॥
 ब्रह्मकूर्चव्रताभेन तत्सर्वं नश्यति क्षणात् ॥१२३
 अनग्निपक्वमन्ताति त्रुटीयायां तु यो नरः । गां दत्त्वा शिवमभ्येति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१२४
 एतद्विष्वितं नाम सर्वमाङ्गल्यकारकम् । हैमं पलद्वयाद्वृद्धं रथम् वयुगान्वितम् ॥१२५
 तिलप्रस्त्वोपरि गतं सितमाल्ययुगान्वितम् । दत्त्वा कुतोपवासस्तु दिवि कल्पशतं वसेत् ॥
 तदन्ते राजराजः स्यादप्निव्रतमिदं स्मृतम् ॥१२६
 कृत्वा पलद्वयाद्वृद्धं शव्यास्यां संयुतं नरः । हैमं रथवरं श्रेष्ठं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥१२७
 सत्यलोके वसेत्कल्पं सहस्रमय भूपतिः । भवेदुपोषितो दत्त्वा करिव्रतमिदं शुभम् ॥१२८
 मुखवासं परित्यज्य समांते गोप्रदो भवेत् । यक्षाधिषं समाप्नोति सुमुखं व्रतमुच्यते ॥१२९

घृत पूर्ण कलश प्रदान करने पर ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है अतः यह दान करते हुए वर्ष के अन्त में धेनु गौ प्रदान करने पर शक्ल (इन्द्र) लोक में एक कल्पका निवास प्राप्त होता है इसीलिए इसे शक्लव्रत कहा गया है । नराधिष्ठ! कार्त्तिक मास की कृष्ण चतुर्दशी के दिन उपवास करते हुए रात्रिमें उस भाँतिका पञ्चगव्यपान करना चाहिए, जिसमें कपिला गौ का गोमूत्र, कृष्णगौका गोमय (गोबर), श्वेत वर्ण वाली गौ का क्षीर, रक्त वर्ण वाली का दही, कर्बुर (चितकबरी) गौ का धृत पिलाया गया हो, राजेन्द्र! उसे कुशोदक पूर्ण करते हुए संयम पूर्वक वेदमन्त्रो द्वारा वाल्य, कुमार और वृद्धावस्था के समस्त पाप उपवास करते ही उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं । त्रुटीया के दिन अग्नि पक्व भोजन करते हुए व्रत के अन्त में गोदान करने वाले पुरुष को शिव लोक प्राप्त होता है । जहाँ पहुँचने पर पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) नहीं होता है । समस्त मङ्गल करते के नाते इसे ऋषिव्रत कहा जाता है । उपवास करते हुए दोपल से अधिक सुवर्ण का अश्व समेत रथ एक सेर तिल के ऊपर स्थापित एवं पूजित करके, जिसमें श्वेत माला का जूआ लगी हो, उसका दान करने पर स्वर्ग में सौकल्य का निवास प्राप्त होता है । और अंत में महाराज का पद प्राप्त होता है । इसे अग्निव्रत कहा गया है । उपवास पूर्वक दोपल से अधिक सुवर्ण के सुन्दर रथ समस्त साधन सम्पन्न एवं सुसज्जित शश्या प्रदान करने पर सहस्र कल्प तक सत्य लोक में निवास करने के उपरांत राजा होता है और इसे करिव्रत कहा गया है । ११७-१२८। मुख वास (ताम्बूल आदि के त्याग पूर्वक वर्ष के अन्त में गौ प्रदान करने पर यक्षाधिषं पद प्राप्त होता है तथा इसे सुमुख व्रत कहा जाता है । रात्रि में जलनिवास

१. असिते पक्षे ।

निशि कृत्वा जले वासं ग्रभते गोप्रदो भवेत् । वारुणं लोकमाप्नोति वरुणक्तमुच्यते ॥१३०
 चान्द्रायणं च यः कुर्याद्दैसं चन्द्रं निवेदयेत् । चन्द्रवत्तमिदं प्रोक्तं चन्द्रलोकप्रदायकम् ॥१३१
 ज्येष्ठे पञ्चतपाः सायं हेमधेनुप्रदोदिवस् । अथाष्टमीचतुर्दश्यौ रुद्रशतमिदं स्मृतम् ॥१३२
 अनुलेपनं यः कुर्यात्तृतीयायां शिवालये । स स्वर्गं धेनुदो याति भवानी व्रतमुच्यते ॥१३३
 माये निश्चार्द्वाताः स्यात्सप्तम्यां गोप्रदो भवेत् । दिवि कल्पं वसित्वे राजा स्यात्तापनं व्रतम् ॥१३४
 दत्त्वा कृतोपवासस्तु दिवि कल्पशतं वसेत् । तदत्ते राजराजः स्यादव्यव्रतमिदं स्मृतम् ॥१३५
 तद्वृत्कल्पद्वयाद्बृह्तं करिष्यां संयुतं त्रः । हैमं रथं नरश्रेष्ठं सर्वोपस्करणान्वितम् ॥१३६
 त्रिरात्रोपोक्तिर्थो दद्यात्कालुन्यां भवनं शुभम् । आदित्यलोकमाप्नोति पूजितः स सुरासुरैः ॥१३७
 सुरलोकमवाप्नोति धाम^१ व्रतसमन्वितम् । त्रिसंघ्यं पूज्य^२ दांपत्यश्रूपवासी विभूषणैः ॥१३८
 पौर्णमास्यमवाप्नोति भोक्षमिन्दुव्रतादिह ॥१३९
 दत्त्वा^३ सितद्वितीयायामिंदोर्लवणभोजनम् । क्षांस्यं तवस्त्रं राजेन्द्र दक्षिणासहितं तथा ॥१४०
 समाते गोप्रदो याति विश्रःय शिवमन्दिरम् । कल्पान्ते राजराजः स्यात्सोमव्रतमिदं स्मृतम् ॥१४१
 प्रतिष्ठैकभक्ताशी समान्ते कपिलाप्रदः । वैश्वानरपुरं याति आशेयव्रतमुच्यते ॥१४२

करके प्रातः काल गोदान करने पर वरुण लोक प्राप्त होता है अतः इसे वरुण व्रत कहते हैं । चान्द्रायण व्रत करने के अनन्तर सुवर्णचन्द्र प्रदान करने पर चन्द्र लोक की प्राप्ति होती है अतः इसे चन्द्रवत कहते हैं । ज्येष्ठ मास की अष्टमी और चतुर्दशी के दिन पञ्चतपा (पंचाग्नि) तापों के उपरांत सायंकाल सुवर्ण की धेनु पञ्चतपा (पंचाग्नि) तापने के उपरांत सायंकाल सुवर्ण की धेनु प्रदान करना चाहिए । इसे रुद्रवत कहा जाता है । तृतीया के दिन शिवालय में शिवजी के लेप करते हुए अन्त में गोदान करने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है । इसे भवानी व्रत कहा गया है । माघ मास की सप्तमी की रात्रि में भीगे वस्त्र पहने व्यतीत कर अन्त में गोदान करने पर स्वर्ग में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है और यहाँ जन्म प्रहण करने राजपद प्राप्त होता है । इसे तापन व्रत कहते हैं । १२९-१३४। उपवास पूर्वक अश्वदान करने पर सौकल्य तक स्वर्ग निवास प्राप्त होता है और अन्त में राजाधिराजपद । इसे अश्वव्रत कहा गया है । नरश्रेष्ठ! उसी प्रकार कल्प के ऊपर दो हथियों समेत सुवर्ण रथ जो सभी साधनों से सुसम्पन्न हो, तीन रात्रि के उपवास करने के उपरांत फाल्गुन पूर्णिमा के दिन सुन्दर भवन के साथ दान करने पर आदित्य लोक प्राप्त होता है । पंश्चात् सुर एवं असुर द्वारा पूजित होकर स्वर्गलोक की प्राप्ति करता है अतः इसे धाम व्रत कहते हैं । पूर्णिमा में दिन उपवास रह कर तीनों समय आभूषणों द्वारा ब्राह्मण दम्पती की पूजा करने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः इसे इन्दुव्रत कहा गया है । राजेन्द्र! कृष्ण पक्ष की द्वितीया के दिन चन्द्रमा के लिए लवण भोजन, कांसे का पात्र वस्त्र और दक्षिणा प्रदान करते हुए वर्ष की समाप्ति में ब्राह्मण को गोदान अर्पित करने पर शिवमन्दिर की प्राप्ति होती है । पुनः कल्प के अन्त में राजाधिराज होता है अतः इसे सोमव्रत कहा गया है । १३५-१४१। प्रतिपदा के दिन एकाहारी रहते हुए वर्ष के अन्त में कपिला गौ अर्पित करने पर वैश्वानर (अग्नि)

१. धामव्रतमिदं स्मृतम् । २. पूजितं देवम् । ३. कस्मिश्चित्पुस्तके—“दत्त्वासिताद्वितीयायाम्”—इत्यारम्भ “संतारयति सप्तष्टौ कुलान्यात्मानमेव च” सार्धनवश्लोकात्मको ग्रन्थः—“कार्तिकादि तृतीयां प्राश्य गोमूर्यावकम्”—इत्येतदग्रेऽस्ति ।

एकादश्यां माघमासे चतुर्दश्यष्टमीं शु च ; एकभक्तेन यो दद्याद्वालकान्यजिनानि च ॥१४३
 उपानहौ कम्बलांश्च चैत्रे छत्रादिकं ततः । करपत्रादिकं चापि यथा शक्त्या विचक्षणः ॥१४४
 ब्राह्मणानां महाराज सोऽश्वमेधफलं लभेत् । एतत्सौख्यवतं नाम सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥१४५
 दशस्थ्यमेकभक्ताशी समांते दशधेनुदः । दिशश्च काञ्चनीर्दियान्नारीरूपा^१ पुधिष्ठिर ॥१४६
 तिलद्रोणोपरिगतो ब्रह्मांडाधिपतिर्भवेत् । एतद्विश्ववतं नाम महापातकनशनम् ॥१४७
 संपूज्य स्तिसप्तम्यां भानुधान्दानि सप्त दः । इदाति नक्तभुग्राजल्लवगेन समं द्विजे ॥१४८
 स तारयति स्पत्ताष्टौ कुलान्यात्मानमेव च । एतद्वान्यवतं^२ नाम धनधान्यप्रदायकम् ॥१४९
 मासोपदासी यो दद्यातेनुं विप्राय शोभनाम् । स वैष्णवं पदं याति भीमद्वतमिदं स्मृतम्^३ ॥१५०
 पक्षोपवासी यो दद्याद्विप्राय कपिलाद्वयम् । स ब्रह्मलोकमाप्नोति पूजितः सुरसत्तमैः ॥१५१
 दद्यात्रिंशतलाद्वृद्धं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम् । कुलाचलाद्रिसहितां तिलवस्त्रसमन्विताम् ॥१५२
 तिलद्रोणोपरि गतां ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । दिनं एपोन्नतस्तिष्ठेद्वुद्गलोके महीयते ॥१५३
 एतन्महीवतं प्रोक्तंसप्तकल्पतुवर्तकम् । माघमासेष्य चैत्रे वा गुडधेनुप्रदो भवेत् ॥१५४
 गुडव्रतस्तृतीयायां सर्वोपस्त्वरण्युर्युतः । गौरीलोकमदाप्नोति पूज्यतेऽप्सरसां शैः ॥१५५
 उमाव्रतमिदं प्रोक्तं सततानन्ददायकम् । वत्सरं त्वेकभक्ताशी सभक्ष्यजलकुंभदः ॥१५६

लोक की प्राप्ति होती है अतः इसे अग्निवत कहते हैं । महाराज! माघमास की एकादशी, चतुर्दशी और अष्टमी के दिन एकाहारी रह कर कुंकुम, मृगचर्म, उपानह, कम्बल तथा चैत्र में यथा शक्ति छत्ता, पंखा-जल पात्र आदि ब्राह्मणों को सादर अर्पित करने पर अश्वमेध का जल प्राप्त होता है । अतः सम्पूर्ण रौख्य प्रदान करने के नाते इसे सौख्य व्रत कहा जाता है । पुधिष्ठिर! दशमी के दिन एकाहार रहते हुए वर्ष के अन्त में दश धेनु गौ और एक द्रोण तिल के ऊपर दश दिशाओं की सुवर्णी की सभी रूप प्रतिमा स्थापित एवं पूजित करने पर ब्रह्माण्ड नामक पद प्राप्त होता है । अतः इस महापातक विनाशक को विश्वव्रत कहा गया है । राजन्! कृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन भानु की अर्चना करके सूर्य समेत सप्त धान्य के दान और नक्तभोजी होने पर अपनेसमेत पन्द्रह कुल का उद्धार होता है । अतः धन धान्य पद होने के नाते यह धान्यव्रत बताया गया है । एक मास के उपवास करने के अन्त में सुन्दर गौ ब्राह्मण को अर्पित करने पर वैष्णव लोक की प्राप्ति होती है इसे भीम व्रत कहा गया है । १५२-१५०। एक पक्ष का उपवास करके अन्त में दो कपिला गौब्राह्मण को अर्पित करने पर देवों द्वारा पूजित होता हुए ब्रह्मलोक प्राप्त होता है । एक द्रोण तिल के ऊपर तीस पले से अधिक सुवर्णी की पृथिवी प्रतिमा, कुलाचल पर्वत, तिल और वस्त्र समेत किसी कुटुम्ब वाले ब्राह्मण को अर्पित कर दिन में केवल दुष्धयान करने से रुद्रलोक की प्राप्ति होती है । सात कल्पतक फल प्रदान करने वाले इस व्रत को मही व्रत कहा गया है । माघ और चैत्र मास में गुडधेनु प्रदान करना चाहिए । तृतीया के दिन समस्त साधनों समेत गुडव्रत को सुसम्पन्न करने पर अप्सराओं द्वारा सुसम्पन्न और गौरी लोक की प्राप्ति होती है । निरन्तर आनन्द प्रद होने के नाते इसे उमा व्रत कहा गया है । १५१-१५६। एक वर्ष तक एकाहारी रहकर अन्त में भक्ष्य भोज्य समेत सजल कुम्भ प्रदान करने पर शिवलोक

१. द्विजाग्रयाय । २. एतद्वानुव्रतं नाम । ३. शुभम् । ४. महाव्रतम् ।

शिवलोके वसेत्कल्पं प्राप्तिवत्तमिदं स्मृतम् । कार्तिकादिवृतीयायां प्राद्य गोमूत्रयावकम् ॥१५७
गौरीलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह । एतद्वद्वतं नाम महाकल्याणकारकम् ॥१५८
चैत्री विराजनं नक्ताशी नद्यां स्नात्वा ददाति यः । अजा पयस्विनीः पञ्च ब्राह्मणायाः^१ कुटुंबिने ॥१५९
न जायते पुनरसौ जीवलोके कदाचन । एतद्वस्तवतं प्रोक्तं सर्वव्याधिवै नाशनम् ॥१६०
कन्यादानं तु यः कुर्यादुद्वाहं कारयेच्च यः । एकविंशतिकुलोपेतो ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥१६१
कन्यादानात्परं दानं न चास्त्यभ्यांधकं ऋचित् । ये करिष्यन्ति नृपते तेषां लोकोऽक्षयो दिवि ॥१६२
तिलिष्टमयं कृत्वा गजं हेषविभूषितम् । कुर्यात्कुशमयं तद्वदारोहकसङ्घन्वितम् ॥१६३
नक्षत्रमालासहितं चानरापीडधारिणम् । दशनाप्रबद्धेनेत्ररक्तवस्त्रयुगान्वितम् ॥१६४
ताम्रपात्रायां कुण्डकं वा कृतं दत्त्वाम्रमोटकम् । प्रदद्यादिद्वजदापत्यं पूज्य भाल्यविभूषणैः ॥१६५
कण्ठप्रमाणमाविश्य जलं गलविवर्जितः । कान्तारकारिणा हृतत्कथितं तु युधिष्ठिर ॥१६६
कांतारकारिदुर्गेषु वारयत्यपि दुष्कृतीन् । इह लोके परे चैव नात्र कार्या विचारणः ॥१६७
ये कुर्वति दिने पुण्ये व्रतं पौरंदरं नरा । तेषां पौरंदरो लोको भवेदाभूतसंप्लवम् ॥१६८
पयोक्त्रतस्तु पञ्चम्यां दत्त्वा नागं द्विजातये । सौवर्णं रूपजनितं भयं तेभ्यो न जायते ॥१६९
सिताष्टम्यां सोपवासो वृषभं यः प्रयच्छति । सितवस्त्रसमाच्छ्रवं घण्टाभरणभूषितम् ॥१७०

में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है । इसे प्राप्ति व्रत कहा गया है । कार्तिक मास की आरम्भिक वृत्तीया के दिन गोमूत्र और यावक के प्राशन पूर्ण करने पर गौरी लोक में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है । पश्चात् जन्म ग्रहण करने पर राजा होता है । इस महाकल्याणकारी व्रत को रुद्रवत बताया गया है । चैत्र मास में तीन रात्रि नक्त भोजन करने के उपरांत नदी में स्नान पूर्वक किसी कुटुंबी ब्राह्मण को पाँच अजा (बकरी) प्रदान करने पर इस जीव लोक में कभी जन्म नहीं होता है । समस्त व्याधियों के शयन करने के नाते इसे वस्त्र व्रत कहा गहा है । कन्या दान करने और विवाह करने वाले अपनी इकनीस पीढ़ी समेत ब्रह्म लोक की प्राप्ति करते हैं । नृपते! कन्यादान से अधिक महत्व पूर्ण कोई अन्य दान नहीं है अतः उसे सुसम्पन्न करने वाले स्वर्ण में अक्षय निवास प्राप्त करते हैं । तिल के चूर्ण की गज प्रतिमा, जो सुवर्ण भूषित, कुश और आरोहक युक्त, नक्षत्रमाला, चामर, एवं शिरोभूषण भूषित तथा दाँत के अग्रभाग में नेत्र का आवरण रक्तवस्त्र बँधा हो, ताम्रपात्र में स्थापित एवं पूजित करके अनन्तर उसके अग्रभाग में मोदक रख कर माला और विभूषण द्वारा द्विजमप्ती की अर्चना करके कंठ प्रमाण निर्मल जल में खड़े हो प्रदान करना चाहिए । युधिष्ठिर! इसे कातांरकारी ने कहा था । यह दुर्गमार्ग के समस्त विद्वानों का शमन करते हैं तथा लोक-परलोक सभी को सुगम बताता है इसमें सदेह नहीं । पुण्य दिन में इस पौरन्दर नामक व्रत को सुसम्पन्न करने महाप्रलय पर्यन्त पुरन्दर (इन्द्र) लोक का अक्षय निवास प्राप्त होता है । पञ्चमी के दिन सर्पों को दुग्ध प्रदान करके सुवर्ण का नाग प्रदान करने पर सर्प भय नहीं होता है । १५७-१६१। शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन उपवास करते हुए श्वेत वस्त्र से आच्छादन और घण्टा तथा आभरण भूषित वृष

शिवलोके वसेत्कल्पं ततो^१ राजा भवेदिह । वृषब्रतमिदं ग्रोक्तं सर्वधर्मप्रदायकम् ॥१७१
 उत्तरे त्वयने प्राप्ते घृतप्रस्थेन यो हरिम् । ज्ञापयित्वा ब्राह्मणाय वडवां यः प्रयच्छति ॥१७२
 स सर्वकामसंयुक्तः पुत्राभारृतसमन्वितः^२ । सूर्यलोके वसेद्राजन्नाजीव्रतमिहोच्यते ॥१७३
 सकृदग्नवस्यां भक्तेन पूजयेद्विन्द्यवासिनीम् । पुष्पधूपैस्ततो दद्यात्पञ्चरं शुक्रोभितम् ॥१७४
 हैमं विप्राय शांताय स वामी जायते नरः । एतदाग्रेयमित्युक्तं व्रतमन्तिपदप्रदम् ॥१७५
 द्वादश्यां गुह्यकानां च पललैकवसंयुतम् । विप्राय भोजनं दत्त्वा यः स याति हरेः पदम्^३ ॥१७६
 विष्कम्भादिषु योगेषु एकमुक्तरतो नरः । एतदाग्रेयमित्युक्तं व्रतमन्तिपदप्रदम् ॥१७७
 ये ददाति ऋमानेषु घृततेलफलैक्षदम् । यवगोधूमचणकान्निष्वावाञ्छालिताण्डुलान् ॥१७८
 लवणं दधि दुर्धं च वस्त्रं कनकमेव च ! कंबलं गां वृद्धं छन्नमुपानद्युलत तथा ॥१७९
 कर्पूरं कुंकुमं चैव चंदनं कुमुमानि च । लोहं कनकताम्रं च रौप्यं चेति युधिष्ठिर ॥१८०
 ऋतः स्वशक्त्या विधिवत्तर्वपापैः प्रमुच्यते । न वियोगमवान्नोति योगव्रतमिदं स्मृतम् ॥१८१
 कार्तिक्यां नक्तभुगदद्यान्मेषं मार्गशिरे वृषम् । पौषमाघादिमासेषु सौवर्णाः सर्व एव हि ॥१८२
 क्रमेण राशयः सर्वा वस्त्रमाल्यर्विभूषिताः^४ । पौर्णमास्यां पौर्णमास्यां कौतेय “बहूदक्षिणाम्” ॥१८३
 एतद्विशिव्रतं नाम ‘सर्वोपद्रवनाशनम्’ । सर्वाशापूरकं तद्वत्सोमलोकप्रदायकम् ॥१८४

(वैल) प्रदान करने पर शिव लोक में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है और अनन्तर राजपद । सम्पूर्ण धर्म प्रद होने के नाते इसे वृषब्रत कहा गया है । राजन्! सूर्य के उत्तरायण होने के दिन एक सेर घृत से विष्णु के स्नान पूर्वक ब्राह्मण को (सुर्वर्ण) वडवा (घोड़ी) अर्पित करने पर पुत्र और आरृत समेत समस्त कामनाओं का सफलता पूर्वक सूर्यलोक प्राप्त होता है । अतः इसे रात्री व्रत कहा गया है । एकाहार रह कर नवमी के दिन पुष्प धूप द्वारा विन्द्यवासिनी देवी की एक ही वार अर्चना करने के उपरांत सुर्वर्ण का पिंजड़े समेत शुक्र (तोता) ब्राह्मण को प्रदान करने पर पुरुष वामी होता है । अग्नि पद प्रद होने के नाते इसे आग्रेय व्रत कहा गया है । बारह गुह्यकों के मांस और ऐक्षव (गुड) तथा ब्राह्मण को भोजन प्रदान करने विष्णु-लोक प्राप्त होता है । विष्कम्भ आदि योग के दिन एकाहारी होने पर अग्नि पद प्राप्त होता है अतः इसे भी आग्रेय व्रत कहा गया है । युधिष्ठिर! क्रमशः इन योगों के दिन, घृत, तैल, फल, गुड, जवा, गेहूं, चना, साठी चावल, लवण, दधि, दुग्ध, वस्त्र, सुवर्ण, कम्बल, गौ, वृष (वैल) छत्ता, उपानह, कपूर, कुंकुम, चन्दन, पुष्प, लोह, कनक, ताँबा, और चाँदी के दान पूर्वक सविधान स्नान करने पर समस्त पातकों के विनाश और अभीष्ट का भी वियोग नहीं होता है । अतः इसे योग व्रत कहा गया है ॥१७०-१८१। कौतेय! कार्तिक मास से आरम्भ कर प्रयेक पूर्णिमा के दिन नक्त भोजन पूर्वक कार्तिक पूर्णिमा में मेष (भेड़ा) मार्गशीर्ष (अगहन) की पूर्णिमा में वृष और पौष-माघ आदि के शेष मासों में क्रमशः सुवर्ण की राशि प्रतिमाएँ वस्त्र और मालाओं से विभूषित कर बहु दक्षिणा समेत प्रदान करने पर समस्त उपद्रवों के शमन पूर्वक सम्पूर्ण

१. विष्णुलोकं ततो व्रजेत् । २. पुत्रपौत्रसमन्वितः । ३. पुरम् । ४. सुपूजिताः ।
५. फलदक्षिणाम् । ६. ग्रहोपद्रवनाशनम् ।

पञ्चाशीतिर्वतानां ते कथिता पांडुनंदन । यां श्रुत्वा ब्रह्महा गोष्ठः पितृहा सातृहा तथा ॥१८५
मुच्यते तत्क्षणादेव पातकैः सोपपातकैः ॥१८६

पञ्चाधिका तव भया कथिता व्रतानां राजन्नशीतिरतिसौख्यधनप्रदानाम् ।

एतां समाचर्सति दः शृणुयात्पठेद्वा हस्ताप्रलग्न इव तस्य सुरेशलोकः ॥१८७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
व्रतपञ्चाशीतिवर्णनं नामेकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२१

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

माघस्नानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कृतं ब्रह्मयुगं प्रोक्तं त्रेता तु क्षत्रियं युगम् । वैश्यं द्वापरमित्याहुः शूद्रं कलियुगं स्मृतम् ॥१
कलौराजन्मनुष्याणां शैथिलं ज्ञानकर्मणि । तथापि माघश्वाजेन कथयिष्यामि ते शृणु ॥२
यस्य हस्तौ च पादौ च वाइमनस्तु सुसंयतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च सतीर्थफलभश्नुते ॥३
अश्रहधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः । हेतुनिष्ठाश्च पञ्चते न तीर्थफलभागिनः ॥४
प्रयागं पुष्करं प्राप्य कुरुक्षेत्रमथापि वा । यन्न वा यन्न वा स्नायान्माघे नित्यमिति श्रुतिः ॥५
त्रिरात्रिफलदा नद्यो याः काश्चिददसमुद्रगाः । समुद्रगास्तु पक्षस्य मासस्य सरितां पतिः ॥६

विधान बता दिया, जिसे सुनने पर ब्राह्मण, गौ, पिता एवं माता का हनन दोष तथा उपपातक समेत समस्त पातकों से उसी क्षण मुक्ति हो जाती है । राजन्! इन पचासी व्रतों के, जो तुम्हें बता दिये गये हैं एवं सौख्य तथा धन प्रद है, सुनने पढ़ने तथा सुसम्पन्न करने पर इन्द्र लोक उसके सदैव करतल गत रहता है । १८२-१८७।

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद मे
पचासी व्रत वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त । १२१!

अध्याय १२२

माघस्नानविधिवर्णन

श्रीकृष्ण बोले—कृत (सत्य) युग ब्रह्मयुग, त्रेतायुग, क्षत्रिय युग, द्वापर वैश्य युग और कलियुग शूद्र युग कहा गया है । राजन्! यद्यपि कलियुग में मनुष्यों का ज्ञान-कर्म अत्यन्त शिथिल रहेगा, तथापि माघ मास के (ज्ञान) आज से तुम्हें इसकी व्याख्या बता रहा हूँ, सुनो! जिसके हाथ, पैर, वाणी और मन अत्यन्त संयत हों और विद्या, तप एवं कीर्ति युक्त हो, उसे तीर्थफल प्राप्त होता है । श्रद्धाहीन, पापात्मा, नास्तिक, संशयालु और कारण-प्रेमी जन तीर्थ-फल भागी नहीं होते हैं । प्रयाग, पुष्कर अथवा कुरुक्षेत्र या जिस किसी तीर्थ में हो माघ में नित्य ज्ञान करे ऐसा वेदों का कहना है । १-५। साधारण नदियाँ, जो समुद्र में नहीं पहुँच सकी हैं, (एकवार स्नान-करने पर) तीन रात्रि का फल प्रदान करती हैं और समुद्र गामिनी

उषःसमीपे यः ज्ञानं संध्यामामुदिते रवौ । प्राजापत्येन ततुल्यं महापातकनाशनम् ॥७
 प्रातरुत्थाय यो वित्रः प्रातः ज्ञायी सदा भवेत् । स सर्वपापनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥८
 वृथा चोष्णोदकल्पानं वृथा जाप्यमवैदिकम् । अश्रोत्रिये वृथा श्राद्धं वृथा भुक्तमसाक्षिकम् ॥९
 स्तानं चतुर्विंश्टं प्रोक्तं ज्ञानविद्वयुधिष्ठिर ! वायव्यं वारणं ज्ञाहं द्विव्यं चेति पृथक्कृत्यु ॥१०
 दयव्यं गोरजःस्तानं वारुणं सागरादिषु । ज्ञाहं ज्ञाहणमंत्रोत्तं दिव्यं मेघांबुभास्करम् ॥
 सर्वेषामेव स्तानानां विशिष्टं तत्र वारुणम् ॥११
 ब्रह्मचारी गृहस्थश्च धानप्रस्थेऽथ भिक्षुकः । एते सर्वे प्रशंसन्ति सर्वदा माधसज्जनम् ॥१२
 बालास्तरुणका वृद्धा नरनारीनपुंसकाः । स्त्रात्वा माधं शुभे तीर्थे ब्राह्मनवंतीप्सितं^१ फलम् ॥१३
 ब्रह्मक्षेत्रविशां चैव मन्त्रवत्त्वानमिष्यते । तूष्णीमेव हि शूद्रस्य स्त्रीणां च कुरुनन्दन ॥१४
 माधमासे रटंत्यापः किञ्चिद्भयुदिते रवौ । ब्रह्मघ्रं वा सुरापं वा कम्पं तं तं युनीमहे ॥१५
 प्रासादा यत्र सौवर्णाः स्त्रियश्वप्सरसोपमाः । दधिकुल्यावहा यत्र नद्यः पायसकर्दमाः ॥
 तत्र ते यो निमज्जन्ति ये माधे भास्करोददे ॥१६
 यतिवत्पथि गच्छेत मौनी दैशुन्यवर्जितः । यदीच्छेद्विपुलान्भोगाश्चन्द्रसूर्योपमानगृहान् ॥१७

एक पक्ष (पखवारे) तथा महासागर एक मास का पल प्रदान करता है। ऊपर काल और सूर्योदय के बीच संध्या समय का स्नान प्राजापत्य की समानता प्राप्त कर महापातक का नाश करता है। सदैव प्रातः काल स्नान करने वाला ब्राह्मण समस्त पापों से मुक्त होकर परब्रह्म की प्राप्ति करता है। अतः उष्ण (गरम) जल का स्नान, वैदिक मंत्रों से पृथक् मंत्रों के जप, खगोलिय का श्राद्ध भोजन या दान देना और साक्षी हीन (अकेले) भोजन करना व्यर्थ है। युधिष्ठिर! वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य भेद से स्नान चार प्रकार का होता है। उनकी पृथक्-पृथक् व्याख्या कर रहा हूँ, सुनो! गौ के खुर की धूलि का स्नान वायव्यस्नान, सागर आदि का स्नान वारुण-स्नान, ब्राह्मण द्वारा भंत्रोत्त स्नान ब्राह्म-स्नान और सूर्य के प्रकाश में वर्षा के जल का स्नान दिव्य स्नान कहलाता है। किन्तु सभी स्नानों में वरुण स्नान ही विशिष्ट बताया गया है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक (संन्यासी) सभी लोग माधस्नान की प्रशंसा करते हैं। बाल, युवा, एवं वृद्ध नर-नारी नपुंसक शुभ तीर्थ में माधस्नान द्वारा मन इच्छित फल प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को मन्त्रोच्चारण पूर्वक स्नान और शूद्रों तथा स्त्रियों को मौन स्नान करना चाहिए। ६-१४। कुरुनन्दन! माध मास में सूर्य के अर्धोदय समय जल सदैव आता रहता है—ब्रह्महत्या और मद्यपान करने वाले को, जो अपने गुरुतर पाप के नाते काँपते रहते हैं, मैं पुनीत करता हूँ। माध मास में सूर्योदय के समय स्नान करने वाले उस स्थान की प्राप्त करते हैं, जहाँ सुवर्ण भूषित प्रासाद (महल के कोठे), अप्सराओं की भाँति मनोरम स्त्रियाँ, दही की नालियाँ और दूध के कीचड़ भरी नदियाँ प्रवाहित होती हैं। स्नानार्थ जाते हुए मार्ग में संन्यासी की भाँति मौन तथा परकीय निन्दा आदि दोष रहित होती हैं। स्नानार्थ जाते हुए मार्ग में संन्यासी की भाँति मौन तथा परकीय निन्दा आदि दोष रहित होती हैं। यदि विपुल उत्तम भोग, और चन्द्र सूर्य के समान अनुपम गृहों के प्राप्ति की इच्छा हो,

१. महत् ।

पौषफालगुनयोर्मध्ये प्रातः स्नायी^१ भवेन्नरः । पौर्णमास्या ह्रामावास्याः प्रारभ्य स्नानमाचरेत् ॥१८
 त्रिंशद्दिनानि पुण्याणि मकरस्थे दिवाकरे । तत्र उत्थाय नियमं गृहीयाद्विधिपूर्वकम् ॥१९
 माघमासमिमं पूर्णं स्थाप्येहं देवमाधवम् । तीर्थशीतजले नियमिति सङ्कल्प्य चेतसा ॥२०
 अप्रावृतशरीरस्तु यः कष्टं स्नानमाचरेत् । पदेष्वेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति सानवः ॥२१
 तत्र स्नात्वा शुभे तीर्थे दत्त्वा शिरसि वै मृदम् । वैदोक्तविधिना राजन्सूर्यस्यार्थं निवेदयेत् ॥२२
 पितृन्संतर्प्तं तत्रस्थो हृवतीर्यं ततो जलात् । इष्टदेवं नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषो तमम् ॥२३
 शत्खंचक्खरं देवं भाधवं नाम पूजयेत् । वृत्तिं हुत्वा विधानेन ततस्त्वेकाशनो भवेत् ॥२४
 भूशय्या ब्रह्मचर्येण शत्तः स्नानं समाचरेत् । अशक्तस्य^२ धनाद्वयस्य स्वेच्छा सा तत्र कथ्यते ॥२५
 अवश्यमपि कर्तव्यं माधे स्नानमिति श्रुतिः । ईश्वरेण यथाकामं बलं धर्मोऽनुवर्तते ॥२६
 तिलस्नायी तिलोद्गतीं तिलभोक्ता तिलोदकी । तिलहोता च दाता न षट्तिलो नावसीदति ॥२७
 तैलस्यामलकानां च तीर्थे देयानि नियशः । तथा प्रज्वालयेद्वित्तिं निवातार्थं द्विजन्मनाम् ॥२८
 एवं स्नानावसाने तु भोजयं देयमवारितम् । भोजयेद्विजदापत्यं भूषयेद्वस्त्रभूषणैः ॥२९
 कम्बलाजिनरत्नानि वासांसि विविधानि च । चोलकानि च दिव्यानि प्रच्छादनपटीस्तथा ॥३०
 उपानहौ तथा गुप्तं मोदकैः पापमोचकैः । अनेन विधिना द्व्यान्माधवः प्रीयतानिति ॥३१

तो पौष और फालगुन के मध्य वाले मास में प्रातः स्नायी होना आवश्यक है। इस स्नान को पूर्णिमा या अमावास्या से ही आरम्भ करना बताया गया है। मकर राशि पर सूर्य के पहुँचने पर वह पूरा तीस दिन (मास) पुण्य काल रहता है। उसमें प्रातः काल उठकर सविधान नियम पालन आरम्भ करना चाहिए-तीर्थ के इस शीतल जल में माघ मास भर माधव देव की स्थापना मैं कर रहा है-इस प्रकार मानसिक संकल्प पूर्वक ही आरम्भ कर स्नान करे; नगेवदन चलते हुए इस प्रकार के कष्ट पूर्ण स्नान करने पर उस मानव के पग-पग पर अश्वमेध फल प्राप्त होता है। राजन्! उस शुभ-तीर्थ के जल में स्नान और शिर में मृत्तिका लगा कर वैदिक विधान द्वारा सूर्य को अर्ध्य प्रदान करना चाहिए। अनन्तर तीर्थ जल से बाहर निकल कर पितृतर्पण और इष्ट देव को नमस्कार करके पुरुषोत्तम देव की उनके शंख चक्रधर और माधव नाम के उच्चारण पूर्वक अर्चना करे। पश्चात् सविधान तपन और एकाहार करे। सशक्त होने पर भूशय्या तथा ब्रह्मचर्य के पालनपूर्वक स्नान बताया गया है और अशक्त एवं धनी-मानी के लिए स्वेच्छायां। अतः श्रुति के कथनानुसार माघ मास अवश्य स्नान करना चाहिए। जिस प्रकार ईश्वर यथेच्छ धार्मिक बल धारण करता है उसी भाँति तिलस्नान, तिल-लेपन, तिलभोजन, तिलोदक, तिल-हवन, और तिल-दान इस प्रकार षट्तिल (छह प्रकार से तिल के उपभोग) करने वाले कभी कहीं दुखीं नहीं होते हैं। १५-२७। आमलक (आँवले) के तेल का दान तीर्थ में नित्य करते हुए ब्राह्मणों के घरों में उसी द्वारा अग्नि-प्रज्वालन भी करे। इस प्रकार स्नान की समाप्ति में वस्त्र और आभूषणों द्वारा द्विजम्पति को विभूषित करके भोजन कराये और कम्बल, मृगचर्म, रत्न, अनेक भाँति के वस्त्र, चोलक (पुरुषों के कुर्ते, आदि) वस्त्र और दिव्य उत्तरीय वस्त्र (चदरा आदि), उपानह, तथा गुप्तं भाव से पापमोचक मोदक

१. सदा भवेत् । २. धनेशस्य ।

अगस्यगमनस्तेयपाएभ्यद्वच परिग्रहात् । रहस्याचरिताद्वापि मुच्यते स्नानमाचरेत् ॥३२
 पितृशः पितामहैः सादृं तथैव प्रपितामहैः । मातामःतामहैः सादृं वृद्धमातामहस्तथा ॥३३
 एकविंशकुलैः सादृं भोगान्भुक्त्वा यथेष्पितान् । माघमास्युषस स्नात्वा विष्णुलोकं स गच्छति ॥३४
 यो माघमास्युषसि सूर्यकरभिताम्रे स्नानं समाचराति चारुनदोषवाहे ।

उद्धृत्य सप्तपुरुषान्पितृमातृतद्वच स्वर्गं प्रयात्यमलदेहधरो नरोऽसौ ॥३५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वेषि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 माघस्नानविधिवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकशतमोऽध्यायः । १२२

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नित्यस्नानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

नैमित्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न युज्यते । तस्मात्कायविशुद्धचर्यं स्नानमादौ दिधीयते ॥१
 अनुद्वैरुद्वैर्द्वैर्द्वै जतैः स्नानं समाचरेत् । तीर्थं प्रकल्पयेद्विद्वान्मूलमंत्रेण मंज्ञवित् ॥२
 नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः । दर्भपाणिस्तु विधिना स्वाचान्तः प्रयतः सुधीः ॥३

प्रदान द्वारा उसे सुसम्मानित करे । इस विधान द्वारा उपरोक्त दान से समय ‘माधव प्रसन्न हों’ कहे । अगस्या स्त्री के साथ गमन, चोरी, प्रतिग्रह एवं रहस्य मय पापों से छुटकारा मिलता है अतः स्नान अवश्य करना चाहिए । माघ मास में उष्ण काल में स्नान करने से पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, मातामह, प्रमातामह, वृद्ध प्रमाता मह, इस प्रकार अपनी इक्कीस पीढ़ी समेत उत्तम भोगों के यथेच्छ उपभोग करने के अनन्तर विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । इस प्रकार माघ मास में उषाकाल के समय, जब अरुणोदय सूर्य की रक्त वर्ण की किरणों द्वारा जल में लालिमा भर जाती है, किसी उत्तम नदी के जल-प्रवाह में स्नान करने वाला मनुष्य निर्मल देह धारण पूर्वक अपनी माता-पिता की सात पीढ़ियों समेत स्वर्ग प्राप्त करता है । १२८-३५

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद मे
 माघस्नान विधि वर्णन नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त । १२२।

अध्याय १२३

नित्यस्नानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—विना स्नान किये निर्मलता और भावशुद्धि नहीं होती है अतः शरीर शाद्वर्चर्य सर्व-प्रथम स्नान-विधान बताया गया है । (कूप आदि से) निकाले हुए अथवा नदी आदि के जल से स्नान करना आवश्यक होता है । मंत्र वेत्ता विद्वान् को चाहिए- ‘नमो नारायणाय— (नारायण को नमस्कार है)’ इस मूल मन्त्र के उच्चारण द्वारा तीर्थ की कल्पना करें । सर्व प्रथम आचमन द्वारा भीतर और

चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्त्रं समन्तः । प्रकल्प्यादाहयेद्भज्ञामेभिर्वैर्विचक्षणः ॥४
 अविष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता । पाहि नस्त्वेनस्त्वस्मादाजन्ममरणांतिकात् ॥५
 तिष्ठः कोटघोर्द्धकोटी च तीर्थानां दायुरव्रवीत् । दिवि भुव्यंतरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि ॥६
 नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीर्ति च । क्षमा पृथिवी च विहगा विश्वकायाऽ॑ शिवा स्तृता ॥७
 विद्याधरा सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी । क्षेष्यः तथा जाह्नवी च शांता शांतिप्रदायिनी ॥८
 एतानि पुण्यनामानि स्नानजले प्रकीर्तिगृह् ! भवेत्सन्निहिता तत्र गङ्गात्रिपथगामिनी ॥९
 सप्तदाराभिजप्तेन करसम्पुटयोजितम् । (३) सूर्णि कुर्याज्जलं भूप त्रिचतुःपञ्चतात्तदा ॥१०
 स्नानं कुर्यान्मृदा तद्विमन्त्र्य च विधानतः ॥११
 अभ्यक्तं रथाक्षांते विष्णुक्रांते वसुंधरे । मृत्तिके हर मे सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥१२
 उद्धृतानि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना । नमस्ते सर्वलोकानामसुधारिणि सुद्रवते ॥१३
 एवं स्नात्वा ततः पद्मचादाचम्य च विधानतः । उत्थाय चाससी शुक्ले सूक्ष्मे तु परिधाय वै ॥१४
 ततस्तु तर्पणं कुर्यात्त्रैलोक्याप्यायनः तु । देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वास्तरतां गणाः ॥
 कूरा: सर्वा: सुपर्णाश्च तरक्षा विहगा: खगाः ॥१५
 विद्याधरा जलधारास्तथैवाकाशगामिनः । निराधाराश्च ये जीवाः पापकर्मरताश्च ये ॥१६
 तेषामाप्यायनायैतदीयते सलिलं मया । कृतोपवीतो देवेभ्यो निदीती च भवेत्ततः ॥१७

कुशाओं के सींचने द्वारा बाहरकी शुद्धि पूर्वक हाथ में कुश लिए चार हाथ के चौकोर गड्ढे को सजल कर उसमें निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा गङ्गा प्रवाहित करो । ओंकार के उच्चारण पूर्वक—विष्णु चरण से उत्पन्न होने के नाते दैष्णवी और विष्णु देवता वाली गङ्गे! मेरे जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के सभी पापों से मेरी रक्षा करो । क्योंकि वायु देव के कथनानुसार साढ़ेतीन कोटिदेवगण, जो आकाश, भूतल, और अन्तरिक्ष (विदिषाओं) में स्थायी रहते हैं सभी तुम्हारे अधीन हैं । १-६। नन्दिनी, देवों प्रचलित नलिनी, क्षमा, पृथिवी, विहगा, विश्वकाया, विद्याधरा, सुप्रसन्ना, लोभ प्रसादिनी, हैमा, जाह्नवी, शांता, शांतिप्रदा, ज्ञान के समय इन नामों के संकीर्तन करने पर त्रिपथ (आकाश-पाताल और मर्त्यलोक में) गामिनी (गमन करने वाली) गङ्गा वहाँ सम्मिलित होती हैं । भूप! दोनों हाथों को सम्पुटित करके सात बार उपरोक्त नामों के जप करते हुए तीन, चार, पाँच, अथवा सात बार जल को शिर से स्पर्श पूर्वक ज्ञान आरम्भ करे । उसी भाँति आमंत्रित करके सविधान मृत्तिका ज्ञान भी बताया गया है—अश्रु, रथ, एवं विष्णु से आक्रान्त होने वाली वसुन्धरे मृत्तिके! मेरे किये हुए समस्त दुष्कृतों का अपहरण करो । समस्त लोकों के प्राण धारण करने वाली सुव्रते! बराह रूप धारी कृष्ण एवं शतबाहु द्वारा तुम्हारा उद्धार हुआ है अतः तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । इस प्रकार ज्ञान और सविधान आचमन करके सूक्ष्म एवं श्वेत वस्त्र पहन करतीनों लोकों के वृद्धर्थ तर्पण करे—देव, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरा गण, कूरसर्प, सुवर्ण, बुन्द, तरक्ष, विहग, खग, विद्याधर, जलधर, आकाश गामी तथा विद्याधर रहने वाले और पापी जीव के संतुप्ति के लिए, मैं यह जल दान कर रहा हूँ । ७-१६। अनन्तर बायें कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण कर देवों के लिए, कंठ में

सनुष्यांस्तर्पयेद्भूक्त्या ब्रह्मपुत्रानुषीस्तथा । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥१८
 कपिलश्चासुरिश्चैव वोदुः पञ्चशिखस्तथा । सर्वे ते तृतीयायांतु मदज्ञेनाम्बुना सदा ॥१९
 मरीचिमश्चञ्जिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । प्रचेतसं वशिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥२०
 देवब्रह्मरूपीन्द्रियस्तर्पयेतक्षतोदकैः । अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जानु च भूतले ॥२१
 अग्निष्वात्ता दर्हिष्वदो हविष्मंतस्तथोष्मपाः । सुकलितास्तथा भौमा आज्यपाः सोमपास्तथा ॥२२
 तर्पयेच्च पितृन्भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः । र्वधपाणित्सु विधिवत्तर्पयेन्नामगोत्रतः ॥२३
 गित्रादीन्नास्त्रोत्रेण तथा मातामहानपि । संतर्प्य विधिवद्भूक्त्या इमं मंत्रमुदीरयेत् ॥२४
 येऽब्रान्धवा ब्रान्धवा वा देव्यजन्मनि बान्धवाः । ते तृतीयमखिलाः यांतु यश्चास्मतोऽभिवाच्छित् ॥२५
 ततश्चाचम्य विधिवदालिखेत्पद्ममद्रतः । अक्षतैः सह पुष्पैश्च सतिलाखणचन्दनैः ॥२६
 अर्ध दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानुकीर्तनैः । नमस्ते दिव्यरूपाय नमो विज्ञुसखाय वै ॥२७
 सहखरशमये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे । नमस्ते शर्वपुरुषे नमस्ते सर्वशक्तये ॥२८
 जगत्स्वामिन्नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनपूषित । पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदधारिणे ॥२९
 नमस्ते सर्वलोकेश सर्वासुरनमस्कृत । सुकृतं दुष्कृतं चैव सम्यग्जानाति सर्वदा ॥३०
 सत्यदेव नमस्तेऽस्तु सर्वदेव नमोऽस्तु ते । दिवाकर नमस्तेऽस्तु त्रयीमय नमोऽस्तु ते ॥३१
 एवं सूर्यं नमस्कृत्य त्रिःकृत्वा च प्रदक्षिणाम् । द्विजं गां काञ्चनं स्पृष्ट्वा ततो विष्णुगृहं ब्रजेत् ॥३२

रख कर ऋषियों के लिए तर्पण करने के उपरांत मनुष्यों और ब्रह्म पुत्र ऋषियों का तर्पण करे—सनक, सनन्दन, सनातन, सनन्त्कुमार, कपिल, आसुरि, वोढा और पञ्चशिख ये सभी लोग मेरे किये गये जल से तृप्त हों ॥१७-१९। मरीचि, अग्नि, अञ्जिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु, नारद और समस्त देव, ब्रह्म एवं ऋषियों का तर्पण अक्षत-ज्ञेल द्वारा मुसम्पद्र करके अपसव्य (यज्ञोपवीत को दाहिने कंधे पर रख कर) होकर दाहिना धूटने के बल बैठें चन्दन, तिल जल द्वारा भक्ति पूर्वक अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, हविष्मान् उष्मपाः, सुकलित भौम, आज्यपा, और सोमपा पितरों को तृप्त करते हुए हाथ में कुश लिए नाम-गोत्र के उच्चारण पूर्वक पितृ-मातृ कुल को तर्पण द्वारा तृप्त करे और अनन्तर (वस्त्र निचोड़ने द्वारा) बन्धु, अबन्धु और अन्य जन्म के बन्धुगण मेरे इस जल दान द्वारा तृप्त हों, जो मुक्त से जल पाने की अभिलाषा रखते हों । उपरान्त आचमन करके कमल की रचना करके उस पर सूर्य के आवाहन स्थापन पूर्वक उनक नामों का कीर्तन करते हुए अक्षत, पुष्प, तिल तथा रक्तचन्दन का अर्ध उन्हें प्रदान करें—विश्वरूप को नमस्कार है, विष्णु सखा को नमस्कार है, सहस्रकिरण को नमस्कार है, समस्त तेज को नमस्कार है, सर्वदेह और सर्वशक्ति को नमस्कार है, जगत् के स्वामी दिव्य चन्दनभूषित, पद्मनाभ, कुण्डल और अंगद (विजयपठ) धारी को नमस्कार है । समस्त लोकों के ईश एवं समस्त असुरवन्दों के बन्दनीय को नमस्कार है, आप (मेरे) सुकृत और दुष्कृत का भलीभाँति सदैव ज्ञान रखते हैं अतः सत्य देव को नमस्कार है और त्रयी (तीनों वेद) मय को नमस्कार है ॥२०-३१। इस भाँति सूर्य का नमस्कार, तीन प्रदक्षिणा, ब्राह्मण, गौ एवं सुवर्ण का स्पर्श करके विष्णु मन्दिर में दर्शनार्थ का ज्ञान, जो पाप का

न्नानं खलु प्रतिदिनं कथितं सुनीन्द्रैः पापाय हं मलहरं सुखदं सदैव :
तस्मान्नदीष्वथ गृहेष्वथ वा तडारे कर्तव्यमेतदिह^१ धर्मधिया नरेण ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नित्यस्नानविधिवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२३

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रुद्रस्नानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

रुद्रस्नानविधानं मे कथयस्व जनार्दन । सर्वदुष्टोपशमनं सर्वशांतिप्रदं नृणाम् ॥१
श्रीकृष्ण उवाच

देवसेनापतिं स्कन्दं रुद्रपुत्रं दुरासदम् । अगस्त्यो मुनिशार्दूलः सुखासीनमुवाच्च ह ॥२
सर्वज्ञोऽसि कुमार त्वं प्रसादाच्छङ्करस्य वै । स्नानं रुद्रविधानेन बूहि कस्य कथं भवेत् ॥३

स्कन्द उवाच

मृतप्रजा तु या नारी दुर्भगा सुतवर्जिता^२ । या सुते दुहितां वंध्या स्नानमासां विधीयते ॥४
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यामुपवासपरायणा । क्रतौ शुद्धे चतुर्थेऽहिं प्राप्ते सूर्यदिनेऽथ वा ॥५

नाशक एवं सदैव सुख प्रद है, मुनीद्रों के कथनानुसार मैंने तुम्हें बता दिया । अतः नदी, सरोवर, अथवा गृह में स्नान बुद्धिमान् पुरुष को अवश्य करना चाहिए । ३-२-३

श्रीभविष्ये महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
नित्य स्नान विधि वर्णन नामक एक सौ तेर्इसवाँ अध्याय समाप्त । १२३।

अथ अध्याय १२४

रुद्रस्नानविधि-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन! मुझे वह रुद्रस्नान बताने की कृपा कीजिए, जो समस्त दुष्टों के
शमन-पूर्वक मनुष्यों को सम्पूर्ण शान्ति प्रदान करता है । १

श्री कृष्ण बोले—एक बार मुनि श्रेष्ठ अगस्त्य जी ने सुख पूर्वक बैठे हुए देवसेना नायक स्कन्द से जो
रुद्र के पुत्र एवं दुर्धर्ष हैं, कहा—कुमार! आप शङ्कर जी की कृपा से सर्वज्ञ हो गये हैं अतः रुद्रस्नान का
विधान तथा वह किसे, और कब करना चाहिए, बताने की कृपा करें । २-३

स्कन्द बोले—जिसके बच्चे उत्पन्न होकर मर जाते हैं, दुर्भगा, पुत्र हीन, तथा जिसके कन्या ही
उत्पन्न होती हैं और बन्ध्या स्त्रियों के लिए यह स्नान विधान बताया गया है—क्रतु धर्म की शुद्धि होने पर

१. धर्मपरेण पुंसा २. क्रतुवर्जिता । ३. दुहितामित्यार्षम् ।

नद्योस्तु सङ्गमे कुर्यान्महानदीर्विशेषतः । शिवात्लयेऽथ द्वा गोष्ठे विविक्ते वा गृहाङ्गणे ॥६
 आहिताग्निं द्विजं शांतं धर्मजं सत्यशीलिनम् । ज्ञानार्थं प्रार्थयेद्वेवं^१ निपुणं रौद्रकर्मणि ॥७
 ततस्तु मण्डपं कुर्याच्चतुरद्वमुदगतप् । बद्धचन्दनमालं तु गोमये नोग्नलेपितम् ॥८
 तत्मध्ये श्वेतरजसा सम्पूर्णं पद्ममालिखेत् । मध्ये तस्य महादेवं स्थापयेत्कर्णिकोपरि ॥९
 दद्याद्वलेषु शक्त्यादीच्चतुर्थविधिं^२ पूर्वकम् । इन्द्रादिलोकपालांश्च दत्तेष्वन्येषु विन्यसेत् ॥१०
 देवीं विनायकं चैव स्थापयेत्स्य पार्श्वतः । दत्त्वार्थं गन्धपुष्पं च धूपदीपं गुडौदनम् ॥११
 चक्ष्यान्नादिधान्दद्यात्कलानि त्रिविधानि च । चतुष्कोणेषु भृंगारमभ्यतथदलभूषितम् ॥१२
 एककं विन्यरेद्वद्ब्रह्मांसर्वोवधिसमन्वितम् । चतुर्दिशं मण्डलस्य दद्याद्भूतबलिं ततः ॥१३
 आग्रेयां दिशि कर्तव्यं मण्डपस्य समीपतः । अग्निकार्यं शुभे कुण्डे पुष्पपत्रैरलंकृते ॥१४
 लवणं सर्षपैर्युक्तं घृतेन मधुना दह । मानस्तोकेन जुहुयत्कृतहोमे नवग्रहे ॥१५
 द्वितीयमग्निकार्यस्वं कर्तर्तां ब्राह्मणं कुरु । रुद्रजापकमाचार्यं सितद्वन्दनचर्चितम् ॥१६
 सितवस्त्रपरीधानं सितमलाधारं शुभम् । शोभितं कङ्कणैः कण्ठैः कण्ठेष्टांगुलीष्टैः ॥१७
 मण्डलस्य समीपस्यो जपेद्वद्राच्चिमत्सरः । यावदेकादश गताः पुनरेव जपेत्तु तान् ॥१८
 देवमण्डलवत्कार्यं द्वितीयं मण्डलं शुभम् । तस्य मध्ये तु सा नारी श्वेतपुष्पैरलंकृता ॥१९
 श्वेतदस्त्रैश्च संछन्ना श्वेतगन्धानुलेपिता । मुखासनोपविष्टापामाचार्यो रुद्रचिंतकः ॥२०

चौथे दिन के उपरात रविवार अष्टमी अथवा चतुर्दशी के दिन उपवास पूर्वक नदी के सङ्गम ज्ञान, अथवा विशेषतया महानदी के संगम, शिवालय, गोशाला, या विस्तृत ओर खुले हुए गृह के आङ्गण गोष्ठ अग्नि होत्र करने वाले ब्राह्मण की, जो शांतं धर्मजं, सत्यप्रेमी निपुण, एवं देव रूप हो, इस रौद्र स्नान के कर्मान्तरम्भ में ज्ञानार्थं प्रार्थना करके उत्तर की ओर मण्डप की रचना करे जो चन्दन की माला से भूषित रहे । पुनः गोमय (गोबर) से लीप कर उसके मध्य भाग में श्वेत-रक्त चूर्ज द्वारा पूरे कमल की रचना करे और उसके मध्य कर्णिका के ऊपर संविधान महादेव, दलों में शक्ति पार्श्वभाग में विनायक तथा देवी की स्थापना एवं पूजन करने के उपरान्त अर्ध्यं और गन्धं, पुष्पं, धूपं, दीपं, गुडौदनं (मीठा भात) अनेक भाँति के भक्ष्य और अनेक भाँति के फल अर्पित करके चारों कोने पर पीपल के पते और समस्त औषधियों से पूर्ण सजल सुवर्ण का जल पात्रं स्थापित करे । अनन्तर मण्डप के चारों दिशाओं में भूतबलि के प्रदान करते हुए मण्डप के समीप अग्निकोण में बनाये एवं पुष्प पत्र से भूषित उस शुभ कुण्ड में प्रथम नवग्रह हवन और पश्चात् लवण (नमक) राई, धूत तथा मधु (शहद) की आहुति 'मानस्तोके' आदि मंत्रों के उच्चारण पूर्वक प्रदान करे । ४-१५। इस अनुष्ठान में अग्नि कार्य करने वाले एक दूसरे ब्राह्मण और रुद्र जप करने वाले एक आचार्य कर रख कर उन्हें चन्दन, श्वेत वस्त्र, श्वेत माला, कङ्कण, कण्ठाभूषण, कुण्डल तथा अंगूठी से विभूषित करे, जो निर्मत्सरतापूर्ण एकादश रुद्र का जप मण्डल भाँति एक दूसरे मण्डल की भी रचना करें जिसके मध्य में श्वेत पुष्पों से भूषित, श्वेत वस्त्र पहने, श्वेतगन्धं लेप लगाये भद्रासन पर वह सभी सुख पूर्वक

१. एवं सगुणं रुद्रकर्मणि । २. श्वेतरक्तं च । ३. सद्यादीनात पाठ सद्यः प्रणव इति मान्त्रिकसंज्ञा ।

अभिषिंचेततश्चैव नामर्काण्ड्रपुटंबुना । चतुषष्टिविधेनैव रुद्रेणकादशेन तु ॥२१
 शतानि सप्तपर्णानां चतुर्भिरधिकानि तु । अच्छद्वाणं मनूनां च ज्ञानार्थं विनियोजयेत् ॥२२
 अभ्यस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्हृदात् । वेश्यांगणाद्राजगृहाद्गोष्ठादानीय वै नृदः ॥२३
 सर्वोषधिं रोचनां च नदीतीर्थोदकानि च ! एतान्संक्षिप्य कलशे शिवसंज्ञे सुपूजिते ॥२४
 आपादतलकेङ्गं च कुक्षी चैव विशेषतः । सर्वांगं लेघेश्वार्याः सुशीला कर्त्तिदङ्गना ॥२५
 रुद्राभिजप्तेन ततः स्नापयेत् कलशेन ताम् ! तोद्युर्णाष्टकलशैरश्चत्थदलपूरितैः ॥२६
 सर्वतोदिक्स्थितैः पश्चात्स्नापयेत्तफलाक्षतैः । एवं ज्ञाता ज्ञापकाय दद्वाह्यां काञ्चनं तथा ॥२७
 हेतुरप्यत्र जिरिष्टा दक्षिणः गौः पयस्त्विनी । ब्राह्मणानामथान्येषां स्वशक्त्यः पांडुनन्दन ॥२८
 गोवत्सकाञ्चनादीनि दत्त्वा सर्वं क्षमापयेत् । कृतेनानेन राजेन्द्र रुद्रक्षानेन भागिनी ॥२९
 सुभग्या सुखसंयुक्ता बहुपुत्रा च जायते । सर्वेष्वपि हि मासेषु ब्राह्मणाभिमते शुभम् ॥३०
 तस्मादवयं कर्तव्यं पुत्रश्रीसुखमिच्छत ॥३१

या स्नानमाचरति रुद्रमिति प्रसिद्धिं श्रद्धान्विता द्विजवरानुमताऽनन्ताङ्गी ।

दोषान्त्रित्य सकलान्स्वशरीरभागाद्वूर्तुः प्रिया भवति भारत जीववत्सा ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 रुद्रस्नानविधिवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२४

बैठी रहे और रुद्र के ध्यान करके वाले आचार्य अर्कपत्र (मदार) के पते की दोनियाँ द्वारा चौसठविधान, एकादश रुद्र, एक सौ चार सप्तपर्ण और निर्दुष्ट मन्त्रो के उच्चारण पूर्वक उसका अभिषेक करें ; ज्ञान के पश्चात् उस शिवकलश, वेश्यागृह, राजगृह और गोशाला की मृत्तिका, समस्त औषध, रोचना, नदी और तीर्थ के जल पड़े हों, उस स्त्री के पैर के तलवे से लेकर शिर तक विशेषतया दोनों कुक्षि और सर्वाङ्ग में किसी सुशील कामिनी द्वारा उस मृत्तिका के लेप पूर्वक आचार्य द्वारा जल-स्नान कराना चाहिए । १६-२५। पुनः उन आठ कलशों के जल से, जो पीपल पते आदि से पूर्ण और दिशाओं के स्थापित हों, फल अक्षत समेत आचार्य उस सभी का ज्ञान कराये । ज्ञानोपरांत वह सभी ज्ञान कराने वाले आचार्य को गौ और सुवर्ण अर्पित करे । पाण्डुनन्दन! यथाशक्ति आचार्य एवं अन्य ब्राह्मणों का दक्षिणा दे धेनु (दूध देने वाली) गौ अर्पित करना चाहिए । राजेन्द्र! इस प्रकार सवत्सा गौ एवं काञ्चन आदि अर्पित करके क्षमा प्रार्थना करे । इस भाँति रुद्र ज्ञान करने पर वह भामिनी, सुभाग सुखी और बहु पुत्रा होती है । पुत्र, श्री एवं सुख की वाञ्छा करने वाली स्त्रियों को ब्राह्मण की सम्मति से यह ज्ञान अवश्य करना चाहिए । भारत! इस प्रकार इस प्रसिद्ध रुद्र ज्ञान को श्रेष्ठ ब्राह्मण की अनुमति से सम्पन्न करने वाली नताङ्गी कामिनी अपनी देह के समस्त दोषों के हनन पूर्वक भर्ता की प्रेयसी एवं जीव वत्सा होती है । २६-३२

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

रुद्रस्नान विधि वर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त । १२४।

अथ पञ्चर्विशत्यधिकशततमोऽध्यायः

चन्द्रादित्यग्रहणस्नानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

चन्द्रादित्योपरगेषु यत्स्नानमधीयते । तदहं श्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्नं प्रधानतः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

यस्य राशि समासाद्य भवेद् ग्रहणसंप्लवः । तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम् ॥२
 चन्द्रोपरागं सम्प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । सम्भूज्य चतुरो विश्रान्गान्धमात्यानुलेपनैः ॥३
 पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधिदिकम् । स्थापयेच्चतुरः कुम्भानग्रतः सागरानितिः ॥४
 गजाधररथ्यावलम्बीकसङ्घमादध्वंगोकुलात् । राजद्वारप्रदेशात् मृदमानीय प्रक्षिपेत् ॥५
 पञ्चर्वायां च कुम्भेषु दञ्च रत्नानि चैद हि । रोचनां पद्मशङ्खैः च पञ्चभङ्गसमन्वितौ ॥६
 स्फटिकं चन्द्रनं श्वेतं तीर्थवारि ससर्वपम् । गजदन्तं कुंकुमं च तथैवोशीरगुग्गुलम् ॥७

एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत्सुरान् ॥७

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा ह्रदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥८
 योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः । सहवनयनश्चेन्द्रः पीडां भेजन्न व्यपोहतु ॥९
 रक्षोगणाधिपः साक्षात् प्रलयानिलसप्रभः । खड्गव्यग्रोऽतिभीमश्च रक्षः पीडां व्यपोहतु ॥१०

अध्याय १२५

चन्द्र-सूर्य-ग्रहण-स्नान की विधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—चन्द्र और सूर्य के ग्रहण समय में जो अन्न प्रधान द्रव्य स्नान किया जाता है, मुझे सुनने की इच्छा है बताने की कृपा कीजिये । १

श्रीकृष्ण बोले—जिसकी राशि पर नह ग्रहण लगता है, उसके लिए मन्त्र और औषध समेत वह स्नान करना बता रहा हूँ । चन्द्र ग्रहण में ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन पूर्वक गन्ध, माला एवं अनुलेपन द्वारा चार ब्राह्मणों की अर्चना करे । ग्रहण के पूर्व समय धृत और औषध मिश्रित सागर के रूप में चार कलश की स्थापना करे, जिसमें गज, अश्व, रथ, वल्लीक, संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वार की मृत्तिका, पंचगव्य, पंचरत्न, गोरोचन, कमल, शंख, पंचगंग, स्फटिक, श्वेत चन्द्रन, तीर्थजल, राई, गजदाँत, कुंकुम, खस (गडरा की जड़) और गुग्गुल पड़ा हो । इन सभी वस्तुओं को कलश में डालने के अनन्तर उस कलश में देवों के आवाहन आरम्भ करे—समस्त समुद्र, नदियाँ, तीर्थ, जलद, बादल एवं सरोवर यजमान के पापविनाशार्थ यहाँ आने की कृपा करें । २-८। वज्र धारण करने वाले इन्द्र देव जो आदित्यगण के प्रभु एवं सहवन नेत्र हैं इस मेरी व्यथा को दूर करें । रक्षागणाधिप ! जो साक्षात् प्रलय कालीन वायु की भाँति दुर्धर्ष खड़ग लिये व्यग्र और अति भीषण है, राक्षस जनित मेरी पीड़ा शान्त करे । ९-१०।

योऽसो विन्दुकरो विन्दुः पिनाकी वृषवाहनः । चन्द्रोभराणपापानि स नाशयतु शङ्खः ॥११
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ऋहार्कविष्णयुक्तानि तानि पापं दहन्तु वै ॥१२
एवमामन्त्रितैः कुम्भैरस्मैर्युक्तैयुग्मनिवतेः । ऋत्यजुः साममन्त्रैश्च शुक्लामात्यानुलेपनैः ॥
पूजयेद्वस्त्रगोदानैब्राह्मणानिष्टदेवताः ॥१३

एतादेव ततो भन्नानसंलिख्य कनकान्वितान् । यज्ञमानस्य शिरसि उद्धार्यस्ते नरोत्तम ॥१४
कलशान्द्रव्यसंपुक्तान्नाप्ते प्रहणपर्वणि । चन्द्रग्रहे निवृत्ते हु कृतगोदानमङ्गलः ॥१५
कृतस्नानः श्वेतपट्टृं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । अनेन विधिना यस्तु सग्रहं स्नानमाचरेत् ॥१६
न तस्य ग्रहपीडास्याश्च च बन्धुजनक्षयः । परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिद्वल्लभाम् ॥१७
सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् । द्वैत्यस्तैरेव कथितं स्नानं कुरुकुलोद्धह ॥१८
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवः । सर्वपापविनिर्मुक्तः शङ्खलोके भ्रह्मीयते ॥१९
चन्द्रग्रहे नृप रविग्रहेण जपन्मां मन्त्रैरिमैः समभिमन्त्र्य शुभोदकुम्भात् ।
स्नानं करोति नियमेन नरश्च यश्च पीडा न तं ग्रहकृता च पुनर्दुनोति ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बादे
चन्द्रादित्यग्रहणस्नानविधिवर्णनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥२५

विन्दु करने वाले विन्दु पिनाकी तथा वृषवाहन शङ्खर देव ! चन्द्रग्रहण जनित मेरे समस्त पापों को नष्ट करें । त्रैलोक्य में स्थित चार, अचर समस्त प्राणी समेत ब्रह्मा, सूर्य एवं विष्णु देव मेरे पापों को भस्मसात करें । इस प्रकार उन जलपूर्ण चारों कलशों में आवाहन, क्रक्क, यजु और साम के मन्त्रों द्वारा श्वेत पुष्पों की माला, विलेप, वस्त्र, तथा गोदान अर्पित करते हुए इष्ट देवता एवं ब्राह्मणों की अर्चना सुसम्पन्न करे । नरोत्तम ! इन मंत्रों को कनकमय करते हुए लिखने के उपरांत यज्ञमान के शिर पर उन मन्त्रों के उद्धार पूर्वक उस ग्रहण के समय औषधादि संयुक्त कलशों के जल से स्नान और ग्रहण के निवृत्त होने पर मङ्गलार्थ गोदान करके श्वेत वर्ण का दुपट्टा ब्राह्मण को सादर अर्पित करें । इस विधान द्वारा ग्रहण के समय स्नान करने वाले की ग्रह पीड़ा शांति हो जाती है, बन्धु, परिवार का क्षय नहीं होता तथा ऐसी उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है जिसमें पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) होता ही नहीं । कुरुकुलोद्धह ! सूर्य ग्रहण के समय मंत्रोच्चार करते हुए सूर्य के नाम का ही सदैव कीर्तन करना चाहिए । और पूर्वोक्त वस्तुओं समेत घट स्नान । इस आख्यान को सुनने अथवा सुनाने वाले मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर इन्द्र लोक में सुसम्मानित होते हैं । नृप ! चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के समय मेरी आराधनापूर्वक इन मंत्रों से अभिमंत्रित उस शुभ कलश जल से सनियम स्नान करने वाले पुरुष को ग्रहपीड़ा पीड़ित नहीं करती है ॥११-२०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बाद में
चन्द्रसूर्य ग्रहण स्नान विधि वर्णन नामक एक सौ पञ्चीसवाँ अध्याय समाप्त । १२५।

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सांभरायणीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

गृहस्थो मरणे प्राप्ते कथं तज्ज्ञति जीवितम् । एतन्मे ब्रूहि जोविन्द परं कौतुहलं हि मे ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

नान्यदुष्कृष्टमुद्दिष्टं तज्जरनशनात्तरन् । तस्याहं लक्षणं वक्ष्ये यज्जप्यं च मुखूर्षतः ॥२

यादृगूपश्च भगवान्विचंतनीयो जनार्दनः । आसक्षमात्मनः कालं ज्ञात्वा प्राज्ञो युधिष्ठिरः ॥३

निर्धूतमलदोषश्च स्नातो नियतमानसः । सम्पर्यच्च हृषीकेशं पुष्पधूपादिभिस्तः ॥४

प्रणिदातैः स्तवैः पुण्यर्गदैर्धूपैस्तु पूजयेत् । इत्वा दानं च विप्रेभ्यो विकलादिभ्य एव च ॥

समर्प्य ब्राह्मणम्भश्च देवर्चाद्युपासोगि च ॥५

बन्धुपुत्रकलत्रेषु क्षेत्रधान्यधनदिषु । मित्रवर्गे च राजेन्द्र ममत्वं विनिवर्तयेत् ॥६

मित्राण्यमित्रान्मध्यस्थान्परान्स्वांश्च पुनः पुनः । अत्यर्थमपकारेण नोपकारेण चिन्तयेत् ॥७

ततश्च प्रयतः कुर्यादुत्तर्सा सर्वकर्मणाम् । शुभाशुभानां राजेन्द्र वाक्यं चेदमुदीरयेत् ॥८

परित्यजाम्यहं भोगस्त्यजामि सुहृदोऽखिलान् । भोजनं हि मयोत्सृष्टमुत्सृष्टमनुलेपनम् ॥९

अध्याय १२६

सांभरायणी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—गोविन्द ! ग्रहण का समय प्राप्त होने पर गृहस्थों को किस प्रकार अपना जीवन त्याग करना चाहिए । यह जानने के लिए मुझे महान् कुतुहल हो रहा है, अतः इसे कहने की कृपा कीजिये ॥१

श्रीकृष्ण बोले—अनशन करने वाले विद्वानों ने उपवास करना बहुत कठिन बताया है (अर्थात् उससे कठिन अन्य कुछ भी नहीं है) अतः मरणासन्न प्राणी को उस समय का जप और अनशन का लक्षण बता रहा हूँ, सुनो ! युधिष्ठिर ! अपना मरण सञ्चिकट जान कर भगवान् जनार्दन के जिस रूप का ध्यान करना चाहिए उसे भी सुनो ! मन को संयत करते हुए मल दोष रहित एवं स्नान करने के पश्चात् पुष्प, धूप, नम्रतापूर्ण स्तुतियों और पुण्य गंध आदि वस्तुओं द्वारा भगवान् हृषीकेश की अर्चना, ब्राह्मणों और लंगडे लूले आदि को दान करे और देवों आदि की अर्चा आदि उपयोगी कर्म ब्राह्मणों को सौंप करके भाई, पुत्र, स्त्री क्षेत्र (खेत), धन धान्य आदि एवं मित्र वर्ग से अपना मोह हटा ले । मित्र, शत्रु, मध्यस्थ और अपना, पराया उपकार अथवा अपकार का कुछ भी स्मरण न करे । अनन्तर प्रयत्न पूर्वक समर्त कर्मों के त्याग भी । राजेन्द्र ! पुनः शुभाशुभात्मक इन वाक्यों का उच्चारण करे । २-८ मैं सम्पूर्ण भोग और निखिल मित्रों का त्याग कर रहा हूँ । मैंने भोजन का त्याग तो कर ही दिया है किन्तु विलेप, माला, भूषण आदि,

म्नाभूषणादिकं गैयं दानमासनमेव च । होमादयः परार्था ये ये च नित्यक्रमागताः ॥१०
 नैमित्तिकास्तथा काम्याः श्राद्धधर्मादियोजिताः । त्यक्ताश्वाश्रमिकः धर्मा वर्णधर्मस्तथोजिताः ॥११
 पद्मूर्च्छां कराभ्यां विहरन्कुर्वाणः कर्म चोद्दहन् । न पापं कस्यविन्याया प्राणिनः गंतु निर्भवाः ॥१२
 नभसि प्राणिनो ये च दे जले ये च भूतले । क्षितेर्विवरगा ये च ये च पाषाणसंपुटे ॥१३
 धान्यादिषु च वस्त्रेषु शयनेषामनेषु च । ते स्वयं तु विबुध्यते दत्तं तेभ्योऽभयं मया ॥१४
 न भेदस्ति बांधवः कश्चिद्विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुम् । मित्रपक्षे च मे विष्णुरधश्चोर्ध्वं तथा पुनः ॥१५
 पार्ख्षतो मूर्धिनं हृदये बाह्यमां चैव चक्षुषोः । श्रोत्रादिषु च सर्वेषु मम विष्णुः प्रतिष्ठितः ॥१६
 इति सर्वं समुत्सृज्य धृत्वा सर्वेशमच्युतम् । वासुदेवेत्यदिरतं नाम देवस्य कौर्तयेत् ॥१७
 दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु शेते वै प्राकिछरास्तथा । उदक्षिणर वा राजेन्द्र चिन्तयञ्जगतः पतिम् ॥१८
 विष्णुं जिष्णुं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम् । नारायणं नरं शौरीं वासुदेवं जनार्दनम् ॥१९
 वाराहं जग्नपुरुषं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् । वामनं श्रीधरं कृष्णं नृसिंहमपराजितम् ॥२०
 पद्मनाभमजं श्रीशं दामोदरमधोक्षजम् । सर्वेभरेश्वरं शुद्धमनन्तं विश्वरूपिणम् ॥२१
 चक्रिणं गदिनं शान्तं शत्त्विनं गरुडध्वजम् । किरीटकौस्तुभधरं प्रणमाम्यहमव्ययम् ॥२२
 अहमस्मि जगन्नाथ मयि वासं कुरु द्रुतम् । आवयोरन्तरं मास्तु समीराकाशयोरिव ॥२३
 अयं विष्णुरयं शौरिरयं कृष्णः पुरो मम । नीलोत्पलदलश्यामः पद्मपत्रायतेक्षणः ॥२४

गैये, दान और आसन के त्याग पूर्वक नित्य के क्रम प्राप्त पारमार्थिक हवन आदि, नैमित्तिक कर्म एवं श्राद्ध धर्म आदि काम्य कर्म का भी त्याग कर रहा हूँ । उसी भाँति आश्रम धर्म तथा जातीय धर्म कर्म को भी अपने कर चरण द्वारा अनेक ममय तक सुसम्पन्न करने के अनन्तर उसे भी त्याग दिया है । किसी भी प्राणी के लिए पाप कर्म न्याय प्राप्त नहीं है अतः वे निर्भय हों और आकाश, जल, थल, पाताल, पर्वत की गुफाओं धान्यादि, वस्त्रों और शयनासनों में रहने वाले प्राणियों को यह दात स्वयं जान लेना चाहिए कि मैंने उन्हें अभय दान दे दिया है । जगद्गुरु भगवान् विष्णु के अतिरिक्त अब मेरा कोई दन्धु नहीं है । मित्र तथा नीचे ऊपर, पाश्व भाग, शिर, हृदय बाहु, नेत्र और कान आदि सभी स्थानों में भगवान् विष्णु स्थित हैं । १-१६ । इस प्रकार सभी के त्यागपूर्वक भगवान् अच्युत का तन्मयता से ध्यान करते हुए उनके वासुदेव नाम का कीर्तन करे । दक्षिण की ओर अग्र किये हुए कुश ऊपर पूर्व अथवा उत्तर की ओर शिर करके जगन्नियन्ता विष्णु के ध्यान पूर्वक शयन करे । राजेन्द्र पुनः पुण्डरीकाक्ष, अच्युत, वामन, श्रीधर, कृष्ण, नृसिंह, अपराजित, पद्मनाभ, अज, श्रीश, दामोदर, अधोक्षज, सर्वेश्वर, शुद्ध, अनन्त, विश्वरूपी, चक्री, गदी, शांत, शंखी, गरुडध्वज, तथा किरीट कौस्तुभ को धारण करने वाले अव्यय (अक्षीण) रहने वाले भगवान् को मैं प्रणाम कर रहा हूँ, जगन्नाथ ! मैं इसमें और आप मुझमें रहने की शीघ्र कृपा करें । वायु एवं आकाश की भाँति मुझमें और आप में कोई अन्तर न रहे । मेरे सामने यह विष्णु, शौरी एवं कृष्ण स्थित हैं, नील कमलदल की भाँति श्यामल तथा कमल पत्र की भाँति विस्तृत नेत्र वाले मेरे स्वामी भगवान् अधोक्षज मुझे देखने की कृपा करें, मैं उन्हें देख रहा हूँ । इस प्रकार सर्वेश्वर हरि को एकाग्रचित्त

एष पश्यतु मामीशः पश्याम्यहमधोक्षजम् । इत्थं जपेदेकमनःस्मरन्सर्वेभ्वरं हरिम् ॥२५
 आसीत सुखदुःखेषु समो मित्राहितेषु च । “ॐ नमो वासुदेवाय” इत्येतत्सततं जपेत् ॥२६
 यथा यथा भवेत्कामस्तथा तनाम कीर्तयेत् । ध्यायेच्च देवदेवेशं विष्णो रूपं भनोरमम् ॥२७
 प्रसन्ननेत्रभूचकशत्वंचकगदाधरम् । श्रीवक्षसं सुभनसं चतुर्वकं किरीटिनम् ॥२८
 पीताम्बरधरं कृष्णं चारुकेषूरधारिणम् । चिन्तयेत् सदा रूपं भनः कृत्वैकनिश्चयम् ॥२९
 यादृशे वा भनः स्थैर्यं रूपे ब्रह्माति चक्रिणः । तदेव चिन्तयेद्भूपं वासुदेवेति कीर्तयेत् ॥३०
 इत्थं जपन्त्स्मरन्नित्यं स्वरूपं परमात्मनः । अप्राणपरमोदारस्तच्चित्तस्तत्परायणः ॥३१
 सर्वपातकयुक्तोऽपि पुरुषः पुरुषर्षभ । प्रयाति देवदेवेशो लयमीडचतमेच्युते ॥३२
 यथाग्रिस्तृणजातानि दहत्यनिलसङ्कल्पः पुंसां पापमसंशयम् ॥३३

युधिष्ठिर उवाच

उत्कान्तिकाले भूतःनां मुहूर्ति चित्तवृत्तयः । जराव्याधिविहीनानां किमुत व्याधिदोषिणाम् ॥३४
 अत्यन्तवयसा दग्धो व्याधिना चोपपीडितः । यदि स्थातुं न शक्नोति क्षितिस्थो दर्भसंस्तरे ॥३५
 किमप्यन्योऽप्युपायोऽस्ति न वानशनकर्मणि । वैकल्यं येन नाप्नोति तन्मे ब्रह्म हि जनार्दन ॥३६
 त्वयोक्तं भगवन् ध्यानं तद्ब्रह्म हि भम तत्त्वतः । ध्यानस्वरूपमखिलं कथयस्त्र जनार्दन ॥३७

से स्मरण करते हुए सुख-दुःख और मित्र शत्रु सब में समभाव की कल्पना पूर्वक ‘ओं नमो वासुदेवाय’ (ओंकार रूप वासुदेवाय को नमस्कार है) इस समांत्र का निरन्तर जप करे तथा ज्यों ज्यों भाव वृद्धि होती जाये त्यों त्यों उनके नाम का कीर्तन करता जाये । और देवाधिदेव भगवान् विष्णु के मनोरम रूप का ध्यान करता रहे । इस प्रकार अपने भन से एक मात्र निश्चय कर विकसित नेत्र, भाँहे एवं शंख, चक्र गदा धारण करने वाले, श्री से सुशोभित वक्षस्थल, निर्मलचित्त, चारमुख, किरीट, पीताम्बर और सुन्दर केयूर धारण करने वाले भगवान् कृष्ण के रूप का स्मरण करते हुए चक्रधारी भगवान् विष्णु के जिस रूप में भनकी दृढ़ स्थिरता हो सके उनके उस रूप का ध्यान करते हुए वासुदेवाय नमः का कीर्तन करे । पुरुषर्षभ ! इस प्रकार के जप और परमात्मा के स्वरूप का नित्य स्मरण करते हुए प्राणान्त तक परम उदार, तच्चित्त और तत्परायण रहने से समस्त पातकों से युक्त पुरुष का भी देवाधिदेव भगवान् अच्युत में सायुज्य मोक्ष हो जाता है । जिस प्रकार वायु के संसर्ग से अग्नि तृणं मात्र को भस्म करता है उसी भाँति अनशन करने का दृढ़संकल्प मनुष्यों के निखिल पापों का विनाश करता हूँ इसमें सदेह नहीं । १७-३३

युधिष्ठिर बोले—प्राण निकलने के समय जरा एवं व्ययहीन प्राणियों की चित्त वृत्ति मोहित होती है अथवा व्याधि दोष ग्रस्त प्राणियों की तथा अत्यन्त वयोवृद्ध एवं व्याधि पीड़ित प्राणी के लिए जो भूमि में बिछाये हुए कुशों पर बैठने में असर्थ हो, अनशन करने का क्यों कोई अन्य उपाय है । जनार्दन ! जिससे विकलता प्राप्त न हो सके वह मुझे बताने की कृपा कीजिये भगवान् । जनार्दन ! आप ने ध्यान करने की जो चर्चा की है उसके मर्म और निखिल स्वरूप भी कृपया मुझे बताये । ३४-३७

श्रीकृष्ण उवाच

नात्र सूर्मिन च कुशः स्वास्तराश्र न कारणम् । चित्तसन्यालं बनीसूतो विष्णुरेवात्रकारणम् ॥३८
 तिष्ठन्भुजन्स्वपन्नाच्छन्तथा धावश्चित्ततः । उत्क्रान्तिकाले गोविन्दं जंस्मरंस्तन्मयो भवेत् ॥३९
 यं यच्चापिस्मरन्भावंत्यज्यन्ते कलेवरम् । तम् तमेवैति कौन्तेय सदा तद्वावभावितः ॥४०
 तस्मात्प्रधानमत्रोकं चासुदेवस्य चिन्तनम् । यद्यत्यृष्टं त्वयात्थानं तदेव कथयामि ते ॥४१
 पुरा मे कथितं पार्थं सार्कण्डेयेन धीमता ॥४२

राज्योपभोगशयनासनवाहनेषु स्त्रीनन्धमाल्यमणिवस्त्रविभूषणेषु :
 इच्छाभिलापमतिमात्रमुदेति मोहाद्वधानं तदात्मिति सम्ब्रवदन्ति तज्जाः ॥४३
 सञ्चेदनैर्दहनताडनपीडनैश्च गात्रप्रहारदमनैविनिकर्तनैश्च ।
 यस्येह चेतसि हि याति न चानुकम्पा ध्यानं तु रौद्रिमिति तत्प्रवदन्ति तज्जाः ॥४४
 सूत्रार्थमार्गिणमहान्तभावनाभिर्बंधप्रस्तोक्षगतिरागतिहेतु चिन्ता ।
 पञ्चेन्द्रियाद्युल्लङ्घमश्च शमश्च भूतेध्यानं तु धर्म्यमिति तत्प्रवदन्ति सन्तः ॥४५;
 यस्येन्द्रियाणि विषयैर्न विवर्जितानि सङ्कल्पनात्मज विकल्पविकारयोर्गैः ।
 तत्वेकनिष्ठहृदयो निभृतान्तरात्मा ध्यानं तु शुक्लमिति तत्प्रवदन्ति सिद्धाः ॥४६
 आद्ये तिर्यगधोगतिश्च नियतं ध्याने तु रौद्रे सदा धर्म्ये देवगतिः शुभं फलमहोशुक्ले च जन्मक्षयः ।
 तस्माज्जन्मरूपापहे हिततरे संसारनिर्वाहके ध्याने शुक्लतरे रजः प्रमथने कर्यात्प्रथलं ब्रधः ॥४७

श्रीकृष्ण बोले—प्राणोत्सर्ग करने के समय चित्त का आलम्बन एक मात्र विष्णु भगवान् ही हैं। जिसका कारण भूमि, कुश और स्तरण आदि कुछ भी नहीं है। उस समय ठहरते, खाते, शया करते चले फिरते और दौड़ते आदि मध्ये काल में गोविन्द देव का स्मरण करते हुए तन्मय होना चाहिए। कौन्तेय ! शरीर त्याग के समय जिन-जिन भावों के संस्मरण होते हैं वह उसकी प्राप्ति पूर्वक उन्हीं भावों को अपनाता है। इसलिए उस समय भगवान् वासुदेव का चिन्तन करना ही सर्व प्रधान रहता है। पार्थ ! ध्यान आदि जो कुछ तुमने पूछा था मैंने सब बातें कही, पहले समय में महर्षि मार्कण्डेय ने यह मुझे बताया था। जिस ध्यान में अथवा शयन, आसन, वाहन, स्त्री, गंध माला, मणि, वस्त्र, एवं विभूषण प्राप्त होने की अत्यन्त अभिलाषा उत्पन्न हो उसे उसके मर्मज्ञों ने आत्म ध्यान बताया है। काटना, जलाना, ताड़ना देना, पीड़ित करने, शरीर आधात, दमन और निकृत की इच्छा ही जिसके मन में उत्पन्न हो अनुकम्पा किस भाँति नहीं, उसे रौद्र ध्यान कहा गया है। सूत्रों के अर्थार्थवेषण, महाव्रतों की भावनाओं द्वारा संसार रूप बन्धन से मोक्ष पुनर्जन्म की चिन्ता, पाँचों इन्द्रियों के जप शमन की इच्छा वाले ध्यान को धार्मिक बताया गया है। और जिसकी इन्द्रियाँ विषयों से मुक्त न होकर संकल्प विकल्प जनित विकारों में लिपटी हों, किन्तु अन्तरात्मा में लीन होकर एकमात्र तत्त्व निष्ठ होने वाले ध्यान को शुक्ल ध्यान कहा गया है। प्रथम ध्यान से तदात्त, रौद्र से अधोगति, धार्मिक से देवगति, और शुक्ल ध्यान द्वारा शुभ फल की प्राप्ति पूर्वक अपुनर्जन्म प्राप्त होता है। अतः इस शुक्लन्तर ध्यान के लिए जो जन्म मरण रूप रोग का पृष्ठहर्ता, अत्यन्त हितैषी, संसार का निर्वाहक और

समाः सहमाणि तु सप्त वै जले दशैकमग्नो पवने च घोडश ।
 गवां गृहे षष्ठिरतीतराहवे अनाशने भारत चाक्षया गतिः ॥४८
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 सांभरायणीन्नतवर्णनं नाम षड्डिशत्युत्तरशततमोऽध्यायः । १२६

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

दायीकूपतड़गोत्सर्विधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

तडागोत्सर्जने देव विधिं विधिविदां वर । कथयस्व नहाभाग मम देवक्षिनन्दन ॥१
 वापीकूपोदकानाऽन्व के मन्त्राः परिकीर्तिताः । के ऋत्विजोऽत्र के यूपाः कर्तव्याः कुण्डमण्डगे ॥२
 दानं क्रिमत्र निर्दिष्टं बलयः के प्रकीर्तिताः । कस्मिन्काले कथं कुर्यादित्येतत्सकलं वद ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

साधुसाधु महाबाहो यन्मां त्वं परिपृच्छसि । तडागवापीकूपानामुत्सर्गं कथायामि ते ॥४
 निष्पत्ते बद्धपालीके सर्वोद्देवविवर्जिते । सोपानपंक्तिसहिते पाषाणैः सर्वतश्चिते ॥५
 तस्मिन्सलिलसम्पूर्णे कार्तिके वा विशेषतः । तडागस्य विधिः कार्यः स्थिरनक्षत्रयोगतः ॥६

विकारों का शमन करता है, विद्वानों को सतत प्रयत्न शील रहना चाहिए। भारत ! जल में सात सहस्र अग्नि में ग्यारह, वायु में सोलह गौओं में ग्रहण में साठ और शुद्ध में अस्सी सहस्र अनशन में अक्षय गति प्राप्ति होती है । ३८-४८

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में
 सांभरायणी व्रत वर्णन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त । १२६।

अध्याय १२७

बावली, कुआँ तथा तालाब के निर्माण-विधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—देव ! आप विधिजों में श्रेष्ठ हैं अतः तडागोत्सर्जन की विधि मुझे बताने की कृपा कीजिये ! महाभाग, देवकीनन्दन ! बावली, कूप और सरोवर आदि निर्माण में कौन मंत्र बताये गये हैं, ऋत्विज, यूप स्तम्भ कुण्डमण्डप में किस प्रकार होना चाहिए । दान इसमें क्या बताया गया है और बलि किस भाँति की दी जाती हैं तथा किस समय एवं कैसा करना चाहिए यह समस्त विषय मुझे बताने की कृपा करें । १-३

श्रीकृष्ण बोले—महाबाहो ! जो तुम मुझसे पूँछ रहे हो यह अत्यन्त साधु प्रश्न है अतः मैं तुम्हें तडाग, बावली एवं कूप का उत्सर्ग बता रहा हूँ, मुनो ! सरोवर के निर्माण में भूमि को पानी की तह तक स्थोदने के अनन्तर गोलाकार (मनुरी) ईंटे द्वारा बाँधने वृक्षों आदि के संपर्क रहित, क्रमशः सोपान

मुनयः केचिदिच्छन्ति व्यतीते चोत्तरायणे । न कालनियमो हृत्र प्रमाणं सलिलं यतः ॥७
 तडागपालशीर्षे तु मण्डलं कारयेच्छुभम् । दशद्वादशहस्तं च चतुर्द्वारं सुविस्तृतम् ॥८
 तोरणानि तु चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणैः । अभ्यत्योदुम्बरप्लक्षवटशासामयानि च ॥९
 नानावर्णास्तु परितः पताकाः परिकल्पयेत् । मध्ये महाध्वजः कार्यः पञ्चवर्णः सुशोभनः ॥१०
 चतुर्हस्ता भवेद्वेदी नध्ये पञ्चकराथ वा । यजमानप्रमाणेन मध्ये यूपेन शोभिताः ॥११
 कदम्बाभृत्यपालाशैवैकंकतमयः शुभः । ब्राह्मणस्यास्य निर्दिष्टो ग्राः श्रुतिविचक्षणैः ॥१२
 न्यग्रोधबिल्वजः प्रोत्कः क्षत्रियाणां च खादिरः । वैद्यत्योदुम्बरमयो अधर्जुनसमुद्भवः ॥१३
 दिभीतकोदुम्बरजः शाकशाल्मलिसम्भवः । शुद्धस्य यूपो निर्दिष्टः सारदारूमयोऽथ वा ॥१४
 लोकपालाष्टकं तत्र रजसा च विलेखयेत् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च कमला चाम्बिका तथा ॥१५
 सायित्री सहिता कार्या युष्मधूपैरथार्चयेत् ! कुर्यात्कुण्डाङ्गि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः ॥१६
 मेखलः त्रिययुक्तानि हस्तमात्राणि सर्वतः । हेमालङ्घारिणः कार्या होतारः षोडशाष्ट वा ॥१७
 अहतम्बरसम्बीताः स्त्रचन्दनविभूषिताः । स्थापकाश्राद्र विहिता वेदवेदाङ्गपारागः ॥१८
 इतिहासपुराणज्ञाः प्रियवाचोऽनसूयकाः । मृण्मयानि च पात्राणि तात्राणि सुक्लवन्तथा ॥१९
 व्यञ्जनानि च कार्याणि होमार्थं समिधस्तिलाः । ग्रह्यज्ञविधानेन होमः कार्यो विजानता ॥२०

(सीढियों) और पाषाण शिलाओं द्वारा चारों ओर से सुरुचित होने पर उस जल पूर्ण सरोवर का (उत्तरा) विधान विशेषतया कार्तिक मास और स्थिर नक्षत्र में प्रारम्भ करना चाहिए। कुछ मुनियों का अभिमत है कि उत्तरायण (सूर्य) के व्यतीत होने पर ही उसका आरम्भ होना चाहिए। किन्तु इसमें जल प्रमाण होने के नाते समय का कुछ भी नियम नहीं है। तडाग पाल के मूर्धन्य स्थान पर एक शुभ मण्डल की रचना करे, जो बाईं हाथ का लम्बा, चार दरवाजा सुविस्तृत चारों ओर तोरणों से सुसज्जित जो पीपल, गूलर, पाकर और बरगद की शाखा मय हो और अनेक भाँति की पताकाओं से चारों ओर सुशोभित हो। उसके मध्य में पाँच रंग का अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण महाध्वज स्थापित करके उसके मध्य में चार या पाँच हाथ की वेदी का निर्माण करने के उपरान्त यजमान प्रमाण का यूप (स्तम्भ) मध्य में स्थापित करे। ४-१। कदम्ब पीपल, पलाश, शमी का यूप (स्तम्भ) बाह्यणों के लिए बौद्धिक विद्वानों ने बताया है उसी प्रकार बरगद, बेल, खदिर (खैर) का यूप क्षत्रियों के लिए, गूलर, अशोक, अर्जुन का स्तम्भ वैश्यों को और बहेड़ा, गूलर, शाक, सेमर अथवा वृक्ष के भीतरी भाग (सार) का स्तम्भ शूद्रों को बताया गया है। अनन्तर आठ लोक पाल ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कमला (लक्ष्मी), अम्बिका और सावित्री की पुष्प धूप आदि से अर्चना करे। चारों दिशाओं में चार कुण्ड की रचना कर एक एक हाथ की तीन मेखला, और सुवर्णात्मक अलङ्घार से सुशोभित करे। इस शुभ कार्य में सोलह या आठ होता होने चाहिए, जो नवीन वस्त्र, माला, चन्दन से भूषित हो और वेद वेदाङ्ग, इतिहास और पुराण का मर्मज्ञ, मधुर भाषी, एवं अनिन्दित आचार्य होना चाहिए। यज्ञ में समस्त पात्र मृतिका के अथवा ताँबें के हों। १२-१। सूक्ष्म और सूब के निर्माण पूर्वक हृवन के लिए उत्तम व्यञ्जन, समिधा और तिल की आहुति ग्रह यज्ञ के विधान द्वारा अर्पित करते हुए सर्व प्रथम वेदी में प्रतिष्ठित देवों के निमित्त तथा पुष्टि-

वेदाधिवासितानां च शुराणां होम इष्यते । बारुजैस्तु तथा सन्त्रैहौतव्यं पुष्टिवद्धनम् ॥२१
 इन्द्रादिलोकपालानां पूर्वादिक्रमयोगतः । बलिं दद्याच्च तत्त्विङ्गमन्त्रैस्सर्वर्थसिद्धये ॥२२
 द्वारेषु कलशान्दद्यात्सहिरज्यान्सपल्लवान् । अभ्यत्थपल्लवैः कार्या शुभाश्वन्दनमालिकाः ॥२३
 सौवर्णं कारयेत्कूर्मं ताम्रेण मकरं तथा । रजतेन तथा मत्स्यं ब्रुणा द्वर्दुरं तथा ॥२४
 शिशुमारजलौकाच्च रजतेनैव कारयेत् । सर्वान्निषि यथास्थानं ताम्रपात्र्यां निधापयेत् ॥२५
 एषा प्रतिष्ठा नामेति मन्त्रेणामन्त्रयेच्च तान् । यूपप्रतिष्ठा कर्तव्या वेदोक्तविधिना ततः ॥२६
 कुंकुमेन समालभ्य पुष्पैर्धूपैः समर्चयेद् । वस्त्रयुम्भेन सम्पूज्य नैवेद्यादि यथाक्रमम् ॥२७
 ततो द्विजातिप्रबरः श्रपयित्वा चर्ह नवम् । ततश्चामन्याहुतीर्द्यादभूर्भुवः स्वरितो क्रमात् ॥२८
 ततश्चावाहयेद्वेवं वरुणं सरितां पतिम् । चादिवधेऽर्पणतीत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥२९
 श्वेतेनैव तु वस्त्रेण शिरोवेष्टं तु कारयेत् । आदाय ताम्रपात्रो तु ब्रह्मयोषपुरःसरः ॥३०
 अप्रमाणं जलं गत्वा वरुणाय निवेदयेत् । त्वं वरुण इति मन्त्रेण जलमध्ये प्रवाहयेत् ॥३१
 यच्चान्यद्वृस्त्रीजानि तत्सर्वं नज्जयेज्जले । तारयेच्च ततो धेनुं दक्षिणां उदवज्जेत् ॥३२
 गोशिरोवेष्टनं कुर्यात्सति वस्त्रे तु बुद्धिमान् । लाङ्गूलस्याद्रमादाय अवतीर्य ततो जलम् ॥३३
 ज्ञातिभिः सहितः कर्ता सभार्यश्चावगाहयेत् । ततोऽवतीर्य सलिलाद्वत्वा गां ब्राह्मणाय ताम् ॥
 शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्वेवं विप्रान्विवर्सर्जयेत् ॥३४

वद्धनार्थं वरुण मंत्रो द्वारा आहुति प्रदान करते हुए पूर्वादि क्रम से इंद्र आदि लोक पालों के लिए आहुति अर्पित करे । पश्चात् उनके मंत्रों के उच्चारण पूर्वक उन्हें बलि प्रदान करके अपनी सर्वार्थ सिद्धि हेतु दरवाजों पर सुवर्णा और पल्लवों से भूषित कलशों को स्थापित करें, जो पीपल के पल्लव, चन्दन एवं शुभ माला से भूषित हों । सुवर्ण का कछुवा, ताँबें का मकर (घड़ियाल) रजत (चाँदी) की मछली, राँगे का मेंढक तथा शिशुकुमार (सूंस) और जलौका (जोंक) की चाँदी की रचना करके ताँबें के पात्र में यथा स्थान स्थापित करते हुए 'एषा प्रतिष्ठा' मंत्रोच्चारण पूर्वक उनका आवाहन प्रतिष्ठित करे । तदुपरांत वेद विधान द्वारा यूप प्रतिष्ठा करते हुए कुंकुम के विलेप पूर्वक पुष्प, धूप, दो वस्त्र और नैवेद्य आदि वस्तुओं से क्रमशः उसकी अर्चा करके श्वेष्ट ब्राह्मण द्वारा पकाये हुए नवीन चर्ह द्वारा 'भू भूवः स्वः' के उच्चारण पूर्वक क्रमशः आहुति प्रदान के अनन्तर सरित्पति वरुण देव का आवाहन करके वाद्य, मांगलिक घोष (शब्द), गीत, गन्ध, माला, लेप, श्वेत वस्त्र के शिरो वेष्टन (पगिया) से उन्हें सुसम्मानित करे । ब्रह्म घोष (वेद पाठ आदि) पुरस्सर उस ताम्र पात्री को अगाध अथवा कुछ जल के भीतर जाकर वरुण देव को सादर अर्पित करते हुए । 'त्वं वरुण' इति मंत्र के उच्चारण पूर्वक जल के मध्य में प्रवाहित करे । २०-३१ अन्य वस्त्र बीज आदि वस्तुओं को उसी जल में डालकर दक्षिण से उत्तर की ओर धेनु गौ पार करे । उस समय गौ के शिर में वस्त्र का वेष्टन (पगिया) बाँध कर उसकी पूँछ की अग्रभाग पकड़े और जल में उत्तर कर पार होये । पश्चात् जाती बन्धुओं आदि समेत तथा स्त्री सहित वह यज्ञ कर्ता जलावगाहन के उपरांत जल से निकल कर वह गौ ब्राह्मण (आचार्य) को और अन्य ब्राह्मणों को यथा शक्ति दक्षिण प्रदान करते हुए देवों तथा ब्राह्मणों का विसर्जन (विदा) करे । मैं सामान्यतः सभी

सामान्यं सर्वभूतेभ्यो भया इत्तमिदं जलम् । एवं जलाञ्जलिं क्षिप्त्वा पूजयेज्जलमातरः ॥३५
 तोष्याः कर्मकराः सर्वे कुद्दलानि च पूजयेत् । अवारितं तु दातव्यं मन्त्रपूर्वं हिनत्रयम् ॥३६
 एकाहुं च यथाशक्त्या वित्तशाठयं न कारयेत् । गोसहनं तदर्थं वा तस्यार्धमथवापि वा ॥३७
 शतर्घेण्टं वापि एच्चविंशतिमेव च । तासामभावे गां दद्यात्सवत्सां कांस्यदोहनाम् ॥३८
 एष राजन्दत्तागस्य विधिस्ते नर्तीतितः । वासीकूपविधानं च कथयामि तथा परम् ॥३९
 कुण्डमण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् । तडागविधिवत्कुर्याद्यूपगोत्रणादिकम् ॥४०
 अकालमूलान्कलशान्वापीकोणेषु दापयेत् । तीर्थोदिकसमायुक्तान्सितचन्दनचर्चितान् ॥४१
 सितवासोयुगच्छश्नान्समल्यान् रत्नगर्भिणः । श्रवयित्वा चरुं तत्र यावन्मात्रो यथाविधि ॥४२
 चतुष्व आहृतीदद्यादभूर्भुवः स्वरिति क्लनात् । ग्रहोमं प्रकृत्वीत शान्तिशुष्टिविवर्द्धनम् ॥४३
 वरुणाय बलिं दद्याल्लोकपालेभ्य एव च । वारुणानि च सूक्तानि पठेयुर्द्विजसत्तमाः ॥४४
 वेदीमध्ये मण्डलं च पद्ममत्र प्रशस्यते । तन्मध्ये पूजयेच्छम्भुं श्रह्याणं केशवं तथा ॥४५
 मत्स्यकमठमण्डलकान्वेद्या मध्येऽधिवासयेत् । मिद्मित्रोऽसि सूतानां धनदो धनकांक्षणाम् ॥४६
 वैद्यो रोगाभिभूतानां शरण्यः शरणार्थिनाम् । अनेनैव हि मन्त्रेण वरुणाय विसर्जयेत् ॥४७
 आदौ चावाहयेद्वेषमनेतैव विशेषतः । नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपाम्पते ॥४८
 सान्निध्यं कुरु देवेश समुद्रे यद्वदत्र वै । ततस्तु दक्षिणा देया ब्राह्मणानां नरधिप ॥४९

प्राणियों के निमित्त यह जल दान अर्पित कर रहा हूँ, ऐसा कहते हुए जलाञ्जलि के त्याग पूर्वक जल माताओं की अर्चा और काम करने वाले मजदूरों को सन्तुष्ट करने के अनन्तर उनके कुदार फरसे आदि को पूजा करे । उस समय तीन पहले से अथवा यथाशक्ति एक ही दिन अदिरत (चित्त रोक टोक) दान करता रहे वित्त की कृपणता न करे । एक सहस्र, उसका आधा, तदर्थ अथवा सौ, पचास या पचीस और इनके अभाव में एक सवत्सा गौ का कौसे की दोहनी समेत दान करे । राजन् ! इस प्रकार मैंने तडाग की विधि सुना दी अब इसके उपरान्त बावली और कूप का विधान बता रहा हूँ । बावली के प्रतिष्ठा में कुण्ड, मण्डप का संभार, भूषण, आच्छादन आदि और धूप (स्तम्भ) गौ, तोरण आदि सभी कुछ सरोवर विधान के समान ही किया जाता है । बावली कोने में उन अकाल मूल कलशों को स्थापित करना चाहिए, जो तीर्थ जल से भरे, इवेत चन्दन से चर्चित, इवेत दो वस्त्रों से आच्छन्न, मालाभूषित, एवं रत्न गर्भित हों । यथा विधान उचित मात्रा में बनायी गयी हवि द्वारा 'भू भूवः स्वः' के उच्चारण क्रम से चार आहृति प्रदान कर शांति और पुष्टि के बृद्धयर्थं ग्रह होम करे । अनन्तर वरुण तथा लोक पालों के निमित्त बलि देते समय वारुण सूक्त का पाठ ब्राह्मण द्वारा सम्पन्न करे । पुनः वेदी के मध्य में कमल की रचना करके उसके शिव, ब्रह्मा, विष्णु की अर्चा पूर्वक वेदी के मध्य में मत्स्य कच्छप, और मेढ़क का अधिवासन करे । ३२-४५ । पश्चात् आप प्राणी मात्र के मित्र, धनेच्छुक के कुबेर, रोगी के वैद्य और शरणार्थियों के शरण्य हैं । इस मंत्र के उच्चारण द्वारा क्षमा प्रार्थना पूर्वक वरुण देव का विसर्जन करते समय देवेश ! विश्व रक्षक रूप आप को नमस्कार है, और जलाधीश्वर विष्णु को नमस्कार है, समुद्र की भाँति आप इस बावली में निवास करने की कृपा करें—ऐसा कहते हुए उनका पूर्व आवाहन करना चाहिए ।

गौः स्थापकाय दातव्या भोजनं^१ चानिवःरितम् । सर्वेषामेवदातव्यमेष पौराणिको विधिः ॥५०
शराया आगतं तोयं सामुद्रं प्रथमं स्मृतम् । निपाने दा तडागे वा जस्तितं तद्वेच्छुच्चिः ॥५१
वासीकूपतडागे वा स्थितं तु प्रथमं जलम् । अपेयं तु भवेत्तत्वं तज्जलं सूतिकासमम् ॥५२
समुद्रोऽपि हि कौतेय देवयोनिरपात्मितः । कुशाग्रेणापि रभसा न स्पृष्टव्यस्त्वसस्कृतः ॥५३

अपिश्चतेजो मृडयाथ देहे रेतोधाविष्णुरमृतस्य नाभिः ।

एदं ब्रुवन्याण्डव सत्यवाक्यं ततोवगाहेत पांत नदीनाम् ॥५४

बैष्णवे माति सम्प्राप्ते नलत्रे वारुणे तथा । अर्घ्यं प्रदद्याद्दूक्तया तु तस्मिन्काले महोदधिः ॥५५
स्नात्या तु विधिवन्स्त्रैः साक्षर तु सप्ताहितः । फलमूलाभतं भर्खैस्तथार्घ्यं सम्प्रकल्पदेत् ॥५६
अदि जन्म सहस्रं तु पत्पापं कुरुते नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्नात्वा तु लवणांभर्ति ॥५७
विधिज्ञेन तु कर्तव्यं ब्राह्मणेन यथाविधि । कर्ता कारयिता चैव उभौ तु स्वर्गगामिनौ ॥५८
विधिं त्वेनमजानानानो यः कुर्यादर्थमोहितः । कर्ता कारयिता चैव उभौ तौ नरकगामिनौ ॥५९
यो न कारयते शान्तिं तडागाद्येषु कर्मसु । तस्य तन्निष्कलं सर्वमुपतं बीजनिवोषरे ॥६०
सर्वरत्नमयं दिव्यं चन्द्रार्कसदृशप्रभम् । विमानं तेजसा युक्तमारोहेत्युण्यकर्मकृत् ॥६१

अनन्तर ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करते समय आचार्य के लिए गौ और सभी लोगों का यथेच्छ भोजनों से प्रसन्न करना चाहिए । ऐसा पौराणिक विधान में कहा गया है । नराधिप ! मिट्टी के (कसोरे आदि) पात्र में रखा हुआ समुद्र जल प्रथम जल कहलाता है, अतः कूप के समीप किसी अन्य (बावली) अथवा जलाशय और सरोवर में वह जल रखने से इन जलाशयों के जल पवित्र हो जाते हैं । क्योंकि बावली, कूप और तडाग का जल जो सर्व प्रथम निकलता है, सूतिका की भाँति अपेय होता है । ४६-५२। कौतेय ! उसी भाँति उस समुद्र का भी जल, जो देवयोनि और जलाधीश्वर कहलाता है, संस्कार हीन होने पर कुश के अग्र भाग से भी स्पर्श करने योग्य नहीं रहता है । पाण्डव अतः ‘अनिश्च तेजो मृडयाथ देहे रेतोधा विष्णुरमृतस्य नाभिः’ इस मंत्र के उच्चारण द्वारा संस्कार करके नदी पाति समुद्र का जलावगाहन करना चाहिए । वैष्णव मास में वारुण (शतमिषा) नक्षत्र के दिन भक्ति पूर्वक सागर को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए—मंत्रोच्चारण पूर्व सविधान स्नान करने के उपरान्त सावधान मन से भक्त्य फल, मूल एवं अक्षत द्वारा अर्घ्य दान करके क्षमा प्रार्थना करनी चाहिए । मनुष्य अपने सहस्रों बार के जन्मों में जो कुछ पाप करता है, लवण सागर में स्नान करके वह उन समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । विधान निपुण ब्राह्मण द्वारा यथा विधान इसे सुसम्पन्न करने पर कर्ता और कारयिता । दोनों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है । विधि का ज्ञान शून्य मनुष्य द्वारा केवल अर्थ मोह वश इसके सम्पन्न होने पर कर्ता कारयिता दोनों नरक गामी होते हैं । इस प्रकार तडाग आदि के (प्रतिष्ठा) कर्म में शांति न कराने वाले पुरुष का किया हुआ सभी कर्म ऊपर भूमि में बीजारोपण की भाँति निष्कल हो जाता है । ५३-६०। इस भाँति का पुण्य कर्म करने वाला मनुष्य ऐसे विमान पर सुशोभित होता है, जो समस्त दिव्य रत्नों से भूषित, चन्द्र सूर्य के समान प्रभा

हश्चित्यबति तत्तोयं निपानस्थं ततोऽज्जलिम् । ब्राह्मणो वा यतिर्गार्वा येन कर्ता न सीदति ॥६२
 उत्सृष्टे कृतकृत्यस्तु सुहत्कुर्यान्महोत्सवम् । महाभोज्यं महोत्सर्गं यजमानो दिनाष्टकम् ॥६३
 कारकाः कर्मणो वापि सूत्रधारादयो नराः । इष्टापूर्तेन धर्मेण तेऽपि स्वर्गं प्रयान्ति हि ॥६४
 खन्यमाने महीभासे प्राणिनो ये क्षयं गताः । चित्रे वा देवदूटार्थे ते सर्वे त्रिदिवं गताः ॥६५
 धेनोस्तु रोमकूपाणि यावन्तीह नरोत्तमम् । तावद्वृर्षसहस्राणि वर्षकेऽटिशतःनि च ॥६६
 कोटिरुग्भस्त्राणां स्वर्गं तिष्ठेत्तडागकृत् । चेत्स्य पितरः केचिन्नरकं समुयागताः ॥६७
 तात्स्तु तारयते सर्वानात्मानं च महोपते । आस्फोटयन्ति पितरो बलान्ति प्रपितामहाः ॥६८
 अपि नः स कुले जातो यस्तडागं करिष्यति । सर्वस्वेनापि कौन्नेय भूमिष्ठमुदकं कुरु ॥६९
 कुलानि तारयेत्सप्त यत्र गौविनृषीघ्रवेत् । एव वर्षं शतेनापि कृतिका विहरीवने ॥७०
 मासं चेतागृहे कोटिक्षणाध्वंसिधनस्य हि । तडागं देवभवनं वापीवृक्षोधनच्छदः ॥७१
 चतुर्थकं फलं प्राप्तं कारितेऽस्मश्वतुष्ये । यथा मातुः समाचष्टे पुत्रः शीलं स्वकैर्गुणैः ॥७२
 तथा स्वादेन च जलं कर्तुः सर्वं शुभाशुभम् । अतः शुभागतं द्वयं तडागादिषु लापयेत् ॥७३
 धन्यस्य पान्थाः सम्प्राप्य तडागं वृक्षमण्डितम् । पीत्वापाः पादपतले विश्रमन्ति रमन्ति च ॥७४
 मारुतोद्भूतवीच्यग्रैः करैः कमलमण्डितम् । अभ्यागताय सुधिया तडागाद्यं प्रकल्पितम् ॥७५

पूर्ण और तेजोमय रहता है । पश्चात् उस बावली के जल को किसी ब्राह्मण, यति (संन्यासी) अथवा गौ के सर्वप्रथम स्नान करना चाहिए । जिससे कर्ता को कोई कष्ट सम्भव न हो सके । इस प्रकार उस उत्सृष्ट कर्म के सुसम्पन्न होने पर एक महोत्सव आरम्भ करना चाहिए, जिसमें आठ दिन तक महाभोज चलता रहे । इस इष्टापूर्ते यज्ञ द्वारा बावली निर्माण के छोटे बड़े सभी कर्मचारी गण को स्वर्ग प्राप्ति होती है । बावली के महापुण्य रूप खनन कर्म होते समय या देवों के चित्र निर्माण में जितने प्राणी विनष्ट हुए रहते हैं वे सभी स्वर्ग निवासी होते हैं । नरोत्तम तडाग स्वमिति पुरुष धेनु गौ की देह में स्थित रोम की संख्या के समान सौ कोटि सहस्र वर्ष और कोटि सहस्र युग तक स्वर्ग में सुसम्मानित होता है । महीपदे ! यदि उसके कुछ पितर नरक में स्थायी हों, तो उन्हें समेत स्वयं का वह उद्धार करता है । तडाग निर्धारिता के पितर यह समझ कर कि मेरे कुल में उत्पन्न होकर यह तडाग का निर्माण अवश्य करायेगा ताल ठोक कर प्रतिवादी का अन्वेषण करते हैं और पितामह उछलते कूदते आनन्द विभोर होते हैं । कौतेय ! अतः अपने सर्वस्व द्वारा भी पृथ्वी में जलाशय निर्माण अवश्य कराओ जिससे गौ की तुषा शान्ति होने पर सात पीढ़ियों का उद्धार हो । यह जानते हुए कि धन सर्वदा क्षण ध्वंसी है—गृह के स्थायी धनों द्वारा तडाग, देवालय, बावली और धनी छाया वाले वृक्ष का आरोपण अवश्य करना चाहिए, क्योंकि इन चारों कर्मों को सुसम्पन्न करने पर चौथे (मोक्ष) फल की प्राप्ति होती है । १६-७१। जिस प्रकार पुत्र अपने निजी गुणों द्वारा माता का शील स्वभाव प्रकट करता है उसी भाँति जल के आस्वादन द्वारा उसके कर्ता का शुभ सूचित होता है । अतः शुभ कर्म द्वारा उपाजित धन तडाग आदि जलाशयों के निर्माण में अवश्य लगा देना चाहिए । वह धन्य पुरुष है, जिसके निर्माण कराये तडाग में जो अनेक वृक्षों से विभूषित हो, पथिक उनका जल पान कर वहाँ के वृक्षों का धनी छाया में विश्राम एवं रमण करते हैं, जो वायु

सामान्यं सर्वभूतेभ्यो येन भूमिगतं जलम् । तारितं कारितं तेन सुपुत्रैण हुलहृष्यम् ॥७६
 भूतं स्वभावतः सिद्धमिष्टं मन्त्रप्रदर्शतम् । इष्टापूर्ते कृते राजन्कृतकृत्यः पुमान्भवेत् ॥७७
 उन्नता वाथ निम्ना वा कीर्तयेन प्रकाशिता । तेन त्रैलोक्यचन्द्रेण जननी पार्थं पुनिणी ॥७८
 त्रितयं निम्नतां नेयं त्रितयं चोन्नतिं पराम् । तडागमयं यो भूमौ देव देवालयकृती ॥७९
 यः कारयति लोकेऽस्मिन्कीर्तिस्तस्यामला भवेत् । ए जीवति स एवेकः स भवेदजरामरः ॥८०
 उपेतानामपि दिवं स निबन्धविधायिनाम् । आस्त एवं निरातङ्कं तस्य कीर्तिमयं वदुः ॥८१
 तावत्त्वगं स रसते यावत्कीर्तरनश्वरा : तादत्किलायामध्यासते सुकृती वैबुधं ददम् ॥८२
 हंसास्यक्षिप्तनीलियदं पश्यनीखण्डमण्डितम् । पीयमानं महाग्रामैर्धन्याः दश्यन्ति स्वं सरः ॥८३
 घटैरञ्जलिभिर्क्षेर्दस्य बाटीपुटेर्जलम् । पिबन्ति जन्तवः तर्वे किमन्यतस्य वर्जयते ॥८४
 तडागं नगरोपान्ते धन्यस्य किल जायते । उभयोरर्थसंसिद्धिर्दृष्टा कर्तुर्जनस्य च ॥८५
 ऐषां देवकुलं ततु निष्प्रदेत सरस्तटे । अभीष्टदेवतायुक्तं तेषां पार्थं किमुच्यते ॥८६
 न भवन्तीष्टिका यावद्दोणी वा भूमिस्त्रियाः । स्वर्गं महीयते तावत्काग्नो देववेऽमनः ॥८७
 भोग्यस्थाने कृतः कूपः सुस्वादुसलिलस्तथा । दृढरज्जुसमायुक्तः पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥८८

द्वारा उद्देलित तरङ्ग रूपी कर कमलों से सदैव सुशोभित होते रहते हैं । जिस सुपुत्र ने सर्वसाधारण के हितार्थ भूमि में जलाशय का निर्माण कराया है, उसने साथ ही साथ अपने दोनों कुल का उद्धार भी किया है । राजन् ! इस इष्टा पूर्ति (प्रस्तुत हितीषी) नामक यज्ञ सुसम्पन्न करने पर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । पार्थ ! उन्नत निःन किसी भी प्रकार की कीर्ति जिसने उत्पन्न की है । उसी त्रैलोक्य के चन्द्रमा द्वारा उसकी माता पुत्रिणी होने की स्थाति प्राप्त करती है । द्वारा कर्म द्वारा देवाधिदेव के कुल को अलंकृत करने वाले उस पुरुष को तडाग निर्माण के साथ उसमें तीन को अत्यन्त निम्न और तीन को अत्यन्त ऊँचा बनाना चाहिए । क्योंकि इस प्रकार के तडाग का निर्माण कराने वाले वीं कीर्ति निर्मल होती है और वहीं एक अजर अमर होकर जीवित भी कहलाता है । उसमें सीढियों की रचना कराने वाले का स्वर्ग निवास निरातङ्क होता है और उसकी देह कीर्तमयी कही जाती है । वह सुकृती अपनी कीर्ति के अनश्वर समय तक स्वर्ग में रमण और इला में देवपद पर सुशोभित रहता है । धन्य पुरुष ही अपने ऐसे सरोवर का दर्शन करता है, जिसमें हंसों के मुख में सदैव नील कमल दण्ड का अग्रभाग पड़ा रहता हो और कमलिनी समूहों से सुशोभित एवं सर्वसाधारण के सेवन करने योग्य हो । प्रत्येक भाँति के प्राणी जिसके जल को, घट, अञ्जली, मुख एवं बाटी पुष्ट द्वारा पान करते हैं उसका (महत्व) वर्णन किस भाँति किया जा सकता है । धन्य पुरुष के ही सरोवर नगर के समीप बनाये जाते हैं क्योंकि उसमें प्राणियों का दोनों भाँति स्वार्थ सिद्ध होता है । पार्थ ! ऐसे सरोवर के निकट जिन लोगों के अभीष्ट देय समेत देव कुल प्रकट हो जाते हैं उनका (महत्व) वर्णन क्या किया जा सकता है । क्योंकि उसकी ईंटें या दोणी जब तक भूमि की भाँति (बराबर) होती है तब तक उस देवालय का निर्माता स्वर्ग में सुसमानित होता है । ७२-८६। भोग्य स्थान में (जहाँ सर्वसाधारण का हित निहित हो) सुस्वाद जल वाला कूप निर्माण कराने से सात पीढ़ियों का उद्धार होता है । जिसके कूप का सुस्वादु जल निरन्तर लोग पान करते हैं समस्त प्राणियों के

यस्य त्वादुजलं कूपे पिबन्ति सततं जनाः । किं तेन न कृतं पुण्यं सर्वसत्त्वोपकारिणा ॥८९
यः प्रासादान् रचयति शुभान्देवतानां तडागे कीर्तिस्तस्य भ्रमति दिगुला वंशमार्गानुयाता ।
दिव्यान्भोगान्भजति च सदा कारकश्राप्रमेयान्मुक्त्वा सौख्यं पुनरपि च भवेच्चकवर्तीं पृथिव्याम् ॥९०

तेषां तडागानि बहूदकानि रूपाश्र यूपाश्र ग्राहकाश्र ।
अन्नप्रदानं मधुरा च वाणी यमस्य ते निर्वचनीभवन्ति ॥९१
इति श्रीभगिष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वापीकूपतडागोत्सर्गविधिवर्णनं नाम सप्ताविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२७

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

वृक्षोद्यापनविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

वृक्षारोपणमाहात्म्यं वद देवकीनन्दन । उद्यापनविधि चैव सरहस्यं समाप्तः ॥१
श्रीकृष्ण उवाच

वरं भूमिरुहाः पञ्च नगकाष्ठरुहा दश । पत्रैः पुष्पैः फलैर्मूलैः कुर्वति पितृतर्पणम् ॥२
बहुभिर्मृतकिञ्जातैः पुत्रैर्धर्मर्थवर्जितैः । वरमेकं पथितर्यत्र विश्रमते जनः ॥३

हितैषी उस पुरुष ने किसी पुण्य का उपार्जन नहीं कर लिया । (अर्थात् समस्त पुष्प का भागी वह हो गया) । सरोवर के निकट मुन्द्र प्रासाद (कोठे) पूर्ण देवालय की संरचना कराने वाले प्राणी की विपुल कीर्ति उसके वंश परम्परा में जदैव वर्तमान रहती हैं और अनेक भाँति के दिव्य प्रमेय भोगां और सौरवों के अनुभव के उपरांत वह इस भूतल में चक्रवर्तीं पद भूषित करता है जिसके अनेक अगाध सरोवर, कूप, स्तम्भ, धर्मशाला बने तैयार रहते हैं । उनके यहाँ पुत्र दान सदैव होता रहता है, वाणी अत्यन्त मधुर होती है और यम के लिए वे अनिर्वचनीय होते हैं । ८७-९१

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में
वापी, कूप, तडाग का उत्सर्ग विधि वर्णन नामक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त । १२७।

अध्याय १२८

वृक्ष के उद्यापनविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवकीनन्दन ! वृक्ष के लगाने का महत्त्व और उसका उद्यापन विधान रहस्य समेत एवं विवेचन पूर्ण बताने की कृपा कीजिये ।

श्रीकृष्ण बोले—भूमि में लगाये गये पाँच ही वृक्ष पर्वतीय दश अत्यन्त श्रेष्ठ कहे जाते हैं क्योंकि वे अपने पत्र पुष्प एवं फल मूल द्वारा पितरों को तृप्त करते रहते हैं । उन धर्मार्थ हीन पुत्रों के जो जीवित रहते हुए मृत के समान हैं, उत्यन्त होने से क्या लाभ हो सकता है ? मार्ग में लगा हुआ एक ही वृक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ

प्राणिनः प्रीणदन्ति स्म च्छायावल्कलपल्लवैः । घनच्छदाः सुतरदः पुष्पैर्देवात् फलैः पितृन् ॥४
 पुष्पपत्रफलच्छायामूलबल्कलदारभिः । धन्या महीरुहा येषां विफला यान्ति नाथिनः ॥५
 पुत्राः सम्बत्सरस्यान्ते श्राद्धं कुर्वन्ति वा नवा । प्रत्यहं पादपाः पुष्टिं श्रेयोऽर्थं जनयन्ति हि ॥६
 न तत्परोत्तमन्निहोत्रं सुखं यद्योषितः सुतः । यत्करोति दन्तच्छायः पादपः यथि रोपितः ॥७
 सच्छाया च सुपुष्पा च सफला वृक्षवाटिका । कृतयोषेव भवति भर्तुलोकद्वयानुगा ॥८
 अशोकफलावकरा रतिकालंकृतानना : सर्वोपभोगवेश्येव वाटिका रसिका सदा ॥९
 सदा स तीर्थाभवति सदा दानं प्रयच्छति । सदा यज्ञं स यज्ञते यो रोपयति पादपम् ॥१०

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश चिञ्चणीकान् ।

कपित्थिबिल्वाभलकीत्रयं च पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत् ॥११

पुष्पोपगन्धाढधफलोपगर्थं यः यादवं स्पर्शयते द्विजाय ।

स स्त्रीसमृद्धं बहुरत्नपूर्णं लभेद्विमानप्रतिमं गृहं वै ॥१२

प्रतिश्रयाश्रान्तं सपाश्रयत्वात्सारीहितं तत्र फलं बुभुक्षोः ।

अपत्यमेकं परलोकहेतोर्विमृश्यतां किं तरदो न रोपिताः ॥१३

न खान्तिः पुष्करिण्यो रोपिता न महीरुहाः । मातुर्यौवनचौरेण तेन जातेन किं कृतम् ॥१४

है, जिसकी छाया में पथिक सुखपूर्वक विश्राम करते हैं । घनी छाया वाले उत्तम वृक्ष अपनी छाया, वल्कल (छिलका) और पल्लवों द्वारा प्राणियों को तथा पुष्पों द्वारा देवों और फलों द्वारा पितरों को सुखी करते हैं जिनके लगाये हुए वृक्ष गण अपने पत्र, पुष्पों, फल, छाया, मूल (जड़), वल्कल (छिलका) और लकड़ियों द्वारा प्राणियों की सेवा करते हैं वे वृक्ष धन्य हैं क्योंकि याचक उनके यहाँ से विफल नहीं लौटता है । पुत्र वर्ष के अन्त में श्राद्ध करता है या नहीं उसका कुछ निश्चित नहीं रहता है । किन्तु वृक्ष समूह प्राणियों की नित्य पुष्टि और उनके सुख स्वार्थ प्रदान करते रहते हैं । अपनी परिणीता स्त्री से उत्पन्न (औरस) पुत्र अग्निहोत्र कर्म द्वारा जो भविष्य में सुखदायक होता है वहाँ सुख नहीं पहुँचा सकता है जो मार्ग में लगाये गये धनी छाया वाले वृक्ष द्वारा प्राप्त होता है । सुन्दर छाया, और पुष्प फल समेत सुशोभित होने वाली वाटिका कुल स्त्री की भाँति दोनों कुलों को सुखी करती है । अशोक के फलों से अत्यन्त निर्मल और तिलक नामक वृक्षों से मणिडत मुख वाली वह रस भरी वाटिका वेश्या की भाँति सब की उपभोग्या होती है । वृक्षारोपण करने वाला प्राणी वृक्ष रोपने के नाते सदा सूर्य की भाँति रहता है, सदैव दान करता है और सदा यज्ञ कर्ता ही बना रहता है । २-१०। पीपल, नीम और बरगद का एक एक वृक्ष, चिञ्चणी का दश, कैथ, बेल तथा आँवले का तीन तीन, पाँच आम का वृक्ष एवं बावली का स्वामी कभी भी नरक गमी नहीं होता है । पुष्प, गन्ध और फलों से अत्यन्त पूर्ण वृक्ष ब्राह्मण को अर्पित करने वाला पुरुष स्त्री समेत समृद्ध एवं बहुरत्न पूर्ण विमान की भाँति गृह प्राप्त करता है । फल भक्षण के लिए लालायित प्राणियों से कहना है कि फल समेत भ्रान्त होने पर गृह की भाँति समस्त सुख प्रदान करने वाले वृक्षों का, जो सन्तान की भाँति परलोक के लिए एक मात्र हितैषी है, विचार पूर्वक, आरोपण क्यों नहीं किया । क्योंकि जिसने कर्म भूषित जलाशय का निर्माण नहीं कराया और वृक्षारोपण नहीं किया, माता के यौवन चोर उस प्राणी के उत्पन्न होने से क्या लाभ हुआ ।

छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे । फलन्ति च परार्थेषु न स्वार्थेषु महादुमाः ॥१५
 अतः परं प्रवक्ष्यामि वृक्षस्योद्यापने विधिम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वकीर्तिविवर्द्धनम् ॥१६
 अपुत्रया पुरा पार्थ पार्वत्या मन्दराचले । अशोकः शोकशमनः पुच्छे परिकल्पितः ॥१७
 जातकर्मादिकास्तस्य यः क्रियाः किल बुद्धिमान् । चरकात्रिपुराणोदत्तस्तः भृणुव्व दुधिष्ठिर ॥१८
 ततो मूले यनदलो वलुच्छायाङ्गपलवः । शीतवातातपसहः संस्कार्यस्तरणस्तथः ॥१९
 स्त्रीनामकण्टकीकुञ्ज कीटवृश्चिककोटरः । नोद्याप्यः पाद्यः पार्थ शिष्टानां यो न सम्मतः ॥२०
 आलबाले मुविहिते मुभे दद्धचतुजिके । शोधिमित्वा तमुद्देशं मुमुक्षं कारयेत्ततः ॥२१
 सदेदोद्यापनं पार्थं पादपानां प्रशस्यते । शुभेऽहिति विप्रकथिते ग्रहनक्षत्रसञ्चयते ॥२२
 पताकालंकृतं वृक्षं पूर्वेद्युरधिवासयेत् । रक्तवस्त्रैः समाञ्छाद्य रक्ततूत्रेण वैष्टयेत् ॥२३
 पिष्टातकेनाद्यकिरेत्सर्वोषध्या च पादपम् । स्थापयेत्पूर्णकलशांश्वतुर्दिक्षु विचक्षणः ॥२४
 पल्लवालंकृतमुखान्तितचन्दनचर्चितान् । सितवासोयुगच्छन्नात्कलान् रत्नर्गभिः ॥२५
 पताकालंकृताः सर्वे बार्यास्तत्सन्निधौ द्रुमाः । मूलदिन्यस्तकलशा रक्तसूत्रावगुणिताः ॥२६
 रक्तपीतसिताच्छादैश्चिताः सुमनोहरैः । कलधौतमयान्यत्र फलानि दश पञ्च वा ॥२७
 ताम्रपात्रां सबीजानि सरत्नान्यधिवासयेत् । तूर्यमङ्गलघोषेण चतुर्दिक्षु क्षिपेद्विलिम् ॥२८

महावृक्ष स्वयं धूप में खड़े रहकर अपनी छाया दूसरों के हितार्थ प्रदान करते हैं और सदा परार्थ के लिए फलते फूलते हैं न कि स्वार्थ वश । इसके उपरांत मैं तुम्हें वृक्षों का उद्यापन विधान बता रहा हूँ, जो सम्पूर्ण पापों की शान्ति पूर्वक चौमुखी कीर्ति की वृद्धि करता है । पार्थ ! मन्दराचल पर निवास करते समय पार्वती जी ने सन्तानहीनकाल में पुत्र के स्थान पर शोकशमनकारी अशोक वृक्ष लगाकर उसमें पुत्रत्व की कल्पना की थी । युधिष्ठिर ! उन्होंने उसका जातकर्म आदि सभी संस्कार क्रियाओं द्वारा सुसम्पन्न किया था, चरक और तीनों पुराणों में प्रथित हैं, सुनो ! ऐसे तरण वृक्ष का संस्कार करता चाहिए । जो (स्थूल) मून, धन दल, मनोरम छाया एवं अंग रूप पल्लव हों और वह स्वयं शीत, वायु एवं धूप का सहन करते में समर्थ हो । पार्थ ! स्त्रीनामक, कांटेदार, कूबड़े और जिसके कोटर (खोंडर) में कीड़े तथा विच्छू आदि रहते हों तथा वृक्षों के चारों ओर आलबाल (थाला) बनाकर शुभ चबूतरे से विभूषित उस स्थान की संशोधन रक्षा करनी चाहिए । पार्थ ! वृक्षों का उद्यापन अत्यन्त प्रशस्त कर्म है अतः ब्राह्मण द्वारा बताये गये ग्रह, नक्षत्र युक्त किसी शुभ दिन पताका से भूषित उस वृक्ष का पहले दिन अधिवासन करते हुए वृक्ष रक्त वस्त्र, रक्त सूत्र से आबद्ध लेप एवं समस्त औषध पूर्ण करके चारों दिशाओं में चार ऐसे कलशों को स्थापित करे । १-२४। जिनके मुख पल्लवों से अलंकृत, चन्दन चर्चित, श्वेत दो वस्त्रों से आञ्जन्न एवं सकाल रत्न गर्भित हों और उनके समीप सभी वृक्ष पताकालंकृत हों । जिनके मूल भाग में रक्त सूत्र से चारों ओर घिरे कलश स्थित हों, जो रक्त, पीत और श्वेत रंगों से भूषित निर्मल एवं मनोहरता से पूर्ण हों । मुस्वाद दश पाँच फलों की भी ताँबै के पात्र में बीज तथा रत्नों समेत अधिवासन करके तुल्ही वाद्य और मङ्गलघोष पूर्ण चारों दिशाओं में इन्द्र आदि लोकपालों तथा भूतों के निर्मित बलि प्रदान करे । २५-२८। पश्चात् द्वासरे दिन निर्मल प्रातः काल के समय मेखला समेत

इन्द्रादिलोकपालेभ्यो भूतेभ्यो मन्त्रविद्गुरुः ! ततः प्रभाते विमले कुण्डं कृत्वा समेखलम् ॥२९
 प्रह्यज्जविधानेन शान्तिकर्म समारभेत् । सुवर्णालंकृतान्कृत्वा ब्राह्मणान्वेदपारमान् ॥३०
 चतुरोऽष्टौ यथाशक्त्या वासोभिरभिपूजयेत् ; तिलाञ्जेन च होमः स्यात्पृष्ठिपृष्ठिकरः सदा ॥३१
 मातरं स्थापित्वाद्वै पूजयेत्कुसुमाक्षतैः । श्रपयित्वा चर्हं सम्प्यक्यायसाद्यपरिष्कृतम् ॥३२
 होमादौ ज्ञातकर्मादि गोदानं यान्देव तु । पाद्यं स्नापयित्वा तु समन्त्रैस्तीर्थवारिधिः ॥३३
 जातकं नामकरणमन्नप्राशनमेव च ! सुवर्णसूच्या कुर्वीत कर्णवेधं विधानवित् ॥३४
 जातरूपक्षुरेणात्र चूडाकार्या यथाक्रमम् : ब्रह्मीयामेतत्त्वां ज्ञेऽज्ञीं वासश्च परिधानदेत् ॥३५
 यजमानस्ततः स्नातः शुद्धलाभ्यरध्दरः शुचिः : पृष्ठाऽञ्जलिः समस्येत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥३६

ये शारीरिणः शिररिणां शिरसा विशूषा ये नन्दनादिषु वनेषु कृतप्रतिष्ठाः ।

ये कामदाः सुरनरोराकिन्नराणां ते मे दत्तस्य दुरितार्तिहरा भवन्तु ॥३७

एतैर्द्विजैविधिवस्त्रप्रहृतो हृताशः पश्यत्यसावहिमदीधितिरम्बरस्थः ।

त्वं वृक्षं पुत्रपरिकल्पनया वृतोऽसि कार्यं सदैव भवता मम पुत्रकार्यम् ॥३८

इत्येवमुक्त्वा तं वृक्षं लालयित्वा पुनः पुनः । धृतापात्रे स्वददनं दृष्ट्वाशिषमुदीरयेत् ॥३९
 अङ्गादङ्गात्सम्भवति हृदयादभिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥४०
 ब्राह्मणानां ततो देया दक्षिणां हृष्टमानसैः । स्थापकाय शुभां धेनुं दत्त्वा कुर्यान्महोत्सवम् ॥४१
 दीनानाथजनानां च भोजनं चानिवारितम् । इतरेषां प्रदातव्यं सन्तुष्टेन सुरासवम् ॥४२

कुण्ड का निर्माण करके प्रह्यज्जविधान द्वारा शांति कर्म का आरम्भ करे । उस यज्ञ में चार या आठ वैदिक ब्राह्मणों को यथाशक्ति सुवर्ण भूषित एवं वस्त्र से पृजित करके । तुष्टि तथा पुष्टि के वृद्धर्थ तिल धी का हवन करते समय सामने मातृका के स्थापन और पुष्टाक्षत से पूजा करें । अनन्तर धृतपूर्ण पायस (खीर) से परि प्लुत हवि की आहुति प्रदान करे । हवन के आदि में वृक्षों के जातकर्म आदि संस्कार के पूत्यर्थ गोदान भी करना चाहिए । उसमें सर्वप्रथम मन्त्र विधान द्वारा वृक्षों को तीर्थ जल से स्नान कराकर उनके जातकर्म नामकरण, अन्नप्राशन, सुहर्ण की सुई द्वारा कर्णवेध (कन्धेदन), सुवर्ण के छुरे से चूडा कर्म (मुण्डन) यथाक्रम सुसम्पन्न करते हुए मेलाला मौञ्जी बन्धन और वस्त्र भी पहनाये । तदुपरांत यजमान स्नान करके शुक्ल वस्त्र पहन कर पवित्रता पूर्ण पृष्ठाऽञ्जलि लेकर इन मन्त्रों द्वारा क्षमा प्रार्थना करे । २९-३६ । पर्वतों के शिखरों पर रहते उनकी चोटी से विभूषित, नन्दन आदि वनों में सुप्रतिष्ठित एवं देव, मनुष्य, सर्प एवं किन्नर आदि की कामनायें सफल करने वाले वृक्षवृन्द मेरे दुरितों के अपहरण करें । इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा साविधान छोड़ी गयी आहुति से अत्यन्त प्रदीप्त होकर अग्नि- ज्वाला आकाश में पहुँच कर जैसे सब को देख रही हो । वृक्ष ! पुत्र भावना से तुम्हारी कल्पना की गयी है अतः मेरा पुत्र कर्म द्वारा होने योग्य सभी कार्य करते रहना ।' इस प्रकार कहते हुए उसे बार-बार प्यार करके धृत पात्र में अपने मुख का दर्शन करे और आशिष प्रदान करें—मेरे अङ्गों से तुम्हारे अङ्ग और हृदय से हृदय उत्पन्न हुआ है क्यों कि अपनी ही आत्मा पुत्र नाम से प्रसिद्ध होती है अतः सैकड़ों वर्ष का जीवन प्राप्त करो । अनन्तर हर्षमन्न होते हुए ब्राह्मणों को दक्षिणा तथा आचार्य को शुभमूर्ति धेनुओं को अर्पित कर उस महोत्सव में हीन, अनाथ प्राणियों को अनिवार्य भोजन एवं अन्य लोगों को 'सुरासव' प्रदान कर सजातीय के

ज्ञातिबन्धुजनैः सादृं स्वयं भुज्जीत कामतः । प्रेष्याः कर्मकराः सर्वे पूजनीयाः स्वशक्तिः ॥४३
 य एवं कुरुते पार्थ वृक्षाणां महदुत्सवम् । सर्वकामानवास्तोति इहलोके परत्र च ॥४४
 पुत्रैर्विना शुभगतिर्न भवेन्नराणां दुष्पुत्रकरिति तथोभयलोकनाशः ।
 एतद्विदार्द्द सुधिया परिपाल्य वृक्षःन्पुत्राः पुराणविधिना परिकल्पनीयाः ॥४५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 वृक्षोद्यापनविधिवर्णनं नामाष्टार्द्विशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२८

अथैकोर्निंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवपूजाविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ये मानवास्त्रिदशमूर्तिनिकेतनानि कुर्वन्ति साधुजनदृष्टिसनोहराणि ।
 तेषां मृतेऽथ परनार्थमये शरीरे लोके परिभ्रमति कीर्तिमयं शरीरम् ॥१
 यः कारयेद्वारसिताभ्रगौरमुतुङ्गसौधधवलायतनं सुराणाम् ।
 चन्द्रावदातभवने दिवि लब्धसौख्ये राज्यश्रियं स भुवि बोधयुतामुपैति ॥२

बन्धुओं समेत यथेच्छ भोजन करे । काम करने वाले मजदूरों को यथाशक्ति सन्तुष्ट कर विदा करना चाहिए । पार्थ ! वृक्षों के उद्यापन महोत्सव सुसम्पन्न करने वाले लोक परलोक सर्वत्र अपनी कामनाएँ सफल करते हैं । (शास्त्र का प्रवचन है) विना पुत्र के (उत्तम) गति प्राप्त नहीं होती है और दुराचारी पुत्र से दोनों लोक नष्ट हो जाता है ऐसा समझकर विद्वानों को पुत्ररूप में वृक्षारोपण करके उनका पुत्रवत् पालन पोषण करना चाहिए । ३७-४५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
 वृक्ष का उद्यापन विधि वर्णन नामक एक सौ अट्टाइसवाँ अध्याय समाप्त । १२८

अध्याय १२९

देवपूजा-विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—जो लोग देव मूर्तियों का आवास स्थान (देवमन्दिर) इस भाँति बनवाते हैं जो साधुजनों के मन को सदैव लुभाया करता है पार्थिव शरीर के त्याग होने के उपरांत लोक में उनकी कीर्तिमयी पारमार्थिक शरीर सदैव विचरण करती रहती है । १। श्वेत एवं जल शून्य बादलों की भाँति धवल दरवाजे और ऊंचे धवल प्रासाद (कोठे) वाले देव मन्दिरों की रचना कराने वाले प्राणी स्वर्ग के चन्द्र किरणों की भाँति मल में अतुल सौख्य का अनुभव करने के उपरान्त भूतल में ज्ञान समेत राजलक्ष्मी

ये कारणं निति सुरसद्गु सुवर्णरजतायसशैलताङ्गाः ।
 सामन्तमौलिमणिरशिमसमर्चितास्ते सिंहासनेऽङ्गकिरीटभृतोऽवभान्ति ॥३
 ये मेरुमौलिसुरसङ्घकृताभिषेकाः पञ्चामृतेः सुरवरानभिषेयन्ति ।
 ते दिव्यकल्पमधिर्था शुरेश्वरत्वं राज्याभिषेकमतुलं पुनरामृतन्ति ॥४
 ये शैलराजमलयोद्भवचन्दनेन सत्कुंकुमेन च सुराननुलेपयन्ति ।
 ते दिव्यगन्धपटवाससुगन्धिदेहाः नन्दन्ति नन्दनवनेषु सहाय्यरोभिः ॥५
 गन्धादयजातिकमलोत्पलदिव्यपुष्टेवान्नवैरतुदिनं ननु येऽर्चयन्ति ।
 पुष्टोत्तर्मैरेवपतित्वनवाप्य तेऽपि यास्यन्ति कुन्दधवलमच्चिरेण सिद्धिम् ॥६
 आमोदिभिर्हमतुरब्धसुगन्धधूपैर्यं मानवाः सुरवरानपि धूपयन्ति ।
 कर्पूरधारनिभागन्धदराभिरामे स्वर्गे विमानवति हे भवने रमन्ते ॥७
 दोधूयते कनकदण्डविराजितैश्च सच्च!मर्दधवलकुण्डलसुन्दरीभिः ।
 दिव्याम्बरसुगन्धनुलेपनभूषिताङ्गां कृत्वा शुरेशभवनाम्बरवस्त्रपुजाम् ॥८
 देवीपृथिवी दिनकरोज्ज्वलपद्मरागरत्नप्रभाङ्गुरितहेममये विमाने ।
 दिव्याङ्गनापरिवृतो नयनाभिरामः प्रज्वाल्य दीपमलं भवने सुराणाम् ॥९
 यो जागरं सुरवराभिमतो ददाति चैत्रोत्सवादिदिवसेष्वपि तृयनादैः ।
 वीणासुवेणुमधुरस्त्वरभाषणीभिः सङ्गीयते च स कृशोदरकिञ्चरीभिः ॥१०

की प्राप्ति करते हैं । सुवर्ण, चाँदी, लोहा, पत्थर और ताँबे की देवमूर्ति निर्माण करने वाले पूरुष अङ्गद और किरीट से भूषित होकर ऐसे रिहासन पर प्रतिष्ठित होता है, जो सामन्तों के मस्तक पर सुशोभित मणि किरणों से सदैव अर्चित होता है । भेरु पर्वत के मौलि स्थान पर रहने वाले देवों का अभिषेक और पञ्चामृत द्वारा देवों का स्नान कराता है, वह एक दिव्य कल्प तक देवरूप में सुखानुभव करने के उपरांत अतुल राज्याभिषेक की प्राप्ति करते हैं । शैलराज मलयगिरि में उत्तन्न होने वाले चन्दन का लेप देवों को अर्पित करने वाले प्राणी दिव्य गन्ध, दिव्य वस्त्र एवं दिव्यगन्ध भूषित देह की प्राप्ति पूर्वक नन्दन वन में अमराओं के साथ सुखानुभव करते हैं । गंध भरी चमेली और नील कमल के दिव्य पुष्टों द्वारा प्रतिदिन देवों की अर्चा करने वाले लोग उत्तम पुष्टों के समर्पण द्वारा नरपति की प्राप्ति करते हुए भी कुन्द की भाँति धवल सिद्धि (कीर्ति) शीघ्र ही प्राप्त करते हैं । हिम (ठंडी), लोहबान और सुगन्ध पूर्ण धूपों से देवों की सेवा करने वाले पुरुष कपूर धारा की भाँति स्वच्छ और उत्तम गन्धों से पूर्ण स्वर्णीय भवनों में सदैव रमण करते हैं । प्रबल कुण्डलों से भूषित सुन्दरियों द्वारा सुवर्ण दण्डमय एवं उत्तम चामरों से देव सेवा कराने वाले प्राणी जो दिव्य वस्त्र, माला, लेपन द्वारा वस्त्र मण्डित देव मन्दिरों की अर्चा करते रहते हैं, वे सूर्य की भाँति समुज्ज्वल और पद्मरागमणि की चञ्चल रत्नप्रभा से भूषित उस सुवर्णमय विमान पर दिव्याङ्गनाओं से घिरे सुशोभित होते हैं तथा देवालयों में अमल दीपक दान करने वाले सभी के नयनाभिराम होते हैं । २-१। चैत्रादि मासों में उत्सवों के दिन तुरुही वाद्य समेत देवों के समक्ष जागरण करने वाले प्राणी वीणा और सुवेणु की भाँति मधुरभाषणी उन कृशोदरी किल्लरियों के साथ स्वर्ग में

कुर्वन्ति ये सदुपलेपनधातुरागासन्नार्जनं सुरवरायतनेऽनुरस्ताः ।
 मुक्ताकलापमपि काञ्चन भक्ति चित्रवैदूर्घ्यकृष्टिमतले दिवि ते दसन्ति ॥ ११
 दद्याच्च यः परमभक्तियुतः सुराणां घण्टादितानवरचामरमातश्शम् ।
 केयूरहारमणिकुण्डलभूषितोसौ रत्नाधिषो, वसति भूतलचक्रवर्ती ॥ १२
 अभ्यर्चयेत्प्रतिवचः क्लुम्बैदिचित्रैदंताधिदेवपरिसंस्तुतपादपद्मान् ।
 भक्त्या प्रहृष्टमन्तः प्रणमन्ति देवान्स्ते भूर्भुवः स्वर्महिमाप्ताफलः भवन्ति ॥ १३
 इति श्रीभविष्ये महापुराणष उत्तरर्पर्वणि श्रीकृष्णयुग्मिष्ठिरसंदादे
 नामैकोर्नात्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ २९

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दीपदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्केन तपसा व्रतेन नियमेन दा । दानेन केन वा लोके प्रोज्ज्वलत्वं प्रजायते ॥ १
 अतितेजो^१ महदीप्तं दीप्तांशुकिरणोज्ज्वलम् । शरीरं जायते येन तन्मे वक्तुमथार्हसि ॥ २

विहार सुखं प्राप्त करते हैं । अनेक भाँति के रंगों से देव मन्दिरों को सुशोभित कराते हुए सदैव झाडू आदि द्वारा उसे सप्रेम अमल स्वच्छ रखने दाले ऐसे स्वर्ग का निवास प्राप्त करते हैं, जो मोतियों की अमल सुवर्ण की चित्रविचित्र रेखाओं और वैदूर्घ्य मणियों से जिसका भूमितल अलंकृत रहता है परमभक्ति पूर्वक घण्टा, वितान (चाँदनी), उत्तम चामर और छत्र देवों के निमित्त अर्पित करने वाले प्राणी केवर, हार तथा मणि कुण्डल से भूषित होते हुए भूतल में रत्नाधिष चक्रवर्तीं पद प्राप्त करते हैं अनेक भाँति के पुष्पों द्वारा समंत्रक देवों की सेवा उनके चरण कमल की बन्दना और भक्ति प्रेम में आनन्द विभोर होकर उनका प्रणाम करने वाले मनुष्य भूर्भुवः स्वः का महत्व फल प्राप्त करते हैं ॥ १०-१३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरर्व में श्रीकृष्ण युग्मिष्ठिर संवाद में देवपूजा एवं फल व्रत वर्णन
 नामक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९।

अध्याय १३० दीपदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! किस तप, व्रत, नियम अथवा दान द्वारा इस लोक में प्रकृष्ट उज्ज्वलता प्राप्त होती है । अत्यन्त तेजोमय, दीप्त, एवं प्रदीप्त किरणों से समुज्ज्वल शरीर की प्राप्ति जिसे उपाय से हो सके बताने की कृपा कीजिये । १-२

१. अतितीव्रं महद्विष्यम् ।

श्रीकृष्ण उवाच

मथुरायां पुरा पार्थ पिङ्गलो नाम तापसः । आगतः स च मे पत्न्या जाम्बवत्या प्रपूजितः ॥३
 पृष्ठश्च प्रश्नमेवैतं स चादोच्यथातथम् । तयापि मे समाख्यातं तत्सर्वं ते वदाम्यहम् ॥४
 यदा यदा नृपत्रैष्ठ पुण्यकालः प्रपद्यते । संक्रान्तौ सूर्यग्रहणे चन्द्रपर्वणि वैधृतौ ॥५
 उत्तरे त्वयने प्राप्ते दक्षिणे विषुवे तथा । एकादश्यां शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां दिनक्षये ॥६
 सप्तम्यमध्य वाष्टम्यां स्नात्वा व्रतपरो नरः । नारी वा भूमिदेवेन्यः प्रयच्छेत्रप्रत्यज्ञः ॥
 घृतकुम्भेन दीपने प्रज्वलनं प्रदीपकम् ॥७

युधिष्ठिर उवाच

भूमिदेवा इति प्रोक्तं यत्त्वया नधुसूदनः किमेतत्कौतुकं मेऽस्ति संशदं छेतुमर्हस्ति ॥८

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा कृतयुगस्यादौ त्रिशंकुरामि पार्थिदः । स स्वर्गं गन्तुकानोऽभूच्छरीरेण नरोत्तमः ॥
 ततश्चाण्डालतां नीतो दशिष्ठेन स्थात्मनः ॥९
 त्रिशंकुः सर्दमाचल्यो विश्वामित्राय धीमते । त्तोऽपि मन्युवशाद्यज्ञं चकाराहृय देवताः ॥१०
 न ता हविः प्रत्यगृह्णत्स्ततः कुद्धः कुशात्मजः । विश्वामित्रस्तु कोपेन चकारान्यान्सुरोत्तमान् ॥११
 शृङ्गाटकान्नालिकेरात्पचनानानजौडकान् । मेधात्थदवार्ताकितारिकूष्माण्डकोद्रवान् ॥१२
 उष्ट्रान्मनुजदेवांश्च क्रोधान्मुनिरवासृजत् । चकारान्यान्सप्तक्रृषीन्प्रतिमासं सुरोत्तमान् ॥१३
 ततः शकः समागम्य विश्वामित्रं प्रसाद्य वै । सृष्टिं निवारयामास ये सृष्टास्ते तथापि च ॥१४

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ पहले समय मथुरा में पिङ्गल नामक तपस्वी मेरे यहाँ आया और मेरी प्रेयसी जाम्बवती के द्वारा पूजित एवं उनके पूँछने पर जो कुछ उत्तर दिया था । मैं क्रमशः उसी का वर्णन कर रहा हूँ क्योंकि इसके पश्चात् जाम्बवती ने मुझसे सब बताया था । नृपत्रैष्ठ ! प्रत्येक पुण्यकाल के अवसर पर—संक्रान्ति, सूर्य चन्द्र ग्रहण, अयन, विषुव, शुक्लपक्ष की एकादशी, कृष्ण चतुर्दशी, सप्तमी और अष्टमी के दिन स्नान करके व्रतपरायण नर नारी गृहाङ्गण में घृत कुम्भ का प्रज्वलित दीपक भूमि देवों के निमित्त सादर समर्पित करें । ३-७

युधिष्ठिर बोले—मधुसूदन आपने भूमिदेव का नाम कहकर कौन सा कौतुक प्रकट किया है अतः इस मेरे सन्देह को दूर करने की कृपा कीजिये । ८

श्रीकृष्ण बोले—नरोत्तम ! पहले समय कृतयुग के आदि काल में एक त्रिशंकु नामक राजा था, जो इसी देह से स्वर्ग जाने का अभिलाषी था । किन्तु हठात् उसके इस अनुरोध पर महात्मा वसिष्ठ ने उसे चाण्डाल होने का शाप दे दिया । चाण्डाल होने पर त्रिशंकु ने महर्षि विश्वामित्र से अपनी इच्छा प्रकट की । उसे सुनकर विश्वामित्र ने कुद्ध होकर देवताओं के आवाहन पूर्वक यज्ञ करना आरम्भ किया किन्तु देवों के अपने हविभाग अस्वीकार करने पर उन्होंने सक्रोध अन्य देवों की सृष्टि की । क्रोध के आवेश में विश्वामित्र ने सिंगाडा, नारियल, पचनान, अनजौड़का मेधारथ, वार्ताक, तारि, कूष्माण्ड, कोदौ उंट,

मर्त्यलोके च ते सर्वे देवा देवकुलेष्वथ । मन्त्रैर्तिबद्धाः पिण्डीषु स्थिता मूर्तिभूतो यथः ॥१५
 ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो ये चान्ये देवतागणाः । लोकानामुपकाराय मर्त्यलोकमुगागताः ॥१६
 प्रतिमासु स्थिताः शश्वद्गोगान्भुञ्जन्ति शाश्वतान् । वरप्रदाश्च भक्तानामिमिति ते गुह्यमीरितम् ॥१७
 तेभ्यः पुरस्तादान्तव्यो दीप्यमानः प्रदीपकः । सूर्याय रक्तवस्त्रेण पूर्णवर्ति घृतैयुताम् ॥
 चतुःप्रस्थैः प्रज्वलन्तीं मन्त्रेणानेन दापयेत् ॥१८
 “तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्वन्ति सूरयः । दिवांद चक्षुरात्ततन्” ॥१९
 पीतवस्त्रेण कृष्णाय श्वेवस्त्रेण शूलिने । कौसुम्भवस्त्रेणाद्येन गौरीमुहित्य दापयेत् ॥२०
 लाक्षारक्तेन दुर्गायै पूर्णवर्ति प्रबोधयेत् । नीलवस्त्रेण कामाय गणनाथाय खादिरैः ॥२१
 नागेभ्यः कृष्णदस्त्रेण ग्रहेभ्य इष्टिकायुधाम् । देवाङ्गनापितृभ्यस्तु पितृवर्ति प्रबोधयेत् ॥२२
 विशेषं शृणु सूर्याय पूर्णवर्तिनिर्गद्यते । शिवायेश्वरवर्तीति भोगवर्तिर्जनार्दने ॥२३
 पद्मवर्तिर्विरिंचाय गौर्यैं सौभाग्यवर्तिका । नागेभ्यो नागवतीति ग्रहवर्तिर्युधिष्ठिर ॥२४
 नेत्रपट्टेन मधुना घृतेन मधुकुण्डके । अर्चिते चर्चिते चैव ललितायै प्रबोधयेत् ॥२५
 मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तन्निशामय वैदिकम् ॥२६

“अग्ने त्वां काम्यया गिरा तुभ्यं ता गिरस्तु विश्वाः । सुक्षितयः पृथक्पृथक् ॥२७

अग्ने कामाय जेगिरे अग्निप्रियेषु धामसु ।

कामो भूतस्य भव्यस्य सम्राडेको विराजिति ताभ्यां नाम स्वाहा” ॥२८

मनुष्य एवं देवों की रचना की । अन्य सप्तर्षि तथा प्रतिमास देवों की सृष्टि होते देख कर इन्ह ने वहाँ आकर उन्हें प्रसन्न करते हुए सृष्टि करना बन्द कराया । १-१४। किन्तु जिन देवों की सृष्टि हो चुकी थी वे मर्त्य लोक में देवकुलों में भंत्रों द्वारा पिण्डीभूत मूर्तियों की भाँति निबद्ध है । उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं अन्य देव गण लोकोपकारार्थ मर्त्य लोक में जाकर प्रतिमाओं में रहते हुए निरन्तर भोगों के उपभोग करते हैं और भक्तजनों को वर प्रदान करते रहते हैं । ऐसा गुप्त आत्मान उन्होंने बताया था । उन्हीं देवों के समक्ष प्रज्वलित दीपक, सूर्य को रक्त वस्त्र समेत चार सेर धी में जलती हुई पूर्णवर्ती समंत्रक प्रदान करना चाहिए—विष्णु के उस परम रूप को पण्डित वृन्द सदैव देखा करते हैं । ‘आकाश की भाँति विस्तृत नेत्र’ इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक पीतवस्त्र से कृष्ण की श्वेत वस्त्र से शिव की, कुसुमरंग वाले वस्त्र से गौरी की, लाक्षा (लाख की भाँति) रक्त वस्त्र से दुर्गा की पूर्ण वर्ती बनानी चाहिए । उसी भाँति नील वस्त्र से कामदेव, कथ्यई रंग वाले वस्त्र से गणनाथ, काले वस्त्र से नागगण, इषिकायुध वाली ग्रहों के लिए और देवाङ्गना तथा पितरों के लिए पितृवर्ती प्रज्वलित करनी चाहिए । कुछ विशेषता भी बता रहा हूँ, सुनो ! सूर्य के लिए अपित की जाने वाली को पूर्ण वर्ती, शिव के लिए ईश्वर वर्ती, जनार्दन देव के लिए भोग वर्ती, ब्रह्मा को पद्मवर्ती, गौरी को सौभाग्यवर्ती, नामों के लिए नागवर्ती और ग्रहों के लिए ग्रहवर्ति कही जाती है । १५-२४। युधिष्ठिर ! वस्त्र की पट्टी शहद घृत में भली भाँति भिगोकर ललिता के प्रबोधनार्थ समर्पित करने के लिए मैं उन मंत्रों को बता रहा हूँ, सुनो ! ‘अनेन त्वां काम्या गिरा तुभ्यं ता गिरस्तु विश्वाः’ सुक्षितयः पृथक्-पृथक् ! अग्ने कामायजेगिरे अग्निप्रियेषु धामसु । कामो भूतस्य भव्यस्य सम्राडेको

एषमेतेन विधिना यः प्रयच्छति दीपकम् । विस्तीर्णे विपुले पात्रे घृतकुम्भे नियोजितम् ॥२९
 यान्ति ते ब्रह्मसदनं विमानेनार्कवर्चसा । तिष्ठन्ति द्योतमानास्ते यावदाभूसंप्लवम् ॥३०
 सदीये तु यथा देशे चक्षुषिं बलवन्ति हि । तथा दीपस्य दातारो भवन्ति सफलेक्षणाः ॥३१
 यथैवोर्ध्वं गतिर्नित्यं राजन्दीपशिखामु वै । दीपदानुस्तथैवोर्ध्वं गतिर्भवति शोभना ॥३२
 घृतेन दीपो दातव्यो राजन्त्तैलेन वा पुनः । वसामज्जादिभिर्देयो न तु दीपः कथञ्चन ॥३३
 दीपस्तैलेन कर्तव्यो न तु कर्म दिजानता । निर्वापिणं च दीपस्य हिसनं च विगर्हितम् ॥३४
 यः कुर्यात्कर्मणा तेन स्यादसौ पुण्यितेक्षणः । दोपहर्ता भवत्यन्धः काणो निर्वाएको भवेत् ॥३५
 पश्चात्त्रोद्भवां वाऽत गन्धतैलेन दीपिताम् । विरोगः सुभगश्वैव दत्त्वा भवति मानवः ॥३६
 प्रज्वाल्य देवदेवस्य कर्पूरेण तु दीपकस् । अश्वेष्मवान्नेति कुलं चैवत्समुद्धरेत् ॥३७

एतन्ययोक्तं तत्र दीपदानफलं समग्रं कुरुवंशचन्द्र ।

श्रुत्वा यथावत्सहतं हि देया दीपास्त्वया विप्रमुरालयेषु ॥३८

अत्राप्युदाहरत्तीममितिहासं पुरातनम् । दीपदानाललिताया यदवाप्तं पुराजनघ ॥३९
 आसीच्चविरथो नाम विदर्भेषु महीपतिः । तस्य पुत्रशतं राज्ञे जज्ञे पञ्चदशोत्तरम् ॥४०
 एकैव कन्या तस्यासीललितानाम नामतः । सर्वलक्षणसम्पन्ना रूपेणाप्रतिमा भूवि ॥४१
 तां ददौ काशिराजाय चार्वद्वीर्णि चारुर्धमणे । शतान्यन्यानि भार्याणां व्रीण्यासंश्चारुधर्मणः ॥४२

विराजति ताम्यां नमः स्वाहा । राजेन्द्र ! इस विधान द्वारा विस्तृत एवं विपुल घृतपूर्ण पात्र में रखकर दीपक प्रदान करने वाले सूर्य की भाँति तेजोमयविमान पर सुशोभित होते हुए ब्रह्मसदन ग्राप्त करते हैं । और महाप्रलय पर्यंत आकाशं युक्त रहते हुए सुखानुभूति करते हैं । सबन नेत्रों की भाँति उचित प्रदेश में दीप रखने से दीपदाता सफल नेत्र होता है । राजन् ! जिस प्रकार दीपशिखा की ऊर्ध्वं गति सदैव बनी रहती है उसी भाँति दीप दान करने वाले प्राणी की सदैव शोभन ऊर्ध्वं गति ही होती है । राजन् ! घृत दीप के अतिरिक्त तैल का भी दीपदान कर सकते हैं किन्तु वसा मज्जा पूर्ण दीप दान कभी न करना चाहिए । ज्ञान पूर्वक कर्मशील प्राणी को दीप का निर्वापिण (बुझाना) और हिंसा अतिनिन्दित होने के नाते कभी न करना चाहिए । क्योंकि ऐसे प्राणियों की आँखे नष्ट हो जाती हैं—दीपक का अपहरण करने वाला अन्ध और बुझाने वाला पुरुष एकाक्ष (काना) होता है । कमलनाल दण्ड के सूत्र की वत्ती सुगन्धित तैल से प्रज्वलित कर अर्पित करने पर मनुष्य आरोग्य और सौभाग्य पूर्ण होता है । देवाधिदेव को कपूर का दीप अर्पित करने पर अश्वमेध के फल प्राप्ति पूर्वक उसके कुल का उद्धार होता है ॥४५-४७। कुरुवंशचन्द्र ! मैंने तुम्हें फल समेत दीप दान का महत्व बता दिया, इसे सुनकर ब्राह्मणों के गृह और देवालयों में तुम्हें निरन्तर दीप दान अर्पित करना चाहिए । अनंथ ! इस विषय का एक पुरातन इतिहास मुना रहा हूँ, जिसमें ललिता देवी ने दीप दान द्वारा जो फल प्राप्त किया है उसका सविस्तार वर्णन किया गया है । विदर्भ देश में चित्ररथ नामक एक राजा रहता था, जिसके एक सौ पन्द्रह पुत्र और ललिता नामक एक कन्या थी । उस समस्त लक्षणों से भूषित और अनुपम सौन्दर्य पूर्ण मुन्द्री कन्या को परम धार्मिक काशिराज को उन्होंने सौंप दी ॥४८-४९। काशिराज के एक सौ तीन परम सुन्दरी स्त्रियाँ थीं जिनमें

तासां भध्येऽग्रमहिषी ललिता साप्यथाभवत्

॥४३

विष्णोरायतने सा तु सहस्रं परिदीपकान् । प्रज्वालयन्त्यनुदितं दिवारात्रमनिर्वृतम् ॥४४
तामिश्रमात्वयुक्तपक्षं शुक्लपक्षं च कार्तिकम् । तस्या: प्रज्वलितो दीप उच्चस्थानकृतः शुभः ॥४५
तस्मिन्काले तथा नित्यं ब्राह्मणावसथे च सा । अग्रा भवति सायाह्ने दीपप्रेषणतप्त्यरा ॥४६
चतुष्पथेषु रथ्यासु देवतायतनेषु च । चत्यवृक्षेषु गोष्ठेषु पर्वतानां च मूर्ढ्मु ॥४७
पुलिनेषु नदीनां च कूपशूलेषु पाण्डवः । तां सप्तन्योऽयं सङ्गम्य प्रच्छुरिदमादृतः ॥४८
ललिते वद भद्रं ते ललितं वचनं तथा । न तथा दलिपुष्टेषु न तथा द्विजदूजने ॥४९
भवत्याः सुमहान्यत्नो दीपप्रज्वालने यथाः । तदेतत्कथयास्माकं^१ ललिते कौतुकं दरम् ॥५०
मन्यामहे त्वयावश्यं दीपदानकलं श्रुतम्

ललितोवाच

नाहं मत्सरिणी भद्रा न रागादिद्वृषिता

॥५१

एकपत्याश्रिताः साध्वयो भवत्यो मम मानदाः । अपृथग्धर्मचरणाः शृणवन्तु नदितं मम ॥५२
मर्यैतदीपदानस्य यथेष्टं भुज्यते फलम् । हिरण्यदयिता भार्या शैलराजसुता वरा ॥५३
उम्मादेवीति मद्देषु देविका सा सरिद्वारा । नराणामनुकम्पार्थं ब्रह्मणा ह्यवतारिता ॥

श्रुता किं भवतीभिः सा देविका पापनाशिनी

॥५४

ललिता उनकी अग्रमहिषी (पटरानी) थी । विष्णु के मन्दिर में वह सहस्रों दीपक प्रतिदिन जलाती थी, जो रात दिन जलते थे । कार्तिक मास के दोनों (कृष्ण शुक्ल) पक्षों में उसका शुभ दीपक ऊंचे स्थानों (आकाश) में जलता था । उन दिनों सायंकाल वह ब्राह्मणों के गृह और मन्दिरों आदि स्थानों में दीपक भेजने के लिए अत्यन्त व्यग्र रहा करती थी । पाण्डव ! चौराहे, गली, देवालय चेत्यवृक्षों (पीपल) आदि, गोशाला, पर्वत शिखर, नदी टट, कूएँ जी जगत (चबूतरा) में उसके दीपक प्रतिदिन जलते थे । एक बार उसकी सपत्नियों ने उसके पास पहुँच कर सादर पूर्णा ललिते ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा बदन परम ललिता है । दीपकों के जलाने में जिस प्रकार आपका महान् प्रयत्न रहता है, बलि, पुष्ण और ब्राह्मणों के पूजन में वैसा कभी नहीं देखा जाता । ललिते ! अतः यह कौतुक हमें बताने की कृपा करो । क्योंकि हम लोग यह अवश्य मानते हैं कि दीपदान का महत्व आप ने अवश्य सुना होगा । ४२-५०

ललिता बोली—भद्रे ! मैं मत्सर करने वाली एवं रगादि दोष दूषित स्त्रियों में नहीं हूँ (किन्तु भद्र स्वभाव की हूँ) आप सभी पतिव्रताएँ एक पति के आश्रित रहने के नाते मेरी मानदा हैं और आपका धर्माचरण भी पृथक् न होकर सम्मिलित ही है अतः मेरा कहना सावधान होकर सुनो ! क्योंकि मुझे इस दीपदान का यथेष्ट फल प्राप्त हो रहा है । भद्र देश में पर्वतराज हिमालय की श्रेष्ठ कन्या, जो सुवर्ण की भाँति गौराङ्गी एवं दयिता भार्या हैं उम्मा देवी के नाम से विख्यात हैं और देविका नामक एक श्रेष्ठ नदी भी वहाँ प्रवाहित होती है जिसे ब्रह्मा ने मनुष्यों के अनुकम्पार्थं अवतारित किया था और उस पाप विनाशिनी देविका का नाम आप लोगों ने नहीं सुना है क्या ? उस नदी में एक बार भी स्नान करने पर

तस्यां स्नात्वा सङ्क्रन्धां गाणपत्यमवाप्नुयात् । तस्यामथ नृसिंहाख्यं तीर्थं कल्मषनाशनम् ॥

हरिणा नृसिंहवपुषा यत्र स्नानं कृतं पुरा ॥५५

सौवीरराजस्य युरा मैत्रेयोभूत्युरोहितः । तेन चायतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ॥५६
 अहन्यहनि शुश्रूषां पुष्पधूपानुलेपनैः । दीपदानादिभिर्ब्रैव चक्रे तत्र स वै द्विजः ॥५७
 कार्त्तिक्यां दीपकस्तत्र प्रदत्ततेन चैकदा । आसीन्निर्विर्णभूयिष्ठो देवार्चासु रतो निशि ॥५८
 देवतायतनेऽवात्सं तत्राहमपि भूषिका । प्रदीपर्वतिहरणे कृतबुद्धिर्वराननाः ॥५९
 गृहीताथ मया वर्तिवृक्कदंशो ररास च । नष्टा चाहं तत्तस्तस्य माजीरस्य भयातुरा ॥६०
 वक्त्रंग्रान्तेन पश्यन्त्या स दीपः प्रेरितो शया । जज्वाल पूर्ववदीप्त्या तस्मिन्नायतने पुनः ॥६१
 मृताहं च पुनर्जाता वैदर्भे राजकन्यका । जातिस्मरा महीपस्य महिषी चारुधर्मणः ॥६२
 एष ब्रह्मदो दीपस्य कार्त्तिके मासि शोभनः । इत्यस्यायतने विष्णोर्यस्येवं च्युष्टिरूत्तमा ॥६३
 असङ्क्लितमध्यस्य प्रेरणं यन्नया कृतम् । केशवे बालदीपस्य तस्येदं भुज्यते फलम् ॥६४
 एतस्मात्कारणादीपानहमेतानहर्निशम् । प्रयच्छामि हरेरेहि जातमस्य महाफलम् ॥६५
 एवमुक्त्वा सपत्नी सा दीपदानपरायणा । बभूव देवदेवस्य केशवस्य गृहे सदा ॥६६
 ततः कलेन महता सह राजा महात्मना । विष्णुलोकमनुप्राप्तां पञ्चत्वं प्राप्य मानदा ॥६७
 तं लोकमासाद्य नृपेण साद्वं सा राजपत्नी कमलाभनेत्रा ।
 रेमे महीपाल मुदा समेता दीपदानात्सकलार्तिहीना ॥६८

गाणपत्य की प्राप्ति होती है । उसी नदी में पापनाशक एक नृसिंह तीर्थ है, जहाँ भगवान् नृसिंह देव ने पहले स्नान किया था । ५-५५। वहाँ सौवीरराज के मैत्रेय नामक पुरोहित ने भगवान् विष्णु का एक विशाल मन्दिर बनवाया है । वह ब्राह्मण उस मन्दिर में पूष्प, धूप, विलेपन एवं दीपदान द्वारा विष्णु की शुश्रूषा करते हुए एक बार कार्तिक मास में भगवान् को दीप अप्ति किया किन्तु देव पूजा में रखा हुआ वह दीपक रात्रि में बुझ गया । मैं मूषिका रूप में उसी मन्दिर में निवास करती थी । उस समय मैंने (अन्यत्र से) एक जलते हुए दीपक की बत्ती लाने का निश्चय किया और तदनुसार मैंने एक बत्ती लेकर चली कि कुते भूंकने लगे । बिल्ली के भय से मैं मुख में रखी हुई बत्ती के सहारे देखती हुई पुनः वहाँ आकर मन्दिर के उस बुझे हुए दीपक को उसी द्वारा जला दिया और वह पहले की भाँति जलने लगा । पश्चात् निधन होने पर मैं विदर्भ राज की कन्या हुई और पूर्वजाति का स्मरण कराने वाली उस पृथ्वी के अधीश्वर काशिराज की जो परम धार्मिक है, प्रधान रानी हुई । विष्णु मन्दिर में कार्तिक मास में शोभन दीपदान का यह प्रभाव है जिसका मुझे समृद्ध फल प्राप्त हो रहा है । भगवान् के लिए एक छोटे से दीपदान का जो बुझा पड़ा था मैंने प्रज्वलित मात्र कर दिया था यह अनुपम फल भोग रही है । इसी कारण मैं इन दीपों को भगवान् के मन्दिर में रात दिन जलायै रहती हूँ । इस प्रकार अपनी सपत्नियों से कह कर वह पुनः विष्णु मन्दिर में दीप दान में संलग्न हो गयी । पश्चात् कालान्तर में उस महात्मा राजा के साथ विष्णु लोक की प्राप्ति की । महीपाल ! कमल नेत्र वाली (ललिता) राज महिषी उस लोक में पहुँचकर दीप दान द्वारा प्राप्त परिणाम स्वरूप अपने राजा के साथ वहाँ चिरकाल तक रमण किया और समस्त दुःखों से मुक्त रही । ५६-६८। अतः गण्य-मान्य पण्डितवृन्द

दीपप्रदानमणि पुण्यतरं बदन्ति विप्रग्निगोमुरकुलैकगृहाङ्गेषु ।
तदानदीप्तवपुषाथ पथोंधकारे गच्छन्नरः पतति न स्खलते कदाचित् ॥६९
इति श्रीभिष्ण्वे महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दीपदानविधिवर्णनं नाम त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०

अर्थैकर्त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः

वृषोत्सर्गविधिवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

कार्तिक्यामथ वा माघ्यामयमेव पुधिष्ठिर
चैत्र्यामथ तृतीयायां वैशाख्यां द्वादशेऽत्तिर वा । खण्डनीलं शङ्खपादं सपौङ् धौतपुष्टकम् ॥२
गोभिष्ठत्रुभिः सहितं सृजेच्चैव विधिं शृणु । यदुवाच्च पुरा गर्गो गोकुलेऽनघ पाण्डव ॥३
तत्तेहं च प्रवक्ष्यामि विधिं गर्गप्रचोदितम् । भातरं स्थापयित्वाग्ने पूजयेत्कुसुमाक्षतैः ॥४
मातृश्राद्धं ततः कुर्यात्सदाभ्युदयकारकम् । अकालमूलं कलशमश्वत्थदलशोभितम् ॥५
तत्रविद्वाञ्जपित्वा तु स्थापयेद्वदेवताम् । सुसमिद्धं ततः कृत्वा वह्निमन्त्रपुरःसरम् ॥६
अथैनं जुहुयात्प्रद्भिः पृथगाहुतिसंज्ञितैः । पौष्यामन्त्रैस्ततः पश्चाद्वृत्वा वह्निं यथाविधि ॥७
एकवर्णं द्विवर्णं वा रोहितं श्वेतमेव वा । जीवद्वृत्सप्तस्त्रिव्यन्याः पुत्रं सर्वांगसुन्दरम् ॥८

ब्राह्मण, गौ, और देवालयों में दीपदान करना अत्यन्त पुण्यजनक बतलाते हैं क्योंकि उस दान द्वारा तेजोमय शरीर की प्राप्ति होती है जिसके अंधकार मय मार्ग में चलते हुए मनुष्य कभी कहीं गिरता नहीं है ॥६९

श्रीभिष्ण्वमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
दीप दान विधान वर्णन नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३०।

अध्याय १३१ वृषोत्सर्गविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! कार्तिक, माघ, और चैत्र की तृतीया तथा वैशाख द्वादशी के दिन चार गौओं समेत एक ऐसे वृष का त्याग विधान बता रहा हूँ, जो खण्डनील, शंखपाद, पौङ् और धवल वर्ण हो । सुनो ! अनघ पाण्डव ! पहले समय गर्ग जी ने गोकुल में आकर जो विधान बताया था, वही विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ । मातृस्थापन करके पुष्पाक्षत से उनके पूजन करने के अनन्तर अभ्युदयकारक मातृ श्राद्ध सुसम्पन्न करना चाहिए—पीपल पल्लव भूषित एवं सुशोभित कलश स्थापन पूर्वक रुद्र जप करने के उपरांत प्रज्वलित अग्नि में मन्त्रोच्चारण पूर्वक छ आहूति प्रदान करे ॥१-६। पश्चात् समंत्र एवं सविधान हवन करने के अनन्तर किसी ऐसी गौ की जिसके बच्चे अकाल पीड़ित न होते हैं, एकरंग, दोरंग अथवा लोहित (रक्त) वर्ण का सर्वाङ्ग सुन्दर वृष चार बछियों समेत अलंकृत होने पर त्याग के समय उनके कानों में कहे

चतमो वत्सर्थश्च ताभिः साधेमलंकृतम् । तासां कर्णे जपेद्विग्रः चर्त वो बतिनं शुभम् ॥१
 समितास्तेन सहिताः क्रीडध्वं हृष्टमानसाः । ततो दामे त्रिशूलं च दक्षिणे चक्रमालिखेत् ॥१०
 अद्वितं शङ्खचक्रान्यां वर्षितं कुसुमादिना । पुष्पमालाकृतग्रीवं सितवस्त्रैश्च च्छादितम् ॥११
 विमुञ्चेद्वत्सकाभिश्च नीलाभिर्बलिनं दृढम् । देवालये गोकुले वा नदीनां सङ्घमेऽथ वा ॥१२
 इत्युत्कं गर्गमुनिना विधानं वृषमोक्षणे । स्वेच्छाविहारिणं दृप्तं गर्जन्तं सुन्दरं गवाम् ॥१३
 ककुदिमनं पतिंया धन्ये विनुञ्चन्ति गोवृषम् । फलं च^१ तस्य वश्यामि ब्रुवतो मे निबोध तत् ॥१४
 वृषोत्सर्गं पुनात्येव दशातीतान्दशापरात् । यांकचित्पृशते तोयं समुत्तीर्य जलान्महीम् ॥१५
 वृषोत्सर्गं द्वितृणां तु तदक्षयमुदाहृतम् । यैश्च यैश्च स्मृगेत्तोयं लाङ्गूलादिभिरन्ततः ॥१६
 सर्वं तदक्षयं तस्य पितृणां नात्र संशयः । शृङ्खः खरैर्वा यद्भूमिमुल्लिखत्यनिशं वृषः ॥१७
 मधुकुल्याः पितुस्तस्य अक्षयास्ता भवन्ति वै । सहस्रतलमात्रेण तडागो न यथाश्रुति ॥१८
 पितृणां या भवेत्तप्तिस्तां वृषस्त्वतिरिच्यते । यो ददाति तिलैर्मिश्रान्स्तिलान्वा शाद्वकर्मणि ॥
 मधु वा नीलखण्डं वा अक्षयं सर्वमेव तत् ॥१९
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां यजेत् । यजेत वाभ्यमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥२०
 न करोति वृषोत्सर्गं सुतीर्यं वा जलाञ्जलिम् ! न प्रदच्छति यः पुत्रः पितुरुच्चार एव सः ॥२१

कि—तुम लोगों को एक बलिष्ठ एवं शुभ मूर्ति पति प्रदान किया गया है अतः प्रसन्नत! पूर्ण उसके साथ क्रीडा करो । अनन्तर वाम भाग में त्रिशूल और दक्षिण में चक्र से भूषित वह वृष, जो शंख चक्र से अलंकृत और पुष्प वर्षा से आच्छन्न, पुष्प माला पहन कर इवेत वस्त्र से आच्छादित किया गया हो, उन चार नवीन गौड़ों समेत देवालय, गोष्ठ या नदी संगम में छोड़ दे । वृष त्याग में गर्गमुनि ने यही विधान बताया है । स्वेच्छाविहार करने वाला, बली, गौओं के बीच गर्जन करने वाले वृहत् कुदृ (डिल्ल) वाले ऐसे सुन्दर वृष का त्याग करने वाले धन्य हैं । मैं ऐसे वृषोत्सर्ग का फल भी बता रहा हूँ, मुझो ! वृषोत्सर्ग यज्ञ सुसम्पन्न करने पर दश पीढ़ी पूर्वी की और दश अगली पीढ़ी का उद्धार होता है । (सरोवर के) जल को पार कर वह वृष जिस किसी वस्तु (जल, भूमि और अन्न) का स्पर्श करता है वह पितरों के लिए अक्षय होता है । अपनी लांगूल (पूँछ) आदि अंगों द्वारा वह वृष जिस जल का स्पर्श करता है वह पितरों के लिए अक्षय हो जाता है । इसमें संदेह नहीं । ७-१६। अपनी सीरों और खुरों से जिस भूमि को वह निरन्तर खोदता है वह पितरों के लिए अक्षय मधु (शहद) की नाली प्रवाहित होती है । श्रुतियों के कथनानुसार सैकड़ों गद्दे जिसकी समानता न कर सें वही सरोवर कहलाता है । इसीलिए पितरों की भली भाँति तृप्ति करने वाले को ही प्रशस्त वृष कहा गया है । शाद्व कर्म में तिल अथवा तिल मिश्रित मधु और नील खण्ड प्रदान करने पर वह सब अक्षय हो जाता है । एतदर्थं अनेक पुत्रों का उत्पन्न होना परमावश्यक है क्योंकि उनमें कोई अवश्य गया शाद्व, अश्वमेध यज्ञ अथवा नील वृषोत्सर्ग करेगा अपने पितरों के उद्देश्य से वृषोत्सर्ग और प्रधान तीर्थों में जलाञ्जलि प्रदान न करने वाला पुत्र पितरों का मलरूप है । अपनी सीरों और

१. वृषस्त्व । २. तृणाम् ।

यद्भूमिमलित्ति शृङ्गखुरैः प्रहृष्टो यद्वा करोति प्रतिमल्लवृषान्निरोक्ष्यः
स्तं समस्तमपि तत्य विवाहकर्तुः संतोषमावहति शक्रसभागतस्य ॥२२
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दृष्टोत्तरार्थविधिवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १३१

अथ द्वार्णिंशदधिकशततमोऽध्यायः

फालगुनपूर्णिमाव्रतवर्णनम्
युधिष्ठिर उवाच

किमर्थं फालगुनस्यान्ते पौर्णमास्यां जनर्दनं । उत्तरावो जायते लोके ग्रामेग्रामे पुरे पुरे ॥१
किमर्थं शिशबस्तस्यां गेहोहेऽतिवादिनः । होलिका दीप्यते कस्मात्कालगुनान्ते किमुच्चते ॥२
अडाडेति च वा संज्ञा शीतोष्णेति किमुच्चते । को हृस्यां पूज्यते देवः केनेयमवतारिता ॥
किमस्यां क्रियते कृष्ण एतद्विस्तरतो वद ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

आसीकृतयुगे पार्थ रघुर्नाम नराधिपः । शूरः सर्वगुणोपेतः प्रियवादी बहुशुतः ॥४
स सर्वां पृथिवीं जित्वा वशीकृत्य नराधिपान् । धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥५

खुरों द्वारा भूमि खोदने तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी अन्य वृषों को देखकर गर्जन से इन्द्र की सभा में बैठे हुए उस प्राणी को जिसने इस वृष का विवाह (बछियों) के साथ सुसम्पन्न किया है, परम सन्तोष प्राप्त होता है । १७-२२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बाद में
वृषोत्सर्ग विधान वर्णन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त । १३१

अध्याय १३२

फालगुनपूर्णिमा व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जनर्दन ! फालगुन मास के अंत में पूर्णिमा के दिन गाँव-गाँव में प्रत्येक घरों में जिस समय उत्सव मनाया जाता है, लड़के लोग क्यों (अश्लील शब्दों के) प्रलाप करते हैं, होली क्यों जलायी जाती है । कृष्ण ! अडाडा संज्ञा और शीतोष्णा किसे कहा जाता है । इसमें किस देव की अर्चा होती है, यह किसके द्वारा सर्वप्रथम आरम्भ हुआ है और इसमें क्या किया जाता है आदि सभी बातें विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें । १-३

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले कृतयुग में एक रघु नामक राजा थे, जो शूर, सर्वगुण सम्पन्न, प्रियवादी और निपुण विद्वान् थे । उसने समस्त पृथ्वी को जीत कर राजाओं को अपने अधीन करते हुए और स (सगे) पुत्रों की भाँति प्रजाओं का पालन पोषण करता था । ४-५। पार्थिव ! उस राजा के शासन काल

न दुर्भिक्षं न च व्याधिनाकालमरणं तथा^१ । नाधर्मेरुचयः पौरास्तस्मिन्छासति^२ पार्थिव ॥६
तस्यैवं शास्तो राज्यं क्षात्रधर्मरक्षतस्य वै । पौरा: सर्वे समागम्य पाहिपाहीत्यथाबुवन् ॥७

पौरा ऊचुः

अस्माकं हि गृहे कःचिद्दौडा नामेति राक्षसी । दिवा रात्रौ समागम्य बालान्पीडयते बलात् ॥८
रक्षयः कण्डकेनापि भेषजैर्वा नराधिप । मन्त्रज्ञः परमाचार्यः ता नियन्तुं न शक्यते ॥९
पौराणां वचनं श्रुत्वा रथुर्विस्मयमागतः । विस्मयाविष्टहृदयः पुरोहितमथाब्रवीत् ॥१०

रघुरुचाच

दौंडेति राक्षसी केयं किंप्रभावा^३ द्विजोत्तमः । कथमेषा नियन्तव्या मदा दुष्कृतकारिणी ॥११
रक्षणात्प्रोच्यते राजा वृथिक्षीपालनात्पतिः । अरक्षप्राणः पृथिवीं राजा भवति किल्बिषी ॥१२

वशिष्ठ उचाच

भृणु राजन् परं गुह्यं यन्नाख्यातं मया क्वचित् । दौंडा नामेति विल्यातः राक्षसी मालिनः सुता ॥१३
तया चत्तराधितः शम्भुरुप्रेण^४ तपसा पुरा । प्रीतस्तामाह भगवान्वरं वरय सुन्नते ॥१४
यते मनोऽभिलिषितं तद्वद्वाम्यविचारितम् । दौंडा प्राह महादेवं यदि तुष्टं स्वयं भम ॥१५
न च वध्यां सुरादीनां मनुजानां च शङ्कर । मां कुरु त्वं त्रिलोकेश शस्त्रास्त्राणां तथैव च ॥१६

में प्रजाओं में दुर्भिक्ष, व्याधि, अकाल मरण और अधर्म रुचि कभी नहीं उत्पन्न होने पायी । किन्तु क्षत्रिय धर्म द्वारा उसके शासन काल में ही समस्त नगरनिवासी राज दरबार में पहुँच कर 'बचाओ-बचाओ' कहने लगे । ६-७

पुरवासियों ने कहा—हमारे घरों में एक दौंडा नाम की राक्षसी दिन रात आकर बच्चों को बलात् पीड़ित करती है । नराधिप ! परम भन्त्र निपुण आचार्य द्वारा अथवा अन्य रक्षा, कंडक, या ओषधि से उसको रोकना कठिन हो रहा है । पुरवासियों के ऐसे करण क्रन्दन सुनकर राजा रघु को महान् आश्चर्य हुआ । उन्होंने उसी समय अपने पुरोहित से कहा—८-१०

रघु बोले—द्विजोत्तम् ! यह दौंडा राक्षसी कौन है और मैं इस दुराचारिणीका वारण किस भाँति कर सकूंगा क्योंकि प्रजाओं की रक्षा करने से राजा और पृथिवी के पालन करने से पति कहे जाते हैं तथा पृथिवी की रक्षा न करने में राजा किल्बिषी (नपुंसक या कायर) कहा जाता है । ११-१२

वशिष्ठ बोले—राजन् ! मैं तुम्हें एक परम गुप्त आख्यान बता रहा हूँ जिसको अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं किया है, सुनो ! माली नामक राक्षस की विल्यात पुत्री का नाम दौ॒प्ता है जिसने पहले समय में उग्र तप द्वारा शिव की आराधना की थी । प्रसन्न होने पर भगवान् शिव ने उससे कहा—सुन्नते ! अपने अभिलिषित वर की याचना करो, मैं बिना विचारे ही उसे पूरा करने को प्रस्तुत हूँ । इसे सुनकर कर दौंडा ने महादेव से कहा—शंकर ! यदि आप प्रसन्न हो तो मुझे देवों, मनुष्यों और जास्त्रास्त्रों की अवध्या

१. नृणाम् । २. वसति । ३. प्रख्याता ।

शौतोष्णवर्षासिमये द्विवा रात्रौ बहिगृहे । अभवं सर्वदा मे स्यात्त्वप्रसादान्महेश्वर ॥१७
शङ्कर उवाच

एवमस्त्वित्यथोक्त्वा तां पुनः प्रोवान् शूलभ्रुत् । उन्मत्तेभ्यः शिशुभ्यश्च भयं ते सम्भविष्यति ॥
ऋतावृतौ महाभागे मा व्यथां हृदये कृथाः ॥१८

एवं दत्वा वरं तस्य भगवान्भगनेत्रहा ! स्वप्ने लब्धो यथार्थर्थस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ॥१९

एवं लब्धवरा सा तु राक्षसी कामशुपिजी । नित्यं पीडयते बालान्संस्मृत्य हरभाषितम् ॥२०

जडाडयेति गृह्णाति सिद्धमन्त्रं कुटुम्बिनी । गृहेषु तेन सा लोके हृडाडेपत्यभिशीघ्रते ॥२१

एतते सर्वमाल्यातं ढौण्डायाश्रितं मया । साम्प्रतं कथयिष्यामि येनोपायेन हन्यते ॥२२

अद्य पञ्चदशी शुक्ला फाल्गुनस्य नराधिप । शीतकालो विनिष्कान्तः प्रातर्ग्रीष्मो भविष्यति ॥२३

अभयप्रदानं लोकानां दीयतां पुरुषोत्तम । यथाद्याशंकिता लोका रमन्ति च हसन्ति च ॥२४

दारजानि च खण्डानि गृहीत्वा समरोत्सुकाः । योद्या इव विनिर्यान्तु शिशावः सम्प्रहर्षिताः ॥२५

सञ्चयं युज्काणाठानामुपलानां च कारयेत् । तत्राप्निं विधिवद्वृत्वा रक्षोद्दन्तमन्त्रविस्तरैः ॥२६

ततः किलकिलाशब्दैस्तालशब्दैर्मनोहरैः । तमिग्नं त्रिः परिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च ॥
जल्पन्तु^१ स्वेच्छया लोका निःशंका यस्य यन्मतम् ॥२७

बनाने की कृपा करें तथा जाडा, गर्मी और वर्षा के सभी दिनों में रात दिन एवं घर बाहर सभी स्थानों में तुम्हारी कृपा से मुझे सदैव अभयदान प्राप्त रहे । १३-१७

शंकर जी बोले—शूलधारी शिव ने उसकी बातों को 'तथास्तु' कहकर चीत्कार करते हुए पुनः उससे कहा—महाभागे ! प्रत्येक ऋतुओं में उन्मत्त की भाँति रहने वाले बालकों से तुम्हें सदैव भय बना रहेगा । अतः अपने मन में कुछ दुःख न मानना । भग नेत्र के अपहर्ता भगवान् शिव इस भाँति उसे वर प्रदान करके स्वप्न में प्राप्त धन की भाँति उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये । यथेच्छ रूप धारण करने वाली वह ढौण्डा राक्षसी भी शिव जी की बातों के स्मरण पूर्वक नित्य बालकों को पीडित करने लगी । वह घरों में प्रवेश करते समय 'अडाडयेति' नामक सिद्ध मन्त्र का प्रयोग करती इसीलिए लोक में अडाडया नाम से उसकी स्थानि हुई है । इस प्रकार मैंने ढौण्डा का समस्त चत्रित्र बता कर अब उसके हनन का उपाय बता रहा हूँ ! सुनो ! नराधिप ! आज फाल्गुन मास की पूर्णिमा है, शीत काल की समाप्ति एवं ग्रीष्म का प्रातःकाल हो रहा है । पुरुषोत्तम ! अतः आप लोक को अभय प्रदान करें, जिससे सशंकित मानव गण पूर्व की भाँति पुनः हास्य समेत अपने जीवन व्यतीत करें । बालक वृन्द हाथ में डण्डे लिये समर के लिए लालायित योधा की भाँति हँसी खेल करते हुए बाहर जाकर सूखी लकड़ियाँ और उपले (काढे) को एकत्र करें तथा उसे जलायें पश्चात् राक्षस नाशक मंत्रों द्वारा सविधान उसमें आद्वृति डालकर हर्षोल्लास से सिंहनाद और मनोहर ताली बजाते हुए उस अग्नि की तीन परिक्रमा करें एवं सभी लोग वहाँ उपस्थित होकर निःशकं तथा यथेच्छ गायन, हास्य और अपने मनोनुकूल प्रलाप करें । क्योंकि उन्हीं शब्दों और हवन द्वारा वह पापिनी

तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता । अदृष्टधातौडंभानां राक्षसी क्षयमेव्यति ॥२८

श्रीकृष्ण उवाच

तस्यर्थेवचनं श्रुत्वा स नृपः पाण्डुनन्दन । सर्वं चकार दिधिवदुक्तं तेन च धीमता ॥२९

गता सा राक्षसी नशं तेन चोपेण कर्षणा । ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्नडाडा ख्यातिमागता ॥३०

सर्वदुष्टापहो होमः सर्वरेतोपशान्तिदः । क्रियतेऽस्यां द्विजैः पार्थं तेन सा होलिका मता ॥३१

सर्वसारातिविश्वेयं पूर्वमतीद्युधिष्ठिर । सरत्वःत्फलुरित्येषा परमानन्ददायिनी ॥३२

अस्यां निशागमे पार्थं संरक्षयः शिशादो गृहे । गोमयेनोपत्तांलिप्ते सचतुष्के गृहाङ्गणे ॥३३

आकारयेच्छिशुप्रायान्त्वद्गव्यग्रं करान्नरान् । ते काष्ठखण्डः संस्पृश्य गीतैर्हरिप्रकरैः शिशून् ॥

रक्षन्ति तेषां दातव्यं गुडं पक्वान्नमेव च ॥३४

एवं ढाँढितमात्रस्य त दोषः प्रशान्तं द्रजेत् । बालानां रक्षणं कार्यं तस्मात्स्मिन्निशागमे ॥३५

युधिष्ठिर उवाच

प्रभाते किञ्जनैर्देवं कर्तव्यं मुखमीप्युभिः । प्रयृते माधवे मासि प्रतिपद् भास्करोदये ॥३६

श्रीकृष्ण उवाच

कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य दितृदेवताः । बन्दयेद्वोलिकाभूति सर्वदुष्टोपशान्तये ॥३७

मण्डिते चर्चिते चैव उपलिप्ते गृहाजिरे । चतुष्कं कारयेच्छेष्ठं वर्णकैश्चाक्षतैः शुभैः ॥३८

तन्मध्ये स्थापयेत्तीठं शुक्लवस्त्रोत्तरच्छदम् । अग्रतः पूर्णकलशं स्थापयेत्पल्लवैर्युतम् ॥३९

अचेतन होती है। तथा बालकों के उस अदृष्ट आघातों द्वारा वह राक्षसी नष्ट हो जाती है। १८-२८

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुनन्दन ! उन महर्षि की ऐसी बातें सुनकर राजा रघु ने उनके कथनानुसार समस्त कर्म सत्विधान सुसम्पन्न किया, जिससे उसी उप्र कर्म द्वारा उस राक्षसी का विनाश हो गया। पार्थ ! उसी समय से लोक में उसकी अडाडया नाम से ज्याति हुई है और इसी प्रणिमा के दिन ब्राह्मण गण समस्त दुष्टों और रोगों के शमनार्थ हवन करते हैं। इसीलिए वह होलिका कही जाती है। **युधिष्ठिर !** पहले समय में सम्पूर्ण विश्व को अतिक्रान्त करने के नाते इसमें सर्वसार सन्निहित था, किन्तु सारमय होते हुए भी निष्फल होने के नाते यह परमानन्द प्रदान करती है। पार्थ ! इस दिन रात्रि आगमन (सायंकाल) के समय घर में बालकों की रक्षा करना परमाबद्यक होता है। घर के आंगन की गोबर से लीप कर उसमें बनाये हुए चबूतरे पर हाथ में तलवार लिए बालकों की सूर्ति बनाये, जो काष्ठ के टुकड़े द्वारा स्पर्श करते हुए हास्य गीतों द्वारा बालकों की रक्षा करते हैं। उन्हें गुडं पक्वान से सुसम्मानित करना चाहिए। ऐसा करने से द्वैष्ठा राक्षसी जनित समस्त पीड़ा शान्त हो जाती है। इसलिए उस दिन सायंकाल बालकों की अवश्य रक्षा करें। २९-३६

युधिष्ठिर बोले—देव ! माधव (चैत्र) मास के आरम्भ में प्रतिपदा के दिन प्रातः काल सुखेच्छुक पुरुषों को क्या करना चाहिए। ३६

श्रीकृष्ण बोले—पितरों और देवों के तर्पण तथा आवश्यक कार्य करने के उपरांत समस्त दुष्टों के शान्त्यर्थ होलिका विभूति की बन्दना पूर्वक गृह आङ्गण में शुभ अक्षतों द्वारा उत्तम वर्ण का एक चबूतरा बना कर उसके मध्य में एक पीठासन स्थापित करें, जो श्वेत वस्त्र के बिछौने से भूषित किया गया हो। उसके सामने पल्लव समेत पूर्ण कलश की स्थापना करें, जो, अक्षत, सुर्वा, श्वेत

साक्षतं सहिरण्यं च सितचन्दनचीर्चितम् । कलशस्य प्रतो देया उपानहवरांशुकाः ॥४०
 आत्मने चोपविष्टस्य ब्रह्मघोषेण भारत । चर्चयेच्चन्दनं^१ नारी अव्याङ्गंगा सुलक्षणा ॥४१
 पद्मरागोत्तरपटा श्रेष्ठांशुकविभूषिता । वसुधारां शिरोग्रे च दधिदूर्वाक्षतान्विताम् ॥४२
 'चर्चापियित्वा श्रीखण्डभायुरारोग्यवृद्धदे । पश्चाच्च प्राशयेद्विद्वांश्चूतपुष्यं सचन्दनम् ॥४३
 मनोभवन्यं सा पूजा श्रष्टिभिः सम्प्रदर्शिता ! ये पिबन्ति वसन्तादौ चूतपुष्यं सचन्दनम् ॥४४
 सत्यं हृदिस्थकामस्य तत्पूर्तिजयितेऽज्जसा । अनन्तरं द्विजेन्द्राणां सूतमःगधबन्दिनाम् ॥४५
 दद्यादानं यथा शक्त्यः कामो मे प्रीयतामिति । ततो भोजनवेलादां शृतं यत्प्राक्तनेऽहनि ॥४६
 प्राशनीयात्प्रथमं चाक्षं ततो भुञ्जीत कामतः । य एवं कुरुते पार्थ शास्त्रोक्तं फाल्गुनोत्सवम् ॥४७
 अनायासेन सिध्यन्ति तस्य जर्वे मनोरथाः । आधयो व्याधयश्चैव यान्ति नाशं न संशयः ॥४८
 पुत्रपौत्रसमायुक्तः सुखं तिष्ठति मानवः ॥४९

पुण्या पवित्रा जयदा सर्वविद्विनाशिनी । एषा ते कथिता पार्थं तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥५०

वृत्ते तुषागसमये सितपञ्चदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च ।
 सम्प्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन सत्यं हि पार्थं पुरुषः समुर्खः समाप्ते^२ ॥५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वदिग्नि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

फाल्गुनपूर्णिमोत्सवर्णं नाम द्वार्तिशदधिकशततमोऽध्यायः । १३२

चन्दन से चर्चित हो । भारत ! पश्चात् कलश के अग्रभाग में उपानह और सूक्ष्म वस्त्र रख कर एक सर्वलक्षण सम्पन्ना एवं परमसुन्दरी नारी आसन पर बैठे हुए उस पुष्प को ब्रह्म घोष पूर्वक चन्दन चर्चित करे । जो पद्मराग मणि जटित अथवा उसकी भाँति रत्नवट्ठों से विभूषित है । दधि, दूर्वा, अक्षत युक्त वसुंधरा शिर के अग्रभाग (मस्तक) से स्पर्श किये आयु और आरोग्य के वृद्धयर्थ श्रीखण्ड का वर्णयन करे । पश्चात् विद्वान् को आम मञ्जरी (बौर) चन्दन समेत पान करना चाहिए । क्योंकि कृष्णियों ने इसे कामदेव की पूजा बतायी है । उनका कहना है कि—वसन्त के आदि काल में चन्दन समेत आम के बौर पान करने वाले प्राणी के हृदिस्थ काम की निःसन्देह पूर्ति होती है । 'कामदेव' मुझ पर प्रसन्न हों कहते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों सूतमागध एवं बन्दी जनों को यथा शक्ति दान अर्पित करें । अनन्तर भोजन के समय पूर्व दिन का बना हुआ भोजन पहले कुछ खाकर पश्चात् यथेच्छ भोजन करे । पार्थ ! इस प्रकार फाल्गुन मास के इस शास्त्रीय उत्सव को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्यों के सभी मनोरथ अनायास सफल होते हैं । शारीरिक मानसिक पीड़ा निःसन्देह शान्त हो जाती है । पुत्र पौत्र समेत वह मानव सुखी जीवन व्यतीत करता है । पार्थ ! इस प्रकार पुण्य, पवित्र जय प्रद और समस्त विद्वानों को शांति करने वाली इस उत्तम तिथि (पूर्णिमा) का वर्णन मैंने तुम्हें सुना दिया । पार्थ ! शीतसमय (जोड़) के व्यतीत होते वसन्त के आदि काल (फाल्गुन) पूर्णिमा के दिन होली पूजन और उसके दूसरे दिन (प्रतिपदा) में चन्दन समेत आम के बौर का प्राशन करने वाला मनुष्य सदैव सुखी रहता है । १३७-५१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के संवाद में

फाल्गुन पूर्णिमा उत्सव वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त । १३२।

अथ त्रयस्त्रिशद्धिकशततमोऽध्यायः

आन्दोलकविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

संत्यज्यालिकुलालीद्गुसुमानि मृदून्यपि । दमनेते कथं लोके पूज्यन्ते नाकनायकाः ॥१
दोलान्दोलनमाहात्म्यं रथयात्रामहोत्त्वम् । कथदस्वामलं प्राज्ञ यादवान्भोजभास्कर ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थार्थिजनसदृक्ष क्षान्तिधाम धरापते । यदेतद्वद्वता पृष्ठं तच्छृणुष्व ददामि ते ॥३
पुरा सुराणामावासे मन्दरे चारुकन्दरे । गन्धाधारी कुलालीढो जातो दमनकस्त्वः ॥४
तस्य गन्धमनाद्येयमाद्याय सुर्योषितः । मदनोऽमादवशगा गायन्ति च हसन्ति च ॥५
ऋषयो नियमान्त्स्तक्त्वा प्राद्वन्त गृहान्प्रति । न वेदाध्ययने ध्याने रतिस्तेषां बभूव ह ॥६
अपराधाद्विघटिं यद्भूव प्रिये धरम् । माहसं मानिनीं तु पुनर्गन्धेन संधितम् ॥७
गन्धेनाकुलितं लोकं दृष्ट्वा ब्रह्मा तमब्रवीत् । शमनिर्मितया वाचा रोषात्प्रस्फुरिताधरः ॥८

ब्रह्मोवाच

जातस्त्वं लोकदमनान्नूनं दमनको मया । जगद्वा धूर्णसे कस्मात्कर्म नैतत्वोचितम् ॥९

अध्याय १३३

हिंडोला झूलने की विधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यादवकुल कमलभास्कर ! प्राज्ञ ! ऐसे कोमल पुष्पों को त्यागकर जिसके रसास्वादन के लिए ऋमरवृन्द सदैव लालायित रहता है, मानवगण स्वर्व नायक की अर्चा दमन (दौना) पुष्पद्वारा क्यों करते हैं? तथा हिंडोला झूलने का माहात्म्य और रथयात्रा महोत्सव बताने की कृपा करें। १-२

श्रीकृष्ण बोले—याचकों के सद् (कल्प) वृक्ष, क्षांति धाम, एवं धरापते पार्थ ! आपने जो कुछ पूँछा है, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! पहले समय में मन्दराचल के उस प्राचीन एवं रमणीक गुफा में उस दमनक (दौना) नामक वृक्ष की उत्पत्ति हुई है, जो गन्धाधारी ऋमरवृन्दों के रसास्वादन का सर्व प्रमुख स्थान रहा है। उसके अनुपम गंध के सूधने पर देवताओं की ललनाएँ कामोन्मत्त होकर गाने और हँसने लगी। ऋषि लोग अपने नियमों को त्याग कर शीघ्रता से अपने घरों की ओर दौड़ने लगे। उन लोगों की रुचि न वेदों के अध्ययन में रही और न (इष्ट देव के) ध्यान में ही। मानिनी स्त्रियों के चित्त, जो अपराध के कारण अपने प्रिय पति से सर्वथा के लिए पुरुषक हो गया था, उस गंध द्वारा पुनः (पति का प्रेम) प्राप्त करने के लिए हो गया। उस गंध द्वारा समस्त लोक को आकुल देखकर ब्रह्मा ने यद्यपि रोषावेश में उनके होठ फड़क रहे थे। तथापि शान्ति पूर्वक कहा—३-८

ब्रह्मा बोले—लोकों के दमन करने के नाते तुम मेरे द्वारा निश्चित दमनक (दमन करने वाला) ही

यत्संतस्त्वद्गुमन्यन्ते सर्वातिशयवर्जितम् । तत्सेवेत नरः कर्म गत्रोद्वेगो न धीमताम् ॥१०
एकस्याप्यपकारं यः करोति स नराधमः । बहूनामपकाराय सम्प्रवृत्तः किमुच्यते ॥११
दृष्टार्थबाधकं कर्म न कर्तव्यं कथञ्चन । अदृष्टं प्रति सन्देहः सोऽस्माभिरनुभीयते ॥१२
ततः स्वयं प्रभजति दैवे पित्र्ये च कर्मणि । भोगार्थं च त्रिभुवननिरादेयो भविष्यति ॥१३

दमनक उवाच

पुरुषादेवमारब्धं न क्रोधान्नार्थकार्गत् । स्वभाव एष मे ब्रह्मनस्त्वया सृष्टः पुरा विभो ॥१४
या यस्य जन्तोः प्रकृतिः शुभा वा यदि वेतरा । स तस्यामेव रमते दुष्कृते सुकृते तथः ॥१५
तत्स्वभावप्रवृत्ततस्य यदि शापस्त्वया मम । प्रदत्तः किं करोम्येतत्र कृत्यमपराध्यति ॥१६
युक्तियुक्तं वचः क्षुत्वा दम्नेन समीरितम् । प्रीतात्मा पद्मजः प्राह् करोमि तव सत्प्रियम् ॥१७
वसन्ते सहकारोत्थमञ्जरीपिञ्जरे जने ! पुष्पिताशोकशोभाङ्गे वने पुंस्कोकिलाकुले ॥१८
तस्मिन्काले सुरेशानां शिरांस्याकम्य लीलया । स्थान्यसि त्वं दिनं चैकं यद्यस्य विहितं हितम् ॥१९
ये त्वामारोपयिष्यन्ति दानमानुपुरस्सराः । सुराणां ते भविष्यन्ति सदैव सुखिनो नराः ॥२०
सर्वदैव शिवस्येष्टा पुण्या पापभयापहा । प्रसिद्धं यात्यति मधौ दमनाख्या चतुर्दशी ॥२१

उत्पन्न हुए । किस हेतु सारे संसार को पीड़ित कर रहे हो, ऐसा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है । सज्जन उसी का आदर करते हैं, जो सर्व श्रेष्ठता से शून्य होकर साधारण मनुष्यों के सेदन करने योग्य हो और जिसके कार्य से विद्वानों को किसी प्रकार की आकुलता न उत्पन्न हो । क्योंकि एक भी अपकार करने वाला मनुष्य नराधम कहलाता है और जो बहुतों के अपकारार्थ प्रदत्त है उसे क्या कहा जा सकता है । इसलिए देखते हुए भी अर्थ बाधक कर्म कभी न करना चाहिए और उसी प्रकार अदृष्ट के प्रति संदेह भी क्योंकि वह उसी रूप में हमें भी मान्य है । अतः तुम्हारा आज से स्वयं उत्पन्न होकर देव पितृ कार्यों में और भोगों के उपभोग करने में तुम्हारा सदैव निरादर होता रहेगा ॥१९-२३

दमनक (दौनवृक्ष) ने कहा—द्रह्मन् ! मैंने अपने पुरुषार्थ वश ऐसा किया है, न कि क्रोध और अर्थ के कारण । क्योंकि पहले समय में आप ने मेरा ऐसा स्वभाव ही बनाया था । जिस जीव की शुभ अणुभ जैसी प्रकृति होती है, भले, बुरे कार्यों में वह सदैव उसे ही अपनाता है । इसलिए अपने स्वभावानुसार ऐसा कार्यों में प्रवृत्त होने पर मुझे आप ने यदि शाप दे ही दिया तो मैं क्या करूँ, इसमें मेरे अपराध नहीं है । दमनक की युक्तियुक्त बातें सुनकर कमल-जाय मान ब्रह्मा ने कहा—मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हारा एक अत्यन्त प्रिय कार्य करने जा रहा हूँ । वसन्त के समय आम के मञ्जरीं (बौर) वृन्दों से भूषित होने तथा जङ्गलों में फूले हुए अशोक की समृद्ध शोभा विस्तारित होने के समय, जब कि हर्षोन्मत्त कोकिल की मधुर ध्वनि में वह वन आकुल सा हो रहा हो । उसी एक दिन देवों के शिरस्थान पर बैठकर जिसका जैसा हित एवं अभिलाषा हो, सुसम्पन्न करना । देवों के शिरस्थान पर दान मान पूर्वक तुम्हें बैठाने वाले मनुष्य सदैव सुखी रहेंगे । वसन्त समय में (चैत्र की) यह दमन चतुर्दशी के नाम से स्वाति प्राप्ति पूर्वक पुण्य स्वरूपा, पाप और भय के अपहरण करती हुई देवेश शिव की अत्यन्त प्रिय होगी । इतना कहकर ब्रह्मा चले गये और दमनक मन्दराचल पर निखिल भुवनों को अपने गंध द्वारा सुवासित

एवमुक्त्वा ययौ भ्रह्मा दमनो मन्त्रे गिरौः । उवास वासिताशेषभूवनो गन्धसम्पदा ॥२२

दिव्ये गिरौ गिरिसु तादयिताधिवासे रत्नांशुकच्छुरितकाञ्चनभूमिभागे ।

शापं चरं च हृदये विनिवेश्य शम्भोस्तत्रान्स्थितो दमनको दमितान्तरत्मा ॥२३

श्रीकृष्ण उवाच

धर्मराज निबोदेदमान्दोलकमहोत्सवम् । प्रवृत्तनरनारीक पञ्चमोच्चारसुन्दरम् ॥२४
 सानन्दं नन्दनवने आर्द्धा तहिते यथा । विस्मयस्मेरनयनो भ्रभासोद्वान्तसौरभः ॥२५
 उन्मादयन्वने पुण्ये विद्याधरगणान्बहून् । वसन्तर्त्तौ नृत्यमानान्सुरासुरशतार्चितः ॥२६
 सन्तानपारिजातोत्थां बद्धा स माधवीलताम् । कश्चिद्दान्दोलनं चक्रे समाद्विंग्य घनस्तनीम् ॥२७
 गीतमान्दोलकारुदस्तद्गायन्त्यमरस्त्रियः । ऐन चोत्पादयन्ति स्म सन्मथस्यापि मन्मथम् ॥२८
 तं दृष्ट्वाष्टापदनिभा भवान्नी प्राह शङ्करम् । कौदुकं मे समुत्पन्नं पश्येमाः शंकर प्रभो ॥२९
 आन्दोलकं मम कृते कारयस्व स्वलंकृतम् । त्वयासहान्दोलयेयं यथा चैते त्रिलोचनः ॥३०
 तद्गौरीवचनं रस्यं श्रुत्वा गोवृषभध्वजः । सदोलां कारयामात समाहृय महासुरान् ॥३१
 स्तम्भद्वयं रोपयित्वा इष्टापूर्तमयं दृढम् । सत्यं चैवोपरितं श्रेष्ठकाष्ठमकल्पयत् ॥३२
 वासुकी दण्डकस्थाने बद्ध्वा तान्तवसप्रभम् । तत्कणामन्तरापीठं कृतवान्मणिमण्डितम्^१ ॥३३

करने लगा । इस प्रकार उस दिव्य पर्वत पर जिस पर पार्वती जी का निवास और रत्न रूपी उत्तरीय (दुपट्टा आदि) वस्त्रों की चञ्चल प्रभा द्वारा काञ्चन मय भूमि भाग है, रहते हुए उस दमनके जिसके हृदय का शाप प्रदान द्वारा किया गया है, भगवान् शिव के चरण में चर और शाप दोनों अर्पित कर दिया । १४-२३

श्रीकृष्ण बोले—धर्मराज ! मैं उस हिंडोला महोत्सव को, जो स्त्री पुरुषों द्वारा प्रारब्ध और उनके पञ्चम स्वर से अत्यन्त मनोहर होकर नन्दन वन में आर्द्ध के साथ आनन्द लूटने की भाँति आश्चर्य चकित नेत्रों से देखते हुए दमन की भाँति सुगन्धों को बिखेरते हुए चारों ओर धूमता रहता है, बता रहा हूँ, सुनो ! उस वसन्त ऋतु में वह अधिकांश विद्याधर गणों को उन्मत्त करते और सैकड़ों देवों एवं राक्षसों को नचाते हुए उनके द्वारा पूरित होता है । कल्प वृक्ष की शाखा में माधवी लता से आबद्ध उस हिंडोले पर बैठ कर किसी ने कठोर एवं सघन स्तन वाली अपनी स्त्री के आलिंगन पूर्वक हिंडोला झूलना शुरू कर दिया । अनन्तर उस पर बैठी हुई देव ललनाएँ इस भाँति का गीत गाना आरम्भ किया जिसे सुनने पर कामदेव के हृदय में भी काम की उत्पत्ति हो जाती थी । उसे देखकर काञ्चन वर्णा पार्वती जी ने शंकर जी से कहा—प्रभो शङ्कर ! इन स्त्रियों को देखो ! इन्हें देखकर मुझे भी इसका महान् कौदूहल उत्पन्न हो गया है अतः मेरे लिए भी एक सुसज्जित हिंडोला बनाने की कृपा करें । त्रिलोचन ! इन स्त्रियों की भाँति मैं भी आप के साथ हिंडोला झूलना चाहती हूँ । २४-३० । गौरी की ऐसी बातें सुनकर गोवृषध्वजा वाले शिव जी ने देवों को बुलाकर एक सुन्दर हिंडोला बनवाया और इंटे की भाँति दृढ़ दो स्तम्भों की आधार पर सत्य का विस्तृत काष्ठ और वासुकी को रस्ती बनाकर दण्डक के स्थान पर बाँध दिया तथा उनके फणों के उस हिंडोले को

१. आलोचनम् । २. मणिगौक्तिकम् ।

कृमिकार्पात्सकौशेयवस्त्रैः सम्बोधितं नवैः । मन्दामालम्बितप्रान्तमणिमौक्तिकशेखरम् ॥३४
 रचयित्वा विचित्रां तां दोलां दैलाजिनोत्तराम् । भ सिद्धां सिद्धगुरवे गौरवेण न्यवेदयत् ॥३५
 तत्राहृष्टस्तु यावत्स सौम्यरामविभूषणः । सन्दरं दोलयानास पार्वत्यस्थैः पार्षदैः गह ॥३६
 वामपार्श्वे तु विजया दक्षिणेन जया भवेत् । चामराङ्गान्तजाहू ते तेनाशिलष्टे न्यवीजताम् ॥३७
 आल्लोलयन्त्या पार्वत्या सहितं स गदाक्षरम् । येन देवासुरलैणमासीदानन्दनिर्भरम् ॥३८
 जुगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चास्तरोगणाः । उच्छलत्तालवाद्यानि वादयन्ति स्म चारणाः ॥३९
 चेलुः कुलाचलाः सर्वे चुक्षुभुः सप्त सागराः । तदुर्दर्ताः सनिर्धाता देवे दोलां समास्थिते ॥४०
 आलोक्य व्याकुलं लोकं देवाः शक्पुरोगमाः । उपेत्य प्रणिपत्योचुः सर्वपापहरं परम् ॥४१
 उपारमस्व भगवन्भवतः क्रीडयानया । जगद्व्यापाद्यते देवे चलितः सागरश्च धत् ॥४२
 गीर्वाणगीर्विः संहृष्टः शङ्करो लोकशङ्करः । समुत्पात दोलातः प्रहर्षोत्कुललोचनः ॥४३
 उवाच वचनं पार्थ सुरसाथेष्य पश्यतः । सानुकम्पं सुललितं विस्फुटार्थपदाक्षरम् ॥४४

श्रीमहादेव उवाच

अद्य प्रभृति ये दोलाक्षीडां पुष्करिणीतटे । वसन्ते कारविष्वन्ति मण्डिते त्रिदशाङ्गे ॥४५

स्थापित किया, जो मणियों और मोतियों से अलंकृत, नवीन सूती और रेशमी वस्त्रों से आच्छन्न, उसका दोनों प्रान्त भाग रस्सियों की भाँति लम्बी मालाओं से सुशोभित एवं ऊपर शिखर भाग मणियों मोतियों से सुसज्जित था । मृगचर्म से अलंकृत उस अनोखे हिंडोले को देवों ने जो एक परम सिद्धि की भाँति था, सिद्ध गुरु भगवान् शिव को सादर समर्पित किया । सौम्य सूर्ति चन्दमा से अलंकृत भगवान् शिव अपने पार्षदों समेत ज्योही उस पर सुखासीन हुए त्योही वह झूलना आरम्भ हो गया । (पार्वती और शिव के) वास भाग में विजया तथा दक्षिण भाग में जया दोनों हाथों में चामर लिए उनकी सेवा करने लगी । देवों और असुरों के जनक भगवान् शिव पार्वती के साथ झूलते हुए उस हिंडोले में अत्यन्त आनन्द विभोर हो गये—उनके सम्मुख प्रमुख गन्धर्व गण गान कर रहे थे, अपसराएँ नाच रही थी, चरण वृन्द वादों के ताल स्वरों के निमग्न हो रहे थे । इस भाँति भगवान् शिव के हिंडोले में सुखासीन होकर झूलते समय समस्त पर्वत गण हिलने लगे, समुद्र में लहरों के टकराने से उफान आ गया और वायु आकाश में अपनी लहरों में टकरा कर नीचे पृथिवी में आया और प्रचण्ड वेग से चलने लगा । इस प्रकार लोक को आकुल देखकर इन्द्र को आगे किये समस्त देव वृन्द निखिल पापहारी भगवान् शिव के सम्मुख खड़े होकर नमस्कार पूर्वक विनम्र याचना करने लगे—भगवन् इस आप की क्रीडा द्वारा सागर में उफान झेलने के कारण समस्त संसार प्राण शून्य हो रहा है अत इसके विराग करने की कृपा करें । देवों की गीर्वाण वाणी (संस्कृत भाषा) द्वारा स्तुति करने पर प्रसन्न होकर लोक के कल्याणकर्ता भगवान् शंकर ने अपने विकसित नेत्रों द्वारा अपार हर्ष सूचित करते हुए उस हिंडोले से उतर पड़े । पार्थ ! देवों के हित को ध्यान में रखकर भी महादेव जी ने उन लोगों से अनुग्रह पूर्ण, सुसलित एवं अत्यन्त स्फुट अर्थों वाले शब्दों में कहा—३१-४४

श्रीमहादेव बोले—आज से पुष्करिणी (कमल भूषित जलाशय) के तट पर सुसज्जित देवालयों के

नेत्रपट्टापठच्छनां पद्मरागाविभूषिताम् । आतपत्रेजं संयुक्तां विन्यस्तकनकाण्डकम् ॥४६
 विचित्राभरणाभिराभासितदिग्न्तराम् । तारकाशान्तचित्राङ्गुष्ठमालामनोरमाम् ॥४७
 मालां विद्याधराक्रान्तां प्रान्तरोपितदर्शेणाम् । छत्रचामरसंछन्नां यथा शक्त्याव्यलंकृताम् ॥४८
 अग्निकार्यं ततः कृत्वा क्षित्वा चैव दिशा बलिम् ! तस्यामारोपयेदेवमिष्टहृष्टजनावृतः ॥४९
 भूलमन्त्रेण देदानां प्रोक्तं द्वोलाधिरोहणम् । पार्श्वस्थो ब्राह्मणो विद्वान्पठेद् । मन्त्रमुत्तमम् ॥५०
 गम्भोरान्तरनिर्घोर्वैर्ललनानां च निस्वद्दैः । स्तुतिमङ्गलशब्दैश्च पुष्टधूपाधिवासिताम् ॥५१
 एतस्मिन्नन्तरे नारीं दोहनाय निकुट्काम् । प्रवेशयेत्कुमुडाच्यां क्रीडावर्णप्रियैः सह ॥५२
 सुवर्णशृंगिणा प्रोक्तं स्मितदन्तांशुकर्बुरम् । लगमानं जलं चांगे कस्य न स्यातुखप्रदम् ॥५३
 जलसंक्षिप्तन्नवसनो रशनादाममण्डितः । कम्बुग्रीवोल्लसन्सर्वे धूमूव गणिकागणः ॥५४
 कुंकुमस्खोदताम्बूलपुष्टमालाकुलो जनः । तां द्विहाय जलक्रीडां नान्यस्यां विदधे मनः ॥५५
 पीतशीतजलाधाताताडितोऽपि जनः सुखम् । शन्यते नियतः कोऽपि प्रभातोऽयमनंगजः ॥५६
 एवं ये तु गमिष्यन्ति नरा वर्त्मतया गतम् । नीरुजस्ते भविष्यन्ति सुखिताः शरदां शतम् ॥५७
 पुत्रपौत्रसमायुक्ताः धनधान्यसमायुताः । विहृत्य सुखसम्पत्तौ ततो यास्यन्ति मत्पुरम् ॥५८

प्राञ्जन में हिंडोला का झूला, जो सूक्ष्म वस्त्रों से आच्छन्न, पद्मरागमणि से अलंकृत छत्रयुक्त, सुवर्ण के दण्डों से सुसज्जित उसके विचित्र आभूषणों की चञ्चल प्रभा से भासित दिग्न्तर, ताराओं के शांत प्रदर्शन होने वाली रक्त वर्ण की मनोरथ पुष्ट मालाओं से भूषित और मालाओं में विद्याधरों की सुसज्जित मूर्ति, हिंडोला के प्रान्त भागों में दर्पण तथा छत्र चामर से विभूषित होने पर भी उसे अलंकृत करना चाहिए। अनन्तर हवन और दिक्षपालों आदि की बलि प्रदान करके इष्ट मित्रों आदि समेत हिंडोला पर बैठने वाले देवमंत्रों के उच्चारण पूर्वक देव को उस पर सुखारीन करे। उस समय उनके पार्श्व भाग में ब्राह्मणों द्वारा वेद पाठ, वादों के गम्भीर निर्घोष, ललनाओं के मनोहर गाने और स्तुतियों के मङ्गल शब्द होने चाहिए तथा पुष्ट धूप से उसे अधिवासित करने के अनन्तर उस स्थान पर क्रीडा करने वाली पुरुष मूर्ति समेत स्त्रियाँ (सखियों) की मूर्ति सजाये जो कुंकुम से मण्डित हों। सुवर्ण शृंगी ने बताया है कि उस समय (स्त्री के) मन्द मुस्कान में दाँत में लगे हुए सुवर्ण की चमक और उनके अंगों के जल (स्वेद) किस को सुख प्रद नहीं होते। वहाँ सभी वेश्याओं को जल से भीगा वस्त्र, (कटि में) रशना (करधनी) आभूषण रूप रस्ती से भूषित होते हुए कम्बुग्रीवा (शंख के समान सुन्दर कण्ठ) से सुशोभित होना चाहिए। ४५-४८। कुंकुम, अक्षोद, ताम्बूल एवं पुष्टमाला से भूषित होने पर मनुष्य का जल क्रीडा के अतिरिक्त किसी भी विषय में मन लगेगा नहीं। क्योंकि पीत शीत जल के आधात को भी मनुष्य सुख ही मानता है इसलिए यह काम देव का एक नियत प्रभाव ही है। इस भाँति इस परम्परा मार्ग से चलने वाले मनुष्य आरोग्य पूर्वक सैकड़ों वर्ष सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। पश्चात् पुत्र पौत्र समेत धन धान्य और सुख सम्पत्ति के अनुभव के उपरांत मेरी पुरी प्राप्त करता है। ४५-४८। इस प्रकार वसंत के समय देवों के लिए

प्राप्ते वसन्तसमये सुरसत्तमानामान्दोलनं सुरवराननुकुर्वते ये ।
ते प्राप्नुवन्ति भुवि जन्मतरोः फलानि दुःखार्थवात्कुलशतान्यपि तत्त्वयन्ति ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
आन्दोलकविधिवर्णनं नाम ऋयस्त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः । १३३

अथ चतुर्स्त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः

दमनकान्दोलकरथयात्रामहोत्सववर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

रथयात्राविधानं ते कथयामि युधिष्ठिर । स्त्यरो भूत्वा निबोधेदं त्वं हि मूर्तविदां वरः ॥१
चैत्रे व्रिनेत्रसम्भूतमलयात्यमहागिरौ । प्रवहत्पवनध्वानप्रेखोलितलदाचये ॥२
एतस्मिन्नेव काले तु भ्रममाणो यदृच्छदा । नारदः शारदाकान्ताच्छिवलोके समाययौ ॥३
दृष्ट्वापूर्वं शिवं शान्तं सुरेशौ सर्वतो वृतम् । प्रगम्योपाविशद्वित्रः पुरतः केशवेशयोः ॥४
तमुपासीनमालक्ष्य भगवान्भगवेत्रहा । पप्रच्छाच्छादितमनाः कुतश्चागम्यते पुनः ॥५

श्रीनारद उवाच

शिव कामं च तं विद्धि दाधं मा दिबुधोत्तम । वसन्तो नाम कोऽप्येष कामस्य दयितः सखा ॥६
मलयानिलयुक्तेन तेन विश्वं वशीकृतम् । सहकारकरीन्द्रस्थं कृत्वा कोकिलडिपिण्डमम् ॥७

सौन्दर्यपूर्ण एवं सुसज्जित हिंडोले को अर्पित करने वाले मनुष्य इस भूतल में अपने जन्म सफल करते हुए संसार दुःख सागर से अपने सैकड़ों पीढ़ियों का उद्धार करते हैं । ५९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में आन्दोलक (हिंडोला) विधि वर्णन नामक एक सौ तैतीसवाँ अध्याय समाप्त । १३३।

अध्याय १३४

दमनकान्दोलक रथयात्रा का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! तुम्हीं सब में थ्रेष्ठ हो, अतः मैं तुम्हें रथयात्रा विधान बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! चैत्रमास में शिवजनित उस मलयाचल नामक महापर्वत पर रहने वाली सभी लताएँ प्रवाहित पवन के मनोहर शब्द सुनकर पुलकित हो उठी थी । उसी समय शारदाकान्त विष्णु के लोक से घूमते हुए नारद ने शिव लोक में आगमन किया । वहाँ शिव जी को अपूर्व शांत एवं देवों से घिरे हुए देखकर प्रणाम करते हुए नारद विष्णु और शिव के सम्मुख बैठ गये । उन्हें बैठे देखकर भगवेत्रहा भगवान् शिव ने कुछ अनमने भाव से पूँछा—कहाँ से आगमन हो रहा है । १-५

श्रीनारद ने कहा—बिबुधोत्तम (देव थ्रेष्ठ, शिव ! आप काम को भस्मसात् हुआ न समझे । क्योंकि काम के परममित्र इस वसन्त ने मलय मारुत की सहायता से सम्पूर्ण विश्व अपने अधीन कर लिया

घोषणामात्र विजयं मन्मथस्य पुरेषुरे । शशाङ्कशेखरः कोऽयं कोऽयं शङ्कगदाधरः ॥८
 कोऽयं च छिन्नो वा ब्रह्मा कामद्विजगतां प्रभुः । प्रायः क्लीडारतिलोको वसन्तवचनात्युनः ॥९
 ऊर्ध्वबाहुस्तु नर्नाति तालदत्तपदक्षमः । व्यवसायं न गच्छन्ति ये संहृत्य वनान्तरम् ॥१०
 गायन्तश्च परीहृष्टास्ते चाप्यायान्ति यान्ति च । गोप्यसीमान्तरयतः क्षेत्रस्थानस्य रक्षिणः ॥११
 तेऽपि गायन्ति नृत्यन्ति हसन्ति स्मरतारकाः । करस्य ताडनेत्यर्थं मुख्यो धुर्धरायते ॥१२
 विटं पश्यन्ति कुलटाः प्रारब्धोचितपण्डिताः । सुमन्तरांसि सुसङ्गीतनृत्यवाच्यसुवादितम् ॥१३
 एवमेतत्तिवलोकेऽस्मिन्निति व्यवसितो जनः । ललल्लम्बस्तनर्न दृष्टा जरायोषापि नृत्याति ॥१४
 वसन्तस्य प्रभावोऽयं कोऽप्यपूर्वो विजृंभते । त्तरांस्त्वद्भुतपद्मानि प्रपुल्लाः पुष्पवाटिकाः ॥१५
 बृक्षाः पक्षिशताकीर्णा विजिग्राणमुखाः नुराः । विकम्पयसनावातः पवनस्त्रिगुणात्मकः ॥१६
 कृतः प्रत्यक्षसुमहान्वसन्तो न जगत्त्रये । अवजल्यमुखा चाला वृद्धास्तु विकलद्विजाः ॥१७
 उभावपि प्रतप्येते पश्येदं कामचेष्टितम् । पक्षिणां पक्षनिक्षेपैर्नद्यस्तुगतरंगकैः ॥१८
 पादपाः पल्लवगत्तैनृत्यन्ते च प्रहर्षणः । एतन्दृत्वा तु वचनं नारदस्येन्दुशेखरः ॥१९

है । आम रूपी गजराजों के ऊपर कोकिल डिडिभ (डिढोरा) द्वारा प्रत्येक नगरों आदि में घोषणा कराया कि—सर्वत्र कामदेव की ही विजय हुई है—अतः शशांकशेखर (शिव) और शंखगदाधारी विष्णु एवं बालकरूप ब्रह्मा नगरण के समान हैं तथा ये कौन हैं कहाँ रहते हैं इसकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि तीनों लोकों का आधिपत्य कामदेव को ही प्राप्त है । पुनः वसन्त के आदेश से आप समस्त लोक क्लीडा रति में ही निमग्न हो रहा है—सभी लोग भुजाओं के ऊपर उठाकर हथेली के ताल बजाने के अनुसार पैर उठाते हुए नाच रहे हैं, जो कभी दुछ उद्यम नहीं करते थे वे भी गाने में हर्ष निमग्न रहकर (चने के भीतर) आते जाते हैं, खेतों के खखारे लोग भी, जो सदैव उसी खेतों में ही उसके रक्षणार्थ रहते थे, काम विवश होकर हँसते हुए नाच गान करते हैं । हथेली के द्वारा ताडित होने पर घुरघुर गर्जन कर रहा है । आरम्भिक कार्यों में उचित निपुणता प्राप्त करने वाली कुलटायें नाचगान करने वाले कामी जनों को ही देख रही हैं, जो प्रसन्नचित, उत्तम संगीत, और अपने नाच गान से लोगों को मुग्ध करता हो । इसी प्रकार तीनों लोकों में राधी लोग अत्यन्त कामासक्त हो रहे हैं । लम्बे स्तनों वाली स्त्रियोंको हाव भाव पूर्ण कामासक्त देखकर वृद्धाएँ भी नाच रही हैं । इस प्रकार वसन्त का यह एक अपूर्व प्रभाव प्रसारित हो रहा है । सरोवरों के कमल विकसित होकर एक अनूठापन दिखा रहे हैं, वाटिकाएँ फूलों से अत्यन्त मनोहर हो रही हैं । ६-१५। वृक्ष सैकड़ों पक्षियों से भूषित होकर मनोरञ्जन कर रहे हैं, देवगण ऊपर मुख किए किसी उत्तम सुगन्धि की खोज में दिखायी दे रहे हैं । तीनों गुण सम्पन्न (मंद, सुगन्ध और शीतल) वायु चारों ओर प्रवाहित हो रहा है । इस प्रकार इस वसन्त ने तीनों लोक में एक महान् (उपद्रव) सामने खड़ा कर दिया है—युवतियाँ (अत्यन्त काम पीड़ित होने के नाते) मौन हैं—बालक गण भी उसी भाँति मौन हैं, और वृद्ध जन विकल हो रहे हैं इसलिए काम की करतूतों से दोनों ही संतप्त हो रहे हैं । पक्षिगण अपने पंखों के फड़ फड़ाने, नदियों में ऊँची-ऊँची तरङ्गों के उठने और वृक्षों में अनेक नवीन पल्लवों की हरियाली द्वारा उनमें अत्यन्त आनन्द विभोर की नाच दिखायी देती है । नारद की ऐसी बातें सुनकर

कौतुकाकुलितः शीघ्रमारुरोह रथं स्वकम् । त्थेन काञ्चनाङ्गेन पतत्रिवरकेतनः ॥२०
 प्रययौ पुण्डरीकाक्षः शङ्खचक्रगदाधरः । पारादतप्रतीकासं चतुर्वेदमयं रथम् ॥२१
 आस्याय प्रययौ हृष्टो ब्रह्मा ब्राह्मणसंस्तुतः । मुनिभिश्चाप्सरोभिश्च यक्षरक्षोमहोरगैः ॥२२
 द्वृतो रथेन प्रययौ भृस्करो वर्तिरितस्करः । शैलजोरुपताकेन रथेनादित्यवर्द्दसा ॥२३
 कात्यायनी प्रचलितः पञ्चवक्त्रेण केतुना । लम्बोदरः करशतगृहतीकनकोत्पलः ॥२४
 प्रयातः स्वरत्तारुडः कृतर्कण्डुलाकुलः । एवं देवः परिवृतो भगवान्नोवृष्टध्वजः ॥२५
 रथारुडैरमूडात्मा मर्गलोकमवातरत् । यावत्पश्यति देवेशस्तावत्सर्वं तदक्षरम् ॥२६
 नारदेन यथैवोक्तस्तादत्सर्वं तदक्षरम् । नारदेन यथैवोक्तं जगदानन्दनिर्भरम् ॥२७
 देवैः साद्वं पशुपतिर्यावित्पश्यति विस्मितः । तावत्सर्वैव हि गणाः परब्रह्मसमञ्जसम् ॥२८
 गायन्ति केचित्सोत्कण्ठं लुठन्त्यन्ये प्रहृषिताः । वादयन्त्यपरे दुष्टा जहसुः केचिदुल्बणम् ॥२९
 वादयन्त्यन्यथा याद्य गायन्त्यन्यथा गणाः । अन्येन्यथा प्रनृत्यन्ति चित्रं दैत्रस्य चेष्टितम् ॥३०
 नीलोत्पलाभनयन्नर्विलसत्प्रान्ततारकः । क्रीडारतिभिरारब्धमालापैश्च सुरैरपि ॥३१
 सुराणां क्षोभमालक्ष्य भगवान्नोवृष्टध्वजः । चिन्तयामास सुमहान्कार्ययोगो ह्यपस्थितः ॥३२

चन्द्रशेखर (शिव) अत्यन्त कौतुकुवश अपने रथ पर बैठकर कमलनेत्र एवं शंख, चक्र एवं गदाधारी भगवान् विष्णु के साथ जो पक्षिराज गरुडरूप ध्वज वाले वाहन अपने काञ्चनमय रथ पर सुशोभित थे, चल दिये । कदूतर की भाँति सौन्दर्य पूर्ण उस चतुर्वेदमय रथ पर बैठे एवं ब्राह्मणों संस्तुत होते हुए ब्रह्मा ने हर्ष निमग्न होकर यात्रा की । मुनियों, अप्सराओं, यक्ष, राक्षस और महान् सर्पों से आवृत होने वाले जल तस्कर भास्कर देव ने अपने रथ पर बैठकर यात्रा की । आदित्य के समान तेजोमय और विशाल पताका से भूषित उस अपने रथ पर बैठकर पार्वती पाँच मुख वाले ध्वज से भूषित रथ पर बैठी हुई कात्यायनी और सैंकड़ों सुवर्ण कमल हाथों में लिए लम्बोदर ने अपने रथ पर बैठे उसकी ध्वनि द्वारा (सभी के) कानों को आकुल करते प्रस्थान किया । इस प्रकार देवों से घिरे गोवृष्टध्वज वाले भगवान् शंकर ने और अन्य रथारुड देवाधीश्वरों समेत इस मर्त्य लोक में पहुँच कर चारों ओर देवातो उन देव नायक को नारद की कही हुई सभी बातें अक्षरणः सत्य हुयीं एवं अक्षुण्ण (घटनाओं का) दर्शन हुआ । १६-२६। नारद ने जैसा कहा था कि सम्पूर्ण जगत् आनन्द विभोर हो रहा है, देवों समेत भगवान् पशुपति (शकर) आश्र्य चकित होकर उसे देख रहे थे कि उसी समय उनके गण भी उसे परब्रह्म के आनन्द का सामञ्जस्य करते हुए उसी में तन्मय हो गये । कोई उत्कण्ठित हो कर गान कर रहा था, कोई आनन्द विभोर होकर लोट रहा था, कोई वाद्य वादन कर रहा था और अन्य कुछ लोग अट्टहास कर रहे थे । वसन्त से प्रभावित होकर वे सभी गण विपरीत ढंग से ही गाना, बजाना और नांच कर रहे थे । देवगण भी अपने नील कमल की भाँति अपने सौन्दर्य पूर्ण नेत्रों द्वारा जिसमें कनीनिका तारा अपनी चञ्चलता से उनके हाव भाव प्रकट कर रही थी, संकेत करते हुए संगीत और क्रीडारति में निमग्न हो गये । २७-३१। इस प्रकार देवों को भी उसमें आसक्त देख कर भगवान् गोवृष्ट ध्वज (शिव) चिन्तित होकर निश्चय करने लगे कि मेरे लिए यह एक

अनर्थमुत्थितं तद्वत्तद्विधाताय ये जनाः । नयन्ते येऽतिमूर्खत्वादापदोऽभिभवन्ति तान् ॥३३
 वसन्तः स्वाभिभक्त्वान्मान्यपृष्ठाकरं यदा । उन्मादादधजनो रक्ष्यः कार्यं कार्यद्वयं भम् ॥३४
 संचिंत्यैवं समानाय्य वसन्तं प्राह शङ्कूरः । समानीते मासमेकं स्थातव्यं भवता त्विह ॥३५
 सितपक्षः सहायेऽयं सर्वभूतसुखप्रदः । भवत्यतिमहानन्दो विशेषेण दिवौकसाम् ॥३६
 यो यदा रथमालृढः समायातः समीक्षितुम् । वर्षेवर्षे स तेनैव संस्थानेनागमिष्यति ॥३७
 कारयिष्यन्ति ये मर्त्यर्थं रथयात्रामहोत्सवम् । ते दिव्यभोगानोक्तारो भद्रिष्यन्ति निरामयाः ॥३८
 एवमाभाष्य भगवान्वसन्तं च ततः मुरैः । संस्तुतोऽथ नतश्चापि स्वस्थात्मगमत्ततः ॥३९

युधिष्ठिर उवाच

रथः किमात्मकः कार्यः कार्या यात्रा कथं भवेत् । आरोपेत्यकथं देवान् रथे च च जगत्पते ॥४०

श्रीकृष्ण उदाच

सुदिवित्रं चित्रतनुं श्रेष्ठकाष्ठमयं रथम् । सुदृढासं दृढाबन्धं सुचकरथकूबरम् ॥४१
 अथ वा चंशविहितं तेत्रपट्टरट्टावृतम् । तारकाशत्तचित्रांशं पुष्पमालासिवभूषितम् ॥४२
 सितगोयुगसंयुक्तं पञ्चबाणपताकिनम् । छत्रचामरशोभाद्वयं स्थापयेद्गवनःङ्गणे ॥४३

महान् कार्य उग्रस्थित हो गया है, क्योंकि इस प्रकार के महान् अनर्थ उत्पन्न होने पर उसके विघटन के लिए जो लोग तत्काल उसी का समर्थन करते हैं, उनकी उस अति मूर्खता के कारण आपदाएँ उन्हें निर्मल कर देती हैं। इसलिए मेरे समझ इस समय दो कार्य उपस्थित हैं स्वाभाविक होने के नाते वसन्त भी सुसम्मान्य एवं पुष्प समूहों से विभूषित रहे और इन उन्मादी जनों की रक्षा हो। इस भाँति निश्चित करने के उपरांत भगवान् शंकर जे सम्मान पूर्वक वसन्त को तुलाकर कहा—दृष्ण और शुक्ल पक्ष मिलाकर पूरे एक मास तक उम्हारी ऐसी ही स्थिति रहेगी। समस्त प्राणियों को सुखी करने वाला यह शुक्ल पक्ष उम्हारा सहायक होगा। इसमें विशेष कर देवों महान् को आनन्द प्राप्त होगा। इस समय इसमें जितने देवगण जिस भाँति के रथ पर बैठ कर यहाँ आये हैं, वे प्रतिवर्ष इसी प्रकार आकर इस उत्सव में सम्मिलित होते रहेंगे। इसलिए मर्त्य लोक निवासी जो इस रथयात्रा महोत्सव में सम्मिलित होंगे या स्वयं करेंगे वे नीरोग रहकर दिव्य भोगों के सदैव उपभोग करते रहेंगे। इस प्रकार वसन्त से कहने के अनन्तर भगवान् शंकर विनम्र देवों द्वारा संस्तुत होते हुए अपने स्थान चले गये। ३२-३९

युधिष्ठिर बोले—जगत्पते ! किस वस्तु का रथ होना चाहिए, यात्रा किस भाँति करनी चाहिए और उस पर देव को किस भाँति आसीन करे। आदि बातें मुझे बताने की कृपा करें। ४०

श्रीकृष्ण बोले—अत्यन्त विचित्र एवं मनोरम शरीर वाले वृक्ष का सौन्दर्य पूर्ण रथ का निर्माण कराना चाहिए जिसके अक्ष (धुरा के रहने वाला काष्ठ मूड़ी) स्थान स्थान का कील बन्धन अत्यन्त दृढ़ हो, सुन्दर चक्र (पहिये) और (धुरे के ऊपर रहने वाला लम्बा काष्ठ (हरसा), जो दृढ़ होने के लिए उस स्थान पर कुछ कूबड़ा सा रहता है। अथवा वास का सुन्दर रथ बनाकर जो सूक्ष्म वस्त्रों से सुसज्जित सैकड़ों ताराओं की भाँति चित्र विचित्र चमकने वाला, एवं पुष्प मालाओं से विभूषित हो। उसमें श्वेत वर्ण के दो बैल जुते हों और पंच बार्ह (काया) की पताका से अलंकृत हो। इस भाँति छत्र चामर से

वैश्वदेवं ततः कुर्यादप्रह्यज्जिविधानतः । चतुश्चरणकैर्मैत्रीविप्र शान्तिकपौष्टिकैः ॥४४
आरोपयेद्वये देवं मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् । वेदोक्तैरथपौररणीगांधारूपाधिवासिते ॥४५

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यन्नयत्र कामयते सुषारथिः ।

अभीष्टौ चहिमानं यनायत मनुः पश्चादनुयच्छन्ति रथमयः ॥४६

शत्त्वं दुभिनिर्घोर्णः काहलानां च निःस्वनैः । हस्तदीपैः प्रज्वलित्तस्तालकोलाहतेन च ॥४७
दोषातुखेन रमितं प्रेषणीयपुरः सरम् । महतोत्सवभारेण भ्रामयेत्परितो रथम् ॥४८
ताम्बूलानि रथे द्वयात्प्रयमालायुतानि च । इथवोद्धंपदद्यात् प्रेषकेभ्योऽन्यवारितम् ॥४९
यत्य यस्य गृहेभ्येति प्रेस्तितो रथिनः रथः । तस्य तस्य भवेत्पूज्यः पुष्पधूपाक्षतादिभिः ॥५०
इतरोऽपि भवेत्पूज्यः सम्भाप्ते गृहिणां गृहे । किं पुर्नजगतां भर्ता सर्वलोकमहेश्वरः ॥५१
कदाचिदक्षभङ्गः स्यादध्वजभङ्गोऽथ वा भवेत् । भजेत वा युगमध्ये नहनं ब्रुट्यते यदि ॥५२
ब्राह्मणांस्तत्र सम्पूज्य होमः कार्ये विजानता । तिलैराज्येन पयसा येन सम्पद्यते सुखम् ॥५३
प्रेरणोप्रेषणीयैत्र भ्रामयित्वा रथोत्तमम् । स्थापयेन्नागरस्यान्तस्तत्र कुर्यान्महोत्सवम् ॥५४
दोलाप्राहैश्चक्रदोलाभ्रमैर्भूमरकैस्तथा । विद्याधरीणां चरितमितराभिः प्रकाशयते ॥५५

सुशोभित उस रथ को अपने गृह के प्राङ्गण में स्थापित करने के अनन्तर ग्रहों के पूजन हवन के साथ बलि वैश्वदेव और ब्राह्मण द्वारा शान्ति पौष्टिक कर्म को समंत्रक सुसम्पन्न करे । पश्चात् उस मंत्रवेत्ता को मूल मंत्र के उच्चारण द्वारा उस रथ पर देव को सुखासीन करने चाहिएजो वेदोक्त एवं पौराणिक मंत्रों के उच्चारण पूर्वक धूप और सुगन्ध से सुवासित किया गया हो । उस कुशल सारथी की इच्छानुसार जिस मार्ग से वह जाना चाहता हो, रथ में जुने धोड़ों को उसी मार्ग से ले जाये । पहले उनके महत्व को ध्यान में रखकर उन्हें यथेच्छ गमन करने के अनन्तर उनकी (लगाम की) रस्सियों को संभालना चाहिए । उस समय शंख, दुन्तुभी (नगाड़े) और महान् डमरु आदि वायों की धोर ध्वनि हाथों में लिए प्रज्वलित दीपक के प्रकाश से प्रकाशित रात्रि में ताल (ज्ञांज) वाय की झनकार होनी चाहिए । इस भाँति उस रात्रि में सुखपूर्वक महोत्सव के समारम्भ में भाँति-भाँति के मनोविनोद करते हुए चारों ओर रथ का परिभ्रमण कराये । उस महोत्सव के दर्शनार्थ उपस्थित जन समूह को ताम्बूल भूषित पुष्प मालाएँ रथ पर (देव निमित्त) अर्पित करना चाहिए और उसी भाँति सम्मान पूर्वक रथ वाहकों को भी प्रदान करना चाहिए । सारथी जिस जिस के गृह द्वार से रथ को भ्रमण कराते ले चले उन धरवालों को अपने घर के सम्मुख आने पर देवकी अर्चना पुष्प, धूप और अक्षत आदि से सुसम्पन्न करनी चाहिए ॥४१-५०। क्योंकि गृहस्थों के घर पहुँचने पर जब इतर सामान्य व्यक्ति की भी पूजा होती है तो जगत् के पालन पोषण करने वाले महेश्वर के आने पर क्या कहा जा सकता है अर्थात् उनकी तो और विशिष्ट अर्चना की जाती है । उस महोत्सव की यात्रा में कदाचित् अक्ष (मूँड़ी या जूआ), ध्वज के भंग होने और जूए की रस्सी के टूटने पर ब्राह्मणों की पूजा तथा सविधान तिल, धूत और दूध आदि के हवन करे जिससे सुख की प्राप्ति हो । सारथी और दर्शनार्थी जन समूह उस श्रेष्ठ रथ को चारों ओर धुमकर पश्चात् नगर के मध्य स्थान में स्थापित करते हुए महोत्सव को सुसम्पन्न करें । हिंडोले को पकड़ने वाले, चक्र की भाँति गोलाकार उसके धूमते रहने, और डमरक एवं अन्य कलाओं द्वारा भी विद्याधरीयों के चरित प्रकाशित किये जाते हैं ॥५१-५५। पार्थ ! इस भाँति

एवं यः कुरुते पार्थ सुखदं तु रथोत्सवम् । तथैव पूजयेत् पार्थ उपवासपरो नहः ॥५६
 सर्वव्याधिविहीनश्च सुखी स्याञ्छरदां शतम् । यः कारयित्वा सौवर्णं रौप्यं दा रथमुक्तमन् ॥५७
 वर्णकैश्चित्रितं दिव्यं दारजं वा सुशोभनम् । स्वहस्तरचितं यश्च भास्कराय निवेदयेत् ॥५८
 स मर्त्यलोके सुचिरातसुखानि च समानुते । पूर्वोक्तविधिना भानुं भ्रामयित्वा रथे स्थितम् ॥५९
 स्थापयेत्सर्वभागे तु गेयं वाद्यपुरः सरम् । हक्षिणे तु दिशो भागे द्वितीयेऽङ्ग्लि नप्यद्रथम् ॥६०
 तत्रापि जागरं कुर्याद्वाद्यगीतसुमङ्गलैः । अपरायां चतुर्येऽहिति स्थापयेदथमुक्तम् ॥६१
 प्रेक्षणीयविनोदेन तां रात्रिमतिवाहयेत् । स्थापयेदुत्तरस्यां तु चतुर्थे दिवसे रथम् ॥६२
 महायात्रां प्रकुर्वात तत्राप्यद्भूतचेष्टितम् । पञ्चमे दिनसे प्राप्ने नगरान्तस्थितं रविम् ॥६३
 पूजयित्वा विधानेन षष्ठेऽहिति भवनं नयेत् । रथयात्राप्रसङ्गेन कथिता रथसप्तमी ॥६४
 सर्वपापहरा पुण्या किञ्चिदन्यनिबोध मे^१ । गौरी पूज्या तृतीयायां चतुर्थ्यां विघ्ननायकः ॥६५
 एतच्चम्यां पद्मज्ञकरां पूजयेद्वा सरस्वतीम् । षष्ठ्यां शक्तिर्थरं स्कन्दं सप्तम्यां तु दिवाकरम् ॥६६
 अष्टम्यां च चतुर्दश्यां सप्तम्यां शशिशेखरः । नवम्यां पूजयेच्छण्डों चामुण्डः मुण्डमालिनीश् ॥६७
 दशम्यामृषयः शान्ताः सर्वे व्यासपुरस्सराः । एकादश्यां चक्रपाणिं द्वादश्यां वा समर्चयेत् ॥६८
 त्रयोदश्यां त्रिनेत्रोत्थवह्निना शान्तविश्रहम् । ताधारणी तु सर्वेषां पौर्णमासी तिथिः स्मृता ॥६९

सुखप्रद रथोत्सव करने वाले के समान ही उपवास परायण पुरुष पूजित होते हैं । अनन्तर उन्हें नीरोग देह और सुखी जीवन प्राप्त होता है । सुवर्ण अथवा चाँदी द्वारा बनाये गये चित्र विचित्र या काष्ठ के अत्यन्त सुन्दर और रंगों से सुशोभित उस अपने हांथ के बनाये रथ को भास्कर के लिए सादर समर्पित करने पर मनुष्यों के चिरकाल का सुखी जीवन प्राप्त होता है । इस प्रकार पूर्वोक्त विधान द्वारा रथ पर भानुरेव को सुशोभित कर चारों ओर घुमाते हुए उसे गीत वाद्य से अलंकृत करना चाहिए । दूसरे दिन दक्षिण दिशा की ओर भ्रगण कराते समय गीत, वाद्य और मांगलिक ध्वनियों से उसे अलंकृत करते हुए जागरण करना चाहिए, तीसरे दिन पश्चिम दिशा में उस रथ को रखकर वहाँ दर्शनार्थी जनता को मनोविनोद द्वारा वह रात्रि व्यतीत कर चाँथे दिन उत्तर दिशा की महायात्रा करके वह रात्रि भी आश्चर्य चकित करने वाले विनोदों से व्यतीत करनी चाहिए । पुनः पाँचवें दिन नगर के मध्य में उसी भाँति रखकर छठे दिन पूजन के उपरांत देवालय में प्रवेश करे । इस प्रकार रथयात्रा के प्रसङ्ग में मैंने तुम्हें समस्त पापापहारिणी और पुण्यस्वरूपा इस रथ सप्तमी का विधान और माहात्म्य सुना दिया । ५६-६४। अब कुछ अन्य विषय बता रहा हूँ, सुनो ! तृतीया तिथि के दिन गौरी, चतुर्थी में विघ्न विनायक, पञ्चमी में कमल हस्ता लक्ष्मी और सरस्वती, षष्ठी में शक्तिधारी स्कन्द, सप्तमी में सूर्य, अष्टमी चतुर्दशी में शशिशेखर (शिव), तथा नवम में मुण्ड माला भूषित चामुण्डा चण्डी देवी की आराधना पूजन करना चाहिए । उसी भाँति दशमी में व्यास पुरस्सर शांत कृषिगण, एकादशी द्वादशी में चक्रपाणि विष्णु और त्रयोदशी में (शिव के) तीसरे नेत्र से प्रकट हुए अग्नि द्वारा शांत मूर्ति होने वाले काम देव की पूजा करनी चाहिए । किन्तु पूर्णिमा तिथि में सभी देवों की अर्चा की जाती है । ६५-६९। हिंडोले, दमनक (दौना) का व्युत्क्रम

१. किञ्चिदन्यन्वन्न विद्यते ।

आन्दोलके मदनके रथयात्रासु चैव हि । व्युत्क्रेणादि कर्तव्या तिथीनां कार्यगौरवात् ॥
यात्रा वासन्तिकी चेयं चित्तस्वास्थ्यकरी परा ॥७०

सम्प्रक्षुधाधवलिते भवते सुराणामन्तस्तुवस्त्रमणिमौक्तिकदानचित्रे ।
ताम्बूलकफ्लकमुकवारविलासिनीभियात्रां विधाय भवतीह स भारतेशः ॥७१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरर्पदिण श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दमनकान्दोत्तरथयात्रामहोत्सववर्णनं नाम चतुर्निंत्रशदधिकशततमोऽध्यायः । १३४

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मदनमहोत्सववर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

गौरीं विवाहू जग्राह हरः पाशुपतं द्रतम् । उमापतिः पशुपतिर्धर्यनासक्तो बभूव ह ॥१
ब्रह्मादिभिः समामन्त्र्य विबुद्धैः पुत्रलब्धये । गौर्या मनोभिलषितपूरणाय प्रहर्षितैः ॥२
प्रहितः क्षोभणार्थय समर्थे इति मन्मथः । ततो मारः स्मरः कामोऽप्याजगाम तमाश्रमम् ॥३
रतिन्रीतिमदोन्मादवसन्तश्रीसहायवान् । निधानवारणीदर्पशृङ्खारैः परिवर्तिः ॥४
आप्नाशोकवनोत्तंसो मालतीकृतशेखरः । वीणामृदङ्गसङ्गीतकोकिलाशृङ्खद्रुतकः ॥५

भी किया जा सकता है । वसन्त यात्रा चित्त के लिए स्वास्थ्यप्रद होती है । इस प्रकार सुधा की भाँति भली भाँति ध्वल मन्दिरों में जिसका भीतरी भाग वस्त्रों, मणियों, मोतियों और चित्तों से भूषित किया गया है, सुसज्जित एवं सुगन्धित ताम्बूलों के सेवन करने वाले वेश्याओं द्वारा उस यात्रा महोत्सव को सुसम्पन्न करने वाला भारत का आधिपत्य प्राप्त करता है । ७०-७१

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरर्पद में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्बाद में
दमनकान्दोलक रथयात्रामहोत्सव वर्णन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त । १३४।

अध्याय १३५ मदनमहोत्सव का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—गौरी के साथ पाणिग्रहण संस्कार सुसम्पन्न कर लेने के उपरांत भगवान् शिव ने पाशुपत व्रत धारण किया, उसके अनुष्ठान में पशुपति उमापति अत्यन्त ध्यान मग्न हो गये थे । उसी बीच ब्रह्मादि समस्त देवगणों ने गौरी के पुत्र प्राप्ति रूप मनोभिलाष पूरा करने के लिए उस कार्य में समर्थ काम को नियुक्त किया । क्योंकि ‘मन को यही चञ्चल कर सकता है’ यह उन लोगों को निश्चित था । तदुपरांत कामदेव ने, जिसे स्मर तथा मार भी कहा जाता है, उस (शिव के) आथर्व में आगमन किया । १-३ । उस समय रति और प्रीति को मदोन्मादिनी बनाने वाला वसन्त अपनी भी काम की सहायता कर रहा था । विधान, वारणी (मद्य) दर्प और शङ्कर आदि से वसन्त युक्त था । उसके (विकसित) आम तथा अशोक के वन आभूषण, मालती किरीट, वीणा, मृदङ्ग, संगीत, कोकिल, शृंगी वाद्य रूप या द्रूत तथा वह

झल्लरीबाद्यसंघट्टभाण्डागारिकलेखकः । पानसत्ताङ्गनारूढो हिन्दोलाश्रयमन्त्रिमान् ॥६
 दक्षिणानिलगन्धादध्यः कटाक्षेक्षितदर्थवान् । महाराजाधिराजो वा स्मरः प्राप्तो हरान्तिकम् ॥७
 स पुष्पचापमाकृष्टमदनोन्मादनं शरम् । चिक्षेप त्रिपुरध्नाय समाधेभाँगहेतवे ॥८
 दुद्धः तं तस्य सङ्कूल्यं रुद्धः क्रोधाज्ज्वलत् रुद्धा । ललाटाद्विमसृजतृतीय नयनाद्वरः ॥९
 कामो विलोकितस्तेन भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् । दग्धं दृष्ट्वा स्मरं शोकाद्रित्रीतिस्थिते सदा ॥१०
 करुणं विलपन्त्यौ ते सर्वमन्यद्विशं गतम् । ततः शोकार्तहृदया गौरी रुद्रमुवाच ह ॥११
 भगवन्नस्मदर्थे तं कामं निर्दध्वानसि । तेनैते पश्य नार्यौ ते कामस्य रुदितः कथम् ॥१२
 कुरु प्रसादं देवेशं रतिप्रीत्यै वृषध्वज । संजीवय स्मरं शम्भो नूर्तिसन्तं पुनः कुरु ॥१३
 तच्छुत्वा तु महादेवो हृष्टः प्रोवाच दार्दतीम् । उपप्तुं जगत्तर्वं मन्मथेन शरीरण ॥१४
 मया दग्धस्य कामस्य पुनरागमनं कुतः । किं तु ते मानयन्वाक्यं करोमि सफलं शिष्ये ॥१५
 अस्मिन्वसन्तसन्मये शुक्लपक्षे त्रयोदशी । अस्यां मनोभवो देवि भविष्यति शरीरवान् ॥१६
 एतेन बीजभूतेन जगद्वर्णिष्यतेऽखिलम् । एवं वरमिमं इत्वा मन्मथाय युधिष्ठिर ॥१७
 जगाम हिमवच्छृंगं कैलासं पार्वतीप्रियः । तदेत्सर्वमाल्यात्^१ स्मरस्य चरितं नृप ॥१८
 पूजाविधानमपरं कथयामि शृणुष्व तत् । अस्यां न्नात्वा त्रयोदश्यामशोकाल्यं नगं लिखेत् ॥१९

झांझ नामक वाद्य की ध्वनि को संतुष्ट करने वाला भाण्डागारिक लेखक, पान किये मत्ताङ्गना पर आरूढ हिंडोला नामक आश्चर्यकारी मंत्री, दक्षिण (मलय) की सुगन्धपूर्ण वायु, कटाक्ष के रूपी वर्षा आदि अनुचरों से सांगोपांग सन्नद्ध था । इस प्रकार सुसज्जित काम ने शिव जी के समीप पहुँच कर नदनोन्मादन (कामोन्माद करने वाला) नायक वाण पुष्प धनुष कर चढ़ा कर त्रिपुरहन्ता भगवान् शिव की रामाधि भंग होने के लिए छोड़ा । काम की दृढ़ प्रतिज्ञा जान कर भगवान् रुद्र ने अत्यन्त द्वोध करने के नाते प्रज्वलित सा होते हुए रोष वश भाल स्थित अपने तीरारे नेत्र द्वारा प्रचण्ड अग्नि उत्पन्न किया । उनके देखते ही काम उसी क्षण भस्मसात् हो गया । काम को दग्ध होते देख कर शोकमान रति और प्रीति करुणापूर्ण विलाप करती हुई दूसरी दिशा की ओर चली गयी । अनन्तर पार्वती जी ने शोक प्रकट करते हुए शिव जी से कहा । ४-११ भगवन् ! आप ने मेरे लिए काम को दग्ध कर दिया किन्तु देखिये, उसी कारण काम की ये दोनों स्त्रियां किस प्रकार करुण क्रन्दन कर रही हैं । वृषध्वज ! देवेश ! एवं शम्भो ! अतः इन रति प्रीति पर कृपा करते हुए आप काम को पुनः मूर्तिमान करे इसे सुनकर हर्षमग्न शिव ने पार्वती से कहा—शरीर धारण करने के नाते ही इस मन्मथ ने सम्पूर्ण जगत् को पीड़ित किया है । अतः मेरे द्वारा दग्ध होने पर काम का पुनः सशरीर आगमन कैसे हो सकता है । त्रिये ! किन्तु सम्मानार्थ तुम्हारे बात अवश्य सफल करुंगा—देवि ! वसन्त के समय शुक्ल त्रयोदशी के दिन काम को शरीर की प्राप्ति होगी और उसी बीज रूप से वह सारे जगत् को पुनः अपने अधीन करेगा । युधिष्ठिर ! इस प्रकार काम को वर प्रदान कर पार्वती प्रिय शिव ने हिमालय शिखर कैलास की यात्रा की । नृप ! काम के सम्पूर्ण आल्यान बता कर अब तुम्हें पूजा विधान बता रहा हूँ, सुनो ! । इस (वसंत) की शुक्ल त्रयोदशी के दिन सिन्दूर द्वारा रति

१. ते समाल्यातम् ।

सिन्दूरजनितैरङ्गेरतिप्रीतिसमन्वितम् । कामदेवं वसन्तं च वाजिवकं वृषध्वजम् ॥२०
 सौवर्णं वा महाराज वाक्षं चित्रमथापि वा । लौलाविलासगमनं गर्वितं साप्सरोगणम् ॥२१
 गन्धर्वगीतवादित्रप्रेक्षणीयसनाकुलम् । नन्दावर्तिरतिक्रोडप्रीतिविद्याधरैर्युतम् ॥२२
 मध्याते भोजयेद्धक्ष्या भश्यैर्धूपैःस्वगम्बरैः । मन्त्रेणानेन कौन्तेय नरो नार्या समन्वितः ॥२३
 नमो वामाय कामाय देवदेवाय मूर्तये : ऋद्युविष्णुशिवेन्द्राणां मनः क्षोभकराय वै ॥२४
 कृत्वैद्वर्चयित्वः तु देवदेवं मनोऽशब्दन् । ततस्तस्याग्रतो देया मोदका मुखमोदकाः ॥२५
 नानाप्रकारानभश्यांश्च कानो मे प्रीयतामिति । ततो विसर्जयेद्विषान्दत्त्वा युग्मं सदक्षिणम् ॥२६
 स्वपतिं पूजयेन्नारौ वस्त्रमालात्रिभूषणैः । कामोऽयमिति सञ्चित्यं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२७
 मन्मयायतने तस्मिन्यजमानः चुहृदृतः । रात्रौ जागरं कुर्यात्सुखरात्रियथा भवेत् ॥२८
 कर्पुरकुंकुमक्षोदगन्धात्म्बूलसर्जनैः । नानाप्रकारैर्भक्ष्यैश्च कुर्याद्वात्रौ महोत्सवम् ॥२९
 दीपप्रज्वालनैर्नृत्यैः प्रेक्षणैः प्रेक्षणोत्सवैः । एवं यः कुरुते पार्थं वर्षेवर्षं महोत्सवम् ॥३०
 वसन्तसमये प्राप्नोते हृष्टसुष्ठो नृपः पुरे । तस्य सन्वत्सरं यावल्लोको रोगैर्विमुच्यते ॥३१
 सुभिक्षं क्षैत्रमारोग्यं यशः श्रीः सौव्यमुत्तमम् : कामवर्षी च पर्जन्यस्तस्मिन् राष्ट्रे प्रजायते ॥३२
 तुष्यते तु भृशं देवो द्वादशार्द्धिलोचनः : तथा कामश्च विष्णुश्च वसन्तश्च प्रजापतिः ॥३३
 चन्द्रसूर्यादिकासर्वे ग्रहा ब्रह्मर्घयस्तथा । सर्वेऽपि तस्य तुष्यन्ति यशगन्धर्वदानवाः ॥३४

प्रीति समेत अशोक वृक्ष की रचना पूर्वक कामदेव और वसन्त की सुवर्ण प्रतिमा बनाये जो वाजिमुख और मीनध्वज से भूषित हैं । १२-२०। महाराज ! चित्रानक्षत्र, लीला विलास प्रकट करते हुए गमन करने वाले मदोन्मत्त अप्तरागण, गन्धर्वाँ के गायन वाच्य देखने सुनने वाले दर्शक गण, नद्यावर्ति रतिक्रोडा प्रीति तथा विद्याधरों की चित्र रचना करने के अनन्तर स्त्री पुरुषों को समंत्रक भश्य भोज्य, धूप, मालाएँ और वस्त्र द्वारा अर्चा तथा मध्याह्न काल में भोजन कराये । कौतैय ! सुन्दर, कुटिल, देवाधिदेव, मूर्तिमान्, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव के मनः क्षोभ करने वाले काम को मैं नमस्कार कर रहा हूँ । इस प्रकार देवेश काम की पूजा करके उनके सम्मुख मुख सुखार्थ मोदक अर्पित करे । और अनेक भाँति के भश्य भोज्य समर्पित करते हुए 'काम देव मुख पर प्रसन्न हो' ऐसा कहने के अनन्तर युग्म वस्त्र समेत दक्षिणा ब्राह्मणों को प्रदान कर वस्त्र, माला और आभूषणों द्वारा स्त्रियों को ये साक्षात् कामदेव हैं, इस भावना से आनन्द विभोर होकर अपने पति की अर्चना करनी चाहिए । पुनः मन्मय के उस मन्दिर में मित्रों समेत रात्रि जागरण करते हुए सुखपूर्ण रात्रि व्यतीत करें, कपूर, कुंकुम चूर्णि मिथ्रित जल, सुगन्ध, ताम्बूल और अनेक भाँति के भश्य भोज्य प्रज्वलित दीप, नृत्य, दर्शन एवं दर्शक गण समेत रात्रि में उस महोत्सव को सुसम्पन्न करना चाहिए । पार्थ ! प्रति वर्ष इस भाँति इस महोत्सव को वसन्त के समय राजाओं को हर्षमन्न होकर सुसम्पन्न करना चाहिए । इससे प्रजाओं का वर्ष भर रोग मुक्ति प्राप्त रहती है । २१-३१। उस राजा के राष्ट्र में सुभिक्ष, कल्याण, आरोग्य, यश, श्री, सौव्य, आवश्यकतानुसार जल वरसने वाले मेघ होते हैं, देवाधिदेव महादेव कामदेव, विष्णु, वसन्त, प्रजापति, चन्द्र सूर्य, आदि ग्रहगण, और ब्रह्मर्घयगण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । उसी प्रकार यक्ष, गन्धर्व, दानव, असुर, यातुधान, सुवर्ण, पत्रग, तथा पर्वत वृक्षादि को अपार हर्ष

अमुरा यातुधानश्च सुपर्णः पलगा^१ नगा^२ । दुष्टाः प्रयच्छन्ति मुखं तस्य कर्तुर्तं संशयः ॥३५

चैत्रोत्सवे सकललोकमनोनिवासं कामं वसन्तमलयाद्विमरुत्सहायम् ।

रत्या सहार्च्य पुरुषः प्रवरा च योवित्सौभाग्यरूपमुतसौख्ययुता सदा स्यात् ॥३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणी श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

मदनमहोत्सवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १३५

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भूतमात्र्युत्सवदर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भूतमातेति संहृष्टे ग्रामेन्नामे दुरेपुरे । गायन्तृत्यहंसल्लोकः सर्वतः परिधावति ॥१

उन्मत्तवत्प्रलपति क्षितौ पतति सत्तवत् । द्रुद्धवद्वावति पुरान्मत्तवत्कर्षते बहिः ॥२

मुखाङ्गंभज्जान्कुरुते लोके यातगृहातवत् । भूतवद्वस्मगान्तं तु कर्दमानवगाहते ॥३

किमेष शास्त्रनिर्दिष्टो मार्गं किमुतः लौकिकः । मुहृते मे मनःकृष्ण त्वं तु वत्तुमिहार्हसि ॥४

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि यत्ते किञ्चन्ननोगतम् । आस्तिकः श्रद्धानश्च भवतीति मतिर्मम ॥५

प्राप्त होता है और वे कर्ता को सब भाँति मुखी करते हैं इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार चैत्र मास के इस उत्सव में सभी प्राणियों के मन में निवास करने वाले कामदेव, वसन्त, मलायानिल और रति की अर्चना करने वाले पुरुष अथवा नारी को सौभान्य, रूप सौन्दर्य सुत एवं समस्त सौख्य प्राप्त होता है। ३२-३६

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में

मदन महोत्सव वर्णन नामक एक सौ पैतीसवाँ अध्याय समाप्त । १३५।

अध्याय १३६

भूतमाता के उत्सव का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भूतमाता क्या है, इनके उपलक्ष्य में प्रत्येक ग्रामों और घरों में भूतमाता का पूजन करते हुए अत्यन्त हर्षमग्न जन समूह गान, नृत्य और हास्य करते चारों ओ दौड़ता दिखायी देता है, उन्मत्त की भाँति प्रलाप करता है, मतवाले के समान पृथिवी पर गिरता है, कुद्द होकर नगर से भागता है, मदोन्मत्त के समान पकड़ कर बाहर से लाया जाता है, वात (वायु) दूषित प्राणी की भाँति मुख आदि अंग भंग करने लगता है, एवं देह में भस्म लगाये भूत के समान कीचड़ में गिर जाता है। क्या यह मार्ग शास्त्र निर्दिष्ट है अथवा लौकिक ! कृष्ण इस बातों में मेरा मन सर्वथा मुग्ध है अतः इसे बताने की कृपा करें। १-४

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हारे मन की अभिलाषा अवश्य पूरी करूँगा, सावधान होकर सुनो !

पार्थ सहितः पार्थ मन्दरे चारुकन्दरे । क्रीडभास्ते मुदा युत्तःे दिव्यक्रीडनकैर्हरः ॥६
हंसोन्नतगतिं चारुकुम्भभ्राजिकुचद्वयम् । सिञ्जत्सद्रशनां हृष्टां दृष्ट्वा गौरीं जगद्गुरुः ॥७
दधकामोऽपि च हरः सन्दीप्तमदनोऽभवत् । निःसृतां कामयामास महार्हशयने शिवः ॥८
रत्स्थयोस्त्ययोर्जातं दिव्यं वर्षशतं यदा । तदा देवीसमुच्छृण्यनिरोधनिर्गता बहिः ॥९
मूत्रोदकात्समुत्स्थौ नारी निर्दिप्तिरितोदरा । कृष्णा करालददना पिङ्गलःक्षा मुत्तमूर्द्धजा ॥१०
कपालमालाभरणा बद्धपिण्डोर्धर्वपिण्डकः । खट्वाङ्गकं कालधरा मुद्राङ्ग्नितकरा शिवा ॥११
व्याघ्रचर्मम्बुद्धरथरा रण्टकिणिमेष्टनः । उमड्हमड्हमूरुका फूलकारापूरिताम्बरा ॥१२
तस्याः प्रार्थनुजाश्रान्या गीतदाद्यलयानुगाः । उत्तालतालमबला नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥१३
कपालखट्वाङ्गधरा यज्ञचर्मवगुणिताः । तस्या तथैव शङ्कराज्ञातस्तद्रूपाभरणः युमान् ॥१४
अनुगम्यमानो बहुभिर्भूतैरतिभयंकरैः । द्विहशार्दूलवदनै रदनोलिललिताम्बरैः ॥१५
एकोभूतैः क्षणेनैव तौ भवानीभवोद्भूवौ । दृष्ट्वा हृष्टमना देवः प्राह देवीं सुविस्मिताम् ॥१६
कल्याणि पश्य पश्यतौ मत्त्वदङ्गमुद्भूवौ । बीभत्साङ्गुतशङ्करवरायुधनिधरिणौ ॥१७
भ्रातृभाण्डौ यथा देवि तद्वदेतौ मतौ मम । नृतार्योरन्तरं किञ्चित्सावृश्यात्प्रतिभासयेत् ॥१८

क्योंकि 'आस्तिक श्रद्धालु होते हैं' यह मेरा निश्चय मत है । पार्थ एक बार भगवान् हर मन्दराचल की रमणीयक गुफा में उन दिव्य साधनों समेत पार्वती के साथ क्रीडा कर रहे थे । आनन्द विश्वोर जगद्गुरु शिव उस समय गौरी पार्वती जी को देखकर, जो हंस की भाँति उन्नत गति, रमणीयक (जप (कला की भाँति स्तनों से भूषित, एवं मधुर ध्वनि करने वाली रशना (कटि की करधनी) से अलंकृत हो रही थी, अपने को संभाल न सके । कौम को दग्ध करने पर भी उस समय वे मदन ज्वाला से संतप्त होने लगे । अनन्तर बहुमूल्य सुसज्जित शश्या पर उन्होंने उनके साथ काम क्रीडा आरम्भ किया । रति कर्म में प्रवृत्त उन दोनों के दिव्य सौ वर्ष बीत जाने पर समुच्छ्रय निरोध मूत्रोत्सर्ग न करने के नाते उसके ऊपरी भाग (पेड़) में सूजन होने के कारण पार्वती उठकर तदर्थ बाहर चली गई । (उनके) उस मूत्रोदक द्वारा ऐसी स्त्रियों की उत्पत्ति हुई जो विदारितोदरा, काली देह, कराल मुख, पिङ्गल नेत्र, खुले केश, कपाल (शिर) की माला से भूषित, मोटी-मोटी स्नायु (नसों) से बँधी देह विशेषकर ऊपरी भाग, हाथ में खटांग और कंकाल लिए मुद्रा से अंकित, अमंगलवेष, बाघम्बर पहने कोलाहल (शोर) करने वाली रशना (कटि-आभूषण) से थलंकृत तथा अपने डम, डुम, डुमरका, एवं चीत्कार शब्दों की ध्वनि से नभ मण्डल को अशान्त कर रही थी । उनके पार्श्वभाग से उनकी अनुजाँड़े खड़ी थी, जो गीत वाद्य के साथ अपने लय स्वरों में मग्न हो रही थी, और उपर हाथ उठाये ताली बजा कर हँसती हुई नाँच रही थी । वे स्त्रियाँ भी कपाल, खट्वाङ्ग लिए गज्जर्म पहने थी । उसी प्रकार शंकर द्वारा भी तटूप और आभूषण भूषित पुरुषों की उत्पत्ति हुई । उनके पीछे अति भयंकर असंख्य भूत गण चल रहे थे, जिनके सिंह, व्याघ्र के समान मुख और आकाश में पहुँचने वाले दाँत थे । भवानी और (शिव) के द्वारा उत्पन्न वे क्षी पुरुष क्षण भर में आपस में मिलकर एक दल बन गये । उसे देख कर हर्षमग्न महादेव ने आश्चर्य चकित देवी से कहा ।५-६। कल्याणि ! मेरे और तुम्हारे अंग से उत्पन्न हुए इन प्राणियों को देखो—किस प्रकार का वीभत्स और अद्भूत शृंगार और अस्त्रादि धारण किये हैं । देवि ! मेरी सम्मति में भातृ भाण्ड (वेश्याओं के

भ्रातुभाण्डं भूतमाता तथैवोदकसेविका । संज्ञात्रयं तयोः कृत्वा ततः प्रादाद्वरं हरः ॥१९
भुक्तवार्होपगतां चैतां जरत्तलते स्थिताम् । सेवयिष्यति ये भक्त्या जलसम्पूर्णकण्ठुके ॥२०
चन्दनेन समालभ्य पुष्पधूपैरथार्च्य तासु । भोजयेत्क्षिप्रदा चैव कृशरापूपपायसैः ॥२१
य एवं कुरुते देवि भक्तिभावेन भावितः । स पुरपशुवृद्धिं च शरीरारोयमाप्नुयात् ॥२२
न शाकिन्यो गृहे तस्य न पिशाचा न राक्षसा । पीडां कुर्वन्ति शिशवो यान्ति दृद्धिं निरामयाः ॥२३

युधिष्ठिर उवाच

कदा पूजा प्रकर्तव्या भूतमातुः सुखार्थभिः । पुरुषैः पुरुषव्याघ्र यत्नम् वक्तुमहसि ॥२४
श्रीकृष्ण उवाच

सर्वत्रैषा भगवती बालानां हितकारिणी । नामभेदैः क्रियाभैः कालभैरैश्च पूज्यते ॥२५
प्रतिपत्प्रभृति ज्येष्ठे यावत्पञ्चदशी तिथिः । तावत्पूजा प्रकर्तव्या प्रेरणैः प्रेक्षणीयकैः ॥२६
विकर्मफलनिर्देशः पाण्डवानां विडम्बनन् । प्रदृश्यन्ते हास्यपरैर्नरैरद्वृत्तेष्टितः ॥२७
विश्वास्य धनलोभेन सन्ध्यायां निहतः पथि । आरोहणं च शूलाप्ने न पश्यन्तं हि पश्यति ॥२८
दृष्टो भवद्विः संहृष्टः परपारावर्मशकः । छित्वा स्वहस्तैर्यद्वतो विभुना मुख्यमोदकः ॥२९
शीर्णसूक्ष्मेण पत्रेण बाला मालानुमोदिताः । मुख्यभुग्रासमाळ्ढो मुखं कृत्वा च पश्चिमे ॥३०

भडुवों) के समान ये सब दिखायी दे रहे हैं । क्योंकि इन स्त्री पुरुषों की समानता में कुछ थोड़ा ही अन्तर दिखायी देता है । उपरान्त भगवान् हर ने भातु भाण्ड, भूतमाता और उदक सेविका, उनकी ये तीन संज्ञाएँ निश्चित कर उन्हें वर प्रदान किया—भोजनोपरात पूजनीय और जीर्ण वृक्ष के नीचे स्थित इन स्त्रियों की भक्ति पूर्वक जल पूर्ण कण्ठुक, चन्दन लेप, और पुष्प, धूपादि से अर्चा करके कृशराम (खिचड़ी) पूआ तथा खोर का भोजन अर्पित करे । देवि ! इस प्रकार भक्तिभाव पूर्ण उनकी अर्चा करने वाले मनुष्य को पुत्र पशु वृद्धि समेत नीरोग शरीर प्राप्त होता है । उसके घर में शाकिनी पिशाच और राक्षसों की पीड़ा कभी नहीं होती है । शिशुगण नीरोग रहकर वृद्धि प्राप्त करते हैं । १७-२३

युधिष्ठिर बोले—पुरुष व्याघ्र ! सुखेच्छुक पुरुषों को उस भूतमाता की अर्चा कब करनी चाहिए, बताने की कृपा करें । २४

थीकृष्ण बोले—बालकों को सभी भाँति हित करने वाली इस भगवती का नाम भेद, क्रियाभेद और कालभेद से सर्वत्र पूजन होता है । ज्येष्ठमास की प्रतिपदा तिथि से आरम्भ कर पूर्णिमा तक दर्शनार्थी अदि सभी मनुष्यों को उनका पूजन करना चाहिए । निन्दित कर्मों के फलों का निर्देश करना पाण्डवों के लिए व्यर्थ एक विडम्बना मात्र समझता हूँ—आश्चर्य चकित कर्म करने पर भी वे मनुष्य हास्य करते हुए दिखायी देते हैं जो धन के लोभ से विश्वास दिलाकर संध्या समय मार्ग में ही उसका प्राणान्त कर देते हैं, वे शूली पर चढ़ने के लिए उसे देखते हुए भी नहीं देखते हैं (अनदेखी करते हैं) । (कहीं कोई कह रहा है)—स्वामी ने अपने हांथों से तोड़कर जो मगद (लड्डू) के टुकड़े प्रदान किये हैं उसकी आलोचना करते हुए यह कितना हर्षमन हो रहा है, इसे आप लोगों ने देखा है । कहीं शीर्ण (फटे) और सूक्ष्म पत्तों की माला पहने बालाएँ हर्ष मन हो रही हैं, कहीं अण्डे का भक्षण करने वाला पुरुष गधे पर बैठा कर

हे जना: कि न पश्यध्वं स्वामिद्रोहकरं परम् । करपत्रैर्विदार्यं तमुच्छलच्छोणितच्छटम् ॥३१
 चरैः किलासैः सम्प्राप्तः सर्वेष्ट्रिगकरः परम् । दण्डप्रहाराभिहतो नीयते दण्डपाशिकैः ॥३२
 प्रेक्षकर्वेष्टितः स्तेनो रट्येष दिमण्डितः । संयम्य नीयतेयं तु मूर्खः क्रौर्याविलेक्षणः ॥३३
 सितकेशं सितश्मशु सिताम्बरधरं द्विजप् । बटचेष्टाचपेटाभिर्हन्यमानं न पश्यत ॥३४
 गृहाश्लिष्कम्यतां रण्डा वृद्धो भूत्वाण्यसौ स्त्रियाः । स्वस्या असौ न कुरुते मूढो भरणपोषणम् ॥३५
 भैरवाभरणोत्ताला व्यालयज्ञोवीतिनः । प्रदन्त्रा ताण्डवपदान्पश्यध्वं ध्वान्तरीपकान् ॥३६
 निवेदकोऽस्य हृदये न किञ्चिदपि तिष्ठति । गृहीतं यदनेनेदं हालेनापि महाव्रतम् ॥३७
 रक्तदृष्टकाकृष्णांगं शबरं कि न पश्यत् ! तरुकोटरन्तगतान्विष्टत्वा च शुकशावकान् ॥३८
 बहुभिः कोष्ठकीकृत्य शरौदैः शकलीकृतम् । विमुक्तकेशां नृत्यन्तीं पश्यध्वं योगिनीमिव ॥३९
 इमां कृष्णार्द्धवदनां गृहीतां सिन्दुरर्विताम् । विमुक्तकेशां नृत्यन्तीं पश्यध्वं योगिनीमिव ॥४०
 गम्भीरतूर्धविनिना प्रबुद्धां वृत्ताण्डवाद् । एवं प्रेक्षणकं कृत्वा न येत्वक्षतले च ताम् ॥४१
 एवं कृते न दारिद्र्यं न च दुःखं भवेन्तृणाम् ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 भूतमात्रुत्सवर्णनं ज्ञाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६

पठिचमाभिमुख खड़ा किया गया है । २५-३०। कहीं लोग कह रहे हैं—मनुष्यों ! स्वामी से बैर करने वाले को देखो ! आरा से विदीर्ण किये जाने के नाते जिसके बदन से रक्त के फुहरे निकल रहे हैं । कहीं छल कपट करने वाले राजदूत आदि, जो सभी को अत्यन्त अशान्त करते रहते हैं, दंड पाशधारी यमदूतों के दण्डों से आहत हो रहे हैं । कहीं कुछ लोगों ने चोर को धेर लिया है और वह इधर-उधर की बातें कहने की रट लगा रहा है । कहीं कूद द्रष्टि से देखने वाला पुरुष अपने कर्मका परिणाम भोग रहा है । श्रेतकेश, श्रेतदाढ़ी मोछ और श्रेतवस्त्र धारण किये कोई ब्राह्मण लड़कों की भाँति चपेटा (चपत) से पीड़ित हो रहा है नहीं देख रहे हो ! कहीं कोई पुरुष वृद्धावस्था में भी 'रांड को धर से निकाल दो' की धुनि में है, वह मूढ़ अपनी ही स्त्री का भरण पोषण नहीं कर रहा है । कहीं कुछ लोग स्वयं भीषणाकार होने पर भी आभूषण और सर्प की भाँति मोटे यजोपवीत धारण किये दिखायी दे रहे हैं, जो अपने अपने ताण्डव गमन से दीपकों को अंशान्त करते (बुझाते) रहते हैं । क्योंकि बाल्यावस्था में जिसने महाव्रत को धारण किया है, उसके कारण इनके हृदय में दुःख नामक की कोई वस्तु है ही नहीं । रक्तवर्ण नेत्र और कोवे की भाँति सर्वाङ्ग काले शबर (जंगली कोल) को नहीं देख रहे हो, जो वृक्षों के कोटरों में बैठे पक्षियों के बच्चों को मार कर बाणों द्वारा खण्डणः करके उनकी राशि बनाये हैं । ढक्का (डमरु) के त्याग पूर्वक अपने हुंकार शब्द का ही प्रहार करने वाले को भी देखो और इसे भी देखो, जिसका आधा बदन काला, गृहीत, सिन्दूर भूषित, केश स्वेले योगिनी की भाँति नाच रही है तथा जो गम्भीर नगाड़े की घवनि से प्रवृद्ध ताण्डव जैसा लग रहा हो । इस प्रकार का प्रेक्षण दर्शन बनाकर उसे वृक्ष के नीचे ले जाना चाहिए । क्योंकि ऐसा करने पर मनुष्यों को दारिद्र्य और अन्य दुःख नहीं होते । ३१-४२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
 भूतमाता का उत्सव वर्णन नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त । १३६।

अथ सप्तर्त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः

रक्षाबन्धनवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रदक्षयामि बलिरक्षाविधिं नृप ! तं शृण्वेकाप्यमनसा रसमासाद्गदितं स्वया ॥१
पुरा देवामुरे युद्धे दानवामुरनिजिताः । शुक्रं बलिं पुरः कृत्वा यथुः शुक्रं उवाच तन् ॥२

शुक्रं उवाच

न विषादस्त्वया कार्यः कार्याणां गतिरीदृशी । दैवाद्वृवन्ति भूतानां काले जयपराजयाः ॥३
सन्ध्यानं सह शक्तेण क्रियतामयनद्वयम् । अजेयः सर्वशत्रूणां कृतः शच्चा शचीपतिः ॥४
रक्षाबन्धप्रभावेन दानवेन्द्रो जितो महान् । वर्षमेकं प्रतीक्षस्त्व ततः श्रेदो भविष्यति ॥५
भार्गवैग्नेयमुक्तास्ते दानवा विगतज्वराः । तस्युः कालं प्रतीक्षन्तो यथोक्तं युरुणा तथा ॥६
एष प्रभावे रक्षादाः कनितत्ते युधिष्ठिर । जयदः सुखदश्वैर्व पुत्रारोग्यधनश्रदः ॥७

युधिष्ठिर उवाच

क्रियते केन दिधिना रक्षाबन्धः मुरोत्तम । कस्यां तिथौ कदा देव एतन्मे वक्तुमर्हसि ॥८

अध्याय १३७

रक्षाबन्धन का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! मैं तुम्हें बलि रक्षाविधान की विस्तृत व्याख्या देता रहा हूँ, सावधान होकर सुनी ! पहले समय देवों राक्षसों के युद्ध में देवों द्वारा अमुरों के पराजित होने पर वे दानवगण बलि को सामने किये शुक्र के पास पहुँचे, शुक्र ने उनसे कहा— १-२

शुक्र बोले—तुम्हे इस समय विषाद न करना चाहिए क्योंकि कार्यों की गति ऐसी ही होती है—समयानुसार प्राणियों का जय परायज दैवगति से हुआ करती है । दोनों अयन (सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन) के समय (वर्ष) तक इन्द्र के साथ सभी कार्यों की सन्धि करो, शची (इन्द्राणी) ने अपने पति को सम्पूर्ण शत्रुओं के अजेय बनाया है और उसी रक्षा बन्धनों के प्रभाव से महान् दानवेन्द्र को भी उन्होंने जीत लिया है इसलिए एक वर्षे तक प्रतीक्षा करो पश्चात् तुम्हारा कल्याण होगा । शुक्र के ऐसा कहने पर दानवों का सन्ताप दूर हुआ और वे अपने गुरु (शुक्राचार्य) के कथनानुसार एक वर्षे तक प्रतीक्षा करते अपने काल यापन करने लगे । युधिष्ठिर ! मैंने तुम्हें यह रक्षा का प्रभाव बताया है, जो जप और सुखप्रद होते हुए आरोग्य एवं धन का भी प्रदायक होता है ॥३-७

युधिष्ठिर बोले—सुरोत्तम ! यह रक्षाबन्धन कार्य किस विधान द्वारा किस तिथि में और किस समय सुसम्पन्न किया जाता है, यह सभी बातें बतानें की कृपा कीजिये । जैसे जैसे भगवान् अपने आश्चर्य

यथा यथा हि भगवान्विचित्राणि प्रभाषते । तथा तथा न मे तृप्तिर्बहुर्थाः शृण्वतः कथाः ॥९
श्रीकृष्ण उवाच

घनावृतेऽन्बरे पार्थ शाद्वले धरणीत्तते । सम्प्राप्ते श्वावणे चैव पौर्णमास्यां दिनोदये ॥१०
 स्नानं कुर्वीत भृतिमाञ्छ्रुतिस्मृतिविधानतः । ततो देदान्तितृष्णैव तर्पयेत्परमाम्भसा ॥११
 उपाकर्मादिदेवोक्तमृषीजां चैव तर्पणम् । कुर्युश्च ब्राह्मणाः श्राद्धं देवमुद्दिश्य शक्तिः ॥१२
 शूद्राणां मन्त्रसहितं स्नानं दानं च शस्यते ॥१३
 ततोपराह्नसमये रक्षापोटलिकाः शुभाः । कर्त्रदेच्चाक्षतः शस्तः सिद्धार्थेऽमभूतिः ॥१४
 वस्त्रैचित्रैः कार्पसैः क्षौमैर्वा मलदर्जितः । विचिक्षतरैर्प्रभितः स्थापयेद्वाज्ञनोपरि ॥१५
 कार्या गृहस्य रक्षा गोमयरहितैः सुवृत्तकुण्डकैः । द्वूर्वार्वार्ककसहितैः सकलदुष्कृतोपशान्तये ॥१६
 उपलिप्तगृहमध्ये चतुर्झोपरि न्यसेच्छुभं पीठम् । तत्रोपविशेषाजा सामात्यः सपुरोहितः ससुहृत् ॥१७
 वेश्याजनेनसहितो मङ्गलशब्दैः सुहसितेश्चिह्नैः । रक्षाबन्धः कार्यः शान्तिध्वनिना नरेन्द्रस्य ॥१८
 देवद्विजातिशस्ता सुस्त्रीरथ्यैः समर्चयेत्प्रथमम् । तदनुपुरोधा नूर्पतं रक्षां ब्रह्मीत मन्त्रणे ॥१९
 येन बद्धो बलीराजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल ॥२०
 ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च नानवैः । कर्तव्योरक्षिकाबन्धो द्विजान्सम्पूज्य भक्तिः ॥२१

चकित करने वाले प्रवचनों को सुनाते जाते हैं, जिसमें अनेक भाँति के मनोरथ को सफल करने वाली कथाएँ निहित हैं वैसे वैसे उसके सुनने पर भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है । ८-९

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! घनाच्छन्न आकाश और शस्य इयामला पृथिनी जिस समय होती है, उसी सावन मास की पूर्णिमा के दिन सूर्योदय काल में स्मृति विधान द्वारा स्नान, उस परम पुनीत जल द्वारा देव पितृतर्पण, वेदविहित उपाकर्मादि कर्म, ऋषियों के तर्पण और देवोदैश्य से श्राद्ध कर्म ब्राह्मण को यथाशक्ति सुसम्पन्न करना चाहिए, शूद्रों को भी समंत्रक स्नान दान करना प्रशस्त कहा गया । उसी दिन अपराह्न समय में प्रशस्त अक्षत, राई और सुवर्ण भूषित नये सूती अथवा रेशमी वस्त्र की सुन्दर पोटली बनाकर, जो अत्यन्त विचित्र बनायी गयी हो, किसी पात्र के ऊपर स्थापित करे । अनन्तर समस्त दुष्कर्मों के शान्त्यर्थ गोमय (गोबर) रहित सुवृत्त कुण्डक और द्वूर्वा द्वारा गृह की रक्षा करने के लिए पुते घर के प्रांगण की बेदी पर सुसज्जित एवं सुन्दर पीठासन पर अपने अमात्य पुरोहित, और मित्रों एवं वेश्याओं समेत राजा को बैठना चाहिए । तदुपरांत मांगलिक शब्दों के उच्चारण एवं शान्तध्वनि पूर्वक किसी मनोरम चित्र (सूत आदि) द्वारा राजा का रक्षाबन्धन कार्य सुसम्पन्न करे । उस समय सर्वप्रथम देव और ब्राह्मण की प्रशस्त देवियों को अर्ध्य प्रदान करके पुरोधा (पुरोहित) को चाहिए राजा के (हाथ में) रक्षा बांधते समय येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे माचल माचल' जिस (सत्य) वचन द्वारा महाबली राक्षसराज बलि बांधे गये थे, उसी से मैं भी तुम्हें बांध रहा हूँ, रक्षे ! कभी भी चल न होना अर्थात् शिथिल बन्धन न होकर सर्वदा दृढ़ रहना । इसी भाँति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों और अन्य मानवों को भी भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करने के उपरांत रक्षाबन्धन करना चाहिए । १०-१। क्योंकि इस

अनेन विधिना यस्तु रक्षिकाबन्धमाचरेत् । स सर्वदोषरहितः सुखी सम्वत्सरं भवेत् ॥२२
 यः श्रावणे स्वति शीतजले नरेन्द्र रक्षाविधानविधिमाचरते मनुष्यः ।
 आस्ते सुखेन परमेण च सर्वमेकः पुत्रप्रपौत्रसहितः समुद्दृतश्च ॥२३
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 श्रावणपूर्णिमारक्षाबन्धनविधिवर्णनं नाम सप्तत्रिशतदधिकशततमोऽध्यायः । १३७

अथाष्टार्त्तिंदधिकशततमोऽध्यायः

महानवमीद्रवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुण्या महानवम्यस्ति तिथीनां प्रदरा तिथिः । सानुष्ठेया सुरैः सर्वैः प्रजापालैर्विशेषतः ॥१
 भवानुत्थापयेत्पार्थं सम्वत्सरसुखाय वै । भूतप्रेतपिशाचानां प्रीत्यर्थं चोत्सवाय वा ॥२

युधिष्ठिर उवाच

कस्मात्कालात्प्रवृत्तेयं नवमी महाब्दयुक् । किमादावुपपन्नोऽस्ति भगवन्नदमीविधिः ॥३
 यशोदागर्भसम्भूतेरुत यात्रा प्रवर्तते । उताहो पूर्वमेवासील्लुतत्रेतायुगादिषु ॥४
 यदस्यां प्राणिनः केचिन्मन्यन्ते घातयन्ति च । हतानां प्राणिनां तेषां का गतिः पारलौकिकी ॥५

विधान द्वारा रक्षा बन्धन कार्य सुसम्पन्न करने वाला सम्पूर्ण दोषों से रहित होकर वर्ष पर्यन्त सुखी रहता है । इस प्रकार नवीन मेघ के शीतल जल (वर्षा द्वारा) झड़ी लगने वाले सावन के मास में शूर्णिमा के दिन सुरेन्द्र की रक्षा विधान द्वारा रक्षा बन्धन कार्य सुसम्पन्न करने वाला पुरुष अपने पुत्र पौत्र आदि परिवार समेत समस्त सुखों का अनुभव करता है । २२-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
 श्रावणरक्षाबन्धन विधान वर्णन नामक एक सौ सेतीसवाँ अध्याय समाप्त । १३७।

अध्याय १३८

महानवमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पुण्यस्वरूपा उस महानवमी के दिन जो अन्य सभी तिथियों में सर्वश्रेष्ठ, देवों तथा विशेष कर राजाओं को (दुर्गा पूजन) का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए । पार्थ ! वर्षपर्यन्त अपने सुखार्थ एवं भूत प्रेत पिशाचों की प्रसन्नता तथा उत्सव के व्याज से तुम्हें भी इस दिन, अनुष्ठान करना आवश्यक है । १-२

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! यह पूजनीय नवमी तिथि का विधान आदिकाल से ही चला आ रहा है, या यशोदा जी के गर्भ से उत्पन्न होने वाली देवी की यात्रा काल अथवा सत्य त्रेता आदि युगों के आरम्भ से प्रज्वलित है ? केशव इस तिथि के दिन जिस प्राणी का बध होता है, उसकी और स्वयं बध करने वाले,

स्वयं घ्रतां घातयतामनुमोदयतां तथा । एतन्मे संशयं पूर्वं चक्षुमहसि केशव ॥६
श्रीकृष्ण उवाच

पर्थ या दरमा शक्तिरनन्ता लोकविश्रुता । आद्या सर्वगता शुद्धा भावगम्या मनोहरा ॥७
 अद्याष्टमी कलाकाली द्वितीया सर्वमङ्गला । माया कात्यायनी दुर्गा चामुण्डा शङ्खरप्रिया ॥८
 ध्यायन्ति यां योगरत्नां सः देवीं परमेश्वरी । रूपभेदैर्नामभेदैर्भवानी पूज्यते शिवा ॥९
 अष्टम्यां तु नवम्यां तु देवदानवराक्षसैः । गन्धवैर्वर्णरूपैः पूज्यते किञ्चरैर्नरैः ॥१०
 अन्येष्वपि युगेष्वादौ सृष्टेः पूर्वं प्रदर्शिता । पूज्यतेयं पुरादेवी तेभ्यः पूर्वतरैः शुभैः ॥११
 आश्रयुक्त्वा कलपक्षे च याष्टमी मूलसंयुता । सा महानवमी नास त्रैलोक्येऽपि मुदुर्लभा ॥१२
 कन्यागते सवितरि शुक्लपक्षेऽष्टमी तु या । मूलनक्षत्रसंयुक्ता सा महानवमी स्मृता ॥१३
 अष्टम्यां च नवम्यां च जगन्मातरमस्त्रिकाम् । पूजयित्वाऽधिने मासि विशेषो जयति द्विषः ॥१४
 सन्तर्जयन्ती हुकारैः खड्गादिभिरहर्निशम् । नवम्यां पूजिता देवी ददाति नवमं फलम् ॥१५
 सा पृण्या सा पवित्रा च सा धर्मसुखदायिनी । तस्मात्सदा पूजनीया चामुण्डामुण्डमालिनी ॥१६
 तस्यां यद्युप्युक्त्यन्ते प्राणिनो महिषादयः । सर्वे ते स्वर्गीति यान्ति घ्रतां यापं न त्रिद्यते ॥१७
 न तथा बलिदानेन पुष्पधूपविलेपनैः । यथा संतुष्यते लोके महिषैर्विन्द्यवासिनी ॥१८

कराने वाले एवं उसका अनुमोदन करने वाले प्राणी की पारलौकिक गति कैसी होती है, इन मेरे संदेहों को दूर करने की कृपा करें । ३-६

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! परम शक्ति, अनन्ता एवं लोक प्रख्यात आद्या भगवती शिव का परमेश्वर, सर्वगता, शुद्धा, एकमात्र भादगम्या एतं सर्वमनोहरा है तथा आद्या, अष्टमी कला, काली सर्वमंगला, माया, कात्यायनी, दुर्गा, चामुण्डा, एवं शंकरप्रिया के नाम से पूजित हो रही है सभी लोग सदैव ध्यान पूजन करते हैं, यही नहीं, अपितु अनेक नाम रूपों द्वारा उनकी पूजा की जा रही है । अष्टमी नवमी के दिन देव, दानव, राक्षस, गन्धवं नाग, किन्नर, नर यज्ञ द्वारा उस भवानी की सदैव पूजा करते हैं । इसी प्रकार अन्य युगों के प्रारम्भ में सृष्टि के पूर्वकाल इसी भाँति देवी जी विद्यमान थी और उस समय के लोगों को अत्यन्त दूर के पूर्वजों द्वारा शुभ विधान द्वारा पूजित होती रही । आधिन मास की शुक्ल पक्ष की मूल नक्षत्र युक्त नवमी महानवमी के नाम से प्रख्यात हैं जो तीनों लोकों में अत्यन्त दुलभ बतायी जाती है । कन्या राशि पर सूर्य के प्रस्थान करने पर शुक्ल पक्ष की मूल नक्षत्र युक्त अष्टमी महानवमी कही गयी है । आश्विन मास की अष्टमी नवमी के दिन जगन्माता भगवती अद्विका की आराधना करने वाले पुरुष निरातङ्क होकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं । और वे शत्रुगण गर्वोक्तियों एवं खड्गों आदि से नित्य संतर्जित रहते जाते हैं । नवमी के दिन अर्चा करने पर देवी नवम फल प्रदान करती है, जो अत्यन्त पुण्य स्वरूपा, पवित्रा एवं धर्म सुख प्रदान करने वाली है । इसलिए मुण्डमाला से भूषित उस चामुण्डा देवी की सदैव पूजा करनी चाहिए । भगवती चामुण्डा के लिए (बलि रूप में) उपयोग किये जाने वाले महिष आदि सभी प्राणी स्वर्ग पहुँचते हैं और उनके हनन करने वाले को पाप भी नहीं लगता । ७-१७। विन्द्यवासिनी चामुण्डा (काली) देवी पुष्प, धूप, विलेपन एवं अन्य बलिदान से उतना सन्तुष्ट नहीं

उद्दिश्य दुर्गा हन्त्यन्ते विधानादेऽन्न जन्तवः । स्वर्गं ते यान्ति कौन्तेय घातयन्तोऽपि भक्तिः ॥१९
 भवानोप्राज्ञाणे प्राणा येषां याता युधिष्ठिर । तेषां स्वर्गं ध्रुवं वासो वरास्तेऽक्षरसां प्रियाः ॥२०
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु कल्पेषु कुरुनन्दन । तेषु सर्वेषु चैवासीन्नवमीयं पुरार्चिता ॥२१
 प्रसिद्धानादिनिधना वर्षेवर्षे युधिष्ठिर । भूयोभूयोऽवतारैश्च भवानी पूज्यते मुरैः ॥२२
 अवतीर्णा भुवि सदा नित्यं दैत्यनिर्बहिर्हणि । स्वर्गपातालमत्यंषु करोति स्थितिपालनम् ॥२३
 पुनश्चैषा महादेवी यशोदा गर्भस्तम्भदा । कंसासुरयोत्तमाङ्गे पादं दत्त्वा गतायुषः ॥२४
 ततः प्रभृतिलोकेषु यशोदानन्ददायिनीम् । विन्ध्याच्चले स्थापयित्वा पुनः पूजा प्रवर्तितः ॥२५
 पूर्वप्रवद्वोऽपि पुनर्भगिन्यः महिमा कृतः । भुवि सर्वोपकाराय सर्वोपद्वशान्तये ॥२६
 एवं विन्ध्योपवासिन्या नवरात्रोपवासिनः । एकरात्रेण नक्तेन स्वशक्त्याऽयाचितेन वा ॥२७
 यज्ञनैयाजनैर्देवाः स्थाने स्थाने पुरे पुरे । गृहे गृहे भक्तिपरेर्गमि ग्रामे वने वने ॥२८
 नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नैपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्तिचित्रैस्त्वच्छैरन्यैश्च मानवैः ॥२९
 स्त्रीभिश्च कुरुशार्दूल तद्विधानमिदं शृणु । जयाभिलासी नृपतिः प्रतिपत्यप्रभृतिक्रमात् ॥३०
 लोहाभिहारिकं कर्म कारयेद्यावदवृष्टमी । प्रागुदक्षप्रवणे देशे पताकाभिरलंकृतम् ॥३१
 मण्डपं कारयेद्विष्यं नवसप्तकरं वरम् । आप्नेयां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् ॥३२

होती, जितना कि वे महिष बलि द्वारा प्रसन्न होती हैं । दुर्गा जी के उद्देश्य से भक्ति पूर्वक एवं सविधान बध करने पर भी वह प्राणी स्वर्ग पहुँचता है । युधिष्ठिर ! भवानी के गृहाज्ञाण में जिन जीवों का प्राणोत्सर्ग होता है वे निश्चय स्वर्ग में निवास करते हैं और अप्सराओं के प्राण प्रिय होते हैं । कुरुनन्दन ! पहले समय सभी मन्वन्तरों के कल्पों में उस समय के समस्त प्राणियों द्वारा यह नवमी तिथि पूजित होती थीं । युधिष्ठिर ! देवों के प्रत्येक दिव्य वर्ष में परम प्रसिद्धा भवानी शिव की जो जन्म मरण से रहित है और यथावसर, अवतरित होती रहती हैं, देववृन्द सादर पूजा करते रहते हैं । दैत्यदानवादि विन्ध्यवासिनी भगवती दुर्गा इस भूतल में यथावसर अवतार धारण कर स्वर्ग एवं मर्त्य लोक की स्थिति तथा पालन किया करती है । पश्चात् यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होने वाली इन महादेवी जैसे उस समय क्षीराण्यु कंस के शिर पर चरण रखकर आकाश में उड़ गयी थी, उसी समय से विन्ध्याच्चल में स्थापित होकर लोक में उन यशोदानन्ददायिनी की पुनः पूजा प्रचलित हुई । इस भूतल में समस्त उपद्रवों की शान्ति पूर्वक परोपकारार्थं पूर्व स्मृत उनकी महिमा को उनकी भगिनी देवी ने अत्यधिक बढ़ाया । कुरुशार्दूल ! इस प्रकार विन्ध्यवासिनी देवी के निमित्त नवरात्र अथवा यथाशक्ति एक ही रात्र अयाचित अन्त का नक्त ब्रत करते हुए यजन याजन करने कराने वाले देवों मनुष्यों द्वारा जो प्रत्येक स्थानों, प्रत्येक नगरों, प्रत्येक घरों प्रत्येक गावों, जंगलों में स्नान के उपरान्त अत्यन्त हर्ष मग्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं अन्य मनुष्यों और स्त्रियों करना चाहिए, सुसम्पन्न होने वाले विधान को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! विजयेच्छुक राजा को प्रतिपदा से अष्टमी तक लोहाभिहारिक कर्म (युद्ध यात्रा के निमित्त शस्त्रादि का नीराजन विधान) करना चाहिए । १८-३० । पूर्व उत्तर के अन्तराल भाग अर्थात् इशान कोण के चतुष्पथ प्रदेश में सोलह हस्त का विस्तृत दिव्य मण्डप, जो पताकाओं से अत्यन्त सुसज्जित हो, और अग्नि कोण में एक हांथ का विस्तृत

मेषतात्रयसंयुक्तं योन्यश्वत्थदलाभ्या । राजचिह्नानि सर्वाणि शस्त्राण्यस्त्राणि यानि च ॥३३
 आनीय मण्डपे तानि सर्वाण्येत्राधिवात्येत् । ततस्तु ब्रह्मणः स्नातः शुक्लास्वरधरः शुचिः ॥३४
 अँकारपूर्वकैर्मन्त्रैस्तलिंगर्जहुयाद् धृतम् । लोहनामाभवत्पूर्वं दानवस्तु महाबलः ॥३५
 स देवैः समरे कुद्धैर्बृद्धा शक्तीकृतः । तदञ्जसन्भवं लोहं यत्सर्वं दृश्यते क्षितौ ॥३६
 शस्त्रास्त्रमन्त्रैर्हीतव्यं पायसं धृतसंयुतम् । हुतशेषं तुरङ्गाणां गजानामुपहारदेत् ॥३७
 लोहाभिहारिकं कर्म तेनैतदृषिः त्मृतम् । बद्धप्रतिशरव्यं च गजाश्वसमलंकृतम् ॥३८
 भ्रास्येन्नगरे नित्यं नन्दि घोषपुरस्सरस् । प्रत्यहं नृपतिः स्नात्वा सम्पूज्य पितृदेवताः ॥३९
 पूजयेद्वाजचिह्नानि फलमाल्यानुलेपनैः । दृतशेषं ब्रदातव्यमौपनायनिके द्विजे ॥४०
 तस्याभिहरणाद्वाज्ञः विजयः समुदाहृतः । पूजामन्त्रान्त्रवक्ष्यामि पुराणोक्तं नहं तव ॥४१
 यैः पूजिताः प्रयच्छन्ति कीर्तिमायुर्यशोबलम् । यथास्वुदश्छादयति शिवायेमां वसुन्धराम् ॥४२
 तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये । (इति छत्रमंत्रः) गन्धर्वं कुलजातस्त्वं नाभूयाः कुलदूषकः ॥४३
 ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च । प्रभावाच्च हुताशस्य वर्द्धस्वं त्वं तुरङ्गम् ॥४४
 तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा यथा । रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च ॥४५

एवं प्रति सुशोभन कुण्ड का निर्माण करना चाहिए, जो तीन मेखला और पीपल के पत्ते के आकार की योनि से सुशोभित हो । मण्डप में राजाओं के चिह्न स्वरूप सभी अस्त्रों शस्त्रों को लाकर उनके अधिवासन करना चाहिए । अनन्तर स्थान शुक्लवस्त्र धारण किये अत्यन्त पवित्रता पूर्ण किसी ब्रह्मण द्वारा औंकार के उच्चारण समेत तलिंगों के मंत्रों द्वारा वी की आतुरि प्रदान करायें । पहले समय में लोह नामक महाबली दानव उत्पन्न हुआ था, जिसे रणाङ्गन में देवों ने अत्यन्त कुद्ध होकर अनेक दुकड़ों में काटकर अलग कर दिया था । उसी के अङ्ग से उत्पन्न ये समस्त लोहे पृथ्वी में दिखायी पड़ रहे हैं । शस्त्रास्त्र मंत्रों के उच्चारण पूर्वक धृत पूर्ण पायस (खीर) की आतुरि डालने के उपरांत शेषभाग अश्वों और हांथियों को उपहार रूप ने प्रदान कर देना चाहिए । इसीलिए ऋषियों ने इसे लोहाभिहारक कर्म बतलाया है । तत्पश्चात् राजा को धनुष द्वारा से सुसज्जित होकर हाथी घोड़े को सजाये हुए नंदिघोष पुरस्सर नगर में चारों ओर नित्य धूमना चाहिए । इसी प्रकार प्रतिदिन राजा को स्नान देव पूजन के उपरांत फल माला, विलेपन आदि द्वारा अपने राज चिह्नों (शस्त्रादिकों) का पूजन करके हवन शेष भाग यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किसी परमोत्तम ब्रह्मण को अर्पित करना चाहिए । प्रत्यक्ष अथवा उसे चोरी रूप में उसके ले लेने पर राजा की निश्चित विजय होती है । मैं पुराणोक्त उन पूजा मंत्रों को तुम्हें बता रहा हूँ जिसके द्वारा पूजन करने पर देवता कीर्ति, आयु यश और बल प्रदान करता है । जिस प्रकार मेघ (लोक) कल्याणार्थ इस वसुन्धरा को आच्छादित करते हैं उसी भाँति विजय और आरोग्य के वृद्ध्यर्थ (तुम) राजा को आच्छादित करो । इस मंत्र से छत्र प्रदान करो । तुरङ्गम् ! गन्धर्वं कुल में उत्पन्न होने के नाते तुम कभी भी कुल कलङ्कित न करना । ३१-४३ । ब्रह्मा के सत्य वाक्य द्वारा तथा सोम, वरुण एवं अग्नि के प्रभाव और सूर्य के तेज, मुनियों के तप, भगवान् रुद्र के ब्रह्मचर्य तथा पवनस्य बल से सदैव वृद्धि प्राप्त करो ।

स्मर त्वं राजपुत्रोऽसि कौस्तुभं च मर्णि स्मर । यां गतिं ब्रह्महा गच्छेत्पितृहा मातृहा तथा ॥४६
 भूम्यर्थेनृतवादी च क्षत्रियश्च पराइमुखः । सूर्याच्चन्द्रमसौ वायुः पादकश्च न यत्र वै ॥४७
 व्रजेच्च तां गतिं क्षिप्रं तच्च पापं भवेत्किल । विकृतिं^१ यदि गच्छेस्त्वं युद्धेऽध्वनि तुरङ्गम् ॥
 रिपूनिविजित्य समरे सह भर्त्रा मुखी भव ॥४८

॥ (इत्यन्यत्थमन्तः) ॥

शकेकेतो महावीर्य सुर्णस्त्वय्युपस्थितः । पत्तिराङ्गुनतेष्टथा नारायणऽवजः ॥४९
 काश्यपेयोऽमृतो ज्ञेयो नागारिविष्णुवाहनः । अप्रमेयो दुराधर्षो देवशत्रुनेशूदनः ॥५०
 गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि सन्निहितः स्थितः । शस्त्रबर्मायुधान्योधान् रक्षास्मांश्च रिपून्दह ॥५१

॥ (इति ध्वजमन्तः) ॥

कुमुदैरावणो पदः पुष्पदन्तोऽथ धामनः । सुत्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः ॥५२
 एतेषां पुत्रपीत्राश्र बलान्यष्टौ समाधिताः । भद्रो मन्त्रो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च ॥
 वनेवने प्रसूतास्ते करियोन्ति महागजाः ॥५३

पांतु त्वां वसवो रुदा आदित्याः समरदगणाः । भर्तरं रक्ष नागेन्द्र समयं प्रतिगालयन् ॥५४
 अवापुर्हि जयं युद्धे गमने स्वस्ति तो वज । श्रीस्ते सोमाद्वलं विष्णोस्तेजः सूर्यज्ज्वरोन्निलात् ॥
 स्थैर्यमेरोर्जयं रुद्राद्यशो देवात्पुरन्दरात् ॥५५

युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वं दिशश्च सह दैवतेः । अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा ॥५६

इस बात का स्मरण करो कि तुम राजपुत्र हो। उसी भाँति कौस्तुभमणि का भी स्मरण करो। तुरङ्गम्! यदि युद्ध स्थल में जाकर तुम्हारे मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो जाये, तो ब्रह्म हत्या, और पितृ मातृ की हत्या करने वाले, भूमि के लिए झूठ बोलने वाले एवं युद्ध से पराङ्मुख होने वाले क्षत्रियों की गति शीघ्र प्राप्त करो। तथा उन पापों के भागी भी हो जहाँ सूर्य, चन्द्रमा, वायु और अग्नि देव नहीं रहते। अतः समराङ्गन में विजय प्राप्त कर अपने स्वामी समेत सुख का अनुभव करो, यह अस्वमंत्र है। ४४-४८। शकेतो! एवं महापाराक्रमशालिन्! तुम्हारे यहाँ पक्षिराज गरुड़ उपस्थित हैं, जो नारायण के ध्वज कश्यप के पुत्र, अमृत, नागों के शत्रु, विष्णु के वाहन हैं। मारुत गति वाले गरुत्मान् (गरुड़) जो अप्रमेय दुर्धर्ष एवं देवशत्रुओं के विनाशक हैं, तुम्हारे समीप स्थित हैं अतः शस्त्रास्त्र एवं कवच धारण करने वाले मेरे उन योधाओं की रक्षा करो। और शत्रुओं का विघ्नसं करो। यह ध्वज कामंत्र है। ४९-५१। कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन, और नील यह आठ प्रकार देव योनियाँ हैं। इनके पुत्रों और पौत्रों ने आठ प्रकार की सेनाएँ स्थापित की। जिनके द्वारा भद्र, मन्द, मृग, गज की उत्पत्ति हुई और उन्हीं लोगों ने प्रत्येक जंगलों में हाथी योनि वाले महागजराजों को जन्म दिया है। नागेन्द्र! इसीलिए वसु, रुद्र, आदित्य, मरुदगण तुम्हारी रक्षा करें और तुम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार स्वामी की रक्षा करो। युद्ध में सदैव उन लोगों ने विजय प्राप्त की है अतः उस रथयात्रा में गमन करो जिससे मेरा और तुम्हारा दोनों का कल्याण हो। तुम्हें सोम से भी, विष्णु, बल, सूर्य से तेज, वायु से वेग, मेरे से स्थैर्य, रुद्र से जप और पुरन्दर देव को यश की प्राप्ति हो, युद्ध में नागगण और देवों समेत दिशाएँ तुम्हारी रक्षा करें। ५२-५६।

१. किंकृतिम् ।

(इति हस्तिमन्त्रः)

हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः । नागकिन्नरगन्धर्वदक्षभूतगणाग्रहाः ॥५७
 प्रमथाश्च सहादित्यभूतेशोमातृभिः सह । शक्सेनापतिः स्कन्दे वरुणश्चाश्रितास्त्वयि ॥५८
 प्रदहन्तु रिपून्सर्वान्तराजा विजयमृच्छतु । यानि प्रयुक्तान्यरिभीर्बृषणानि समन्ततः ॥५९
 एतानि परशकूणां हतानि तव तेजरा । कालनेमिवधे युद्धे युद्धे त्रिपुर धातने ॥६०
 हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे देवासुरे तथा । शोभितासि तथैताद्य शोभमानात्तु भूपतेः ॥६१
 नीलां श्वेतामिमां दृष्ट्वा नश्यं त्वद्य नृपारयः । व्याधिभिर्विविधैर्दोरैः शस्त्रैश्च युधं निजिताः ॥६२
 सद्यः स्वस्था भवन्ति स्म त्वद्वातेनापमार्जिताः ॥६३
 पूतना रेवती नाम्ना कालरात्रीति या स्मृता । दहन्त्वाशु रिपून्सर्वान्यताके त्वामुपागताः^१ ॥६४

(इति पताकामन्त्रः)

असिश्च रिपुहा खड्गस्तीक्षणकर्मा दुरासदः । श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मधारस्तथैव च ॥६५
 इत्यष्ठो तव नामानि स्वमुक्तानि वेधसा । नक्षत्रं कृत्तिका तुभ्यं गुरुर्देवो महेश्वरः ॥६६
 हिरण्यं च शरीरं ते धाता देवो जनार्दनः । पिता पितामहो देवस्त्वं मां पालय सर्वदा ॥६७

(इति खड्गमन्त्रः)

शर्मप्रदस्त्वं समरे वर्म सर्वायसो हृसि । रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तव वर्मन्नमोऽस्तु ते ॥६८
 (इति वर्ममन्त्रः)

उसी भाँति गन्धवर्णों समेत अश्विनी कुमार चारों ओर से तुम्हारी सदैव रक्षा करें । यह हाथी का मंत्र है । अग्नि, वसुगण, रुद्रगण, वायु, सोम, महर्षिगण, नाग, किन्नर, गन्धर्व, यक्ष, भूतगण, ग्रहगण, आदित्यों समेत प्रथम गण, मातृकाओं समेत भूतेश (शिव), इन्द्र सेनापति स्कन्द एवं वरुण तुम्हारे आश्रित रह रहे हैं, ये समस्त रिपुओं को नष्ट करें जिससे राजा को विजय प्राप्त हों एवं शत्रुओं द्वारा चारों ओर प्रसारित अन्य समस्त दोष भी तुम्हारे तेज द्वारा नष्ट होते रहते हैं । कालनेमि के वध करने के समय युद्ध में और त्रिपुरासुर, हिरण्यकशिपु के हनन एवं देवासुर के संग्राम में तुम सदैव सुशोभित थे । उस भाँति आज भी सुशोभमान हों, जिससे तुम्हारे इस नील श्वेत वर्ण को देखते ही शत्रुगण नष्ट हो जायें । अनके भाँति की व्याधियों एवं धोरशस्त्रों द्वारा युद्ध में पराजित होने वाले मेरे योद्धागण तुम्हारी वायु द्वारा अपमार्जित होने पर उसी क्षण स्वस्थ होते रहें । उस प्रकार पूतना, रेवती और कालरात्रि आदि तुम्हारे समीप रहकर शीघ्र समस्त शत्रुओं का संहार करें । ५७-६४ । यह पताका का मंत्र है । असि (तलवार), शत्रुहन्ता, खड्ग, तीक्षणकर्मा, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मधार, तुम्हारे इन आठ नामों को ब्रह्मा ने स्वयं कहा है । गुरु देव महेश्वर ने तुम्हें कृत्तिका नक्षत्र प्रदान किया है । और देवाधीश जनार्दन ने हिरण्य शरीर दी है । इसलिए तुम पिता पितामह देव के रूप में मेरी सदैव रक्षा करो । ६५-६७ । यह खड्गमन्त्र है । वर्मदेव ! मैं तुम्हें बार बार नमस्कार कर रहा हूँ, क्योंकि संग्राम में तुम सदैव कल्याण प्रदान करते हो और सर्वाङ्ग लोह रूप हो अतः मुझ रक्षणी की रक्षा करो । ६८ । यह वर्ममन्त्र है । दुन्दुभे ! तुम अपनी गम्भीर ध्वनि से शत्रुओं के

१. त्वय्युपाधिता : ।

दुन्दुभे त्वं सपलानां घोषाद्वयकम्पन । भव भूमिष्य सैन्यानां तथा विजयवद्धेनः ॥६९
यथा जीमूतघोषेण हृष्यन्ति वरवारणाः । तथास्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावहः ॥७०
यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते । तथा च तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्विषो रणे ॥७१

(इति दुन्दुभिमन्त्रः)

सर्वायुध महामात्र सर्वदेवारिसूइन । चाप मां सर्वदा रक्ष सतकं सायवसत्तमैः ॥७२
(इति चापमन्त्रः)

पुण्यस्त्वं शङ्खं पुष्पाणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ; विष्णुना विधृतो नित्यं मनः शान्तिप्रदो भव ॥७३
(इति शङ्खमन्त्रः)

शशाङ्ककरसंकाश हिर्मङ्गडीरपाण्डुर । प्रोत्सारयाणु दुरितं चामरामरवल्लभ ॥७४
(इति चामरमन्त्रः)

रावायुधानां प्रथमा निर्मिताऽसि पिनाकिना । शूलायुधाद्विनिष्कृष्य कृत्वा मुष्टिपरिग्रहम् ॥७५
चण्डिकायाः प्रदत्तासि सर्वदुष्टनिर्बाहिणि । तथा विस्तारितः चासि देवानां प्रतिपादिता ॥७६
सर्व सत्त्वाङ्गभूतासि सर्वाशुभनिवारिणी । छुरिके रक्ष मां नित्यं शान्तिं यच्च नमोऽस्तु ते ॥७७
(इतिच्छुरिकामन्त्रः)

प्रोत्सारणाय दुष्टानां साधुसंग्रहणाय च । ब्रह्मणा निर्मितश्वासि व्यवहारप्रसिद्धये ॥७८
यशो देहि सुखं देहि जयदो भव भूपतेः । ताडयाणु रिपून्सर्वान्हेमदण्ड नमोऽस्तु ते ॥७९
(इति कनकदण्डमन्त्रः)

हृदय को सदैव कम्पित करती हो इसलिए राजसेनाओं की विजय वृद्धि अवश्य करो । जिस प्रकार मेघ के गम्भीर गर्जन करने से मत्तगजराज प्रसन्न होते हैं उत्त प्रकार अपने शब्दों से हमें हर्षित करो । जिस प्रकार मेघ के गर्जन करने से स्त्रियों को भय उत्पन्न होता है, उसी भाँति तुम अपनी ध्वनि से मेरे शत्रुओं को भयभीत करो ॥६९-७१। यह दुन्दुभि मंत्र है । समस्त आयुधों के महाअमात्य ! समस्त देव शत्रुओं का तुम विनाश करते हो अतः उत्तम साधकों समेत तुम मेरी सर्वदा रक्षा करो । यह चाप मंत्र है ॥७२। शङ्ख ! तुम पुण्यों के पुण्य और मङ्गलों के मङ्गल हो भगवान् विष्णु तुम्हें नित्य धारण करते हैं अतः मुझे मनः शान्ति प्रदान करने की कृपा करें ॥७३। यह शङ्ख मंत्र है । देव वल्लभ, चामर ! चन्द्रमा दी किरण समूह, हिम और समुद्र फेन की भाँति आप (उज्ज्वल छटा से) भूषित है अतः मेरे दुरितों का शीघ्र शमन करें ॥७४। यह चामर मंत्र है । समस्त आयुधों में सर्वप्रथम पिनाकी (शिव) द्वारा तुम्हारा निर्माण हुआ है । उन्होंने अपने शूल से निकाल कर एक मुट्ठी की विस्तृत शारीर तुम्हें प्रदान की है । समस्त दुष्टों के विश्वस करने के नाते मैंने तुम्हें भगवती चण्डी को अर्पित किया है । तुम्हारा विस्तार भी उसी भाँति हुआ है और देवों ने तुम्हारी सर्वत्र प्रशंसा की है, तुम समस्त प्राणियों के अग्रभूत हो और उनके अशुभों को सदैव विनाश करती हो । इसलिए शान्ति प्रदान पूर्वक मेरी नित्य रक्षा करो । मैं तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ ॥७५-७७। यह छुरिका (कटार) मंत्र है सुवर्णदण्ड दुष्टों के निवारण साधु सज्जनों के संग्रहार्थ एवं लोक-व्यवहार को स्पात करने के लिए ब्रह्मा ने तुम्हारा निर्माण अतः राजा को यश, सुख और विजय प्रदान करते हुए उनके समस्त शत्रुओं की शीघ्र ताडना करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ ॥७८-७९। यह कनक दण्ड मंत्र है । विजय,

विजयो जयदो जेता रिपुर्धाती प्रियङ्करः । दुःखहा धर्मदः शान्तः सर्वारिष्टविनाशनः ॥८०
 एतेऽष्टौ संनिधौ यस्मात्तव सिंहा महाबलाः । तेन सिंहासनेति त्वं विप्रैर्देषु गीयसे ॥८१
 त्वयि स्थितः शिवः साक्षात्त्वयि शकःसुरेश्वरः । त्वयि स्थितो हरिर्देवस्त्वदर्थं तप्यते तपः ॥८२
 नमस्ते सर्वतो भद्र भद्रदो भद्र भूपते । त्रैलोक्यजयसर्वस्व सिंहासन नमोऽस्तु ते ॥८३
 (इति सिंहासनमन्त्रः)

लोहाभिहारिकं कर्म कृत्वेदं मन्त्रपूर्वकम् । फलनैवेऽकुसुमैर्घूपदीपविलेपनैः ॥८४
 अष्टम्यां धावनं कृत्वा पूर्वाह्ले स्नानमाचरेत् ॥८५

(अथ गद्यम्)

दुर्गा काञ्चनसूर्ति रौप्यां धा पैतलीं वार्षीं चैत्रीं ताम्रीं वाधिभवतः कृत्वा दारुविचित्रतोरणविन्यस्तां
 शोभने स्थाने पुरतो विन्यस्तदृष्टं विचित्रगृहमध्यगां क्षातां कुंकुमचन्दनगत्थैश्व्रतुः समैश्वरी-
 पट्टैश्चर्चितगात्रां देवीं कुमुमैरभ्यर्थ्यं तां बहुभिः पूर्णमाणकीर्तिस्तरैर्द्विं जननैजंनितपारितोषे-
 दिवान्वितो नरेन्द्र स्वयंप्रयच्छेत्पुरोहितैः सार्थं बिल्वपत्रेणःर्देनेन मन्त्रेणानेन भगवत्यै ॥

(इति गद्यं सम्पूर्णं) ॥

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपलिनी । दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥८६
 अमृतोद्भूवः श्रीवृक्षो महादेवीप्रियः सदा । बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥८७

जयद, जेता, रिपुर्धाती, प्रियंकर, दुःख हन्ता, धर्मप्रद और सम्पूर्ण अरिष्टों का शमन करने वाला शान्त, ये आठ महाबलवान् त्रिहृषि तुम्हारे समीप सदैव रहा करते हैं, इसीलिए विप्रमण्डल वेदों आदि में ‘सिंहासन’ नाम से तुम्हारा गान करता है । तुम्हारे ऊपर साक्षात् शिव, देवाधीश इन्द्र और विष्णु सदैव स्थित रहते हैं, और तुम्हारे लिए देववृन्द तप भी कर रहे हैं । सर्वतोभद्र ! राजा के लिए कल्याणप्रदान करो, तुम्हें नमस्कार है, सिंहासन ! तुम त्रैलोक्य के विजय और सर्वस्व हो अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ ॥८०-८३। यह सिंहासन मंत्र है । इस प्रकार फल, नैवेद्य, धूप, दीप और विलेपन द्वारा मंत्रोच्चारण पूर्वक लोहाभिहारिक कर्म सुसम्पन्न करके । अष्टमी के दिन धावन के उपरांत पूर्वाह्ल काल में स्नान करे । भगवती दुर्गा जी की सुवर्ण, चाँदी, पीतल, वार्षी, चैत्री अथवा ताँबें की प्रतिमा किसी शोभन स्थान में स्थापित कर, जो चित्र विचित्र तोरण बन्दनवार आदि से सुसज्जित किया गया हो, मन्दिर के मध्य भाग में स्नान कराने के अनन्तर कुंकुम, चन्दन, गंध, और वस्त्र चीर से विभूषित, पुष्पों से अचित और अनेक ब्राह्मण विद्वानों द्वारा की गयी स्तुतियों से सन्तुष्ट होने पर उस मन्दिर में भगवती देवी जी के सम्मुख राजा को पुरोहित द्वारा मंत्रोच्चारण पूर्वक उन्हें बिल्वपत्र प्रदान करना चाहिए—आप जयती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपलिनी, दुर्गा, शिवा क्षमा, धात्री, स्वाहा और स्वधा रूप को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ ॥८४-८६। यह भी वृक्ष (बिल्व वृक्ष) अमृत से उत्पन्न होने के भी महादेवी जी को अत्यन्त प्रिय है, सुरेश्वरि ! वही पवित्र बिल्वपत्र मैं आप को अर्पित कर रहा हूँ । अनन्तर सुरेश्वरी एवं भगवती श्री दुर्गा

दुर्गा सन्मूजनीया च तद्विजाद्व्रोणपुष्पया^१ । सा चामीष्टा सुरेशान्यास्तथा रुद्रणायुतः ॥८८
 ततः खड्गं नमस्कृत्य शत्रूणां भानमर्दनम् । इच्छेत्स्वविजयं राज्यं सुभिक्षं चात्मनो नृप ॥८९
 पुनः^२ पुनः प्रणम्याथ ध्यादेच्च हृदये शिवाम् । महिर्षद्वीं वहुभुजां कुमारीं सिंहवाहिनीम् ॥९०
 दानवान्तर्जयन्तीं खड्गोदधृतकरां शुभाम् । घण्टाक्षशङ्खरां दुर्गां^३ रणारम्भे व्यवस्थिताम् ॥९१
 ततो जयजयादारैः स्तवं कुर्यादिमं ततः ॥९२

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वर्थसाधिके । शरण्ये अग्न्यके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥९३
 कुंकुमेन समालब्धे चन्दनेन दिलेपिते । दिल्वपत्रकृतमाले दुर्गेऽहं शरणं गतः ॥९४
 कृत्वैदमच्चर्यां कौरव्य अष्टमां जागरं निशि । नटर्नत्नगीतश्च करपेतु महोत्सवम् ॥९५
 एवं हृष्टैर्निशां नीत्वा ग्रभाते चारुणोदये । पातयेन्महिषाम्भेषानग्रतो नतकन्धरान् ॥९६
 शतं चापि शताधीं वा तदद्दुं वा यथेच्छया । सुरासवभृतैः कुम्भैस्तर्पयेत्परमेभरीम् ॥९७
 कापालिकेभ्यस्तद्देयं दासीदासजनैस्तथा । विभज्य सर्वं कौन्तेय सुहृत्सम्बन्धिबन्धुषु ॥९८
 ततोपराह्लसमये नवम्यां स्थन्दने स्थिताम् । भवानीं भ्रामयेद्राष्टुं स्वयं राजा सतैन्यवान् ॥९९
 सहस्रैः पुरुषैर्वर्णिः रथयुक्तैः सुशिक्षितैः । शनैः शनैरधिकया दीप्त्या प्रज्वलदीपकैः ॥१००

जी की अर्चा से रण के निमित्त रखे हुए मांगलिक पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करते हुए उनके पाश्वर्भ भाग में व्रण रहित एक सुन्दर आसन पर स्थित अन्य देवियों की पूजा करनी चाहिए । नृप ! तत्पश्चात् राजा को चाहिए कि शत्रुओं के मान मर्दन करने वाले खड्ग और अपने राजा को सुभिक्ष होने की कामना करे । इस प्रकार महिषासुर विनाशिती भगवती शिव (दुर्गा) का, जो अनेक भुजाओं से भूषित, कुमारी, सिंहवाहिनी, दातव्यों को तर्जित करती, हाथ में शुभ खड्ग लिए, घंटा, अङ्गमाला से सुशोभित रणारम्भ के लिए प्रस्तुत दिवायी देती हैं, अपने हृदय में तन्मय ध्यान और बार-बार प्रणाम करके 'जय जय' शब्दों तथा निम्न लिखित मंत्रों उच्चारण पूर्वक उनकी अम्यर्थना करे—शिव ! आप समस्त मङ्गल समूहों के माङ्गलितक रूप, सम्पूर्ण कामनाओं को सफल करने वाली, आर्त जनों के शरण्य (शरण देने वाली), और तीन नेत्रों से भूषित हैं अतः आप गौरी नारायणी को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ । ८७-९३। कुंकुम मिश्रित चन्दन से सर्वाङ्ग चर्चित तथा बिल्व पत्र करवीर माला से सुशोभित भगवती दुर्गा की शरण में मैं उपस्थित हूँ । कौरव्य ! इस प्रकार उनकी अर्चा करके उस अष्टमी की रात्रि में नटों आदि नर्तन और गीत द्वारा जागरण करते हुए उस महोत्सव को सुसम्पन्न करे । इस भाँति प्रसन्नता पूर्ण रात्रि के व्यतीत होने पर प्रातः काल सूर्योदय होते समय देवी जी के सम्मुख सौ, पचास, पचीस अथवा यथेच्छ भैंसे और भेंडों की बलि तथा सुरा आसव पूर्ण कलशों के अर्पण द्वारा भगवती परमेश्वरी को अत्यन्त रूप्त करे । उपरान्त दासी दास एवं स्वजनों द्वारा उसके यथोचित विभाग करके कापालिक, मित्रों संबद्धियों एवं बन्धु वर्गों में वितरण कराये । और अपराह्ल के समय नवमी में सुसज्जित रथ के ऊपर देवी जी को बैठाकर अपने राष्ट्र में सेना समेत राजा चारों और भ्रमण कराये । ९४-९९। उनके उस यात्रा में सुशिक्षित सहस्रों पुरुषों,

१. द्विजेन्द्रेणसुशिष्यया । २. प्रणम्यादौ चिन्तयते शिवां महिषमर्दिनीम् । कुमारीं तोषयन्तीं च खण्डचन्द्रयुतां शुभाम् ।

आकृष्टखड्गीर्वरैश्च धातुरतैगजैस्तथा । नदद्विः शत्पटहनृत्यद्वि॑वरयौवतैः ॥
 अलंकृताभिनरीभिर्बालिकैः सुविभूषितैः ॥११०१
 भूतेऽप्स्तु बलिं द्वान्मन्त्रेणानेन सामिषम् । सरक्तं सजलं सान्न गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ॥११०२
 त्रीमीन्वारान्स्त्रश्लेन दिग्दिक्षु क्षिपेद्वलिम् । बलिं गृह्णन्त्वमं देवा आदित्या वसवस्तथा ॥११०३
 मरुतोऽभाश्विनौ रुद्राः सुपर्णा पञ्चगा ग्रहाः । असुरा यातुधानाश्च मातरश्च पिशाचकाः ॥११०४
 शाकिन्यो यक्षवेतात् योगिन्यः पूतनाः शिवाः । जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा व्याला विद्याधरा ध्राः ॥११०५
 दिग्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः । जगतां शान्तिकर्तारो द्वृग्याद्याश्च महर्षयः ॥११०६
 सविघ्नं मम पापं ते शाम्यन्तु परिपत्थन्तः । सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूताः प्रेताः उखावहाः ॥११०७
 इत्येवं ब्राम्येद्राष्ट्रे दुर्गा देवीं रथे स्थिताम् । नरघनेन वा पार्थ ततोऽविघ्नं समापयेत् ॥११०८
 अथोत्पन्नेषु तिष्ठेषु भूतशान्तिं समाचरेत् ! येन विघ्ना न जायन्ते यात्रा सम्पूर्णतां द्रजेत् ॥११०९
 एवं ये कुर्वते यात्रां राजानोऽन्येऽपि मानवाः । महानवम्यां नन्दायां पुत्रका दृष्टमानसाः ॥१११०
 ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति भागवतीं पुरीम् ॥११११
 न तेषां शावक्रोनाप्तिर्न चौरा न विनायकाः । विघ्नं कुर्वन्ति राजेन्द्र येषां तुष्टा महेश्वरी ॥१११२
 नीरुजः सुखिनो भोगभोक्तारो भयवर्जिताः । भवन्ति भक्ताः पुरुषाः भगवत्याः किमुच्यते ॥१११३

प्रज्वलित अनेक दीप, हाथ में खड़ग लिए योद्धागण, सुशोभित हाथियों के वृन्द, शंख, ढोल की ध्वनि, नृत्य करती हुई वेश्यागण, अन्य सुभूषित सुन्दर स्त्रियों और विभूषित बालकों को रहना चाहिए। इसके अनन्त र भूतों के लिए मंत्रोच्चारण पूर्वक सामिष बलि, जो रक्त, जल, अच, गन्ध, पुष्प तथा अक्षत पूर्ण हो, त्रिशूल द्वारा तीन-तीन बार प्रत्येक दिशाओं विदिशाओं में रखते समय कहना चाहिए—देववृन्द, आदित्य गण, वसुगण, मरुदगण, अश्विनी कुमार, छदगण, गरुड़, सर्पगण, ग्रहगण, असुर, यातुधान, पिशाच, मातृकाएँ, शाकिन्याँ, यथा, वेताल, योगिनी पूतना, शिवा, जृम्भक गण, सिद्ध, गन्धर्व, बालाओं समेत विद्याधर गण प्रसन्नता पूर्ण इस स्वीकार करें और विक्षपाल, लोकपाल, विघ्नविनायक, जगत् की शान्ति रखने वाले एवं इसके निर्माता द्वृहा आदि देववृन्द, मर्हिंगण, पापों के शमनपूर्वक मेरी विघ्नवाधा दूर करें। भूत प्रेत (इस बलि द्वारा) तृप्त एवं सौम्य होकर मुझे सुखी बनायें। पार्थ ! इस भाँति मनुष्य वाहनं रथ पर प्रतिष्ठित दुर्गा जी को सम्पूर्ण राष्ट्र में भ्रमण कराने के अनन्तर इस महोत्सव को निर्विघ्न समाप्त करें। किसी प्रकार के विघ्न उपस्थित होने पर भूत शान्ति करनी चाहिए जिससे वह यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो जाये। इसी प्रकार की यात्रा करने वाला राजा तथा अन्य मनुष्य वृन्द, जो महानवमी के दिन पुत्रादि परिवार समेत प्रसन्नता पूर्ण उसमें तल्लीन रहते हैं, पापमुक्त होकर देवी की वह उत्तम पुरी प्राप्त करते हैं। १००-१११ राजेन्द्र ! जिस प्राणी पर भगवती महेश्वरी सन्तुष्ट रहती हैं, उसे अग्नि, चोर अथवा विनायक आदि द्वारा किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता है, अपितु नीरोग, सुखी, भोग भोक्ता, एवं भगवती का भय रहित भक्त होता है इससे और अधिक इस विषय में क्या कहा जा सकता है। मैंने तुम्हें भगवती दुर्गा देवी का महोत्सव सुना दिया, जिसके पढ़ने अथवा सुनने वालों के समस्त अशुभ विनष्ट हो जाते हैं।

इत्येष ते समाख्यातो दुर्गादेव्या महोत्सवः । पठतां शृङ्खतां चैव सर्वाशुभविनाशनः ॥११४

शूलाद्रभिन्नमहिषासुरपृष्ठविष्टामृत्खातखडगरुचिराङ्गदबाहुदण्डाम् ।

अभ्यर्च्य पञ्चवदनानुगतां नवम्यां दुर्गा सुदुर्गगहनानि तरन्ति मर्त्याः ॥११५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

महानवमीव्रतवर्णनं नामाल्टशिशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महेन्द्रध्वजमहोत्सववर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे ब्रह्मादैरमरैर्नृपैः । विजयार्थं महेन्द्रस्य ध्वजयष्टिः प्रतिष्ठिता ॥१

मेरोरुपरि संत्थाप्य सिद्धविद्याधरोरगैः । सा देवी हृचिता नित्यं भूषणैभूषिता स्वकैः ॥२

स्वच्छुघण्टपिटकैः किञ्चुणोबद्धबुद्धैः । तां दृष्ट्वा दानवा नष्टा भयादेव रणे हताः ॥

गता रसातलं दैत्या देवाश्चापि दिवि स्थिताः ॥३

ततः प्रभृति तां दिव्यामिन्द्रयष्टिं यजन्ति ते । देवाः सर्वे गणाः सर्वे हृष्टास्तुष्टा युधिष्ठिर ॥४

इस प्रकार नवमी के दिन उस भगवती दुर्गा जी की अर्चना करने से मनुष्य गण अत्यन्त दुर्गम एवं गहन परिस्थितियों को सहज ही में पार कर लेते हैं, जो शूल के अग्रभाग से छिन्न-भिन्न अंग वाले महिषासुर की पीठ पर स्थित, ऊपर उठाये हुए खड़ग की रुचि कान्ति और अंगद आभूषण से सुशोभित बाहुओं को धारण करती है तथा पाँच मुख भूषित हैं । ११२-११५

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में

महानवमी व्रत वर्णन नामक एक सौ अङ्गीकारां अध्याय समाप्त । १३८।

अध्याय १३९

इन्द्रध्वजमहोत्सव का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! पहले समय देवों और राक्षसों के युद्ध में ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने इन्द्र के विजयार्थ ध्वज दण्ड प्रतिष्ठित किया था । सिद्ध विद्याधर एवं नागगणों ने मेरु के ऊपर उसे स्थापित कर अपने भूषणादि धनुओं द्वारा देवी जी की नित्य अर्चना आरम्भ किया था जिसमें सौन्दर्य पूर्ण छत्र, धंटा एवं छोटी-छोटी धंटियों से मुखरित पिटक (आभूषण पात्र) भी अर्पित किया गया था । देवी देवते ही दानवगण उस रणस्थल में भय वश नष्ट हो गये, शेष रसातल चले गये और देवगण पुनः स्वर्ग में विराजमान हुए । १-३। युधिष्ठिर ! उसी समय से देवगण उस दिव्य इन्द्र यष्टि की अत्यन्त प्रसन्नता से नित्य

अतः स्वर्गं गतो राजा सूरिपुण्यवशाद्वसुः । इन्द्रलोके महाभागो बनुदेवैः सुपूजितः ॥५
तस्मै दत्ता महेन्द्रेण बनुयस्ति: प्रगृह्यताम् । पूजयित्वा महाभाग सर्वदैत्यापनुत्तये ॥६
अवतार्य वर्षासमये सर्वैनृपतिभिः सह । मह्यां सम्पूजयामास चक्रे चन्द्रमहं दसुः ॥७
महेन मधवा प्रीतो ददौ पुण्यं वसोर्वरम् ॥८

येषु देशेषु मनुजा भक्तिभावपुरः सराः । पूजयन्ति वर्षान्ते मया दत्तं महाध्वजम् ॥९
तेषु देशेषु मुदिताः प्रजाः रोगविवर्जिताःः प्रभूताश्च धर्षयुक्ता वृषनेधा महोत्सवाः ॥१०
भविष्यन्ति सुवेषाश्च सुभाषाश्च सुभूषणाः ॥११

श्रुत्वैतद्वचनं राजा वसुर्वसुमतां वरः । विशेषेण ततश्चक्रे वर्षेवर्षे भहोत्सवन् ॥१२
श्रवणे स्थापयेद्यस्ति: स्नानवस्त्रैः प्रपूजिताम् । दैर्घ्येण विंशतिकरं सारदाहमर्या शुभम् ॥१३
इन्द्रस्थाने पुरोद्दिष्टे इन्द्रमातृसंजके । तस्मिन्न्यस्ति: नृपो भोक्ता स्वयं यत्नेन योजयेत् ॥१४
वस्त्रैर्विचित्रैः सम्वीतां पिटिकालंकृतां तथा । पिटिकानां महाराज क्रमं च कथयामि ते ॥१५
प्रथमं लोकपालाख्यं चतुरखं सकर्णिकम् । यमेन्द्रधनदैर्घ्यकं वरुणेन समं ततः ॥१६
वृत्तं खण्डाल्कं रम्यं द्वितीयं रक्तचूर्णितम् । तृतीयं श्वेतकं चित्रमष्टाखं पिटकं शुभम्^१ ॥१७
चतुर्थमिन्द्रगोपालवृत्तं मातृसमावृतम्^२ । पञ्चमं चाष्टकोणं तु शुक्लं धातुविचित्रितम्^३ ॥१८

पूजा करते हैं । इसी द्वारा अत्यन्त पुण्य प्राप्त कर राजा वसु स्वर्ग लोक चले गये । वहाँ उस दिव्य अमरावती में उस महाभाग का समस्त देवों ने अत्यन्त सम्मान किया और महेन्द्र देव ने वसु यस्ति के नाम से अपनी वह दिव्य यस्ति उन्हें प्रदान की । महाभाग ! समस्त दैत्यों के विनाशार्थ उसकी पूजा करके वर्षा काल में उसे वहाँ से लाकर पृथिवी पर स्थापित किया और समस्त राजाओं समेत उसकी सविधान अर्चना की । उससे प्रसन्न होकर इन्द्र ने वसु को पुण्य वर प्रदान किया—जिन-जिन देशों में मानवगण अत्यन्त भक्तिभाव से वर्षा काल में इस मेरे द्विये हुए ध्वज की अर्चना करेंगे, उन देशों की प्रजाएँ सदैव मुदित, रोग रहित, अभूत अन्धयुक्त, धार्मिक, तीक्ष्ण बुद्धि रहकर अनेक महोत्सवों को सुसम्पन्न करते रहेंगे । उनके सुन्दर वेष, प्रशस्त भाषा एवं सौन्दर्य पूर्ण भूषण होंगे । इसे सुनकर वसुयेष्ठ राजा वसु प्रतिवर्ष उस महोत्सव को विशेषतया सुसम्पन्न करने लगे । श्रवण नक्षत्र में उस यस्ति को स्थापित कर स्नान वस्त्र से उसकी सविधि अर्चा करे, जो बीस हांथ का विस्तृत एवं काष्ठ के सारभाग से शुभमूर्ति बनायी गयी हो । इन्द्र मातृ संजक उस इन्द्र स्थान में उपभोक्ता राजा को स्वयं वह यस्ति स्थापित करनी चाहिए, जो विचित्र वस्त्र से आच्छन्न और पिटिक से अलंकृत हो । महाराज ! मैं तुम्हें पिटिकों के क्रम बता रहा हूँ । ४-१५। सुनो ! लोकपाल नामक पहला पिटक बताया गया है जो कर्णिका समेत चौकोर आकार का होता है यह इन्द्र, कुबेर और वरुण उसके चारों ओर वर्तमान रहते हैं । वृत्त (गोल) खण्ड, रमणीयक एवं रक्त चूर्ण से निर्भित होने वाला दूसरा पिटक होता है इवेत वर्ण, चित्रविचित्र, अष्टकोण का शुभ तीसरा पिटक कहा गया है । इन्द्र गोपाल नामक चौथा पिटक है, जो गोलाकार और मातृकाओं समेत रहता है । शुक्ल वर्ण,

१. सूतम् । २. मातृसमचित्तम् । ३. धातुविवर्जितम् ।

कृष्णकर्णिकया षष्ठं वृत्तं बुद्धबुद्धशोभितम् । सप्तमं चाष्टकोणं तु शुक्लं विद्याधरैर्युतम् ॥१९
 अष्टमं पिटकं वृत्तं वरत्रासूत्रवेष्टितम् । नवग्रहयुतं दीप्तं नवमं सचिंडकम् ॥२०
 ब्रह्मविष्ववीशसहितं दशमं शिवसंस्थितम् । कृष्णमेकादशं वृत्तं यमयुक्तं युधिष्ठिर ॥२१
 छात्रं द्वादशमं शुक्लं ध्वजदीर्घं त्रयोदशम् । सकूशं पुष्पकर्मदमधण्टाचामरच्छचितम् ॥२२
 बन्धुवित्वा चन्द्रपादै रज्जुभिः स्थूलिंगां नरैः । शनैर्हत्यापेत्यार्थं हृत्वा वैश्वानरं द्विजान् ॥२३
 दक्षिणाभिश्च स्त्र॒यूज्य गुडपायसपूपकैः । कुर्यान्महोत्सवं राजा दिनानि नव सप्त वा ॥२४
 प्रेक्षणीर्यैर्महादानैर्नैटंगीतैः कथानकैः ; चक्रदेवताधरोत्सवैः कर्कटै मूल्योधृतैः ॥२५
 वेश्याङ्गानानरैर्हृष्टैर्दूतक्षीडाम्होत्सवैः । कर्तूरवस्त्रदानैश्च सम्मानैश्च परस्परम् ॥२६
 रात्रौ प्रजागरः कार्ये रक्षणाय प्रयत्नतः । काकोलूककपोतानां येन पातो न विद्यते ॥२७
 काकादृवति दुर्भिक्षं कौशिकान्नियते नृपः । कपोताच्च प्रजानाशस्ततो रक्षेत्सदोदयतः ॥२८
 शैथिल्यादिगरिभिर्भृक्तः प्रमादाश्रीयते यदि । तस्मिन्देशे समुत्थाननिन्दकेतोर्न कारयेत् ॥२९
 यावनु नीयते स्थानादन्यस्मादैन्द्रतो ध्वजः ॥३०
 इन्द्रध्वजसमुत्थानं प्रमादान्नं कृतं यदि । ततो द्वादशमे वर्षे कर्तव्यं नान्तरे पुनः ॥३१
 कथचिच्चदिविद्वः स्याद्विपाकं मे निबोध दै । छत्रभङ्गे छत्रभङ्गे ध्वजे राष्ट्रं विनश्यति ॥३२

अष्टकोण, धातु से (रहित) चित्र विचित्र होने वाला पाँचवां पिटक कहा गया है : उसी भाँति कृष्ण कर्णिका से मुशोभित, गोलाकार एवं बूँदों से विभूषित छठा, शुक्लवर्ज, अष्टकोण, तथा विद्याधरों से युक्त सातवाँ, वृत्त (गोलाकार) वाला सूत्र से आवेष्टित आठवाँ, नवग्रह, और चण्डिका देवी समेत दीप पिटक नवाँ कहा गया है । ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर समेत शिव (कल्याण) सम्पन्न दशवाँ, कृष्ण वर्ण, गोलाकार, यमराज युक्त ग्यारहवाँ पिटक होता है । युधिष्ठिर ! इवेत छत्र-पिटक बारहवाँ, लम्बे ध्वज का तेरहवाँ पिटक बताया गया है । कुश, पुष्म, माला रस्सी, धंटा, चामर समेत उसे भूषित कर चन्द्रकिरण के समान इवेत रस्सियों से आबद्ध उस स्थूलिंगिका को हवन गुडभिश्चित खीर पूआ के भोजन और दक्षिणा से ब्राह्मणों को सुसम्मानित करके धीरे धीरे उठाये । पार्थ ! राजा को नव या सात दिन में इस महोत्सव को सुसम्पन्न करना चाहिए, जो दर्शनीय महादान, नट वर्तन, गीत, कथाओं, चक्र और ढोला (क्रीडा यंत्र) से खेल करने वाले मल्ल योधाओं, वेश्याओं, द्यूत क्रीडा (जूआ) खेलने वाले हर्षमन मनुष्यों से सुसमृद्ध किया जाता है और आपस में लो कपूर दान एवं दस्त्र दान से सुसम्मानित होते रहते हैं । उसकी रक्षा के निमित्त रात्रि में सप्रयत्न जागरण करना चाहिए । जिससे कौवे, उल्लू, और कबूतरों के पतन उस पर न हो सके । क्योंकि कौवे के पतन से राष्ट्र में दुर्भिक्ष, उलूक से राजमरण एवं कपोत पतन से प्रजानाश होता है । १६-२१ अतः उसके रक्षणार्थ सदा उद्यत रहना परमावश्यक है जहाँ प्रमाद अथवा शिथिलता वश वह टिक न सके वैसे स्थान उस इन्द्रध्वज का आरोपण करना ही नहीं चाहिए । जब तक किसी दूसरे स्थान से कोई अन्य इन्द्रध्वज न आ जाय तब वहाँ उसे ही स्थिर रखना चाहिए । और यदि प्रमादवश उसका संचालन न हो सके तो पूरे बारह वर्ष में उसका संचालन करे बीच में नहीं । किसी प्रकार यदि विद्व हो ही जाये तो उसका परिणाम मैं बता रहा हूँ, सुनो ! छत्र भंग होने

१. वज्रदीर्घं त्रयोदशम् ।

मस्तके मन्त्रविच्छेदो मुखे मुख्यबलक्षयः । बाहुदण्डे ध्वेत्पीडां जठरे जाठरं भयम् ॥३३
वरत्रायां मित्रनाशः स्थूणिकासु पदातयः । क्षयं गच्छन्ति राजेन्द्र तस्माद्यतनात्पुरन्दरम् ॥३४
उत्थाप्य पूजयेद्गृह्यत्या दिवारात्रमतन्द्रितः । प्रमादात्पतिते भग्ने गते चेन्द्रध्वज द्विधा ॥३५
सौवर्णं रौप्यकं कृत्वा पूर्णनुत्थापयेद्धवजम् । शान्तिकं पौष्टिकं कृत्वा द्विजेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ॥३६
त्रपुरैः कर्कटीभिश्च नालिकरैः कपित्थकैः । बीजपूरैः सनारङ्गैभैःयान्नैविवैष्टथाः ॥३७
नैवेद्यादिभिरभ्यर्व्य मन्त्रेणानेन तोषयेत् । वज्रहस्तं सुरारिघ्नं बहुनेत्रं पुरन्दर ॥

क्षेमार्थं सर्वतोक्ष्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥३८
श्रवणाद्गूरणीं यावत्पूजां कृत्वा विधानतः । रात्रौ विसर्जयेच्छकं मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥३९
सार्द्धं सुरातुरगणैः पुरन्दरशतक्रतो । उपहारं गृहीत्वैनं शहेन्द्रध्वजं गम्यताम् ॥४०
एवं यः कुरते यात्रामिन्द्रकेतोर्युधिष्ठिर । र्घञ्यः कामवर्षीं स्यात्स्मिन् राष्ट्रे न संशयः ॥४१
ईतयो न प्रवर्तन्ते तस्मान्मृत्युकृतं भयम् । विजित्य शत्रून् समरे वशे कृत्वामहीतलम् !!
भुक्त्वाराज्यं चिरन्कालमिन्द्रलोकेमहीयते ॥४२

राष्ट्रे युरे च नगरे नुरराजकेतोर्यत्रोन्मवो नृपजनैः क्रियते समेत्य ।
दुष्टोपरार्जनितं परचक्रं वा तस्मिन्भयं भवति पार्थं न किञ्चिदेव ॥४३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरर्पणं श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महेन्द्रध्वजमहोत्सवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १३९

परचत्रभंगं, ध्वज के भंग होने पर राष्ट्र विनाश, मस्तक पर विघ्न होने से मंत्री (अमात्य) नाश, मुख से प्रमुख सेना का नाश, बाहुदण्ड से पीड़ा, उदर से मन्दाग्नि, वस्त्र से मित्रनाश, स्थूणिका से पदाति (पैदल) सिपाही की मृत्यु होती है । अतः उसकी रक्षा अत्यावश्यक है । राजेन्द्र ! उसे उठाकर स्थापित होने पर भक्ति पूर्वक उसकी दिन रात पूजन करना चाहिए । प्रमादवश उसके गिर जाने और दो टुकड़े होने पर सुवर्ण या चाँदी से ऊपर भग्न अंश की पूर्ति कर पूर्ण रूप में उठाना चाहिए । अनन्तर शान्ति एवं पौष्टिक कर्म सम्पन्न कर ब्राह्मणों को अन्न दान करे और कड़ी, नारियल, कैथा विजौरा नीबू, नारंगी, अनेक भाँति के भक्ष्यपान तथा नैवेद्य आदि से अर्चना करने के उपरांत करबद्ध प्रार्थना करे—वज्र हाथ में लिए असुरों के हन्ता एवं बहु नेत्र वाले पुरन्दर ! समस्त लोकों के कल्याणार्थ यह पूजा स्वीकार करने दी कृपाकरें । पाण्डव ! इस प्रकार श्रवण नक्षत्र से भरणी नक्षत्र तक अर्चना करने के उपरांत रात्रि में निम्नलिखित मंत्रों के उच्चारण करते हुए विसर्जित करे—सुर असुर गणों के साथ स्थित पुरन्दर एवं शतक्रतो ! और महेन्द्रध्वज ! मेरे इस उपहार को सादर ग्रहण करते हुए आप गमन करें । युधिष्ठिर ! इस प्रकार इन्द्रध्वज की यात्रा करने पर मेघ समयानुसार वर्षा करते हैं इसमें संशय नहीं और मृत्यु भय के अतिरिक्त किसी प्रकार की ईति भय नहीं होता । समस्त शत्रुओं पर विजय और पूरे भूमण्डल पर अपना आधिपत्य स्थापित कर चिरकाल तक राज्योपभोग करने के उपरांत उसे इन्द्रलोक प्राप्त होता है । पार्थ ! इस प्रकार राष्ट्र, पुर, तथा नगरों में राजाओं आदि द्वारा देवराज इन्द्र के ध्वज महोत्सव सुसम्पन्न होने या दुष्टों एवं परराष्ट्रों का उन्हें कुछ भी भय नहीं होता है । २९-४३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरर्पण में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवाद में
महेन्द्रध्वज महोत्सव वर्णन नामक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त । १३९।

**अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः
दीपालिकोत्सवर्णनम्**

श्रीकृष्ण उवाच

युरा वामनरूपेण याचगित्वा धरामिमाम् । बलिगजे हरिः सर्वं ज्ञात्वान्विक्लैस्त्रिभिः ॥१
इन्द्राय दत्तवान्नराज्यं बलि पातालवासिनम् । कृत्वा^१ दैत्यपतेर्वासिमहोरात्रं पुनर्नृप ॥२
एकमेव हि भोगार्थं बलिराज्येतिचिह्नितम् । सरहस्यं तदेतत्त्वे कथगाम्भि नरोत्तम ॥३
कार्तिके कृष्णपक्षस्य पञ्चदश्यां निशाःने । यथेष्टचेष्टा दैत्यानां राज्यं तेषां भवीतले ॥४

युधिष्ठिर उवाच

निःशेषेण हृषीकेश कौमुदीं बूहि मे प्रभो । किमर्थं दीपते दानं तस्यां का देवता भद्रेत् ॥५
किस्त्वित्तस्यै भवेद्देवं केऽयो देयं जनार्दन । प्रहर्षः कोऽत्र तिदिष्टः क्रीडा कात्र प्रकीर्तिता ॥६

श्रीकृष्ण उवाच

कार्तिके कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां दिनोदये : अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः ॥७
अपामार्गपल्लवान्वा भ्रामयेन्मस्तकोपरि । सीतालोष्टसमायुक्तसंकटदलान्वितान् ॥८

**अध्याय १४०
दीपावली-उत्सव का वर्णन**

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! पहले समय भगवान् विष्णु ने वामन रूप धारण कर राजा बलि की यज्ञ में उनसे याचना करके अपने तीन पाग द्वारा इस समस्त धरामण्डल को अपने अधीन कर लिया था । पश्चात् (स्वर्ग का) राज्य इन्द्र को सौंपकर दैत्य पति राजा बलि को सदैव के लिए पातालवासी बनाया । नरोत्तम बलि राज्य का चिह्नस्वरूप केवल एक ही वस्तु दैत्यों के उपभोगार्थ उन्होंने उन्हें प्रदान किया, जिसे सरहस्य मैं तुम्हें बता रहा हूँ—कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या की रात्रि में इस भूतल में दैत्यों का यथेष्ट राज्य होता है उसमें अपनी इच्छाओं को भलीभाँति पूरी करते हैं ॥१-४

युधिष्ठिर बोले—प्रभो, हृषीकेश ! उस कौमुदी (पृथ्वी को आनन्द देने वाली) को सविस्तार बताने की कृपा करें—जनार्दन ! उस दिन किस लिए दान दिया जाता है और उसमें प्रधान देव कौन है तथा क्या दिया जाता है और किसके लिए इसमें अत्यन्त हर्ष होने का क्या कारण है, और लोग कौन सी क्रीडा करते हैं ॥५-६

श्रीकृष्ण बोले—कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन प्रातः काल नरक भीरु प्राणियों को अवश्य स्नान करना चाहिए । पश्चात् अपामार्ग (चिचिडी) या पल्लव मस्तक के ऊपर भ्रमण करायें, जो हल से जोते हुए खेत की मिट्टी और कंटक दल से युक्त हो । उस समय यह कहना रहे कि—अपामार्ग !

१. कृत्वा दैत्यपतेर्दत्तमहोरात्रं पदं नृप ।

हर पापमपामार्गं भ्राम्यमाणं पुतः पुनः । आपदं किल्बिषं चापि ममाद्धर सर्वशः ॥

अपामार्गं नमस्तेस्तु शरीरं मम शोधय ॥१९

(इत्यपामार्गभ्रमण मन्त्रः)

ततश्च तपणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः । यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ॥

वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥११०

नरकाय प्रदातव्यो दीपः सम्पूज्य देवताः । ततः प्रदीपसमदे दीपान् दद्यान्मनोरमान् ॥१११

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च । कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च ॥११२

प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च । सिद्धार्हबुद्धचामुण्डभैरवायतनेषु च ॥

मन्दुरासु विविक्तासु हस्तिशालासु चैव हि ॥११३

एवं प्रभातसमयेऽमावास्यायां नराधिष्प । स्नात्वा देवान्वितून्मक्त्या सम्पूज्यात् प्रणस्य च ॥१४

कृत्वा तु पार्वणं श्राद्धं दधिक्षीरथृतादिभिः । भोज्यनांनाविधैर्विश्रान्भोजयित्वा क्षमाप्य च ॥१५

ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरे नृपः । अद्य राज्यं बलेलोका गथेष्टं सोद्यतामिति ॥१६

लोकश्रापि परे हृष्टेत्सुधाधवलिताजिरे । वृक्षचन्दनमालादच्छ्रचिते च गृहे गृहे ॥१७

द्यूतपानरतोहृष्टपत्नरनारीमनोहरे । नृत्यवादित्रसंघुष्टे सम्प्रज्वलितदीपके ॥१८

अन्योन्यप्रीतिसंहृष्टदत्तलभेन वै जने । ताम्बूलहृष्टे वदने कुड्कुमक्षोदर्चिते ॥१९

दुकूलपट्टनेपथ्ये स्वर्णमाणिकयभूषिते । अद्भुतोद्भृज्ञारप्रदर्शितकुतूहले ॥२०

(मस्तक पर) बार बार भ्रमण कराने के नाते मेरे पापों के अपहरण करो । यह अपामार्ग भ्रमण मंत्र है । अपामार्ग ! मेरे समस्त पाप और आपदाओं के अपहरण पूर्वक मेरी समस्त शरीर का संशोधन करो, मैं तुम्हें बार बार नमस्कार कर रहा हूँ । ७-१। अनन्तर धर्मराज के नामोच्चारण पूर्वक उन्हें तर्पण द्वारा तृप्त करे—यम, धर्मराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, काल और समस्त प्राणियों के क्षय करनेवाले के प्रसन्नार्थ मैं यह तर्पण कर रहा हूँ । देव-पूजन के उपरांत प्रदोष के समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के मन्दिरों मठों और व्यापारालय (दुकानों) चैत्य स्थानों, सभास्थलों, नदीतट, खाई, उपवन, बावली, नालियों, निष्कुट, तथा सिद्ध बुद्ध, चामुण्डा और भैरव के मन्दिरों तथा अश्व और हथियों के रहने के स्थान में नरक के निमित्त मनोरम दीप दान करना चाहिए । १०-१४। नराधिष्प ! अमावस्या के दिन प्रातः काल स्नान और देव पितृतर्पण पूजन करके भक्तिपूर्वक पार्वण श्राद्ध सुसम्पन्न करे । दही, दूध, धी आदि के बने हुए अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य द्वारा ब्राह्मणों को सुतृप्त करते हुए क्षमा प्रार्थना के उपरांत अपराह्ण समय में राजा को अपने नगर में 'घोषणा' करानी (ढिढोरा पिटवानी) चाहिए 'आज बलिराज्य का दिन है अतः सभी लोग यथेच्छ अनन्द मनाओ । १५-१६। इसे सुनकर नगर निवासी भी हर्ष मग्न होकर अपने अपने घरों को वृक्ष (गमलों) चन्दन और मालाओं द्वारा सुसज्जित करते हुए सुधाधवलित गृहाङ्गणों में सभी स्त्री पुरुष द्यूत क्रीडा (जूआ का खेल) नृत्य, गान, माङ्गलिक घ्वनियाँ और अनेक दीपों से विभूषित करें, अत्यन्त प्रसन्नता पूर्ण आपस में एक दूसरे को प्रेमोपहार का आदान प्रदान, ताम्बूल से मुख और कुंकुम से शरीर चर्चित करके सुवर्ण मणियों से भूषित एवं उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित नाट्यशाला में आश्चर्य चकित करने वाले

युवतीजनसंकीर्णवस्त्रोज्ज्वलविहारिणी । दीपमालाकुले रथ्ये विध्वस्तध्वान्तसङ्घये ॥
 प्रदोषे दोषरहिते शस्तदोषागमे शुभे ॥२१
 शशिपूर्णमुखाभिश्च कन्द्याभिः क्षिप्ततण्डुलम् । नीराजनं प्रकर्तव्यं वृक्षशाखासु दीपकैः ॥२२
 भ्राम्यमाणो नतो भूर्धिं मनुजानां जनाधिदः । वृक्षशाखान्तदीपानां निरस्तादर्शनाद्वजेत् ॥
 नीराजनं तु तेने ह प्रोच्यते विजयप्रदद् ॥२३
 तस्माज्जनेन कर्तव्यं रक्षोदांशभयापहम् । यात्राविहारसञ्चारे जयजीवेति दादिना ॥२४
 क्षुद्रोपसागरहिते राजघौरभयोज्जिते । मित्रस्वजनदसम्बन्धिसुहृत्त्रेमानुरंजिते ॥२५
 ततोऽद्वृत्रात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत्पुरम् । अवलोक्यतुं रथ्यं पद्भ्यामेव शनैःशनैः ॥२६
 नहता तूर्यघोषेण ज्वलद्विर्हस्तदीपकैः । कृतोशोभां पुरीं पश्येत्कृतरक्षां स्वकैर्नैः ॥२७
 तं दृष्ट्वा महदाश्र्यमृद्धिं चैवात्मनः शुभाम्^१ । बलिराज्यप्रमोदं च ततः स्वगृहमाव्रजेत् ॥२८
 एवं गते निशार्थं तु जने निद्राद्वलोचने । तावन्नगरनारीभिः शूर्पिंडिभवादनैः ॥
 निष्काम्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहांगणात् ॥२९
 ततः प्रबुद्धे स्कले जने जातमहोत्सवे । मात्यदीपकहस्ते च स्नेहनिर्भरलोचने ॥३०
 वेश्या विलासिनी सार्धं स्वस्ति मङ्गलकारिणी । गृहादगृहं व्रजन्ती च पादाभ्यङ्गप्रदायेनां ॥३१
 पिष्ठकोद्वत्तनपरे गुरुशुश्रूषणाकुले । द्विजाभिवादनपरे सुखराज्याभिवीक्षणे ॥३२

शृंगार रस के प्रदर्शन करें। उज्ज्वल वस्त्रों आदि से विभूषित अनेक युवतियों द्वारा अनेक रम्यदीपों सुप्रकाशित उस स्थान में निशीथ (अर्द्धरात्रि) के समय पूर्ण चन्द्र मुखी कन्याओं द्वारा चावल फेंक कर वृक्ष शाखाओं में सुसज्जित दीपों द्वारा नीराजन करना चाहिए। १७-२४। उस समय राजा को नत मस्तक होकर उसी नीराजन को स्वीकार करते हुए उस दीप वृक्ष शाखा दीपों के अस्त समय का भी दर्शन करके ही जाना चाहिए। इसीलिए यह नीराजन कर्म विजयप्रद बताया गया है, राक्षस दोष आदि से सुरक्षा होने के लिए मनुष्यों को यह नीराजन कर्म अवश्य मुसम्पन्न करना चाहिए—उस आधी रात के समय, जब कि विहार यात्रा में लोगों में ‘जय जीव’ के नारे उठते हैं, क्षुद्र बाधाएँ नहीं होती हैं, राजा और चोर दा भय नहीं रहता मित्र, स्वजन, सम्बन्धी, एवं मुहृदगण प्रेमालाप में मग्न रहते हैं, नगर दृश्य देखने की इच्छा से राजा को अकेले पैदल निकलना चाहिए। धीरे धीरे पैदल चलते हुए भेरी मृदङ्गों आदि वाद्यों के ध्वनि कोलाहल समेत प्रज्जलित दीपों के आकाश में अपने सेवकों द्वारा सुसज्जित नगर का दृश्य देखते हुए आश्र्य चकित करने वाली नगर की शोभा के साथ अपनी समृद्धि का भी दर्शन और बलि राज्य का प्रमोद प्राप्त कर तब कहीं उन्हें अपने महल जाना चाहिए। इस प्रकार आधी रात के समय जन समूहों के गाढ निद्रामें मग्न होने पर नगर निवासिनी स्त्रियाँ सूप का डिंडिभ बादन करती हुई अपने घरों से प्राङ्गणों से अलक्ष्मी बाहर निकालती हैं। २५-२१। पश्चात् लोगों के प्रबुद्ध होने पर उस महोत्सव के नाते माला, दीपक हाथ में लिए स्नेह भेरे नेत्रों से देखती हुई वेश्या विलासिनी स्त्रियों के साथ स्वस्तिक मङ्गल कारिणी स्त्रियाँ एक घर से दूसरे घर जाती हैं और पादाभ्यग महेश्वर आदि प्रदान करती हैं, उबटन लगाती हैं, गुरुजनों की शुश्रुषा करती हैं। उस सुखीराज्य के महोत्सव दर्शन में ब्राह्मण गण अभिवादन

१. प्रभाम् ।

सुवासिनीभ्यो दाने च दीपमाने यदृच्छया । यथाप्रभातसमये राजाहृष्मानयेऽन्नम् ॥३३
 सङ्घावेनैव सन्तोष्या देवाः सत्पुरुषा द्विजाः । इतरे चान्नपानैन वाक्यप्रदानैन पण्डिताः ॥३४
 वस्त्रैस्त्ताम्बूलदानैश्च पुष्पकर्पूरकुमैः । भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरत्तःपुरविलासिनीः ॥३५
 ग्रामैर्विषयदानैश्च मामन्तनृपतिन्धनैः । पदातीनङ्गसंलग्नान्पैदेयकटकैः स्वकान् ॥३६
 स्वयं राजाऽतोषयेत्स जनान्मृत्यान्पृथक्पृथक् । यथार्हं तोषित्यद्वयं तु ततो मल्लनदन्धरान् ॥३७
 वृषभान्महिषःश्रेव दुध्यमानान्परैः सह । गजानश्वांश्च योधांश्च पदातीनसमलकृतान् ॥३८
 मञ्चरालूढः स्वयं पश्येन्नर्तकचारणान् । कुद्धापदेशनपेच्च गोमहिष्यादिकं तदः ॥३९
 दिष्टचा कार्यं पर्योज्योतिरक्तिप्रत्युक्तिका वदेत् । ततोपराह्लासमये यूर्वस्यां दिशि भारत ॥४०
 मार्गपालीं प्रबद्धयातुंगस्तंभेऽथ पादये । कुशकाशमर्यां दिव्यां दन्मध्ये बहुर्भिर्वृताम् ॥४१
 पूजयित्वा गजान्वद्यजीन्सार्थं यामत्रये गते । गावो वृषाः समहिषा पण्डिता घण्टिकोत्कटाः ॥४२
 कृते होमे द्विजेन्द्रैस्तु गृह्णीयान्नर्मार्गपालिकाम्^१ । राष्ट्रभोज्येन धाराभिः सहवेण शतेन वा ॥४३
 स्वशक्त्यपेक्षया वापि गृह्णीयाद्वामभोजनैः । मातुः कुलं पितृकुलमत्मानं सहवन्धुभिः ॥४४
 सन्तारयेत्स सकलं मार्गपालीं ददाति यः । नीराजनं च तत्रेव कार्यं राजे जयप्रदम् ॥४५
 मार्गपालीतलेनेत्यं हया गावो गजा वृषाः । राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः ॥४६

(प्रणाम आशीर्वाद) में मग्न रहते हैं, सुवासिनी स्त्रियों को यथेच्छ दान से सुसम्मानित किया जाता है। पुनः प्रातःकाल होने पर राजा पूज्य जनों की पूजा करता है तथा देवगण, सत्पुरुष ब्राह्मण आदि गण सङ्घावना समेत सन्तुष्ट किये जाते हैं। उसी प्रकार इतर जनों को अन्न पान द्वारा, वाक्यदान से पण्डित वृन्द, वस्त्र, ताम्बूल, पुष्प, कपूर, कुंकुम, उत्तमोत्तम भक्ष्य भोज्य द्वारा अन्तःपुर की विलासिनी स्त्रियाँ युसम्मानित की जाती हैं। ग्राम आदि पुरस्कार रूप में प्रदान कर सामन्तों, ताल्लुकदारों, धनों एवं अपने अंगों में पहने हुए हार अथवा अङ्गद (पट्टा) आदि आभूषणों द्वारा पैदल सैनिकों को सन्तुष्ट करके राजा अपने जन परिजन को पृथक्-पृथक् सम्मानित करें। अनन्तर मल्ल, नट, भट्ट, तथा युद्ध के लिए वृष (बैल) महिष (भैंस), घोड़े और हाथी सुसज्जित पदाति (पैदल वालों का) वृन्द को सम्मानित करके राजा उस मंच (ऊँचे सिंहासन) पर बैठे हुए नट, नर्तक एवं चारणों के गुणगान सुनकर उन्हें पुरस्कार से प्रसन्न करता है। युद्ध करने के नाते अत्यन्त कुद्ध उन भैंसों बैलों के क्रोध शान्त करते हुए 'सौभाग्य से ही यह ऐसा सुसम्पन्न हो सका है, इस कथन की पुष्टि करे। भारत ! पश्चात् अपराह्ल समयमें पूर्व दिशा की ओर ऊँचे स्तम्भ (खम्भे) या किसी वृक्ष में मार्ग पाली बाँधे, जो कुश काश की बनी, दिव्य एवं कई बार आवृत (कई लट) की रहती है। तीसरे पहर हाथी घोड़ों की पूजा करके गौओं, बैलों और महिषों को घण्टियों आदि से अलंकृत करे। ३०-४२। अनन्तर राष्ट्रभोज्य, सहस्रधारा अथवा शतधारा तथा यथाशक्ति नाम भोजन द्वारा उसका ग्रहण करे। हवन करने के उपरांत ब्राह्मणों को भी उसका ग्रहण करना आवश्य रहता है क्योंकि मार्गपाली का प्रदान करने वाला मातृकुल पितृकुल एवं बन्धुओं समेत अपना उद्धार करता है। उसी स्थान पर जयप्रद नीराजन राजा के लिए अर्पित कर मार्गपाली के नीचे घोड़े, गौऐ, हांथी बैल

मार्गापालीं समुल्लंघ्य नीरुजः स्यात्सुखी सदा । कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेबलेः ॥४७
 पूजां कुर्याश्चरः साक्षाद्गूमौ मण्डलके कृते । बलिमालित्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः ॥४८
 सर्वाभरणसम्पूर्णं विन्ध्यावत्या सहासितम् । कूष्माण्डबाणं द्वारोरुमुरदानवसम्बृतम् ॥४९
 सम्भूष्णहृष्टददनं किरीटोक्टकुण्डलम् । द्विशुजं दैत्यराजानं कारयित्वा नृपः स्वयम् ॥५०
 गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत् । भ्रातृमन्त्रजनैः साद्वं सन्तुष्टो दन्विभिः स्तुतः ॥५१
 कमलैः कुमुदैः पुष्टैः कल्पारै रक्तकोत्पलैः । गन्धधूपाम्बनैवैरक्षत्तुंडपूपकैः ॥५२
 मद्यसांसुरालेहृषीपवर्त्युपहारकैः । मन्त्रेणानेन राजेन्द्रं सनन्त्रीं सपुरोहितः ॥५३
 बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनभुत प्रभो । भग्निष्वेन्द्रसुराराते पूजेयं प्रतिगृहताम् ॥५४
 एवं पूजां तृपः कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः । कारयेतेक्षणीयादि नटभव्रकथानकैः ॥५५
 लोकश्चापि गृहस्यान्ते शश्यायां शुक्लतण्डुलैः । संस्थाप्य बलिराजा फलैः पुष्टैश्च पूजयेत् ॥५६
 बलिमुहिष्य दीयन्ते दानानि दुरुनन्दन । यानि तान्यक्षयाण्याहर्मयैवं सम्प्रदार्शितम् ॥५७
 यदस्यां हीयते दानं स्वल्पं वा ददि वा बहु । तदक्षयं भवेत्सर्वं दिष्णोः प्रीतिकरं परम् ॥५८
 दिष्णुना वसुधा लब्धा प्रीतेन बलये तुनः । उपकारकरो दत्तश्चासुराणां महोत्सवः ॥५९
 ततः प्रभृति राजेन्द्रं प्रवृत्ता कौमुदी पुनः । सर्वोपद्रवविद्रावि सर्वविनविनाशिनी ॥६०
 लोकशोकहरीं काम्या धनपुष्टिसुखावहा । कुशब्देन मही ज्ञेया मुदीहर्षं ततः परम् ॥६१

राजा, राजपुत्र, ब्राह्मण, तथा शूद, आदि सभी व्यक्ति सदैव नीरोग सुखी रहने के निमित्त उसका उल्लंघन करें । इस प्रकार उस उत्सव के दिन रात्रि के कार्यक्रम सुसम्पन्न कर दैत्यदण्ठाति बलि की भूमि में साक्षात् प्रतिमा बनाकर पूजा करें । मण्डलाकार भूमि में सर्वाभरणभूषित विध्यावति समेत दैत्येन्द्र दलि की प्रतिमा पाँच रङ्गों से बनाकर जो कूष्माण्ड, बाण, अस्त्रों, जंधा, उरू, अंगों एवं मुर दानव युक्त, प्रसन्न गुख, किरीट कुण्डल से अलंकृत और दो भुजाओं को धारण किये स्वयं राजा द्वारा सुरचित रहता है, घर के मध्य विशाल गृह में बन्धुओं एवं मरियों समेत अर्चां करें । बन्दी गण उसके गुणगान करें । कमलकुमुद (कोटवाँ) पुष्ट, रक्त कमल की कोंडी, गन्ध, धूप, अज्ञ, नैवेद्य, अक्षत, गुड का पूआ, मद्य मांस, सुरा, चटनी आदि दीपवर्ती उपहारों से मंत्री पुरोहित समेत निष्ठलिखित मंत्र द्वारा सन्तुष्ट करे । विरोचन पुत्र, प्रभो बलिराज, तुम्हें नमस्कार है, भविष्य इन्द्र के भी शत्रो ! मेरी यह पूजा स्वीकार करें । इस प्रकार पूजा करने वाले रात्रि में जागरण करते हुए न न नर्तक, वीर गाथाओं के सजग दृश्य उपस्थित करे ॥४३-५५। इसी भाँति सभी लोगों को चाहिए अपने घर शश्या के ऊपर शुक्ल तण्डुल पर बलिराज की स्थापना पूर्वक फल पुष्ट आदि द्वारा अर्चना करे । कुरुनन्दन ! बलि के उद्देश्य से जो अक्षय दान दिये जाते हैं मैंने तुम्हें सब कुछ बता दिया । क्योंकि इस अमावस्या के दिन थोड़ा बहुत जो कुछ दान किया जाता है वह अक्षय एवं विष्णु के लिए अत्यन्त प्रिय होता है । भगवान् विष्णु ने बलि से पृथ्वी लेकर पुतः सप्रेम उनके उपकारार्थ असुरों को यह महोत्सव प्रदान किया है । राजेन्द्र ! उसी समय से यह कौमुदी महोत्सव लोक में अवतरित हुआ है । जो समस्त उपद्रवों के विनाशपूर्वक समस्त विद्वानों के शमन, लोक का शोकाप्तरण करने वाली कामनाओं की पूर्ति एवं धन पुष्टि समेत अत्यन्त सुखावह है । (कौमुदी) कुशब्द का अर्थ

धातुर्ज्ञैर्नैगमज्ञैश्च तेनैषा कौमुदी स्मृता । कौ भोदन्ते जना यस्यां नानाभावैः परस्पराः ॥६२
 हृष्टास्तुष्टाः सुखायत्तास्तेनैषा कौमुदी स्मृता । कुमुदानि बलेर्यस्मादीयन्तेऽस्यां युधिष्ठिर ॥६३
 अर्थर्थं पार्थ भूमौ च तेनैषा कौमुदी स्मृता । एकमेवमहोरात्रं वर्षे वर्षे विशास्पते ॥६४
 दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले । यः करोति नृपो राष्ट्रे तस्य व्याधिभयं कुतः ॥६५
 कुत ईतिभयं तत्र नास्ति मृत्युकृतं भयम् । सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सर्वसम्पद उत्तमाः ॥६६
 नीरुजश्च जनाः सर्वे सर्वोपद्रववर्जिताः । कौमुदीकरणाद्राजन्भवतीह महीतले ॥६७
 यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर । हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रदाति हि ॥६८
 रुदिते रोदिति वर्षं हृष्टो वर्षं प्रहृष्ट्यति । भुक्तौ भोक्ता भवेद्रूपं स्वस्थः स्वस्थो भवेदिति ॥६९
 तस्मात्प्रहृष्टैस्तुष्टैश्च कर्तव्या कौमुदी नरैः । वैष्णवो दानवो चेयं तिथिः वैत्री युधिष्ठिर ॥७०
 उपशमितमेघनादं प्रज्वलितदशाननं रमितरामम् । रामायणमिव सुभंगं दीपदिनं हरतु वो द्वूरितम् ॥७१
 कूष्माण्डादानरस्यं कुवलयखण्डैश्च धातुकाभद्रम् । शरदिव हरिगतनिद्रं दीपदिनं हरतु वो द्वूरितम् ॥७२

पृथ्वी और मुद् शब्द का अर्थ हर्ष है अतः धातु प्रत्यय (शब्दशास्त्र) के वेत्ताओं ने इसे कौमुदी कहा है । पृथ्वी मण्डल में जिस तिथि में जन वृन्द परस्पर अनेक भावों द्वारा अत्यन्त हर्षित, हृष्ट, तुष्ट एवं अत्यन्त सुखी होता है उसके नाते भी इसे कौमुदी कहा गया है । युधिष्ठिर ! इस दिन जिस कारण बलि के लिए भूमि में हर्षप्रद बलि प्रदान किया जाता है । इससे भी इसे कौमुदी कहना सर्वथा उपयुक्त है । पार्थ, विंशांपते ! इस प्रकार प्रतिवर्ष इस भूमण्डल में एक आरोहण दानवराज बलि को जो बलि प्रदान आदि किया जाता है, वह एक (उच्च भावों का) आदर्श होता है । इसे सुसम्पन्न करने वाले राजा के राष्ट्र में व्याधिभय और ईति भय कहाँ सम्भव हो सकता है जब कि उसमें मृत्यु का भी भय नहीं होता है । अपितु राष्ट्र में सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य, उत्तम समस्त सम्पदाएँ वर्तमान रहती हैं, प्रजाएँ समस्त उपद्रवों से रहित होकर नीरोग रहती हैं ; राजन् ! इस महीतल में इस कौमुदी महोत्सव के सुसम्पन्न होने के ही परिणाम स्वरूप ये फल प्राप्त होते हैं । युधिष्ठिर ! इस अमावस्या के दिन जो हर्ष दैत्य आदि जिस भाव से उसे सुसम्पन्न करता है, उसका वर्ष भी उसी भाँति व्यतीत होता है—उस दिन रुदन करने पर रुदन करते ही वर्ष बीतता है और हर्षित होने पर हर्षपूर्ण अच्छे भोजन से भोक्ता स्वरूप होने से स्वस्थ होता है इसलिए मनुष्यों को अत्यन्त हर्षित और पूर्ण सन्तुष्ट होकर इस कौमुदी महोत्सव को सुसम्पन्न करना चाहिए । और वैष्णवों एवं दानवों को भी यह पैतृक तिथि है अर्थात् इस दिन पिता के उद्देश्य से उन्हें इस महोत्सव को पूरा करना चाहिए । युधिष्ठिर ! उस रामायण की भाँति, जिसमें मेघनाद ऐसे योद्धा का शान्त होना और रावण ऐसे राजा का अपने आपे (वश) में न रहकर प्रज्वलित होना वर्णित है तथा राम निरन्तर रमित हैं, यह सुभंग दीपावली दिन तुम्हारे दुरितों का शमन करे । ५६-७१ । कूष्माण्ड दान द्वारा रस्य, कुवलय (कमल) के खंडों एवं धातुओं से भूषित शरद की भाँति जिसमें विष्णु शयन से प्रबुद्ध होते हैं, यह दीपावली दिन तुम्हारे दुरितों के शमन करे । पार्थिव ! इस प्रकार इस दीपोत्सव के दिन समस्त जनों को प्रमुदित करने वाली

दौषोत्सवै जनितसर्वजनप्रमोहां कुर्वन्ति ये सुमनसो बलिराजपूजारम् ।
 दानोपभोगनुखवृद्धिशताकुलानां हर्षेण वर्षमिह पार्थिव याति तेषाम् ॥७३
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 दीपालिकोत्सववर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४०

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नवग्रहलक्ष्महोमविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कथयस्व महाभाग सर्वज्ञो ह्यसि यादव । सर्वकामाप्तये कृत्यं कथं शान्तिकपौष्टिकम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

श्री कामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत् । दृष्टचायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्तुनः ॥२
 सर्वशास्त्राण्यनुकूलं संक्षिप्तग्रन्थविस्तरम् । ग्रहशान्तिं प्रवक्ष्यामि पुराणश्रुतिभाषिताम् ॥३
 पुष्टेऽति विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । ग्रहान्प्रहाधिदेवांश्च स्थाप्य होमं समारभेत् ॥४
 ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्रोक्तः पुराणश्रुतिकोविदैः । प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्ष्महोमस्ततः परम् ॥५
 तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः । अयुतेनाहुतीनां च नवग्रहमखः स्मृतः ॥६

इस बलिराज की पूजा को जो व्यक्ति सुसम्पन्न करते हैं, दान, उपभोग, एवं सैकड़ों भाँति की सुखसमृद्धि से पूर्ण उन कुलीनों का वह वर्ष अत्यन्त हर्षपूर्ण व्यतीत होता है । ७२-७३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
 दीपाली उत्सव वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त । १४०।

अध्याय १४१

नवग्रहलक्ष्महोम विधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—महाभाग, यादव ! आप सर्वज्ञ हैं, अतः समस्त कामनाओं की सफलता के लिए शांतिक एवं पौष्टिक कर्म किस प्रकार सुसम्पन्न किये जाते हैं, बताने की कृपा करें । १

श्रीकृष्ण बोले—लक्ष्मी प्राप्ति, शान्ति कामना, एवं आयु और पुष्टि के निमित्त ग्रहयज्ञ सुसम्पन्न करना चाहिए । सौभाग्यवश (उपरोक्त कामनाओं के सफलतार्थ) उसका अभिचार बार-बार करता रहे इसीलिए समस्त शास्त्रों के अनुक्रम से मैं ग्रन्थ का विस्तार न कर केवल संक्षेप रूप में ग्रहशान्ति विधान बता रहा हूँ, जो पुराणों एवं श्रुतियों में सविस्तार वर्णित है । ब्राह्मण द्वारा बताये हुए किसी पुण्य दिन ब्राह्मणों से स्वत्स्ति वाचन, ग्रहों और ग्रहों के अधिदेवताओं की स्थापना अर्चा के उपरांत हवत कार्य सुसम्पन्न कराना चाहिए । पुराण एवं श्रुति के वेत्ताओं ने ग्रह यज्ञ का विधान तीन प्रकार से बताया गया है—दशसहस्र संख्या की आहुति वाला प्रथम, लक्ष संख्या की आहुति द्वारा और समस्त कामनाओं को सफल करने एवं कोटि संख्या की आहुति वाला तीसरा विधान कहा गया है । दश सहस्र संख्या की आहुति वाला

तस्य तावहिधिं वक्ष्ये पुराणश्रुतिभाषितम् । गर्तस्थोत्तररूपवर्णं वितस्तिद्वयविस्तृताम् ॥७
 कुर्याद्विधानतो वर्द्दि वितस्त्युच्छ्रयसंयुताम् । संस्थापनाय देवानां चतुरलामुदकप्लवम् ॥८
 अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत्सुरान् । देवानां तत्र संस्थाप्या विंशतिद्वादिशाधिका ॥९
 सूर्यः सोमो महीपुत्रो बुधो ज्योतिः सितोऽर्कजः । राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः ॥१०
 ताम्रकात्स्कटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णजावुभो । रजतादायत्ताच्चैव ग्रहाः कार्याः क्रमादस्ति ॥११
 नम्ये तु भारकरं विद्यात्लोहितं दक्षिणेन तु । उत्तरेण गुरुं विद्याद्वृद्धं पूर्वोत्तरेण तु ॥१२
 पूर्वेण भार्गवं विद्यात्सोमं दक्षिणपूर्वकं । पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेच्छुक्लण्डुलेः ॥१३
 राजामात्यान्महाराज तण्डुलैः स्थापयेदय । भास्करस्येश्वरं दिवादुमां च शशिनस्तथा ॥१४
 स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम् । ग्रहाणं च गुरोर्विद्याच्छुक्लस्यायि शचीपतिम् ॥१५
 शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च । केतोस्तु चित्रगुप्तं तु सर्वेषामेव देवताः ॥१६
 अग्निरापः क्षितिविष्णुरिन्द्रः सौवर्णदेवताः । प्रजापतिश्च सूर्यश्च बह्या प्रत्यधिदेवताः ॥१७
 विनायकं तथा दुर्गा वायुमाकाशसेव च । सावित्रीं च तथा लक्ष्मीमुमां च सहभर्तृजाम् ॥१८
 आवाहयेद्वचाहृतिभिस्ततैवाश्चिकुमारकौ । संस्मरेद्रक्तमातित्यमङ्गारकसमन्वितम् ॥१९
 सोमशुक्रौ दथाश्वेतौ बुधजीवौ च पिङ्गलौ । मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगुणं विदुः ॥२०
 ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च । गन्धाश्च बलयेत्वैव धूपा गुग्गुलपूर्वकाः ॥२१
 गुडौदनं रवेद्यात्सोमाय घृतपायसम् । अङ्गारकाय संयावं बुधाय क्षीरषष्टिकम् ॥२२

नवग्रह यज्ञ जो बताया गया है, मैं उसी का श्रुति पुराण भाषित विधान बता रहा हूँ, सुनो ! कुण्ड के उत्तर पूर्व (ईशान कोण) में एक हाथ की विस्तृत और एक बीते की ऊँची वेदी का सदिधान निर्माण करके जो चौकोर और जल से अभिषिक्त हो, अग्नि प्रणयन करके देवों का आवाहन करें । बत्तीस देवों—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु आदि लोक हितैषी ग्रहों की स्थापना करते समय क्रमशः ताँबे, स्फटिक, रक्तचन्दन, दो सुवर्ण की, चाँदी की और लोहे की उनकी प्रतिमा स्थापित करती चाहिए । (वेदी के) मध्य में सूर्य, दक्षिण में मंगल, उत्तर में बृहस्पति, पूर्व उत्तर (ईशान कोण) में बुध, पूर्व में शुक्र, दक्षिण पूर्व (अग्नि कोण) में चन्द्रमा, पश्चिम उत्तर (वायव्य) में इवेत तंदुल द्वारा केतु तथा राजा और अमात्य को स्थापित एवं पूजित करे । सूर्य के अधिदेव महादेव, शनि के उमादेवी, मङ्गल के स्कन्द, बुध के हरि, बृहस्पति के ब्रह्मा शुक्र के शचीपति । इन्द्र, शनिश्चर के यम, राहु के काल और केतु के चित्रगुप्त अधिदेवता हैं । उसीभाँति अग्नि, जल (वरण), पृथिवी, विष्णु, इन्द्र, सौवर्ण, प्रजापति, सूर्य, तथा बह्या प्रत्यधि देवता हैं । २-१७। इन देवों के आवाहन के उपरांत विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश, सावित्री, लक्ष्मी, शिवसमेत उमा, व्याहृतियाँ एवं अदिवनी कुमार के आवाहन पूजन करना चाहिए । सूर्य, मंगल का रक्त वर्ण, चन्द्र-शुक्र इवेत वर्ण, बुध हरित वर्ण, बृहस्पति पिङ्गल (पीत) वर्ण, शनि, राहु कृष्णवर्ण और केतु धूम्र वर्ण बताया गया है । पूजा करते समय ग्रहों के वर्णानुसार उन्हें वस्त्र, पुष्प से अलंकृत करे गंध, बलि, धूप, गुग्गुल से अर्चना सुसम्पन्न करें—गुडौदन (मीठाभात) से सूर्य, घृतपूर्ण खीर से चन्द्रमा, संयवा (लपसी) से मङ्गल, क्षीर पाष्टिक (साठी चावल की खीर) से बुध, दही भात से बृहस्पति, घृत भात से

दध्यनं गुरवे दद्याच्छुकाय तु घृतौदनम् । शनैश्चराय कृशरं मेषमांसं तु राहवे ॥२३
 चित्रौदनं केतवे च सर्वान्भक्ष्यैरथार्चयेत् । प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम् ॥२४
 चूतपल्लवसम्पन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम् । पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गयुतं तथा ॥२५
 स्थापयेदन्नं कुम्भं वरणं तत्र विन्यसेत् । गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राच्च सरांसि च ॥२६
 गजाश्वरथ्यावल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदगोकुलाद् । सुदमानीय राजेन्द्र सर्वोषधिजलान्विताम् ॥२७
 स्नानार्थं विन्यसेन्तत्र यजमानस्य धर्मवित् । सर्वे समुदाः सरितः सरः प्रस्त्रदणानि च ॥२८
 आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः । एवमावाहयत्वा तान्सर्वान्तृपतिसत्तम् ॥२९
 होः । राजारभेत्सर्पिर्यन्त्रीहितिलादिना । अर्कः पलाशखदिरौ ह्यपामागोऽय पिप्पलः ॥३०
 उदुम्बर शमीहृवाङ्कुराग्न्यं समिधः क्रमात् । एकैकस्य चाष्टशतमष्टार्विशति वा पुनः ॥३१
 होतव्या मधुसर्पिर्या दध्ना वा पायसेन वा । प्रादेशमात्रा ऋज्यो विशाखा विफलाः शुभाः ॥३२
 कल्प्यन्ते समिधः प्राज्ञैः सर्वकनेसु सर्वदा । देवानामपि सर्वेषामुपांशुपरमार्थवित् ॥३३
 स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण होतव्याः समिधः पृथक् । आडूणेन इमं देवा अग्निमूर्द्धा दिवः क्रमात् ॥३४
 उद्धृथ्यस्वेति बोधयश्च यथासंख्यमुदाहृताः । वृहस्पते अतियदर्यस्तिथैवान्नात्परिश्रुतः ॥३५
 शनोदेवीति च कथा केतुं कृष्णनितीति च । होतव्यं यद्वदाज्यं नरं भक्ष्याणि वा पुनः ॥३६
 मन्त्रैर्दशाहुतीर्दत्त्वा होरो व्याहृतिभिस्ततः । उद्दमुखाश्च कुर्याद्यृणपुङ्गवाः ॥३७

शुक्र, खिचड़ी से शनि, भेंड के मांस से राहु, चित्रौदन से केतु को तृप्त करते हुए शेष सभी देवों को उत्तम भक्ष्य द्वारा सुनुक्त करे । अनन्तर उत्तर की ओर से ब्रणरहित एक सौन्दर्यपूर्ण कलश की प्रतिष्ठा कर, जो दही अक्षत भूषित, आम के पल्लव, फल, वस्त्र भूषित पाँच रत्नों से युक्त और पञ्चगव्य समन्वित हो, उस पर वरुण देव को प्रतिष्ठि करे । राजेन्द्र ! गङ्गा आदि समस्त नदियाँ समुद्र और सरोवरों के स्थापन पूर्वक उनके जल, हाथी, घोड़े चौराहे, वल्मीकि (विभौर), संगम, तालाब, गोशाला, की मिट्टी, समस्त औषधों समेत जल की स्थापना भी वहाँ यजमान के स्नानार्थ कराना नाहिए । नृपसत्तम ! समस्त समुद्र, सरिताएँ, सरोवरों और झरने आदि जलाशय यजमान के पापक्षार्थ्य यहाँ आने की कृपा करें इस प्रकार उपरोक्त जलाशयों के आवाहन पूजन करके धी जवा, बीहि और तिलादि की आहुति प्रदान करते समय सर्वप्रथम—मदार, पलाश, खैर, खिचड़ी, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुश की समिधाएँ । क्रमशः ग्रहों के निमित्त एक-एक समिधा की सौ-सौ अथवा अठाईस-अठाईस आहुति प्रदान करें । अनन्तर मधु, धी, अथवा दही या पायस की आहुति भी समर्पित करनी चाहिए । प्रादेश मात्रा ऋजु और विपल विशाखा शुभ बताया गया है । १८-३२। इस प्रकार विशेषज्ञों ने सभी कर्मों के अनुष्ठानों में सर्वदा ऐसी ही समिधाओं की कल्पना की है । परमार्थवेत्ता विद्वान् को चाहिए सभी देवों के पृथक् पृथक् उनके निजी मंत्रों के ‘आकृष्णेन इमं देवा’ ‘अग्निमूर्द्ध्या दिवः’ ‘उद्धृथ्य स्वेति’ ‘बृहस्पते प्रतिपदः’ अन्नात्परिश्रुतः’ ‘शनोदेवीति’ और कथा, केतु कृष्णनितीति च’ उच्चारणपूर्व समिधाओं को आहुति अर्पित कर उसी भाँति धी, चरु एवं अन्य भक्ष्य पदार्थ की समंत्रक दशा आहुति समर्पित करे और पीछे व्यावृत्तियों द्वारा समस्त हवन को सुसम्पन्न करे । उस कर्म में प्रवृत्त श्रेष्ठ ब्राह्मण बृन्दों को उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख बैठ कर

मन्त्रवन्तस्तु कर्तव्याश्चरवः प्रतिदैवतम् । अयोराजेति रुद्रस्य बलिहोमं समारभेत् ॥३८
 आपो हिष्टेत्युमायास्त श्येनेति स्वामिनस्तथा । विष्णोरिदं विष्णुरिति स्वमिच्छेति स्वयंभुवः ॥३९
 इन्द्रादिवेवतानां तु इन्द्राय जुहुयात्पुनः । नवा यमस्यायं गौश्रेत्येवं होमः प्रकीर्तिः ॥४०
 कालस्य ब्रह्मज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते । चित्रगुप्ततय दा ज्ञात पौराणिकाविदुर्बुधाः ॥४१
 “अग्नि दूतं वृणीमहे” इति वह्नेरुदाहृतः । इन्द्रं यमं द्वर्गमित्यवं मन्त्रः प्रकीर्तिः ॥४२
 भूमैः पृथिव्यन्तरिक्षाः प्रिति वेदेषु पठते । “सहस्रीष्टा पुरुषः” इति विष्णोरुदाहृतः ॥४३
 वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः । ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालः पान्तु ते सदा ॥४४
 कीर्तिरत्माधृतिर्मेधाः पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः । बुद्धिर्लज्जा शान्तिपुष्टी कान्तिस्तुष्टिश्वसातरः ॥४५
 एतास्त्वामभिषिंचन्तु धर्मपत्न्यः समागताः । आदित्यनन्दमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ॥४६
 श्रहास्त्वामभिषिंचन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः । देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥४७
 ऋषयो मनवो गाढो देवमातर एव च । देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्राप्सरसां गणाः ॥४८
 अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च । औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाङ्ग ये ॥४९
 सरितः सागराः शैलस्तीर्थानि जलदानदाः । एते त्वामभिषिंचन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥५०
 ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः । सर्वगन्धसप्तायुक्तः लातः श्रद्धासनन्वितः ॥५१
 यजमानः सपत्नीकान्तिसद्विदान्तस्तमाहितान् । दक्षिणाभिः प्रवत्तेन पूजयेदगतविस्मयः ॥५२
 सूर्याय कपिलां धेनुं दद्याच्छङ्खं तथेन्दवे । रक्तं धुरन्धरं दद्याद्गौमाय कुदाधिकम् ॥५३

मंत्रों के उच्चारण करना चाहिए और चह की आहुति देवों के प्रति अर्पित करनी चाहिए । ‘अयोराजेति’ मंत्र द्वारा रुद्र के लिए बलि और हवन सुसम्पन्न करे उसी भाँति ‘आपोहिष्टेति’ मंत्र से उमा के लिए, ‘श्येनेति’ मंत्र से ‘स्वामिकार्तिकेय’ ‘विष्णोरिदं’ से विष्णु, ‘स्वामिच्छेति’ से स्वयम्भू (ब्रह्मा), और इन्द्रादि देवों के लिए ‘इन्द्राय आदि’ मंत्रों से आहुति प्रदान करनी चाहिए । ‘अप गौरेतेति’ यम, ‘ब्रह्मज्ञानमिति’ से काल, तथा चित्रगुप्त के लिए विद्वानों को पौराणिक मंत्रों द्वारा आहुति प्रदान करना चाहिए । उसी ‘अग्निं’ दूतं वृणीमहे इति’ से अग्नि ‘इन्द्रं यमं दर्शिति’ मंत्र और ‘सहस्रीष्टा पुरुषः’ यह मंत्र विष्णु के लिए कहा गया है । अनन्तर वरुण, पवन, धनाध्यक्ष (कुबेर), शिव, ब्रह्मा समेत शेष एवं दिक्पाल तुम्हारी सदैव रक्षा करें । कीर्ति लक्ष्मी, धृति, मेघा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, शांति, पुष्टि, कान्ति और तुष्टि मातायें धर्मपत्नियाँ तुम्हारा अभिषेचन करे । सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, तथा भली भाँति तृप्त किये गये देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पश्चग (सर्प), ऋषिगण, मुनिवृन्द, गौएँ, देवमाताएँ, देवपत्नियाँ, वलक्ष, नाग, दैत्य, अप्सरायें, समस्त अस्त्र-शस्त्र, राजवृन्द, वाहन गण, औषध समूह, समस्त रत्न, कल के सभी भेद (वर्षभास आदि), सरिताएँ, सागर, शैल, तीर्थ, वृन्द, मेघ और नद समूह समस्त कामनाओं के सिद्धर्थ तुम्हारा अभिषेक करे पश्चात् शुक्लाम्बरधारी, शुक्लगन्ध का अनुलेपन, सम्पूर्ण गन्ध पूर्ण जलस्नान करके श्रद्धा भक्ति समेत यजमान सपत्नीक उन सिद्धि प्रदान करने वाले देवों की सदक्षिणा प्रयत्न पूर्वक अर्चना करे । ३३-५२। और सावधान होकर सूर्य के लिए कपिला गौ, चन्द्रमा के लिए शंख, भीम के लिए महान् डिल वाला रक्तवर्ण का वृषभ,

बुधाय जातरूपं च गुरवे पीतवाससी । इवेताऽर्थं दैत्यगुरवे कृष्णाङ्गामकं सूनवे ॥५४
 आयसं राहवे दद्याक्तेतवे छागमुत्तमम् । सुवर्णन समा कार्या यजमानेन दक्षिणा ॥५५
 सर्वेषामथवा दद्याद्गुरुर्वा येन तुष्यति । सुमन्त्रेण प्रदातव्याः सर्वाः सर्वार्थदक्षिणाः ॥५६
 कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणी । तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥५७
 पुण्यस्त्वं शङ्खं पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम् । विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥५८
 धर्मं त्वं वृश्वरूपेण जगदानन्दकारकः । अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥५९
 हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम द्वौं विभावसोः । अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥६०
 पीतदस्त्रयुगं दधाद्रासुदेवस्य वल्लभम् । प्रदानात्तस्य मे विष्णुरतः शान्तिं प्रयच्छतु ॥६१
 कपिलस्त्वश्वरूपेण यस्माद्मृतसम्भवः । चन्द्रार्कवाहनौ नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥६२
 यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनो वै कृष्णसंज्ञिता । सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥६३
 यस्मादायस कर्माणि तवाधीनानि रसर्वा । लाङ्गलान्यायुधादीनि तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥६४
 यस्मात्त्वं छाग यज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः । योनिर्विभावसर्वान्तियमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥६५
 गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश । यस्मात्स्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च ॥६६
 यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च । शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥६७
 यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवा व्यवस्थितः । तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुरः ॥६८

बुध के लिए जातरूप 'सुवर्ण', बृहस्पति के लिए दो पीताम्बर, शुक्र के लिए श्वेत अश्व, शनि के लिए कृष्ण गौ, राहु के लिए लोहे, और केतु के लिए छाग (बकरी) सुवर्ण की दक्षिणा समेत अर्पित करे; सब के दान करने में असमर्थ होने पर जिस वस्तु से गुरु आचार्य विशेष प्रसन्न हो सके उसका अवश्य दान करना चाहिए। समंत्रक दक्षिणा प्रदान करने के अनन्तर क्षमा याचना करे—कपिले! तुम समस्त देवों की पूजनीया रोहिणी हो, तीर्थों की देवमयी हो, पुनः मुझे शान्ति प्रदान करने की बृपा करें। शंख! तुम पुष्पों के पुष्प और मङ्गलों के मङ्गल हो, इसीलिए विष्णु तुम्हें नित्य धारण करते हैं, मुझे शान्ति प्रदान करने की कृपा करें। ५३-५८। धर्म! तुम वृष (वैल) रूप धारण कर सारे संसार को आनन्द प्रदान करते हो और अष्टमूर्ति (शिव) जी के अधिष्ठान भी हैं, मुझे शान्ति प्रदान करें। हिरण्यगर्भ में स्थित, अग्नि के हेमबीज और अनन्तपुण्यफलदायक होने के नाते मुझे शान्ति प्रदान करें। भगवान् वासुदेव को चार पीताम्बर (वस्त्र) प्रदान किया जात है, पुनः उससे प्रसन्न होकर विष्णु देव मुझे शान्ति प्रदान करें। कपिल देव अश्व रूप धारण कर, जिनसे अमृत उत्पन्न हुआ है, चन्द्रमा और सूर्य के वाहन हुए हैं, वे नित्य मुझे शान्ति प्रदान करें। धेनो! तुम समस्त पृथिवी का रूप हो, कृष्णा तुम्हारा नाम है, सम्पूर्ण पापों के अपहरण करती हो, अतः मुझे नित्य शान्ति प्रदान करने की कृपा करो। लोह से होने वाले जितने कर्म हैं वे सर्वदा तुम्हारे ही अधीन रहते हैं और लाङ्गल (हल में रहने वाले फल) से लेकर सम्पूर्ण अस्त्रादि भी तुम्हीं से बनते हैं मुझे शान्ति प्रदान करो। छागयज्ञ (बकरी) बलि के तुम अङ्ग हो और अग्नि के योनि (कारण) होने के नाते मुझे शान्ति प्रदान करो। ५९-६५। गौओं के अङ्गों में चौदह लोक प्रतिष्ठित हैं इसलिए लोक परलोक के कल्पाण मुझे अवश्य प्राप्त हों। जिसके कारण भगवान् केशव और शिव की शय्या सदैव अशून्य रहती है उसी भाँति प्रत्येक जन्म में मेरी भी शय्या सर्वदा अशून्य रहे। रत्नों में समस्त देवगण सदैव व्यवस्थित रहते हैं

यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् । दानान्यन्यानि मे शान्तिं भूमि दानाद्ब्रवत्यपि ॥६९
 एवं सम्पूजयेद्ब्रवत्या वित्तशाठचविवर्जितः । वस्त्रकाञ्चनरत्नौघैमर्लियगन्धानुलेपनैः ॥७०
 ग्रहस्वरूपमतुलं कथ्यमानं निक्षेप मे : भक्तिभावप्रपञ्चस्य कथ्यमानं विराजते ॥
 पद्मासनः पद्मकरः पद्मार्भसमद्युतिः । सप्ताख्यः सप्तरञ्जुञ्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः ॥७१
 श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः । गदापाणिर्द्विदाहुञ्च कर्तव्यो वरदः शशी ॥७२
 रक्तमाल्याम्बरधरः कार्णिकारसमद्युतिः । खड्गचर्मगदापाणिर्दध्येये भूमिनन्दनः ॥७३
 पीतमाल्याम्बरधरः पीतगन्धानुलेपनः । काञ्चने च रथे दिव्ये शोभमानो बुद्धः सदा ॥७४
 देवदैत्यगुरुं तद्वत्पीतश्चेतौ चतुर्भुजौ : दण्डिनौ वरदौ कार्यौ ज्ञाक्षसूत्रकन्धलू ॥७५
 इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः । बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽक्षुतः सदा ॥७६
 शार्दूलवदनः खड्गी वर्षी शूली वरप्रदः । नीलसिंहासनस्थञ्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥७७
 धूम्रा द्विवाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः । गृद्ध्रासनरत्ना नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥७८
 सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः । स्वाश्गुलेनोऽच्छ्रुताः सर्वे शतमष्टोत्तरं तदा ॥७९
 ग्रहस्वरूपमेतते व्याख्यातं पाण्डुनन्दन । एतज्ञात्वा प्रयत्नेन पूजा कार्द्ध विचक्षणैः ॥८०
 विधिना ग्रहपूजां योऽनेन त्वारभते नरः । सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥८१

अतः उन्हीं रत्नों के दान करने के नाते प्रसन्न देववृन्द मुझे शान्ति प्रदान करें । भूमिदान की सोलहवीं कला की भी समानता अन्य दान नहीं कर सकते हैं अतः वह भूमिदान मेरे लिए शान्तिदायक हो । इस प्रकार वित्त शाठ्य (कृपणता) दोष रहित होकर भक्तिपूर्वक वस्त्र, सुवर्ण, रत्नों के समूह, माला, गंध और विलेप द्वारा पूजन करना चाहिए । इसके उपरांत मैं तुम्हें ग्रहों के अतुलनीय स्वरूप बता रहा हूँ, मुनो ! क्योंकि भक्तिभाव से शरणागत प्राणियों के लिए यह कहना सुरोभित भी होता है । पद्मासन, पद्मकर, पद्मगर्भ के समान कान्ति, सात घोड़े सात रज्जु (रस्सी) एवं दो भुजाएँ सूर्य का स्वरूप बताया गया है । श्वेत वर्ण, श्वेत वस्त्र धारण किये, दश घोड़े श्वेतभूषण भूषित, हाथ में गदा लिए वरदायक चन्द्रमा का स्वरूप कहा गया है । रक्त माला एवं वस्त्र, कर्णिकार के समान कान्ति, खड्ग, चर्म, तथा गदा लिए भूमि नन्दन मङ्गल का स्वरूप बताया गया है । पीतवर्ण की माला और वस्त्र, पीत गंध का अनुलेपन तथा दिव्य काञ्चन रथ पर सुरोभित होने वाले बुध का स्वरूप कहा गया है । ६६-७६ । देव गुरु बृहस्पति और दैत्य गुरु शुक्राचार्य की पीत तथा श्वेत वर्ण की भुजाएँ, दण्ड, यज्ञोपवीत एवं कमण्डलु धारण करना कहा गया है । इन्द्र नील मणि की भाँति, प्रभा, शूललिए वरद, गृध्र वाहन और धनुष बाण धारण किये सूर्य पुत्र शनि का रूप बताया गया है । व्याघ्र मुख, खड्ग चर्म (कवच), शूल धारण किये वरदायक, नील सिंहासन पर स्थित राहु का वर्णन किया गया है । उसी प्रकार धूम्र, वर्ण, दो बाहु, गदाधारी, विकृत वदन, गृध्रासन पर प्रतिष्ठित वरप्रद केतु का रूप बताया गया है । पाण्डुनन्दन ! लोक हितैषी सभी ग्रहों को किरीट से भूषित और अपने अंगुल से एक सौ आठ अंगुल ऊँचे ग्रहों का स्वरूप बनाना चाहिए । इस प्रकार तुम्हें ग्रहों का स्वरूप बता दिया गया है । इसलिए बुद्धिमानों को ऐसा जानकर ग्रहों की सप्रयत्न पूजा करनी चाहिए क्योंकि कि इस विधान द्वारा ग्रहों की अर्चा सुसम्पन्न करने वाले प्राणी समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक अंत में स्वर्ग पहुँच कर पूजित होते हैं । (अरिष्ट स्थान में आ जाने से)

यस्तु पीडाकरो नित्यं माल्यविज्ञस्य च ग्रहः । तं तु यत्नेन सम्पूज्य शोषणपर्चयेद्बृद्धः ॥८२
ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः । पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यवमानिताः ॥८३
तस्मान्न दक्षिणादीनं कर्तव्या भूतिमिच्छता । सम्पूर्णायां दक्षिणायां यस्माटेकोऽपि तुष्यति ॥८४
सदैवाऽयुतहोमोऽयं नवग्रहमस्तः स्मृतः ॥८५

दिवहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु । निर्विघार्थं महाराज तथोद्गेनादभृतेषु च ॥८६
कथितोऽयुतहोमोऽयं लक्ष्मोमस्तः शृणु । सर्वकामाप्तये यस्माल्लक्ष्मोम् विदुर्बुधाः ॥८७
पितृणा वल्लभो यस्माद्भृत्किञ्चकलप्रदः । अहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥८८
गृहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपे कारयेद्बृद्धः । रुद्रायतनभूमौ वा चतुरक्षुद्भुखम् ॥८९
दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान्कुर्याद्विधानतः । प्रागुदक्षक्रवणां भूमिं कारयेद्यत्नतो नरः ॥९०
प्रागुत्तरं समासाद्य प्रदेशं मण्डपस्य तु । शोभनं कारयेत्कुण्डं यथावल्लक्षणान्वितम् ॥९१
मानहीनं चाप्रशस्तमनेकभयदं भवेत् । यस्मात्समात्मुसम्पूर्णं शान्तिकुण्डं विधीयते ॥९२
अस्मादशणुः प्रोक्तो लक्ष्मोमे स्वयंभुवा । आहुतिभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तर्यैव च ॥९३
द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायतं पुनः । लक्ष्मोमे भवेत्कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम् ॥९४
संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम् । द्विरञ्ज्ञलोच्छ्रुतो वप्रः प्रथमः समुदाहृतः ॥९५

पीडित करने वाले ग्रह की अर्चना अपने वित्तानुसार माला आदि सामग्रियों से सुसम्पन्न कर पश्चात् शेष ग्रहों की भी अर्चना करनी चाहिए। क्योंकि ग्रह, गौ, नरेन्द्र, और विशेषकर ब्राह्मण पूजित होने पर उसे पूजनीय बनाते हैं तथा अपमानित होने से दग्ध कर देते हैं। इसलिए ऐश्वर्य की कामना वाले को दक्षिणादीन यज्ञ नहीं करना चाहिए। सम्पूर्ण दक्षिणा ग्रदान करने पर जिस कारण वह एक भी (ग्रह) प्रसन्न होता है वह दैव (गृह) का अयुत (दशसहस्र) आहुति वाला यज्ञ नवग्रह मख कहा गया है। विवाह, उत्सव, यज्ञ, और प्रतिष्ठा आदि सभी कर्मों में निर्विघ्न सफलता एवं उद्गेन होम अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए। इसके उपरान्त मैं तुम्हें लक्ष संख्या की आहुति का हवन बता रहा हूँ, युतो ! विद्वानों ने समस्त कामनाओं की सफलता के लिए उसे (लक्ष्मोम को) सुसम्पन्न करना परमावश्यक बताया है। ७७-८७। क्योंकि वह यज्ञ पितर गणों को प्रयत्न प्रिय एवं भूक्ति मुक्ति फलप्रदायक है। ग्रहबल और ताराबल के सबल रहने पर ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन के अनन्तर गृह के उत्तरपूर्व (ईशान कोण) की ओर अथवा रुद्रायतन भूमि में सौन्दर्य पूर्ण मण्डप बनवाना चाहिए, जो चौकोर, उत्तराभिमुख, दश या आठ हाथ का सविधान विस्तृत किया गया हो। उस मण्डप की भूमि उत्तर की ओर कुछ ढालू होनी चाहिए। और उस शोभन स्थान के कुछ उत्तर प्रदेश में लक्षण भूषित एक उत्तम कुण्ड का निर्माण करना चाहिए क्योंकि मान (नाप) हीन कुण्ड अप्रशस्त और अनैक भय प्रदान करता है अतः सर्वलक्षण सम्पन्न शान्ति कुण्ड का निर्माण होना चाहिए। भगवान् स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने इससे दश गुना लक्ष होम बताया है। जो आहुतियों में अधिक होने पर भी अधिक होता है। अतः दो हांथ का विस्तृत और चार हाथ का लम्बा, योनि मुख, तीन मेखला से भूषित लक्ष होम का कुण्ड बनाया जाता है। देवों के संस्थापनार्थ तीन वप्र का निर्माण होना चाहिए। जिसमें दो अञ्जलि का ऊँचा पहला, और शेष दो वप्र एक-एक अञ्जलि की

अङ्गुलोच्छ्वसंयुक्तं वप्रदृष्ट्यस्थोपरि । दूयङ्गुलस्तत्र विस्तारः सर्वेषां क्रम्यते बुधैः ॥१६
 दशाङ्गुलोच्छ्रूता भित्तिः स्थण्डिलस्य तथोपरि । तस्मिन्नावाहयेदेवान्पूर्ववत्पृष्ठतण्डुलैः ॥१७
 आदित्याभिमुखाः सर्वौ स्थाप्या: प्रत्यधिदेवताः । स्थापनीया मुनिश्चेष्ठा नान्तरेण परङ्गुलमुखाः ॥१८
 गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता । समपीनशरीरस्तु वाहनं दरमेष्ठिनः ॥१९
 विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छु मे । पूर्ववत्कुम्भमामन्त्य तद्वद्वोमं समाचरेत् ॥२००
 सहस्राणां शतं हुत्वा समित्संख्यादिकं पुनः । औदुम्बरीमथाद्र्दाँ च वक्रकोटरवर्जिताभ् ॥२०१
 ब्रह्मात्रां सुवं वृत्त्वा ततः स्तम्भद्वयोपरि । धृतधारां तथाः सम्यगद्वेष्टुपरि पातयेत् ॥२०२
 पाठयेत्सूक्तमानेयं वैष्णवं रौद्रमैदवम् । महावैश्वानरं साम ज्येष्ठसाम च पाठयेत् ॥२०३
 स्नानं तु यजमानस्य पूर्ववन्मन्त्रवाचनम् । दत्तव्या यजमानेन पूर्ववदक्षिणा पृथक् ॥२०४
 कामक्रोधविहीनेन क्रृत्विभ्यः शान्तचेतसः । नवग्रहमखे विप्राश्वत्वारो वेदवेदिनः ॥२०५
 अथ वा क्रृत्विजौ शान्तौ द्वावेव त्वतिकोविदौ । कार्यवियुतहोमे तु न प्रसञ्जेत विस्तरे ॥२०६
 तद्वच्च दश चाष्टौ वा लक्ष्मोमेऽपि क्रृत्विजः । कर्तव्याः शक्तिस्तद्वच्चत्वारो वा विमत्सराः ॥२०७
 नवग्रहमखे सर्वं लक्ष्मोमे दशोत्तरम् । दद्याच्च पाण्डवश्रेष्ठ भूषणान्यपि शक्तिः ॥२०८

होते हैं । ८८-९४। विद्वानों ने उन सभी के दो अङ्गुल का विस्तार बताया है । उस स्थण्डिल (वेदी) की भूमि भित्ति (दीवाल) दश अङ्गुल की ऊँची होती है, जिसके ऊपर पुष्प और चावल (अक्षत) लेकर देवों के पूर्व की भाँति आवाहन किये जाते हैं । मुनिश्चेष्ठ ! समस्त प्रत्यधिदेवताओं को सूर्य के सम्मुख ही स्थापित करना चाहिए । त कि पराङ्गुल मुख होने के लिए वीच में । श्री की इच्छुक को गरुत्मान् (गरुड) की अर्चना करनी चाहिए, क्योंकि समान रूप से पीत (स्तूल) शरीर वासे वे (हंस रूप से) परमेष्ठी (पितामह) के भी वाहन हैं । आप विष और पाप के अपहरण करते हैं अतः मुझे शान्ति प्रदान करने की कृपा करें । पूर्व की भाँति कलश स्थापन पूजन के उपरान्त सौ सहस्र (एक लक्ष) आहृति प्रदान कर गूलर के उस आर्द्ध (गीले) काष्ठ के बने हुए सुच नामक यज्ञीय पात्र द्वारा, जो वक्र (टेढ़ापन) और कोटर (लघु च्छिद्र) रहित ब्रह्मात्र (एकहाथ) का लम्बा और चौड़े मुख का बना रहता है, दोनों स्तम्भ (यज्ञीय) खाम्भे के सहारे से अग्नि में धृत धारा की वसुधारा प्रदान करे । उस समय अग्नि, विष्णु, रुद्र, चन्द्र के सूक्तों और महावैश्वानर साम तथा ज्येष्ठ साम का पाठ होना चाहिए । यजमान का स्नान, मन्त्र वाचन, और यजमान द्वारा शान्ति पूर्वक तथा काम-क्रोध से रहित होकर क्रृत्विजों की पृथक् पृथक् दक्षिणा दान पूर्व की भाँति ही होना चाहिए । नवग्रह के यज्ञ में वेदवाची चार विद्वान् होने चाहिए अथवा शान्ति प्रकृति के दो ही निपुण विद्वानों को क्रृत्विज पद अपित करें क्योंकि अयुत (दश सहस्र) आहृति के हवन कार्य में अधिक संख्या बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं बतायी गयी है । ९५-१०६। उसी प्रकार लक्ष आहृति हवन में दश या आठ विद्वान् क्रृत्विज स्थान पर नियुक्त करना चाहिए अथवा यथाशक्ति मत्सर आदि दोष हीन चार ही विद्वान् रखे इस प्रकार नवग्रह यज्ञ में सब एक लक्ष दश आहृति प्रदान करनी चाहिए । पाण्डव श्रेष्ठ !

शयनादि च वस्त्राणि हैमादि कटकानि च । कर्णाङ्गुलीपवित्राणि भक्तिमान्त्रिपादयेत् ॥१०९
 न कुर्याद्विक्षिणाहीनं वित्तशाठचेन मानवः । अददल्लोभमोहाभ्यां कुलक्षयमवाप्नुयात् ॥११०
 अन्नदानं यथा शक्त्या दातव्यं भूतिभिन्नता । अन्नहीनं द्रतं यस्माद्दुर्भिक्षफलदं भवेत् ॥१११
 राष्ट्रं हन्याङ्गहीनो मन्त्रहीनस्तु कृत्विजः । अदक्षिणो यजमानं नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥११२
 न चाप्यल्प्यधनः कुर्याल्लक्षहोमं त्रः क्वचित् । तस्मात्पीडाकरो नित्यं ये एव भवति ग्रहः ॥११३
 तमेव पूजयेद्वक्त्या द्वां वात्रीन्वा यथाविधि । एकमात्रचयेद्वक्त्या ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥११४
 दक्षिणाभिः प्रयत्नेनै बहून्वा दहुवित्तदान् । लक्षहोमस्तु कर्तव्यो यदि वित्तं गृहे गृहे ॥११५
 यतः^४ सर्वानवाप्नोति पूर्वनक्तमान्विधानतः । पूज्यते शिवलोके च वस्त्वादित्यरुद्रगणः ॥११६
 यावत्कल्पशतान्यष्टावय मोक्षमदान्वयात् । सकामो यस्तिवम् कुर्याल्लक्षहोमं यथाविधि ॥११७
 स तं काममवाप्नोति पदं चानन्त्यसशुते । पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥११८
 भारदर्थी शोभनां भार्या कुमारी च शुभं पतिम् । भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात् ॥११९
 यं यं प्रार्थयते कामं तं तमाप्नोति पुष्कलम् । निष्कामः कुरुते यस्तु परं ब्रह्म स गच्छति ॥१२०

उस यज्ञ में यजमान को यथाशक्ति भूषण, सुसज्जित शश्या, वस्त्र, सुवर्ण के कटक (अङ्गद), कुण्डल और अंगूठी का भी दान करना चाहिए । मनुष्य को ऐसे अवसर पर कभी भी कृपणता न करनी चाहिए, क्योंकि लोभ-मोह वश उचित दान न करने पर कुल का क्षय होने लगता है । ऐश्वर्येच्छुक को यथाशक्ति अन्नदान भी करना चाहिए, क्योंकि अन्नदान हीन द्रतं दुर्भिक्ष का फल प्रदान करता है । ऐसा शास्त्रों का सम्मत है कि—अङ्गहीन यज्ञ राष्ट्र का नाश, मन्त्रहीन होने से यज्ञ कृत्विक का नाश और दक्षिणा हीन होने से यजमान का विनाश करता है अतः यज्ञ के समान कोई अन्य शत्रु नहीं है । अत्य वित्त वाले मानव को लक्ष होम यज्ञ का अनुष्ठान कभी नहीं सुसम्पन्न करना चाहिए । इसलिए केवल पीड़ित करने वाले ग्रह की अदश्य अर्चना करे, कुछ समर्थ होने पर दो या तीन ग्रहों की अर्चना कर सकता है । उस अनुष्ठान में भक्ति पूर्वक एक ही वेद निष्णात ब्राह्मण विद्वान् की अर्चना को किन्तु धनाद्वयों को उचित दक्षिणा द्वारा उसी प्रकार के अनेक विद्वान् सुसम्मानित करने चाहिए । धर में पूर्ण धन होने पर उसे लक्ष होम का अनुष्ठान अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए, क्योंकि सविधान उसे सुसम्पन्न करने पर मनुष्य की समस्त कामनाएँ सफल होती हैं तथा शिव लोक में वसु आदित्य एवं मरुदगण आदि देवों द्वारा वह सुसम्मानित होता है । इस प्रकार आठ सौ कल्प पर्यन्त सुखानुभूति करने उपरान्त उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है । किसी कामना वश लक्ष होम यथा विधान सुसम्पन्न करने पर उसकी सफलता तो मिलती है किन्तु अनन्त पद (विष्णु लोक) कर भी सुख प्राप्त होता है पुत्रार्थी को पुत्र, धनार्थी को धन, भार्या के इच्छुक को मुन्द्री भार्या कुमारी को कल्याणमूर्ति पति, भ्रष्ट राज्य लोक वाले को राज्य, श्री की प्राप्ति होती है इस प्रकार जिन-जिन कामनाओं के वश उसका अनुष्ठान किया जाता है वे सभी कामनाएँ निविचत सफल होती हैं । निष्काम प्राणी को इसे सुसम्पन्न करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है । १०७-१२०। जो सर्वथा

१. शक्तिमान् । २. भवति ग्रहपूजने । ३. दयाधापिरो नित्यं क्षमावान्वहुवित्तवान् । ४. पातकं समवाप्नोति यत्कुर्वन्विधानतः ।

शान्तिं नवग्रहमयीं दुरितोपशान्तिं राजन्करोति बहुना विधिवद्विजेन्द्रैः ।
क्षेमं सुभिक्षमतुलं कुलवृद्धिसम्पत्तत्रास्ति यत्र कुरुते बत लक्ष्मोमम् ॥१२१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नवग्रहलक्ष्मोमविधिवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कोटिहोमविधिवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

राजा सम्वरणः पूर्वं प्रतिष्ठाने पुरोत्तमे । बभूव स नहाभागः शास्त्रार्थकुशलो बली ॥१
ब्रह्मणः पितृभक्तश्च देवब्राह्मणपूजकः तस्याथ । कुर्वतो राज्यं सम्प्रक्षालयतः प्रजाः ॥२
आजग्राम महोद्योगी सनको ब्राह्मणः सुतः । दत्त्वा तस्यासनं राजा प्रणम्य शिरसा तथा ॥३
पूजियत्वार्थपाद्यादैरात्मानं विनिवेद्य च । इतिहासपुराणोक्ताक्षकार विविधाः कथाः ॥४
राजर्षीणां पुराणां च चरितानि यथार्थवित् । ततः कथान्तरे राजा कार्यं मनसि संस्थितम् ॥५
हिताय पृथिवीशानां जगताश्रात्मनस्तथा । पप्रच्छ विनयोपेतो योगाचार्यं महामतिः ॥६

सम्वरण उवाच

भगवन्महदुत्पातसम्भवे भूप्रकम्पने । निर्याते पांशुवर्षे च गृहभंगे तथैव च ॥७

पापों के शमन करती है और जिसमें और लक्ष सत्या की आहुति अपित की जाती है, सुसम्पन्न करने पर उस को अतुल क्षेम, सुभिक्ष, कुलवृद्धि एवं अभूत राम्पति प्राप्त होती है ॥१२१

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
नवग्रह लक्ष होम विधि वर्णन नामक एक सौ एकतालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४१।

अध्याय १४२

कोटिहोमविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नगर श्रेष्ठ प्रतिष्ठानपुर में सवरण नाम का महापुण्यात्मा राजा रहता था, जो शास्त्रों का अर्थकुशल एवं महाबली था । ब्रह्मण, पितृभक्त, देव ब्राह्मण पूजन एवं प्रजाओं के भलीभाँति पालन करने वाले उस राजा के यहाँ एक बार महायोगी, एवं ब्रह्मपुत्र सनक जी का आगमन हुआ । राजा ने शिर से प्रणाम करते हुए आसन पर सुशोभित कर अर्ध्य-पाद्यादि के प्रदान पूर्वक उनकी पूजा की और कुशल मञ्जल पूछने के अनन्तर इतिहास पुराण प्रसिद्ध पूर्व कालीन राजर्षियों के चरितों की चर्चा की । पश्चात् यथार्थ वेत्ता उस राजा ने उनसे अपना मानसिक अभिप्राय प्रकट किया, जो भूपालों, सम्पूर्ण जगत् एवं अपने लिए परम हितकर था । विनय विनम्र महाबुद्धिमान् राजा ने उन योगाचार्य से पूँछा—१-६-

सम्वरण बोले—भगवान् ! महान् उत्पात के सम्भव होने, भूकम्प, निर्यात, धूलिवर्षा, गृह के नष्ट

जन्मनक्षत्रोडासु अनावृष्टिभयेषु च । ज्वरेषु ग्रहपीडासु दुर्भिक्षे राष्ट्रविष्ट्वै^१ ॥८
व्याधीनां सम्भवे जाते शरीरे चातिपीडिते । क्लेशे महति चोत्यन्ते किङ्कर्तव्यं नरोत्तमैः^२ ॥९
स्वर्गस्य साधनं यच्च कीर्तिं धनं तथा । प्रबूहि मे द्विजश्रेष्ठ तथारोग्यप्रदं नृणाम् ॥१०

सनत्कुमार उवाच

शृणुराजन्प्रदक्ष्यामि शान्तिकर्म हृतुत्तमम् । कोटिहोमात्यमतुलं सर्वकामात्मप्रदम् ॥११
ब्रह्महत्यादिपापानि येन नश्यन्ति तत्क्षणात् । उत्पाताः प्रशंस्यान्ति भ्रह्मस्पद्यते सुखम् ॥१२
विधानं तस्य दक्षःपि शृणुष्वैकमना भव । देवागारे^३ नदीतीरे हने वा भवनेऽपि वा ॥१३
सर्वते दापि कुर्वीत य इच्छेत्तेममात्मनः । शुभनक्षत्रयोगे च दारे पूर्वगुणान्विते ॥१४
यजमानस्यानुकूल्ये कोटिहोमं समाचरेत्^४ । पूजयित्वा प्रथलेन ब्राह्मणं देवपारगम् ॥१५
वस्त्रैवभूषणैश्चैव गन्धमाल्यानुलेपनैः । प्राणस्य विधिवत्तस्मै आत्मानं विनिवेदयेत् ॥१६
त्वं नो गतिः पिता माता त्वं नतिस्त्वं परायणः । त्वत्प्रसदने विप्रर्षं सर्वं मे स्यान्मनोगतम् ॥१७
आपद्विमोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम् । कोटिहोमार्थमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकामिकम् ॥१८
पुरोहितस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः । ब्राह्मणैर्वेदसम्बृतैः^५ पुण्यपूर्तकः समाहितैः ॥१९

होने जन्म नक्षत्र पीड़ा, अनावृष्टि भय, ज्वरपीड़ा, ग्रहपीड़ा, दुर्भिक्ष, राष्ट्र विप्लव, रोग के उत्पन्न होने, शरीर के प्रति पीड़ित होने, महान् क्लेश के उपस्थित होने पर राजाओं का क्या कर्तव्य होता है। द्विजश्रेष्ठ ! उस प्रकार कर उपाय बताने की कृपा कीजिये, जो स्वर्ग का साधन, और कीर्ति समेत मनुष्यों को आरोग्य भी प्रदान करे । ७-१०

सनत्कुमार बोले—राजन् ! मैं तुम्हें एक परमोत्तम शांति कर्म बता रहा हूँ, जो कोटिहोम (कोटिसंख्या की आहुति वाला होम) अनुपम एवं समस्त कामनाओं को सफल करता है, सुनो ! उससे ब्रह्महत्या आदि पाप क्षण मात्र में विनष्ट होते हैं, उत्पातों का प्रशमन होता है और महान् सुख की प्राप्ति होती है, उसका विधान बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! कल्याणेच्छुक मनुष्य का किसी देवालय, नदी, तीर, वन, गृह अथवा पर्वत के ऊपर इसका अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए। शुभ नक्षत्र, योग आदि गुण युक्त दिवस में ग्रहों के अनुकूल रहने पर यजमान को अपने कोटि होम नामक अनुष्ठान के आरम्भ में वस्त्र, आभूषण, गंध, माला आदि द्वारा वेदनिष्णात् विद्वान् ब्राह्मण की सप्रयत्न अर्चा सविधान सुसम्पन्न कर आत्मनिवेदन करना चाहिए। तुम्हीं मेरी गति, माता पिता, तथा गति परायण हो। विप्रर्ष ! तुम्हारे प्रसाद से मेरा मनोनीत मनोरथ सफल हो। मुझे आपत्तियों से मुक्त करने हेतु कोटि होम नामक इस परमोत्तम यज्ञ को सुसम्पन्न कराने की कृपा करें, जो समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक अत्यन्त शान्ति प्रदान करता है। तदुपरात् प्राज्ञ पुरोहित शुक्लाम्बरधारण एवं पूतात्माहोकर वेदसंपृक्त, पुण्यात्मा तथा सावधान रहने वाले ब्राह्मणों समेत किसी शुद्ध एवं अभिषिक्त भू भाग में

१. राजविप्लवे । २. नृपोत्तमैः । ३. देवागारे च भवने तीर्थे वा शिवसंनिधौ । ४. समारभेत् ।

५. सर्वतः पुण्यः संयुक्तः सुसमाहितैः ।

भूमिभागे तमे शुद्धे प्रागुदक्षवणे तथा । पुण्याहं वाचयेत्पूर्वं कृत्वा विप्रान्सुपूजितान् ॥२०
 ततस्तु 'महितैविप्रः सूत्रयेन्मण्डपं शुभम् । उत्तमं शतहस्तं तु तदर्थेन तु मध्यमम् ॥
 जघन्यं तु तदर्द्धेन शक्तिकालाद्यपेक्षया ॥२१
 मध्ये तु मण्डपस्यापि कुण्डं कुर्यादित्तज्ञाणः । अष्टहस्तप्रमाणेनैः आयामेन तथैव च ॥२२
 मेखलात्रितयं तस्य द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् । तत्प्रसां तथा योनिं कुर्वते सुसमाहितः ॥२३
 कुण्डस्य पूर्वभागे तु वेदिं कुर्याद्विक्षणः । चर्तुहस्तां समां चैव हस्तमात्रोच्छ्रुतः नृप ॥२४
 स्थानं तत्सर्वभूतानांैः कुर्यादित्तने बुद्धिमान् ॥२५
 उदनिष्ठ्य ततो भूमि मण्डपस्य समोपतः । दिन्यसेत्कलशान्स्तत्र जलपूर्णञ्चतुर्दश ॥२६
 अश्वत्थप्लक्षवृताद्यैः पल्लवैरुपशोभितान् । वितानमुपरिष्ठाच्च भण्डपस्य प्रकल्पयेत् ॥२७
 स्थापयेद्दिक्षु सर्वाङ्गु तोरणान् विक्षणः । एवं सम्युतसम्भारैः पुरोधाः सुसमाहितः ॥२८
 पुण्याहजग्धोषेण होमकर्म समारभेत्ैः । स्थापयित्वा सुरान्देशां वक्ष्यमाणानरिन्द्रम् ॥२९
 ब्राह्मणं पूर्वभागे तु मध्ये देवं जनार्दनम् । पश्चिमे तु तथा रुद्रं वस्तुतरतस्तथा ॥३०
 ऐशान्यां च ग्रहान्सर्वानाग्नेयां महतस्तथा । वायुं सौम्यां तथैशान्यां लोकपालान्कमेण तु ॥३१
 एवं संस्थाप्य विबुधान्यथास्थानं नृपोत्तम । पूजयेद्विधिवद्वस्त्रगन्धमाल्यानुलेपनैः ॥३२
 वेदोक्तमन्त्रैस्तलिङ्गैः पुराणोक्तैः पृथक्पृथक् । आदित्या वसवो रुद्रा लोकपालास्तथा ग्रहाः ॥३३

पुण्याहवाचन तथा ब्राह्मण पूजन कराये । १-२०। अनन्तर उहीं ब्राह्मणों समेत एक उत्तम मण्डप के निर्माण कार्य का आरम्भ करे, जो सौ हाथ का विस्तृत हो । क्योंकि उसके आधे (पचास) हाथ विस्तृत वाले को मध्यम और शक्ति काल आदि की अपेक्षा बने हुए उसके आधे (पच्चीस) हाथ वाले मण्डप को जपन्य मण्डप कहते हैं किन्तु यथावसर किसी का भी उपयोग किया जा सकत है । विद्वान् को उस मण्डप के मध्य भाग में आठ हाथ का विस्तृत एक उत्तम कुण्ड का निर्माण कराना चाहिए, जो द्वादश अङ्गुल की विस्तृत तीन मेखलाओं से सुसज्जित हो तथा उसी प्रमाण की योनि भी कुण्ड पर सुरचित होनी चाहिए । नृप ! उसी प्रकार बुद्धिमान् को कुण्ड के पूर्व भाग में चार हाथ की विस्तृत और एक हाथ की ऊँची वेदी की रचना समस्त देवों के स्थापनार्थ करनी चाहिए । उपरान्त मण्डप के समीप (गोबर) से लिपी हुई भूमि पर जल पूर्ण चौदह कलशों को स्थापित करे, जो पीपो, पाकडि, आम, गूलर और बरगद के पल्लवों से सुशोभित हों । मण्डप के (भीतर) ऊपरी भाग में वितान (चौदोबा) लगाकर सभी दिशाओं में तोरण से सुसज्जित करे । इस प्रकार (यज्ञार्थ) एकत्र किये गये वृहत् संभार से युक्त पुरोधा पुण्याहवाचन एवं जय घोष के साथ होम कर्मानुष्ठान प्रारम्भ करे । अरिन्दम ! वेदी में स्थापित किये जाने वाले देवों को मैं बता रहा हूँ—(वेदी के) पूर्व भाग में ब्रह्मा, मध्य में जनार्दन देव, पश्चिम में रुद्र, उत्तर में वसुगण, ऐशान्य में समस्त ग्रह, आग्नेय में महत (देवगण) वायव्य में वायु, ईशान आदि में क्रमशः लोक पालों को स्थापित करना चाहिए । नृपोत्तम ! इस भाँति देवों को यथास्थान स्थापित कर विविध भाँति के वस्त्र, गन्ध, माला आदि वस्तुओं द्वारा पुराणोक्त एवं पृथक्पृथक् मंत्रों के उच्चारण करते हुए पूजन करे । २१-३३।

१. प्रहितैः । २. चतुर्हस्तप्रमाणेन, पाठस्त्वशुद्धः । कुण्डसिद्धिप्रन्थे—“कुण्डिर्वा कोटौ नृपकारमपि प्राहुरपरे”—इत्युक्ते: कोटिहोमेऽष्टकरपरिमितकुण्डस्योदितत्वात् । ३. सर्वदेवानाम् । ४. समाचरेत् ।

ब्रह्मा जनार्दनश्चैव शूलपाणिर्भगतक्षिहा^१ । अत्र संनिहितः सर्वे भवन्तु सुखभागिनः ॥३४
 पूजा गृह्णन्तु सर्वेऽत्र स्या भक्त्योपपादिताम् । कुर्वन्तु च शुभं सर्वे यज्ञकर्म समाहिताः ॥३५
 एवं सम्पूजयित्वा तत्त्वदेवान्यत्नेन शुद्धीयोः । नैवेद्यर्विविद्यर्भक्ष्यैः फलैः पत्रैस्तथैव^२ च ॥३६
 ततस्तु तैर्द्विजैः सार्द्धं कुण्डस्य विधिपूर्वकम् । कुर्यात्तस्कारकरणं यथोक्तं वेदचित्तकैः ॥३७
 ततः तमाहृयेद्वित्तिं^३ नाम्ना ख्यातं धृतार्चित्तम् । नियोजयेद्विजान्तत्र शतसंख्यान्तपोत्तम ॥
 अलाभे तु बहनां च यथालाभं नियोजयेत् ॥३८

विद्यावृद्धान्वयोवृद्धान्वृत्थात्स्यतेन्द्रियान् । स्वकर्मनियताज्ञानशीलाज्ञानान्दिजेत्तमात् ॥३९
 चिन्तयेत्तत्र देवेशं पञ्चास्यं नृप पावकम् । मुखानि तस्य चत्वारि सप्ता जिह्वाश्च पार्थिव ॥४०
 एकजिह्वमधैकं तु तत्स्मृतं सर्वकामदम् । धूमायशानेन वृथा होतव्यं ज्वलितेऽन्ते ॥४१
 ऋग्भिः पूर्वामुखैर्हीमो यजुर्भिश्चोत्तरामुखैः । रामभिः पश्चिमे कार्योऽथर्वर्भिर्दक्षिणामुखैः ॥४२
 आधारावाज्य भागौ तु पूर्वं हृत्वा^४ विचक्षणः । परितोऽथ परिस्तीर्णे कल्पिते च तथात्तने ॥४३
 ब्रह्मणां पूर्वमप्येत्तस्तर्वं पश्चात्समाचरेत् । होमो व्याहृतिभिर्वैव सर्वस्तत्र विधीयते ॥४४
 प्रणवादिभिस्तल्लिंगैः स्वाहाकारान्तयोजितैः । जुहुयात्सर्वदेवानां वेद्यां ये चोपकल्पिताः ॥४५
 एवं प्रकल्पयेद्यज्ञं कोटिहोमाख्यमुत्तमम् । तिलः कृष्णा धृताभ्यक्ताः किञ्चिद्यदसमन्विताः ॥४६

आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, लोकपाल, समस्त ग्रहगण, ब्रह्मा, जनार्दन, शूलपाणि शिव आदि देवगण सुखपूर्वक इस धज्ज वेदी पर सन्निहित होकर भक्तिपूर्वक मेरे द्वारा की गयी पूजा स्वीकार करें और मेरे इस यज्ञ सम्बन्धी शुभ कर्म को सफल बनाने की कृपा भी करें । इस प्रकार विशुद्ध मन से देवों की अर्चा नैवेद्य, अनेक भाँति के भश्य फल आदि द्वारा सुसम्पन्न कर यजमान द्वाह्यणों द्वारा कुण्ड का वेदोक्त विधान द्वारा संस्कार और प्रस्तावत धृतार्चिं नामक अग्नि की स्थापना करत्ये । नृपोत्तम ! उस समय उस हवन कर्म के सम्बन्धी यजमान सौ अथवा बहुत या प्रलाभ में जो कुछ द्वाह्यण मिल जाय, नियुक्त करे, जो विद्या के निषुण विद्वान्, वयोवृद्ध, गृहस्थ, इन्द्रिय संयमी, स्वकर्म में नियत, ज्ञानशील, शान्त एवं द्वाह्यण शेष हों । नृप ! पुनः पांच मुख वाले देवेश पावक का ध्यान करे, जो चार मुख, सात जिह्वा से सुशोभित रहते हैं । पार्थिव ! इनकी एक जिह्वा समस्त कामनाओं को सफल करने वाली दत्तात्री गयी है । धूर्णे से आच्छादित प्रज्वलित अग्नि में आहृति डालना व्यर्थ कहा गया है । हवन के समय ऋग्वेदी को पूर्वाभिमुख, यजुर्वेदी को उत्तराभिमुख, सामवेदी, को पश्चिमाभिमुख और अर्थवेदी को दक्षिणाभिमुख आहृति प्रदान करनी चाहिए । ३४-४२। सर्वप्रथम आधार और आज्य भाग की आहृति डालकर (कुण्ड के) चारों ओर कल्पित कुशासन पर बैठे ब्रह्मा के सम्मुख व्याहृतियों द्वारा समस्त आहृति प्रदान करे । पश्चात् प्रणव (ओंकार) पूर्वक देवों के पृथक् पृथक् मंत्रों के अन्त में स्वाहा शब्द के उच्चारण पूर्वक समस्त देवों के निमित्त आहृति प्रदान करे, जो वेदी पर स्थापित किये गये हों । इस प्रकार कल्पित उस कोटि होम नामक अनुपम यज्ञ में काले तिल, अल्पमात्रा में मिले हुए जवा को धृतप्लुत करके पलाश की प्रज्वलित अग्नि में उसकी आहृति

१. महेश्वरः । २. चैव सुशोभने । ३. प्राज्वालयेत् । ४. कृत्वा ।

होतव्याः कोटिहोमे तु समिधश्च पलाशजाः । पूर्णे पूर्णे सहस्रे तु द्व्यात्पूर्णाहुतिं शुभाम् ॥
पञ्चमे तन्मुखे राजन्सर्वकामार्थसिद्धये ॥४७

पूर्णाहुत्यः समाख्याताः कोटिहोमे नराधिप । सहस्राणि नृपश्रेष्ठ दश शास्त्रविशारदैः ॥४८
प्रारम्भदिनमारम्भं ब्राह्मणैर्ब्रह्मदादिभिः^१ । भाव्यं सयजमानेत्तु अथवा सपुरोहितैः ॥४९
क्रोधलोभाद्यो दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः । यजमानेन राजेन्द्रं सर्वान्कामानभीसितान् ॥५०

तान्वरण उवाच

द्वद्वित्वाकर्मणो ब्रह्मन्कोटिहोमः सुदुष्करः । कालेन महता चैव शक्यः प्राप्तुं कथञ्चन ॥५१
नियमाद्ब्रह्मचर्याद्वा दुष्करो हीति मे मतिः । निरोधेऽत्र ब्राह्मणानां भूशय्यादिषु दुष्करः ॥५२
कार्याद्गुरुत्या यस्मात्पर्वकालाद्यपेक्षया । एतद्विज्ञायते ब्रह्मन्यदि शास्त्रेषु कथ्यते ॥
कोटिहोमस्य संक्षेपं वद मे ब्रह्म सम्भव ॥५३

सन्तकुमार उवाच

शताननो दशमुखो द्विमुखैकमुखस्तथा । चतुर्विधो महाराज कोटिहोमो विधीयते ॥५४
कार्यस्त्वं गुरुतां ज्ञात्वा नैव^२ कुर्यादिपर्वर्णिं । यथा संक्षेपतः कार्यः कोटिहोमस्तथा शृणु ॥५५
कृत्वा कुण्डशतं दिव्यं यथोक्तं हस्तसम्मितम् । एकैकर्स्मस्ततः कुण्डे शतं वित्रान्नियोजयेत् ॥५६
सद्यः पक्षे तु विप्राणां सहस्रं दरिकीर्तितम् । एकस्थानप्रणीतेऽग्नौ सर्वतः परिभाविते ॥५७

अर्पित करते हुए प्रत्येक सहस्राहुति पर पूर्णाहुति अर्पित करता रहे । राजन् समस्त कामनाओं की सफलता के लिए अग्नि के पाँचवे मुख में सभी पूर्णाहुतियों को समर्पित करना बताया गया है । नृपश्रेष्ठ ! कोटि होम के अनुष्ठान में दशसहस्र ब्राह्मणों, का जो शास्त्रकुशल एवं ब्रह्मवादी हों, वरण होना चाहिए । अनुष्ठान के आरम्भ दिन से समाप्ति पर्यन्त उन ब्राह्मणों समेत पुरोहितों एवं यजमानों को सदैव क्रोध लोभ आदि दोष रहित रहना चाहिए । क्योंकि तभी उनकी समस्त कामनाओं की अभीष्ट सिद्धि सम्भव होगी । ४३-५०

सम्वरण बोले—ब्रह्मन् ! कर्मों के बाहुल्य और इतने महान् काल की अपेक्षा होने से यह कोटि होम सभी को कैसे सुलभ हो सकता है, तथा (उसके) नियम, ब्रह्मचर्य के पालन, ब्राह्मणों के लिए भू भू शश्या आदि का निरोध होने के नाते मेरी सम्भति में यह कोटि होम इस रूप में अत्यन्त दुष्कर है और पर्व काल आदि की अपेक्षा रखने से गुरु भी है । ब्रह्मसंभव, ब्रह्मन् इन सभी कारणों के नाते इस कोटिहोम का शास्त्रीय संक्षिप्त विधान बताने की कृपा करें । ५१-५३

सन्तकुमार बोले—महाराज ! कोटिहोम का विधान शतमुख, दशमुख, द्विमुख और एकमुख चार प्रकार का बताया गया है । कार्य गुरु होने के नाते भी इसे किसी पर्वहीन दिवस में नहीं आरम्भ करना चाहिए । मैं संक्षेपतः इसका विधान बता रहा हूँ, सुनो ! दिव्यं सौ कुण्डों के पूर्वोक्त हाथों की लम्बाई चौड़ाई के निर्माण करके प्रत्येक कुण्डों के लिए सौ-सौ ब्राह्मणों के वरण होने चाहिए । तत्काल समाप्ति होने के पक्ष में (प्रत्येक कुण्डों के लिए) सहस्र-सहस्र ब्राह्मणों के एक ही स्थान पर के स्थापन पूजन करके

१. ब्रह्मचारिभिः । २. नैष्कर्म्यमय कर्मणः ।

होनं कुरुद्धिजाः सर्वे कुण्डे कुण्डे यथोदितम् । यथा कुण्डबहुत्केऽपि राजसूये महाक्रतौ ॥५८
न च बह्निवहुत्वं स्यात्तत्र यज्ञे विधीयते । तथा दुःखशतेऽप्यन्न घृतार्चिषि वितानिते ॥५९
एक एव भवेद्यज्ञः कोटिहोमो न संशयः । एवं यत्क्रियते क्षिप्रं व्याकुलैः कार्यगौरवात् ॥
शताननः सविज्ञेयः कोटिहोमो न संशयः ॥६०

स्वल्पैररहोभिः कार्यः स्यादुर्धाकालादिकेऽपि वा । तदा दशगुणः कार्यः कोटिहोमो विजानता ॥६१
विप्राणां द्वे शते तत्र सुविभज्य^१ नियोजयेत् । तेऽपि विज्ञानशीलाः स्युर्वृत्तवन्तो जितेन्द्रियाः ॥६२
भूप कुण्डद्वयं द्वृत्वा विभज्य च दिभावसुम् । होमं कुरुद्धिजा भूयः संस्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥६३
शतं तत्र नियोज्यं स्याद्विप्राणां प्रविभज्य वै । मासे वाय द्विमासे वा यथाकाले हृषपस्थिते ॥६४
एवं च द्विमुखं कार्यः कोटिहोमो विचक्षणैः ॥६५

यदा तु स्वेच्छया यज्ञं यज्मानः समापयेत् । कालेन बहुधा राजन्स्तदा चैकमुखो भवेत् ॥६६
एककुण्डस्थितो बह्निरेकचित्तैः समाहितैः । यथालाभं स्थितर्विप्रज्ञानशीलैविदक्षणैः ॥६७
न संख्यानियमश्चात्र ब्राह्मणानां नरेत्तम् । न कालनियमश्चैव स्वेच्छायज्ञः स उच्यते ॥६८
आवृत्या सर्वकामस्य चातुर्मास्यानुकर्मवत् । तदप्रसक्तौ कर्तव्यो यज्ञोऽयं सार्वकालिकः ॥६९

उसी अग्नि द्वारा क्रमशः सभी कुण्डों की प्रज्वलित अग्नि में सभी ब्राह्मणों को तदनुसार हवन करना चाहिए । यह उसी भाँति बताया गया है जिस प्रकार राजसूय महायज्ञ में कुण्ड की अधिकता होने पर भी अग्नि बाहुल्य नहीं होता है । इसीलिए इस कोटिहोम यज्ञ में भी सौ कुण्डों के होने पर भी जो घृतार्चि नामक अग्नि द्वारा प्रज्वलित रहते हैं, एक ही यज्ञ कहा जाता है इसमें संशय नहीं । इस प्रकार कार्यगौरव वश व्याकुल होकर जो इसे शीघ्र सुसम्पन्न करता है वह शतानन कोटि होम कहा जाता है । ५४-६०। वर्या काल आदि अथवा अन्य किसी समय अत्य दिनों में ही इस अनुष्ठान को सुसम्पन्न करना चाहें तो कोटि होम के विधानवेत्ता को उचित है कि वह दशगुणे अधिक (दशमुख) का निर्माण करे । दो सौ ब्राह्मणों को विभागपूर्वक सभी स्थान नियुक्त करे जो विज्ञानी, व्रत परायण और इन्द्रिय संगमी हों । और जिस स्थान पर दो कुण्डों के निर्माण पूर्वक अग्नि का विभाजन कर सविधि संस्कार एवं हवन किया जाता है वहाँ तीन सौ ब्राह्मणों को यथाविभाग द्वारा नियुक्त करे और उसे एक या दो मास में सुसम्पन्न करे उसे कोटि होम के वेत्ता ने द्विमुख कोटि होम बताया है । ६-६५। राजन् ! जिस समय यज्मान स्वेच्छया अधिक काल में उसे समाप्त करना चाहता है, उसे सावधान होकर एक ही कुण्ड का निर्माण एवं उसी में बह्नि के स्थापन पूजन पूर्वक ज्ञानशील समेत विद्वान् जितने भी ब्राह्मण मिल जायें सभी को उसमें नियुक्त कर लेना चाहिए । ६६-६९। नरोत्तम ! इसलिए कि उसमें ब्राह्मणों की संख्या का नियम और काल नियम नहीं है वह स्वेच्छा यज्ञ कहा जाता है । चातुर्मास्य (चौमासे के) कर्मों की भाँति उसमें सभी कर्मों की आवृत्ति होनी चाहिए और चातुर्मास्य के रहने पर इसे अन्य सभी यज्ञों की भाँति सभी समय सुसम्पन्न करना चाहिए । राजन् ! यह एक मुख नामक कोटि होम यज्ञ द्वारा अधिक काल में ही सुसम्पन्न होता है और उतने विस्तृत काल में अनेक विभ्रांतों का सम्भव होना स्वाभाविक हो जाता है अतः संक्षिप्त विधान द्वारा ही इसे सुसम्पन्न करना

अयमेकमुखो राजन्कालेन बहुता भवेत् । ब्रह्मविद्यश्च कालेन तस्मात्संक्षेपमाचरेत् ॥७०
 ततः समाप्ते यज्ञे तु कारपेत्सुमहोत्सवम् । शाङ्कतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषस्वनेन च ॥७१
 ततस्तु दीक्षयेद्विग्रहोतृश्च शद्व्यान्वितः । निष्कैश्च कङ्कणैश्चैव कुण्डलैर्विवर्णैर्वृप ॥७२
 गोशतं चैव दातव्यमश्वानां च शतं तदा । सहस्रं च सुवर्णस्य सर्वदामपि दापयेत् ॥७३
 ग्रामैर्गंजे रथैरच्च पूजयेच्च पुरोहितम् । दीनान्धृपणान्सर्वान्वस्त्रादैश्चापि पूजयेत् ॥७४
 ततश्चावभृथं स्नायातैर्घटैः पूर्वकलिप्तैः । लक्ष्मोत्तमन्त्रेण सदा विजयकारिणा ॥७५
 एवं सक्षापदेवस्तु कोटिहोममलं शुभम् । तस्यारोग्यं वित्तपुत्रराष्ट्रवृद्धिस्तथैव च ॥७६
 सर्वपापक्षयश्चैव जायते नृपसत्तम । अनावृद्धिभयं चैव उत्पातभयमेव च ॥७७
 दुर्भिकं ग्रहपीडा च प्रशमं याति भूतले । एतत्पुण्यं पापहरं सर्वकामफलप्रदम् ॥
 सनत्कुमारमुनिना पार्थिवाय निवेदितम् ॥७८

सर्वोपसर्गशमनं भवने वने चा ये कारणान्ति मनुजा नृपोकोटिहोमम् ।
 भोगानवाप्य मनसोभिमतान्प्रकामं ते यान्ति शक्तसदनं मुविशुद्धसत्त्वाः ॥७९

इति श्रीभविष्य महापुराण उत्तरर्पवर्ण श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 कोटिहोमविधिवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४२

चाहिए । मनुष्यों के चित्त, नित एवं आयु के स्थिर न रहने के कारण भी इस धार्मिक कार्य को संक्षिप्त ही करना चाहिए । अनन्तर यज्ञ के समाप्त होने पर महोत्सव आरम्भ कर शंख, तुरही आदि मांगलिक वाद्यों के निनाद और ब्रह्मघोष एवं जयघोष द्वारा उसे अलंकृत करे । नृप ! तदुपरांत शद्वासमेत होताओं को सुवर्ण के कंकड़, कुण्डल से सुप्रसन्न करते हुए सभी सौ गौ, सौ सौ घोड़े, एवं सहस्रसुवर्ण के पदक से सभी आवृत व्राह्मणों को सुसम्मानित करे । गाँवों, हाथियों, रथों और घोड़ों के अर्पण द्वारा पुरोहित की पूजा के पश्चात् दीनों, अन्धों, तथा कृपणों आदि व्यक्तियों को वस्त्र आदि से सन्तुष्ट कर राजा लक्ष्मोहम के मन्त्रों की ध्वनि के बीच पूर्वकलिपत घटों के जल से अपना अभिषेचन कराये । विजयेच्छुक राजा के कोटि होम यज्ञ इस भाँति सुसम्पन्न करने पर आरोग्या धन, पुत्र एवं राष्ट्रवृद्धि के साथ उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं । नृपसत्तम ! भूतल की अनावृष्टि, उत्पात, दुर्भिक, ग्रहपीडा आदि सभी बाधाएँ शान्त हो जाती हैं । यह यज्ञ पुण्य, पापहारी, समस्त कामनाओं को सफल करता है, ऐसा सनत्कुमार महर्षि ने राजा से निवेदन किया था । नृप ! इस प्रकार अपने भवन अथवा वन आदि किसी प्रशस्त स्थान में समस्त उपद्रवों को शान्ति करने वाले इस कोटि होम यज्ञ को सविधान सम्पन्न करने पर उन विशुद्ध मनुष्यों को यथेच्छ भोगों के उपभोग समेत इन्द्रपुरी प्राप्त होती है । ७०-७९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरर्पव में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 कोटिहोमविधि वर्णन नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त । १४२।

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महाशान्तिविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

महाशान्तिं प्रवश्यामि महादेवेन भाषितम् । शार्थवानां हितार्थयं महादुस्तरतारिणीम् ॥१
नृपाभिषेके सा कार्या यात्राकाले नृपस्य तु । दुःस्वन्मे दुर्निमित्ते च ग्रहवैगुण्यसम्भवे ॥२
विद्युद्गुल्कनिपाते च जन्मक्षेत्रं प्रहृदैवते । केतूदयेऽथ सञ्जाते निर्धारितक्षितिकम्पने ॥३
प्रसूतौ मूलगण्डान्ते यमलस्य तु सम्भवे । छात्राणां च^१ ध्वजानां च स्वस्थानात्पतने भुवि ॥
काकोलूककपोतान्तं प्रवेशे वैश्वनस्तथा ॥४

कूरप्रहृणां वक्तव्ये जन्मादिषु विशेषतः । जन्मनि द्वादशे चैव चतुर्थं वाष्टमे तथा ॥५
यदा स्युर्पुरुषान्दद्वाराः सूर्यश्चैव विशेषतः । युद्धे प्रहृणां सर्वेषां सूर्यशीतांशुकीलके ॥६
वस्त्रावृथगवाधेषु मणिकेशविज्ञासने । यद्यग्रे परिदृश्येत रात्रा विद्युद्धनुस्तथा ॥७
वेशमनश्च दुलाभङ्गे गर्भेष्वभृतरीषु च । रवीन्द्रोऽपरागेषु महाशान्तिः प्रशस्यते ॥८
सर्वाणि दुर्निमित्तानि प्रशस्यं यान्ति सर्वथा । तां कुरुयुराह्मणाः पञ्च कुलशीलसमन्विताः ॥९
चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च द्विवेदाश्रापि पाण्डव । अथवेणा विशेषेण बहूचा यजसंयुताः ॥१०
शुचयः श्रुतसम्पन्ना जपहोमपरायणाः । कृच्छ्रपाराकनक्तादैः कृतकाय विशेषधनाः ॥११

अध्याय १४३

महाशान्तिविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं महादेव जी की बतायी हुई उस महाशान्ति को बता रहा हूँ जिसमें पार्थिवों के विशेष हित निहित हैं और महादुस्तर दुरित से वह पार करती है। राज्याभिषेक राजा की विजय यात्रा दुःस्वप्र दुर्निमित्त, ग्रहों के विगुण (अरिष्ट) होने विद्युत उल्का आदि के गिरने, जन्म नक्षत्र के ग्रहाधीश्वर के समय, केतु के उदय, निर्धारित, भूकम्प, मूल गण्डान्त में प्रसव होने, यमल (जुडवाँ) के उत्पन्न होने छत्र, चापर ध्वजादि के अपने स्थान से भूतल पर गिरने, घर में कौदा उल्लूक (उल्लु), कपोत (कबूतर) के प्रवेश करने, जन्म आदि स्थानों में कूर ग्रहों के वन्नी होने, जन्म, बारहवें, चौथे अथवा आठवें स्थान में बृहस्पति, शनि, और सूर्य के स्थित होने, युद्ध में सूर्य, चन्द्र, आदि सभी ग्रहों के कीलित होने, वस्त्र, आयुध, गौ, अश्व के मणि पर केश के विनष्ट होने, रात्रि में सर्वप्रथम इन्द्र धनुष के दिखायी देने पर गृह एवं तुला (तराजू) के भंग होने, घोड़ी के सगर्भा होने पर तथा सूर्य चन्द्र के ग्रहण होने पर यह महाशान्ति विधान सुसम्पन्न किया जाता है जिससे समस्त दुर्निमित्तों के प्रशमन हो जाते हैं। पाण्डव! इस विधान को कुलशील सम्पन्न पाँच ब्राह्मण विद्वान् सुसम्पन्न करें। १-९। जो चतुर्वेद, त्रिवेद, द्विवेद एवं अथर्व वेद के अध्ययन तथा यजुर्वेद समेत अनेक कृच्छ्रों के निपुण विद्वान् पूतात्मा, श्रुतिसम्पन्न, जपहोमपरायण हों और कच्छ

१. चामराणां च ।

पूर्वमाग्राध्य मन्त्रैस्तु प्रारभेत क्रियां ततः । दशद्वादशहस्तं वा मण्डपं कारयेच्छृभम् ॥१२
 तन्मध्ये वेदिकां कुर्याच्चतुर्हस्तप्रमाणतः । आग्नेय्यां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् ॥१३
 मेखलात्रयसंयुक्तं योन्या चापि विभूषितम् । बद्धचन्दनमालं च तोरणालंकृतं तथा ॥१४
 ग्रोमयेनोपलिप्ते च मण्डपे तु द्विजात्यः । शुक्लाम्बरधराः स्नाताः शुक्लमाल्यानुलेपनाः ॥१५
 ततश्च पञ्च कलशान्तस्यां वेद्यां नियोजयेत् । आप्नेयादिषु कोणेषु पञ्चमं मध्यतस्तथा ॥१६
 अष्टावत्तमृते पद्मे चूतपल्लवशोभिते । ऋहकूर्चिविधानेन पञ्चगव्यं तु कारयेत् ॥१७
 औषधीः पञ्चरत्नानि रोचनां चन्दनं तथा । सिद्धार्थकाञ्छ्वामीद्वारा: कुशान्त्रीहियवांस्तथा ॥१८
 अपामार्गं फलदत्तीं न्यग्रेधोद्भूम्भरी तथा । प्लाकाश्वत्यकपित्थांश्च प्रियडग्नुचूतपल्लवान् ॥१९
 हस्तिदन्तमृदं चैव कोणकुम्भेषु निक्षिपेत् । पुण्यतीर्थोदकालं च धान्यं गव्यं च मध्यमे ॥२०
 कूर्चं दाचमितीदं च चह्निकुम्भाभिमन्त्रणम् । आशुः शिशानोमन्त्रेण मन्त्रेण वायुगोचरे ॥२१
 ईशावास्यं चतुर्थस्य कुम्भस्य चाभिमन्त्रणम् । मध्ये जपितव्यास्तु रुद्रकुम्भे भवोद्भूवा: ॥२२
 गन्धपुष्पाक्षतैर्वस्त्रैनैवदीर्घतपाचितैः । फलैश्च नारिकेलाद्वैर्दीपकैः कुम्भपूजनम् ॥२३
 स्वस्तिवाचनकं चैव कारयेत्तदनन्तरम् । क्रमेणानेन शनकैरग्निकार्यं प्रयोजयेत् ॥२४
 अग्निं इतमिति ह्यग्निं पूर्वमेव निधापयेत् । हिरण्यगर्भः तमिति ब्रह्मासननियोजनम् ॥२५
 कपोतसुप्रणीतेन मन्त्रेण विनिशेषयेत् । कृत्वा चावरणं वह्नेराज्यसंस्कारमेव च ॥२६

आदि के पारंगत एवं नक्त द्रतादि से अपनी शरीर का शोधन किये हों । सर्वप्रथम मन्त्रों द्वारा आराधना करने के अनन्तर क्रियाओं को प्रारम्भ करना चाहिए । दश या बारह हाथ का रम्य मण्डप निर्माण करके उसमें चार हाथ की वेदी और उसे अग्नि कोण में एक हाथ का विस्तृत कुण्ड बनाना चाहिए जो तीन मेखला और योनि मुद्रा से विभूषित हो । चन्दन, माला एवं तोरण से अलंकृत उस मण्डप के भीतर भूमि में गोबर से लीप कर स्नानोपरान्त शुक्लवस्त्र, श्वेतमाला एवं विलेपन से भूषित ब्राह्मणगण वहाँ सुशोभित हों । और उस वेदी अग्नि आदि कोण में चार कलश तथा पाँचवा कलश मध्य स्थल में स्थापित करें, जो अष्टदल कमल एवं आम के पल्लव से भूषित हों । अनन्तर ब्रह्मकूर्च^१ विधान द्वारा पञ्चगव्य बनाए । १०-१७। सभी औषध, पाँचो रत्न, गोरोचन, चन्दन, राई, शमी, द्रव्या, कुश, धान्य, जवा, फल युक्ता अपामार्ग (चिचड़ी), बरगद, गूलर, पाकड़ि, पीपल, कैथा, प्रियंगु (कांगुनी आदि), और आम के पल्लव समेत हाथी के दाँत एवं मिट्टी कोने में स्थापित कलश में डालनी चाहिए । पुण्य तीर्थों के जल तथा उनके द्वारा उत्पन्न धान्य, गव्य मध्य कलश में डालकर 'कूर्च वाचमिति' से अग्नि कलश का अभिमंत्रण, आशुः शिशानों, से वायव्यवस्थित कलश का अभिमंत्रण, 'ईशावास्यमिति' मंत्र से चौथे कलश का अभिमंत्रण; 'रुद्रकुम्भभवोद्भूवा' मंत्र से मध्य में स्थित पाँचवें का अभिमंत्रण करना चाहिए । अनन्तर गंध, पुण्य, अक्षत, वस्त्र, धृतप्लुत, नैवेद्य, फल, नारियल और दीपक आदि द्वारा कलश पूजन करके स्वस्तिवाचन कराये तथा उसके पश्चात् हवन कार्य करना चाहिए । १८-२४। 'अग्निं दूतं' इस मंत्र से सर्वप्रथम अग्निस्थापन 'हिरण्य गर्भः' से ब्रह्मासन, और 'कपोत सुप्रणीतेनैति' मंत्र से अग्नि का विनिवेश करने के

१. अहोरात्रोषितोभूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः । पञ्चगव्यं पिवेत्प्रातः ब्रह्मकूर्चमितिस्तमृतम् ॥

अथ चासादयेद्वद्वयं यथावत्सग्रयोजनम्^१ । ततः पुरुषसूक्तेन पायसश्चपणं भवेत् ॥२७
 अभिधार्याथ संसिद्धं तथा संस्थापयेद्गुवि । अष्टादशप्रगाणेऽमन्दद्यादथ शमीमयान् ॥२८
 पलाशीः समिधः सप्त तथा सप्तेति दापयेत् । आधारावाज्यभागौ तु हृत्वा पूर्वकमेण तु ॥२९
 जुहुयादाहृतीः सप्त जातवेदस इत्यृचा । स्थालीपाकस्य जुहुयात्पुनर्वै जातवेदसा ॥३०
 तरत्समन्दीसूक्तेन चतुर्वो जुहुयात्ततः^२ । यमायेति च सप्तान्याः स्वाहान्ता जुहुयात्ततः ॥३१
 इदं विष्णुस्तत सप्त जुहुयादाहृतीर्वै । नक्षत्रेभ्यस्ततः स्वाहा सप्तविंशदथाहृतीः ॥३२
 यत्कर्मणैति जुहुयात्ततः स्विष्टकृतं पुनः । ग्रहोमस्ततः कार्यस्तिलैराज्यपरिप्लुप्तैः ॥३३
 प्रायश्चित्तं ततो हृत्वा दोमकर्म समाप्तेत् । ततस्तु तूर्यनिर्देषैः काहलाशङ्खनिःस्वनैः ॥३४
 यजमानस्य कर्तव्यो हृभिष्ठो^३ द्विजोत्तमैः । काश्मर्यदृक्षसम्भूते भद्रे भद्रासने स्थितम् ॥३५
 वेदिमध्यगतं कृत्वा दुर्निमित्तप्रशान्तये । पञ्चभिःकलशैः पूर्णमत्रैरभिर्यथाक्रमम् ॥३६
 सहस्राक्षेण प्रथमं ततश्चैव शतायुषा । सजोषसा च इन्द्रेति विशक्वनीत्यृग्भरेव च ॥३७
 क्रतपस्त्विति च ततः ज्ञापयेयुः समाहिताः । ततो दिशां बलि दद्याद्विचित्राम् सातायुतम् ॥३८
 नमोस्तु सर्वभूतेभ्य इति मन्त्रमुदाहरन् । न्नातस्य ब्राह्मणाः सर्वे पठेयुःशान्तिमुत्तमाम् ॥३९
 शान्तितोयेन धारां च पातयित्वा समन्ततः^४ । पुण्याहवाचनं कृत्वा शान्तिकर्म समापयेत् ॥४०
 क्षिति हिरण्यं वासांसि शयनान्यासनानि च । विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्याद्यथा शक्त्या विमत्सरः ॥४१

अनन्तर अग्नि का आवरण, आज्यसंस्कार, द्रव्यासदन कर्म करके पुरुष सूक्त द्वारा पायस बनाये और अभिधार्य संस्कार में सिद्ध होने पर उसे पृथ्वी पर रखे । अठारह समिधाओं के प्रमाण पक्ष में शुद्ध शमी, और चौदह पलाश की समिधा होना चाहिए । आधार आज्यभाग की आहृति क्रमशः अपित कर 'जातवेदमे' इस क्रचा से सात आहृति प्रदान करें । पुनः 'जातवेदसे' इस क्रचा आहृति प्रदान करने के अनन्तर 'यमायेति' स्वाहात्मंत्र से अन्य सात आहृति प्रदान करे । २५-३१। वृप ! पश्चात् इदं विष्णुरिति' क्रचा से सात आहृति, नक्षत्रों के लिए सत्ताईस आहृति, 'यत्कर्मणैति' मंत्र से स्विष्टकृत आहृति प्रदान करने के उपरांत वृतप्लुत तिलों द्वारा ग्रहों के निमित्त आहृति प्रदान करे और प्रायश्चित्त हवन की आहृति अपित कर होम कर्म समाप्त करे । अनन्तर ब्राह्मणों को तुरही, डमरु शंख आदि की मांगलिक ध्वनियों समेत काश्मर्य (पलाश) के भद्रपीठ पर वेदी के मध्य में स्थित यजमान का अभिषेक उसके निमित्त शान्ति के लिए करना चाहिए । पाँचों पूर्ण कलशों के जलों से क्रमशः सर्वप्रथम 'सहस्राक्षेणेति' मंत्र से प्रथम, 'शतायुषोति' मंत्र से द्वितीय, 'सजोषसा च इन्द्रेति' से तृतीय, 'विश्वानीति' मंत्र से चौथा और 'क्रतवस्तित्वति चेति' पाँचवें कलश के जल से समाहित मन से स्नान करावे । अनन्तर 'नमोऽस्तु सर्व भूतेभ्य इति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक विचित्र अन्न समेत दिशाओं में बलि प्रदान करे । ३२-३८। यजमान के स्नानोपरांत ब्राह्मणवृन्द परमोत्तम शान्ति पाठ करते हुए चारों ओर शान्ति जल की धारा प्रावित करें पुण्याहवाचन करके शान्तिकर्म के समाप्ति करें । तदुपरांत पृथ्वी, हिरण्य (सुवर्ण), वस्त्र, शय्या, आसन आदि वस्तु यथाशक्ति प्रदान करते समय मत्सर आदि दोषहीन रहे । दीन, अनाथ, समेत श्रोत्रिय

१. येन यत्सप्रयोजनम् । २. पुनः । ३. शुभैर्जलैः । ४. समाहिताः ।

दीनानाथविशिष्टेभ्यः श्रोत्रियेभ्यश्च^१ दापयेत् । भोजनं शोभनं दत्त्या ततः सर्वं प्रसिद्धज्ञति ॥४२
आयुश्च लभते दीर्घं शत्रून्विजयते क्षणात् । दुर्गाणि चास्य सिद्धचन्ति पुत्रांश्च लभते शुभान् ॥४३
यथाशस्त्रप्रहाराणां कवचं वारणं भवेत् । तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम् ॥४४
अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च । दयादाक्षिण्ययुक्तस्य^२ सर्वे ज्ञानुप्रहा द्व्रहाः ॥४५

अर्थान्तर्मर्यातिवर्द्धयते च धर्मं कामं प्रसाधयति तत्य पिनष्टि पाशम् ।

यः कारयेत्सकलदोषहरों समर्थं शान्तिं प्रशान्त्वहृदयः पुरुषः सदैव ॥४६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

महाशान्तिविधिवर्णनं नाम त्रिवत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥४३ ।

अथ चतुश्रव्वत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गणनाथशान्तिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

शान्तिं कथय देवेश गणनाथस्य मे विभो । यां छत्वा सर्वदुर्गाणि तरते मानवोऽखिलः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

शान्तिं वक्ष्यामि राजेन्द्र गणनाथप्रियां पराम् । यस्या आचरणेनैव सर्वारिष्टक्षयो भवेत् ॥२

(वैदिक) ब्राह्मणों को मनोरम भोजन संतुप्त कराने से ही समस्त उत्तम वस्तुओं की प्राप्ति होती है दीर्घायु, तत्क्षण शत्रु विजय, और दुर्गसिद्धि समेत कल्याण भाजन पुत्रों की प्राप्ति होती है । जिस प्रकार शस्त्रों के प्रहारों को कवच रोकता है, उसी भाँति दैवि आपत्तियों को शान्ति निवारण करती है । अहिंसक, शुद्ध, धर्म द्वारा अर्जित धन, एवं दया दाक्षिण्ययुक्त पुरुष के सभी ग्रह सानुकूल हो जाते हैं । इस प्रकार सफल दोपापहरण में सर्व इस शान्त कर्म को सुसम्पन्न करने के नाते अशान्त हृदय प्राणी के इसके द्वारा सदैव अर्थ धर्म की वृद्धि, कामनाएँ सफल, और पाप विनष्ट होते हैं । ३९-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
महाशान्तिविधि वर्णन नामक एक सौ तैतालिसवाँ अध्याय समाप्त । ४३ ।

अध्याय १४४

गणनाथशान्तिविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवेश ! विभो ! मुझे गणनाथ की शान्ति बताने की कृपा कीजिये जिससे मानव गण अखिल दुर्गों को पार करते हैं । १

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! मैं तुम्हें गणनाथ की उस परमप्रिय शान्ति का विधान बता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर समस्त अरिष्टों का शमन हो जाता है । निर्विघ्न सिद्धर्थ उस विनायक कर्म को सुनो । २।

१. दयाच्चैव युधिष्ठिर । २. दयामाणिक्ययुक्तस्य ।

विनायकं कर्माविघ्नसिद्धयर्थं विनिबोधत । स्वप्नेऽवगाहृतेऽत्यर्थं जलं मुङ्डांश्च पश्यति ॥३
 काषायवाससश्चैव क्रव्यादानाधिरोहति । अपमूर्धेः शवै रुदैः सहैकत्र च तिष्ठति ॥४
 ग्रजन्नपि तथात्मानं मन्यतेनुगतं पर्ते । विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः ॥५
 तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः । कुमारी न च भर्तरिमपत्यं गर्भिणी तथा ॥६
 आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽऽयापनं तथा । वणित्ताभ्यं न चाप्नोति न दृष्टिं च कृषीवलः ॥७
 स्तपनं तत्यं कर्तव्यं पुण्येऽहिं विधिपूर्वकम् । गौरर्त्यपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य तु ॥८
 सुगन्धकुंकुमालिपत्तशरीरशिरस्तथा । भद्रासनोपविष्टस्य स्वत्तिं याच्य द्विजाञ्छुदान् ॥९
 अश्वरभ्यनादगजस्थानाद्वल्मीकात्तद्भाद्रध्यदात् । भृत्तिकां रोचनां गन्धान्मुगुलं चाप्नु निक्षिपेत् ॥१०
 यदा हृता ह्येकवर्ज्ञस्तुभिः कलशैर्हदात् । चर्मण्णानुहुते रक्ते स्थाप्य भद्रासनं तथा ॥११
 सहस्राक्षं सत्धारमृषिणा वननं छत्रम् । ते नत्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ॥१२
 भगं ते वरुणो राजा भगं भूर्यो बृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥१३
 यते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्दनि । ललाटे कर्णयोरक्षणोरापस्तद्धन्नन्तु ते सदा ॥१४
 स्नातस्य सार्षपं तैलं स्त्रुवेणौदुम्बरेण च । जुहुयान्मूर्दनिकुशान्सव्येन दरिगृह्य च ॥१५
 मिताश्च संमितश्चैव तथा सालकटं कटौ । कूज्ञाण्डो राजपुत्रश्च अन्ते स्वाहासमन्वितैः ॥१६
 नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः । दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्यं सर्वशः ॥१७

जिसके सुसम्पन्न न करने पर स्वप्न में अगाध जलावगाहन, मुण्डा दर्शन, काषाय (गेहआ) वस्त्रधारी क्रव्याद (राक्षस) पर अधिरोहण, शिर विहीन एवं भीषण शर्वों के बीच रहना, (अकेले) चलते हुए पीछे से कुछ लोगों के आने का संदेह होने लगता है, प्राणी अन्यमनस्क रहता है, उसके सभी प्रारम्भ निष्ठल होते रहते हैं, अकारण कष्ट का अनुभव करता है। राजपुत्र राज्य कुमारी पति, गर्भिणी सन्तान, वेदपाठी आचार्य की उपाधि, शिष्य अध्यापन, व्यापारी (वैश्य) लाभ और किसान की वृषी की सफोता नहीं प्राप्त करते हैं। अतः किसी पुण्य दिवस में श्वेत राई की खली समेत सविधान स्नान करके राज्य च्युत राजा सुगन्ध, कुंकुम अपने शिर शरीर में लगाकर भद्रासन पर बैठे और पूतात्मा व्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन कराये । घोड़े, हाथी के स्थान, बल्मीक, संगम, सरोवर की मृत्तिका, गोरोचन, गंध, गुग्गुल जलवर्ण कलशों में डालकर । ३-१०। जो एक वर्ण के मनोहर बने हों, रक्त वर्ण के चर्मासन पर राजा को बैठाकर उन कलश जलों से स्नान कराते समय मंत्रोच्चारण करे—जो शतधार से सहस्राक्ष इन्द्र को पूत किया और ऋषि की वाणी सत्य की उसी जल से मैं तुम्हारा अभिषेचन कर रहा हूँ, वह पवित्र जल तुम्हें पूतात्मा बनाये । राजा वरुण तुम्हें तेज प्रदान करें, सूर्य, बृहस्पति तेज प्रदानं करें, इन्द्र और वायु तेज प्रदान करें, उसी भाँति सप्तर्षि गण भी तेज प्रदान करें । तुम्हारे केशों, ललाट, शिर, कानों और नेत्रों में जो कुछ दुर्भाग्य हो, यह पवित्र जल उसे शीघ्र विनष्ट करे । स्नान किये राजा के शिर पर गूलर के सुवा द्वारा कड़वातेल का मार्जन करते समय दाहिने हाथ में कुश भी लिए रहना चाहिए । मित, संमित, साल, कटंकट, और कूज्ञाण्ड की बलि उनके नाम मंत्र के उच्चारण पूर्वक अन्त में स्वाहा कहकर नमस्कार करते हुए अर्पित करना चाहिए । पश्चात् चौराहे पर कुश बिछा कर बलि निमित्त एक सूप का पात्र रखे । १-१७। जिसमें

कृता कृतान्तण्डुलांश्च पललौदनमेद च । मत्स्यान्तस्वान्त्तर्थैदामान्मांसमेतावदेवतु !!१८
 पुष्पं चित्रं सुगन्धं च सुरां च विविधामपि । मूलकं पूरिकापूर्पं तथैवोन्डेरकलजम् !!१९
 द्वूर्वां तर्वप्रपुष्पाणां दत्त्वार्थ्यं पूर्णमाङ्गलात् । विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् !!२०
 रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वकामांश्चदेहि मे !!२१
 ततः शुक्लमाल्वरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । भोजयेद्ब्रह्माद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि !!२२
 एवं विनायकं पूज्य प्रहांश्चैव विधानतः । कर्मणां फलमाप्नोति श्रियमाप्नोति चोत्तमाम् !!२३
 आदित्यस्य तथा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा । महागणपतेश्चैव कुवन्सिद्धिमवान्नुयात् !!२४
 श्वेतार्कस्य तु यो सूले महागणपतिः कृतः । सर्वलक्षणसम्पूर्णः सोऽपि सिद्धिकरः स्मृतः !!२५
 सञ्जप्तते शुचौ देशे विच्छनं नात्र हि देहिनः । परमं पूज्येन्नित्यं गन्धमाल्यन्नगादिभिः !!२६
 क्षीणभाग्योऽपि प्रस्तुः पूजितश्च नरेश्वरः । सर्वसिद्धिमवाप्नोति जयी भवति सर्वदा !!२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वजि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
 गणनाथशान्तिवर्णनं नाम चतुश्रत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४४

कच्चे पक्के चावल, मांस, भात, कच्ची पक्की मछली का मांस हेतु । चित्र विचित्र पुष्प, सुगंध, तीनों सुरा (शराब), मूली, पूरी, पूआ, कुण्डेरक की माला, द्वूर्वा समस्त पुष्पों समेत अर्थं प्रदान करके विनायक की जननी भगवती अम्बिका के सम्मुख जाकर विनाय विनश्च याचना करे—भगवति ! रूप, यश, तेज, पुत्र, धन समेत सभी कामनाएँ सफल करें । अनन्तर शुक्ल वस्त्र, श्वेत वर्ण की माला एवं अनुलेपन से भूषित होने पर बाह्यण भोजन कराये और गुह के लिए युग्म वस्त्र अप्तित करे । इस प्रकार विनायक की पूजा करके सविधान ग्रहों की अर्चा सुसम्पन्न करने पर कर्मों के फलों समेत परमोत्तम की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार सूर्य की पूजा, स्वामि कार्तिकेय एवं महागणपति को तिलक से भूषित करने पर सिद्धि की प्राप्ति होती है । श्वेत मदार के मूल भाग में समस्त लक्षण युत महागणपति की प्रतिमा निर्माण करने से भी सिद्धि प्राप्त होती है । पवित्र स्थान में जप करने से प्राणी को किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता है । गंध, माला, पुष्प आदि द्वारा नित्य उत्तम विधान द्वारा पूजन करने से हतभागी पुरुष भी पूजित होता है और नराधीश राजा समस्त सिद्धि समेत सदैव विजयी होता है । १८-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्री कृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
 गणनाथशान्तिवर्णन नामक एक सौ चौबालीसवाँ अध्याय समाप्त । १४४।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रहोमविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उदाच

अग्निहोत्रे सुखासीनं गर्गः पृच्छति कौशिकम् । बन्धने सन्निरोधेभ्ना व्याधीनां सम्प्रपीडने ॥१
कथं मोक्षो भवेतस्य साध्यासाध्यं ऋवीहि मे । गर्गेण कौशिकः पृष्ठ इदं वचनमन्त्रवीत् ॥२
आधाने जन्मनक्षत्रे नैधनप्रत्ययेषु च । व्याधिरूपद्यते यस्य क्लेशाय मरणाय च ॥३
कृतिकाम्सु यदा कश्चिद्वर्द्धार्थं सम्प्रतिपद्यते । नवरात्रं भवेत्पीड त्रिरात्रं रोहिणीषु च ॥४
मृगशीर्षे पञ्चरात्रमार्दा प्राणवियोजिनी । पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्रं विधीयते ॥५
नवरात्रं तथाश्लेषा इमशानान्तं मघाम्सु च । द्वौ मासौ फाल्युनी चैव उत्तराम्सु त्रिपक्षकम् ॥६
इस्ते च तनु दृश्येत चित्रायां त्वर्द्धमासकम् ॥७

मासद्वयं तथा स्वातौ विशाखा विंशतिर्दिनाः । मैत्रे दैव दशाहं तु ज्येष्ठा चैवार्द्धमासिका ॥८
मूलेन जायते मोक्षश्चाषाढाम्सु त्रिपञ्चकम् । उत्तरादिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणेन तु ॥९
धनिष्ठायामर्द्धमासं वारणे तु दशाहकैः । नव भाद्रपदाश्रक्ष उत्तराम्सु त्रिपञ्चकम् ॥१०
रेवती दशरात्रं तु अहोरात्रं तथाधिनी । प्राणैर्वियोजयेन्नित्यं गर्ग नास्त्यत्र संशयः ॥११
कौशिकेन समादिष्टो नक्षत्रव्याधिसम्भवः । दैवज्ञेनापि ज्ञातव्यं नक्षत्रमथ जन्मना ॥१२

अध्याय १४५

नक्षत्रहोमविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोते—अंग ! अग्निहोत्र कर्म में सुखासीन कौशिक महर्षि से गर्ग ने पूछा—बन्धन, सन्निरोध, और व्याधि जनित महापीडा के उत्पन्न होने पर उससे किस प्रकार मोक्ष प्राप्त होता है । उसके साध्यासाध्य विधान मुझे बताने की कृपा करें । इस प्रकार गर्ग मुनि के पूँछने पर कौशिक जी ने कहा—गर्भाधान नक्षत्र, जन्मनक्षत्र, मरणनक्षत्र और प्रत्यय में व्याधिरूपन होने से अत्यन्त पीडा एवं मरणफल प्राप्त होता है । कृतिका नक्षत्र में कोई व्याधि उत्पन्न होने पर नवदिन तक पीडा होती है, रोहिणी में तीन रात्र, मृगाशिरा में पाँच रात तक पीडा होती है और आर्द्ध में प्राण वियोग (मरण) होता है । पुनर्वसु और पुष्य में रोग उत्पन्न होने पर सात रात्रि । १-५। श्लेषा में नवरात्रि तक तथा मघा में शमशान पहुँचने तक भी पीडा होती रहती है । पूर्वा फाल्युनी में दो मास, उत्तरा में डेढ़मास, हस्त में एकमास, चित्रा में एक पक्ष (पद्मदिन), स्नाती में दो मास, विशाखा में बीस दिन, अनुराधा में दशदिन, ज्येष्ठा में पन्द्रह दिन, मूल में सदैव रोगी, पूर्वाषाढ़ में पन्द्रह दिन, उत्तराषाढ़ में बीस दिन, श्वरण में दो मास घनिष्ठा में आधामास, शतभिषा में दश दिन, पूर्वभाद्र में नवदिन, उत्तराभाद्र में पन्द्रह दिन । ६-१०। रेवती में दश दिन, अश्विनी में दिनरात के भीतर प्राण वियोग हो जाता है इसमें संशय नहीं । कौशिक द्वारा बताये गये व्याधि जनक नक्षत्रों का ज्ञान दैवज्ञ (ज्योतिषी) को भी प्राप्त करना चाहिए । ११-१२। जन्म नक्षत्र में रोग

क्षीरदृक्षस्य समिधो जुहुयादश्वदैवते । तितान्मधुप्लुतान्याम्ये यवमेवाग्निदैवते ॥१३
प्राजापत्ये तु जुहुयाद्बोग्यबीजकरं बकम् । सौम्ये प्रियज्ञवो रौद्रे सर्पिपर्मास्तसमन्वितम् ॥१४
आदित्ये च प्रयत्नेन धृताक्ताः सिततण्डुलाः । पदसा सर्पिषा साकं बृहस्पत्यधिदैवते ॥१५
ग्राम्योषधैर्दृष्टपत्रैः सर्पाधिदैवते । होमः प्रोक्ताः प्रियज्ञूनां नक्षत्रे यागदैवते ॥१६
सावित्रे दधिहोमोऽत्र त्वाष्ट्रे वित्रौदनं हविः ॥१७

यवान्सहःज्येन हुनेद्वौदेऽप्नौ तु पयोदनम् । मैत्रेणाथ तु मन्त्रेण मैत्रे कटकमिश्चितम् ॥१८
नैऋत्ये तिलहोमः स्यादव्यक्ते च हुताशने । अब्दैवत्ये शालिंबीजैर्वैश्वदेवं तु कारयेत् ॥१९
रक्ताश्वतण्डुलाश्रैव होतव्या विष्णुदैवते । वारुणे पारिजातानां पुष्पाणां होम इज्यते ॥२०
अजैकपादे नक्षत्रे प्राजापत्ये न तत्समम् । आहिङ्गुध्ये तु नक्षत्रे वैश्वदेवं तु कारयेत् ॥२१
रक्ताश्व तण्डुलाश्रैव होतव्या विष्णुदैवते । पौषे फलान्यखण्डानि जुहुयादप्योत्तरं शतम् ॥२२
सावित्री होममेकं तु ब्रह्माभिहतवान्पुरा । सर्वज्वरप्रशमनं सद्यो ज्वरहरं परम् ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणे श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नक्षत्रहोमविधिवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४५

उत्पन्न होने पर अश्व देवता प्रधान हों तो गूलर की समिधा की आहुति, याम्य देवता में, मधुप्लुत तिल की आहुति अग्नि देवता में जवा, प्रजापत्य देवता में भोग्य बीज करम्बक सौम्य (बुध) प्रधान देवता में प्रियंगु (राई आदि), रौद्र में धृतप्लुत मांस, आदित्य देव में धृतप्लुत श्वेत तण्डुल, बृहस्पति के अधिदेव रहने पर धृतप्लुत खीर, सर्वाधिदेव में गाँव की औषधियों समेत बरगद के पत्तियों की आहुति और यामदेव में प्रियंगु (कांगुनी) आदि की आहुति देनी चाहिए। सविता देव में दधि की आहुति, त्वष्ट्रा देव में विचित्रविचित्र चावल की हवि, रौद्र में धृतप्लुत जवा, पायस, अनुराधा नक्षत्र में अधिदेव में उसके मंत्र द्वार कंटक मिश्रित, नैऋत्य में तिल की आहुति अग्नि में अप्ति करनी चाहिए। शालि (साठी) चावल से वैश्वदेव की आहुति प्रदान करनी चाहिए। इसी प्रकार विष्णुदेव की प्रधानता में रक्ततण्डुल की आहुति, शतभिषा के अधिदेव में पारिजात पुष्पों की आहुति देनी चाहिए। अजैकपादनक्षत्र में प्राजापत्य देव के समान आहुति, अहिर्वृद्ध नक्षत्र में वैश्वदेव करना चाहिए। विष्णुदेव की प्रधानता में रक्त तण्डुल और पौष में अखण्ड एक सौ आठ फलों की आहुति देनी चाहिए। इस प्रकार ब्रह्मा ने पूर्वकाल में एक सावित्री हवन बताया है, जो उसी क्षण समस्त ज्वरों का शमन करता है। १३-२३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
नक्षत्रहोमविधि वर्णन नामक एक सौ पैंतालिसवाँ अध्यय समाप्त । १४५।

अथ षट्कृत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अपराधशतव्रतवर्णनम्

श्रीवसिष्ठ उवाच

अथान्यदपि ते वक्त्वा व्रतं राजन्महाफलम् । अपराधशतं येन क्षयं याति शृणुष्व तत् ॥१

इक्ष्वाकुरुवाच

किं व्रतं तन्ममाचक्ष्व कोऽपराधस्तु तं वद । कः पूज्यते च वै तस्मिन्कदा वा क्रियते नरैः ॥२

श्रीवसिष्ठ उवाच

शृणु राजन् भावाबाहो अपराधशतव्रतम् । येनानुष्ठितमात्रेण काममोक्षौ लभेत ना ॥३
 प्रायश्चित्तन्यशेषाणि सर्वपापापनुत्तये । कृतान्यप्यकृतानि स्युरिति होवाच पद्मजः ॥४
 पापं गुरुतरं चापि दद्यते तूलराशिवत् । अपराधशतं राजञ्छृणुष्व गदतो मम ॥५
 न करतीति नरो मोहाहृत्रतमेतत्तद्विदे दिने । अनाश्रमित्वं प्रथमोऽनग्निता व्रतहीनता ॥६
 तदातृत्वमशौचं च निर्दयत्वं स्पृहालुता । अक्षान्तिर्जनपीडा च मायित्वप्यमङ्गलम् ॥७
 क्षतव्रतत्वं नास्तिक्यं वेदनिन्दा कठोरता । असत्यता हिंसकत्वं स्तैन्यमिन्द्रियविष्लवः ॥८
 मनसोऽनिग्रहश्चैव क्रोध ईर्ष्याथ मत्सरः । दम्भः शाठ्यं च धूर्त्यं च कटुकोक्तिः प्रमादता ॥९

अध्याय १४६

सैकड़ों अपराधों को नष्ट करने वाले व्रत का वर्णन

वसिष्ठ बोले—राजन् ! इसके अनन्तर मैं तुम्हें एक महाफल व्रत बता रहा हूँ, जो सैकड़ों अपराधों को शीघ्र विनष्ट कर देता है, सुनो ! १

इक्ष्वाकु बोले—मुझे वह कौन व्रत है, उसे और उसके शान्त होने वाले अपराधों को बताने की कृपा कीजिये । उसमें किस देव की पूजा करनी चाहिए और किस समय ? २

वसिष्ठ बोले—राजन् ! महाबाहो ! मैं तुम्हें अपराधशतव्रत बता रहा हूँ, जिसके अनुष्ठान मात्र से मनुष्यों को कामनाओं की सफलता और मोक्ष प्राप्त होता है । ब्रह्मा ने यह भी बताया है कि समस्त पापों के प्रक्षालन के लिए यद्यपि अनेक प्रायश्चित बताये गये हैं तथापि इस अनुष्ठान के समक्ष वे सुसम्पन्न करने पर भी न करने के समान ही हैं । राजन् ! अतः इस अपराध शतव्रत को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! क्योंकि इसके द्वारा तूल राशि के समान गुरुतर भी पाप शीघ्र दग्ध हो जाता है । मनुष्य के मोहवश इस व्रत को यथावासर सुसम्पन्न करने पर उसे आश्रमहीनता, अनग्निता (अर्जिनहोत्र कर्महीनता), व्रतहीनता, अपदातृव्य, अशोच, निर्दयता, स्पृहणीयता, असहिष्णुता, जनपीडा, मायावी, अमंगल, व्रतभंग, नास्तिकता, कठोर वेदनिंदक, असत्यता, हिंसकत्व, चोरी, इन्द्रिय दोष का भागी होना पड़ता है । ३-८। उसी भाँति उसके मन का अनिग्रह क्रोधी, ईर्ष्या, मत्सर, दम्भ शाठ्य, धूर्त्या समेत वह कटुभाषी,

भार्यामातृसुतादीनां त्यागश्रापूज्य पूजनम् । श्राद्धहानिर्जपत्यागः पञ्चयज्ञविवर्जनम् ॥१०
 सन्ध्यातर्पणहोमानां हानिरग्नेः प्रणाशनम् । अनृतौ मैथुनं पार्थं पर्वण्यपि च मैथुनम् ॥११
 पैशुन्यं परदारेषु दानं वेश्याभिगामिता : अपात्रदानं चालं च मूलिकाकुलिभक्षणम् ॥१२
 अन्त्यजागमनं मातृत्यागः पितृविवर्जनम् । पित्रोरभक्तिर्विद्वश्च पुराणस्मृतिवर्जनम् ॥१३
 अभक्ष्यभोजनं चापि पतिद्वोहोऽविचारता । कृषिकर्मक्रियावाहं भार्यासंग्रहकारिता ॥१४
 इन्द्रियाजयमायित्वं विद्याविस्मरणं तथा । शास्त्रत्यागः कृष्णं द्विकर्म चानङ्गधावनम् ॥१५
 भार्यापुत्रसुतादीनां विक्रयः पशुमैथुनम् । इन्धनार्थं दुमच्छेदो बिले वार्यादिपूर्वगम् ॥१६
 तडागागमने वृत्तं विद्याविक्रयकारिता । वृत्तिलोपो महीपाल याचकत्वं कुमित्रता ॥१७
 स्त्रीवधो गोवधश्चैव पौरोहित्यं सुहृद्धधः । भूषणहत्या परान्नं च शूद्रान्नस्य निषेवणस् ॥१८
 शूद्रस्य चाग्रिकर्मत्वमविधित्वं कुपुत्रता । विद्वद्भूतो याचकत्वं हि वाचाटत्वं प्रतिग्रहः ॥१९
 श्रौतसंस्कार हीनत्वमात्रत्राणविवर्जनम् । ब्रह्महत्यासुरापानं रुक्मस्तैन्यमतः परम् ॥२०
 गुरुदाराभिगामित्वं संयोगश्चापि तैः सह । अपराधशतं त्वेतत्कथितं ते स्यानघ ॥२१
 अन्येऽपि विविधाः सन्ति प्रोक्ताः प्राधान्यतस्त्वमी । यदि वक्त्रसहस्राणि वक्त्रे जिह्वाशतानि च ॥२२
 तथाप्येते न शक्यन्ते वक्तुं यस्मादनन्तकाः । अपराधसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥२३
 नश्यन्ति तत्क्षणान्तूनं सत्येशस्थानुपूजनात् । पूज्यते भगवानत्र ब्रतकृत्ये पराजिते ॥२४
 ध्वजे सत्ये स्थितंश्चायं लक्ष्यां सह जगत्पतिः । वामदेवस्ततः पूर्वं नृसिंहो दक्षिणे स्थितः ॥२५

प्रमादी, स्त्री, माता, और पुत्रों आदि के त्याग, अपूज्य का पूजन, श्राद्धहीनता, जप त्याग एवं पाचों यज्ञों के न करने का दोषभागी होता है । उसके संध्या, तर्पण, होम की हानि, अग्निप्रणाशन, कृतुहीन मैथुन और पूर्वसमय में मैथुन, पिशुनता (चुगुली), परस्त्री मैथुन, वेश्यागमन, अपात्र में दान, अल्पता, मूलिका, कुलिभक्षण, शूद्रागमन, मातृत्याग, पिनृहीनता, माता की अभक्ति, और उनसे वाद विवाद करना पुराण और स्मृति के त्याग, अभक्ष्य भोजन पतिद्वोह विचार हीनता, कृषी करना, स्त्री संग्रह, इन्द्रिय का अजेता, मायावी, विद्या विस्मरण, शास्त्रों के त्याग, कृष्ण, चित्रकारी, कामुकता । कामुकता, भार्या, पुत्र, कन्या का विक्रय, पशुओं से मैथुन, जलाने के लिए वृक्ष काटने, विल में पानी डालना, तालाब में स्नान करना, विद्या विक्रय का अपराध उसे होता है । महीपाल ! वृत्तिलोप, याचकता, कुमित्रता, स्त्रीवध, गोवध, पुरोहित के कार्य, मित्रवध, भूषण हत्या, परान्न, और शूद्र द्वारा अग्नि कर्म, अविधि, कुपुत्रता, विद्वानों से याचना करना, वाचालत्व, प्रतिग्रह (दान लेना), वैदिक संस्कार हीनता, आर्तों की रक्षा न करने, ब्रह्म हत्या, सुरापान, सुवर्ण चोरी, गुरुपत्नी गमन आदि दोष भागी होता है अनध ! इस प्रकार मैंने कुर्म्हि साँ अपराधों को सुना दी । १-२१ । अन्य भी विविध भाँति के इतने प्राधान्य अपराध हैं जिनकी गणना के लिए सहस्र मुख और उनमें सैकड़ों जिह्वा हों, किन्तु फिर भी असमर्थ रहेंगे क्योंकि अपराध अनन्त हैं । इस ब्रत में भगवान् सत्येश की अर्चा होती है, जिससे सहस्र, लक्ष एवं कोटि अपराध उसी क्षण निश्चय विनष्ट हो जाते हैं । इनकी ध्वजा में सत्य, लक्ष्यी समेत विष्णु स्थित रहते हैं, बायें वामदेव, दक्षिण में

कपिलः पश्चिमास्येतु वाराहश्रोतरे स्थितः । ऊर्ध्वबहुत्र्युतो ज्ञेय एतद्वै इत्युपञ्चकम् ॥२६
 तं सत्येशं स्थितं राजन्पूजयेच्च सदैव हि । क्षीरोदयार्थचन्द्रस्थपद्मर्जिकासंस्थितम् ॥२७
 पद्मकौमोदकीशङ्कायुधविधारणम् । वासे चाधस्तथा दक्षे ऊर्ध्वे पश्चादधो नृप ॥२८
 पादाधस्ताद्विनिष्कान्ता गङ्गा पूता सदा नृभिः । शक्त्यष्टकं तथा चान्यतन्नामानि च मे शृणु ॥२९
 जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी ! उन्मीलनी वञ्जुली च त्रिस्पृशाथ विवर्द्धना ॥३०
 एताभिः शक्तिभिर्युक्तं लोकदिक्पालवर्जितम् । शुक्लाम्बरधरं सौम्यं प्रहृष्टददनं शिवम् ॥३१
 सर्वाभरणशोभाद्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं हरिम् ! पूजयेच्च प्रयत्नेन विधिना येन तं शृणु ॥३२
 मार्गशीर्षाद्विमासेषु द्वादशस्त्वापि रर्वदा ! द्वादशयाम्यमायां वा अष्टम्यां च सितासिते ॥३३
 कृतोपवासः शुद्धात्मा कुर्याद्वितमतन्द्रितः । एक्षयोरुभयोरेवं पूजयेऽहं जनार्दनम् ॥३४
 एवं तु नियमं कृत्वा दन्तधावनपूर्वकम् । गच्छेत्तत्स्तडगे वा पुष्करिण्यां गृहेऽपि वा ॥३५
 स्नात्वा तु नैत्यकं कर्म कृत्वा नैमित्तिकं ततः । कुर्यात्सर्वं प्रयत्नेन यथावदनपूर्वशः ॥३६
 सौवर्णं कारयेदेवं पूर्वोक्तं सत्यरूपिण्यम् । शक्त्यष्टकयुतं लक्ष्म्यां युक्तं पद्मासनस्थया ॥३७
 सुवर्णपलमानेन कार्यमेतत्सविस्तरम् । दुग्धकुम्भोपरिष्टात् तु स्वर्णपद्मं प्रकल्पयेत् ॥३८
 तत्कर्णिकागतं देवं शक्तिवृद्धसमन्वितम् । पूजयेद्विधिवत्पश्चाद्गुरुमन्त्रप्रचोदितः ॥३९
 शुद्धशुक्लाम्बरधरो मन्त्रसम्भारसंसितः । देवोक्तीरसमुद्रेऽस्मिन्वृते चन्द्रे च पुष्करे ॥

नृसिंह, पश्चिम मुख की ओर कपिल, उत्तर में वाराह (मेध), भगवान् अच्युत का ऊर्ध्व मुख भी है इन्हीं को ब्रह्म पञ्चक कहते हैं । राजन् ! उन सत्येश भगवान की सदैव अर्चना करनी चाहिए, जो क्षीर सागर से निकले चन्द्रमः के आधे भाग में स्थित कमल की कर्णिका में स्थित हैं । नृप ! वे अपने बांदे त्रांथ में नीचे, दाहिने, ऊपर वाले और पीछे वाले के नीचे हाथों में क्रमशः पद्म, कौमोदकी गदा, शंख और चक्रास्त्र धारण किये हैं । उनके चरण तल से परमपूता गंगा का निष्क्रमण हुआ है, जो मनुष्यों को सदैव पवित्र करती है । उनके आठ शक्तियाँ हैं । उनके नाम मैं बता रहा हूँ, सुनो ! जया, विजया, पापनाशिनी जयन्ती, उन्मीलनी, वञ्जुली, त्रिस्पृशा, अक्ष विवर्द्धना । लोक दिक्पाल से रहित इन्हीं शक्तियों समेत शुक्लाम्बर धारी, सौम्यमुर्ति, कल्याण स्वरूप, प्रसन्न मुख, समस्त आभृषणों से सुसज्जित होने के नाते शोभा की राशि और भुक्ति मुक्ति प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु की अर्चना सप्रयत्न मुसम्पन्न करनी चाहिए, वह विधान मैं बता रहा हूँ सुनो ! २२-३२। मार्गशीर्ष आदि बारहों मासों में कृष्णशुक्ल द्वादशी अमावास्या और अष्टमी के दिन उपवास पूर्वक शुद्धात्मा और आलस्य रहित होकर भगवान् जनार्दन की दोनों पक्षों में सप्रेम अर्चना कर्णेंगी । इस प्रकार नियम करके दंत धावन (दातून) करके किसी तालाब, बावली या गृह में ही स्नान एवं नित्य कर्म करने के अनन्तर यह नैमित्तिक सप्रयत्न पूरा करे । एक पल सुवर्ण की सत्यरूपी भगवान् जनार्दन की प्रतिमा का निर्माण कराकर आठों शक्ति और लक्ष्मी समेत उन्हें उस कमल दल के आसन पर सुशोभित करे, जो दुग्धपूर्ण कलश के उपर सुवर्ण द्वारा निर्मित हो । उस कमल की कर्णिका में शक्ति समेत सुशोभित सत्येश की सविधान अर्चा करके गुरु मंत्र द्वारा प्रार्थना करे—शुद्ध शुक्लाम्बर धारण किये मंत्रोच्चारण पूर्वक कहे—सत्येश ! देव ! क्षीर सागर में जो चन्द्र कमल से

तत्र त्वं सत्यया सार्द्धं सत्येश भव सर्विधौ ॥४०

ॐ क्षीरसागरकल्लोले न्नाहि पापनिषूदन । अनेन भूतभव्येन इत्तेन जलबिन्दुना ॥४१
हरस्वं सर्वं दुरितं ममनाथ जनार्दन । वस्त्रदानेन शुभ्रेण सत्येशं कुरु मे शुभम् ॥४२
यज्ञे योगे तथा सांख्ये पवित्रस्त्वं सदोच्यसे । यज्ञोपवीतदानेन कुरु मां सर्वपावनम् ॥४३
विलिप्तं कर्मणा सर्वं सत्यं सत्यं न केनचित् । मम चन्द्रनलिप्ताङ्गः सर्वलेपापहो भव ॥४४
सत्यनाथं नमस्तुभ्यं मूर्तामूर्तस्वरूपिणे । वासुदेव नृसिंहाख्यं कपिलादित्यभूधर ॥४५
वाराहाच्युतं यज्ञेशं लक्ष्मीकान्तं नृपेश्वरः । पशुं पुत्रं च मे देहि पापशत्रो निरञ्जन ॥४६
संकर्षणं महावीर्यं सर्वेशामितविक्रमं । अनिरुद्धन्दं गोदिन्दं धृतवक्रं नमोऽस्तु ते ॥४७

(इति पूजामन्त्रः)

कृष्णकृष्णं प्रभो रामरामं कृष्णं विभो हरे । त्राहि मां सर्वदुःखेभ्यो रमया सह माधव ॥४८
पूजा चेयं मया दत्ता पितामहजगदगुरो । गृहाणं जगदीशानं नारायणं नमोऽस्तु ते ॥४९
धनं गुप्तं महीपालं सर्वपापानुपत्तये । एकस्यैवतु विप्रस्य याक्षदूर्षं समर्पयेत् ॥५०
दानं दद्यान्महाराजं हृशक्तौ तदभावतः । पक्षेषक्षे प्रकर्तव्यं ब्रतमेतन्महत्तरम् ॥५१
सम्वत्सरे ततः पूर्णे कुर्याद्यापनं बुधः । पूर्वदत्पूजयेद्वेवं बहुसम्भारविस्तरैः ॥५२
अनुजां प्रार्थयेद्विग्रान्यापध्वंसो ममास्तु वै । पापध्वंसोऽस्तु सततं तवेति च द्विजो वदेत् ॥५३

भूपित है, अपनी सत्या समेत सदैव वर्तमान रहते हों, यहाँ आने की कृपा करें। पापनिषूदन ! आप क्षीर सागर की गम्भीर तरङ्गों में न्नान करते हैं अतः मेरे द्वारा दिये गये इस जलबिन्दु को स्वीकार करते हुए मेरे समस्त दुरितों के शमन करे क्योंकि आप मेरे स्वामी हैं। जनार्दनं सत्येश ! मेरे इस शुभ्र वस्त्र दान द्वारा आप मेरा कल्याण करने की कृपा करें। आप यज्ञ, योगशास्त्र एवं सांख्य में सदैव पूर्णं पवित्रं बताये गये हैं अतः इस यज्ञोपवीत दान द्वारा मेरा समस्त पवित्रं करते की कृपा करें। मैं सत्य एवं दृढ़ं सत्य कह रहा हूँ (आप के अतिरिक्त) अन्य कोई भी कर्म लोप नहीं कर सकता है अतः मेरे द्वारा किये गये चन्दन लेप से समस्त कर्म लेपन का आप अपहरण करें। ३३-४४। सत्यनाथ ! मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ आप मूर्ति धारी और अर्मूत (निराकार) हैं। वासुदेव, नृसिंह, कपिल, दिव्य, भूधर, वाराह, अच्युत, यज्ञेण, लक्ष्मी कांत, और नृपेश्वर नाम से आप विख्यात हैं पापशत्रो, निरंजन ! मुझे पशु एवं पुत्र देने की कृपा करें। संकर्षण, महापराक्रमी, सर्वेश, अति विक्रम, अनिरुद्ध इन्द्र, गोविन्द एवं चक्रदारी को मैं नमस्कार करता हूँ। पूजामन्त्रं कृष, कृष्ण, प्रभो, राम, राम, कृष्ण, विभो हरे, लक्ष्मी समेत माधव ! समस्त दुःखों से मेरी रक्षा करो। पितामह, जगदगुरो ! मैंने यह पूजा आप को अर्पित की है, जगदीश, ईशान नारायण ! मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें। ४५-४९। महीपाल ! अपना गुप्त धनं समस्त पापं प्रक्षालनार्थं वर्षं पर्यन्तं किसी एक ही वाह्यण को अर्पित करते रहना चाहिए। महाराज ! धनं रहने पर उचित दान करना चाहिए। समर्थ होने पर प्रतिपक्ष में इस महत्तर च्युत को सुसम्पन्न करता रहे और वर्ष के अन्त में उद्यापन करे। इस प्रकार पूर्वोक्त विधान द्वारा बहुसंभारयुक्त होकर उनकी अर्चना करने के अनन्तर वाह्यणों की आज्ञापूर्वक प्रार्थना करे—मेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट हों पश्चात् निस्तर तुम्हारे पाप

ततः सर्वं ब्राह्मणाय समर्प्य च क्षमापयेत् । अस्मिन् व्रते कृते राजन् वदेद्बहुफलोदयः ॥५४
 यत्कलं सर्ववेदेषु सर्वतीर्थेषु यत्कलम् । तत्कलं कोटिगुणितं ऋतस्यास्य निषेवणात् ॥५५
 इह लोके धनं धान्यं पुत्रमित्रसुखादिकम् । प्राप्नोति पुरुषः सम्पर्विद्यारोग्यकलायुधम् ॥५६
 धर्ममर्थं च कांमं च मोक्षं च नृपसत्तम् । लभते नात्र सन्देहो ब्रह्मणो वचनं यथा ॥५७
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते । यः कुर्यात्पुनरेतद्विद्वान्तफलभागभवेत् ॥५८
 अशक्तस्तु तथा शक्तो दित्तशाठ्यविवर्जितः । ऋतं कुर्वन्नरो भक्त्या लभते शश्वतं पदम् ॥५९
 कृते वै क्रियमाणे तु कर्ता फलमवाप्नुयात् । अपराधताघौर्यं व्रतेनानेन नाशयेत् ॥६०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 अपराधशतत्रत्वर्णनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४६

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

काञ्चनव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

श्वेतद्वीपे सुखासीनं देवदेवं जगत्प्रभुम् । वासुदेवं जगन्नाथं स्थितिसंयमकारकम् ॥१

का नाश हो ऐसा ब्राह्मण कहे । अनन्तर वह समस्त सामग्री ब्राह्मण को अप्ति कर क्षमा प्रार्थना करे । राजन् ! इस व्रत के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने पर अनेक फलों की प्राप्ति होती है । समस्त वेदों के फल, समस्त तीर्थों के फल, जितनी संख्या में हो उनके कोटिगुणे अधिक फल इस व्रत को सम्पन्न करने पर प्राप्त होते हैं । इस लोक में मनुष्य को धन, धान्य, पुत्र मित्र आदि के सुख समेत समस्त विद्या, आरोग्य, आयुध कला की प्राप्ति होती है । नृपसत्तम ! धर्म, अर्थ, कांम और मोक्ष की प्राप्ति ब्रह्मा के वचनानुसार निःसंदेह होती है । इसके पढ़ने और सुनने वाले भी समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं तथा जो इसे सुसम्पन्न करता है उसे अनन्त फल की प्राप्ति होती है । अशक्त को भी सम्पन्न करने पर वैसे ही फल की प्राप्ति होती है । समर्थ को कभी भी उस समय कृपण न होना चाहिए । भक्तिपूर्वक सम्पन्न करने वाले प्राणी को शाश्वत पद की प्राप्ति होती है । इस व्रत के करने अथवा करने के लिए उद्यत होने वाले को वे सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं । क्योंकि बताया गया है । इस व्रत द्वारा सैकड़ों अपराधों की राशि विनष्ट होती है ॥५०-६०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में
 अपराधशतवर्णन नामक एक सौ छियालिसवाँ अध्याय समाप्त । १४६।

अध्याय १४७

काञ्चनव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! श्वेतद्वीप (क्षीर सागर) में सुखासीन वासुदेव जगन्नाथ जी से जो देवाधिदेव, जगत्स्वामी, एवं उसकी स्थिति और संयम करने वाले । १। महान् सप्ता, पुराण (प्राचीन) रूप,

परत्वराणां क्षष्टारं पुराणं परमव्ययम् । आदिदेवं जगन्नाथं जगतः कारणात्मकम् ॥२
प्रणिपत्य महादेवं चराचरगुरुं हरिम् । लक्ष्मीः प्रोवाच राजेन्द्र पादसम्बाहने स्थिता ॥३
भगवन्देवदेवेश भक्तानामनुकम्पक । इष्टव्यं किञ्चिदिच्छामि प्रष्टुं प्रश्नविदां वर ॥४
प्रकुरुष्व महाभाग दयां कृत्वा ममोपरि । व्रतं किञ्चित्कथय मे रूपसौभाग्यदायकम् ॥५
उत्तमं सर्ववर्णानां व्रतानामार्प चोक्तमम् । कृतेन येन देवेश सर्वतीर्थफलं भवेत् ॥६

विष्णुरुद्वाच

गृहस्थश्वाश्रमाणां च वर्णानां ब्राह्मणो यथा । यथा नदीषु सर्वासु जाह्नवी लोकविश्रुता ॥७
ह्लदानामुदधिः श्रेष्ठो देवानां विष्णुरुत्तमः । स्त्रीणां देवी यथा लक्ष्मीस्तथेवं व्रतमुत्तमम् ॥८
न गङ्गा न कुरुक्षेत्रं न काशी न च पुष्करम् । पावनानि महाभागे यथेवं व्रतमुत्तमम् ॥९
गौर्या देव्या कृतं पूर्वं शङ्कुरेण महात्मना । रागेण सीतया सार्द्धं राज्यं प्राप्य पूर्तं पुरा ॥१०
दमयन्तीवियोगेन नलेन तु तथा कृतम् । कृष्णया सहितैः पार्थं पाण्डवैवनवासिभिः ॥११
कृतमेतदव्रतं भद्रे स्वर्गमोक्षप्रदायकम् । रम्भया भेनया वापि पौलोभ्या सत्यभामया ॥१२
शाण्डिल्या चाप्यरुन्धत्या उर्वश्या देवदत्तया । कृतं व्रतमिदं भद्रं सौभाग्यसुखकाम्यया ॥१३
पाताले नागकन्याभिः कृतमेतत्सुशोभनम् । गायत्र्या च सरस्वत्या सावित्र्या ब्रह्मार्यया ॥१४
अन्याभिः सर्वानारोभिः सर्वकामफलेषुभिः । तस्मातेऽहं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥१५
वसुप्रीतिकरं रम्यं व्रतानां परमं शृणु । ब्रह्महा मुच्यते पापात्सुरापे वसुहारकः ॥१६
गुरुभार्याभिगामी च हेतेषां सङ्घमी च यः । मानकूटं तुलाकूटं कन्यावृत्तिर्गतां व्रती ॥१७

परमात्मा, आदि देव, जगत् के स्वामी, कारण, चराचर गुरु, महादेव, एवं हरिरूप हैं, पादसंबाहन करती हुई लक्ष्मी जी ने कहा—भगवन् देवाधिदेव, भक्तों पर अनुकम्पा रखने वाले आप प्रश्नवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं अतः मैं आप से कुछ पूँछना चाहती हूँ । महाभाग ! मेरे ऊपर कृपाकर, आप उसे बताने की कृपा करें—देवेश ! मुझे रूपसौभाग्यदायक एक ऐसा व्रत बताने की कृपा करें, जो समस्त वर्णों और व्रतों में परमोत्तम हो और जिसने अनुष्ठान से समस्त तीर्थों के फल प्राप्त हों । २-६

विष्णु बोले—जिस भाँति आश्रमों में गृहस्थ, वर्णों में ब्राह्मण, समस्त नदियों में जाह्नवी गंगा लोकविश्वात हैं, जलाशयों में समुद्र, देवों में विष्णु और स्त्रियों में देवी लक्ष्मी परमोत्तम है उसी भाँति यह व्रत परमोत्तम है । महाभाग ! इस व्रत के सम्मान गंगा, कुरुक्षेत्र, काशी, और पुष्कर पवित्र नहीं है । इसे सर्वप्रथम गौरी समेत शिव, राज्य प्राप्ति के अनन्तर सीता समेत रामचन्द्र ने सुसम्पन्न किया था । पार्थ ! उसी भाँति दमयन्ती के वियोग में नल, कृष्ण (द्रौपदी) समेत वनवासी पाण्डवों ने सर्वो मोक्ष प्रदायक इस व्रत सुसम्पन्न किया है । रम्भा, भेना, पौलोभी, सत्यभामा, शाण्डिली, अरुन्धती, उर्वशी, देवदत्ता आदि ने सौभाग्य सुख की कामना से इसे पूरा किया है । ७-१३। पातालवासिनी नाग कन्याओं ने भी इसे सुसम्पन्न किया है । गायत्री, सरस्वती, ब्रह्मार्या सावित्री और अन्य अनेक स्त्रियों ने भी । समस्त कामनाओं के सिद्धर्थ इसका अनुष्ठान किया है । अतः समस्तपाप विनाशक इस व्रत को मैं तुम्हें बता रहा हूँ, जो वसुप्रीतिकारी एवं व्रतों में परमोत्तम है मुनो ! इस व्रत के प्रभाव से ब्रह्महत्या, सुरापान, धनापहारी, गुरुपत्नी गमन, उनके साथी, श्रीमान कूट, तुलाकूट, कन्या द्वारा जीवन यापन, गोविक्रिय,

अगम्यागमनो यस्तु मांसाशी वृषलीपतिः । कुण्डाश्रिभोजी यस्तु स्याद्भूमिहर्ता तथैव च ॥१८
 एभिः सर्वैर्महापापैर्मुच्यते नात्र संशयः । एभिः स्यान्नरनारीभिः कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥१९
 अतस्तेऽहं विधिं वक्ष्ये विधानमवधारय । काञ्चनाख्या पुरीनाम व्रतं त्रैलोक्यविशुतम् ॥२०
 यः करोति नरो देवि नारी वा भक्तिसंयुता । तत्यु पुत्राश्च पौत्राश्च जायते विपुलं धनम् ॥२१
 तस्मिन्मासे च कर्तव्यं व्रतमेतच्च सुन्दरि । तस्मिन्मासे च कर्तव्या काञ्चनाख्या पुरी शुभा ॥२२
 शुक्लकृष्णतृतीयायामेकादश्यां च पूर्णिमा । संक्रान्तिर्वा महाभागे कुहर्वा चाष्टमी तिथिः ॥२३
 पर्वस्वन्येषु सर्वेषु दातव्या काञ्चनी पुरी । व्रती स्नात्वा तु पूर्वाह्लै नद्यादौ विमले जले ॥२४
 मृत्तिकालम्भनं कार्यं मन्त्रेणानेन मुक्त्रते । उद्धतासि यथपूर्वं विष्णुना क्रोडरूपिणा ॥२५
 लोकानामुपकारार्थं वन्दनात्मिद्विकामदा । तस्मात्त्वं वन्दिता पापं हरं भेजेकजन्मजम् ॥२६

(इति मृत्तिका मन्त्रः)

आपस्तु विश्वयोनिर्हि विष्णुना निर्भिताः स्वयम् । सान्निध्यं तीर्थताहितं कर्तव्यं मम साम्प्रतम् ॥२७
 (इत्यम्मन्त्र)

अनेन विधिना स्नात्वा यजमानः समाहितः । गृहमागम्य शुद्धात्मा नालपन्धिशुनान्स्त्वरात् ॥२८
 पालण्डिनो विकर्मस्थान्धूर्ताश्च कितवाञ्छठान् । प्रक्षाल्य पाणिवदनं कुर्यात्त्वाचमनं ततः ॥२९
 उपवासस्य नियमं कुर्यान्नक्तस्य वा पुनः । शङ्खप्रवरामादाय हेमयुक्तं जलैर्भूतम् ॥३०
 द्वादशाक्षरमन्त्रेण तज्जलं चाभिमन्त्रयेत् । पिबेत्तोऽयं गृहे गत्वा हरिरित्यक्षरं जपेत् ॥३१

अगम्यागमन, मांसभोजी, वृषली पति कुण्ड के अन्न से भोजन का बनाने, भूमिहरण, आदि महापातकों से प्राणी मुक्त होता है । इस उत्तम व्रत का विधान स्त्री पुरुष सभी को सप्रेम सुसम्पन्न करना चाहिए । अतः इस का विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! देवि । त्रैलोक्यप्रख्यात काञ्चनी पुरी नामक व्रत को भक्ति पूर्वक सविधान पूरा करने वाले स्त्री पुरुष को पुत्र पौत्र एवं धन की प्राप्ति होती है । सुन्दरि ! उसी मास में काञ्चनपुरी का दान और व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए । महाभागे ! शुक्ल, कृष्ण की तृतीया, एकादशी, पूर्णिमा, संक्रान्ति दिन, अमावस्या, अष्टमी और पर्व तिथियाँ के दिन, पूर्वाह्ल के समय किसी नदी आदि में विमल जल में स्नान और निम्नलिखित मंत्र द्वारा मृत्तिका का लेप सर्वज्ञ में करे—बाराह रूपधारी विष्णु ने पूर्वकाल में लोकोपकारार्थ तुम्हारा उद्घार किया है और वंदना करने मात्र से तुम सदैव कामनाएँ सिद्ध करती हो इसीलिए मैं तुम्हारी वंदना करता हूँ, मेरे अनेक जन्मों के पाप का अपहरण करो । १४-२६। भगवान् विष्णु ने विश्व योनि (कारण) रूप में जल का स्वयं निर्माण किया है इस समय तीर्थ समेत आप का सन्निधान मुझे प्राप्त हो । (जलमंत्र) इस विधान से स्नान कर शुद्धात्मा यजमान अपने गृह पहुँच कर किसी चुगुलखोर, पाखण्डी, कर्मच्युत, धूर्त, कितव, शठ आदि दुराचारियों से किसी प्रकार की बातचीत न करे अपने कर चरण का प्रक्षालन करे । आचमन के उपरात उपवास नियम या नक्त नियम का पालन करते हुए सुवर्ण युक्त किसी शंख प्रवर में जल रखकर उसे द्वादशाक्षर मंत्र द्वारा अभिमंत्रित करे और उसके पान करने के अनन्तर भगवान् के हरिनाम का जप करे । २७-३१। चारहाथ की

शमीवृक्षमया वेदी चतुःस्तम्भसमन्विता । चतुर्हस्तप्रसाणेन कार्या चैव सुशोभना ॥३२
 वस्त्रेणावेष्टिताः स्तम्भावितानवरमण्डिताः । पुष्पमालान्विताः कार्या दिव्यधूपाधिवासिताः ॥३३
 मध्ये तु मण्डलं कार्यं पदात्मं वर्णदैः शुभैः । येन दृष्टेन देवेशि सर्वपापक्षयो भवेत् ॥
 मण्डलस्य तु मध्ये वै भद्रपीठं सुशोभनम् ॥३४
 आसनं तत्र विन्यस्य कोमलं वस्त्रवेष्टितम् । तस्योपरि न्यसेदेवं लक्ष्म्या युक्तं जनार्दनम् ॥३५
 अदे तु कलशः कार्ये जलपूर्णः सुशोभनः । क्षीरसागरनामा स कल्पितव्यः प्रयत्नतः ॥३६
 पञ्चरत्नसमायुक्तं वस्त्रेणावेष्टयेद्वेदनम् । कुम्भं प्रपूर्णमुद्वक्तस्तस्योपरि न्यसेद्वृद्धः ॥३७
 तस्योपरिष्टात्संस्थाय काञ्चनात्मां पुरीं शुभाम् । चतुष्पला ह्रुतमा स्याद्विद्वप्तला स्थृत्या स्मृता ॥३८
 सामान्यैकपला कार्या कलशैस्तु समन्विता । मोदकान्स्थापयेद्विवृत्यन्समन्तात्सुन्दरीकृतीद् ॥३९
 तदग्रे कदलीस्तम्भैस्तोरणं परिकल्पयेत् । चातुश्ररणिकान्स्तत्र विप्रानादाहृ सुन्दरि ॥४०
 प्रतिष्ठां कारयेत्स्य वेदमन्त्रैः सुशोभनैः । तस्या मध्ये न्यसेद्विष्टुं हैमं लक्ष्म्या समन्वितम् ॥४१
 नेत्रे रत्नमये कार्ये दशना वज्रभूषितः । मुक्ताकलमयं तस्य भूषणं परिकल्पयेत् ॥४२
 अङ्गं स्वर्णमयं कार्यं शङ्खचक्रगदायुधम् । पञ्चामृतेन देवेशं स्नाप्य नारायणं विभुम् ॥४३
 तमेव गन्धपुष्पाद्यैर्मन्त्रमुच्चार्यं पूजयेत् । ब्राह्मणान् वैदिकमन्त्रैः पूजयेन्मधुसूदनम् ॥४४
 शेषा वर्णाः पुराणोक्तैस्ताञ्छृणुष्व मम प्रिये । वासुदेवाय पादौ तु गुल्कौ संकर्षणाय च ॥४५
 त्रैलोक्यजनकायेत जानुनी पूजयेद्वरेः । त्रैलोक्यनाथाय गुह्ये ज्ञानमयाय वै कटिम् ॥४६

सुन्दर वेदी का निर्माण कर, जो शमी वृक्षमय एवं चार स्तम्भों से युक्त हो । वस्त्रों से स्तम्भों को आवेष्टित करके परमोत्तम वितान (चंदोबा) और पुष्पमाला से भूषित करते हुए दिव्य धूप से अधिवासित करे । देवेशि मध्या भाग में शुभ (रंगों) से पद्म नामक मण्डल की रचना करनी चाहिए, जो दर्शन मात्र से पाप विनष्ट करता है । मण्डल के मध्य में एक सौन्दर्यपूर्ण भद्रपीठ (आसन) स्थापित कर उसके ऊपर कोमल वस्त्रवेष्टित एक आसन रखे और उस पर लक्ष्मी समेत जनार्दन भगवान् को सुशोभित करे । अजेय सम्मुख क्षीर सागर नामक एक सुन्दर जलपूर्ण कलश स्थापित कर उसे पञ्चरत्न, वस्त्र के वेष्टन से अलंकृत कर उसके ऊपर एक अन्य जलपूर्ण कलश रखे और उसी के ऊपर काञ्चन पुरी को स्थापित कर, जो सुवर्ण के चार पल की सर्वोत्तम, दो पल की मध्यम, या एक बी की सामान्य रूप में बनी हो । उसके चारों ओर सुन्दर ढंग के बने हुए मोदकों को रखे और उसके सम्मुख कदली स्तम्भों द्वारा तोरण की कल्पना करे । सुन्दरि ! धर्म के सत्य आदि चार चरणों से युक्त ब्राह्मणों के आवाहन पूर्वक वेदमन्त्रों के उच्चारण द्वारा वेदी पर उनकी प्रतिष्ठा करे । पुनः वेदी के मध्य भाग में लक्ष्मी समेत विष्णु की सुवर्ण प्रतिमा स्थापित करे, जिसके रत्नमय नेत्र, वज्रभूषित दाँत, मोतियों के आभूषण, शेष अंग स्वर्णमय एवं शंख, चक्र, गदा से विभूषित हों । ३२-४२। देवेश एवं विभु नारायण को पञ्चामृत से स्नान वैदिकमन्त्रोच्चारण पूर्वक गंध पुष्प की पूजा अपित करें । प्रिये ! भगवान् मधुसूदन के शेष अंग पुराण के मंत्रों द्वारा पूर्जित करना चाहिए । ‘वासुदेव को नमस्कार है’ से चरण, ‘संकर्षण को नमस्कार है’, से गुल्फ (एड़ी), ‘त्रैलोक्य जनक को नमस्कार है, जाननु (घुटने)’ ‘त्रैलोक्य नाथ को नमस्कार है’ से गुह्य स्थान, ‘ज्ञानमय को नमस्कार है, से कटि, ‘दामोदर को नमस्कार है’ से उदर ‘विश्वरूपी को नमस्कार है’ से

दामोदरायेत्युदरं हृदयं विभूलिपि । नित्यं हि पूजयेदेवि उरः श्रीबत्सधारिणे ॥४७
 कण्ठं कौस्तुभनाथाय अस्त्यां यज्ञमुखाय च । दैत्यान्तकारिणे बाहू स्वैनमैरायुधानि॑ च ॥४८
 शिरः सर्वात्मने देवि देवदेवस्य पूजयेत् । श्रियं प्रपूजयेद्वैर्वीं देव्या मन्त्रैः पृथग्विधैः ॥४९
 इन्द्रादिलोकपालाना पूजा कार्या यथाक्रमम् । नवग्रहाणां होमश्रव कर्तव्यो विष्णनाशनः ॥५०
 पूजा गणपते: कार्या तथा होमो विधानतः । अग्ने नैवेद्यमतुलं दापयेद्यृतपाच्चितम् ॥५१
 पायसं धृतपरांश्च मोदकान्पूरिकास्तथा । सोहालिकादिनैवेद्यं फेणिकाः शर्करास्तथा ॥५२
 देशकालोद्भवःयेव फलानि विनिवेदयेत् । दोपान्दश दिशो दद्यात्याधिवान्तक्त्वात् ॥५३
 एतेन तु दिशालाक्षिं मूलमन्त्रेण दापयेत् ! पुष्मभालान्वितान्कृत्वा त्तदनेन विभूषितान् ॥५४
 अभिगत्यं प्रयत्नेन विष्णुस्त्वयकवाचवैः । सहस्रशीर्षादिभिर्मन्त्रैर्जपद्भिर्ब्रह्मणोत्तमैः ॥५५
 षोडशाथ सपलीकान्पूजयेच्च यथाविधि । भूषयेच्च शुभैर्वस्त्रैस्तथालङ्घरणादिभिः ॥५६
 विष्णुं मत्वा द्विजः पूज्यो लक्ष्मीं मत्वा च ब्राह्मणीम् । छत्रं चोपानहौ चैव अङ्गत्याभरणं तथा ॥५७
 फलानि सप्त धान्यानि भोजनं च यदीप्सितम् : दातव्यं च सभार्याय कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥५८
 शय्यां सोपस्करां चैव वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नतः । तथा प्रकल्पयेद्वित्तशक्त्या च मुन्दरी यथा ॥५९
 ब्रते पूर्णे च गोर्देया सर्वोपस्करसंयुता । पुरीं धटापयेत्पूर्वं वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नतः ॥
 यथा कुर्यात्प्रयासेन यथा कर्ता न पश्यति ॥५०
 दीपांस्तु दीपितांस्तत्र आनयेद्यज्ञमण्डपम् । श्वेतवस्त्रेण नेत्रे तु यजमानस्य च प्रिये ॥५१
 श्रुतवाच्छास्त्रवित्पाज्ञः कृतसर्वाधिसंक्षयः । आबध्य नेत्रे सुप्राज्ञे आचार्यस्तमिदं वदेत् ॥५२

'हृदय' की वत्सधारी को नमस्कार है, से उनके उर की पूजा करनी चाहिए । देवि ! कौस्तुभनाथ को नमस्कार है' से उनके कंठ 'यज्ञमुख को नमस्कार है' से मुख 'दैत्यानाशक को नमस्कार है' से भुजाएँ, 'आयुधों के नामोच्चारण पूर्वक आयुधों की पूजा करनी चाहिए । देवि ! 'सर्वात्मा को नमस्कार है' से उनके शिर की पूजा और देवी (लक्ष्मी) के पृथक् पृथक् मंत्रों द्वारा उनकी अर्चना करे । उसी भाँति क्रमशः इन्द्र आदि लोकपालों की पूजा, नवग्रहों का हवन और विष्ण विनाशार्थ गणपति की सविधात् अर्चा अवश्य करनी चाहिए । ४३-५१। अनन्तर उनके सोहाल, पेड़ा, बर्फी, सामयिक फल, रक्तवर्ण की पत्तियों से भूषित मृत्तिका के दश दीपक अर्पित करे । विशालाक्ष ! मूल मंत्र द्वारा पूष्प माले अर्पित करते हुए उन्हें चन्दन भूषित करें । पश्चात् स्तुति पाठ करने वाले ब्राह्मणों द्वारा ब्राह्मण पूजनोपरांत 'सहस्रशीर्षा' आदि मंत्रों से (विष्णु की) आराधना होनी चाहिए । यथा विधान सोलह सप्तलियों को अर्चना के उपरांत वस्त्र अलंकार आदि से भूषित करें । विष्णु की भावना से ब्राह्मण और लक्ष्मी भावना से ब्राह्मणी को पूजित करके छत्र, उपानह, अंगूठी, फल, सप्तधान्य, यथेच्छ भोजन अर्पित करते हुए 'कृष्ण मुङ्ग पर प्रसन्न हों' कहें । मुन्दरि ! सुसज्जित शश्या का दान कर ब्रत की समाप्ति में उपस्कर समेत गोदान अवश्यक करना चाहिए । (काच्चनपूरी) को वस्त्रों से इस भाँति आच्छादित करे, जिससे कर्ता उसे देख न सके । ५२-५०। प्रज्ञलित दीपक मण्डप में लाकर शास्त्रवेत्ता आचार्य श्वेत वस्त्र से यजमान के नेत्र आवृत्त कर

१. आर्षमेतत् ।

सर्वकामप्रदां पश्य काञ्चनाख्यां पुरीमिमाम् । दरबस्त्रयुतां रम्यां दुःखदौर्भाग्यनाशिनीम् ॥६३
 एवमुक्तो महाभाग पटमुन्मुच्य नेत्रयोः । पुष्पाञ्जर्लि युरो क्षिप्त्वा स पश्येत्तां पुरीं शुभाम् ॥६४
 दृष्ट्वा तां नगरीं देवि यजमानः समाहितः । सौवर्णं पात्रमादाय रौप्यं ताम्रमथापि वा ॥६५
 अथ वा शङ्खमादाय सात्रालाभे तु सुन्दरि । पञ्चरत्नं क्षिपेत्यात्रे जलं गाङ्गं तथा फलम् ॥६६
 सिद्धार्थमक्षताः पूर्वं रोचना दधि वा पुनः । ततश्चार्थ्यं प्रदातव्यं कृष्णाय प्रभविष्णवे ॥६७
 लक्ष्मीनारायणौ देवौ सर्वकामफलप्रदौ । रुक्मपुर्याः प्रदानेन यच्छेतां वाञ्छितं मन् ॥६८
 नारायण हृषीकेश ज्ञानज्ञेय निरञ्जन । लक्ष्मीकान्त जगन्नाथ गृहणार्थं नमोस्तु ते ॥६९

(इत्यर्थमन्त्रः)

एवमर्थं ततो इत्वा विष्णवे प्रभविष्णवे । देव्यास्त्वर्थ्यं प्रदातव्यं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥७०
 जानुभ्यामवनिं गत्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् । ब्रह्मणा पूजिता देवी विष्णुनां शङ्खरेण च ॥७१
 पार्वत्या पूजिता लक्ष्मीः स्कन्दवैश्वरणेन च । मया च पूजिता देवि धर्मस्य विजिगीषया ॥७२
 सौभाग्यं देहि मे पुत्रान्धनं पौत्रान्धं पूजितान् । गृहणार्थं मया दत्तं देवि सौख्यं प्रयच्छ मे ॥७३
 एवं पुरतो इत्वा पूर्वोक्तविधिना तव । रक्तौ जागरणं कुर्याद्भक्तियुक्तेन चेतसा ॥७४
 गीतनृत्यविनोदेन उपाख्यानैश्च वैष्णवैः । येन केन विनोदेन निद्रा नैव प्रजायते ॥७५
 उभिद्वो जागृत्याद्यस्तु शतयनफलं लभेत् । प्रभाते विमले स्नात्वा सम्पूज्य पितृदेवताः ॥७६

उससे कहलाये—समस्त कामनाओं को सफल करने वाली इस काञ्चनी पुरी को देखो जो सुन्दर वस्त्रों से भूषित, शश्या एवं दुःख दुर्भाग्य को विनष्ट करती है। महाभाग ! ऐसा कहकर वस्त्र हटा लेने के अनन्तर यजमान गुरु चरण में पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हुए उस शुभ काञ्चनपुरी का दर्शन करे। देवि ! समाहित मन से उस नगरी को देखने पर यजमान सुवर्ण, चाँदी, ताँबे, शंख अथवा किसी अन्य पात्र में गङ्गा जल डालकर पञ्चरत्न डाले। पुनः उसके समेत फल, राई, अक्षत, गोरोचन, और दही मिथित अर्थं प्रभावशाली भगवान् कृष्ण को अर्पित करते हुए—लक्ष्मीनारायणदेव समस्त कामनाओं को सफल करते हैं, अहा इस काञ्चनपुरी के प्रदान करने के नाते मेरे मनोरथ सफल करें। नारायण, हृषीकेश, ज्ञानज्ञेय, निरञ्जन, लक्ष्मीकान्त, एवं जगन्नाथ, मेरे इस अर्थ को स्वीकार करे। ६१-६१। मैं उन्हें नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले विष्णु को अर्थं अर्पित कर सावधान मन से भक्तिपूर्वक श्री लक्ष्मी के निमित्त अर्थं प्रदान करें। घटने के बल पृथिवी में वैठकर मंत्रोच्चारण करे—देवी की पूजा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव ने की है, पार्वती स्कन्द और वैश्वावण (कुबेर) ने की है उस भाँति धार्मिक भावना से मैंने आप की पूजा की है। मुझे सौभाग्य समेत पुत्र, धन और उत्तम पौत्र प्रदान करने की कृपा करें। देवि ! मेरे द्वारा दिये गये अर्थ दान स्वीकार कर मुझे सौख्य प्रदान करें। इस प्रकार पूर्वोक्त विधान द्वारा तुम्हारे सम्मुख अर्थं अर्पित कर भक्तिशङ्का समेत गीत, नृत्य, या वैष्णव उपाख्यान द्वारा रात्रि जागरण करे। अथवा जिस किसी भाँति उस दिन जागरण करता है रहे, निद्रारत न होने पाये। ७०-७५। क्योंकि विनिद्र जागरण करने से यज्ञफल की प्राप्ति होती है। पुनः विमल प्रातःकाल पितृदेव पूजन के उपरांत सप्तलीक ब्राह्मणों को सुसज्जित कर भोजन से तृप्त करे और

ब्राह्मणांश्च सप्तलीकान्परिधाप्यनुभोजयेत् । दक्षिणाश्च यथाशक्तया प्रदाय च क्षमापयेत् ॥७७
 दीनान्धबधिरान्पृगून्सर्वान्त्स्तत्परितोष्येत् । पश्चात्पारणकं कार्यसुवासी भवेद्यदि ॥७८
 नधुरं पयसा युक्तं सुहृद्वर्वान्धवैः सह । एदमेतद्वत्रं कार्यमेकादश्यां शुचिस्मिते ॥७९
 शुक्लायामथ कृष्णायां त्रृतीयायां तथा तिथौ । संक्रान्तिवासरे वात्पि व्यतीपाते च वैधृतौ ॥८०
 यदा वा जायते दित्तं चित्तं च वर्वर्णिनी ! गौरानीय प्रदातव्या कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥८१
 एवं कृते च सन्तुष्टं तत्र शक्यं निवेदितुम् । अपि वर्षसहस्रेण कुललक्षणतैरपि ॥८२
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । ब्रह्मलोकं सनाताद्य ब्रह्मणा प्रतिनोदयते ॥८३
 ब्रह्मलोकाद्वद्वलोकं तत्परं विष्णुसंनिधौ । इन्द्रादिलोकपालानां व्रती लोकमाप्न्यात् ॥८४
 ततो भुक्त्वा शुचिः श्रीमान्भोगान्स्त्रैलोक्यसुन्दरि । चक्रवर्ती भवेद्भूमौ ब्रह्मण्यो वैष्णवस्तथा ॥८५
 य इदं शृणुयान्तियं वाच्यमानं समन्ततः । कुलसप्तकमुद्धृत्य वैष्णवं लोकमाप्न्यात् ॥८६
 त्वयाकाञ्चनपुर्याख्यं व्रतमेतत्कृतं पुरा । तेन पुण्येन लब्धोऽहं धर्ता त्रैलोक्यपूजितः ॥८७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीलक्ष्मीविष्णुसंवादे
 काञ्चनपुरीव्रतवर्णनं नामसप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४७

यथाशक्ति दक्षिणा से सन्तुष्ट करते हुए क्षमा याचना करे—दीनों, अन्धों, बधिरों, एवं पंगु आदि को सन्तुष्ट कर उपवासी यदि हो तो पारण करे—मित्रों, बान्धवों समेत मधुर पायस युक्त भोजन करे । हे शुचिस्मिते ! एकादशी तिथि के दिन यह व्रतानुष्ठान करना चाहिए अथवा शुक्ल कृष्ण की त्रृतीया, संक्रान्ति वासर, व्यतीपात, वैधृति योग अथवा जिस दिन चित्त एवं वित्त पूर्ण हो । वर्वर्णिनि ! गाय प्रदान करते समय ‘कृष्ण मेरे उपर प्रसन्न हों, कहे । इस प्रकार इसे सुसम्पन्न करने पर जितने पुण्य की प्राप्ति होती, वर्णन करना असम्भव है । सहस्रों वर्षों तक उसकी सैकड़ों लाखों पीढ़ियाँ कोटि सहस्र एवं कोटि शत कल्प तक ब्रह्मलोक में ब्रह्म के साथ आमोद प्रमोद करती है । पुनः ब्रह्मलोक से रुद्र लोक उससे विष्णु लोक और इन्द्रादि लोकपालों के लोक की प्राप्ति उसे होती है । त्रैलोक्यसुन्दरि ! वह पूतात्मा एवं श्रीमान् प्राणी अतुल भोगों के उपभोग करने के अनन्तर इस भूतल में ब्रह्मण्य, एवं वैष्णव चक्रवर्ती राजा होता है । इसके आख्यान सुनने वाले भी अपने सात कुलों के उद्घार पूर्वक वैष्णव लोक प्राप्त करते हैं । तुमने भी पूर्वकाल में इस काञ्चन व्रत को सुसम्पन्न किया है, जिससे तुम्हें त्रैलोक्यपूजित मैं धर्तारूप में प्राप्त हुआ है । ७६-८७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में विष्णुलक्ष्मी के सम्बाद में
 काञ्चनपुरी व्रत वर्णन नामन एक सौ सैतालीसर्वाँ अध्याय समाप्त । १४७।

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कन्याप्रदानवर्णनम् (अथ कन्यादानम्)

श्रीकृष्ण उदाच

ब्रह्मदेयां तु यः कन्यामलङ्कृत्य प्रयच्छति । सप्तपूर्वान्भविष्यदंश्च स्वकुले सप्तमानवान् ॥१
तेन कन्याप्रदानेन स तार्यत्संशयम् । लोकानाम्नोति च तथा दक्षस्यैव प्रजापते ॥२
प्राजापत्येन विधिना आत्मानं च समुद्धरेत् । महत्पुण्यमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥३
भूगवाभप्रदानानि गजदानं तथैव च । दत्त्वा तु वर्णहीनाय घोरे तमसि मञ्जति ॥४
बहुवर्षसहस्राणि पुरीषं काकमभ्नुते । शुल्केन दत्त्वा कन्दां च घोरं नरकमाष्टयात् ॥५
बहून्यब्दसहस्राणि तथा अनुचिभुविगुरः । सवर्णं च सवर्णेभ्यो दद्यात्कन्यां यथादिधिः ॥६
दत्त्वा चाधिकवर्णाय द्विगुणं निर्गुणं तथा । द्विजपुत्रमनाथं वा संस्कुर्याद्यश्च कर्मभिः ॥७
चूडोपनदनाद्यश्च सोऽश्वेधकलं लभेत् । अनाथां कन्यां दत्त्वा नाकलोके महीयते ॥८
कन्या लह दत्तं च सुवर्णं बहिमूलकम् । सकलं द्विगुणं तस्य फलमुक्तं पुरातनैः ॥९
कन्यादानादवाप्नोति दक्षलोकं नरोत्तम । विष्णुपूजासमं पुण्यं तत्कन्यापूजया भवेत् ॥१०

विमानमाहृत्य मनोभिरामं सुराङ्गनापीतविलासहृद्यम् ।
प्राप्नोति लोकं त्रिदशोत्तमानां कन्याप्रदानान्नं विचारणेति ॥११
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णपूर्विष्ठरसंवादे
कन्याप्रदानवर्णनं नामाष्टाचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४८

अध्याय १४८

कन्यादान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मण को देने योग्य कन्या अलंकृत कर दान करने वाले प्राणी अपने कुल के सात पीढ़ी पूर्व की और सात भविष्य की पीढ़ियों का उद्धार करता है। इसीलिए उसी कन्यादान के द्वारा उसे दक्ष प्रजापति के लोक प्राप्त होते हैं। प्राजापत्य विधान द्वारा दान करने पर अपने उद्धार समेत महान् पुण्य एवं स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। पृथिवी, गौ, अश्व, एवं हारी दान किसी वर्णहीन को अपित करने पर धोरतम नरक प्राप्त होता है। कौवा होकर अनेक वर्षों तक पुरीष (मल) भोगी होता है। शुल्क लेकर कन्या दान से घोर नरक प्राप्त होता है और अनेक वर्षों तक अशुचि भोग भी होता है। इसलिए सविधान सवर्ण कन्या किसी सवर्ण अथवा ऊँचे कुल में सौंपना चाहिए। किसी अनाथ ब्राह्मण बालक का चूड़ा कर्म (मुण्डन) यज्ञोपवीत आदि संस्कार करने से अश्वमेध फल प्राप्त होता है, उसे अनाथ कन्या का दान करने स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। कन्या दान समेत सुवर्ण दान करने से प्राचीनोंने दुगुने फल की प्राप्ति बताया है। नरोत्तम! कन्या दान द्वारा उसे दश स्वर्ग लोक प्राप्त होता है। कन्या की पूजा करने से विष्णु पूजा का फल प्राप्त होता है। कन्या प्रदान द्वारा एक मनोरम विमान में सुखासीन होकर, जो देवजनाओं की गीतों से मुखरित रहता है उत्तम लोक की प्राप्ति होती है। १-११

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णपूर्विष्ठर के संवाद में
कन्याप्रदान वर्णन नामक एक अङ्गतालीसवर्ण अध्याय समाप्त । १४८।

अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्राह्मणशुश्रूषाविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ब्राह्मणा दैवतं भूमौ ब्राह्मणा दिवि दैवतम् । ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति नास्ति भूतं जगत्वये ॥१
 अदेवं दैवतं कुर्युः कुर्युर्देवमदैवतम् । ब्राह्मणा हि महाभागाः पूज्यन्ते सततं द्विजाः ॥२
 ब्राह्मणेभ्यः समुत्पन्ना देवाः पूर्वमिति स्मृतिः । ब्राह्मणेभ्यः जगत्सर्वं तस्मात्पूज्यतम् द्विजाः ॥३
 येषासशनंति वक्त्रेण देवताः पितरस्तथा । ऋषयश्च तथा नाशाः किं भूतमधिकन्ततः ॥४
 यदैव मनुजो भक्त्या ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । तदैवाप्नोति धर्मज्ञ ब्रह्मजनक्तिं जन्मनि ॥५
 तालवृन्तानिलेनैव श्रान्तसम्वाहनेन च । उत्सादनेन गत्राणां तथा व्यञ्जनकर्मणा ॥६
 पादशीचप्रदानेन पादयोः सेचनेन च । परिचर्यं यथा कःभैक्षेनैव द्विजोत्तम ॥७
 अनिष्टुपि समाप्नोति स्वर्गलोकं च शाश्वतम् । ब्राह्मणानां शुभं कृत्वा नाकलोके महीयते ॥८
 यद्ब्राह्मणास्तुष्टिमन्तो वदन्ति प्रत्यक्षदेवेषु परोक्षदेवाः ।
 तद्वे शुभं तस्य नरस्य नूनं भवेदतस्तान्सततं निषेवेत् ॥९
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 ब्राह्मणशुश्रूषाविधिवर्णनं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः । १४९।

अध्याय १४९

ब्राह्मण की सेवाविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—इस भूतल में ब्राह्मण ही देव और स्वर्ग के भी देव हैं क्योंकि इस तीनों जगत् में ब्राह्मणों से पृथक् अन्य कोई श्रेष्ठ वस्तु है ही नहीं । अदेव को देव, अदेव को बनाने में महाभाग (पुण्यात्मा) ब्राह्मण गण ही समर्थ होते हैं इसी लिए ब्राह्मण सतत पूजित होते हैं । स्मृतियों का कथन है कि ब्राह्मण द्वारा सर्वप्रथम देवों की सृष्टि हुई और अनन्तर सम्पूर्ण जगत् की । इसीलिए ब्राह्मण पूज्यतम बताये गये हैं । जिनके मुख द्वारा देवता, पितर, ऋषिगण एवं नागगण भोजन तृप्त होते हैं इससे अधिक क्या कहा जा सकता है । भक्ति पूर्वक मनुष्य जिस समय ब्राह्मण को देता है उसी समय उसे अनेक जन्म जन्मान्तरों के लिए प्राप्त हो जाता है । १-५। ब्राह्मण के पंखा झलने, चरण दाबने, शरीरांगों के क्रम दूर करने, भोजन, पाद प्रक्षालनार्थ जल दान अथवा पाद प्रक्षालन का अन्य कोई परिचर्या करने से चाहे एक ही ब्राह्मण हो, अनेक अनिष्ट रहते हुए भी उसे स्वर्ग लोक अवश्य प्राप्त होता है । ब्राह्मणों के निमित्त शुभ कर्म करने से स्वर्ग लोक में पूजित होता है क्योंकि ब्राह्मण प्रसन्न होने पर प्रत्यक्ष कहता है और देवगण परोक्ष में । उस समय उस मनुष्य के लिए जो कुछ शुभ दाणी कहता है, वह निश्चय सम्पन्न होती है, इसीलिए ब्राह्मण सेवा निरन्तर करनी चाहिए । ६-९।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में

ब्राह्मणशुश्रूषाविधिवर्णन नामक एक उन्नासवाँ अध्याय समाप्त । १४९।

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

वृषदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

युष्मद्वाक्ष्यामृतमिदं हृहं शृण्वञ्जनार्दन । न तृप्तिमधिगच्छामि जातं कौतूहलं हि मे ॥१
गोपतः किल गोविन्दस्त्रिषु लोकेषु विक्षुतः । सोवृषस्य प्रदानेन त्रैलोक्यमन्वितम् ॥२
तस्माद्गोवृषकल्पस्य विधानं कथयाच्युत ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

वृषदानफलं पुण्यं शृणुष्व कथयामि ते । पवित्रं पावनं चैव सर्वदानोत्तमं तथा ॥४
दशधेनुसमोनडानेकश्चैव धुरंधरः । दशधेनुप्रदानाद्विस्तरं एवैको विशिष्यते ॥५
वोढा च चारुपृष्ठाङ्गो ह्यरोगः पाण्डुनन्दन । युवा भद्रः सुशीलश्च सर्वदोषविवर्जितः ॥६
धुरन्धरः स्थापयते एकं एवं कुलं महत् । त्राता भवति तंसरान्नात्र कार्या विचारणा ॥७
अलंकृत्य वृषं शान्तं पुण्येहि समुर्पस्थिते । रौप्यालङ्गूलसंयुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥८
मन्त्रेणानेन राजेन्द्रं तं शृणुष्व वदामि ते । धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक ॥९
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन । दत्त्वैवं दक्षिणायुक्तं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१०
सप्तजन्मकृतं पापं वाङ्मनः कायकर्मजम् । तत्सर्वं विलयं याति गोदानसुकृतेन च ॥११

अध्याय १५०

वृषदानविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—जनार्दन ! मैं आपकी अमृतवर्षा करने वाली वाणी सुनते ही मुझे तृप्ति नहीं हो रही है
यह महान् कौतूहल हो रहा है । गोविन्द गोपालक हैं ऐसा तीनों लोकों में प्रत्यात है इसीलिए गोवृष के दान
करने से त्रैलोक्य सुखी होता है । अच्युत ! अतः गोवृष कल्प का विधान बताने की कृपा करें । १-३

श्रीकृष्ण बोले—वृषदान का पुण्य फल जो अत्यन्त पावन एवं सर्वोत्तम है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ,
सुनो ! दश धेनु के समान एक धुरंधर वृष होता है । पाण्डुनन्दन ! दशधेनु प्रदान करने की अपेक्षा एक वृष
दान कहीं अधिक प्रशस्त कहा गया है । क्योंकि सुन्दर पृष्ठवाला, नीरोग वृष नहीं समर्थ वोढा बताया
गया है । युवा, भद्राङ्गति, सुशील और समस्त दोषहीन एक ही धुरंधर महान् कुल की स्थापना करता है
एवं संसार में वही त्राता (रक्षक) होता इसमें संदेह नहीं । किसी पुण्य दिन शांत वृष को अलंकृत करके
जिसे चाँदी के लांगुल (पृष्ठ) से भूषित किया गया हो, ब्राह्मण को अर्पित करे । राजेन्द्र ! उस समय जिस
मंत्र का उच्चारण करना चाहिए मैं बता रहा हूँ, सुनो ! धर्म ! तुम वृष (बैल) रूप से सम्पूर्ण जगत् के
आनन्दित करते हो । सनातन देव ! तुम्हारा अधिष्ठान अष्टमूर्ति है, अतः मेरी रक्षा करो । इसे कहते
हुए दक्षिणा समेत वृष उन्हें अर्पित करके नमस्कार पूर्वक विसर्जन करे । वाणी मन और शरीर जन्य सात जन्म
के समस्त पातक गोदान करने से विलीन हो जाते हैं । ४-११। वृष (बैल) जुते हुए देवीप्यमान एवं

यानं वृषभसंगुक्तं दीप्यमानं सुशोभितम् । जारह्य कामां दिव्यं स्वर्लोकनधिरोहति ॥१२
यावन्ति तस्य रोमाणि गोवृषस्य महीपते । तावद्वृष्टसहवाणि गवां लोके महीयते ॥१३
गोलोकादवतीर्णस्तु इहलोके द्रिजोत्तमः । यज्ञयाजी महातेजाः सर्वब्राह्मणपूजितः ॥१४
तदोत्तं वै महाराज कस्य देयो वृषोत्तमः । तदप्यहं ते वक्ष्यामि पात्रं त्राणपदं तृणाम् ॥१५

येषां सदा वै श्रुतिपूर्णकर्णं जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः ।

प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं सप्तर्थाः ॥१६

गात्रे दृढं भारसहं सुपुष्टं सुशृङ्खिणं सर्वगुणोपपन्नम् ।

दत्तर्षभं गोदशकेन तुल्यं सत्यं भवन्ति भुवि तत्कलभागिनस्ते ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

वृषदानविधिवर्णनं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः । १५०

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः प्रत्यक्षधेनुदानवत्विधिवर्णनम् (अथ विविधदानानि) युधिष्ठिर उवाच

श्रुतः पुराणविषयस्त्वत्प्रसादान्मयाच्युत । संसारासारतां ज्ञात्वा श्रुतश्च वतविस्तरः ॥१
भूयश्च श्रोतुभिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् । किं दीयते कदा कृष्ण केनोपायेन शंस मे ॥२

सुशोभित यान (बैलगाड़ी) पर बैठकर उसे दिव्य स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है । महीपते ! उसके शरीर में स्थित लोम संख्या के अनुसार उतने वर्ष गो लोक में वह पूजित होता है । पुनः गोलोक से इस धरातल पर श्रेष्ठब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण कर यज्ञयाजी, महातेजस्वी, समस्त ब्राह्मणों के पूज्य होता है । महाराज ! अप ने जो पूछा कि ऐसा परमोत्तम वृष दान रूप में किसे अर्पित किया जाय, मैं उसे बता रहा हूँ, जो उसका पात्र एवं मनुष्य मात्र का ब्राता होता है । जिनके कर्ण विवर सदैव वेद शब्दों से पूर्ण हों, जितेन्द्रिय, हिसवृत्ति रहित, प्रतिग्रह (दान) लेने में संकोच हो, वे ही गृहस्थ मानव उद्धार करने में समर्थ होते हैं शरीरदृढ़ भार वहन करने में क्षम, सुप्रष्ट, सुन्दर सींग, समस्त गुणों से युक्त वृष के जो दश गौ के समान होता है, दान करने वाले इस भूतल में उस फल के भागी होते हैं यह सत्य है । १२-१७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में

वृषदान विधि वर्णन नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त । १५०।

अध्याय १५१ प्रत्यक्षधेनुदानविधि का वर्णन (विविध-दान)

युधिष्ठिर बोले—अच्युत देव ! आपकी कृपा से मैंने इस संसार को असार जानते हुए पुराण विषयों को भली भाँति सुन लिया, जिसमें व्रतों की व्याख्या विस्तार रूप से की गयी है । कृष्ण ! किन्तु फिर भी मुझे दान माहात्म्य सुनने की विशेष इच्छा है—किस समय किस विधान द्वारा किसका दान करना चाहिए,

नहि दानात्परतरमन्यदस्तीति मे मतिः । धनं धनवतां किञ्चिद्वद्हार्यं राजतस्करैः ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

अनिश्चितं निधानं यदप्रयुक्तं च बद्धते । अनीतं यति चाध्वानं धनं विप्रकरार्पितम् ॥४
 किं कायेन सुपुष्टेन बलिना चिरजीविना । यन्नसत्त्वोऽकाराय तज्जीवितमनर्थकम् ॥५
 ग्रासाददर्ढनपि ग्रासमर्थिभ्यः किन्त दीयते । इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥६
 एकस्मिन्नश्व्यतिक्रान्ते दिने दानविवर्जिते । दस्युभिर्मुषितश्चैव दिवारात्रौ^१ च शोचति ॥७
 यस्य त्रिवर्गशून्यानि^२ दिनान्यायान्ति यस्ति च । सलोहकारभैव श्वसक्षणि न जीवति ॥८
 यैर्नदत्तं न च हुतं न तीर्थं भरणं हृतम् । हिरण्यमन्मुदकं ब्राह्मणेभ्यो न चार्पितम् ॥९
 दीना निरशन रुक्षाः कपालाङ्गुतपाणयः । ते दृश्यन्ते महाराज जायमानाः पुनः पुनः ॥१०
 आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि भरीयसः । गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥११
 नोपभागौः क्षयं यान्ति न प्रदानैः समृद्धयः । पूर्वाङ्गितानामन्यत्र^३ सुकुतानां फरिक्षयात् ॥१२
 अदृष्टपरतत्त्वोऽपि पात्रेभ्यो विसृज्येद्दनम् । यस्मान्मृतस्य तत्त्वास्ति तस्मात्सांशयिकं वरम् ॥१३

बताने की कृपा करें । क्योंकि सम्मति से दान से उत्तम कोई पुण्य वस्तु नहीं है, धनवानों के ऐसे धन का चोर कभी अपहरण नहीं कर सकता । १-३

श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मणों के हाँथ अर्पित किया हुआ धन एक अनिश्चित निधान होता है जिसका कोई अनुभान नहीं किया जा सकता क्योंकि वह अप्रयुक्त हीं बढ़ता रहता है, और (परलोक) मार्ग में यथावरर प्राप्त होता है । अत्यन्त पुष्ट शरीर वाले बली एवं चिरजीवी उस प्राणी का जन्म व्यर्थ है जिसने किसी प्राणी का उपकार नहीं किया । (समय पर) एक ग्रास मात्र या उसका अर्धभाग ही याचक को क्यों न दिया जाय जब कि इच्छानुरूप समृद्धि किसी के कभी हुई ही नहीं । किसी दिन के दान करने से खाली निकलने पर (संयोगवश) उस दिन चार द्वारा उस धन अपहृत हो जाने पर प्राणी उसके लिए दिन रात शोक करता रहता है । जिस प्राणी के तीनों वर्ग (धर्म, अर्थ, काम) से विहीन दिन आते जाते (व्यर्थ निकलते) रहते हैं, लोहार की भट्टी की भाँति वह श्वास लेने पर भी जीवित नहीं कहा जाता है । जिसने दान नहीं दिया, न यज्ञ किया, न तीर्थ में प्राणोत्सर्ग किया और न ब्राह्मणों को हिरण्य एवं अन्न जल (भोजन) ही अर्पित किया, केवल दीन हीन स्वभाव एवं भ्रूंखले रहकर रुखा वेष किये हाथ में कपाल लिये अपने दिन व्यतीत किये प्राणी ऐसे ही बार-बार जन्मग्रहण करते देखे गये हैं । महाराज ! सैकड़ों बार के प्रयत्न एवं परिश्रम से प्राप्त होने के नाते प्राण से भी अधिक प्रिय उस धन की केवल दान करना ही एक गति है और अन्य विपत्ति रूप बताये गये हैं । उपभोग और दान करने से पुण्यात्माओं की पूर्व जन्मार्जित सम्पत्ति कभी क्षीण नहीं होती है, यद्यपि अन्यत्र उपयोग करने से उसका नष्ट होना बताया गया है । प्राणी के निधन होने पर वह धन उसका नहीं रह जाता है, अतः सौभाग्यवश (प्राणी को अपने जीवित काल में ही) अपना वह धन किसी सुपात्र को अर्पित (दान) कर देना चाहिए । अनघ ! यद्यपि

१. युक्तमाक्रन्दितुं चिरम् । २. त्रिवर्गशून्यस्य । ३. धनस्योत्पत्तिकरणे ।

दानानि^१ बहुरूपाणि कथयाम तदानध । व्यासवाल्मीकिमन्वाद्यैः कथितानि पुरा भम ॥१४
किञ्चिद्दद्वत्तं^२ मत्क्रियते मूज्यते च त्रिलोचनः । दीयते यच्च विप्रेभ्य एतज्जन्मतरोः फलम् ॥१५

युधिष्ठिर उवाच

आहाणप्रीणनार्थाय केशवस्य शिवस्य च । यानि दानानि देयानि तान्वचक्ष्य यद्वत्तम ॥१६
येन चैव विधानेत दानं पुण्यसुखावहम्^३ । ऐहिकामुष्मिकावाप्तिं करोति नहि हृज्यते ॥१७

श्रीकृष्ण उवाच

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती । जगस्त्तमं पुनन्त्येते दोहवाहन्वेदनैः ॥१८
गोदानमादौ वस्यामि प्रत्यक्षकमयोगतः । येन^४ चैव विधानेत अन्यूनाधिकविस्तरम् ॥१९

युधिष्ठिर उवाच

देयाः किलक्षणा गावः काश्च राजन्विवर्जिताः । कीदृशाय प्रदातव्या न देयाः कीदृशाय वै ॥२०

श्रीकृष्ण उवाच

तरुणी रूपसपन्ना सुशीला च पयस्त्विनी । न्यायार्जिता सवत्सा च प्रदेया श्रोत्रियाय गौः ॥२१
बृद्धा सरोगा हीनाङ्गी वस्थ्या दुष्टा मृतप्रजा । दूरस्थाऽन्यायलज्ज्या च देया गौर्न कथञ्चन ॥२२

दान का अनेक रूप बताया गया है, तथापि व्यास, वाल्मीकि, एवं मनु आदि ने (इसके विषय में) मुझसे जो कुछ कहा है, मैं वहीं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! मनुष्य जो कोई ब्रत त्रिलोचन शंकर की आराधना तथा ब्राह्मणों को दान रूप में जो कुछ अर्पित करता है वहीं उस जन्म रूपी वृक्ष का फल कहा गया है । ४-१५

युधिष्ठिर बोले—यद्वत्तम् ! केशव, शिव और ब्राह्मण के प्रसन्नार्थ देने योग्य दान मुझे बताने की कृपा करें और जिस विधान द्वारा वह दान पुण्य रूप एवं सुखावह हो—लोक परलोक की प्राप्ति करा सकेन कि हनन अतः वह विधान भी मुझे बतायें । १६-१७

श्रीकृष्ण बोले—गौ, पृथ्वी और सरस्वती का दान अतिदान कहा गया है, (प्रतिग्रहीता) के गौ दुहने पृथ्वी जोतने और सरस्वती (विद्या) के ज्ञान होने पर ये सभी (दान) उसके दान को सात पीढ़ी का उदार करते हैं । अतः प्रत्यक्ष क्रमानुसार मैं तुम्हें गोदान और न्यूनाधिक विस्तार न होने वाला विधान भी बता रहा हूँ । १८-१९

युधिष्ठिर बोले—राजन् ! किस प्रकार की गौ का दान करना चाहिए उसे किन-किन लक्षणों से भूषित होने चाहिए और किन लक्षणों से रहित । ऐसी गौ किस प्रकार के पुरुष को अर्पित करनी चाहिए तथा किसे नहीं ? । २०

श्रीकृष्ण बोले—तरुणी, रूपवती, सुशीला, पयस्त्विनी (धेनु) और न्यायोपार्जित हो, ऐसी सवत्सरनी चाहिए । उसी प्रकार बृद्धा, रोगयुक्ता, अंगारीना, वंध्या, दुष्टा, मृत वस्ता (जिसके बच्चे भर जाते हैं), दूर रहने वाली और अन्याय द्वारा प्राप्त गौ का दान कभी भी न करना चाहिए । पूर्वोक्त लक्षण

१. दानमेव प्रकर्तव्यम् । २. हुतम् । ३. पुन्तः । ४. तेन ।

सा दत्तैव हरेत्पापं श्रोत्रियायाहिताग्रये । अतिथिप्रियाय दान्ताय धेनुं दद्याद्गुणाधिके ॥२३
अकुलीनाय सूर्खाय लुब्धाय पिशुनाय च । हव्यक्रव्यव्यपेताय न देया गौः कथञ्चन ॥२४

श्रीकृष्ण उवाच

पुण्यं दिनमथासाद्य स्नात्वातर्प्य पितृस्तथा । घृतश्नीराभिषेकं च कुत्वा विष्णोः शिवस्य च ॥२५
समन्वर्च्य यथान्यायं पुष्पादिभिरनुक्रमात् । उदडमुखों प्राङ्मुखों वा गृष्टिं कृत्वा पयस्त्विनीम् ॥२६
सद्वत्सां वस्त्रसम्बीतां सितयज्ञोपवीतिनीम् । स्वर्णशृङ्गों रौप्यखुरां कांस्यदोहनकान्विताम् ॥२७
शक्तितो दक्षिणादुक्तां द्राह्यणाय निवेदयेत् । पुच्छे कृष्णाजिनं देयं गां पुच्छे करिणं दरे ॥२८
अश्वं सदा सुकर्णं वा दासीं शिरसि दापयेत् । गावो ममाग्रतः सन्तु गांवो मे सन्तु पृष्ठतः ॥२९
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् । प्रदक्षिणां ततः कृत्वा धेनुं द्विजवराय ताम् ॥३०
इमां च प्रतिगृहीष्व धेनुर्दक्षा मया तत् । एवमुच्चार्यं तं विप्रं देवेशं परिकल्पयेत् ॥३१
अनुवज्जेच्च वग्च्छन्तं पदान्यष्टौ नराधिप । अनेन विधिना धेनुं ये दिप्राय प्रयच्छति ॥३२
सर्वकामसमृद्धात्मा स्वर्गलोकं स गच्छति । सप्त पूर्वान्सप्त परानात्मानं द्वै भानवः ॥३३
सप्त जन्मकृतात्मापान्सोचयत्यवनीपते । पदे पदेऽप्यमेधस्य गोशतस्य च भानवः ॥३४
फलमाप्नोति राजेन्द्र दक्षायैवं जगौहरिः । सर्वकामप्रदा सा स्यात्सर्वकालेषु पार्थिव ॥३५

सम्पन्न गौ श्रोत्रिय आदिताग्नि द्राह्यण को अर्पित करनेपर वह समस्त पापों का नाश करती है । क्योंकि अतिथि प्रिय, शुद्ध एवं गुणाधिक्य द्राह्यण को धेनु दान अर्पित करना चाहिए । कुलहीन, सूर्ख, लोभी, पिशुन (चुगुलखोर) और हव्य कव्यहीन द्राह्यण को कभी नहीं । २१-२४

श्रीकृष्ण बोले—किसी पुण्य दिन स्नान पितर तर्पण के उपरान्त भगवान् विष्णु और शिव घृत पूर्ण झीर से अभिषेक और न्याय प्राप्त पुष्पादि द्वारा क्रमणः अर्चा करे । पश्चात उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख उरा गौ को प्रतिष्ठित कर, जो गृष्टि (एक बार प्रसव की हुई), पयस्त्विनी (धेनु), सवत्सा, वस्त्राच्छन्ना । श्वेत यज्ञोपवीत से भूषित, सीगों में सुर्वा, खुरों में चाँदी जड़ी हो, और कांसे की दोहनी से युक्त हो, यथाशक्ति दक्षिणा समेत द्राह्यण को अर्पित करे । कृष्णमृग और गौ का दान पूँछ ग्रहण कर देना चाहिए । उसी भाँति हाथी के कर (सूँड), घोड़े का कान और दासी का शिर ग्रहण कर दान देना चाहिए । मेरे सम्मुखी पीठ की ओर एवं हृदय में गौएँ स्थित हैं अतः गौवों के मध्य में मैं निवास कर रहा हूँ । अनन्तर उस द्राह्यण श्रेष्ठ तथा उस गौ की प्रदक्षिणा करके कहे कि मैंने यहु गौ आप को अर्पित किया है अतः आप इसका ग्रहण करे—ऐसा कहकर इस विप्र और देवेश (विष्णु) को अर्पित करे । २५-३१। नराधिप ! विदा के समय आठ पग उनके पीछे चलना चाहिए । इस विधान द्वारा जो मनुष्य धेनु दान द्राह्यण को सादर समर्पित करता है वह अपनी समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक समृद्धात्मा होकर स्वर्ग लोक की प्राप्ति करता है । अवनीपते ! वह मनुष्य अपनी सात पीढ़ी पूर्व तथा सात पीढ़ी पर (भविष्य) की के उद्धार पूर्वक अपने सात जन्मों के पाप विनष्ट करता है । राजेन्द्र ! उसे पग पग पर अश्वमेध और गोशत दान का फल प्राप्त होता है इसी प्रकार विष्णु ने दक्ष से बताया था । पार्थिव ! सभी

भवत्यसौ षष्ठ्यहरा याददिंशाश्रतुर्दशः^१ ! सर्वेषामेव पापानां कृतानामपि जानता ॥३६
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तमनुतापोपबृहितम् । सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुग्म^२ फलम् ॥३७
ब्राह्मणः क्षत्रियैर्वैः शूद्रैश्चान्यैश्च मानवैः ! लोकाः कामगमाः^३ प्राप्त दत्त्वैतद्विधिना नृप ॥३८

गोभोधिकं जगति नापरमस्तिकिञ्चदानं^४ पवित्रमिति शास्त्रविदो वदन्ति ।

तत्सम्पदः सुरसदश्च समीहमानैर्देयाः सदैव विधिना द्विजपुञ्जवाय ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
प्रत्यक्षधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः । १५१

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धेनुदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धेनूनां कल्पनां नृप । विशेषविधिना याश्च देयाः कामानमीप्सुभिः ॥१
कामं यदीयते दानं समग्रं तत्सुखावहम् । असमग्रं तु दोषाय भवतीह परत्र च ॥२
तस्मान्न दक्षिणाहीनं विधानविकलं तथा । देयं दानं महाराज समग्रफलकाम्यया ॥३

समय यह गौ समस्त कामनाओं को सफल करती है । वह मानव भी चौदह इन्द्र के समय तक निष्पाप का यह ताप हीन प्रायश्चित बताया गया है । समस्त दानों में यह (गो दान इसलिए श्रेष्ठ है कि यह इसी जन्म में पल प्रदान करने लगता है । नृप ! इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र एवं अन्य मनुष्य भी इस विधान से (गोदान द्वारा) अपने लोक परलोक सुखप्रद बना सकते हैं । क्योंकि शास्त्रवेत्ताओं के कथनानुसार गोदान से श्रेष्ठ एवं पवित्र कोई, अन्य दान नहीं है अतः देव सम्पत्ति के इच्छुकों को सविधान गोदान किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अवश्य अर्पित करना चाहिए । ३२-३९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर रांवाद में
प्रत्यक्षधेनुदान व्रत विधान वर्णन नाम एक सौ इक्यावनाँ अध्याय समाप्त । १५१

अध्याय १५२

धेनुदानव्रतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! मैं तुम्हें धेनुकल्प और उसका विशेष विधान बता रहा हूँ, जिसके द्वारा कामनाओं को सफल करने वाले मनुष्य धेनुदान करते हैं । दक्षिणापूर्वक यथेच्छ दान करना पूर्णदान कहलाता है वही लोक परलोक में सुख प्रदान करता है और असम्पूर्ण (दक्षिणा हीन) दान लोक परलोक दोनों दूषित कर देता है । १-२। महाराज ! इसलिए दक्षिणा हीन दान, विधान को भंग कर देता है कभी न

१. जन्म चतुर्दश । २. देवानामेतज्जन्मांतरं फलम् । ३. कामदुधाः । ४. पुण्यम् ।

अन्यथा दौधमानं तदहंकाराय केवलम् । प्रत्यक्षं चार्थहानिः स्यान्न वा तत्कलदं भवेत् ॥४
 तिलधेनुं प्रदक्षयामि शृणु पार्थिवसत्तम । बारहेण पुरा प्रोक्तां महापातकनाशिनीम् ॥५
 यां दत्त्वा ब्रह्महा ज्ञेयः पितृहः गुरुत्पत्पगः । अगारदाही गरदः सर्वपापरतोऽपि वा ॥६
 महापातकयुक्तश्च संयुक्तश्रोपपातकैः । मुच्यते हृष्टिलः पादैः स्वर्गलोकं द्वै यच्छति ॥७
 अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनसमावृते ॥८ । धेनुं तिलमर्यी कृत्वा दभानास्तीयं सर्वतः ॥९
 तिलः इवेतास्तिला कृष्णास्तिला गोमूत्रवर्णकाः ॥१० । तिलान्नां च विचित्राणां धेनुं सर्वां च कारयेत् ॥११
 द्रोणस्य वत्सकं कुर्पच्चतुराढकिदां च गाम् । स्वर्णशृङ्खीं रौप्यखुरं गद्धवर्णवर्तीं तथा ॥१०
 कार्दा शर्करया जिह्वा गुडेनास्यं च कम्बलः । इक्षुपादां ताम्रपृष्ठीं शुक्तिमुक्ताफलेक्षणाम् ॥११
 प्रशस्तपत्रश्वरणां फलदन्तवर्तीं शुभाम् । ग्रादामपुच्छां कुवीत नवनीतस्तनान्विताम् ॥१२
 सितवस्त्राशिरालम्बां सितसर्जपरोमिकाम् ॥१३ । फलैर्मनोहरैरत्नैर्मणिमुक्ताफलान्विताम् ॥१३
 ईदृक्संस्थानसम्पन्नां कृत्वा शद्वासमन्वितः ॥१४ । कांस्योऽप्दोहनां दद्यात्पर्वकाले समाप्तते ॥१४
 या लक्ष्मीः सर्वभूततनां या वै देवेष्वस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥१५
 ततः प्रदक्षिणां कृत्वा पूजयित्वा प्रणम्य च । सदक्षिणा मया तुम्यं दत्तेत्युक्त्वा विसर्जयेत् ॥१६

करना चाहिए । समस्त फल की कामना से अब्रस्य सविधान दान करना चाहिए । अन्यथा वह दान केवल उसी अहंभाव की वृद्धि करता है क्योंकि प्रत्यक्ष में उससे अर्थ हानि होती है और उपरोक्त फल की प्राप्ति तो कभी नहीं । पार्थिवसत्तम् ! मैं तुम्हें तिलधेनु का विधान बता रहा हूँ जिस महापातक नाशिनी (तिलधेनु) को पूर्वकाल में बाराह (भगवान्) ने बताया था तथा जिसके दान करने से ब्रह्मण, गौ और पिता आदि की हत्या करने वाले, गुरुपत्नीगामी, घर को जलाने वाले, दिष्ट देने वाले, समस्त पाप कर्म करने वाले, महापातक तथा उपपातक युक्त मनुष्य अपने समस्त पापों से मुक्त होकर स्वर्ण लोक पहुँच जाते हैं । सुनो ! गोबर से भूमि को लीप कर कृष्णमूर्गचर्म बिछाये और उस पर चारों ओर कुश रखकर तिलमर्यी धेनु की स्थापना करे—श्वेत, कृष्ण और गोमूत्र वर्ण के एवं जितने भी विचित्र वर्ण के तिल होते हैं उन सब भाँति के तिलों द्वारा धेनु गौ की कल्पना करनी चाहिए ॥३-१॥ एक द्रोण परिमाण तिल द्वारा वत्स (उसके बच्चे) का और चार आढक तिल की गौ निर्मित होनी चाहिए जिसके सींग में सुवर्ण, खुरों में चाँदी, गंधवर्ण, शक्कर की जिह्वा, शूद्र से मुख और कम्बल (गले के नीचे लटकने वाला मास), ऊँक के चरण, ताँबे की पीठ, सुतुही या मोती की आँखे प्रशस्त पत्र के कान और फलों से शुभ दाँत बने हों । उसी प्रकार माला की पूँछ, नवनीत (मक्खन) का स्तन, श्वेत वस्त्र का शिर, श्वेत राई के लोम बनाये । इस भाँति मनोहर फलों, अन्न एवं मोतियों और मणियों से शेष अंग अलंकृत उस धेनु का शद्वा सम्पन्न होकर कांसे की दोहनी समेत किसी पुण्य समय पर दान करें । जो लक्ष्मी समस्त भूतों की है और समस्त देवों में अवस्थित है वही देवी इस धेनुरूप से मेरे पापों को विनाश करे—उस समय ऐसा कहकर प्रदक्षिणा पूर्वक पूजा और प्रणाम करे । अनन्तर 'दक्षिणा समेत यह धेनु, मैंने तुम्हें दिया, ऐसा कहकर उसका विसर्जन

१. सर्वपापकरोऽपि वा । २. सः । ३. वस्त्राजिनसमावृते । ४. गोमूत्रसंभवाः ।
 ५. शुचिमुक्ताफलेक्षणाम् ।

अनेन विधिना दन्वा तिलधेनुं नराधिप । सर्वपापविनिर्मुक्तो परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१७
 यश्च गृह्णाति विधिवद्वीयमानां प्रमोदते । दीयमानां प्रशंसन्ति ये च संहष्टमानसाः ॥१८
 तेऽपि दोषविनिर्मुक्ता ब्रह्मलोकं लङ्घन्ति ते । प्रशान्ताय सुशीलाय वेदव्रतरताय च ॥१९
 धेनुं तिलमयीं दत्त्वा न शोचति कृताकृते । त्रिरावं यस्तिलाहारस्तिलधेनुप्रदो भवेत् ॥२०
 एकाहमथ वा राजन् युच्छेदन्तरात्मना॑ ३ । दानाद्विशुद्धिः पापस्य तस्य पुण्यवतो नृप ॥२१
 चान्द्रायणादभ्यधिकं कथितं तिलभक्षणम् । बालत्वे चैव यत्वां यौवने वार्षके तथा ॥२२
 वाचा हृतं तु सनसाः कर्मणा यज्ञं सञ्चितम् । उदकछीवने चैव नप्रस्तानेन यद्भवेत् ॥२३
 मुशलेनोदयते नापि लम्बिते ब्राह्मणे तथा । वृद्धलीगमने चैव गुरुदाराभिगामिनि ॥२४
 सुरापानेन यत्पापमभक्ष्यस्य च भक्षणात् । तत्सर्वं विलयं याति तिलधेनुप्रदादिनाम् ॥२५
 यममार्गं महाधोरे नदी वैतरणी स्मृता । बालुकायाः स्थलं चैव पच्यन्ते यत्र पापिनः ॥२६
 यत्र लोहमुखाः काका यत्र श्वानो भयावहाः । निकृत्य पापिना मांसं भक्षयन्ति बुभुक्षिताः ॥२७
 असिष्ट्रवनं चैव लोहकण्टकशालमलीम् । एतान्सर्वानितिक्रम्य ततो यमपुरं लजेत् ॥२८
 विभाने काञ्चने दिव्ये मणिरत्नविभूषिते । तत्राहृष्टं नरश्रेष्ठो गच्छते परमाङ्गतिम् ॥२९
 गुणहीने न दातव्या न दातव्या धनेश्वरे । कुण्डे गोले च लुब्धे च न च देया कदापि सा ॥३०

करे । १०-११। नराधिप ! इस विदान द्वारा जो तिलधेनु का दान करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर परब्रह्म की प्राप्ति करता है । सविधान अर्पित की हुई उस तिल धेनु का प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करने वाला मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा करने वाला ये दोनों भी दोषमुक्त होकर परब्रह्म की प्राप्ति करते हैं । किसी प्रशांत सुशील, वेदवती एवं वेदानुरागी ब्राह्मण को उपरोक्त तिलमयी धेनु अर्पित करने पर दाता को अपने कर्तव्य पर किसी प्रकार शोक नहीं होता है । राजन् ! तीन अथवा एक ही अहोरात्र प्रमादहीन तिलाहार करने पर उसे तिलधेनु के दान का फल प्राप्त होता है । नृप ! दान करने से शरीर की शुद्धि हो जाती है इसलिए इस (तिल भक्षण करने वाले) उस पुण्यात्मा का तिल भक्षण करना चान्द्रायण व्रत से अधिक पुण्य प्रद होता है । तिलधेनु के दान करने वाला भी शिशु अवस्था युवावस्था एवं वृद्धावस्था के कायिक, वाचिक तथा मानसिक समस्त सञ्चित पाप, जल में थूकने, नग्न स्नान करने, किसी ब्राह्मण के ऊपर मुशल प्रहार करने के लिए उद्यत होने, वृशली (शूद्रा) गमन, गुरुपत्नी गमन करने, सुरापान, और अभक्ष्य के भक्षण करने के समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं । १७-२५। इस महाधोर यम के मार्ग में जहाँ वैतरणी नदी और तप्त बालू का स्थान जिसमें पापी लोग पकते रहते हैं तथा जहाँ लोह मुख वाले कौवे एवं भीषण कुत्ते हैं जो अत्यन्त बुभुक्षित होकर पापियों के मांस नोच नोचकर खाते रहते हैं । उसी प्रकार वहाँ असिष्ट्र (तलवार के समान पते वाले) वन और लोहे की कील के समान सेमर का वृक्ष है (तिल धेनु प्रदाता) इन सभी दुर्गम कर्मों को पार कर यमपुरी में पहुँचता है । २६-२८। पश्चात् मणिस्थल भूषित दिव्य सुवर्ण विमान पर प्रतिष्ठित होकर वह नरश्रेष्ठ उत्तम गति प्राप्त करता है । ऐसी धेनु का दान किसी गुण हीन व्यक्ति अथवा धनवान् या कुण्ड गोल और

१. अशेषशोक निर्मुक्ता: प्रयान्ति परमां गतिम् । २. वेदव्रतधराय च । ३. न युच्छेन्न प्रमाददित्यर्थः 'युच्छ' प्रमादे धानुः ।

एका एकस्य दातव्यः मुनिभिः कथितं पुरा । अरज्ये नैमिषे पार्थ नारदेन निवेदितः ॥३१
 तत्सेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सम्यक्कलसहवदः । इदं पुण्यं पवित्रं च माङ्गल्यं कीर्तिवर्धनम् ॥३२
 विप्राणां श्रादयेच्छाद्वे अनन्तफलमश्नुते । बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गुहं शयनं स्त्रियः ॥३३
 विभज्यमानान्येतनि दातारं पातयन्त्यधः । सा तु विक्रयमापन्ना दहत्यासप्तमं कुलम् ॥३४
 अस्या दानप्रभावेन विमानं सर्वकामिकम् । समाशङ्का नरो याति यत्र देवो हरिः स्वयः ॥३५
 एषा दैव प्रदातव्या प्रयत्नेनान्तरात्मना । पौर्णजात्यां माघस्य कार्तिक्यां चैव भारत ॥३६
 चन्द्रसूर्योऽपरागे तु विषुवे अयने तथा । षडशीतिषुखे चैव व्यतीपाते तु सर्वदा ॥३७
 वैशाख्यां नार्गशीर्ष्यां या गजच्छायासु चैव हि । एषा ते कथिता पार्थ तिलधेनुर्भयानघ ॥३८
 यावन्ति धेनो रोमाणि गत्रेषु नृपुञ्जव । तावद्वृष्टसहश्राणि तदा स्वर्णे महीयते ॥३९
 यश्च गृह्णाति विधिवदीयमानां च पश्यति । अनुमोदयते चैव ते सर्वे स्वर्गगामिनः ॥४०

धेनुं धनाधिपतयो भगधोद्भवेन मानेत ये तिलमयी चतुराढकेन ।

कृत्वा यथोक्तरचनां कृतचारुवत्सां यच्छान्ति ते भुवि भवन्ति विमुक्तपात्राः ॥४१
 प्रतिगृह्णामि देवि त्वां कुटुम्बभरणाय च । कामं देया दयास्मभ्यं धेनो त्वं सर्वदा हृसिः ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

तिलधेनुदानन्तविधिवर्णनं नाम द्विपञ्चाशादधिकशततमोऽध्यायः ॥१५२।

लोभी को कदापि न देना चाहिए । पूर्वकाल में मुनियों के कथनानुसार एक गौ एक ही व्यक्ति को अपित करना चाहिए । पार्थ ! नैमिषारण्य में नारद ने जो कुछ कहा था उस सहम गुने फल प्रदान करने वाले को मैं तुम्हें बता रहा हूँ । इस पवित्र आत्मान को जो मंगल विधान एकं कीर्ति वर्द्धक है ब्राह्मणों के श्राद्ध में सुनने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है । गौ, गृह, शश्या, एवं स्त्री का दान विभाग पूर्वक अनेक को देने से दाता की अधोगति (नरक) होती है । क्योंकि विक्रय करने पर वे दान सात पीढ़ी तक का विनाश करते हैं । इस दान के प्रभाव से मनुष्य समस्त कामनाओं को सफल करने वाले विमान पर सुशोभित होकर जहाँ स्वयं विष्णु भगवान् रहते हैं वहाँ पहुँचता है । भारत ! आत्मसंयम पूर्वक मनुष्य को माघ, कार्तिक की पूर्णिमा, चन्द्र सूर्य ग्रहण के समय, विषुव, अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन), संक्रान्ति दिन, व्यतीपात, वैशाख, मार्गशीर्ष (अग्रहन) मास अथवा गजच्छाया में तिलधेनु का दान अवश्य करना चाहिए । २९-३१। अनध, पार्थ ! इस प्रकार मैंने तिलधेनु की व्याख्या तुम्हें सुना दिया । नृपुञ्जव ! उस धेनु के शरीर में जितने लोम होते हैं, उसके सहस्रवर्ष वह (प्रदाता) स्वर्ग में पूजित होता है । सविधान दान करने पर इसके प्रतिग्रहीता, तथा देखने एवं अनुगोदन करने वाले मनुष्य भी स्वर्गगामी होते हैं । इस प्रकार मगधोद्भव के अनुसार चार आङ्क किल की सौन्दर्य पूर्ण धेनु वत्स समेत निर्माण कर सविधान दान देने वाले धनाधीश्वर गण पापमुक्त होकर भूमि सुख का अनुभव करते हैं । धेनो ! देवि ! मैं अपने परिवार के पालन पोषणार्थ तुम्हारा ग्रहण कर रहा हूँ अतः मेरी इस कामना की सफलतापूर्वक मेरे उपर सदैव दया करती रहना । ३९-४२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में
 तिलधेनुदानन्तविधिवर्णन नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त । १५२।

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

जलधेनुदानद्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

जलधेनुं प्रवक्ष्यमि प्रीयते दत्तया यथा । देवदेवो हृषीकेशः पूजितः^१ सर्वभावनः ॥१
 जलकुम्भं नरव्याघ्रं स्थापयित्वा मुपूजितम् । रत्नगर्भं तु तं कृत्वा ग्राम्यैर्धान्यै समन्वितम् ॥२
 सितवस्त्रयुगच्छन्नं द्वारपिल्लवरोभितम् । कुष्ठमांसीपुरोशीरदालकामलकीयुतम्^२ ॥३
 प्रियङ्गुपत्रसहितं स्तितयज्ञोदवीतिनग् । सोपानक्तं च सच्छन्नं दर्भिविष्टरसस्थितम् ॥४
 चतुर्भिः संयुतं रौप्यं तिलपात्रैश्चतुर्दिशम् । स्थगितं दधिपात्रेण धृतक्षौद्रवता मुखम् ॥५
 सवत्सां च प्रतिष्ठाप्य गौमयेनोपशोभितम् । लगदमपुच्छीं कुर्वीत ताप्रदोहनकान्विताम् ॥६
 ततः समभ्यर्च्य विभुं वासुदेवं सनातनम् । पुण्यधूपेपहारैश्च यथाविभवमात्मनः ॥७
 सङ्कूल्यं जलधेनुं च कुम्भं तमभिमन्त्य च । विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ॥८
 स्तोमशक्रार्कशक्तिर्य धेनुरुपेण सास्तु मे

एवमामन्त्र्य विधिवत्सफलां वत्सकान्विताम् । भक्त्या सम्पूज्य गोविन्दं जलशायिनमच्युतम् ॥९
 सितवस्त्रधरः^३ शान्तो वीतरागे विमत्सरः । दद्याद्विप्राय राजेन्द्रं प्रीत्यर्थं जलशायिनः ॥१०

अध्याय १५३

जलधेनुदानव्रतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नरव्याघ्र ! मैं तुम्हें जलधेनु की व्याख्या बता रहा हूँ, जिसके दान करनेपर देवाधिदेव सर्वभावन भगवान हृषीकेश पूजित होते हैं । जलपूर्ण कलश को स्थापित कर पूजित करे, जो रत्न गर्भित, धन धान्य युक्त, श्वेत वस्त्र से आच्छन्न, द्वार्वा एवं पल्लव से भूषित, कूट, जटामांसी, उशीर खश, नालक, आमलक, प्रियङ्गु (ककुनी) के पते, श्वेत यज्ञोपवीत से सुशोभित हो और छत्र, उपानह समेत कुशाशन पर स्थित हो । चारों चरण चाँदी से भूषित, चारों दिशाओं में तिलपात्र, और धृत, मधु भिश्वित दधिपात्र से उसका मुख सुशोभित हो । इस प्रकार की सवत्सा गौ की प्रतिष्ठा करके, जो गोमय भूषित, माला की पूँछ और ताँबे के दोहनक से युक्त हो, अपने विभवानुरूप पुष्प, धूप आदि उपहार से विभु एवं सनातन वासुदेव की अर्चा करे अनन्तर जल धेनु के संकल्प और उस कलश को अभिमंत्रित करने के उपरांत विष्णु भगवान् के वक्षःस्थल पर सुशोभित होने वाली लक्ष्मी, अग्नि की स्वाहा, एवं सोम, इन्द्र और सूर्य की शक्ति रूप है वही धेनु रूप से मेरी भी हो अर्थात् मेरी धेनु हो । राजेन्द्र ! फलयुक्त उस सवत्सा गौ को इस भाँति अभिमंत्रित कर जलशायी गोविन्द अच्युत भगवान् की भक्तिपूर्वक अर्चा करे । अनन्तर श्वेत वस्त्र धारण कर शांत, वीतराग एवं मत्सरहीन होकर जलशायी भगवान केशव के प्रीत्यर्थ उसे किसी ब्राह्मण को अर्पित करे । १-१०। शेषरूपी शश्या पर शयन करने वाले, श्रीमान्, शार्ङ्ग

१. सर्वेशः । २. कुष्ठमांसीपुरोशीरनालकैर्विल्लवसंयुतम्, सितवस्त्रेण संवीतो वीतरागः ।

शेषपर्यङ्कशयनः श्रीमात्त्वार्जुनविसूषितः । जलशायी जगद्योनिः प्रीष्टतां सम्य केशवः ॥११
 इत्युच्चार्यं जगन्नाथं विप्राय प्रतिपाद्यताम् । तदिनं गोव्रतस्तिष्ठेच्छ्रद्धया परया युतः ॥१२
 अनेन विधिना दत्त्वा जलधेनुं जनाधिष्प । सर्वभोगानवान्नोति ये दिव्या ये च मानुषाः ॥१३
 शरीरारोग्यसन्तुलं प्रशमः सर्वकालिकः । नृणां भवन्ति दत्तायां सर्वे कामा न रक्षयः ॥१४
 अत्रापि श्रूयते भूम्य मुद्गले न महात्मनः । जातिस्मरेण यद्गीतमिहाभ्येत्य पुराकिल ॥१५
 स मुद्गालः पुरा विप्रो यमलोकगतो मुनिः । दर्शय यातननेकाः पापकर्मकृतां नृणाम् ॥१६
 दीप्तापितीक्ष्यन्वन्वस्थाः क्वाथतैलमयास्तथा । उष्णक्षारनदीपाता भैरवाः पुरुर्लर्षभ ॥१७
 व्रणक्षारनिपातोऽथ कुम्भीपाकमहालयाः । ता दृष्ट्वा यातना विप्रश्वकारं परमां कृपाम् ॥१८
 आह्लादं ते तदा जन्मः पापास्तदनुकम्पया । तं दृष्ट्वा नारकाः केचित्स्थित्वा तदवलोकिनः ॥१९
 तदवस्थं विलोक्याथ मुनिर्नारिकमण्डलम् । धर्मराजं स प्रपञ्चं तेषां प्रशमकारणम् ॥२०
 तस्मै चाचष्ट राजेन्द्रं तदा वैवस्वतो यमः । आह्लादहेतुमधिकं नारकाणां नरोत्तम ॥२१
 दानानुभावात्सर्वेषां नारकाणां द्विजोत्तम । सम्प्रवृतोऽयमाह्लादः कारणं तच्छृणुष्व मे ॥२२
 त्वयाभ्यर्थं जगन्नाथं सर्वेषां जलशायिनम् । जलधेनुः पुरा दत्ता विधिवद्विजपुज्ञव ॥२३

(धनुष) भूषित, जलशायी एवं जगत् के एकमात्र कारण भगवान् केशव मेरे ऊपर प्रसन्न हो—इस प्रकार भगवान् जगन्नाथ जी की प्रार्थना करके वह गौ ब्राह्मण को समर्पित करे और उस दिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक गोव्रत का पालन भी करे । जनाधिष्प ! इस विधान द्वारा जलधेनु के दान करने पर दिव्य एवं मानुषिक समस्त भोगों के उपभोग प्राप्त होते हैं । अबुल नीरोग शरीर तथा सभी समय अत्यन्त शान्ति रहती है । यहाँ तक कि उसके दान करने पर मनुष्यों के सभी मनोरथ सफल होते हैं इसमें संदेह नहीं । १-१४। भूप ! इस विषय में सुना जाता है कि महात्मा मुद्गल ने जिन्हें (जन्मान्तरीय) जाति स्मरण सदैव बना रहा है, पूर्वकाल में यहाँ आकर उपरोक्त सभी बातें बतायी हैं । पूर्व जन्म में मुद्गल मुनि ब्राह्मणकुल में उत्पन्न थे । उन्होंने यमलोक में जाकर पापी मनुष्यों की अनेक भाँति का यातनाएँ देखी कोई प्रदीप्त अग्नि कुण्ड में पकाये जा रहे हैं कोई तीक्ष्ण यन्त्र (मशीन आदि) उत्पीड़ित हो रहा है, कोई खौलते हुए गरम तेल में पक रहा है और कोई गरम और खारे जलवाली नदी में डूब रहा है । पुरुर्लर्षभ ! कोई ब्रण (धाव) वाले क्षार कुण्ड में पड़ा है तथा कोई कुम्भी पाक नामक महानरक में पड़ा है । नारकीयों की ऐसी भीषण यातनाओं को देखकर मुनि ने उन लोगों के ऊपर अत्यन्त कृपा की—उनकी अनुकम्पा से उसी समय पापियों को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ । उन मुनि को देखकर कुछ नारकीय प्राणी अपनी दुखी अवस्था में ही रह कर उन्हें बार बार देख रहे थे । अनन्तर मुनि ने उस नरक मण्डल को देख कर धर्मराज से उनकी दुःख निवृत्ति का कारण पूँछा । राजेन्द्र ! नरोत्तम ! उसे सुनकर विवस्वान (सूर्य) पुत्र यम ने नारकीयों के प्रसन्नार्थ मुनि से उस कारण को बताया—उन्होंने कहा—द्विजोत्तम ! इस दोष के प्रभाव से सभी नारकीयों को अत्यन्त आह्लाद (हर्ष) की प्राप्ति होगी, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो ! द्विजपुज्ञव ! तुमने भी पूर्व जन्म में जलशायी, एवं सर्वाधीश्वर जगन्नाथ जी अर्चना करने के उपरान्त सविधान जल धेनु का दान

तस्मात्वज्जन्मनोऽतीते वृत्तीये द्विजजन्मनि । तस्य दानस्य ते व्युष्टिरियमाह्नाददायिनी^१ ॥२४
 ये त्वां पश्यन्ति शृण्वन्ति ये च ध्यायन्ति मानवाः । शृणोषि यांश्च विप्रेन्द्र यांश्च ध्यायसि पश्यति ॥२५
 निवृत्तिः परमा तेषां सर्वाह्नादप्रदायिनी । सद्यो भवति माऽत्र त्वं द्विजाते कुरु विस्मयम् ॥२६
 आह्नादहेतुजननं नास्ति विप्रेन्द्र तादृशम् । जलधेनुर्यथा नृणां जन्मान्येकोर्नविशतिम् ॥२७
 न दोषो न ज्वरो नार्तिर्न द्वलमो द्विज जायते । अपि जन्मसहक्षेत्रपि जलधेनुप्रदायिनाम् ॥२८
 स त्वं गच्छ गृहीत्वार्घमस्मतो द्विजसत्तम । येषां समाश्रयः कृष्णे न ते नियम्या हि ते मृणा ॥२९
 कृष्णातु पूजितो यस्तु^२ ये कृष्णार्थमुपोषिताः । यैश्च^३ नित्यं सृष्टः कृष्णो न ते मद्विषयोपगाः ॥३०
 नमः कृष्णाच्युतानन्त वासुदेवेत्युदीरितम् । यैर्भावावितैर्विष्र न ते मद्विषयोपगाः ॥३१
 दानं दद्विष्यैरुक्तमच्युतः प्रीयतामिति । श्रद्धापुरःसरैदित्र न ते मद्विषयोपगाः ॥३२
 स एव नाथः सर्वस्य तन्नियोगकरा वयम् । जनसंयमनश्चाहमस्मत्यसंयमनो हरिः ॥३३
 इत्थं निशम्य वचनं यमस्य वदतोऽखिलम् । ऊचुत्ते नारकाः सर्वे वह्निशस्त्रार्कभीरवः ॥३४
 नमः कृष्णाय हरये विष्णवे जिष्णवे नमः । हृषीकेशाय केशाय जगद्वावेऽच्युताय च ॥३५
 नमः पद्मजनेत्राय नमः पद्मजनाभये । जनार्दनाय श्रीशाय श्रीभर्त्रे पीतवाससे ॥३६
 गोविन्दाय नमो नित्यं नमश्चोदधिशायिने^४ । नमः कमलनेत्राय नृसिंहाय निनादिने ॥३७

किया है । १५-२३। जिससे इस तीसरे ब्राह्मण जन्म में उस दान के प्रभाव से तुम्हें उसका अत्यन्त आह्नाद फल प्राप्त हुआ है । विप्रेन्द्र ! तुम्हें देखने, सुनने एवं ध्यान करते वाले मनुष्यों को और जिन लोगों को तुम सुनोगे ! ध्यान करोगे तथा देखोगे उहरे सब भाँति का आह्नाद प्रदान करने वाली परम निर्वृति (सुख) सद्यः (तुरन्त) प्राप्त होगा इसमें संदेह नहीं ! विप्रेन्द्र ! जलधेनु के समान मनुष्यों को उन्तोस जन्म तक आह्नादप्रद अन्य कोई है ही नहीं । क्योंकि जलधेनु के दान करने वाले मनुष्यों के सहक्षों जन्म तक कोई दोष—ज्वर, पीड़ा एवं कृष्ण आदि कुछ होता ही नहीं । द्विजसत्तम ! अतः मेरे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण कर तुम (सादर) अपने स्थान जाओ, क्योंकि कृष्ण के आश्रित रहने वाले मनुष्य पर मेरा शासनाधिकार कुछ भी नहीं है । २४-२९। जिसने कृष्ण की पूजा की अथवा कृष्ण के निमित्त उपवास किया या कृष्ण का नित्य स्मरण करते हैं वे हमारे यहाँ के शासन नियम भाजन नहीं हैं । विष्र ! अत्यन्त प्रेम विह्वल होकर जिसने कृष्ण, अच्युत, एवं अनन्त वासुदेव को नमस्कार है, कहा है, वह हमारे शासन से बाहर है । विष्र ! अत्यन्त श्रद्धालु होकर जिसने दान देते समय 'भगवान् अच्युत प्रसन्न हों, कहा है वह भी हमारे शासनाधिकार में नहीं है । क्योंकि वही (अच्युत) सब के नाथ हैं और हम लोग उनके आदेश के पालक हैं और मैं मनुष्यों का संयमन करता (नियामक) हूँ और भगवान् हरि हमारे नियामक हैं । यमराज के इस प्रकार कहने पर उनकी समस्त बातें सुनकर समस्त नारकीय प्राणी, जिन्हें वहाँ अग्नि, शास्त्र एवं अर्क (सूर्य) का अत्यन्त भय था, कहने लगे—भगवान् हरि कृष्ण को नमस्कार है, विष्णु (जय शील) विष्णु को नमस्कार है, हृषीकेश, केशव, जगद्वाता, अच्युत को नमस्कार है, कमलनेत्र, कमलनाभि, जनार्दन, श्रीश, एवं पीताम्बरधारी लक्ष्मीपति को नमस्कार है । ३०-३६। गोविन्द को नमस्कार है, जलशायी को नित्य नमस्कार

१. व्युष्टिः फलमित्यर्थः । २. यैः कृष्णार्थमुपोषितम् । ३. यस्तु । ४. उदकशायिने ।

शार्ङ्गिणे शितखड्गाय शङ्खचक्रधराभृते । नमो वामनरूपाय क्रान्तलोकत्रयाय च ॥३८
 वराहरूपाय तथा नमो यज्ञाङ्गधारिणे । व्याप्ताशेषदिग्न्तायानन्ताय^१ परमात्मने ॥३९
 वासुदेव नमस्तुभ्यं नमः कैटभद्रूदिने ! केशवाय नमो राम^२ नमस्तेस्तु महीधर ॥४०
 नमोऽस्तु वासुदेवाय हैवमुच्चारिते च तैः । शस्त्राणि कुण्ठतां जग्मुरनलश्चापि शोतताम्^३ ॥४१
 समभज्यन्त वस्त्राणि समुत्पेतुरयोमुखाः । संशुष्काः क्षाररारितः पतितः शालमलिदुःः ॥४२
 प्रकाशस्तमसो जज्ञे नरकाद्वानुभिः सह । वदौ च युजन्यद्वन्नोऽप्यसिपत्रवने ततः ॥४३
 निश्चितसाहा जडियो बभूव्यर्थकिकराः । जातागङ्गाम्बुवाहिन्यः पूर्णशोणितनिम्नगाः ॥४४
 दिव्यः सुगन्धिः पवनो मनः प्रीतिकरस्तथा : वेणुवीणास्वनयुताः शब्दाश्चासन्मनोरनाः ॥४५
 तं तादृशमथालक्ष्य तदा वैदस्वतो यमः । क्षीणपापश्चायांस्तांस्तु पाद्यार्थ्यैः समपूजयत् ॥४६
 पूजयित्वा च तानाह कृष्णाय स कृताङ्गलिः । समाहितमतिर्भूत्वा धर्मराजो नरेश्वर ॥४७
 विष्णो देव जगद्वालर्जनार्दनं जगत्पते । प्रणामं येऽपि कुर्वन्ति तेषामपि नमोनमः ॥४८
 अच्युतायाप्रमेयाय मायावामनरूपिणे । प्रणामं येऽपि कुर्वन्ति तेषामपि नमो नमः ॥४९
 नमस्ते वासुदेवाय धीमते पुण्यकोर्तये । प्रणामं ये च कुर्वन्ति तेषामपि नमो नमः ॥५०
 तस्य दज्जवराहस्य विष्णोरमिततेजसः ॥५१

है, कमलनेत्र नृसिंह तथा गंभीर नाद करने वाले को नमस्कार है, धनुर्धारी, तीक्ष्ण खड्ग, शंख, चक्र गदाधारी और तीनों लोक को आक्रान्त करने वाले वामन रूप को नमस्कार है, यज्ञाङ्गधारी वाराह रूप को नमस्कार है, समस्त दिग्दिग्न्त में व्याप्त होने वाले अनन्त परमात्मा को नमस्कार है, वासुदेव को नमस्कार है, कैटभहन्ता को नमस्कार है, केशव को नमस्कार है, महीधर राम को नमस्कार है एवं वासुदेव को नमस्कार है। इस भाँति उनलोगों के उच्चारण करने पर (उन्हें पीड़ित करने वाले) शास्त्र कुण्ठित हो गये और अग्नि शीतल हो गया। (नरक के आवरण) वस्त्र सर्वथा नष्ट हो गये, अधोमुख (लोहमुख) वाले एक साथ ही उड़ गये, क्षार नदी (वैतरणी) सूख गयी। शालमली (सेमर) का वृक्ष गिर गया और उस नरक कुण्ड में उस अंधेरे से सूर्य के साथ प्रकाश का उदय हुआ एवं उस असि (तलवार) के समान तीक्ष्ण पत्र वाले वन में (उन पत्रों को एक में मिलाते हुए) वायु चलने लगा। यमराज के जड़ बुद्धि वाले किङ्कर (सेवक) वर्ण हतोत्साह हो गये, धूप (पीव) और शोणिक प्रवाहित होने वाली नदियाँ गङ्गा जल की भाँति प्रवाहित होने लगी। दिव्य एवं सुगन्ध पूर्ण वायु मन को प्रसन्न करने लगा वेणु (बाँस) की वीणा के समान उसके शब्द मनोरम हो गये। इस दृश्य को देखकर उस समय वैदस्वत यम ने पाप के क्षीण होने पर उन तीनों की अर्ध्य पाद्य द्वारा अर्चा की । ३३-४६। नरेश्वर ! अनन्तर धर्मराज कृष्ण के लिए हांथ जोड़कर ध्यान पूर्वक कहने लगे—विष्णुदेव, को जो जगत् के धाता, जनार्दन एवं जगत् के पति है तथा उन्हें प्रणाम करने वाले को भी बार-बार नमस्कार है। अप्रमेय अच्युत को नमस्कार है, जो माया से वामन रूप धारण किये हैं, और उन्हें प्रणाम करने वाले को भी नमस्कार है। धीमान एवं पुण्य कीर्ति वाले वासुदेव को तथा उन्हें प्रणाम करने वाले को भी नमस्कार है। ४७-५०। इस प्रकार अमेय तेजधारी एवं यज्ञवाराह रूप धारण

१. शांताय । २. व्याप्तिनमस्तेऽस्तु महीभृते । ३. शीतलः ।

एवं स्तुत्वा हृषीकेशं धर्मराजस्य पश्यतः । विमानवरमारहृ नारकास्त्रिदिवं ययुः ॥५२
 मुद्गलोऽपि महाबुद्धिदृष्टैतदविलं नृप । जातिस्मरे भवेद्विप्रः कण्वगोत्रे महामुनिः ॥५३
 संस्मृत्य यमवाक्यानि दिष्णोमहात्म्यमेव च । जलधेनोस्तु माहात्म्यं संस्मृत्येदमगायत ॥५४
 अहोसुद्स्तरा विष्णोमर्यिमतिगह्वरी । यया मोहितचित्तस्तु न वेति परस्परम् ॥५५
 जीवो गच्छति कीटत्वं यूकामत्कुण्डयोनिताम् । तस्माद्दुमलता दीनां योनिं तस्माच्च पक्षिणाम् ॥५६
 ततश्च पशुतां प्राप्य नरत्वमधिवाङ्छतिः ततो मनुष्यतां प्राप्य नरो योनिं कृतात्मनाम् ॥
 तां प्राप्य च श्रियं परां नरो मायः विमोहितः ॥५७

दुस्तरापि सुसाध्य, सा माया कृष्णस्य मोहिनी । विद्यते सा भनोन्यस्ता मुद्धैव^१ मधुसूदने ॥५८
 अवाप्यैवं च गार्हस्थ्यमदाप्यैवं च तत्परम् । छिनतिं वैष्णवीं मायां केशवार्पितमानसः ॥५९
 अविरोधेन विषयात्म्भुञ्जन्विष्णुं समाश्रयेत् । भुक्त्वा नरस्तरत्येनां विष्णोमर्यां सुदुस्तराम् ॥६०
 ईदृशद्वकला भक्तिः सर्वधातरि केशवे । मायाया तत्य देवस्य तां न कुर्यन्ति मोहिताः ॥६१
 मुद्धैवोक्तं सुधापानं मुधा तद्वि विचेष्टितम् । मुद्धैव जन्म तन्मष्टं यत्र नाराधितो हरिः ॥६२
 आराधितो हि यः पुंसामैहिकामुष्मिकं फलम् । ददाति भगवान्देवः कस्तं न प्रतिपूजयेत् ॥६३
 सम्वत्सरास्तथा मासा विफला दिवसाश्च ते । नराणां विषयांधानां यैस्तु नाराधितो हरिः ॥६४

करने वाले विष्णु हृषीकेश की स्तुति करके वे नारकीय प्राणी धर्मराज के देखते-देखते सुन्दर विमान द्वारा स्वर्ग चले गये । नृप ! इस समस्त कौतूहल को देखकर महाबुद्धिमान् मुद्गल भी कण्प ऋषि के कुल में जन्मान्तरीय के स्मरण करने वाले महामुनि व्राह्मण हुए । उन्होंने यम के वाक्य, विष्णु का माहात्म्य और जलधेनु का महत्व भली भाँति समझकर यह गाथा गाया कि—अहो ! भगवान् विष्णु की यह नाया कितनी कठिन है, जिसके द्वारा मोहित होने पर प्राणी परमेश्वर का ज्ञान (कुछ भी) नहीं कर पाता । यह जव (मोहित होने पर नाते परमेश्वर को भूल जाने पर) कीट, यूका (जँू) खटमल की योनि से वृक्ष लता की योनि में पहुँचता है और उससे पक्षी, पक्षी से पशु एवं उससे मनुष्यत्व प्राप्ति की कामना करने पर मनुष्य योनि की प्राप्ति करता है अनन्तर कृतज्ञता प्राप्त कर माया मोहित पुरुष उत्तम श्री प्राप्ति करता है । यद्यपि भगवान् कृष्ण की मोहिनी माया अत्यन्त दुस्तर है तथापि मधुसूदन में अनन्य भाव रखने पर वह विना प्रयास के ही सुसाध्य हो जाती है । क्योंकि भगवान् केशव में तन्मय होने वाले प्राणी गृहस्थ धर्म के उपरान्त एवं संन्यास धर्म सुसम्पन्न करते हुए वैष्णवी माया से मुक्त हो जाते हैं । ५१-५९। भगवान् विष्णु के आश्रित रहकर मनुष्य अविरोधेन विषयों के उपभोग करते हुए भी विष्णु की उस सुदुस्तर माया को पार कर जाते हैं । इस प्रकार अनेक फलदायिनी सर्वधाता भगवान् केशव की भक्तिदेवमाया से मोहित होने वाले प्राणी नहीं प्राप्त कर सकते हैं । जिसने हरि विष्णु की आराधना नहीं की उसका सुधापान एवं चेष्टित कर्म और इतनः ही नहीं अपितु उसका वह जन्म नष्ट है क्योंकि जिसने उनकी आराधना की है उसे भगवान् कृष्ण देवलोक परलोक के सभी फल प्रदान करते हैं अतः किसे नहीं उनकी अर्चा करनी चाहिए । ६०-६३। जिन मनुष्यों ने, जो दिनरात विषयों में ही अन्धे होकर लिप्त हैं भगवान् हरि की उपासना नहीं

यो न वित्तद्विभवैन् वासोभिर्भूषणैः । तुष्ट्यते हृदयेनैव कस्तमीशं न पूजयेत् ॥६५
 जलधेनोस्तु माहात्म्यं निशम्येदग्दिधं नराः । नात्र यच्छन्ति तेषां वै विवेकः कुत्र तिष्ठति ॥६६
 कर्मभूमौ हि मानुष्यं जन्मनामयुतैरपि । स्वर्गापर्वाफलदं कदाचित्प्राप्यते नरैः ॥६७
 सम्प्राप्य च न यैविष्णुस्तोऽपितो जलधेनुना । ते जनः 'भ्रष्टजन्मानो वचितास्तस्य मायया ॥६८
 ऊर्ध्वबाहुर्विरौप्येष दृष्टलोकदेऽस्मि भोः । आराधयध्वं गोविन्दं जलधेनुं प्रयच्छते ॥६९
 दुःसहो नारको वह्निरविष्णुं च यातनः । ज्ञातं मर्यैतदालम्ब्य कृष्णं भवति निश्चलः ॥७०
 आदेशिको देशिको हि यममार्गं सुदुर्लत्तरे । विचिन्त्य तत्सत्यमेतन्मनः कृष्णे निवेश्यताम् ॥७१

इष्टेन कि द्रातुशतेन सुदुष्करेण क्लेशादिकेन सुकृतैर्णियमैर्वतेश्च ।

दत्ता द्विजाय पितृराज्यगृहं गतत्य ह्येकाऽपि गौर्जलमयी सुखमातनोति ॥७२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
 जलधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः । १५३

की उनके वर्ष, मास एवं दिन निष्फल हैं । वित्त, ऋद्धि आदि विभव तथा वस्त्रों एवं आभूषणों (के प्रदान) द्वारा प्रसंन होकर केवल हार्दिक प्रेम से प्रसन्न होता है ऐसे भगवान् की आराधना किसे नहीं करनी चाहिए । इस भाँति जल धेनु के इस (अपूर्व) माहात्म्य को मुनकर मानववृन्द यदि जल धेनु का प्रदान नहीं करते हैं तो उनमें विवेक के रहने का स्थान ही कहाँ मिलेगा क्योंकि उस कर्म क्षेत्र में अनेक जन्मों के उपरान्त जीव उस गुनुष्टत्व को प्राप्ति करता है, जिसके द्वारा स्वर्ग, मोक्ष आदि फल प्राप्त होते हैं । उसे प्राप्त करने पर भी जिन लोगों के जल धेनु के दान द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न नहीं किया, उनके जन्म निरर्थक हो गये और भगवान् की माया द्वारा (मोहित होने के नाते) वे (उस लाभ से) वंचित ही रह गये । इसीलिए मैं दोनों लोकों को देखकर ऊर्ध्वबाहु होकर उन्हें कह रहा हूँ, कि सभी लोग गोविन्द की आराधना एवं जल धेनु का दान करो । क्योंकि नरक की अग्नि अत्यन्त दुःसह और उनकी यातना अतीव असह्य है किन्तु मुझे इसका भली भाँति ज्ञान है कि कृष्ण के आश्रित रहने पर प्राणी निश्चल होता है । उस सुदुर्लत यम मार्ग के पथिक आदि सभी को इसकी सत्यता पर विचार कर अपना मन भगवान् कृष्ण में लगाना चाहिए । इस प्रकार सैकड़ों सुदुष्कर यज्ञ करने पर जिसमें केशाधिक्य रहता है, और नियम संयम वाले सुकृत व्रत आदि कर्म करने से क्या लाभ जबकि पितृ लोक गये हुए प्राणी के निमित्त, किसी ब्राह्मणों को सादर समर्पित की हुई जल धेनु उसको विस्तृत सुख प्रदान करती है । ६४-७२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
 जल धेनुदान व्रत विधि वर्णन नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त । १५३ ।

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

घृतधेनुदानव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

घृतधेनुं प्रबद्ध्यामि तां शृणुत्वं नरोत्तम । दोयते येन विधिना यादृगूपां च कारयेत् ॥१
 गव्यस्यै सर्पिष्ठः कुम्भानान्धमाल्यविभूषितःत् । कांस्योपदोहनसंयुक्तान्सितवस्त्रावगुणितान् ॥२
 इक्षुयष्टिमयः पाहा: खुरा रौप्यमयात्तथा । सौवर्णे चाक्षिणी कार्येै शृंगे चागुरुकाष्ठके ॥३
 सप्तधान्यनये पाईर्वं पटोर्जनं च कम्ललम् । कुर्यात्तुरुष्ककर्पूरै घर्षाणं फलमयांस्तनान् ॥४
 तद्वच्छर्करया जिह्वां गुडक्षीरमयं मुखम् । क्षीमसूत्रेण लाङ्गूलं रोमाणि सितसर्षयैः ॥५
 ताम्रपात्रमयं पृष्ठं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः । ईदृगूपां तु सङ्कल्प्य घृतधेनुं नराधिष्ठ ॥६
 तद्वत्कल्पनया धेनोर्वत्सं च परिकल्पयेत् । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तां समभ्यर्च्य बुद्धिमान् ॥७
 आज्यं तेजः समुद्धिष्टमाज्यं पाप्तहरं परम् । आज्य सुराणामाहारः सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम् ॥८
 त्वं चैवाज्यमयो देवि कल्पितासि मया किलैः । सर्वपापानोदाय सुखाय भन भासिनी ॥९
 तं च विप्रं महाभाग मनसैव घृतार्चिषा । कल्पयित्वा ततस्तस्मै प्रयतः प्रतिपादयेत् ॥१०
 दक्षिणासहिता धेनुः कल्पिताज्यमयी शुभा । एतां म्रमोयकाराय गृहणं त्वं द्विजोत्तम ॥११

अध्याय १५४

घृतधेनुदानव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण द्वारा—नरोत्तम ! मैं तुम्हें घृत धेनु का विधान और उसका रूप बता रहा हूँ, सुनो ! गौ के घृत से पूर्ण कलश, जो गंध माल्य विभूषित, कांसे की दोहनी युक्त, एवं श्वेत वस्त्र से अवगुणित हो, स्थापित करते हुए गौ को प्रतिष्ठित करे, ऊख, यष्टि (दण्ड) से जिसके चरण, चाँदी के खुर, मुवर्ण के नेत्र, अगुरु काष्ठ की सींग, सप्त धान्य के पार्श्व भाग, ऊन वस्त्र के कम्बल (गले के नीचे लटकने वाले अंग), शिला रस लोहबान और कपूर की धार (नाक), फलों के स्तन, शक्कर की जिह्वा, गुड़ क्षीर का मुख, रेशमी सूत्र से लाङ्गूल (पूँछ) श्वेत राई से लोम और ताँबें के पात्र की पृष्ठ (पीठ), बनी हो । नराधिष्ठ ! इस प्रकार श्रद्धा समेत घृत धेनु की कल्पना करके उसके वत्स (बच्चे) की भी कल्पना करें । राजेन्द्र ! बुद्धिमान् को चाहिए उसे इस मत्र द्वारा पूजित कर—घृत तेज रूप है, अत्यन्त पापापहारी है और वह देवताओं का आहार है इसीलिए सभी कुछ घृत में प्रतिष्ठित हैं देवि ! इसी हेतु मैंने तुम्हारी कल्पना (निर्माण) घृतमयी की है, भासिनी ! अतः मेरे समस्त पापों के अपहरण पूर्वक सुख प्रदान करो । महाभाग ! घृतार्चिषा हारा उस ब्रह्मण की भी मानसिक कल्पना करके (गोदान के समय) ऐसा कहे । १-१० द्विजोत्तम ! दक्षिणा समेत यह घृतमयी धेनु मेरे उपकारार्थ ग्रहण करने की कृपा करें । अनन्तर वह

१. कुर्यात् । २. शुभे । ३. अतुलाऽधिकवर्जिताम् ।

इत्युदाहृत्य विप्राय तां गां तु प्रतिपादयेत् । दत्त्वैकरात्रं स्थित्वा च धृताहारो यत्वतः ॥१२
 अनेन च विधानेन नवनीतमयी शुभा । दातव्या नृपते धेनुन्यूनाधिकविवर्जिताँ ॥१३
 शृणु पार्थ महाबाहो^१ प्रदानफलमुत्तमम् । धृतक्षीरमहानद्यो यत्र पायसकर्दमाः ॥१४
 धृतधेनुप्रदा यान्ति तत्र कर्मः^२ सुपूरिताः । पितुरूर्ध्वं च ये सप्त पुरुषास्तस्य येऽप्यधः ॥१५
 तांस्तेषु नृप लोकेषु स न यस्त्यक्तकल्पशान्^३ । सकामानमियं व्युष्टिः कथिता नृपसत्तमः ॥१६
 निकिल्बिष्णं पदं यान्ति निष्कामा धृतधेनुदाः । धृतमग्निर्घृतं सोमस्तन्मयाः सदैवेवताः ॥१७
 धृतं प्रयच्छतां भीतां भवन्त्यखिलदेवताः ॥१८

मायाजलं सुतकलत्रमहोर्मिमालं लोमोद्धानकविषमं द्वहुपुष्यभाजः ।
 लग्ना निमग्नवपुषो धृतधेनुपुच्छे संसारसागरमपारमहो तरन्ति ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तर्पर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
 धृतधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः । १५४

गौ ब्राह्मण को अर्पित कर संयम पूर्वक रात्रि धृताहार पूर्वक व्यतीत करे ! नृपते ! इस विधान द्वारा यह नवनीत (मक्खन) मयी धेनु, जिसमें न्यूनाधिक सम्भव न हो, सभी को दान देना चाहिए । महाबाहो, पार्थ ! उसके दान का महान् एवं उत्तम फल बताया गया है—धृत धेनु के प्रदाता अपनी समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक ऐसे लोक की प्राप्ति करते हैं जहाँ धृत और क्षीर की महानदी प्रवाहित होती है तथा उसमें पायस का कर्दम (कीचड़) भरा पड़ा है । नृप ! उसकी सात पीढ़ी पूर्व की ओर सात पीढ़ी पर की पापरहित होकर उस लोक में पहुँचते हैं । नृपसत्तम ! सकाम प्राणियों के लिए मैंने यह उत्तम फल बता दिया : धृतधेनु प्रदान करने वाले प्राणी कामना रहित पुण्यपद की प्राप्ति करते हैं । क्योंकि धृत अग्नि रूप है, धृत ही सोम है और धृतमय (सभी देवता) हैं इसीलिए धृतदान करने वाले से समस्त देवगण भयभीत रहते हैं । इस प्रकार इस अपार संसार सागर को, जिसमें माया रूपी जल, सुत एवं स्त्री आदि (परिवार) भीण तरङ्ग समूह, और लोमरूपी विषय एवं उग्र नक्ष (मगर) है, धृत धेनु का दानी अत्यन्त पुण्य पात्र होने के नाते समस्त शरीर के उसमें निमग्न रहने पर धृतधेनु की पूँछ के सहारे पार कर जाता है । ११-१९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
 धृतधेनुदानव्रतविधि वर्णन नामक एक सौ चौबनवाँ अध्याय समाप्त । १५४।

१. अतुलाधिकवर्जिताम् । २. महाभाग । ३. प्रपूजिताः । प्रपूरिताः । ४. अपकल्पम् ।

अथ पञ्चपञ्चशदधिकशततमोऽध्यायः
लवणधेनुदानव्रतवर्णनम्
युधिष्ठिर उचाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो सर्वशास्त्रविशारद । कथयस्वेह दानानामुत्तमं यत्प्रकीर्तिम् ॥१
 येन दत्तेन दानानि सर्वाभ्येव भवन्त्युत । सर्वकामसमृद्धिश्च सर्वपापक्षयो भवेत् ॥२
 प्रायश्चित्तविशुद्धिश्च तन्मे कथय सुव्रत ॥

श्रीकृष्ण उचाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि दानानामुत्तमोत्तमम् ॥३
 ख्यातं लवणधेन्वात्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् । यां इत्वा ब्रह्महा गोद्धः पितृहा गुरुतल्पगः ॥४
 विश्वासधाती कूरात्मा सर्वपापरतोऽपि वा । मुच्यते नात्र सन्देहः शिवलोकं स गच्छति ॥५
 सुभगो धनसम्पन्नो दीर्घायुरपराजितः । जायदे पुरुषो लोके सर्वकामसमन्वितः ॥६
 विद्धि वद्यामि राजेन्द्र लवणस्येह कल्पनम् । शोभयेनोपतिसेन दर्भस्त्स्तरसंस्थितम् ॥७
 आविकं चर्म विन्यस्य पूर्वाशाभिमुखं स्थितः । वस्त्रेणाच्छादितं कृत्वा धेनुं कुर्वीत बुद्धिमान् ॥८
 आढकेनैव कुर्वीत बहुवित्तोऽत्यवित्तवान् । स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरामिक्षुपादां फलस्तनीम् ॥९

अध्याय १५५
लवणधेनुदानव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—कृष्ण, कृष्ण, महाबाहो, एवं समस्त शास्त्रों के विशारद ! मुझे इस भाँति का उत्तम दान बताने की कृपा कीजिये, जिसके दान करने से समस्त का दान हो जाये और समस्त कामनाओंकी सफलता पूर्वक सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो जाय । सुव्रत ! प्रायश्चित की विशुद्धि भी बताने की कृपा करें । १-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! लवणधेनु नामक परमोत्तम दान में तुहें बता रहा हूँ, जो मनुष्यों की समस्त कामनाएँ सफल करता है और जिसके दान करने पर ब्राह्मण गौ एवं पिता आदि की हत्या करने वाला, गुरु शश्यागामी, विश्वासधाती, कूरात्मा, एवं सम्पूर्ण पाप करने वाला प्राणी पापों से मुक्त होकर शिव लोक की प्राप्ति करता है, इसमें सदैह नहीं । पुनः इस लोक में जन्मग्रहण करने पर वह प्राणी, सुभग, धनवान, दीर्घायु, अजेय होकर समस्त कामनाओं को सफल करता है । राजेन्द्र ! मैं उस लवण धेनु का विधान बता रहा हूँ, (सुनो) ! गोबर से लिपी हुई भूमि में कुश बिछाकर उसी पर पूर्वाभिमुख भेंड चर्म के ऊपर वस्त्राच्छल गौ का निर्माण करें । ३-८। धनी या निर्धन बुद्धिमान् को चाहिए कि आढक प्रमाण द्वारा गौ की रचना करते हुए सुर्वण की सींग, चाँदी की खुर, ऊँक के चरण, फलों के स्तन, शक्कर की

कार्या शर्करया जित्वा गन्धग्राणवती तथा । समुद्रोदरजे शुक्री कर्णो हस्याः प्रकल्पयेत् ॥१०
 कम्बलं पट्टसूत्रेण ग्रीवायां घण्टिकां तथा । शृङ्खः चन्दनकाष्ठाम्यां मौक्तिके चाक्षिणी उभे ॥११
 कपोलौ सक्तुपिण्डाभ्यां एवानास्ये प्रदापयेत् । तिलान्पार्श्वे प्रकुर्वीत गोधूमाश्रैव भक्तिः ॥१२
 एवं वै सप्तधान्यानि यथालाभं प्रकल्पयेत् । पृष्ठे वै ताम्रपात्रं तु अपाने गुडपिण्डिकाम् ॥१३
 लाङ्गूले कम्बलं दद्याद्द्राक्षां^१ क्षीरप्रदेशतः । योनिष्ठदेशर्णा च मधु सर्ववस्तुफलान्वितम् ॥१४
 एवं सम्यक्परिस्थित्य रसरस्यमर्यां च गाम् । स्थापयेद्वृत्समेकं च चतुर्भागेन सानवः ॥१५
 एवं धेनुं समभ्यर्च्य माल्यवस्त्रदिभूषणैः । स्नात्वा देवार्चनं कृत्वा ब्राह्मणानभिपूज्य च ॥
 कृत्वा प्रदक्षिणां गां तु पुत्राभार्यासमन्वितः ॥१६
 ब्राह्मणाय सुशीलाय वृत्तयुक्ताय वै नृप । दद्यात्पर्वतु सर्वेषु मत्त्रपूर्वं सुभक्तितः ॥१७
 लवणे वै रसाः सर्वे लवणे सर्वदेवताः । सर्वदेवमये देवि लवणात्ये नमोस्तु ते ॥१८
 एवमुच्चार्यं मन्त्रां ते विप्राय प्रतिपादयेत् । सम्यक्प्रदक्षिणां कृत्वा दक्षिणासहितां नृप ॥१९
 प्रदक्षिणा मही तेन कृतं भवति भारत । सर्वदानानि दत्तानि सर्वकलुफलानि च ॥२०
 सर्वे रसाः सर्वमन्त्रं सर्वं च सच्चराचरम् । सौभाग्यं परमाबुद्धिरारोग्यं सर्वसम्पदः ॥२१
 भवति दत्त्वा नृणां तु रसधेनुं न संशयः । स्वर्गं च नियता वासो यावदाभूतसम्प्लवम् ॥२२

जित्वा गन्ध का व्राण (नाक), समुद्र में उत्पन्न होने वाली सीप के कान, यह सूत्र का (गले के नीचे) वाला कम्बल, गले में घण्टी, सीगों में चन्दन काष्ठ, दोनों नेत्र में मोती लगानी चाहिए। सतू के पिण्ड से कपोल, मुख में जवा, पार्वत भाग में तिल और गेंहू रखना चाहिए। इहीं सप्तधान्यों को यथा स्थान स्थापित करते हुए भक्ति पूर्वक गौ की रचना करनी चाहिए। उसी भाँति पृष्ठ भाग में ताँबा का पत्र, प्रदान (गुदा) भाग में गुड़ की पिंडी, लाङ्गूल (पूँछ) में कम्बल और स्तन के स्थान पर द्राक्षा (किसमिस) रखनी चाहिए। तथा योनि प्रदेश सर्ववस्तु एवं फल मिश्रित मधु रखना चाहिए। इस प्रकार लवण धेनु के निर्माण हो जाने पर मनुष्य को चौथाई भाग द्वारा एक वत्स (दच्चे) का निर्माण करना चाहिए। पश्चात् स्त्री पुत्र समेत स्नानोपरांत माला, वस्त्र एवं आभूषण भूषित गौ की अर्चा देव तथा ब्राह्मण की पूजा सुसम्पन्न कर गौ की प्रदक्षिणा करे । १-१६। नृप ! भक्तिपूर्वक किसी सुशील एवं वृत्तयुक्त ब्राह्मण को मन्त्र पूर्वक सभी पर्वों के अवसर पर प्रदान करते हुए—देवि ! लवण में सभी रस, समस्त देवता स्थित है अतः सर्वदेवमयी लवण नामक धेनु को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार मंत्र को उच्चारण करते हुए प्रदक्षिणा करने के उपरांत दक्षिणा समेत वह गौ ब्राह्मण को अर्पित करे। नृप, भारत ! प्रदक्षिणा करके लवण धेनु के दान करने पर समस्त पृथिवी की प्रदक्षिणा, समस्त दान, और समस्त यज्ञों के फल, सब रस, सम्पूर्ण अन्न, सौभाग्य, परमोत्तम बुद्धि, आरोग्य और समस्त सम्पत्ति प्राप्त होती है इसमें संदेह नहीं। उसी प्रकार उसका स्वर्गलोक में महाप्रलय पर्यन्त निवास होता है। १७-२२। इस

पण्डिकम्बलगलां लवणादकेन हृत्वा फलस्तनवतीमपि लावणाख्याम् ।
दत्त्वा द्विजाय विधिवद्रसधेनुमेनां लोकं गवां सकलसौख्ययुतो विशेषः ॥२३
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
लवणधेनुदानव्रतविधिदर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५५

अथ षट् पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सुवर्णधेनुदानव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवद्यासि राजन्काञ्चनधेनुकाम् । यां दत्त्वा लर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१
सुरापी ऋहाहा गोऽन्नो भीर्भग्नव्रतोऽपि वा । गुरुघाती स्वशृगामी परदाररतश्च यः ॥२
मुच्यते पातकैः सर्वैर्दत्त्वा काञ्चनधेनुकाम् । संशुद्धस्य सुवर्णस्य पञ्चाशत्पलिकां शुभाम् ॥३
अद्वेन॑ वा प्रकुर्वीत शक्त्या वा नृपसत्तम् । उलां पश्चिमभागे तु दृष्टकुक्षिपयोधराम् ॥४
विभक्ताङ्गों सुजघनां सुमनोहरकर्णिकाम् । सर्वरत्नविचित्राङ्गों कारयेत्कपिलां शुभाम् ॥५
चतुर्थेन तु भागेन वत्सं तस्याः प्रकल्पयेत् । रौप्यघण्टां च इत्वा तु कौशेयपरिवारिताम् ॥६

भाँति ब्राह्मण को सविधान लदण धेनु के दान करने पर जिसके ऊन द्वारा गले का कम्बल, आठक प्रमाण लवण द्वारा अन्य अंग और फल के स्तन निर्मित रहते हैं, सकल सौख्य समेत उसे गो लोक की प्राप्ति होती है । २३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
लवणधेनुदानव्रतविधि वर्णन नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त । १५५।

अध्याय १५६

सुवर्णधेनुदान-व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन् मैं तुम्हें काञ्चनधेनु बता रहा हूँ, जिसके दान करने पर प्राणी समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं । इसमें संशय नहीं । मद्यपान करने वाला, ब्राह्मण, गौ की हत्या करने वाला, भीष, व्रत के भज्ज होने पर, गुरुहत्ता, भगिनीभोगी, और पर स्त्रीगामी आदि सभी के पातक काञ्चन धेनु के दान करने पर विनष्ट हो जाते हैं । नृप सत्तम ! विशुद्ध सुवर्ण के पचास पल अथवा पञ्चीस पल या यथा शक्ति सुवर्ण, द्वारा एक शुभ कपिला गौ का निर्माण कर जिसके पीछे के भाग कुक्षि और पयोधर (स्तन) आदि अंग विभक्त हों, उत्तम जघन भाग, मनोहर कान एवं शेष अंग सम्पूर्ण रत्नों से विचित्र बने हों । उसी प्रकार (सुवर्ण) के चौथाई भाग द्वारा उसके बच्चे की रचना करके गौ के गले में चाँदी के घंटा, रेशमी

१. तदर्थेन ।

ताम्रशृङ्खली तथा कुर्याद्वृर्यमयकम्बलाम् । गुक्काफलमये नेत्रे वैद्वत्ती रसना तथा ॥१७
कुण्डाजिने गुडप्रस्थं तत्रस्थां कारयेच्छुशाम् । कुमशाष्टकलमोपेतां नानाफलसमन्विताम् ॥८
तथाष्टादश धान्यातप्त्रोपानद्युगान्विताम् । भाजनं वसनं चैव ताम्रदोहनकं तथा ॥९
दीपकान्त्रादिलवणशक्तराधान्यकान्विताम् । प्रदद्याद्वाहृणं पूज्य वस्त्रैराभरणैः शुभैः ॥१०
स्नातः प्रदक्षिणैकृत्य धेनुं सर्वाङ्गसंयुताम् । गुद्येनूक्तमन्त्रैश्च आवाहृ प्रतिपूज्य च ॥११
त्वं^१ सर्वदेवगणमन्दिरभूषणाति विश्वेश्वरत्रिपथगोदधिपर्वतानाम् ।

शद्वाम्बुतीक्षणशक्लीकृतपातकैः प्राप्नोति निवृतिमतीव परां नमासि ॥१२
लोके यथेष्टितफलार्थविधायिनीं त्वामासाद्य को हि भयक्षाभवतीह मर्त्यः ।

संसारदुःखशमनाय यतस्त्वाकामास्त्वां कामधेनुमिति वेदविदो वदन्ति ॥१३

एवमामन्त्र्य तां धेनुं विप्राय प्रतिषादयेत् । सदक्षिणोपस्करां च प्रणिपत्य क्षमापगेत् ॥१४
दानकाते तु ये देवास्तीर्थानि भनवत्तथा । शरीरे निवसन्त्यस्यास्ताच्छृणुष्व नराधिप ॥१५
नेत्रयोः सूर्यशशिनौ जिह्वायां तु सरस्वती । दन्तेषु मरुतो देवाः कर्णयोश्च तथाभ्यन्नौ ॥१६
शृङ्गाग्रगौ सदा चास्या देवौ रुद्रपितामहौ । गन्धर्वाप्सरसश्चैव ककुदेशं प्रतिष्ठिताः ॥
कुक्षौ समुद्राश्रत्वारो योनौ त्रिपथगामिनी ॥१७
ऋषयो रोमकूपेषु अपाने वसुधा स्थिता । अन्तेषु नागा विज्ञेयाः पर्वताश्रास्थिषु^२ स्थिताः ॥१८

वस्त्र से सर्वाङ्ग आच्छन्न, ताँबं की सींग, वैद्वर्यमणि द्वारा उसके गले के नीचे लटकने वाला कम्बल, मोती के नेत्र, विद्वय की जिह्वा बनाये । १-७। काले मृग चर्म पर एक अस्थ गुड रखकर उसी मृग चर्म पर उपरोक्त गौ का निर्माण करे, जो आठ कलशों से युक्त और भाँति भाँति के फल, अष्टादश धान्य, छत्र, उपानह, (भोजन दस्त्र), वस्त्र और ताँबं का दोहनक, दीपक, अन्नादि, लवण, शक्कर और धान्य युक्त हो । वस्त्राभरण द्वारा ब्राह्मण की पूजा के उपरान्त प्रदक्षिणा पूर्वक सर्वाङ्गयुक्त वह काच्चनधेनु गुडधेनु के मंत्रों द्वारा आवाहन पूजा करके ब्राह्मण को अपित करे । प्रदान करते समय—तू विश्वेश्वर (विष्णु) की गंगा, समुद्र और पर्वतों के निवासी समस्त देवगणों के मन्दिर की आभूषण हो, (तुम्हारा दान करने पर), शद्वारुपी जल की तीक्ष्णता से उसके समस्त पाप विनष्ट होते पर प्राणी अत्यन्त उत्तम निवृत्ति (शांति) प्राप्त करता है, अतः मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । इस लोक में यथेच्छ फल प्रदान करने वाली तुम्हें प्राप्त कर कौन मनुष्य निर्भय भाग्यवान् नहीं होता है और संसार दुःख के शमनार्थ निष्काम वेद के निष्णात विद्वान् तुम्हें कामधेनु कहते हैं—कहता चाहिए । इस प्रकार आमंत्रित कर दक्षिणा एवं सामग्री समेत वह गौ ब्राह्मण को नमस्कार पूर्वक अर्पित करे । नराधिप ! दान के समय उस गौ के शरीर में जितने देवगण, तीर्थ, मनु आदि निवास करते हैं मैं उन्हें बता रहा हूँ, सुनो ! ८-१५। सूर्य चन्द्रमा दोनों नेत्र में जिह्वा में सरस्वती, दाँतों में मरु देव, कानों में अश्विनी कुमार, सीगों के अग्रभाग में रुद्र और पितामह, ककुदेश (डिल्ल) में गन्धर्व, अप्सराएँ, कुक्षि में चारों समुद्र, योनि में गंगा, रोमकूप में ऋषिगण, अपान (गुदा) में वसुधा, अँतियों में नागगण, अस्थियों में पर्वत, चरणों में अर्थ काम और मोक्ष हुंकार में चारों

१. त्वं सर्वदेवगणमन्दिरसंघभूता, त्वं सर्वदेवगणमन्दिशोभितासि । २. अस्थिसंधिपु ।

धर्मकानार्थमोक्षास्तु पादेषु परिसंस्थिताः । हुङ्गारे च चतुर्वेदाः कण्ठे^१ रुद्राः प्रतिज्ञिताः ॥१९
 पृष्ठभागे स्थितो मेरुर्विष्णुः सर्वशरीरगः । एवं सर्वदेवमयी देवी पावनी विश्वरूपिणी^२ ॥२०
 काञ्चनेन कृता धेनुः सर्वदेवमयी स्मृता । यो दद्यात्तादृशीं धेनुं सर्वदानप्रदो हि सः ॥२१
 कर्मभूमौ हि मत्त्वर्णां दानमेतत्मुदुर्लभम् । तस्माद्वैयिदं शक्त्यां^३ सर्वकल्मषनाशनम् ॥२२
 पावनं तारणं चैव कीर्तिं शान्तिं तथा । वर्षकोटिशतं सार्वं स्वर्गलोके गतो नरः ॥२३
 नारी वा पूज्यते देवैर्विभानवरमास्थिता ! गन्धवर्गीयमानस्तु पुष्ट्यैर्मालाद्यभूषितैः ॥२४
 सर्वाभरणसम्पन्नः दर्शद्वंटविवर्जितः^४ । स्वर्गे स्थित्वा चिरं कालं ततो मर्त्येऽभिजायते ॥२५
 आधिव्याधिविनिर्मुक्तो रूपवान्नियदर्शनः । एवं नरो वा नारी वा दत्त्वा दानमिदं भुवि ॥
 सर्वान्कामानवाप्नोति जायमानः पुनः पुनः ॥२६

आमन्त्र्य साधुकुलशीलगुणान्विताय विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात् !

प्राप्नोति सिद्धमुनिकिन्नरदेवजुष्टं कन्याशतैः परिवृतं पदमिन्दुमौतेः ॥२७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 सुवर्णधेनुव्रतविधिवर्णनं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः । १५६

वेद, कण्ठ में रुद्रदेव, पृष्ठभाग में मेरु और सर्वाङ्ग में विष्णु स्थित रहते हैं। इस प्रकार सर्वदेवमयी, पावनी एवं विश्वरूपवाली इस काञ्चनधेनु का जो दान करता है उसने सब कुछ कर दिया । १६-२१। यद्यपि इस कर्म भूमि में यह दान अत्यन्त दुलभ है तथापि यथाशक्ति इसका दान समस्त पापों के विनाशार्थ करना ही चाहिए। यह दान अत्यन्त पावन (संसार) कारण कीर्ति और शान्तिप्रद है और स्वर्ग लोक के उत्तम स्थान में उस प्रदाता को निवास प्राप्त होता है। दान करने वाली स्त्री भी उत्तम विमान या सुशोभित होकर पुष्ट माला भूषित देवों, गन्धर्वों द्वारा पूजित होती है। सर्वाभूषणभूषित, समस्तदुखरहित वह प्राणी चिरकाल तक स्वर्ग में रहकर पुनः मर्त्यलोक में आधिव्याधिहीन, रूपवान प्रियदर्शी मनुष्य होता है। इस प्रकार इस दान के प्रभाव से स्त्री पुरुष इस भूतल में बार-बार जन्म ग्रहण करने पर अपनी समस्त कामनाएँ सफल करते हैं। इस प्रकार साधु, कुलशील एवं गुणयुक्त किसी विप्र को काञ्चनधेनु अपित करने पर वह प्राणी सिद्ध, मुनि, किन्नर, देवों से सेवित और सैकड़ों कन्याओं से सुखी होकर इन्द्र मौलि (शिव) का लोक प्राप्त करता है । २२-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व के श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्बाद के सुवर्णधेनुदानव्रत विधि वर्णन नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त । १५६।

१. पुच्छे रुद्रो व्यवस्थितः । २. विश्वधारिणी । ३. भक्त्या । ४. सर्वगन्धविवर्जितः । 'गंधो गन्धक आमोदे लेशे संबंधगवयोः' इति विश्वः ।

अथ सप्तपञ्चाशद्धिकशततमोऽध्यायः

रत्नधेनुदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानसन्तुत्सुदुर्लभम् । रत्नधेन्विति विख्यातं गोलोकफलदं नृणाम् ॥१
 पुण्यं दिनमथासाध्य गोमयेनोपलेपनम् । कृत्वा भूम्पौ महाराज तत्र धेनुं प्रकल्पयेत् ॥२
 धेनुं रत्नमयीं कुर्यात्तत्त्वंकल्पपूर्विकाम् । स्थापयेत्पद्मरागाणामेकाशीतिं मुखे बुधः ॥३
 पुष्परागाशतं धेनोः पादयोः परिकल्पयेत् । ललाटे हेमतिलकं मुक्ताफलशतं दृशोः ॥४
 भूयुगे विद्वुमशतं शुक्तो कर्णद्वये स्मृते । काञ्चननानि च शृङ्गाणि शिरोवज्ज्ञशतात्मकम् ॥५
 ग्रीवायां नेत्रपुटके गोमेदकशतं तथा । इन्द्रनीलशतं पृच्छे वैदूर्यशतं पार्श्वके ॥६
 स्फटिकैरुदरं कार्यं सौगन्धिकशतं कटौ । खुरा हेममयाः कार्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम् ॥७
 सूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च ग्राणे कर्पूरचन्दनैः । कुंकुमेन च रोमाणि रौप्यं नार्भं च कारयेत् ॥८
 गारुदमतशतं तद्वद्पाने परिकल्पयेत् । तथान्यानि च रत्नानि स्थापयेत्सर्वसंधिषु ॥९
 कुर्याच्छक्करया जिह्वां गोमयं च गुडात्मकम् । गोमूत्रमाज्येन तथा दधिदुधस्वरूपतः ॥१०
 पुच्छाग्रे चामरं दद्यात्तनयोस्तान्नदोहनम् । कारयेदेवमेवं तु चतुर्थांशेन वत्सकम् ॥११
 नानाफलानि पार्श्वेषु कृत्वा पूजां प्रयत्नतः । गुडधेनुवदावाह्य इदं चोदाहरेत्ततः ॥१२

अध्याय १५७

रत्नधेनुदानव्रत विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोते—मैं तुम्हें एक अन्य सुदुर्लभ रत्नधेनु का दान बता रहा हूँ, जो मनुष्यों को गोलोक फल प्रदान करता है । महाराज ! किसी पुण्य दिन गोबर से लिपि हुई भूमि में उस धेनु की रचना करनी चाहिए । १-२। विद्वान् को चाहिए कि संकल्प पूर्वक उसके प्रत्येक अंग की रचना करते हुए इक्यासी पद्मराग मणि द्वारा उसके मुख, सौ पुष्पराग से चरण, सुवर्ण तिलक से भाल सौ मोतियों से दोनों नेत्र, सौ विद्वुम से दोनों भौंह, सीप से दोनों कान, काञ्चन की सींग, सौ वज्र (हीरा) से शिर, सौ गोमेदक से ग्रीवा और नेत्र पुट (पलक) सौ इन्द्र नील से पृष्ठ भांग, सौ वैदूर्य से पार्श्व भाग स्फटिक से उदर, सौ सौगन्धिक से कटि, सुवर्ण की खुर, मोतियों की पूँछ, सूर्यकान्ता और चन्द्रकान्ता मणि तथा कपूर चन्दन से ग्राण (नाक), कुंकुम के लोम, चाँदी की नाभि, सौ गारुदमत से अपान (गुदा) भाग, और रत्नों द्वारा समस्त संधियों (गाठों) की रचना करनी चाहिए । उसी प्रकार शक्कर की जिह्वा, गुड का गोबर, घृत दधि दुधस्वरूप का गोमूत्र, चामर से पूँछताँबें का स्तन निर्माण करके चतुर्थांश (चौथाई) भाग से उसके वत्स (बच्चे) की रचना करनी चाहिए । ३-१। उसके पार्श्व भाग में अनेक फल से भूषित कर गुडधेनु के मंत्रों द्वारा आवाहन पूजन

त्वां सर्वदेवगणवासमिति^१ स्तुदन्ति श्वेन्द्रचन्द्रकमलासनवासुदेवाः ।

तस्मात्समस्तभुवनत्रयदेहयुक्तां मां पाहि देवि भवसागर मग्नमाशु^२ ॥१३॥

एवमासन्त्य तां धेनुं विप्राय प्रतिदादयेत् । सम्पूज्य वस्त्राभरणैविधिनं वेदपारगम् ॥१४
ततश्च इक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमात्पयेत् । एवं यः कुरुते पार्थं तस्य पुण्यकलं शृणु ॥१५
कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके सुखं^३ वसेत् । ततः काले बहुतिथे राजराजो भवेदिह ॥१६
सर्वकामसमृद्धश्च शत्रुपक्षक्षयंकरः ॥१७

इति सकलविधिनो रत्नधेनुप्रदानं वितरातं स विमानं प्राप्य देवीप्यमानम् ।

सकल कुलभुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः स हि मदसरूपः स्थानमन्येति शम्भोः ॥१८॥

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीबृह्णयुधिष्ठिरसंवादे

रत्नधेनुदत्तविधिवर्णनं नाम सप्तपञ्चशदधिकशततमोऽध्यायः । १५७

अथाष्टपञ्चशदधिकशततमोऽध्यायः

उभयमुखीगोदानव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रसूयमाना दातव्या धेनुर्ब्रह्मणपुञ्ज्वे । विधिना केन धर्मज्ञ^४ दाने तस्याश्रं किं फलम् ॥१

करने के अनन्तर रुद्र, इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा एवं भगवान् वासुदेव समस्त देवगणों का निवास स्थान कहकर तुम्हारी स्तुति करते हैं अतः समस्त भुवनों की देह स्वरूप तुम मेरी शीघ्र रक्षा करो । क्योंकि मैं भवसागर में ढूब रहा हूँ । ऐसा कहकर वह धेनु सादर ब्राह्मण को अर्पित करे । पुनः वस्त्राभरण द्वारा उस विधानवेत्ता एवं वेदनिष्णात ब्राह्मण की अर्चा और दक्षिणा प्रदान करके नमस्कार पूर्वक धमा प्रार्थना करे । पार्थ ! इस भाँति उसके दान करने पर जिन फलों की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! कोटि कल्प तक शिवलोक के उत्तम स्थान में अनेक काल तक सुखानुभव करने के अनन्तर इस लोक में महाराज होता है, जो समस्त कामनाओं से समृद्ध शत्रुपक्ष का हत्ता होता है । इस प्रकार रत्नधेनु का दान करने पर उस समस्त विधान वेत्ता को देवीप्यमान विमान की प्राप्ति पूर्वक पाप मुक्त होने के नाते पुत्र पौत्र एवं बान्धवों समेत मदन सौन्दर्यतथा शम्भु का परमपद प्राप्त होता है । १२-१८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीबृह्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में

रत्नधेनुदान व्रत विधि वर्णन नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त । १५७।

अध्याय १५८

उभयमुखी (गर्भिणी) गोदानव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—धर्मज्ञ ! आपने बताया है कि प्रसव करने वाली ही गौ ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करनी चाहिए अतः उसका विधान और उसके दान का फल बताने की कृपा कीजिये । १

१. त्वां सर्वदेवगणधामनिधि विरिंचिरुद्देन्द्रविष्णुकमलासनवासुदेवाः । २. भवसागरपीड्यमानम् । ३. सुखी भवेत् । ४. कर्मणः ।

श्रीकृष्ण उवाच

प्रसूयमानातिपुण्ये: प्राप्यते गौर्वृदोत्तम । प्राप्नुवन्ति नराः केचित्पुण्यसम्भारविस्तराः ॥२
 यावत्पद्मौ योनिगतौ शिरश्चैव प्रदृश्यते । तावद् गौं पृथिवी ज्ञेया यावदगर्भं न मुञ्चति ॥३
 गौर्यावर्दद्विमुखी चैव यदा भवति भारत । तदासौ पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ॥४
 दत्त्वोभयमुखीं राजन्यत्पुण्यं प्राप्यते नृभिः । न तद्वर्णयितुं याति मुखेनैकेन केनचित् ॥५
 किमिष्टद्विर्भिर्ज्ञैर्दर्नैर्दत्तैश्च सत्तम । प्रसूयमानां गोभेकां देहि किं बहुना तत्र ॥६
 एकैव पाति नरकात्सुखमेकैव कारयेत् । एकापि द्विमुखी दत्ता गौर्गोभवति भारत ॥७
 स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरां मुक्तालङ्गूलभूषिताम्^१ । कांस्योपदोहनां राजन्नलकृत्य द्विजोत्तमे ॥८
 प्रसूयमानां गां दत्त्वा महत्पुण्यफलं लभेत् ॥८

यादन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्यापि नराधिष्य । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥९
 पितृन्यितामहांश्चैव तथावै प्रपितान्हान् । समुद्ररत्यसंदिग्धं नरकादभूरिदक्षिणः ॥१०
 घृतक्षीरवहा नद्यो दधिपायसकर्दमाः । तत्र ते थान्ति यत्रात्ति द्वुभावेभिस्तकामदः ॥११
 यो ददाति सुवर्णेन बहुना सह भाविनीम् । गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकश्च पार्थिव ॥१२
 न देया दुर्बला राजन्धेनुर्नैवाल्पदक्षिणा । काम्योऽयं विधिरुद्दिष्टः फलदो विधिना कृतः ॥१३

श्रीकृष्ण बोले—नृपोत्तम ! अत्यन्त पुण्य द्वारा प्रसव करने वाली गौ की प्राप्ति होती है अतः पुण्य संभार पूर्ण मनुष्य ही उसे प्राप्त कर सकते हैं अन्य नहीं । प्रसवावस्था में जब तक बच्चे (बछड़े) का चरण योनि के भीतर ही और बाहर के बल शिर ही दिखायी पड़े उस समय गर्भ मुक्त न होने तक वह गौ पृथिवी कही जाती है । भारत ! गौ जब द्विमुखी (गर्भिणी) होती है उस समय पर्वत बन आदि मुक्ता पृथिवी जानना चाहिए । राजन् ! इसलिए दो मुखी (गर्भिणी) गौ के दान करने पर जिस पुण्य की प्राप्ति होती है एक मुख से उसके वर्णन करना असम्भव है ॥२-५। सत्तम ! अनेक अभीष्ट यज्ञ और अन्य दान सुसम्पन्न न करके तुम एक ही प्रसदिनी गौ का दान करो क्योंकि एक ही गौ नरक से रक्षा करती हुई सुख प्रदान करती है । भारत ! यहाँ तक कि द्विमुखी एक ही गौ का दान करने पर वही गौ कहलाती है । राजन् ! सुवर्ण द्वारा सींग, चाँदी से खुर और मोतियों से लाङ्गूल (पूँछ) भूषित करने पर कांस की दोहनी समेत उसे किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करना चाहिए क्योंकि प्रसव करने वाली गौ के दान करने से महान् पुण्य फल की प्राप्ति होती है । नराधिष्य ! उस धेनु और उसके बच्चे के जितने लोम रहते हैं उतने सहस्र वर्ष उसका प्रदाता प्राणी स्वर्ग लोक में पूजित होता है ॥६-१। (गौ के साथ) अधिक दक्षिणा देने वाला वह प्राणी अपने पिता, पितामह, और प्रपितामह अदि पीढ़ियों का नरक से उद्धार करता है इसमें संदेह नहीं । जिस लोक में घृत और क्षीर की नदियाँ प्रवाहित होती हैं और दधि एवं पायस (खीर) जिनमें कीचड़ रूप हैं तथा कल्प वृक्ष जहाँ भूषित हैं वहाँ का उत्तम स्थान इसका प्रदाता प्राप्त करता है । पार्थिव ! सुवर्ण समेत उस प्रसवकारिणी गौ के दान करने पर उसे गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाते हैं । राजन् ! कभी कभी दुर्बल गौ और अल्प दक्षिणा का दान न करना चाहिए क्योंकि यह फलप्रद काम्य

१. रक्तलाङ्गूलभूषिताम् ।

स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्राः प्रतप्तजाम्बूनदतुल्पवर्णाः ।

महानितम्बास्तनुवृत्तमध्याः सेवन्त्यजस्तं नलिनाभिनेत्राः ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वण श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

उभयमुखीगोदानव्रतविधिवर्णनं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः । १५८

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

गोसहस्रप्रदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

गोसहस्रविधानं च कथयस्व जनार्दन । कस्मिन्काले ग्रदातव्यं कथं देयं च तद्वेत् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

गावः पवित्रा लोकानां गाव एव परायणम् । ब्रह्मणा सृजता लोकान्वृत्तिहेतोः प्रजेश्वर ॥

गावः प्रथमः सृष्टास्त्रेलोक्य हितकाम्यया ॥२

यासां मूलपूरीषेण देवतायतनान्यपि । शुचीनि समजायन्त किंभूतमधिकं ततः ॥३

मूलं यज्ञस्य काम्यस्य सर्वदेवमयाः शुभाः । गोमये वसते लक्ष्मीः पर्याप्तं तन्निर्दर्शनम् ॥४

ब्राह्मणाश्रैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् । एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्त्र तिष्ठति ॥५

विधान ब्रह्मा का ही बनाया हुआ है। इस प्रकार ऐसे दानी की सेवा ऐसी स्त्रियाँ निरन्तर करती हैं, चन्द्रमा के समान जिनके मुख, तपाये हुए सुवर्ण के समान देह, महान् नितम्य, मध्य भाग (कटि) सर्वथा क्षीण (पतला), थौर कमल की भाँति विशाल नेत्र हैं । १०-१४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में

उभयमुखी गोदान व्रतविधिवर्णन नामक एक सौ अद्वावनवाँ अध्याय समाप्त । १५८।

अध्याय १५९

गोसहस्रप्रदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जनार्दन ! गोसहस्र का विधान तथा वह किस समय और किसे दिया जाता है (ये सभी बातें) मुझे बताने की कृपा कीजिये ।

श्रीकृष्ण बोले—अजेश्वर ! लोक में गौ सर्वत्र पवित्र और पारायण करने योग्य हैं? इसीलिए ब्रह्मा ने अपने वृत्तार्थ लोक सर्जन करते हुए सर्वप्रथम तीनों लोकों के हितार्थ गौओं की ही सृष्टि की। क्योंकि जिसके मूत्र व पुरीष (गोबर) से देवालय भी पवित्र होते हैं उसके विषय में इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है। गौएँ काम्य यज्ञों के मूलकारण हैं क्योंकि वे समस्त देवमय एवं शुभात्मक होती हैं। उनके गोमय (गोबर) में लक्ष्मी का निवास रहता है यही उसके लिए पर्याप्त निर्दर्शन है। २-४। ब्राह्मण और गौ का कुल एक ही उसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया है, जिसमें ब्राह्मणों के अधीन मंत्र और गौओं के अधीन

यासां पुत्रैर्धृता लोका धारिताः सर्वदेवताः । तासां दानविधानं च शृणु तत्पृथिवीपते ॥६
 एकाऽपि गौरुणोपेता कृत्स्नं तारयते कुलम् । मुरुपा शीलसम्पन्ना युवतिः सुपयस्त्विनी ॥७
 सुवत्सा सुदुहा चैव पापरोगविवर्जिता । विधिवत्तादृशा दत्ता कृत्स्नं तारयते कुलम् ॥८
 किं पुनर्दश यो द्याच्छतं वा विधिपूर्वकम् । सहस्रं तु पुनर्द्यात्स्य वै किमिहोच्यते ॥९
 गोसहस्रं पुरा दत्तं नहुषेण महीभृता । स गते ब्रह्मणः स्थानं यथातिश्र महामतिः ॥१०
 गङ्गातीरे महदत्तमादित्या पुत्रकाम्ययः । लेखे पुत्रं त्रिलोकेशं नारायणमकल्मषम् ॥११
 श्रूयन्ते पितृभिर्गीर्ता गाथस्त्वा शृणु भूपते ॥१२
 यदि कवित्कुलेऽस्याकं गोसहस्रं प्रदापयेत् । गास्यामः परमां सिद्धिं कारितां पुण्यकर्मणा ॥१३
 दुहिता वा कुले काचिद्गोसहस्रप्रदायनी । सोपानः सुर्तिर्दत्तो भविष्यति न संशयः ॥१४
 अतः परं प्रवक्ष्यामि यज्ञं वै सर्वकामिकम् । गोसहस्रं तदा द्याच्छास्त्रोत्तविधिवन्नरः ॥१५
 तीर्थं गोले गृहे वापि मण्डपं कारयेद्दुभृतम् , दशद्वादशहस्रं वा द्युर्वक्त्रं सतोरणम् ॥१६
 तन्मध्ये कारयेद्वैदिं चतुर्हृत्तामनूपमाम् । हस्तमात्रप्रमाणेन हस्तेन समलंकृताम् ॥१७
 पूर्वोत्तरेऽथदिवभागे ग्रहवैदं प्रकल्पयेत् । ग्रहंस्तत्र क्रमाद्यजेत् ॥१८
 ऋग्वा विष्णुश्च रुद्रश्च पूज्याः प्रथममेव हि । ऋत्विजः परिकर्तव्या षोडशाष्टौ च शोभनाः ॥१९
 चत्वारो वा महाराज उपाध्यायश्च पंचमः । सर्वाभिरणसम्पन्ना कर्णवेष्टाङ्गुलीयकैः ॥२०

हवि रहती है ।५। पृथ्वीपते ! जिनके पुत्रों ने समस्त लोक और देवों को धारण किया है, उन्हीं का दान विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! गुणयुक्त मुरुप, शीलपूर्ण और प्रति पयस्त्विनी एक ही गो (दान करने पर) समस्त कुल का उद्धार करने में समर्थ होती है । मुन्दर बच्चे वाली, सुदुहा एवं पापरोग रहित पूर्वोक्त भाँति की एक ही गौ राविधान दान करने पर सम्पूर्ण कुल का उद्धार करती है जिसने सविधान दश, सी या सहस्र गौओं का दान किया है उसके लिए कहाँ तक कहा जा सकता है । पूर्वकाल में राजा नहूष और महाबुद्धिमान् ययाति ने गो सहस्र का दान किया था जिससे उन्हें ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई । उसी भाँति गङ्गा तट पर अदिति ने पुत्र की कामना से उसका दान किया था जिससे उन्हें त्रिलोक अधिपति, कल्पहीन भगवान् नारायण पुत्र रूप में प्राप्त हुए । भूपते ! पितर लोगों का गान सुना जाता है मैं उस गाथा को बता रहा हूँ, सुनो ! ६-१२। यदि हमारे कुल में कोई गोसहस्र का दान करता है तो उस पुण्य कर्म द्वारा हमें परम सिद्धि की प्राप्ति अवश्य होगी । यदि किसी कन्या ने ही कुल में गो सहस्र का दान किया तो हमारे लिए स्वर्ग सोपान समेत उसने सुगति भी प्रदान किया इसके सदेह नहीं । इसके अनन्तर मैं तुम्हें समस्त कामनाओं को सफल करने वाला गो सहस्र नामक यज्ञ का शास्त्रोत्त विधान बता रहा हूँ, जिसके द्वारा मनुष्य को यह दान अवश्य करना चाहिए । किसी तीर्थ, गोशाला अथवा गृह में दश या बारह हाथ का चौमुख और तोरण समेत शुभ मण्डप की रचना कर उसके मध्य भाग में चार हाथ की विस्तृत एवं अनुपम वेदी का निर्माण कर जो हस्त मात्र के प्रमाण से हस्त द्वारा ही अलंकृत की गयी हो । उसके पूर्वोक्त (ईशान) कोण में गृह वेद, का निर्माण कर उसमें गृह यज्ञ के विधान द्वारा ग्रहों का स्थापन पूजन करे । १३-१८। महाराज सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु रुद्र की अर्चना करके सुशोभन करके सोलह, आठ या चार ऋत्विज और पाँचवें एक उपाध्याय का चरण स्पर्श करे, जो कुण्ड तथा मुद्रिका (अंगठी) आदि समस्त

शोभिताश्छत्रसम्पन्नास्ताम्रपात्रद्वयान्विताः । प्रहृयज्ञोत्कविधिना होमं हृच्यं समाचरेत् ॥२१
 वेदाः पूर्वोत्तरे भागे शिवकुण्डं नियोजयेत् । कुम्भद्वयं च द्वारेषु पंचरत्नं सपल्लवम् ॥२२
 कार्यं कुरुकुलश्रेष्ठं ततो होमं समारभेत् । लोकपालबलिं दद्यात्तुलापुरुषदानवत् ॥२३
 गोसहस्राद्विनिष्टुष्य सवत्सं दशकं गवाम् । गोसहस्राद्विष्टुर्याद्वस्त्रमाल्यविभूषणम् ॥
 अंतःप्रवेश्य दशकं वस्त्रैमाल्यैश्च पूजयेत् ॥२४
 मुवर्णधण्टिकायुक्तं तामद्वोहनकान्वितम् । मुवर्णातिलकोपेतं खुरै रौप्यैरलंकृतैः ॥
 हेमरत्नमयैः शृङ्गेश्वामरै श्रोपशोभितम् ॥२५
 मुनयः केचिदिच्छन्ति काञ्चनं नन्दिकेश्वरम् । लवणद्रोणशिखरे भक्त्या तामपि कारयेत् ॥२६
 एका प्रत्यक्षऋषभे केषांचिद्गन्मिष्यते । प्रहान्त्सुरांश्च सम्पूज्य माल्यदस्त्रफलाक्षतैः ॥२७
 पताकाभिरलंकृत्य दैवतायतनानि च । गोशतेऽपि दशांशेन सर्वसेतत्प्रकल्पयेत् ॥२८
 यदि सर्वा न विद्यन्ते गावः सर्वगुणोत्तमाः । दशकं पूज्य यत्नेन इतरः परिकल्पयेत् ॥२९
 पुष्पकालमयो वाद्यगीतनङ्गलनिस्वदनैः । सर्वोषध्युदकस्तातः स्नपितो द्विजपुंगवैः ॥
 इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥३०
 नमो वो विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च । लोकाधिवासिनीभ्यस्तु रोहिणीभ्यो नमोनमः ॥३१
 गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः । ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः ॥३२
 गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे सर्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥३३

आभूषणों से भूषित, छत्रयुक्त और दो तांत्र पात्रों से युक्त हों, उन्हें ग्रह यज्ञ के विधान द्वारा हृव्य का हवन सुसम्पन्न करना चाहिए। कुरुकुलश्रेष्ठ ! वेदी के पूर्वोत्तर भाग में शिवकुण्ड का निर्माण और प्रत्येक द्वार पर पञ्चरत्न और गल्लवभूषित दो कलश की प्रतिष्ठा करके अनन्तर हवन कार्य तुलापुरुष के दान की भाँति लोकपालों की बलि अपित करनी चाहिए। जो सहस्र भैंसे वत्स (बच्चे) समेत दश गौ पृथक कर पुनः वस्त्र माला आदि से सुशोभित करने के अनन्तर उन्हें मुवर्ण की घंटियों, ताँबे का दोहनक, (भालमें) सुवर्ण का तिलक, चाँदी से अलंकृत खुर, सुवर्ण रत्नमय सींग, और चामर से विभूषित करे। कुछ मुनिगणों की सम्मति है कि सुवर्ण द्वारा एकनन्दिकेश्वर का भी निर्माण कर उसे भक्तिपूर्वक उसी लवण द्रोण के शिखर पर स्थापित करना चाहिए। प्रत्यक्ष ऋषभ (वृष) के रहते हुए एक ही गौ का दान करना चाहिए, यहं भी कुछ लोगों की सम्मति है। माला, वस्त्र, फल, अक्षतादि द्वारा ग्रहों और देवों की अर्चा करते हुए देवालयों को भी पताकाओं से अलंकृत करे। इसी भाँति गोशत के दान में भी उसके दशांश (दश) गौ द्वारा ही दान विधान की कल्पना करनी चाहिए। यदि सभी गौएँ सर्वगुणयुक्त न हो तो दश की ही सर्वप्रथम अर्चा करके इतर की कल्पना करें। पुण्य काल के समय भी (उस दान के अवसर पर) वाद्य, गीत, मांगलिक ध्वनि समेत समस्त औपृथक मिथित उदक स्नान द्विजपुङ्गवों के मंत्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न कराकर पुष्पाञ्जलि लेकर इस मंत्र का उच्चारण करें। १९-३०। विश्वमूर्ति तथा विश्व माता को नमस्कार है, लोकाधिवासिनी एवं रोहिणी रूप आप को नमस्कार है। गौओं के अंगों में इकीस भुवन और ब्रह्मादिदेवगण प्रतिष्ठित हैं अतः रोहिणी माताएँ मेरी रक्षा करें। क्योंकि गौएँ मेरे सम्मुख, पृष्ठ भाग एवं चारों ओर स्थित हैं, इसलिए मैं गौओं के मध्य में ही निवास करता हूँ। यतः वृष रूप धारण कर

यस्मात्वं वृषरुपेण धर्मश्रैव सनातनः । अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातनः ॥३४
 इत्थामन्त्य ततो दद्यादगुरुर्वे नन्दिकेश्वरम् । सर्वोपस्करणोपेतं गोयुतं च विशेषतः ॥३५
 गवां शतमथैकं तदर्थं चापि विशितः । दशपञ्चशतं दद्याद्गुभ्यस्तदनुजया ॥३६
 नैका बहुभ्यो दातव्या दाता दोषकरो भवेत् । लक्ष्म्यचत्वेकस्य दातव्याः श्रीमद्दरोग्यवृद्धये ॥३७
 पयोद्रतस्ततस्तिष्ठेदेकाहं गोसहस्रः । तथैव ऋहुचारी स्याद् इच्छेद्विपुलां श्रियम् ॥३८
 न देया दुबेत् धेनुर्नाल्पक्षीरा न रोगिणी । न जीर्णा जीर्णवस्त्रा वा नापत्यगतचेतना ॥३९
 अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रप्रदो भवेत् । सर्वयापविनिर्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः ॥४०
 विमलेनार्कवर्णेन किञ्चिणीजालमालिना । स्तर्वेणां लोकपालानां लोके सम्पूज्यते सुरैः ॥४१
 सप्तावरान्सप्त परावरान् । पुरुषानुद्धरेहस्त्वा गोसहस्रं विधानतः ॥४२
 स्वगलोकाच्युतो वाथ नारी वा सत्यपरायणा । सप्त जन्मानि राज्ञी स्यात्स्तूयमाना पुनः पुनः ॥४३

त त्वेवेदं दानमात्रं प्रशस्तं पादं कालो गोविशेषो विधिश्च ।

तस्मादेताः सर्वभूषासमेताः पात्रे काले क्षीरवत्यो विधानात् ॥४४

एकापि गोर्बहुगुणा गुणिने प्रदत्ता दातुः कुलं त्रिपुरुषं विधिवत्युनाति ।

यः श्रद्धया वितरतीह गवां सहस्रं शक्यं फलं न नृपं तेऽस्य मयाभिधातुम् ॥४५

इति श्रीभद्रिष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

गोसहस्रप्रदानविधिवत्वर्णनं नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः । १५९

तुम सनातन धर्म हो और अष्ट मूर्ति (शिव) का अधिष्ठान हो अतः सनातन रूप आप मेरी रक्षा करें। इस प्रकार आमन्त्रित करके गौ के साथ वह नन्दिकेश्वर को भी गुरुचरण में अर्पित करे। अन्तर प्रयेक त्राह्णण को सौ सौ गौ, उसका आधा भाग रहने पर भी, दश मा पाँच सौ तक भी उन (गुरु) की आज्ञा से अनेकों में विभक्त कर देना चाहिए। एक सौ अनेकों को अर्पित करने से दाता दोषभागी होता है। किन्तु श्रीनान् होने और आरोग्य वृद्धयर्थ एक व्यक्ति को अनेक गौएँ समर्पित करनी चाहिए। तदुपरांत दह गोसहस्र का दानी व्यक्ति विपुल श्री की कामना वश वह दिन पव्यपान और ऋहुचारी रहकर व्यतीत करे। दुर्बल, अल्प दूध देने वाली, रोगिणी, वृद्धा, जीर्ण वस्त्र धारण करने वाली, और जिसके बच्चे जीवित न रहते हों, ऐसी गौ का दान कभी न करें। इस विधान द्वारा गो सहस्र का प्रदाता समस्त पापों से मुक्त, सिद्ध चारणों से सेवित होते हुए किंकड़ी जल (छोटी-छोटी घटियों) से भूषित तथा सूर्य के समान प्रकाशित विमान द्वारा सभी लोकपालों के लोक में पहुँचने पर देवों द्वारा पूजित होता है। सविधान गोसहस्र का दान करने पर वह प्राणी पूर्व की सात पीढ़ी पर की सात पीढ़ी और उससे आगे की सात पीढ़ी का उद्धार करता है। स्वर्ग लोक से कभी च्युत होने पर पुनः राजा होता है और स्त्री होने पर वह सात जन्म तक पतिव्रता रानी होती है जिनकी लोग सदैव स्तुति करते रहते हैं। इस प्रकार न केवल दान मात्र की ही प्रशंसा है अपितु पात्र, काल, गोविशेष (उत्तम गौ) और वह विधान की भी वैसी ही प्रशंसा है अतः सुअवसर पर सर्वाभरण भूषित धेनु गौ का दान सविधान किसी सुपात्र को करना चाहिए। नृप ! सविधान अनेक गुण सम्पन्न एक ही गौ किसी गुणी ब्राह्मण को अर्पित करने पर दाता के तीन पीढ़ी को पवित्र करतो हैं और जिसने श्रद्धा समेत गो सहस्र का दान करता है उसका फल वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ । ३१-४५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में

गोसहस्रप्रदानविधि ब्रत वर्णन नामक एक सौ उन्सठवाँ अध्याय समाप्त । १५९।

अथ षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः

वृषभदानवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

युष्मद्वाक्यामृतमिदं शृण्वानोऽहं ज्ञानार्दनं । न तृप्तिनिधिगच्छामि जातं कौतूहलं हि मे ॥१
गोपतिः किल गोविन्दस्त्रिषु लोकेषु दिश्रुतः । गोवृष्टस्य प्रदानेन त्रैलोक्यमभिनन्दति ॥२
तद्गोवृष्टभदानस्य फलं मे कथयाच्युत ॥

श्रीकृष्ण उवाच

वृषदानफलं पुण्यं^१ शृणुष्व कथयामि ते ॥३
पवित्रं पावनं चैव सर्वदानोऽत्मोत्तमम् । दशधेनुसमोऽनङ्गानेकश्चैकधुरंधरः ॥
दशधेनुप्रदानाद्विस्त एवैको विशिष्यते ॥४
यो हृष्टश्रातिपुष्टज्ञो ह्यरोगः^२ पाण्डुनन्दन । युवा भद्रः सुशीलश्च सर्वदोषविर्वाजितः ॥५
धुरन्धरः स्थापयते एक एव कुलं महत् । त्राता भवति संसारे नात्र कार्या विचारणा ॥६
अलंकृत्य वृषं शान्तं पुण्यकाल उपस्थिते । रौप्यलांगूलसंयुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥७
मन्त्रेणानेन राजेन्द्रं तं शृणुष्व वदामि ते ॥८
धर्मरत्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः । अष्टमूर्तेरधिष्ठानमत^३ पाहि सनातन ॥९

अध्याय १६०

वृषभ (साँड़) दान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—ज्ञानार्दन ! आप की अमृतवाणी सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है प्रत्युत कौतूहल उत्पन्न होता है । अच्युत ! गोपति गोविन्द ही हैं यह तीनों लोकों में प्रख्यात है और गोवृष के दान करने पर तीनों लोक को हर्ष प्राप्त होता है अतः उस गोवृष (बैल) के दान का फल बताने की कृपा कीजिये । १-२

श्रीकृष्ण बोले—वृषदान का वह पुण्य फल मैं तुम्हें बता रहा हूँ, जो अत्यन्त पावन एवं परमोत्तम दान है, सुनो ! एक धुरन्धर अनडून् (वृष) दशधेनु के समान माना जाता है अतः दशधेनु के प्रदान से वह एक ही विशिष्ट कहा गया है । पाण्डुनन्दन ! हृष्ट, पुष्ट, नीरोग, युवा, भद्र रूप, सुशील, सर्वदोष रहित एक ही धुरन्धर संसार में महान् कुल की स्थापना करता है और रक्षक होता है यह निर्विवाद है । किसी पुण्य अवसर पर शांत वृष को अलंकृत कर, जो चाँदी भूषित पुच्छ युक्त हो, जिस मंत्र से ब्राह्मण को अपित करना चाहिए । मैं बता रहा हूँ सुनो ! राजेन्द्र ! उस समय ऐसा कहे वृष रूप से तुम धर्म मूर्ति हो, जगत् को आनन्द देने वाले एवं शिव का सनातन अधिष्ठान हो अतः मेरी रक्षा करो । ३-९। इस प्रकार

दत्त्वैवं दक्षिणायुक्तं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । सप्तजन्मकृतं पापं वाह्मनः कायकर्मणाम् ॥
तत्सर्वं विलयं याति गोदानसुकृतेन च ॥१०

यातनं वृषभसंयुक्तं दीप्यमानं सुशोभनम्^१ । आरहा कामगं दिव्यं स्वर्लोकमधिरोहति ॥११
यावन्ति तस्य रोमाणि गोवृषस्य महीपते । तावद्वर्षसहस्राणि गवां लोके महीयते ॥१२
गोलोकादवतीर्णस्तु इह लोके द्विजो भवेत् । यज्ञयाजी महातेजाः सर्वब्राह्मणपूजितः ॥१३
यथोक्तं ते महाराज कस्य देयो वृषोत्तमः । तदहं^२ ते प्रवक्ष्यामि पात्रं त्राणपदं नृणाम् ॥१४

ये क्षान्तदान्ताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेद्वियाः प्राणिवधान्निवृताः ।
प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारदितुं समर्थाः ॥१५
ऊर्जस्विनं भरसहं दृढकन्धरं^३ च यच्छन्ति ये वृषमशेषगुणोपपन्नम् ।
दत्तेन यद्भवित गोदशकेन पुण्यं सत्यं भवन्ति भूवि तत्फलभागिनस्ते ॥१६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वृषभदानन्नतर्वर्णनं नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः । १६०।

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कपिलादानमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कपिलादानमाहात्म्यं कथयस्व जगत्पते । पुण्यं यत् सर्वदानानां सर्वपातकनाशनम् ॥१

दक्षिणा समेत दान करते हुए नमस्कार पूर्वक उसका विसर्जन करे। मन, वाणी और शरीर द्वारा किये गये सात जन्मों के पाप गोदान के पुण्य द्वारा विनष्ट हो जाते हैं। वृषयुक्त उस देवीप्यमान, सुशोभन, कामप्रद, एवं दिव्य विमान द्वारा स्वर्ग लोक प्राप्त करता है। महीपते ! उस गोवृष के शरीर में जितने लोम रहते हैं उतने सहस्र वर्ष वह गो लोक में पूजित होता है और गो लोक से यहाँ आने पर ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करता है, जो यज्ञयाजी, महातेजस्वी और समस्त ब्राह्मणों का पूज्य रहता है, महाराज ! तुमने जो कहा कि वह उत्तम वृष किसे अप्ति करना चाहिए। मनुष्यों के ब्राता उस पात्र को भी मैं बता रहा हूँ—जो सहनशील, शुद्ध वेदाध्यायी, संयमी, हिंसा रहित, और प्रतिग्रह (दान) ग्रहण करने में संकोच करता तो वही गृहस्थ ब्राह्मण उद्धार करने में समर्थ होता है। बली भार सहन सकने वाला, दृढ़कंधा, समस्त गुण सम्पन्न वृष का दान करने वाला प्राणी दशगोदान के पुण्य फल का भागी होता है यह सत्य है। १०-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
वृषभदान ब्रत वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त । १६०।

अध्याय १६१

कपिलादानमाहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जगत्पते ! आप मुझे कपिला दान का माहात्म्य बताने की कृपा कीजिये, जो समस्त दानों में पुण्य रूप एवं सम्पूर्ण पातकों का नाशक हैं। १

१. सुशोभितम् । २. तदप्यहं ते वक्ष्यामि । ३. दृढ़बन्धनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच

तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि विनताश्वेन यत्पुरा । कथितं कपिलादानं तच्छृणुष्व महामते ॥२

विनताश्व उवाच

अतः परं महाराजो भयमुख्याः समासतः । विधानं यदुराहेण धरण्ये कथितं पुरा ॥३
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि नवपुण्यफलं च यत् ॥४

धरण्युवाच

यत्त्वया कपिला नाम पूर्वमुलाविता प्रभो ॥४

होमधेनुः सदा पुण्या धेनुर्यज्ञावतारभूः । सा कथं ब्राह्मणेभ्यो हि देया कस्मिन्दिनेऽपि च ॥५
कीदृशाय च विप्राय इतत्व्या पुण्यलक्षणा । कति वा कपिलाः ग्रीक्ताः स्वयमेव रवयंभुवा ॥६
तासां प्रयत्नादानेन किं पुण्यं स्याच्च माधव । एतदिच्छास्यहं श्रोतुं विस्तरान्मधुसूदन ॥७

वराह उवाच

भृगुष्व भद्रे तत्त्वेन पवित्रं पापनाशनम् । कृत्वा यत्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥८
कपिला अग्निहोत्रार्थं यज्ञार्थं च वरानने । उद्भृत्य सर्वतेजांसि ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥९
यवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम् । पुण्यानां परमं पुण्यं कपिला च वरानने ॥१०
तपसस्तप एवाग्रं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । दानानामुत्तमं दानं विधिना ह्येतदक्षयम् ॥११
पृथिव्यां यानि तीर्थानि गुह्यान्यायतनानि च । पवित्राणि च पुण्यानि सर्वलोके वसुन्धरे ॥१२

श्रीकृष्ण बोले—महामते ! पूर्वकाल में विनताश्व ने (इस विषय में) जो कुछ कहा था, मैं वही कपिला दान का महत्व बता रहा हूँ, सुनो ! २

विनताश्व बोले—महाराज ! पहले समय में भी वराह जी ने विवेचन पूर्वक कपिला दान का जैसा विधान धरणी को सुनाया है, वह नवीन पुण्य फल प्रदान करता है अतः वही विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ । ३

धरणी बोली—प्रभो ! आप ने सर्वप्रथम जो कपिला नाम पवित्र किया है, वह धनु होम का साधन, पुण्य और यज्ञ का अवतार स्थल है, वह किस दिन और किस विधान द्वारा ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए तथा जिसे स्वयं ब्रह्मा ने अत्यन्त प्रशस्त बताया है उस पुण्य लक्षणा कपिला के कितने भेद बताये गये हैं । माधव, मधुसूदन ! सप्रयत्न उन कपिला धेनुओं के दान करने पर कौन फल प्राप्त होता है, मुझे सुनते की इच्छा है अतः विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें । ४-७

वराह बोले—भद्रे ! मैं तुम्हें तत्त्व समेत उस पवित्र एवं पापनाशक माहात्म्य को बता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर प्राणी समस्त पापों से मुक्त होता है इसमें संशय नहीं सुनो ! वरानने ! आदि काल में ब्रह्मा ने समस्त तेजों को एकत्र कर उसी से अनिं होत्र तथा यज्ञार्थ कपिला का निर्माण किया है । वरानने ! इसीलिए वह कपिलाधेनु पवित्रों में पवित्र, मङ्गलों में मङ्गल, और पुण्यों में परम पुण्य रूपा है । उसी प्रकार सविधान देने पर वह तपस्या में उत्तम तप, व्रतों में उत्तम व्रत, दानों में उत्तम दान और अक्षरूप है । वसुंधरे ! समस्त लोकों में गुप्त एवं विस्तृत तीर्थ, मन्दिर है इसी कारण वे अत्यन्त पुण्य रूप और

होतव्यान्यग्रिहोत्राणि सायं प्रतिद्विजातिभिः । कपिलाया धृतेनेह दध्ना क्षोरेण वा पुनः ॥१३
 यजन्ते येऽग्रिहोत्राणि अन्नैश्च विविधैः सदा । पूजयन्त्यतिर्थश्चैव परां भक्तिमुपागताः ॥१४
 तेषां त्वादित्यवर्णश्च विमानैर्जयते गतिः । सूर्यमण्डलमध्ये च ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥१५
 कपिलायाः शिरो श्रीवां सर्वतीर्थानि भासिनी ! पितामहनियोगाच्च निवसन्ति हि नित्यशः ॥१६
 प्रातहत्थाग यो मर्त्यः कपिला गलमस्तकात् । च्युतं तु भक्त्या दानीयं शिरसा धारयेन्नरः ॥१७
 स तेन पुण्येनोपेतस्तत्क्षणादगतकिल्बिषः । त्रिशद्वर्षकृतं पापं दहत्यप्रिरिवेन्धनम् ॥१८
 कल्प उत्थाय यो मर्त्यः कुर्यात्तासां प्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी स्याद्वसुन्धरे ॥१९
 प्रदक्षिणायां चैकायां कृतायां च वसुन्धरे । दशवर्षद्वृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥२०
 कपिलायास्तु मूत्रेण स्नायाद्वै यः शुचिव्रतः । स गङ्गादेशु तीर्थेषु स्नातो भवति मानवः ॥२१
 येन स्नानेन चैकेन भवमुक्तो भवेन्नरः । यावज्जीवकृतात्पापात्तक्षणादेव मुच्यते ॥२२
 गोसहस्रं च यो दद्यादेकां वा कपिलां नरः । समसेतपुरा प्राह ब्रह्मलोके पितामहः ॥२३
 यश्चकां कपिलां हन्याक्षरो रज्जुकरो यदि । गोसहस्रं हतं तेन भवतीह न संशयः ॥२४
 गवां स्थितिं कल्पयेत धृतं गव्यं न दूषयेत् । यावद्वि वर्द्धते गव्यं तावत्पापैस्तु पूर्यते ॥२५
 गवां कण्डूयनं श्रेष्ठं तथा च प्रतिपालनम् । तुल्यं गोधृतदानस्य भयरोगादिपालनम् ॥२६

पवित्र हैं। कपिला धेनु के धृत, दही और दूध द्वारा ब्राह्मणगण सायं प्रातः अग्निहोत्र कर्म करते हैं। विविध भाँति के अन्नों द्वारा सदैव अग्निहोत्र कर्म सुसम्पन्न करने और अत्यन्त भक्तिपूर्वक अतिथियों की अर्चा करने वाले प्राणी की सूर्य के समान प्रकाशित विमानों द्वारा सूर्य मण्डल के मध्य में उत्तम गति होती है इसीलिए पूर्वकाल में ब्रह्मा ने कपिला धेनु का निर्माण किया है। भासिनि ! पितामह (ब्रह्मा) के आदेशवश समस्त तीर्थ कपिला गौ के शिर और श्रीवा में नित्य निवास करते हैं। कपिला गौ के गले और भस्तक से गिरते हुए जल को भक्तिपूर्वक अपने शिर से धारण करने वाले पुरुष उस पुण्य के प्रभाव से उसी समय क्षीण पाप हो जाते हैं और उनके तीस वर्षों के पापों को, ईंधन (लकड़ी) को अग्नि की भाँति दग्ध कर देता है। वसुन्धरे ! प्रातः काल उठकर उन (कपिला गौओं) की प्रदक्षिणा करने वाला मनुष्य समस्त पृथिवी की प्रदक्षिणा करता है। वसुन्धरे ! एक बार भी प्रदक्षिणा करने पर उसके दश वर्ष के पाप विनष्ट होते हैं इसमें संदेह नहीं । १-२०। कपिला गौ के मूत्र से स्नान करने वाला पवित्र वती मनुष्य गङ्गा आदि तीर्थों में स्नान किया ऐसा निश्चित माना जाता है। क्योंकि (गोमूत्र से) एक बार भी स्नान करने से मनुष्य संसार से मुक्त हो जाता है। और उसके आजीवन के पाप समूह उसी समय नष्ट हो जाते हैं। गो सहस्र का प्रदाता और एक कपिला गौ का दान करने वाला प्राणी फल भागी होते हैं, इसे ब्रह्मलोक में पितामह ने पहले ही बताया था। उसी भाँति यदि मनुष्य हाथ में रस्सी लिए एक कपिला गौ की हत्या करता है, तो उसने सहस्र गौ की हत्या की इसमें संशय नहीं । २१-२४। इसलिए गौओं की स्थिति की मुन्द्र कल्पना करनी चाहिए जिससे धृत दुग्ध उसके दूषित न हों, क्योंकि जब तक वह धृत घट आदि में वर्तमान रहता है पापों से मुक्त कर पवित्र करता रहता है। गौओं के अंगों को खुजलाना और उनका पालन पोषण करना परम श्रेष्ठ बताया गया है तथा भय रोग आदि से उनकी रक्षा करना गोधृत के दान के समान कहा गया है। गौओं

तृणादिभक्षणार्थं च गवां दद्याद्वारादिकम् । स्वर्गवासफलं दिव्यं लभते मानवोत्तमः ॥२७
 दशोह कपिलाः प्रोक्ताः स्वयमेव स्वयंभुवा । यो दद्याच्छ्रोत्रियस्यैव स्वर्गं गत्वा स मानवः ॥२८
 विमानैर्विविधैर्दिव्यैकन्याभिर्चितः । सेव्यमानस्तु गन्धर्वर्दीप्यमाना यथाप्रयः ॥२९
 सुवर्णकपिला पूर्वा द्वितीया गौरपिङ्गला । आशा चैव तृतीया स्थादग्निज्वला चतुर्थिका ॥३०
 पञ्चमी जुटुचर्णा स्यात्पृष्ठी तु धृतिपिङ्गला । सप्तमी श्वेतपिङ्गला स्थादष्टमी क्षीरपिङ्गला ॥३१
 नवमी पाटला ज्ञेया दशमी पुष्पपिङ्गला । एता दश समाख्याताः कपिलाश्र वसुन्धरे ॥३२
 सवां हेता महाभागान् स्तात्यन्ति न संशयः । सङ्गमेषु प्रशस्ताश्र सर्वपापप्रणाशनाः ॥३३
 एवमेतास्तु कपिलाः पापच्छ्र वसुन्धरे । आशा चैव तु या प्रोक्ता अग्निभानिलप्रभा ॥३४
 अग्निज्वलोज्ज्वलैः शृङ्गैः प्रदीप्ताङ्गारलोचना । अग्निपुष्पा अग्निलोमा तथान्या चानलप्रभा ॥३५
 तामाग्रेयां सदा दद्याद्ब्राह्मणायेतरैः तदा । गृहीत्वा कपिलां शूद्रः कामतस्तत्पयः पिबेत् ॥३६
 पतितश्र भवेन्नित्यं चण्डालसदृशः पुमान् । तस्मान्न प्रतिगृह्णीयाच्छबलां गां कथञ्चन् ॥३७
 द्वारान्ते परिहृतव्या कपिला गोर्धिजेतरैः । लोकेषु ते शूद्रतमाः कपिलाक्षीरभोजनाः ॥३८
 असम्भाष्याश्र पतिताः शूद्रास्ते पापकर्मिणः । पिबन्ति यावत्कपिलां तावतेषां पितामहाः ॥
 अमेघयं भुज्जतेऽस्तां नोपजीवेद्द्विजेतरः ॥३९
 तासां धृतं च क्षीरं वा नवनीतमथापि वा । उपजीवन्ति ये शूद्रास्ते प्रयान्ति यमालयम् ॥४०

को हरियाली धास खिलाने से उस मानव श्रेष्ठ को दिव्य स्वर्गवास फल प्राप्त होता है । स्वयमेव स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने कपिला के दश भेद बताये हैं जिनके दान श्रोत्रिय ब्राह्मण को अर्पित करने पर उस मनुष्य को स्वर्ग प्राप्त होता है और विविध भाँति के दिव्य विमानों द्वारा वह वहाँ पहुँच कर दिव्य कन्याओं से अर्पित एवं प्रदीप्त अग्नि की भाँति गन्धर्वों से सुसेवित होता है । पहली सुवर्ण कपिला दूसरी गौर पिङ्गला, तीसरी आशा, चौथी अग्नि ज्वला । पांचवीं, जुटुचर्णा, छठीं धृत पिङ्गला, सातवीं श्वेत पिङ्गला, आठवीं क्षीरपिङ्गला, नवीं पाटला (रक्तवर्ण) और दशवीं पुष्प पिङ्गला होती है । वसुन्धरे ! यही दश भेद कपिला गौ के होते हैं । २५-३२। ये सभी पुण्यात्मा वाली गौएँ मनुष्यों को उद्धार करती हैं इसमें संशय नहीं । वसुन्धरे ! सभी गौओं में ये कपिला गौ प्रशस्त और समस्त पापों की विनाशिनी बतायी गयी हैं । तीसरी आशा नामक कपिला गौ, अग्निगर्भा, अग्नि की भाँति प्रभापूर्ण होती है अग्निज्वला उज्ज्वल सींगों से युक्त, प्रदीप्त अग्नि की भाँति नेत्र वाली होती है और अन्य अग्निपुष्पा अग्नि लोमा एवं अग्नि की भाँति प्रभापूर्ण होती है । अतः उस आशा नामक कपिला गौ, जो अग्निमयी होती है अन्य लोगों को चाहिए ब्राह्मण को सादर अर्पित करें । कपिला गौ अपने घर रखकर कोई शूद्र स्वेच्छ्या उसका पयपान करता है, वह पुरुष चाण्डाल की भाँति पतित होता है इसलिए उसे शबला (कपिला) गौ का प्रहण कभी नहीं करना चाहिए । द्विं (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) से इतर (शूद्र) व्यक्ति को अपने दरवाजे से ही कपिला को हटा देना चाहिए । लोक में कपिला क्षीर का भोजन करने वाला शूद्र शूद्रतम कहा गया है । वह पापकर्मी शूद्र पतित होने के नाते सम्भाषण करने के योग्य नहीं होता है । शूद्र जितने दिन कपिला गौ का पयपान करता है उतने दिन उसके पितामहगण, अमेघ भोजन करते हैं अतः शूद्रको उससे अपना जीवन निर्वाह नहीं करना चाहिए । उनके धृत, दूध, अथवा नवनीत (मक्खन) भक्षण करने वाले शूद्र को

कपिलाजीविनः शूद्राः सर्वे गच्छन्ति गैरवम् । रौरवे भुञ्जते दुःखं वर्षकोटिश्चतोषिताः ॥४१
 ततो विमुक्ताः कालेन जायन्ते श्वानयोनिषु । श्वानयोनेर्विमुक्तास्ते विष्ठायां कृमियोनिगाः ॥४२
 दिष्ठारदेव च पापिष्ठा दुर्गंधेषु च नित्यशः । भूयोऽपि जायमानास्ते तत्रोन्नारो न विद्यते ॥४३
 ब्राह्मणश्रैव यो देवि कुर्यात्सेवांप्रतिग्रहम्^१ । ततः प्रभृत्यमेध्यायां पितरस्तस्य शेरते ॥४४
 तं विप्रं नानुभाषेत प्रायश्चित्ती भवेद्द्विजः । एकस्य गोप्रदानस्य सहस्रांशो न पूर्यते ॥४५
 किमन्यैर्बुद्धिभिर्दत्तिः कोटिसंख्यातविस्तरैः ॥४६
 श्रोत्रियाय दरिद्राय सुवृत्तायाहिताग्नये । इत्वैकां कपिलां धेनुं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४७
 मासे प्रसविनीं धेनुं दानार्थीं प्रतिपालयेत् । आत्मार्थे न प्रपाल्या हि सदा नरकभीरभिः ॥४८
 कपिलाऽर्धप्रसूता च दातव्या हि द्विजन्मने । जायमानस्य वत्सस्य मुखं योन्यां प्रदृश्यते ॥४९
 तादत्सा पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुच्चति ॥५०
 धेनोर्यावन्ति रोमाणि सवत्साया वसुन्धरे । भूम्यां तु पांसवो यायद्यावन्नक्षत्रतारकाः ॥५१
 तावद्वृष्टिरसहस्राणि ब्रह्मेशादिभिरर्चितः । ब्रह्मलोके नियसति यश्चैककपिलाप्रदः ॥५२
 सुवर्णशृङ्खलां यः कृत्वा खुरैरौप्यैः समर्चिताम् । ब्राह्मणस्य करे दत्त्वा सुवर्णं रौप्यमेव च ॥५३

यमपुरी जाना पड़ता है । ३३-४०। कपिला से जीवन निर्वाह करने वाले शूद्र रौरव नरक में पहुँच कर सौ कोटि वर्ष तक दुःख का अनुभव करते हैं । अनन्तर यथावसर वहाँ से मुक्त होने पर श्वान (कुते) की योनि में उत्पन्न होते हैं और यहाँ से पुनः विष्ठा (गल) के कीड़े होते हैं । इस प्रकार वे पापी गण दुर्गन्ध विष्ठा में ही नित्य उत्पन्न और मरते रहते हैं, जिनका उद्धार किसी भाँति होता ही नहीं । देवी ! गौ के अतिरिक्त उन शूद्रों के धान्य आदि का प्रतिग्रह (दान) ग्रहण करने वाला ब्राह्मण भी अधम कहलाता है इसके भी पितर गण उसी दिन से अमेध्य शयन करते हैं इसलिए उससे न भाषण करना चाहिए और न एक आसन पर बैठाना चाहिए उसे दूर से सदैव के लिए त्याग दे । क्योंकि उसके साथ भाषण करने वाला ब्राह्मण प्रायश्चित्त का भागी होता है । एक ही गोदान का सहस्रांश नहीं पूरा हो सकता है, तो अन्य कोटि संख्या के विस्तृत दान से क्या लाभ हो सकता है । किसी आमिण, दरिद्र, सुवृत्त एवं अनिहोत्र ब्राह्मण को एक ही कपिला गौ अर्पित करने वाला प्राणी समस्त पापों से मुक्त होता है । प्रसव होने वाले (अन्तिम) मास में दानी को दानार्थ उसका प्रतिपाल अवश्य करना चाहिए आत्मार्थ नहीं क्योंकि वैसा करने से नरक की प्राप्ति होती है । अर्थ प्रसव के समय यह कपिला गौ ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए जब तक योनि में बच्चे का मुख दिखायी देता है । ४१-५०। क्योंकि उस समय जब तक वह गर्भ से मुक्त नहीं होती तब तक उसे पृथिवी जानना चाहिए । वसुन्धरे ! सवत्सा उस धेनु के जितने लोम, भूमि में रजकण (धूलि और जितने नक्षत्र तारागण हैं उतने सहस्र वर्ष ब्रह्मलोक में वह उस एक कपिला गौ का प्रदाता ब्रह्मा विष्णु देवों से पूजित होकर निवास करता है । जिसने ब्राह्मण के हाथ में सुवर्ण अथवा चाँदी समेत ऐसी गौ अर्पित किया, जिसके सींगों में सुवर्ण और खुरों में चाँदी सुशोभित रहती हैं, उसी समय कपिला का पुत्र भी ब्राह्मण

१. शूद्राणां गोव्यतिरिक्तधान्यद्रव्यादिप्रतिग्रहमित्यर्थः ।

कपिलायास्तदा पुत्रं ब्राह्मणस्य करे न्यसेत् । उदकं च करे दत्त्वा वाचयेत् स्वशक्तिः ॥५४
 सुवर्णेत्तु चर्तुभिश्च त्रिभिर्द्वाम्यामथापि वा । एकहीना न दातव्या यदीच्छेच्छुभमात्मनः ॥५५
 स समुद्रवनोपेता सशैलवनकानना । रत्नपूर्णा भवेदत्ता पृथिवी जात्र संशयः ॥५६
 पृथिवीदानतुल्येन दानेनैतेन वै चरः । तारितो याति पितृभिर्वैष्णवं यत्पदं परम् ॥५७
 ब्रह्मस्वहरणो गोद्घो भ्रूणहा ब्रह्मघातकः । पातकुच्छोभयमुखीं द्यात्सत्कनकः निविताम् ॥५८
 तद्दिनं च पयोभोजी संयतश्चातिवाहयेत् ॥५९
 गोमेयेनोपलिप्याथ मण्डलं विधिपूर्वकम् । स्वशाखोक्तेन मन्त्रेण होमयेत्तु विचक्षणः ॥६०
 व्याहृत्या होमयेत्पूर्वं एञ्चवदरणकं तथा । इरावती धेनुमती देवस्य त्वेति वा पुनः ॥६१
 स्योना पृथिवी मन्त्रेण गौर्वत्ससहिता नवा । निकामफलदा धेनुः सा स्यात्सुरभिनन्दिनी ॥६२
 या ते सरस्वती देवी विष्णुनः च तथा मही । गौरीविष्णुपदं चेक्त्वा शान्तिकर्मणे वाचयेत् ॥६३
 पावद्वत्सस्य द्वौ पादौ शिरश्चैव प्रदश्यते । तावद्वै पृथिवी ज्ञेया यावदगर्भं न मुञ्चति ॥
 तस्मिन्काले प्रदातव्या ब्राह्मणाय बमुन्धरे ॥६४
 मुदर्णशृङ्खीं रौप्यखुरां कांस्यदोहां सताम्ब्रकाम् । सवस्त्रधण्टाभरणां गन्धपुष्पैरलंकृताम् ॥
 वस्त्राक्षतैः समर्प्यच्च ब्राह्मणाय समर्पयेत् ॥६५
 मुवर्णस्य सहनेण तदर्थेनापि भामिनि । तस्याप्यर्थेन शक्त्याऽयं तस्याप्यर्थेन वा पुनः ॥६६

के हाथ में अर्पित करना चाहिए । पश्चात् हांश में जल प्रदान कर यथाशक्ति संकल्प करे । उस समय चार, तीन या दो मुवर्ण पदक अवश्य रहे नहीं तो एक से न्यून कभी होना ही नहीं चाहिए क्योंकि वैसा न करने से अपने कल्याण में बाधा पहुँचती है । अनन्तर उसके दान करने पर उस दाता ने समुद्र बन, पर्वतादि दुर्ग समेत एवं रत्नपूर्ण समस्त पृथिवी का दान किया ऐसा माना जाता है इसमें संशय नहीं । पृथिवी दान के तुल्य इस दान के प्रभाव से दाता के पितरणग मुक्त होकर उस वैष्णव परमपद को प्राप्त करते हैं । ब्राह्मण वृत्ति का अपहारी, गोहृत्या, भ्रूण हृत्या और ब्राह्मण हृत्या करने वाले मनुष्य को मुवर्ण समेत उस उभयमुखी का दान अवश्य करना चाहिए और यह दिन संयम पूर्वक पयोव्रत द्वारा व्यतीत करें । गोबर से लिपी हुई भूमि में सविधान मण्डल निर्माण कर अपने साखोक्त मंत्रों द्वारा बुद्धिमान् को हवन भी सुसम्पन्न करना चाहिए । सर्वप्रथम व्याहृतियों द्वारा पंच वारुणी हवन करने 'इरावती' धेनुमती, देवस्य त्वा, स्योना पृथिविनो, का पाठ करते हुए सवत्सा यह गौ जो सुरभि नन्दिनी धेनु कहलाती है निष्काम फल प्रदान होते । अनन्तर शान्तिर्थ सरस्वती देवी, विष्णु महीं, गौरी एवं विष्णु पद का वाचन कराये । क्योंकि वत्स (बच्चे) के दोनों चरण और शिर जब तक (योनि में) दिखायी पड़े तथा वह जब तक गर्भ त्याग न करे तब तक उसे पृथिवी रूप जानना चाहिए और उसी समय वह ब्राह्मण को दानरूप में अर्पित भी करना चाहिए । ५-६५। मुवर्ण से सींग, चाँदी से खुर, कांसे की दोहनी से भूषित एवं वस्त्र, घटा आभूषण तंथा गन्ध पुष्पों से अलंकृत एवं पूजित कर ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए । भामिनि ! सहन्य या उसका आधाभाग, तदर्थ भाग अथवा यथाशक्ति उसका भी आधा भाग मुवर्ण उस (ब्राह्मण) के हाथ में रखते समय कृपणता दोष न आने देना चाहिए । और मुवर्ण के प्रभाव में चाँदी ही

यथा शक्त्या प्रदातव्या वित्तशाठ्यविवर्जितैः । करे इत्वा सुवर्णं च अथवा रूपमेव च ॥६७
 गृहणेमां महाधेनुं भव भ्राता ममाशु वै । सर्वपापक्षयं कृत्वा सदा स्वस्तिकरो भव ॥६८
 इरावती धेनुमती जाह्नवी तदनन्तरम् । प्रतिदास्यामि ते धेनुं कुटुम्बार्थं विशेषतः ॥६९
 भवतात्स्वस्ति मे नित्यं सुखं चानुत्तमं तथा । इत्ता तु पृथिवी देवी त्वयेयं प्रतिगृह्यताम् ॥७०
 कोऽदादिति च वै मत्त्रो जपितव्यो द्विजेन च । विमृज्य ब्राह्मणं सोऽपि तां धेनुं स्वगृहं नयेत् ॥७१
 एवं प्रसूयमानां गां यो इदाति वसुन्धरे । सा समुद्रवनोपेता सशैलवनकानना ॥
 रत्नपूर्णा भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥७२

स्तप्तजाम्बूनदत्तुल्यवर्णा महानितम्बां तनुवृत्तमध्याम् ।

अर्द्धप्रसूतां द्विमुखीं सुशीलां सेदन्त्यजस्तं कपिलां हि देवाः ॥७३

प्रातरत्थाय यो भक्त्या धेनुकल्पं नरो भुवि । जितेन्द्रियः शूचिर्भूत्वा पठेद्भूत्या समन्वितः ॥७४
 त्रिकालं पठते यस्तु पापं वर्षशतोद्भूत्वम् । नशयत्येकक्षणादेव वायुना पांसवो यथा ॥७५
 श्राद्धकाले पठेद्यस्तु इदं पावनमुत्तमम् । तरपान्नं संस्कृतं तदै पितरोऽशनन्ति धीमतः ॥७६
 अमावस्यां च यो विद्वान्द्विजानामग्रतः पठेत् । पितरत्स्तस्य तुष्यन्ति दर्षणां शतमेव च ॥७७
 यश्चैतत्छृण्यात्पुण्यं तद्गतेनान्तररात्मना सम्वत्सरकृतात्पापात्तक्षणादेव मुच्यते ॥७८
 इदं रहस्यं राजेन्द्र वराहमुखनिर्गतम् । धरण्यै कथितं पूर्वं सर्वपापप्रणाशनम् ॥७९
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरर्पणी श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 कपिलादानमाहात्म्यवर्णनं नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६१

रख कर गोदान करना चाहिए किन्तु उस समय यह कहता रहे कि—इस महाधेनु को शीघ्र स्वीकार करते हुए आप मेरा भाई होकर समस्त पापों के विनाश पूर्वक कल्याण करने की कृपा करें। तदनन्तर इरावती और धेनुमती जाह्नवी गौ मैं विशेषकर आप के कुटुम्बार्थं अर्पित करूँगा। आप मुझे नित्य परमोत्तम सुख प्रदान करते रहे और मैं यह पृथिवी रूप गौ को अर्पित कर रहा हूँ उसे स्वीकार करने की कृपा करें। उस समय ब्राह्मण को भी ‘कोऽदादिति’ मंत्र का जप करना चाहिए। प्रदाता भी ब्राह्मण के त्यागपूर्वक उस धेनु को अपने घर ले जाये। वसुन्धरे ! इस प्रकार प्रसूयमान गौ का जिसने दान किया, उसने समुद्र, वन और पर्वत आदि वन दुर्ग समेत रत्नपूर्णा पृथिवी का दाने किया है। ऐसा माना जाता है इसमें संशय नहीं ॥६६-७२। भलीभाँति संतप्त किये गये जम्बूनद (सुवर्ण) के समान वर्ण, महान् नितम्ब (पिछला भाग), मध्य भाग (कटि) सूक्ष्म, अर्द्ध प्रसव युक्ता, दो मुखी और सुशीला कपिला गौ की सेवा देवगण सदैव करते हैं। प्रातः काल उठकर जो मनुष्य भक्ति पूर्वक संयम एवं पवित्रता पूर्ण होकर इस पावनोत्तम धेनुकल्प का पाठ करते हैं उसके संसार में किये (पकाये) गये अन्न का भोजन धीमान् पितर गण सादर स्वीकार करते रहते हैं। इसीं भाँति अमावस्यम के दिन जो विद्वान् द्विजों के सम्मुख इसका पाठ करता है उसके पितर गण सौ वर्ष तक सुखानुभव करते हुए संतुष्ट रहते हैं। और ध्यानमग्न होकर इसके पाठ का श्रवण करने वाले व्यक्ति का वर्ष पर्यन्त का पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाता है। राजेन्द्र ! इस प्रकार पूर्वसमय पृथिवी के लिए वराह के मुख से निकले हुए इस रहस्य को मैंने तुम्हें सुना दिया, जो समस्त पापों को विनष्ट करता है ॥७३-७९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरर्पण में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में

कपिलादान-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ इक्सठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६१।

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

महिषीदानवतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

नहिषीदानमाहात्म्यं कथयामि युविष्ठिर ! पुण्यं पापविनाशं च आयुष्यं सर्वकामदम् !!१
 चन्द्रसूर्यग्रहे पुण्ये कार्त्तिक्यामयने तथा । शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां सूर्यसंक्रान्तिवात्तरे !!२
 यदा वा जायते चित्तं वित्तं च कुरुनन्दन । तदेव देया महिषी संसारभयभीरुणा !!३
 सुप्योधरशोभाद्या सुशृङ्खी सुखुरा तथा । प्रथमप्रसूता तत्त्वां सुशीला दोषवर्जिता !!४
 सुवर्णशृङ्खलिलका घटाभरणमूर्यिता । रक्तवस्त्रावृता रम्या कांस्यदोहनकान्विता !!५
 पिण्याकपिटिकोपेता सहिरण्या च शक्तिः । सप्तधान्ययुता देया ब्राह्मणे वेदपारगे !!६
 पुराणपाठके तद्वज्योतिः शास्त्रविदे तथा । देया न वेदरहिते न च कुद्रवित्ते क्वचित् !!७
 द्रव्यैरेभिः तत्त्वायुक्तां पृथेऽहिति विधिपूर्वकम् ! दद्यान्मन्त्रेण राजेन्द्र पुराणपठितेन तु !!८
 इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा । महिषी दानमाहात्म्यात्सास्तु मे सर्वकामदा !!९
 धर्मराजस्य सहाय्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः । महिषासुरस्य जननी या सास्तु वरदा भम् !!१०

(इति दानमंत्रः)

अध्याय १६२

महिषीदानवतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युविष्ठिर ! मैं तुम्हें महिषी (भैस) दान का माहात्म्य बता रहा हूँ, जो पुण्य, पापविनाशक, आयु समेत समस्त कामनाओं को सफल करता है। कुरुनन्दन ! चन्द्र सूर्य के ग्रहण, पुण्य अवसर, कार्त्तिक पूर्णिमा, अयन, शुक्लपक्ष की चतुर्दशी, सूर्य की संक्रान्ति अथवा जब कभी उसके दान करने का विचार मन में उत्पन्न हो, उसी समय संसार के भय से भीर होने वाले उस पुण्य को महिषी का दान अवश्य करना चाहिए। सुन्दर पर्योधर से सुशोभित, सींग और खुर अत्यन्त सुशोभन हों, प्रथम प्रसूता, तरुणी, सुशीला, दोष रहिता, सुवर्ण सींग की तिलक से भूषित, घटा आभूषण से अलंकृत, रक्त वस्त्र से आच्छन्न, रम्याकृति, कांसे का दोहन युक्त, पिण्याक पिटिक (खली आदि उसके खाने की सामग्री) यथाशक्ति सुवर्ण, और सप्त धान्य समेत वह महिषी किसी वेदपाठी ब्राह्मण विद्वान् को अर्पित करना चाहिए। १-६। पुराण पाठी, ज्योतिषी, आदि विद्वान् ब्राह्मणों के अतिरिक्त वेदाध्ययन शून्य और निन्दित व्रती को कभी भी दान अर्पित नहीं करना चाहिए। राजेन्द्र ! उपरोक्त द्रव्यों से युक्त महिषी का दान किसी पुण्य अवसर पर सविधान एवं पुराण पाठ पूर्वक प्रदान करते समय कहे कि—इन्द्र आदि लोक पालों की वह राजमहिषी महिषी दान माहात्म्य के प्रभाव से इस रूप यहाँ सुशोभित होकर मेरी समस्त कामनाएँ सफल करें। जिसका पुत्र धर्मराज की सहायता के लिए प्रतिष्ठित किया गया है, तथा जो महिषासुर की

द्यात्प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणे तां पथस्विनीम् । प्रतिग्रहः स्मृतस्तस्या: पृष्ठदेशे स्वयंभुवा ॥११
एवं दत्त्वा विधानेत ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् । वस्त्रैराभरणैः पूज्या भक्त्या च कुरुनन्दन ॥१२
सम्पादिता मया तुभ्यं सन्तुष्टो मे भव द्विज ॥१३

अनेन विधिना दत्त्वा महिषीं सा द्विजपुङ्गवे । सर्वान्कामानवान्नोति इह लोके परत्र च ॥१४
या सा ददाति महिषीं सा राजमहिषी भवेत् । महाराजः पुमान् राजन्यासस्य वचनं यथा ॥१५
दज्ञयाजी भवेद्विप्रः क्षत्रियः विजयी भवेत् । भवेद्वैश्यस्तु धनवाच्छूद्रः सर्वार्थसंयुतः^१ ॥१६
तस्मान्नरेण दातव्या महिषी विभवे सति । उत्रपौज्यप्रपौत्रार्थेमात्मनः शुभमिच्छता ॥१७
दशधेनुसमां राजन्महिषीं नारदोऽन्नवीत् । विंशतिगोसमां व्यासः सर्वदानोत्तमं रविः ॥१८
सगरेण ककुत्स्थेन धून्धुमारेण गाधिना । दत्ताः सन्धूज्य विप्रेभ्यो महिष्यः सर्वकामदाः ॥१९
महिषीदानमाहात्म्यं यः शृणोति सदा नरः । स सर्वपापनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥२०

दुर्धाधिकां हि महिषीं जलमेघवर्णा सम्पुष्टपट्टकवतीं जघनाभिरामाम्^२ ।

दत्त्वा सुवर्णतिलकां द्विजपुङ्गवाय लोकद्वयं विजयते किमु तत्र चित्रम् ॥२१

इति श्रीभविष्यदे महापुराणे उत्तरर्पर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

महिषीदानव्रतविधिवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः । १६२

जननी है वह इसरूप में यहाँ स्थित होकर मेरे लिए वर प्रदान करे । ७-१०। इस भाँति इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वह पथस्विनी को ब्राह्मण को समर्पित करे । स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने उसका प्रतिग्रह स्वीकार करने के समय उसके पृष्ठ देश का स्पर्श करना बताया है । कुरुनन्दन ! इस प्रकार भक्तिपूर्वक वस्त्राभरण से अलंकृत कर सविधान उसे प्रदान करके ब्राह्मण के घर पहुँचा देना चाहिए । द्विज ! मैंने यह महिषी तुम्हें अर्पित किया है अतः इससे सन्तुष्ट होने की कृपा करें । इस विधान द्वारा किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को महिषी अर्पित करने से लोक परलोक की उसकी सभी कामनाएँ सफल होती हैं । राजन् ! व्यास के कथनानुसार महिषी दान करने वाली स्त्री राजमहिषी और पुरुष महाराज होता है । उसी प्रकार ब्राह्मण यज्ञ करने वाला, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनी और शूद्र अपनी सभी कामनाएँ प्राप्त करता है । ११-१७। अतः पुत्र पौत्र एवं प्रपौत्र तथा अपने कल्याणार्थ मनुष्य को विभव रहने पर महिषी दान अवश्य करना चाहिए । राजन् ! नारद ने दश धेनु के समान एक महिषी दान बताया है, व्यास ने दीस गौ के समान कहा है और रवि ने समस्त दानों से उत्तम बताया है । पूर्विकाल में राजा सगर, ककुत्स्थ, धून्धुमार और गाधि ने पूजन पूर्वक ब्राह्मण को समस्त कामनाओं को सफल करनेवाली महिषीयों का दान किया है । महिषीदान माहात्म्य को सुनने वाला पुरुष समस्त पापों से मुक्त होकर शिवलोक में पूजित होता है । अधिक दुर्ध देने वाली, जलपूर्णमेघ के समान वर्ण, संपुष्ट पदक युक्त, और सुन्दर जघन भाग वाली महिषी, जो सुवर्ण तिलक से भूषित हो, किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने से उसकी दोनों लोकों में विजय होती है इसमें क्या आश्चर्य है । १८-२१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरभाग में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में

महिषीदान-व्रतविधि-वर्णन नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त । १६२।

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अविदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

भृणु पार्थं परं दानं सर्वकित्बिषनाशनम् । यद्वत्वा त्रिविधं पापं सद्यो विलयमृच्छति ॥१
सुवर्णरोमां सौवर्णीं प्रत्यक्षं वा सुशोभनाम् । सुवर्णतिलकोपेतां सर्वालङ्घारभूषिताम् ॥२
कौशेयपरिधानां च दिव्यचन्दनभूषिताम् । दिव्यपुष्पोपहानां च सर्वधातुरसैर्युताम् ॥

॥३

शतेन कारयेत्तां च सुवर्णस्य प्रयत्नतः । यथा शक्त्याथ वा कुर्याद्वित्तशाठयं न कारयेत् ॥४

अयने विषुवे चैव ग्रहणे शशितूर्येषोः । दुःस्वप्नदर्शने^१ चैव जन्मर्क्षं पितृसंक्षये ॥५

यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम् । तदैव दानकालः स्याद्यतोऽनित्यं हि जीवितम् ॥६

॥७

तद्र संस्थाप्य देवेशमुमया सह शङ्खरम् । ब्राह्मणं सह गायत्र्या सश्रीकं श्रीधरं तथा ॥८

रत्या सह तथानङ्गं लोकपालान्प्रहानपि । सम्पूज्य च विधानेन गन्धपुष्पनिवेदनैः ॥९

तदग्रे कारयेद्वोमं तिलाञ्जयेन महीपते । अलंकृत्य द्विजं शान्तं वासोभिः प्रतिपूज्य च ॥१०

तल्लङ्घं भन्त्रैर्होनश्च कर्तव्यो ज्वलितेऽनले । ततस्तां तिलकुम्भस्थां लवणान्तमुपस्थिताम् ॥११

पूजयित्वा विधानेन मन्त्रमेतमुदीरयेत् । रोमत्वङ्मांसमज्जाद्यैः सर्वोपकरणैः सदा ॥

अध्याय १६३

अविदानव्रतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें एक परमोत्तम दान बता रहा हूँ, जो समस्त पातकों का नाशक और उसी क्षण त्रिविध पापों को विनष्ट करता है, सुनो ! सुवर्ण के समान रोम और वर्ण वाली भेंड, प्रत्यक्ष हो या उसकी प्रतिमा हो, जो सुवर्ण तिलक सर्वाभरण भूषित, कौशेय (रेशमी) वस्त्राच्छन्न, दिव्य चन्दन, दिव्यपुष्पोहार अलंकृत समस्त धातु रसों से युक्त, सप्तधान्य तथा फल पुष्प सम्पन्न हो सादर ब्राह्मण को अर्पित करें। सुवर्ण के सौ तोले या यथाशक्ति द्वारा उसका निर्माण करते समय वित्तशाठ्य (कृपणता) दोषन आने देना चाहिए। अयन, विष्णु, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, दुःस्वप्न, जन्मनक्षत्र पितृक्षीणतिथि अथवा जब कभी उसके दान के लिए चित्त में विचार उत्पन्न हो, श्रद्धा समेत उसी समय मेष (भेंड) दान करना चाहिए क्योंकि जीवन अनित्य है। १-६। किसी तीर्थ, अपने गृह या जहाँ कहीं इच्छा हो उसी स्थान उमा समेत शंकर, गायत्री समेत ब्रह्मा, श्रीसमेत श्रीधर (विष्णु), रति और काम देव तथा लोकपाल समेत ग्रहों को प्रतिष्ठित कर गंध पुष्प आदि द्वारा सविधान पूजन करने के अनन्तर तिल धूत से हवन करे। महीपते ! किसी शांत ब्राह्मण को वस्त्र द्वारा पूजित कर उसी के मंत्रोच्चारण द्वारा उस प्रज्वलित अग्नि में आहुति प्रदान करे। अनन्तर तिल कुम्भ में स्थित और लवणान्त में उपस्थित उस प्रतिमा के सविधान अर्चनोपरांत इस मंत्र से प्रार्थना करे—अपने

१. दुःस्वप्ने पुत्रजनने ।

जगतः सम्प्रवृद्धाज्ञि^१ त्वामतः प्रार्थये स्थिताम् ॥१२

वाऽमनः कायजनितं यत्किञ्चन्मम दुष्कृतम् । तत्सर्वं विलयं यातु तव दानात्मसेवितम् ॥१३

एवमुच्चार्यं तां दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । नाभिभाषेत तं दत्त्वा मुखं च नावलोकयेत् ॥१४

दुष्टप्रतिग्रहतो विश्रो भवति पातकी^२ ॥१५

नो दद्याद्विक्षिणाहीनां दातव्या सा विधानतः । दक्षिणाविधिना हीना दुःखशोकावहा भवेत् ॥१६

पुरा दत्तमिदं दानं गौर्दा शङ्करकाम्यया^३ । तेन शम्भुः पर्तिलब्धः सर्वदेवनभस्कृतः ॥१७

इन्द्राण्या स्वर्णरोमाणां शतं दत्तं विधानतः । सर्वदेवपतिं प्राप्य पर्ति साद्यापि शोदते ॥१८

नलेन दत्तमेतद्वि राज्यं कृत्वां^४ दिदं गतः । रुक्मिण्याहृं पर्तिलब्धः सौभाग्यमतुलं तथा ॥१९

दानस्यास्य प्रभादेवं पुत्रा बहुज्ञान्विताः । अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लनते धनम् ॥२०

दत्त्वा दानं शुभां कन्तिं विपुलां च तथा श्रियम् । य इमं शृणुयान्नितं दानकल्पमनुत्तमम् ॥

अहोरात्रकृतात्पापान्तुच्यते नात्र संशयः ॥२१

मेषी विशेषकलुषापहरातिशस्तादाने सदैव रसधातुयुता सधान्या ।

तामादरेण कुरुनन्दन देहि दत्त्वा ऐनास्त्वापदिमिरः सज्जितेव भासि ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वजि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद-

जविदाननन्नतविधिवर्णनं नाम त्रिषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः । १६३।

रोम, चर्म, मांस और मज्जा आदि समस्त उपकरणों द्वारा तुम इस सारे संसार का उपकार करती हो अतः मैं तुम्हारी प्रार्थना कर रहा हूँ । ७-१२। वाणी, मन और शरीर जनित मेरे सभी दुष्कृत तुम्हारे इस दान और सेवन द्वारा सद्यः नष्ट हो जायें । ऐसा कहकर उसे किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करे और उस समय न उससे भाषण करे तथा न उसके मुख का दर्शन ही करे । क्योंकि दुष्ट प्रतिग्रह से हत हुआ ब्राह्मण पादक कहा जाता है । दक्षिणाहीन उसका दान कभी न करे और अविधि न होने पाये । क्योंकि दक्षिणा तथा विधि हीन भेंड दान दुःख और शोक का कारण होता है । पूर्वकाल में शंकर जी को पतिरूप में प्राप्त करने की इच्छा से गौरी ने इस दान को सुसम्पन्न किया था, जिससे समस्त देवों के वन्दनीय शम्भु पति रूप में उन्हें प्राप्त हुए । इन्द्राणी ने सुवर्ण रोम वाली सौ भेड़ों का सविधान दान किया था, जिससे उन्हें समस्त देवों के पति इन्द्र रूप में प्राप्त हुए उनके साथ आज भी वे आनन्दमग्ना रहती हैं । राजा नल ने इसके प्रभाव से राज्य सुख का अनुभव स्वर्ग प्राप्त किया । उसी प्रकार रुक्मणी ने इसके प्रभाव से मुझे पतिरूप में प्राप्त किया और अनुपम सौभाग्य भी इस दान के प्रभाव से पुत्रार्थी अनेक सबल, पुत्र, निर्धनी धन, मनोरम कांति एवं विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । इस कल्प कथा का थवण करने वाला प्राणी अपने दिन रात के पाप उसी समय विनष्ट करता है । कुरुनन्दन ! इस प्रकार इस धातु युक्त और सप्त धान्य समेत उस भेंड का दान अवश्य करो क्योंकि वह समस्त पापों का विनाश करती है और प्रति प्रशस्त बतायी गयी है अतः सादर उसका दान करने पर मनुष्य अंधकार नष्ट करने वाले सूर्य की भाँति पाप मुक्त होकर सुशोभित होता है । १३-२२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सवाद में

भेंड दाननन्नतविधिवर्णन नामक एक सौ तिरसठाँ अध्याय समाप्त । १६३।

अथ चतुःषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः

भूमिदानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

भूमिदानमतो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् । ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यो भूमिदानं सदक्षिणाम् ॥१
 श्रोत्रियाय दरिद्राय अग्निहोत्रस्ताय च । स सर्वकामतृप्तात्मा सर्वरत्नैऽभूमितः ॥२
 सर्वपापविनिर्मुक्तो दीप्यमानो रदिर्था । बालसूर्यप्रभाभासैर्वादित्रश्वजशोभितैः ॥३
 विमानैर्भास्त्वरैर्दीर्घ्यविष्णुलोकं स गच्छति ॥४

तत्र दिव्याङ्गनाभिश्च सेव्यमानो यथात्मुखम् । कामगः कामरूपी च क्रीडत्यानन्दमक्षयम् ॥५
 यावद्वा॑र्यते लोकान्भूरंकुरसमुद्भवा । तावद्भूमिप्रदः कामं विष्णुलोके महीयते ॥६
 नहि भूमिप्रदानादौ दानमत्यद्विशिष्यते । दिशो दशानुगृह्णाति हर्ता ता दश हन्ति च ॥७
 दानान्यन्यानि क्षीयन्ते कालेन पुरुषर्जभ । भूमिप्रदानपुण्यस्य क्षयो नैवोपद्यते ॥८
 सर्वपापानि क्षीयन्ते कालयोगक्लेषेण तु । भूमिहर्तुश्च राजेन्द्र दुःखस्यान्तो न विद्यते ॥९
 ब्राह्मणाय सुशीलाय^२ भूमिं दत्त्वा तु यो नरः । न हि तामुपजीवेद्यः स महत्पुण्यमाप्नुयात्^३ ॥१०

अध्याय १६४

भूमिदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें भूमि दान का विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापों को विनष्ट करता है। दक्षिणा समेत भूमि दान ब्राह्मण को अर्पित करने पर विशेष कर श्रोत्रिय, दरिद्र, एवं अग्निहोत्री ब्राह्मण को अर्पित करने पर वह पुरुष समस्त कामनाओं से तृप्त होकर सर्व रत्नों से भूषित होता है। समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य की भाँति प्रकाशित होता है और अन्त में दिव्य विमान द्वारा, जो बाल सूर्य की प्रभा भूषित, वादा, ध्वज अलंकृत एवं देवीप्यमान रहता है, विष्णु लोक प्राप्त करता है । १-४। वहाँ दिव्याङ्गनाओं से सुसेवित होने पर यथेच्छ सुलानुभव करते हुए कामचारी एवं कामरूपी होकर क्रीड़ा करता है और अक्षय आनन्द प्राप्त करता है । यह भूमि जब तक लोकों को धारण करती है उतने समय तक भूमि का प्रदाता विष्णु लोक में सुसम्मानित होता है । क्योंकि भूमि प्रदान के समान कोई अन्य दान विशिष्ट नहीं कहा गया है अतः उसका दानी दशदिशाओं का ग्रहण करता है और उसका अपहर्ता दश दिशाओं का हनन करता है । पुरुषर्भ ! यथावसर अन्य दान (का फल) नष्ट हो जाता है किन्तु भूमि दान (का पुण्य) कभी नहीं विनष्ट होता है । राजेन्द्र कालयोग के क्रमानुसार सभी पापक्षीण हो जाते हैं, पर, भूमि अपहरण करने वाले प्राणी के दुःख का अन्त होता ही नहीं । किसी सुशील ब्राह्मण को भूमि अर्पित कर पुनः उसका उपयोग नहीं करता है, वह महान् पुण्य प्राप्त करता है । ५-१०। भूमि जोतने के पीछे उसमें बीज

१. यावद्वारयते लोको भूमिं कुरुक्षुलोद्भव । २. सुकृष्टां तु । ३. फलम् ।

हलकृष्टां^१ महीं इत्वा सबीजां सस्यनालिनीम् । यावत्सूर्यकृतालोकस्तावत्स्वर्गं महीयते ॥११
 धनं धान्यं हिरण्यं च रत्नान्याभरणानि च । सर्वदानानि राजेन्द्र ददाति वसुधां ददत् ॥१२
 सागरान्सरितः शैलान्समानि विषमाणि च । सर्वगन्धरसान्स्नेहान्ददाति वसुधां ददत् ॥१३
 ओषधीः क्षीरसम्पन्ना नानापुष्पफलोपगाः^२ । कमलोत्पलखण्डांश्च ददाति वसुधां ददत् ॥१४
 अग्निष्ठोमादिर्भिर्ज्ञैर्यं यजन्ति सदक्षिणैः । प्राप्नुवन्ति च तत्पुण्यं भूमिदानाद्यवाप्यते ॥१५
 श्रोत्रियाय महीं इत्वा ये हरन्ति^३ न मानवाः । तावत्तेषां भवेत्स्वर्गां यावल्लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१६
 सस्यपूर्णा महीं यस्तु श्रोत्रियाय प्रयच्छति ! पितरस्तस्य तुष्ट्यन्ति यावदभूतसम्प्लवम् ॥१७
 यन्त्किंचित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः । अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्धयति ॥१८
 सुवर्णानां सहस्रेण यत्पुण्यं समुद्राहतम् । भूमि गोचर्ममात्रेण तत्फलं प्राप्नुयान्तः^४ ॥१९
 कपिलानां सहस्रेभ्यो यद्यतेऽनं नरोत्तम । भूमिगोचर्ममात्रेण तत्फलं लभते नरः ॥२०
 मध्यमस्य मनुष्यस्य व्यासेन परिसंख्यया । त्रिशङ्दांश्च गोचर्म इत्वा स्वर्गं महीयते ॥२१
 बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः । यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्यतस्य तदा फलम् ॥२२
 किकरा मृत्युदण्डाश्च असिपत्रवनाद्ययः । घोराश्च वारुणाः पाशा नोपर्सर्वं भूमिदम् ॥२३

डाल कर हरियाली होने पर उस हरे भरे खेत का दान करने वाला मनुष्य सूर्य प्रकाश के समान काल तक स्वर्ग में पूजित होता है । राजेन्द्र ! वसुधा दान करने वाला मनुष्य धन धान्य, हिरण्य एवं रत्नों के आभूषण आदि समस्त का दान करता है । सभी समुद्र, सरितायें, समविषम पर्वतों और समस्त गंध समेत रसों का दान करता है । उसी भाँति क्षीर पूर्ण समस्त ओषधियाँ जो अनेक भाँति के पुष्प और फलों से सुसम्पन्न रहती हैं, तथा रक्तःमल एवं नील कमल लंड का दान करता है । भूमि दान करने से उस पुण्य की प्राप्ति होती है जो अधिक दक्षिणा समेत अति संभार सम्पन्न अग्निष्ठोमादि नामक यज्ञों को सुसम्पन्न करने से प्राप्त होती है । किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण को भूमि दान अर्पित कर पुनः उसे न लौटाने पर वह महाप्रलय पर्यन्त स्वर्ग में प्रतिष्ठित रहता है । उसी प्रकार सस्य श्यामला (हरियाली) भूमि श्रोत्रिय ब्राह्मण को अर्पित करने पर उसके पितरगण महाप्रलय पर्यन्त सन्तुष्ट रहते हैं । अपनी आजीविका से दुःखी होकर मनुष्य जो कुछ पाप करता है वह गोचर्म के तुल्य भी भूमि दान करने से नष्ट हो जाता है । सुवर्ण के सहस्र मुद्राओं द्वारा जितनी पुण्य की प्राप्ति होती है वह सभी फल गोचर्म के तुल्य भी भूमि दान करने वाले को प्राप्त होता है । १-१९। नरोत्तम ! सहस्र कपिला गौओं को नित्य पुत्र दान करने से जो फल प्राप्त होता है वह गोचर्म के समान भी भूमि दान करने से प्राप्त होता है । व्यास के कथनानुसार तीस दण्डे के (समान विस्तृत) एक गोचर्म कहा गया है अतः उतनी भी भूमि प्रदान करने से यह मध्यम श्रेणी का मनुष्य स्वर्ग में पूजित होता है । सगर आदि अनेक राजाओं ने इस वसुधा का उपभोग किया अतः यह भूमि जब जब जिसकी रही है उसे उस समय फल प्राप्त हुआ है । (यमराज) के किकर गण, मृत्यु दण्ड, असिपत्र आदि वन और वरुण का वह घोर पाश भूमि दानी का स्पर्श नहीं करते हैं । २०-२३। रौरवादि नरक वह

१. फालकृष्टाम् । २. नगान्पुष्पफलोपगान् । ३. न हिसन्ति । ४. लभते हि सः ।

निरयः रौत्राद्याश्र कुम्भीपाकः मुदुःसहः । तथा च यातनाः कष्टा नोपसर्पन्ति भूमिदम् ॥२४
 चित्रगुप्तश्च कालश्च कृतान्तो मृत्युरेव च । यमश्रापि स्वयं राजा सम्पूजयति भूमिदम् ॥२५
 रुद्धः प्रजास्यतिः शको^१ देवामुरगणास्तथा । अहं च परमप्रीत्या पूजयामीह भूमिदम् ॥२६
 षट्कर्मकृत्सुवृत्ताय कृशाय च प्रियार्थिने । भूमिर्देया नरव्याघ्रं सत्रिधिश्राक्षयो भवेत् ॥२७
 सीदमानकुटुम्बाय श्रेत्रियायाहिताग्रये । वृत्तस्थाय दरिद्राय भूमिर्देया नरेश्वर ॥२८
 यथा जननीं क्षीरेण पुत्रं सन्वर्द्धयेत्सदा । तथा भूमिप्रदं भूमिः सर्वकामैस्तु तर्पति ॥२९
 यथा गौर्भरते वत्सं क्षीरेण क्षीरमुत्थृजेत् । तथा सर्वरसोपेता भूमिर्भरति भूमिदम् ॥३०
 यथा बीजानि रोहन्ति जलसिक्तानि भूतले । तथा कामाः प्ररोहन्ति भूमिदस्य दिनेदिने ॥३१
 यथोदयन्सहस्रांशुस्तमः सर्वं व्यपोहति । तथा भूमिप्रदानं तु सर्वपापं व्यपोहति ॥३२
 परदत्तां तु यो भूमिमुर्पर्हसेत्कदाचन । स बद्धो वाहणैः पाशैः क्षिप्यते पूयशोणिते ॥३३
 स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् । स नरो नरके घोरे किलशयत्याग्नियान्तिकम् ॥३४
 रुदत्तां दृत्तिनाशनं^२ ये पतंत्यश्रुबिंदवः । तावद्वृत्सहस्राणि नरके पच्यते तु सः ॥३५
 ब्राह्मणानां हुते^३ क्षेत्रे हर्तुस्त्रिपुरुषं कुलम् । दत्त्वा भूमिं तु विप्राय उर्पहिसेद्यदा पुनः ॥

दुसह कुम्भी पाक तथा वहाँ की अनेक भाँति की कष्टप्रद यातनाएँ भूमिदानी के समीप नहीं जाती हैं । चित्रगुप्त, काल, कृतान्त, मृत्यु और स्वयं राजा यम भूमिदानी की पूजा करते हैं । उसी प्रकार रुद्ध, अजगपति, इन्द्र, समस्त देवगण, तथा मैं भी परग प्रेम मग्न होकर भूमिदानी की पूजा करता हूँ । नरव्याघ्र ! अपने जातीय षट्कर्म सुसम्पन्न करने वाले, सुवृत्त, (उत्तमवृत्ति) कृश, एवं प्रिय याचक ब्राह्मण को भूमि दान करना चाहिए जिससे उसका साधिन्ध्य और अक्षय फल प्राप्त हों । नरेश्वर दरिद्र कुटुम्बी, वेदपाठी, अग्निहोत्री एवं अपनी उत्तम वृत्ति से आजीविका निर्वाह करने वाला ब्राह्मण को भूमिदान अपित करना चाहिए । जिस प्रकार जन्म देने वाली माता अपने पुत्र का क्षीर द्वारा पालन पोषण करती है उसी भाँति यह भूमि दानी को समस्त कामनाओं की सफलता द्वारा प्रसन्न रहती है । अपने क्षीर द्वारा वत्स (बच्चे) को भरण पोषण करने वाली गौ की भाँति समस्त रसों से युक्त यह भूमि भी भूमि दानी का भरण पोषण करती है । इस भूतल में जिस भाँति जलसिक्त बीज अंकुर रूप में समृद्ध होते हैं उसी भाँति भूमि प्रदाता की समस्त कामनाएँ उत्तरोत्तर समृद्ध होती रहती हैं ॥२४-३१ उदय होते ही सूर्य जिस प्रकार सम्पूर्ण अन्धकार को नष्ट कर देता है उसी भाँति भूमि दान (प्रदाता) के समस्त पापों को विनष्ट करता है । दूसरे द्वारा दान की हुई भूमि का जो अपहरण पाप नष्ट भ्रष्ट करता है वह वर्ण के पाश से आबद्ध होकर पूर्व (पीव) और शोणित (रक्त) के कुण्ड में डाल दिया जाता है । अपने द्वारा या दूसरे के द्वारा दी गयी पृथिवी का जो अपहरण करता है वह घोर नरक में प्रलय पर्यन्त पड़ा रहता है । वृत्ति (जीविका) का अपहरण नाश करने वाला मनुष्य उसके रुदन करते समय गिरे हुए अशु बिंदुओं की संख्या के सहस्र गुणे वर्ष नरक में दुःख का अनुभव करता है । ब्राह्मणों के खेत का अपहरण करने वाला

१. शुकः । २. वृत्तिलोपेन । ३. हरेत्क्षेत्रं हन्यात् ।

अधोमुखशब्द दुष्टात्मा कुम्भीपाके स पच्यते

॥३६

दिव्यवर्षसहस्रान्ते कुम्भीपाकाद्विनिःसृतः । इह लोके भवेत्श्वा वै सप्त^१ जन्मानि पार्थिव ॥३७
स्वदत्तां परदत्तां वा यत्नाद्रक्षेद्युधिष्ठिर । महीं महीभृतां श्रेष्ठदानच्छ्रेयोनुपालनम् ॥३८
तोयहीनेष्वरण्येषु शुष्ककोटरवासिनः । कृष्णहयोभिज्ञायन्ते नरा ब्रह्मस्वहारिणः ॥३९
एव दत्त्वा महीं राजन्प्रहृष्टेनान्तरात्मना । सर्वान्कामानवास्रोति सनसा चित्तितान्नरः ॥४०
भूमिदानात्परं नास्ति सुखं वामुष्मिकं महत् । न चापि भूमिहरणादन्यत्पातकं मुच्यते ॥४१

यच्छन्ति ये द्विजवराय महीं सुकृष्टाण्^२ ते यान्ति शक्रसदनं सुविशुद्धदेहाः ।

ये लोपयन्त्यतिबलादथ^३ कामलोभाते रौरदातिगहनान्त्रं समुत्तरन्ति ॥४२

इति श्रीभद्रिष्ठे महापुराण उत्तरर्पणं श्रीकृष्णद्युधिष्ठिरसंवादे

भूमिदानमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः । १६४

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पृथिवीदानविधिपर्वतम्

युधिष्ठिर उवाच

भूमिदानं क्षत्रियाणां नान्येषामुंपद्यते । ते ह्यपार्जयितुं शक्तदातुं पालयितुं यथा^४ !!१

अपने तीन पीढ़ियों का नाश करता है और ब्राह्मण को भूमिदान अपित करने पर पुनः उसे नष्ट करने वाला वह दुष्टात्मा कुम्भी पाक नरक में अधोमुख होकर पचता रहता है । पार्थिव ! कुम्भीपाक से यथावसर निकलने पर वह प्राणी इत्येतोक में सात जन्म तक बार-बार श्वान अथवा चाण्डाल योनि प्राप्त करता है । युधिष्ठिर ! अपनी या पराये की दी हुई भूमि की सप्रयत्न रक्षा करनी चाहिए क्योंकि राजाओं को श्रेष्ठ दान की अपेक्षा उसकी रक्षा करना अधिक श्रेयस्कर बताया गया है । ब्राह्मण धन (जीविका) का अपहरण करने वाला पुरुष जलहीन जंगलों के सुखे हुए वृक्षों के कोटों में कृष्ण सर्प होकर निवास करते हैं । राजन् ! प्रसन्न चित्त होकर पृथिवी दान करने से मनुष्य की सभी कामनाएँ यथेच्छ सकल होती हैं । लोक परलोक में भूमि दान के समान सुखप्रद अन्य वस्तु नहीं है उसी भाँति भूमिहरण के समान अन्य पातक भी नहीं है । भली भाँति जोताई आदि करके वह सत्य श्यागला भूमि किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अपित करने वाला प्रतिग्रहण रौरवादि नरक से भी मुक्त नहीं होता है । ३२-४२

श्रीभद्रिष्ठे महापुराण के उत्तरर्पण में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में भूमिदान माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त । १६४।

अध्याय १६५

पृथिवीदान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यादव ! भूमि दान क्षत्रियों, को ही सुलभ हो सकता है क्योंकि उसके उपार्जन,

१. सप्तजन्म पुनःपुनः । २. परम् । ३. स्वकृष्टाम् । सुमृष्टाम् । ४. अपि ।

भूमिदानसमं किञ्चिदन्यत्कथय^१ यादव । सम्प्राप्तवित्तैर्यच्छक्यं संसारभयभीरवः ॥२
श्रीकृष्ण उवाच

सौवर्णीं विधिवत्कृत्वा साद्रद्वमवतीं शुभाम् । महीं प्रयच्छ विप्राणां तत्तुल्या सा निगद्यते ॥३
शृणुष्वैकमना भूत्वा महादानं नरोत्तम । सविधानं प्रवक्ष्यामि फलं यत्नेन^२ यद्वैत् ॥४
चन्द्रसूर्योपरागे च जन्मक्षेत्रं विषुवे तथा । युगादिषु च दातव्यमयने च^३ विधानतः ॥५
अन्येष्वपि च कालेषु प्रशस्ते धनसञ्चये । पापक्षयाय दत्तव्यं यशोऽर्थं वा नरैर्भुवि ॥६
हेत्रतः पलशतेनोत्ता तदर्थेनापि शक्तिः । कुर्यात्पञ्चपलादृधर्वमसमर्थोऽपि भक्तिमान्^४ ॥७
कारयेत्पृथिवीं हैमीं जम्बुद्वीपानुकारिणीम् । मर्यादापर्वतवतीं मध्ये मेरुसमन्विताम् ॥८
लोकपालाष्टकोपेतां ब्रह्मविश्वेशसंयुताम् । नानापर्वतपूर्णा च रत्नाभरणभूषिताम् ॥९
सर्वसस्यविचित्राङ्गीं सर्वगच्छाधिवासिताम् । ईदृशीं तु महीं कृत्वा कारयेन्मण्डपं ततः ॥१०
दशद्वादशहस्तं च चतुर्दक्षं^५ सतोरणम् । मध्ये च वेदिकां कुर्याद्द्वनुहस्तां^६ प्रनाणतः ॥११
ऐशान्यां सुरसंस्थानमाग्नेयां कुण्डमेव च । पताकाभिरलड्कृत्य देवतायतनान्यथ ॥१२
लोकपालाग्रहाश्चैव पूज्या माल्यविलेपनैः । होमं कुर्याद्द्विजाः शान्ताश्चातुश्चरणिकाः शुभाः ॥१३
सालङ्काराः सवस्त्राश्च माल्यचन्दनभूषिताः । अग्निसंस्थापनं तत्र कृत्वा पूर्वं ततो महीम् ॥१४

दान और पालन पोषण में वही समर्थ होते हैं पुनः भूमि दान के समान कोई अन्य दान बताने की कृपा कीजिये, जिससे संसार भय से भीरु धनवान् प्राणी भी अपने उस धन द्वारा उसे सुसम्पन्न कर सके । १-२

श्रीकृष्ण बोले—पृथ्वी की शुमसुवर्ण प्रतिमा बनाकर जिसमें पर्वत बनादि सभी निर्मित रहें, ब्राह्मणों को अर्पित करना उसके समान कहलाता है । नरोत्तम ! इसलिए उस महादान का विधान और फल समेत वर्णन मैं कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! चन्द्र सूर्य के ग्रहण समय, जन्म नक्षत्र, विषुव, युगादि के दिन, और अयत के समय सविधान उसका दान करना चाहिए । अपने पास धन संचय रहने पर अन्य समय भी पापक्षयार्थ और यश प्राप्ति के लिए मनुष्यों को इस भूतल पर यह दान सुसम्पन्न करना चाहिए । सुवर्ण के सौ पल या यथा शक्ति तदर्थं भाग से उसका निर्माण करना चाहिए किन्तु असमर्थ होने पर भी भक्तिमान् पुरुष को पाँच पल से अधिक सुवर्ण द्वारा ही उसका निर्माण करना चाहिए । उस सुवर्ण पृथ्वी के निर्माण जम्बु द्वीप के अनुकरण पूर्वक होना चाहिए । जिसमें उसकी मर्यादा, पर्वत, मध्य भाग में मेरुपर्वत, आठों लोकपाल समेत ब्रह्मा, शंकरादि, संयुत, अनेक पर्वतों से पूर्ण, रत्नाभरणभूषित, समस्त धान्यों से विचित्र अंगों वाली और समस्त गंधों से अधिवासित हो । इस प्रकार की भूमि का निर्माण करके दश या द्वादश हाथ का विस्तृत, चतुर्मुख और तोरण समेत मण्डप का निर्माण करे । उसके मध्य भाग में धनुर्हस्त प्रमाण की वेदी की रचना करे जिसके ईशान कोण में देवों के स्थान और अग्निकोण में कुण्ड के निर्माण पूर्वक पताकाओं से अलंकृत देवमन्दिरों लोकपालों और ग्रहों के स्थापन करे । माला विलेपन आदि द्वारा देवों की अर्चना करके शांत एवं चार चरण वाले ब्राह्मणों को हवन करना चाहिए । ३-१३।

१. दानम् । २. दत्तं च । ३. वा । ४. शक्तिः । ५. वा । ६. चतुर्दस्ताम् ।

आनयेयुद्दिंजा राजन् ब्रह्मघोषपुरःसरम् । शत्रूत्तर्यनिनाईश्च गेयमङ्गलनिस्वनैः ॥१५
 तिले: प्रच्छादितां वेदिं कृत्वा तत्राधिवासयेत् । अथाष्टादशधान्यानि रसांश्च लवणादिकान् ॥१६
 तथाष्टौ पूर्णकलशान्समन्तात्पथापयेच्छुभान् । वितानकं च कौशेऽप्य फलानि विविधानि च ॥१७
 अंशुकानि विचित्राणि श्रीखण्डशकलानि^१ च । इत्येवं रचयित्वा तामधिवासनपूर्वकम् ॥१८
 ततो होमावसानेषु निष्पत्ते सर्वशान्तिके । शुक्लजात्याम्बरधरो यजमानः स्वयं ततः ॥१९
 कृत्वा प्रदक्षिणं पृथ्वीं गृहीत्वा कुसुमाञ्जलिम् । पुण्यकालमथासाद्य मन्त्रानेतानुदीरयेत्^२ ॥२०
 नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः । धात्री त्वमसि भूतानामतः पाहि वसुन्धरे ॥२१
 वसु धारयसे यस्मात्सर्वसौख्यप्रदायकम् । वसुन्धरा ततो जाता तस्मात्पाहि भयादलम् ॥२२
 चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद्यस्मादन्तं तवात्रले । अनन्तायै नमस्तुभ्यै^३ पाहि संसारकर्दमात्^४ ॥२३
 त्वमेव लक्ष्मीर्गेविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता । गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा ॥२४
 बुद्धिर्बृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता । विश्वं प्राप्य स्थिता यस्मात्ततो विश्वम्भरा मता ॥२५
 धृतिः क्षितिः क्षमा क्षोणी पृथिवी वसुधा मही । एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात् ॥२६
 एवमुच्चार्य^५ तां देवीं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । धरार्द्धं वा चतुर्भागं गुरवे प्रतिपादयेत् ॥२७
 अनेन विधिना यस्तु दद्यादेवीं धरां बुधः । पुण्यकाले च सम्प्राप्ते स पदं याति वैष्णवम् ॥२८

अलंकार, वस्त्र, माला चन्दन आदि से भूषित ब्राह्मणों को सर्वप्रथम अग्नि संस्थापन करके पश्चात् ब्रह्मघोष (वेदपाठादि), शंख, तुरुषी की मांगलिक धवनि और मंगल गान द्वारा पृथ्वी की उस प्रतिमा को बहाँ लाकर तिल से आच्छन्न वेदी पर उसका अधिवासन करे । अनन्तर अद्वारह प्रकार के धान्य, समस्त रस, और लवणादि समेत चारों ओर पूर्ण कलश की स्थापना करते हुए रेशमी वितान (चैदोवा), अदेक भाँति के फलब चित्रविचित्र वस्त्र तथा श्रीखण्ड (चन्दन) के टुकड़े से उसे सुशोभित करे । इस प्रकार की रचना के अनन्तर उस प्रतिमा के अधिवासन पूर्वक हवन और शांति कर्म सुसम्पन्न होने पर स्वयं यजमान श्वेत वस्त्र और माला धारण कर पुष्पाञ्जलि लिए पृथिवी की प्रदक्षिणा करे और उस पुण्य अवसर पर निम्नलिखित मंत्रों द्वारा प्रार्थना करें—वसुन्धरे ! समस्त देवों का भवन तुम्हीं हो अतः तुम्हें बार बार नमस्कार है और समस्त जीवों की धात्री हो अतः मेरी रक्षा करो । १४-२१ समस्त सौख्यप्रद वसु तुम धारण करती हो इसीलिए तुम्हें वसुन्धरा कहा जाता है, निर्भीक होकर मेरी रक्षा करो—अचले ! चतुर्मुख ब्रह्मा भी तुम्हारे अंत का पता नहीं लगा सके अतः तुम अनन्ता हो इस संसार कीचड़ से मेरी रक्षा करो मैं तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ । तुम्हीं गोविन्द की लक्ष्मी, शिव की गौरी, ब्रह्मा के पाश्वं में गायत्री, चन्द्र की ज्योत्स्ना एवं रवि की प्रभा हो । उसी भाँति बृहस्पति में बुद्धि मुनिगणों में मेधा होकर स्थित हो । विश्व का भरण पोषण करने के नाते तुम्हें दिश्वम्भर कहा जाता है । देवि ! धृति, क्षिति, क्षमा, क्षोणी, पृथिवी, वसुधा महीं आदि अपनी मूर्तियों द्वारा इस संसार सागर से मेरी रक्षा करो । २३-२६। इस प्रकार प्रार्थना करने के उपरांत उसे (मूर्ति को) ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए और पृथ्वी का आधा या चौथा भाग गुरु को अर्पित करे । इस विधान द्वारा पृथ्वी देवी का दान करने वाला विद्वान् मनुष्य पुण्य

१. श्रीखण्डशकलानि च । २. उदाहरेत् । ३. तस्मात् । ४. संसारसागरात् । ५. सधार्य ।

यदि कर्तुं न शक्नोति^१ पुण्येति बहुविस्तरम् । सस्थाप्य शोभने स्थाने महीमेव प्रदापयेत् ॥२९
विमानेनार्कवर्णेन किंकिणीजालमालिना । नारायणपुरं गत्वा कल्पत्रयमथावसेत् ॥३०
क्षीणपुण्यं इहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । दिजर्यी शत्रुदमनो बहुभृत्यपरिच्छदः^२ ॥३१
शतकोदयधिपः^३ शूरश्चक्रवर्ती महाबलः । सप्त जन्मानि दानस्य माहात्म्याद्वाज्यमाप्नुयात् ॥३२

द्वीपाविकर्विषसां विधिवहिधाय हैमीं महीं सुरमहीनिव विन्ध्यमध्याम् ।

लोकेशशम्भुशिवकेशवसंयुतां च प्रायच्छ पार्थ तव कि बहुनोदितेन ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णपुर्धिष्ठिरसंवादे

पृथिवीदानविधिवर्णनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशत्तमोऽध्यायः । १६५

अथ पट्प्रष्टयधिकशत्तमोऽध्यायः

हलपंक्तिदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानमत्यद्भुतं तव^४ । येन दत्तेन राजेन्द्रं सर्वदानप्रदो भवेत् ॥१
सर्वपापप्रशननं सर्वसौख्यप्रदायकम् । प्रयुक्तं हलपंक्त्या च सर्वदानफलप्रदम् ॥२
पंक्तिर्दशहला प्रोक्ता हलं स्यात् चतुर्वावम् । सारदांरमयान्याहर्हलानि^५ दश पण्डिताः ॥३

अवसर पर वैष्णव पद (विष्णुलोक) प्राप्त करता है। यदि पुण्य अवसर पर बहुविस्तार समेत पृथिवी दान करने में असमर्थ हो तो किसी शोभन स्थान पर केवल पृथिवी का ही दान करे। सूर्य के समान प्रकाशित और किंकड़ी जाल भूषित विमान द्वारा नारायणपुरी में तीन कल्प तक निवास प्राप्त होता है। पश्चात् पुण्य क्षीण होने इस लोक में धार्मिक राजा होता है, जो विजयी, शत्रुओं का दमन करने वाला एवं अनेक सेवकों से युक्त रहता है। सौ कोटि का अधिप, शूर, चक्रवर्ती और महाबलवान् राजा होकर सात जन्म तक उस दान के प्रभाव से वैसा ही राज्य प्राप्त करता रहता है। पार्थ! सविधान सुवर्ण मूर्ति उस पृथिवी का अवश्य दान करो। अधिक कहने से क्या लाभ। जो द्विपादि युक्त रहने से मध्य में विन्ध्य, लोकपाल, शिव, केशव आदि देवों से युक्त हो । २७-३३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णपुर्धिष्ठिर के संवाद में
पृथिवीदानविधि वर्णन नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त । १६५।

अध्याय १६६

हलपंक्तिदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र! मैं तुम्हें एक अद्भुत दान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान करने से समस्त दान का प्रदान हो जाता है। वह हल पंक्ति का दान समस्त पापों के विनाश पूर्वक समस्त सौख्य और सम्पूर्ण दान का फल प्रदान करता है। १-२। पण्डित वृन्दों ने काष्ठों के सारभाग का हल बनाना बताया है, ऐसे दश

१. पुण्यश्च । २. बहुवित्तपरिच्छदः । बहुवृत्तपरिच्छदः । ३. शतकोशधिपः । ४. परम । ५. सारदांरमयान्कुत्वा हलान्दश विचक्षणः ।

सौवर्गपट्टसंद्वरत्नवन्ति शुभानि च । यूनश्च बलिनो भव्यान्वज्जहीनान्स्वलंकृतान् ॥४
 वस्त्रकाञ्चनपुष्पैश्च चन्दनैदिग्धमस्तकान् । अभग्रान्योजयेतेषु लांगलेषु वृषाञ्छुभान् ॥५
 योद्वत्रणि युगलग्राहिनि^१ सदृशाणि च कारयेत् । प्रतोदकीलकाबन्धसर्वोपकरणान्विताम् ॥६
 एवं विधहते: कुर्यात्संयुक्तां हलपंक्तिकाम् । कर्कटं खेटकं च्चापि ग्रामं वा स्थमालिनम् ॥७
 निवर्तनशतं वापि तद्वृदं वा प्रकल्पयेत् । एवंविधां पर्वकाले दद्यात्रयतमानसः ॥८
 कार्तिक्यां चाथ दैशाख्यामुत्तरे वाऽयने तथा । जन्मर्त्त्वे गृहे वापि विषुवे वा प्रदापयेत् ॥९
 ब्राह्मणान्वेदसम्पन्नान्वयंगहीनानलंकृतान्^२ । श्रोत्रियांश्च विनीतांश्च हलसंख्यान्विमन्त्रयेत् ॥१०
 दशहस्तप्रभाणेन मण्डपं कारयेद्बुधः । पूर्वे^३ द्विकुण्डनेकं वा हस्तमात्रं सुशोभनम् ॥११
 तत्र व्याहृतिभिर्होमं कुर्यास्ते द्विजसत्तमाः । पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसेन यजेद्बुधः ॥१२
 पालाशः समिधस्तत्र ह्यान्यं कृष्णास्तिलास्तथा । अधिवास्य च तां पंक्तिं धान्यमध्यगतां^४ शुभाम् ॥१३
 ततः सर्वसमीपे तु स्नातः शुक्लाम्बरः शुचिः । हलपंक्तिं योजयित्वा यजमानः समाहिताः ॥१४
 तूर्यशाङ्कनिनादैश्च ब्रह्मघोषैः सुउष्कलैः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥१५
 यस्माद्वेवगणाः सर्वे हले तिष्ठन्ति सर्वदा । वृषस्तन्धे संनिहितास्तस्माद्भूतिः शिवेस्तु मे ॥१६
 यस्माच्च भूमिदानस्य^५ कलां नार्हन्ति षोडशीम् । दानान्वन्यानि मे भक्तिर्धर्मं चास्तु दृढा सदा ॥१७
 एवमुक्ते ततः पंक्तिं प्रेरयेयुर्द्विजोत्तमाः । बीजानि सर्वरत्नानि सुवर्णं रजतं तथा ॥१८

हल की एक पंक्ति होती है और चार गो (बैल) जिसमें जोते जाँगे उसे हल कहा जाता है । सुवर्ण के पट्टा लगा कर जो रत्न भूषित और शुभ रहता है उसमें युवा और बली बैल जोतना चाहिए, जो दोष हीन अलंकृत, वस्त्र, काञ्चन, पुष्प और चन्दन से चर्चित मस्तक हो । उन शुभ बैलों को हल के पास लाकर जूआ उनके कन्धे पर रखे और पवित्र (जूआ और हल में बाँधने की) रस्सी से दृढ़ बन्धन करे । जो प्रतोद (चाबुक) और कील बंधन आदि साधनों से मुक्त हो । इस प्रकार के हलों द्वारा हल की पंक्ति बनाते हुए उसे समेत कर्कट, खेटक अथवा हरे भरे धान्यों समेत गाँव में किसी पर्व काल में अपित करे । कातिक पूर्णिमा, दैशाख की पूर्णिमा, उत्तरायण सूर्य जन्म नक्षत्र, प्रहण, और विषुव काल में हल की संख्या के अनुसार वैदिक विदान् ब्राह्मणों को, जो वृंगहीन, अलंकृत शून्य, श्रोत्रिय, और विनीत हों, निर्मंत्रित करे । दश हाथका विस्तृत मण्डप का निर्माण कर उसके पूर्व दिशा की ओर दो या एक एक हाथ का शोभन कुण्ड बताये, जिसमें मेघ, आदित्य और रुद्र के लिए पायस की आहुति प्रदान करे । पलाश की समिधा, धृत और कृष्ण तिल के हवन के अनन्तर उस शुभ पंक्ति को धान्य के मध्य में अधिवासित करे । ३-१३। पश्चात् स्नान कर इवेत वस्त्र धारण किये पवित्रता पूर्ण यजमान सर्व के समीप जाकर हल पंक्ति को एक में आबद्ध करे । और तुर्ळही, शंख की ध्वनि, ब्रह्मघोष, पूर्ण इन मंत्रों का पुष्पांजलि लिए उच्चारण करे—जिस कारण समस्त देवगण हल में निवास करते हैं और बैल के स्कन्ध में सन्निहित रहते हैं उसी नाते शिव की भक्ति मुझमें स्थायी हो । जिस कारण भूमि दान की सोलहवीं कला के समान भी अन्य दान नहीं है उसी नाते मुझमें भी धर्मभक्ति सदैव के लिए दृढ़ हो । १४-१७। इस प्रकार कहने के उपरान्त द्विजगण उस पंक्ति

१. धूपलग्नानि । २. स्वलंकृतान् । ३. कारयेत्कुण्डम् । ४. धनमध्यगतं शुभाम् । ५. कृषिदानस्य ।

स्वयं पश्चाद्गुले लग्नो विप्रहस्तेषु निर्विषेत् । यायाश्विवर्तनं यावत्ततस्तु विरमेद्युधः ॥१९
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विप्राणां प्रतिपाद्य च । सदक्षिणां विधानेन प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥२०
 अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति । एकविंशत्कुलोपेतः स्वर्गलोके महीयते ॥२१
 सप्तजन्मसु दारिद्र्यं दौर्भावं व्याध्यस्तथा । न पश्यति च भूमेस्तु तथैवाधिगतिर्भवेत् ॥२२
 दृष्ट्वा तदीयमानं पुं दानमेतद्युधिष्ठिर । आज्ञमनः कृतात्पादानमुच्यते नात्र संशयः ॥२३
 दानमेतत्प्रदत्तं हि दिलीपेन यथातिना । शिविना निमिना चैव भरतेन च धीमता ॥२४
 तेऽद्यापि दिवि सोदनते दानस्यात्प्रय प्रभावतः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दानरोतन्युपोतेतम् ॥२५
 दातव्यं भक्तियुक्तेन स्त्रिया वा पुरुषेण वा । यदि पांकर्त्त विद्येत पञ्च वा चतुरोऽथ वा ॥२६
 एकमप्युक्तविधिना हत्तं देयं विचक्षणैः ॥२७

ये सन्ति लाङ्गलमुखोत्थरजोविकारा यावन्ति तद्गतधुरन्धर रोमकाणि ।
 तावन्ति शङ्खरपुरे त्रियुगानि तिष्ठेत्पंक्तिप्रदानमिह यत्कुरुते मनुष्यः ॥२८

युक्तां वृ॒बैरतिबलै॒हृतपंक्तिज्ञेता पुण्येति । भक्तिसहितान्दिजपुङ्गवेभ्यः ।

यच्छन्ति ये सुकृतिनो वसुधासमेतां ते भूभुजो भुवमुपेत्य^३ भवन्ति भव्याः ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

हलपंक्तिदानविधिवर्णनं नाम षट्षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः । १६६

बीज, समस्त रत्न, सुवर्ण का संचालन करते हुए हल के पीछे चलकर ब्राह्मणों के हाथों द्वारा बीज वपन करें और जब तक उसका निवर्तन होता रहे, तब तक विराम किये रहे । अनन्तर प्रदक्षिणा करके दक्षिणा समेत उसे सविधि ब्राह्मणों को अर्पित कर नमस्कारपूर्वक विसर्जन करे । इस विधान द्वारा इसका दान करने वाला प्राणी अपनी इक्कीस पीढ़ी समेत स्वर्ग लोक में पूजित होता है । सात जन्म तक उसे दारिद्र्य दुर्भाग्य और व्याधि उत्पन्न नहीं होती है अपितु भूमि का अधिति होता है । युधिष्ठिर ! दान देते समय इसे देखने वाला भी पुरुष आजन्म के पाप से मुक्त हो जाता है इसमें सदेह नहीं । १८-२३। राजादिलीप, यथाति, शिवि, निमि, और बुद्धिमान राज भरत ने इस दान कर्म को मुसम्पन्न किया था, जिसके प्रभाव से वे सब आज भी स्वर्ग में आनन्द मग्न हो रहे हैं । नपोतम ! इस लिए स्त्री, पुरुष सभी को भक्ति पूर्वक इसका दान अवश्य करना चाहिए । यदि पंक्ति दान किसी कारण वश न कर सके तो पाँच, चार या एक हल का ही दान अवश्य करे । हल के मुख (फल) द्वारा निकली हुई मिट्टी के रेजकण और धुरंधर बैलों के लोम संख्या के समान वर्ष तीन युग तक शंकर पुरी में वह पंक्ति का दानी मनुष्य निवास करता है । इस प्रकार अत्यन्त बलवान् बैलों से युक्त उस हल पंक्ति पृथ्वी समेत का दान पुण्य अवसरपर भक्ति समेत श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अर्पित करने वाला पुण्यात्मा मनुष्य इस भूतल में भव्य राजा होता है । २४-२९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
 हलपंक्ति दान विधिवर्णन नामक एक सौ छाठवाँ अध्याय समाप्त । १६६।

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

आपाकदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

तन्मे कथय देवेश येन दत्तेन मानवः । बहुपुत्रो बहुधनो बहुभृत्यश्च जायते ॥१
श्रीकृष्ण उवाच

पुरा भारत वंशेऽस्मिन् राजासीद्वयवाहनः । पितृपैतामहं तेन प्राप्तं राज्यमक्षण्टकम् ॥२
न तस्य राज्ये विध्वंसी न वैरज्जनितं भयम् । शरीरोत्थमहाव्याधिर्वैदान्तरदायकः ॥३
तस्यैवं कुर्वतो राज्यं पूर्वकर्मार्जिताशुभात् । नास्ति भृत्यो भारसहः सर्वराज्यधुरधरः ॥४
न पुत्रः प्रियकृत्कश्चिन्मन्त्रो भवुराक्षरः । न मित्रं कार्यकरणे समर्थो न सुहृत्या ॥५
न भोज्यसमये प्राप्ते भोजनं सार्वकामिकम् । न पूण्यफलसंयुक्तं ताम्बूलं^१ वसनानि च ॥६
न धनं जनसःबन्धकारको रत्नसंचयः । तस्यैवं कुर्वतो राज्यमव्याहृतमचेष्टितम्^२ ॥७
अथैकस्मिन्दिने विप्रः पिप्लादोऽतिविश्रुतः । आजगाम महायोगी याज्ञः पार्ख्यं महाद्युतिः ॥८
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा राजपत्नी^३ शुभावती । पाद्याद्यर्घसिनदानेन सर्वथा तमपूजयत् ॥९

अध्याय १६७

आपाक (मृत्तिका-भाण्ड) दानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवेश ! मुझे वह दान बताने की कृपा कीजिये, जिसके दान करने से मनुष्य बहुपुत्र अतुल सम्पत्ति, और अनेक सेवक गण प्राप्त करता है ! १

श्रीकृष्ण बोले—भारत ! प्राचीन समय में इस वंश में हृव्यवाहन नामक राजा था, जो पितृ-परम्परा प्राप्त निष्कण्टक राज्य का उपभोगी हुआ था । उसके राज्य काल में प्रजाओं आदि में न किसी वस्तु का विध्वंस होना देखा जाता था, न वैरज्जनित भय था, और न शरीर में किसी प्रकार की व्याधि ही कभी हुई थी । किन्तु इस प्रकार राज्य का उपभोग करते हुए भी जन्मान्तरीय अशुम कर्मों के कारण उनके कोई भारक्षम सेवक नहीं जो समस्त राज्य के भार को अपनाये सहयोग दे सके, प्रिय कर्म करने वाला पुत्र भी नहीं, मधुराक्षर (मंत्रपद) वाला कोई मंत्री नहीं था । उसी प्रकार कार्य कुशल कोई मित्र हितैषी भी नहीं था । भोजन के समय उन्हें यथारचि का भोजन भी नहीं मिल रहा था, पूण्यफल (सुपाणी) आदि युक्त उत्तम ताम्बूल, वसन, मनुष्यों में भले जोग रखने का मुख्य कारण रत्न संचय भी नहीं था । उनके इस प्रकार की अनिच्छा पूर्वक राज्य करते हुए एक दिन पिप्लाद नामक प्रस्त्यात एवं महायोगी तथा महाद्युति तेजस्वी ब्राह्मण का राजा के यहाँ आगमन हुआ । उन्हें पाये हुए देखकर शुभाती नामक उनकी रानी ने अर्ध्य, पाद्य आसन आदि के प्रदान द्वारा उनकी अर्चा की । २-९। पश्चात् कथा के समाप्त होने पर रानी ने मुनि से कहा—भगवन् ! द्विज यद्यपि मेरे राज्य में

१. ताम्बूलसेवनम् । २. तथा । ४. अव्याहृतविचेष्टितम् ।

ततः कथां ते कस्मिंश्चित्तमुवाच शुभादतोऽि । भगवन् राज्यमेतत्तः सर्वबाधाविवर्जितम् ॥१०
कस्मान्नभृत्याः पुत्रा वा मन्त्रिभिन्नादिकं द्विज । भोगावप्तिर्त च तथा सर्वलोकातिशायिनी ॥११

पिप्पलाद उदाच

यद्येन पूर्वविहितं तदसौ॑ प्राप्नुते फलम् । कर्मभूमिरियं राज्ञि नातः शोचितुमहेसि ॥१२
न तत्कुर्वन्ति राजानो न दायादा न शत्रवः । न बान्धवा न मित्राणि यद्येन न पुरा कृतम् ॥१३
तस्माद्भृवद्भृयद्वृत्तं प्राप्तं तद्राज्यमुत्तमम् । भृत्यमित्रादिसम्बन्धो न इतः प्राप्यते कुरुतः ॥१४

शुभावत्युवाच^२

इदानीसेव दिप्रर्षं कस्मात्तन्नोपदिष्यते । येन मे बहवः पुन्ना धनं भृत्या भवन्ति वै ॥१५
मन्त्रो वा सिद्धयोगो वा व्रतं दानमुपोषितम् । कथयस्दामलसे येन सम्पद्यते सुखम् ॥१६
ततः स कथयानास पिप्पलादो द्विजोत्तमः । आपाकाख्यं महादानं सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥१७
श्रद्धया कुरुशार्दूलं नारी वाप्यद्वा पुमान् । येन दत्तेन भाग्यानां बहुनां भाजनं भवेत् ॥१८
तच्छ्रुत्वा स ददौ राजाऽपाकाख्यं दानमुत्तमम् । लेभे पुत्रान्पशून्भृत्यान्मन्त्रिभिन्नमुद्भज्जननः ॥१९

श्रीकृष्ण उदाच

आपाकाख्यं महादानं कथयामि युधिष्ठिर । दत्तेन येन कामानां पुमान्भवति भाजनम् ॥२०
ग्रहताराबलं लब्धवा भार्गवं^१ पूजयेच्छुभम् । वासोभिर्भूषणैश्चैव पुष्पैरगस्तन्दनैः ॥२१

किसी प्रकार की बाधा नहीं है तथापि न जाने क्यों सेवक गण, पुत्र, मंत्री एवं मित्रादि कोई नहीं है और हमलोगों का राज्योपभोग भी अत्यन्त प्रशस्त नहीं है । १०-११

पिप्पलाद बोले—रानी ! पूर्वजन्म में जिसने जैसा किया है वही फल उसे प्राप्त होते हैं, क्योंकि यह कर्म भूमि है अतः इस विषय में किसी प्रकार का शोक न करना चाहिए । जिसने पूर्व जन्म में जो कुछ नहीं किया है, राजा, उस बान्धव, शत्रु और मित्र उसे पूँछा नहीं कर सकते । इसलिए आप लोगों से पूर्वजन्म में जो दिया उसका फल यह उत्तम राज्य प्राप्त हुआ है और सेवकादि दिया नहीं तो वह कहाँ से मिल सकता है । १२-१४

शुभावती बोली—विप्रर्षे ! इस समय आप उसका उपदेश हमें क्यों नहीं दे रहे हैं जिसके द्वारा हमें अनेक पुत्रों समेत अतुल धन सेवाकादि की प्राप्ति हो सकती है । अमलमते ! मंत्र, सिद्ध योग, व्रत दान या उपवास आदि कोई हो, जिससे सुख प्राप्त हो सके, बताने की कृपा करें । तदुपरांत द्विजोत्तम पिप्पलाद ने उहें एक आपाक नामक महादान बताया, जो समस्त भाँति की समृद्धि प्रदान करता है । कुरुशार्दूल ! स्त्री पुरुष कोई भी भक्ति श्रद्धा पूर्वक जिसके सुसम्पन्न करने पर अनेक प्रकार की भाग्यों का वह भाजन होता है । उसे सुनकर राजा ने उस आपाक नामक परमोत्तम दान को सुसम्पन्न किया, जिससे उन्हें पुत्र, पशु, सेवकगण, मंत्री भिन्न एवं हितैषी आदि की प्राप्ति हुई । १५-१९

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें उस आपाक नामक महादान को बता रहा हूँ जिसके प्रदान करने से मनुष्य कामनाओं (की सफलता) का भाजन होता है । अपने गृह, तारा आदि का बल भली

१. हि । २. अस्मै । ३. भानुमत्युवाच । ४. मुनेः । ५. कुलालभित्यर्थः ।

कुर्यात्तथैव सम्भानं यथा तुष्टोऽभिज्ञायते । कुरुष्व त्वं मे भाण्डानि गुरुणि च लघूनि च ॥२२
 मणिकादीनि शुभ्राणि स्थात्यश्च सुमनोहराः । घटकाः करकाश्चैव गलत्यः द्रुण्डलानि च ॥२३
 शरावादीनि पात्राणि भाण्डमुच्चावचं बहु । सम्पादय महाभाग विश्वकर्मा त्वमेव हि ॥२४
 भार्गवोऽपि प्रप्तनेन नानाभाण्डान्वितं शुभ्रम् । आपाकं कल्पयेद्विष्वं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥२५
 सहस्रमेकं भाण्डानां स्थापयित्वा विचक्षणः । सन्ध्याकाले ज्वलित्वा^१ तु द्याव्यापि हुताशनम् ॥२६
 रात्रौ जागरणं कुर्यादगीतमङ्गलनिस्वनैः । ततः प्रभाते विमले ज्ञात्वा निर्वापितं शनैः^२ ॥२७
 रक्तवस्त्रैः समाच्छाद्य^३ पुष्पमालाभिरर्चयेत् । यजमानस्ततः स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥२८
 हेमरौप्याणि भाण्डानि ता ग्रलोहमयानि च । परितः स्थापयित्वा च स्वशक्त्या तपानि षोडश ॥२९
 पूजयित्वा प्रयत्नेन कृत्वा चारु प्रदक्षिणाम् । द्वात्मानान्पूजयित्वा च भार्गवं पूज्य यत्नतः ॥३०
 नार्यश्राविधदास्तत्र समानीय प्रपूज्य च । प्रदक्षिणं ततः कृत्वा सन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥३१
 आपाकब्रह्मरूपोऽसि भाण्डानीमानि जन्तवः । प्रदानाते प्रजापुष्टिः^४ स्वर्गश्रास्तु समाक्षयः^५ ॥३२
 भाण्डरूपाणि यान्यत्र कल्पितानि मया किल । भूत्वा सत्यात्ररूपाणि उपतिष्ठन्तु तानि मे ॥३३
 (इति दानमत्रः)

या च यद्भाण्डमादत्ते तस्यैतद्वापयेत्ततः । स्वेच्छया चैव गृह्णातु न निवार्यस्तु काश्चन ॥३४
 अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति । विश्वकर्मा भवेतुष्टस्तस्य जन्मत्रयं नृप ॥३५

भाँति देखकर शुभ मुहुर्त में वस्त्र, आभृषण, पुष्प, अगुह, चन्दनादि द्वारा सम्मान पूर्वक उसकी अर्चना। करे जिससे वह हर्ष से गदगद हो जाये । अनन्तर कहे कि—मेरे लिए तू छोटे बड़े मिट्टी के पात्र—स्वच्छ, मणिक, सुमनोहर स्थाली घटक, करक, गलत, शराद (कोरा), आदि पात्र समेत अनेक छोटे बड़े पात्र दिनाने की कृपा करो । महाभाग ! तुम विश्वकर्मा हो, अतः इस काम का सम्पादन अवश्य करो । कुम्हार को भी चाहिए तदनन्तर प्रयत्न पूर्वक अनेक भाँति के शुभ पात्र, जो दिव्य आपाक होता है, सविधि और कुशलता पूर्ण बनाये वह बुद्धिमान् (कुम्हार) दिन में एक सहस्र पात्रों के निर्माण के उपरांत संध्या समय उसमें अग्नि प्रदान करे । गीत एवं मांगलिक ध्वनि द्वारा रात्रि व्यतीत करने पर निर्मल प्रभात के समय उसे पका और अग्नि को शांत समझ कर रक्त वस्त्र से आच्छादित करते हुए पुष्प माला आदि से अर्चा करे । पश्चात् यजमान स्नान, श्वेत वस्त्र धारण किये पवित्रतः पूर्ण सुवर्ण, चाँदी, ताँबे, लोहे आदि के यथाशक्ति बनाये हुए उन सोलह पात्रों को चारों ओर स्थापित कर पूजनोपरांत प्रदक्षिणा पूर्वक ब्राह्मणों और उस कुम्हार की पूजा करे । उसमें सधवा स्त्रियों को भी लाकर पूजा करना चाहिए । प्रदक्षिणा पूर्वक इस मंत्र द्वारा उसकी असमर्थता करे—आपाक ! तुम ब्रह्मरूप हो, जन्तुगण भांड (पात्र) रूप हैं, तुम्हारे दान करने प्रजा (संतान) पुष्टि पूर्वक मुझे अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो । मैंने जिन भाण्डों की कल्पना की है वे सत्यात्र रूप में मुझे प्राप्त हों । २०-३३। अनन्तर जो स्त्री जिस पात्र को लेना चाहे उसे वही देना चाहिए विशेषतः निर्वाध रूप से सभी स्त्रियों को उसे लेने देवे । नृप ! इस विधान द्वारा जो यह दान सुसम्पन्न करता है उस पर विश्वकर्मा सन्तुष्ट होते हैं जिससे तीन जन्म तक वह स्त्री अतुल सौभाग्य, ग्रह, समस्त गुण युक्त

१. जपित्वातु, स्वपित्वा तु । २. स्वत्नैः । ३. समाच्छाद्य । ४. तेजसापुष्टिः । ५. तथा सदा ।

तारी च दत्तासौभाग्यमतुलं प्रतिपद्यते । गृहं सर्वगुणोपेतं^१ भूत्यमित्रजनैर्वृतम् !!३६
अवियोगं^२ सदा भर्त्रा रूपं चानुत्तमं लभेत् : भूदानमेतश्चिदिष्टं प्रकारेण तवानघ ॥
भिद्यतेबहुभिर्भेदै भूमिरेषा^३ नरेश्वर ॥३७

निष्पाद्य भाण्डनिच्योच्चतरं प्रयत्नादापाकदानमिह या कुरुते वरस्त्री^४ ।

सा पुत्रपौत्रमशुवृद्धिसुखानि भुक्तवा प्रेत्य स्वभृत्यसहिता सुखिनी सदास्ते ::३८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंनादे

आपाकदानविधिवर्णनं नाम सप्तशङ्क्यधिकशततमोऽध्यायः । १६७

अथाभृष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

गृहदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उदाच

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ज्ञानविज्ञानपारग । गृहदानस्य माहात्म्यं विधिं इदं^५ विदांवर ॥१
श्रीकृष्ण उदाच

न गार्हस्थ्यात्परो धर्मो नास्ति दानं गृहात्परम् । नानृतादधिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणात्परः ॥२

धनधान्यसमायुक्तं कलत्रापत्यसंकुलम् ॥३

गोगजाघगणाकीर्णं गृहं स्वर्गाद्विशिष्यते । यथामातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ॥४

सेवक, और मित्र आदि अनेक हितैषी प्राप्त करती है। उसे पति का सदा संयोग और उत्तम गति की प्राप्ति होती है। अनघ, नरेश्वर ! प्रकारान्तर से मैंने तुम्हें यह भूमि दान बता दिया क्योंकि इसका अनेक भेद बताया गया है। इस प्रकार भाण्ड समूहों को सप्रयत्न बनाकर आपाक दान करने वाली स्त्री पुत्र, पौत्र, पशु वृद्धि, आदि सुखों के अनुभव करती हुई, अपने पति के सहित सदैव सुखिनी रहती है। ३४-३८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सवाद में
आपाक दान विधि वर्णन नामक एक सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त । १६७।

अध्याय १६८

गृहदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—ज्ञानीप्रवर ! आप समस्त शास्त्रों के अर्थतत्त्वों को भली भर्ति जानते हैं, और ज्ञानविज्ञान के पारगामी हैं, अतः मुझे गृह प्रदान का महत्त्व बताने की कृपा करें । १

श्रीकृष्ण बोले—गृहस्थी के गार्हस्थ्य (धर्म) से बढ़कर कोई धर्म, गृहदान से श्रेष्ठ कोई अन्य दान, असत्य बोलने से अधिक अन्य कोई पाप और ब्राह्मण से अन्य कोई पूज्य नहीं है। क्योंकि धन धान्य पूर्ण, पुत्रादि परिवार से भूषित, और गौ, गजराज, एवं घोड़े से व्याप्त रहने वाला गृह स्वर्ग से अधिक

१. सर्वजनोपेतं भूत्यमन्त्रिजनैर्वृतम् । २. अवियोगं च पत्युर्वा रूपं चानुत्तमं लघु । ३. चेह विविधैः ।
४. च साध्वी । ५. विधविदाम्बर ।

एवं गृहस्थमाश्रित्य वर्तयन्तीतराश्रमाः^१ ; धर्मशार्थश्च कामश्च मित्राणि प्रथितं यज्ञः ॥५
 प्राप्तकामैर्नरैः पार्थ सदा सेव्यो गृहाश्रमः^२ । न गृहेष विना! धर्मो नार्थकानौ सुखं न च ॥६
 न लोके पक्तिर्न यशः प्राप्तते त्रिवैशूरपि । न तत्स्वर्गं नापवर्गं न तत्केनोपमीयते ॥७
 प्रसार्य दादौ यद्वात्रौ स्वगृहे स्वपतं सुखम् । दिनानि नास्य गज्यन्ते नैनभाहुर्महाशनम् ॥८
 अपि शाकं पचानस्य स्वगृहे परमं सुखम् । इति मत्वा महाराज कारपित्वा सुशोभनम् ॥९
 भवनं^३ भ्रातृणे देयं भव्यभूतिमभोप्सताऽ^४ । कारपित्वा दृढस्तम्भं शुभपञ्चेष्टकामयम्^५ ॥१०
 शुभं कमङ्गठृष्ठाभं भाभास्तिदिग्न्तरम् । सुधानुलिप्तं गुप्तं च सुखशालाविराजितम् ॥११
 दद्यादनन्तफलदं^६ शैववैष्णवयोगिनाम् । प्रतिश्वये तु विस्तीर्णे कारिते सजले घने ॥१२
 दीनानाथजलार्थाय इतं किं नकृतं भवेत् । कारपित्वा गृहान्पश्चादृत्वपुद्वार्कसंख्या ॥१३
 कुडचस्तम्भदवाक्षाढ्यान्विचित्रान्बहुभूमिकान् । सप्राकारप्रतोलीकान्याटार्गलयन्वितान् ॥१४
 सुधाधवलितान् रम्यान्विस्तीर्णांगवाटिकान्^७ ; प्रवेशनिर्गमयुतान्समासनजलाशयान् ॥१५
 लोहोपस्करसम्पूर्णास्तान्नोपस्करसंयुतान् । स्वर्णोपस्करशोभाढ्यान् रौप्योपस्करसंकुलान्^८ ॥१६

महत्त्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार भाता के आश्रित रहकर सभी जीव जीवित रहते हैं, उसी भाँति गृहस्थ आश्रम के आश्रित रहकर अन्य सभी आश्रम सजीव बने रहते हैं। पार्थ ! गृह में रहकर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मित्र और प्रब्यात यश की प्राप्ति करता है, अतः कामनाओं की सफलता वाले मनुष्य को गृहस्थाश्रम में सदैव बने रहना चाहिए। क्योंकि बिना गृह के धर्म अर्थ काम, सुख, लोक पक्ति, और यश की प्राप्ति देवों को भी नहीं हो सकती। इसलिए स्वर्ग और मोक्ष में उसकी कोई उपमा नहीं है। रात्रि सभय अपने घर में पैर फैलाकर शयन करते वालों को जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह अन्य आश्रमी को कभी नहीं प्राप्त हो सकता। इस आश्रम के (सुख के) दिन भी नहीं गिने जा सकते; और इसे (गृह को) महाशन (महाभोजी) भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि अपने घर में शाक पका कर खाने वाले को परम सुख की प्राप्ति होती है। महाराज ! अतः ऐसा समझ कर भव्य ऐश्वर्य के इच्छुक को एक युन्दर भवन का निर्माण करा कर उसे ब्राह्मण को सर्पित करना चाहिए, जो दृढ़ स्तम्भों और शुभ तथा पकी हुई ईटों द्वारा निर्मित हो। २-१०। शुभ, कछुए की पीठ के समान, उसकी आत्मा से दिग्दिग्न्त सुशोभित हो, सुधा धवलित (चूना से पुता हुआ), गुप्त, और सुख शाला (आराम वन) भूषित गृह दान करने पर शैव, वैष्णव और योगियों का अनन्त फल प्राप्त होता है। नूतन मेघ (की धारा) से सुरक्षित रहने के लिए उन दीन अनाथों के हितार्थ विस्तीर्ण कमरे का गृह बनाना चाहिए। कृत्विजों के दानार्थ रुद्र (११) और अर्क सूर्य (१२) की संख्यानुसार उस प्रकार के गृहों का निर्माण कराकर जिसमें दीवाल, स्तम्भ, गवाक्ष (झरोंखे) लिंडकियाँ की रचना विचित्र ढंग से की गई हो, भूमिका अधिक भाग (मैदान के रूप) में हो, सुन्दर आकार (खांडि, चहार दीवारी,) गली और सुन्दरमार्ग, कपाट (किवाड़), अगर्ल (किनांड़ रोकने के लिए उसके पीछे लगा हुआ काष्ठ) से नियत्रित, सुधाधवलित, रम्य, विस्तृत प्रांगण और उपवाटिका से भूषित, प्रवेश करने निकलने की सुगमता, बावली, कूप आदि से युक्त, लोहे की वस्तुओं से पूर्ण ताँबें के

१. आसाद्य । २. वर्तयन्ते तथाश्रमाः । ३. गृहाश्रमी । ४. गृहं सुव्राह्मणे । ५. भार्या भूमिमभीमिता ।
६. पक्वेष्टकामयं नवम् । ७. दानं तत्कलदम् ।

रत्नोपस्करसंयुक्तान्कांस्योपस्करमण्डितान् । आरकूटत्रिपुरीसदा नोपस्करवज्जितान् ॥१७
 वंशोपस्करसकीर्णान्काष्टोपस्कर^१ वृहितान् । मृष्मयोपस्कराकीर्णान्वस्त्रोपकरणान्वितान् ॥१८
 धर्मोपस्करसम्भारशरणवल्कलराजितान्^२ । राजितान्स्तुष्टपाषाणैः सर्वोपस्करभूषितान्^३ ॥१९
 सप्तधातुमयं भाण्डं यत्तद्रत्नसमुद्घवम् । चर्मकाष्ठमहार्भाण्डं नववस्तुमयं तथा ॥२०
 गोमहिष्यध्वृवभ्रेष्यवेश्यागणान्वितान् । क्षेत्रारामजलासन्नान्काम्यान्हर्म्यवराञ्छुभान् ॥२१
 सम्पूर्णान्त्सर्वधान्यैस्तु धृतैलगुडादिभिः । तिलतन्दुलशालीक्षुमुद्गोधूमसर्पैः ॥२२
 निष्पावाढयच्छण्डकुलत्थाणुमसूरकैः । कंगुमाषयवाढच्छाकवृताकपूरितान् ॥२३
 लदणार्द्वकखर्जुरद्राक्षाजीरकधान्यकैः । हिंगुंकुमकर्पूरस्तानद्रव्यैः सचन्दनैः ॥२४
 धूपोपस्करपर्युप्तात्मूलीगण्डोपवधानकैः । चुल्लीच्छेदनमन्थानभद्रासनकगुच्छकैः^४ ॥२५
 पिठोलूखलस्थालीशूर्पदर्पणपत्रकैः^५ । मुशलासिकृपाणीषुदण्डकोदण्डमुद्गरैः ॥२६
 गुहाटवाटकादर्वीट्टपल्लोष्टकहस्तकैः । चात्रकांशुकलोहादिदीप्तमन्थनिकादिभिः ॥२७
 कण्डणी पेषणी चुल्ली उदकुम्भी प्रमार्जनी । मञ्जूषाकोष्ठका सन्दीकम्बलैस्तन्तुरान्कवैः ॥२८
 इत्येवमादिभिः पूर्णान्गृहान्दद्याह्विजातिषु । कर्तुश्वंद्रबलोपेते स्थिरनक्षत्रसंयुते ॥२९
 शुभेऽहि विप्रकथिते दानकालः प्रशस्यते । एवं सम्भृतसम्भारो यजमानः स्वयं द्विजान् ॥३०

साधनों से युक्त, सुवर्ण के साधनों से सुशोभित, चाँदी के साधनों से मण्डित, रत्नों के साधनों से संयुत, काँसे के साधनों से अलंकृत, पीतल, रांगा एवं सीसे के साधनों से रहित, कहीं-कहीं बाँस के साधनों से युक्त, काष्ठ के साधनों से परिवर्द्धित, मृतिका के साधनों से संकीर्ण, वस्त्र साधनों से पूर्ण, धर्म के साधन भारों की रस्सियाँ, तृण और पापाणों से रजित तथा समस्त साधनों से युक्त हो और जिसमें सातों धातुओं के पात्र, रत्नादिपात्र, चर्म, काष्ठ के पात्र और नूतन वस्तुएँ परिपूर्ण रहें । गौ, भैस, अश्व, वृष (बैल), द्रूत तथा वेश्यागणों से भ्रूषित, क्षेत्र (खेत), बगीचे जलाशय, रमणीय श्रेष्ठ कमरे, सभी भाँति, धान्य, धृत, तेल, गुड़, तिल, चावल, सवि चावल, ऊंख, मूंग, गेहूँ, सरसों से सम्पूर्ण, सूपादि, अरहर, चना, कुलथी, आणु, मसूर, कंगु (काकुनि), माष (उरदी), जवा आदि, शाक, भाँटा आदि से युक्त, नमक, आदि, खजूर, द्राक्षा (किसमिस), जीरा, धनियाँ, हींग, कुंकुम, कपूर, चन्द आदि स्वान्तर पदार्थ से संयुक्त, धूप, गदा तकिया, चुल्ली (चूल्हा) छेदन (साग बनाने के लिए चाकू, पहसुल आदि), मथानी, सौन्दर्य पूर्ण एवं कल्याण मूर्ति आसन, गुच्छ, पिठर, ओखली, बटुली, सूप, दर्पण, मुसल, तलवार, छुरी, (कपट), धनुष-बाण, दंड मुद्गर, गृह वाटिका, दर्वी (करछी) पत्थर की सिल बट्टा, अंशुक लोहादि से दीप्त मथानी आदि, कडणी (कापी), चक्की, चूल्हा, चलधय और उसका चबूतरे की भाँति स्थान, झाड़, मंजूषा (सन्दूक), और कमरे के भीतरी भाग, कुम्सियों और ऊनी कम्बलों से युक्त हों इस प्रकार के साधनों से सम्पन्न गृहों को द्राह्याणों के लिए अपित करना चाहिए । १-२८। दानी को अपने चन्द्रबल समेत स्थिरनक्षत्र युक्त किसी शुभ पुण्य

-
१. वंशोपस्करसम्पूर्णाकाष्ठोपस्करसंहिताम् । २. धर्मोपस्करसंयुक्तान् । ३. सुवर्णोपस्करान्वितान् ।
 ४. चर्मकाष्ठमहीभारं दर्त्तं वस्त्रमयं तथा । ५. सप्तधान्यैस्तु । ६. चुल्लीच्छेदनमन्थानभद्रासनकुच्छकैः ।
 ७. पिठोलूखलस्थालीशर्पदर्पणज्ञगैः ।

कुलशीलसमायुक्तान्गृहसंख्यान्निमन्त्रयेत् । अधीतदेवाञ्छास्त्रजान्युराणस्मृतिपारगान् ॥३१
 गृहस्थर्थमनिरताञ्छान्तान्दान्तःञ्जितेन्द्रियान् । अलंकृत्य सपत्नीकान्वासोभिरथ पूजयेत् ॥३२
 सुगन्धिन्नाधरान्कृत्वा शान्तिकर्मणि योजयेत् । गृहाङ्गे कारयित्वा कुण्डमेकं समेखलम् ॥३३
 ग्रहयज्ञः प्रकर्तव्यस्तुष्टिपुष्टिकरः सदा ! रक्षोद्घानि च सूक्तानि पठेयुब्रह्मणास्ततः ॥३४
 वास्तुपूजा प्रकर्तव्या दिक्षु भूतबलिं क्षिपेत् । ततः^१ उप्याहयोषेण ब्राह्मणांस्तेषु वेशमसु ॥३५
 प्रवेशपित्वा शश्यात्मु सभार्यानुपवेशयेत् । यजमानस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बदरधरः शुचिः ॥३६
 यद्यस्य विहितं पूर्वं तत्तस्य ग्रहित्पादयेत् । इदं गृहं गृहागत्वं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥३७
 तत्र विप्रप्रसादेन नमास्त्वभिमतं फलम् । एवमेकैङ्गां दत्त्वा^२ प्रणिपत्य शमस्ययेत् ॥३८
 स्वस्तीति ब्राह्मणैर्वाच्यं कोऽग्नादिति च पूजितैः । गृहोपकररौप्त्यस्तुल्या दक्षिणा भवनं विना ॥३९
 उपदेष्टारमापृच्छ्येत्तन्मूलत्वान्महर्षयः । स्वयं तान्गृजयित्वा तु ततः स्वभवनं व्रजेत् ॥४०
 दक्षादनेन विधिना गृहमेकं ब्रह्मणि । न संख्यानियमः कार्यः शक्तिरत्र नियामिका ॥४१
 शीतवातातपहरं दत्त्वा तृणकुटीरकम् । इष्टान्कानानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गं महीपते ॥४२
 किं पुनर्बहुनोक्तेन सर्वोपस्करभूषिताम् । अत्यन्तसुखलुब्धेन दत्त्वा ब्रह्मपुरों प्रियाम् ॥४३

इतने महान् संभार से संयुक्त होकर यजमान् स्वयं गृह संख्या के समान ब्राह्मणों को निम्नलिखित कर, जो कुश-शील सम्पन्न वेदपाठी, शास्त्र मर्मज्ञ, पुराण-स्मृति के पारदर्शी, गृहस्थ धर्म में निरत, शांत पवित्रतापूर्ण और संयमी हों । इस भाँति के सपत्नीक ब्राह्मणों की सर्वप्रथम वस्त्रों से पूजित और सुगन्ध, माला आदि से भूषित कर शांति कर्म के लिए नियुक्त करे । तथा अपने गृहाङ्गे में मेखला सोगत एक कुण्ड का निर्माण भी करे । इस प्रकार पुष्टिप्रद इस गृहयज्ञ को सदैव सुसम्पन्न करना चाहिए । उस समय ब्राह्मणों को राक्षसादिविनाशक सूक्तों के पाठ करना चाहिए । वास्तु-पूजा, दिशाओं में भूतों के लिए बलि अर्पित करके पश्चात् पुर्याहवाचन, मागलिक घोष पूर्वक सपत्नीक उन ब्राह्मणों के साथ उस गृह में प्रवेश कराकर शश्या पर बैठाये । अनन्तर प्राज्ञ यजमान श्वेत वस्त्र धारण कर पवित्रता पूर्ण, उन्हें जिसके लिए जो गृह बना हो, अर्पित कर क्षमा प्रार्थना करे । २९-३८। विप्र ! समस्त साधनसम्पन्न इस गृह को आप स्वीकार करें, जिससे आप की प्रसन्नता वश मेरा मनोरण सफल हो । इस प्रकार प्रत्येक ब्राह्मणों से दान अर्पित करते हुए यजमान के क्षमा प्रार्थना करने पर उन ब्राह्मणों को जो कोऽग्नादिति मन्त्रों द्वारा पूजित हुए हैं, ‘स्वस्ति’ कहना चाहिए । गृहोपकरणी, उपदेष्टा और तन्मूलक महर्षियों की स्वयं अर्चा करके पश्चात् अपने घर का गमन करे । इसी विधान द्वारा एक या अनेक भवनों को अर्पित करना चाहिए, इसमें संख्या नियम न होकर केवल अपनी शक्ति ही नियमिका है । ३९-४१। शीत, वायु, धूप आदि के अपहरण करने वाली छप्पर की कुटिया ही दान करने से कामनाओं की सफलता पूर्वक स्वर्ग में पूजित होता है तो समस्त साधन सम्पन्न उस प्रिय ब्राह्मण पुरी को अत्यन्त सुखार्थ दान करने वाले के प्राप्त होने वाले वैभव का अधिक क्या वर्णन किया जा सकता है । कौतेय ! गौ, भूमि एवं हिरण्य के दान, यम नियमादि सभी गृहदान की सोलहवीं कला की भी समता नहीं कर सकते । इस प्रकार उन ब्राह्मणों की पुरियों को जो दृढ़ कमरों से

१. स्वस्तीति ब्राह्मणैर्वाच्यम् । २. दद्यात् ।

गो भूहिरण्यदानानि यमाः सनियमास्तथा । गृहदानस्य कौन्तेय कलां नार्हन्ति चोडशीम् ॥४४

यः कारयेत्सुदृढ्हर्म्यवतीं महार्हीं सत्सेवितां द्विजपुरीं सुजनोपभोग्याम् ।

दिव्याप्सरोऽभिरभिनन्दितचित्तवृत्तिः प्राप्नोत्यसावनवमं पदमिंदुमौलेः ॥४५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्विंश्च श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

गृहदानविधिवर्णनं नामाङ्गषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥६८

अर्थैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अन्नदानमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अन्नदानस्य भाहात्म्यं कथयामि तदानन्ध । यत्प्रोक्तमृषिभिः पूर्वं तदिहैकमनाः शृणु ॥१
ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं युधिष्ठिर । सद्यस्तुलिकरं लोके किं दत्तेन परेण^१ ते ॥२
रामेण दाशरथिना वनस्थे निजानुजः । निर्वेदाद्यत्पुरा प्रोक्तस्तदहृ^२ प्रब्रवीमि ते ॥३
पृथिव्यामन्नपूर्णायां वयमन्नस्य कांक्षणः । सौमित्रे नूनमस्माभिर्न ब्राह्मणमुखे हुतम् ॥४
यदुच्यते कर्मबीजं तस्यावश्यं फलं नरैः । प्राप्यते लक्ष्मणास्मानिर्नान्नं विप्रमुखे हुतम् ॥५

युक्त बहुमूल्य के योग्य, सज्जनों से सेवित और सुजनों के उपभोग्य रहती है, बनवाने वाला दिव्य अप्सराओं के बीच आनन्द मग्न रहकर चन्द्रमौलि का वह शाश्वत पद प्राप्त करता है । ४२-४५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में

गृहदानविधिवर्णन नामक एक सौ अङ्गठवाँ अध्याय समाप्त । १६८।

अध्याय १६९

अन्नदान माहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अनध ! मैं तुम्हें अन्न दान का माहात्म्य बता रहा हूँ, जिसे क्रष्णियों ने पूर्वकाल में कहा था, सावधान होकर सुनो ! युधिष्ठिर ! अन्न दान करने से क्या लाभ, इसलिए अन्नदान करो, और अवश्य अन्न दान करो मैं तीन बार कह रहा हूँ, क्योंकि लोक में यह दान सद्यः प्रसन्न करता है । दशरथ पुत्र राम ने वनवास करते समझ अपने अनुज से जो बात पहले कहा है मैं वहीं तुमसे बता रहा हूँ—सौमित्रे ! इस अन्नपूर्णा पृथिवी में रहकर हम लोग अन्न की इच्छा करते हैं इससे निश्चित है कि हम लोगों ने (पूर्वकाल) मैं ब्राह्मण भोजन नहीं कराया था । लक्ष्मण ! जो कहा गया है कि यह कर्म बीज रूप है उसका फल मनुष्यों को अवश्य भोगना पड़ता है, इसलिए हम लोग भी कभी ब्राह्मण मुख की आहुति नहीं अर्पित की है अर्थात् ब्राह्मण भोजन नहीं कराया । १-५। जो नहीं प्राप्त कर सका वह विद्या या पौरुष के

१. महाधोम् । २. अपरेण । ३. तच्चापि कथयामि ते ।

यत्र प्राप्यं तदप्साप्यं विद्यया पौरुषेण वा । सत्यो लोकप्रवादोऽयं त्रादत्तमुपतिष्ठति ॥६
भक्षोपयोगादन्नस्य दानं श्रेयस्करं परम्^१ ॥७

प्रकारान्तरभोज्यानि दानान्यै न्यानि भारत । अन्नमेव परं दानं सत्यवाक्यं परं पदम् ॥८
बुद्धिश्चार्थात्परो लोभः सन्तोषः परमं सुखम् । स्नातानां मनुलिप्तानां भूषितानां च भूषणैः ॥९
न सुखं न च सन्तोषो भवेद्वादृते नृणाम् । श्वेतो नाम महीपालः सार्वभौमोऽभवत्पुरा ॥१०
तेनेष्ट बहुभिर्यज्ञैः संग्रामा^२ बहवो जिताः । दानानि च प्रदत्तानि धर्मतः पालिता मही ॥११
भुक्ता भोगाः सुविपुलाः शत्रूणां मूर्धनिं स्थितम् । वानप्रस्थेन विधिना त्यक्त्वा राजश्रिदं नृप ॥१२
स्वर्गं जगाम भुक्त्वा तु गूज्यमानो मरुदगणैः । विमानमर्कप्रतिमं प्रतिपेदे मुदा युतः ॥१३
तत्रास्ते रमनाणेऽतौ साकं विद्याधरैः सुखम् । प्रसिद्धैः स्तूयते सिद्धैः सेव्यतेऽप्यसरसां गणैः ॥१४
गन्धवैर्गीयते हृष्टैः शक्णेणाप्यनुगम्यते^३ । दिव्यमाल्यास्वरधरो दिव्याभरणभूषितः ॥१५
स च नित्यं वितानाग्रामादवतीर्य महीतलम् । स्वमांसान्यति कौन्तेय पूर्वं त्यक्त्वा कलेवरम् ॥१६
तच्छरीरं तथैवास्ते इक्षितं पूर्वकर्मभिः । स कदाचित्सुरेशानं ब्रह्माणं समुपस्थितः ॥१७
प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा निर्वदादिदमङ्गवीत् । भगवन्तस्त्वत्प्रसादेन प्राप्तं स्वर्गसुखं स्या ॥१८
सर्वेषामपि सन्पूज्यः सुराणां सुरपुङ्गव । किं तु क्षुद्राधतेऽत्यर्थं स्वर्गस्थस्यापि मे प्रभो ॥१९

द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए यह लोकप्रवाद सत्य है—‘जो नहीं दिया गया है वह नहीं मिलता है।’ भक्षण के उपभोगी होने के नाते अन्न दान श्रेयस्कर माना गया है। भारत ! यद्यपि अन्य दान भी प्रकारान्तर से भोज्य है तथापि ‘अन्नदान ही थेष्ठ है’ यही सत्यवाक्य और परम पद है। बुद्ध द्वारा उत्पन्न अर्थ में लोभ अधिक होता है किन्तु सन्तोष ही परम सुख माना गया है। स्नान, लेपन एवं भूषण से भूषित मनुष्यों को बिना अन्न के कोई सुख और सन्तोष नहीं होता है। पूर्वकाल में एक श्वेत नामक सार्वभौम राजा था, जिसने अनेक यज्ञों को सुसम्पन्न किया, अनेक संग्रामों में विजय प्राप्त की, अनेक दान दिये, धर्मानुसार पृथ्वी का पालन पोषण किया, विपुल भोगों को उपभोग किया और शत्रुओं के शिर पर सदैव स्थित किया था। नृप ! (अन्त समय) वानप्रस्थ के नियमानुसार उन्होंने राज्यलक्ष्मी के त्याग पूर्वक स्वर्गी की यात्रा की। सूर्य के समान प्रकाशित विमान द्वारा सहर्ष वहाँ गहूँच कर मरुदगणों द्वारा पूजित हुए वहाँ रमण करते हुए उन्हें विद्याधरों द्वारा सुख प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध सिद्धों ने स्तुति तथा अप्सराओं ने भलीभाँति सेवा की। प्रसन्नतापूर्ण गन्धवैरों ने मान द्वारा उन्हें सन्तुष्ट किया, इन्द्र उनके अनुगमी हुए। दिव्य माला, दिव्य वस्त्र और दिव्याभरण से भूषित होने पर भी वह राजा विमान द्वारा नित्य इस भूतल में आकर अपनी त्यांग की हुई पूर्व शरीर के मांस का भक्षण करता था। ६-१६। क्योंकि पूर्व कर्मानुसार उनकी शरीर वैसी ही सुरक्षित की गयी थी। एक बार कभी उन्होंने देवेश ब्रह्मा के यहाँ जाकर उनसे अञ्जली बाँधे नमस्कार पूर्वक दुःख प्रकट करते हुए कहा—भगवन् ! आप के प्रसाद से मैंने स्वर्ग सुख प्राप्त किया और समस्त देवों का पूज्य हुआ। किन्तु सुरपुङ्गव, प्रभो ! स्वर्ग में निवास करते

यथा मांसान्यहं स्वस्य भक्ष्यान्यशनं विना

॥

ब्रह्मोवाच

श्रेताभिजन्सम्पन्न श्वेत शृणु वचो भम
 त्वदाधीतं हुतं दत्तं गुरदः परितोषिताः । नाशनं भवता दत्तं यदिद्वजेष्यो नराधिप ॥२१
 अन्नदानस्य फलं त्वयेदमुपभुज्यते । तहोन्नदानतो नान्यच्छरीरारोग्यकारकम् ॥२२
 नान्यदब्नादृते उंसां किञ्चित्सञ्जीदनौथम् । महींगत्वा महाराज कुरुष्व वचनं भम ॥२३
 तपः स्वाध्यायसम्पन्ने शास्त्रज्ञे संजितेन्द्रिये । ये सम्पद्यते तृप्तिरक्षया क्षमापते^१ तव ॥२४
 विरिंचेर्वचनादगत्वा त्वरायुक्तो महीतलम् । अगस्त्यं भोजयःमास भक्त्या भरतसत्तम ॥२५
 भोजित्वा ततः प्रादादक्षिणां क्षीणकल्पमः । एकावलिं स्वकात्कण्ठात्समुत्तार्य समुज्ज्वलाम् ॥२६
 ततो दुन्दुभिघोषेण पूजितः नुरसत्तमैः । श्वेतस्तृप्तो गतः स्वर्गं दत्त्वान्नं दक्षिणःयुतम् ॥२७
 पौलस्त्ये निहते पश्चाद्वेददानदसकहे । रामायैकावलिं प्रादादगस्त्यः परया मुदा ॥२८
 एतदन्नस्य माहात्म्यं कथयाम्यपरं च हे । न चान्नादपरं किञ्चित्सत्त्यं तव मयोदितम् ॥२९
 अन्नं वै प्राणिनां^२ प्राणा अन्नभोजो बलं सुखम् । एतस्मात्कारणात्सद्विरन्नदः प्राणदः स्मृतः ॥३०

हुए भी मुझे क्षुधा अत्यन्त पीड़ित कर रही है। जिसके कारण मैं अपना मांस भक्षण करता हूँ। १७-१९

ब्रह्मा बोले—श्वेत कुल में उत्पन्न श्वेत ! (इसका कारण) मैं बता रहा हूँ, सुनो ! तुमने वेदाध्ययन, यज्ञ कर्म, दान और गुरु को सन्तुष्ट रखना आदि सभी कर्म सुसम्पन्न किया । किन्तु ब्राह्मणों को भोजन दान नहीं दिया । नराधिप ! उसी अन्न दान न देने का यह दुष्परिणाम तुम भोग रहे हो । इसलिए अन्न दान से अन्य कोई शरीर को आरोग्य बनाने वाला नहीं है, (इतना ही नहीं प्रत्युत) मनुष्यों के लिए संजीवनी औषध (अन्न के अतिरिक्त) अन्य कोई नहीं है । महाराज ! क्षमापते इसलिए आप मेरी बात स्वीकार कर भूतल में जायें और किसी तपस्वी, वेदाध्ययन सम्पन्न, शास्त्रमर्मज्ञ और इन्द्रिय संयमी ब्राह्मण को (भोजन द्वारा) सुतृप्त करें, जिससे तुम्हें अक्षय तृप्ति प्राप्त हो । भगवान् विरिंद की आज्ञानुसार राजा ने इस महीतल में शीघ्र आगमन कर मुनि अगस्त्य जी को भोजन कराया । २०-२५। भारत सत्तम ! तदुपरान्त निषाप राजा ने अपने कण्ठ से उस समुज्ज्वल एकावली को उतार कर मुनि को दक्षिणा रूप में अपित किया । उसे देखकर मुरवृन्दों ने दुन्दुभि घोष करते हुए उनकी अर्चा की और राजा श्वेत दक्षिणा समेत अन्न दान करने के नाते तृप्त होकर स्वर्ग चले गये । पुलस्त्य कुल में उत्पन्न एवं देव दानवों का संकट रूप उस रावण के राम द्वारा निधन होने पर प्रसन्न मुनि अगस्त्य ने वहीं एकावली (हार) राम को प्रसन्नता के उपहार में प्रदान किया था । २६-२८। इसके अनन्तर भी मैं तुम्हें अन्न का अन्य माहात्म्य बता रहा हूँ क्योंकि मैंने यह सत्य ही कहा है कि—अन्न से अपर कोई भी दान श्रेष्ठ नहीं है ; अन्न प्राणियों का प्राण, ओज, बल और सुख रूप है इसीलिए सज्जनों का कहना है कि—‘अन्न का दाता प्राण का

१. जायते । २. प्राणिनः ।

सुदूरादाशया यस्य गृहं प्राप्ता दुभुक्षितः । तृप्ताः प्रतिनिवर्तन्ते कोऽन्येस्तत्तदृशः पुमान् ॥३१
 दीक्षितः कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः । दृष्टमात्रा पुनत्येते तस्मात्पश्यन्ति नित्यशः ॥३२
 एकस्याच्यतिथेरन्नं यः प्रदातुमशक्तिसान् । तयाऽऽरम्भैः परिक्लेशैवसतः किं फलं गृहे ॥३३
 शक्यते दुष्करेऽप्यर्थं चिररात्राय जीवितुम् । नत्वाहारविहीनेन शक्यं वर्तयितुं चिरम् ॥३४
 भुक्त्वा शूरे गृहस्थस्य मैथुनं यश्च सेदते । यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा इति प्राहुर्मनोषिणः ॥३५
 दुष्कृतं हि मनुष्याणायन्नमाश्रित्य तिष्ठति । यो यस्यान्नं समशनाति स तस्याशनाति दुष्कृतम् ॥३६
 वनस्पतिंगते सोमे परान्नं यस्तु भुञ्जति । तस्य मासकृतं पुण्यं दस्तारमुपगच्छति ॥३७
 कस्मान्न दीयते नित्यं कस्मादन्नं न दीयते । यस्येदृशी रक्तावप्तिः कथिता पूर्वसूरिभिः ॥३८
 भिक्षां वा पुष्कलां वापि हंतकारं द्विजातये । भोजनं दः यथालाभमदत्त्वाशनाति किल्बिषम् ॥३९
 येनायुतं सहस्रं वा भोजितं स्यादिद्वजन्मनाम् । तेन ब्रह्मगृहासनं नूनं बद्धं कुटीरकम् ॥४०
 वाराणस्यां पुरा पार्थ वणिगापणजीवनः । धनेश्वर इति ख्यातो देवब्राह्मणपूजकः ॥४१
 तस्यापौकदेशे तु मुक्त्वाण्डं पाण्डुरच्छिदि । सर्पं सर्पस्तदेशगद्विगदृष्ट्वा विशंकितः ॥४२
 तदण्डं वणिजा तेन दृष्टं कारुण्यबुद्धिना । ततः प्रभृत्यनुदिनं रक्षा च पुषोष च ॥४३

प्रदाता है' । अत्यन्त सुदूर से आशा लगाये क्षुध पीड़ित प्राणी जिसके घर आकर तृप्त होकर चले जाते हैं उसके सम्बन्ध अन्य कौन पुरुष हो सकता है । दीक्षित, कपिला, यज्ञ करने वाला, राजा, भिक्षुक और समुद्र दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं इसीलिए ये सदैव देखते रहते हैं । द्वार पर आये हुए एक अतिथि को अन्न दान द्वारा जो तृप्त नहीं कर सकता है, उसको गृहस्थाश्रम में रहने से कौन फल हो सकता है, और इसीलिए गृहस्थी के उसके सभी आरम्भ भी केवल दुःखदायी हैं । किसी अत्यन्त दुष्कर अयोजन के सफल न होने पर भी प्राणी अधिक सजीवित नहीं प्राप्त कर सकता है । गृहस्थों के यहाँ भोजनोंपरान्त कोई अभ्यागत मैथुन भी करता है तो उससे सन्तान उत्पन्न होने पर वह सन्तान गृहस्वामी का ही कहा जायेगा क्योंकि अन्न उसी का था ऐसा मनीषियों ने कहा है । २९-३५। मनुष्यों के दुष्कृत अन्न में ही रहते हैं अतः जो जिसका अन्न भक्षण करता है वह उसका दुष्कृत भक्षण करता है । सोम के वनस्पति प्राप्त होने पर परान्न भोजी प्राणी का एक मास का पुण्य उसके दाता को प्राप्त होता है । इसलिए पूर्व के मनीषियों के कथनानुसार जिसके दान से इस भाँति के फल प्राप्त होते हैं उस अन्न दान को नित्य क्यों नहीं सुसम्पन्न करते हो । द्विजातियों को पूर्ण भिक्षा, जो देने योग्य हो, अथवा यथालाभ भोजन न देकर जो भोजन करता है वह पाप भोजन करता है । जिसके दश सहस्र या सहस्र ब्राह्मणों को भोजन द्वारा तृप्त किया है उसने निश्चित ब्रह्मा के भवन के निकट अपनी कुटिया बना ली है । पार्थ ! वाराणसी पुरी में धनेश्वर नामक एक प्रख्यात एवं कुशल व्यापारी वैश्य रहता था, जो देवों और ब्राह्मणों की सदैव अर्चना किया करता था । उसकी द्वूकान के किसी भाग में पाण्डुर वर्ण के अण्डे को रखकर कोई सर्प वहाँ से जा रहा था । वणिक् ने उसे संशक्ति दृष्टि से देखा अनन्तर उस वैश्य ने उस अण्डे को भी कारुणिक हृदय होकर देखा और उसी दिन से प्रतिदिन उसकी रक्षा तथा पालन पोषण करना आरम्भ किया । ३६-४३। कुछ दिन के अनन्तर उस अण्डे को फोड़कर सर्प का बच्चा निकला । क्षीर पान अपदि उपचारों द्वारा उस वैश्य ने

निर्जगाम दिनैः कैश्चिद्द्रित्वाण्डं सर्पोतकः । तं वणिक्षीरपानादैरपचारेरवर्धयत् ॥४४
लिलिहे घृतभाण्डानि जिधे च गन्धसंचयान् । लुलोठ पांसुप्रकरे चचार वारिमध्यगः ॥४५
वणिजा रक्ष्यमाणः स स्नेहाच्चाहरहः पुनः । जगाम सुमहान्कालोऽभवदेष भयंकरः ॥४६
अथेकस्मिन्दिने गङ्गा गतः स्नानुं त्रिलोकगम् । वणिगामणे पण्याविंदं स्थापयित्वः सुतं मतम् ॥४७
व्यवहर्तुं^१ समारब्धं वणिक्षुत्रेण धीमता । ददाति प्रतिगृह्णाति घृततैलयवैक्षदम् ॥४८
व्यवहाराकुलतयः पादयोरंतरेण रः । सर्पश्वचाल चालयाद्विनिवेष्पमभ्यगात् ॥४९
जानन्नपि तदृतातं निवाने निगतेदेशात् । त्रासत्तत्तर्जयामास बलेन^२ पदचारिणम् ॥५०
स नहीतः समुत्थाय सूद्धानन्दवहृष्टे च । उवाच दारुणतरं^३ वचनं पन्नगाधमः ॥५१
शरणागतं पोषितं च तव पित्रा प्रियङ्करम् । कस्मान्मां हंसि दुष्टात्मन्कथं जीवान्विमोक्षसे ॥५२
अनन्तरं कलकलः सञ्जातो रोदतो^४ नृणाम् । धनेश्वरसुतो दृष्टः सर्पेणापि भृशाकुलः ॥५३
अच्युततानन्त गोविन्दं कृष्णकृष्णोत्युदीरयन् । धनेश्वरोप्यनुप्राप्तः प्रोवाचाकुलया गिरा ॥५४
किं कृतं सम पुत्रेण तव पन्नग विप्रियम् । यदयं भवता भूर्धिं स्व भोगेनाभिवेष्टितः ॥५५
मूर्खं मित्रं सुसम्बन्धं हीनजातिजनो हि यः । यः करोत्यबुधोगारान्स स्वहस्तेन^५ कर्षति ॥५६
तमुदाच च सर्पोऽसौ बाष्पगदगदया गिरा । निरपराधो भवतः पुत्रेणाहं समाहतः ॥५७

उसकी भी रक्षा करना प्रारम्भ किया । वह छोटा बच्चा घृत पूर्ण पात्रों का आस्वाद लेने लगा, संचित सुगन्धों को सूधने लगा, धूलियों में लोटने और जल के मध्य चलने लगा था । किन्तु उस वैश्य के द्वारा स्नेह वश रक्षित रहने के नाते वह प्रतिदिन बढ़ने लगा और थोड़े ही दिन में वह भयंकर सर्प हो गया । एक दिन वह वैश्य अपनी दूकान में अपने पुत्र को बैठाकर स्वयं त्रिलोक में विचरण करने वाली गङ्गा में स्नान करने के लिए चला गया । उस वैश्य पुत्र ने दूकान में बैठकर घृत, तेल, जवा और गुड आदि का क्रय विक्रय करना लोगों से आरम्भ किया । (भीड़ के नाते) लैन देन के व्यवहार में तन्मय होने पर (चलते फिरते) उसके पैर के बीच से चञ्चलतावश वह सर्प निकल गया । उसके बृत्तान्त को जानते हुए भी (भाग्य वश वह वैश्य) विक्षिप्त हो गया और भय के मारे बल पूर्वक उसे कुचल दिया । पश्चात् उस अधम सर्प ने पृथ्वी से उठकर अपने फण से उसके शिर को धेर लिया और कड़े शब्दों में उससे कहा—
तुम्हारे पिता ने मुझ शरणागत का भली भाँति एवं स्नेहपूर्ण पालन पोषण किया है इसलिए दुष्ट तूं मुझे क्यों मार रहा है क्यों अपने जीवन का त्याग करना चाहता है । ४४-५२। अनन्तर रुदन करने वाले मनुष्यों का अत्यन्त कोलाहल (शोर) होने लगा । लोग कह रहे थे—धनेश्वर! के पुत्र को सर्प ने काट लिया है जिससे वह अत्यन्त मूर्च्छित हो गया है । उसी बीच धनेश्वर भी 'अच्युत', अनन्त, गोविद और कृष्ण, कृष्ण नाम का उच्चारण करते हुए वहाँ आये और व्याकुल होकर कहने लगे—पन्नग! मेरे पुत्र ने तुम्हारा क्या बिगड़ा है जिससे तुम उसके शिर में लिपटे पड़े हो । हीन जाति में उत्पन्न होने वाला प्राणी किसी मूर्ख के साथ अपनी मित्रता का संबन्ध स्थापित करता है वह अज्ञानी अपने हाथों (अग्निके) अंगार उठाता है । ५३-५६।

१. व्यवहरः समारब्धः । २. फलेन फलभोजिनम् । ३. अधिगच्छति । ४. दारुणतमं स्वामिनम् । ५. रोषणः । ६. स्वहतेनापि कर्षति ।

तद्वं पश्यतस्तेऽद्य दंशास्येन नराधिष् । यथा न भूयो भूतां भवेदस्मात्क्वचिद्ग्रुयम् ॥५८

धनेश्वर उवाच

उपकारं ऋतं भक्त्या स्नेहपाशो न यस्य च । सतां मार्गमपाक्रम्य प्रयातः केन वार्यते ॥५९
 क्षणमात्रं प्रतीक्षस्व यावदेव शिशुमेम । और्ध्वदेहिकमर्त्तिं करोति स्वयमात्मनः ॥६०
 एवगुरुत्वा गृहं गत्वा^१ यतीनां ब्रह्माचारिणाम् । सहस्रं भोजयामास धृतपायसभोजनैः ॥६१
 समुथाय ततः सर्वे ब्राह्मणा हृष्टमानसाः । दण्डिक्षुद्रस्योत्तमाङ्गे चिकिष्पुः कुसुमाक्षतान् ॥६२
 दण्डिक्षुद्र चिरं जीव नश्यन्तु तत्र शत्रवः । अभीष्टकसंसिद्धिरस्तु ते ब्राह्मणान्नया ॥६३
 ततः स^२ दुष्टपूर्विर्यिप्र वाग्वज्रताडितः । पन्नां नगसंकाशः पपात च ममार च ॥६४
 विपन्नं पन्नं दृष्ट्वा त्रस्ताचकृद्धनेश्वरः । आः किमेतदिति प्रोच्य विषादभगमत्परम् ॥६५
 पोचितोऽयं मया बालः पालितो लालितस्तथा । ममापचारात्पञ्चत्वमापन्नः^३ पवनाशन ॥६६
 उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः । अपकारिषु यः साधुः साधुः सद्विरिष्यते ॥६७
 इत्येवमदधार्यसौ^४ दुःखसंतप्तमानसः । बुभुजे नाकुलतया न च सुष्वाप तं निशाम् ॥६८
 ततः प्रभाते गङ्गायां स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः । सहस्रं भोजयामास पुनरेव द्विजन्मनाम् ॥६९

पश्चात् आँसू भरे कण्ठ से गद्गद वाणी द्वारा सर्प ने उससे कहा आप के पुत्र ने मुझ निरपराध को मारा है अतः तुम्हारे सामने ही मैं इसे काटता हूँ जिससे जीवों को आकस्मिक भय न हो सके । ५७-५८

धनेश्वर बोले—भवित्पूर्वक जिसने (किसी का) उपकार और व्रतादि का पालन नहीं किया तथा जिसके स्नेहरूप पाण नहीं हैं वे यदि सज्जनों के मार्ग को छोड़ कर अन्य मार्ग से जाना चाहेंगे तो उन्हें कौन रोक सकता है । इसलिए तू क्षण मात्र उहर जाओ और तब तक प्रत्याशा करो जब तक यह गेरा पुत्र अपना और्ध्व देहिक कर्म स्वयं नहीं कर लेता है । ऐसा कहकर उस वैश्य ने अपने घर जाकर सहस्रों यतियों और ब्रह्माचारियों को धृत गिरित पायस के भोजनों द्वारा तृप्त किया । पश्चात् प्रसन्न चित्त होकर वे सभी ब्राह्मण उस वैश्य पुत्र के शिर पर पुष्पाक्षत डालते हुए कहने लगे—यह वैश्य पुत्र चिरजीवी हो और इसके शत्रु वर्ग नष्ट हो जायें । ब्राह्मणों की आज्ञानुसार तुम्हारे अभीष्ट फल संसिद्धि हो । तदुपरांत ब्राह्मणों के इस प्रकार वाग्वज्र द्वारा ताडित होने पर वह दुष्ट प्रकृति वाला पन्न (सूर्य), जो पर्वत की भाँति भीषणाकार दिखायी देता था गिरा और मर गया । उसे जीवन हीन देखकर अपनी आँखों से समय करुण प्रकट करते हुए धनेश्वर ने ‘हाँ’, यह क्या हो गया । ५९-६५ ऐसा कह कर अत्यन्त विषाद प्रकट किया । और कहा भी—इसको मैंने बालपन से पाला पोषा था किन्तु यह वायु भोजी (सर्प) मेरे ही अपकार द्वारा मारा गया । उपकार करने वालों के कोई अपने साधुगणों को प्रकट करता है तो उसके साधुत्व गुण का कोई मूल्य नहीं हो सकता, क्योंकि अपकार करने वाले प्राणियों के साथ ही साधु गुण प्रकट करने वाले ही साधु कहे जाते हैं, ऐसा सज्जनों का कहना है । इस प्रकार विचारमान एवं दुःख ऐसे संतप्त होने के नाते वह वैश्य ने उस रात्रि न भोजन किया और न शयन ! ही किया । अनन्तर प्रातः समय उठकर स्नान एवं देव पितृ तर्पण करके पुनः एक सहस्र ब्राह्मणों को मधुर भोजन कराया । ६६-६९ । यथेच्छ भोजन से सन्तुष्ट हो कर

१. दत्त्वा । २. सुहृष्टप्रकृतिः । ३. अपकारात् । ४. सप्रधार्य ।

तेर्भुक्तेरिष्टसंसिद्धेन्नाहणैरनुमोदितः । वणिकग्राह ममाभीष्टं संजीवत्वेष पञ्चगः ॥७०
ततो द्विजवरोन्मुक्तैरस्तुभिः परिषिद्धितः । उदतिष्ठदहीनांगः रहसा हि महाकुलः ॥७१
प्रहर्षमतुलं लेभे दृष्ट्वा तं पुरतः स्थितम् । प्रत्यग्रावयं दृष्ट्वासृक्किणीपरिलेलिहम्^१ ॥७२
साधुवादो महाज्ञातः प्रशश्नुर्धनेश्वरम् । तुरीनिवासिन सर्वं विस्मयेत्कुल्लोचनाः ॥७३
सहस्रभोज्यमाहात्म्यं कथितं ते युधिष्ठिर । सम्यक्षृद्धाप्रयुक्तस्य किमन्यत्कथयामि ते ॥७४

यच्छन्ति येऽनुदिवसं द्विजपुञ्जवानामन्नं दिशुद्धमनसो भृशमागतानाम् ।

मर्त्ये विहृत्य सुचरं समुहृज्जनास्ते प्रेत्य प्रयान्ति^२ भवनं मुदिता मुरारे ॥७५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

अनन्दानमाहात्म्यवर्णने^३ नामैकोसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १६९

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

स्थालीदानवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अनन्दानप्रसंगेन ममापि स्मृतिमागतम् । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रुतं दृष्टं च यन्मया ॥१
अक्षद्यूतेन भगवन्धनं राज्यं च नोहृतम् । आहूय निष्कृतिप्राङ्मः कितवैरक्षकोदिदैः ॥२

ब्राह्मणों ने वैश्य से अपना मनोरथ प्रकट करने का अनुमोदन किया । वणिक ने कहा—यह सर्प जीवित हो जाये यही मेरी अभिलाषा है । इसे सुनकर ब्राह्मणों ने अभिमंत्रित जल उसके ऊपर डाल दिया, जिससे वह सर्प सहसा अपना अपने नष्ट पुष्प अंगों समेत पुनः जीवित हो गया । अपनी जिह्वा का बार-बार स्वाद लेने वाले उस सर्प को सम्पूर्ण अंगों से स्वस्थ देखकर वैश्य को महान् हर्ष प्राप्त हुआ, जनता में साधु साधु साधु का शब्द गूँजने लगा और धनेश्वर की अत्यन्त प्रशंसा होने लगी एवं तभी ग्रामवासी अत्यन्त आशर्चर्य चकित हो गये । युधिष्ठिर ! तुम्हारी थद्वा के वशीभूत होकर मैंने सहस्र भोज्य का माहात्म्य तुम्हें सुना दिया, अब इससे अन्य और क्या कहूँ । विशुद्ध चित्त होकर प्रतिदिन अतिथिरूप में आये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अन्न दान से संतुप्त करने वाले सज्जन वृन्द इस भूतल में चिरकाल तक विहार सुख प्राप्त करने के अनन्तर मुरारि कृष्ण का भवन प्राप्त करते हैं । ७०-७१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवाद में
अनन्दानमाहात्म्य वर्णन नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । १६९।

अध्याय १७०

स्थालीदान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! इस अन्न दान के माहात्म्य की कथा के प्रसंग में मुझे भी कुछ स्मरण हो रहा है, उसे मैंने जिस भाँति देखा, सुना है, आप से कह रहा हूँ, सुनने की कृपा करें । द्यूत कर्म (जूए

१. किंकिणीपरिलेलिहम् । २. प्रेत्येह । ३. सदाव्रतवर्णनम् ।

वनं प्रस्थापिताः सर्वे बल्कलाजिनवाससः । द्वौपद्या सहिताः कृष्ण कर्णदुर्योधनादिभिः ॥३
ज्ञात्वा वनगतानस्मान्द्वाहणाः संजितेद्विषयाः । दुष्टुमन्म्याययुःसर्वे पौराश्चाप्यनुजग्निरे ॥४
अस्मान् स्नेत्विलश्यभानान्दृष्ट्वा ब्राह्मणसत्तमाः । पौरान्कर्मकरांत्रैव निर्वेदादिदमञ्जुवन् ॥५
जीवतो यत्य जीवन्ति विप्रा मित्राणि दान्धवाः । जीवनं^२ तस्य सफलमात्मार्थे को न जीदति ॥६
अभ्यागतं सुहृद्वार्णं कुटुम्बपत्पहाय च । जीवन्नपि मृतः पापः केवलं स्वोदरम्भरिः ॥७
इत्येवमवधार्याहं तानुषीपुनरबूबुवद् । भवन्तः सर्वे एवात्र त्रिकालज्ञा महर्षयः ॥८
समागतः मतिप्रार्थं ज्ञानविज्ञानपारगाः । ब्रत कंदिदुपायं से भवन्तोभिजनं^३ प्रति ॥९
भवन्तः सहिताः सर्वे भृत्यंभ्रातृभृतेवच । निर्गच्छेयं^४ वने शून्ये द्रादसेभाः समा यथा ॥१०
मामुवाचार्थं मैत्रेयः शृणु कौतेय मद्वचः । पूर्ववृत्तं प्रवक्ष्यामि दृष्ट्वं दिव्येन चक्षुषा ॥११
आसीत्पोवने ज्ञाचिद्द्वाहणी ब्रह्मचारिणी । दुर्भगा दुर्गता^५ दुःखादाराधयति सा द्विजान् ॥१२
शौचेन तुष्टा सुनयः प्रश्रयेण दमेन च ! प्रोचुर्वद विशालाक्षि किं कुर्मस्तद सुव्रते ॥१३
सा तानुवाच किं तन्मे ब्रतं दानमथापि वा । कथयच्चं भवेयं^६ वै येन श्रीसुखभागिनी ॥१४

खेलने) में निपुण व्यक्तियों को बुलाकर कर्ण दुर्योधनादि व्यक्तियों ने दूत द्वारा हमारे धन और राज्य के अपहरण कर लैने के उपरांत द्वौपदी समेत हमलोगों ने बल्कल और मृगचर्म धारण कराकर जंगल निवास करने के लिए भेज दिया । कृष्ण ! हमें वनवासी होना जानकर संयमी ब्राह्मण वर्ग दर्शनार्थ वहाँ आये और प्रवासी गण भी साथ-साथ आ गये । हमारे स्नेह वश वहाँ आये हुए ग्रामीणों को दुःखी देखकर ब्राह्मणों ने मुझसे कहा—जिसके जीवित रहने से ब्राह्मण, मित्र और बन्धु वर्ग जीवित रहते हैं, उसी का जीवन सफल है योतो अपने लिए कौन नहीं जीवित रहता है । अभ्यागत, मित्र वर्ग, एवं कुटुम्ब के त्याग पूर्वक केवल अपना ही पेट पालने वाला पापी जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है । इसे सुनकर मैंने उन महर्षियों से कहा—आप सभी लोग त्रिकालज्ञ महर्षि हैं एवं ज्ञान विज्ञान के पारगामी विद्वान् हैं केवल मेरे हितार्थ आप लोगों ने मुझे दर्शन दिया है, इसलिए इन सब के भोजनादि सुखार्थ कोई उपाय आप लोग बताने की कृपा करें । जिससे आप लोगों, सेवकों एवं बान्धवों समेत इस शून्य (निर्जन) वन में मेरे बारह वर्ष के समय व्यतीत हो जाय । उपरान्त मैत्रेय जी ने मुझसे कहा—कौतेय ! मैं कुछ कह रहा हूँ, उसे सावधान होकर सुनो ! मैं वहाँ बात कहना चाहता हूँ जिसे मैंने पूर्वकाल में अपनी दिव्य दृष्टि से देखा है । १-११। इस तपोवन में कोई ब्रह्मचारिणी ब्राह्मणी रहती थी, जो दुर्भगा एवं दुर्गति से पीड़ित थी । वह महान् दुःखों का अनुभव करती हुई भी किसी प्रकार ब्राह्मणों की सेवा करती थी । उसकी पवित्रता, प्रेम और संयम से सन्तुष्ट होकर मुनियों ने उससे कहा—विशालाक्षि ! सुव्रते ! हमलोग तुम्हारा कौन प्रिय उपकार करें । इसे सुनकर उसने कहा—ब्रत दान की बातें न कहकर मुझे वही बताने की कृपा करें, जिससे मैं भी समेत सुख भागिनी बन सकूँ तथा प्राणियों (सेवकों आदि) का आधार (स्वामिनी), अनेक

१. सफलतं जीवितं तस्य । २. भोजनम् । ३. निर्दहेयम्, निगृहेयम् । ४. अत्र—मैत्रेय उवाच—शृणु कौतेय मद्वाक्यमवधानेन यत्नतः—”इति पाठो दृश्यते—स च मूलस्थपाठैनैव गतार्थः । ५. दुर्गतिप्रस्ता देवतार्चनतत्परा । ६. पुरा दृष्ट्वा ब्रत दानमथापि वा ।

आधारभूता भूतानां बहुपत्या पतिप्रिया । स्फृहणीया त्रिजगतं त्रिवर्गफलभागिनी ॥१५
 वसिष्ठस्त्तमुवाचाथ शृणुष्व कथयामि ते । दानं मानकरं^१ पुंसां सर्वकामप्रदायकम् ॥१६
 कृत्वा ताम्रमर्यो स्थालीं पलानां पञ्चभिः शतैः । अशक्तस्तु तदर्देन चतुर्थशेषेन वा पुनः ॥१७
 सर्वशोक्तविहीनस्तु मृणमयीमपि^२ कारयेत् । सुगम्भीरोदरदरीदृढपण्डकुटुम्बकाम् ॥१८
 मुद्गतन्दुलनिष्पत्नसुविस्कृतिपूरितम् । उपदंशोदकयुतां घृतपात्रसमन्विताम् ॥१९
 धौतपाश्चर्वा धौतकर्णा चर्चितां चन्दनेन च । स्थाप्य मण्डलके वस्त्रैः पुष्पधूपैरथर्चयेत् ॥२०
 आदित्येऽहनि संक्रान्तौ चतुर्दश्यज्ञमीषु वा । एकादश्यां तृतीयायां विप्राय प्रतिपादयेत् ॥२१
 ज्वलज्ज्वलनपार्षद्यस्तुण्डलैः सजलैरपै । भवेद्वौज्यसंसिद्धिर्भूतानां यिहर्ण विना ॥२२
 त्वं सिद्धिं सिद्धिकामानं त्वं पुष्टिः पुष्टिमिच्छताम् । अतस्त्वां प्रणमानस्याशु सत्यं कुरु वचो मम ॥२३
 ज्ञातिबन्धुसुहृद्दर्मे विप्रे श्रेष्ठ्यजने तथा । अभुक्तवति नाशनीयात्तथा भव वरप्रदा ॥२४
 इत्युच्चार्यं प्रदातव्या हण्डिका द्विजपुञ्जवे । तुष्टिपुष्टिप्रदा पुंसां सर्वान्मानमभीप्सता ॥२५
 वसिष्ठवचनं श्रुत्वा सा चकार तथैव तु । प्रादातस्थालीं ब्राह्मणाय बूहनां बहुदक्षिणाम् ॥२६
 सा चैषा द्वौपदी पार्थं भवद्वार्याऽभवतिप्रिया । तेन दानप्रभावेण भविताऽशून्यपाणिका ॥२७
 एषा सती शची स्वाहा सावित्री भूररुन्धती । श्रीरेषा यत्र वसति न किंचित्तत्र दुर्लभम् ॥२८

सन्तान, पति प्रेयसी, तीनों लोकों की स्फृहणीयता और त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) का सुखानुभव प्राप्त हो सके । वशिष्ठ ने उससे कहा—मैं तुम्हें वह दान बता रहा हूँ, जो प्राणियों के लिए मानप्रद तथा समस्त कामनाओं को सफल करता है, सुनो । पाँच, सौ अथवा अशक्त होने पर तदर्थं या चौथाई पल प्रमाण के ताँबे की और सब भाँति शक्ति हीन होने पर मृत्तिका (मिट्टी) की ही गंभीर, दृढपण्ड युक्त स्थाली (बटुलोई) को मूंग, चादल की खिचड़ी से पूर्ण कर मूली आदि और घृत समेत उसे, जिसका पार्श्व भाग और कर्ण (पकड़ने वाला चुल्ला आदि) धौत स्वच्छ हों, चन्दन, चर्चित करते हुए मण्डल में स्थापित और वस्त्र, पुष्प धूपादि से पूजित करे । अनन्तर उस रविवार, संक्रान्ति, चतुर्दश, अष्टमी, एकादशी या तृतीया के दिन ब्राह्मणों को समर्पित करे । १२-२१। क्योंकि प्रज्वलित अग्नि, जल समेत चावल के रहते हुए भी प्राणियों की भोजन सिद्धि विना बटुलोई के नहीं हो सकती है । सिद्धि के इच्छुकों की सिद्धि हो, पुष्टि चाहने वालों की पुष्टि हो, अतः तुम्हें प्रणाम करता हूँ, मेरी बातें सत्य करो । बन्धु वर्ग, सुहृद्दर्मा, ब्राह्मण, एवं सेवकों में भी कोई बिना भोजन किये न रहे ऐसा वर प्रदान करो । ऐसा कहते हुए वह दण्डी किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करे जो मनुष्यों की तुष्टि पुष्टि समेत सभी कामनाएँ सफल करती हैं । वसिष्ठ की ऐसी बातें सुनकर उसने उसी प्रकार अधिक दक्षिणा समेत एक स्थाली (बटुलोई) एक ब्राह्मण को अर्पित किया । पार्थ ! उसी दान के प्रभाव से द्वौपदी तुम्हारी प्रिय पत्नी हुई है जिनका हाथ कभी भी (पुत्र से) शून्य नहीं रहता है । यही सती इन्द्राणी, स्वाहा, सावित्री, भू और अरुन्धती है यह भी रूप जहाँ निवास करती है वहाँ किसी वस्तु की कंभी नहीं रहती है । २२-२८। कौतैय (द्वौपदी) स्थाली (बटुली) को

१. मानप्रदम् । २. वाऽपि ।

अनया या भूता स्थाली तया सर्वनिदं जगत् । भोजयिष्यसि कौन्तेय किमतो ब्राह्मणा अभी ॥२९
मैत्रेयात्तदुपश्रुत्यै तत्र संहष्टमानसः । पूर्वं भोजितवानस्मि ब्रह्मिप्रजनान्वने ॥३०
अन्नदानप्रसंगेन स्थालीदानमिदं मया । कथितं पुण्डरीकाख क्षन्तव्यमनसूयया ॥३१

स्थालीं विशालवदनां च सत्तण्डुलां च यच्छन्ति ये नधुरशूल्बमर्यो द्विजेभ्यः ।

तेषां सुहृत्स्वजनविप्रजनेन भोज्यं सम्भुज्यमानभपि कृष्ण न याति नाशम् ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

स्थालीदानविधिवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७०

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

दासीदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

दासीदानमहं तेऽद्य प्रवक्ष्याम्यरिसूदन । भक्त्या स्नेहाच्च भवतो यज्ञोक्तं केनचित्क्वचित् ॥१
चतुर्णामाश्रमाणां हि गृहस्थः श्रेष्ठ उच्यते । गृहस्थाच्च गृहं श्रेष्ठं गृहाच्छ्रेष्ठा वराः स्त्रियः ॥२
पूर्णन्दुविम्बवदनाः^२ पीनोन्नतपयोधराः । तदगृहं यत्र दृश्यन्ते योषितः शीलमण्डनाः ॥३

अन्नादि से परिपूर्ण किया है उसी से यह सारा संसार तृप्त हो सकता । इन ब्राह्मणों की कौन सी बात हैं । मैत्रेय (वसिष्ठ) जी की बातें सुनकर मैं ने उस जंगल में अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराया था । पुण्डरीकाख ! इस अन्न-दान के प्रसङ्ग में मैंने इस स्थाली (बटुली) दान का भी वर्णन किया आतः इसे क्षमा करेंगे । कृष्ण इस प्रकार विशाल आकार की बनी हुई बटुली (या हंडी) जो तांबे द्वारा सौन्दर्य पूर्ण निर्मित और चावल से पूरिपूर्ण हो, ब्राह्मणों को अपित करने वाले पुरुष के यहाँ मित्र, बन्धु वर्ग और ब्राह्मण वृन्दों के भोजन करने पर भी वह कभी रिक्त (खाली) नहीं होती है । २९-३२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में स्थाली दान विधि वर्णन नामक एक सौ सततरवाँ अध्याय समाप्त । १७०।

अध्याय १७१

दासीदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अरिसूदन ! तुम्हारी भक्ति और स्नेह वश मैं तुम्हें दासी दान बता रहा हूँ, जिसे कहीं कोई जानता ही नहीं । चारो आश्रमों में गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ कहा गया है, गृहस्थ से गृह श्रेष्ठ और गृह से उत्तम स्त्रियाँ श्रेष्ठ कही गयी हैं । क्योंकि गृह वही कहा जाता है जिसमें पूर्ण चन्द्र के समान मुख, पीत और उन्नत पयोधर एवं शील भूषित स्त्रियाँ निवास करती हैं । १-३। कुलस्त्रियों की अर्चना (पूर्ण रीति से पालन पोषण) जिस घर में सुसम्पन्न होती है । देवता भी उसी घर में आनन्द मन रहकर निवास करते

१. मैत्रेयादुपश्रुत्याहमेतद्वृत्तान्तमुत्तमम् । सर्वान्भोजितवानस्मि । २. हिमांशुबिम्बवदनाः ।

जामयो यत्र पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते विनंक्षयत्याशु तद्गृहम् ॥४
 जामयो यानि गेहःनि शपन्त्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव सद्योऽयान्ति पराभवम् ॥५
 अमृतस्येव कुण्डानि सुखानामिवराश्यः । रतेरिव निधानानि योषितः केन निर्मिताः ॥६
 श्यामा मन्थरगामिन्यः पीनोन्नतपयोधराः । महिष्यो वरनार्यश्च न भवति गृहेणैः ॥७
 अहिरण्यमदासीकल्पान्नाज्यमगोरसम् । गृहं कृपणदृतीनां नरकस्यापरो विधिः ॥८
 अदण्डपाशिकं ग्राममदासीकं च यद्गृहम् । अनाज्यं भोजनं यच्च वृथा तदिति मे मतिः ॥९
 विभवाभरणा दास्यो यद्गृहं रामुपासते । तत्रास्ते पंकजकरा लझमीः क्षीरोदवासिनो ॥१०
 न यत्रास्ति गृहे शौकं न सुखं व्यवहारजम् । यत्र वा नास्तिदास्येका तत्सदैवानवस्थितम् ॥११
 यत्र कर्मकरी नास्ति जर्वकर्मकरो सदा । न तच्छान्तं विङ्कुराणां करोति शुभतामपि ॥१२
 यदेका कुरुते दासी गृहस्थेन भृता हि सा । बदुलोकाकुलो ग्रामो दासीदासाकुलं गृहम् ॥१३
 बुद्धिर्घर्माकुला गत्य तत्प्य चेतः किमाकुलम् । यत्र भार्यागृहे दक्षा दास्यकर्मण्यनुव्रताः ॥१४
 भृत्याः सदोद्यमपरास्त्रिवर्गस्तत्र दृश्यते^१ । यद्यदिष्टतम् लोके तत्तद्देयनिति श्रुतिः ॥१५

हैं और जिस घर में उनका सम्मान नहीं होता वह अत्यन्त श्रीद्वय विनष्ट हो जाता है । क्योंकि जिस घर में असम्मानित होकर कुलस्त्रियाँ उसे शाप देती है वह पर कृत्या द्वारा विनष्ट होने की भाँति सद्यः नष्ट हो जाता है । इसलिए कि स्त्रियाँ अमृत का कुण्ड, सुखों की राणि और रतिका विधान रूप होती हैं अतः आश्चर्य होता है कि इनका निर्माण कर्ता कौन है । श्यामा^१ (षोडशवर्षीया), (स्थूल नितम्ब के नाते) मन्थर गमन करने वाली और पीन उन्नत पयोधर वाली परमोत्तम नारियाँ और भैसे प्रत्येक गृहस्थों के यहाँ नहीं होती हैं । ४-७। जिस कृपण (कार्ण्य) वृत्तिवाले पुरुष के घर में हिरण्य (सोना चाँदी), दासी, (नौकरानी), गोरस न हो और पुत्र धृत पर्याप्त न होता हो वह दूसरा नरकः ही है । दण्ड पाशधारी सेवक (द्वारपाल) रहित ग्राम, दासीहीन गृह, धृत हीन भोजन, मेरी सम्मति से ये सभी व्यर्थ हैं । अनेक भाँति के आभूषणों से सुशोभित दासी जिस घर में सेवा करती है, उस घर में क्षीर सागर निवासिनी लक्ष्मी हाथ में सुशोभित कमल पुष्प लिए सदैव निवास करती है । जिस घर में पवित्रता, व्यावहारिक सुख और एक भी दासी नहीं रहती है वह घर सदैव अनवस्थित रहता है । उसी भाँति जिस घर में समस्त कार्यों को सुसम्पन्न करने वाली दासी नहीं रहती है उसमें सैकड़ों सेवकों के रहते हुए भी वह शुभ कार्य नहीं हो पाता है, जो स्वामी द्वारा पाली पोषी जाने वाली एक शुभ लक्षणा एवं परिश्रम शीला दासी सुसम्पन्न करती है । जिसके ग्राम में जन संख्या परिपूर्ण हो, घरमें अनेक दास-दासियाँ वर्तमान हों और बुद्धि सदैव धर्मकार्यों में व्यस्त रहती है, क्या उस पुरुष (गृहस्वामी) का चित्त कभी आकुल हो सकता है । ८-१३^२। जिस घर में स्त्री (गृहस्वामिनी) अत्यन्त दक्ष (चतुर) कर्म दासी और सेवक वर्ग सदैव उद्यम परायण रहते हैं वहाँ तीनों वर्गों (धर्म, अर्थ और काम) की सफलता सदैव दिखायी देती है । मर्त्य लोक में रहकर जो अपना अत्यन्त अभीष्ट वस्तु हो उसका दान, अवश्य करना चाहिए, ऐसा श्रुति का कथन है, इसलिए

१. तिष्ठति । २. शोभने शशलाञ्छने ।

१. श्यामा श्यामवर्णा च श्यामा षोडशवर्षीयिकी । शीतकाले भवेदुष्णा यीष्मे च सुखशीतला ॥

एतद्विचार्य हृदये देया दासी द्विजातये । स्थिरनक्षत्रसंयुक्ते सोमे^१ सौम्यग्रहान्विते ॥१६
 दानकालं प्रशंसन्ति सन्तः पर्वणि वा पुनः । अलङ्कृत्य यथाशक्त्या वासोभिर्भूषणैस्तथा ॥१७
 ब्राह्मणाय प्रदातव्या भन्नेणानेन कौरव^२ । इयं दासी मया तु अभ्यं भगवन्प्रतिषादिता ॥१८
 कर्मोपयोज्या भोज्या वा यथेष्टं भद्रमस्तु^३ ते । दत्त्वा क्षमाप्येत्पश्चाद्ब्राह्मणं काञ्चनेन तम् ॥१९
 अनुवर्ज्य गृहद्वारं यावत्पश्चाद्विसर्जयेत् । अनेन विधिना दद्यादंकग्रित्वा सुरालये ॥२०
 मखे चापि महाराज प्रसिद्धे वा प्रतिश्रये । सर्वकर्मकर्तारो दत्त्वा तरुणीं रूपशालीनीम् ॥२१
 प्राप्यते यत्कलं पुंभिः पार्थ तत्केन वर्ण्यते ॥२२

दासीं समीक्ष्य बहुशो गृहकर्मदक्षां पां ब्राह्मणाय कुलशीलवते ददाति ।
 विद्यापराधिपशतैरपि पूजितोऽसौ लोकात्रिलोकरमयाप्सरसां प्रयाति ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 दासीदानविधिवर्णनं नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७१

आगे हृदय में इन बातों पर विचार विमर्श करके दासी दान ब्राह्मण को अवश्य अर्पित करना चाहिए । स्थिर नक्षत्र, सौम्यग्रह युक्त चन्द्रमा (सोम) का दिन या पर्व दिवस प्रशस्त दान काल बताया गया है । कौरव ! इसलिए यथा शक्ति वस्त्राभूषण से सुशोभित दासी का दान इस मंत्र द्वारा ब्राह्मणों को अर्पित करना चाहिए—भगवन् ! मैंने यह दासी आप की सेवा में अर्पित की है अतः आप के यथेष्ट कार्यों को यह सुसम्पन्न करती रहेगी । यह कहकर काञ्चन समेत दासी ब्राह्मण को अर्पित करते हुए गृह के दरवाजे तक अनुगमन करके विसर्जित करे । महराज ! इस विधान द्वारा देवालय, यज्ञ, अथवा किसी प्रसिद्ध स्थान में समस्त कार्यों को सुसम्पन्न करने वाली दासी, जो तरुणी एवं रूप सौन्दर्य सम्पन्न हो, ब्राह्मण को अर्पित करने में कौन समर्थ हो सकता है । इस प्रकार गृह कर्म में अत्यन्त निपुण दासी किसी कुलशील वाले ब्राह्मण की सेवा में अर्पित करने वाला मनुष्य विद्याधरों के सैकड़ों अधिनायकों द्वारा पूजित होकर लोक में त्रिलोक सुन्दरी अप्सराओं से नित्य सुसेवित होता है । १४-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 दासीदानविधिवर्णन नामक एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । १७१

१. शोभने शशलांछने । २. गौरिख । ३. अश्नुते । ४. कस्याः ।

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रपादानविधिवर्णनम्
युधिष्ठिर उवाच

प्रपादानस्य माहात्म्यं वह देवकिनन्दन । कथं देया कदा देया दाने तस्याश्र्व^१ किं फलम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रे महोत्सवे । पुण्येऽह्नि विप्रकथिते ग्रहचन्द्रबलान्विते ॥२
मण्डपं कारयेद्विद्वान्धनच्छायं भनोरमम् । पुरस्य मध्ये पथि वा कान्तारे तोयवर्जिते ॥३
देवतायतने वापि चैत्यवृक्षतलेऽपि^२ वा । सुशीतलं च रस्यं च विचित्रासनसंयुतम् ॥४
कारयेन्मण्डपं भव्यं शीतवातसहं^३ दृढम् । तन्मध्ये स्थापयेद्वृक्त्या मणीकुम्भांश्च शोभनान् ॥५
अकालमूलान्करकान्वस्त्रैरावेष्टितानथ । ब्राह्मणः शीलसम्पन्नो दृतिं^४ दत्त्वा यथोचिताम् ॥६
प्रपापातः प्रकर्तव्यो^५ बहुपुत्रपरिच्छदः । पानीयपानेनाश्रान्तान्यः कारयति मानवान् ॥७
एवंविधां प्रपां कृत्वा शुभेऽह्नि विधिपूर्वकम् । यथा शक्त्या नरश्रेष्ठ प्रारम्भे भोजयेद्विद्वजान् ॥८
ततश्चोत्सर्जयेद्विप्रान्मन्त्रेणादेन नानवः । प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता^६ ॥९
अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु च पितामहाः । अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टम् ॥१०

अध्याय १७२

प्रपादान (प्याऊ) विधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवकिनन्दन ! मुझे (प्याऊ) दान का महत्व बताने की कृपा करें, वह दान किस विधान द्वारा और किस समय दिया जाता है एवं उस दान का फल क्या है ॥१

श्रीकृष्ण बोले—फाल्गुन मास के व्यतीत होने के अनन्तर नैत्रमास के उस महोत्सव के समय, जो ग्रहबल और चन्द्रबल समेत पुण्य अवसर कहलाता है, घने छाया वाले एक मनोरम मण्डप का निर्माण करे जो गाँव के मध्य, किसी मार्ग, जल-विहीन, देवालय, या चैत्य वृक्ष की छाया में निश्चित हो और सुशीतल, रमणीयक, विचित्र आसन युक्त, भव्या भाग में मृतिका के भुन्दर और दृढ़ धड़े और पानी पिलाने के लिए 'करवा' रखे तथा इन्हें वस्त्राच्छादित किये रहे । किसी शील सम्पन्न ब्राह्मण को जिसके अनेक पुत्र हों, उचित वेतन द्वारा वैतनिक रूप में वहाँ उस कार्य के लिए नियुक्त करे । जो भ्रान्त प्राणियों को जलपान द्वारा प्रभान्त (सुखी) बनाने की चेष्टा करता रहे । नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार किसी शुभ अवसर पर सविधान उस प्रपा (प्याऊ) को स्थापित कर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन भी उसके आरम्भ में सम्पन्न करे ॥२-८। और उसके अनन्तर इस मन्त्र द्वारा उसका उत्सर्जन करे सभी प्राणियों के (जलपान करानेके) निमित्त सर्वसाधरण प्याऊ मैंने प्रारम्भ कर दिया है, जिसके प्रदान से पितृपितामहगण भली भाँति तृप्त हों ।

१. कस्याः । २. अथ वा, तथा । ३. शीतवातमहम्—इति पाठे शीतवाताभ्यं मह उत्सवो यस्मिंत्तमित्यर्थः । ४. भृतिम् । ५. तु कर्तव्यः । ६. प्रतिपादये ।

त्रिपक्षं वा महाराज जीवनं परम् । गन्धादचं सुरतं शीतं शोभने भाजने स्थितम् ॥११
 प्रदद्यादप्रतिहतं मुखं चानवलोकयन्^१ । प्रत्यहं कारयेत्स्यां शक्तिः द्विजभोजनम् ॥१२
 अनेन विधिना यस्तु ग्रीष्मशोषणाशनम् ; पानीप्रमुक्तमं दद्यात्स्य पुण्यफलं शृणु ॥१३
 सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु च यत्कलम् । ततुण्यफलमाप्नोति सर्वदेवैः सुपूर्जितः ॥१४
 पूर्णचन्द्रप्रतीकाशां^२ विमानं सोधिरह्य च । याति देवेन्द्रं नगरे पूज्यमानोऽप्सररोगणैः ॥१५
 विंशत्कोटयो हि वर्षाणां यक्षगन्धर्वसेवितः ! पुण्यक्षयादिहागत्य चतुर्वर्दी द्विजो भवेत् ॥१६
 ततः परं पदं याति पुनरावृत्तिर्दुर्लभम् ! प्रपादानतस्मर्थेन विशेषाद्वर्ममीप्सता ॥१७
 प्रत्यहं धर्मघटकः कर्पटावेष्टिताननः ! ब्राह्मणस्य गृहे नेयः शीतामलजलः शुचिः ॥१८
 तत्त्वैवोद्यापनं कार्यं भासिमासि नरोत्तम । मण्डकावेष्टिकाभिश्च पक्वान्नैः सार्वकामिकैः ॥१९
 उद्दिश्य शङ्करं विष्णुं ब्राह्मणं कुरुनन्दन । सलिलं प्रोक्षयित्वा हुं पन्त्रेणानेन मानवः ॥२०
 एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्सफला मम सन्तु मनोरथाः ॥२१

(इति धर्मघटदानमन्तः)

अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति । प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः ॥२२
 धर्मकुम्भप्रदानेऽपि यद्यशक्तः पुमान्भवेत् । तेनाश्वत्थतरोभूलं सेच्यं नित्यं^३ जितात्मना ॥२३

पश्चात् चार मास तक अनिवार्य वह (प्याऊ का कार्य) चलाता रहे । महाराज ! जीवों के जीवन रूप यह जल दान जो सुगन्धित, सुरस (स्वादिष्ट) और शीतल रूप में किसी शोभन पात्र में रखा रहे, (कम से कम) तीन पक्ष (डेढ़ मास) तक अवश्य सुसम्पन्न करे । पानी पिलाते समय पीने वाले का मुख न देखकर यह कार्य व्यापार अवतिहत अनिवार्य रूप से किया करें इस विधान द्वारा ग्रीष्म की उष्णता का अपहरण करने में समर्प इस उत्तम जल दान से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है मैं बता रहा हूँ, सुनो! समस्त तीर्थों और सम्पूर्ण दानों द्वारा जिन फलों की प्राप्ति होती है वे सभी इसके द्वारा प्राप्त होते हैं और अन्त में समस्त देवों से पूर्जित होकर पूर्व चन्द्रमा के समान विमान पर सुशोभित तथा अप्सरागणों से सुसेवित होते हुए वह भी देवेन्द्र नगर (स्वर्ग) पहुँचता है । वहाँ यक्ष गन्धर्वों द्वारा बीस कोटि वर्षों तक सुखानुभव करने के उपरान्त क्षीण पुण्य के समय इसलोक में चतुर्वर्दी ब्रह्मण होता है । १-१६। पुनः अन्त में निधन होने पर वहाँ से वह पद प्राप्त करता है जहाँ से इस लोक में आना अत्यन्त दुर्लभ रहता है । धर्म का विशेष इच्छा वश प्रपा दान (प्याऊ) की असमर्थता में मनुष्य को पवित्र प्रमल जल पूर्ण एक घडे वस्त्राच्छन्न करके प्रतिदिन ब्रह्मण के घर अर्पित करना चाहिए । नरोत्तम ! प्रतिमास भाँति-भाँति के पक्वान्नों समेत वस्त्राच्छन्न जल-कलश द्वारा उद्यापन कार्य सुसम्पन्न करे । कुरुनन्दन ! शङ्कर, विष्णु और ब्रह्मा के उद्देश्य से मनुष्य को इस मंत्र द्वारा जल प्रोक्षण करना चाहिए । ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक यह धर्म घट मैंने अर्पित किया है अतः इसके प्रदान द्वारा मेरे सभी मनोरथ सफल हों—ऐसा कहकर अर्पित करे । १७-२१। इस विधान द्वारा धर्म कलश का दान करने वाला मनुष्य निस्सन्देह प्रपा (प्याऊ) दान का फल प्राप्त करता है । इस भाँति के धर्म घर के दान करने में भी असमर्थ रहने वाले मनुष्य को सयंम पूर्वक प्रतिदिन पीपल

अश्वत्थरूपो भगवान्नीयतां मे जनार्दनः । इत्युच्चार्य नमस्कृत्य प्रत्यहं पापनाशनम् ॥२४
यः करोति तरोमूले सेकं मासचतुष्टयम् । सोपि तत्फलमत्प्रोति श्रुतिरेषा सनातनी ॥२५

सुस्वादुशीतसलिला क्लमनाशिनो च प्रान्ते पुरस्य पथि पान्थसमाज्ञमौ !

यस्य प्रपा भवति सर्वजनोपभोग्या धर्मोत्तरः स खलु जीवति जीवलोके ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणे श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
प्रपादानविधिवर्णनं नाम द्विरप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७२

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अग्नीष्ठिकादानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अग्नीष्ठिका कथं देया शिशिरे शीतभीरुभिः । सर्वसत्त्वोपकाराय करुणीकृतमानसैः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

अग्नीष्ठिकामहं पार्थ कथयामि निबोध ताम् । यथा येन विधानेन सर्वस्त्वसुखप्रदाम् ॥२
आदौ भार्तर्शिरे मासि शोधने दिवसे शुभाम् । अग्नीष्ठिकां कारयित्वा^१ सुखासनवर्ती शुभाम्^२ ॥३

वृक्ष के मूल भाग सेचन करना चाहिए। ‘अश्वत्थ (पीपल) दृक्ष रूपी भगवान् जनार्दन मेरे ऊपर प्रसन्न हों’ ऐसा कहते हुए उत पापनाशक को प्रतिदिन नमस्कार करे। इस प्रकार निरन्तर चार मास तक पीपल वृक्ष के मूल भाग (जड़) का सेचन करने वाला प्राणी भी वही फल प्राप्त करता है, ऐसा सनातनी श्रुति (वेदों) का कथन है। इस भाँति सुस्वादु, शीतल जल पूर्ण। खेदनाशिनी अपा (प्याऊ) का दान जिससे समस्त जन सुखी हों अपने नगर गाँव के समीप या किसी चौराहे पर नित्य करने वाला मनुष्य धर्म मूर्ति के रूप में इसलोक में वही जीवित कहा जाता है। १२-२६

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
प्रपादान विधि वर्णन नामक एक सौ बहुतरवाँ अध्याय समाप्त। १७२।

अध्याय १७३

अग्नीष्ठिका (अंगीठी) दान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—शिशिर क्रृतु में शीत भीरु प्राणियों द्वारा जो अत्यन्त कारणिक होते हैं, समस्त प्राणियों के उपकारार्थ अग्नीष्ठिका (अंगीठी) का दान किस भाँति किया जाता है। १

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें अग्नीष्ठिका (अंगीठी) का विधान बता रहा हूँ, जिससे वह समस्त प्राणियों के लिए सुखप्रद होती है, सुनो ! मार्गशीर्ष (अगहन) मास के प्रारम्भ में किसी शुभ

१. कारयेतु । २. दृढाम् ।

देवाङ्गणे पथे गेहे विस्तीर्णं चत्वरेऽथ वा । उभयोः सन्ध्ययोः कृत्वा संशुष्कं काष्ठसञ्चयम् ॥४
 ततः प्रज्वालयेदपि हुत्वा व्याहृतिभिः क्रमात् । अनेन विधिना हुत्वा प्रत्यहं ज्वालयेत्ततः ॥५
 यदि कश्चित्क्षुधार्थीं स्पाद्योज्यं तस्मैः प्रकल्पयेत् । मुखासीनो जनस्तत्र विशीतो विज्वरस्तथा ॥६
 यः करोति कथाः पार्थं न ताः शक्या मयोदितुम् । राजवार्ता जनवार्ता यदि कश्चिन्निजेच्छया ॥७
 वदेल्लोकः सुखासीनो न केनांपि निवार्यते । अनेन विधिना यस्तु दद्यादग्रीष्टिकां नरः ॥८
 तस्य पुण्यफलं राजन् कथ्यमानं निबोध मे । विमाने चार्कसंकाञ्जे समारुद्धो महाधने ॥९
 षष्ठिवर्षसह्लाणि षष्ठिवर्षशतानि च । हर्षितोऽत्यन्तसुखितो ब्रह्मलोके भवीयते ॥१०
 इह लोकेवतीर्णश्च चतुर्वेदो द्विजो भवेत् । नीरुजः सत्रयाजी च अनिवत्तेजसान्वितः ॥११

चैत्येसुराङ्गणसभावसथे सुभव्यां येऽनीष्टिकां प्रचुरकाष्ठवतीं प्रदद्युः ।

हेमन्तशैशिरऋतौ सुखदा जनानां कायाग्निदीपनमलं पुनराप्नुवन्ति ॥१२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्विंश्चिरसंवादे

अग्नीष्टिकादानविधिवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३

दिवस सुन्दर शुभासन युक्त अंगीठी बनाकर देवालय के प्राङ्गण, मार्ग, गृह या विस्तृत चौराहे पर दोनों संध्या समय रखकर उसमें सूखे का काष्ठ का संचय करते हुए उसी प्रज्वलित अग्नि में सर्वप्रथम व्याहृतियों के उच्चारण पूर्वक आहुति डालना चाहिए । उसी भाँति प्रतिदिन हवन पूर्वक उसे प्रज्वलित रखना बताया गया है । यदि उस समय कोई क्षुधा पीड़ित प्राणी आ जाता है तो उसके लिए भोजन की भी व्यवस्था करे जिससे वहाँ का जन वर्ग सुखपूर्वक अपने गीत का अपना कर सके । पार्थ ! वहाँ स्थित मनुष्यों की आपस में जो कथाएँ आदि होती रहती हैं उसे बताने में असमर्थ हूँ क्योंकि कोई राजचर्चा, कोई जनवार्ता करता रहता है और यदि कोई स्वेच्छ्या कुछ भी कहता है तो उसे कौन रोक सकता है । राजन् ! इस विधान द्वारा अंगीठी दान करने वाले मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! सूर्य सन्निभ विमान पर जो अत्यन्त धनपूर्ण रहता है, बैठकर अत्यन्त सुख पूर्वक ब्रह्मलोक में पहुँचने पर वह मनुष्य वहाँ साठ सहस्र और साठ वर्ष तक पूजित होता है ॥१-१०। पुनः कभी इस लोक में आने पर वह चतुर्वेदी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होता है और अग्नि के समान तेजस्वी रहकर वह सदैव नीरोग और याज्ञिक होता है । इस प्रकार चैत्य, देवालय प्राङ्गण, सभा, या चौराहे पर हेमंत शिशिर के दिनों में प्रचुर काष्ठों की अंगीठी का जो अत्यन्त सुन्दर और मनुष्यों को सुखप्रदा होती है, दान करने वाले शरीरादि दान फल प्राप्त करते हैं ॥११-१२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में

अग्नीष्टिका दान विधि वर्णन नामक एक सौ तिहतरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७३।

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

विद्यादानविधिवर्णनम्
युधिष्ठिर उदाच

बहुप्रदानं गोदानं त्वत्तो विद्वच्छुतं स्याः । भूमिदानस्य माहात्म्यं विधिश्चैवावधारितः ॥३
साम्रतं यदुशार्दूल विद्यादानस्य यो विधिः । तस्महं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व जनार्दन ॥२

श्रीकृष्ण उदाच

विद्यादानविधिं दद्ये याथात्थ्येन तेऽनुगा । यथादेयं फलं यच्च दत्तेन कुरुनन्दन ॥३
शुभेऽह्नि विप्रकथिते गोमयेन सुशोभनम् । कारयेन्मण्डलं^१ दिव्यं चतुरव्यं समन्ततः ॥४
पुष्पप्रकरसञ्चलं स्वस्तिका दिविभूषितम् । पुस्तकं तत्र संस्थाप्य गन्धपुष्पैः समच्चर्येत् ॥५
सौवर्णी लेखनी कार्या रौप्यं च मषिभाजनम् । लेखकं पूज्यित्वा तु आरम्भ^२ कारयेत्सुधीः ॥६
विनीतश्चाप्रमत्तश्च ततः प्रभृति लेखकः । मात्रानुस्वारसंयुक्तं पदच्छेदसमन्वितम्^३ ॥७
समानि समशीर्षणि वर्तुलानि घनानि च । लेखयेदक्षराणाहं तदगतेनान्तरात्मना ॥८
निष्पादयित्वा तच्छास्त्रं शैवं वाप्यथ वैष्णवम् । निष्पादिते ततः पूज्यो लेखके वस्त्रभूषणैः ॥९
सम्पूजयित्वा तच्छास्त्रं देयं गुणवते तदा^४ । शास्त्रसद्भावविदुषे वाचके च प्रियम्बदे ॥१०

अध्याय १७४

विद्यादान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—विद्वन् ! मैंने आप के द्वारा अनेक दान समेत गोदान विधि और भूमि दान का माहात्म्य भली भाँति श्रवण कर लिया है । यदुशार्दूल, जनार्दन ! अब मुझे विद्यादान का विधान सुनने की इच्छा है, बताने की कृपा करें । १-२

श्रीकृष्ण बोले—कुरुनन्दन ! मैं तुम्हें विद्यादान का विधान, जिससे वह दान दिया जाता है और उसके जो फल प्राप्त होते हैं, बता रहा हूँ, सुनो ! ब्राह्मण द्वारा निश्चित किये गये किसी शुभ अवसर पर गोमय (गोबर.) से लिपि हुई भूमि में एक दिव्य, सुशोभन और चौकर मण्डप का, जो पुष्पों से चारों ओर आच्छन्न स्वस्तिका आदि शुभ चिन्हों से भूषित हो, निर्माण करके उसमें पुस्तक का स्थापन और गन्ध-पुष्प द्वारा उसकी अर्चना करे । उसके साथ सुवर्णी की लेखनी और चाँदी की मसीपात्र (दवात) भी आरम्भ के समय रखना चाहिए । अनन्तर विनय विनम्र और आलस्य हीन होकर लेखक को उसी दिन से मात्रा, अनुस्वार पदच्छेद और समान समशीर्षक की (सीधीलाईन) समेत अक्षरों का लिखना आरम्भ करना चाहिए, जो गोलाकार और घने हों । ३-७। इस प्रकार तन्मयता से शैव या वैष्णव शास्त्र को लेखबद्ध करदेने के उपरान्त वस्त्राभूषण द्वारा लेखक की अर्चना करनी चाहिए और शास्त्र भी सविधि अर्चा करके उसे किसी गुणी पुरुष को अप्पित करे, जो सद्भावना पूर्ण शास्त्र मर्मज्ञ और मधुर भाषी एवं

१. मण्डलम् । २. विप्रमाकारयेत् । ३. पदबन्धसमन्वितम् । ४. सदा ।

वस्त्रयुग्मेन सम्वीतं पुस्तकं प्रतिपादयेत् । सामान्यं सर्वलोकानां स्थापयेदय वा मठे ॥११
अनेन विधिना दत्त्वा यत्कलं प्राप्नुयान्नः । तदहं ते प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर निबोध तत् ॥१२
यत्पुण्यं तीर्थयात्रायां यत्पुण्यं यज्वनां^१ तथः । तत्पुण्यं कोटिगुणितं विद्यादानाल्लनेन्नः ॥१३
कपिलानां सहस्रेण सम्पूर्णदत्तेन यत्कलम् । तत्कलं समवाप्नोति पुस्तकस्य^२ प्रदायकः ॥१४
पुराणं भारतं वापि रामायणमथापि वा । दत्त्वा यत्कलमाप्नोति पार्थं हत्केन दर्शयते ॥१५
प्रातरूप्त्याय यः शिष्यानध्यापयति यत्नतः^३ ; वेदं शास्त्रं नृत्यगीतं कस्तेन सदृशः कृती ॥१६
उपाध्यायस्य यो वृत्तिं दत्त्वाऽध्यापयते जनः । किं न दत्तं भवेत्तेन धर्मकामार्थदर्शिना ॥१७
छात्राणां भोजनाभ्यंगं वस्त्रं भिक्षामथापि वा । दत्त्वा प्राप्नोति पुरुषः^४ सर्वकामान्नं संशयः ॥१८
विवेको जीवितं दीर्घं धर्मकामार्थसम्पदः । सर्वं तेन भवेद्दत्तं छात्राणां योदणे कृते ॥१९
शास्त्रं शस्त्रकलाशिलं यो यदिच्छेद्युपार्जितुम् । तस्योपकारकरणे पार्थं कार्यं सदा मनः ॥२०
वाजपेयसहस्रस्य सम्पर्यग्नियत्य यत्कलम् । तत्कलं समवाप्नोति विद्यादानान्नं संशयः ॥२१
शिवालये विष्णुगृहे सूर्यस्य भवेनेऽथ वा । यः कारयति धर्मात्मा सदा पुस्तकदाचनम् ॥२२
गोऽभूहिरण्यवासांसि शयनान्यासनानि च । प्रत्यहं तेन दत्तानि भवन्ति भरतर्षभः ॥२३

वाचक (व्यास) हो, अथवा युग्म वस्त्र से आच्छादित उस पुस्तक को समस्त जनों के हितार्थ किसी मठ में स्थापित करे । युधिष्ठिर ! इस विधान द्वारा इसके दान करने से जिन फलों की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! तीर्थ यात्रा के समस्त पुण्य और यज्ञानुष्ठान द्वारा जितने पुण्य की प्राप्ति होती है, उतने कोटि गुन पुण्यफल मनुष्यों को विद्या दान द्वारा प्राप्त होते हैं । सहस्र कपिलाओं के सविधि दान करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है वह फल पुस्तक प्रदाता को अवश्य प्राप्त होता है । पार्थ ! पुराण, महाभारत, अथवा रामायण आदि के दान द्वारा जिन फलों की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है । १-१५। प्रातः उठ कर नित्य कर्म के अनन्तर जो सप्रयत्न शिष्यों को वेदशास्त्र का या नृत्य गान का अध्ययन कराता है उस मुकुटी के समान अन्य कौन हो सकता है । जिसके (वृत्ति) वेतन प्रदान द्वारा उपाध्याय (अध्यापक) नियुक्त कर अध्ययन का कार्य कराता है तो उस धर्मार्थ दर्शी पुरुष ने कौन दान नहीं किया । क्योंकि छात्रों को भोजन, अभ्यंग, वस्त्र, और भिक्षा प्रदान करने दाला पुरुष अपनी समस्त कामनाओं को सफल करता है इसमें संशय नहीं । १६-२१। छात्र वृन्दों के पालन-पोषण करने के नाते उस पुरुष ने विवेक, दीर्घं जीवन और धर्म, अर्थ काम आदि समस्त का दान किया इसमें संदेह नहीं । पार्थ जिसके विद्यालय में शास्त्रों के अध्ययन, शास्त्रों की कलाएँ, शिल्पी (कारीगरी) आदि का यथेच्छ छात्र वृन्द करते हैं मैं उसके उपकार की बातें सदैव सोचा करता हूँ । सहस्र वाजपेय के सविधान सुसम्पन्न करने पर जिन फलों की प्राप्ति होती है वे समस्त फल विद्यादान द्वारा प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं । भारतर्षभ ! शिवालय, विष्णु मन्दिर सूर्य भवन आदि कहीं भी पुस्तक वाचन करने वाला धर्मात्मा गौ, पृथिवी, हिरण्य, वस्त्र, शयनासन आदि के दान प्रतिदिन करता है इसमें संदेह नहीं । विद्याहीन पुरुष के धर्मार्थम् का ज्ञान नहीं रहता है अतः धर्मात्मा

१. यज्ञाजिनाम् । २. पुस्तकैकप्रदायकः । ३. पंक्तिः । ४. जनम् ।

धर्मधर्मे न जानाति विद्यया रहितः पुमान् । तत्स्मात्सदैव धर्मात्मा विद्यादानरतो भवेत् ॥२४
 त्रैलोक्यं चतुरो वर्णश्रात्वारश्चाश्रमाः पृथक् । ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः ॥२५
 चतुर्युगानि राजेन्द्र एकसप्ततिसंख्यया । कल्पं विष्णुपुरे तिङ्गेत्पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥२६
 क्षिंते दोपेत्य' कालाते राजा भवति धार्मिकः । हस्त्यश्वरथदानः द्वयो दाता भौक्तः विमत्सरी ॥२७
 रूपसौभाग्यसम्पन्नो दीर्घायुर्नीरुजो भवेत् । पुत्रैः पौत्रैः परिवृतो जीवेच्च शरदां शतम् ॥२८

दानं विशेषफलदं जगतीहैं नान्यादिद्यां विहाय वदनाब्जकृताधिवासाम् ।

गोभूहिरण्यगजदानजिरथादिसर्वं तां यच्छतां किमिह पार्थ भवेत्त दत्तम् ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाण श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

विद्यादानविधिवर्णनं नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः १७४

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तुलापुरुषदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा प्रियव्रतो राजा पुत्रः स्वायंभुवस्य तु । पालयामास वसुधां प्रजापतिरिवापरः ॥१
 त्रिशट्टर्षसहस्राणि पालयित्वा महीमिमान् । सप्तद्वीपान्विभज्यासौ पुत्रेभ्यः प्रददौ विभुः ॥२

पुरुष को सदैव विद्या दान करने में ही निरत (तन्मय) रहना चाहिए । तीनों लोक चारों वर्ण, चारों आश्रम और ब्रह्मा आदि समस्त देवगण विद्यादान में सदैव प्रतिष्ठित रहते हैं । राजेन्द्र ! वह विद्या दानी धर्मात्मा इकहतर कल्प तक चारों युग के समय विष्णु लोक में सुरासुर द्वारा पूजित होता रहता है । अनन्तर इस भूतल में कभी आने पर धार्मिक राजा होता है, जो हाथी, घोड़े, और रथ का दान करते हुए दाता और मत्सरहीन भोक्ता रहता है । रूप सौन्दर्य और सौभाग्य से सम्पन्न होकर दीर्घायु, नीराग रहते हुए पुत्र पौत्रों समेत सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करता है । पार्थ ! मुख कमल में अधिवास करने वाली विद्या के अतिरिक्त अन्य दान इसभूतल में विशेष फल दायक नहीं अतः उसके दान करने वाले पुरुष ने गौ, भूमि, हिरण्य (सुवर्ण, चाँदी), गज, अश्व एवं रथ आदि सभी नहीं किया क्या । २२-२९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में
 विद्यादान विधि वर्णन नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । १७४।

अध्याय १७५

तुलापुरुषदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—प्राचीन काल में स्वायम्भुव पुत्र राजा प्रियव्रत ने (अपने राज्यकाल में) इस वसुधा का पालन पोषण एक अपर प्रजापति की भाँति किया था । उस विभु राजा ने तीस सहस्र वर्ष तक इस पृथ्वी का भली भाँति पालन पोषण करके सातों द्वीपों को अपने पुत्रों में विभक्त कर दिया । १-२। अनन्तर अपने

१. पुरुषर्षभ ।
२. विद्याविरहितः ।
३. सुरैर्नरैः ।
४. वाऽऽगत्य ।
५. शरदः ।
६. भवति ।

राज्ये निक्षिप्य तनयान्सप्तद्वीपेषु सप्त सः । विषयानुपसंहृत्य जगाम तपसे वनम् ॥३
 तपोदनगतं श्रुत्वा राजानं परमद्युतिम् । सनाजग्मुर्महात्मान ऋषयस्तं दिवृक्षवः^१ ॥४
 तानागतानृषीन्दृष्ट्वा तपोनिर्घूतकल्पवान् । पूजयामास मेधावी विधिदृष्टेन कर्मणा ॥५
 पाद्यार्थाचिमनीदेन प्रियप्रलोकतरेण च । अथ तेषूपविष्टेषु ब्राह्मणेषु महात्मसु ॥६
 आजगाम नहातेजाः पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः । दीप्यमानो महातेजा द्वितीय इव भास्करः^२ ॥७
 तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे स च राजा महारथः । उत्तस्थुर्विस्मिताः तर्वे प्रोत्फुल्लनयनास्ततः ॥८
 कृत्वा तु सम्बद्धं तेन यथायोग्यं विधानतः । विष्टरं च ददुस्तस्मै पाद्यार्थाचिमनादिकम् ॥९
 ततस्तु मुनयः सर्वे समासीन यथामुखम् । चक्रः कथा मुदायुक्ता वेदोक्तविविधाश्रयाः ॥१०
 ततः कथात्ते कर्मस्मश्चिन्मुनदस्ते सराजकाः । प्रच्छुर्वहूतनयं लोकानां हितकाम्यया ॥११

ऋषय ऊचुः

भगवन्केन दानेन व्रतेन नियमेन वा । प्राप्यते सद्गतिः पुमिभः स्त्रीभिश्च मुनिसत्तम ॥१२
 इच्छामः श्रोतुमेतते राजा दायं यतवतः

पुलस्त्य उवाच

शृणध्वं मुनयः सर्वे रहस्यं पापनाशनम् ॥१३
 उत्तमं सर्वदानानां समवायं^३ वदामि वः । यदत्त्वा ब्रह्महा गोघः पितृघो गुरुतत्पगः ॥१४

सातों पुत्रों को अपने अपने राज्य सिंहासनों पर सुखासीन करके राजा ने संयम द्वारा विषयों से अपनी इन्द्रियों को विमुख और संयत करते हुए तप करने के लिए जंगल को प्रस्थान किया । उस परम तेजस्वी राजा का बन गमन सुनकर ऋषि महात्मागण उनके दर्शनार्थ वहाँ उपस्थित हुए । मेधावी राजा ने अपने यहाँ उन ऋषियों का, जो अपने नैषिक तप द्वारा पापों को विनष्ट कर दिये हैं, आगमन देखकर उनकी सविधि अर्चना की—पाद्य अर्ध्य और आचमनीय जल दान आदि तथा मधुर प्रश्नोत्तर द्वारा सुखी बनाया अनन्त र उन ब्राह्मण महात्माओं के शांतचित्त सुखासीन होने पर ब्रह्मपुत्र महातेजस्वी पुलस्त्य जी का आगमन हुआ जो तेज से देवीप्यमान होने के नाते दूसरे भास्कर की भाँति दिखायी दे रहे थे । उन्हें देखकर महारथी राजा और समस्त मुनिगणों ने अपने विस्फारित नेत्रों से आश्चर्य प्रकट करते हुए अपने आसनों पर उठकर उनका स्वागत किया । यथायोग्य एवं सविधान कुशल वार्ता के उपरान्त राजा ने आसन पाद्य, अर्ध्य और आचमनीय जलादि द्वारा उनकी अर्चना की । पश्चात् सभी महर्षि गण सुखासीन रहकर वेद सम्बन्धी विविध कथाओं की प्रसन्नमुखमुद्रा में चर्चा करने लगे । कथाओं की सम्मति होने पर राजा समेत मुनियों ने लोक हितार्थ ब्रह्मपुत्र पुलस्त्य से पूँछा—३-११

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! मुनिसत्तम किस दान, व्रत अथवा नियम द्वारा सभी पुरुषों को सद्गति प्राप्त होती है, इसे जानने के लिए हम लोग और यतवती राजा भी समुत्सुक हैं । १२

पुलस्त्य बोले—मुनिवृन्द ! मैं उस पापनाशक का रहस्य, जो सर्वश्रेष्ठ, और समस्त दानों से समन्वित है, बता रहा हूँ, सुनो ! उसके दान करने से ब्राह्मण, गौ और पिता आदि की हत्या करने वाला, गुह्यतलीगामी । ३-१४

१. गोभूर्हिरण्यतिलवस्त्रगजाश्वमध्ये विद्याप्रदां किमिह पार्थ भवेत्र वेद । २. तद्वृक्षया । ३. पावकः ।

कृतष्ठः कूटसाक्षी च मुच्यते पातकाश्ररः । सद्यो दिव्यतनुश्चैव जायते स्त्री तथैव च ॥१५
 कृच्छ्राचान्द्रायणाद्यैश्च तुलापुरुषसंज्ञितैः । ग्रतैश्च पात्येदेहमाकञ्चन्त्वह्याणः^१ पदम् ॥१६
 कृच्छ्राचान्द्रायणाद्यैश्च तुलापुरुषसंज्ञितैः । ग्रतैश्च पात्येदेहमाकञ्चन्त्वह्याणः^१ पदम् ॥१७
 कायकलेशेन सिध्यन्ति गृहस्थेषु न तानि वै । महाधनाश्च ये लोका राजानो^२ रत्नभागिनः ॥१८
 न तेषां कृच्छ्रासाध्योऽपि व्वचित्वदर्मः प्रशस्यते । यदेतद्द्रविणं नाम प्राणाश्चैते बहिश्वराः ॥१९
 तस्माद्विश्वरैः प्राणैरात्मा^३ योज्यः सदा बुधैः । द्रव्याणामुत्तमं लोके काऽवनं सार्वकामिकम् ॥२०
 अपत्यं सुरमुख्यस्य ज्येष्ठं चैव^४ विभावसोः । तेन साद्वय आत्मानं तोलयेत्प्रयत्ने बुधैः ॥२१
 विध्य र्सर्वपापानि सद्यो दिव्यतनुर्भवेत् । एतत्पुलस्त्यमुनिनः कृषीणां पार्थिवस्य च ॥२२
 समाख्यातं नृपश्चेष्ठ तेभ्यश्च तन्मया श्रुतम् ॥

युधिष्ठिर उवाच

तुलापुरुषदानस्य विधानं परनेश्वर^५ ॥२३
 कथयस्व महाभाग मम भक्तानुकम्पया^६

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्वावहितो राजन्विधानं गदता मम ॥२४

कृत धी और कूटसाक्षी (झूठी गवाही) देनेवाला अपने पापों से मुक्त हो जाता है । चाहे स्त्री ही क्यों न हो, उसकी भी उसी समय दिव्य देह हो जाती है । ब्रह्मपदाभिलाषी पुरुषों को तुलापुरुष वाले कृच्छ्राचान्द्रायणादि व्रतों के अनुष्ठान द्वारा शरीर का शोषण करना चाहिए । क्योंकि वनस्थित तपस्वी वाह्यण, भिक्षुक (संन्यसी) और रण्डा पुरुषों सन्तान हीन (अविवाहित) प्राणियों की सिद्धि चान्द्रायण आदि व्रतों के अनुष्ठान कायकलेश करने से ही होती है किन्तु गृहस्थों को उनका उपयोग न करना चाहिए । महाधनवान तथा रत्नभागी राजा आदि के लिए कृच्छ्र (अत्यन्त कष्ट) साध्य को भी धर्म प्रशस्त नहीं बताया गया है । क्योंकि (यह देह) द्रविण (धन) रूप है और प्राण उससे बाहर (पृथक) की वस्तु है इसलिए प्राणों का आत्मयोग होना परमावश्यक कहा गया है । लोक में काञ्चन (सुवर्ण) समस्त द्रव्यों में शेष और पूर्ण कामनाप्रद होता है, क्योंकि उसे देव प्रमुख अग्नि देव का ज्येष्ठ पुत्र बताया गया है । इसलिए जो विद्वान् उससे अपने को तौलता है अर्थात् तुलादान करता है वह सद्यः अपने पापों को नष्ट कर दिव्यतनु हो जाता है । नृपश्चेष्ठ ! पार्थिव पुलस्य महर्षि द्वारा कृषियों ने सुना है और कृषीणों से मुझे प्राप्त हुआ है । १५-२२

युधिष्ठिर बोले—महाभाग, परेमश्वर ! मुझ भक्त पर कृपा करते हुए आप तुला पुरुष दान का माहात्म्य बतायें । २३

श्रीकृष्ण बोले—राजन् नृपोत्तम ! मैं तुला पुरुष दान का विधान बता रहा हूँ, सुनो ! नृपसत्तम !

१. यापयेत् । २. यजमानोऽपि रत्नभाक् । ३. आत्मा शोध्यः सदा बुधैः, मनो योज्यं सदा बुधैः ।
४. तत्तु, तद्वि, ५. पुरुषोत्तम । ६. भक्त्या ।

तुलापुरुषसंज्ञस्य^१ दानवस्येह नृपोत्तम । अतीपातेऽयने चैव कार्तिक्यां विषुवे तथा ॥२५
 चन्द्रसूर्यग्रहे यद्वारै माघ्यां वा नृपसत्तम । जन्मर्क्षे ग्रहपीडासु तथा दुःस्वप्नदर्शने ॥२६
 यदा वा जायते वित्तं तदा देयमिदं भवेत् । अनित्यं जीवितं यस्मादपुश्चातीवचञ्चलम् ॥२७
 केशेषु च गृहीतः सन्मृत्युना धर्ममाचरेत् । तस्माद्वैव ज्ञायते श्रद्धा दानं पति प्रभो ॥२८
 तदैव दानकालः स्यात्कारणं हि यतो मम । तीर्थे वायतने गोष्ठेष्ठैः वा भवनाङ्गणे ॥
 मण्डपं कारयेद्विद्वान्श्चतुर्भद्रानन्ते बुधः ॥२९
 आद्रशाखान्वितं दिव्यं प्रागुदकप्रवणं दृढम् । षोडशारत्लिमात्रं च पताकाभिरलंकृतम् ॥३०
 तन्मध्ये कारयेद्वैदिं हस्तमात्रोच्छ्रुतां^२ शुभाम् । चतुरलं तमन्ताच्च सप्तहस्तां सुशोभनाम् ॥३१
 तस्यां मध्ये तुलां दिव्यां स्थापयेद्विधिपूर्वकम् । हस्तद्वयं च निखनेच्चतुर्हस्तोच्छ्रुतां बुधः ॥३२
 स्तम्भद्वयं महाराज स्थापयेत्पुढ़ं नवम् । चन्दनः खदिरो बिल्वः शाकश्चैवेद्गुदस्तथा ॥३३
 तिन्दुको देवदारुश्च श्रीपर्णश्चाष्टमः स्मृतः ॥३४
 इत्यष्टौ वृक्षजातीयाः स्तम्भास्ते परिकीर्तिताः । अन्यश्चापि भवेद्वक्षः सारज्ञो याज्ञिकस्तथा ॥३५
 सुनिश्चलं ततः कृत्वा तिर्यक्काष्टमयोपर्ति । न्यसेत्तद्वक्षजातीयं चतुर्हस्तं प्रमाणतः ॥३६
 समानजातिं तु तुला तन्मध्ये योजयेद्वृढम् । षण्णवत्यइग्नुला दिव्या समग्रा लोहपाशिका ॥३७
 कृष्णलोमहमयौ तस्यां^३ कर्णैः चापि प्रकल्पयेत् । तुलापुरुषसंज्ञस्तु मध्ये कार्यः पुभान्भवेत् ॥३८

अतीपात, अयन, कार्तिक पूर्णिमा, विषुव, चन्द्र, सूर्यग्रहण, और माघ पूर्णिमा तथा जल नक्षत्र पर स्थित (अनिष्ट) ग्रह द्वारा पीड़ित होने या दुःस्वप्न के देखने पर अथवा जिस समय (अभूत) धनागम होता, उसी समय यह दान अवश्य करना चाहिए । क्योंकि जीवन अनित्य होने के नाते यह शरीर अत्यन्त अस्थिर है और मृत्यु (जन्मतः) शिर की चोटी पकड़े हुए है इस लिए (दूसरे दिन का वाद न कर) आज ही इस दान के प्रति श्रद्धा दोनों चाहिए । उसे ही दान का काल समझ कर मेरे निमित्त दान करके के लिए किसी तीर्थ, विशाल गोशाला या अपने गृहप्राङ्गण में चार भद्रमुख वाले मण्डप का निर्माण करके, जो (वृक्ष की) हरी शाखाओं से युक्त, दिव्य, पूर्व उत्तर की ओर ढालू, दृढ़, सोलह हाथ का विस्तृत और पताकाओं से विभूषित हो, उसके मध्य में सात हाथ की विस्तृत, एक हाथ की ऊँची, चौकोर और सुशोभन एक वेदी की रचना करे और उसके मध्य भाग में सविधान दिव्य तुला की स्थापना करे । महाराज ! दो हाथ के विस्तृत चार हाथ की भी नीचाई वाले गढ़े में दो स्तम्भ (खम्भे) की स्थापना करे, जो दृढ़ एवं नवीन हो । चन्दन, खैर, बैल, शक्ति, इङ्गुदी, तिन्दुक, देवदार, और श्रीपर्ण, यही आठ प्रकार के वृक्ष (शुभ कार्य के लिए) स्तम्भ के लिए बताये गये हैं और अन्य भी वृक्ष हैं जो सारज्ञ और यज्ञ के काम आते हैं । २४-३५। इस प्रकार उस निश्चल स्तम्भ के ऊपर चार हाथ की उपरोक्त वृक्ष की एक टेढ़ी लकड़ी रखकर उसके मध्य में उसी वृक्ष की बनी हुई तुला स्थापित करे, जो दृढ़, छानवे, अङ्गुल की विस्तृत, दिव्य और चारों कर्ण (कान) काले रङ्ग और लोह का होने चाहिए । तथा उसके मध्य तुला पुरुष नामक पुरुष रहे । इस प्रकार अनेक रत्नों से भूषित, चन्दन से अनुलिप्त और वस्त्राभूषण से सुशोभित उस तुला के

१. तुलापुरुषदानस्य उत्तमस्य । २. वायु । ३. धोषेषु । ४. चतुर्भद्रासनम् । ५. हस्तमात्रोच्छ्रुत्याम् ।
 ६. दिव्यौ ।

एवंविधां तुलां कृत्वा नानारन्तर्विभूषिताम् । चन्दनेनानुलिप्ताङ्गीं वस्त्रालङ्घारविग्रहाम् ॥३९
 स्तम्भौ च वस्त्रसंयुक्तौ पुष्पमालावलम्बिनौ । चन्दनेनानुलिप्तरङ्गौ नानारन्तरलङ्घितौ ॥४०
 कुण्डानि चात्र चत्वारि योनियुक्तानि कारयेत् । हस्तमात्रप्रमाणानि मेखलात्रयवन्ति च ॥४१
 पूर्वोत्तरे हस्तमिताँ वैदिः कार्या सुशोभना । लोकपालग्रहाणां च पूजा तत्र विधीयते ॥४२
 अर्चार्चितं च तत्रैव विरिच्युच्युतयोनृः । शङ्कुरस्य भवेत्कार्यं नात्यवस्त्रफलाक्षतः ॥४३
 तत्त्वरणानि च कार्याणि३ क्षीरवृक्षोद्भवानि च ! चतुर्द्विरेषु संस्थाप्या: कुम्भः वक्ष्यल्लवाननाः ॥४४
 पञ्चरत्नसमायुक्ताः सप्तधान्योपरिस्थिताः । ऋग्वेदपाठकौ द्वौ च पूर्वकुण्डे नियोजयेत् ॥४५
 यजुर्वेदविदौ याम्ये पश्चिमे सामवेदिनौ । अर्थवगावुत्तरतो नवमो धर्मदेशवः ॥४६
 अत्रैव केचिदिच्छन्ति ऋषयः षोडशर्त्तिर्जः । ताम्रपात्रद्वयं देयमेकैकस्मै तथासनम् ॥४७
 होमद्रव्याणि सर्वाणि तिलाज्यं समिहस्तथा । स्रुवाः स्रुचश्च शस्त्राणि विष्टरः कुसुभानि च ॥४८
 लोकपालाः सुवर्णास्तु पातकाः परितः शुभाः । महाध्वजं च बधनीयात्पञ्चवर्णं वितानक्षम् ॥४९
 एतत्सर्वं समाहृत्य पुण्येऽहनि विक्षणः । वर्द्धकिर्ब्रह्मिणैः सार्द्धं सर्वशिल्पविशारदः ॥५०
 सम्पूर्णं यजमानाय दर्शयेद्यज्ञमण्डपम्^४ । यजमानस्ततः प्राजः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥५१
 शङ्कुतूर्यनिनादेन वेदध्वनिरवेण च । प्रक्षिपेल्लोकपालानामेभिर्मत्रैः शुभैर्बलिम् ॥५२

दोनों स्तम्भ वस्त्रालङ्घन, लम्बी पुष्प माला से आबद्ध चन्दन से अनुलिप्त, एवं अनेक भाँति के रत्नों से अलंकृत करना चाहिए : अनन्तर योनि युक्त चार कुण्डों के निर्माणपूर्वक, जो एक हाथ के विस्तृत और तीन मेखलाओं से युक्त हो उसके पूर्वोत्तर भाग (ईशानकोण) में एक हांथ की सुशोभन देखी बना कर उस पर लोकपाल समेत ग्रहों की स्थापना तथा अर्चां करें । ३६-४२। नृप ! उसी बेदी पर माला, वस्त्र, फल एवं अक्षतादि द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कुर की अर्चना करे । क्षीर वृक्ष के तोरण से भूषित उन चारों द्वार पर माला पल्लव से सुशोभित कलश की स्थापना करे, जो पंचरत्न युक्त और सप्त धान्य के ऊपर स्थित हों, पूर्व के कुण्ड की बैर से ऋग्वेद पाठी को यजुर्वेद पाठी दक्षिण, दो सामवेदपाठी पश्चितचम और दो अर्थवेदपाठी ब्राह्मणों को उत्तर की ओर सुसम्मान करते हुए नवें धर्म देशी का वरण करें । यहाँ पर कुछ ऋषियों की सम्मति है कि सोलह ऋत्विक् रहने चाहिए । उपरोक्त सभी ब्राह्मणों को दो ताम्रपात्र एक आसन प्रत्येक व्यक्ति को अपित कर होम द्वय तिल, धूत, समिधा, (लकड़ी) सुत्रा, सुक, शस्त्र, विष्टर (कुशासन) और पुष्प—सुवर्णभूषित लोकपाल तथा चारों ओर वह स्थान पताका से भूषित करे । महाध्वज को बाँधते हुए पाँच रङ्ग की चांदनी (चंदोबा) बाँधे । इस भाँति इस महान् संभार से सम्पन्न होने पर वह यज्ञमण्डप किसी पुण्य अवसर पर ब्राह्मणों समेत यजमान को तमस्त शिल्प वेत्ता एवं बुद्धिमान् वर्द्धकि (राजगीर) दिखाये । ४३-५०। अनन्तर शुक्ल वस्त्रधारण कर पवित्रता पूर्ण वह प्राज्ञ यजमान शंख, तुरुही की ध्वनि, और वेदधोष पूर्वक वहाँ लोकपालों के निमित्त मंत्रोच्चारण करते हुए बलि अपित

१. हस्तमात्रा, पुस्तकद्वये । २. अर्चार्चितम् । ३. दिव्यानि । ४. यज्ञमण्डलम् ।

एहोहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरमरेशः ।
सम्भीज्यमानोप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥५३
(ॐ इन्द्राय नमः)

एहोहि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवीरैरभिहृष्टमानसः ।
तेजोवता लोकगणेन तार्द्धं ममाध्वरं रक्ष कवे नमस्ते ॥५४
(ॐ अग्नये नमः)

एहोहि दैवस्वतर्थर्मराज सर्वामररचितदिव्यमूर्ते ।
शुभाशुभानन्दकृतामधीशरक्षाध्वरं ये भगवन्नमस्ते ॥५५
(ॐ एमाय नमः)

एहोहि रक्षोगणनायकत्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः ।
ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते ॥५६
एहोहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभिः ।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमानं पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते ॥५७
(ॐ वरुणायनमः)

एहोहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसन्धैः ।
प्राणाधिपः कालकवे^३ सहायो गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥५८
(ॐ वायवे नमः)

करे ।५१-५२। भगवन्, वज्रधारी अमरेश ! मेरे यज्ञ में आकर यह बलि स्वीकार करने की कृपा करें। समस्त देव, रिद्ध साध्यगण आप की सदैव स्तुति करते हैं और अप्सराएँ पंखा झलती रहती हैं। आप मेरे यज्ञ की रक्षा करें अतः मैं बार-बार आप को नमस्कार कर रहा हूँ इस मंत्र से इन्द्र को बलि प्रदान करे ।५३। समस्त देवों के हव्यवाहक अग्नि देव ! मुनिगण सदैव आप को सदैव प्रसन्न रखते हैं। आप तेजस्वी लोकगण समेत यहाँ आकर यह बलि उपहार ग्रहण करते हुए मेरे यज्ञ की रक्षा करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ—इस मंत्र से अग्नि को बलि प्रदान करें ।५४। समस्त देवगणों द्वारा अचित होते के नाते दिव्य मूर्ति धारण करने वाले सूर्य पुत्र धर्म राज ! आप शुभाशुभ कर्म करने वालों के अधीश्वर हैं इस मेरे यज्ञ की रक्षा करें। मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ। इस मंत्र से यम को बलि प्रदान करें ।५५। भगवन्, पिशाचनाथ ! आप राक्षसगण के नायक और लोकेश्वर हैं अतः वेताल पिशाच के विशाल समूह समेत मेरे यज्ञ की रक्षा करें। मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ इस मंत्र से निकृति को बलि अप्ति करें। विद्याधरेन्द्र आदि देवों द्वारा गीयमान वरुण देव ! आप जल जन्तु और वारिधिगण मेघ तथा अप्सराओं से सदैव स्तुत होते रहते हैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ इस मेरे यज्ञ की रक्षा करने की कृपा करें। इस मंत्र से वरुण को बलि अप्ति करें ।५६-५७। भगवान् ! वायुदेव ! आप सिद्धों के साथ सदैव मृग आरूढ रहते हैं, प्राणों के अधीश्वर और कालविधि के सहायक हैं मेरी इस पूजा को ग्रहण करने की कृपा करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ, इस

एहोहि^१ यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विद्धत्त्वं नक्षत्राणेन सार्द्धम् ।
सर्वोषधीभिः पितृभिः सहैव गृहणं पूजा भगवन्नमस्ते ॥५९
(ॐ सोमाय नमः)

एहोहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्रिशूलखट्वाङ्गधरेण सार्द्धम् ।
लोकेन भूतेश्वर यज्ञसिद्धचै गृहणं पूजां भगवन्नमस्ते ॥६०
(ईशानाय नमः)

एहोहि पातालधराधरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान् ।
यक्षोरगेन्द्रामरतोक्तसंधेरनन्तरे^२ रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥६१
(ॐ अनन्ताय नमः)

एहोहि विश्वाधिपते मुनीन्द्र लोकेश^३ सार्द्धं पितृदेवताभिः ।
विश्वाध्वरान्तं सततं शिवाय पितामहस्त्वं सततं नमस्ते ॥६२
(ॐ ब्रह्मणे नमः)

त्रैलोक्यं यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥६३

देवदानवगन्धर्वाः यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥६४
सर्वे ममान्वरे^४ रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः । इत्यावाह्य सुरान्दद्यादृत्विगम्यः कण्ठभूषणम् ॥६५

मंत्र से वायु को बलि प्रदान करे ।५८। भगवान् यज्ञेश्वर ! नक्षत्र गण समेत आप इस यज्ञ की रक्षा करते हुए सम्पूर्ण ओषधि और पितरों सहित उसे पूजा को ग्रहण करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ, इस मंत्र से सोम को बलि अपित करे ।५९। भगवान् विश्वमूर्ते विश्वेश्वर ! त्रिशूल, खट्टाङ्गधारी लोगों के साथ आप यज्ञ सिद्धयर्थ यह पूजा ग्रहण करें । भूतेश्वर ! मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, इस मंत्र से ईशान (शिव) को बलि प्रदान करे ।६०। पातालधराधरेन्द्र, अनन्तदेव ! नागों की स्त्रियाँ और किन्नरण आप का सदैव यशोगान करते हैं आप यक्ष और सर्वाधीश्वर वृन्तों समेत मेरे यज्ञ की रक्षा करने की कृपा करें इस मंत्र से अनन्त को बलि प्रदान करे ।६१। विश्वाधिपते, मुनीन्द्र, एवं लोकेश ! पितृ-देवताओं समेत आप कल्याणार्थ इस यज्ञ के अनन्तःस्थल में प्रवेश करने की कृपा करें ।६२। आप पितामह हैं अतः आपको मैं बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, इस मंत्र से ब्रह्मा को बलि अपित करें ।६३। तीनों लोक में विचरण करने वाले समस्त चर-अचर प्राणी व्रह्मा, विष्णु और शिव समेत मेरी रक्षा करने की कृपा करें । उसी भाँति देव, दानव, गन्धर्वगण, यक्ष, राक्षसपन्नग, सूर्य, कृषिगण, मनु गौणैँ और देवमाताएँ सहर्ष मेरे यज्ञ की रक्षा करें—इस प्रकार देवों के आवाहन करने के अनन्तर ऋत्विजों को मुवर्ण माला, कुण्डल, मुवर्ण सूत्र,

१. ऐहिहि यज्ञेश्वर शूलपाणे ईशान चापासिधर प्रवीर । वृषाधिरूढः सगणः सहायो ममाध्वरं पाहि नमोनमस्ते । अत्रापि 'यज्ञेश्वर' इत्यस्य स्थाने पुस्तकान्तरे 'सर्वेश्वर' इति पाठ उपलभ्यते ।
२. रक्षोनगेन्द्रामरलोकसार्द्धम् । ३. लोकेन । ४. सर्वेमारवाश्च मे ।

कुण्डलानि च हैमानि सूत्राणि कटकानि च । तथाइयुलिपवित्राणि वासांसि कुसुमानि च ॥६६
 द्विगुणं गुरवे दद्याद्भूषणाच्छादनादिकम् । आधारावाज्यभागौ तु पूर्वं हुत्वा विचक्षणः ॥६७
 प्रणवादिस्वनान्ना च स्वाहान्तो होम उच्यते । होमः सुराणां कर्तव्यो ये चैवात्र प्रतिष्ठिताः ॥६८
 प्रहाणां लोकपालानां शिवकेशवयोस्तथा । वनस्पतिभ्यो ब्रह्मणे होमः कार्यो यथेच्छ्या ॥६९
 ततो मङ्गलशब्देन स्थापितो वेदमङ्गलैः^१ । त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥७०
 शुक्लमाल्याम्बरो^२ भूत्वा तां तुलामभिमन्त्रयेत् । नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमास्थिताः^३ ॥७१
 साक्षिभूता जगद्वात्रि निर्मिता विश्वयोनिना ! एकतः सर्वसत्यानि^४ तथानृतशतानि च ॥७२
 धर्माधर्मभृताः^५ मध्ये स्थापितासि जगद्विते । त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणगिह कीर्तिताः ॥७३
 मां तोलयन्ता संसारादुद्वात्र नमोस्तुते । योऽसौ तत्त्वाधिषो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः ॥७४
 स एकोऽधिष्ठितो देवि त्वायि हत्स्मान्नमो नमः । नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंजकः ॥७५
 त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात्संसारसागरात्^६ । पुण्यकालमथासाद्य कृत्वैवमधिवासनम् ॥७६
 प्रणन्य परया भक्त्या तां तुलामाश्वेद्धः । स राङ्गचर्मकवची सर्वाभिरणभूषितः ॥७७
 धर्मराजमथादाय^७ हैमसूर्येण संयुतम् । कराभ्यां बद्धमुष्टिभ्यामास्ते पश्यन्हरेमुखम् ॥७८
 वामे यमं तथा गृह्य दक्षिणे च र्त्वं तथा । ततोऽपरे तुलाभागे न्यसेयुर्द्धिजपुञ्जवाः ॥

अङ्गद, अंगूठी, वस्त्र और पुष्पों से भूषित करते हुए गुरु को भूषण वस्त्रादि दुगुने अर्पित करे । सर्वप्रथम ‘आज्यभाग आधार’ (घृत की आहृति) प्रदान करते हुए ‘ओंकार पूर्वक नामों के अन्त में स्वाहापद जोड़ कर वहाँ प्रतिष्ठित देवों के निमित्त हवन करें । तदुपरान्त गृह, लोकपाल, शिव, विष्णु, वनस्पतिगण, और ब्रह्मा को यथेच्छ आहृति अर्पित करें । पश्चात् पुष्पाञ्जलि समेत शुक्ल वस्त्र, भाला धारण किये यजमान मांगलिक शब्दों (वेदमंत्रों के उच्चारण पूर्वक तीन प्रदक्षिणा के उपरांत तुला अभिमन्त्रित करे । जगद्वात्रि ! तुम्हें नमस्कार है, तू समस्त देवों की शक्ति हो, सत्य में ही तुम्हारी स्थिति है, साक्षी रूप, हो, उसी हेतु विश्वयोनि ब्रह्मा ने तुम्हारा निर्माण किया है, तुम्हारे एक ओर सर्वसत्य और दूसरी ओर सैकड़ों असत्य रहते हैं इस लिए धर्माधर्म के मध्य तुम्हारी स्थिति होती है । जगद्विते ! तुले ! तू समस्त प्राणियों के प्रमाण रूप हो युद्धे तौलती हुई तू इस संसार से मेरा उद्धार करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ, क्योंकि पञ्चीस तत्व में अधिष्ठित रहने वाला यही एक पुरुष देव तुम्हारे ऊपर स्थित है, अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ । तुला पुरुष नामक गोविन्द ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है, इस संसार सागर से मुझे तारने की कृपा करें । इस प्रकार किसी पुण्य काल में भक्तिपूर्वक अधिवासन करने के अनन्तर प्रणाम पूर्वक विद्वान् को तुलारोहण करना चाहिए । जो खड़ग, चर्म, और कवच धारण किये सर्वाभरण भूषित हों । सुवर्ण की सूर्य प्रतिमा समेत धर्मराज को लिए दोनों हाथों की मुढ़ियाँ बाँधे सम्मुख विष्णु मुख का दर्शन करते हुए उस पर आरीन होना चाहिए । ६४-७८। द्विजपुञ्जवों को चाहिए कि बायें

१. देवमङ्गलैः, वेदपुञ्जवैः । २. शुक्लमाल्यधरो भूत्वा । ३. सर्वम् । ४. सर्वसत्त्वानि । ५. धर्माधर्मकृतमात् । ६. सर्वदेवानाम् । ७. संसारकर्दमात् । ८. समादाय ।

साम्यादम्भूदिक यावत्कांच्चनं चातिनिर्लभ्

॥७९

पुष्टिकामस्तु कुर्वीत सूमिसंस्थं नरेश्वर । क्षणमात्रं ततः स्थित्वा पुनरेतदुदीरयेत् ॥८०
 नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातने । पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥८१
 त्वयोद्घृतं^१ जगत्सर्वं सहस्यावरजङ्गमम् । सर्वभूतात्मभूतस्ये नमस्ते विश्वधारिणि ॥८२
 ततोऽवतीर्य गुरवे सर्वमद्दं निवेदयेत् । ऋत्विगम्भोऽपरमद्दं च दद्यादुदकपूर्वकम् ॥८३
 प्राप्त तेषामनुजां वा तथान्येम्योऽपि दापयेत् । दीनानाथविशिष्टादीन्पूरयेद्ब्राह्मणैः सह ॥८४
 न चिरं धारयेद्गेहे हेमसम्प्रोक्षितं^२ बुधः । तिष्ठद्द्वायावहं यस्मात्कष्टव्याधिकरं^३ भवेत् ॥८५
 शीघ्रं परस्वीकरणाच्छ्रूयं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् । अनेनैव विधानेन केचिद्वैप्यस्यं तथा ॥८६
 कपूरेण तथेच्छन्ति केचिद्ब्राह्मणपुङ्गवाः । तथासिततृतीयायां नार्यः सौभाग्यवर्धिताः^४ ॥८७
 कुंकुमेन प्रयच्छन्ति लवणेन गुडेन च । तत्र मन्त्रा न होमो वा एवमेव प्रदापयेत् ॥८८
 विधिनानेन यो दद्याद्वानमेतत्समाहितः । तस्य पुण्यफलं राजनञ्चृणुष्व गदतो मम ॥८९
 विमानवरमास्थाय नारी वा पुरुषोऽपि वा । अप्सरोगणसंकीर्ण गन्धर्वनगरोपनम् ॥९०
 नानावृक्षाकुलं रम्यं नानागन्धाधिवासितम् । अनेकरत्नविद्धांगं मुक्तादामावलम्बितम् ॥९१

ओर यम और दाहिनी ओर सूर्य को रखते हुए तुला के अपरभाग में समता से अधिक भाग निर्मल सुवर्ण रखें । नरेश्वर ! पुष्टि कामनया उस सुवर्ण वाले तुला को भूमिस्थ ही रखना चाहिए । पुनः उस पर क्षण मात्र स्थित रहकर इस प्रकार अम्यर्थना करे—देवि ! तुम समस्त प्राणियों की साक्षी रूप और सनातन हो । परमेष्ठि पितामह ने तुम्हारा निर्माण किया है अतः तुम्हें नमस्कार है । स्थावर जङ्गम (चरानन) समस्त जगत् का तुमने उद्घार किया है । विश्वधारिणी ! तू समस्त प्राणियों को आत्मा में सदैव स्थित रहती हों अतः तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । पश्चात् उस घर से उत्तर कर समस्त का अर्द्ध भाग गुरु को और शेष अर्द्ध भाग जल समेत ऋत्विजों को भी दिया जा सकता है । दीन, अनाथ आदि की भी ब्राह्मणों के साथ पूजा (सुसम्पन्न) करनी चाहिए । विद्वान् को चाहिए कि उस समस्त सुवर्ण दान चिरकाल तक अपने घर में न रखें क्योंकि उसके रखने से भय, कष्ट आदि व्याधियाँ उत्पन्न होने लगती हैं । इसलिए उस पराये धन को शीघ्र ही उसके स्वामी को अपित करना चाहिए । इससे उसे उत्तम श्री प्राप्त होती है । किन्हीं ब्राह्मणों का मत है कि इस विधान द्वारा चाँदी या कपूर का भी तुलादान करें । कृष्ण पक्ष की तृतीया में दान करने वाली स्त्रियों का सौभाग्यवर्द्धन होता है । ७९-८७। कुंकुम लवण या गुड का तुला दान करते समय मंत्र और हवन कर्म की आवश्यकता नहीं होती है । राजन् ! इस विधान द्वारा इस दान कर्म के सुसम्पन्न करने जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, मुनो ! दानी स्त्री या पुरुष ऐसे उत्तम विमान पर सुशोभित होकर, जो गन्धर्व नगर के समान अप्सराओं से आच्छन्न रहता है, अनेक भाँति के रमणीयक वृक्ष समूहों से भूषित, अनेक गंधों से अधिवासित रहता है, उसके प्रस्त्रेक अंगों में अनेक भाँति के रत्न विभूषित रहते हैं, मोतियों के गुच्छे लटकते रहते हैं, संकीर्ण शयनासन और पताकाओं से

१. धृतम् । २. समस्तं प्रोक्षितं बुधः । ३. क्षोभव्याधिकरं भवेत् । ४. सौभाग्यवर्धिताः ।

शयनासनसंकीर्णं पताकाभिरलङ्घतम् । घण्टाशतरवोदधुष्टं चामरव्यजनान्वितम् ॥१२
 सर्वर्तुमुखदं^१ रम्यं सर्वदुःखविर्वर्जितम् । इत्थं विमानमारुह्य गच्छेत्सूर्यसलोकताम् ॥१३
^२मित्वा तत्र राजेन्द्र कल्पमेकं निरामयः^३ । विष्णुलोके तथा कल्पं शिवलोके^४ तथैव च ॥१४
 विश्वेषां चैव देवानां देवराजपुरे तथा । पुरे च^५ धर्मराजस्य वरुणस्य तथैव च ॥१५
 धनदस्य पुरे स्थित्वा कल्पकोटिशतं नरः । पुनर्मानुषमभ्येत्य^६ राजा भवति धार्मिकः ॥१६
 यज्ञादानपतिर्धीमान्छनुषक्षयंकरः^७ । पश्चैतचृणुयाद् रत्या महादानानुकीर्तनम् ॥१७
 सोऽपि मुच्येत पापेन त्रिदिशेन न संशयः ॥१८

ब्रह्मेशकेशवपरेऽस्ति न पूजनीयो नैवाश्वमेभसदृशः क्रतुरस्ति कश्चित् ।

गङ्गासं त्रिभुवनेऽपि न तीर्थमस्ति दानं तुला पुरुषतुल्यमिहास्ति नान्यत् ॥१९

इति श्रीभविष्ये^८ उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 तुलापुरुषदानविधिवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७५

अलंकृत रहता है, इसमें सैकड़ों घटों की ध्वनि होती रहती है, चामर, व्यञ्जन चलते रहते हैं, समस्त क्रहुओं में सुखप्रद रम्य और समस्त दुःखों से वर्जित रहता है । (ऐसे उत्तम विमान द्वारा) सूर्य लोक की यात्रा करता है । राजेन्द्र । नीरोग रहकर कल्प पर्यन्त वहाँ रमण करने के अनन्तर विष्णु शिव के लोक में भी कल्प पर्यन्त निवास करता है । अनन्तर विश्वेदेव, इन्द्रलोक, धर्मराज की पुरी, वरुण तथा कुबेर के लोक में सौ कोटि कल्प सुखानुभव करने के उपरान्त पुनः नानुषकूल में जन्म ग्रहण कर परम धार्मिक राजा होता है, जो यज्ञकर्ता, दानपति, धीमान् और शत्रुओं का विनाशक होता है । इस महादान के आस्थान को भक्तिपूर्वक सुनने वाला भी अपने त्रिविधि पापों से मुक्त होता है इसमें संशय नहीं । क्योंकि तीनों लोक में ब्रह्मा, शिव और विष्णु से अन्य कोई प्रजनीय नहीं है, अश्वमेध के समान कोई यज्ञ नहीं है, गङ्गा के समान कोई तीर्थ और तुला पुरुष दान के समान कोई दान नहीं है । ८८-९९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 तुलापुरुष दानविधि वर्णन नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । १७५।

१. सर्वदासु खदम् । २. गमित्वा । ३. निरामयम् । ४. वसूनां भवनेऽप्यथ । ५. वै । ६. अप्येत्य ।
 ७. यज्ञादानपतिर्धीमान् । ८. इति श्रीभविष्ये आदित्यवारकल्पे ।

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

हिरण्यगर्भदानव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्सर्वभूतेशः^१ सर्वभूतनमस्तुत । अनुग्रहाय लोकानां कथयस्व^२ ममापरम् ॥१
त्वत्तुल्यो जायते येन आयुषा यशसा^३ श्रिया । तन्मे कथय देवेश दानं व्रतमर्थापि वा ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

श्रृणु राजन्प्रवद्यतामि तत्र लोकहितेच्छ्या । येनोपायेन जायन्ते मत्तुत्यां मानवा भुवि ॥३
न प्रत्यनीपवासैश्च^४ न तीर्थगमनैरपि । महापथा^५ दिमरणैर्य यज्ञैर्य श्रुतेन च ॥४
प्राप्यते मम लोकोऽयं दुष्प्राप्यस्त्रिदशैरपि । पार्थस्नेहान्महाभाग प्रवक्ष्यामि हितं तत्र ॥५
गोब्राह्यार्थं मरणं प्राप्तं येन सुमेधसा । प्रयागेऽनशनं वाणि पूजितो^६ दाथ शङ्कुरः ॥६
प्रयाति^७ ब्रह्मसालोक्य श्रुतिरेषा सनातनी । येन मत्समतां याति तत्ते वक्ष्याम्यतः परम् ॥७
दानं हिरण्यगर्भास्त्वं कथ्यमानं निबोध^८ मे । अद्वेषपत्यं प्रथमं सुवर्णमिह पठचते^९ ॥८
पवित्रं सर्वभूतानां^{१०} पावनं परमं महत् । पर्यायनाम तस्योक्तं हिरण्यं सार्वलौकिकम्^{११} ॥९

अध्याय १७६

सुवर्णदान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! आप समस्त प्राणियों के अधीक्ष्वर हैं सम्पूर्ण प्राणी आप को नमस्कार करते हैं अतः लोगों के अनुग्रहार्थ आप कोई अन्य विषय बताने की कृपा करें । देवेश ! जिस दान अथवा व्रत द्वारा आयु, यश और श्री में आप के समान प्राणी बन सके वह मुझे बतायें । १-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! जिस उपाय द्वारा इस भूतल में मनुष्य मेरे समान हो सकता है, मैं उसे लोकहितार्थ तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! महाभाग पार्थ ! व्रत, लपवास, तीर्थ यात्रा, महापथादि (महातीर्थादि) में मरण, यज्ञ एवं वेदाध्ययन द्वारा मेरे लोक की प्राप्ति नहीं हो सकती है और वह देवों के लिए दुर्लभ है, किन्तु तुम्हारे स्नेह वश मैं-उसे बता रहा हूँ। यद्यपि गौ, ब्राह्मण के उपकारार्थ मरण, प्रयाग में अनशन या शंकर जी अर्चना जिस विद्वान् ने की है, उसे ब्रह्मसालोक्य मुक्ति प्राप्ति होती है, ऐसा सनातनी श्रुति का कथन है तथापि जिससे मेरी समता प्राप्त होती है वह अन्य है, उसे बता रहा हूँ। हिरण्य नामक दान की व्याख्या मैं कर रहा हूँ सुनो ! अग्नि का सर्व प्रथम सन्तान सुवर्ण कहा जाता है, जो समस्त प्राणियों में महान् परमपवित्र है। उसका दूसरा सार्वलौकिक नाम हिरण्य है। ३-९। वही जल के गर्भ

१. सर्वलोकेश सर्वलोकनमस्तुत । २. कथय त्वं ममाप्रतः । ३. वपुषा । ४. तु ।
५. महातीर्थादिमरणैः । ६. पूज्यते । ७. सव्रह्मलोकम् । ८. मया शृणु । ९. पश्यति—इत्यशुद्धः ।
१०. सर्वधातूनाम् । ११. सार्वकामिकम् ।

तदपां गर्भसाविश्वं पुनर्जातं तु सूतले । यश्च तद्ब्राह्मणे दद्यान्मत्तुल्यो जायते हि सः ॥१०

युधिष्ठिर उवाच

विधानं तस्य देवेश कथयस्व सनातन । यत्प्रमाणं यथाचैतदातव्यं^१ परमेश्वर ॥११

श्रीकृष्ण उवाच

पर्वकाले^२ प्रदातव्यं दात्मेतन्महामते । अयने विषुवे चैव ग्रहं शशिसूर्ययोः ॥१२
व्यतीपातेऽथ कार्त्तक्यां जन्मर्क्षे दा नरोत्तम । दुःस्वप्रदर्शने चैव ग्रहपीडासु चैव हि ॥१३
प्रयागे नैमिषे चैव कुरुक्षेत्रे तथार्बुदे । गङ्गायां यमुनायां च सिन्धुसागरसङ्गमे ॥१४
पुण्यनद्यश्च दानेऽस्मिन्प्रशस्ता: स्युरं संशयः । यत्र वा रोचते राजन्यैहै देवकुलेऽथवा ॥१५
आरामे वा तडगे वा शुचौ देशे विधानतः । तत्र सूबोधनं कुर्यात्प्रागुदक्षवणं शुभम् ॥१६
हस्ताद्वादशकर्तव्यं भण्डपं तु सुशोभनम् । स्तम्भैर्मनोहरैर्युक्तमार्दशात्माभिरन्वितम् ॥१७
तन्मध्ये कुर्यात्पञ्चहस्तामलंकुतम् । वितानमुपरिष्टाच्च प्रष्पमालावलम्लितम् ॥१८
हिरण्यगर्भं तन्मध्ये प्रथमेऽहनि कल्पयेत् । तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि रूपं वै स्थण्डलोद्भूतम् ॥१९
शिर्लिपं पूजयेत्पूर्वं वासोभूषणैस्तथा । ब्राह्मणान्वाच्येत्पश्चात्ततः कर्मसमारभेत्^३ ॥२०
सुवर्णं सुशुद्धेन^४ शक्तिः कारयेद्दूधः । अंगुलानि चतुःषष्ठिर्दैर्ध्यं च परिकीर्तितम्^५ ॥२१

में प्रविष्ट होकर पुनः भूतल पर (सुवर्ण रूप में) उत्पन्न हुआ है उसे ब्राह्मण को अर्पित करने वाला मनुष्य मेरे तुल्य होता है ॥१०

युधिष्ठिर बोले—देवेश, सनातन एवं परमेश्वर ! उसका विधान और जितने प्रमाण में वह दान किया जाता हो, बताने की कृपा करें ॥११

श्रीकृष्ण बोले—महामते ! यह दान किसी पर्वकाल, अयन (उत्तरायण-दधिणायन), विषुव, चन्द्र सूर्य ग्रहण, व्यतीपात, कार्त्तकी पूर्णिमा, जन्म नक्षत्र, दुःस्वप्न दर्शन अथवा ग्रह पीडित होने पर प्रयाग, नैमिष, कुरुक्षेत्र, अर्बुद, गंगा, यमुना या सिंधु सागर संगम स्थल में करना चाहिए । इसी के दान द्वारा ये पुण्य नदियाँ प्रशस्त हुई हैं इसमें संदेह नहीं । राजन् ! अपने घर, देवालय उपवन, सरोवर अथवा जहाँ कहीं रुचिकर हो, उसी पवित्र देश में सविधान प्रथम भूमिशोधन करके बारह हाथ का सुशोभन मण्डप बनाये, जो पूर्वोत्तर की ओर निम्न मनोहर स्तम्भों तथा हरी शाखाओं से विभूषित हो उसके मध्य में पाँच हाथ की अलंकृत वेदी का निर्माण करके उसके ऊपर बितान (चैंटोवा) लगाये और पुरुष महात्माओं से विभूषित करे । प्रथम दिन उसके मध्य भाग में हिरण्यगर्भ की कल्पना करें । मैं उनका प्रमाण और रूप बता रहा हूँ, जो स्थण्डल (ऊँची भूमि) से उत्पन्न हुए हैं । सर्वप्रथम यजमान को चाहिए वस्त्राभूषणों द्वारा शिल्पी (राजगीर) की अर्चना करके ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन कराये अनन्तर यज्ञारम्भ करें । विद्वान् को चाहिए यथाशक्ति सुशुद्ध सुवर्ण द्वारा चौंसठ अङ्गुल की प्रतिमा बनाये ॥१२-२१। उसके चौथाई भाग

१. च दातव्यं कथ्यताम् । २. सर्वकाले । ३. यज्ञम् । ४. सुसिद्धेन । ५. परिकल्पयेत् ।

त्रिशागहीनं वदने सूले तस्यार्द्धविस्तरम् । वर्तुलं कर्णिकाकारं चारुग्रन्थिविवर्जितम् ॥२२
 पिधानमुपरिष्टाच्च कर्तव्यं चांगुलाधिकम्^१ । अस्त्राणि दश कुर्वीत नालं सूर्यं च काञ्चनम् ॥२३
 दात्रं सपट्टिकं चैव सर्वोपस्करणःन्वितम्^२ । सूचीक्षुरश्च हैमानि तत्सर्वं परिकल्पयेत् ॥२४
 याधेतः स्थापयेत्स्य हेमदण्डकमण्डल् । छत्रिकापःुकायुमं वज्रवैदूर्यमण्डितम् ॥२५
 एवं लक्षणसंयुक्तं कृत्वा गर्भं विचक्षणः । ऋहघोषेण महता शङ्खात्तर्वरवेण च ॥२६
 हस्तिना शकटेनाथं राजन्बहूरथेन वा । आनयेन्मण्डपं कृत्वा प्रदक्षिणमतन्त्रितः ॥२७
 तिलद्वोणोपरिगतं वेदीमध्येऽधिवासयेत् । समालभ्य पुनः सर्वं कुंकुमेन सुगन्धिना ॥२८
 कौशेयवाससी शुभ्रे तत्स्तं परिधापयेत् । रामन्तात्पुष्पमालाभिः पूजयेद्भूक्तिः सुतीः ॥२९
 धूपै तु धूपितं^३ कृत्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् । भूलोकप्रमुखालोकास्तत्र गर्भं व्यवस्थिताः ॥३०
 ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते भुवनोद्भूव । नमस्ते भुवनाधारं नमस्ते^४ भुवनेश्वर ॥३१
 नमो हिरण्यगर्भाय गर्भं यस्य पितामहः । एवं सम्पूजयित्वा तु गतां^५ रात्रिमधिवासयेत् ॥३२
 वेद्याश्चतुर्दिशं चैव कुण्डलिं परिकल्पयेत् । चत्वारि चतुरस्त्राणि तेषु होमो विधीयते ॥३३
 चतुश्चारणिकास्तत्र ब्राह्मणा मन्त्रपारगाः । होमं कुर्यान्तात्मनो^६ मौनिनः तर्द एव ते ॥३४
 सर्वाभरणसम्पन्नाः सर्वे चाहतं वाससः । तात्रपात्रद्वयोपेता गच्छपुष्पादिपूजिताः ॥३५

से वदन (मुख) की रचना करे, जो मूल भाग के अर्द्ध भाग में विस्तृत वर्तुल (गोलाकार) हो । कर्णिका कार और चाह ग्रन्थियों से रहित उस (प्रतिमा) को ढाँकने के लिए दो अङ्गुल अधिक प्रमाण का एक विधान बना कर दश अस्त्रों—नाल, सूर्य, कांचन, पट्टी और समस्त साधनों समेत दान, सूची (सूई), छुरा का सुवर्ण द्वारा निर्माण कराये । उसके पाश्व भाग में हेमदण्ड कमण्डल, और छत्र वज्रवैदूर्य भूषित चरण पादुका स्थापित करे । राजन् ! इस प्रकार के लक्षण युक्त उस गर्भ को प्रदक्षिणा पूर्वक उच्चस्वरेण व्रह्म घोष, शंख, तुरुही की ध्वनि करते हुए हाथी, गाड़ी अथवा ब्राह्मण रथ द्वारा मण्डप में लाये । द्विष्ठ प्रमाण तिल के उपर वेदी के मध्यभाग में अधिवास कराते हुए कुंकुम और सुगन्ध के लेप करके स्वच्छ दो रेशमी वस्त्र से ढाँक दे उसके चारों ओर पुष्प माला से भूषित करते हुए भक्तिपूर्वक धूप से धूपित करने के अनन्तर निम्नलिखित मंत्रों से अभ्यर्चन करे—भुवनोद्भूव । भूलोक आदि प्रमुख लोक और ब्रह्मादि देवगण तुम्हारे ही भीतर सुव्यवस्थित हैं अतः आप को नमस्कार है, भुवनाधार को नमस्कार है, अतः आप को नमस्कार है ॥२२-३१। जिसके गर्भ में पितामह (ब्रह्मा) स्थित हैं उन हिरण्यगर्भ को नमस्कार है, इस भाँति पूजन पूर्वक उस रात्रि अधिवास कराये । वेदी के चारों ओर चार चौकोर कुण्ड का निर्माण कर उसमें हवन करे । चार चारणिक ब्राह्मण जो मंत्र पारगामी और पूज्य संयमी हों, मौन होकर हवन कार्य सम्पन्न करें । उन सभी ब्राह्मणों को सर्वाभरण भूषित और नवीन वस्त्र से सुसज्जित रहना चाहिए । गंथ पुष्पादि से पूजित करते हुए उन्हें दो-दो तात्र पात्र भी अर्पित करना चाहए ॥३२-३५। वेदी के पूर्व उत्तर

१. हृङ्गुलाधिकम्, द्वयङ्गुलाधिकम् । २. अन्त्राणि । ३. सर्वोपकरणानि च । ४. संपूजितं राजन् ।
 ५. समस्तभुवनेश्वर । ६. रात्रौ तमधिवासयेत् । ७. यतात्मानः ।

वेदाः पूर्वोत्तरे भागे ग्रहवेदिं प्रकल्पयेत् । तत्र प्रहृत्त्वलोकपालान्वह्यविष्णुमहेश्वरात् ॥३६
 पूजयेत्स्वर्णघटितान्युष्मधूपविलेपनैः^१ । पताकाभिरलंकृत्य मण्डपं तोरणस्तथा ॥३७
 कुम्भदृष्टं च द्वारेषु स्थापयेद्वलसंयुतम् । तुलापुरुषमन्त्रैश्च लोकपालबलिं क्षिपेत् ॥३८
 पालाक्यः समिधस्तत्र प्रशस्ता होमकर्मणि^२ । चरश्चैवेन्द्रैव्यस्तिला गव्यं धृतं तथा ॥३९
 स्वलिंगैर्होमयेत्पूर्वं मन्त्रव्याहृतिभिः पुमान् । अयुते द्वे च होमस्य मन्त्र्यामाहुर्मनीषिणः ॥४०
 यजमानस्ततः स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः । भक्त्या हिरण्यगर्भं च पर्वकाले समर्चयेत् ॥४१
 नमो हिरण्यगर्भाय विश्वाभार्यै^३ वै नमः । चराचरस्य जगतो गृहभूताय ते नमः ॥४२
 मात्राहं जनितः पूर्वं मत्यधर्मासुरोत्तम । तदगर्भसम्भवादद्य दिव्यदेहो भवाम्यहम् ॥४३
 इत्युच्चार्य स्वयंभक्त्या कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् । क्षीराज्यद्यधिसम्पूर्णं तदगर्भं प्रतिशेषदृढः ॥४४
 सौवर्णी धर्मराजं तु सव्ये कृत्वा करे ततः । भास्करं दक्षिणे चैव^४ मुष्टिं बद्धवा प्रयत्नतः ॥४५
 जान्वोरन्तरतश्चैव शिरः कृत्वा समाहितः । उच्छ्रवासपञ्चकं तिष्ठेच्चेतसा चितयच्छ्वम् ॥४६
 गर्भधानं पुंसपन्तसीमत्तोन्तयनं तथा । कुर्याहिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः ॥४७
 जातकर्मादिकाः कुर्युः क्रियाः षोडश चापराः । तत उत्थाय निःसृत्य पुनः कुर्यात्प्रदक्षिणान् ॥४८
 तावन्मुखं न पश्येत कस्यचिन्नृपत्सत्तम । सौवर्णा पृथिवी^५ वायन्नदृष्टा स्पष्टचक्षुषा^६ ॥४९
 ततः स्नानं प्रकुर्वीत ब्रह्मघोषपुरःसरम् । अष्टौ द्विजाः सुवर्णांगा सौवर्णैः कलशैः शुभैः ॥५०

(ईशान कोण) में ग्रहों की बनाकर उस पर ग्रहण, लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की सुवर्ण प्रतिमा की अर्चना पुष्ट, धूप एवं अनुलेपादि द्वारा सुसम्पन्न करते हुए पताकाओं और तोरणों से अलड़कृत उस मण्डप में प्रत्येक द्वार पर रत्नगर्भित दोदो कलशों की स्थापना करे । तुला पुरुष के मंत्रों द्वारा लोक पालों को बलि प्रदान करने के अनन्तर उस हवन कर्म में प्रशस्त पलाश की समिधा, इन्द्र देवता वाली चर, तिल, गो धृत को एकत्र कर प्रथम नामलिंगात्मक मंत्र और व्याहृतियों द्वारा आहुति प्रदान करें । मनीषियों ने बीस सहस्र संख्या की आहुति इस हवन कर्म में समर्पित करना बताया है । अनन्तर यजमान पर्व काल में भक्तिपूर्वक स्नान, शुक्लाम्बर—हिरण्यगर्भ को नमस्कार है, विश्वगर्भ को नमस्कार है और चराचर जगत् के गृह भूत को नमस्कार है । सुरोत्तम ! सर्वप्रथम माता द्वारा मैं मनुष्यधर्मा होकर उत्पन्न हुआ था किन्तु आज पुनः तुम्हारे गर्भ से सम्भूत होकर मैं दिव्य देह हो रहा हूँ । ऐसा कहते हुए भक्ति श्रद्धा सम्पन्न यजमान प्रदक्षिणा पूर्वक धूध, दही, धी पूर्ण उस गर्भ में प्रवेश करे । ३६-४४ धर्मराज की सुवर्ण प्रतिमा बायें हांथ और सूर्य की सुवर्ण प्रतिमा दाहिने हाथ में मुद्री बांधे, जानु (धृटने) के भीतर शिर गले और पाँचवास तक शिव (कल्याण) चितन करते हुए ठहरा रहे । अनन्तर थेष्ठ बाह्यणों को हिरण्यगर्भ का गर्भाधान, पुंसवन, सीमनोत्पन्नादि स्नेह संस्कार सुसम्पन्न करना चाहिए । नृपसत्तम ! अनन्तर उठकर उसमें से निकलकर प्रदक्षिणा करे । ४५-४९ और जब तक दक्षिणा की सुवर्ण प्रतिमा का स्पष्ट दर्शन न हो तब तक किसी का मुख न देखे । पश्चात् ब्रह्मघोष पूर्वक स्नान करने के अनन्तर आठ ब्राह्मण, जो सुवर्ण

१. पुष्पवस्त्रानुलेपनैः । २. यज्ञकर्मणि । ३. ब्रह्मगर्भाय । ४. भागे । ५. सूर्यकिरणसंपर्कदापीतवर्णा पृथिवी सौवर्णा—सूर्वणमयी च । ६. स्पष्टचेतसा ।

रौप्यरोदुम्बरैर्वर्णि^१ मृण्मयैर्वा सुशोभने: । दध्यक्षतविद्वित्राङ्गैराभ्रपल्लवशोभितैः ॥५१
 गुष्ठैरावेष्टितश्रीवैरव्रणैः कलशैदृढैः^२ । चतुष्कमध्ये संस्थाप्य पीठमन्त्रणमुत्तमम् ॥५२
 तत्र स्थाप्य महाभाग यजमानं द्विजोत्तमाः । देवस्य त्वेति मन्त्रेण कुर्युरस्याभिषेचनम् ॥५३
 अद्य जातस्य हेऽङ्गानि^३ अभिषेक्यामहे वयम् । दिव्येनानेन वपुषा चिरंजीवसुखी^४ भव ॥५४
 एवं कृताभिषेकस्तु यजमानः समाहितः । दद्याद्विरप्यगर्भं तं सोदकेनैव पाणिनाः ॥५५
 तन्सम्पूज्य च भावेन बहुभ्यो च तदाक्षया । यज्ञोपकरणं सर्वं गुरवे विनिवेदयेत् ॥५६
 पादुकोपानहौ चैव छत्रचामः भाजनम् । अन्येषां चैव विप्राणां ये च तत्र सभासदः ॥५७
 तेषां चैव प्रदातव्यं दानं चात्र विशेषतः । दीनांभृपणानां च दातव्यं भार्वकामिकम् ॥५८
 अन्नसत्रं च कर्तव्यं याददानपरिग्रहः । अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति ॥५९
 स कुलं तारयेत्सर्वं देवलोकं स गच्छति । दिष्टानवरमारुद्धृ पञ्चदोजनविस्तृतम् ॥६०
 वार्षीकूपतडागाद्यैर्जलस्थानैरलंकृतम् । उद्यानशतसंस्थानं पद्माकरनिधेवितन् ॥६१
 प्राभादशतसंकीर्णं वरस्त्रीशतसेवितम् । वीणानेणुमृदङ्गानां शब्दैरापूरितं महत् ॥६२
 भूमयो यत्र राजेन्द्र दिव्या नणिन्याः शुभाः । वेदिकाभिर्विचित्राभिः शोभितं भास्करप्रभम् ॥६३
 धृतं स्तम्भसहस्रेण सुकृतं दिश्वकर्मणा । पताकाभिर्विचित्राभिर्जैश्च समलंकृतम् ॥६४
 तदारुद्धृ विमानग्रं विद्याधरगणैर्युतम् । स याति लोकं शक्तस्य शक्तेण सह मोदते ॥६५

भूषित हों, सुवर्ण, चाँदी, ताँबा ये मिट्ठी के कलशों द्वारा, जो दधि, अक्षत से चित्र विचित्र, आम के पल्लव से भूषित, कण्ठ में पुष्प माला, ब्रण रहित एवं दृढ़ हों चतुष्क के मध्य ब्रण रहित पीठासन पर स्थित यजमान का 'देवस्य त्वेति' मंत्रोच्चारा पूर्वक अभिषेक करते हुए कहें कि—उत्पन्न हुए तुम्हारे अंगों का हम लोग अभिषेक कर रहे हैं अतः इस दिव्य शरीर द्वारा चिरंजीवन प्राप्त करते हुए सुखी रहो । इस भाँति ध्यान मन यजमान के अभिषेक हो जाने पर यजमान जलपूर्ण पाणि द्वारा हिरण्यगर्भ का दान करे । उन कृत्तिजों की प्रेमाचार्चा करते हुए उन्हें या उनकी आज्ञा से अनेकों को वितरण अथवा यज्ञ का समस्त साधन गुह को सादर समर्पित करे । ५०-५६ । चरणपादुका, उपानह, छाता, चामर, पात्र, अन्य विप्र या सभासदों को अर्पित करें । पुनः विशेषदान दीन, अंधे, कृपण आदि व्यक्तियों को यथेच्छ अन्न दान यज्ञ समाप्ति करता रहे । इस विधान द्वारा दान करने वाला मनुष्य समस्त कुल को तारते हुए पाँच योजन के विस्तृत एवं परमोत्तम विमान द्वारा उस देवलोक की यात्रा करता है, जो बावली, कूप, सरोवर आदि जलाशयों से अलंकृत, सैकड़ों उपवन और पद्माकर से सेवित, सैकड़ों प्रासाद (महलों के कोठे) से आच्छन्न है एवं जहाँ सैकड़ों दिव्याङ्गनाएँ सेवा करने के लालायित रहती हैं, वीणा, वेणु, मृदङ्ग, की ध्वनियों का महान् कोलाहल आरम्भ रहता है । राजेन्द्र ! उसकी भूमि मणिमय, दिव्य एवं शुभ होती है, विचित्र वेदियों से सुशोभित तथा भास्कर के समान उसकी प्रभा है । विश्वकर्मा ने निर्माण के समय उसमें सैकड़ों स्तम्भ लगाये हैं, विचित्र पताकाओं और वज्रों से वह निरान्त विभूषित है । ऐसे परमोत्तम विमान पर बैठ कर विद्याधरगणों समेत इन्द्र लोक पहुँच कर इन्द्र के साथ वह आनन्दानुभव करता है । ५७-६५ । सौ मन्वन्तरों के

१. ताम्रमयैरित्यर्थः । २. गौरवर्णैर्वैर्दृढैः । ३. मूर्धिं । ४. चिरञ्जीवी ।

मन्वन्तरथे जाते कर्मभूमै प्रजायते । जम्बूद्वीपमशेदं^१ तु भुक्ते दिव्यपराक्रमः ॥६६
 धार्मिकः सत्यशीलश्च ब्रह्मण्ये गुरुवत्सलः । दश जन्मान्यसौ राजा जायते रोगदर्जितः^२ ॥६७
 यस्त्वदं शृणुयाद्ब्रूक्त्या रहस्यं पापनाशनम् । सोऽपि वर्षशतं साग्रं सुरलोके महीयते ॥६८
 गर्भं हिरण्यरचितं विधिवत्प्रविश्य संस्कारसंस्कृततनु पुनरेवतस्मात् ।
 निःसृत्य^३ तद्विजवराय निवेद्य भक्त्या मार्तण्डवद्विवि विराजति दिव्यदेहः ॥६९
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 हिरण्यगर्भदानविधिवर्णनं नाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७६

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्माण्डदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अगस्त्येन पुरा गीतो दानानां विधिरत्तमः । शृणु त्वं राजशार्दूलं कथ्यमानं मयाधुता ॥१
 येन दत्तेन राजेन्द्र सर्वं पापं व्यपोहति । मानसं वाचिकं वापि कायिकं च सुदुस्तरम् ॥२
 नज्जलं नज्जलं पुण्यं सर्वदानेषु चोक्तमम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं परलोकभयापहम्^४ ॥
 ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वा सर्वलक्षणसंयुताम् ॥३

समान तक वहाँ सुखानुभव करने के पश्चात् वह इस कर्म भूमि में जन्म ग्रहण कर अपने दिव्य पराक्रम द्वारा निखिल जम्बूद्वीप का उपभोग करता है । दश जन्म तक धार्मिक सत्यशील, ब्रह्मतेजा, गुरु वत्सल एवं नीरोग राजा होता है । भक्तिपूर्वक इस रहस्य का श्रवण करने वाला भी पाप विनाश पूर्वक सौ वर्ष तक सुरलोक में पूजित होता है । इस प्रकार हिरण्य (सुवर्ण) रचित गर्भ में प्रविष्ट होकर पुनः (गर्भाधानादि) संस्कार सम्पन्न होकर निकलने पर वह मनुष्य भक्तिपूर्वक थेष्ठ ब्राह्मण को उसे अंगित करने पर सूर्य की भाँति दिव्य देह प्राप्त कर सुशोभित होता है । ६६-६९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 हिरण्यगर्भदान विधि वर्णन नामक एक सौ छिह्नतर्वाँ अध्याय समाप्त । १७६

अध्याय १७७

सुवर्णनिर्मित ब्रह्माण्डदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृपशार्दूल ! प्राचीन काल में अगस्त्य जी ने दानों का परमोत्तम विधान बताया है, मैं तुम्हें वही बता रहा हूँ, मुनो ! राजन् ! जिस विधान द्वारा दान देने पर कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों भाँति के पाप विनष्ट होते हैं तथा मंगलों में परम मज्जल, समस्त दानों में वह परमोत्तम धन्य, यश और आयुर्वर्द्धक तथा शत्रुओं को भयप्रद हैं । ब्रह्माण्ड की सर्वलक्षण सम्पन्न काञ्चन प्रतिमा

१. च । २. पापवर्जितः । ३. निर्त्य । ४. परलोकभयावहम्, पाठे परलोकः शत्रुजनो बोध्यः ।

देवासुरमनुष्यैश्च गन्धर्वोरगराक्षसैः । संयुक्तं च नदीभिश्च समुद्रैः पर्वतैस्तथा ।
 विमानशतकोटीभिर्भूषितं दाप्सरोवरैः^१ ॥४
 दिग्गाष्टकसंयुक्तं मध्यस्थितचतुर्मुखम् । शिवाच्युताकंशिखरमुमालक्ष्मीसमन्वितम् ॥५
 तस्यांगे कल्पयेद्राजनभुवननानि चतुर्दश । दित्स्तरञ्जुलशतं यावदायामविस्तरम् ॥६
 कुर्याद्विंशत्पलादूर्ध्वमासहृष्टाच्च भक्तिः । शकलद्वयसंयुक्तं पुटाकारं मुसंहितम् ॥७
 शिल्पिना विहितं यस्माद्ब्राह्मणां सर्वकामदम् । अयने विषुवे चैव चन्द्रादित्यग्रहे तथा ॥८
 अन्येष्वपि तु कालेषु श्रद्धावित्समन्वितः । पुष्टमण्डपिकां कृत्वा तत्र संस्थापयेद्बृहः ॥९
 तिलदोणोपरिगतं कुकुमक्षोदर्चक्षितम् । वासो युग्मेन संच्छाय पुष्टगन्धाधिवासितम् ॥१०
 तस्य दिक्षु च सर्वासु पूर्णकुम्भांश्च विन्यसेत् । अष्टादशैव धान्यानि द्रोणमात्राण्ययाहरेत् ॥११
 गृहे वा मण्डपे वापि स्थापयेत्तद्विचक्षणः । पादुकोपानहच्छब्दभाजनासनदर्शणैः ॥१२
 संयुक्तं कारयेत्तत्र पयस्त्वन्या तथैव च । कारयेकुण्डमेकं तु हस्तमात्रं विधानतः ॥१३
 चतुश्चारणिकास्तत्र हेऽमं कुर्याद्विजोत्तमाः । सर्वाभरणसम्पन्नाः सुस्नाताहृतवाससः ॥१४
 प्रचरेयुर्द्विजास्तत्र उपाध्यायसमन्विताः । तथा पुरोहितश्चैव राजा षष्ठो विधीयते ॥१५
 इतरेषां तु पञ्चैव कुर्याद्यजमतंद्रिताः । ग्रह्यज्ञविधानेन ग्रहाणां यज्ञ इष्ट्यते^२ ॥१६
 ब्रह्मविष्णुशिवानां च तत्त्वान्मो^३ जहुयात्तिलान् । अयुतं होमयेत्पश्चान्महाव्याहृतिर्भिर्नृपैः ॥१७
 रुद्रजापस्तु कर्तव्यस्तस्त्यैवानन्तरे द्विजैः । ततः सर्वसमाप्तौ तु स्नात्वा शुक्लाम्बरः शुचिः ॥१८

बनाये । १-३। जिसमें देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, नदी, समुद्र, पर्वत, सैकड़ों उत्तम विमान, अप्सराएँ आठों दिंगज, मध्य में ब्रह्मा, शिव, विष्णु, सूर्य शिखर में और उमालक्ष्मी आदि स्थित हों। राजन् ! उसके अंग में चौदहों भुवन की रचना करे । वह सौ अंगुल का लम्बा चौड़ा हो । उसकी रचना कण से कम बीस पल से सहस्र पल सुवर्ण तक की करनी चाहिए । उसके दो खण्ड (भाग) बनाते समय उसे उठाकर (गोलाकार) बनाये । इस भाँति शिल्पी द्वारा उस ब्रह्माण्ड की रचना कराये, जो समस्त कामनाओं को सफल करता है । पुनः किसी अयन, विषुप, चन्द्र सूर्य ग्रहण, या अन्य किसी पुण्य अवसर पर श्रद्धा भक्ति समेत उसे पुष्ट मण्डप में स्थापित कर द्रोण प्रमाण तिल के ऊपर रखकर कुकुम चन्दन चर्चित करे । दो वस्त्र से आच्छान्न कर पुष्ट गन्ध से अधिवासित करते हुए उसके सभी दिशाओं में पूर्ण कलशों की स्थापना करे द्रोण प्रमाण अट्ठारह प्रकार के धान्यों को एकत्र कर घर या मण्डप में उस मूर्ति की स्थापना करे । ४-१६। चरणपादुका, उपानह, छत्र, पात्र, आसन, दर्पण, पयस्त्विनी गौ आदि के दान पूर्वक उसमें एक हाथ का विस्तृत कुण्ड बनाये, जिसमें चार चारिणिक थेष्ठ ब्राह्मण समस्त भूषित एवं नवीन वस्त्र धारण कर हवन कार्य सम्पन्न करें । उस यज्ञ में उपाध्याय समेत चार अन्य व्राह्मण, पुरोहित और छठां राजा रहता है । किन्तु पुत्र यज्ञ में पाँच ही यज्ञ कार्य करते हैं । ग्रह्यज्ञ के विधान द्वारा ग्रहों की आहुति प्रदान करके ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव के लिए उनके नामों के उच्चारण करते हुए तिल की आहुति देनी चाहिए । १२-१६।
 नृप- ! पश्चात् महाव्याहृतियों द्वारा दश सहस्र संख्या की आहुति अपित करते हुए बीच-बीच में

१. चाप्सरोवरैः । २. उच्यते । ३. तत्राज्यम् । ४. महाव्याधिहृतिर्भवेत् ।

ब्रह्माण्डं पूजयेदद्वक्त्या गृहीतकुमुमाञ्जलिः । नमो जगत्प्रतिष्ठाय विश्वधाम्ने नमोऽस्तु ते ॥१९
 वाऽम्यान्तं निमग्राय ब्रह्माण्डं शुभकूद्व । ब्रह्माण्डोदरवर्तीनि यानि सत्त्वानि कानिचित् ॥२०
 तानि सर्वाणि मे तुष्टिं प्रयच्छन्त्वतुलां^१ सदा । ब्रह्मः विष्णुश्च रुद्रश्च लोकपालास्तथा प्रहाः ॥२१
 नक्षत्राणि तथा नागा ऋषयो भृत्यस्तथा । सर्वे भवन्तु सन्तुष्टाः^२ सप्तजन्मान्तराणि मे ॥२२
 इत्युच्चार्यं ततो दद्याद्ब्रह्माणं सर्वकामदम् । सदक्षिणं च तं कृत्वा वसु सप्तदयेद्विजान्^३ ॥२३
 अनेन विधिना दत्त्वा यत्पुण्यं स्यान्नरोक्तम् । ततेऽहं सम्प्रवद्यामि शृणुष्व शटतो मम^४ ॥२४
 आसीदादियुगे राजा मुहुम्नो^५ नाम भारतः । नागायुतबलः श्रीमान्बहुभृत्यरिच्छदः ॥२५
 त्रिंशद्वर्षसहस्राणि^६ कृत्वा राज्यमकण्ठकम् । ततः संस्थाप्य तनयं राजा राज्ये वनं ययौ ॥२६
 प्रविश्य च वनं धोरं तपस्तीव्रं चद्धर ह । अध्यात्मगतितत्त्वज्ञः कर्मकाण्डं विसृज्य च ॥२७
 कालेन महता राजा दिष्टान्तमगमत्पुरा । दिव्यं विमानमारुण्य नानावाद्यरवाकुलम्^७ ॥२८
 अतीत्य शक्तलोकादीन्द्रहृलोकमितो गतः । तस्यासनं दिवेशाश्च ब्रह्माद्युरगणैर्वृतः^८ ॥२९
 दिव्यं कनकचित्राङ्गं रत्नालकृतविग्रहम् । एवं लोकवरे तस्मिन्नरममाणो नृपोत्तम ॥३०
 आस्ते चानुदिनं सोऽथ दिव्यभोगविवर्जितः । वसनस्तस्य राजस्तु शरीरं परितप्यते ॥३१

ब्राह्मणों द्वारा रुद्र जाप होना चाहिए । सर्वे की समाप्ति होने पर स्नान-शुक्लाम्बर धारण एवं पवित्रता पूर्ण यजमान भक्ति पूर्वक पूष्पाञ्जलि लेकर ब्रह्माण्ड की अर्चा करे—(अपने में) जगत् स्थापित करने वाले को नमस्कार है, विश्व गृह को नमस्कार है । ब्रह्माण्ड ! आप वाऽम्य के भीतर निमग्न हैं एवं आप का जन्म शुभ कारक है । और ब्रह्माण्ड के उदर में जितने सत्त्व हैं उसे समेत मुझे अतुलनीय तुष्टिप्रदान करने की कृपा करें । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लोकपाल, प्रह, नक्षत्र, नाग, कृष्ण और मरुत गण आदि मेरे सात जन्म तक सन्तुष्ट रहें । इस प्रकार कहते हुए समस्त कामनाओं को सफलप्रद वह ब्रह्माण्ड धन दक्षिणा रामेत किसी द्वाष्ट्रण को अपित करे । नरोत्तम ! इस विधान द्वारा उसके दान करने जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उस मैं बता रहा हूँ, सुनो ! १७-२४। भारत ! आदि युग में सुद्युम्न नामक एक राजा था, जो दश सहस्र हाथी के समान बलवान, श्रीमान्, एवं अनेक सेवक गणों से सम्पन्न था । तीस सहस्र वर्ष निष्कण्टक राज्य का सुखानुभव करने के उपरान्त राजा राज सिंहासन पर अपने पुत्र को प्रतिष्ठित कर स्वयं जंगल चले गये । वहाँ धोर वन में पहुँच कर राजा ने कठिन तप करना आरम्भ किया । अध्यात्म गति के तत्त्व का निपुण वेत्ता उस राजा ने कर्म—काण्ड का विसर्जन करते हुए बहुत दिनों के अनन्तर इस लोक का त्याग किया । अनेक भाँति के वाद्य ध्वनियों से भूषित उस उत्तम विमान पर बैठकर वह राजा इन्द्र लोक के ऊपर ब्रह्म लोक चला गया । वहाँ देवगणों समेत ब्रह्मा ने आसन प्रदान पूर्वक उस का स्वागत किया, जो दिव्य, सुवर्ण से चित्र विचित्र और रत्नों से अलंकृत था । नृपोत्तम ! इस प्रकार के उत्तम लोक में रमण करते हुए वह राजा अनुदिन दिव्य भोग से वञ्चित होने लागा । वहाँ रहते हुए भी राजा की शरीर संतप्त होने लगी । २५-३१। नरश्रेष्ठ ! भूख और प्यास से व्याकुल होने पर उसने हाथ जोड़ कर ब्रह्मा से

. १. आत्मना । २. सुप्रीताः । ३. दिक्संख्यान्वाचयेद्विजान् । ४. वदतो मम । ५. प्रद्युम्नो नाम वीर्यवान् । ६. विंशद्वर्षसहस्राणि । ७. विद्याधराकुलम् । ८. सह ।

बुक्षया नरश्चेष्ठ तथात्यन्तपिपासया । स पीड्यमानो ब्रह्माणं कुताञ्जलिरभाषत ॥३२
भगवन्ब्रह्मलोकोऽयं सर्वदोषविर्जितः । अत्र स्थितं च मां देवं क्षुत्तृष्णा च प्रबाधते ॥३३
केन कर्म दिपाकेन क्षुधा मे नापसर्पति । ब्रह्मलोक गतस्यापि संशयं छेत्तुमर्हसि ॥३४

ब्रह्मोवाच^१

त्वया हि कुर्वता राज्यं पुष्टान्यज्ञानि पार्थिव । नैव दत्तं तु बहुलमात्मवादरतेन वै ॥३५
दानं बन्धात्मकं मत्वा तस्माद्दत्तं त्वया न हि । ज्ञानाद्ब्रह्मपदं प्राप्तनदानात्क्षुत्प्रबाधते ॥३६

राजोवाच

भगवन्स्तृष्णापनुत्तिः स्यात्कथं मे परमेश्वर । उपदेशप्रदानेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥३७

ब्रह्मोवाच

भूयो गत्वा महीं राजन्ब्रह्माण्डं सार्वकार्मिकम् । प्रयच्छ द्विजमुख्यानां^२ तेन तृप्तिमवाप्स्यसि ॥३८
इत्युक्तः सम्यगागत्य मर्त्यलोकं^३ महीपतिः । ब्रह्माण्डं तु विधानेन ब्राह्मणेभ्यः प्रदत्तवान् ॥३९
स जगाम पुनः स्वर्गं लेभे तृप्तिं च शाश्वतीम् । एतत्ते सर्वमाख्यातं महादानस्य यत्फलम् ॥४०
ब्रह्माण्डं यः प्रयच्छेत तेन दत्तं चराचरम् । सप्तावरान्सप्तं परान्सप्तं चैव परावरान् ॥४१
तारयेत्कुलजान्दत्त्वा भविष्यांश्च न संशयः । मन्वन्तराणि षट्ट्रिंशद्ब्रह्मलोके महीयते ॥४२
पुनर्मनुष्यमभ्येत्य^४ धार्मिको जायते कुले । न दारिद्र्यं न च व्यार्थिं वियोगं नैव^५ पश्यति ॥४३

कहा—भगवन् ! यह ब्रह्म लोक समस्त दोषों से रहित है किन्तु यहाँ रहते हुए भी मुझे भ्रूख-प्यास की बाधा हो रही है, देव ! ब्रह्म लोक पहुँचने पर भी मेरे किस कर्म के दुष्परिणाम स्वरूप यह क्षुधा निवृत्त नहीं हो रही है, यह संशय दूर करने की कृपा करें । ३२-३४

ब्रह्मा बोले—पार्थिव ! राज्य करते हुए तुमने अपने शरीराङ्गों को ही पुष्ट किया अध्यात्मवादी होने के नाते कोई महान् दान नहीं किया । दान को बन्धन समझ कर उसे सम्पन्न नहीं किया इसलिए केवल ज्ञान द्वारा तुम्हें ब्रह्म पद प्राप्त हुआ है और दान न करने से क्षुधा । ३५-३६

राजा बोले—भगवन्, परमेश्वर ! मेरी तृष्णा का अपहरण किस प्रकार होगा, उपदेश द्वारा बताने की कृपा करें । ३७

ब्रह्मा बोले—राजन् ! पुनः पृथ्वी पर जाकर सर्वकामप्रद ब्रह्माण्ड दान किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अपित करो, उससे तुम्हें तृप्ति होगी । उनके ऐसा कहने पर राजा मर्त्य लोक में आकर सविधान ब्रह्माण्ड का दान ब्राह्मणों को अपित किया, जिससे स्वर्ग जाने पर उसे शाश्वती तृप्ति हुई । इस भाँति इस महादान का जो फल होता है मैंने वह तुम्हें मुना दिया । ब्रह्माण्ड का दान करने वाला चराचर जगत् का दान किया इसमें संदेह नहीं । पूर्व और पर की सात सात पीढ़ियों का वह उद्धार करता है । इस दान के

१. कृष्ण उवाच, विष्णुरुचाच । २. द्विजमुख्याय । ३. ब्रह्मलोकात् । ४. आसाद्य । ५. न वै विपत् ।

नारी वा पुरुषो वायि दानस्यास्य प्रभावतः । यश्चैतच्छृण्युद्भक्त्या भक्तानां श्रावयेच्च यः ॥४४
सोऽपि सद्गतिमाप्नोति किं पुनर्यः प्रयच्छति ॥४५

ब्रह्माण्डखण्डयुगलं सकुलाचलं च दिवभागसागरसरोवरसिद्धजुष्टम् ।
दिक्संख्यया गुणवतां द्विजसत्तमानां दत्त्वा पुमान्पदमुपैति पितामहस्य ॥४६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ब्रह्माण्डदानविधिवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७७

अथाष्टासप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कल्पदृक्षदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

भगवऽच्छंकरः पूर्वं कृतोद्भाहोमया^१ सह । रममाणस्तया सार्वं बहुवर्षगणास्थितः ॥१
ततः सुरगणाः सर्वे परं त्रासमुपागताः । तयोरपत्यस्य भयात्मेव शरणं गताः ॥२
वैश्वानरमुखा देवा महादेव^२ त्रिलोचनम् । प्रसन्नश्चाभवतेषां विबुधानां त्रिलोचनः ॥३

प्रभाव से स्त्री पुरुष छत्तीस मन्वन्तरों के समयं तक वहाँ (ब्रह्मलोक में) सुखानुभव करके पुनः धार्मिक मनुष्य कुल में जन्म ग्रहण करता है । दरिद्र, व्याधि, और वियोग दुःख उसे कभी नहीं होता है ॥४८-४९। भक्तिपूर्वक भक्तों को इसे सुनने सुनाने वाला भी सद्गति प्राप्त करता है तो दान करने वाले को क्या कहा जाये । इस प्रकार ब्रह्माण्ड के सुवर्ण निर्मित दो खाड बनाकर, जिसमें समस्त पर्वत, दिशाएँ, जागर, सरोवर आदि बने रहते हैं, गुणी एवं श्रेष्ठ दश ब्राह्मणों को अपित करने वाले को ब्रह्मपद प्राप्त होता है ॥४४-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
ब्रह्माण्डदानविधिवर्णन नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७७।

अध्याय १७८

सुवर्णनिर्मित कल्पवृक्ष दान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पूर्वकाल में भगवान् शङ्कर ने उमा देवी के साथ पाणिग्रहण करके अनेक वर्षों तक रमण किया । अनन्तर समस्त देवगण उनदोनों से उत्पन्न होने वाली सन्तान के भय से त्रस्त होकर उनके शरण में गये । वैश्वानर (अग्नि) आदि समस्त देवताओं ने त्रिनेत्र महादेव के पास पहुँचकर उन्हें प्रसन्न किया ॥१-३

१. सन्धिरार्थः कृतोद्भाहा उमया सहेति पदच्छेदः । यद्वा—कृतोवाहया उमया सहेति योजनानुसंधया । २. देवदेवम् ।

ईश्वर उवाच

किं भीतास्त्रिदशः सर्वे कं वरं च ददामि वः । मयि प्रसन्ने विबुधा दुर्लभं हि न किञ्चन ॥४

देवा ऊचः

भावन्त्सव संयोगात्पार्वत्या सह शङ्कर । मोघो भवतु देवेश भीताः स्म तनयस्य ते ॥५
अनपत्यश्च देवेश भद्र भूतपते सदा । अशक्ताः स्म वयं सर्वे भवदोजो विधारणे ॥६

श्रीभगवानुवाच

अतः प्रभृत्यहं देवा ऊर्ध्वरेता व्यवस्थितः । स्थाणुवृच्च स्थितश्चास्मि नाम चैतद्विष्यति ॥७
ततः कुद्धा उमा तेषां देवानां वाक्यमब्रवीत् वितथं पुत्रजं सौख्यं भवद्विर्में कृतं सुराः ॥८
यस्मात्समाद्ववन्तोऽपि न युत्राज्जनयिष्यथ । ततः प्रभृति वै देवाः प्रसूयन्ते न भूपते ॥९
दत्त्वा शापं ततो देवी देवानामाह शङ्करम् ! पुत्रजन्म मया प्राप्तं न तावज्जगतः पते ॥१०
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इतीयं श्रूयते श्रुतिः । तदादिश महाभाग लोकद्वयहितं प्रभो ॥११

भगवानुवाच

अपुत्रः पुरुषो यश्च नारी वा पर्वतात्मजे । सौर्वर्णस्तेन दातव्यः कल्पवृक्षो गुणान्वितः ॥१२
कृत्रिमं वापि गृह्णीयाद्वक्षं वा स्थावरादिकम् । ज्ञातपुत्रोऽथ वा पुत्रः पुत्रत्वे परिकल्पयेत् ॥१३
तेन पुत्रवतां लोका देवि तत्य न संशयः । कल्पवृक्षस्तु कर्तव्यः शुद्धाकाञ्चनसम्भवः ॥१४

ईश्वर बोले—देवगण ! क्या आप लोग भयभीत हो रहे हैं ? कौन वर तुम्हें प्रदान करें, क्योंकि मेरे प्रसन्न होने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ॥४

देवों ने कहा—देवेश, भगवन्, शंकर ! पार्वती के साथ किया हुआ तुम्हारा भोग निष्फल हो जाये हम लोग तुम्हारे पुत्र से भयभीत हो रहे हैं । देवेश, भूतपते ! आप सदैव सन्तान हीन रहें क्योंकि आप के तेजों को धारण करने में हम सभी असमर्थ हैं ॥५-६

श्रीभगवान् बोले—देवगण ! आज से मैं अब ऊर्ध्वरेता रहकर स्थाणु की भाँति स्थित रहूँगा, जिसे 'स्थाणु' भी मेरा नाम हो । तदुपरान्त उमा ने कुद्ध होकर देवताओं से कहा—देवगण ! तुम लोगों ने मेरा पुत्र-जन्य सौख्य निष्फल कर दिया है, इसलिए तुम लोग भी पुत्र उत्पन्न न कर सकोगे ! भूपते ! उसी समय से देवों के कोई प्रसव न हो सका । इस भाँति देवों को शाप देने के अनन्तर देवी ने शंकर जी से कहा—जगतपते ! महाभाग ! मुझे पुर्णजन्म का सुख प्रदान हो सका, और श्रुति भी कहती कि पुत्रीन की गति नहीं होती है, अतः दोनों लोकों का हित करने वाली कोई आज्ञा प्रदान करने की कृपा करें ॥७-११

भगवान् बोले—पर्वतात्मजे ! पुत्र हीन स्त्री या पुरुष को सुवर्ण का सुरचित कल्पवृक्ष दान करना चाहिए । देवि ! इस प्रकार कृत्रिम, या स्थवरादि वृक्ष अथवा उत्पन्न पुत्र में प्रभुत्व की कल्पना करने से लोक पुत्रवान् कहा जाता है इसमें संशय नहीं शुद्धस्वर्ण द्वारा एक कल्पवृक्ष का निर्माण करें ॥१२-१४

बहुशाखः सुवर्णांगोप्यनेककुसुमान्वितः । महास्कंधस्वरूपश्च रत्नालंकृतविग्रहः ॥१५
 कलानि तस्य दिव्यानि सौवर्णानि प्रकल्पयेत् । कूर्याविंशतिपलाद्बुद्धं शक्त्या वा नृप सत्तम् ॥१६
 दानमेतत्प्रदातत्व्यं राजतं चैवमुत्तमम् । प्रवालंकुरसंछन्नं मुक्तादामावलम्बितम् ॥१७
 चतुष्कोणेषु कुर्दीत चतुरः काञ्चनद्रुभान् । सुदर्शस्य प्रमाणं च कथयामि वरानने ॥१८
 तहस्तेण तदद्देन तस्याप्यद्देन वा पुदः । नद्यास्तीरे गृहे द्वापि^१ देवतायतने तथा ॥१९
 प्रागुदकप्रबणे देशे मण्डपं तत्र कारयेत् । दशहस्तप्रमाणेन दशहस्ताश्च वेदिकाः ॥२०
 हस्तमात्रप्रमाणेन कुण्डमंकं सुशोभनम् । आग्नेयां कारयेद्राजन्मेखलामुपलेपनम् ॥२१
 तत्र वै ब्राह्मणा येज्या ऋग्यजुः^२ सामपाठकाः । उपदेष्टां च तत्रैव द्वितीयः^३ पञ्चमोऽथ वा ॥२२
 सर्वाभरणसम्पन्नास्ताप्रपत्रद्वयान्विताः । अनुलिप्ताश्चन्दनेन वस्त्रमाल्यादिभूषिताः ॥२३
 गुडप्रस्थोपरिष्टाच्च स्थापयेत्कल्पपादपम् । ब्रह्मविष्णुशिवोपेतं पञ्चशाखं सभास्करय् ॥२४
 कानदेवमधस्ताच्च सकलत्रैः प्रयोजयेत् । सन्तानं सह गःपत्या पूर्वतो लवणोपरि ॥२५
 मन्दारं दक्षिणे पाश्वेण शिथ्या सह तथा घृते^४ । पश्चिमे परिजातं तु उमया सह पादपम् ॥२६
 सुरभीसंयुतं तद्वत्तिलेषु हरिचन्दनम् । कैशेयवस्त्रसंयुक्तानिक्षुमाल्यफलान्वितान् ॥२७
 तथाष्टौ पूर्णकलशान्समन्तात्परिकल्पयेत् । अग्निप्रणयनं कृत्वा अधिवास्य च पादपान् ॥२८

जो बहुत शाखाओं से आच्छन्न, सुवर्णाङ्गि होते हुए अनेक पुष्पों से भूषित, महान् स्कंध और उसकी समस्त शरीर रत्न से अलंकृत हो। उसके दिव्य फल भी सुवर्ण निर्मित ही होने चाहिए। नृपसत्तम ! बीस पल से अधिक सुवर्ण या चाँदी का यह उत्तम दान करना चाहिए। जो प्रवाल के अंकुरों से आच्छन्न और मोती की मालाएं आबद्ध होकर लटकी हों। उसके चारों कोण पर चार सुवर्ण वृक्ष होने चाहिए। वरानने ! मैं सुवर्ण प्रभाव तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! सहस्र या तदद्वं अथवा उसके भी आधे भाग से उसका निर्माण करके नदी, गृह या देवालय के प्रदेश में पूर्वोत्तर (ईशान) की ओर निम्न एक मण्डप की रचना करे, जो दश हाथ का विस्तृत हो और उसकी बेदी भी दशहाथ की विस्तृत हो। उसके चारों ओर ऋग् वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के मर्मज्ञ विद्वानों को सादर नियत करे, जो उपदेष्टा समेत तीन या पाँच की संख्या में हों। उन्हें समस्ताभरणभूषित, दो ताम्रपात्रों से युक्त, चन्दन से आहुति से अनुलिप्त और वस्त्र-माला आदि से अलंकृत करने के उपरान्त एक सेरे गुड़ के ऊपर वह कल्पवृक्ष स्थापित करे जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव से युक्त, पाँच शाखाओं से अन्वित एवं भास्कर समेत हों। उसके नीचें रति समेत कामदेव, पूर्वक की ओर लवण के ऊपर संतान समेत गायत्री, दाहिने पार्श्व में घृत पर श्री समेत मन्दार, पश्चिम में उमासमेत पारिजात वृक्ष, तिल के ऊपर सुरभी समेत हरिचन्दन की स्थापना करते हुए चारों ओर रेणमी वस्त्र भूषित और ऊख, माला, फल आदि समेत आठ पूर्ण कलश स्थापित करे। अग्नि स्थापन पूजन और वृक्षों के अधिवासन करके चारों ओर समस्त धान्यों की कल्पना करे। २२-२८।

१. पार्श्व । २. ऋग्यजुः सामपाठकाः । ३. द्वितीयः । ४. सङ्कल्पेन । ५. वृत्तेन ।

धन्यानि चैव सर्वाणि समन्तात्प्रिकल्पयेत् । नाना भक्ष्याणि नैवेद्यं सर्वं तत्र नियोजयेत् ॥२९
 दीपमाला विज्ञिवाश्र ज्वालयेत् समन्ततः । मन्त्रेण योजयित्वा ता भयोक्तेन वरानने ॥३०
 कामदस्त्वं हि देवानां कामवृक्षस्ततः स्मृतः । मया सम्मूजितो भक्त्या पूरयस्व मनोरथान् ॥३१
 एवं सम्पूज्य विधिना जगरं तत्र कारयेत् । शङ्खवादित्रिनिर्घोषैर्वेदध्वनिविनिश्चितः ॥३२
 होमं च ब्राह्मणं कुर्यामद्गतेनान्तरात्मनः । आधारावाज्यभागौ तु दूर्वा हुत्वा विचक्षणः ॥३३
 तत्त्विन्द्रियैः स्थापितान्दे वान्होमेनाप्ययेत्ततः । महाव्याहृतिभिश्चैव होमं कुर्यास्ततः परम् ॥३४
 अयुतेन भवेत्सिद्ध्यज्ञस्यवर्वर्णिनि । ततः प्रभाते चोत्थाय स्नात्वा शुद्धलाम्बरः शुचिः ॥३५
 दद्यात्पर्वसमीपे तु कल्पवृक्षं सदज्जिणम् । त्रिःप्रदक्षिणमात्यृत्य मन्त्रमेतदुदीरयेत् ॥३६
 नमस्ते कल्पवृक्षाय वितार्यप्रदाय च । विश्वंभराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये ॥३७
 यस्मात्त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मस्थापुदिवाकरा । मूर्तमूर्तपरं बीजमतः पाहि सनातन ॥३८
 एवमामन्त्य तं दृष्ट्वा गुरवे कल्पपादपम् । चतुर्भ्यश्चापि दृत्विगम्यः सामन्तादीन्प्रकल्पयेत् ॥३९
 अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति । तस्य पुण्यफलं देवि शृणुष्व गदतो मम ॥४०
 विमानवरमारह्य सूर्यतेजः समप्रभम् । अप्सरोगणसंकीर्णं किंकिणीजालमालितम्^१ ॥४१
 याति लोकं सुरेशस्य सर्वबाधाविवर्जितम् । पुनः कर्मक्षितिवेत्य जायते शोक्रिये कुले ॥४२

जहाँ अनेक भाँति के भक्ष्यपदार्थ एवं नैवेद्य सुसज्जित होते हैं । वहाँ दीपमालाएँ प्रज्वलित कर, जो चित्र विचित्र शोभित होती हों । वरानने ! इस प्रकार उनका आयोजन करके मेरे कहे हुए मन्त्र द्वारा उनकी अर्चना करें—देवों की समस्त कामनाओं को सफल करने के नाते तुम्हें कामवृक्ष कहा जाता है इसलिए मैंने भी भक्तिपूर्वक आपकी अर्चना की है मेरे मनोरथों को सफल करने की कृपा करें । इस भाँति उनकी पूजा के उपरान्त रात्रि में जागरण करें । सारी रात शंख तुरही आदि की ध्वनि, जयघोष, एवं वेदध्वनि होती रहती रहे । अनन्तर मेरे स्मरणपूर्वक ब्राह्मणों को हवन कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए । सर्वप्रथम आज्यभाग आधार की आहुति प्रदान करते हुए स्थापित देवों के निमित्त उनके लिंग द्वारा आहुति अन्य महाव्याहृतियों के उच्चारण पूर्वक यज्ञ की दशसहस्र संख्या की आहुति की पूर्ति करे । २९-३४। वरवर्णिने ! इस प्रकार यज्ञ सिद्धि होने के अनन्तर प्रातः काल स्नान, शुद्धलाम्बरधारण कर पवित्रता पूर्ण उस पर्व के समय उसकी तीन प्रदक्षिणा करते हुए दक्षिणा समेत वह कल्पवृक्ष वाहनगण को अप्ति करे—विस्तृत अर्थ प्रदान करने वाले कल्प वृक्ष को नमस्कार है, विश्वमूर्ति स्वरूप उस विधान विश्वमूर्ति देव को नमस्कार है । तुम्हारी विश्वात्मा, ब्रह्मा, स्थाणु (शिव) एवं सूर्य हो, तथा मूर्त अर्भूत के परम बीज और सनातन अतः मेरी रक्षा करो । देवि ! इस विधान द्वारा इसके दान करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो ! सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर बैठकर, जो अप्सरागणों से आच्छन्न और किंकड़ी जालों से भूषित रहता है, इन्द्र के उस सर्वबाधा रहित लोक में जाता है । ३५-४१। पुनः कभी इस कर्म क्षेत्र

१. किंकिणीजालमण्डितम् ।

यत्त्वा शूरोऽपि विहांश्च भवति धार्मिकः । पुनरन्ते प्राप्नुयादै लोकं देवस्य शार्ङ्ग्निः ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कल्पवृक्षदानविधिवर्णनं नामाष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः । १७८

अथैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कल्पलतादानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्तर्वभूतेश सर्वलोकनमस्तुत । अनुग्रहाय लोकानां कथयस्व ममापरम् ॥१

निष्पापो जायते येन आगुष्ठा यशसा श्रिया । तन्मे कथय देवेश दानं व्रतमथापि वा ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

नृषु राजन्प्रवक्ष्यामि तत्^१ लोकहितेप्सापा । येनोपायेन जायन्ते सभाग्या मानवाभुवि ॥३

न व्रतैर्नोपवासैश्च न तीर्थगमनैरपि । महापथादिमरणैर्न यमैर्न श्रुतेन च ॥४

प्राप्यते भम लोकोऽयं दुष्प्राप्यस्त्रिदशैरपि । रार्थं स्नेहान्महाभाग प्रवक्ष्यामि हितं तत् ॥५

वक्ष्ये कल्पलता दानं शोभनं विधिपूर्वकम् । सर्वं पूर्वविधानं च तत्र तन्त्रे प्रकल्पयेत् ॥६

दिक्षालेभ्यो बलिं तत्र क्षिपेद्वै विधिपूर्वकम् । आधारावाज्यभागौ तु पूर्वं हुत्वा विचक्षणः ॥७

(भूतल) में आने पर श्रोत्रिय (वेदाध्यायी) भूतल में जन्म प्रहण करता है, जो याज्ञिक, शूर, विद्वान् और परम धार्मिक होता है और पुनः अन्त में उसे निष्णु लोक की प्राप्ति होती है । ४२-४३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरकेसम्बाद में

कल्पवृक्षदानविधिवर्णन नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । १७८।

अध्याय १७९

कल्पलता-दान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! आप समस्त प्राणियों के स्वामी हैं समस्त लोक आपको नमस्कार करता है अतः लोक हितार्थ कोई अन्य बात बताने की कृपा करें । देवेश ! जिस दान, व्रत या अन्य उपाय द्वारा प्राणी पापरहित और आयु, यश एवं श्री सम्पन्न होता है, उसे बताने की कृपा करें । १-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! जिस उपाय द्वारा मनुष्य इस भूतल में भाग्यवान् होता है, वह लोकहितार्थ तुम्हें बता रहा हूँ, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, महातीर्थादिमरण, यज्ञ और वेदपाठ द्वारा मेरा लोक प्राप्त नहीं होता है, वह देवों के लिए भी दुर्लभ है । महाभाग, पार्थ ! किन्तु तुम्हारे स्नेहवश मैं तुम्हें बता रहा रहा हूँ । वह कल्पलता दान अत्यन्त सुशोभन है अतः उसे सविधि सुसम्पन्न करना चाहिए । उस तन्त्र में पूर्व की भाँति ही सब विद्यानं कहा गया है । सविधान दिक्षालों के लिए बलि प्रदान, आज्य

ततो ग्रहस्थं कुर्याद्गोमं व्याहृतिभिस्तः । अयुतेनैव होमस्य समाप्तिरिह कथ्यते ॥८
ततः सर्वसमीपे तु स्नातः शुक्लाम्बरः शुविः । पुष्टधूपैरथास्यर्च वासोभिः सफलाक्षतैः ॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥९

नमो नमः पापविनाशिनीभ्यो ब्रह्माण्डलोकेभरपालनीभ्यः ।

आशाशताधिक्यफलप्रदाभ्यो दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावधूभ्यः ॥१०

या वस्य शक्तिः परमा प्रदिष्टा वेदे पुराणे दुरस्तमस्य ।

तां पूजयामीह परेण साम्ना स्ता मे शुभं यच्छ्रुतु तां नतोऽस्मि ॥११

एवमुच्चार्य तः सर्वा आह्वाणेभ्यो निवेदयेत् । दशाशाः परया भक्त्या तास्तः संकल्प्य चेतसि ॥१२

ततः क्षमापयेद्विप्रान्त्रणिपत्य सदक्षिणान् । अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति ॥१३

तस्य पुण्यफलं^१ राजन्कथ्यमानं निबोध मे । इह लोके स विजयी धनवान्पुद्रवान्भवेत् ॥१४

भूतो लोकाधिपपुरे प्रतिमन्वन्तरं वसेत् । महाशक्तिवृत्तः पश्चदेत्य^२ राजन्रसातलम् ॥१५

जितसर्वमहीणलश्वकर्त्ता भवेद्द्विविः । या च नारी महाराज दानमेतत्प्रयच्छति ॥१६

सा चक्रवर्तिनं पुत्रं सूते शक्तिसमन्वितम् । यश्च पश्येदीयमानं दत्तं यश्चानुमोदते^३ ॥१७

शृणोति वाच्यमानं च सोऽपि प्रेत्ये विमुच्यते ॥१८

भाग आधार की आहुति अपित करने के अनन्तर व्याहृतियों द्वारा ग्रहों को आहुति अपित करें । इस यज्ञ में दशसहस्र संख्या की आहुति प्रदान करना बताया गया है । ३-८। तदुपरान्त स्नान, शुक्लवस्त्र धारण, एवं यज्विता दूष्य पुष्ट, धूप, अक्षत, वस्त्र, फल द्वारा अर्चा करके प्रदक्षिणा करते समय इन मंत्रों का उच्चारण करे—ब्रह्माण्ड लोकेश्वर को पालने वाली उस पाप विनाशिनी को बार-बार नमस्कार है, जो आशातीत सेकड़ों फल प्रदान करती हुई कल्पलता वधू दिशाओं के रूप में दृष्टि गोचर हो रही है । वेद एवं पुराण में जिस देवप्रेष्ठ की जो शक्ति बतायी गयी है, मैं अत्यन्त विनय विनम्र उसकी अर्चना कर रहा हूँ और उसे नमस्कार कर रहा हूँ, वह मुझे शुभ प्रदान करे । इस प्रकार उच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक वह दश दिशा मानसिक संकल्प द्वारा आह्वाणों को अपित कर दक्षिणासमेत नमस्कार पूर्वक क्षमा प्रार्थना करे । राजन् ! इस विधान द्वारा इसके दान करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, उसे मैं बता रहा हूँ । इस लोक में यह आजीवन विजयी, धनवान् और पुत्रवान रहता है । ९-१४। अन्त में निधन होने पर प्रत्येक मन्वन्तरों के समय में वह इन्द्र लोक का निवासी होता है । राजन् ! वह अपनी महान् शक्ति द्वारा रसातल एवं भूतल के समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त करने के नाते चक्रवर्ती राजा होता है । महाराज इस दान को नुसम्पन्न करने वाली स्त्री शक्तिशाली एवं चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करती है । दान देते समय इसका दर्शन, अनुमोदन या (इसके पारायण को) सुनने वाला भी अपने समस्त पापों से मुक्त होता है । १५-१८। अतः यदि तुम्हें

१. मुख्यफलम् । २. सुरलोके वसत्यसौ । पश्चादेव महाराज चक्रवर्ती धराधिपः । ३. अनुमोदयेत् ।

या: शक्रवह्निमनैर्दृतपाशहस्ता वातेंदुराजशिवकेशवशम्भुराक्षयः ।
तां वै प्रपूज्य दशकल्पता द्विजेभ्यो देहि ब्रिलोकविजये यदि तेऽस्ति बुद्धिः ॥ १९
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कल्पलतादनविधिवर्णनं नामैकोनाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १७९

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

गजरथाश्वरथदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्नक्षत्रियैः शूरैः स्ववीर्योपाततसंचयैः । कानि दानानि देयानि पवित्राणि शुभानि च ॥ १
अन्यैर्वा पुरुषैः कृष्ण अर्धमध्यभीरुभिः । ग्रहपीडाभिसन्तप्तैर्द्वायुपतापितैः ॥ २
इह लोके परे चैव विहितं सर्वकामदम् । विशेषविहितं दानं कथयस्व महामते ॥ ३

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु भूपाल भद्रं ते दानधर्ममनुत्तमम् । विशेषेण महीपानां हिताय च न संशयः ॥ ४
दानानि बहुरूपाणि नानाशास्त्रोदितानि च । गोदानादीना राजेन्द्र प्रधानानि न संशयः ॥ ५
किं तु प्रधानसेकं^१ ते दानं वक्ष्यामि भारत । वैरोचनाय यत्सर्वं शुक्रः प्रोवाच भारत^२ ॥ ६

ब्रिलोकविजयी होने की इच्छा हो तो इस दश कल्पलता का जो इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत के हाथ का पाश, वायु, चन्द्र, शिव, केशव, शंभु दी शक्ति रूप है, सविधान पूजन कर ब्राह्मणों को अर्पित करो ॥ १९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्बाद में
कल्पलता दान विधि वर्णन नामक एक सौ उन्नयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७९ ।

अध्याय १८०

हथी और घोड़े के रथदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! कृष्ण ! उन शूरवीर क्षत्रियों और धर्म भीरु अन्य पुरुषों को ग्रहपीडा से पीडित अथवा दुःस्वप्न दर्शन होने पर किस पवित्र एवं शुभ दान को सुसम्पन्न करना चाहिए, महामते ! इस लोक तथा परलोक में जो समस्त कामनाओं को सफल करे, ऐसा कोई विशेष विशिष्ट दान बताने की कृपा करें ॥ १-३ ॥

श्रीकृष्ण बोले—भूपाल ! मैं तुम्हें वह परमोत्तम एवं कल्याण कर दान बता रहा हूँ, जो राजाओं के लिए विशेष हितकर है । राजेन्द्र ! यद्यपि शास्त्रों में अनेक भाँति के गोदान आदि प्रधान दान बताये गये हैं इसमें संशय नहीं हैं किन्तु मैं तुम्हें बता रहा हूँ वह प्रधान दान बता रहा हूँ, जो शुक्राचार्य ने वैरोचन बलि को बताया था ॥ ४-६ ॥

शुक्र उवाच

शृणु दैत्यपते दानं सर्वपापप्रणाशनम् । आद्यो व्याधश्चैव ग्रहपीडा सुदारुणाः ॥७
 ऐन दत्तेन नश्यन्ति पुण्यमास्त्रोति चोत्तमम् । कातिक्यामयने चैव गृहणे शशिसूर्यवोः ॥८
 दानमेतत्प्रदातव्यं विलुवे सूर्यसंक्रमे । पुण्यं दिनमथासाद्य जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥९
 संस्थाप्य दारुजं द्रिव्यं हेमपटौरलंकृतम् । रथं सुचक्रादाधारं युगयोक्तमसमन्वितम् ॥१०
 सुवर्णध्वजसंयुक्तं सितसितपताकिनम् । पुष्यप्रकरसंकीर्णं प्रागुदक्ष्मवणे शुभे ॥११
 नद्यास्तीरेऽथैः वा गोष्ठे विचित्रे वा गृहाङ्गणे । रथस्य पूर्खभागे तु कृत्वा देवीमनुत्तमाम् ॥१२
 पुराणदेवविद्यावान्विनयाचारसंयुतः । तस्यां संस्थापयेद्वान्ब्रह्मादीकथयानि ते ॥१३
 मध्ये ब्रह्मा प्रतिष्ठाप्यः पूजयेत्प्रणवेन तम् । विष्णुरुत्तरतः स्थाप्यः पौरुषेण तमर्चयत् ॥१४
 सूक्तेन रुद्रं रौद्रेण दक्षिणस्यां समर्चयेत् । ग्रहान्सूर्यमुखांश्चैव विधिवत्पूजयेत्तथा ॥
 पुष्पांश्चैव फलैर्भृद्यैर्दीपमालाभिरेव च ॥१५
 पूजयेद्गन्धकुमुमैः श्वेतवस्त्रै सच्नन्तः । शङ्खभेरीमृदङ्गानां शब्दै तर्वत्रगामिभिः ॥१६
 ब्रह्मघोषविमश्रेश्च कारयेत महोत्सवम् । कुण्डं कृत्वा विधानेन हस्तमात्रप्रमाणतः ॥१७
 आग्रेयां दिशि राजेन्द्र ब्राह्मणान्स्तत्र पूजयेत् । चतुश्चारणिकाच्चिप्रान्यूजितान्ब्रह्मभूषणैः ॥१८
 चतुरोष्टौ महाराज गुरुरेकोऽथवा भवेत् । होमोपकरणं सर्वं मेलयित्वा तिलान्घृतम् ॥१९

शुक्र बोले—दैत्यपते ! मैं तुम्हें वह दान बता रहा हूँ, जिससे समस्त पाप, आधि व्याधि, भयानक, ग्रहपीडा के विनाशपूर्वक परमोत्तम पुण्य की प्राप्ति होती है । कार्तिकपूर्णिमा, अयन, चन्द्र सूर्य ग्रहण, विपुर, सूर्य संक्रान्ति अथवा किरी पुण्य दिन क्रोध रहित इन्द्रिय संयम पूर्वक उत्त काष्ठ का बना हुआ रथ स्थापित करे, जो द्रिव्य, हेमपट से भूषित, दृढ़ (मूँही आरागज आदि) सर्वाङ्ग सम्पन्न चक्र (पहिया) और जूँए रस्सी आदि से युक्त हो । सुवर्ण की ध्वजाओं श्वेत तथा अन्य रंग की पताकाओं से सुसज्जित हो । किसी पुरुष भूषित, पूर्वोत्तर की ओर निम्न शुभ नदीतट, गोशाला या विचित्र गृहाङ्गण में स्थापित रथ के पूर्व के भाग में उत्तम वेदी की रचना करके वह पुराण वेद देवता, एवं विनयविनम्र आचार शील यजमान उस वेदी पर ब्रह्मादि देवों को जहाँ प्रतिष्ठित करता है मैं बता रहा हूँ । वेदी के मध्य भाग में ब्रह्मा को प्रतिष्ठित कर प्रणव (ओंकार) पूर्वक उनकी अर्चना करे । उत्तर की ओर विष्णु को स्थापित कर पुरुष सूक्त द्वारा पूजित करे दक्षिण में रुद्र को स्थापित कर रुद्र सूक्त से अर्चना करे । उसी भाँति सूर्य प्रमुख ग्रहों की सविधि अर्चना करके पुष्य, गंध, भश्य, फल, दीपमाला, गंध पूर्णपुष्य, श्वेत वस्त्र चन्दन आदि द्वारा शंख भेरी, मृदङ्ग आदि वाद्यों और उस महान् ब्रह्मघोष के कोलाहल में रथादि की पूजा सुसम्पन्न करें । ७-१७। राजेन्द्र ! उसकी अग्नि दिशा में एक हाथ का कुण्ड बनाकर चार चारणिक ब्राह्मणों को जो वेदमर्मज हों, वस्त्राभूषण से पूजनोपरांत वहाँ नियत करे । महाराज ! चार अथवा आठ अन्य ब्राह्मणों के अतिरिक्त एक गुह भी रहना चाहिए । हवन के समस्त साधन तिल धूत आदि एकत्र कर

अग्निकार्यं ततः कुर्याद्यथावद्विधिपूर्वकम् । आधारावाज्यभागौ तु हृत्वा प्राणवच्च तौ ततः ॥२०
 विष्णवे शितिकण्ठस्य मन्त्रैः पूर्वोदितैः शुभैः । ग्रहयज्ञोदितैश्चैव^१ ग्रहाणां होम इष्यते ॥२१
 एवं यज्ञविर्धि कृत्वा यजमानो द्विजैः सह । योजयेत रथे दान्तौ गजौ लक्षणसंयुतौ ॥२२
 विचित्रतनुसम्बोतौ शुभकक्षौ सुधिष्टिकौ । हेमपट्टैः सुतिलकै शोभितौ शड्खचामरैः ॥२३
 दिव्यमुक्तापरिच्छन्नो दिव्यांकुशसमन्वितौ^२ । महामात्रान्वितौ चैव सर्वाभरणशूषितौ ॥२४
 एवं विधिं ततः कृत्वा रथं तं सगजं नरः । आरोपयेत्तस्तस्मिन्नाह्यणं शंसितव्रतम् ॥२५
 भूषितं कण्ठकटकैः कर्णविष्टाङ्गुलीयकैः । आगुपत्तोलकच्छत्र वस्त्रायुधसमन्वितम् ॥२६
 बद्धतूर्णिं धनुष्याणिं बहुचर्मविभूषितम् । खड्गधेनुकया नद्वं हारालकृतविग्रहम् ॥२७
 यज्ञमानस्तः प्राज्ञः शुक्लाभ्यरधरः शुचिः । रथं प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुमुगाङ्गजिलिः ॥२८
 इमसुच्चारयेन्सन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् । कुमुदैरावणौ पद्माः पुष्पदन्तोऽथ वामनः ॥२९
 सुप्रतीकोंजनः सार्वभौमोऽष्टौ देवयोनयः ॥२९

तेषां वंशप्रसूतौ तु बलरूपसमन्वितौ । तद्युक्तरथदानेन भम स्यातां वरप्रदौ ॥३०
 रथोऽयं यज्ञपुरुषो ज्ञाह्याणेत्र शिवः स्वयम् । ममेभरथदाने प्रीयेतां शिवकेशवौ ॥३१
 इत्युच्चार्यं महाभाग^३ पूजयित्वा पुनः पुनः । आरोपयेत्तस्तस्मिन्नाह्यणं शंसितव्रतम् ॥३२
 स्वदारनिरतं शान्तं वेदवेदाङ्गपारगम् । पञ्चान्यभिमतं चैव अव्यङ्गं व्याधिर्वर्जितम् ॥३३
 पुनः प्रदक्षिणीकृत्य रथस्यं द्विजसत्तमम् । आद्वारमनुगच्छेच्च प्रणिपत्य गृहं विशेषं ॥३४

सत्विधि अग्निकार्य (हवन) सम्पन्न करते हुए प्रथम आज्ञ भाग अधार की आहृति प्रदान करें । अनन्तर विष्णु, शितिकण्ठ शिव को पूर्वोक्त भंत्रो द्वारा और ग्रहों को ग्रहयज्ञ के मंत्रों से आहृति प्रदान करनी चाहिए । इस प्रकार यजमान वाह्याणों समेत यज्ञविधान सुसम्पन्न कर रथ में लक्षण सम्पन्न दो गजों को युक्त करे जो चित्र विचित्र वस्त्रों से आच्छन्न, शुभ कथ भाग, घंटाभूषित, हेमपट्ट, सुन्दर तिलक एवं शंख चामर से सुशोभित दिव्य भोतियों से सुसज्जित दिव्य अंकुश (गजवांक) से युक्त, महामात्य (पीलवान) समेत और सर्वाभरण भूषित हों । इस प्रकार उस सुसज्जित रथ पर वेदाध्यायी वाह्यण को बैठाये, जो सुवर्ण माला, अङ्गद (वाहुभूषण), कुण्डल, अंगूठी, चोलक, छत्र, वस्त्र, आयुध सम्पन्न तरकस वाँधे, हाथ में धनुष, अनेक चर्म (दाल) खड्ग धेनुक से आबद्ध और हार सुशोभित हो । अनन्तर वह दुद्धिमान् यजमान शुक्लवस्त्र कर पवित्रता पूर्ण पुष्पाङ्गजिलि लिए रथ की प्रदक्षिणा करते हुए कहे—कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन और सार्वभौम, ये आठ देवयोनियाँ हैं, इन्हीं के वंश में आप दोनों उत्पन्न हुए हैं इसलिए आप समेत इस रथ के दान करने से आप दोनों मेरे लिए वरप्रद हों । यह यज्ञ पुरुष है, इसमें अधिष्ठित वाह्यण स्वयं शिव हैं, इसलिए मेरे इस गजरथ के दान से शिव केशव प्रसन्न हों । १८-३१ महाभाग ! इस भाँति के भंत्रोच्चारण पूर्वक बार-बार पूजन करने के उपरान्त उस पर वाह्यण को स्थापित करे, जो वेदानुयायी, एकपल्नीव्रती शांत, वेद और वेदाङ्ग का मर्मज्ञ, पञ्चवाग्नि सेवी, अव्यङ्ग, एवं व्याधि रहित हो । पश्चात् रथस्थित उस वाह्यण श्रेष्ठ की परिक्रमा करके द्वारा तक उसका

१. सर्वैः । २. दिव्यांशुकसमन्वितौ । ३. महाभागे इति संदिग्धः संवादः ।

ततो यज्ञावसाने तु दीनांधादीञ्जड़ान्तृशान् । पूजेद्विविधैर्दीनैर्वस्त्रगोदानभोजनैः ॥३५
अनेनैव विधानेन संकल्प्य रथमुत्तमम् । कुण्डमण्डपसन्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥३६
तदेव होमद्रव्यं च होममन्त्रास्त एव हि ! विशेषोऽभ्यरथे राजनकथ्यमानो निबोध्यताम् ॥३७
हयौ लक्षणसंयुक्तौ खलीनालंकृतान्ननौ । विचित्रवस्तुसम्बोदी॑ कण्ठाभरणभूषितौ ॥३८
सुप्रप्रहयुतौ योज्यौ दाता तास्मन् रथोत्तमे । तं प्रदक्षिणमावृत्यमंत्रमेतमुदीरयेत् ॥३९

नमोस्तु ते वेददुरङ्गमाय त्रयीमयाद् त्रिगुणात्मकाय !

सुदुर्गमार्गं सुखपानपात्रे नमोऽस्तु ते वाजिधराय नित्यम् ॥४०

रथोऽयं सविता साक्षाद्वादाश्रयान्नो तुरङ्गमाः : अरुणे ब्राह्मणाश्रायं प्रयच्छन्तु सुखं मम ॥४१
इत्युच्चार्यं ततस्तस्मिन् रथे ब्राह्मणसत्तमम् । आरोपयेद्गृहाद्वारं यावदेतत्मनुब्रजेत् ॥४२
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्वाजिरथं बुधः । तस्माद्वाहरथं राज्यं तस्य पुण्यफलं भृणु ॥४३
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वामयविवर्जितः । मन्वन्तरसतं यावत्सर्वं भोगसमन्वितः ॥४४
अन्तरोगणसंकीर्णं विमाने सूर्यवर्चसे । दिव्यभोगान्वितः श्रीमान्कामचारी॒ वसेद्विः ॥४५
पुण्यक्षयादिवाभ्येत्य राजा॑ भवति धार्मिकः । पुत्रपौत्रान्वितश्चैव॑ चिरंजीवी प्रियातिथिः ॥४६
गजेनैकेन निर्दिष्टः कश्चिद्गजरथो नृप । एकेनाधेनाश्वरथः कथ्यते वेदवादिभिः ॥४७

अनुगमन कर, अनन्तर प्रणाम कर अपने घर आये । पुनः उस यज्ञ की समाप्ति होने पर दीन, अंधे, जड़ और दुर्बल (निर्धन) आदि प्राणियों को अनेक भाँति के वस्त्र, गोदान एवं भोजनादि द्वारा सम्मानित करे । इस प्रकार इसी विधान द्वारा उत्तम रथ की कल्पना करके कुण्ड, मण्डप, उसके संभार भूषण आच्छादन आदि, वही तिल आदि होम द्रव्य और वही हवन के मंत्र भी रहते हैं । राजन् ! किन्तु इस, अश्वरथ में जो विशेषता है वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! शुभ लक्षण वाले अश्वों को खलीन (लगाम) आदि वस्तुओं से सुसज्जित, विचित्रविचित्र वस्त्र और कण्ठाभरण से भूषित एवं लगाम आदि की सुन्दर रसिस्यों से युक्त करते हुए उन्हें उस उत्तम रथ में युक्त करे । पुनः दाता उस रथ की प्रदक्षिणा करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करे—वेदरूपी तुरङ्गम को नमस्कार है, जो (वेद) मयी एवं त्रिगुणात्मक हैं तथा सुदुर्गमार्ग में सुखनान कराने वाले बाजिधर को नित्य नमस्कार है ॥३२-४०। यह रथ साक्षात् सविता (सूर्य) तुरङ्गम वेद और यह ब्राह्मण अरण है अतः मुझे सुख प्रदान करने की कृपा करें । ऐसा कहकर उस उत्तम रथ पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रतिष्ठित कर उनके द्वारा तक अनुगमन करे । इस विधान द्वारा अश्वमेध रथ का, जो बाहरथ राज्य कहा जाता है, दान करने वाले विद्वान् को जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! समस्त पापों से मुक्त होकर सर्व व्याधिहीन वह प्राणी सैकड़ों मन्वत्तरों के समय तक सम्पूर्ण भोगों के उपभोग करते हुए स्वर्ग में सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण विमान पर अप्सराओं के साथ विहार करता है तथा स्वर्ग में वह श्रीमान् सदैव यथेच्छ भोग करता है । अनन्तर पुण्य क्षीण होने पर इस पृथ्वी पर धार्मिक राजा होता है, जो पुत्र-पौत्रों समेत चिरजीवी और अतिथि प्रिय रहता है ॥४१-४६। नृप ! एक गज से भी गजरथ और एक ही अश्व से अश्वरथ होता है ऐसा वेद वादियों का

१. विचित्रवस्त्रसंबोदीती । २. कल्पचारी । ३. परः । ४. श्रीमान् ।

दानमन्द्रास्त एवोक्ताः फलं तत्र निगद्यते

॥४८

यच्छन्ति ये रथवरं सुधुराक्षचक्रं विक्रान्तवारणयुतं तुरगान्वितं वा ।
सौपस्करं कनकपट्टविचित्रिताङ्गं ते स्यन्दनेत् सुरराजपुरं प्रयान्ति ॥४९
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवदे
गजरथाश्वरथदानविधिवर्णनं नामाशीत्यधिकशतमोऽध्यायः ॥४०

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालपुरुषदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

दानान्यन्दानि मे कृष्ण कथयस्व यद्गृह्यतमम् । माङ्गल्यानि पवित्राणि सर्वपापहराणि च ॥१
संसारसागरोत्तारहेतुभूतोऽसि माधव । धर्माधर्मपरिज्ञाने त्वदन्यो नेह कश्चन ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

दानानि बहुरूपाणि कथितानि मया तव । पुनरेव प्रवक्ष्यामि दद्यस्ति तव कौतुकम् ॥३
कथितानि मया तुभ्यं कथयिष्यामि यानि च । महतार्थेन सिध्यन्ति प्रयच्छन्ति महत्कलम् ॥४
काम्यो दानविधिः पार्थ क्रियमाणः प्रयत्नतः ॥५ । फलाय मुनिभिः प्रोक्तो विपरीतो भयाय च ॥५

कथन है । दोनों के दानमंत्र एक ही हैं और फल बता रहा हूँ—परमोत्तम रथ का निर्माण कराकर, जो सुन्दर धुरा, चक्र मूँडी आदि साधनों से सम्पन्न और कनक पट्टों द्वारा उसके अंग चित्रविचित्र बनाये रहते हैं, उसमें मदमत्त गज या अश्व जोत कर उसका दान करने वाला उत्तम स्यन्दन द्वारा सुरराज (इन्द्र) लोक की प्राप्ति करता है । ४७-४९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
गजरथ अश्वरथ दान विधि वर्णन नामक एक सौ अस्तीदाँ अध्याय समाप्त ॥४०।

अध्याय १८१

कालपुरुषदान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यद्गृह्यतम, कृष्ण ! मुझे दान बताने की कृपा करें, जो अत्यन्त मांगलिक, पवित्र एवं समस्त पापों का विनाशक हो । माधव ! इस संसार सागर के तारने में एक मात्र आप ही कारण हैं, क्योंकि इस लोक में धर्माधर्म का परिज्ञान आप से अन्य किसी को है ही नहीं । १-२

श्रीकृष्ण बोले—यदि तुम्हें इसके जानने के कौतुक हैं तो मैं यद्यपि अनेक भाँति का दान तुम्हें सुना चुका हूँ किन्तु फिर भी कह रहा हूँ सुनो ! मैंने जितने प्रकार के दान तुम्हें बताये और बताऊँगा वे महान् अर्थ द्वारा सिद्ध होते हैं किन्तु वे महान् फल भी प्रदान करते हैं । ३-४। पार्थ ! काम्य दान विधान को सुसम्पन्न करने में सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए मुनियों ने तभी उन्हें फलदायक बताया है अन्यथा (अविधि होने

ज्ञेयं निष्कशतं सर्वदानेषु विधिस्तमः । मध्यमस्तु तदद्देन तदद्देनावरः स्मृतः ॥६
 एवं वृक्षरथेन्द्राणां धेनोः कृष्णाजिनस्य च । अशक्तस्यापि कृष्टोऽयै पंचसौवर्णिको विधिः ॥७
 अतोऽप्यनेन यो द्यान्महादानं नराधिपः । प्रतिगृह्णाति वा तस्य दुःखशोकावहं भवेत् ॥८
 आदौ तावत्प्रवक्ष्यामि कालाख्यं पुरुषं तेव । सप्तसागरदानं च महाभूतघटन्तथा ॥९
 अर्घ्यप्रदानतोक्तमात्मप्रतिकृतिस्तथा । सुवर्णाश्चः स्मृतः वष्टः सुवर्णाश्चरयोऽपरः ॥१०
 सर्वदानोत्तमं राजन्कृष्णाजिनमथाष्टमम् । विश्वचक्रं च नवमं हैमोगजरथस्तथा ॥११
 एतते दानवशकं वेदिषि पार्थिवसत्तम् ! देहि दापय सदृद्धि दाने नृपतरोत्तम ॥१२
 दानादृते नोपकारो विद्यते धनिनोऽपरः । दीयमानो हि नापैति भूय एदाभवर्धते ॥१३
 कूप उल्लिख्यनानोऽपि भवत्येव बहूदकः । पुण्यं द्विनभासाद्य भूमिभागे समे शुभे ॥१४
 चतुर्थ्यं वा चतुर्दश्यां विष्टचां वा पाण्डुनन्दनः पुमान्कृष्णतिलैः कार्यो रौप्यदन्त सुवर्णदृक् ॥१५
 खड्गोद्यतकरो दीर्णो जपाकुसुमकुण्डलः^३ । रक्ताम्बरधरः श्वर्वी शङ्खमालाविभूषितः ॥१६
 तीक्ष्णासिपत्रव्युत्पा विस्तरितकटीतटः । उपानद्युग्मयुक्तो हि कृष्णकम्बलपार्षगः ॥१७
 गृहीतामांसपिण्डश्च वामे करतले तथा । एवं विधं नरं कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥१८
 सम्पूज्य गन्धकुसुमैवेद्यं विनिवेद्य च । तिलाञ्जं जुहुयात्तत्र ऋम्बकेति च मन्त्रतः ॥१९

पर) वे भय उत्पन्न करते हैं । समस्त दानों में सौ निष्क का दान विधान उत्तम बताया गया है, उसका आधा मध्यम और उसका भी आधा अवर (निम्न कोटि) का बताया गया है । इसी प्रकार वृक्ष, रथ, धेनु, कृष्णाजिन के दान विधान में भी जानना चाहिए । अशक्त प्राणी के लिए महान अत्यन्त कष्ट दायक है क्योंकि पाँच सुवर्ण (मुद्रा) से कम का दान विधान ही नहीं है । इसलिए इससे न्यून का दान करने वाला और उसका प्रतिग्राही (ग्रहण करने वाला) दोनों दुःख शोक से व्याकुल रहा करते हैं । सर्वप्रथम मैं तुम्हें काल पुरुष दान, अनन्तर सप्त सागर दान और इसके उपरान्त महाभूत घट का दान बताऊँगा । ५-१। राजन् ! (ये उपरोक्त तीन दान), अर्घ्य दान, आत्मप्रतिकृति (प्रतिमा), सुवर्ण के अश्व, सुवर्ण के अश्वरथ, कृष्णाजिन, विश्वचक्र और सुवर्ण के गजरथ, ये दश दान बताये गये हैं । पार्थिवसत्तम ! इन्हीं दोनों को सुसम्पन्न करने कराने के लिए स्वयं दुद्धि रखनी चाहिए । बिनादान दिये ध्वनियों का द्वूसरा उपाय हो ही नहीं सकता है क्योंकि जिस वस्तु वा दान किया जाता है, वह नष्ट न हो कर दिन प्रतिदिन समृद्ध होता है (अर्थात् बढ़ता है) जिस प्रकार कूप खोदने पर उसका जल बढ़ता ही है । पाण्डुनन्दन ! इसलिए किसी पुण्य दिन शुभ समतल भूमि पर चौथ, चतुर्दशी, विष्ट में कृष्ण तिल द्वारा पुरुष की रचना करे जिसके चाँदी के दाँत और सुवर्ण के नेत्र हों और हाथ में तलबार, दीर्ण, कान में जपा कुसुम का कुण्डल, रक्तवस्त्र धारण किये, मालाभूषित, शंख माला अलंकृत, तीक्ष्ण खड्ग धनुषबाण, लम्बी कटि, उपानहयुक्त पार्श्व में कृष्ण कम्बल और बायें हाथ में मास पिण्ड लिये हुए । इस भाँति के मनुष्य की रचना करके हाथ में पुष्पाञ्जलि गंध, कुसुम, नैवेद्य, आदि द्वारा पूजनोपरांत 'ऋम्बक मंत्र' द्वारा तिल धृत की आहुति प्रदान

१. कृष्टोऽयम् । २. पुरुषोत्तमम् । ३. मण्डपः । ४. कृष्णम् ।

स्वृग्गृहोक्तविधानेन शतमष्टोत्तरं वजेत् । यजमानः प्रसन्नात्मा इमं^३ मन्त्रमुदीरयेत् ॥२०
 सर्वे^४ कलयसे यस्मात्कालस्त्वं तेन भण्यसे । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां त्वमसाध्योऽसि सुव्रत ॥२१
 पूजितस्त्वं मया भक्त्या प्रार्थितश्च^५ तथा^६ मुखम् । यदुव्यते तद विभो तत्कुरुष्व नमोनमः ॥२२
 एवं समूजयित्वा^७ तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । ब्राह्मणं^८ प्रथमं पूज्य वासीभिर्नृषणैस्तथा ॥२३
 दक्षिणां शक्तिर्ते दद्यात् प्रणिपत्य^९ विसर्जयेत् । अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति ॥२४
 नापमृत्युभयं तस्य न च व्याधिकृतं भयम् । भवत्यव्याहृतैश्वर्यः सर्वबाधाविवर्जितः ॥२५
 देहान्तं सूर्यभवनं भित्त्वा याति परं पदम् । पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः ॥
 सन्तत्या च शिया युक्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥२६

सम्पूज्य कालपुरुषं विधिवद्वजाय दत्त्वा शुभाशुभफलोदयहेतुभूतः ।
 रोगान्तरे सकलदोषमये च देही नो वथ्यभावमुपगच्छति तत्प्रभावात् ॥२७

इति श्रीभविष्ण्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 कालपुरुषदानविधिवर्णनं नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः । १८१

करे । १०-११। अपने गृहसूत्र के विधान द्वारा एक सौ आठ आडुति प्रदान करने के उपरांत यजमान प्रसन्नतापूर्ण इस मंत्र का उच्चारण करे—सुत्रत । सभी को नष्ट कर देने के नाते ही तुम्हारा नाम काल हुआ है, इसीलिए तुम विष्णु, ब्रह्मा, एवं शिव के लिए भी असाध्य हो । विष्णो ! भक्तिपूर्वक मैने आप की पूजा और प्रार्थना की है अतः सुख प्रदान करने की कृपा करें आप को बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार पूजनकर ब्राह्मण को अर्पित करे विन्तु वस्त्राभूषण द्वारा ब्राह्मण की पहले अर्चा कर लेनी चाहिए । यथाशक्ति दक्षिणा तथा नमरकार करके विसर्जन करे । इस भाँति सविधान दान करने पर अपमृत्यु और व्याधिभय नहीं होता है अपितु वह अव्याहृत ऐश्वर्य की प्राप्ति पूर्वक सम्पूर्ण वाधाओं से रहित रहता है । निधन होने पर सूर्य भवन की प्राप्ति होती है । पुण्य क्षीण होने पर यहाँ धार्मिक राजा होता है जो सतत श्री और पुत्र पौत्र से युक्त होता है । इस प्रकार काल पुरुष का सविधान अर्चा कर किसी ब्राह्मण को अर्पित करने पर शुभाशुभ फल का भोग करने वाला यह देही (जीव) सकल दोषमय और रोगपूर्ण इस शरीर से बच्यन मुक्त हो जाता है । २०-२७

श्रीभविष्ण्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
 कालपुरुषदानविधिवर्णन नामक एक सौ इकायासीवाँ अध्याय समाप्त । १८१।

१. इदं वचनमन्त्रवीत् । २. सकालनियमे यस्मात्कालस्त्वं तेन गण्यते । ३. प्राप्तिश्च । ४. यथा ।
 ५. तु । ६. ब्राह्मणम् । ७. दत्त्वा ।

अथ द्वचशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्तसागरदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रदक्षतामि पार्थदानमनुत्तमम्^१ । सप्तसागरवं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥१
 पुण्यं दिनमथासाद्य युगादेग्रहणादिकम् : कारयेत्सञ्जकुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः ॥२
 प्रादेशमात्राणि तथा रत्निमात्राणि वा पुनः । कुर्यात्सप्तशताद्बूद्धविमासहस्राच्च शक्तिः ॥३
 संस्थाप्यानि च सर्वाणि कृष्णाज्जिनतिलोपरि । प्रथमं पुरयेकुण्डं लवणेन विचक्षणः ॥४
 द्वितीयं पयसा तद्वृत्तीयं सर्पिषा पुनः ! द्वुर्थं तु गुडेनैव दध्ना पञ्चमेव च ॥५
 षष्ठं शर्करया तद्वत्सप्तमं तीर्थवारिणा । स्थापयेलवणस्यान्ते ब्राह्मणं^२ काञ्चनं शुभम् ॥६
 केशवं क्षीरमध्ये तु धृतमध्ये महेश्वरम् । भास्करं गुडमध्ये तु दधिमध्ये सुराधिपम् ॥७
 शर्करायां न्यसेललक्ष्मीं जलमध्ये तु पार्वतीम् । सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि^३ च समन्ततः ॥८
 स्थापयेत्पुरुषश्चेष्ठ यथालाभं यथासुखम् । ततः पर्वतमीपे तु स्नातः शुक्लाम्बरो गृही ॥९
 त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् । नमो वः सर्वसिन्धूनामाधारेभ्यः सनातनाः ॥१०
 जन्तुनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमोनमः । पूर्णाः सर्वे भदन्तो वै क्षारक्षीरघृतैक्षवैः ॥११
 दध्ना शर्करया तद्वृत्तीर्थवारिभिरेव च । तस्मादग्नौधिविध्वंसं कुरुध्वं मम मानदाः ॥१२

अध्याय १८२

सप्तसागरदान विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें सप्तसागर का दान बता रहा हूँ, जो परमोत्तम और समस्त पापों को यिनष्ट करने वाला है। युगादि तिथि या ग्रहण आदि के किसी शुभ अवसर पर सुवर्ण द्वारा सात कुण्ड की रचना करे, जो प्रादेश मात्र अथवा अरत्निमात्र विस्तृत हों। इसके निर्माण में सात सौ से लेकर सहस्र पल पर्यंत सुवर्ण होना चाहिए। सभी कुण्ड को कृष्णाज्जिन (कालेमृग चर्म) पर प्रतिष्ठित कर पहले कुण्ड को लवण, द्वूसरे को दूध तीसरे को धृत, चौथे को गुड, पाँचवें को दही, छठें को शक्कर और सातवें की तीर्थ जल से पूर्ण कर क्रमशः लवण के अंत में व्रह्मा की सुवर्ण प्रतिमा, क्षीर वाले में केशव, धृत मध्य महेश्वर, गुडमध्य में भास्कर दधि के मध्य में इन्द्र, शक्कर में लक्ष्मी और जल के मध्य पार्वती (की प्रतिमा) को स्थापित करे। पश्चात् सभी कुण्डों में चारों ओर समस्त रत्न और सप्त धान्य यथालाभ यथा सुख जितना मिल सके स्थापित करे। १-८। उस पर्व के समय स्नान, शुक्ल वस्त्र धारण कर उस गृहस्थ को तीन प्रदक्षिणा करते समय यह कहना चाहिए—समस्त सिद्धु के आधार एवं सनातन को नमस्कार है, जन्तुओं को प्राण दान करने वाले समुद्र को नमस्कार है। लवण, क्षीर, धृत, गुड, दीर्घ, शक्कर और तीर्थ जलों से आप सब परिपूर्ण हैं, अतः मेरे पाप समूह को नष्ट करते हुए मेरे घर में अलक्ष्मी का विनाश

१. सर्वदानम् । २. ब्राह्मण । ३. देयानि ।

अलक्ष्मीः प्रशमं यादु लक्ष्मीश्चास्तु गृहे ममः । एवमुच्चार्ये तात् दद्याइन्नाहृणेभ्यो युधिष्ठिर ॥१३
एकमेवयथाभ्यर्थं पुष्पवस्त्रविलेपनैः । बहूनामेतदुद्दिष्ट^१ दानमेकस्य वा पुनः ॥१४
देयं वा सर्वसामान्यं क्रियाविप्रानुरूपतः । दानं सप्तसमुद्राख्यं यः प्रयच्छति पार्थिव ॥१५
तस्य गृहान् चलति लक्ष्मीर्यावत्कुलाष्टकम् । पूज्यमानः सुरगाणैः सिद्धिद्वाधरोरगौः ॥१६
देवलोकान्नं च्यवते सप्तमन्वन्तराण्यसौ । ततश्च वेदसंस्कारात्परं ऋह्याधिगच्छति ॥१७

इति ददाति रसामरसंयुताञ्छुचिरविसःयदानिह सागरान् ।

अनलकाञ्चनरत्नमयानसौ पदमुरैति हरे रमयै वृतम् ॥१८

दानप्रधानतरमेतदतीव दिप्रे प्रोक्तं युधिष्ठिर समाधिधिया विचिन्त्य ।

हैमान्विधाय जलधर्मनिवृत्तरस्व शक्त्यः प्राप्नोति येन सरसानि समीहितानि ॥१९

इतिश्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

सप्तसागरदानविधिवर्णनं नाम द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८२

अथ ऋशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

महाभूतघटदानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानमन्यत्तवोत्तमस्मै । महाभूतघटं नाम महापातकनाशनम् ॥१

और लक्ष्मी को सदैव अचल बनाने की कृपा करें । युधिष्ठिर ! इस प्रकार अर्प्यचना करने के उपरांत उसे ब्राह्मणों को अर्पित करे । पुष्प, वस्त्र, अनुलेप द्वारा पूजनोपरांत एक अथवा अनेक ब्राह्मणों को सादर अर्पित करे । जहाँ तक हो सके क्रियानुरूप ब्राह्मणों को प्रदान करना चाहिए । पार्थिव ! इस प्रकार इस दान को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी के घर से आठ पीढ़ी तक लक्ष्मी कभी जाती नहीं है, अन्त में सिद्ध, विद्याधर, नाग आदि देवों से सुसेवित होते हुए सात मन्वन्तरों के समय तक देवलोक में अपवित्र विश्वास प्राप्त करता है और वैदिक संस्कार के उपरांत उसे पर ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है । इस भाँति अग्नि शुद्ध काञ्चन द्वारा निर्मित सप्त सागर का दान करने वाला राम (लक्ष्मी) युक्त हरि का पद प्राप्त करता है । यथा शर्णि सुवर्ण निर्मित सागरों के दान ब्राह्मणों को अवश्य समर्पित करो, जिससे तुम्हारे सरस अभीष्ट की सिद्धि हो ॥९-१९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
सप्त सागर दान विधान वर्णन नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८२।

अध्याय १८३

महाभूतघटदान का वर्णन

श्रीकृष्णबोले—मैं तुम्हें महाभूत घट दान नामक एक अन्य उत्तम दान बता रहा हूँ, जो महान पातकों

१. एतदिष्टं वै दानमेतदुदीरयेत् । २. अमरावृतम् । ३. नरोत्तमः ।

पुण्यं तिथिं समासाद्य स्वनुलिप्ते गृहाङ्गणे । कारयेत्काञ्चनं कुंभं^१ महारत्नान्वितं पुनः ॥२
 प्रादेशादग्निलशतं यावत्कुर्यात्प्रमाणितः । शक्त्या पञ्चमलाद्वृद्ध्वमाशताच्च नरोत्तम ॥३
 क्षीराज्यपूरितं कृत्वा कल्पवृथसमन्वितम् । पद्मासनगतात्तत्र द्रहविष्णुमहेश्वराः ॥४
 लोकपाला महेन्द्राश्र रवाहानसमस्तिताः । ऋग्वेदः साक्षसूत्रश्च यजुर्वेदः सप्तड्कजः ॥५
 वीणाधारी सामवेदो ह्यथर्वा सद्गुभान्वितः । पुराणवेदो वरदः साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥६
 सप्तधान्यानि पुरतः स्थापयेच्छक्तिं बुधः । पादुकोपानहच्छत्रं चामरापूर्यासनायुधान् ॥७
 एवं प्रकल्प्य विधिवन्महाभूतघयं नरः । गुडसारोपरिगतं माल्यदस्त्रैरथार्थाच्येत् ॥८
 अथ पर्वसमीपे तु स्नात्वा नियतमात्मसः । त्रिः प्रदक्षिणामावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥९
 यस्मान्न किञ्चिदप्यस्ति महाभूतविर्विना कृतम् । महाभूतभयश्वायं तस्माच्छान्तिं ददातु मे ॥१०
 अत्र सन्निहिता देवाः स्थापिता विश्वर्कमणा । ते मे शान्तिं प्रयच्छन्तु भक्तिभावेन पूजिताः ॥११
 इत्येवं पूजयित्वा तु महाभूतघटं नरः । ब्राह्मणं पूजयित्वा तु भूषणाच्छादनारिभिः ॥१२
 महाभूतघटं दद्यात्पर्वकाले यतन्नतः^२ । पुनः प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणं तं क्षमापयेत् ॥१३
 अनेन विधिना यश्च दानमेतत्प्रयच्छति । एकविंशत्कुलोपेतः शिवलोके प्रयात्यसौ ॥१४
 पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । अजेयः शत्रुसंघातैर्महाबलं पराक्रमः ॥१५
 क्षत्रधर्मरतो विद्वान्देवब्राह्मणपूजकः ॥१६

का विनाश करता है । किसी पुण्य तिथि में अपने लिये अपने गृहाङ्गण में सुवर्ण कलश का निर्माण कर महान् रत्नों समेत उसे स्थापित करे । नरोत्तम ! वह कलश सौ अंगुल प्रमाण और यथाशक्ति पाँच पल से ऊपर सौ पल तक सुवर्ण का होना चाहिए । क्षीरधृत से पूर्ण कर कल्प वृथ समेत उसकी प्रतिष्ठा करते हुए पद्मासन के ऊपर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर की स्थापना करे और सभी लोक पाल तथा महेन्द्र आदि देव गण अपने अपने वाहनों पर स्थित रहकर ही स्थापित किये जायं । अनन्तर अक्षसूत्र समेत ऋग्वेद, पंकज सहित यजुर्वेद, वीणाधारी सामवेद, शुभ माल समेत अथर्ववेद, अक्षसूत्र, कमण्डलु समेत वरप्रद पुराणवेद एवं सप्त धान्य की स्थापना बुध (विद्वान्) को करनी चाहिए । चरणपादुका, उपानह, छत्र, चामर, आसन तथा आयुध समेत उस महाभूत घट की सविधि स्थापना गुड़ सार के ऊपर सुसम्पन्न कर माला वस्त्र आदि से अर्चना करे । १-८। तदुपरांतं पर्व के समय स्नान करके संयमपूर्वक तीन प्रदक्षिणा करते हुए कहे—महाभूत के बिना इस संसार में कुछ भी नहीं रह सकता है अतः यह महाभूतमय मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करे । इस (महाभूत) घर में विश्वकर्मा ने समस्त देवों को स्थापित किया है अतः मेरे द्वारा भक्तिभाव से पूजित होने पर वे देवगण मुझे शांति प्रदान करे । इसभाँति महाभूत घट की अर्चा के उपरान्त भूषण वस्त्र द्वारा ब्राह्मण की पूजा करके संयम पूर्वक उस पर्व के समय उसे ब्राह्मण को समर्पित करे । अनन्तर ब्राह्मण की प्रदक्षिणा और अस्यर्चना करके विसर्जित करे । इस विधान द्वारा इस दान को सुसम्पन्न करने वाले अपनी इक्कीस पीढ़ी समेत शिवलोक की प्राप्ति करते हैं । ९-१४। कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस लोक में धार्मिक राजा होता है, जो अजेय, महाबली और पराक्रमी होता है तथा अपने क्षत्रिय धर्म में अटल रहकर देव ब्राह्मण का पूजक होता है इस प्रकार आठ चरण वाले इस महाभूत घट का

१. दिव्यम् । २. प्रयत्नतः ।

अष्टापदोक्तमवटं विमलं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं^१ सहलोकपालैः ।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तद दानशतैः किमस्यैः ॥१७
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वण श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महाभूतघटदानविधिवर्णनं नाम श्यात्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८३

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्यादानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

श्यादानं प्रदक्षयामि तव पाण्डुकुलोद्ध्रह^२ । यदत्वा सुखभागी^३ स्यादिह लोके परत्र च ॥१
श्यादानं प्रयच्छन्ति सर्वदैव द्विजोत्तमाः^४ । अनित्यं जीवितं यस्मात्कोन्यः^५ पश्चात्प्रदास्यति ॥२
तावत्सबन्धुः सपिता यावज्जीवति भारत । मृतो मृत इति ज्ञात्वा क्षणात्त्वेहो निवर्तते ॥३
तस्मात्स्वर्यं^६ प्रदातव्यं श्याभोज्यजलादिकम् । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरिति सचिंत्य चेतसि ॥४
आत्मैव यो हि नात्मानं दानभोगैः समर्चयेत् । कोऽन्यो हिततरस्तस्मात्कः पश्चात्पूजयिष्यति ॥५
तस्माच्छ्यां समासाद्य सारदारुमयं दृढाम् । दन्तपत्रचितां रम्यां हिमपट्टैरलंकृताम् ॥६

' विमल निर्माण करके बहा, विष्णु शिव, लोकपाल समेत वह घट जो क्षीर धृत से परिपूर्ण रहता है, नमस्कार एवं भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को अर्पित करो क्योंकि इसके समक्ष अन्य सैकड़ों दान से दया लाभ हो सकता है ॥१५-१७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्बाद में
महाभूतघटदानविधि वर्णन नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८३।

अध्याय १८४

श्यादान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुकुलोद्ध्रह ! मैं तुम्हें श्यादान का विधान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान से प्राणी लोक परलोक मैं सुखी होता है इसलिए श्रेष्ठ ब्राह्मणगण सदैव श्यादान सम्पन्न करते रहते हैं क्योंकि जीवन अनित्य होने के नाते पीछे (निधनोपरांत) कौन इसे पूरा कर सकेगा । भारत ! प्राणी जब तक जीवित रहता है तभी तक पर बन्धु पिता कहलाता है और उसके मरने पर वही स्नेहक्षण मात्र में निकल जाता है । इसलिए यह आत्मा ही आत्मा का बन्धु (सहायक) है ऐसा समझ कर श्यादा, भोजन और जलादि का स्वयं दान करे । दान भोगादि यहि स्वयं इस आत्मा की अर्चा नहीं की तो इससे बढ़ कर दूसरा हितैषी कौन होगा, जो निधनोपरांत उसकी पूजा करेगा ॥१-५ । अतः काष्ठ के स्तर की भाग की दृढ़ श्यादा, जो

१. ब्रह्मेन्द्रकेशवयुतम् । २. पाण्डुकुलोद्ध्रव । ३. सर्वभागी, सुप्तभोगी । ४. नृपोत्तम । ५. दान कोन्यः प्रदास्यति । ६. यस्मात्स्वात्प्रदातव्यं श्याभोज्यतिठाकिम् ।

हसन्त्वलीप्रतिच्छब्दां सुभगान्सोपधानिकाम् । ग्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपाधिवासताम् ॥७
 तस्यां संस्थापयेद्दैमं हर्म लक्ष्मीसमन्वितम् । उच्छीर्षके धृतं चैव कलशं परिकल्पयेत् ॥८
 विज्ञेयं पाण्डव सदा सनिद्राकल्पकं बुधैः । ताम्बूलं कुंकुमशोदकर्पूरागरुचन्दनम् ॥९
 दीपकोपानहच्छत्रचामररत्नभोजनम् । पार्श्वेषु स्थापयेच्छक्त्या सप्तधान्यानि चैव हि ॥१०
 शयनस्थर्स्य भद्रति यदन्यदुपकारकम् । भृङ्गरकाद्यपूष्याणि पञ्चवर्णवितानकम् ॥११
 शय्यामेवविधां कृत्वा आहृण्योपदापयेत् । सप्तकीकाय सन्दूज्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ॥१२
 नमस्ते सर्वदेवेश शय्यादानं कृतं मया । देहि तस्माच्छान्तिफलं नमस्ते पुरुषोत्तम ॥१३
 यथा न कृष्ण शयनं शून्यं सागरजातया । शय्या भामाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनिजन्मनि ॥१४
 दत्त्वैवं तत्प्रसन्नं प्रणिपत्य दिसर्जयेत् । एकादशाहेऽपि तथा विधिरेष प्रकीर्तिः ॥१५
 ददाति यदि धर्मार्थं मानवो बान्धवे भृते । विशेषं चात्र राजेन्द्र कथ्यमानं निबोध्यैः मे ॥१६
 तेनोपभृत् यदस्तु किंचित्पूर्वं गृहे सता । तद्गावत्प्रग्रं च तथा वस्त्रवाहनभाजनम् ॥१७
 यदिष्ट्वैः च तपास्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत् । स एव पुरुषो हैमस्तस्यान्तं स्थापयेत्तथा ॥१८
 पूजायित्वा प्रदातव्यो मृतशय्या यथेदिता । स्वर्गे पुरुदरगृहे सूर्यपुत्रालयेत् वा ॥१९
 सुखं वसत्ययौ जन्तुः शय्यादानप्रभावतः । पीडयन्ति न तं याम्याः पुरुषा भीषणाननाः ॥२०
 न धर्मेण न शीतेन बाध्यते स नरः क्वचित् । अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥२१

कुन्द पुष्प से सुरचित, रम्य, सुवर्ण से भूषित, हंस के समान द्वेत कोमल रुद्ध वाले गदे से आच्छन्न, सुभग, सुन्दर लक्ष्मी से युक्त, ऊपर चढ़दर से अलंकृत और गंध, धूप से अधिवासित हो, निर्माण कर उस पर विष्णु लक्ष्मी को सुवर्ण प्रतिमा को प्रतिष्ठित करते हुए ऊपर शिर होने के समीप कलश की स्थापना करे । पाण्डव ! भगवान् को उस पर निद्रित की कल्पना कर उसके पार्श्व भाग में ताम्बूल, कुंकुम (चूर्ण), कपूर, अगर, चन्दन, दीपक, उपानह, छत्र, चामर, आसन, भोजन और यथाशक्ति सप्तधान्य की स्थापना करे । उस समय शयन के समय ज्ञारी (गेहुआ) पुष्पादि अन्य भी वस्तुएँ वहाँ उपस्थित करनी चाहिए । ऊपर पाँच रङ्ग की चाँदनी (चंदोबा) आदि से समलंकृत उस भाँति की शय्या किसी पुण्य दिन सप्तलीक आहृण की पूजा कर उसे अर्पित करे । सर्वदेवेश ! पुरुषोत्तम यथाशक्ति सुसज्जित यह शय्यादान आप को अर्पित किया है अतः मुझे शांति फल प्रदान करने की कृपा करें । ६-१३। कृष्ण ! जिस प्रकार सागर (लक्ष्मी) से जय की शय्या कभी शून्य नहीं रहती है, उसी भाँति मेरी भी शय्या जन्मान्तर में कभी शून्य न रहे । इस प्रकार उस निर्मल शय्या का एकादशाह के दिन सविधि एवं नमस्कारपूर्वक दान करके विसर्जन करे । राजेन्द्र ! बन्धु आदि के निधन होने पर उसके निमित्त यदि धर्मार्थं शय्यादान आदि यदि कोई करता है तो मैं उसके लिए और विशेषता बता रहा हूँ, सुनो ! उस मृतक की उपभोग की हुई घर में हो या उसके अंगों में (सुवर्ण आदि) लगे हों, तथा वस्त्र, वाहन, भाजन (पात्र) जो कुछ उसे अभीष्ट हो, उन सब को वहाँ वाचन पुराण के समीप रखना चाहिए । पूजनोपरांत इस प्रकार की मृत शय्या दान करने से वह इन्द्र के गृह और सूर्य अन्न के भवन में सुखी निवास करता है । उसे भीषण मुख वाले यमदूत कभी पीड़ित नहीं करते हैं । १४-२०। और धूप, शीत की बाधा भी कभी नहीं होती है अपितु पाप युक्त

१. निशामय । २. यद्यदिष्ट्वैः च तपासीत् ।

विमानवरमारुद्धः सेव्यमानोप्सरोगणः । आभूतसम्लवं यावन्तिष्ठेत्पातकवर्जितः ॥२२

शश्याप्रदानममलं तव पाण्डुपुत्र संकीर्तिं सकलसौख्यनिधानमेतत् ॥२३

सद्यो ददाति विधिवत्स्वयमेव नाके तत्ये विकल्परहितः स विभाति सत्यम् ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

शश्यादानविधिवर्णनं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः । १८४

अथ पञ्चासीत्यधिकशततमोऽध्यायः

आत्मप्रतिदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

आत्मप्रतिकृतिर्नाम यथोक्तं कस्यचित्पुरा । ततेऽहं संप्रवक्ष्यामि दानं मानविवर्धनम् ॥१
दानकालः सदा तस्य मुनिभिः परिकीर्तिः । पुण्डैःपुण्यादिभिः पार्थं प्राप्यते जीवितैर्न च ॥२
लोहजां प्रकृतिं भव्यां कारयित्यात्मनो नृप । अभीष्टदाहृतगताभिष्टालंकारसंयुताम् ॥३
अभीष्टलोकसहितां सर्वोपस्कररसंयुताम् । ततः पट्टपटीवस्त्रैश्छादितां रत्नभूषिताम् ॥४
कुंकुमेनानुलिप्तांगों कर्फूरागुरुवासिताम् । स्त्री चेद्वाति शयने शयितां कारयेत्स्वयम् ॥५

होने पर (उस शश्या दान के प्रभाव से) स्वर्ग लोक में पूजित होता है। उत्तम विमान पर महाप्रलय पर्यन्त अप्सरायें उसकी समृच्छित सेवा करती हैं। पाण्डुनन्दन! इस प्रकार अमल शश्या को दान करने वाला पुरुष जो समस्त सौख्य का विधान कहा गया है, स्वर्गमें विकल्प बाधाओं से रहित मुखानुभव करता है। १२१-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्बाद में
शश्यादान विधिवर्णन नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त। १८४।

अध्याय १८५

आत्मप्रतिदान विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें आत्मप्रतिकृति (अपनी प्रतिमा) का दान जो मान बढ़ाने वाला है, पहले किसी को बता भी चुका हूँ, इस समय बता रहा हूँ। पार्थ! मुनियों के सज्जनोंके निमित्त उस दान का काल भी बताया है क्योंकि पुण्य समय पुण्य द्वारा ही प्राप्त होता है न कि जीवित ही रहने पर। नृप! लोहद्वारा अपनी भव्य आहुति का निर्माण कराये, जो अभीष्ट वाहन युक्त अलंकारभूषित, इष्ट जनसमेत, समस्त साधन सम्पन्न, वह पटी वस्त्रसे आच्छन्न, रत्न भूषित, कुंकुम से अनुलिप्त, कपूर अगर से सुवासित हो। स्त्री यदि दान करना चाहती है तो अपनेहाथो उसे शयन शश्या पर स्थापित कराकर और जो कुछ

यद्यदिष्टतमं किंचित्तसर्वं पार्श्वतो न्यसेत् । उपकारकरं स्त्रीणां स्वशरीरे च यद्भवेत् ॥६
 तत्सर्वस्थापयेत्पार्श्वं स्वयं संचित्य चेतसि । एतत्सर्वं मेलमित्वा स्वे स्वे स्थाने निधाय च ॥७
 पूजयित्वा लोकपालान्गृहान्देवीं विनायकम् । तत शुक्लांबरः स्नात्वा गृहीतकुमुमांजलिः ॥८
 इममुच्चारयेन्मन्त्रं विप्रस्य पुरतो ब्रूधः^१ । आत्मनः प्रतिमा चेयं सर्वोपस्करैर्युता ॥९
 सर्वरत्नं समायुक्ता तव विप्र निवेदिता । आत्मा शम्भुः शिवः शौरिः शक्रः सुरगणैर्वृतः ॥१०
 तस्मादात्मप्रदानेन समात्मा सुप्रसीदतु । इलुच्चार्यं ततो दद्याद्ब्राह्मणाय युधिष्ठिर ॥११
 ब्राह्मणाऽचपि गृहीयत्कोदादिति च कीर्तयन् । ततः प्रदक्षिणाकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१२
 विधिनानेन राजेन्द्र दानमेतत्प्रयच्छति । यः पुमनथ वा नारी शृणुयत्कलमाप्नुयात् ॥१३
 साप्रं वर्षशतं दिव्यं स्वर्गलोके सुरंवृतः । अभीष्टालदानेन ह्यभीष्टफलभाग्भवेत् ॥१४
 यत्रैतोत्पद्यते जनुः प्राप्ते कर्मक्षये पुनः । तत्रैव सर्वकामानां फलभाग्भवते नृपः ॥१५
 इष्टबंधुजनैः साहृं न वियोगं कदाचन ! प्राप्नोति पुरुषो राजन्स्वर्गं चानंत्यमश्नुते ॥१६

यश्वात्मनः प्रतिकृतिं वरवाहनस्थां हैर्मीं विधाय धनधान्यसमाकुलां च ।

सोपस्करं द्विजवराय ददाति भक्त्या चंद्रार्कवत्स दिवि भाति हि राजराजः ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद

आत्मप्रतिकृतिदानविधिवर्णनं नाम पञ्चासीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८५

अन्य अभीष्ट वस्तु हो तथा स्त्रियों के शरीर के उपकरण जो वस्तु हो, उन सभी को उसके पार्श्व भाग में स्थापित करते हुए अन्य आवश्यक वस्तुओं का विशेष ध्यान रखें। सभी वस्तुओं को वहाँ अपने-अपने स्थान रख कर लोकपाल, गृह, देवी, विनायक देवों की अर्चना के अनन्तर शुक्र वस्त्रधारण किये हाथ में पुष्पाञ्जलि लिए ब्राह्मण के सम्मुख इन मन्त्रों का उच्चारण करे—विप्र! सर्वसाधनं सम्पन्न और समस्त रत्नों में भूषित यह अपनी प्रतिमा तुहाँ अर्पित की गयी है, आत्मा ही शम्भु, शिव, देवों समेत इन्द्र और शौरि है अतः इस आत्मप्रदान से मेरी आत्मा प्रसन्न हो युधिष्ठिर! ऐसा कहकर वह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करे । १-१। ब्राह्मण भी 'कोदात' इति इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उसका ग्रहण करे । अनन्तर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके विसर्जन करे । १२। राजेन्द्र! इस विधान द्वारा दान करने पर उस स्त्री या पुरुष को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, वह तो रहा हूँ, सुनो! स्वर्गलोक में दिव्य सौ वर्ष तक देवों समेत इस अभीष्ट फल दान करने के नाते अभीष्ट फल का भागी होता है । नृप! जन्तु (जीव) जहाँ उत्पन्न होता है, कर्मक्षीण होने पर पुनः वहाँ ही समस्त कामनाओं का सुखानुभव करता है । राजन्! इष्टजनों से उसका कभी वियोग ही नहीं होता है और स्वर्ग में अनन्त सुखानुभव करता है । इस प्रकार अपनी सुर्वर्ण मूर्ति बना कर जो उत्तम ब्राह्मण पर स्थित और धनधान्य समेत हो, साधन सम्पन्न उसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मण थेष्ठ को अर्पित करते या वह मनुष्य आकाश स्थित सूर्य चन्द्र की भाँति यहाँ राजराज (महाराज) होकर सुशोभित होता है । १३-१७।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

आत्मप्रतिदानविधि वर्णन नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त । १८५।

१. ब्रूधः । २ सर्वसंपत्समायुक्ता ।

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हिरण्याश्वदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

सांप्रतं संप्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधिं परम् । यस्य प्रसादात्पुरुषः शाश्वतं फलमश्नुते ॥१
 पुण्यं दिनभयासाद्य पात्रं वापि गुणाधिकम् । शक्तिस्त्रिएलादूर्ध्वमाशताच्च नरोत्तम ॥२
 खलीनालंकृतमुखं कारयेद्देवमवाजिनम् । मुखरं सोन्नतरस्कंधं दृढजानुं स्वालधिम् ॥३
 स्थापयेद्देविमध्ये तु कृष्णाजिनतित्तोपरि । कौशेयवरत्रसंवीतं कुङ्कुमेन विलेपित्तम् ॥४
 सम्पूज्य कुसुमैः श्वेतैश्चदकान्विनिवेद्य च । ततः एवंसमीपे तु शृगीतकुसुमाञ्जिलिः ॥५
 इममुच्चारयेन्मन्त्रं पुराणोक्तं यतद्रत्तः । नमस्त्वे सर्वदेवेश वेदाहरणलम्पटः ॥६
 वाजिरूपेण यामस्मात्पाहि संसारसागरात् । त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण भास्करम् ॥७
 यत्नाद्वारयसे^३ लोकान्तः पाहि सनातन । एवमुच्चार्यं तं राजन्विप्राय प्रतिपादयेत् ॥८
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् । अनेन विधिना राजन्हिरण्याद्वमलङ्कृतम् ॥९
 दत्त्वा पापक्षयाद्वानोलोकमाप्नोति^४ शाश्वतम् । तस्मिन्नहनि भुजीत तैलक्षारविवर्जितम् ॥१०
 पुराणश्रवणं तद्वत्कारयेद्दोजनादनु^५ ॥११

अध्याय १८६

सुवर्णनिर्मित अश्वदान-विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें इस समय सुवर्ण निर्मित अश्व की प्रतिमाका दान विधान बता रहा हूँ । नरोत्तम! किसी पुण्य दिवस में किसी गुणी सन्तान को यथाशक्ति तीन पल से लेकर सौ पल तक सुवर्ण की निर्मित वह प्रतिमा, जो उत्तम खजीन (लगाम) से भूषित, उन्नत स्कंध, दृढं जानु (घुटने) और वोलधि समेत हो, वेदी के मध्यभाग में कृष्णमूर्णा और तिल के ऊपर रेशमी वस्त्र से आच्छन्न और कुङ्कुम से अनुलिप्त कर प्रतिष्ठित करे । श्रेत पुण्य से पूजित कर (अश्व के) भक्षणार्थं चना अर्पित करे । अनन्तर! उस पर्व के समय हाथ में पुण्याञ्जलि लेकर संयम पूर्वक इस पुराण के मंत्र का उच्चारण करे—सर्वदेवेश तथा अश्वरूप से वेद के अपहरण करने वाले लम्पट! इस संसारसागर से मेरी रक्षा करो । सनातन! सातरूपों में विभक्त होकर छंदोरूप से भास्कर और लोकों को धारण करते हो, अतः मेरी रक्षा करो । राजन्! ऐसा कहकर उसे ब्राह्मण को अर्पित करते हुए प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके विसर्जन करे । १-८। राजन्! इस विधान द्वारा अलंकृत हिरण्याश्व का दान करने वाला पाप विनाश पूर्वक सूर्य का अक्षय लोक प्राप्त करता है । पुनः उस दिन तेल नमक रहित भोजन कर पश्चात् पुराण श्रवण करे । नरेन्द्र! किसी पुण्य

१. त्वया जितं जगत्सर्वं त्वत्खुराकांतिता मही । वाचिरूप नमस्तु पुण्यं पाहि संसारसागरात् । २. वर्तसे ।
 ३. भावयसे । ४. अभ्येति । ५. राजन्कारयेन्नियतात्मना । ६. अभिपूजितात्मा ।

इत्थं हिरण्याश्वविधि करोति यः सुपुण्यमासाद्य दिनं नरेद्वा ।
 विमुक्तपापः स पुरं मुरारे: प्राप्नोति सिद्धैरभिपूजितं^१ यत् ॥१२
 इति पठति य इत्थं हैमवाजिप्रदानं सकलकलुषमुक्तः सोऽश्वयुक्तेन भूपः ।
 कनकमयविमानेनार्कलोकं प्रयातस्त्रिवशपतिवधूभिः पूज्यते हर्ष्यभोगैः ॥१३
 यो वा शृणोति पुरुषोऽश्वः वा स्मरेद्वा हैमाश्वदानमभिनंदति दीपमानम् ।
 सोऽपि प्रयति हृतकलनपशुद्धदेहः स्थानं पुरंदरमहेऽवरलोकजुष्टम् ॥१४
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 हिरण्याश्वदानविधिवर्णनं नाम षडशीत्यधिकशतमोऽध्यायः । १८६

अथ सप्तासीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हिरण्याश्वरथदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि तब पाण्डुकुलोद्धवः ! पुण्यं हेमरथं नाम महापातकनाशनम् ॥१
 पुण्येत्हि विप्रकथिते स्वनुलिते गृहाङ्गाणे ! कृष्णाजिनतिलान्कृत्वा काञ्चनं स्थापयेद्वधम् ॥२
 चतुरस्त्रं महाभाग कारयेत् सकूबरम् । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा गृहीतप्रग्रहं शुभम् ॥३
 इन्द्रनीलेन कुम्भेन ध्वजरूपेण संयुतम् । लोकपालाष्टकोपेतं पद्मरागदलान्वितम् ॥४

अवसर पर इस हिरण्याश्व विधान सुसम्पन्न करने वाला मनुष्य पाप मुक्त होकर सिद्धों से पूजित कृष्ण लोक की प्राप्ति करता है। इस भाँति इस सुवर्णाश्व विधान को पढ़ने वाला भी पाप मुक्त होकर अश्व युक्त उस सुवर्ण मय विमान द्वारा स्वर्ग पहुँचकर देवाङ्गनाओं से सुरेवित होता है। उसी भाँति इस हिरण्याश्व आल्यान का ध्वण या स्मरण करने वाला पुरुष जो इस दान का सतत समर्थन करता है शुद्ध शरीरहोकर इन्द्र लोक की प्राप्ति करता है। १३-१४

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
 हिरण्याश्वदानविधान वर्णन नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त । १८६।

अथ अध्याय १८७

हिरण्याश्वरथदान विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुकुलोद्धव! मैं तुम्हें उस पुण्य हेम का विधान बता रहा हूँ, जो महान् पातकों का नाश करता है। ब्राह्मण की अनुजा द्वारा किसी पुण्य दिन गोबर से लिपे पुते गृहाङ्गण में काले चौकोर चार चक्र (चक्के) और धुरा, आदि समेत दृढ़ हो, तथा अग्र भाग में ब्रह्मा वैठकर (घोड़े की) शुभ रस्सी (लगाम) पकड़े हो। उसके सात इन्द्र नील मणि भूषित कलश, जो ध्वज रूप उसमें संयुक्त हो, पद्मराग दल के ऊपर स्थित आठों लोकपाल, चार पूर्ण कलश और अट्टारह प्रकार के धान्य स्थापित

१. अभिपूजितात्मा ।

चत्वारः पूर्णकलशा धान्यान्यष्टादशैव तु । कौशेयवस्त्रं वीतमुपरिष्टाद्वितानकम् ॥५
 मध्ये तु फलसंयुक्तं पुरुषेण समन्वितम् । योगयुक्तः पुमान्कार्यस्तं च तत्राधिवासयेत् ॥६
 एवंविधं पूजयित्वा माल्यगन्धानुलेपनैः । चक्ररक्षावुभौ तस्य कायोँ विश्वकुमारकौ ॥७
 पुण्यं कालं ततः प्राप्य स्नातः सम्पूज्य देवताः । त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुमुमांजिलिः ॥८
 शुक्लमाल्याम्बरधर इमं मन्त्रमुदीरयेद् ॥९

नमोनमःपापदिनाशनाय विश्वात्मने देवतुरङ्गमाय ।
 धान्नामधीशाय भवाभवाय रथस्य दानान्मम देहि शान्तिम् ॥१०
 वस्तष्टकादित्यमहदगणानां त्वमेव धाता परमं निधानम् ।
 यतस्ततो मे हृदयं प्रयातु धर्मैकतानत्वमधौधनाशात् ॥११
 इति तुरगरथप्रदानमेतद्वृभयसूदनमत्र यः करोति ।
 सकलुषपतलैर्विमुक्तदेहः परममुपैति पदं पिनाकपाणेः ॥१२
 देदीप्यमानवपुषा च जितप्रभावसाक्रम्य सण्डलमखण्डलचण्डभानोः^३ ।
 सिद्धांगनानयनयुग्मनिपीयमानवक्त्राम्बुजेभवेन चिरं सहास्ते ॥१३
 इति पठति शृणोति वा य एतत्कनकतुरङ्गरथप्रदानमस्मिन् ।
 न स नरकपुरं व्रजेत्कदाचिन्नरकरिपोभवनं प्रयाति भूयः ॥१४
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 हिरण्याश्वरथदानविधिवर्णनं नाम सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७

करना चाहिए और ऊपर रेशमी वस्त्र की चाँदनी (चैंदोवा) से विभूषित भी । १-५। उसके मध्य भाग में फल समेत पुष्प को प्रतिष्ठित करके, जिसका योग मुक्त निर्माण किया गया हो, उसका अधिवासन कराये । माला, गंध, अनुलेपन आदि से उसकी अर्चना करके चक्रके की रक्षा के निमित्त दो विश्वकुमार की स्थापना करे । तदुपरात पुण्यकाल के समय म्मान, देवपूजन और रथ की तीनि प्रदक्षिणा करके शुक्ल वस्त्र धारण किये हाथ में पुष्पाङ्गजलि लिए इस मंत्र का उच्चारण करे—पापविनाशी, विश्वात्मा देव (वेद) रुपी तुरङ्गम को नगस्कार है, जो अधीश्वर (विष्णु) का धाम तथा संसार से मुक्त करता है । इस रथ दान से मुक्त शांति प्रदान करने की कृपा करे ! आठों वसु, आदित्य एवं महदगणों के तुम धाता, परमनिधान हो अतः मेरे पाप समेत को नष्ट कर मेरे हृदय को धर्म मय करने की कृपा करो । इस भाँति संसारमुक्त होने के निमित्त अश्व रथ का प्रदान करने वाला मनुष्य समस्त पापों से रहित होकर पिनाकपाणि (शिव) का उत्तम लोक प्राप्त करता है । और देदीप्यमान शरीर धारण कर इन्द्र और प्रचण्ड सूर्य के प्रभाव को आक्रान्त करते हुए सिद्धाङ्गनाओं के नेत्र (कटाक्ष) और मुखादि के रसास्वादन ब्रह्मा के साथ चिरकाल तक प्राप्त करता है । इस प्रकार सुवर्ण निर्मित अश्व रथ के आव्यान को पढ़ने या सुनने वाला मनुष्य कभी-भी नरक गामी नहीं होता है । अपितु नरक रित्त (शिव) लोक की प्राप्ति करता है । ६-१४

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
 हिरण्याश्वरथदानविधि में वर्णन नामक एक सौ सतासीवाँ अध्याय समाप्त । १८७।

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कृष्णाजिनदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कृष्णाजिनप्रदानस्य विधिकालं ममानघ । ज्ञात्युं च समाचक्ष्व तत्र मे संशयो गहान् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

युगार्दिषुपरागेषु सङ्क्रान्तौ दिनसंक्षये । माध्यां ता ग्रहपीडातु^१ दुःस्वाप्नाद्भूतदर्शने ॥२
देयमेतन्महानंत द्रव्यमात्रागमे तथा । आहिताग्निद्विजो यश्च वेदवेदाङ्गपारगः ॥३
पुराणाभिरतो दक्षो देयं तस्मै च पार्थिव । यथा येन विधानेन तन्मे निगदतः शृणु ॥४
गोमयेनोपलिप्ते तु शुचौ देशे नगाधिप । आदातेव सप्तास्तीर्य शोभितं वस्त्रमाविकम् ॥५
कर्तव्यं रक्षमशुद्गु तद्वैष्यदन्तं तथैव च । मुक्तादाम्ना तू लाङ्गूलं तिलच्छन्नं तथैव च ॥६
तिलैः इत्वा शिरो^२ राजन्वाससच्छादयेद्यूधः । मुवर्णनाभितः कुर्यादिलङ्कुर्यादिशेषतः ॥७
पुष्पैश्चैव विधानेन नैवेद्येन च पूजयेत् । रत्नैरेवं यथा शक्त्या तस्य दिक्षु च विन्यसेत् ॥८
कांस्यपात्राणि चत्वारि तेषु दद्याद्यथाक्रमम् । घृतं क्षीरं दधि क्षौद्रमेवं दत्त्वा यथाविधि ॥९
ततः सर्वसमीपे तु मन्त्रमेतमुदरीयेत् । कृष्णः कृष्णमलो देव कृष्णाजिनवरस्तथा ॥१०

अध्याय १८८

कृष्णमृगचर्म दान-विधि-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—अनघ! कृष्ण मृग चर्म का प्रदान काल और विधान तथा ब्राह्मण भी मुझे बताने की कृपा करें, क्योंकि इसमें मुझे महान् संशय उत्पन्न हो रहा है !

श्री कृष्ण बोले—युगारम्भ की तिथि, ग्रहणकाल, संक्रान्ति, दिनक्षय, माघपूर्णिमा, ग्रहपीडा के समय तथा दुर्स्वप्न दर्शन होने पर या जिस समय विशेष धनागम हो, इस मह दान को सुसम्पन्न करे। पार्थिव! दान ग्रहण करने वाला ब्राह्मण भी चाहिए, जो अग्निहोत्री वेद-वेदाङ्ग पारगामी, पुराणवेत्ता तथा कर्मकुशल हो। विधान भी मैं बता रहा हूँ, सुनो! नराधिप! किसी पवित्र देश में गोवर से लिपी हुई भूमि पर, सर्व प्रथम ऊनी वस्त्र विछाकर सुवर्ण की सींग, चाँदी, दाँत, मोतियों की रस्सी, तिलाच्छन्न पूँछ तथा तिल द्वारा शिर का निर्माण कर वस्त्र से ढाँक दे। विशेषकर सुवर्ण से उसके चारों ओर अलंकृत कर पुष्प, गंध, फल, नैवेद्य, आदि से अर्चा करते हुए उसके चारों ओर यथाशक्ति रत्नों से भूषित करे। २-८। चार काँसे के पात्रों में क्रमशः घृत, क्षीर, दधि, एवं मधु रख कर उसका सविधान दान करके इस मंत्र का उच्चारण करे—देव! आप काले रंग और कृष्ण मंत्र वाले उत्तम कृष्णजिन (काले चर्म) हैं,

१. दुःखदुःखस्वप्नदर्शने । २. सुशिखरम् ।

त्वदानपास्तपापस्य प्रीयतां मे नमोनमः । ऋस्त्रिंतसुराणां च आधारे त्वं व्यवस्थितः ॥११
 कृष्णोऽसि मूर्तिमान्साक्षात्कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते । एवं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥१२
 तत्प्रतिग्राहकं विप्रं वेदवेदाङ्गपारगम् । स्नातं वस्त्रयुगाच्छन्नः^१ स्वशक्त्या वाप्यलङ्कृतम् ॥१३
 प्रतिग्रहस्व तस्योक्तः पुच्छ देशो स्वयंभुवा । प्रतिग्रहप्रदःथस्य विप्रस्य च स भारतः ॥१४
 न पश्येद्वदन पश्ननान्न चैनमभिभाष्येत् । अनेन विधिना दत्त्या यथावत्कृष्णमार्गान्म् ॥१५
 समग्रं भूमिदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः । कृष्णाजिनतिलान्कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी ॥१६
 ये प्रयच्छन्ति विप्राण न^२ ते शोच्या भवन्ति वै । सर्वान्त्लोकांश्चरन्त्येव कामचारा वियद्गताः ॥१७
 आभूतसंप्लवं यावत्स्वर्गं प्राप्ता न संशयः । कृष्णाजिनमन्म दानं न चास्ति भुवने त्रये ॥१८
 प्रतिग्रहोऽपि पापीयानिति वेददिदो विदुः । अवस्थावित्ये यच्च त्रिधा यत्समुपार्जितम् ॥१९
 तत्सर्वं नाशमायाति दत्त्वा कृष्णाजिनं क्षणात् ॥२०

कृष्णोक्तं कृष्णमृगस्य चर्म दत्त्वा द्विजेन्द्राय समाहितात्मा ।

यथोक्तमेतन्मरणं न शोचेत्प्राप्नोत्यभीष्टं मन्त्रः फलं यत् ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

कृष्णाजिनदानविधिवत्वर्णनं नाम नामाष्टासीत्यधिकशततमोऽध्यायः । १८८

तुम्हारे दान से मेरा समस्त पाप नष्ट हो गया है अतः मैं वार-वार आपको नमस्कार कर रहा हूँ । तैतीस (कोटि) देवों के तुम आधार बनाये गये हों, मूर्तिमान् साक्षात् कृष्ण हो अतः कृष्णाजिन को नमस्कार है । इस भाँति प्रदक्षिणा समेत वार-वार नमस्कार करके वेद-वेदाङ्ग का पारगामी उस प्रतिग्राही (दान देने वाले) प्राइमण को भी ज्ञानोपरांत दो वस्त्र और यथाशक्ति भूषण भूषित करे । भारत! प्रतिग्राही को ग्रहण समय उसके पुच्छ प्रदेश का स्पर्श करना चाहिए ऐसा ब्रह्मा ने बताया है । प्रतिग्रह ग्रहण करने वाले उस ब्राह्मण का प्रतिग्रह ग्रहण करने पर उसके मुख का दर्शन न दरे और न उससे सम्भाषण करे । इस विधान द्वारा कृष्णचर्म का दान करने वाला मनुष्य भूमिदान का समस्त फल प्राप्त करता है । १९-१५३ । कृष्णाजिन, तिल के ऊपर सुवर्ण, मधु-घृत समेत ब्राह्मण कों अर्पित करने या वह कभी शोक नहीं करता है अपितु समस्त लोकों में आकाश मार्गसे यथेच्छ विचरण करता है । उसे महाफल पर्यन्त स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है क्योंकि कृष्णाजिन के समान न अन्य दान तीनों लोक में नहीं बताया गया है किन्तु वेद वादियों का कहना है कि उसका प्रतिग्राही पापी होता है । शिशु, युवा और वृद्धावस्था में किये हुए समस्त पाप कृष्णाजिन दान द्वारा उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार ध्यानमग्न रहकर काले नेत्र वाले मृगके चर्म किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने पर मरण समय शोक रहित और अभीष्ट फल की प्राप्ति करता है । १६-२१

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

कृष्णाजिनदानविधि वर्णन नाम एक सौ अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त । १८८।

१. वस्त्रपरिच्छन्नम् । २. ते च स्वर्गमवाप्नुयः ।

अथैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हेमहस्तदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कथयिष्ये महाराज हेमहस्तरथं तद ! यस्य प्रदानाद्रदनं वैष्णवं याति मानवः ॥१
पर्वकालं समासाद्य संक्रान्तौ ग्रहणेऽपि वा । कुरुद्देवरथकारं रथं मणिभूषितम् ॥२
वलभीभिर्विचित्राभिश्चतुश्चकसमन्वितम् । चतुर्भिर्हेममातंगैर्युक्तं हेमदिभूषितम् ॥३
ध्वजे च गरुडं कुर्यात्कूबराये विनायकम् । लोकपालाद्दक्षोपेतं इह्यार्कशिवसंयुतम् ॥४
मध्ये नारायणोपेतं लक्ष्मीपुष्टिसमन्वितम् । कृष्णजिनतिलद्वेषं कृत्वा तं स्थापयेद्रथम् ॥५
नानाफलसमायुक्तमुपरिष्टाद्वितानकम् । कौशेयवस्त्रसंवीतमम्लानकुमुमार्चितम् ॥६
कुर्यात्पंचपलाद्वर्धमाशताच्च नरोत्तम । ततः स्नात्वा समभ्यर्च्य पितृन्देवान्यथाविधि ॥७
त्रिप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुमुमाञ्जलिः । इममुच्चारयेनमन्तं सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥८

नमोनमः शङ्करपद्मजार्कलोकेशविद्याधरवासुदेवैः ।

त्वं सेव्यसे वेदपुराणयज्ञस्तेजो हि नः स्यद्दनं पाहि तस्मात् ॥९

अध्याय १८९

सुवर्णनिर्मितहाथी के रथ-दान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं तुम्हें सुवर्ण निर्मित गजरथ का दान बता रह हूँ, जिसके प्रदान करने से मनुष्य को विष्णु लोक प्राप्त होता है । किसी पर्व, संक्रान्ति, या ग्रहण के समय देव रथ के समान उस रथ को बना कर मणिभूषित करे । विचित्र वलभी और चारों चक्र (चक्रों) से युक्त उस रथ में सुवर्ण भूषित चार गजराजों को नियुक्त करे । उसकी ध्वजा में गरुड़, कूवर (धुरा) में विना यक, आठों लोकपाल, ब्रह्मा, सूर्य, शिव का स्थापित करते हुए मध्यभाग में लक्ष्मी समेत नारायण की स्थापना करे । कृष्ण जिन (काले मृग चर्म) और द्वोण प्रमाण तिल के ऊपर उस रथ को प्रतिष्ठित करते हुए उसे अनेक भाँतिके फल और वितान (चँदोवा), नूतन रेशमी वस्त्र से भूषित कर पुष्पों से अर्पित करे । १-६। नरोत्तम! उसके निर्माण में पाँच पल से लेकर सौ पल तक सुवर्ण होना चाहिए । पश्चात् आन, देव-पितृ पूजन करके तीन प्रदक्षिणा समेत हाथ में पुष्टाञ्जलि इस मंत्र का उच्चारण करके जिससे समस्त सौख्य की प्राप्ति होती है । ७-८। स्यन्दन! शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, लोक पाल, विद्याधर, शिव, विष्णु आदि समस्त देवगण तुम्हारी सेवा करते हैं, उसी प्रकार वेद, पुराण और यज्ञ भी तुम्हारी शुश्रुषा में लगे रहते हैं अतः मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ, मेरे तेज की रक्षा करो! प्राचीन एवं अत्यन्त गुह्य जिस पद की प्राप्ति के लिए, जो

१. प्रसादात् । २. गृहीत्वा कुमुमाञ्जलिम् । ३. शंकरलोकपाललोकेशविद्याधरवासुदेवैः ।

यत्तपदं परमगुह्यतम्^१ पुराणमानंदहेतुगणरूपविमुक्तबन्धः ।
 योगैकमानसदृशो मुनयः समाधौ पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथेति लङ्घः^२ ॥१०
 यस्मात्त्वमे भवसागरसंप्लुतानामानंदभांडचित्तमध्यगपानपात्रम् ।
 तस्मादयौधशमनेन कुरु प्रसारं चामीकरेभरथ माधव संप्रदानात् ॥११
 इत्थं प्रणम्य फनकेभरथप्रदानं यः कारयेत्समलयापविमुक्तदेहः ।
 विद्याधरामरमुनींद्रगणभिजुष्टं प्राप्नोत्यसौ पदमतीन्द्रियमिन्दुमौलः ॥१२
 कृतदुरितवितानातुष्टिसद्वृत्तिपात्प्रतिकरकृतदेहोद्गभानोऽरि बन्धन् ।
 नयति च पितृसौत्रान् रौरवादप्यसेषात्कृतगजरथदानः शाश्वतं सद्य विष्णोः ॥१३
 इति श्रीभविष्णे महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 हेमहस्तिरथदानविधिवर्णनं नामैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १८९

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

विश्वचक्रदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुनरेव प्रवक्ष्यामि दानमत्यद्भुतं तत्र । विश्वचक्रमिति ख्यातं सर्वपापविनाशनम् ॥१

परमानन्द रूप हैं, मुक्त बन्धन योगी गण, जो योग द्वारा सदैव ब्रह्म-ध्यान में मग्न रहते हैं, समाधि में तत्त्वमसि (जीव ही ब्रह्म है) रूप में तुम्हीं को देखते हैं । इस संसार सागर से पार होने वाले मनुष्यों के लिए तुम आनन्द विधान पात्र हो, जो मध्य में आवश्यकतानुसार प्राप्त होता रहे, सुवर्ण निर्मित गजरथ! तुम साक्षात् माधव रूप हो अतः मेरे ऊपर पापनाशपूर्वक प्रसन्न होने की कृपा करो । इस प्रकार प्रणाम पूर्वक वह कनक गजरथ का, जो विद्याधर, देवगण और मुनियों समेत स्थापित हो, दान करने वाला समस्त पापों रोयुक्त होकर चन्द्रमौलि (शिव) का पद प्राप्त करता है । इस (संसार) में पाप का चंदोवा (विस्तृत पाप का) करने वाले प्राणी भी, जो पाप की अधिकताओं के नाते अप्रसन्न अग्नि आदि देवों द्वारा विकृत देह (कुष्टी) हो गया हो, इस गजरथ दान द्वारा अपने बन्धुओं -पितृ-पौत्रों आदि को रौरवादि नरकों से बचा कर विष्णु का शाश्वत पद प्राप्त करता है । १-१३

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
 हेमहस्ति रथदान विधि वर्णन नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त । १८९।

अध्याय १९० विश्वचक्रदान-विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें विश्वचक्र नामक अत्यन्त अद्भुत दान बता रहा हूँ, जो प्रख्यात और

१. पुण्यतमं मुरारे: । २. मूढः ।

तपनीयस्य शुद्धस्य विशुद्धात्माश कारयेत् । श्रेष्ठं पलसहस्रेण तदर्देन तु मध्यमम् ॥२
 तस्याप्यद्वं कनिष्ठं स्याद्विचक्रमुदाहृतम् । तथा विंशत्पलाद्वृद्ध्वमशक्तोऽपि निवेदयेत् ॥३
 पोड्सारां ततश्चक्रं भ्रमन्नेम्यष्टकावृतम् । नाभिपदे स्थितं दिष्णुं योगारुढं चतुर्भुजम् ॥४
 शङ्खचक्रेऽस्य पार्श्वस्थे देव्यष्टकसमावृतम् । द्वितीयावरणे तद्वत्पूर्वतो जलशायिनम् ॥५
 अत्रिर्भृगुर्वशिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च । मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहेय वामनः ॥६
 रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्पी च ते दर्श । तृतीयावरणेगौरी मनुभिर्वसुभिर्युता ॥७
 चतुर्थं द्वादशादित्या देवाशत्वार एव च । पञ्चमे पञ्च भूतानि रुद्राशैकादशैव तु ॥८
 लोकपालाष्टकं षष्ठे दिङ्मातंगास्तथैव च । सप्तमेऽस्त्राणि भञ्ज्ञलानि च कारयेत् ॥९
 अन्तरांतरतो देवान्विन्यसेऽष्टमे पुनः । इशहस्तं ततः कृत्वा पताकातोरणांवितम् ॥१०
 मण्डपं कुण्डमेकं च कारयेद्वस्त्रसंयुतम् । चतुर्हस्ता भवेद्वेदी मध्ये तस्यात्ततो न्यरेत् ॥११
 कृष्णाजिनोपरिगतं विश्वचरं विधानतः । तथाष्टादशधान्यानि रसाश्च लवणाद्यः ॥१२
 पूर्णकुम्भाष्टकं तद्वस्त्रमात्यविशूषितम् । फलानि दापयेताश्वर्वं पञ्चवर्णं वितानकम् ॥१३
 अधिवास्य ततश्चक्रं पश्चाद्दोमं समाचरेत् । चातुश्चरणिकांस्तत्र ब्राह्मणांश्चतुरोऽथ वा ॥१४
 होमं कुर्युर्जितात्मानो वस्त्राभरणभूषिताः । होमद्रव्यसमोपेताः सुक्सुवैस्तान्नभाजनैः ॥१५
 चक्रप्रतिष्ठितानां तु सुराणां होम इष्यते । तल्लिङ्गंजुह्यान्मन्त्रैः सर्वोपद्रवशांतये ॥१६

समस्त पापों का नाश करता है । अप्नि संतृप्त एवं अत्यन्त विशुद्ध सुवर्ण का वह चक्र बनाना चाहिए । इसके निर्माण में सहस्र पल सुवर्ण की मूर्ति श्रेष्ठ, तदर्थ भाग की मध्यम और उसके भी आधे भाग का विश्व चक्र कनिष्ठक कहा जाता है तथा असमर्थ मनुष्य को भी उसके निर्माण में बीस पल से अधिक ही सुवर्ण लगाना चाहिए । इस प्रकार उस चक्र के, जिसमें सोलह आर आरामन आठ युद्धियों से आवृत नेमि (मूँडी) हो, नाभि कमल पर योगारुढ चतुर्भुज विष्णु, पार्श्व भाग में शंख-चक्र, स्थित करना चाहिए, जो आठ देवियों से घिरा रहता है । दूसरे आवरण में उसी भाँति पूर्व की ओर जलशायी विष्णु, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, ब्रह्मा, कश्यप, मत्स्य, कूर्म (कच्छप) वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम राम, कृष्ण बुद्ध, और भगवान् का कल्कि रूप स्थित रहता है । तीसरे कक्ष में मनुष्यों और वसुओं समेत गौरी, चौथे कक्ष में द्वादशसूर्य एवं चारों वेद, पाँचवे में पाँचो महाभूत, एकादश रुद्र और आठों लोकपाल, छठे में दशो दिग्गज, सातवें में मंगलसमेत समस्त अरुणवृन्द और आठवें में बीच-बीच में देवगणों को स्थापित करना चाहिए । अनन्तर पताका और तोरणों से भूषित दश हाथ का वस्त्र सुसज्जित मण्डप बनाकर उसमें चार हाथ की वेदी की रचना करते हुए एक कुण्ड की रचना करें । १-१। तदुपरांत कृष्ण मृगचर्म के ऊपर सविधान विश्व चक्र की स्थापना करके अष्टादश प्रकार के धान्य, लवणादि रस, वस्त्र माला से भूषित आठ पूर्ण कलश तथा पार्श्व भाग में फल और ऊपर पंचाङ्ग के वितान (चँदोवा) से सुसज्जित करें । पुनः चक्र का अधिवासन करके हवन कार्य सुसम्पन्न करने के लिए चार चातुश्चरणिक ब्राह्मणों को वस्त्राभरण से भूषित कर वहाँ नियुक्त करें । जो होम की सामग्री और सुक, सुवा तथा ताप्रपात्रों से सुसज्जित हों । समस्त उपद्रवों के शान्त्यर्थ उन संयमी ब्राह्मणों द्वारा चक्र में प्रतिष्ठित देवों के निमित्त उनके लिंग मन्त्रों

ततो मंगलशब्देन ऋतः शुक्लांबरो गृही । होमाधिवासनांते तु गृहीतकुमुमांजलिः ॥१७
इममुच्चारयन्मंत्रं कृत्वा तत्रिः प्रदक्षिणम् । नमो विश्वंभरायेति विश्वचक्रात्मने नमः ॥

परमानन्दरूपी त्वं पाहि नः पापकर्दमात् ॥१८

तेजोमयमिदं यस्मात्सदा पश्यति सूरयः । हृदि तत्र गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम् ॥१९
नासुदेव स्थितं चक्रं तस्य मध्ये तु माधवः । अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताविह ॥२०

विश्वचक्रमिदं यस्मात्सर्वपापहरं हरेः । आयुधं चाधिवासश्च तस्माच्छान्तं ददातु मे ॥२१

इत्यामन्त्रं च यो दद्याद्विश्वचक्रं विमत्सरः । दिमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥२२

वैकुण्ठलोकमासाद्य नतुर्बहुनरावृतम् । सेव्यतेऽप्सरसां स्फौर्णितिष्ठेत्कलाशतन्त्रयम् ॥२३

प्रणमेद्वाथ यः कृत्वा विश्वचक्रं दिनेदिने । तस्यायुर्वृद्धते दीर्घैः लक्ष्मीस्तु विपुला भवेत् ॥२४

तस्माच्चक्रं सदा कार्यं दार्यं च स्वगृहे नरैः । कांचनं वाथ रौप्यं वा तदभावेयं ताम्रजम् ॥२५

इति सकलजगन्सुराधिवासं वितरति यस्तपनीयषोदशारम् ।

हरिभुवनगतः स सिद्धसङ्ख्यैश्चरमधिगम्य नपस्तेऽप्सरोभिः ॥२६

अथ सुदर्शनतां प्रयाति शत्रोर्मदनसुदर्शनतां च कानिनीभ्यः ।

स सुदर्शनकेशवानुरूपः कनकसुदर्शनदानदरधपापः ॥२७

के उच्चारण पूर्वक आहुति प्रदान कराये । पश्यात् मांगलिक शब्दों को कोलाहल में स्नान और शुक्लाम्बर धारण कर वह गृहस्थ हवन कार्य और अधिवासन होने के उपरात हाथ में पुष्पाञ्जलि लिए तीन प्रदक्षिणा करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करे—विश्वचक्रात्मक विश्वम्भर देव को नमस्कार है । देव! आप परमानन्द रूप हैं, अतः इस पाप कीचड़ से मेरी रक्षा करें । सूरिगण (विद्वद्गण) अपने हृदय में तेजोमय रूप में सदैव जिसका दर्शन करते हैं अतः उस गुणातीत विश्वचक्र को मैं नमस्कार करता हूँ । भगवान् वासुदेव में वह चक्र स्थित है और उस चक्र के मध्य में माधव की स्थिति है अतः यहाँ पर अन्योन्य (एक दूसरे) के आधार पर स्थित उन दोनों को मैं नमस्कार करता हूँ । समस्त पापों को अपहरण करने वाला यह विश्व चक्र भगवान् विष्णु का आयुध और अधिवास रूप है अतः मुझे शान्ति प्रदान करने की कृपा करे । १२-२१। इस भाँति आमन्त्रित कर विश्व चक्र का दान करने वाला पुरुष, समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में पूजित होता है । वहाँ वैकुण्ठ लोक में चार भुजाओं वाले विष्णु के साथ रहते हुए अप्सराओं के साथ तीन सौ कल्प सुखोपभोग करता है । इस प्रकार विश्व चक्र का निर्माण करके प्रतिदिन नमस्कार करने वाले पुरुष के दीर्घायु पूर्वक विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । इसलिए प्रत्येक मनुष्य को अपने घर सुर्वण, चाँदी अथवा ताँबे का ही विश्व चक्र बनाकर स्थापित करना चाहिए । इस प्रकार शुद्ध काचन निर्मित उस सोलह आठ (आरागत) वाले विश्व चक्र का, जिसमें समस्त देवों का निवास रहता है, दान करने वाला पुरुष, विष्णुलोक पहुँचकर अप्सराओं से नमस्कार पूर्वक सुसेवित होता है । शत्रुओं के लिए सुदर्शन, कामिनियों के लिए मदन, सुदर्शन रूप होने वाला वह सुदर्शन चक्र विष्णुका स्वरूप है, ऐसे सुर्वण निर्मित सुदर्शन चक्र के दानी का समस्त पाप दग्ध हो जाता है । इसलिए गुरुतर पाप करने वाले

कृतगुरुद्विरितेऽपि

षोडशारप्रवितरणात्प्रवराकृतिमुरारेः !

अभिभवति भवोद्भवानि भित्वा भवमभितो भवने भवानि भूयः ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

विश्वचरदानविधिवर्णनं नाम नवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९०

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनप्रतिष्ठावर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रतिष्ठा शाश्वती केन दानेन मधुसूदन । इह लोके परे चैव कीर्तिरत्यद्वृत्ता तथा ॥१

सद्गतिं च तथा यांति सर्वे पितृपितामहाः । संततिश्चाक्षया लोके विभवश्चपि पुष्टकः ॥२

स्थापनात्सर्वदेवानां कदं स्याद्युद्दनंदन । तदाचक्ष्व महाभाग दानेन निष्प्रेन वा ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्ठं त्वया राजौलोकानामुपकारकम् । शृणु वैकमना भूत्वा गुह्यं परममुत्तमम् ॥४

भुवनानां समासेन प्रतिष्ठां कथयामि ते । देवासुरास्तथा नागा गंधर्वा यक्षराक्षसाः ॥५

प्रेताः पिशाचा भूताश्च स्थापिताः स्युर्न संशयः । कारकस्यानुकूले तु मुहूर्ते विजये शुभे ॥६

पुण्ये तिथौ शिवक्षेत्रे दिने सौम्यग्रहान्विते । सप्त हस्तं पटं कृत्वा चतुरल्पं सुसंहतम् ॥७

प्राणी भी जो मुरारि विष्णु के उस रूपान्तर चक्र का, जो सोलह आरों से सज्जित रहता है, दान कराना है तो संसार दुःखों से मुक्त होकर शिवलोक में बार-बार निवास करता है । २२-२८।

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

विश्वचक्रदानविधि वर्णन नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त । १९०।

अध्याय १९१

भुवनप्रतिष्ठा का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—मधुसूदन! किस दान द्वारा शाश्वती (नियमित) प्रतिष्ठा, लोक-परलोक में अद्भुतकीर्ति, पितृ-पितामह आदि की सद्गति, लोक में अक्षय सन्तान, अत्यन्त धन की प्राप्ति होती है। महाभाग, यदुनन्दन! वह देवों के स्थापन अथवा किसी दान या नियम द्वारा सफल होता है मुझे बताने की कृपा करें । १-३

श्री कृष्ण बोले—राजन्! तुमने लोकोपकारार्थ यह अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है, इस परमोत्तम रहस्य को मैं बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो! मैं तुम्हें भुवनों की प्रतिष्ठा भी विवेचन पूर्ण बताऊँगा, जिससे देव, असुर, नाग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, प्रेत, पिशाच, भूत का स्थापन ही होगा, इसमें संदेह नहीं। कर्ता अपने अनुकूल शुभ एवं विजय मूहूर्त में जो पुण्य तिथि एवं सौम्य ग्रहों से युक्त हो,

अभिन्नांगं दृढं शुद्धं^१ शुद्धस्फटिकवर्चसम् । तस्मिन्सर्वाणि राजेन्द्र भुवनानि च लेखयेत् ॥८
 चातुर्वर्णकमानीय विचित्रं चित्रकर्मणि । युवानं व्याधिरहितं भव्यं चित्रकरं शुभम् ॥९
 संपूजयित्वा यत्नेन दिव्यवासोविभूषणैः । तस्मिन्कर्मणि युञ्जीत पठ्यमानैर्द्विजोत्तमैः ॥१०
 शङ्खभेरीनिनादेऽचरीतमङ्गलनिस्वनैः । पुण्याहजयघोरैश्च ब्राह्मणात्मजयेत्ततः^२ ॥११
 आचार्यमपि संपूज्यवात्तोभिर्भूषणैस्तथा । प्रारम्भं कारयेद्राजन्पटे तस्मिन्यथोदितम् ॥१२
 मध्ये च लेखयेद्राजञ्जबूद्धीपं^३ सदिस्तरसम् । तस्य मध्ये स्थितो मेरुमर्तोऽपरि देवताः ॥१३
 दिशागु लेकपालानां पुरोऽष्टौ मुररांयुताः । सप्तद्वीपवती पृथ्वी सप्त सप्त चैव कुलाचलाः ॥१४
 सागराः सप्त चात्रैव नद्यो द्रूदाः सरांसि च । पातालाः सप्त चात्रैव सप्त स्वर्गविभूतयः ॥१५
 ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भुवनानि यथाक्रमम् । ध्रुवमार्गस्तथादित्यो ग्रहतारसगणैर्युतः ॥१६
 देवदानवगन्धर्व यक्ष राक्षसपत्रगाः । क्रुष्यो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥१७
 मुपर्णाद्याश्च विहगा नागाःश्वेरावतादयः । दिग्गजाष्टकमत्रैव लेखयेन्यदमण्डितम् ॥१८
 एवंविद्यं पटं राजन्कारयित्वा सुशोभनम् । दशोत्तरेण पयसा एतत्सर्वसमावृतम् ॥१९
 तत्तेजसा वृतं भूयो महतोग्रेण सर्वतः । तेजस्तद्वायुना वायुराकाशेन समावृतः ॥२०
 भूतादिना तथाकाशं भूतादिर्महता तथा । अव्यक्तेन महांश्वेव व्याप्तो वै शुद्धिलक्षणः ॥२१
 अव्यक्तं तमसा व्याप्तं तमसं रजसा तथा । रजः सत्त्वेन संव्याप्तं त्रिधा प्रकृतिरुच्यते ॥२२

किसी महस्थान में सात हाथ का विस्तृत तथा चौकोर वस्त्र रखे, जो सुसंहत (घना), अभिनाङ्ग, दृढ़, शुद्ध और शुद्ध स्फटिक की भाँति स्वच्छ हो । उस चित्र को सुसम्पन्न करने के लिए चार प्रकार के रङ्ग एकत्र कर किसी युवा चित्रकार की, जो शुभ मूर्ति एवं भव्य हो, दिव्य वस्त्राभूषणों द्वारा सुपूजा करे । पुनः उसी कर्म में वेदपाठी ब्राह्मणों की नियुक्ति करके शंख, नगाढ़े, का गम्भीर विवाद, गीत-मङ्गलों की ध्वनि और पुण्याहवाचन एवं जयघोष के कोलाहल में ब्राह्मणों की अर्चा करे । ४-११। राजन्! प्रथम वस्त्राभूषणों द्वारा आच्चार्य की पूजा करके उस वस्त्र में यथोचित का उल्लेख कराये । राजन्! उसके मध्यभाग में विस्तृत जम्बूद्वीप की रचना कर उसके मध्यमें मेरु पर्वत और उसके ऊपर देवों के निवास स्थान, दिशाओं में आठों लोक पाल, सातों द्वीप समेत पृथ्वी, सातों पर्वत, सातों सागरों तथा उसी स्थान नदियों, सरोवरों, अन्य जलाशयों की रचना पूर्वक, पाताल आदि सातों लोक, सातों स्वर्ग के विभूति समस्त लोक, क्रमणः ब्रह्म, विष्णु, एवं शिव का आवास स्थान, ध्रुव का मार्ग, ग्रहों और तारागणों समेत, सूर्य, देव, दानव, गन्धर्व, पक्ष, राक्षस, नाग, क्रृषि, मुनि, गौैँ देवमाताएँ, सुवर्ण (गरुड़) आदि पक्षीगण, ऐरावत, आदि गजराजगण, तथा आठों पदमन्त्र दिग्गजों की सुस्पष्ट रचना करे । १२-१८। राजन्! इस भाँति के उस सुशोभन पटको उत्तर की ओर दश जलाशयों से आच्छन्न (धेर) कर उसे महान् एवं उग्र तेज से आवृत कर तेज को वायुसे, वायु को आकाश से, भूतों (तन्मात्राओं) से आकाश, महान् से पञ्चमहाभूत, और अव्यक्त द्वारा वह महान्, आवृत है, जो शुद्धिलक्षण सम्पन्न होकर चारों ओर व्याप्त है । १९-२१। वह अव्यक्त तम से आवृत है और वह तम रजसे सत्त्व से व्याप्त है, यही तीन रूप से प्रकृति कहा जाता

१. सूत्रं शङ्खस्फटिकवर्चसम् । २. पूज्य यत्नतः । ३. सुविस्तरम् ।

एवगावरणोपेतं ब्रह्मांडमखिलं नृप । पुरुषेणावृतं सर्वं ह्याह्याभ्यन्तरं तथा ॥२३
 एतत्तर्वं पटस्यं तु कृत्वा चित्रमयं सुधीः । कार्तिक्यामयने चैद विषुवे ग्रहणेऽपि वा ॥२४
 पूजयेदेन विधिना तत्समासेन ने शृणु । परतो मण्डपं तत्य विचित्रं कारयेदृधः ॥२५
 तत्र काण्डानि चत्वारि चतुरक्षणं कारयेत् । द्वौ द्वौ नियोजयेत्सु ब्राह्मणौ वेदपारगौ ॥२६
 यज्ञोपकरणोपेतौ वस्त्राभरणभूषितौ । होमं कुर्विञ्जितात्मानो मौनिनः सर्वं एव ते ॥२७
 पटे स्थितानां देवानां ॑मन्त्रैरोङ्कारपूर्वकैः । यजमानस्ततः स्नातः सर्वालङ्कारभूषितः ॥२८
 आद्यार्थेणसमं कुर्याद्यूजामग्रे पटस्य तु । पुष्ट्यैर्दत्तैः समभ्यर्थं मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥२९
 वर्द्धांडोदरवर्तीनि भुवनानि चतुर्दश । तानि तन्निहितान्यत्र पूजितानि भवन्तु मे ॥३०
 ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो ह्यादित्या वसवस्तथा । पूजिताः ग्रुप्रतिष्ठाश्च भवन्तु सततं मम ॥३१
 एवं पटन्तं संपूज्य कृत्वा चैद प्रदक्षिणन् । भक्ष्यानानादिधांश्चैव नैवेद्यं तत्र दापयेत् ॥३२
 शङ्खतूर्यनिनादैश्च जागरं कारयेत्ततः । ब्रह्मघोषै विचित्रैश्च गीतमञ्जलनिस्वनैः ॥३३
 पुनः प्रभाते विमले स्नात्वा शुचिरलङ्घृतः । पूर्वोक्तविधिनानेन पुनः संपूज्यं तं पटम् ॥३४
 ऋत्विक्पूजां ततः कृत्वा गोशतेन विचक्षणः । अथवा गोयुगं^३ दद्यादैकैकस्यात्यलङ्घृतम् ॥३५
 उपानहो तथा छत्रं गृहोपकरणानि च । यद्यदिष्टतमं किंचित्सर्वं दद्याद्विचक्षणः ॥३६

है । नृप! इस प्रकार आवरणों से युक्त यह निखिल ब्रह्माण्ड बाहर-भीतर सभी स्थान पुरुष से उपवृत है । वह सुधी (विद्वान्), उस वस्त्र में इस प्रकार के चित्र का निर्माण कराकर कार्तिक पूर्णिमा, अयन, विपुल, ग्रहण के समय जिस विधान द्वारा अर्चा सुसम्पन्न करे मैं विवेचक पूर्ण बता रहा हूँ, सुनो! उसके समक्ष विचित्र मण्डप का निर्माण करके उसमें चौकोर चार कुण्डों को बना कर उस प्रत्येक कुण्ड पर दो-दो वेदपारगामी ब्राह्मणों को नियुक्त करे, जो यज्ञ के समस्त साधनों से सम्पन्न वस्त्राभूषणों ते भूषित हों वे सभी संयमी ब्राह्मण मौन होकर हवन कार्य सुसम्पन्न करें । पट में प्रतिदिन देवों के निमित ओंकार पूर्वक आहृति प्रदान करने के अनन्तर सम्मान तथा समस्त अलंकारों से अलंकृत होकर यजमान आचार्य के साथ पुष्ट-वस्त्रादि द्वारा उस पट की सर्वं प्रथम पूजा करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करें—‘ब्रह्माण्ड के मध्य में प्रतिष्ठित चौदोहो भुवन यहाँ स्थित रह मेरे इस पूजन द्वारा पूजित हों’। उसी भाँति ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, आहित्यगण, वस्त्र गण, आदि सभी देव मेरे इस पूजन द्वारा विस्तार पूजित और प्रतिष्ठा हों । २२-३१। इस प्रकार प्रदक्षिणासमेत उस पट की अर्चा करके अपने भाँति के भक्ष्य अन्न, नैवेद्य अर्पित करे । अनन्तर शंख, तुरुही, आदि के शाकों गीत, मंगल और ब्रह्म घोष द्वारा उसका जागरण कराकर विमल प्रातःकाल में स्थान, पवित्रतापूर्ण और अलंकारों से अलंकृत होकर पूर्वोक्त विधान द्वारा उस पट की पूजा करे । पश्चात् उस यजमान् विद्वान् को सौ गौएँ द्वारा आखिजों की अर्चा या प्रत्येक को सर्वाभरण भूषित दो-दो गौएँ अर्पित करे । उसी प्रकार उपानह, छत्र, गृह के समस्त साधन और अपनी अभीष्ट सभी वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिए । अनन्तर गजराज जुते हुए या उसके प्रभाव मेर घोड़े से सुसज्जित रथ पर

१. मेरोः । २. मम सर्वदा । ३. गोयुतम् ।

ततः प्रकल्पयेद्यानं नागयुक्तमलङ्घतम् । अलाभे वाजिसंयुक्तं पताकाध्वजशालिनम् ॥३७
 सहस्रं दक्षिणां दत्त्वा ततस्तत्रारोपयेत्यटम्^१ । ब्राह्मणं वा रथेनाथ नयेदेवालयं बुधः ॥३८
 तत्रस्यं स्थानयेत्तीत्वा गन्धैः पुष्पैङ्गच्च धूपयेत् । तत्रापि दद्यान्नैवेद्यं कुर्याच्चापि महोत्सवम् ॥३९
 यस्मिन्नायतने तस्य इतिष्ठा क्रियते नृप । पूजा तत्रापि महतो कर्तव्या भूतिमिछ्छता ॥४०
 चन्द्रातपत्रं घण्टां च धज्जायं दापयेत्सुधीः । यथाशक्तया च रोजन्द्र गुरुं गौरत्यन्नितः ॥४१
 अभ्यर्च्च दक्षिणःभिन्नच ब्राह्मणांश्च विसर्जयेत् । दीनांधृपणःनां च भोजनं चाप्यवारितम् ॥४२
 तस्मिन्नाहनि दातव्यं मिन्नस्वज्जनकंधुम् । अनेन विधिना यस्तु शृदधानो जितेन्द्रियः ॥४३
 कुर्यान्नरो वा नारी वा प्रतिष्ठां सार्वलौकिकीम् । स्थापितं तु भवेतेन वैतोक्यं सच्चराचरम् ॥४४
 कुलं च तारितं तेन सत्पुत्रेण युधिष्ठिर । यादच्च देवतागारे पठस्तिष्ठति पूजितः ॥४५
^२तावदस्याक्षया कीर्तिस्त्रैलोक्ये संप्रसर्पति^३ । दानेन कीर्तिर्याविंति^४ मर्त्यलोकेषु गीयते ॥४६
 तावद्वर्षसहवाणि स्वर्गलोके महीयते । गन्धवैर्गीयमानस्तु अप्सरोगणसेवितः ॥४७
 वसेद्वृष्टमनाः स्वर्गं यावदिन्द्राश्चतुर्दश । पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः ॥४८
 पुत्रपौत्रान्वितः श्रीमान्दीर्घायुरतिधार्मिकः । दश जन्मानि राजेन्द्र जायमानः पुनः पुनः ॥४९
 श्रूयते च पुरा राजा रजिनामि महाबलः । चक्रवर्ती दृढमतिर्जितारिर्विजितेन्द्रियः ॥५०

जो पताका-ध्वजाओं से भूषित हो, सहस्र की दक्षिणा पूर्वक वह पट आरोपित करे अथवा उस रथ द्वारा द्वाहमण के देवालय लाकर स्थापन करते हुए गन्ध, पूष्पादि द्वारा उसकी पूजा करे । नैवेद्य अर्पित करते हुए वहाँ भी महोत्सव करना चाहिए । नृप ! जिस देवालय में उसकी प्रतिष्ठा न कर सके, वहाँ भी उस ऐश्वर्य इच्छुक यजमान को पूजा-सम्भार महान् ही करना चाहिए । राजेन्द्र ! चाँदों का छत्र, घंटा और ध्वजा आदि यथाशक्ति गुरु को अर्पित करते हुए दक्षिणा द्वारा ब्राह्मणों को सुसम्मानित कर विराजन करके और उस दिन दीन, अंधे, झूपण व्यक्तियों को अनिवार्य भोजन देते हुए मिन्न एवं स्वजन आदि बन्धुओं को भी भोजन कराये । इस भाँति इस विधान द्वारा श्रद्धा और संयमपूर्वक उस सार्वलौकिकी प्रतिष्ठा को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष-स्त्री कोई हो, उसने सच्चराचर तीनों लोक की स्थापना की इसमें संशय नहीं । युधिष्ठिर ! उस सत्पुत्रे अपने कुल का भी उद्घार किया है ऐसा जानना चाहिए । उस देवालय में वह पट जितने दिन वर्तमान रहता है, उतने समय तक उसकी अक्षय कीर्ति तीनों लोकों में विचरण करती है । दान द्वारा इस मर्त्यलोक में जितने दिन उसकी कीर्ति फूलती-फलती है, उतने सहस्र वर्ष वह स्वर्ग लोक में सुसम्मानित होता है और गन्धर्व गण उसके गुणगान करते हैं तथा अप्सरायें सुसेवा करती हैं । ३२-४७। चौदह इन्द्रों के समय तक सहर्ष स्वर्ग में सुखानुभव करने के उपरांत पुण्यक्षीण होने के नाते पुनः यहाँ धार्मिक राजा होता है, जो पुत्र-पौत्र समेत दीघायु, श्रीमान् और अति धार्मिक होता है । राजेन्द्र ! दश जन्म तक वह इसी भाँति सपरिवार सुखी जीवन व्यतीत करता है । सुना जाता है कि प्राचीन काल में रजि.नामक एक महाबलवान् राजा राज करता था, जो चक्रवर्ती, तीक्ष्ण बुद्धि, शत्रुजेता,

१. संस्थापयेत्यटम् । २. तस्य । ३. प्रतिसर्पति । ४. वर्षसहस्राणीत्यंग्रिमेणाप्यत्राप्याहृतेमान्वयः ।

मही येन पुरा दत्ता देवराजस्य संगरे । जित्वा दैत्यबलं सर्वं दत्तवांस्त्रिदिवं पुनः ॥५१
 महेन्द्राय महाभाग सर्वं निहतकंटकम् । स कदाचित्सभामध्ये यावदास्ते महीपतिः ॥५२
 तत्पत्तत्राजगामाथ पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः । शिष्यैः परिवृतः श्रीमान्वेदवेदांगपारगैः ॥५३
 दत्तार्थेस्तु तदा तेन उपविष्टो वरासने । शुशुभे परव्या लक्ष्म्या पितामह इवापरः ॥५४
 अथ तं पूजयित्वाद्वे मधुपर्केण पार्थिवः । प्रप्रच्छ विनयोपेतः कथामात्मोद्भवां नृपः ॥५५
 भगवन्केन दानेन तपसा नियमेन वा । श्रीरियं मम धर्मज्ञ तेजश्चाव्याहतं भुवि ॥५६
 बलं पुष्टिं धनं धान्यं पुत्रपौत्रं तथोत्तमम् । एतन्मे सर्वमाचक्षत् सर्वज्ञोऽसि द्विजोत्तम ॥५७

पुलस्त्य उवाच

शृणु राजन्कथामेताभात्मीयां सुग्नोहराम् । कथ्यमानां भया सम्यक्सप्तमे तव जन्मनि ॥५८
 कथेयमभिर्निर्वृत्ता शृणुव्वैश्वर्यवर्द्धिनीम् । आसीस्त्वं वैश्यजातीयो पुरा चैव नरोत्तम ॥५९
 बहुभृत्यपरीवारो धनधान्यसमन्वितः । धार्मिकः सत्यनिरतो वणिग्धर्दर्शतः सदा ॥६०
 तत्र त्वया श्रुता धर्मात्म्यानगतेन वै । दानाश्रया बहुविधा ब्रताति विविधानि च ॥६१
 प्रसंगेन कदाचिच्च व्रतिष्ठा भौवनी त्वया । श्रुता राजेन्द्र विधिवत्कृता बहुपुण्यदा ॥६२
 फलेन तेन जातोऽसि सप्त जन्मानि भूपतिः । कीर्तिस्ते प्रथिता लोके बलं च चापि महत्तव ॥६३
 अपराण्यपि जन्मानि सप्त राजा भविष्यसि । पश्चाद्योगिकुले भूत्वा निर्वाणं समवाप्यसि ॥६४

एवं संयमी था । उसने प्राचीन काल में पृथ्वी दान किया था और देवराज के संग्राम में दैत्य सेनाओं को पराजित कर देवेन्द्र! को निष्कण्टक स्वर्ग भी अर्पित किया था । महाभाग! एक बार सभा मध्य सिंहासन पर बैठे हुए राजा से सम्मुख ब्रह्मपुत्र पुलस्त्य महर्षि का आगमन हुआ, जो वेद-वेदाङ्ग के पारगामी शिष्यों से, सदैव सुशोभित रहते थे । राजा द्वारा छिपे गये उस अर्धादि को ग्रहण कर उस उत्तम आसन पर द्वासरे पितामह की भाँति भी सम्पन्न मुनि के सुशोभित होने पर स्वयं राजा ने मधुपर्क से उनकी पूजा की और अन्त में विनीत-विनम्र होकर अपने वैभव के विषय में उनसे पूँछा—भगवन्! किस दान, नियम, अथवा तप द्वारा मुझे इस प्रकार की थी, अव्याहत तेज, बल, पुष्टि, धन, धान्य, तथा उत्तम पुत्र-पौत्र की प्राप्ति हुई है । धर्मज्ञ, द्विजोत्तम! आप सर्वज्ञ हैं अतः इसे मुझे बताने की कृपा करें । ४८-५७

पुलस्त्य बोले—राजन! मैं तुम्हें इस आत्मीय एवं सुग्नोहर कथा का वर्णन सुना रहा हूँ, जो तुम्हारे इस सातवें जन्म में कथा के रूप में प्रकट और ऐश्वर्य बढ़ाने वाली है, सुनो! नरोत्तम! आज से पिछले सातवें जन्म में तुम काशी में उत्पन्न वैश्य कुल में महान् सेठ थे, अनेक सेवक परिवार से युक्त रहने पर भी तुम धार्मिक, सत्य प्रेमी रहते हुए अपने वैश्य (व्यापार) धर्म में सदैव लगे रहते थे । वहाँ तुमने अनेक धर्मस्थानों द्वारा धर्मों के अनेक रूप का ध्रवण किया, जिसमें अनेक भाँति के दान बहु भाँति के विविध व्रत बताये गये थे । उसी प्रसङ्ग में तुमने भुवनों की प्रतिष्ठा (पट-दान) भी सुनकर उसे सविधि सुसम्पन्न किया था, जो बहुत पुण्य प्रदान करती है । ५८-६२। राजेन्द्र! उसी के फलस्वरूप तुम सात जन्म तक राजा हुए, तुम्हारी कीर्ति लोकों में प्रत्यात हुई और तुम्हें महान् फल की प्राप्ति हुई है । इसीलिए अन्य सात जन्मों में भी राजा होकर राजसुखों का अनुभव कर अन्त में योगिकुल में उत्पन्न होने पर निर्वाण पद की प्राप्ति

एतते सर्वमात्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि । नारी वा पुरुषो वापि प्रतिष्ठां भौवनीं तु यः ॥६५
प्रकरोति विधानेन कृतकृत्यो भवेद्गुधः^१ । इत्युक्ता स मुनिस्तत्र राजानं शंसितव्रतः ॥६६
यथावदर्शनं तत्र सूर्यं वैश्वानरोपमः ॥६७

धर्मं विवर्द्धयति कीर्तिंशतानि धते कामं प्रसाधयति पायमपाकरोति ।

ख्याता मयेयमधुना तत्र दाननिष्ठातन्नास्तियन्नकुरुतेभुवनप्रतिष्ठा ॥६८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भुवनप्रतिष्ठावर्णनं नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९१

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतो दानविधिः सर्वः प्रसादाते रमाधव । नक्षत्रदानस्येदानीं दानकल्पं प्रचक्ष्व मे ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

अत्राप्युदाहरंतीमस्मितिहासं पुरातनम् । देवक्याश्चैव संवादं देवर्वेनरिदस्य च ॥२

करोगे । इस विषय का प्रश्न तुमने जो मुझसे पहले किया था, उसकी सविस्तार व्याख्या मैंने तुम्हें सुना दी है । इस भाँति भुवनप्रतिष्ठा (पट-दान) को सविधि सुसम्पन्न करने वाले पुरुष या स्त्री कृतकृत्य हो जाते हैं । राजा से ऐसा कहकर वेदानुगामी मुनि पुलस्त्य जो सूर्य, एवं अग्नि की भाँति तेजोमय दिखायी देते थे, उसी स्थान अन्तर्निहित हो गये । इस भाँति मैंने तुम्हें जो यह-दान प्रतिष्ठा (पट-दान) सुनाया है, सुसम्पन्न होने पर धर्म की वृद्धि करती है, सैकड़ों भाँति की कीर्ति फैलाती है, कामनाएँ सफल करती हैं, और पापों को नष्ट करती हैं और अन्य कोई ऐसा सुख नहीं है जिसे यह प्रदान नहीं कर सकती है । ६३-६८

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

भुवनप्रतिष्ठा-वर्णन नामक एक सौ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त । १९१

अध्याय १९२

नक्षत्रदान-विधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—रमाधव! आप की कृपा से मैंने समस्त दानों का विधान जान लिया है अतः इस समय मुझे नक्षत्र-दान का सविधान दान कल्प बतायें । १

श्रीकृष्ण बोले—इस विषय का तुम्हें एक प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ, जिसमें देवकी और देवर्षि

१. भूवि ।

द्वारकामनुसंप्राप्तं नारदं देवदर्शनम् । पप्रच्छेदं तथा प्रश्नं देवकी धर्मदर्शिनी ॥३
 तस्याः संपृच्छ्यमत्तानाया देवर्षिनारदस्ततः^१ । आचष्ट विधिवत्सर्वं यत्तच्छृणु विशांपते ॥४
 नक्षत्रयोगं वक्ष्यामि सर्वपातकनाशनम् । कृत्तिकामु महाभाग पायसेन ससर्पिषा ॥५
 सन्तर्प्य ब्राह्मणान्ताधूल्लोकान्प्राप्नोत्यनुत्तमान् । रोहिण्यां पाण्डवश्रेष्ठं मांसैरन्नेन सर्पिषा ॥६
 संतर्प्य ब्राह्मणान्ताधूल्लोकान्प्राप्नोत्यनुत्तमान् । पयोऽप्तदानं दातव्यमानृष्यार्थं द्विजातये ॥७
 दोऽन्तेन सवत्सां तु नरो नक्षत्रे सोमदैवते^२ । दत्त्वा दिव्यविमानस्थः स्वर्गं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥८
 आद्रायां कृशरां दत्त्वा तिलमिश्रां समाहितः । नरस्तरति दुर्गाणि सर्वाण्येव नरोत्तम ॥९
 पूपान्युनर्वसौ दत्त्वा धृतपूर्णान्सुपाचितान् । यशस्वी रूपसंपन्नः^३ सज्जनो जायते कुले ॥१०
 पुष्ये तु काञ्चनं दत्त्वा कृतं वाकुतमेव वा । अनालोकेषु लोकेषु सोमवत्स विराजते ॥११
 आश्लेषामु तथारौप्यं यः सुरूपं प्रयच्छति । सर्वभयविनिर्मुक्तः शास्त्रदानभिजायते ॥१२
 मध्यामु तिलपूर्णान्ति वर्धमानानि मानवः । प्रदाय पशुमांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजायते ॥१३
 फाल्गुनीपूर्वसमये वडवां द्विजपुंगवे । दत्त्वा पुष्यकृताल्लोकान्प्राप्नोति सुरसेवितान् ॥१४
 उत्तराफाल्गुनीयोगे दत्त्वा सौवर्णपञ्चजन्म । सूर्यलोकमवाप्नोति सर्वबाधाविवर्जितः ॥१५
 हस्ते तु हस्तिनं दत्त्वा काञ्चनं शक्तिः कृतम् । यात्यसौ शक्तसदनं वरवारणधूर्गतः ॥१६

नारद का संवाद हुआ है । एक बार द्वारकापुरी में देवर्षि नारद के आगमन होने पर उन देवदर्शन को देख धर्ममूर्ति देवकी ने यही उनसे पूछा था । विशांपते! देवकी के पूँछने पर देवर्षि नारद ने उसके उत्तर में उहैं जो कुछ बताया था उसे सविधि मैं तुहैं बता रहा हूँ, मुझो! समस्त पातकों को विनष्ट करने वाला वह नक्षत्र योग कह रहा हूँ । महाभाग! कृत्तिका नक्षत्र में धृत पूर्ण पायस (खीर) से साधुओं और ब्राह्मणों को तृप्त करने पर उत्तम लोक की प्राप्ति होती है । पाण्डव श्रेष्ठ! उसी भाँति रोहिणी नक्षत्र में मांस और धृत समेत अन्न द्वारा साधुओं वाह्यमण को तृप्त करने पर उत्तम लोक की प्राप्ति होती है । क्योंकि कृष्णरहित होने के लिए ब्राह्मणों को खीर भोजन से तृप्त ही करना चाहिए । २-७। मृगशिरा नक्षत्र में सवत्सा एवं दूध देने वाली गौ का दान करने से दिव्य विमान द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है । नरोत्तम! आद्रा नक्षत्र में तिल मिश्रित कृशरान् (खिचड़ी) दान करने से मनुष्यसमस्त कठिनाइयों को पार करता है । पुनर्वसु नक्षत्रमें धृत में भलीभाँति पकाये हुए पूजा के दान करने से अपने कुल में यशस्वी, रूपवान्, एवं सज्जन होता है । पुष्य नक्षत्र में केवल सुवर्ण दान से चाहे वह अन्य सुकृत किये हो, लोक-परलोक में चन्द्रमा की भाँति सुशोभित होता है । आश्लेषा नक्षत्र में चाँदी का दान करने पर सुरूप की प्राप्ति होती है और समस्त भय से मुक्त होकर वह शास्त्र मर्मज्ञ होता है । मध्य नक्षत्र में तिल पूर्ण वर्धमान का दान करने पर मनुष्य पशु-पुत्र की प्राप्ति करता है । पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में वडवा घोड़ी का दान ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने पर देवों से सुरेवित पुष्य लोक की प्राप्ति होती है । उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में सुवर्ण-कमल का दान करने पर वह समस्त बाधारहित होकर सूर्यलोक की प्राप्ति करता है । ८-१५। हस्त नक्षत्र में यथा शक्ति सुवर्ण निर्मित हाथी की प्रतिमा दान करने पर वह उत्तम कारण (गजराज) पर सुशोभित

१. तथा । २. मृगशीर्वे । ३. शर्कराम् ।

चित्रासु वृषभं दत्त्वा पुण्यानां पुण्यमुत्तमम् । चरत्यप्सरसां लोके भोदते नन्दने वने ॥१७
 स्वातीषु च धनं दत्त्वा यदभीष्टमिहात्मनः । प्राप्नोति च शुभांलोकानिह लोके महद्यशः ॥१८
 विशाखासु महाराज धुरंधरविभूषितम् । सोपस्करं च शक्टं सधान्यं वस्त्रसंवृतम् ॥१९
 दत्त्वा प्रीणाति स पितुः प्रेत्य चानन्त्यमशनुते । न च दुर्गाण्यवाप्नोति रौरवादीनि मानवः ॥२०
 इत्वा यथेष्टं विप्रेभ्यो गतिमिष्टां स ३गच्छति । कम्बलान्यन्यनुराधर्खे दत्त्वा प्रावरणानि च ॥२१
 स्वर्गे वर्षशतं राश्रमास्ते सुरगणैर्वृतः । कालशाकं च विप्रेभ्यो दत्त्वा मर्त्यः समूलकम् ॥२२
 ज्येष्ठानुज्येष्ठामेति शतिमिष्टां च गच्छति । मूले सूलफलं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ॥२३
 पितृन्मीणधते सर्वान्गातिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् । अथ पूर्वास्वषाढासु दधिपात्राणि भानवः ॥२४
 कुलवृत्तिरतोत्पन्ने ब्राह्मणे वेदपारगे । प्रदाय जायते प्रेत्य कुले च बहुभोगवान् ॥२५
 पुत्रपौत्रैः परिवृतः पशुमान्धनवांस्तथा । उदमर्थं सर्पिष्टं प्रभूतमधुकाणितम् ॥२६
 दत्त्वोत्तरास्वषाढासु सर्वान्कामानवाप्नुवात् । दुर्घात्वभिहितो भागे दत्त्वा धृतमधुप्लुतम् ॥२७
 धर्मनित्यो मनीषिभ्यः स्वर्गे वसति पुण्यभक्तः । श्रवणे पुस्तकं श्रेष्ठं प्रददातीह यो नरः ॥२८
 स्वेच्छया याति यानेन सर्वालोकान्नसंशयः । शोषुंगं च धनिष्ठासु दत्त्वा विप्राय मानवः ॥२९
 सर्वत्र मानमाप्नोति यत्र यत्रेह जायते । तथा शतभिषायोगे दत्त्वा सागरुचन्दनम् ॥३०

होकर इन्द्र लोक का प्रस्थान करता है । ८-१६। चित्रा नक्षत्र में वृषभ (बैल) का दान करने वाला अप्सराओं के उस परमोत्तम एवं पुण्यप्रद नन्दन वन में यथेच्छ विचरण करता है । स्वामी मैं अपने अभीष्ट धन का दान करने वाला इस लोक में महान् यशकी प्राप्ति पूर्वक शुभ-परलोक की प्राप्ति होती है । महाराज! विशाखा नक्षत्र में शक्ट (गाड़ी या रथ) का, जो धुरंधर वैलों से भूषित, सामग्रीसमेत धान्य और वस्त्रों से वृत हो, दान करने वाला मनुष्य पितृलोक में अनन्त काल की सुख प्राप्ति करता है । तथा उसे रौरव आदि नरक दुर्ग की यात्रा नहीं करनी पड़ती है । पुनः ज्येष्ठा नक्षत्र में ब्राह्मणों को उत्तम कम्बल अर्पित करने पर इष्ट गति को प्राप्ति होती है । ज्येष्ठा नक्षत्र में मूल समेत कालशाक का दान ब्राह्मणों को अर्पित करने पर स्वर्ग में सैकड़ों वर्षों तक देवों समेत सुखानुभव पूर्वक श्रेष्ठता और अभीष्ट गति की प्राप्ति होती है । मूल नक्षत्र में मूलफल ब्राह्मणों को अर्पित करने पर वह पितरों की तृप्ति पूर्वक उत्तम गति प्राप्त करता है । १७-२३। पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में दधिपूर्ण पात्र किसी कुलीन एवं उत्तम जीविका वाले के मर्मज्ञ ब्राह्मण को अर्पित करने पर वह मनुष्य उत्तम कुल में जन्म ग्रहण कर बहुभोगी होता है । और पुत्र-पौत्र समेत पशु एवं धन पूर्ण होता है । उत्तराषाढ़ नक्षत्र में धृत मिश्रित अन्न का दान करने वाला समस्त कामनाएँ सफल करता हूँ । अभिजित नक्षत्र में धृत-मधु समेत दुर्घ मनीषियों को अर्पित करने पर वह पुण्यात्मा स्वर्ग में निवास करता है । थ्रवण नक्षत्र में श्रेष्ठ पुस्तक का दान करने वाला यथेच्छ मान द्वारा समस्त लोकों की प्राप्ति करता है इससे संशय नहीं । धनिष्ठा नक्षत्र में चार बैल, गौ ब्राह्मणों को अर्पित करने पर सभी स्थान वह सुसम्मानित होता है । २४-२९३। शतभिषा नक्षत्र में अग्रह समेत चन्दन का दान

प्राप्नोत्यप्सरसां लोके प्रेत्य गन्धाश्च शोभनान् । पूर्वभाद्रपदयोगे राजमाषान्प्रदाययेत् ॥३१
 सर्वभक्षफलोपेतः स वै प्रेत्य सुखी भवेत् । रत्नमुत्तरयोगे तु सुवस्त्रं यः प्रयच्छति ॥३२
 पितृन्मीणाति सकलान्प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते । कांस्योपदोहनां धेनुं रेवत्यां यः प्रयच्छति ॥३३
 स प्रेत्य कामानादाय दातारमुपगच्छति । रथमध्वसमायुक्तं दत्त्वा श्विन्यां नरोत्तम ॥३४
 हस्त्यश्वरत्नम्पूर्णं वर्चस्वी जायते कुले । भरणीषु द्विजातिभ्य तिलधेनुं प्रदाय दै ॥३५
 गावः प्रभूताः प्राप्नोति नरः प्रेत्य यशस्तथा । इत्येष दक्षिणोद्देशः प्रोक्तो नक्षत्रयोगतः ॥३६
 देवस्यै नारदेनैव नया च कथितस्तव । सर्वपापप्रशमनः सर्वोपद्रदनाशनः ॥३७
 न चात्र कालनियमो नक्षत्रप्रकमस्तथा । वित्तं श्रद्धा च राजेन्द्र कारणं चात्र कथ्यते ॥३८
 यद्यच्च ते भगवता कमलोद्भवस्य पुत्रेण दानमुदितं प्रसमीक्ष्य वेदान् ।
 सद्योऽ ददाति विभवे सति साधुवृत्ते किं तेन पार्थ न कृतं भवतीह लोके ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 नक्षत्रदानविधिवर्णनं नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९२

करने वाला अप्सराओं के लोक में उत्तम गंध की प्राप्ति करता है । पूर्वभाद्रपद नक्षत्र में राजमाष (उरद) का दान करने वाला समस्त भक्ष्य समेत सर्वा सुख प्राप्त करता है । उत्तरापादा नक्षत्र में रत्न भूषित वस्त्र का दान करने वाला समस्त पितरों को तृप्त करते हुए सर्वां में अनन्त सुख की प्राप्ति करता है । रेवती नक्षत्र में कांसे की दोहनी मुक्त धेनु का दान करने वाला मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं को सफल करता है । नरोत्तम! अश्विनी नक्षत्र में घोड़े जुते हुए गाय । रथ का दान करने वाला हाथी घोड़े और रथ उस उत्तम कुल में उत्पन्न होकर तेजस्वी होता है । उसी प्रकार भरणी नक्षत्र में ब्राह्मणों को तिल धेनु प्रदान वरने पर मनुष्य को प्रभूत गौओं की प्राप्तिपूर्वक यश की प्राप्ति होती है । इस दक्षिणादान के उद्देश्य से नक्षत्र योग की व्याख्या मैं तुम्हें सुना दिया, जो नारद ने देवकी से कहा था । वह समस्त पापों के शमन पूर्वक सम्पूर्ण उपद्रवों का विनाश करता है । राजेन्द्र! इस दान में काल नियम और नक्षत्रों का क्रम बारण नहीं है रिक्त वित्त और श्रद्धा कारण है । पार्थ! इस प्रकार उत्तम वृत्ति द्वारा उपार्जित धन के रहते इस दान को, जो वेदों को भलीभाँति देख कर ब्रह्म पुत्र भगवान् नारद ने बताया है, सुसम्पन्न करने वाला पुरुष इस लोक में कौन सुकृत नहीं सम्पन्न किया । अर्थात् उसने सभी सुकृत सम्पन्न कर लिया है । ३०-३९।

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
 नक्षत्रदानविधि वर्णन नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय समाप्त । १९२।

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

तिथिदानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तिथिदानमिदानीं ते कथयति मि युधिष्ठिर । सर्वपापप्रशमनं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥१
मानसं वाचिकं चापि कर्मजं यदग्नं भवेत् । सर्वं प्रशममायाति दानेनानेन पाण्डव ॥२
श्रावणे कार्तिके चैत्रे^३ वैशाखे फाल्गुने तथा । स्तिपक्षात्प्रभृत्येव दातव्यं पुण्यवद्धनम् ॥३
वित्तं श्रद्धासुसम्पन्नं पात्रप्राप्तिस्तथैव च । दानकालः सदैवेह कथितस्तत्त्वदर्शिभिः ॥४
तीर्थे देवालये^४ गोष्ठे गृहे वानियतात्मवान्^५ । यद्दाति नरथेष्ठस्तदानंत्याय कल्पते ॥५
प्रतिपत्सु द्विजान्यूज्यान्पूजयित्वा प्रजापतिम् । सौवर्णमरविन्दं च कारयित्वाष्टपत्रकम् ॥६
कृत्वा चौदुम्बरे पात्रे सुगन्धघृतपूरिते । पुष्पैर्धूपैः पूजयित्वा विप्राय प्रतिपादयेत् ॥७
अनेन विधिना दत्त्वा कमलं कमलालयम् । ईप्सितांलभते कामान्निष्कामो ब्रह्मसात्म्यताम्^६ ॥८
वहिं पूज्य द्वितीयायां भूर्भुवःस्वरिति क्रमात् । तिलाज्येन शतं हुत्वा दत्त्वा पूर्णाहुतिं ततः ॥९
वैश्वानरं तु सौवर्णं स्थापयेत्ताम्रभाजने । गुडाज्यपूरिते राजंस्तोयपूर्णद्घटोपरि ॥१०

अध्याय १९३

तिथिदानवर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! इस समय मैं तुम्हें तिथि दान का विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापों के शमन पूर्वक सम्पूर्ण विद्वानों का विनाश करता है। पाण्डव! इस दान द्वारा मानसिक, वाचिक और कायिक (शरीर जन्य) इन समस्त पापों का समूल नाश होता है। श्रावण, कार्तिक, चैत, वैशाख एवं फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में पट पुण्य-वद्धन दान आरम्भ करना चाहिए। वित्त, श्रद्धा, सम्पत्ति की प्राप्ति और दान-काल आदि सभी वस्तुएँ इस दान में तत्त्वदर्शियों ने सुस्पष्ट बता दिया है। किसी तीर्थ, देवालय, गोशाला, अथवा गृह में संयम पूर्वक दान करने वाला मनुष्य अनन्त सुख की प्राप्ति करता है। १-५। प्रतिपदा के दिन पूज्य ब्राह्मणों और प्रजापतियों के पूजनपूर्वक अष्ट दल वाला सुवर्ण निर्मित कमल सुगन्ध एवं घृतपूर्ण किसी गूलर के पात्र में स्थापित कर पुष्प-धूप आदि से पूजित कर किसी ब्रह्मण थेष्ठ को अर्पित करना चाहिए। क्योंकि इस विधान द्वारा कमला का निवास स्थान भूत कमल का दान करने पर उसे समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक निष्काम ब्रह्म का सायुज्यमोक्ष प्राप्त होता है। द्वितीया के दिन अग्नि पूजन पूर्वक भूर्भुवस्वः के क्रमानुसार तिल-घृत की सौ आहुति प्रदान कर पूर्ण-हुति प्रदान करे। अनन्तर सुवर्ण निर्मित वैश्वानर (अग्नि) की प्रतिमा गुड-घृत पूर्ण ताँबे के पात्र में

-
१. मासे । २. चायतने । ३. नियतात्मना । ४. यो ददाति नरथेष्ठ दानं च न्यायकल्पितम् ।
 ५. ब्रह्म शाश्वतम् ।

पूजयित्वा वस्त्रमाल्यैर्भक्ष्य भोज्यैरनेकधा । ततस्तं ब्राह्मणे दद्याद्विलिम्भे प्रीयतामिति ॥११
 यावज्जीवकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । मृतो वह्निपुरं याति प्राहेदं नारदो मुनिः ॥१२
 तृतीयायां महाराज राधां स्वर्णमयीं शुभाम् । स्थापयित्वा ताम्रपात्रे लवणोपरि विन्यसेत् ॥१३
 जीरकं कटुकं चैव गुडं पार्वेषु दापयेत् । रक्तदस्त्रयुगच्छब्दां कुकुनेन विभूषिताम् ॥१४
 पुष्पधूपैः सनैवेदोः पूजयित्वा द्विजातये । दत्त्वा यत्कलमाप्नोति पार्थं तत्केन वर्ण्यते ॥१५
 प्रसादाय यत्र सौवर्णा नद्यः पायसकर्दमाः । गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र ते यांति मानवाः ॥१६
 त्वर्गादिहैत्यं संसारे सरूपः शुभागो भवेत् । दाता भोक्ता बहुधनः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥१७
 नारी वा तदगुणैर्युक्ता भवतीह न संशयः । चतुर्थ्या वारणं हैमं पलाद्वार्द्धैः सुशोभनम् ॥१८
 कारायित्वांकुशयुतं तिलद्रोणोपरि न्यसेत् । वस्त्रैः पुष्पैः पूजयित्वा नैवेद्यं विनिवेद्य च ॥१९
 ततस्तु ब्राह्मणे दद्याद्गणेशः प्रीयतामिति । कार्यारंभेषु सर्वेषु तस्य विधनं न जायते ॥२०
 वारणाः सप्त जन्मानि भवन्ति मदविहृताः । वारणेन्द्रसमारुद्धस्त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥२१
 पञ्चम्यां पन्नगं चैव स्वर्णनैकेन कारयेत् । क्षीराज्यपत्रमध्यस्थं पूजयित्वा प्रदापयेत् ॥२२
 द्विं संपूज्य वासेषिः प्रणिपत्य क्षमापयेत् । इह लोके परे चैव दानमेतत्सुखावहम् ॥२३

जलपूर्ण कलश के ऊपर प्रतिष्ठित कर वस्त्र, माला एवं अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य द्वारा उनकी सविधि अर्चा के ऊपरान्त अग्नि मुझ पर प्रसन्न हों, कहकर ब्राह्मण को अर्पित करे । उसके परिणाम स्वरूप वह मनुष्य आजीवन पाप मुक्त होता है इसमें संशय नहीं, तथा निधन होने पर अग्नि लोक में पहुँचता है ऐसा नारद मुनि का कथन है । ६-१२। महाराज! तृतीया के दिन राधा की स्वर्णमयी शुभ प्रतिमा ताँबे पात्र में लवण के ऊपर स्थापित करते हुए उसके पार्थ्य भाग में जीरा, कटुक और गुड़ की टेरी रख कर दो रक्त वस्त्र से आच्छादन और कुंकुम से विभूषित वह प्रतिमा पुष्प, धूप तथा नैवेद्य, आदि द्वारा पूजन करके किसी ब्राह्मण को अर्पित करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है उसका कौन वर्णन कर सकता है! पार्थ! जिस प्रदेश (लोक) में सुवर्णमय प्रसाद (कोष्ठ), पायस (खीर) कीचड़ वाली नदियाँ, और गन्धर्वां एवं अप्सराओं का सतत निवास रहता है वहाँ वह मनुष्य सदैव सुखानुभव करता है स्वर्ग में कदाचित् यहाँ (मर्त्यलोक) में आने पर मुरूप, सुभग, दाता, भोक्ता, बहुधन और पुत्र-पौत्र से युक्त रहता है तथा (दान करने वाली) स्त्री भी उसी प्रकार समस्त गुणों से युक्त होती है । चतुर्थी के दिन एक पल से अधिक सुवर्ण का सुशोभन गज अंकुश समेत निर्मित कर एक द्रोणि तिल के ऊपर स्थापित करते हुए वस्त्र, पुष्प द्वारा उसकी अर्चा करे । नैवेद्य अर्पित करने के अनन्तर 'गणेश देव प्रसन्न हो' कह कर सादर ब्राह्मण को अर्पित करने वाले के सभी कार्यों में कभी विघ्न नहीं होता है । उसे सात जन्मों तक मदमत्त गजराज (सवारी के लिए) मिलते रहते हैं, और उन्हीं मदविहृत गजराजों पर आरु होकर वह त्रैलोक्य जेता होता है । १३-२१। पञ्चमी के दिन एक तोले सुवर्ण द्वारा पन्नग (सूर्य) की प्रतिमा बना कर क्षीर और धूत पूर्ण पात्र के मध्य में स्थापित पूजित कर किसी ब्राह्मण को अर्पित करे । वस्त्रों से उस ब्राह्मण की अर्चा करके नमस्कार पूर्वक क्षमा याचना करे । क्योंकि यह दान लोक-परलोक सभी स्थान में सुख प्रदान करता है ।

१. बहुशो युक्ता । २. पलाद्वार्द्धम् । ३. पूज्य विप्राय दापयेत् ।

नागोपद्रवविद्रावि सर्वदुष्टानिबर्हणम् । प्रायश्चित्तं तथा प्रोक्तं नागदष्टस्य शंभुना !!२४
 षष्ठ्यचां शक्तिसमोपेतं कुमारं शिखिवाहनम् । कारयित्वा यथाशक्त्या हेममालाविभूषितम् !!२५
 तण्डुलेनाथं शिखरे वासोभिः पूज्य शक्तिः । षष्ठ्यचां स्कन्दं यथाशक्ति कृत्वा रक्तं हिरण्यम् !!२६
 पूजयित्वा गन्धपुष्पधूरैनैवेद्यतस्था । नमस्कृत्य ततो द्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने !!२७
 इह भूतिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गं महीयते । शूद्रो ब्राह्मणामेति ब्राह्मणो ब्रह्मलोकताम् !!२८
 सप्तम्यां भास्करं पूज्य ब्राह्मणानश्वमुत्तमम् । द्यादलङ्कृतग्रीनं सपर्याणं सदक्षिणम् !!२९
 सूर्यलोकमवाप्नोति सूर्येण सह मोदते । गन्धर्वास्तुष्टिमायान्ति दत्तेऽभ्वे समलङ्कृते !!३०
 अष्टम्यां वृषभं श्वेतमव्यंगांगं धुरंधरम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं घण्टाभरणभूषितम् !!३१
 द्यात्प्रणम्य दिप्राय प्रीयतां वृषभध्वजः । प्रदक्षिणं ततः कृत्वा आद्वारान्तमनुब्रजेत् !!३२
 दानेनानेन नृपते शिवलोको न दुर्लभः । वृषस्कंधे प्रतिष्ठति भुवनानि चतुर्दश !!३३
 तस्माद्वषभदानेन दत्ता भवति भारती । नवम्यां कांचनं सिंहं कारयित्वा स्वशक्तिः !!३४
 मुक्ताफलाष्टकयुतं नीलवस्त्रावगुणितम् । द्यादेवीमनुस्मृत्य दुष्टदैत्यनिर्दृष्टीन् !!३५
 द्विजात्प्रवरायेत्थं सर्वान्कामान्समश्नुते । कान्तारवनदुर्गेषु चौरव्याला^१ कुले पथि !!३६
 हिंसकास्तं न हिंसति दानस्यास्य प्रभादतः । मृतो देवोपुरं याति पूज्यमानः सुरासुरैः !!३७

शंकरजी ने नाग के काटे पुरुष के लिए प्रायश्चित्त भी बताया है, जो नाग समस्त उपद्रवों का दमन करने वाला एवं समस्त दुष्टों का विनाश करता है । षष्ठी के दिन शक्ति एवं मयूर वाहन समेत कुमार (कातिकेय) की सुर्वण प्रतिमा का निर्माण कर यथाशक्ति होम (सुर्वण) माला से विभूषित करे । २२-२५। अनन्तर चावल के (पर्वत) शिखर पर स्थापित कर यथाशक्ति गंध, पुष्प वस्त्र जिसे पूजित कर सिकी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करे । उससे उसे इस लोक में अत्यन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति पूर्वक सर्वग सम्मान प्राप्त होता है और ब्राह्मण होने से ब्रह्म सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है । सप्तमी के दिन भास्कर, ब्राह्मण और सुर्वण निर्मित अश्व के जिसकी ग्रीवा अलंकृत की गयी हो, पूजनोपरांत दक्षिणा, समेत उसे ब्राह्मण को अर्पित करने पर सूर्य लोक की प्राप्ति होती है और वह सूर्य के साथ सदैव आनन्दानुभव करता है । समलंकृत अश्व के दान करने से गन्धर्व गण भी सन्तुष्ट होते हैं । २६-२०। अष्टमी के दिन श्वेत वर्ण के अव्यंग, धुरंधर, चार श्वेत वस्त्रों से आच्छन्न, और घटा भरण-भूषित वृषभ (बैल) का 'वृषभ ध्वज (शिव) प्रसन्न हों, कहते हुए नमस्कार पूर्वक ब्राह्मण को दान प्रदक्षिणा के उपरांत उसका द्वार तक अनुगमन भी करे । नृपते! इस दान द्वारा शिवलोक की प्राप्ति दुर्लभ नहीं होती है । क्योंकि वृषभों के कन्धे पर चौदहों भुवन प्रतिष्ठित रहते हैं । इसलिए वृषभ दान करने से उसका भारती (विद्या) दान भी सम्पन्न हो जाता है । नवमी के दिन यथा शक्ति सुर्वण सिंह का, दान जो आठमोतिओं और नील वस्त्र से आच्छन्न रहता है, दुष्टों-दैत्यों को छलने वाली देवी जी के स्मरण पूर्वक किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने पर सभी कामनाएँ सफल होती हैं । इस दान के प्रभाव से वनों के उस दुर्गम मार्ग में रहने वाले चौर एवं सर्प आदि हिंसक जीव उसके ऊपर प्रहार नहीं करते हैं । अन्त में निधन होने पर देवों अमुरों से पूजित

१. धोरव्यालाकुले पथि ।

पुण्यक्षयादिहास्येत्य राजा भवति धार्मिकः । दशन्यां नृपशार्दूल दशाशाः स्वर्णनिर्मिताः ॥३८
 लवणे च गुडे क्षीरे निष्पादेषु तिलेषु च । गव्यत्रये तन्दुलेषु माषाणामुपरि स्थिताः ॥३९
 सम्पूज्य वस्त्रपुष्पाद्यैर्द्विजाय प्रतिपादयेत् । अनेन विधिना यस्तु पुमान्स्त्री वाथ वा पुनः ॥४०
 निर्दोषिति राजेन्द्र तस्य पुण्यफलं शृणु । इह लोके भूपतिः स्यात्प्रेत्य स्वर्णं महीयते ॥४१
 स्कलास्त्य सर्वाशयाः काश्चिद्भूमनसेच्छिताः । ततः स्वर्गादिहाभ्येत्य कुले महति जायते ॥४२
 एकादश्यां गहत्मन्तं कारथित्वा हिरण्यम् ! यथाशक्त्या तान्नपात्रे वृत्तस्योग्निर्पूजितम्^१ ॥४३
 पञ्चाग्न्यभिरते विप्रे पुराणज्ञे विशेषतः । दत्त्वा किं बहुनोक्तेन विष्णुलोके महीयते ॥४४
 गां वृषं महिषीं हेम सप्तधात्यान्यजाविकम् । वडवां गुडरसान्सर्वास्तथा बहुफलद्रुमान् ॥४५
 पुष्पाणि च विचित्राणि गन्धांस्त्वोऽच्चावचान्बहून् । यथाशक्त्या मेलगिन्द्रा वस्त्रैराच्छादयेत्वैः ॥४६
 द्वादश्यां द्वादशैतानि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । एकस्य वा महाराज यत्कलं तत्त्विशामय ॥४७
 इह कीर्ति परां प्राण्य भुदत्वा भोगान्यथेष्पितान् । ततो विष्णुपुरं गतिं सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥४८
 कर्मक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । बज्रयाजी दानपतिजायेच्च शरदां शतम् ॥४९
 स्नापयेद्ब्राह्मणांश्चात्र त्रयोदश्यां त्रयोदश । तानाच्छाद्य^२ नवैर्दस्त्रैर्गन्धपुण्डौरथार्चयेत् ॥५०

होकर वह देवी पुर जाता है पुनः कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस लोक में धार्मिक राजा होता है । नृप शार्दूल ! दशभी के दिन सुर्वर्ण निर्मित दशदिशाओं की प्रतिमा लवण, गुड़, क्षीर, निष्पाव, तिल, दूध, दही, घी समेत चालों और उरदो की राशि पर स्थापित एवं वस्त्र पुष्पादि से पूजित कर ब्राह्मण को अर्पित करे । राजेन्द्र ! सविधान द्वारा इस दान को सुसम्पन्न करो वाले पुरुष अथवा स्त्री को जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! इस लोक में राजा होकर सुखानुभव के उपरांत अन्त में निधन होने पर स्वर्ग में सम्भानित होता है । और उसके अधीन समस्त दिशाएँ रहती हैं अतः मन इच्छित दिशा में स्वर्ग से आकर महान् कुल में जन्म ग्रहण करता है । ३१-४२। एकादशी के दिन गहड़ की सुवर्ण-प्रतिमा ताँबे के पात्र में धृत के ऊपर स्थापित करके पूजनोपरांत पंचाग्नि तपस्त्री एवं पुराण मर्मज्ञ किसी ब्राह्मण को अर्पित करने पर उसे विष्णु लोक में सुसम्मान प्राप्त होता है और अधिक क्या कहा जाय ! । द्वादशी के दिन द्वादश ब्राह्मणों को गौ, वृष (वैल) महिषीं (भैस), सुवर्ण, सदाधान्य, भेण, बकरी, वडवा, (घोड़ी), गुड़, फले फूले वृक्ष, विचित्र भाँतिके पुष्प और गंध, सभी वस्तुओं एक में सम्मिलित कर यथाशक्ति वस्त्रों से आच्छादन करते हुए अर्पित करें अथवा एक ही ब्राह्मण को भी वह सब प्रदान कर सकता है । महाराज ! उसके दान करते का जो फल प्राप्त होता है, उसे बता रहा हूँ, सुनो ! इस लोक में परमोत्तम यश की प्राप्तिपूर्वक यथेच्छ भोगों के उपभोग करने के उपरांत विष्णुलोक में जाकर अप्सराओं से सुसेवित होता है । कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस लोक में धार्मिक राजा होकर यज्ञों को सुसम्पन्न करता रहता है, दानपति कहलाता है एवं सैकड़ों वर्ष का जीवन प्राप्त करता है । ४३-४९। त्रयोदशी के दिन तेरह ब्राह्मणों को स्नान कराकर नवीन वस्त्रों से आच्छादन करते हुए गन्ध पुण्य

१. पूरितम् । २. आवाह्य ।

भोजयीत सुमिष्टनं दक्षिणां विनिवेदयेत् । यथाशक्त्या हेमखण्डाधर्मात्मा प्रीयतमिति ॥५१
 धर्मराजाय कालाय चित्रगुप्ताय दण्डने ! मृत्यवे क्षयरूपाय अन्तकाय यमाय च ॥५२
 प्रेतनाथाय रौद्राय तथा वैवस्वताय च । महिषस्थाय देवाय नामानीह ऋयोदश ॥५३
 उच्चार्य श्रद्धया युक्तः प्रणिपत्य विसर्जयेत् । यः करोति महाराज पूजामेतां मनोरमाम् ॥५४
 यमाय स मुखं मर्त्ये स्थित्वा व्याधिविवर्जितः । यममार्गं गतः पश्चाद्बुखं नाम्रोत्यसौ पुमान् ॥५५
 न पश्यति प्रेतमुखं पितॄलोकं स गच्छति । पुण्यक्षयादिहास्येत्य समुखी नीरुजीँ भवेत् ॥५६
 महिषं सुशुभं कुञ्चं चतुर्दश्यां प्योभृतम् । तं कर्षकेण संयुक्तं हैम्नः सद्वस्त्रसंयुतम् ॥५७
 घण्टानरणशोभादचं वृषभेण समन्वितम् । यो दद्याच्छिवभक्ताय ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥५८
 वृषं दत्त्वा नरश्रेष्ठ शिवलोके महीयते । तत्र स्थित्वा चिरं कालं क्रमादेत्य महीतलम् ॥५९
 आरोग्यधनसंयुक्ते कुले महति जायते । सर्वकामसमृद्धर्यथं यावज्जन्मशतत्रयम् ॥६०
 पौरीमास्यां वृषोत्सर्गं कारवित्वा विधानतः । चंद्रं रजतनिष्पत्नं फलेनैकेन शोभनन् ॥६१
 पूजयेद्गन्धकुमुमैनैवेद्यं विनिवेद्य च । दद्याद्विग्राय ^३सङ्कूल्यं वासोलंकारभूषणैः ॥६२
 मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तन्त्रिबोधं यथोदितम् । क्षीरोदार्णवसंभूतत्रैलोक्यांगणदीपक ॥६३
 उमापतेः शिरोरत्नशिवं यच्छ नमोनमः । दानेनानेन नृपते भ्राजते चंद्रवद्विः ॥६४

द्वारा उनकी अर्चा करने के उपरांत उन्हें मिष्ठान्न भोजन कराये और यथाशक्ति सुवर्णखण्ड का दान करे । उस समय उसे 'धर्मात्मा प्रसन्न हों, कहकर दान, अर्पित करना चाहिए । धर्मराज, काल, चित्र गुप्त, दण्डी, मृत्यु, क्षयरूप, अंतक और यम, प्रेतनाथ, रुद्र, वैवस्वत, महिषस्य और देव, इन तेरह नामों को उच्चारण करते हुए श्रद्धाभक्ति समेत नमस्कारपूर्वक विसर्जन करे । महाराज! यम के निभित इस मनोरम पूजा को सुसम्पन्न करते वाला मनुष्य इस मर्त्यलोक में व्याधिरहित सुखी जीवन व्यतीत करता है और यम के मार्ग से जाते हुए उसे वभी किसी दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है । ५०-५५। पितॄलोक जाते हुए उसे कभी प्रेतमुख नहीं दिलायी देते हैं । कदाचित् पुण्यक्षीण होने पर वह यहाँ आकर सुखी और नीरोग जीवन व्यतीत करता है । ५६। चतुर्दशी के दिन महिष, सुशोभन जलपूर्ण कलश, सुवर्ण कर्षक संयुक्त, उत्तम वस्त्र से आच्छन्न, घंटाभरण से भूषित और वृषभ (वैल) समेत उसे किसी शिवभक्त एवं कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करे । नरश्रेष्ठ! उस वृष (वैल) के दान करने से वह शिव-लोक में सुसम्मानित होता है और वहाँ चिरकाल तक सुखानुभव करने के अनन्तर यहाँ भूतल पर आरोग्य धनपूर्ण एवं महान् कुल में उत्पन्न होता है, इस भाँति वह तीन सौ जन्म तक अपनी समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक सुसमृद्ध सुख का अनुभव करता है । उसी प्रकार पूर्णिमा के दिन सविधान वृषोत्सर्ग समाप्त करते हुए जिसमें चन्द्रमा की चाँदी की प्रतिमा एक फल के समेत स्थापित किया गया हो, गंध पुष्प और नैवेद्य द्वारा उसकी अर्चा करे । अनन्तर वस्त्राभूषण से अलंकृत वह रजतचन्द्र ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । राजेन्द्र! उस समय उसे इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—क्षीरसागर से उत्पन्न एवं तीनों लोक के आङ्ग्ण द्वीप! तुम उमापति शिव के शिरसु शोभित करने वाले रत्न हो, मुझे कल्याण प्रदान

अप्सरोभिः परिवृतो यावदाभूतसंप्लवम् ॥६५

दानान्त्यभूनि विधिवत्प्रयत्क्रमेण यच्छंति ये द्विजवराय विशुद्धसत्त्वाः ।

ते बह्यविष्णुभुवनेषु सुखं विहृत्य यांत्येकतां सह शिवेन न संशयो मे ॥६६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वी श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंदादे

तिथिदानवर्णनं नाम त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९३

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वराहदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

आदिवाराहदानं ते कथयामि युधिष्ठिर । धरण्यै यत्पुरा प्रोक्तं वराहवपुषा मया ॥१
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वदानोत्तमोत्तमम् । गहापापादिदोषेण यूजितं धर्मसत्तमैः ॥२
देयं संक्रमणे भानोर्ग्रहणे द्वादशीष्वय । यज्ञोत्सवाविवाहेषु दुःस्वप्नादभुतदर्शने ॥३
यदा च जायते दित्तं चित्तं श्रद्धासमन्विताऽप्य । तदैवदानकालः स्यादधुवं जीवितं यतः ॥४
कुरुक्षेत्रादितीर्थेषु गंगाद्यासु नदीषु च । पुरेषु^१ च पवित्रेषु अरण्येषु वनेषु च ॥५
गोष्ठे देवालये वापि रथे वा स्वगृहांगणे । देयं पुराणविधिना ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥६

करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । नृपते! इस विधान द्वारा वह मनुष्य स्वर्ग में महाप्रलय पर्यन्त अप्सराओं से सुसेवित होते हुए चन्द्रमा की भाँति सुशोभित रहता है । इस प्रकार सविधान यह दान ब्राह्मण को अर्पित करने वाला सहदय वह ग्राणी ब्रह्मा और विष्णु के लोकों में सुखविहार करने के उपरांत शिव का सायुज्यनोक्त प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं । ५७-६६

श्री भविष्यमहापुराण में उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

तिथिदानवर्णन नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त । १९३ ।

अध्याय १९४

वराहदान विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! मैं तुम्हें आदिवराह दान का विधान बता रहा हूँ, जिसे मैंने पहले समय वराहावतार धारण कर पृथिवी को बताया था । यह दान पुण्य, पवित्र, आयु की वृद्धि करने वाला, समस्त दानोंमें उत्तम, एवं महापाप आदि महान् दोषोंका शमन करता है और थेष्ठ धार्मिकोंद्वारा पूजित है। सूर्य की संक्रान्ति, ग्रहण द्वादशी, यज्ञ, विवाहादि उत्सव, दुःख में अद्वृत दर्शन और जिस समय अधिक वित्त की प्राप्ति हो तथा चित्त श्रद्धालु हो वही इस नश्वर जीवन में दान काल समझना चाहिए । कुरुक्षेत्र आदि तीर्थ, गङ्गा आदि नदी, पवित्र नगर, असंख्य गोशालाएँ, देवालय, रथ या अपने गृह के प्राङ्गण में यह

१. कुशरेषु ।

कुशैरास्तीर्थं तां पार्थं प्रणवाश्वरमन्त्रितेः । उपरिष्ठात्तिलैस्तेषां वराहं परिकल्पयेत् ॥७
 द्वौैश्चतुर्भिः सम्पूर्णं तदर्थेनाथवा पुनः । आढकेनाथं कुर्वते वित्तशाठयं न कारयेत् ॥८
 सुवर्णेन मुखज्ञार्थं भुजौ चकगदान्वितौ । राजीं कारयेद्विष्टां पद्मरागविभूषिताम् ॥९
 शह्वं च स्थापयेत्याश्वं वनमालां हिरण्यमयीम् । पुर्वैर्वा कारयेद्विष्टान्पादौ रूप्यमयौ तथा ॥१०
 दंष्टाग्रलग्नवसुधां सौवर्णीं कारयेच्छुभाम् । सर्वधान्यरसोपेतां वस्त्रालङ्घकुर्तव्यहाम् ॥११
 प्रच्छाद्य वस्त्रैदंवेशं वराहं सर्वकामदम् । रोमराजिं कुशैः दृत्वा गंधपुष्पैरथार्चयेत् ॥१२
 नदग्रहमुखः कार्यो होमश्चात्र तिलैः स्मृतः । एवं संस्थाप्य विधिवत्तः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥१३
 वराहेश प्रदुष्टानि सर्वपापफलानि च । मर्दमर्द्दं महादंष्ट्रं भास्वत्कनककुण्डल ॥१४
 शह्वचक्रासिहस्ताय हिरण्याक्षांतकाय च । दंष्ट्रोद्धतधरामुते त्रयीमूर्तिस्तते नमः ॥१५
 इत्युच्चार्थं नमस्कृत्य प्रदक्षिणमनुव्रजेत् । ततस्तं ब्राह्मणे दद्याद्वस्त्रालङ्घकारभूषितम् ॥१६
 परिग्रहस्तु तस्योक्तः पादयोः परमर्थिभिः । अनेन विधिनादत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥१७
 एवं दत्त्वा महीनाथं वराहं सर्वकामदम् । यत्कलं समवाप्नोति पार्थं तत्केन वर्ष्यते ॥१८
 सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वकल्पेषु यत्कलम् । तत्कलं समवाप्नोति दत्त्वा देवं जनार्दनम् ॥१९
 यथा शक्त्या समुद्धता वराहेण वसुन्धरा । यथा कुलं समुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥२०

दान पुराणों के विधान द्वारा किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए । १-६। पार्थ! कुशास्तरण करके तिलराशि के ऊपर ओंकार समेत मंत्रोच्चारण करते हुए वराहमूर्ति की कल्पना करनी चाहिए, जो सम्पूर्ण चार द्वेष, तदर्थ, अथवा एक अद्वैया (सेर) का निर्मित रहता है । उस समय कृपणता करना अनुचित कहा गया है । इस भाँति उनकी रचना में सुवर्ण का मुख, चक्र गदा-भूषित हाथ, चाँदी के पद्मरागमणि भूषित दाँत, तथा पार्थ भाग में शंख, हिरण्यमयी वनमाला स्थापित करते हुए पुष्पों अथवा चाँदी के द्वारा चरण की रचना करनी चाहिए । दाँत में लगी हुई सुवर्ण की शुभ पृथिवी, और समस्त धान्यों के रस युक्त उनकी शरीर दो वस्त्र से अलंकृत करे । वस्त्रों से आवृत देवेश वराह की प्रतिमा की, जो समस्त कामनाओं को सफल करती है, कुशों द्वारा रोमराजि का निर्माण करते हुए गन्ध—पुष्पों से अर्चा सुसम्पन्न करे । ७-१२। इस ज्ञाने में नव ग्रहों के पूजन तिलों की आदुति प्रदान करके इस स्तोत्र द्वारा अर्प्यर्चना करे—देवीव्यमान कनक कुण्डलों से भूषित एवं महान् दाँत वाले वराहेश देव! समस्त पापों के फल चूर्ण कर दो! शंख, चक्र, खज्ज हाथों से धारण किये आप ने हिरण्याक्ष का वध किया है और अपने दाँतों से इस पृथिवी का उद्धार किया अतः त्रयी (वेद) मूर्ति आप को मैं नमस्कार पूर्वक प्रदक्षिणा करके वस्त्रालंकार भूषित वह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करे । परमर्थियों के कथनानुसार प्रतिग्राही (ब्राह्मण) को उस समय उनके चरण का प्रसिद्धण (स्पर्श) करना चाहिए । इस विधान द्वारा करने के अनन्तर प्रणाम पूर्वक क्षमा प्रार्थना करे । महीनाथ, पार्थ! समस्त कामनाओं को सफल करने वाली उस वराह-प्रतिमा के दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है । १३-१८। क्योंकि समस्त दान और सुवर्ण प्रतिमा के दान करने से प्राप्त होते हैं । जिस प्रकार वराह भगवान् ने यथाशक्ति इस पृथिवी का उद्धार किया है, उसी भाँति इसका दान करने वाला मनुष्य अपने कुल का

ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीणां शूद्रजनस्य च ! एतत्साधारणं दानं शैववैष्णवयोगिनाम् ॥२१

विप्राय वेदविदुषे नृवराहरूपं दत्त्वा तिलामलसुवर्णमयं सवस्त्रम् ।

उद्धृत्य पूर्वपुस्त्रान्सकलत्रिमित्रः प्राप्नोति रिद्धभुवनं सुरसिद्धजुष्टम् ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

वराहदानविधिवर्णनं नाम चतुर्नात्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९४

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

धान्यपर्वतदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् । यदक्षयं परे लोके देवर्घिगणपूजितम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

रुद्रेण धत्युर प्रोक्तं नारदाय महात्मने । मत्स्येन मनवे तद्वत्च्छृणुष्व कुरुद्धह ॥२

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा पुनरेव ते । यत्प्रदानोत्तरात्लोकान्प्राप्नोति सुरपूजितान् ॥३

पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वध्ययनेषु च । न तत्कलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते ॥४

तस्माद्विधानं वक्ष्यामि पर्वतानामनुक्रमात् । प्रथमो धान्यशैलः स्याद्वितीयो लवणाचलः ॥५

उद्धार कर विष्णु लोक में पूजित होता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और शैव, वैष्णव, योगी के लिए यह साधारण दान कहा गया है । इस प्रकार वस्त्रों से अलंकृत उस नृवराहरूप का दान, जो तिल और अमल सुवर्ण द्वारा निर्मित रहता है, किसी वेद मर्मज्ञ ब्राह्मण को अर्पित करने पर वह मनुष्य सभी पुत्र-मित्र समेत अपने पूर्व पुरुषों के उद्धार पूर्वक सुरसिद्ध सेवित सिद्धलोक की प्राप्ति करता है । १९-२२

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में

वराहदान विधि वर्णन नामक एक सौ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त । १९४।

अध्याय १९५

धान्यपर्वतदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! मैं दान का उत्तम माहात्म्य सुनना चाहता हूँ, जो देवर्घिगण पूजित एवं परलोक में अक्षय फल प्रदान करता है । १

श्रीकृष्ण बोले—कुरुद्धह! इसी विषय को शंकर ने नारद को और मत्स्य ने मनु को जिस प्रकार बताया था वही मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो! मैं तुम्हें दश प्रकार का मेरु पर्वत दान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान करने से सुरपूजित देवलोकों की प्राप्ति होती है । क्योंकि पुराणों, वेदों के अध्ययन तथा यज्ञों के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने से वे फल कदापि नहीं प्राप्त होते हैं, जो इस दान द्वारा सुलभ होते हैं । इसलिए सर्वप्रथम पर्वतों का ब्राह्मणः विधान बता रहा हूँ, सुनो! प्रथम धान्य शैल, दूसरा लवणाचल । २-५। तीसरा

गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थे हेमपर्वतः । पञ्चमस्तिलशैलः स्यात्पूष्टः कार्पासिपर्वतः ॥६
 सप्तमो घृतशैलश्च १रसशैलस्तथाष्टमः । राजतो नवमस्तद्वद्दामः शर्कराचलः ॥७
 वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः । अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥८
 शुक्लपक्षे तृतीयायामुपराने शशिक्षये । विवाहोत्सवयज्ञे वा द्वादश्याभ्युपुः ॥९
 शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा प्रधानतः^३ । धान्यशैलादयो देया यथाशास्त्रं विजानता ॥१०
 तीर्थे वायतने दत्तपि गोष्ठे वा संगमेत्यपि वा । मंडपं कारयेद्वक्त्या चतुरब्दमुद्दमुखम् ॥११
 प्रागुदकप्रवणं तत्र प्राङ्मुखं वा विधानतः । गोमरोनानुलिप्तायां भूमादास्तीर्य वा कुशान् ॥१२
 तन्मये पर्वतं कुर्याद्विष्कम्भपर्वतान्वितम् । धान्यद्रोगसहस्रेण शवेद्विगरिरहोत्तमः ॥१३
 मध्यमः पंचशतिकः कनिष्ठः स्यात्रिभिः शतैः ॥१४

भेरुमहावीहिमयस्तु	मध्यमुदर्णवृक्षत्रयसंयुतः	स्यात् ।
संपूर्णमुक्तामहलवज्ञमुक्तो	याम्यैनुगोमेदकपुष्परागैः ॥१५	
यः स्पाच्चद्वै गारुत्मतनीलरत्नैः सौम्येन वैदूर्यसरोजरागैः ।		
श्रीखंडवज्ञैरभितः प्रवालततान्वितः शुद्धशिलातलः	स्यात् ॥१६	
ब्रह्माथ विष्णुर्भगवान्पुरारिद्वाकरोऽप्यत्र हिरण्मयः	स्यात् ।	
तथैकदेशोद्धतकन्धरस्तु , घृतोदकप्रस्त्रवणाश्च	दिक्षु ॥१७	

गुडाचल, चौथा हेमा (सुवर्णा) चल, पाँचवा तिल शैल, छठाँ कार्पास (रुई) का पर्वत, सातवाँ घृत शैल, आठवाँ रस शैल नवाँ रजत (चाँदी) का पर्वत और दशवाँ शक्कर का पर्वत दान किया जाता है । अयन, विपुव, पुण्य अवसर, व्यतीत, दिन क्षय, शुक्र तृतीया, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, अमावस्या, विवाहोत्सव, यज्ञ, द्वादशी, शुक्र पञ्चमी अथवा किसी पुण्य नक्षत्र के दिन इन धान्य शैलादि का द्वान शुद्धितानुकूल करना चाहिए । ६-१०। किसी तीर्थ देवमन्दिर, गोशाला, या संगम के स्थल पर उत्तर मुख या पूर्व मुख वाले एक चौकार मण्डप का सविधान निर्माण, जिसकी भूमि उत्तर में कुण (ईशान) की ओर निष्ठ (नीची) हो, उसके भीतर गोवर से लिपी हुई भूमि में कुश विछाकर उसके मध्य भाग में विष्कम्भ पर्वत की भाँति उस पर्वत की रचना करे । सहस्र द्रोण धान्य का उत्तम पर्वत, पाँच सौ का मध्यम और तीन सौ द्रोण का पर्वत कनिष्ठ (निष्कृष्ट) बताया गया है । उस धान्य राशि महामेर के मध्य सुवर्ण के तीन वृक्ष स्थापित होने चाहिए । वह पर्वत पूर्व की ओर मोती एवं हीरे से विभूषित, दक्षिण की ओर गोमेदक और पुष्पराग (पीत) मणियों से अलंकृत, पश्चिम में मारुत्मत् (मरकत), तथा नीलमणि तथा उत्तर की ओर वैदूर्य और पद्मरागमणि से विभूषित रहता है । इसी प्रकार उसे चारों ओर से भी खंड (चन्दन) के खण्डों से भूषित प्रबाललताओं से आवेष्टित (घिरा) करते हुए उसकी भूमि शुद्ध शिलातल से सुसज्जित करनी चाहिए । ११-१६। इस पर्वत में ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, शिव, और सूर्य की सुवर्ण प्रतिमाएँ भी स्थापित होनी चाहिए । उसके एक ओर कन्धरा और चारों दिशाओं में घृत उदक के झारने बनाये । पर्वत के पूर्व भाग

शुक्लाम्बरोऽन्यश्च सुराचलः स्थात्पूर्वेण कृष्णानि च दक्षिणेन ।
 वासांसि पश्चादव्यथैः केसराणि रक्तानि चैत्रोत्तरतो इलानि ॥१८
 रौप्यामहेद्रमुखात्तथाष्टौ संस्थापयेल्लोकपतीन्कमेण ।
 नानाफलालो च समंततः स्थान्मनोरमासात्यविलेपनाद्या ॥१९
 वित्तानकन्चोदरि पञ्चवर्णमम्लानपुष्पाभरणं सितं वा ।
 इत्थं निवेश्यामरशैलमप्युन्मनास्तु विष्कस्भगणान्कमेण ॥२०
 तुरीयभागेन चतुर्दिशं च संस्थापयेत्पुष्पविलेपनाद्यान् ।
 पूर्वेण मन्दारफलेऽप्युक्तं यत्रोल्लसत्कनकभद्रकदम्बचिह्नम् ॥२१
 कामेन काञ्चनमयेन विराजमानमाकारयेत्कुमुमवस्त्रविलेपनाढ्यम् ।
 क्षीराहणोदसरसाथ तथा वनेन रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानान् ॥२२
 यास्थेन गन्धमदनोऽत्र निवेशनीयो गोधूमसंचयमयः कलधौतजो वा ।
 हैमेन पक्षिपतिना धृतमानसेन तेनाद्यक्षेव सकलं फ्लिसंयुतः स्थात् ॥२३
 पश्चात्तिलाचलमनेकसुगन्धपुष्पसौवर्णपिप्पलहिरण्यंसयुक्तम् ।
 आकारयेद्भूजतपुष्पवनेन तद्वद्वस्त्रान्वितं दधिशतोदसरस्तथापे ॥२४
 संस्थाप्य तं विपुलशैलमयोत्तरेण शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सुवप्रम्^१ ।
 पुष्पैश्च हेमवटपादपशेषरत्नमाकारयेत्कनकधेनुविराजमानम् ॥२५

थेत वस्त्र, दक्षिण काले वस्त्र, पश्चिम पीत वस्त्र और उत्तर की ओर रक्त वस्त्र से विभूषित कर महेन्द्र आदि आठों लोक पालों की क्रमाणशः चाँदी की प्रतिमाएँ स्थापित करे और पर्वत के चारों ओर मनोरम माला, विलेपन आदि से सुशोभित अनेक फलों की सजावट करे तथा ऊपर पाँच रंग का वित्तान (चाँदोवा) और थेत रंग पुष्पों के आभरणों से सुसज्जित करे । इस प्रकार (प्रथम) अमरगिरि की रचना करके उसके चारों ओर उक्त मात्रा के चौथाई भाग में क्रमाणशः विष्काम्भ (नामक पर्वत) गणों की रचना करे, जो पुष्प-विलेपन आदि से विभूषित हों । (पर्वत) की दिशा में मन्दर गिरि की रचना करे, जो अनेक फलों से युक्त एवं कनक भद्र (देवदाह) और कदम्ब के वृक्षों से सुशोभित हो । तथा काञ्चन मूर्ति कामदेव समेत उसे पुष्प वस्त्र, और विलेपन से समृद्ध करे । इसी भाँति यथाशक्ति चाँदी निर्मित वन तथा अरुणोदक नामक क्षीर के सरोवर से सुशोभित करे । दक्षिण की ओर गेहूँ की राशि अथवा कलधौत (सुवर्ण) निर्मित गन्ध मादन पर्वत की रचना कर, जो सुवर्ण से यज्ञ पति और धृत के मानसरोवर से युक्त हो, उसे सुशोभित करे । (पर्वत के) पश्चिम ओर तिलाचल (तिल के पर्वत) की रचना कर उसे अनेक भाँति के सुगन्धित पुष्पों, सुवर्ण के पीपल वृक्ष, पक्षी, और हिरण्य मय हंस से विभूषित करे । इसे भी चाँदी के पुष्प वाले वन और वस्त्र से सुसमृद्ध करते हुए पर्वत के अगले भाग में शतोद नामक दधिसरोवर का निर्माण करे । १७-२४। विपुलतिल शैल उसकी स्थापना के उपरांत उत्तर की ओर उरद द्वारा सुपार्श्व नामक पर्वत की रचना करे, जो पुष्पों, सुवर्ण के वट वृक्ष, तथा अन्यान्य वृक्षों सुवर्ण निर्मित धेनु से

१. पार्श्वात् । २. सुवस्त्रम्, सुविप्रम् ।

माक्षीकभद्रकरसावचयेन तद्वौष्णेण भास्वररसैश्च युतं विधाय ।
 होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराणविभूत्यैतरनिंद्यवरिताकृतिभिर्जित्वैः ॥२६
 पूर्वेण हस्तमुखमत्र विधाय कुण्डं कार्यस्तिलैरथ घृतेन समित्कुशैश्च ।
 रात्रौ च जागरसनुद्वृतगीततूर्यैरावहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम् ॥२७
 त्वं सर्वेनगणधामनिधे च विद्वमस्मद्गृहेष्वमरपर्वतनाशयासु ।
 क्षेमं विधत्स्व कुरु शांतिमनुत्तमां नः संपूजितः परमभक्तिमतः प्रदेहि ॥२८
 त्वरोद भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः । मूर्तमूर्तपरं बीजमतः पाहि सनातन ॥२९
 यस्मात्वं 'लोकानालानां दिव्यमूर्तस्वमंदिरम् । केशवार्कदसूनां च तस्मान्त्तिं प्रयच्छ मे ॥३०
 यस्मादशून्यममरैर्गैर्धवैश्च शिरस्तव । तस्मान्नामुद्वाराशेषदुःखसंसारसगरात् ॥३१
 एवमन्यर्त्तं तं मेरुं मन्दरं चापि पूजयेत् । यस्माच्चैत्ररथैनाथ भद्राश्वरिषेण च ॥३२
 शोभसे मन्दरक्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव । यस्माच्चूडामणिंज्वद्वीपे त्वं गन्धमादनः ॥३३
 गन्धवैरप्सरोभिश्च गीयमानं यशोऽस्तु मे ; यस्मात्वं केतुमालेन वैश्राजेन वनेन च ॥३४
 हिरण्यमयपाषाणस्तस्माच्छांतिं प्रयच्छ मे । उत्तरैः कुरुभिर्दस्मात्सावित्रेण वनेन च ॥३५
 सुपार्श्वं राजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे । एवमामंत्र्य तान्सर्वान्त्रिभाते विमले पुनः ॥३६

सुशोभित होते हैं । उसे भी मधु और भद्र रस के सरोवर और चाँदी के वने हुए देदीप्यमान वन आदि से विभूषित करके अन्त में वेद-पुराण के मर्मज्ञ, अनिन्द्य और सुरुपवान् चार ब्राह्मणों द्वारा हवन कार्य के सुसम्पन्न होने के निमित्त पूर्व की ओर एक हाथ से कुण्ड की रचना करके तिल, घृत, समिधा (लकड़ी) और कुशों द्वारा कुशकण्ठिका करते हुए इवन कार्य सम्पन्न कराये । पश्चात् मधुर गीत और तुरही की ध्वनि द्वारा रात्रि में जागरण करता रहे । अब तुम्हें पर्वतों का आवाहन भी बता रहा हूँ । अमरगिरि! तू समस्त देवगणों के धाम निधान हो, हमारे घर के विद्वांओं को शीघ्र नष्ट करो, एवं कल्याण प्रदान करते हुए परमोत्तम शान्ति प्रदान करो । मैंने आप की सविधान अर्चा की है अतः मुझे-परमभक्ति प्रदान करने की कृपा करें । सनातन देव! तुम्हीं भगवान् शंकर, ब्रह्मा, विष्णु और दिवाकर देव हो, रस मूर्तीभूत (संसार) के बीज हो, अतः मेरी रक्षा करो । अतः तुम लोकपाल, विश्व सूर्ति (ईश), केशव सूर्य और वसुगणों के मन्दिर हो, तुम मुझे शान्ति प्रदान करो । तुम्हारा शिरोभाग सदैव देवों और गन्धवैरों से अशून्य रहा करता है, इस लिए इस दुःख मय संसार सागर से उद्धार करने की कृपा करो । इस भाँति उस मेरु की अर्चा करके उस मन्दर की भी अर्चना करे । मन्दर (पर्वत)! तुम चैत्र रथ और भद्राश्व नामक वर्ष से सुशोभित हो, शीघ्रतया मुझे तुष्टि प्रदान करो । इस जम्बूद्वीप में चूडामणि की भाँति विभूषित हाने वाले गन्धमादन! गन्धर्व और अप्सराएँ मेरे यश की भी सदैव गान करें । यह वर प्रदान करो । तुम केतुमाल और वैश्राज नामक वनों एवं हिरण्यमय पाषाण से सुशोभित हो, मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करो । २५-३५। उत्तर कुरु एवं सवित्र वन से विभूषित सुपार्श्व नामक अचल! मुझे असय भी प्रदान करने की कृपा करो । नृप! इस प्रकार उन सब को आमन्त्रित करने के अनन्तर प्रातः काल विमल जल में

ग्रावे देयाश्चतुस्त्रिंशद्वयवा दश भारत । शक्तिः सप्त वास्त्वौवा एवं दद्यादशक्तिमान् ॥३८
 एकापि गुरवे देयः कपिला सुप्यस्त्रिनी । पर्वतानामशेषाणामेष एव विधिः समृतः ॥३९
 य एव पूजने मंत्रात्त एवोपस्करे तथा । ग्रहणां लोकपालानां ब्रह्मादीनामग्नेः सह ॥४०
 स्वमंत्रेणैव सर्वेषु ह्रोमः शैलेषु शस्यते । उपवासी भद्रेन्नित्यमशक्तौ नक्तमिष्यते ॥४१
 विधानं सर्वशैलानां क्रमशः शृणु भारत । दानकालेषु ये स्त्रियाः पर्वतेषु च यत्कलम् ॥४२
 अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः । अन्नाद्वयं भूतानि जगदन्नेन वर्द्धते ॥४३
 अन्नमेव यतो तद्मीरत्नमेव जनार्दनः । धान्यपर्वतल्पेण पाहि तस्मान्नगोत्तम ॥४४
 अनेन विधिना यस्तु दद्याद्वान्यमध्यं गिरिम् । मन्वन्तरशतं साञ्च देवलोके महीयते ॥४५
 अप्सरोगणगंधवैराकीर्णेन विराजता । विमानेन दिवः पृष्ठे स याति ऋषिसेवितः ॥४६
 पुण्यक्षये राजराज्यमाप्नोतीह न संशयः ॥४७

धान्यादतः करकवृक्षविराजनानं विष्कम्भपर्वतयुतं सुरसिद्धजुष्टम् ।
 यच्छंति ये सुमतयः प्रणिपत्य विप्रांस्ते प्राप्नुवन्ति परमेष्ठिपदब्जयुग्मम् ॥४८
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे ।
 धान्यपर्वतदानविधिवर्णनं नाम पञ्चनवत्यधिकशतमोऽध्यायः ॥१९५

मान आदि करके मध्यमे स्थित (मेरे) पर्वत गुह को सादर समर्पित करे और शेष पाँच क्रमशः क्रत्विजों को ॥३६-३७। भारत! शक्तिमान पुरुष को चाँतीस, दश अथवा यथाशक्ति सात आठ गौ का दान करते हुए एक कपिला गौ, जो अत्यन्त दूध देने वाली हों, अवश्य गुरुचरण में अर्पित करना चाहिए । सम्पूर्ण पर्वतों का यही दान विधान बताया गया है । इन पर्वतों के साथ सुशोभित होने नाले समस्त प्रह, लोक पाल और ब्रह्मादि देव गणों के पूजन मंत्र उनके उपस्कर में भी उच्चारित होते हैं । पर्वतों के यज्ञ में सभी प्रतिष्ठित देवों की आहुति उनके मंत्रों द्वारा अर्पित करनी चाहिए । कर्ता को नित्य उपवास अथवा परमार्थ होने पर नक्त व्रत करना चाहिए । भारत! मैं समस्त पर्वतों का क्रमशः विधान बता रहा हूँ, सुनो! उसी प्रकार दान काल के मन्त्र और पर्वतों के दान करने का फल भी कह रहा हूँ । अन्न को ब्रह्म इसलिए कहा गया है कि अन्न में ही प्राणियों के प्राण प्रतिष्ठित हैं । क्योंकि अन्न द्वारा जीवों की सृष्टि होती है और यह सारा संसार मण्डल मन्त्र द्वारा ही उन्नति शील है । अन्न ही लक्ष्मी और अन्न ही जनार्दन देव हैं । नरोत्तम! इसलिए इस धान्य पर्वत के रूप से आप मेरी रक्षा करो । इस विधान द्वारा धान्य मय पर्वत का सविधान दान करने वाला मनुष्य देव लोक के अप्रभाग में सौ मन्वन्तरों के समय तक सुसम्मानित होता है । पश्चात वह ऋषियों द्वारा सुसेवित होकर अप्सराओं और गन्धर्वों से आच्छान्त विमान पर सुशोभित होते हुए स्वर्ग लोक की यात्रा करता है । और कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर महाराज-राज्य की प्राप्ति करता है इसमें संशय नहीं । इस प्रकार सुवर्ण वृक्ष से सुशोभित और निष्काम पर्वतों से युक्त उस धान्याचल का, जो सुरसिद्धों से सदैव सुशोभित रहता है, नमस्कार पूर्वक द्वात्राणों को दान करने वाले बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं ॥३८-४८

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
 धान्यपर्वतदान विधि वर्णन नामक एक सौ पञ्चानवैराग्य समाप्त ॥१९५।

अथ षष्ठिवर्त्यधिकशततमोऽध्यायः
लवणपर्वतदानविधिवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरो लोकनामोति शिवसंयुतम् ॥१
 उत्तमः बोडशद्रोणः कर्तव्ये लवणाचलः । मध्यगः स्यात्तदर्थेन तद्दर्शनाधमः स्मृतः ॥२
 वित्तहीनो यथाशक्त्या द्रोणार्दर्थं तु कारयेत् । चतुर्थशीर्ण विषयान्पर्वतान्कारयेत्पृथक् ॥३
 विधातं पूर्ववत्कुर्त्तद्वृत्तादीनं च तर्वदा^१ । तद्वद्वेषतरुन्सर्वालोकपालानिवेशनग् ॥४
 शिरांसि कामदेवादीन्स्तद्वृत्तत्र निवेशयेत् । कुर्याज्जागरमत्रापि दानमंत्रान्निवोध मे ॥५
 सौभाग्यरससंभूतो यतोऽयं लवणोरसः । दानात्मकत्वेन च मां पाहि पापान्नगोत्तम ॥६
 तस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कृष्टा लवणं विना । प्रियं च शिवयोनित्यं तस्माच्छान्तिप्रदोभव ॥७
 विष्णुदेह समुद्भूतं यस्तादारोग्यवर्धनम् । यस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसगरात् ॥८
 अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम् । उमालोके वसेत्कल्पं ततो याति परां गतिम् ॥९
 पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । पुत्रपौत्रैः परिवृतो जीवेच्च शरदां शतम् ॥१०

अध्याय १९६
लवणपर्वतदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें इस समय लवणाचल का विधान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान करने से मनुष्य शिवलोक की प्राप्ति करता है। इस पर्वत के निर्माण में दश द्रोण का उत्तम, उसके अर्धभाग का स्थायम और उसके भी आधेभाग का पर्वत अधम बताया गया है। किन्तु निर्धन मनुष्य भी यथा शक्ति एक द्रोण के आधेभाग से पर्वत की रचना और चौथाई-भाग से पृथक्-पृथक् उसके चारों ओर के पर्वतों की रचना करके पूर्व की भाँति सविधान व्यापादि देवगण, सुवर्ण वृक्षों और लोकपालों की उस पर्वत में स्थापना करे। उसके शिरोभाग में कामदेव आदि को प्रतिष्ठित करते हुए रात्रि जागरण करे। उसका दान मंत्र मैं बता रहा हूँ, सुनो! नरोत्तम! सौभाग्य रस से उत्पन्न होने के नाते तुम्हारा लवणाचल नामकरण हुआ है अतः इस दान द्वारा पापों से मेरी रक्षा करने की कृपा करो। बिना लवण के सभी अन्नों के रस उत्कृष्ट (तीक्ष्ण) नहीं होते हैं, इसीलिए आप शिव और भवानी को नित्य अत्यन्त प्रिय है, मुझे शान्ति प्रदान करे। आप भगवान् विष्णु की देह से आविभूत होकर आरोग्य की वृद्धि करते हैं अतः इस पर्वत रूप द्वारा इस संसार सागर से मुझे बचायें। इस विधान द्वारा लवण पर्वत का दान करने वाला मनुष्य उमा के लोक में एक कल्प तक सुखानुभव करने के उपरांत उत्तम गति प्राप्त करता है। कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर यहाँ धार्मिक राजा होता है और पुत्र-पौत्र समेत सौ शारदीय वर्षों का जीवन भी ग्राप्त करता है। १-१०। इस प्रकार लवण पर्वत का दान करने वाला ग्राणी शोभन एवं महान् विमान पर, जिसमें सेवा करने के

१. सर्वशः ।

कुर्वति ये लवण्यपर्वतसंप्रदानं संप्राप्तुर्वंति दिवि ते युम्हद्विमानम् ।
तत्राप्सरोगणसुरसेव्यमानास्तिष्ठन्ति हृष्टमनसो दिवि वृद्धमानाः ॥११

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
लवण्यपर्वतदानविधिवर्णनं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९६

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

गुडाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यमि गुडपर्वतमुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरः स्वर्गं प्राप्नोति सुरपूजितम् ॥१
उत्तमो दशभिर्भारैः^१ मध्यमः पंचभिस्तथा । त्रिभिर्भारैः कनिष्ठः स्यात्तदर्थेनात्पको मतः ॥२
तद्वास्त्वर्णं पूजां हेमवृक्षसुरार्चनम् । विष्कंभपर्वतःस्तत्र सरांसे वनदेवताः ॥३
होमं जागरणं तद्वल्लोकपालाधिवासनम् । धान्यपर्वतवत्कुर्यादिमं मंत्रमुदीरयेत् ॥४
यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरो यं जनार्दनः^२ । सामवेदस्तु येदानां महादेवस्तु योगिनाम् ॥५
प्रणवः सर्वमंत्राणां नारीणां पार्वती यथा । तथा रसानां प्रवरः सदा चेक्षुरसो मतः ॥६

लिए अप्सराएँ, सुर-असुर गण सदैव वर्तमान रहते हैं, सुशोभित होकर स्वर्ग पहुँचता है और सदैत प्रसन्न चित एवं वृद्धिशील रहता है ॥१॥

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
लवण्यपर्वतदानविधि वर्णन नामक एक सौ छानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९६।

अध्याय १९७

गुडाचलदानविधिवर्णन

श्रीकृष्ण ओले—मैं तुम्हें अब गुडपर्वत का उत्तम विधान बता रहा हूँ, जिससे प्रदान करने पर मनुष्य देवपूजित स्वर्ग की प्राप्ति करता है । इसके निर्माण में दशभार गुड का उत्तम पर्वत, पाँच भार का मध्यम, तीन भार का कनिष्ठ और उसके आधेभाग का अल्प पर्वत कहा गया है । पूर्व की भाँति इसमें भी आमन्त्रण, पूजा, हेमवृक्ष, देवों की अर्चा, विष्कम्भ पर्वत गण, सरोवर वृन्द और वन देवताओं की प्रतिष्ठा-पूजा के अनन्तर होम, जागरण, लोकपालों के अधिवासन, आदि सभी कार्य धान्य पर्वत की भाँति ही सुसम्पन्न कर इन मंत्रों का उच्चारण करे—जिस प्रकार देवों में विश्वात्मा भगवान् जनार्दन श्रेष्ठतर हैं । वेवों में सामवेद, योगिओं में महादेव, समस्त मंत्रों में/प्रणव (ओं) और स्त्रियों में पार्वती अत्यन्त श्रेष्ठ कही गयी हैं उसी भाँति समस्त रसों में ईख का रस सर्वश्रेष्ठ बताया गया है ॥१-६। गुड पर्वत!

१. अष्टशतीभारैः । २. नरोत्तमः ।

सम तस्मात्परां लक्ष्मीं प्रयच्छ गुडपर्वत । सुरासुरणां सर्वेषां नागयक्षर्यंत्रिगाम् ॥७
 विनाशश्चापि पार्वत्यास्तस्मान्मां पाहि सर्वदा । अनेन विधिना यस्तु दद्याद्गुडमयं गिरिम् ॥८
 संपूज्यमानो गन्धर्वगौरेलोके महीयते । पुनः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥९
 आयुरारोग्यसम्पन्नः शत्रुभिश्चापराजितः । आसीद्राज्ञी महाभागा सुलभा नाम सुव्रता ॥१०
 मरुत्स्यं प्रिया भार्या रूप यौवनशालिनी । तस्य भार्या शतान्यासन्सप्त राज्ञो महात्मनः ॥११
 ता दास्य इव दाक्षानि कुर्युस्तस्याः सदैव हि । मुखावलोकनकरो राजा तस्य च सा प्रिया ॥१२
 अथ कालेन महाता दुर्योसा ऋषिसत्तमः । आजगत्स तदभ्यां भ्रममाणो यदृच्छ्या ॥१३
 तस्याथ सत्क्रियां कृत्वा चार्घं इत्या प्रथाविधि । प्रच्छ सुलभा विष्णं दुर्दिससमकल्पद्वम् ॥१४

सुलभोवाच

केन पुण्येन भगवन्मम राजा प्रियंकरः । मुखावलोकनपरो वशे तिष्ठति सर्वदा ॥१५
 सप्तन्यश्च मम ब्रह्मन्सदा प्रियहिते रताः । एतदाचक्ष्य भगवन्परं कौतूहलं मम ॥१५

दुर्वासा उदाच

शृणुष्वावहिता सुभूरात्मवृत्तं पुरातनम् । जानामि सर्वं सुभगे तव वृत्तमशेषतः ॥१७
 त्वमासीर्वेश्य महिषी गिरिव्रजपुरे पुरा । धर्मिका सत्यशीला च पतिव्रतपरायणा ॥१८

अतः मुझे उत्तम लक्ष्मी प्रदान करने की कृपा करें । पार्वती ही समस्त सुर-असुर, नाग यक्ष, अर्क और नियंत्रित प्राणियों आदि सभी का विनाश होना कहा गया है अतः मेरी सदैव रक्षा करो । इस विधान द्वारा गुडाचल का दान करने वाला मनुष्य गन्धर्वों से प्रुजित होकर गौरी लोक में सुप्रजित होता है । सौकल्य के अनन्तर यहाँ जन्म ग्रहण करने पर सातों दोपों का अधिनायक होता है । जो सदैव आरोग्य, दीर्घजीवी, एवं शावुओं से अजेय रहता है । राजा मरुत की सुलभा नाम की पतिपरायणा एवं महासीधार्यवती प्रधान महिषी (रानी) थी, जो अत्यन्त रूप सौन्दर्य से सम्पन्न और युवती थी । उस महात्मा राजा की अन्य और सात रानियाँ थीं, जो सदैव दासीकी भाँति उस सुलभा की आज्ञा पालन करती थीं । राजा सर्वदा अपनी उस प्रेयसी प्रधान रानी का मुख दर्शन किया करता था और रानी भी राजा के मुखावलोकन में सदैव निमग्न रहती थी । बहुत दिनों के पश्चात् इधर-उधर भ्रमण करते हुए ऋषि थेष्ठ दुर्वासा का राजा के यहाँ आगमन हुआ । अर्ध-पाद्य आदि सत्कार यथाविधान सुसम्पन्न कर रानी सुलभा ने उन पापरहित दुर्वासा ऋषि से प्रश्न किया । १७-१४।

सुलभा ने कहा—भगवन् ब्रह्मन्! किस पुण्य द्वारा यह मेरा प्रियतम राजा मेरा प्रियंकर होकर सदैव मेरा मुख दर्शन ही किया करता है । मेरी सपत्नियाँ मेरे वशीभूत रहकर सदैव प्रिय कार्य करती रहती हैं । इसके जानने का मुझे परम कौतूहल हो रहा है अतः बताने की कृपा करें । १५-१६

दुर्वासा बोले—मुन्दर भौंहे वाली सुभगे! मैं तुम्हारे पूर्व जन्म का वृत्तान्त भली भाँति जानता हूँ, अतः मैं उसे बता रहा हूँ, तुम अपना आत्मवृत्तान्त सावधान होकर, सुनो! पूर्व काल में गिरिव्रज नगर के वैश्य की तू प्रधान रानी थीं । उसी भाँति तू अत्यन्त धार्मिक, सत्य बोलने वाली और पतिपरायणा थी । १७-१८।

तत्र श्रुतस्त्वया वत्से ब्राह्मणानां समीपतः ! पुरा दानविधिः कृत्कः स्थितया पतिसंनिधौ ॥१९
 विशेषतस्तत्र वित्रैः कथितो गुडपर्वतः । दत्तश्चापि त्वया पुत्रि संभृत्य विधिवत्तदा ॥२०
 तस्य दानस्य माहात्म्यात्त्वया भुक्तं वरानने । राज्यं जन्मानि चत्वारि निःसप्तनमनाकुलम् ॥२१
 अन्यानि सप्त जन्मानि तत्र राज्यं भविष्यति । सौभाग्यमतुलं चैव रूपमारोग्यमेव च ॥२२
 भूतं चैवमवश्यं च मुडपर्वतदानजम् । कथा तद वरारोहे यास्ये त्वं भव पुत्रिणी ॥२३
 तरभद्रैयमिदं दानं फलमुत्तममिच्छता । गाति च शाश्वतां लेभे सौभाग्यं रूपमेव च ॥२४
 दानमेतत्प्रशंसांति स्त्रीणां राजनिवेषतः । पूर्वोक्तं च फलं प्राप्य कृतकृत्योऽभिजायते ॥२५

कृष्णोष्टमुन्दरदीक्षितव्याकुलेन गंधर्वसिद्धिवनिताशतसेवितेन ।

दत्तेन भारत विधानवता सदैव गौरी प्रसादमुपयाति गुडाचलेन ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

गुडाचलदानविधिवर्णनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९७

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हेमाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णचिलमुत्तमम् । यस्य प्रसादाद्वूवनं वैरिंच्यं याति मानवः ॥१

वत्से! पति के साथ ब्राह्मणों की सभा में तुमने समस्त दानों के विधान सुना था । पुत्रि! विशेषकर तुमने गुडपर्वत का विधान ब्राह्मणों द्वारा सुन कर उसका दान सविधान सुसम्पन्न भी किया था तुमने चार जन्मों तक शांतिपूर्वक निःसप्तन राज्य का सुखानुभव किया है । किन्तु अन्य सात जन्मों तक तुम्हें वैसा ही राज्य सुखोपभोग प्राप्त होते रहेंगे, जिसमें तुम्हारे अतुल सौभाग्य, रूप सौन्दर्य और आरोग्य की समृद्धि रहेगी । वरारोहे! गुडपर्वत दान करने के नाते सुख समृद्धि समेत तुम्हारी कथा (चर्चा) भी होती रहेगी । तुम पुत्रवती हो, यह आशीर्वाद देकर मैं अब यहाँ से जा रहा हूँ । इसलिए उत्तम फल की आकांक्षा वाले मनुष्य को यह दान अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए, जिससे शाश्वती गति और रूप सौभाग्य की प्राप्ति होती है । राजन्! अतः विशेषकर स्त्रियों लिए यह प्रस्तुत है इसके प्रभाव से वे पूर्वोक्त फलों समेत कृत कृत्य हो जाती हैं । भारत! इस प्रकार इस गुडाचल जो भगवान् कृष्ण की अभीष्ट गुफाओं से युक्त और गन्धर्व सिद्धों की रमणियों से सुसेवित रहता है, सविधान दान करने वाला मनुष्य सदैव गौरी का कृपापात्र बना रहता है । १९-२६।

श्रीभविष्य महापुराण में उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में
 गुडाचल दान विधान वर्णन नामक एक सौ सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त । १९७।

अध्याय १९८

हेमाचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें उस पापहारी सुवर्णचिल का विधान बता रहा हूँ जिसे सुसम्पन्न करने

उत्तमः पलसाहस्रो मध्यम पञ्चभिः शतैः । तदद्वैतावरस्तद्वल्पवित्तोऽपि शक्तिः ॥२
 दद्यादेकपलादुर्धर्वं यथाशक्तया विचक्षणः । धान्यपर्वतवत्सर्वं विद्यान्नृपसत्तम ॥३
 विष्कंभशैलांस्तद्वच्च कृत्वा मन्त्रमुदीरयेत् । नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय वै नमः ॥४
 यस्मादनन्तफलदस्तस्मात्पाहि शिलोच्चय । यस्मादग्रेरपत्वं त्वं यस्मादुल्बं जगत्पतेः ॥५
 हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम । अनेन विधिना यस्तु दद्यात्कनकपर्वतम् ॥६
 स याति परमं स्थानं यत्र देवो 'महेश्वरः । तत्र वर्षशतं तिष्ठेत्ततो याति परां गतिम् ॥७
 हेमाचलात्परं दानं न चान्यद्विद्यते इच्छित् ॥८

हैमं महीद्रमणिभृंगशतैरुपेतं लोकाधिपाष्टकयुतं सहितं मुनीन्द्रैः ।
 यः शक्तिभान्वितरतीह गणेशलोके कल्पं कुमारवदसौ कुरुपुंगवाऽस्ते ॥९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 हेमाचलदानविधिवर्णनं नामःष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९८

पर मनुष्य बहमा का लोक प्राप्त करता है । इसके निर्माण में सहमत पल का उत्तम, पाँच सौ का मध्यम और उसके आधे पल सुवर्ण का पर्वत मध्यम बताया गया है । किन्तु बुद्धिमान् निर्धन प्राणी भी यथाशक्ति एक पल से कुछ अधिक सुवर्ण का पर्वत निर्माण कर दान कर सकता है । नृप सत्तम! इसमें भी धान्य पर्वत की भाँति सभी क्रियाओं को सम्पन्न करते हुए विष्कम्भं पर्वतों के स्थापत यूजतोपरांत इस मंत्र का उच्चारण करे—(सुवर्ण) शिलोच्चय! आप ब्रह्म बीज और ब्रह्म-गर्भ रूप हैं, आप अनन्तफल प्रदान करते हैं अतः मेरी रक्षा करें । १-५। नगोत्तम! अग्नि के सन्तान और जगत्पति के उल्लङ्घने के नाते आप इस हेगपर्वत रूप से मेरी रक्षा करें । इस विधान द्वारा सुवर्णाचल प्रदान करने वाला मनुष्य साक्षात् महेश्वर के परम स्थान को प्राप्त करता है । वहाँ सौ वर्ष तक सुखानुभूति करने के उपरांत पराकाष्ठा की गति (मोक्ष) प्राप्त करता है । इसलिए इस कनकपर्वत के तुल्य कोई अब दान नहीं बताया गया है । कुरुपुंगव! इस प्रकार इस कनक पर्वत का, जो इन्द्रमणि के सैकड़ों शिखरों से भूषित और लोकपालों समेत मुनीन्द्रों से सुसज्जित रहता है, दान सुसम्पन्न करने वाला वह शक्तिमान् पुरुष गणेशलोक में एक कल्प तक स्कन्द कुमार की भाँति सुखानुभव करता है । ६-९

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व मे श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद मे
 हेमाचलदानविधान वर्णन नामक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त । १९८।

अथैकोनद्विशततमोऽध्यायः

तिलाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः^१ परं प्रवक्ष्यामि तिलशैलं दिथानतः । यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥१
 तिला: पवित्रमतुलं पदित्राणां च पावनम्^२ । विष्णुदेहसमुद्भूतास्तस्मादुत्तमतां गताः ॥२
 मधुकैटभनामानावास्ता दितिमुत्तौ पुरा । मधुना सह तत्राभूद्युद्धे विष्णोरनारातम् ॥३
 सहस्रं किल वर्षाणां न व्यजीदत दानवः । तत्र स्वेदो महानासीत्कुद्धरथस्याथ गदाभृतः ॥४
 पतितश्च धरपृष्ठे कणशो लवशस्तथा । समुत्स्थुस्तिला माषाः कुशाश्च कुरुनन्दन ॥५
 हतश्च हरिणा युद्धे स मधुर्बलिनां वरः । मेदसा तस्य वसुधा रंजिता सकला तदा ॥६
 मेदिनीति ततः संज्ञामदापाचल धारिणी । हतेऽय दैत्यप्रवरे देवास्तोषं परं ययुः ॥७
 स्तुतिभिर्च परं स्तुत्वा ऊचुस्त्रिदशपुंगवम्^३ ।

देवा ऊचुः

त्वया धृतं जगद्देव त्वया सृष्टं तथैव च

॥८

अध्याय १९९

तिलाचल दान-विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें सविधान तिल शैल का वर्णन सुना रहा हूँ, जिसके दान करने से मनुष्य परमोत्तम विष्णुलोक की प्राप्ति करता है। तिल अत्यन्त पवित्र एवं पवित्रों में पावन है, भगवान् विष्णु की देह से उत्पन्न होने के नाते यह अति उत्तम हुआ है। प्राचीन समय में (कश्यप की द्वासरी पत्नी) दिति के मधुकैटभ नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। जिसमें मधु के साथ विष्णु का अनवरत युद्ध हो रहा था। दिव्य सहस्र वर्ष तक घोर युद्ध होने पर भी उस दैत्य का वध न हो सका तो अत्यन्त कृद्ध होने के नाते गदाधारी भगवान् विष्णु की देह में महान् स्वेद (पसीना) हो आया और वह कण रूप में तथा खण्ड-खण्ड होकर पृथिवी पर गिरा, जिससे तिल, उरद और कुशाओं की उत्पत्ति हुई। कुरुनन्दन! उसी समय बलवान् मधु दैत्य भी युद्ध में हरि द्वारा निहत हुआ, जिसकी मेदा (चर्वी) से वह सम्पूर्ण पृथिवी अत्यन्त रञ्जित हो गयी है और उसी के नाते उस दिन से इस पृथिवी का 'मेदिनी' भी नाम प्रचलित हो गया। उस वर्ली दैत्य के वध होने पर देवगण अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। १-७। स्तुतियों द्वारा स्तुति करते हुए देवों ने कहा—

देवों ने कहा—देव! तुम्हीं इस जगत् का धारण किये हो और तुम्हारे ही द्वारा इसकी सृष्टि हुई है

१. अथापरम् । २. पावनाः । ३. त्रिदशपुंगवाः ।

त्वयीश लीयते सर्वं त्वर्थं मधुसूदन । तस्मात्प्रवंगतोऽ जातास्तिलः सन्तु जगद्धिताः ॥१९
 पालयन्तु च देवेश हृष्टव्यानि सर्वदा । दैवे पित्रे च सततं नियोज्यास्तत्परैर्नैः ॥२०
 नहि दैत्याः पिशाचा वा विद्धं कुर्वन्ति भारत । तिला यत्रोपयुज्यन्ते एतच्छीद्रं विधीयताम् ॥२१
 शुत्वा सुराणां तद्वाक्ष्यं विष्णुस्तान्मिदमब्रवीत् । तिला भवन्तु रक्षार्थं त्रयाणां जगतामपि ॥२२
 शुक्लपक्षे तु देवानां संप्रदद्यात्तिलोदकम् ; कृष्णपक्षे पितृणां च स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ॥२३
 तिलैः सप्ताष्टभिर्वापि समर्पितजलांजलिः । तस्य देवाः सप्तिरस्तृता यच्छ्रुति शोभनम् ॥२४
 श्वकाकोऽन्तुं यच्च पतितादिभिरेव च । तिलैरभ्युक्षितं सर्वं चक्रित्रं स्यान्नसंशयः ॥२५
 एतैर्भूतैरित्तिलैर्स्तु कृत्वा पर्वतमुत्तमम् । प्रदद्याद्विद्वजमुख्याय दानं तस्याक्षयं भवेत् ॥२६
 उत्तमो दशभिर्दोर्णर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः । त्रिभिः कनिष्ठो राजेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तिः ॥२७
 पूर्ववच्चापरं सर्वं विष्कंभर्पर्वतादिकम् । दानमन्नं प्रदक्षयामि यथावन्नपसत्तम् ॥२८
 यस्मान्नधुयधे॑ विष्णुर्देहस्वेदसमुद्भवाः । तिलोः 'कुशाश्च भाषाश्च तस्माच्छु नो भवन्तिवह ॥२९
 हृष्ये कव्ये च यस्माच्च तिलैरेवाभिमन्त्रणम्' । भवादुद्गर शैलेन्द्र तिलाचलनमोऽस्तु ते ॥२०
 इत्यामन्त्य च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम् । स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिरुर्लभम् ॥२१
 दीर्घायुष्टामवाप्नोति इह लोके परत्र च । पितृभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं भ्रजेत् ॥२२

और तुम्हारे में इसका लय भी होता है । मधुसूदन, ईश! तुम्हारे अंगों से उत्पन्न हुआ यह तिल जगत् के लिए कल्याणकारी हो तथा देवपितृ कर्मों में मनुष्यों को संलग्न कर द्रव्य क्रव्य द्वारा देवों पितरों का बालन करें। देवेश, भारत! जिस कर्म में दैत्य या पिशाच कभी विद्ध नहीं करते हैं अतः इसे शीघ्र सम्पन्न करे । देवों की इन बातों को सुनकर कर भगवान् विष्णु ने कहा—तीनों लोकों के रक्षार्थ ही यह तिल उत्पन्न हुआ है अतः शुक्ल पक्ष में देवों के संतोषार्थ तिलोदक और कृष्ण पक्ष में ज्ञानोपरां श्रद्धा समेत सात-आठ तिलों की तिलाञ्जलि अर्पित करनी चाहिए इससे देव और पितर दोनों अत्यन्त तृप्त होते हैं । श्वान् (कुत्ते) और कौओं एवं पतितों द्वारा नष्ट की हुई भी वस्तु तिल से अम्युक्षित (सिंचित) करने पर पवित्र हो जाती हैं इसमें संशय नहीं । इस प्रकार पवित्र तिलों का पर्वत निर्माण कर किसी ग्राहमणश्रेष्ठको उसका दान करने पर अक्षय फल प्राप्त होता है । ८-१६। दश द्वोण तिल का उत्तम पर्वत, पौच का मध्यम, और तीन द्वोण का पर्वत कनिष्ठ कहा जाता है । राजेन्द्र! पूर्व की भाँति समस्त उसकी क्रियाओं को सम्पन्न करते हुए विस्कम्भ पर्वत आदि से युक्त करे और इस दान मंत्र वा उच्चारण करे—मधुदैत्य के वध होने के समय भगवान् विष्णु की देह से तिल, कुश और माष (उरद) की उत्पत्ति हुई है । द्रव्य और क्रव्य में तिल द्वारा ही मंत्रण होता है अतः इस संसार से मेरा उद्धार करें मैं आपको नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार आमन्त्रित कर उत्तम तिलाचल का दान करने वाला मनुष्य उस वैष्णव पद की प्राप्ति करता है, जहाँ से कभी पुनरावृत्ति (जन्म) होता ही नहीं । लोक परलोक में उसे दीर्घायु की प्राप्ति होती है और वह पितर, देव और गन्धर्वों से पूजित होते हुए स्वर्ग जाता है । १७-२२। कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस भूतों पर पुनः धार्मिक राजा होता है और उसकी पत्ती रूप सौभाग्य

१. भगवतः। २. शुद्धिसमन्वितः। ३. च नरोत्तम। ४. काले विष्णुर्देहसमुद्भवाः।
५. मुद्भास्व। ६. अभिरक्षणैः।

पुण्यक्षयादिहाम्येत्य^१ राजा भवति धार्मिकः । नारी वा तस्य पत्नी स्याद्गूपसौभाग्यसंयुता^२ ॥२३

दक्षा कुलोद्धवा चैव पुत्रपौत्रसमन्विता । विधानमिदमाकर्ण विधिना^३ श्रद्धयान्वितः ॥२४

कपिलादानपुण्यस्य समं फलमवाप्नुयात् ॥२५

दानं तिलाचलसमं यदि चान्यदस्ति तद्गूत शास्त्रनिचयं प्रविचार्य बुद्ध्या ।

यैर्वर्जिता पितृक्रिया न च होमकर्म तेषां प्रददामिह किं न करोति शर्म ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

तिलचलदानविधिवर्णनं नामैकोनद्विशततमोऽध्यायः । १९९

अर्थ द्विशततमोऽध्यायः

कार्पासाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यानि कार्पासाचलमुत्तमम् । परमं सर्वदानानां प्रियं सर्वदिवौकसाम् ॥१

देशकालौ समासाद्य धनं श्रद्धां च यत्नतः । देयमेतन्महादानं कुलोद्धरणहेतवैः ॥२

पूर्वोक्तेन विधानेन कृत्वा सर्वमशेषतः । पर्वतं कल्पयेत्तत्र कापसिन विधानतः ॥३

सम्पन्न होती है । दान करने वाली स्त्री भी वही फल प्राप्त करती है तथा सभी कार्यों में दक्ष, कुलीना और पुत्र-पौत्र से सदैव युक्त रहती है । श्रद्धासमेत सविधान इस दान का श्रवण करने वाला पुरुष भी कपिलादान के तुल्य फल प्राप्त करता है । यदि इस तिलपर्वत के दान समान अन्य कोई दान हैं तो भली भाँति शास्त्र विचारकर मुझे बताने की कृपा करो । क्योंकि जिसने पितृक्रिया (श्राद्धतर्पणादि) और देवों के निमित्त हवन कर्म कभी सम्पन्न ही नहीं किया है क्या उस पुरुष के लिए यह दान कल्याणप्रद नहीं होता है! अर्थात् होता ही है । २-३-२६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में तिलाचल दानविधि वर्णन नामक एक सौ निन्दयानबेवाँ अध्याय समाप्त । १९९।

अध्याय २००

कपासपर्वतदानविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अब मैं तुम्हें कपास (रुई) पर्वत के दान का विधान बता रहा हूँ, जो समस्त दानों में उत्तम एवं समस्त देवों को अत्यन्त प्रिय हैं । धनागम होने पर देश काल के अवसर पर श्रद्धा समेत अपने कुलोद्धार के निमित्त यह महादान सुसम्पन्न करना चाहिए । पूर्वोक्त विधान द्वारा सम्मत कर्मों को सम्पन्न करते हुए विधान पूर्वक कपास पर्वत की रचना करे । १-३। जो द्विदानों के कथनानुसार बीस भार

१. आगत्य । २. इह सौभाग्यसंयुता । ३. निर्धनः । ४. प्रियं सर्वदिवौकसाम् ।

विंशद्वारस्तु कर्तव्य उत्तमः पर्वतो बुधैः । दशभिर्मध्यसः प्रोक्तो जगन्यः पञ्चभिर्मतः ॥४
 भारेणाल्पधनो दद्याद्वित्तशाठयविवर्जितः । धान्यपर्वतवत्सर्वमात्साद्य नृपपुज्जव ॥५
 तद्वज्जागरणं कुर्यात्तद्वच्चैवाधिवासनम् । प्रभातायां तु शर्वर्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥६
 त्वमेव वरण्यस्मात्लोकानामिह सर्वदा । कार्पात्तिचलनस्तस्मादघौघधवसनो भव ॥७
 इति कार्पात्तिशैलेन्द्रं ये दद्यात्पर्वसंनिधौ । रुद्ग्लोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह ॥८
 रूपावान्सुभगो वाग्मी श्रीमानतुलविक्षमः । पञ्चजन्मानि नारी दा जायते नात्र संशयः ॥९
 कार्पात्तिपर्वतमयो जगदेकबन्धुर्यस्मान्नेतेन रहिते वरवस्त्रयोगः ।
 तस्मादघौघशमनाद्य सुखाद नित्यं देयो नरेण नरनाथविद्वत्सरेण ॥१०
 इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 कार्पात्तिचलदानविधिवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः ॥२००

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

घृताचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम् । तेजोऽमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम् ॥१
 पञ्चाशद्घृतकुम्भानामुत्तमःस्याद्घृताचलः । मध्यमस्तु तदर्थं तदद्वेनावरः स्मृतः ॥२

का उत्तम, दश का मध्यम और पाँच भार का निकृष्ट बताया गया है। कृपणता रहित होकर निर्धन मनुष्य को भी एक भार कपास से इस पर्वत का निर्माण एवं दान करना चाहिए। नृपपुज्जव! पर्वत की भाँति सम्पूर्ण कार्य करते हुए जागरण और अधिवासन भी सुसम्पन्न कर पुनः प्रातःकाल इस मंत्र द्वारा प्रार्थना करे—कार्पात्तिचल! तुम्हीं सदैव समस्त लोकों का आवरण रूप रहते हो, अतः हमारे पाप समूहों का विध्वंस करो। किसी पर्व काल में इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक कपास शैल का दान करने वाला मनुष्य रुद्ग्लोक में एक कल्प तक सुखानुभव करने के अनन्तर यहाँ आकर रूपवान् राजा होता है। इस के दान के अभाव से स्त्री भी पाँच जन्म तक वही सुखानुभव प्राप्त करती है। नरनाथ! कपास ही जगत् का एक मात्र बन्धु हैं क्योंकि उसके विना उत्तम वस्त्र का योग किसी को प्राप्त नहीं होता है अतः मनुष्यों को नित्य अपने सुखार्थ और पापसमूह को नष्ट करने के लिए कपास पर्वत का दान अवश्य करना चाहिए। ४-१०

श्रीभविष्य महापुराण में उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

कार्पात्तिचल दान विधि-वर्णन नामक दो सौ अध्याय समाप्त ॥२००।

अध्याय २०१

घृताचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें घृताचल का विधान बता रहा हूँ, जो तेज तथा अमृतमय, दिव्य एवं महापातकों का नाश करता है। इसके निर्माण में पाँच सौ घृत पूर्ण कलश का उत्तम पर्वत, उसके आधे

अल्पवित्तस्तु कुर्वीत यथा शक्त्या विधानतः । विष्कंभर्पर्वतं स्तद्वच्चतुर्भागेन कल्पयेत् ॥३
 शालेयतंडुलानां च कुभांश्च परिविन्यसेत् । कारयेत्संहतानुच्चान्यथा शोभं विधानतः ॥४
 वेष्टयेच्छुक्लवातोभिरक्षुदण्डफलादिकैः । धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठचते ॥५
 अधिवासनपूर्वं च तद्वद्वेष्टुमसुरार्चनम् । प्रभातायां तु शर्वर्या गुरवे विनिवेदयेत् ॥६
 विष्कंभर्पर्वतांस्तद्वद्वित्विभ्यः शांतानान्सः । मन्त्रेणानेत कौतेय 'तच्छृणुष्व इदामि ते ॥७
 संयोगाद्यूतभूत्पत्रं यस्माद्घृतेजसे । तस्माद्घृतावलश्चास्मात्रीयतं भम शङ्करः ॥८
 तस्मात्जेऽमयं ब्रह्म धृते नित्यं व्यवस्थितम् । धृतपर्वतरूप्येण तस्माद्यः पाहि भूधर ॥९
 अनेन विधिना दद्याद्घृताचलमनुत्तमः । ^३महापातकयुक्तोऽपि लोकभायाति शांकरम् ॥१०
 हंसस्ताससंयुक्ते किंकिणीजालमालिते । विमाते अप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्वृतः ॥११
 विहरेत्पितृभिः सर्व यावदाभूतसम्म्लवम् ॥१२

आज्याचलं प्रचलकुण्डलभुन्दरीभिः संसेव्यमानमिह ये वितरंति गत्याः ।

स्वर्गं सुरेद्रभद्रं भवसंनिधिं वा स्नेहानुबन्धमयलं भवतीति सर्वम् ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

घृताचलदानविधिवर्णनं नामैकाधिकद्विशतमोऽध्यायः ॥२० १

भाग का मध्यम और उसके भी आधे भाग का अधम कहा गया है। अल्प-वित्त वाले पुरुष को यथा शक्ति यह दान सविधान सुसम्पन्न करना चाहिए। उसके चौथाई भाग द्वारा विष्कंभर्पर्वतों की रचना करके साठी चावल राशि के ऊपर उन कलशों की ऊपर नीचे रखते हुए उत्तम रचना करनी चाहिए। वस्त्र, ऊखदण्ड, और फलादि द्वारा उसे आवेष्टित कर धान्य पर्वत की भाँति समस्त विधानों को सम्पन्न करते हुए अधिवासन और हवन, देव पूजन आदि सम्पन्न करे। कौतेय! निर्मल प्रातः काल वह पर्वत गुरु को और निष्कम्भ पर्वत कृत्विजों को अप्रित करे। उस समय शान्ति चित्त से जिस मंत्र का उच्चारण किया जाता है, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो! अधृत और तेज रूप यह धृत संयोग से ही उत्पन्न हुआ है अतः इस घृताचल के दान द्वारा शंकर प्रसन्न हों ॥१-८। भूधर! धृत में तेजोमय ब्रह्म नित्य सुव्यवस्थित रहता है, अतः इस धृत पर्वत रूप से मेरी रक्षा करें। इस विधान द्वारा घृताचल का परमोत्तम दान करने वाला महापातकी भी प्राणी शङ्कर लोक की प्राप्ति करता है। उस विमान पर सुशोभित होकर, जो हंस-सारस पक्षियों से युक्त किंकिङी समूहों से आबद्ध और अप्सराओं तथा सिद्धविद्याधरों से आच्छेन्न रहता है, पितरों के साथ महाप्रलय पर्यन्त बिहार करता है। इस प्रकार उज्ज्वल कुण्डलों से विभूषित सुन्दरियों से सुसेवित उस घृताचल का दान करने वाले मनुष्य सुरेन्द्र भवन स्वर्ग पर शिव संविधान प्राप्त कर उसके ब्रह्ममें सदैव के लिए बैंध जाते हैं ॥९-१३।

श्रीभविष्यमहापुराण में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में

घृताचलदानविधि वर्णन नामक दो सौ एक अध्याय समाप्त ॥२० १।

अथ द्वचधिकद्विशततमोऽध्यायः

रत्नाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम् । यत्प्रदानाब्दरे याति लोकान्सप्तर्षिसेवितान् ॥१
 मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादनुत्तमः । मध्यमः पञ्चशतिकस्त्रिशतेनावरः स्मृतः ॥२
 अल्पवित्तस्तु कुर्वीत मुक्ताफलशतेन च । चतुर्थशेन विष्कंभर्पर्वताः स्युः सगंततः ॥३
 पूर्वेण्वज्रगोमेदैर्द्विजिणेन्द्रनीलकैः । पृष्ठारागयुतः कार्यो विद्वद्विर्गंधमादनः ॥४
 वैदूर्यविद्मैः पश्चात्सावित्रो वितुलाचयः । पद्मरागं ससौवर्णमुत्तरेणापि विन्यसेत् ॥५
 धान्यपर्वतवच्छेषमत्रापि^१ परिकल्पयेत् । तद्वदावाहनं कृत्वा वृक्षान्देवांश्च काञ्चनाम् ॥६
 पूजयेत्पृष्ठनैवैद्यैः^२ प्रभाते तु विसर्जनम् । पूर्ववद्गुशकृत्विभ्यां इमान्मन्त्रानुदीरयेत् ॥७
 यथा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः । त्वं च रत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचल ॥८
 यस्माद्वलप्रदानेन तुष्टिमेति^३ जनार्दनः । पूजारत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि सर्वदा ॥९
 अनेन विधिना यस्तु दद्याद्वलमयं गिरिम् । स याति वैष्णवं लोकममरेश्वरपूजितम् ॥१०
 यावत्कल्पशतं साप्रमुषित्वेह नराधिप । रूपारोग्यगुणोपेतः^४ सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥११

अध्याय २०२

रत्नाचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें रत्नाचल का विधान बता रहा हूँ, जिसके दान करने से मनुष्य सप्तर्षि के लोकों की प्राप्ति करता है और जो सहस्रों मोतियों द्वारा निर्मित पर्वत उत्तम, पाँच सौ मध्यम, और तीन सौ मोती का पर्वत अधम बताया जाता है। अल्प धन वालों को सौ मोतियों द्वारा उसका निर्माण करना चाहिए और उसके चौथाई भाग से चारों ओर विष्कंभ पर्वतों की रचना भी। हीरे और गोमेद द्वारा पूर्व की ओर, इन्द्रनील, द्वारा, सुरचित और पुष्परागयुत गन्धमादन पर्वत दक्षिण की ओर, वैदूर्य विद्म द्वारा उस विपुल सवित्राचल का पश्चिम की ओर और सुवर्ण समेत पद्मरागमणि का पर्वत उत्तर की ओर और स्थापित करते हुए धान्यपर्वत की भाँति सुवर्ण निर्मित देवों और वृक्षों के आवाहन आदि शेष सभी कर्म विद्वानों को सुसम्पन्न करना चाहिए। पुष्प नैवैद्य आदि वस्तुओं से अर्चा करके प्रातः काल विसर्जन करे तथा गुह और कृत्विजों समेत इन मंत्र के उच्चारण भी—महाचल! सभी रत्नों में देव गणों की सदैव उपस्थिति रहती है और तुम सदैव रत्न रूप सुशोभित रहते हो अतः मेरी रक्षा करो! अतः इस पूजा में इस रत्न के प्रदान से आप मेरी सदैव रक्षा करें। ११०। इस विधान द्वारा चलाचल प्रदान करने वाला मनुष्य देव पूजित वैष्णव लोक की प्राप्ति करता है। नराधिप! सौ कल्प तक वहाँ सुखानुभव करने के अनन्तर वह

१. अन्नादिः । २. पुष्पधूपाद्यैः । ३. तुष्टि पकुरुते हरिः । ४. रूपारोग्यकुलोपते ।

ब्रह्महत्यादिकं किंचिदत्र चामुत्र वा कृतम् । तत्सर्वं नाशमायाति गिरिर्वञ्च्रहतो यथा ॥१२

मुक्तामयं कनकविद्मभक्तिचित्रं चञ्चन्महामणिमरीचिचयेपपन्नम् ।

रत्नाचलं ह्विवराय निवेदयित्वा भास्वत्रभास्मभवेत्सुरलोकलोके ॥१३

इति श्रीभविष्ण्ये महापुराण उत्तरपर्वंश्च श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

रत्नाचलदानविधिवर्णनं नाम द्रुचधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०२

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रौप्याचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्षामि रौप्याचलमनुत्तम् । यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकं नरोत्तम ॥१

सहस्रेण पलानां तु उत्तमो रजताचलः । पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्द्धेनावरः स्मृतः ॥२

अशतो विंशतेरुद्धर्वं कारयेद्वक्तिः सदा । विष्कंभर्वतांस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत् ॥३

पूर्ववद्राजतान्कुर्यान्मन्दरादीनिधानतः । कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशान्कारयेन्नृप ॥४

ब्रह्मविष्णुशिवादींश्च नितम्बोऽत्र हिरण्मयः । राजतं स्पाद्यन्येषां सर्वं तदिह कांचनम् ॥५

शेषं च पूर्ववत्कृत्वा होमजागरणादिकम् । दद्यात्तद्वत्प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम् ॥६

यहाँ रूप, आरोग्य आदि गुणों से सम्पन्न होकर सप्तद्वीपा वसुमती का अधिनायक होता है । देव राज इन्द्र के वज्र से आहत पर्वत की भाँति लोक-परलोक जनित उसकी ब्रह्म हत्या इसके प्रभाव से सर्वथा विलीन हो जाती है । इस भाँति उस रत्नाचल का दान, जो मोती, रुवर्ण, विद्म आदि से चित्र-विचित्र एवं गहामणियों की मरीचियों (किरणों) से विश्रूपित रहता है, जिसी ब्राह्मण थ्रेष्ठ को अर्पित करने वाला मनुष्य देव लोक में पहुँच कर सूर्य तेज को भी अभिभूत कर देता है । १-१३

श्रीभविष्ण्ये महापुराण मे उत्तर पर्व मे श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद मे
रत्नाचल दान विधि वर्णन नामक दो सौ दो अध्याय समाप्त । २०२

अध्याय २०३

रौप्याचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नरोत्तम! मैं तु तुहें वह उत्तम रौप्याचल व्रत का विधान बता रहा हूँ जिसके द्वारा मनुष्य सोमलोक प्राप्त करता है । उसके निर्माण में सहस्र पल चाँदी का पर्वत उत्तम, पाँच सौ से मध्यम, और उसके आधेभाग से रचित पर्वत अधम बताया गया है । असमर्थ प्राणी के भी बीस पल से अधिक की चाँदी द्वारा उसका निर्माण एवं दान करना चाहिए तथा उसके चौथाई भाग द्वारा विष्कंभ पर्वतों की । नृप! चाँदी द्वारा मन्दराद्रि पर्वत और लोकपालों की रचना करते हुए ब्रह्मा, विष्णु, और शिव आदि देवों की प्रतिमा भी चाँदी द्वारा निर्माण कराये । उसका नितम्ब (निष्ठा) भाग सुवर्णमय और अन्य को चाँदी मय होना चाहिए । इस भाँति पूर्वकी भाँति हवन, जागरण, आदि शेष कर्मों को सुसम्पन्न करते हुए प्रातःकाल वह चाँदी पर्वत गुरुको

विष्कंभशैलानृत्वगम्यः पूज्येच्च विभूषणैः । इस्म भन्तं पठन्दद्याद्भपाणिर्विभत्सरः ॥७
पितृणां वल्लभं यस्मान्छर्मदं शंकरस्य च । रजतं पाहि तस्मान्नो घोरात्संसारसङ्गरात् ॥८
इत्थं निवेश्य यो दद्याद्रजताचलमुत्तमम् । गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥९
सोमलोके 'सगंधर्वकिंनराप्सरसां गणैः । पूज्यसानो दत्तेद्विद्वान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥१०

राजेशा^३ राजतग्निर्ति कनकोपलालीच्छन्नं प्रसन्नसलिलैः सहितं सरोभिः ।

यच्छन्ति ये मुकुतांतिनो दिरजो विशोकं गच्छन्ति ते गतमला नृप सोमलोकम् ॥११

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

रौप्याचलदानविधिवर्णनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०३

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

शर्कराचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रनक्ष्यानि शर्कराचलमुत्तमम्^३ । यस्य प्रदानाद्विष्णवर्करुद्रास्तुष्टुप्यन्ति सर्वदा ॥१
अष्टाभिः शर्कराभारैरुत्तमः स्यान्महाचलः । चतुर्भिर्मध्यमः प्रोक्तो भाराभ्यामध्यमः स्मृतः ॥२

और विष्कम्भ पर्वतों को ऋत्विजों की सेवा में जो भूषण भूषित किये गये हों, अर्पित करे । १-६। उस समय हाथमें कुण लिए मत्सर हीन चित्त से इस मंत्र का उच्चारण करे—पितरों के वल्लभ एक शिव के लिए कल्याणप्रद होने के नाते रजत! इस पोर संसारसागर से मेरी रक्षा करो! इस प्रकार सविधान देवों आदि की प्रतिष्ठा पूर्वक रजत शैल का दान करने वाला मनुष्य दश सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है । सोमलोक में गन्धर्व और अप्सराओं से सुसेवित होते हुए महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है । नृप! इस प्रकार रजत पर्वत का जो सुवर्ण पलां से आच्छन्न और स्वच्छ सलिल सम्पन्न सरोवरों से युक्त रहता है, दान करने वाला वह सुकृती प्राणी पापनाश पूर्वक रुद्ध-शोक रहित होकर सोमलोक की प्राप्ति करता है । ७-११।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर-पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
रौप्याचल दान विधि वर्णन नामक दो सौ तीन अध्याय समाप्त ॥२०३।

अध्याय २०४

शर्कराचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें उत्तम शक्कर-पर्वत का विधान बता रहा हूँ, जिसके दान करने से विष्णु, सूर्य और रुद्र देव सर्वदा प्रसन्न रहते हैं । इसके निर्माण में आठ-भौर शक्कर का उत्तम पर्वत, चार भार का मध्यम, दो भार का अधम पर्वत बताया गया है । १-२। तथा अल्पवित वाले मनुष्य को यथा शक्ति

१. तु । २. नागेश । ३. शर्कराशैलम् ।

भारेणैवाद्वंभारेण कुर्याद्वचालपवित्तवान् । विष्कंभपर्वतान्कुर्यात्तुरीयांशेन मानवः ॥३
 धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्य रससंयुतम् । भेरोरुपरितस्तद्वस्थाप्य हैमतरुत्रयम् ॥४
 मन्दारः परिजाताश्च दृतीयः कल्पपादपः । एतद्वृक्षत्रयं सूर्धिन् सर्वेऽपि निधापयेत् ॥५
 हरिचन्दनसन्तानौ पूर्वपत्तिचमभागयोः । निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषान्दुर्कराचले ॥६
 मन्दरे कामदेवं तु कदम्बस्य तले न्यसेत् । जम्बूवृक्षतले कार्यो गरुदमानन्धमादने ॥७
 प्राङ्मुखो हैमगूर्तिंच हंसः स्याद्विपुलाचले । हैमी श्रेयोर्धिभिः कार्यो सुरभिर्दक्षिणानुखी ॥८
 धान्यपर्वतवत्सर्वमावाहनमखादिकम् । कृत्वाथ गुरुवे दद्यन्मध्यमं पर्वतोत्तमन् ॥९
 ऋत्विग्यश्चतुरः शैलानिमान्मन्त्रानुदीरयेत् । नौभान्यामृतसरोऽयं एरमः शर्करायुतः ॥१०
 यस्मादानंदकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्ददा । अमृतं पिबतां ये तु निष्ठेदुर्भुवि शीकराः ॥११
 देवानां तत्समुत्थोऽसि पाहि नः शर्कराचल । मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा यतः ॥१२
 तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् । यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः ॥१३
 सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति शिवमन्दरम् । चन्द्रादिसार्चिसंकाशमधिरूपानुजीविभिः ॥१४
 सहैव यानमातिष्ठेत स तु विष्णुपदे दिवि । ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥१५
 आयुरारोग्यसंपन्नो यावज्जन्मायुतत्रयम् । भोजनं शक्तिं दद्यात्सर्वशैलेष्वमत्सरः ॥

एक भार अथवा उसके आधे भाग से पर्वत-द्विमण्ड करना चाहिए तथा उसके चौथाई भाग द्वारा विष्कम्भ पर्वतों का निर्माण करे । धान्यपर्वत की भाँति रसयुक्त समस्त कर्मों को सम्पन्न करते हुए मेरु (पर्वत) के ऊपर सुवर्ण निर्मित मदार, परिजात और कल्पवृक्ष की स्थापना करे, क्योंकि सभी कर्मों में इन तीन वृक्षों की स्थापना बतायी गयी हैं । हरिचन्दन (श्रीखंड) और कल्प वृक्ष क्रमशः सभी पर्वतों में विशेषतया शक्कर पर्वत के पूर्व-पश्चिम भाग अवश्य स्थापित करना चाहिए । मन्दर पर्वत पर स्थित कदम्ब के नीचे कामदेव, गंधमादन पर्वत पर स्थित जम्बूवृक्ष के नीचे गरुड़, उस विशाल (सवित्र) पर्वत के नीचे पूर्वाभिमुख सुवर्ण मूर्ति हंस और हैमसूर्ति सुरभी गौ दक्षिणाभिमुख स्थापित करे । ३-८। धान्यपर्वत की भाँति समस्त क्रियाओं को सुसम्पन्न करके मध्य में स्थापित किया हुआ पर्वत गुह्चरण में और शेष चार पर्वतों को ऋत्विजों को सादर समर्पित करे । उस समय इन मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए—सौभाग्य और अमृत के सारभूत शक्कर से संयुक्त शैलेन्द्र! तुम सदैव प्रदान करते रहो । क्योंकि देवों के अमृतदान करते समय अमृत की कुछ बूदें पृथिवी पर गिर पड़ी थी उसी से शक्कर का आविर्भाव हुआ अतः मेरी रक्षा करो । महाशैल! काम देव के धनुषमध्य से उत्पन्न होने वाली शक्कर से तुम संयुक्त हो अतः इस संसार सागर से मेरी रक्षा करो । इस विधान द्वारा शक्कर पर्वत का दान करने वाला मनुष्य पापरहित होकर शिवभक्ति की प्राप्ति करता है । पुनः अपने अनुचरों समेत सूर्य चन्द्र के समान प्रकाशित विमान द्वारा विष्णु लोक जाकर वहाँ सौ कल्प तक सुखानुभव करने के ऊपरांत सातो द्वीप का अधीश्वर होता है । ९-१५। और तीन जन्म तक उसी भाँति दीर्घजीवी एवं आरोग्य रहता है । सभी पर्वतों के निर्माण-दान में

स्वयं वा क्षारलवणमशनीयात्तदनुज्ञया

॥१६

पर्वतोपस्करं सर्वं प्रापयेद्ब्रह्मणालयम् । आसीत्पुरा ब्रह्मकल्पे धर्ममूर्तिर्नराधिपः ॥१७
सुदृच्छकस्य निहता येन दैत्याः सहस्रशः। सोमसूर्यादियो यस्य तेजसः विगतप्रभाः ॥१८
भवंति शतशो येन राजानोऽपि पराजिताः । यथेच्छकन्त्यरूपधारी च मनुष्योऽप्यपवारितः ॥१९
तस्य भानुमती नाम भायां त्रैलोक्यसुन्दरी । लक्ष्मीरिव च रूपेण निर्जितामःरसुन्दरी ॥२०
राजस्तस्याग्रभहिषी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । दशनारारीसहस्राणां मध्ये श्रीरिव राजते ॥२१
नृपकोटिसहस्रेण कदाचित्प्रमुच्यते । च कदाचित्स्थानगतं पप्रच्छ स्वं पुरोहितम्^१ ॥२२
विस्तयाविष्टहृदयो वसिष्ठिमृषिसत्तमम् । भगवन्केन धर्मेण भम लक्ष्मीरनुत्तमा ॥२३
कस्माच्च विपुलं तेजो मच्छरीरे सदोत्तमम् ॥२४

वशिष्ठ उवाच

पुरा लीलावती नाम वेद्यर शिवपरायणा । तथा दत्तश्चतुर्दश्यां गुरुवे लवणाच्चलः ॥२५
हेमवृक्षामरैः सार्द्धं यथावद्विधिपूर्वकः । शूद्रः सुवर्णकारस्तु नाम्ना शौण्डोभवतदा ॥२६
भूत्यो लीलावतीर्गेहे तेन हैमा विनिर्मिताः । तरदोऽमरमुख्याश्च श्रद्धायुक्तेन पार्थिव ॥२७
अतिरूपेण सम्पन्नान्घटयित्वा ततो हृदि । धर्मकार्यमतिं ज्ञात्वा नागृहीतं कथञ्चन ॥२८

यथाशक्ति भोजन से ब्राह्मणों को तृप्त करना चाहिए । तथा ब्राह्मणों की आज्ञा से स्वयं उस दिन लवण समेत भोजन करे । और पर्वदान की सभी वह वस्तु ब्राह्मण के घर भेजवा देना चाहिए । प्राचीनकाल में ब्रह्म कल्प के समय धर्म मूर्ति नामक एक राजा था, जिसने इन्द्र की मित्रता स्वीकार करने के नाते युद्ध में सहन्त्रों दैत्यों का वध किया था, चन्द्र सूर्य आदि देवों को अपने तेज द्वारा हतप्रभ किया और सैकड़ों राजाओं को पराजित किया था । उसने यथेच्छ रूप धारण कर अनेक मनुष्यों को भी अपवारित किया था । उसकी भानुमती नामक त्रैलोक्य सुन्दरी भार्या थी, जो लक्ष्मी की भाँति अपने रूप सौन्दर्य से देवाङ्गनाओं को भी पराजित किये थी । राजा की वह प्रधान रानी उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यारी थी, जो उनकी अन्य दश सहस्र रानियों में श्री की भाँति सुशोभित होती थी । उस राजा की आज्ञा शिरोधार्य करने के लिए सहस्रों एवं करोड़ों राजगण सदैव उनके समीप रहा करते थे । एक बार दरबार में पुरोहित के आने पर राजा ने आश्र्वर्य चकित होकर उनसे कहा—भगवन्! किस धर्म का परिणाम यह अनुपम लक्ष्मी मुझे मिली है और मेरी देह में इस प्रकार के उत्तम एवं विपुल तेज के होने क्या हेतु है? बताने की कृपा करे । १६-२४

वशिष्ठ द्वोले—पूर्वकाल में लीलावती नामक वेश्या थी, जो सदैव शिव भक्ति में तन्मय रहा करती थी । उसने चतुर्दशी के दिन सुवर्ण निर्मित वृक्ष और देवों की कांच्चनी प्रतिमा समेत सविधान लवणाच्चल गुरुचरण में सादर अर्पित किया था । शौण्ड नामक शूद्र सुवर्णकार (सोनार) लीलावती के यहाँ नौकर था, जिसने श्रद्धालु होकर सुवर्ण द्वारा वृक्षों और देव प्रतिमाओं का निर्माण किया था । पार्थिव! उस

१. पुरोधसम् ।

उज्ज्वालितास्तु तत्पत्न्या सौवर्णमरपादपाः । लीलावती गृहे पार्श्वं परिचर्य च पार्थिव ॥२९
 कृत ताम्यां प्रहर्षेण द्विजशुश्रूषणादिकम् । सा तु लीलावती वेश्या कालेन महता नृप ॥३०
 सर्वपापविनिर्मुक्ता जगाम शिवमन्दिरम् । योऽसौ सुदर्शकारश्च दरिद्रोऽप्यतिसतवान् ॥३१
 न मूल्यमादादेश्यातः स भवानिह सांप्रतम् । सप्तद्वीपपतिर्जातः सूर्यापुतसमप्रभः ॥३२
 यथा सुवर्णरचितास्तरवो हेमदेवताः । सम्प्रगुज्ज्वलिताः एत्ती सेयं भानुमती त्व ॥३३

उज्ज्वालनादुज्ज्वलरूपमस्याः सुज्ञतमस्मिन्बुद्वनाधिमपत्यम् ।
 तस्मात्कृतं तत्परिकर्मरात्रावनुद्वत्यां लवणाच्चलस्य ॥३४
 तस्माच्च लोकेष्वपराजितस्त्वमारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः ।
 तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्वं धान्याच्चलादीन्दशधा कुरुष्व ॥३५
 तथेति तस्म्पूज्य च धर्मसूर्ति वचो वशिष्ठस्य ददौ स सर्वान् ।
 धान्याच्चलादीन्कमशः पुरारेलोकं जगामामरपूज्यमानः ॥३६
 यश्चाधनः पश्यति दीयमानं भेरोः प्रदानमिह धर्मपरो मनुष्यः ।
 शृणोति भक्त्या परयाऽप्रमादी विकल्पः सोऽपि दिवं प्रयाति ॥३७

(सोनार) ने दृक्षों और देवों की अत्यन्त मुन्दर प्रतिमा बनाकर उसे धर्मकार्य समझ कर वेश्या से उसका पारिश्रमिक शुल्क (पेतन) नहीं लिया और उसकी पत्नी के उन देवों और दृक्षों की प्रतिमाओं को अत्यन्त देवीप्यमान किया था । पार्थिव! इस प्रकार लीलावती के घर रहकर वे दोनों उसकी परिचर्या (सेवा) कर रहे थे । उन दोनों ने अत्यन्त हर्षित होकर ब्राह्मणों की सेवा भी की थी । नृप! बहुत समय जीवन के पश्चात् निधन होने पर वह लीलावती वेश्या समस्त पापों से मुक्त होकर शिव मन्दिर चली गयी । वह सुवर्णकार (सोनार), जो दरिद्र होते हुए भी अत्यन्त साहस्री था और उस वेश्या से उसका मूल्य नहीं लिये था, आप हैं, जो दश सहस्र सूर्यों की प्रभा से भूषित होकर सातों द्वीप के अधीश्वर हुए हैं और जिसने उस सुवर्ण के दृक्ष एवं देवों की प्रतिमाओं को भली भाँति समुज्ज्वल रूप तथा तुम्हें भुवनों का अधिपत्य प्राप्त हुआ । इस प्रकार रात्रि में लवणाच्चल के निमित्त किये परिश्रम का परिणाम तुम्हें प्राप्त हुआ है, इसीलिए तुम लोक में अपराजित हो और आरोग्य सौभाग्य समेत लक्ष्मी की प्राप्ति हुई है । तुम इस समय भी धान्याच्चल आदि दश पर्वतों के दान अवश्य सुसम्पन्न करो । इस भाँति वशिष्ठ की बातें स्वीकार करके धर्मसूर्ति ने उन धान्याच्चल नाम के पर्वतों का दान क्रमशः सुसम्पन्न करके गुरु वशिष्ठ को अर्पित किया और अन्त में देवपूजित होकर शिव लोक की प्राप्ति की । भक्ति पूर्वक इस दान को देखने एवं सुनने वाला धर्मिक निर्धन मनुष्य भी पाप रहित होकर स्वर्ग की प्राप्ति करता है । नृपपुज्ज्व! इस प्रकार इन पर्वतों के आख्यान पढ़ने-सुनने वाले मनुष्यों के दुःस्वप्न शांत होते हैं, उनका संसार-भय दूर होता है और वह

दुःस्वरं प्रश्नमुपैति पठ्यमाने शैलेन्द्रे भवभयमेदने नराणाम् ।
यः कुर्यात्किमु नृपुड्डवोऽथ सम्यक्षांतात्मा हरिहरपुरमेति जन्तुः ॥३८
इति श्रीभद्रिये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिररामादे
शर्कराचलदानविधिवर्णनं नाम चतुरर्थिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०४

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सदाचारधर्मवर्णनम्

युधिष्ठिर उदाच

प्रतिपत्कमयोगेन तिथीनां विस्तरः श्रुतः । सरहस्यः समन्बन्धच प्रारम्भोद्यापनैः सह ॥१
नवग्रहमलात्सर्वं^१ होमकर्मावधारितम् । स्नानक्रमश्च विदितो विज्ञाताश्चोत्सवा मया ॥२
दानधर्मस्त्वशेषैण श्रुतः सर्वार्थदर्शितः । तडागोत्सर्जनविधिर्दितः पदपोत्सवः ॥३
एवं गतं मम सनो मुहूर्ते नधुसूदन । व्रतं कथयता कृष्ण तास्त्वाः संश्रित्य देवताः ॥४
देवानां देवकीपुत्र नानात्वं संप्रदर्शितम् । तिथिक्रमान्कथयता^२ पूजामन्त्रोधिवासनम् ॥५
व्यासाद्युमुनिभिः सर्वेद्यनियोगपरायणः । एक एवात्र निर्दिष्टो देवः^३ सर्वगतोऽव्ययः ॥६
वर्णश्रिमाचारधर्मः कस्मान्नात्र प्रदर्शितः । एते महर्षयस्तुष्टाः श्रोतुकामा भवद्वचः ॥७

शान्तात्मा विष्णु-शिव लोक की प्राप्ति करता है अतः जो इस दान को सम्पन्न करता है उसे क्या कहा जा सकता है । २५-३८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
शर्कराचलदानविधि वर्णन नामक दो सौ चार अध्याय समाप्त ॥२०४।

अध्याय २०५

सदाचार धर्म-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—मधुसूदन! मैं तो प्रतिपदा आदि तिथियों के क्रमशः विस्तृत वर्णन रहस्य मंत्र समेत प्रारम्भ उद्यापन विधान सुना । नवग्रह यज्ञ से होमकर्म, ज्ञान क्रम, समस्त उत्सव, निखिल दान धर्म, सरोवरों के उत्सर्जन विधान, वृक्षों के उत्सव आदि भी भलीभाँति जान लिया है । कृष्ण! इतना होते हुए भी मेरा मन (मुनने के लिए) मुख ही हो रहा है । अतः व्रत की व्याख्या करते हुए आप उनके देवता भी बतायें । देवकी पुत्र! तिथियों के क्रमानुसार वर्णन करते हुए आपने अनेक भाँति के देवों, पूजामन्त्र और उनके अधिवासन भी बता दिया है किन्तु ध्यान योग के पारायण करने वाले व्यास आदि मुनियों द्वारा निर्दिष्टि वह एक देव, जो सर्वव्यापक और अनश्वर है, तथा वर्णश्रिम के आचार धर्म, आप के नहीं बताये! जिसे आप की वाणी द्वारा जानने के लिए ये महर्षि गण भी अत्यन्त लालायित हो रहे हैं । १-७

१. पूर्वम् । २. क्रमयता । ३. विष्णुः ।

श्रीकृष्ण उवाच

व्रतदानैकलेशोऽयं कथितस्तव पार्थिव । विशेषतश्च शक्नोति वकुं यदि सरस्वती ॥८
 सर्वस्तरति दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यति । वर्णाश्रमाणां सामान्य इति १धर्मः प्रकीर्तिः ॥९
 कथितोऽयं व्रतस्त्वत्र देवानुद्दिश्य यो मया । परमार्थः स एवोक्तो देवस्तमुपधारय ॥१०
 यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स शहेश्वरः । महेश्वरः स्मृतः सूर्यः सूर्यः पावक उच्यते ॥११
 पावकः कार्तिकेयोऽज्ञौ कार्तिकेयो विनायकः । गौरी लक्ष्मीश्च सावित्री शक्तिशेदाः प्रकीर्तिताः ॥१२
 देवं देवों समुद्दिश्य यः करोति व्रतं नरः । न भेदस्तत्र ४भन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत् ॥१३
 बहुप्रकारा दमुद्धा भेदाः सागन्यनिलांभसाम् । परमार्थतश्चिंत्यमानोः न भेदः प्रतिभारते ॥१४
 कन्दित्वदेवं समाश्रित्य करोति किमपि व्रतम् । त्र्यीधर्मानुगं पार्थ एकं तत्रापि कारणम् ॥१५
 यश्चैव ते मया स्थातो व्रतदानविधिः परः । सकलः स तु विजेयः सदाचारवतां सताम् ॥१६

आचारहीनं न पुनर्नितं वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः ।

छंदांस्त्वेनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥१७

कपालस्थं यथा तोयं श्वदृतौ वा यथा पद्यः । दुष्टं स्यात्स्थानदोषैर्ग वृत्तहीने^१ तथा शुभम् ॥१८
 वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेति प्रयाति च । अहीनोवित्ततो हीनो वृत्तस्तु हतो हतः ॥१९

श्रीकृष्ण बोले—पार्थिव! मैंने तुम्हें व्रत और दान का एक लेश मात्र ही वर्णन सुनाया है, विशेषतः तो कभी हो सकता है यदि सरस्वती वर्णन कर सके । सभी इन कठिनाइयों को पार करते हुए कल्याण का दर्शन करें । यही श्रम का सामान्य धर्म बताया गया है । देवोंके उद्देश्य से मैंने जिस व्रत की व्याख्या सुनाई है, उसे परमार्थ समझो और देव को बता रहा हूँ, सुनो! जो ब्रह्मा है नहीं हरि है और हरि ही महेश्वर, महेश्वर सूर्य, सूर्य पावक, पावक कार्तिकेय तथा कार्तिकेय ही विनायक हैं । उसी भाँति गौरी, लक्ष्मी, और सावित्री, शक्तिशेद भेद रूप बतायी गयी हैं । देव अथवा देवी के उद्देश्य से जिस व्रत का विधान मनुष्य सुसम्पन्न करते हैं उसमें भेद नहीं मानना चाहिए यह सम्पूर्ण जगत् में शिवशक्तिमय रचित है । यद्यपि बहुत प्रकार की वसुधा और अग्नि, वायु एवं जल के भेद भली भाँति स्पष्ट हैं तथापि परमार्थ रूप से उन्हें देखने पर वे भेद नहीं दिखायी देते हैं । पार्थ! किसी भी देव के आश्रित रहकर मनुष्य जिस किसी व्रत को सुसम्पन्न करता है, उस वैदिक धर्म का वैदिक धर्म होना ही एक मुख्य कारण है । मैंने जो तुम्हें व्रत दान के विधान बताये हैं वे सदाचार शील एवं सज्जन प्राणी के लिए ही सकल होते हैं ॥८-१६॥ क्योंकि आचार हीन पुरुष को, यद्यपि उसने षड्ङ्ग समेत वेदों का अध्ययन किया है, वेद पुनीत नहीं करता है । पंख निकलने पर नीड़ (घोंसले) को त्यागने वाले पक्षियों की भाँति वेद उसे मृत्यु के समय छोड़ देता है । जिस प्रकार कपाल में स्थित जल और कुत्ते के चमड़े वाले मशक के जल की भाँति दूषित होने के नाते आचार हीन प्राणी के सभी शुभ-कर्म दुष्ट (दूषित) हो जाते हैं । इसलिए आचार की संरक्षा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए और वित्त (धन) तो आता-जाता रहता है । क्योंकि धनहीन प्राणी कभी धनबान् कहा जा सकता है किन्तु आचार से ऋष्ट होने पर वह सदैव के लिए नष्ट हो जाता है । राजन्! इस प्रकार ऋष्ट होने पर वह सदैव के लिए नष्ट हो जाता है । राजन्! इस प्रकार धर्म और कुल का मूल आचार ही

१. धर्मा: सनातना: । २. धन्तव्यः । ३. वृत्तस्तु मनोहरः ।

एवमाचारधर्मस्य भूलं राजन्कुलस्य च । आचाराद्वि च्युतो जन्तुर्नकुलीनो न धार्मिकः ॥२०
किं कुलेनोपदिष्टेन विपुलेन दुरात्मनाम् । कृमयः किं न जायन्ते कुसुमेषु सुगन्धेषु ॥२१
हीनजातिप्रसूतोऽपि शौचाचारसमन्वितः । सर्वधर्मर्थकुशलः सकुलीनः ॑सतां वरः ॥२२
न कुलं कुलमित्याहुराचारः कुलमुच्यते । आचारकुशलो राजन्निह चासुत्र नन्दते ॥२३

युधिष्ठिर उवाच

सदाचारमहं कृष्ण श्रोतुमिञ्छात्मि शाश्वतम् । सर्वधर्ममयः कोऽत्र सदाचारः प्रकीर्तिः ॥२४

श्रीकृष्ण उवाच

आचारप्रभवो धर्मः सन्तश्चाचारलक्षणाः । साधूनां च यथावृत्तं स सदाचार उच्यते ॥२५
तस्मात्कुर्यादिहाचारं य इच्छेदगतिमात्मनः^१ । अपि यापशरीरस्य आचारो हृत्यलक्षणम् ॥२६
अदृष्टभश्चुतं वेदं पुरुषं धर्मचार्यरूपम् । स्वानि कर्मणि कुर्वाणि तं जनं कुरुते प्रियम् ॥२७
ये नास्तिका नेष्ठिकास्त्रं गुशशास्त्रातिलिङ्गनः । अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः ॥२८
सर्वलक्षणहीनेऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्धानोनसूयश्च सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२९

है । आचार से च्युत होने पर प्राणी न कुलीन कहा जा सकता है और न धार्मिक । इसलिए दुष्टों के विशाल कुल को उपदेश देने से क्या लाभ हो सकता है, क्योंकि सुगन्धित पुष्पों में क्या कीड़े नहीं होते! अर्थात् सुगन्धित पुष्पों के भीतर उत्पन्न कीड़ों पर जिस प्रकार सुगन्ध का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है उसी भाँति दुष्टों के मन में सुन्दरेश का प्रभाव व्यर्थ हो जाता है । १७-२१। राजन्! हीन जाति में उत्पन्न होने पर भी वह मनुष्य यदि पवित्रता पूर्ण आचार से सम्पन्न रहता है तो वही समस्त धर्म अर्थ में कुशल (प्रवीण), कुलीन, और श्रेष्ठ कहा जाता है । क्योंकि कुल कोई नहीं अपितु आचार कुल कहा जाता है । इस आचार कुशल प्राणी लोक-परलोक सर्वत्र आनन्द प्राप्त करता है । २२-२३

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! मैं उस शाश्वत सदाचार सो सुनना चाहता हूँ, सर्व धर्ममय कौन सदाचार बताया गया है? बताने की कृपा करें! २४

श्रीकृष्ण बोले—धर्म आचार से उत्पन्न होता है अतः आचार धर्म का कारण कहा जाता है । और आचार के लक्षण सन्तों (साधुओं) में पाये जाते हैं इसलिए साधुओं के व्यवहार सदाचार कहे जाते हैं । अतः उत्तम गति के इच्छुक प्राणियों को सदाचार का पालन अवश्य करना चाहिए क्योंकि पापी के शरीरमें स्थित कुललक्षण (अनाचार) को भी आचार विनष्ट करता है (तथा उसे पवित्र कर देता है) । अदृश्य और अद्भुत वेद भी धार्मिक दुरुष को, अपने कर्मों को सुसम्पन्न करने के नाते (लोक) प्रिय बना देता है । इसलिए नास्तिक, नैष्ठिक, गुरु और शास्त्र की आज्ञाओंका उल्लंघन करने वाले, अधर्मी, दुराचारी क्षीणायु होते हैं । समस्त लक्षणों से रहित होने पर भी मनुष्य सदाचारी होनेके नाते श्रद्धालु और अनिन्दित होकर अपनी सभी कामनाएँ सफल करता है । २५-२९। धर्म और अर्थ (अपनी आजीविका) का

१. शताद्वारः । २. श्रेय तात्मनः । ३. अशरीरस्य धर्मस्य आचारो हृत्यलक्षणम् ।

आहो मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत । ब्राह्मणानलगो सूर्यान्नमेहेत कदाचन ॥३०
 उदझमुखो दिवारात्रावुत्सर्ग दक्षिणामुखः । उत्थाय च यस्तिष्ठेत पूर्वा सन्ध्यां समाहितः ॥३१
 एवमेवोत्तरं सन्ध्यां समुपासीत वाग्यतः । नेकेतादित्यमुघ्नं नास्तं यान्तं कदाचन ॥३२
 ऋषयो दीर्घतपसा दीर्घमायुरवाप्नुयः । उपासते देन पूर्वां द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम् ॥३३
 सर्वास्तान्धार्मिको राजा शूद्रकर्मणि योजयेत् । आबाधामु यथाकामं कुर्यान्मूत्रपुरीषयोः ॥३४
 शिरसा प्रादृतेनैव समास्तीर्य तुर्णैर्महीम् । यामावसथतीर्थानां झेत्राणां चैव वर्तमनि ॥३५
 न सूत्रमधितिष्ठेत न कृष्टे न च गोद्रजे । अन्तर्जलादावसथादुल्मीकान्मूत्रकस्थलात् ॥३६
 कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत्पञ्च वै मृदः । देवार्चनादिकार्याणि तथा गुरुद्विभादनम् ॥३७
 कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वद्वभुजि क्रियाम् । अफेनशब्दगंधाभिरद्विरच्छाभिरादरात् ॥३८
 आद्वामेत्प्रयतः सम्यक्प्राइमुखोऽदझमुखोपि वा । त्रिवर्गसाधनं यच्च 'सदा कार्यं विपश्चिता ॥३९
 तत्सान्निध्ये गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च । पादेन कार्यं पादत्रयं पादं कुर्याच्च सञ्चये ॥४०
 अर्धेनहारचणनित्यनैमित्तिकान्तकम् । अर्थस्योपार्जनं यत्नः सदा कार्यं विपश्चितैः ॥४१
 तत्संसिद्धौ हि सिद्धयन्ति 'धर्मकामादयो नृप । केशप्रसाधनादर्शदर्शनं दंतधावनम् ॥४२

चिन्तन करते मनुष्य को बह्य मूर्हत में (शर्या से) उठजाना चाहिए और ब्राह्मण अग्नि के समीप तथा सूर्योदय के समय मलत्याग कभी न करे अथात् सूर्योदय के पूर्व ही इस क्रिया से निवृत्त हो जाना चाहिए । दिन और रात्रि में क्रमशः उत्तराभिमुख और दक्षिणाभिमुख मलत्याग करके आचमन (कुल्ला), स्नान और प्रातः काल की संध्या उपासन करे और उसी भाँति पुनः मौन होकर सायं संध्या की उपासना करें । उदय अस्त इते समय सूर्य का कभी दर्शन न करे । क्योंकि इन्हीं क्रमों को सुसम्पन्न करने के नाते और दीर्घतप द्वारा क्रृषिगण दीर्घायु प्राप्त करते हैं । प्रातः काल और सायं की संध्या न करने वाले द्विजों को राजा शूद्र कर्म में लगाये । निवाध स्थानों में यद्येच्छ गलमूत्रका त्याग करना चाहिए । उस समय शिर को ढके हुए मलत्याग करके की भूमि भी तृणों से आच्छादितकर, मलत्याग करे । गाँव, गृह तीर्थ स्थान, क्षेत्रों (खेतों) के मार्ग, जोती भूमि और गौओं के रहने के स्थान में मूत्र त्याग (पेशाब) न करना चाहिए । मलत्याग करने के अनन्तर जल के भीतर, गृह वल्मीकि एवं चूहों की बिल और मलत्याग होने के समीप वाला भूमि, इन पाँच स्थानों से (अशुद्धि के कारण) मिट्टी नहीं लेनी चाहिए । देवों की अर्चना करके गुह की पूजा करना चाहिए तथा उसी प्रकार अन्न भोजन भी आचमन पूर्वक ही करे । फेन तथा शक और गंध रहित स्वच्छ जल से सादर आचमन पूर्वभिमुख या उत्तराभिमुख होकर सदैव मनुष्य को करना चाहिए क्योंकि वह त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का साधन बताया गया है उसी द्वारा गृहस्थ के लोक-परलोक की सिद्धि भी होती है । अपनी आय का चौथाई (एक भाग) परलोक के कार्यों में, एक भाग का संचय तथा आधेभाग से भोजन और नित्य नैमित्तिक कार्यों को सम्पन्न करे । नृप! धनोपार्जन में विद्वानों को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि अर्थ सिद्धि द्वारा ही धर्म अर्थ एवं कामनाओं की सिद्धि होती है । ३०-४१। केश प्रसाधन (शिर के बालों को सँवारना), दर्पण देखना, दातून करना, और देवपूजन

१. कर्तव्यं गृहमेधिना । २. कर्मकर्मदियः ।

पूर्वाह्नि एव कार्यणि देवतानां च पूजनम् । द्वारादावसथान्मूत्रं द्वारात्पादावसेचनम् ॥४३
 उच्छिष्टोत्सर्जनं द्वारात्सदा कार्यं हितैषिणा । लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ॥४४
 नित्योच्छिष्टः संकरकृन्नेहागुर्विदते महत् । नग्रां परस्त्रियं नेकेन्नपश्येदात्मनः शकृत् ॥४५
 उदव्यादर्शनस्पर्शं कुर्यात्संभावणं न च ! नाम्नु मूत्रं पुरीषु वा मैथुनं वा समाचरेत् ॥४६
 नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रे केशभस्मवपालिकान् । तुषांगारास्थिर्णार्णिनि रज्ञुवस्त्रादिकानि च ॥४७
 धारिणो न नमेद्विद्वान्नासनं चापि दापयेत् । आहुणान्धणमेद्विद्वानासनं चापि दापयेत् ॥४८
 कृतांजलिरूपातीत गच्छतं पृष्ठतोन्दियात् । न चासीतासने भिन्ने भिन्नं कांस्यं च वर्जयेत् ॥४९
 नामुरुक्तेशैर्भौत्कृत्यं न ननः स्नानमाचरेत् । स्वप्तव्यं नैव नप्नेन नोच्छिष्टस्तु संविशेत् ॥५०
 उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वं प्राणास्तदाश्रयाः । केशग्रहान्प्रहारं च शिरस्येतानि वर्जयेत् ॥५१
 नान्यत्र पुत्रशिष्याभ्यां शिखया ताडनं स्मृतम् ।^१ न पाणिभ्यां संहताभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ॥५२
 न चामीक्षणं शिरःस्नानं कार्यं निष्कारणं नरैः । अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥५३
 न भुक्तोत्तरकालं च न गम्भीरजलाशये । शिरःस्नानं तु तैलेन नांगं किंचिदुपस्थृतेत् ॥५४
 तिलापिष्टं च नाशनीयात्थास्यायुर्न हीयते । दुष्कृतं न गुरोर्बूयात्कुद्दं चैनं प्रसादयेत् ॥५५

क्रियाएँ पूर्वाह्नि के समय ही करना चाहिए । घर से दूर मूत्रत्याग, पादप्रकालन, और (पाकालय के) जूठे अन्नादि फेंकना चाहिए । हाथ से मिट्टी मलते रहने, (नाखूनों से) तृणच्छेदन, नख से नख काटने, नित्य उच्छिष्ट (जूठा भोजन करने वाले), और जार पुरुष होकर संकर (वर्णसंकर) की उत्पत्ति करने वाले मनुष्य दीर्घीजीवी नहीं होते हैं । दूसरे की नग्नस्त्री, और अपना मल नहीं देखना चाहिए । रजस्वला स्त्री का दर्शन, स्पर्श और उसके साथ सभाषण, तथा जल में मल-मूत्र का त्याग एवं मैथुन नहीं करना चाहिए । मूत्र में मलत्याग न करे । केश, भस्म, कपाल, तुषांगार (भूसी की अग्नि) और अस्त्रि (हड्डी) मिक्षित रसी या वस्त्रादि धारण करने वाले पुरुष को न नमस्कार करे और न आसन प्रदान करे । केवल ब्राह्मणों को ही नमस्कार और आसन प्रदान करे और सेवा करने के उपरांत जब वे जाने लगें तो उनके पीछे (कुछ दूर) सादर उनका अनुगमन भी करे । उनके पृथक् आसन और पृथक् कांस्यपात्र भी न होने चाहिए । केश बाँधे भोजन, नग्न स्नान, नग्न शयन और जूठामुख किये शयन न करे । उच्छिष्ट (जूठे मुख) शिर स्पर्श न करे क्योंकि समस्त प्राण आदि उसी के आश्रित रहते हैं । उसी भाँति (किसी के) शिर के बालों को न पकड़ना चाहिए और न शिर पर प्रहार ही करें । पुत्र तथा शिष्य की शिखा (चोटी) पकड़ कर कभी न मारे और दोनों हाथों को मिलाकर अपना शिर कभी न खुजलाये । मनुष्य को निष्प्रयोजन बार-बार शिर से स्नान न करना चाहिए । क्योंकि ग्रहण समय के अतिरिक्त बार-बार शिर से स्नान करना निन्दित बताया गया है । भोजनोपरांत किसी गम्भीर जलाशय में शिर से स्नान और अंग में तैलमर्दन न करे । तिल की पीठी का भोजन न करना चाहिए, क्योंकि गरिष्ठ होने ने नाते देरी से पचता है । गुरु को कभी कटुवाक्य न कहे अपितु कुद्द देखकर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न

१. समारभेत । २. न संहताभ्यां हस्तभ्यां कंडूयादात्मानः शिरः ।

परीवादं च शृणुयादन्येषामपि जल्पताम् । तदानुपहतास्तिष्ठेत्प्रशस्ताश्च तथौषधीः ॥५६
 गारुडानि च रत्नानि बिभृयात्प्रयतो नरः । सुस्तिग्राधामलकेशश्चसुगन्धिशचारुवेषधृक् ॥५७
 सिताः सुमनलो द्व्यात् बिभृयाच्च नरः सदा । किञ्चित्परस्वं न हरेन्नाल्पप्याप्रियं वदेत् ॥५८
 प्रियं च नानृतं ब्रूयान्नान्यदोषानुदीरयेत् । नान्याश्रितं तथा वैरं रोचयेत्पुरुषेभ्वरः ॥५९
 न दुष्ट्यानमारोहेत्कूलच्छायां न संश्रेयत् । विद्विष्टपतितोऽन्नतबहुवैरादिसंकरैः ॥६०
 बन्धकांबन्धकीर्भत्कुद्रानृतकयैः सह । तथातिव्यशीलैश्च घरिवादरत्तैः शठैः ॥६१
 बुधों मैत्रीं न कुर्वीत नैकः पन्थनमाश्रयेत् । नावागाहेज्जलौघस्य वेगमग्रे नरेभ्वर ॥६२
 प्रदीप्तं वेशम न विशेषारोहेच्छिखरं तरोः । न हुंकुर्यच्छवं चैव शवगन्धा हि सोमजः ॥६३
 न कुर्याद्वित्सद्वृष्टं न कुर्याच्छलासिकाम् । नासंस्पृष्टमुखो ब्रूयाच्छवासकासौ च वर्जयेत् ॥६४
 नोच्चैर्हमेत्सशब्दं^१ च न मुच्चेत्पवनं बुधः । नखान्न वादयेच्छिद्यान्न नखैश्च महीं लिखेत् ॥६५
 न इमशु भक्षयेच्छैव न लोज्ठानि च मर्दयेत् । पादेन नाकमेत्पादं न पूज्याभिमुखं नयेत् ॥६६
 नोच्चासने समासीत गुरोरये कदाचत । तस्मात्सदाचारपरो भवेत्कासचरो न हि ॥६७
 लोकद्वये शुभं प्रेष्टुः प्रेत्य स्वर्गं महीयते । चतुष्पथं चैत्यतरुं इमशानोपवनानि च ॥६८

करे । दूसरे की भी निन्दा न मुने । सदैव प्रसन्नमुख मुद्रा में रहना चाहिए । मनुष्यों को प्रशस्त औषधी और गारुड रत्न प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिए । निर्गम निर्मल केश एवं सुगन्ध लगाकर, श्वेत वर्ण के प्रिय पुष्पों की माला धारण किये मनुष्यों को सदैव अपना सुन्दर वेष बनाये रखना चाहिए । किसी पराये का अल्प धनापहरण न करे, कभी भी अप्रिय बात न करे । ४२-५८! असत्य विप्र भाषण न करे, न अन्य के दोष का प्रचार करे । पुरुषों को दूसरे का वैर (झगड़ा) न अपनाना चाहिए । किसी दोष पूर्ण सवारी पर न बैठें, कभी नदीं तट की छाया में विश्राम न करे । विद्वेषी, पतित, उन्मत्त, अनेक भाँति के वैर आदि करने का व्यसनी, कुलटा स्त्री और उसके पति, (विचार के) क्षुद्र व्यक्ति, ज्ञठी कथाओं के कहने वाले, अति व्यय करने वाले, और दूसरे की सतत निन्दा करने वाले एव शठ मनुष्यों के साथ विद्वानों को कभी मैत्री न करनी चाहिए । न रेश्वर! अकेले मार्ग न चले, किसी जल सपूह के वेग के सामने स्नान न करे । जलते हुए धर में प्रवेश न करें, किसी वृक्ष के शिखर (ऊपरी) भाग पर आरोहण न करे । किसी शव को देख कर 'हुं' न कहें, क्योंकि शव का गन्ध सोम से उत्पन्न होना बताया जाता है । दाँतों के संघर्ष (दाँतों से दाँतों को काटना), और नासिका चच्चल न करनी चाहिए । भलीभाँति विना मुख शुद्ध किये न बोले न दीर्घनिःश्वास (लम्बी सांस) न ले और न खासे । बल पूर्वक शब्द समेत (ठड़ामार के) न हंसे और शब्द (ध्वनि) समेत मुख से वायु न निकाले । न नख से बजाये, न कोई वस्तु (या नख ही) काटे और न नखों से भूमि में ऐसा करे । इमशु (दाढ़ी) का मुख में स्पर्श न करे, हाथ से मिट्टी मलने का अम्यास न करे । चरण के ऊपर चरण न रखे और न किसी पूज्य के सम्मुख करे । गुरुजनों के सम्मुख किसी ऊँचे आसन पर न बैठे । इसलिए सदैव सदाचारी बने रहने का प्रयत्न करे, स्वच्छाचारी का नहीं । क्योंकि उससे दोनों लोक में शुभ की प्राप्ति पूर्वक अन्त में स्वर्ग, सम्मान प्राप्त होता है । ५९-६७। रात्रि में सर्वदा

१. सनादं च ।

दुष्टस्त्रीसंनिकर्षं च वर्जयेत्निशि सर्वदा । ग्रीष्मवर्षासु चच्छत्री मौनी रात्रौ बनेतु च ॥६९
 केरास्थिकण्टकामेध्यबलिभस्मतुषांस्तथा । स्नानाद्वार्ण धरणीं चैव दूरतः परिवर्जयेत् ॥७०
 पन्था देयो ब्राह्मणेभ्यो राजभ्यः स्त्रीभ्य एव च । विद्याधिकस्य गुर्विष्ण्या भारार्तस्य महीयसः ॥७१
 मूकान्धबधिराणां च मत्स्योन्मत्तकस्य च । उपानद्वस्त्रमालां च धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥७२
 न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते । धादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥७३
 न चेष्य स्त्रीषु कर्तव्या दारा रक्ष्याः प्रयत्नतः । अनायुष्या भवेदीष्या तस्मातां परिवर्जयेत् ॥७४
 मूर्खोन्मत्तव्यसन्निनो दिल्लापान्मानिनंस्तथा । हीनांगाऽन्धिकाङ्गांश्च विद्याहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥७५
 पानीयस्य क्रिया नक्तं तथैव दधिमत्त्व । वर्जनीया नहाराज निशीथे भोजनक्रियाः ॥७६
 तोर्धर्वजानुश्चिरं तिष्ठेन्न रहस्यपरो भवेत् । तद्वन्नोपविशेषान्नः पादेनाङ्गान्य वासनम् ॥७७
 न चातिरक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा । न च कुर्याद्विपर्यासं वाससो न दिभूषणे ॥७८
 स्त्रीं कृशां नावजानीयादीर्घमायुर्जिजीविषुः । ब्राह्मणं क्षत्रियं सर्वं सर्वं ह्याशीविषोपासाः ॥७९
 हन्यादाशीविषः कुद्दो यावत्स्पृशति दंष्ट्रया । क्षत्रियोऽपि दहेत्कुद्दो यावत्पश्यति तेजसा ॥८०
 ब्राह्मणं सकुलं हन्याद्वयाने नावेक्षितेन च । नातिकलं नातिसायं न च मध्यं दिने तथा ॥८१
 नाज्ञातैः सह गंतव्यं नैकेन बहुभिः सह । नास्तुंदुः स्यान्न परोक्षवादी न सही न नः ॥८२
 रोहते चाग्निना दग्धं वनं परशुना हतम् । वचो दुरक्तबीभत्सं न संरोहति चाशतम् ॥८३

चौराहे, चैत्य वृक्ष, इमशान के उपवन और दुष्ट स्त्री से दूर रहना चाहिए । ग्रीष्म और वर्षा काल में छाता लगायें और रात्रि तथा वन में मौन रहने केण, अस्थि, कण्टक (कॉटे), अपावित्र बलि, भस्म, भूसी, स्नान रो गीली, भूमि दूर से त्याग करना चाहिए । ब्राह्मणों, राजाओं, स्त्रियों तथा विद्वान्, गर्भिजी और महान् भारवाही पुरुषों का मार्ग दूर से छोड़ देना चाहिए । ६८-७०। उसी भाँति मूक (गूरे) बधिर, अन्धे, मत्त और उन्मत्त का भी मार्ग छोड़ दे । दूसरे का उपानह, जूते, वस्त्र और माला न धारण करे । लोक में उस प्रकार का क्षीणायु बनाने वाला अन्य कोई कर्म नहीं हैं जितना कि परस्त्री का उपभोग । स्त्रियों से कभी भी ईर्ष्या न करके प्रयत्न पूर्वक सदैव उनकी रक्षा ही करनी चाहिए क्योंकि ईर्ष्या अल्पायु बनाती हैं अतः उसका त्याग ही करना चाहिए । मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, कुरुप, मानी, हीनांग, अधिकाङ्ग और विद्याहीन प्राणियों की निन्दा न करे । महाराज! नक्त व्रत में पानीय क्रिया, दही, सतूं और निशीथ (मध्यरात्रि) में भोजन करना वर्जित है । ऊपर धुटने पर चिर काल तक न ठहरे, रहस्यात्मक न बने, और चरण से विस्तरे को लपेटे न बैठे । उसी प्रकार अत्यन्त रक्त, चित्र-विचित्र और काले वस्त्र न धारण करे तथा भूषण-वस्त्र में उलट-फेर न करे । दीर्घजीवन के इच्छुक को कभी दुबली-पतली स्त्री का अपमान न करना चाहिए । ब्राह्मण, या क्षत्रिय, ये सभी सर्प की भाँति होते हैं, अतः इनसे सदैव सतक्रिरहें । क्योंकि सर्प कुद्द होने पर दाँत से काटता है, कुद्द क्षत्रिय भी अपने तेज बल द्वारा (वादी) को समूल नष्ट करता है और ब्राह्मण तो ध्यान करने और देखने मात्र से उसे कुल समेत नष्ट कर देते हैं । अत्यन्त प्रातः काल दोपहर और संध्या समय, अपरिचित के साथ, अकेले तथा अनेकों के साथ यात्रा न करें । ७१-८१। किसी के मर्मस्थल में पीड़ा न पहुँचायें, न परोक्ष होने और परशु (कुल्हाड़े) से काटने पर भी वन (के वृक्ष गण). अकुरुत हो जाते हैं किन्तु प्रतिवादी के वीभत्सवचन से मर्महत होने पर प्राणी कदापि पल्लवित नहीं हो

नास्तिक्यं वेदनिंदां च देवतानां च कुत्सनम् । द्वेषस्तंभादिमोनस्य क्लैब्यं च परिवर्जयेत् ॥८४
 न ब्राह्मणं परिवेन्न नक्षत्राणि दर्शयेत् । तिथिं पक्षस्य न ब्रूयाद्यास्यायुर्नरिष्यते ॥८५
 तेजो निष्ठीव्य वासश्च परिधायाचमेदबुधः । जितामित्रो नृपो यश्च बलवान्कर्मतत्परः ॥८६
 तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कृतकृत्यः पत्तो मुखम् । पौराः सुसंहता यत्र सततन्यायवर्तिनः ॥८७
 यत्र यस्त्रियोऽभृत्सरिष्यस्तत्र वासः मुखोदयः । यस्मिन्कृषीवालः राष्ट्रे प्रायशो नातिभाषिणः ॥८८
 यत्रौपधान्यशेषाणिवसेत्तत्र विचक्षणः । तत्र राजन्न वस्तव्यं दत्रैतत्रितयं सदा ॥८९
 निर्गीषुः पूर्ववैरं न जनश्च विरतोत्सयः । तत्र राजन्न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ॥९०
 ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी । विलोक्यो न चादर्शो मलिनो बुद्धिमत्तरैः ॥९१
 न च रात्रो महाराज्ञ दीर्घराज्यमभीप्सता । हेमकारगृहे चान्नानश्चीयान्न च विश्वसेत् ॥९२
 न च मित्रं प्रकुर्वीत हेमकारं कदाचनः भिन्नभांडं च खट्वां च कुक्कुरं कुक्कुटं तथा ॥९३
 अप्रशस्तानि चत्वारि ये च वृक्षाः सकंटकाः । भिन्नभांडे बलिः प्रादः खट्यायां चेह निश्चयः ॥९४
 नाशनंति पितरस्तस्य यत्र कुक्कुरकुक्कुटौ । दृक्षमूले पिशाचानां सर्वेषामेव संस्थितिः ॥९५
 अतस्तेषां तत्त्वे भुजन्नश्चेष्यशोणितम् । असंस्कृतान्नभुजमूलं बालादिप्रभवं स्वयम् ॥९६
 सुवासिनीं गुर्विणीं च वृद्धांबालातुरांस्तथा । भोजयेत्संकृतान्नेत प्रथमं चरमं गृही ॥९७

सकता है । नास्तिकता, वेदनिन्दा, देवों की निन्दा और द्वेष स्तम्भादि मान की कृपणता से सदैव दूर रहना चाहिए । ब्राह्मण से कलह तथा नक्षत्र दर्शन न करना चाहिए एवं तिथियों आदि के बताने का कार्य भी न करे क्योंकि इससे आशु श्लेष होती है । गर्भाधान होने और वस्त्र धारण करने पर विद्वान् को आचमन करना चाहिए । शत्रुजेता राजा के निकट, जो बलवान् और अपने कर्मों में सदैव तत्पर रहता है, सुखदर्शन निवास कर बुद्धिमान् को कृतकृत्य हो जाना चाहिए । क्योंकि जिस स्थान के निवासी आपस में सुसंगठित रहते और न्याय प्रिय होते हैं तथा स्त्रियां आपस में ईर्ष्या द्वेष नहीं करती हैं वहाँ का जीवन सुखमय होता है । जिस राष्ट्र में प्रायः खेतिहर किसान (प्रजाएँ) अतिभाषी नहीं होते और समस्त औषधियाँ सुलभ रहती हैं वहाँ बुद्धिमान् को अवश्य निवास करना चाहिए । राजन्! जहाँ आपस के एक दूसरे की विजय के इच्छुक, पूर्व वैर के स्मरण करने वाले एवं उत्सवों आदि से उदासीन रहने वाली जनता, ये तीनों का साथ हो वहाँ कदापि निवास न करे । राजन्! उसी भाँति जहाँ ऋणदाता, वैद्य, वेदपाठी विद्वान्, सदैव जल पूर्ण नदी, ये चारों न हों, वहाँ कदापि निवास न करे । बुद्धिमान् मनुष्य को मलिन दर्पण में कभी भी मुख दर्शन न करना चाहिए । महाराज! दीर्घ काल तक राज्य सुखोपभोग के इच्छुक राजाओं को रात्रिं में सुवर्णकार (सोनार) के यहाँ अन्न भोजन और उसका विश्वास कभी न करना चाहिए । सोनार को कभी मित्र भी न बनाना चाहिए । टूटा-फूटा पात्र, खट्टा (चारपाई), कुत्ते और मुर्ग, इन चारों समेत काँटेवाला भी अप्रशस्त बताये गये हैं । क्योंकि टूटे-फूटे पात्र में बलि प्रदान, खट्टा में शयन, तथा कुत्ते-मुर्ग वालों के घर पितर कभी भी भोजन नहीं करते और न वृप्त होते हैं । वृक्ष के मूल भाग में सभी पिशाचां की स्थिति होती है इसलिए उसके नीचे भोजन करना पूप (पीव) और शोणित का भोजन करना है । वहाँ कच्चे अन्न का भक्षण भी बालादि जनित धूत्र के समान होता है । सुवासिनी सभी गर्भिणी, वृद्धा, चपल बच्चे को घर में सबसे प्रथम भोजन कराना चाहिए । ८२-९७। गौ,

अथं स केवलं भुक्ते बद्धगोवाहनादिकम् । यो भुक्ते च बहिर्ज्येष्ठप्रेक्षतामप्लाय च ॥१८
 वैश्वदेवं ततः कुर्याद्यवादहुतयः क्रमात् । प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात्प्रजानां पतये ततः ॥१९
 तृतीयां चैव गुह्येभ्यः कश्यपाय तथा पराम् । तत श्वानुसते दद्याद्दत्वा गृहबलिं ततः ॥२००
 पूर्वाल्यातं मया यत्ते नित्यकर्मक्षियाविधौ । दद्यादथ धर्मत्रीणां दद्यात्तु मणिकत्रयम् ॥२०१
 प्राच्यादिकमयोगेन इन्द्रादीनां बलिं क्षिपेत् । ब्रह्मणे चात्मत्रिक्षाय सूर्याय च यथाक्रमम् ॥२०२
 विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्यो विभ्नभूतेभ्य एव च । कृत्वापसङ्गं वायवः यक्षमैतते निवेदयेत् ॥२०३
 तत्सचाग्रं समुद्धृत्य हृत्कारोकपल्पितम् । यथाविधि यथान्यायं ब्राह्मणायोपगादयेत् ॥२०४
 दत्त्वा विधिभ्यो देवेभ्यो गुह्यः सुश्रुताय च । गुणगंधांबरधरो मात्यधारी नरेश्वर ॥२०५
 नैकवस्त्रधरोऽश्नीन्नाद्रिपादो महीपते । विशुद्धवदनः प्रीतो भुज्जीत न विदिष्मुखः ॥२०६
 प्राइमुखोदद्विमुखो वापि न चैदान्यमना नरः । कुत्सितेन हतं चैव जुगुप्सावादसंस्कृतम् ॥२०७
 दत्त्वा तु भुक्ते शिष्टे भ्यः क्षुधितेभ्यस्तथा गृही । प्रशस्तशुद्धपात्रेष्व भुज्जीताकुपितो नृप ॥२०८
 नासंदीसंस्थिते पात्रे नादेशे च नरेश्वर । ना काले नातिसंकीर्णे दत्त्वाग्रं च नरो रही ॥२०९
 अश्नीयात्तमयो भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् । लवणोग्रौततः पश्चात्कटूतीक्षणादिकं ततः ॥२१०
 मार्दवंपुरुषोऽन्नवै मध्ये च कठिनाशनम् । अंते पुनर्द्वाशीच नरो रोगेण मुच्यते ॥२११

वाहन आदि को बाँधे हुए, वाहर भोजन करने वाले जो अपने बड़ों के देखते उन्हें न देकर भोजन कर लेते हैं, लोग केवल पापभोजन करते हैं अब नहीं। आहुतियों के क्रमानुसार वैश्वदेव करना चाहिए—प्रथम आहुति ब्रह्मा के लिए, दूसरी प्रजापति, तीसरी गुह्य, चौथी कश्यप और पाँचवीं आहुति अनुमति को देनी चाहिए। गृह बलि देने के उपरांत जिनको मैने नित्य कर्म विधान में संकेत किया है उन्हें मिट्टी के तीन बड़े कलश प्रदान करना चाहिए। पूर्वादि दिशाओं में क्रमानुसार इन्द्र आदि को बलि प्रदान करे। उसी भाँति ब्रह्मा, अत्तरिक्ष, सूर्य को ब्रमणः बलि देकर अपसव्य (दाँये कन्धे से दाहिने कन्धे पर यज्ञोपवीत करके), विश्वेदेव और विश्वभूत को वायव्य कोण में बलिप्रदान करे। सर्वप्रथम उसका अग्रभाग सहर्ष यथाविधान यथान्याय किसी ब्राह्मण को अर्पित करे। नरेश्वर! इस भाँति सविधान देवों, गुरुजनों और वेदपाठी ब्राह्मणों को तृप्त कर स्वयं पुष्प सुगन्धित वस्त्र और माला धारण कर एक ही वस्त्र लिए और आर्द्रपाद (तुरन्त चरण धोकर) भोजन करे किन्तु विदिशाओं (कोणे) में मुख करके नहीं, अपितु पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर। भोजन समय भोजन के अतिरिक्त और निन्दित एवं वद भोजन नष्ट हो जाता है। नृप! अन्यमनस्क होने से वह भोजन नष्ट हो जाता है। नृप! शिष्ट (शास्त्रानुगामी) तथा क्षुधापीडित ब्राह्मणों को प्रथम भोजन तृप्त करके किसी शुद्ध और प्रशस्त पात्र में गृहस्थ को प्रेम पूर्वक भोजन करना चाहिए। १८-१०८। नरेश्वर! खट्टा (चारपाई) स्थित पात्र में, अदेश, अकाल और अति संकीर्ण स्थान में बलि प्रदान न कर इससे भिन्न एवं प्रशस्त स्थान में देना चाहिए। पश्चात् तन्मय होकर भोजन करते समय सर्वप्रथम मधुर रस का भोजन करे, तदनन्तर लवण रस से बनाया हुआ उग्र और उसके पीछे कटु तथा तीक्ष्ण रस का आस्वादन करे। मृदु पदार्थ भक्षण करते हुए पुरुष को मध्य में कठिन (गुरु) पदार्थ और अन्त में द्रव (रसदार) पदार्थ का भक्षण करना चाहिए,

दिवाधानासु वसति रात्रौ च दधिसक्तुषु । अलक्ष्मीः कोविदारेषु मर्वदैवं कृतालया ॥११२
अनिंद्यं भक्षयेन्नित्यं द्वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् । भुक्ता सम्यग्यथाच्चम्य प्राइमुखोद्भुखोऽपि वा ॥११३
यथावत्पुनराचामेत्याणी प्रक्षाल्य यत्नतः । अभीष्टदेवतानां च कुर्वते स्मरणं नरः ॥११४
प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा । अन्नं पुष्टिकरं चास्तु ममाद्याव्याहतं सुखम् ॥११५

अगस्तिरग्निर्वर्डवानलश्च भुक्तं प्रप्राप्नं जरदत्तवशेषम् ।

सुखं च मे तत्परिणाशसंभवं यच्छत्वरोगं खलु वासुदेवः ॥११६

इत्युच्चार्थस्वहस्तेन परिमार्ज्यं तथोदरम् । अनायासप्रदायीति कुर्यात्कर्माण्यतांद्रितः ॥११७
रांध्यायां पथिकः कश्चित्समागच्छति भारत । पादशौचासनैः प्रह्लः स्वगतोक्यः च पूजयेत् ॥११८
तत्तत्त्वान्नप्रदानेन शयनेन च पार्थिव । दिवा तिथौ च विमुखोग्रदेकं पातकं भवेत् ॥११९
तदेवाष्टगुणं पुंसां सूर्ये ह्यमुखे गते । गच्छेच्छ्यामस्फुटितामपि दार्हयीं नृप ॥१२०
नाविश्शालां न वा भज्ञां नासाणां मलिनां न च । न च जंतुसर्यो शश्यां समातिष्ठेदनापदि ॥१२१
प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं याम्यायामपि भूपते । सदैव रज्यतं पुंसां विपरीतं तु रोगदम् ॥१२२
ऋतावुपगमः शस्तः सपत्न्यां हृवनीपते । पुण्यर्क्षे च शुभे काले पुत्रा युग्मासु रात्रिषु ॥१२३
न चासनातां स्त्रियं गच्छेदगर्भिणीं न रजस्वलाम् । नानिष्टां वै न कुपितां नाशस्तां न च रोगिणीम् ॥१२४

उससे वह रोग मुक्त होता है । १०९-१११ दिन में भूने हुए जवा (बहुरी), रात्रि में दही और सूतू तथा कचनार में अलदत्री (दुर्भार्य) का सदैव निवास रहता है । अतः उस समय उनके सेवन न करे । नित्य पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख मौन रहकर अन्न की निन्दा न कर अनिन्दित अन्न का भक्षण करे और भोजनोपरांत आचमन (कुल्ला) से कर भली भाँति मुख शुद्ध करे । भले पक्कार से दोनों हाथ शुद्ध कर तथा आचमन (कुल्ला) करके अभीष्ट देवताओं का स्मरण करे—प्राण अपान, समान, उदान, और व्यान, ये समस्त वायुगण मेरे उदरस्थ अन्न की पुष्टि करने की कृपा करें । जिससे मुझे निर्वाध सुख की प्राप्ति हो । अगस्त्य, अग्नि तथा बडवानल, ये तीनों मेरे उदरस्थ समस्त अन्न (जठराग्नि द्वारा) परिपक्व करें और भगवान् वासुदेव उसके परिणाम रूप सुख आरोग्य प्रदान करें । ऐसा कहते हुए अपने हाथ से समस्त उदर भाग का स्पर्श करके पुनः अत्यं प्रयास बाले कर्मों को निरालस होकर करे । भारत! यदि संघ्या समय पर किसी पथिक का आगमन हो जाये तो, 'आइये आप का स्वागत है' कहते हुए हाथ-पैर धोने आदि के जल और आसन, भोजन, शयन, आदि द्वारा उसे पूजित करे । पार्थिव! दिन में अस्यागत के विमुख होकर लौट जाने पर एक ही धातक होता है किन्तु सायंकाल के समय उसके निराश लौटने पर उसका आठगुना अधिक धातक होता है । नृप! सुन्दर काष्ठ की शय्या पर भी शयन करे किन्तु छोटी, भग्न, असम (टेढ़ी) मलिन, और जीव वाली शय्या पर विपत्तियों के अतिरिक्त कभी न शयन करे । ११२-१२१। भूपते! पुरुषों को शयन के समय सदैव पूर्व अथवा दक्षिण दिशा की ओर शिर रखना प्रशस्त कहा गया है तथा उससे विपरीत दिशा में रोग प्रद बताया है । अवनीपते! प्रथम स्त्री के अन्त काल उपस्थित होने पर सपत्नी (दूसरी स्त्री) में सम्भोग करना प्रशस्त कहा गया है, परन्तु, पुण्य नक्षत्र, शुभ काल और युग्म रात्रि में उसका भी उपयोग करे जिससे पुत्रों की उत्पत्ति हो । और विना स्नान की हुए स्त्री, गर्भिणी, रजस्वला, अनिष्ट,

नादशिणां नान्यकामां नाकामां नान्ययोषितम् । मुक्षामामत्यभुक्तां च स्वयं चैभिर्गुण्युतः ॥१२५
 स्नातः सुगन्धधृग्धृष्टो न श्रांतः क्षुधितोऽपि दा : सकामः सानुरागश्च व्यवायं पुरुषो व्रजेत् ॥१२६
 चतुर्दश्यां तथाष्टस्यां पञ्चदश्यां च पर्वसु । तैलाभ्यङ्गं तथा भोगान्योषितश्च विवर्जयेत् ॥१२७
 क्षुरकर्मणि चांते च स्त्रीसंभोगे च भारत । स्नायीत चैलबान्प्रातः कटभूमिसुपेत्य च ॥१२८
 मुरोः पतिव्रतानां च तथा यज्ञतपस्विनाम् । परीवादं न कुर्वात परिहसेऽपि भारत ॥१२९
 पुगपञ्जलभूमिं च बिभृयान्न विचक्षणः । गुरुं देवान्प्रति तथा न च पादो प्रसारयेत् ॥१३०
 नाचक्षीत धयंतीं गां जलं नांजलिना पिबेत् । दातातपौ न लेवेत अनुतापं च वर्जयेत् ॥१३१
 दातं शेषेन्न वै कुद्धः सर्वबन्धूनमत्सरी । भौता श्वासनकृत्साधुः स्वर्यस्तस्याव्ययं फलम् ॥१३२
 नोर्धर्वं तु पत्तनद्वारं निरीक्ष्य पर्यटेन्नरः । पुगमात्रं महीपृष्ठे नरो गच्छेद्विलोकयन् ॥१३३
 शेषाहेत्वपि शेषांश्च वश्यात्मा यो निरस्यति । तस्य धर्मार्थकामानां हानिन्नलिपापि जापते ॥१३४
 वृथा मांसं न खादेत पृष्ठमांसं तथैव च । आक्षोशं च विवादं च पैशुन्यं च विवर्जयेत् ॥१३५
 संयावं कृशरं मांसं शाष्कुलीपायसं तथा । आत्मार्थं न प्रकर्तव्यं देवतानां प्रकल्पयेत् ॥१३६
 अजाश्वौ नावकर्षेत ता बहिर्धारयंति च । रक्तमाल्यं न धार्यं स्याच्छुक्लं धार्यं तु पंडितैः ॥१३७
 वर्जयित्वात्र कर्म तथा कुवलयं विभो । रक्तं शिरसि धार्यं च तथा पानेयमित्यपि ॥१३८

कुद्ध, प्रणस्त, रोगी, मूर्ख अन्यमनस्कता, कामरहित, परस्त्री, क्षुधापीडित, और अति भोजन की हुई स्त्री के साथ सम्भोग न करे । पुरुष को स्वयं निन्नलिखित गुणों से युक्त होकर विहार करना चाहिए—स्नान कर सुगन्ध लगाये, धृष्ट हो, श्रान्त, क्षुधापीडित न रहे, और काम समेत एवं अनुराग पूर्ण पुरुष को मैथुन न करना चाहिए । चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा तथा पर्व की तिथियों में तैलाभ्यंग और स्त्री सम्भोग न करना चाहिए । भारत! क्षीर कर्म, सम्भोग के उपशंत और कटे-भूमि के स्पर्श होने पर सवस्त्र स्नान करे । भारत! गुरुजन, पतिव्रता स्त्रियो, यज्ञानुष्ठान करने वाले तपस्वी का परिहास के समय भी निन्दा न करनी चाहिए । बुद्धिमान् को एक साथ जल और अग्नि न उठाना चाहिए, गुरुजन और देवों के सम्मुख पैर न फैलाये । जल पान करती हुई गौ की ओर मुख कर कुछ न कहे, अञ्जली से जलपान न करे । वायु और आत्मप (धूप) का सेवन न करे । अनुताप (पश्चात्ताप) करना त्याग दे । सेवक को डाँटना फटकारना अनुचित नहीं है किन्तु कुद्ध होकर नहीं । समस्त बन्धुवर्गों से मत्सर न करे । भयभीत को आश्वासन देने वाले पुरुष के लिए स्वर्ग साधु सुलभ कहा गया है, जिसका अव्यय फल प्राप्त होता है ॥१२२-१३२। गृहद्वार के ऊपरी भाग को देखते हुए मनुष्य को न चलना चाहिए, क्योंकि मनुष्य को चार पग भी भूमि देख कर ही चलना चाहिए । जो संयमी पुरुष शेष नाग के सम्मुख भी शरीर के शेष षडंग शत्रु (क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, ईर्ष्या, मार्त्स्य) को न अपनाकर उनका निराकरण ही करता है, उसके धर्म, अर्थ और कामनाओं की कभी अल्प भी हानि नहीं होती है । मांस और पृष्ठ गांस का भक्षण वृथा है उसी प्रकार निन्दा, विवाद, तथा चुगुली करने से दूर रहना चाहिए । लपसी, खिचड़ी, मांस, पूरी और सीर देवता के निमित्त ही बनाना चाहिए आत्मार्थ नहीं । पण्डितों को बकरी की रस्सी और वकरी का स्पर्श तथा रक्त वर्ण की माला न धारण कर श्वेत पुष्प की माला धारण करनी चाहिए । विभो! कमल कुवलय (कुमुद) के अतिरिक्त रक्त कमल और पानेय शिरोधार्य करना चाहिए ॥१३३-१३८। काञ्चनी माला कभी भी दूषित नहीं होती

काञ्चनीयापि या माला ता न दुष्यति कहिंचित् । अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नरोत्तम ॥१३९
 अन्यदर्चासु देवानामन्यद्वार्य सभासु च । पिप्पलं च वटं चैव शीर्णभ्लेष्मांतकं तथ ॥१४०
 उदुंब्रं न खादेत भवार्थ्य पुरुषोत्तमः । पतितैश्च कथान्ते च छेदनं च विदर्जयेत् ॥१४१
 पतितः स्यान्नरो राजन्पतितैस्तु सहाचरन् । वद्धो ज्ञातिस्तथा मित्रं दरिद्रो यो भवेदिह ॥१४२
 गृहे वा संस्थापितास्ते गृहवृद्धिमभीप्सता । गृहे पारावता धन्याः शुकाश्च तहसारिकाः ॥१४३
 भवन्त्येते तथा पापास्तथा वै तिलपायिकाः । आजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी ॥१४४
 जलाश्री चैव विभूयादगृहे नित्यमिति स्थितिः । धनुर्वेदे त्वत्ततं यत्नः क्षर्यो नराधिद ॥१४५
 हस्तिपृष्ठेऽवृष्टृष्ठे च रथचर्यासु चैव हि । यत्नदानभव राजेन्द्रं नयवान्सुखमेधते ॥१४६
 प्रजापालन युक्तश्च न क्षांतिं लभते नृप । यज्ञशास्त्रं च विज्ञाय शब्दशास्त्रं च भारत ॥१४७
 गांधर्वशास्त्रं विजेयं कला ज्ञेयश्च भारत । पुराणमितिहासं च तथाख्यानानि यानि च ॥१४८
 एष ते लक्षणोद्देश आचारस्य प्रकीर्तिः । शेषाश्च वेद्या वृद्धेभ्यः प्रत्याहार्या नराधिप ॥१४९
 आचारो भूतिजनन आचारः कीर्तिवर्धनः । आचारादुर्धो इग्नायुराचारो हंत्यलक्षणम् ॥१५०
 आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते । आचारः परमो धर्म आचारद्विधते धनम् ॥१५१
 पुण्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् । सर्ववर्णानुकंपार्थं मयैतत्समुदाहृतम् ॥१५२

है । नरोत्तम! मनुष्य को शयन के साथ अन्य वस्त्र, देवों की अर्चा में अन्य और सभाओं में अन्य वस्त्र धारण करना चाहिए । संसार सुखेच्छक पुरुष को पीपल, वरगद, फटे-चिथरे लसोड़ा और गूलर के फल न खाना चाहिए । कथाओं के अन्त में भी पतितों का सम्पर्क छेदन न करे । क्योंकि राजन्! पतितों का सहचारी भी पतित हो जाता है । गृहवृद्धि के इच्छुक को गृह में (भण्डारी के स्थान) किसी वृद्ध, जातीय, मित्र अथवा दरिद्र को नियुक्त करना चाहिए । गृह में रहने वाले कपोत, शुक और मैना धन्य कहे गये हैं यद्यपि ये पापी और तिलभोजी भी होते हैं । गृह में आजोक्षा चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, जल और अग्नि नित्य रहना चाहिए । नराधिप! धनुर्वेद के अध्ययन एवं अन्यासार्थ निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए । १३९-१४६। राजेन्द्र! हाथी, घोड़े की पीठ पर और रथ में सदैव सावधान रहना चाहिए, क्योंकि नीतिज्ञ प्राणी ही सुखी रहता है । नृप! प्रजापालन करने वाला राजा क्षमाशील नहीं होता है । भारत! यज्ञशास्त्र (पूर्व मीमांसा), शब्दशास्त्र (व्याकरण) गान्धर्व शास्त्र (धनुर्विद्या), चौसठकला, पुराण, इतिहास, तथा समस्त आख्यान का रम्भवेत्ता अवश्य होना चाहिए । नराधिप! मैने तुम्हें आचारं का लक्षण और उसका उद्देश्य बता दिया शेष बाते वृद्धों से जाननी चाहिए । आचार द्वारा ऐश्वर्य की प्राप्ति और वृद्धि होती है तथा आयु वृद्धि समेत कुलक्षण (दोष) का विनाश होता है । सभी आगमों में आचार ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि आचार ही परम धर्म है और उसी से धन वृद्धि, स्वर्ग प्रद और महान् कल्याण कारी आचारोपेश की व्याख्या तुम्हें समस्त वर्णों (के मनुष्यों) के सुखार्थ सुना दिया । नरपुङ्गव! राजन्! आचार पालन करने से मनुष्यों के धर्म, अर्थ और कामनाएँ सदैव सफल

आचार एवं नरपुणग्रव सेव्यमानो धर्मार्थकामफलदो भवतीह पुंसाम् ।
तस्मात्सदैव विदुषावहितेन राजञ्चास्त्रोदितो हनुदिनं परिपालनीयः ॥१५३
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सदाचारधर्मवर्णनं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०५

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

रोहिणीचन्द्रशयनव्रतविधिवर्णनम्

नारद उवाच

दीर्घायुरारोऽयद्गुलादिवृद्धिर्युक्तः पुमान्येन गुणान्वितः स्यात् ।
मुरुमुहुर्जन्मनि येन सम्यग्वतं मम ब्रूहि तदिदुमौले ॥१

श्रीभगवानुवाच

त्वया पृष्टमिदं सम्यग्मुत्राक्षयकारकम् । रहस्यं ते प्रवक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः ॥२
रोहिणीचन्द्रशयनं नाम व्रतमिहोत्तमम् । तस्मिन्नारायणस्याच्यमिन्वयेदिदुनामभिः ॥३
यदा सोमादिनायुक्ता भवेत्पञ्चदशी क्वचित् । अथ वा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमासयां प्रजायते ॥४
तदा स्नानं नरः कुर्यात्पञ्चगव्यं च सर्वपैः । आप्यायस्वेति च जपेद्विद्वानष्टशतं पुनः ॥५
शद्गोऽपि परया भक्त्या पाखण्डालापवर्जितः । सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमोनमः ॥६

होती रहती हैं अतः शास्त्रमर्मज्ज विद्वानों को शास्त्रीय आचारों के पालन अनुहित सम्पन्न करना चाहिए । १४७-१५३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
सदाचारधर्मवर्णन नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥२०५।

अध्याय २०६

रोहिणीचन्द्रशयन विधि का वर्णन

नारद बोले—मुझे चन्द्रमौलिक (शिव) जी के उस व्रत की भलीभाँति व्याख्या बताने की कृपा करें, जिससे दीर्घायु, नीरोग और कुल आदि की वृद्धि समेत पूरुष प्रत्येक जन्म में गुणी होता रहे । १

श्रीभगवान् बोले—तुम्हारा यह प्रश्न बहुत उत्तम है, लोक-परलोक में अक्षय फल प्रदान करने वाले इस रहस्य को, जिसे पुराण वेत्ताओं सुस्पष्ट कहा है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ! सुनो! रोहिणी चन्द्रशयन नामक यह परमोत्तम व्रत है, जिसमें चन्द्रमा के नामों द्वारा नारायण की अर्चना सम्पन्न होती है। सोमवार के दिन पूर्णिमा अथवा पूर्णिमा के दिन ब्रह्म नक्षत्र के समय राई समेत पंचगव्य से स्नान पूर्वक मनुष्य को ‘आप्यायस्वेति’ मंत्र का एक सौ आठ वार जप करना चाहिए। शूद्र को भी भक्तिश्रद्धा समेत पाखण्डादि दोषरहित होकर, ‘वर प्रदान करने वाले सोम (चन्द्र) और विष्णु को बार-बार

कृतज्यः स्वनमागत्य भगवन्तं मधुसूदनम् । पूजयेत्फलपूष्यैश्च सोमनामानि कीर्तयेत् ॥७
सोनाय नमोऽस्तु पादावनंतनाम्बे ह्यनुजानु जह्वे । ऊरद्यं चापि वृकोदराय संपूजयेन्मेद्रमनङ्गबाहवे ॥८

नमोनमः कामसुखप्रदाय कटिः शशांकस्य तमर्चनीया ।
तथोदरं चाप्यमृतोदराय नमिभिः सुपूज्या विधिलोचनाय ॥९
नमोऽस्तु चन्द्राय मुखं प्रपूज्य हनुद्विजानामाधिपाय पूज्या ।
आस्यं नमस्चंद्रासेभिपूज्यमोष्टौ कुमुखंडवनत्रियाय ॥१०
नासा च नाथाय वनौषधीनां ह्यानन्ददायाथ पुनर्भुवोश्च ।
नेत्रद्वयं नीलकुमुतित्रियाय चेदीवरश्यामकराय चोरः ॥११
नरः समस्ताध्वरवंदिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय ।
ललाटमिंदोरुदधित्रियाय केशाः सुषुप्त्माधिपतेः प्रपूज्याः ॥१२
शिरः शशङ्काय नमोऽसुरारेविश्वेश्वरायेति नमः किरीटम् ।
पद्मप्रिये रोहिणि नाम लक्ष्मि सौभाग्यसौख्यामृततारकामै ॥१३
देवीं च सम्पूज्य सुगन्धधूपैनैवेद्यपुज्ञादिभारदुपत्नीम् ।
प्रपूज्य भूमौ पुनरुर्थितेन स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः ॥१४
देयः प्रभाते स हिरण्यवारिकुंभो मनः पापविनाशनाय ।
संप्राश्य गोमूत्रममांससन्धाक्षारमष्टावय विंशतिं च ॥१५
ग्रासान्पयः सर्पियुतानुपोष्य भुक्त्वेतिहासं शृणुयान्मुहूर्तम् ।
कदं बनीलोत्पलकेतकानि जाती सरोजं शतपत्रिका च ॥१६

नमस्कार करता हूँ । २-६। इसका कुछ समय जप करना चाहिए । तदनन्तर अपने घर फल पुष्पो आदि द्वारा चन्द्रमा के नामोच्चारण पूर्वक भगवान् मधुसूदन की सप्रेम अर्चा करे—‘शांत सोम को नमस्कार है’ से चरण ‘अनन्त को नमस्कार है’, से घुटने और जाँधे, ‘वृकोदर को नमस्कार है’ से दोनों उठ, ‘अनङ्गवाहु को नमस्कार है’ से गेढ़, ‘काम सुख प्रदायक को नमस्कार है’ से कटि, ‘अमृतदर को नमस्कार है’ से उदर, ‘विधिलोचन को नमस्कार है’ से नाभि, ‘चन्द्र को नमस्कार है’ से मुख, ‘द्विजाधिप को नमस्कार है’ से हनु (छुड़ी), ‘चन्द्रमा को नमस्कार है’ से कपोल, ‘कुमुद के खण्डवन प्रिय को नमस्कार है’ से ओष्ठ, ‘वौषधि नाथ को नमस्कार है’ से नासिका, ‘आनन्दप्रद को नमस्कार है’ से दोनों भौंह, ‘नीलकुमुदप्रिय को नमस्कार है’ से दोनों नेत्र, ‘इन्द्रीवरश्याम करने वाले को नमस्कार है’ से हृदय, ‘समस्त यज्ञ वन्दित को नमस्कार है’ से दोनों कान, ‘दैत्यनिषूदन को नमस्कार है’ से ललाट, ‘समुदप्रिय इन्द्रु को नमस्कार है’ से केश, ‘सुषुप्त्मा (नाड़ी) के अधिपति शशांक को नमस्कार है’, से शिर, और ‘असुरारि विश्वेश्वर को नमस्कार है’, से किरीट का पूजन करते हुए ‘पद्मप्रिय, रोहिणी, लक्ष्मी, और सौभाग्य, सौख्य प्रदान करने वाली अमृत तारकाको नमस्कार है’ । ७-१३। कह कर सुगन्ध, धूप, नैवेद्य और पुष्पादि द्वारा चन्द्रपत्ली देवी की भूमि में अर्चा करें । अनन्तर प्रातः काल स्नान करके हविष्य समेत हिरण्य भूषित जल पूर्ण कलश मानसिक पाप के विनाशार्थ किसी ब्राह्मण विद्वान् को अर्पित करे । पुनः गोमूत्रके आशन पूर्वक मांस तथा लवण रहित अन्न के दूध-घृत समेत अद्वार्इश ग्रास भक्षण करके अनन्तर इतिहास का श्रवण करे । इसी प्रकार

अस्त्वानकुञ्जानथं सिन्दुवारपुण्डं उत्तरारदं मलिकायाः ।

मुक्तं च विष्णोः करवीरपुण्डं श्रीचंपकं चंद्रमसश्च देयम् ॥१७

श्रावणादिषु मासेषु क्रनादेतानि सर्वदा । यस्मिन्मासे व्रतादिः स्यात्पुष्टैरभ्यर्थयेद्हरिम् ॥१८
 एकसंवत्तरं यावदुपोष्यं विधिवन्नरः । व्रतांते शयनं दद्यादपर्णोपस्करान्वितम् ॥१९
 रोहिणीचन्द्रमिथुनं कारयित्वा तु कांबनम् । चंद्रः षडञ्जुलः कार्यो रोहिणी यतुरंगुला ॥२०
 मुक्ता फलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृतम् । शीरकुंभोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्वितम् ॥२१
 दद्यान्मन्देगं पूर्वाह्लै शालीक्षुफलसंयुतम् । श्वेतामयं सुदृशस्मिंस्य रौप्यखुशसमन्विताम् ॥२२
 सवत्सभाजनां धेनुं तथा शंखं च शोभनम् । भूषणैर्द्विजदांपत्यमलंकृत्य गुणान्वितम् ॥२३
 चंद्रोजयं द्विजलपेण सभार्थं इति कल्पयेत् । यथा न रोहिणी कृष्णं शयनं त्यज्य गच्छति ॥२४
 सोमरूपस्य ते तद्वन्ममाभेदोऽस्तु सूर्तिभिः । यथा त्वसेव सर्वेषां परमानंदमुक्तिदः ॥२५
 भुत्तिर्मुक्तिस्थाभिक्तिस्त्वयि यज्ञेऽस्तु मे दृढा । इति भंसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानग्न ॥२६
 रूपारोग्यायुषामेतादिधायकमनुत्तमम् । इदमेव पितृणां च सर्वदा वल्लभं मुने ॥२७
 त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा शतकल्पशतत्रयम् । चन्द्रलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिर्दुर्लभम् ॥२८
 नारी वा रोहिणी चंद्रशयनं वा समाचरेत् । साऽपि तत्कलमाप्नोति पुनरावृत्तिर्दुर्लभम् ॥२९

कदम्ब, नीलकंमल, केतकी, जाती, कमल, शतपत्रिका, अस्त्वान कुञ्ज, सिन्दुवार, मलिका विष्णु के लिए तथा करवीर, चम्पक चन्द्रमा को श्रावण आदि प्रति मासों के क्रमिक पूजन में अर्पित करना चाहिए । क्योंकि जिस मास में जो व्रत विधान बताया गया है उसमें कहे हुए पुष्टों से भगवान् का पूजन करे । १४-११। इस भाँति एक वर्ष तक सविधान उपवास आदि साधन सम्पन्न सुशव्याया, रोहिणी समेत चन्द्रमा की सुवर्ण प्रतिमा का जिसमें छ: अंगुल की चन्द्रमा की प्रतिमा और चार अङ्गुल की रोहिणी की प्रतिमा होती है, तथा आठ मोती से श्रेत वर्ण के नेत्र का निर्माण कर वस्त्राच्छव्य करे और दुग्ध पूर्ण कलश के ऊपर, जो अक्षत पूर्ण कासे के पात्र से सुसज्जित हो, पूर्वाह्लै के समय मंत्रोच्चारण पूर्वक गुड चावल युक्त प्रतिष्ठित कर इवेत वर्ण की धेनु, जिसके सुवर्ण के मुख, चाँदी की खुर बनी हो, वस्त्र, भाजन, शोभन शंख, समेत किसी गुणी ब्राह्मण दम्पती को अर्पित करे, जो भूषणों से भूषित हों । 'द्विज रूपसे यह चन्द्र देव स्थित है' उस ब्राह्मण दम्पति में ऐसी कल्पना कर उनकी प्रार्थना करे— कृष्ण! जिस प्रकार रोहिणी आप के शयन को त्याग कर कभी कहीं नहीं जाती है, उसी भाँति सोम रूप आप की सभी मूर्तियों द्वारा भेरा अभेद भाव बना रहे । जिस भाँति सभी प्राणियों 'को तुम्हीं परमानन्द रूपी मुक्ति, और मुक्ति प्रदान करते हो, उसी भाँति तुम्हारे यज्ञ रूप में मेरी दृढ़ भक्ति सदैव बनी रहे । २०-२५। अनग्न! इस प्रकार संसार भीति एवं मुक्ति कामना वाले प्राणी को इसके द्वारा रूप, आरोग्य, और परमोत्तम आयु की प्राप्ति होती है । मुने! यह व्रत पितरों को भी अत्यन्त प्रिय है । इस व्रतानुष्ठान द्वारा मनुष्य को तीन सौ कल्प तक तीनों लोकों के अधिव्यापक की सुखानुभूति के उपरांत उस चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है, जहाँ पहुँचने पर पुनर्जन्म दुर्लभ रहता है । २६-२८। यदि रोहिणी-चन्द्रशयन नामक व्रत को स्त्री भी सुसम्पन्न करती है तो उसे

इति पठतिशृणोति वा य इत्थं मधुमथनार्चनमिंदीकीर्तनेन ।
पठितमपि च ददाति सोऽपि शौरेभलवनगतः परिदूज्यतेऽमरौघैः ॥३०
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नारदमहेऽवरसम्बादे रोहिणीचन्द्रशश्नुन्नतिर्फिवर्षन्त नाम शडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०६

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णस्यद्वारकागमनवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

व्रतं दानमयो राजस्तत्वं धर्मः प्रकाशिताः । १धर्मसूलं यतश्चेदं तस्माद्धर्मपरो भव ॥१
जग्नताऽपि मया पार्थं कामार्थौ न प्रकाशितौ । यतः स्वयं प्रवृत्तोऽत्र लोकः किमनुवर्ण्यते ॥२
कामिनो वर्णयन्कामाल्लोभ्यं लुब्धस्य वर्णयन् । नरः किं फलमाप्नोति कूपेऽधिमिव पातयन् ॥३
भविष्यो हरमेतते कथितं पाण्डुनन्दन । सदाचारवतां पुंसां व्रतदानसमुच्चयः ॥४
यदृष्टमिति हासेषु पुराणेषु च भारत । वेदवेदाङ्गसम्बद्धं^२ तत्सर्वमिह दर्शितम् ॥५
लोकेवदाविरुद्धं यत्कथ्यते मनुजोत्तम । न तत्रस्था प्रकर्तव्या विप्रलापो हि सस्मृतः ॥६

भी वही फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार व्रताल्यान को, जिसमें चन्द्रमा के नामों द्वारा मधुसूदन भगवान् की अर्चा होती है, पढ़ने, सुनने अथवा उसके निमित्त मति भी प्रदान करने वाले मनुष्य को देव पूजन विष्णु लोक प्राप्त होता है। १२९-३०

श्रीभविष्यमहापुराण में उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुग्मित्तिर सम्बाद में अन्तर्गत नारद महेश्वर सम्बाद में रौहिणीचन्द्रशयन ब्रतविधानवर्णन नामक दो दौ छठाँ अध्याय समाप्त । २०६।

अध्याय २०७

श्रीकृष्ण का द्वारका-गमन-वर्णन

धीकृष्ण बोले—राजन्! मैंने व्रत तथा दान द्वारा तुम्हें धर्मों का वर्णन सुनाया है, क्योंकि यही धर्म के मूल कारण हैं अतः तुम निरन्तर अपनी धार्मिक भावना दृढ़ करो। पार्थ! मैंने जान बूझ कर काम और अर्थ के ऊपर प्रकाश नहीं डाला है, क्योंकि लोक जिस विषय में स्वयं प्रवृत्त है, उसका वर्णन करने से क्या लाभ हो सकता है! कूप में अधेर को गिराने की भाँति मनुष्य को कामी के लिए काम के वर्णन और लोभी के निर्मित अर्थलोभ के वर्णन करने से और क्या लाभ हो सकता है। पाण्डुनन्दन! इस प्रकार भविष्य पुराणका उत्तर भाग तुम्हें मैंने सुना दिया, जिसमें सदाचारशील पुरुषों के लिए दान व्रत का समुच्चय वर्णन किया गया है। भारत! इतिहासों और पुराणों में मैंने जो कुछ देखा है, उन वेद वेदाङ्ग सम्बद्धी सभी वातों को तुम्हारे सामने प्रकट किया। १-५। मनुजोत्तम! इसमें जो कुछ कहीं लोक और वेद के विरुद्ध निरूपित है उसमें किसी प्रकार की आस्था न कर केवल उसे वाहगमणों का आलाप

१. मया विचार्य तत्रैव । २. वेदवेदांतसंबद्धम् ।

अतिस्त्रेहेन भवतो ममैतस्मुदादृतम् । क्रृषीणां पुरतः कुंठा भवति भारती ॥७
नैतत्प्रकाशनीयं हि दाम्भिकाय शठाय च । नास्तिकायान्यमेनसे कुतकोपहताय च ॥८
साधु वृत्ताय दांताय सत्याजरवरताय च । एतदाख्यायमानं हि शुभमुत्पादयेदगतिम् ॥९

सामान्यमेतत्सुरसत्तमानां वर्णश्रमाणां च नरेन्द्रचन्द्र ।

ख्यातं भविष्योत्तरज्ञानधेयं भया तुराणं तत्र सौहृदेन ॥१०

धर्मः स्वयं पर्यं भवानिह त्वं धर्मर्थविद्वृष्टपरावरश्च ।

पृष्ठोऽस्मातो धर्ममहं च दच्चिम श्रद्धेयमेतत्सुतरां जनस्य ॥११

यास्याम्यहं द्वात्रवता पुनश्च यज्ञं समेव्यामि महोत्सवे च ।

कालस्य सर्वं हि त्वशे विदित्वा नैदानुतापो भवतात्र कार्यः ॥१२

इत्युत्तदान्यातुकामः प्रहृष्टः संपूजितः पांडुसुतर्महात्मा ।

पृष्ठा सुहृजातिजनं हि सर्वं जगाम विप्रान्शृणिपत्य कृष्णः ॥१३

यद्याज्ञवल्क्यमुनिना भगवान्वशिष्ठः पृष्ठः कित्तेत्तरमुवाच बहुप्रकारम् ।

कृष्णेन पांडुतनयस्य च यत्प्रदिष्टं व्यासेन तत्कृतमहो मुनिषुगवेन ॥१४

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दतेव्यासः । यस्यास्यकमलगलितं वाहृमधुपुण्यं जगत्पिबति ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे समाप्तिवर्णनं

श्रीकृष्णस्य द्वारकां प्रति गमनवर्णनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०७

मात्रजानो । पार्थ! मैंने आप के स्नेहसे अत्यन्त विदश होकर इन बातों को प्रकाशित किया है अन्यथा ऋषियों के समक्ष कोई बात कहते मैं वाणी कुण्ठित हो जाती है । दम्भी, शठ, नास्तिक, अन्यमनस्क, कुतकं से हत बुद्धि होने वाले मनुष्यों के समक्ष इसे अप्रकाशित रख कर सदाचारी, शुद्ध, सत्यपरायण पुरुष, को अर्पित करना चाहिए । क्योंकि यह (भविष्यपुराण का) आख्यान शुभ गति प्रदान करता है । नरेन्द्र! मैंने तुम्हारे सौहार्दवश यह भविष्योत्तर नामक पुराण, जिसमें वर्णश्रमों और देवथ्रेष्ठों के आख्यान हैं, और प्रव्यात है, विवेचन पूर्ण सुना दिया । ६-१०। पार्थ! धर्मर्थवेत्ता और परावर (ऊँच-नीच) के सिद्धयर्थ करने के नाते तुम स्वयं धर्मसूर्ति हो, किन्तु पूछने के नाते मैंने भी धर्म का वर्णन किया है, अब मैं द्वारका पुरी जाऊँगा और उस महोत्सव में यज्ञानुष्ठान के अवसर पर पुनः आने की चेष्टा करूँगा अतः सभी कुछ काल के अधीन जानकर आप इसमें कुछ भी अनुताप न करेंगे । महात्मा कृष्ण के ऐसा कह कर गमन कामनया पाण्डुपुत्रों द्वारा पूजित एवं हर्षित होते हुए मित्रगण, और जातीय बन्धुओं आदि की सम्मति से विदा होकर वाहमणों को सादर नमस्कार करके द्वारका का प्रस्थान किया । इस प्रकार याज्ञवल्क्य मुनि के सादर पूछने पर भगवान् वशिष्ठ ने अनेक भाँति जो कुछ निश्चित उत्तर दिया है, और पाण्डुपुत्र (युधिष्ठिर) के समक्ष उन्हें जो उपदेश किया है, उसी को मुनि श्रेष्ठ व्यास जी ने पुराण का रूप प्रदान किया है । पराशर पुत्र एवं संत्यवती के हृदय नन्दन भगवान् व्यास की जय हो, जिसके मुख- कमल से निकले हुए वाणीरूपपुण्यमधु (शहद) का पान सारा संसार करता है । ११-१५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्बाद में समाप्तिवर्णन

समेत श्रीकृष्ण के द्वारका के प्रति गमन वर्णन नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥२०७।

१. सम्प्रदर्शितम् । २. कुरुकर्मविहिताय च । ३. परामुत्पादयेद्वृत्तिम् ।

अथनष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनुक्रमणिकाकथनम्

(अथ वृत्तांताः)

व्यासानुगमनं पूर्वं ब्रह्माण्डस्य समुद्भवः । माया च वैष्णवी यस्मात्संसारे दोषकीर्तनन् ॥१
 पापभेदस्ततस्तस्माच्छुभाषुभविनिर्णयः । शकटव्रतनाहात्म्यं तिलकव्रतकीर्तनम् ॥२
 अशोककरवीरात्म्यं व्रतं तस्माच्च कोकिलम् । बृहत्तपोव्रतं नाम रुद्रोपेषणमेव च ॥३
 द्वितीयाव्रतमाहात्म्यमशुभ्यै शयनं तथा । कामात्म्या तु तृतीया च मेघपालीव्रतं तथा ॥४
 पञ्चाग्निसाधना रम्या तृतीयाव्रतमुत्तमम् । निरात्रं गोष्ठदं नाम् हरकाली व्रतं तथा ॥५
 ललितात्म्या तृतीया च योगात्म्या च तथापरा । उमामहेश्वरं नाम तथा रम्भातृतीयकम् ॥६
 सौभाग्यात्म्या तृतीया च आद्रानिंदकरी तथा । चैत्रे भाद्रपदे माघे तृतीयाव्रतमुच्यते ॥७
 अनन्तरी तृतीया च गणशांतिद्वतं तथा । सारस्वतव्रतं नाम् पञ्चमीव्रतमुच्यते ॥८
 तथा श्रीपञ्चमी नाम षष्ठी शोकप्रणाशिनी । फलषष्ठी च मन्दारषष्ठीव्रतमथोच्यते ॥९
 ललिताव्रतषष्ठी च षष्ठी कार्तिकसंज्ञिता । महत्तपः सप्तमी च विभूषा^१ सप्तमी तथा ॥१०
 आदित्यमण्डपविधिस्त्रयोदशीति सप्तमी । कृकवाकुल्पवङ्गं च तथैवाभ्यसप्तमी ॥११
 कल्याणसप्तमी नाम शर्करासप्तमीव्रतम् । सप्तमी कमलात्म्या^२ च तथान्या शुभसप्तमी ॥१२

अध्याय २०८

अनुक्रमणिका-कथन

(वृत्तान्त) इस पुराण में सर्वप्रथम व्यासानुगमन, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, तथा उस वैष्णवी माया का वर्णन है जिसके द्वारा संसार दोषमय कहा गया है । पुनः पापों के भेद उसके द्वारा होने वाले शुभाशुभ फलों के निर्णय, शकट व्रत का माहात्म्य, तिलकव्रत की व्याख्या, अशोक करवीर व्रत, कोकिलाव्रत, महान् तपोव्रत, रुद्रका उपोषण, द्वितीया व्रत का माहात्म्य, अशूच्य शयन व्रत, कामात्म्या तृतीया, मेघपाली व्रत, पञ्चाग्नि साधन समेत सुरम्य तृतीया व्रत, तीन रात्रि का होने वाला गोष्ठद व्रत, हरकाली व्रत, ललिता तृतीया, योगात्म्या तृतीया, उमामहेश्वर नामक रम्य तृतीया, सौभाग्य की तृतीया, आद्रानिंदकरी तृतीया, तथा चैत्र, भाद्रपद और माघ का तृतीया व्रत, अनन्तरी तृतीया, गण शान्ति व्रत, सारस्वत व्रत, पञ्चमी व्रत, श्रीपञ्चमी, शोकनाशिनी षष्ठी, फल षष्ठी, मन्दार षष्ठी व्रत, ललिता षष्ठी, कार्तिक की षष्ठी, महान् तप, सप्तमी, विभूषा सप्तमी, आदित्य मण्डप के विधान समेत इन तेरह सप्तमीका कृक, वाकु, और पत्वङ्ग नामक सप्तमी, अभ्य सप्तमी, कल्याण सप्तमी शर्करा सप्तमी, कमला सप्तमी, अन्य शुभ

१. अष्टमीवृत्तान्ताः इति —पुस्तकद्वये पाठः । २. ३. शयनं । ४. मेघपाली व्रतं ।
 ५. ६. कल्याणसप्तमी । ७. वामलात्म्या च ।

लपनव्रतसप्तम्यौ तथैवाचलसप्तमी । बुधाष्टमीव्रतं नाम तथा जन्माष्टमीव्रतम् ॥१३
 द्वूर्वकृष्णाष्टमी प्रोक्ता अनयव्रतमष्टमी । अष्टम्यर्काष्टमी चाय श्रीवृक्षनवमीव्रतम् ॥१४
 ध्यजात्या नवमी चैव उल्काल्या नवमी तथा । दशावतारदक्षकं तथाशादशमीव्रतम् ॥१५
 रोहिणीद्विरशभुव्यसूर्यावियोगकम् । गोवत्सद्वादशी नाम व्रतमुक्तं ततः परम् ॥१६
 नीराजनद्वादशी च भीष्मपञ्चकमेव च ; मल्लिकाल्या द्वादशी च भीमा द्वादशिकोत्था ॥१७
 श्रवणद्वादशी नाम संप्राप्तिद्वादशीव्रतम् । गोविन्दद्वादशी नाम व्रतमुक्तं ततः परम् ॥१८
 अखण्डद्वादशी नाम तिलद्वादश्यतः परम् । सुकृतद्वादशी नाम धरणीव्रतमेव च ॥१९
 विशोकद्वादशी नाम विभूतिद्वादशीव्रतम् ! पुर्व्यद्वादशी चैव द्वादशी श्रवणर्क्षणा ॥२०
 अनगंद्वादशी चैव अङ्गपादव्रतं तथा । निम्बार्ककरवीराय यमा दर्शन्योदशी ॥

अनङ्गद्वादशी चापि पालिरम्भाव्रते तथा ॥२१
 चतुर्दशीव्रतं प्रोक्तं ततोऽनन्तचतुर्दशी । 'श्रावणीव्रतनक्तं च चतुर्दश्यष्टमीदिने ॥२२
 व्रतं शिवचतुर्दशां फलत्यागचतुर्दशी । वैशाखी कार्तिकी माघीव्रतमेतदनन्तरम् ॥२३
 कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे कृत्तिकाव्रतमीरितम् । फालगुने पूर्णिमायां तु व्रतं पूर्णमनोरथम् ॥२४
 अशोकपूर्णिमा नाम अनन्तव्रतमेव च । व्रतं हि सांभरायिण्यं नक्षत्रपुरुषव्रतम् ॥२५
 शिवनक्षत्रपुरुषं सम्पूर्णं येन मुच्यते । कामदानव्रतं नाम वृत्ताकविधिरेव च ॥२६
 आदित्यस्य दिने नक्तं संक्रात्युद्यापने फलम् । 'भद्रावतमगस्त्यार्थो नवचन्द्रार्कमेव च ॥२७
 अर्थः शुक्रबृहस्पत्योः पञ्चाशीति व्रतानि च । माघस्नानं नित्यस्नानं रुद्रस्नानविधिस्तथा ॥२८

सप्तमी, स्नान-व्रत की सप्तमी, अचला सप्तमी का वर्णन है । १-१३^१। उसी भाँति बुध की अष्टमी का, जन्माष्टमी व्रत, द्वूर्वकृष्णाष्टमी, अनयाष्टमी व्रत, अर्काष्टमी व्रत, श्रीवृक्ष नवमी, ध्वज नवमी, उल्का नवमी, दशावतार व्रत, आशादशमीव्रत, रोहिणी, इन्द्र, हरि, शम्भु, ब्रह्मा, और सूर्य का अवियोग व्रत, गोवत्स-द्वादशी व्रत, नीराजन द्वादशी, भीष्मपञ्चक व्रत, मल्लिका द्वादशी, भीष्म द्वादशी, श्रवण द्वादशी, सम्प्राप्ति द्वादशी, गोविन्द द्वादशी, अखण्ड द्वादशी, तिल द्वादशी, सुकृत द्वादशी, धरणी व्रत, विशोक द्वादशी, विभूति द्वादशी, पुर्व्यनक्षत्र की द्वादशी, श्रवण नक्षत्र की द्वादशी, अनङ्ग द्वादशी, अङ्गपाद व्रत, निम्बार्क, करवीर और यम की दर्श त्रयोदशी, पालि रम्भाव्रत को अनङ्ग द्वादशी, चतुर्दशी व्रत, अनन्त चतुर्दशी, चतुर्दशी में श्रावणी और अष्टमी का नक्त व्रत, शिवचतुर्दशी, फलत्याग चतुर्दशी वैशाख, कार्तिक और माघ की पूर्णिमा व्रत, कार्तिक पूर्णिमा के दिन कृत्तिका का योग होने पर कृत्तिका व्रत, फालगुन की पूर्णिमा में पूर्ण मनोरथ नामक व्रत, अशोक पूर्णिमा, अनन्त व्रत, सांभरायणी व्रत, नक्षत्र पुरुष व्रत, सम्पूर्ण नामक शिव नक्षत्र पुरुष व्रत, काम दान व्रत, वृत्ताकविधि, आदित्य के दिन नक्त व्रत, सक्रान्ति के उद्यापन का फल वर्णन, भद्राव्रत, अगस्य के अर्थ का वर्णन, नवीन-चन्द्रार्क व्रत, शुक्र-बृहस्पति के अर्थ



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]

चंद्रार्कग्रहणे ज्ञानं विधिन्वान्नाशने तथा । वापीकूपतडागानमुत्सर्गो वृक्षयाजनम् ॥२९
 देवपूजादिदीपदानवृषोत्सर्गविधिस्तथा । फालगुन्युत्सवकं नाम तथान्यः सदनोत्सवः ॥३०
 भूतमाता च श्रावण्यं रक्षाबंधविधिस्तथा । विधिस्तथा नवम्यात्तु तथा चन्द्रमहोत्सवः ॥३१
 दीपालिकायां तु होमो लक्ष्मोमविधिस्तथा । कोटिहोमो महाशीर्तिर्गणनाथस्य शांतिका ॥३२
 तथा नक्षत्रहोमोऽथ गोदानविधिरेव च । गुडधेनुघृतधेनुतिलधेनुव्रतं तथा ॥३३
 जलधेनुविधिः प्रोक्तो लवणस्य तथा परा । धेनुः कर्द्द समं ज्ञात्वा नवनीतस्य चापरा ॥
 सुवर्णधेनुश्च तथा देवकार्यं चिकिर्षुभिः ॥३४

इति श्रीभविष्ये भहापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
 संक्षिप्तानुक्रमणिकाकथनं नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः । २०८

आदि पचासी व्रत का वर्णन माघज्ञान, नित्यज्ञान, एवं रुद्रस्तान का विधान. चन्द्र सूर्य के ग्रहण में ज्ञान विधान का वर्णन है। अन्नआशन, वावली, कूप, सरोवर के उत्सर्ग, वृक्ष याजन, देवपूजा, दीपदान, और वृषोत्सर्ग का विधान, फालगुनी उत्सव, सदनोत्सव, भूतमाता का पूजन, श्रावणी में रक्षाबन्धन विधान, नवमी विधि, चन्द्रमहोत्सव, दीपालिका, हवन, लक्ष्मोम, कोटिहोम, महाशीर्ति व्रत, गणनाथ की शांति, नक्षत्र होम, गोदानविधि, गुडधेनु, घृतधेनु, तिलधेनु, जलधेनु, लवणधेनु, नवनीत (मध्यवन) की धेनु, तथा देव कार्य को सुसम्पन्न करने वाले पुरुषों को सुवर्णधेनु का भी सविधान निर्माण एवं दान अवश्य करना चाहिए। १४-३४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
 संक्षिप्त अनुक्रमणिका कथन नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त । २०८।

समाप्तोऽयं भविष्यपुराणग्रन्थः